१ओं सतिगुर प्रसादि ।

आदि

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब

(पहली पोथी)

[हिन्दी अनुवाद व पंक्तिवार नागरी लिप्यन्तरण सह]



प्रकाशक

भुवन वाणी ट्रस्ट

...पुरम्', ४०१/१७८, सीतापुर रोड, लखनऊ-२२६००३





१ ओं सतिगुर प्रसादि ।

आदि

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब

(प्रथम सैंची)

[हिन्दी अनुवाद सहित नागरी लिप्यन्तरण]

अनुवाद—

डॉ० मनमोहन सहगल

एम० ए०, पीएच०डी०, डी०लिट्०

लिप्यन्तरण—

नन्दकुमार अवस्थी

प्रकाशक

भुवन वाणी ट्रस्ट

भाकर निलयम्', ४०५/१२८, चौपटियाँ रोड, लखनऊ-२२६००३

प्रथम संस्करण—

१९७८ ई०

पृष्ठसंख्या— १८×२२÷८ = ९६७

भेंट— ४०·०० रुपया

मुद्रक :—

वाणी प्रेस

भुवन वाणी ट्रस्ट

'प्रभाकर निलयम्', ४०५/१२८, चौपटियाँ रोड, लखनऊ-२२६००३

प्रकाशकीय

प्रत्येक क्षेत्र प्रत्येक संत की वाणी।

सम्पूर्ण विश्व में घर-घर है पहुँचानी ॥

विषय-प्रवेश

लोकप्रख्यात धर्मग्रन्थ 'श्री गुरुग्रन्थ साहिब' के हिन्दी अनुवाद सहित ... नागरी लिप्यन्तरण के चार सैंचियों (जिल्दों) में प्रकाशन की योजना के अन्तर्गत, यह प्रथम सैंची ...कों के सम्मुख प्रस्तुत है। भुवन वाणी ट्रस्ट के देवनागरी अक्ष... ...शी-विदेशी प्रकाण्ड-शाखाओं में, संस्कृत, अरबी, फ़ारसी, उर्दू, हि... ...श्मीरी, गुरमुखी, राजस्थानी, सिन्धी, गुजराती, मराठी, कोकणी, मलयाळम, तमिळ, कन्नड, तेलुगु, ओड़िया, बंगला, असमिया, नेपाली, अंग्रेज़ी, हिब्रू, ग्रीक आदि के वाङ्मय के अनेक अनुपम ग्रन्थ-प्रसून और किसलय खि... के हैं, अथवा खिल रहे हैं। इस नागरी अक्षयवट की गुरमुखी शाखा ... ग्रन्थ दूसरा पल्लव है।

भूमण्डल पर देश-काल-पात्र ... प्रभाव से मानव जाति, विभिन्न लिपियाँ और भाषाएं अपनाती रही है। उन सभी भाषाओं में अनेक दिव्य वाणियाँ अवतरित हैं, जो विश्वबन्धुत्व और परमात्मपरायणता का पथ प्रदर्शन करती हैं; किन्तु उन लिपियों और भाषाओं से अपरिचित होने के कारण हम इस तथ्य को नहीं देख पाते। अपनी निजी लिपि और अपनी भाषा में ही सारा ज्ञान और सारी यथार्थता समाविष्ट मानकर, दूसरे भाषा-भाषियों को उस ज्ञान से रहित समझते हुए हम भेद-विभेद के भ्रमजाल में भ्रमित होते हैं।

भूमण्डल की बात तो दूर, हमारे अपने देश 'भारत' में ही अनेक भाषाएँ और लिपियाँ प्रचलित हैं। एक ब्राह्मी लिपि के मूल से उत्पन्न होने के बावजूद उन सब से परिचित न होने के कारण हम अपने को परस्पर विघटित समझने लगते हैं। सारी लिपियाँ और भाषाएँ सीखना-समझना सम्भव भी नहीं है।

सुतरां, यथासाध्य विश्व, और अनिवार्यतः स्वराष्ट्र की सभी भ... के दिव्य वाङ्मय को राष्ट्रभाषा हिन्दी और सम्पर्कलिपि नागरी में ...नुवाद लिप्यन्तरित करके, क्षेत्रीय स्तर से बढ़ा कर उसको सारे राष्ट्र को सुलभ कराना, समस्त सदाचार-साहित्य-निधि को सारे देश की सम्पत्ति बनाना, यह संकल्प भगवान की प्रेरणा से सन् १९४७ में मैंने अपनाया, और इसी

उद्देश्य से १९६९ ई० में भुवन वाणी ट्रस्ट की स्थापना हुई। प्रस्तुत 'श्री गुरू ग्रन्थ साहिब' का हिन्दी अनुवाद सहित नागरी लिप्यन्तरण भी भाषाई सेतुबन्ध की इसी पुष्कल शृङ्खला की एक कड़ी है।

आदि ग्रन्थ

आदि श्री गुरू ग्रन्थ साहिब की लिपि गुरमुखी है। पृष्ठ १९ पर प्रस्तुत गुरमुखी-देवनागरी वर्णमाला चार्ट से स्पष्ट है कि गुरमुखी अक्षर प्रायः नागरी लिपि के अनुरूप हैं और सामान्य ध्यान रखने पर गुरमुखी और हिन्दी-भाषी परस्पर दोनों लिपियों का सरलता से पाठ कर सकते हैं। ग्रन्थ की गुरुवाणियाँ अधिकांश पञ्जाब प्रदेश में अवतरित हैं और इस कारण जन-साधारण उनकी भाषा को पञ्जाबी के सदृश अनुमान करता है; जबकि बात ऐसी नहीं है। श्री गुरू ग्रन्थ साहिब की भाषा आधुनिक पञ्जाबी भाषा की अपेक्षा हिन्दी भाषा के अधिक समीप है; और हिन्दी-भाषी को पञ्जाबी-भाषी की अपेक्षा गुरु-वाणियों का आशय अधिक बोधगम्य है।

दूसरी भ्रान्ति है कि सामान्यजन समझते हैं कि श्री गुरू ग्रन्थ साहिब सिक्ख-पन्थ-मात्र का धर्मग्रन्थ है, उसमें सिक्ख अनुयायियों के लिए ही विधि-निषेध वर्णित होंगे; जबकि तथ्य यह नहीं है। अलबत्ता यह सही है कि संकट और त्रास के युग में एक संत्रस्त मानव-समूह इन वाणियों के बल पर संगठित हुआ और अपूर्व उत्सर्ग एवं बलिदान द्वारा उसने परित्राण प्राप्त किया। परन्तु श्री गुरू ग्रन्थ साहिब की दिव्य गुरुवाणियों में किसी वर्ग-विशेष, पक्ष-विपक्ष, मित्र-शत्रु की झलक मात्र नहीं मिलती। सामाजिक एवं धार्मिक आडम्बरों से बन्धनमुक्त करते हुए, शाश्वत सदाचार और सद्विचार के द्वारा गुरु-चिन्तन, आत्म-परमात्म-चिन्तन और मिलन की ओर मानव मात्र को उन्मुख किया गया है। कहीं यह गन्ध भी नहीं मिलती कि कौन उत्पीड़ित है, कौन उत्पीड़क। मानवीय दुर्बलताओं और दुर्वासनाओं को ही शत्रु मानकर साक्षात् ईश्वरस्वरूप गुरु की कृपा से उनसे स्वतः त्राण, और अन्ततः आवागमन से मुक्ति पाने का नाद सारे ग्रन्थ में ओतप्रोत है। यह तो भान भी नहीं होता कि यह किसी विशिष्ट सम्प्रदाय का ग्रन्थ है। यह श्री गुरू ग्रन्थ साहिब की अलौकिकता है।

गुरमुखी में प्राप्त ऐसे सार्वभौम दिव्य ग्रन्थ के अनुवाद पंजाबी, अंग्रेज़ी आदि भाषाओं में भले ही हुए हैं, किन्तु आम जनता को बोधगम्य हिन्दी टीका कदाचित् उपलब्ध नहीं है। ग्रन्थ साहिब के आंशिक हिन्दी भाष्य तो देखने को मिले; परमानन्द उदासी द्वारा श्री जपजी की विशद व्याख्या, एवं कई अन्य टीकाएँ भी। किन्तु एक तो वे टीकाएँ

समग्र ग्रन्थ की नहीं हैं, आंशिक हैं, दूसरे वे व्याख्याएँ विस्तर में हैं और विद्वानों के लिए अधिक उपयुक्त हैं। जनसाधारण की सहज पैठ उनमें संभव नहीं। इस विचार से प्रेरित होकर श्री गुरू ग्रन्थ साहिब का हिन्दी अनुवाद सहित नागरी लिप्यन्तरण सामान्य जनता के कल्याणार्थ प्रस्तुत करना आवश्यक प्रतीत हुआ।

हिन्दी अनुवाद

वाणी और भाव, दोनों का सही निर्वाह करते हुए अनुवाद का कार्य सरल नहीं था। हिन्दी और गुरमुखी, दोनों भाषाओं में पर्याप्ति गति, भावग्राह्यता, और दर्शन के प्रति सहज निष्ठा, इन सबकी ज़रूरत थी। इसी खोज के दौरान, डॉ० मनमोहन सहगल, हिन्दी विभागाध्यक्ष, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला से साक्षात् हुआ। ट्रस्ट के पुनीत और गुरुतर कार्य पर प्रसन्न होकर उन्होंने बड़े निस्पृह भाव से इस गहन कार्य को सम्हाला। उन्हीं के योगदान से, आदि ग्रन्थ का एक चौथाई अंश (प्रथम सैंची) पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हो सका है। आगे का अनुवाद चल रहा है। राष्ट्र भाषा में यह एक बड़े अभाव की पूर्ति हो रही है। हिन्दी-भाषी जनता गुरुवाणी का अमृतपान कर डॉ० सहगल की सदैव कृतज्ञ रहेगी। ट्रस्ट की विद्वत्परिषद के कश्मीरी भाषा-सलाहकार सदस्य डॉ० शिबनकृष्ण रैणा के भी हम आभारी हैं; उन्होंने ही डॉ० सहगल से शुभ परिचय का संयोग उपस्थित किया।

नागरी लिप्यन्तरण

गुरुमुखी पाठ को यथावत् शुद्ध रूप में नागरी लिपि में प्रस्तुत करने के लिए प्रकाशित अब तक के नागरी लिप्यन्तरणों और श्री शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, अमृतसर द्वारा प्रकाशित नागरी संस्करण को हमने आरम्भ में आधार बनाया। किन्तु श्री शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, अमृतसर द्वारा प्रकाशित श्री गुरुग्रन्थ साहिब के गुरमुखी संस्करण से मिलान करने पर विदित हुआ कि नागरी लिप्यन्तरणकार ने गुरमुखी पाठ को नागरी लिपि में रूपान्तरित करते समय, शब्दों को हिन्दी और संस्कृत के समीप पहुँचाने का यत्न किया है; जबकि उनको गुरमुखी पाठ को केवल नागरी अक्षरों में यथावत् लिख देना चाहिए था।

सभी भारतीय भाषाओं में संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दों का अमित भण्डार है; सुतरां, गुरमुखी में और श्री गुरु ग्रन्थ साहिब की (गुरमुखी) भाषा में भी संस्कृत से उद्भूत अनेक तद्भव शब्दों का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। ज्ञातव्य है कि मूल पोथी के लेख की आर्ष पवित्रता

को चिरस्थायी रखने के लिए, आदि पोथी में यदि कोई अशुद्ध शब्द प्रमादवश लिख गया है, तो आज भी, लाखों प्रतियाँ छप जाने पर भी, उन अशुद्धियों को संशोधित रूप में लिखना अमान्य समझा गया। उदाहरण के लिए यदि आदि लेख में 'ओुही', गुोबिंद', 'गुोपाल' आदि लिख गये हैं, तो उनको आर्ष होने के नाते पूज्य और शाश्वत मानकर जैसे का तैसा ही लिखा जा रहा है; उनको, अगले छापों में, क्रमश: 'ओही', 'गोबिंद', 'गोपाल' नहीं संशोधित किया गया।

ऐसी सावधानी का निर्देश रहने पर जो शब्द गुरमुखी पाठ में गुरु ग्रन्थ साहिब की भाषा के अनुरूप शुद्ध लिखे गये हैं, उनके हिन्दीकरण, अथवा संस्कृतीकरण, अथवा तद्भव से तत्सम बनाने का प्रश्न ही कहाँ उठता है ? उदाहरण के लिए नागरी लिप्यन्तरण में (१) अम्रित को अमृत किया गया है। राग-लय-बद्ध गुरुवाणियों में इन दोनों प्रयोगों में एक मात्रा का अन्तर पड़ जाता है। 'अम्रित' में चार मात्राओं के स्थान पर 'अमृत' में केवल तीन मात्राएँ रहकर छन्द-दोष उत्पन्न करती हैं। (२) उसी प्रकार 'त्रिखा' को तृखा' लिखा गया है। गुरमुखी में ऋ अक्षर का प्रयोग ही नहीं है। फिर यदि तत्सम रूप ही देना था, तो 'तृषा' चाहिए, न कि 'तृखा'। इसी प्रकार 'स्रिसटि', 'द्रिसटि' आदि को 'सृसटि', 'दृसटि' आदि लिखा गया है, जबकि उनके तत्सम रूप 'सृष्टि' और 'दृष्टि' हैं। इस प्रकार प्रचलित नागरी लिप्यन्तरण में अनेक शब्द गुरमुखी मूलपाठ से विकृत हो गये हैं; न अब वे गुरमुखी रहे, न हिन्दी रहे, और न संस्कृत रहे।

इस समस्या को सामने देख कर, हमने एक-एक अक्षर गुरमुखी पाठ से मिला कर उसी प्रकार गुरमुखी शैली पर लिखा है जिस प्रकार वे मान्य और पूज्य हैं। जहाँ लघु या वृहद्, किसी भी आकार में मुद्रण होने पर 'ग्रन्थ साहिब' में सदैव १४३० ही पृष्ठ रखने की मर्यादा निर्धारित है; न कम न ज़्यादा, और जहाँ 'गुोबिंद' के स्थान पर 'गोबिंद' नागरी लिप्यन्तरण में नहीं बदला गया है, वहाँ गुरमुखी के अन्य शुद्ध शब्दों के हिन्दीकरण की गुंजाइश कहाँ, या आवश्यकता भी क्या ? पावन ग्रन्थ श्री गुरू ग्रन्थ साहिब, पवित्र गुरमुखी भाषा में अवतरित है। अत: नागरी लिपि में गुरमुखी पाठ को जैसे का तैसा रूपान्तरित करने मात्र का अधिकार है; उसके हिन्दीकरण या संस्कृतीकरण का नहीं।

फलस्वरूप, भुवन वाणी ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित सानुवाद नागरी संस्करण से दो पावन उद्देश्य सिद्ध हुए। (१) एक तो विश्वप्रसिद्ध अद्वितीय श्री गुरूग्रंथ साहिब का नाम प्रत्येक व्यक्ति से सुपरिचित होते हुए भी, उसकी पवित्र वाणी का सानुवाद अमृतपान, जो गुरमुखी न जानने

वालों के लिए अब तक दुर्लभ था, वह देश-विदेश के समस्त हिन्दी-जगत् के लिए सुलभ हो गया। (२) दूसरे, श्री गुरू ग्रंथ साहिब का नितांत शुद्ध नागरी लिप्यन्तरण प्रस्तुत हो सका।

शासन के प्रति आभार-प्रदर्शन

उदार श्रीमानों तथा उत्तरप्रदेश शासन से आंशिक सहायता के आधार पर बड़ा सहारा मिलता रहा है। अन्यथा भाषाई सेतुकरण का यह पुष्कल कार्य चलाना संभव न होता। नाना भाषाओं के सानुवाद लिप्यन्तरित ग्रन्थों का समानान्तर प्रकाशन चलता रहता है। सौभाग्य से केन्द्रीय शिक्षा एवं समाज कल्याण मंत्रालय का भी अनुग्रह प्राप्त हुआ। वर्तमान शिक्षाराज्यमंत्री श्रीमती रेणुकादेवी बरकटकी ने भी ट्रस्ट का विश्व-भाषा-सेतुकरण-कार्य का अवलोकन किया। उनकी एवं शिक्षा एवं समाजकल्याण मंत्रालय (भारत सरकार) के निदेशक श्री के० के० सेठी महोदय की ट्रस्ट पर सतत अनुकम्पा पूर्ववत् क़ायम है। फलस्वरूप गुरमुखी 'श्री गुरू ग्रंथ साहिब' की यह प्रथम सैंची सम्पूर्ण होकर राष्ट्र के सम्मुख अर्पित है। हम उ० प्र० शासन के साथ ही, इस विशिष्ट कार्य की पूर्ति के लिए, केन्द्रीय शिक्षा एवं समाज कल्याण मंत्रालय के प्रति विशेष रूप से नितांत आभारी हैं।

अमर भारती सलिला की 'गुरमुखी' सुपावन धारा।
पहन नागरी पट, उसने अब भूतल-भ्रमण विचारा॥

नन्दकुमार अवस्थी

प्रतिष्ठाता, भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ—३

सूचना

☞ कार्य सम्पन्न होने पर प्रस्तुत ग्रन्थ की प्रतियाँ, हम गुरु ग्रन्थ साहिब के अधिकारी विद्वानों और संस्थाओं को निरीक्षणार्थ भेज रहे हैं। यदि उसमें कोई सुधार के सुझाव उनसे प्राप्त होंगे, तो पुस्तक के अन्त में उन्हें एक 'सुधार पत्र' रूप में देकर हम प्रसन्न होंगे। लिप्यन्तरणकार, अनुवादक, प्रकाशक—सभी इसको सहायता और सहकार मानकर स्वीकार करेंगे।

आभार स्वीकृति

प्रस्तुत टीका को आकार देने के लिए हमने पंजाबी में उपलब्ध निम्नलिखित टीकाओं का आश्रय लिया है। हम उन विद्वान् टीकाकारों का आभार स्वीकार करते हैं—

१. श्री गुरु ग्रंथ साहिब — टीकाकार प्रो० साहिब सिंह
२. श्री गुरु ग्रंथ साहिब — फ़रीदकोट वाली टीका
३. श्री गुरु ग्रंथ साहिब — शब्दार्थ (शि० गु० प्र० क०)

अनेक अन्य पंजाबी के विद्वानों को भी हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं, जिनकी गुरु-वाणी टीकाओं से हम प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में सहायता लेते रहे हैं।

(डॉ०) मनमोहन सहगल
एम. ए. पीएच.डी., डी. लिट्.

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
पंजाबी विश्वविद्यालय,
पटियाला

अनुवादकीय

गुरुग्रन्थ साहिब मध्यकालीन सन्तों की अमूल्य वाणी का एक अपूर्व संकलन है, जिसमें सम्पादक गुरु अर्जुनदेवजी ने विग्रह और विघटन के युग में व्यापक भारतीय दृष्टि से प्रादेशिक, भाषाकीय, वर्गीय अथवा जातीय वृत्तों-घेरों से परे एक समान मंच की स्थापना की थी। युग-बोध और भावी आदर्शों के साथ-साथ इसमें भावात्मक एकता का सूत्र थाम कर भारतीय महानात्माओं ने सांसारिक जीवों के लिए जीने का सही मूल्य आँकने का सफल प्रयास किया था। वाणीकारों की समयावधि बारहवीं से सत्रहवीं शती ईसवी तक, लगभग ५०० वर्षों की थी— वे इतने दीर्घकाल की सर्वांगीण परिस्थितियों के भुक्त-भोगी एवं अध्यात्मानुभवी महापुरुष थे। इसीलिए उनकी वाणी मानवता के प्रति प्रेम, शुद्धाचरण एवं ईश्वरेच्छा में विश्वास की प्रचारक थी। विपरीत परिस्थितियों की प्रबलता में जीवन-मूल्य दम तोड़ने लगे थे, संस्कृति का ह्रास हो रहा था तथा भारतीय प्रज्ञा कुण्ठित की जा रही थी। वाणीकार संत-हंसों ने नीर-क्षीर-विवेचन की योग्यता द्वारा युगानुकूल खोटे का त्याग एवं खरे को ग्रहण किया— और इस प्रकार भारतीय संस्कृति की डगमगाती नैया के पतवार बन गए। पंजाबप्रदेश में शत्रु के विशेष प्रकोप के कारण स्थिति अधिक गम्भीर थी, अतः यहाँ जीवन के कर्णधार इन सन्तों की पीढ़ियों को गुरु-परम्परा रूप में कार्य-संलग्न रहना पड़ा। उनकी वाणी का प्रस्तुत संकलन 'गुरुग्रन्थ साहिब' किसी वर्ग या मत का रिक्थ-ग्रन्थ नहीं, वरन् देश के मध्यकालीन चिन्तन का वह रत्नाकर है, जिसमें प्रत्येक गवेषक के लिए जीवन-मूल्य-रूपी रत्न उपलब्ध हैं। इतनी महान् आध्यात्मिक वाणी की निधि को पंथों, मत-मतांतरों के संकीर्ण घेरों में आवृत्त करना हमारा स्वार्थ तथा अन्याय है। इसी तथ्य को अनावृत्त करने के उद्देश्य से हमने गुरुग्रन्थ साहिब को देवनागरी में लिप्यन्तरित करके, जन-साधारण की सूझ-बूझ के लिए साथ-साथ गद्य में उसका पदान्वय प्रस्तुत किया है। यह एक भगीरथ कार्य है, जिसे भुवनवाणी ट्रस्ट सरीखी निष्ठावान् एवं समर्पित संस्थाएँ ही सम्पूर्ण कर सकती हैं। इसी योजना की प्रथम कड़ी आपके सम्मुख है।

पंजाब की उपर्युक्त गुरु-परम्परा के अन्तिम दशमेश गुरु गोबिंदसिंह जी ने वचन किया था कि उनके उपरान्त गुरु-गद्दी किसी व्यक्ति-विशेष के रूप में न रहकर शब्द-रूप में ही सत्यान्वेषियों का मार्ग-प्रदर्शन करेगी। भाई प्रह्लादसिंह ने अपने 'रहतनामा' में गुरुजी की उस आज्ञा को यों प्रस्तुत किया है—

अकाल पुरख के बचन सिउ परगट चलाइयो पंथ।
सभ सिक्खन को बचन है गुरु मानीओ ग्रन्थ।।
गुरु खालसा जानीओ प्रगट गुरु की देह।
जो सिख मो मिलबो चहै खोज इनी मो लेह।।

अभिप्राय यह कि इस पुनीत वाणी के शब्दों में ही प्रभु-मिलन का मार्ग निर्दिष्ट है, उसी में खोज लो। क्योंकि अब से यही वाणी जीवों का पथ-प्रदर्शन करेगी, इसलिए इसे ही गुरु स्वीकार किया जाए। बड़ा महान् और स्पष्ट निर्देश था। अब भी योग्य और सूझवान अनुयायी वाणी की पावनता तथा सामर्थ्य को गुरु का शब्द-रूप मानकर ही शीष झुकाते हैं।

पाँचवें गुरु अर्जुनदेवजी के समय (सन् १५८२-१६०७) तक पंजाब के गुरुओं की वाणी का कोई प्रामाणिक संकलन तैयार नहीं किया गया था। पाँचवें गुरुजी ने महसूस किया कि उन्हें अपने पूर्वजों की वाणी के प्रामाणिक रूप को संगृहीत करना चाहिए, ताकि शिष्यों और भक्तों को पूर्वगुरुओं तथा सन्तों-महात्माओं के ज्ञान, प्रबोध और उपदेश से अभिज्ञ करवाया जा सके। उन्हीं दिनों गुरु-दरबार में आनेवाले किसी सिक्ख ने कोई अप्रामाणिक 'शबद' पढ़ा। गुरुजी ने उसे टोका। अन्य उपस्थित सिक्खों ने शिकायत की कि गुरुजी का भतीजा मिहरवान नानक छाप से वाणी रचने लगा है, जिससे गुरुओं की यथार्थ वाणी में मिथ्यात्व का मिश्रण हो रहा है। गुरुजी ने इस समस्या के समाधान-रूप में सच्ची वाणी के संग्रह-रूप में गुरुग्रन्थ साहिब का सम्पादन किया। एक और कारण हो सकता है— गुरु-दरबार में शब्द-कीर्तन होता था। यह कार्य डूम, मिरासी, भाट आदि करते थे। वे लोग प्रायः लोभी होते थे, इसलिए उन्हें धन देकर गुरु-परम्परा के विरोधी गुरु-वाणी के अतिरिक्त किसी का भी प्रशस्ति-गान करवाते थे। गुरु अर्जुनदेव ने अनुभव किया कि क्यों न उनके शिष्य-भक्तजन ही कीर्तन का कार्य करें। अतः उन्होंने गुरु-भक्तों को प्रामाणिक वाणी प्रदान करने के विचार से ग्रन्थ-सम्पादन किया।

अब प्रश्न उठता है कि यदि गुरुओं की प्रामाणिक वाणी का संग्रह तैयार हो रहा था, तो उसमें सन्तों, भक्तों, भाटों आदि की वाणियाँ क्यों संग्रह की गईं। सन्त-महात्माओं की वाणी यहाँ संग्रह करने के दो कारण हो सकते हैं— एक, स्वयं गुरु साहब अपने से पूर्व हुए सन्त-महात्माओं की वाणियों का पाठ किया करते थे, उपदेश-रूप में इन्हें अपने शिष्यों को सुनाते एवं इनकी व्याख्या उन्हें समझाते थे। दूसरे, गुरुजी ने इन वाणियों में गुरु-परम्परा की विचारधारा की पुष्टि होती अनुभव की। अतः गुरु-विचारधारा का महत्त्व स्थापित करने तथा शिष्यों को यह सुझाने के लिए कि शताब्दियों से भारत के सन्त-महात्मा वही बात कहते रहे हैं, जो गुरु-

परम्परा ने भी कही, गुरु अर्जुनदेवजी ने इन वाणियों को गुरुग्रन्थ साहिब में संगृहीत किया। भाटों की अधिकांश वाणी गुरु-प्रशस्ति से सम्बन्धित है। गुरु-गुण-गान को गुरुग्रन्थ साहिब की विचारधारा में विशेष स्थान प्राप्त है, इसलिए भाटों के वे सवैये भी ग्रन्थ में शामिल कर लिए गए।

पूर्वगुरुओं की वाणी परम्परित रूप में कुछ तो गुरुजी के पास मौजूद ही थी, कुछ उन्होंने गुरु अमरदासजी के ज्येष्ठ पुत्र बाबा मोहन द्वारा संकलित पोथियों में से प्राप्त कर ली। अन्य सन्तों-महात्माओं की भी कुछ वाणी इन पोथियों में मौजूद थी। प्रो० साहबसिंह के मतानुसार क्योंकि गुरुनानक-पद्धति अपने पीछे गुरु-गद्दी सम्भालनेवाले में अपनी ही ज्योति जलाने की चर्चा करती है— अतः यह वाणी क्रमानुसार अपनी-अपनी वाणी सहित एक गुरु अपने बाद के दूसरे गुरु को देते रहे होंगे। हमारा मत है कि गुरुवाणी का संग्रह साथ-साथ ही होता रहा होगा। गुरु अर्जुनदेवजी ने ग्रन्थ के सम्पादन-समय पूर्व संकलित वाणी को एक नियमित तन्त्रात्मक क्रम दे दिया है। यों भी गुम होने अथवा बिखरने की सम्भावना गुरु नानक-वाणी के सम्बन्ध में ही हो सकती है— अन्य तीनों गुरु (गुरु अंगद, गुरु अमरदास, गुरु रामदास) प्रायः गुरु-गद्दी प्राप्ति से लेकर ज्योति-जोत समाने तक किसी लम्बी यात्रा आदि पर नहीं गए। जहाँ रहे, वहीं वाणी रची और अपने उत्तराधिकारी को गुरु-गद्दी सहित सौंप गए। गुरु अर्जुनदेव के राग गउड़ी के 'हम धनवंत भागठ सच नाइ' वाले पद से यही संकेत मिलता प्रतीत होता है। सिक्ख इतिहास में गुरु अंगददेव को गद्दी देते समय गुरु नानकदेव ने सेली, टोपी और पोथी दी थी। यह पोथी निश्चय ही गुरु नानकदेव की वाणी का संग्रह होगा। यह सही है कि साखीकारों ने ऐसे सन्दर्भ प्रायः प्रस्तुत किए हैं, जिनके अनुसार किसी भी परिस्थिति में भावावेश में आए गुरु नानक रबाब की लय में वाणी गाने लगते थे। यदि यह तर्क मान लिया जाए तो गुरुजी की लम्बी वाणियों— जपुजी, सिद्ध-गोष्ठ आदि— के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण कठिन हो जाएगा। हाँ, यह बात अधिक मर्यादा और गुरुता से सभर है कि गुरुजी समय-समय पर वाणी रचते थे और अवसरानुकूल अपना कोई भी सुयोग्य पद गा देते थे। इस दशा में वे रचित वाणी के विस्मृत हो जाने के भय से अवश्य लिपिबद्ध करते अथवा करवा लेते होंगे और अन्तिम समय गुरु अंगद को सौंपी पोथी उसी रचना की होगी। इस तथ्य की सत्यता प्रथम एवं तृतीय गुरुओं की वाणी के भाव और भाषा की पारस्परिक समानता में खोजी जा सकती है।

गुरुग्रन्थ साहिब में आई सन्तों-महात्माओं की वाणी का संग्रह भी निश्चय ही गुरु अर्जुनदेवजी ने मूल स्रोतों से ही प्राप्त किया होगा। उन्होंने उन्हीं महात्माओं की वाणी को अपनाया है, जिनका स्वर निर्गुण ब्रह्म

की प्रशस्ति करता एवं गुरुओं के चिन्तन से समानता रखता है। यहाँ तक कि सूरदास सरीखे सगुणवादी महात्मा की वाणी ग्रन्थ में लिखते समय 'छाड़ि मन हरि विमुखन को संग' लिखवाकर वे रुक गए, क्योंकि पद की अन्य पंक्तियों में आए 'सूरदास खल कारी कामरि चढ़े न दूजो रंग' के सिद्धान्त से वे सहमत न थे। वे दुष्ट से दुष्ट व्यक्ति में भी एक उज्ज्वल आत्मा देखने के समर्थक थे। आत्मा मैली नहीं होती, उसे प्रबोधन की अपेक्षा है।

गुरुग्रन्थ साहिब की मूल प्रति का प्रश्न भी सिक्ख विद्वानों में साहित्यिक तर्क-वितर्क का कारण बना हुआ है। गुरुग्रन्थ साहिब की अनेक धाराएँ चली हैं। कहते हैं, जब गुरुजी ने ग्रन्थ तैयार कर लिया तो अपने एक सेवक भाई बन्नो को उसपर जिल्द बँधवाने लाहौर भेजा। बन्नो ने मार्ग में समय पाकर आदिग्रन्थ की मूल बीड़ (पाण्डुलिपि) की एक प्रतिलिपि और तैयार कर ली। यह बन्नो वाली बीड़ कहलाई। बाद में मूल बीड़ अथवा बन्नो की बीड़ से प्रतिलिपियाँ बनती रहीं, किन्तु गुरु तेग़बहादुर के समय धीरमल्ल मूल बीड़ को छीनकर करतारपुर ले गया। गुरु तेग़बहादुर उदार एवं उदात्त व्यक्तित्व के स्वामी थे, इसलिए उन्होंने मूल बीड़ को धीरमल से छीनना उपयुक्त नहीं समझा। वह बीड़ अब भी करतारपुर के गुरुद्वारे में मौजूद है। भाई जोधसिंह समिति ने उस बीड़ को भलीभाँति जाँचकर एक रिपोर्ट गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी को दे दी थी। तदुपरान्त स्वयं भाई जोधसिंह ने एक पुस्तक 'करतारपुरी बीड़ बारे' लिखकर अनेक तर्क एवं सम्भावनाएँ प्रस्तुत करते हुए यह दावा किया है कि करतारपुर वाली बीड़ ही वह मूल बीड़ है जिसे गुरु अर्जुनदेवजी ने भाई गुरुदास से लिखवाया था।

गुरुग्रन्थ साहिब के वाणीकार

ऊपर बताया जा चुका है कि गुरुवाणी के अतिरिक्त अनेक सन्त-महात्माओं की वाणी आदिग्रन्थ में संग्रह की गई है। कालक्रमानुसार वाणीकारों के नाम, रचनाकाल तथा वाणी की मात्रा निम्नानुसार है—

१. जयदेव, जन्म ११७० ई०, २ पद
२. शेख़ फ़रीद, जन्म ११७३ ई०, १३४ (४ शब्द, १३० श्लोक)
३. त्रिलोचन, जन्म १२६७ ई०, ४ पद
४. नामदेव, जन्म १२७० ई०, ६० पद
५. रामानन्द, जन्म १२९९-१४१० ई०, १ पद
६. सधना, १३वीं शती अन्तिमचरण, १ पद
७. बेनी, १३वीं शती अन्तिमचरण, ३ पद
८. रविदास, १३८४-१५१४ ई०, ४१ पद
९. कबीर, जन्म १३९८ ई०, २९२ पद २४९ श्लोक

१०. धन्ना, जन्म १४१५ ई०, ४ पद
११. पीपा, जन्म १४२५ ई०, १ पद
१२. सेन, १५वीं शती ई० पूर्वार्द्ध, १ पद
१३. परमानन्द, मृत्यु १६वीं शती प्रथम दशाब्द ई०, १ पद
१४. सूरदास, जन्म १४७८ ई०, १ पंक्ति
१५. भीखन, मृत्यु १५७४ ई०, २ पद
१६. मीराबाई, जन्म १४९८ ई०, कुछ हस्तलिखित बीड़ों में १ पद (मूल में नहीं)
१७. गुरु नानकदेव, जन्म १४६९ ई०, ९७४ पद और श्लोक
१८. गुरु अंगददेव, जन्म १५०४ ई०, ६२ श्लोक
१९. गुरु अमरदास, १४७९ ई०, ९०७ पद और श्लोक
२०. गुरु रामदास, जन्म १५३४ ई०, ६७९ पद और श्लोक
२१. गुरु अर्जुनदेव, जन्म १५६३ ई०, २२१८ पद और श्लोक
२२. गुरु तेग़बहादुर, जन्म १६२२ ई०, ११५ पद और श्लोक (मूल बीड़ में इनकी वाणी नहीं है, आजकल मुद्रित-प्रकाशित ग्रन्थ में यह वाणी है।)
२३. गुरु गोबिंदसिंह, जन्म १६६६ ई०, १ श्लोक (यह गुरु तेग़बहादुर के श्लोकों में ही सम्मिलित है)
२४. भाई मरदाना, जन्म १४५९ ई०, ३ श्लोक
२५. बाबा सुन्दरजी, १६वीं शती ई०, ६ पद (पउड़ियाँ)
२६-२७. सत्ताडूम और राय बलवंड गुरु अर्जुन-दरबार में विद्यमान ८ पद (पउड़ियाँ)

उपर्युक्त वाणीकारों के अतिरिक्त गुरु-दरबारों में विभिन्न कालों में हुए भाटों ने १२३ सवैये कहे हैं।

गुरुग्रन्थ वाणी : आन्तरिक क्रम

कहा जा चुका है कि गुरुवाणी को आदिग्रन्थ में एक विशेष क्रम में प्रस्तुत किया गया है। उपलब्ध मुद्रित प्रतियों के अनुसार समूची वाणी ३१ प्रधान रागों में बाँटी गई है। प्रत्येक राग में संकलित वाणी में सर्वप्रथम गुरु नानकदेवजी की वाणी म० १ के संकेत से लिखी गई है, फिर इसी प्रकार म० २, म० ३, म० ४, म० ५, म० ९ के संकेतों से क्रमशः गुरु अंगददेव, गुरु अमरदास, गुरु रामदास, गुरु अर्जुनदेव तथा गुरु तेग़बहादुर की वाणी को संग्रह किया गया है। प्रत्येक महला की पद संख्या अलग-अलग एवं संयुक्त रूप में दी गई है। उदाहरणार्थ यदि पद के अन्त

में ॥ ४ ॥ ३३ ॥ ३१ ॥ ६४ ॥ लिखा है, तो उससे यह अभिप्राय होगा कि वह पद चार पंक्ति था (चौथी पंक्ति पर समाप्त), महला १ के ३३ पद थे, फिर म० २ या म० ३ (जैसी भी स्थिति हो) के ३१ पद हैं, पदों की अब तक कुल संख्या ६४ है। गुरु अंगददेव की वाणी के उपरान्त सन्तों-महात्माओं की वाणी दी गई है, जोकि प्रायः कबीर से आरम्भ हुई है। किन्तु इस वाणी की परिगणना इकट्ठी ही कर ली गई है।

रागों में दी गईं वाणियों के अतिरिक्त कतिपय वाणियाँ वहीं रागों के अन्तर्गत विभिन्न संज्ञाओं से भी प्रस्तुत की गई हैं— यथा

१. सिरीराग में 'पहरे' और 'वणजारा'।
२. माझ राग में 'बारहमाहा', 'दिनरैणी'।
३. आसा राग में 'बिरहड़े', 'पट्टी'।
४. गौड़ी राग में 'करहले', 'बावन अखरी', 'सुखमनी', 'थिति'।
५. वडहंस राग में 'घोड़ियाँ', 'अलाहणियाँ'।
६. धनासरी राग में 'आरती'।
७. सूही राग में 'कुचज्जी', 'सुचज्जी', 'गुणवन्ती'।
८. रामकली राग में 'अनंदु', 'सद्द', 'ओअंकारु', 'सिध-गोसटि'।
९. बिलावल राग में 'थित्ति', 'वारसत्त'।
१०. मारू राग में 'अंजुलिया', 'सोलहे'
११. तुखारी राग में 'बारहमासा'

मुद्रित गुरुग्रन्थ साहिब के कुल १४३० पृष्ठ हैं। क्रम इस प्रकार है—

१. (क) जपुजी (१ से ८ पृ०) प्रातःकालीन वन्दना।
(ख) सोदरु (८ से १० पृ०), सोपुरखु (१० से पृ० १२) सोदरु तथा सोपुरखु की वाणियों का संयुक्त नाम 'रहिरास' है, जो सांध्यवंदना के लिए गाई जाती है।
(ग) सोहिला (१२ से १३ पृ०): शयनकाल की वंदना।

२. (१४ से १३५३ पृ० तक) रागों में लिखी गई वाणी, जिसमें क्रमशः चौपदे, द्विपदे, त्रिपदे, पंचपदे, छःपदे, अष्टपदे, सोलहे, शबद, छंत, वारें, भक्तों की वाणियों का क्रम है। कुल ३१ रागों में यह वाणी विभक्त है— सिरी, माझ, गौड़ी, आसा, गूजरी, देव-गांधारी, बिहागड़ा, वडहंस, सोरठ, धनासरी, जैतसरी, टोडी, बैराड़ी, तिलंग, सूही, बिलावल, गौंड, रामकली, नट-नारायण, माली-गौड़ा, मारू, तुखारी, केदारा, भैरउ, बसंत, सारंग, मलार, कानड़ा, कल्याण, प्रभाती, जैजैवंती। इनके अतिरिक्त कहीं-कहीं दो रागों का सम्मिलित प्रयोग भी हुआ है। यथा— गौड़ी-माझ, आसा-काफ़ी, गौड़ी-दीपकी, सूही-ललित, बिलावल-गोंड, बसंत-हिंडोल आदि।

३. पृ० १३५३ से 'भोग' (समाप्ति) की वाणी शुरू होती है। यह पृष्ठ १४२१ तक चलती है। इस अंश में अधिकतर श्लोक, सवैये, भाट-वाणी आदि ही सम्मिलित है। क्रम निम्नानुसार है—

(क) श्लोक-सहसकृति (म० १) कुल श्लोक ४, पृ० १३५३।
(ख) श्लोक-सहकृति (म० ५) कुल श्लोक ६७, पृ० १३५३-१३६०।
(ग) गाथा (म० ५) कुल २४ बन्द, पृ० १३६०-६१।
(घ) फुनहे (म० ५) कुल २३ बन्द, पृ० १३६१-६३।
(ङ) चौबोले (म० ५) कुल ११ बन्द, पृ० १३६३-६४।
(च) श्लोक (कबीर) २४३ श्लोक, पृ० १३६४-७७।
(छ) श्लोक (फ़रीद) १३० श्लोक, पृ० १३७७-८४।
(ज) सवैये स्री मुखवाक (म० ५) २० सवैये, पृ० १३८५-८९।
(झ) भाटों के सवैये १२३ सवैये, पृ० १३८९-१४०९।
(ञ) श्लोक वाराँ ते वधीक १६२ श्लोक, पृ० १४१०-१४२६ तक।
(ट) श्लोक (म० ९) ५७ श्लोक, पृ० १४२६-२९।
(ठ) मुंदावणी (म० ५) २ श्लोक, पृ० १४२९।
(ड) रागमाला — — पृ० १४२९-३०।

प्रस्तुत सानुवाद नागरी लिप्यन्तरण में गुरुग्रन्थ साहिब को (कलेवर अधिक होने के कारण) चार सैंचियों में विभक्त किया गया है। प्रथम सैंची ९६७ पृष्ठों में समाप्त हुई है और इसमें मूल गुरुग्रन्थ साहिब के ३४६ पृष्ठों की सामग्री आई है। विषय-सूची पृष्ठ २१-३१ पर अवलोकनीय है। मूल ग्रन्थ के पृष्ठ ३४७ 'रागु आसा' से दूसरी सैंची का आरम्भ हो रहा है।

रागमाला की रचना के सम्बन्ध में विद्वानों के अलग-अलग मत हैं। मैकॉलिफ़ एवं सिक्ख इतिहासकार ज्ञानसिंह ज्ञानी इसकी रचना कवि आलम द्वारा की गई मानते हैं। कुछ सिक्ख श्रद्धालू इसे गुरुजी की ही लिखी मानते हैं। किन्तु रागमाला में कहीं नानक छाप न होने तथा भाषा की दृष्टि से भी गुरुओं की भाषा से अलग होने के कारण 'रागमाला' गुरुजी की रचना नहीं कही जा सकती।

वर्ण्य-विषय

गुरुग्रन्थ साहिब मुक्तात्मा गुरुओं, सच्चे सन्त-महात्माओं की वाणी और भाटों की गुरु-प्रशस्तियों का संकलन है। सन्त-महात्मा सदैव सबके लिए समान होते हैं; वे 'सत्य' के साधक एवं प्रचारक होते हैं, इसीलिए उनकी वाणी सार्वलौकिक और सर्वकालीन होती है। उनके वचन युग-युगान्तर में अटल सत्य होते हैं। अतः गुरुग्रन्थ साहिब में संकलित वाणी 'सत्य की वाणी' है। क्योंकि 'सत्य' एक शाश्वत तत्त्व है, इसलिए श्रद्धालु

जन-मानस इसे 'धुर की वाणी' अर्थात् 'आदि वाणी' कहकर पुकारता है। सामाजिक रीति-रिवाज एवं मानव-व्यवहार देश-कालानुरूप बदलते रहते हैं, इसलिए गुरुग्रन्थ साहिब की वाणी इन तत्त्वों से सम्बद्ध न होकर देश-काल के परे के परमसत्य से सम्बद्ध है। यदि कहीं प्रसंग-वश रीति या मानव-व्यवहार की बात हुई भी है, तो वहाँ अपरिवर्तनीय आदर्श का संकेत उपलब्ध होता है।

गुरुग्रन्थ साहिब के वाणीकार क्योंकि लगभग ५०० वर्ष के काल-विस्तार में बटे हुए हैं, इसलिए युग-विशेष का प्रभाव उनकी रचना में यत्र-तत्र मिल ही जाता है। सर्वोपरि मानव-जीवन के प्रति मानववादी दृष्टि-कोण को महत्त्व दिया गया है। भारतीय सांस्कृतिक विकास के पाठक के सम्मुख यदि उन पाँच सौ वर्षों (सन् ११७३-१६७९ तक) का सात्विक साँचे में ढला चित्र प्रस्तुत करना हो, तो ग्रन्थ साहिब से उत्तम रचना और कोई न मिल सकेगी। उसी युग में तुलसी का रामचरितमानस भी लिखा गया है, जोकि कला की कसौटी पर अनुपम है। परन्तु विचार-क्षेत्र में स्पष्ट वैष्णव-चिन्तन-स्रोत होने के कारण वह महान रचना एकांगी रह गई है, जबकि गुरुवाणी चिन्तन के प्रत्येक धरातल का स्पर्श करती है। निर्गुण, सगुण, निर्गुण-सगुण, सब विश्वास और साधनाएँ इसका शृंगार हैं—इसीलिए तो विश्व के अन्य युगान्तरकारी महाग्रन्थों की भाँति हमने इसे 'सत्य का स्रोत' कहा है।

भारतीय संस्कृति में चिन्तन की विभिन्न छः धाराओं (षट्शास्त्र) का सार प्रस्तुत ग्रन्थ में उपलब्ध है। 'एकता में अनेकता' और 'अनेकता में एकता' की सरलतम चर्चा गुरुवाणी में मिलती है। भारतीय संस्कारों को बदलते हुए मानों के आश्रय उज्ज्वलतम उदार और आदर्श-रूप में प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि यह रचना किसी दार्शनिक प्रक्रिया का विवेचन-अध्ययन नहीं करती, तो भी अनुसंधित्सु और पारखी को इसमें एक निश्चित ढर्रे पर निर्मित दार्शनिक संकलपनाएँ (कॉन्सेप्ट्स) मिल जाती हैं। यों धर्म, दर्शन, मिथिहास, इतिहास, नृतत्व मूल्य, युग-विशेष की परिस्थितियाँ आदि सब गुरुग्रन्थ साहिब में खोजे जा सकते हैं।

गुरु साहिब ने स्वयं मुंदावणी में ग्रन्थ साहिब के वर्ण्य-विषय का निर्देश किया है।

थाल विचि तिंनि वसतू पईओ सतु संतोखु वीचारो।
अंम्रित नामु ठाकुर का पइओ जिसका सभसु अधारो।
जे को खावै जे को भुंचै तिसका होइ उधारो॥

'उनका कथन है कि इसमें सत्य, सन्तोष और चिन्तन का संकलन हुआ है। (सत्य— अकालपुरुष की संज्ञा, सन्तोष— जीवन जीने की कला, विचार या चिन्तन— आत्मा, परमात्मा और सृष्टि सम्बन्धी दार्शनिक चर्चा)। यदि कोई जीव प्रभु-सत्ता में विश्वास बनाकर उसके नाम-स्मरण के आश्रय इन तीनों महत् तत्त्वों का भोग करे अर्थात् इनकी गहनता को पहचाने तो उसका उद्धार हो सकता है।' अभिप्राय यह कि गुरु अर्जुनदेवजी संकलित वाणी के वर्ण्य-विषय के प्रति बड़े सचेत थे और इसीलिए प्रस्तुत रूपक द्वारा उन्होंने वह सब कुछ स्पष्ट कर दिया है, जिस पर प्रायः अनुयायियों में द्वन्द्व की आशंका हो सकती है।

साहित्य-प्रेमी पाठक के लिए भी गुरुग्रन्थ साहिब का काव्य उच्चकोटि का है। इसके पदों में संगीत, लय, ताल, राग आदि का उचित ध्यान रखा गया है। अभिव्यक्ति को छन्दों, अलंकारों, गुणों और सहज-रस से श्रृंगारित किया है और उस पर भी इसकी भाषा सरल, सम्पन्न और जन-साधारण के समझ सकने योग्य है। जो लोग संस्कृत भाषा से अपरिचित होने के कारण, भारत के संस्कार-वाङ्मय से अपरिचित हैं, उनके लिए गुरुग्रन्थ साहिब उन सभी रसों का सहज निचोड़ है। इसीलिए प्रस्तुत संकलन को देश-कालातीत सर्व-जन-हिताय रचना कहा जा सकता है।

टीका क्यों ?

गुरुग्रन्थ साहिब के जिन गुणों की चर्चा हमने ऊपर की है, वे ही यहाँ इसका टीका प्रस्तुत करने के मूल कारण हैं। मूलतः गुरुग्रन्थ की रचना गुरुमुखी लिपि में हुई, फिर देवनागरी में इसका लिप्यन्तरण तो हुआ किन्तु इसमें की मात्रिक योजना एवं शब्द-भण्डार के कारण प्रायः वाणी के कथनों को समझ पाना हिन्दी पढ़े-लिखों के लिए कठिन पड़ता। इसीलिए भारत के व्यापक हिन्दीप्रदेश के मानवीय धर्म के साधक, जो गुरुमुखी लिपि से अनभिज्ञ थे, इस परमज्ञान से वंचित रह जाते रहे। अंग्रेज़ी के माध्यम से कदाचित् प्रयास किए गए, किन्तु जन-साधारण की पहुँच से फिर भी ग्रन्थ बाहर ही रहा। भक्ति, ज्ञान एवं कर्म के समन्वित रूप आदिग्रन्थ को जिज्ञासुओं की पहुँच तक लाने के लिए ही हमने 'भुवन वाणी ट्रस्ट', लखनऊ के आश्रय इस ग्रन्थ का देवनागरी लिप्यन्तरण एवं सरल भाषा में पदों का सहज अर्थ, इस प्रकार चार भागों में धर्म-पिपासुओं के सम्मुख लाने का निश्चय किया है। इस महत् उद्यम के लिए श्री नन्दकुमार अवस्थी विशेष बधाई के पात्र हैं, जिन्होंने अपने ट्रस्ट के माध्यम से संसार के प्रसिद्धतर धर्म-ग्रन्थों का लिप्यन्तरण एवं टीका हिन्दी में प्रकाशित करने का संकल्प लिया है।

लिप्यन्तरण में हमने श्री शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबन्ध कमेटी, अमृतसर द्वारा प्रकाशित गुरुमुखी 'आदिग्रन्थ' में दिए शब्द-विन्यास को ज्यों का त्यों स्वीकार किया है। शब्द, मात्रा, अंक तथा संकेत, जिस रूप में पंजाबी में दिए गए हैं, उच्चारण की परवाह किए बग़ैर, वैसे ही देवनागरी में रखे हैं। इससे गुरुग्रन्थ की धार्मिक पावनता, सिक्खधर्म की मर्यादा तथा मानसिक सन्दर्भिता का सत्कार बना रह सका है। सरल अर्थ देते समय भी हमने सिक्ख सन्दर्भों में उपलब्ध मान्यताओं को समादृत किया है। गुरुवाणी के प्रति विनतभाव से ही उसके आध्यात्मिक लक्ष्यों की प्रतिष्ठा की है। आशा है जिज्ञासु पाठक हमारे इस अकिंचन प्रयास से लाभान्वित होंगे।

गद्यात्मक सरल टीका प्रस्तुत करने में मेरे विभागीय सहयोगी मित्र डॉ ब्रजमोहन शर्मा से मुझे समय-समय पर पर्याप्त सहकार मिलता रहा है, मैं उन्हें धन्यवाद देता हूं।

(डॉ०) मनमोहन सहगल
एम०ए०, पीएच०डी०, डी०लिट०

हिन्दी विभागाध्यक्ष, पंजाबी विश्वविद्यालय,
पटियाला (पंजाब)

भुवन वाणी ट्रस्ट द्वारा प्रयुक्त

पंजाबी (गुरमुखी) वर्णमाला का देवनागरी रूपान्तर

पंजाबी (गुरमुखी)-देवनागरी वर्णमाला

ਅ अ	ਆ आ	ਇ इ	ਈ ई	ਉ उ
ਊ ऊ	ਰੀ ऋ	ਏ ए	ਐ ऐ	ਓ ओ
	ਔ औ	ਅੰ अं	ਅः अः	
ਕ क	ਖ ख	ਗ ग	ਘ घ	ਙ ङ
ਚ च	ਛ छ	ਜ ज	ਝ झ	ਞ ञ
ਟ ट	ਠ ठ	ਡ ड	ਢ ढ	ਣ ण
ਤ त	ਥ थ	ਦ द	ਧ ध	ਨ न
ਪ प	ਫ फ	ਬ ब	ਭ भ	ਮ म
ਯ य	ਰ र	ਲ ल	ਵ व	ਸ਼ श
	ਖ਼ ष	ਸ स	ਹ ह	

॥ ओं सतिगुरु प्रसादि ॥

श्री गुरूग्रन्थ साहिब

ततकरा रागों और शबदों का

	पंना
जपु नीसाणु	३२
सोदरु महला १	६२
सुणि वडा महला १	६३
सो पुरखु महला ४	६६
सोहिला महला १	७१
सिरी रागु	७५
(महला १)	
मोती त मंदर ऊसरहि	७५
कोटि कोटी मेरी आरजा	७७
लेखै बोलणु बोलणा	७८
लबु कुता कूड़ु चूहड़ा	७९
अमलु गलोला कूड़ का	८०
जालि मोह घसि मसु	८१
सभि रस मिठे मंनिऐ	८२
कुंगू की कांइआ रतना	८३
गुणवंती गुण बीथरै	८४
आवहु भैणे गलि मिल	८५
भली सरी जिउ बरी	८७
धातु मिलै फुनि धातु	८७
ध्रिगु जीवणु दोहागणी	८९
सुंञी देह डरावणी जां	९०
तनु जलि बलि माटी	९१
नानक बेड़ी सच की	९२
सुणि मनि मित्र पिआ	९३
मरणै की चिंता नही	९४

	पंना
इहु मनु मूरखु लोभी	९५
इकु तिलु पिआरा	९६
हरि हरि जपहु	९७
भरमे भाहि न विझवै जे	९८
वणजु करहु वणजारि	९९
धनु जोबनु अरु फुलड़ा	१००
आपे रसीआ आपि	१०१
इहु तनु धरती बीजु	१०२
अमलु करि धरती	१०३
सोई मउला जिनि	१०४
एकु सुआनु दुइ सुआ	१०४
एका सुरति जेते है जी	१०६
तू दरीआउ दाना बीना	१०६
कीता कहा करे मनि	१०७
अछल छलाई नह	१०८
(महला ३)	
हउ सतिगुर सेवी	१०९
बहु भेख करि भरमा	११०
जिस ही की सिर कार है	१११
जिनी सुणि कै मंनिआ	११३
जिनी इक मनि नामु	११४
हरि भगता हरि धनु	११५
सुख सागर हरि नामु है	११६
मनमुखि मोहु विआपि	११७
घर ही सउदा पाई	११८
सचा साहिब सेवीऐ	११९

	पंना
त्रै गुण माइआ मोहु है	१२०
अंम्रितु छोडि बिखिआ	१२१
मनमुख करम कमावणे	१२२
जा पिरु जाणै आपणा	१२३
गुरमुखि क्रिपा करे	१२५
धनु जननी जिनि	१२६
गोविदु गुणी निधानु	१२७
कांइआ साधै उरध	१२८
किरपा करे गुरु पाई	१२९
जिनी पुरखी सतिगुरु	१३०
किसु हउ सेवी किआ	१३१
जे वेला वखतु वीचारी	१३३
आपणा भउ तिन	१३४
बिनु गुर रोगु न तुटई	१३६
तिना अनंदु सदा सुखु	१३७
गुणवंती सचु पाइआ	१३८
आपे कारण करता	१४०
सुणि सुणि काम गहे	१४१
इकि पिरु रावहि	१४२
हरि जी सचा सचु तू	१४३
जगि हउमै मैलु दुखु	१४५
(महला ४)	
मै मनि तनि बिरहु	१४६
नामु मिलै मनु त्रिपती	१४७
गुण गावा गुण विथरा	१४८
हउ पंथु दसाई नित	१४९
रसु अंम्रितु नामु रसु	१५०
दिनसु चड़ै फिरि आथ	१५२
(महला ५)	
किआ तू रता देखि कै	१५३
मनि बिलासु बहु रंगु	१५४
भलके उठि पपोलीऐ	१५५
घड़ी मुहत का पाहुणा	१५६
सभे गला विसरनु	१५७
सभे थोक परापते जे	१५८

	पंना
सोई धिआईऐ जीअ	१५९
नामु धिआए सो सुखी	१६०
इकु पछाणू जीअ का	१६०
जिना सतिगुर सिउ	१६१
मिलि सतिगुर सभु	१६२
पूरा सतिगुरु जे मिलै	१६३
प्रीति लगी तिसु सचु	१६४
मनु तनु धनु जिनि प्रभ	१६५
मेरा तनु अर धनु मेरा	१६६
सरणि पए प्रभु आपि	१६७
उदमु करि हरि जाप	१६८
सोई सासतु सउणु	१६९
रसना सचा सिमरीऐ	१७०
संत जनहु मिलि भाई	१७१
मिठा करि कै खाइआ	१७२
गोइलि आइआ	१७३
तिचरु वसहि सुहेलड़ी	१७४
करण कारण एक	१७५
संच हरि धनु पूजि सत	१७६
दुक्रित सुक्रित मंधे	१७६
तेरै भरोसै पिआरे मै	१७७
संत जना मिलि भाई	१७८
गुरु परमेसरु पूजीऐ	१७८
सत जनहु सुणि भाई	१८०
म० १ असटपदीआ	
आखि आखि मनु वाव	१८१
सभे कंत महेलीआ	१८२
आपे गुण आपे कथै	१८४
मछुली जालु न जाणि	१८६
मनि जूठै तनि जूठि है	१८८
जपु तपु संजमु साधीऐ	१९०
गुर ते निरमलु	१९१
सुणि मन भूले बावरे	१९३
बिनु पिर धन सीगार	१९५
सतिगुरु पूरा जे मिलै	१९७

	पंना
रे मन ऐसी हरि सिउ	१९८
मनमुखि भुलै भुलाई	२०१
त्रिसना माइआ मोह	२०२
राम नामि मनु बेधिआ	२०४
चिते दिसहि धउल	२०६
डूंगरु देखि डरावणो	२०८
मुकामु करि घरि बैस	२१०
म० ३ असटपदीआ	
गुरमुखि क्रिपा करे	२११
हउमै करम कमावदे	२१३
पंखी बिरखु सुहावड़ा	२१४
गुरमुखि नामु धिआ	२१७
माइआ मोहु मेरै प्रभि	२१९
सहजै नो सभ लोचदी	२२१
सतिगुरि मिलिऐ फेरु	२२३
सतिगुरु सेविऐ मनु	२२५
म० ५	
जाकउ मुसकलु अति	२२७
जानउ नही भावै कवन	२२९
(महला १)	
जोगी अंदरि जोगीआ	२३१
(महला ५)	
पै पाइ मनाई साइ	२३५
(महला १)	
पहिलै पहरै रैणि कै	२३९
पहिलै पहरै रैणि कै	२४१
(महला ४)	
पहिलै पहिरै रैणि कै	२४४
(महला ५)	
पहिलै पहरै रैणि कै	२४६
(महला ४ छंत)	
मुंध इआणी पेईअड़ै	२४९
(महला ५ छंत)	
मन पिआरिआ जीउ	२५१
हठ मझाहू मा पिरी	२५४

	पंना
(महला ४ वणजारा)	
हरि हरि उतमु नामु	२५७
(सिरी राग की वार म० ४)	
सलोक महला ३	
रागा विचि स्री रागु है	२६०-२८३
(कबीर जीउ)	
जननी जानत सुतु	२८४
(त्रिलोचन)	
माइआ मोहु मनि	२८५
(भगत कबीर जीउ)	
अचरज एकु सुनहु रे	२८६
(भगत बेणी जीउ)	
रे नर गरभ कुंडल	२८७
(रविदास जीउ)	
तोही मोही मोही तोही	२८९
रागु माझ	२९०
(महला ४)	
हरि हरि नामु मै	२९०
मधुसूदन मेरे मन तन	२९१
हरि गुण पड़ीऐ हरि	२९१
हरि जन संत मिलहु	२९२
हरि गुर गिआनु हरि	२९३
हउ गुन गोबिंद हरि	२९४
आवहु भैणे तुसी	२९४
(महला ५)	
मेरा मनु लोचै गुर	२९५
सा रुति सुहावी जितु	२९६
अनहदु बाजै सहजि	२९७
जितु धरि पिरि सोहा	२९८
खोजत खोजत दरसन	२९८
पारब्रहमु अपरंपर	२९९
कहिआ करणा दिता	३००
दुखु तदे जा विसरि	३०१
लाल गुपाल दइआल	३०१

	पंना
धंनु सु वेला जितु मै	३०२
सगल संतन पहि	३०३
विसरु नाही एवड	३०३
सिफति सालाहणु ते	३०४
तूं जलनिधि हम मीन	३०५
अंम्रित नामु सदा निर	३०६
निधि सिधि रिधि हरि	३०६
प्रभ किरपा ते हरि हरि	३०७
ओति पोति सेवक संगि	३०८
सभ किछु घर महि	३०९
तिसु कुरबाणी जिनि	३०९
तूं पेडु साख तेरी फूली	३१०
सफलु सु बाणी जितु	३११
अंम्रितु बाणी हरि	३१२
तूं मेरा पिता तू है मेरा	३१२
जीअ प्रान प्रभ मनहि	३१३
सुणि सुणि जीवा सोइ	३१४
हुकमी वरसण लागे	३१४
आउ साजन संत मीत	३१५
भए क्रिपाल गोबिंद	३१६
जिथै नामु जपीऐ	३१६
चरण ठाकुर के रिदै	३१७
मीहु पइआ परमेसरि	३१८
मनु तनु तेरा धनु भी	३१९
पारब्रहम प्रभि मेघु	३१९
सभे सुख भए प्रभ तुठे	३२०
कीनी दइआ गोपाल	३२१
सो सचु मंदरु जितु सचु	३२१
रैणि सुहावड़ी दिनसु	३२२
ऐथै तूं है आगै आपे	३२३
मनु तनु रता राम	३२३
सिमरत नामु रिदै सुख	३२४
सोई करणा जि आपि	३२५
झूठा मंगणु जे कोई	३२६

	पंना
म० १ असटपदीआ	
सबदि रंगाए हुकमि	३२६
म० ३ असटपदीआ	
करमु होवै सतिगुरू	३२८
मेरा प्रभु निरमलु	३३०
इको आपि फिरै	३३१
सबदि मरै सु मुआ	३३३
अंदरि हीरा लालु	३३४
सभ घट आपे भोगण	३३६
अंम्रित बाणी गुर की	३३७
आपे रंगे सहज सुभा	३३९
सतिगुरु सेविऐ वडी	३४०
आपु वञाए ता सभ	३४२
तेरीआ खाणी तेरीआ	३४४
ऐथै साचे सु आगै साचे	३४५
उतपति परलउ	३४७
सतिगुर साची सिख	३४८
अंम्रित नामु मंनि	३५०
अंम्रितु वरसै सहजि	३५१
से सचि लागे जो तुधु	३५३
वरन रूप वरतहि	३५४
निरमल सबदु	३५६
गोविंदु ऊजलु ऊजल	३५७
सचा सेवी सचु	३५९
तेरे भगत सोहहि	३६०
आतम राम परगासु	३६२
इसु गुफा महि अखुट	३६४
गुरमुखि मिलै मिला	३६५
एका जोति जोति है	३६७
मेरा प्रभ भरपूरि	३६८
हरि आपे मेले सेव	३७०
ऊतम जनम सुथानि है	३७१
मनमुख पड़हि पंडित	३७३
निरगुणु सरगुणु	३७५
माइआ मोहु जगतु	३७६

	पंना
म० ४ असटपदीआ	
आदि पुरखु अपरंपरु	३७७
म० ५ असटपदीआ	
अंतरि अलखु न जाई	३७९
कउणु सु मुकता कउ	३८०
प्रभु अबिनासी ता	३८२
नित नित दयु समाली	३८३
हरि जपु जपे मनु धीरे	३८५
(बारहमाहा माझ म० ५)	
किरति करम के वीछुड़े	३८५-३९३
(दिनरैणि म० ५)	
सेवी सतिगुरु आपणा	३९४
(वार माझ की म० १)	
गुरु दाता गुरु हिवे	३९६-४३४
रागु गउड़ी	४३५
(महला १)	
भउ मुचु भारा वडा	४३५
डरि घरु घरि डरु	४३६
माता मति पिता संतोख	४३७
पउणै पाणी अगनी	४३८
सुणि सुणि बूझै मानै	४३९
जातो जाइ कहा ते आवै	४४०
काम क्रोधु माइआ महि	४४१
उलटिओ कमल ब्रहमु	४४२
सतिगुर मिलै सु मरणु	४४३
किरतु पइआ नह	४४४
जिनि अकथु कहाइ	४४५
जनमि मरै त्रै गुण	४४६
अंम्रितु काइआ रहै	४४७
अवरि पंच हम एक	४४८
मुंद्रा ते घट भीतरि मुंद्रा	४४९
अउखध मंत्र मूलु मन	४५०
कत की माई बापु कत	४५१
रैणि गवाई सोइ कै	४५२

	पंना
हरणी होवा बनि बसा	४५३
जै घरि कीरति आखी	४५४
(महला ३)	
गुरि मिलिऐ हरि	४५५
गुर ते गिआनु पाए	४५६
सु थाउ सचु मनु	४५७
इकि गावत रहे मनि	४५८
मनु मारे धातु मरि	४५९
हउमै विचि सभु जगु	४६०
सो किउ विसरै जिसके	४६१
तू अकथु किउ कथिआ	४६२
एकस ते सभि रूप हहि	४६३
मनमुखि सूता माइआ	४६४
सचा अमरु सचा पाति	४६५
जिना गुरमुखि धिआइआ	४६६
गुर सेवा जुग चारे हो	४६७
सतिगुर मिलै वड	४६८
जैसी धरती ऊपरु	४६९
सभु जगु कालै वसि है	४७०
पेईअड़ै दिन चारि	४७०
सतिगुर ते गिआनु	४७२
(महला ४)	
पंडितु सासत सिम्रित	४७३
निरगुण कथा कथा है	४७४
माता प्रीति करे पुतु	४७५
भीखक प्रीति भीख प्रभ	४७६
सतिगुर सेवा सफल	४७७
हरि आपे जोगी डंडा	४७८
साहु हमारा तू धणी	४७८
जिउ जननी गरभु	४७९
किरसाणी किरसाणु	४८०
नित दिनसु राति	४८१
हमरै मनि चिति हरि	४८२
कंचन नारी महि जीउ	४८४
जिउ जननी सुत जणि	४८५

	पंना
जिसु मिलिऐ मनि हो	४८६
हरि दइआलि	४८७
जगजीवन अपरंपर	४८७
करहु किरपा जगजीव	४८८
तुम दइआल सरब	४८९
मेरे मन सो प्रभु सदा	४९०
हमरे प्रान वसगति	४९१
इहु मनूआ खिनु न	४९२
कामि करोधि नगर	४९३
इसु गड़ महि हरि	४९४
हरि हरि अरथ सरी	४९५
हम अहंकारी अहंकार	४९६
गुरमति बाजै सबदु	४९६
गुरमुखि जिंदू जपि	४९७
आउ सखीं गुण काम	४९८
मन माही मन माही	४९९
चोजी मेरे गोविंदा चोजी	५०१
मै हरिनामै हरि	५०२
मेरा बिरही नामु	५०३
(महला ५)	
किन बिधि कुसलु होतु	५०४
किउ भ्रमीऐ भ्रमु किस	५०५
कई जनम भए कीट	५०६
करम भूमि महि बोअहु	५०७
गुर का बचनु सदा	५०८
जिनि कीता माटी ते	५०८
तिसकी सरणि नाही	५०९
सुणि हरि कथा उता	५१०
अगले मुए सि पाछै	५११
अनिक जतन नही होत	५१२
बहुत दरब करि मनु	५१३
बहु रंग माइआ बहु	५१४
प्राणी जाणै इहु तनु	५१५
तउ क्रिपा ते मारगु	५१६
आन रसा जेते तै चाखे	५१७

	पंना
मनु मंदर तन साजी	५१७
रैणि दिनसु रहै इक	५१८
तूं मेरा सखा तूं ही मेरा	५१९
बिआपत हरख सोग	५२०
नैनहु नीद पर द्रिस	५२१
जाकै वसि खान सुल	५२२
सतिगुर दरसनि	५२३
साध संगि जपिओ	५२४
बंधन तोड़ि बोलावै	५२५
जिसु मनि वसै तरै	५२६
जीअ जुगति जाकै	५२७
गुरपरसादि नामि	५२८
हसत पुनीत होहि	५२९
(महला ५)	
जो पराइओ सोई	५३०
कलजुग महि मिलि	५३०
हम धनवंत भागठ	५३१
डरि डरि मरते जब	५३१
जा का मीत साजनु है	५३२
जा कै दुखु सुखु सम करि	५३३
अगम रूप का मन	५३३
कवन रूपु तेरा	५३४
आपन तनु नही	५३५
गुर के चरण ऊपरि	५३५
रे मन मेरे तू ताकउ	५३६
मीतु करे सोई हम	५३६
जाकउ तुम भए सम	५३७
दुलभ देह पाई वड	५३७
काकी माई काको बाप	५३८
वडे वडे जो दीसहि	५३८
पूरा मारगु पूरा इस	५३९
संत की धूरि मिटै अघ	५३९
हरि गुण जपत कमलु	५४०
एकसु सिउ जाका मनु	५४०
नामु भगत कै प्रान	५४१

	पंना
संत प्रसादि हरि नामु	५४२
कर करि टहल रसना	५४२
जाकउ अपनी किरपा	५४३
छाडि सिआनप बहु	५४३
राखि लीआ गुरि पूरे	५४४
अनिक रसा खाए जैसे	५४५
कलि कलेस गुर	५४५
साध संगि ताकी	५४६
सूके हरे कीए खिन	५४६
ताप गए पाई प्रभि	५४७
भले दिनस भले	५४८
गुर का सबदु	५४८
जिसु सिमरत दूखु सभु	५४९
भै महि रचिओ सभु	५४९
तुमरी क्रिपा ते जपीऐ	५५०
कण बिना जैसे थोथर	५५०
तू समरथु तूं है मेरा	५५१
ताका दरसु पाईऐ	५५१
हरि सिमरत तेरी	५५२
हिरदै चरन कमल	५५३
गुर जी के दरसन	५५३
करै दुहकरम दिखावै	५५४
राम रंगु कदे उतरि	५५४
सिमरति सुआमी	५५५
हरि चरनी जा का मनु	५५५
हरि सिमरत सभि	५५६
जिस का दीआ पैनै	५५७
प्रभ के चरन मन माहि	५५७
खादा पैनदा मूकरि	५५८
अपने लोभ कउ कीनो	५५८
कोटि बिघन हिरे खिन	५५९
करि किरपा भेटे गुर	५६०
बिखै राज ते अंधुला	५६०
आठ पहर संगी	५६१
थाती पाई हरि को	५६१
जलि थलि महीअलि	५६२
हरि हरि नामु मजन	५६३
पउ सरणाई जिनि	५६३
बाहरि राखिओ रिदै	५६४
धंनु इहु थानु गोविंद	५६४
जो प्रानी गोविंद	५६५
हरि के दास सिउ	५६५
सा मत निरमल कही	५६६
ऐसी प्रीति गोविंद	५६७
राम रसाइण जो जन	५६७
नित प्रति नावणु राम	५६८
सो किछु करि जितु मैलु	५६८
जीवत छाडि जाहि	५६९
गरीबा उपरि जि	५६९
महजरु झूठा कीतोनु	५७०
जन की धूरि मनि मीठ	५७१
जीवन पदवी हरि के	५७२
साति भई गुर गोविंद	५७२
नेत्र परगासु कीआ	५७३
धनु ओहु मसतक धनु	५७३
तूंहै मसलति तूंहै	५७३
सतिगुरु पूरा भइआ	५७४
धोती खोल विछाए हेठि	५७४
थिरु घरि बैसहु हरि	५७५
हरि संगि राते भाहि	५७६
उदमु करत सीतल	५७६
कोटि मजन कीनो	५७७
सिमरि सिमरि	५७८
अपने सेवक को	५७९
राम को बल पूरन	५७९
भुज बल बीर ब्रहम	५८०
दय गुसाई मीतुला	५८०
है कोई राम पिआरो	५८१
कवन गुन प्रानपति	५८२
प्रभ मिलबे कउ	५८३

	पंना
निकसु रे पंखी सिमरि	५८३
हरि पेखन कउ	५८४
किन बिधि मिलै	५८४
ऐसो परचउ पाइओ	५८५
अउधु घटै दिनसु	५८६
राखु पिता प्रभ मेरे	५८७
ओहु अबिनासी राइ	५८८
छोडि छोडि रे बिखिआ के	५८९
तुझ बिनु कवनु हमारा	५९०
तुझ बिनु कवनु	५९०
मिलहु पिआरे जी	५९१
हउ ताकै बलिहारी	५९२
जोग जुगति सुनि	५९३
अनूप पदारथु नामु	५९४
दइआ मइआ करि	५९४
तुम हरि सेती राते	५९५
सहजि समाइओ	५९६
पारब्रहम पूरन	५९७
हरि हरि कबहु न मन	५९८
सुखु नाही रे हरि	५९९
मन धर तरबे हरि	५९९
दीबानु हमारो तुही	६००
जीअरे ओल्हा नाम का	६००
बारने बलिहारनै	६०१
हरि हरि हरि आराधी	६०१
मन राम नाम गुन	६०२
रसना जपीऐ एक	६०२
जा कउ बिसरै राम	६०३
गरबु बडो मूलु इतनो	६०४
मोहि दासरो ठाकुर को	६०४
है कोई ऐसा हउमै	६०५
चिंतामणि करुणामए	६०५
मेरे मन सरणि प्रभू	६०६
मेरे मन गुरु गुरु	६०६
त्रिसना विरले ही की	६०७

	पंना
सभहू को रसु हरि हो	६०८
गुन कीरति निधि	६०८
मातो हरि रंगि मातो	६०९
हरि नाम लेहु मीता	६०९
पाइओ बालबुधि	६१०
भावनु तिआगिओ री	६११
पाइआ लाल रतनु	६१२
उबरत राजा राम	६१३
मो कउ इह बिधि को	६१४
हरि बिनु अवर क्रिआ	६१४
माधउ हरि हरि हरि	६१५
दीन दइआल दमोदर	६१६
आउ हमारै राम	६१७
सुणि सुणि साजन मन	६१८
तू मेरा बहु माण करते	६१९
दुख भंजनु तेरा नामु	६१९
हरि राम राम राम	६२०
मीठे हरि गुण गाउ	६२१
(महला ९)	
साधो मन का मान	६२१
साधो रचना राम	६२२
प्रानी कउ हरि जसु	६२३
साधो इहु मनु गहिओ	६२३
साधो गोबिंद के गुन	६२४
कोऊ माई भूलिआ मनु	६२४
साधो राम सरनि	६२५
मन रे कहा भइओ तै	६२५
नरु अचेत पाप ते डरु	६२६
म० १ असटपदीआ	
निधि सिधि निरमलु	६२६
मनु कुंचरु काइआ	६२८
ना मनु मरै न कारजु	६३०
हउमै करतिआ नह	६३१
दूजी माइआ जगत	६३३
अधिआतम करम	६३४

	पंना
खिमा गही ब्रतु सील	६३५
ऐसो दासु मिलै सुखु	६३७
ब्रहमै गरबु कीआ	६३८
चोआ चंदनु अंकु	६४०
सेवा एक न जानसि	६४१
हठु करि मरै न लेखै	६४३
हउमै करत भेखी नही	६४४
प्रथमै ब्रहमा कालै	६४५
बोलहि साचु मिथिआ	६४६
राम नामि चितु रापै	६४९
जिउ गाई कउ गोइ	६५०
गुरपरसादी बूझि ले	६५१
म० ३ असटपदीआ	
मन का सूतकु दूजा	६५३
गुरमुखि सेवा प्रान	६५४
इस जुग का धरमु	६५५
ब्रहमा मूलु बेदु	६५७
ब्रहमा वेदु पड़े वादु	६५८
त्रैगुण वखाणै भरम	६६०
नामु अमोलकु गुर	६६१
मन ही मनु सवारिआ	६६३
सतिगुर ते जो मुह फेरे	६६५
(म० ४ करहले)	
करहले मन परदेसी	६६६
मन करहला वीचारी	६६८
म० ५ असटपदीआ	
जब इहु मन महि	६६९
गुर सेवा ते नामे लागा	६७१
गुर का सबदु रिदै	६७२
प्रथमे गरभवास ते	६७४
जो इसु मारे सोई सूरा	६७६
हरि सिउ जूरै त सभु को	६७७
बिनु सिमरन जैसे	६७९
गुर कै बचनि मोहि	६८०
तिंसु गुर कउ	६८१

	पंना
मिलु मेरे गोबिंदु	६८२
आदि मधि जो अंति	६८२
खोजत फिरे असंख अंतु	६८३
नाराइण हरि रंग	६८५
हरि हरि गुरु गुरु	६८६
रंगि संगि बिखिआ के	६८६
(महला १)	
मुंधु रैणि दुहेलड़ीआ	६८७
सुणि नाह प्रभू जीउ	६८९
(महला ३)	
साधन बिनउ करे	६९१
पिर बिनु खरी	६९३
कामणि हरि रसु	६९५
माइआ सरु सबलु	६९७
गुर की सेवा करि	६९९
(महला ५)	
मेरे मनि बैरागु	७०१
मोहन तेरे ऊचे मंदर	७०३
पतित असंख पुनीत	७०४
जपि मना तूं राम	७०४
सुणि सखीए मिलि	७०६
(बावन अखरी म० ५)	
गुरदेव माता गुरदेव	७०८-७४२
(सुखमनी महला ५)	
आदि गुरए नमह	७४२-८३२
(थिती गउड़ी म० ५)	
जलि थलि महीअलि	८३२-८४४
(गउड़ी वार म० ४)	
सतिगुरु पुरखु	८४५-८८६
(गउड़ी वार म० ५)	
हरि हरि नामु जो जनु	८८७-९०१
(कबीर जीउ)	
अब मोहि जलत राम	९०२
माधउ जल की	९०२
जब हम एको एकु करि	९०३

	पंना
नगन फिरत जो	१०४
संधिआ प्रातु इस	१०४
किआ जपु किआ तपु	१०५
गरभवास महि कुलु	१०५
अंधकार सुखि	१०६
जोति की जाति जाति	१०६
जो जनु परमिति पर	१०७
उपजै निपजै निपजि	१०७
अवर मूए किआ सोग	१०८
असथावर जंगम	१०८
ऐसो अचरजु देखिआ	१०९
जिउ जलि छोडि बाहरि	११०
चोआ चंदन मरदन	११०
जम ते उलटि भए है	१११
पिंड मूऐ जीउ किह	११२
कंचन सिउ पाईऐ	११३
जिह मरनै सभु जगतु	११३
कत नही ठउरु मूलु	११४
जाके हरि सा ठाकुरु	११४
बिनु सत सती होइ	११५
बिखिआ बिआपिआ	११५
जिह कुलि पूतु न गिआन	११६
जो जन लेहि खसम का	११६
गगन रसाल चुऐ	११६
मन का सुभाउ मनहि	११७
ओइ जो दीसहि अंबरि	११७
बेद का पुतरी	११८
देइ मुहार लगामु	११८
जिहि मुख पांचउ	११९
आपे पावकु आपे	११९
ना मै जोग धिआन चितु	१२०
जिहि सिरि रचि रचि	१२०
सुखु मागत दुखु आगै	१२०
अहिनिसि एक नाम जो	१२१
रे जीअ निलज लाज	१२२

	पंना
कउनु को पूतु पिता को	१२२
अब मोकउ भए राजा	१२३
जलि है सूतकु थलि है	१२४
झगरा एकु निबेरहु	१२४
देखउ भाई ज्ञान की	१२५
हरि जसु सुनहि	१२५
जीवत पितर न मानै	१२६
जीवत मरै मरै फुनि	१२७
उलटत पवन चक्र	१२८
तह पावस सिंध धूप	१२९
पाप पुंन दुइ बैल	१२९
पेवकड़ै दिन चारि है	१३०
जोगी कहहि जोगु भल	१३१
जह कछु अहा तहा	१३२
सुरति सिम्रिति दुइ	१३३
गज नव गज दस गज	१३४
एक जोत एका मिली	१३५
जेते जतन करत ते	१३५
कालबूत की हसतनी	१३६
अगनि न दहै पवनु	१३७
जिउ कपि के कर	१३८
पानी मैला माटी गोरी	१३९
राम जपउ जीअ ऐसे	१३९
जोनि छाड़ि जउ जग	१४०
सुरग बासु न बाछीऐ	१४०
रे मन तेरो कोइ नही	१४१
पंथु निहारै कामनी	१४२
आस पास घनु तुरसी	१४२
बिपल बसत्र केते है	१४३
मन रे छाडहु भरमु	१४३
फुरमानु तेरा सिरै	१४४
लख चउरासीह जीअ	१४४
निंदउ निंदउ मोकउ	१४५
राजा राम तू ऐसा	१४६
खट नेम कर कोठड़ी	१४६

	पंना
माई मोहि अवरु	९४७
बावन अछर लोक त्रै	९४८-९५६
पंद्रह थितीं सात वार	९५७-९६०
बार बार हरि के गुन	९६१
(नामदेउ जीउ)	
देवा पाहन तारीअले	९६२
(रविदास जीउ)	
मेरी संगति पोच सोच	९६३
बेगमपुरा सहर को	९६४
घट अवघट डूगर	९६४
कूपु भरिओ जैसे दादरा	९६५
सतजुगि सतु त्रेता	९६६



आदि

श्री गुरू ग्रंथ साहिब

(नागरी लिपि में)

हिन्दी व्याख्या सहित

१ ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु
अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि ॥

ईश्वर एक है अर्थात् अद्वितीय है, सृष्टि का रचयिता है। वह भय से रहित है, उसे किसी से वैर नहीं; (भय और वैर द्वैत की उत्पत्ति हैं), वह कालातीत (अर्थात् भूत, भविष्य, वर्तमान से परे) है, इसलिए नित्य है। वह अयोनी है अर्थात् जन्म-मरण के चक्र से मुक्त है, वह स्वयंभू है (स्वयं प्रकट होनेवाला है), उसकी लब्धि मात्र सतिगुरु की कृपा से ही सम्भव है।

[टिप्पणी : यह गुरुमत का मूल-मन्त्र है, इसमें गुरु नानक देव जी (महला १) ने परमात्मा के शाब्दिक संकल्प को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। यों तो गुरमत की मान्यतानुसार क्योंकि ब्रह्म निर्गुण है, इसलिए उसके किसी भी रूपाकार को शब्दों में बद्ध नहीं किया जा सकता; तथापि उसकी अतीतता, व्यापकता और स्वायत्तता बताने के लिए कतिपय शब्दों का चयन-मात्र इस मूल-मन्त्र में किया गया है। समूचे गुरु ग्रंथ साहिब में प्रत्येक राग के आरम्भ में इसे दोहराया गया है और बीच-बीच में आवश्यकतानुसार इसका संक्षिप्त रूप '१ ओं सतिगुर प्रसादि' भी दिया गया है।]

॥ जपु ॥

मूल-मन्त्र के उपरान्त आनेवाली गुरवाणी का शीर्षक है। इसका यह तात्पर्य भी हो सकता है कि (हे भाई !) मूल-मन्त्र का जाप कर।

आदि सचु जुगादि सचु।
है भी सचु नानक होसी भी सचु ॥ १ ॥

सोचै सोचि न होवई जे सोची लखवार।
चुपै चुप न होवई जे लाइ रहा लिवतार।
भुखिआ भुख न उतरी जे बंना पुरीआ भार।
सहस सिआणपा लख होहि त इक न चलै नालि।
किव सचिआरा होईऐ किव कूड़ै तुटै पालि।
हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि॥ १॥

वह प्रभु (वाहिगुरु) ही एकमात्र सत्यस्वरूप है। जब कुछ नहीं था, तो भी उसकी सत्ता थी, चारों युगों (सतियुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग, कलियुग) से भी पूर्व वह सत्य-स्वरूप परमात्मा विद्यमान था, आज भी (वर्तमान में) वही है और भविष्य में भी उसी की सत्ता स्थिर रहेगी। शुचिकरण (सोचै) द्वारा कोई पवित्र नहीं हो सकता अर्थात् शौचादि से यथार्थ ज्ञान की उपलब्धि नहीं होती, चाहे कोई लाखों बार भौतिक सफ़ाई करता रहे। ज्ञान-लब्धि मन की निर्मलता से सम्भव है, भौतिक निर्मलता (शौच) से सत्य की प्राप्ति नहीं। वाणी की चुप्पी से मन के संकल्प-विकल्प शांत नहीं होते; चाहे कोई चित्त-वृत्तियों को कितना भी संयमित करने का प्रयास करे, उसका मन भटकता ही रहता है। भूखा रहने अर्थात् व्रत-उपवास करने से तृष्णा रूपी भूख का दमन नहीं होता। सृष्टि की बैकुण्ठपुरी, इन्द्रपुरी आदि पुरियों के यदि सब वैभव भी प्राप्त कर लिए जायँ तो भी तृष्णा का कहीं अन्त नहीं। यदि मनुष्य के पास असंख्य बौद्धिक तर्क और विश्लेषण मौजूद हों, परमात्मा की राह पर एक भी सहयोगी नहीं होता—तब (ऐसे में) सांसारिक मनुष्य क्योंकर सत्य-पथ-गमन कर सकता है? झूठ का निस्तार कैसे संभव है? माया का आवरण क्योंकर विदीर्ण होगा? (इसके उत्तर में) गुरुनानक जी कहते हैं कि जीव को परमात्मा के हुकुम (राज़ी-बर-रज़ा) में रहना चाहिए, अपने लिखे हुए (प्रारब्ध कर्मानुसार) को ही भोगने की तदबीर होने के कारण सुख-दुःख की संवेदना से अतीत रहने का प्रयास करना चाहिए। उसी से मिथ्या तृष्णा का आवरण हटना सम्भव है। (सत्य की सत्ता की अनुभूति का यही एक-मात्र मार्ग है—इसे ही गुरुमत-मार्ग कहा जा सकता है।) ॥ १॥

[टिप्पणी : गुरुनानक-काल में कर्मकाण्ड बढ़ गया था, इसलिए इस पद में व्रत, उपवास, मौन, तर्क आदि को हटाकर गुरुजी ने परमात्मा का सहारा खोजने की शिक्षा दी है।]

हुकमी होवनि आकार हुकमु न कहिआ जाई।
हुकमी होवनि जीअ हुकमि मिलै वडिआई।

हुकमी उतमु नीचु हुकमि लिखि दुख सुख पाईअहि ।
इकना हुकमी बखसीस इकि हुकमी सदा भवाईअहि ।
हुकमै अंदरि सभु को बाहरि हुकम न कोइ ।
नानक हुकमै जे बुझै त हउमै कहै न कोइ ॥ २ ॥

परमात्मा के हुकुम की कोई व्याख्या सम्भव नहीं है, परम की इच्छा की कोई शाब्दिक अभिव्यक्ति नहीं हो सकती । विश्व के सभी रूप-आकार उसी की इच्छा द्वारा सर्जित हैं । उसी के हुकुम से विभिन्न जीवों को अलग-अलग योनियों को धारण करना होता है और उसकी स्वेच्छा से ही जीव बड़े-छोटे आकार और पद प्राप्त करते हैं । हुकुमी अर्थात् परमात्मा (हुकुम देनेवाला, इच्छुक) की इच्छा से ही जीव उत्तम-नीच योनी में आता और दुःख-सुख को प्राप्त होता है । परमात्मा जिस पर कृपा कर देता है, उसे आत्म-पद देकर मुक्त करता है और अन्य को जन्म-मरण के आवागमन में भी उसी की ही इच्छा से रहना होता है । तात्पर्य यह कि विश्व का प्रत्येक कार्य-व्यापार और व्यवहार परमात्मा के हुकुम में बंधा है, उससे बाहर कुछ भी नहीं । यदि जीवात्मा इस तथ्य को सही परिप्रेक्ष में पहचान ले और सब दशा में ईश्वर का हुकुम सिर-माथे पर धारण करे, तो वह अहंकार के परिवेश (मैं करता हूं, मैं करूँगा आदि) से मुक्त होता है ॥ २ ॥

गावै को ताणु होवै किसै ताणु । गावै को दाति जाणै नीसाणु ॥
गावै को गुण वडिआईआ चार । गावै को विदिआ विखमु वीचारु॥
गावै को साजि करे तनु खेह । गावै को जीअ लै फिरि देह ॥
गावै को जापै दिसै दूरि । गावै को वेखै हादरा हदूरि ॥
कथना कथी न आवै तोटि । कथि कथि कथी कोटी कोटि कोटि॥
देदा दे लैदे थकि पाहि । जुगा जुगंतरि खाही खाहि ॥
हुकमी हुकमु चलाए राहु । नानक विगसै बेपरवाहु ॥३॥

किसमें इतनी शक्ति (ताणु) है कि वह परमात्मा के सामर्थ्य (बल, ताणु) की सही विवेचना कर सके ! परमात्मा सर्व-प्रदाता है, उसके प्रदेय को प्रकट करके कौन कह सकता है ? ईश्वर के गुणों और बड़ाइयों का शुभगान किसका सामर्थ्य है, चारों वेद तो (उसका गुण कहते) उसका अन्त नहीं पा सके, गुण-गान-ही करते रह गये । जो विद्यावान् वेदान्तादि कठिन विचारों से अभिज्ञ है, वह भी परमात्मा के सही गुणों का गान नहीं कर सकता । परमात्मा पृथ्वी-तत्त्व से विभिन्न भूतों (शरीरों) की रचना करता और पुनः उन्हें मूल तत्त्व मिट्टी में ही मिला देनेवाला

है; वह सूक्ष्म आत्मा (चेतन सत्ता) शरीर में डालकर मिट्टी के पुतले को चालित करता एवं आत्मा अलग करके शरीर को निष्प्राण कर सकनेवाला है— भला उसका ठीक-ठीक गुण कौन गा सकता है? परमात्मतत्त्व मानवीय ज्ञान और दृष्टि, दोनों से परे है, उसे कोई सम्मुख (हादरा-हदूरि) देख सके, तो उसका चित्रण करे! जब तक देखा या जाना ही नहीं, तब तक उसका सही गुण-गान क्योंकर सम्भव हो सकता है? (यहाँ तक परमात्मा के अनुपम बल की महिमा है, जिसका वर्णन असम्भव है) जिन विद्वानों, मनीषियों, पंडितों ने वेद-शास्त्र, उपनिषद्, पुराणादि के सहारे उस परम सामर्थ्यवान् प्रभु की शक्ति-गाथा कहने का प्रयास किया भी है, वे भी किसी अन्त तक नहीं पहुँच पाये—करोड़ों कथा कहने को हुए, सब बीत गये। (प्रश्न उठता है, ऐसी अद्भुत सशक्त सत्ता कैसी है?) वह दाता है, देनेवाला है, उसका प्रदेय इतना व्यापक है कि सृष्टि के समस्त जीवों को वह निरन्तर जीवन और जीवन-साधन देता ही जाता है— लेनेवाले थक जाते हैं, देनेवाले को कोई कमी नहीं। सृष्टि के जीव युग-युगान्तर से उसी का दिया खा रहे हैं। वह जगत को अपने हुकुम-सूत्र में बाँधकर चला रहा है— स्वयं इच्छा-रहित (बे-परवाहु) होने के कारण जीवों की अज्ञता पर प्रसन्न होता है, अर्थात् माया-बन्धनों में पड़े जीव अहंकार-वश प्रभु के कार्य-व्यापार को अपना किया बताते हैं, तो भी वह परमात्मा उन पर क्रुद्ध न होकर उनकी नासमझी पर मुस्कराता है ॥३॥

साचा साहिबु साचु नाइ भाखिआ भाउ अपारु।
आखहि मंगहि देहि देहि दाति करे दातारु।
फेरि कि अगै रखीऐ जितु दिसै दरबारु।
मुहौ कि बोलणु बोलीऐ जितु सुणि धरे पिआरु।
अंम्रित वेला सचु नाउ वडिआई वीचारु।
करमी आवै कपड़ा नदरी मोखु दुआरु।
नानक एवै जाणीऐ सभु आपे सचिआरु ॥४॥

वह सबका स्वामी (साहिब) परमात्मा परम सत्य है, और उसका नाम भी उतना ही सत्य है। नाम की व्याख्या करनेवाले (सन्त-महात्मा) वे महापुरुष हैं, जिन्हें प्रभु से अपार प्रेम था और जिन्होंने नामी (परमात्मा) का ज्ञान प्राप्त किया था। नाम की माँग परमात्मा से सब करते हैं और वह भी जीवों के कर्मानुसार यथोचित सबको देता है। (अब प्रश्न उठता है कि) उस अकाल प्रभु के आगे क्या भेंट करें, जिससे वह दर्शन देकर हमें कृतार्थ करे अथवा क्योंकर उसका यशोगान करें कि जिससे वह हमें प्यार का दान दे? (उत्तर स्पष्ट है) अमृत समय

(प्रभातवेला) उस प्रभु के सच्चे नाम का जाप तथा उसकी महानता को जानकर उसका विरद-गान करने से ईश्वर का प्यार लब्ध होता है। अलग कर्मों के कारण आत्मा विभिन्न शरीरों का जामा धारण करती रहती है, मोक्ष तो केवल उसकी दया (नदरी) से ही सम्भव है। अतः (गुरु जी कहते हैं कि) ऐसा ज्ञान प्राप्त करो कि (सब संशय नष्ट हो जायँ) और उसके सर्वव्यापक तथा सर्वकर्त्ता होने में विश्वास जाग्रत हो ॥ ४ ॥

थापिआ न जाइ कीता न होइ। आपे आपि निरंजनु सोइ ॥
जिनि सेविआ तिनि पाइआ मानु। नानक गावीऐ गुणी निधानु ॥
गावीऐ सुणीऐ मनि रखीऐ भाउ। दुखु परहरि सुखु घरि लै जाइ ॥
गुरमुखि नादं गुरमुखि वेदं गुरमुखि रहिआ समाई।
गुरु ईसरु गुरु गोरखु बरमा गुरु पारबती माई।
जे हउ जाणा आखा नाही कहणा कथनु न जाई।
गुरा इक देहि बुझाई।
सभना जीआ का इकु दाता सो मै विसरि न जाई ॥ ५ ॥

(शायद यहाँ यह प्रश्न उठा हो कि उस अकाल पुरुष को किसने बनाया है? उसी के उत्तर में कहा जा रहा है) उस परमात्मा को किसी ने स्थापित नहीं किया (किसी ने नहीं बनाया), और न ही किसी के द्वारा वह उत्पन्न किया गया है—अर्थात् वह नाद और बिंदु दोनों से अतीत है। वह 'निःअंजन' अर्थात् मायातीत है, स्वयं-सिद्ध है, अनादि और अनंत है। जिन सुजनों ने उसकी सेवा धारण की है, उन्हें नित्य सम्मान प्राप्त है—ऐसा मानकर उस गुण-खान परमात्मा का भजन करना चाहिए। (प्रश्न उठा कि भजन किसे सुनाएँ?) (वाणी उत्तर देती है—) प्रभु-भजन का गाना-सुनना मन में प्रेम-भाव बनाने में ही निहित है इसीसे सांसारिक दुःखों का नाश और सुखों की उपलब्धि होती है। जीव आनन्द में विचरण करता है। गुरु-मुख के शब्द द्वारा जब सच्चा शिष्य परमात्मा को जानता (वेद) है, तो वह उस प्रभु में ही समा जाता है अर्थात् उससे अभेद हो जाता। (परमात्मा को बता, मिला सकनेवाला गुरु कौन हो सकता है?) गुरु बहुत बड़ी शक्ति है; बिना उसके शिव, विष्णु, ब्रह्मा या पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती आदि देवियों को भी कोई ठौर नहीं। गुरु में इन सभी के गुण मौजूद होते हैं—शिव-रूप में वह शिष्यों का कल्याण करता है, विष्णु-रूप में वह शुभगुणों की पालना करता है, ब्रह्मा-रूप में वह गुणों का सर्जक है। इसी प्रकार पार्वती की नाईं अवगुण-नाशक, लक्ष्मी की भाँति दैवी-संपदा का दाता और सरस्वती की तरह ज्ञान-प्रदाता है। ऐसे गुरु के अनन्त

गुणों को जानकर भी कहा नहीं जा सकता, अर्थात् मैं उसके समस्त गुण कह सकने में असमर्थ हूँ; कहना भी चाहूँ, तो मेरे लिए सम्भव नहीं होगा। मुझे तो गुरु ने बस एक ऐसी सूझ दी है, कि जगत के सभी जीवों का एक ही मालिक है; बस उसे कभी विस्मृत नहीं करना ॥ ५ ॥

तीरथि नावा जे तिसु भावा विणु भाणे कि नाइ करी ।
जेती सिरठि उपाई वेखा विणु करमा कि मिलै लई ।
मति विचि रतन जवाहर माणिक जे इक गुर की सिख सुणी ।
गुरा इक देहि बुझाई ।
सभना जीआ का इकु दाता सो मै विसरि न जाई ॥ ६ ॥

(लोग तीर्थादि नहाने की बात करते हैं, गुरुजी कहते हैं) परमेश्वर को स्वीकार हो, तभी तीर्थ-स्नानादि सम्भव है; और यदि स्वीकृति के बिना तीर्थ कर भी लें तो उसका क्या लाभ होगा ? (तीर्थ-स्नान का आयोजन परमात्मा की प्रसन्नता के लिए ही तो करते हैं, उसे मंज़ूर न हुआ, तो क्या लाभ ?) यह जो सृष्टि है इसमें बिना कर्मों के किसी को कभी कोई फल प्राप्त हुआ है ? जीव क्या अपनी शक्ति से कुछ पा सकता है ? तात्पर्य यह कि जो भी हमारे कर्मों में होगा, वह अवश्य मिलेगा—इसलिए तीर्थादि कर्मकाण्ड से क्या प्रयोजन ! गुरु की शिक्षाओं पर आचरण करनेवालों को तो वैराग्य रूपी रत्न-जवाहर अपने ही भीतर लब्ध हो जाते हैं। यही सूझ मुझे गुरु से मिली है। जगत के जीवों का एक ही मालिक है, उसे कभी विस्मृत नहीं करना है ॥ ६ ॥

जे जुग चारे आरजा होर दसूणी होइ ।
नवा खंडा विचि जाणीऐ नालि चलै सभु कोइ ।
चंगा नाउ रखाइ कै जसु कीरति जगि लेइ ।
जे तिसु नदरि न आवई त वात न पुछै के ।
कीटा अंदरि कीटु करि दोसी दोसु धरे ।
नानक निरगुणि गुणु करे गुणवंतिआ गुणु दे ।
तेहा कोइ न सुझई जि तिसु गुणु कोइ करे ॥ ७ ॥

(योगादि साधनों से अवस्था बढ़ भी जाय तो······!) यदि व्यक्ति की आयु चतुर्युग के बराबर हो जाय, बल्कि उससे भी दस गुणा अधिक हो; नौ खण्डों, चौदह भुवनों में उसे ख्याति प्राप्त हो जाय, समूचा विश्व उसकी आज्ञा में चलने लगे। उसकी कीर्ति देश-देशान्तर में फैल जाय और सब लोग उसका यशोगान करने लगें, तो भी यदि परमात्मा की कृपा-दृष्टि उस पर न हो तो उसे कहीं सहारा नहीं। तात्पर्य यह कि व्यक्ति की

उक्त समूची भौतिक सम्पन्नता उसे ईश्वर की निकटता नहीं दे सकती। भगवद्भक्तों के सम्मुख ऐसा वैभवशाली व्यक्ति कौड़ी का भी नहीं। वह व्यक्ति कीड़ों में भी कीड़े के समान (अर्थात् क्षुद्रतम कीट) है और स्वयं दोषी लोग भी उसे दोषपूर्ण मानेंगे (अर्थात् वह नीचतम होगा)। गुरुजी कहते हैं कि वह सर्वशक्तिमान परमात्मा निर्गुणियों को गुणवान और गुणवानों को समर्थ बनाने की शक्ति रखता है। मुझे ऐसा कोई दीख नहीं पड़ता जो उस सर्वगुण में कोई गुण-वृद्धि कर सकता हो! भाव यह कि उसके किसी भी कार्य में मनुष्य का कोई दखल सम्भव नहीं ॥ ७ ॥

सुणिऐ सिध पीर सुरिनाथ। सुणिऐ धरति धवल आकास ॥
सुणिऐ दीप लोअ पाताल। सुणिऐ पोहि न सकै कालु ॥
नानक भगता सदा विगासु। सुणिऐ दूख पाप का नासु ॥ ८ ॥

अब गुरुदेव नाम-श्रवण की महिमा कहते हैं। सिद्धों, पीरों, देवताओं और नाथों को (सामान्य मनुष्य से ऊँचा) जो पद प्राप्त है, वह नाम-श्रवण के ही कारण है। धरती पर धर्म की सत्ता और आकाश की स्थिति नाम ही के कारण है। (सातों) दीप, (सातों) लोक और (सातों) पाताल नामश्रवण से ही स्थित हैं। नाम का श्रवण करनेवाले के पास मृत्यु (काल) भी नहीं पहुँचती (पोहि), अर्थात् वह चिरंजीवी (अमर) हो जाता है। गुरु नानक कहते हैं कि नाम की भक्ति करने वाला निरन्तर बढ़ता-फूलता है; नाम-श्रवण से सब प्रकार के कष्ट और पाप कट जाते हैं ॥ ८ ॥

[टिप्पणी : सात द्वीप—जंबू, शालिमल, पलाक्ष्य, कोच, साक, कुश, पुष्कर। सात लोक—भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्। सात पाताल—अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, महातल, पाताल।]

सुणिऐ ईसरु बरमा इंदु। सुणिऐ मुखि सालाहण मंदु ॥
सुणिऐ जोग जुगति तनि भेद। सुणिऐ सासत सिम्रिति वेद ॥
नानक भगता सदा विगासु। सुणिऐ दूख पाप का नासु ॥ ९ ॥

शिव (ईसर), ब्रह्मा तथा इन्द्र (या चन्द्र) का वर्तमान पद नामश्रवण का ही प्रतिफल है। मंद जाति (नीच) के लोग भी नाम-श्रवण से सराहनीय हो गये हैं (बाल्मीकि) सरीखे नीच डाकू भी आज पूज्य और श्रद्धेय हैं)। योग-भक्ति द्वारा शरीर के भीतर का भेद (षट्चक्रादि) जान लेने में भी नाम-श्रवण ही सहयोगी होता है। वेद, शास्त्र और स्मृतियों के सिद्धान्त श्रवण में ही उपलब्ध हैं। इसीलिए गुरुजी का कथन है कि नाम की भक्ति करनेवाला निरन्तर बढ़ता-फूलता है; नाम-श्रवण से सब प्रकार के कष्ट और पाप कट जाते हैं ॥ ९ ॥

सुणिऐ सतु संतोखु गिआनु । सुणिऐ अठसठि का इसनानु ॥
सुणिऐ पड़ि पड़ि पावहि मानु । सुणिऐ लागै सहजि धिआनु ॥
नानक भगता सदा विगासु । सुणिऐ दूख पाप का नासु ॥१०॥

पावन नाम के श्रवण से (मानवता के मूल धर्मों) सत्य, सन्तोष और विवेक की लब्धि होती है। नाम के अध्ययन से प्राप्य सम्मान का आधार भी नाम-श्रवण ही है; सहज में अन्तर्मुखी लग्न की सम्भावना भी प्रभु-नाम-श्रवण में हैं। अत: गुरुजी कहते हैं कि नाम की भक्ति करने वाला निरन्तर बढ़ता-फूलता है; नाम-श्रवण से सब प्रकार के कष्ट और पाप कट जाते हैं ॥ १० ॥

सुणिऐ सरा गुणा के गाह । सुणिऐ सेख पीर पातिसाह ॥
सुणिऐ अंधे पावहि राहु । सुणिऐ हाथ होवै असगाहु ॥
नानक भगता सदा विगासु । सुणिऐ दूख पाप का नासु ॥११॥

गुणों के (सर-समुद्र) सागर अर्थात् वेद-शास्त्रादि का मंथन (गाहि) भी श्रवण से ही सम्भव हो सका है। शेख, पीर और बादशाह नाम-श्रवण से ही अस्तित्व में हैं, अंधे (अज्ञानी) को ज्ञान-नेत्रों की प्राप्ति श्रवण से ही होती है अर्थात् पथ-भ्रष्ट व्यक्ति श्रवण से ही सत्पथ को पाता है। नाम-श्रवण से ही अगाध सागर बित्ते (हाथ) भर का हो जाता है—तात्पर्य यह कि कठिनतम समस्या भी नाम-श्रवण के कारण सुगम हो जाती है। इसीलिए गुरु जी कहते हैं कि नाम की भक्ति करनेवाला निरन्तर बढ़ता-फूलता है; नाम-श्रवण से सब प्रकार के कष्ट और पाप कट जाते हैं ॥ ११ ॥

[टिप्पणी : उपर्युक्त चारों पद गुरुजी ने प्रेम-पूर्वक प्रभु-नाम का श्रवण करने के माहात्म्य को चित्रित करने के लिए कहे हैं। इनमें सिद्धों-नाथों आदि को गुरुजी ने स्पष्ट शब्दों में बताने का प्रयास किया है कि उनकी पद-स्थिति प्रभु-नाम के श्रवण से ही बनी है। यदि वे मालिक से टूटकर जीने लगते, तो इतिहास में भी उनकी कोई स्थिति न होती।]

मंने की गति कही न जाइ । जे को कहै पिछै पछुताइ ॥
कागदि कलम न लिखणहारु । मंने का बहि करनि वीचारु ॥
ऐसा नामु निरंजनु होइ । जे को मंनि जाणै मनि कोइ ॥१२॥

(श्रवणोपरांत मनन की स्थिति है। आगे के कुछ पदों में गुरुजी नाम के मनन का चित्रण करते हैं) जो जीव नाम का श्रवण करके, बाद में उसका मनन भी करता है, उसकी गति (आनन्दोल्लास) का अनुमान नहीं किया जा सकता। क्योंकि नाम का स्वरूप मन और वाणी से इतर है, इसलिए इसका कथन सम्भव नहीं; यदि कोई रहस्योद्घाटन का

प्रयास करता भी है तो उसे पीछे पश्चाताप करना पड़ता है। (सच तो यह है कि) अभी वह काग़ज़, कलम और लेखक पैदा ही नहीं हुए जो लिख-बोलकर नाम-मनन की महिमा का विचार कर सकें। निरंजन (मायातीत) परब्रह्म का नाम ऐसा महिमाशाली है कि बस स्वयं मनन करनेवाले का मन ही जानता है, (कोई दूसरा शब्दों में इसे व्यक्त नहीं कर सकता) ॥ १२ ॥

मंनै सुरति होवै मनि बुधि । मंनै सगल भवण की सुधि ॥
मंनै मुहि चोटा न खाइ । मंनै जम कै साथि न जाइ ॥
ऐसा नामु निरंजनु होइ । जे को मंनि जाणै मनि कोइ ॥१३॥

प्रभु-नाम का मनन करने से मन में प्रभु-प्रीति (सु-रति) जाग्रत होती है, और बुद्धि निर्मल हो जाती है। मननशील जीव को चौदहों लोकों की जानकारी मिलती है, अर्थात् वे पूर्ण ज्ञान को प्राप्त होते हैं। मनन करनेवाला जीव (मुँह पर पड़ती हुई) काल की चोटों से सुरक्षित रहता है। ऐसा जीव उस मार्ग से नित्य बचता है, जिस पर उसे यम के हाथ पड़ने की सम्भावना होती है। सचमुच निरंजन (मायातीत) पर-ब्रह्म का नाम इतना महिमाशाली है कि बस मनन करनेवाले का मन ही जानता है, (कोई दूसरा, शब्दों में इसे व्यक्त नहीं कर सकता) ॥ १३ ॥

मंनै मारगि ठाक न पाइ । मंनै पति सिउ परगटु जाइ ॥
मंनै मगु न चलै पंथु । मंनै धरम सेती सनबंधु ॥
ऐसा नामु निरंजनु होइ । जे को मंनि जाणै मनि कोइ ॥१४॥

मननशील प्राणी को (प्रभु-प्राप्ति के) मार्ग में कोई अड़चन (ठाक) नहीं आती। परमात्मा का मनन करने से जीव प्रतिष्ठा सहित विराजते हैं, वे प्रकट में विश्वास करते हैं (पंथों के अभिमान या बाह्याडम्बर से दूर रहते हैं)। मननशील व्यक्ति आनन्द और उल्लास में जीवनपथ तय करता है, उसका सम्बन्ध यथार्थ धर्म (सदाचार, परोपकारादि सद्‌गुण) से होता है। इसीलिए तो कहा है कि निरंजन परब्रह्म का नाम इतना महत्त्वपूर्ण है कि बस मननशील का मन ही जानता है (कोई दूसरा शब्दों में इसे व्यक्त नहीं कर सकता) ॥ १४ ॥

मंनै पावहि मोखु दुआरु । मंनै परवारै साधारु ॥
मंनै तरै तारे गुरु सिख । मंनै नानक भवहि न भिख ॥
ऐसा नामु निरंजनु होइ । जे को मंनि जाणै मनि कोइ ॥१५॥

प्रभु-नाम का मनन करनेवाले मुक्ति के द्वार अर्थात् सत्य-ज्ञान को

पा जाते हैं। अपने सगे-सम्बन्धियों, मित्र-कुटुम्बियों को भी सुधार लेते हैं (या आधार-सहित बनाते अर्थात् प्रभु-शरण में ले आते हैं)। मननशील प्राणी स्वयं तो संसार-सागर से तिरते ही हैं, पथ-प्रदर्शक बनकर दूसरों के मोक्ष का भी कारण बनते हैं। गुरु नानक जी कहते हैं कि नाममनन करनेवाला जीव चौरासी के आवागमन (चौरासी लाख योनियों का चक्र) से सुरक्षित हो जाता है, उसे किसी वस्तु की अपेक्षा (भिख) नहीं रह जाती। निरंजन (मायातीत) परब्रह्म का नाम इतना महिमाशाली है कि बस मननशील का मन ही जानता है (कोई दूसरा शब्दों में इसे व्यक्त नहीं कर सकता) ॥ १५ ॥

पंच परवाण पंच परधानु। पंचे पावहि दरगहि मानु ॥
पंचे सोहहि दरि राजानु। पंचा का गुरु एकु धिआनु ॥
जे को कहै करै वीचारु। करते कै करणै नाही सुमारु ॥
धौलु धरमु दइआ का पूतु। संतोखु थापि रखिआ जिनि सूति॥
जे को बुझै होवै सचिआरु। धवलै उपरि केता भारु ॥
धरती होरु परै होरु होरु। तिस ते भारु तलै कवणु जोरु ॥
जीअ जाति रंगा के नाव। सभना लिखिआ वुड़ी कलाम ॥
एहु लेखा लिखि जाणै कोइ। लेखा लिखिआ केता होइ ॥
केता ताणु सुआलिहु रूपु। केती दाति जाणै कौणु कूतु ॥
कीता पसाउ एको कवाउ। तिस ते होए लख दरीआउ ॥
कुदरति कवण कहा वीचारु। वारिआ न जावा एक वार ॥
जो तुधु भावै साई भली कार। तू सदा सलामति निरंकार ॥१६॥

(इस पद में 'पंच' शब्द की महिमा दी गयी है। पंच चुने हुए या मुख्तिआर को भी कहते हैं, पाँच की संख्या को भी। चुने हुए के रूप में करोड़ों-अरबों की जन-संख्या में से परमात्मा को प्यार करनेवाले कुछ जीव अर्थात् 'संत-जन' इसका अर्थ ठहरता है, जबकि पाँच की संख्या का भी बड़ा मधुर श्लेष साथ-साथ चलता है।)

परमात्मा के दरबार में सन्त-जनों की प्रतिष्ठा है (सत्, संतोष, धैर्य, धर्म तथा दया आदि पाँच गुणों को धारण करनेवाले महात्मा की प्रतिष्ठा है), वे ही वहाँ प्रधान (मुख्य) हैं (पाँचों विषयों—शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध—का निरोध करनेवाली आत्मा ही परमात्मा को प्रिय है)। सन्त-जनों को प्रभु के सम्मुख भी आदर मिलता है (अर्थात् वे महानात्माएँ जिनमें आकाश, धरती, जल, वायु और अग्नि के निहित गुण क्रमशः निवृत्ति, धैर्य, निर्मलता, समानता और यथालाभ सन्तोष, प्राप्त हैं, उन्हें

प्रभु-शरण में सत्कार लब्ध होता है)। सन्तों को ही परमेश्वर के द्वार पर मुक्ति मिलती है (अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकारादि पाँचों वासनाओं पर विजय पानेवाला पावन जीव ही मुक्ति पाता है)। सन्त-महात्माओं का ध्यान निरन्तर उस परम गुरु (परमात्मा) में स्थिर रहता है। ऐसे में भी यदि उनमें स्वाभिमान के कारण भटक कर कोई यह कहे कि वह कर्त्ता (परमात्मा) के कार्यों का विचार कर सकेगा, तो यह कभी सम्भव नहीं हो सकता; क्योंकि कर्त्ता की रचना का तो कोई शुमार ही नहीं, वह अनन्त है।

यदि कोई यह निष्कर्ष निकाल ले कि धरती का अन्त बैल के सहारे रहना ही है, तो क्या वह धरती-सम्बन्धी विचार का अन्त होगा? प्रश्न उठेगा कि वह बैल क्या है? गुरुजी कहते हैं कि वास्तव में वह बैल धर्म है, जिसकी जननी दया है, अर्थात् धरती बैल के सहारे नहीं, दया के पुत्र धर्म के सहारे स्थिर है। और यह धर्म भी सन्तापरूपी सूत्र से बंधा है। यदि कोई यह कहे कि बैल के सहारे पृथ्वी है और उस पर जगत की रचना हुई है, यही रचना का अन्त है। इतना ही मानकर यदि कोई प्रवीण (सचिआर) बनने लगे, तो उससे पूछना होगा कि उक्त बैल पर कितना बोझ होगा! तार्किक का उत्तर धरती के बोझ का संकेत करेगा (वह कहेगा कि बैल पर धरती का बोझ है); इस पर भी वह अपनी ही बात में फंसता है, क्योंकि ऐसे तो कई धरतियों का अस्तित्व प्रमाणित होता है। इस धरती के नीचे यदि बैल है, तो उसके खड़ा होने को नीचे और धरती होगी, और उससे आगे उक्त धरती को सहारा देने को पुनः कोई बैल और फिर धरती होगी। तात्पर्य यह कि इस प्रकार तो अनेक बैल और अनेक धरतियाँ सिद्ध होती हैं। यदि किसी धरती को अन्तिम मान भी लो, तो प्रश्न होगा कि उसके नीचे बैल को सहारा देनेवाली शक्ति कौन-सी है? (अन्त में यदि यही कहना पड़े कि वह धरती परमेश्वर के सहारे खड़ी है, तो अभी इस अपनी धरती को ही परमात्मा का कौतुक मान लो।)

(परमात्मा की सृष्टि में) अनेक जातियों और रंगों के जीव विद्यमान हैं। सबके मस्तक पर ईश्वराज्ञा (बुड़ी कलाम) से कर्मालेख लिखे गये हैं। यदि कोई इस रहस्य को जानने का दावा भी करे, (तो हम पूछेंगे) कि वह कर्मालेख कितना लिखा हुआ है— उसमें कितना बल (ताणु) है, कितना रूप-सौंदर्य है तथा कितनी उसकी देन है? कौन है, जो इस समूचे तथ्य का सही मूल्यांकन कर सके? (यदि उनसे पूछा जाय, तो गुरुजी कहते हैं, कि) सृष्टि का सम्पूर्ण प्रसार परमात्मा के एक शब्द (अर्थात् एक से अनेक होने के संकल्प) से हुआ

है। उसीसे सृष्टि-रचना की अनेक धाराएँ फैली हैं (संकल्प-मात्र से वह असंख्य पहलुओं में बँट गया प्रतीत होता है।) उस परमात्मा की प्रकृति को परखने का सामर्थ्य मुझमें नहीं; मेरी क्या हस्ती है कि मैं उस अनन्त शक्तिशाली पर विचार भी कर सकूँ ? उस परमात्मा के एक बाल (वार) का भी वर्णन (वारिआ) कर सकना सम्भव नहीं—उसके एक-एक रोम में कोटिशः खण्ड-ब्रह्माण्ड हैं। अतः वह निरंकारी प्रभु सदा-सदा के लिए विद्यमान है, जो उसे प्रिय है, वही उत्तम है। जैसा वह चाहता और करता है, वही श्रेष्ठ है ॥ १६ ॥ //

असंख जप असंख भाउ। असंख पूजा असंख तप ताउ ॥
असंख गरंथ मुखि वेद पाठ। असंख जोग मनि रहहि उदास ॥
असंख भगत गुण गिआन वीचार। असंख सती असंख दातार ॥
असंख सूर मुह भख सार। असंख मोनि लिव लाइ तार ॥
कुदरति कवण कहा वीचारु। वारिआ न जावा एक वार ॥
जो तुधु भावै साई भली कार। तू सदा सलामति निरंकार ॥१७॥

उस परमात्मा के विभिन्न नामों से किए जानेवाले जाप अगणित हैं। जाप में अपेक्षित भाव-भक्ति भी अगणित है। पूजा के साधन असंख्य हैं और साधनार्थ उठाए गये कष्टों की भी कोई सीमा नहीं। परमात्मा की स्तुति में लिखे गये ग्रंथों की कोई निश्चित संख्या नहीं और उन ग्रंथों अर्थात् वेद-शास्त्रों का पाठ करनेवाले कण्ठों की गणना भी सम्भव नहीं है। ऐसे योगियों की भी कोई गिनती नहीं, जो तरह-तरह के योग कमाते हैं और इस संसार से विरत बने रहते हैं। भक्तों की भी क्या कमी है, वे सब अपने-अपने विवेक से परमात्मा का गुणगान कर रहे हैं। सत्य के रक्षकों और दानियों की भी कोई गिनती नहीं (हरिश्चन्द्र और दधीची जैसे सत्यव्रती और आत्मदानी भी बहुत हुए हैं)। बड़े-बड़े शूरवीर भी हैं, जो मुँह पर लोहे की चोट खाते हैं (अर्थात् पीठ नहीं दिखाते) और मौन-व्रतियों की भी कोई गिनती नहीं, जो चुपचाप परमात्मा के ध्यान में लीन रहते हैं, समाधिस्थ होते हैं। किन्तु फिर भी परमात्मा की प्रकृति को परखने का सामर्थ्य किसी में नहीं; उस अनन्त शक्तिशाली पर विचार भी नहीं किया जा सकता। परमात्मा के एक रोम का वर्णन भी सम्भव नहीं। जो उसे प्रिय है, वह सदा-सदा के लिए विद्यमान है, वह मायातीत और अनश्वर है ॥ १७ ॥

असंख मूरख अंध घोर। असंख चोर हरामखोर ॥
असंख अमर करि जाहि जोर। असंख गलवढ हतिआ कमाहि॥

असंख पापी पापु करि जाहि । असंख कूड़िआर कूड़े फिराहि ॥
असंख मलेछ मलु भखि खाहि । असंख निंदक सिरि करहि भारु ॥
नानकु नीचु कहै वीचारु । वारिआ न जावा एक वार ॥
जो तुधु भावै साई भली कार । तू सदा सलामति निरंकार ॥१८॥

(पिछले पद में सतोगुणी सृष्टि की बात थी, अब तमोगुणी भावना-वाले लोगों की चर्चा है) परमात्मा की सृष्टि में असंख्य मूढ़-अज्ञानी बसते हैं, भयानक क्रियाओं में लीन रहनेवालों की भी कोई गिनती नहीं। चोरों, हरामखोरों (कर्त्तव्य-च्युत) की क्या कमी है, अत्याचार का सिक्का चलानेवाले और दूसरों का गला काटकर हत्या कर देनेवालों की भी क्या गिनती है। संसार में अनेक प्रकार के पाप करनेवाले असंख्य प्राणी हैं, झूठ का प्रसार करनेवाले मिथ्यावादियों की भी विपुल संख्या है; ऐसे दुष्ट मलेच्छ भी असंख्य हैं जो अभक्ष्य भक्षण करते हैं। निंदकों की बड़ी संख्या है, जो बिना प्रयोजन दूसरों की निंदा करके अपने सिर पाप का बोझ ढोते हैं। गुरुजी विनम्रतावश अपने को 'नीच' सम्बोधन करते हुए कहते हैं कि उन्होंने खूब विचार-पूर्वक ही ये बातें कही हैं (१७वें पद में सात्विकी वृत्ति के प्राणियों की चर्चा करके इस १८वें पद में वे राजसी तथा तामसी वृत्ति के लोगों की बात इसलिए कहते हैं कि जन-साधारण ग्राह्य-अग्राह्य को पहचान सकें और ज़ान लें कि) परमात्मा के वैचित्र्य तक किसी की रसाई नहीं, उसके एक रोम का वर्णन भी सम्भव नहीं। जो वह करता है, वही उत्तम है; वह स्थायी है, अनश्वर है मायातीत है ॥ १८ ॥

असंख नाव असंख थाव । अगंम अगंम असंख लोअ ॥
असंख कहहि सिरि भारु होइ । अखरी नामु अखरी सालाह ॥
अखरी गिआनु गीत गुण गाह । अखरी लिखणु बोलणु बाणि ॥
अखरा सिरि संजोगु वखाणि । जिनि एहि लिखे तिसु सिरि नाहि ॥
जिव फुरमाए तिव तिव पाहि । जेता कीता तेता नाउ ॥
विणु नावै नाही को थाउ । कुदरति कवण कहा वीचारु ॥
वारिआ न जावा एक वार । जो तुधु भावै साई भली कार ॥
तू सदा सलामति निरंकार ॥१९॥

उस अकालपुरुष परमात्मा के नाम और स्थान (तीर्थ-मन्दिर, स्वर्गादि वे जगहें, जहाँ हम परमात्मा का निवास मानते हैं) भी असंख्य हैं। इन्द्रलोक, देवलोक, बैकुंठलोक, आदि अगम्य लोकों की भी गिनती नहीं। असंख्य हठयोग करनेवाले शीर्षासन करके परमात्मा का भजन

करते हैं। (किन्तु क्या किसी नाम-विशेष के जाप से या स्थान-विशेष की पहुँच से परमात्मा किसी को मिला है?) कर्मालेख के अनुसार ही परमात्मा का नाम जपा जा सकता है, उसकी इच्छा से ही उसकी स्तुति सम्भव हो पाती है। किसी के भाग्य में लिखा है, तभी उसे ज्ञान मिल सकता है, तभी वह ईश्वर का गुणगान करने का सामर्थ्य-लाभ करता है। परमपद की वाणी का श्रवण-मनन भी भाग्याश्रय ही है। यह भाग्य और आलेख हमारे कर्मों का ही हिसाब-किताब है (अपने ही रोंपे हुए बीज हैं)। जिसने यह हिसाब (कर्मालेख) लिखा है, उसके सिर पर कोई हिसाब लिखनेवाला नहीं (वह स्वयं निरंकुश है, अन्य सब पर कर्मों का अंकुश रखता है)। परमात्मा जीव के कर्मों के अनुसार जैसे-जैसे हुकुम करता है, वैसे-वैसे उसका हिसाब लिखा जाता है। परमात्मा की समूची सृष्टि नाम-रूप ही है, कोई भी स्थान नाम से वंचित नहीं। इसलिए परमात्मा की प्रकृति को परखने का सामर्थ्य किसी में नहीं; उस अनन्त शक्तिशाली पर विचार भी नहीं किया जा सकता। परमात्मा के एक रोम का वर्णन भी सम्भव नहीं। जो उसे रुचिकर है, वही उत्तम है। वह सदा-सदा के लिए विद्यमान है, मायातीत और अनश्वर है ॥ १९ ॥

भरीऐ हथु पैरु तनु देह। पाणी धोतै उतरसु खेह ॥
मूत पलीती कपड़ु होइ। दे साबूणु लईऐ ओहु धोइ ॥
भरीऐ मति पापा कै संगि। ओहु धोपै नावै कै रंगि ॥
पुंनी पापी आखणु नाहि। करि करि करणा लिखि लै जाहु ॥
आपे बीजि आपे ही खाहु। नानक हुकमी आवहु जाहु ॥२०॥

(अब प्रश्न उठा कि नाम ही क्योंकर मल-निवारक है? गुरु जी कहते हैं), यदि मनुष्य के हाथ-पैर और शरीर में धूल की मलिनता होती है, तो उसके निवारण के लिए शरीर को पानी से धो लेना उचित है। अर्थात् शरीर पर की धूल पानी से धुल जाती है। यदि कपड़ा मूत्रादि के स्पर्श से मलिन हो जाय, तो उसे साबुन लगाकर धोया जा सकता है; अर्थात् मलिन कपड़े को साफ़ करने का साधन साबुन है, किन्तु यदि बुद्धि या विवेक पापों के कारण मलिन हो, तो उसके शुद्धिकरण का एक-मात्र उपाय नाम का प्रेमपूर्वक जाप (रंग) ही है। तात्पर्य यह कि बुद्धि की मलिनता नाम से ही धुल सकती है— (सांसारिक पानी और साबुन आदि यहाँ व्यर्थ हैं)। नाम-जाप के द्वारा असंख्य पापी पुण्यवान् हो गये, उनका ब्यौरा नहीं दिया जा सकता। जो कुछ प्राणी अपने हाथों (स्वयं) करता है, उसका समूचा हिसाब-किताब धर्मराज लिख लेता है। तात्पर्य यह कि प्राणी के पाप और पुण्य उसके अपने ही उद्यम का फल हैं।

इसलिए अपना बीजा हुआ कर्मफल आप ही (खाना) भोगना पड़ता है। गुरुजी कहते हैं कि संसार में जीव का आवागमन उस अकालपुरुष की आज्ञा से ही होता है। (परमात्मा की इस आज्ञा का मूलाधार जीव के अच्छे-बुरे कर्म होते हैं) ॥ २० ॥

तीरथु तपु दइआ दतु दानु। जे को पावै तिल का मानु॥
सुणिआ मंनिआ मनि कीता भाउ। अंतरगति तीरथि मलि नाउ॥
सभि गुण तेरे मै नाही कोइ। विणु गुण कीते भगति न होइ॥
सुअसति आथि बाणी बरमाउ। सति सुहाणु सदा मनि चाउ॥
कवणु सु वेला वखतु कवणु। कवण थिति कवणु वारु॥
कवणि सि रुती माहु कवणु। जितु होआ आकारु॥
वेल न पाईआ पंडती। जि होवै लेखु पुराणु॥
वखतु न पाइओ कादीआ। जि लिखनि लेखु कुराणु॥
थिति वारु ना जोगी जाणै। रुति माहु ना कोई॥
जा करता सिरठी कउ साजे। आपे जाणै सोई॥
किव करि आखा किव सालाही। किउ वरनी किव जाणा॥
नानक आखणि सभु को आखै। इकदू इकु सिआणा॥
वडा साहिबु वडी नाई। कीता जा का होवै॥
नानक जे को आपौ जाणै। अगै गइआ न सोहै॥२१॥

(पुनः प्रश्न उठा कि तीर्थ-तप आदि से तो निर्मलता मिलती होगी?) गुरुजी ने स्पष्ट किया कि जो लोग तीर्थ, तप, दया, दानादि करते हैं और उन्हें अपने इन सत्कर्मों पर अभिमान होने लगता है, वे तिल-भर भी अभिमान के कारण परमार्थ की ऊँचाइयों से लुढ़क जाते हैं। तात्पर्य यह कि तीर्थ-तपादि से उन्हें स्वर्गादि फल मिलता है और पुण्य के क्षीण होने पर उन्हें पुनः मर्त्यलोक में आना होता है। केवल वे ही जीव परमात्मा से अभेद ज्ञान का लाभ प्राप्त करते हैं, जो सही अर्थों में नाम का श्रवण, मनन और निदिध्यासन (मनि कीता) करते हैं। वे अन्तर्मुखी होकर नाम के सच्चे तीर्थ-सरोवर में नहाते तथा परम निर्मल होते हैं। (यह पावनता, परम निर्मलता परमात्मा से अभेद होने पर आती है—इस अभेद का साधन क्या है?) इसका साधन है परमात्मा के सम्मुख पूर्ण समर्पण; उसी के गुणों को सर्वस्व मानकर अपने को शून्य कहना। हे परमात्मा, तू सर्वगुण-सम्पन्न है, मुझमें कोई गुण नहीं। (यह समर्पण या विनम्रता भी एक गुण है) इस गुण को पैदा किए बिना भक्ति सम्भव नहीं। (आगे गुरुजी बताते हैं कि सृष्टि की उत्पत्ति सगुणी

है या निर्गुणी)। कल्याण-स्वरूप सविशेष (आथि) ईश्वर ने एक से अनेक होने के संकल्प रूप वाणी का उच्चारण किया, तभी ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि (बरमाउ) का समूचा प्रपंच अस्तित्व में आया। वास्तव में स्वयं परमात्मा सदैव सत्य (सति), चेतन (सुहाणु) तथा आनन्द (मनि चाउ) ही है; उसमें मूलतः कोई परिवर्तन नहीं आता। परमात्मा ने यह प्रपंच कब रचा, किसी को मालूम नहीं। विश्व के समस्त आकारों को किस समय, किस दिन, किस तिथि, किस वार, किस ऋतु या किस महीने रूपायित किया गया था, कौन जानता है! सृष्टि-निर्माण के समय को बड़े-बड़े पण्डित-विद्वान लोग नहीं जान पाए। यदि उन्होंने जाना होता तो निश्चय ही पुराणादि ग्रंथों में लिखा होता। मुस्लिम काज़ियों-मुल्लाओं को भी वह ज्ञात नहीं हो सका, अन्यथा वे क़ुरआन आदि में लिख देते। बड़े-बड़े योगी सृष्टि-आरम्भ की तिथि, वार, ऋतु या मास नहीं जान पाए। (यह सब मानवीय पहुँच से बाहर का ज्ञान है) जिस रचयिता ने सृष्टि को बनाया है, वह स्वयं ही इस रहस्य को जानता है (और कोई नहीं जान सकता)। उस प्रभु के सृजन, पोषण और संहार के रहस्यों को क्योंकर कहा जा सकता है? क्या उपमा (सालाही) दी जा सकती है? कौन उसका वर्णन कर सकता है? गुरुजी कहते हैं कि सब जन एक से एक ज्ञानवान् (सियाना) बनकर यह कथा-प्रसंग कहते हैं, किन्तु यथार्थ को जान लेने में सब अक्षम हैं। अतः (यही कहना चाहिए कि) उस महान् परमात्मा के ही किए यह महान् कार्य हो सका होगा। उसी के नाम को सब श्रेय प्राप्त है। यदि कोई अपने को जाने अर्थात् अपनी जानकारी का झूठा गुमान करे, वह निश्चय ही आगे गया सुशोभित नहीं होगा। तात्पर्य यह कि उसे परलोक में कोई शोभा नहीं मिल सकती। (वह पतनोन्मुखी होगा) ॥ २१ ॥

पाताला पाताल लख आगासा आगास ॥
ओड़क ओड़क भालि थके वेद कहनि इक वात ॥
सहस अठारह कहनि कतेबा असुलू इकु धातु ॥
लेखा होइ त लिखीऐ लेखै होइ विणासु ॥
नानक वडा आखीऐ आपे जाणै आपु ॥२२॥

(प्रभु की रचना का परिमाण खोजना भूल है। इसी संदर्भ में गुरु जी पुनः कहते हैं कि) पातालों-आकाशों की गणना सात-सात तक ही सीमित नहीं, धरती के नीचे लाखों पाताल और आकाश के ऊपर लाखों आकाश मौजूद हैं। वेदों में भी यह बात स्पष्ट है कि सृष्टि-रचना का रहस्य (खोजनेवाले) खोजकर थक गये हैं, किन्तु (उन्हें मिला नहीं)।

कतेब (मुसलमानों-ईसाइयों के धर्मग्रंथ) में सृष्टि के अठारह हजार अंग हैं, जिन सबका आरम्भ प्रभु से ही हुआ है। सृष्टि का हिसाब असम्भव है, प्राणी के लिए यह सम्भव नहीं—हिसाब करने और रहस्य जानने का प्रयास करनेवाला स्वयं मिट जाता है (सृष्टि का कोई अन्त उसके हाथ नहीं लगता)। अतः गुरु नानक कहते हैं कि उस परमात्मा (सृष्टि-रचयिता) का यशोगान करो, अपने रहस्यों को वह आप ही जानता है ॥ २२ ॥

सालाही सालाहि एती सुरति न पाईआ ॥
नदीआ अतै वाह पवहि समुंदि न जाणीअहि ॥
समुंद साह सुलतान गिरहा सेती मालु धनु ॥
कीड़ी तुलि न होवनी जे तिसु मनहु न वीसरहि ॥२३॥

(परमात्मा का यशोगान करनेवाले भी उसका अन्त तो नहीं पा सकते, किन्तु उस परम में लीन होकर उसके अभेदज्ञान को तो पा ही लेते हैं) उस गुणवान् प्रियतम प्रभु का गुण गाकर भी भक्तजन उसके परिमाण को नहीं पा सकते; वे उसमें लीन हो जाते हैं। उन भक्तों की स्थिति उन नदी-नालों जैसी होती है, जो समुद्र से मिलकर अपनी अलग सत्ता तो खो देते हैं, किन्तु समुद्र के विस्तार की जानकारी प्राप्त नहीं कर सकते। सच तो यह है कि समुद्रों के स्वामी सम्राट, जिनके पास पर्वतों सरीखी ढेरों दौलत हो, वे उस च्यूँटी के बराबर भी नहीं, जिसे परमात्मा ने अविस्मृत नहीं किया होता ॥ २३ ॥

अंतु न सिफती कहणि न अंतु । अंतु न करणै देणि न अंतु ॥
अंतु न वेखणि सुणणि न अंतु । अंतु न जापै किआ मनि मंतु ॥
अंतु न जापै कीता आकारु । अंतु न जापै पारावारु ॥
अंत कारणि केते बिललाहि । ता के अंत न पाए जाहि ॥
एहु अंतु न जाणै कोइ । बहुता कहीऐ बहुता होइ ॥
वडा साहिबु ऊचा थाउ । ऊचे उपरि ऊचा नाउ ॥
एवडु ऊचा होवै कोइ । तिसु ऊचे कउ जाणै सोइ ॥
जेवडु आपि जाणै आपि आपि । नानक नदरी करमी दाति ॥२४॥

(उपर्युक्त तथ्य को और अधिक स्पष्ट करते हुए गुरुजी कहते हैं कि) परमात्मा के गुणों का कोई अन्त नहीं, असंख्य गुण कहने पर भी परमात्मा के गुणों की समाप्ति नहीं हो जाती। प्रभु के कौतुकों का कोई अन्त नहीं, उसकी दी हुई सुविधाओं की भी कोई सीमा नहीं। देखने या सुनने में आनेवाले पदार्थों का कोई हिसाब ही नहीं। ईश्वर क्या करना चाहता

है, यह भी कभी नहीं जाना जा सकता। समूचे दृश्यमान् जगत की भी कोई अन्तिम सीमा दीख नहीं पड़ती। सृष्टि का आर-पार भी नहीं सूझता। परमात्मा का अन्त पाने के लिए कितने ही प्राणी विकल हैं, किन्तु वे असमर्थ और असफल रहे हैं। वास्तव में ईश्वर का अन्त कोई नहीं पा सकता। जितना बड़प्पन हम ईश्वर के नाम के साथ जोड़ देंगे, वह उससे और भी बड़ा प्रतीत होने लगता है। बड़प्पन ही उसका मूल गुण है, उसका वास भी ऊँचा है और उसका नाम तो उससे भी महान् है। इतने ऊँचे को वही जान सकता है, जो उसके बराबर ऊँचा उठे। (अर्थात् जो प्राणी उससे अभेद प्राप्त करके उसी का रूप हो जाय, वही उसके रहस्यों का जानकार हो सकता है) सच तो यह है कि अपने बड़प्पन को वह प्रभु स्वयं ही जानता है। उस कृपालु की कृपा-दृष्टि से उसका प्रत्येक रहस्य हस्तामलक-सम ज्ञातव्य होता है ॥ २४ ॥

बहुता करमु लिखिआ ना जाइ। वडा दाता तिलु न तमाइ ॥
केते मंगहि जोध अपार। केतिआ गणत नही वीचारु ॥
केते खपि तुटहि वेकार ॥
केते लै लै मुकरु पाहि। केते मूरख खाही खाहि ॥
केतिआ दूख भूख सद मार। एहि भि दाति तेरी दातार ॥
बंदिखलासी भाणै होइ। होरु आखि न सकै कोइ ॥
जे को खाइकु आखणि पाइ। ओहु जाणै जेतीआ मुहि खाइ॥
आपे जाणै आपे देइ। आखहि सि भि केई केइ ॥
जिसनो बखसे सिफति सालाह। नानक पातिसाही पातिसाहु ॥२५॥

(इस पद में भी गुरुजी ने बेअंत परमात्मा की असीमता को ही भिन्न पहलू से चित्रित किया है) ईश्वर की दया-दृष्टि ही इतनी अधिक है कि उसका अन्त नहीं पाया जा सकता। तात्पर्य यह कि ईश्वर की दया का उल्लेख ही सम्भव नहीं। वह सर्वप्रदाता है, उसे तिल भर भी लोभ नहीं; अर्थात् वह निस्स्वार्थ दानी है, बदले में दान-पात्र से वह कुछ नहीं चाहता। कितने ही युद्धवीर उसके आगे हाथ पसारते हैं, माँगनेवाले असंख्य हैं, उन पर विचार करना भी सम्भव नहीं। ऐसे विकृत-चित्त लोग भी अगणित हैं जो प्रभु की बख़्शीश को पापों में लगाते और बरबाद होते हैं। कितने ही लोग परमात्मा के प्रदेय को पाकर भी मुकर जाते हैं अर्थात वे परमात्मा की देन को अपनी अर्जित सम्पत्ति समझने लगते हैं। अनेक मूर्ख प्रभु की देन पर गुलछर्रे उड़ाते हैं (बदले में उसका आभार स्वीकार नहीं करते), ऐसे लोगों की भी कमी नहीं, जो सदैव दुःख और भूख की चोटें सहते रहते हैं। किन्तु हे परमात्मा, ये (दुःख-भूखादि) भी तुम्हारी ही देन हैं, (इसे

भी शिरोधार्य करना ही पड़ता है); बंधन या छुटकारा (माया का माया से) तुम्हारी इच्छा पर ही आश्रित है। इससे उलट कोई कुछ नहीं कह सकता, कोई कुछ नहीं कर सकता। यदि कोई मूर्ख रहस्योद्घाटन करने का प्रयास भी करता है, तो बस वही जानता है कि उसके मुँह पर कितने जूते पड़ते हैं (उस पर असंख्य चोटें पहुँचती हैं)। सच तो यह है कि परमात्मा स्वयं जीवों की ज़रूरतों को पहचानता और औचित्यानुसार दया-दृष्टि करता है। ऐसे यथार्थ को पहचान लेनेवाले लोग भी अगणित हैं। स्थापना यही है कि स्वयं प्रभु जिसे अपने नाम-जाप का सामर्थ्य देता है, गुरुजी कहते हैं, उसे सृष्टि के बादशाहों का भी बादशाह मान लिया जाना चाहिए ॥ २५ ॥

अमुल गुण अमुल वापार । अमुल वापारीए अमुल भंडार ॥
अमुल आवहि अमुल लै जाहि । अमुल भाइ अमुला समाहि ॥
अमुलु धरमु अमुलु दीबाणु । अमुलु तुलु अमुलु परवाणु ॥
अमुलु बखसीस अमुलु नीसाणु । अमुलु करमु अमुलु फुरमाणु ॥
अमुलो अमुलु आखिआ न जाइ । आखि आखि रहे लिव लाइ ॥
आखहि वेद पाठ पुराण । आखहि पड़े करहि वखिआण ॥
आखहि बरमे आखहि इंद । आखहि गोपी तै गोविंद ॥
आखहि ईसर आखहि सिध । आखहि केते कीते बुध ॥
आखहि दानव आखहि देव ।आखहि सुरि नर मुनि जन सेव ॥
केते आखहि आखणि पाहि । केते कहि कहि उठि उठि जाहि॥
एते कीते होरि करेहि । ता आखि न सकहि केई केइ ॥
जेवडु भावै तेवडु होइ । नानक जाणै साचा सोइ ॥
जे को आखै बोलुविगाड़ु । ता लिखीऐ सिरि गावारा गावारु ।।२६॥

(यहाँ सांसारिक उपलब्धियों के उपरांत सामाजिक और आधिभौतिक प्रदेय की चर्चा है) परमात्मा के गुण अमूल्य हैं, इन गुणों पर आचरण और भी अमूल्य है। (गुरु नानकदेवजी की एक प्रसिद्ध पंक्ति वाणी में आगे आती है— 'सचहु ओरे सभु कोइ, ऊपर सच आचार।' अर्थात् सत्य महान् है किन्तु सत्याचरण महान्तर है)। परमात्मा के गुणों का व्यापार करनेवाले भी अमूल्य हैं ही। परमात्मा से प्यार करने वाले तथा उसी में लीन हुए जीव अमूल्य हैं। ईश्वर का कानून भी अनमोल है, और उसका दरबार, जहाँ वह कानून लागू होता है, अमूल्यतर है। वे तराज़ू और बट्टे अमूल्य हैं, (जिनसे गुणों का कोष तोला जा सकता है)। प्रभु की देन तथा उसकी स्वीकृति, सब अनमोल है। परमात्मा की बख़्शीश और उसका हुकम अमूल्य है। परमात्मा का

प्रत्येक पहलू अमूल्य है, उसका वर्णन सम्भव नहीं (कि उसका क्या और कितना मोल होगा)। अनेक जीव परमात्मा के अमूल्यन का गान करते-करते उसी में लीन हो गये हैं। कुछ 'बुद्धिमान लोग' वेदों और पुराणों के माध्यम से उसका विश्लेषण करते हैं। अनेक विद्वान उस परम के वर्णन का प्रयास करते एवं दूसरों का पथ-प्रदर्शन करते हैं। परमात्मा का वर्णन असंख्य ब्रह्मा तथा इन्द्र भी करें, गोपियाँ तथा कृष्ण भी मिलकर उसकी चर्चा करें, स्वयं शिवजी तथा सिद्ध-पुरुष भी उसकी पुनर्जांच करके देखें, (किन्तु उसका मूल्य-निर्धारित नहीं किया जा सकता)। परमात्मा के द्वारा बनाए अनेक बुद्ध, दैत्य और देवता, सब उसका गुण गाते हैं। भले नैतिक लोग तथा मुनि-जन भी उसके अस्तित्व का वर्णन कर रहे हैं। अनेक जीव उसका वर्णन करते और अनेक करने का यत्न करते हैं। असंख्य लोग उसका गुणगान करके जगत से उठ जाते हैं, किन्तु यदि वह परमात्मा पूर्व-रचित सृष्टि का विस्तार द्विगुणित कर दे, तो भी कोई उसका सही वर्णन करने के योग्य नहीं हो सकेगा। परमात्मा का बड़प्पन उसकी इच्छा से बढ़ता-घटता है; गुरुजी कहते हैं कि वह परमात्मा अपने बड़प्पन का वास्तविक पारखी स्वयं ही है। यदि कोई गर्वीला व्यक्ति यह दावा करे भी कि वह परमात्मा का परिमाण जानता है तो उसे मूर्खों का भी मूर्ख (महामूर्ख) गिना जाना चाहिए॥ २६॥

सो दरु केहा सो घरु केहा जितु बहि सरब समाले॥
वाजे नाद अनेक असंखा केते वावणहारे॥
केते राग परी सिउ कहीअनि केते गावणहारे॥
गावहि तुहनो पउणु पाणी बैसंतरु गावै राजा धरमु दुआरे॥
गावहि चितुगुपतु लिखि जाणहि लिखि लिखि धरमु वीचारे॥
गावहि ईसरु बरमा देवी सोहनि सदा सवारे॥
गावहि इंद इदासणि बैठे देवतिआ दरि नाले॥
गावहि सिध समाधी अंदरि गावनि साध विचारे॥
गावनि जती सती संतोखी गावहि वीर करारे॥
गावनि पंडित पड़नि रखीसर जुगु जुगु वेदा नाले॥
गावहि मोहणीआ मनु मोहनि सुरगा मछ पइआले॥
गावनि रतन उपाए तेरे अठसठि तीरथ नाले॥
गावहि जोध महाबल सूरा गावहि खाणी चारे॥
गावहि खंड मंडल वरभंडा करि करि रखे धारे॥
सेई तुधुनो गावहि जो तुधु भावनि रते तेरे भगत रसाले॥

होरि केते गावनि से मै चिति न आवनि नानकु किआ वीचारे ॥
सोई सोई सदा सचु साहिबु साचा साची नाई ॥
है भी होसी जाइ न जासी रचना जिनि रचाई ॥
रंगी रंगी भाती करि करि जिनसी माइआ जिनि उपाई ॥
करि करि वेखै कीता आपणा जिव तिस दी वडिआई ॥
जो तिसु भावै सोई करसी हुकमु न करणा जाई ॥
सो पातिसाहु साहा पातिसाहिबु नानक रहणु रजाई ॥२७॥

(अब गुरुजी परमात्मा की महानता का दिग्दर्शन करवाने के लिए सृष्टि की सभी शक्तियों को उसके दरबार में कोर्निश करती हुई दिखाते हैं) (हे परमात्मा) वह कौन-सा घर-दर है, जहाँ बैठकर तुम समस्त (जीवों की) सम्भाल करते हो ? (वहाँ) अनेक वादनों का स्वर मुखरित है, असंख्य वादक भी वहाँ अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं। कितने ही राग अपनी परियों (रागिनियों) सहित वहाँ गाये जा रहे हैं, कितने ही गायक उन्हें गा रहे हैं। पवन, पानी, अग्नि आदि सृष्टि के मूल तत्त्व एवं धर्मराज स्वयं, सब तुम्हारे दरबार में तुम्हारा यश गाते हैं। जीवों के कर्मों का आलेख रखनेवाला चित्रगुप्त भी (हे ईश्वर) तेरा ही गुणगान करता है—उसी के कर्मालेख के अनुसार धर्मराज जीवों के (पाप-पुण्य का) विचार करता है। शिवजी, ब्रह्मा तथा देवी (भगवती) सब तुम्हारे द्वारा निर्मित हैं, तुम्हारा नाम गा रहे हैं। कई इन्द्र अपनी देव-प्रजा सहित तुम्हारा यशोगान करते हैं। सिद्ध अपनी समाधियों और साधु भगवद्कथा में तुम्हें ही खोज रहे हैं। यती, सती, संतोषी, सब प्रकार के जीव तुम्हारा विरद गाते हैं, बड़े-बड़े शूर-वीर भी तुम्हारा ध्यान लगाते हैं। विद्वज्जन, ऋषि-मुनि आदि वेदाध्ययन करते हुए भी तुम्हारा ही गुणगान करते हैं। स्वर्ग, इह एवं पाताललोकों की मोहिनी सुन्दरियाँ तुम्हारे ही नाम का गान कर रही हैं। सृष्टि के अठसठ तीर्थ एवं चौदह रत्न, सब तेरे अपने बनाए हुए हैं और वे सब तुम्हारा ही गुण गाते हैं। बली, शूर और योद्धा, सब तुम्हारा नाम लेते हैं, चारों सृष्टियाँ (अंडज, जेरज, स्वेदज तथा उत्भुज) तुम्हारा यशोगान करती हैं। समूचा ब्रह्माण्ड, उसके खण्ड-मण्डल, सब तेरी रचना है, तेरा नाम पुकारते हैं। तेरा नाम-जाप वास्तव में वे ही कर सकते हैं, जो तुम्हें स्वीकार हैं; वे तुम्हारे नाम-रस के मतवाले हैं, तुम्हारे भक्त हैं। और अनेक ऐसे गुणगायक भी होंगे, जो इस समय मेरे ध्यान में नहीं आ रहे। गुरु नानकजी कहते हैं कि उनका कहाँ तक विचार किया जाय ? वह परमपिता परमात्मा ही सत्य है, उसकी विरद भी सच है। उसका अस्तित्व है, वह भविष्य में

भी रहेगा। सृष्टि का रचयिता वह परमात्मा न कभी मरता है, न जन्म लेता है। परमात्मा ने अनेक रंगों, प्रकारों एवं वस्तुओं की रचना की है, माया भी उसी ने बनाई है। वह जीवों का निर्माण करके स्वयं ही उनको संरक्षण भी दे रहा है, यही बड़े के अनुकूल बड़प्पन है। वह वही करता है, जो उसे रुचता है। (कोई उसका प्रतिद्वन्द्वी नहीं)। वह सबका शासक है, शासकों का भी शासक है, गुरु नानकदेव कहते हैं कि उसकी आशंसा में ही रहे बनता है, (जीव उसे कदापि चुनौती नहीं दे सकता) ।। २७ ।।

[टिप्पणी : आगामी चार पद योगियों को सम्बोधन किए गये हैं। गुरुजी योगियों के चिह्नों की यथार्थता बताते हुए धर्म के सही स्वरूप को चित्रित करना चाहते हैं। यह सही है कि इन पदों में योगियों को सम्बोधित किया गया है, उनके चक्र-चिह्नों की चर्चा भी हुई है, किन्तु उपदेश सबके लिए समान है। बताया गया है कि चिह्नों में भ्रमित होने से मोक्ष-पथ नहीं मिलता; चिह्न तो प्रतीक हैं, उनके यथार्थ को समझो, वही मानव का मूल धर्म है।]

मुंदा संतोखु सरमु पतु झोली धिआन की करहि बिभूति ।।
खिथा कालु कुआरी काइआ जुगति डंडा परतीति ।।
आई पंथी सगल जमाती मनि जीतै जगु जीतु ।।
आदेसु तिसै आदेसु ।।
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु ।।२८।।

(हे योगी, योग की यथार्थ महत्ता पाने के लिए तुम) सन्तोष की मुद्राएँ धारण करो (अर्थात् कान चिरवाकर काँच की मुद्राएँ योग का बाहरी चिह्न है, वास्तविकता जीवन-संतोष में है, उसी को मुद्रा के नाते धारण करो), श्रम का खप्पर लो (अर्थात् निष्कर्म जीवन बिताने की अपेक्षा कर्मशील जीवन जिओ), प्रभु-ध्यान की विभूति लगाओ (अर्थात् शरीर पर राख मलने की अपेक्षा परमात्मा में अनुरक्ति पैदा करो), मृत्यु के नित्य स्मरण को खिथा (कफ़नी) बनाओ, शरीर को निर्मल रखो (ब्रह्मचर्य का पालन करो) और हाथ में निश्चय का दण्ड धारण करो (तात्पर्य यह कि बाहरी खिथा, दण्ड आदि की अपेक्षा मृत्यु की स्मृति, शारीरिक ब्रह्मचर्य तथा दृढ़ निश्चय को अंगीकार करो—उसी में योग का यथार्थ तत्त्व है)। समूची मानवीय चेतना को अपने समान मान लेने में ही तुम्हारा आईपंथ (योगियों का एक प्रसिद्ध सम्प्रदाय) का प्रतिनिधित्व है। इसी में मन की जीत है और मन की जीत में संसार की विजय मौजूद है। (हे योगी!) तुम्हें उसी मालिक के सम्मुख प्रणमन करना चाहिए, जो प्रणाम का (आदेसु) सही अधिकारी है। वह परमात्मा आदि है, अनादि है, अनन्त है, पावन-निर्मल है और युग-युग से वह एक ही रूप में स्थित है (वह अपरिवर्तनीय है) ।। २८ ।।

भुगति गिआनु दइआ भंडारणि घटि घटि वाजहि नाद ॥
आपि नाथु नाथी सभ जा की रिधि सिधि अवरा साद ॥
संजोगु विजोगु दुइ कार चलावहि लेखे आवहि भाग ॥
आदेसु तिसै आदेसु ॥
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु ॥२९॥

(अब गुरुजी योगियों के भंडारे की चर्चा करते हैं और कहते हैं कि भण्डारी भण्डारे की रसद लाने-बाँटने वाले सब लोग अपने-अपने स्वार्थ में लीन होते हैं। परमात्मा के भण्डारे की ओर देखो, वहीं भोजन पाओ। यदि तुम अन्तर्मुखी होकर परमात्मा की ओर वृत्ति लगा लो तो वहाँ तुम्हें) प्रभु-ज्ञान का भोजन मिलेगा। इस भोजन को परोसनेवाली भण्डारिन परमात्मा की दया है और भोजन के समय गीत-संगीत के तौर पर घट-घट में नाद ध्वनित होता है। (यह नाद-श्रवण की शक्ति नाम के परम भक्त को ही लब्ध होती है। उस भण्डार का (नाथ) स्वामी वह परमात्मा स्वयं है, उसने समूची दुनिया नाथी (नथी हुई) है। वहाँ की रिद्धि-सिद्धि का आस्वादन अलग है। (तुम्हारे द्वारा रिद्धियों-सिद्धियों की खोज मोह-माया का रूप है, परमात्मा द्वारा प्रदत्त सिद्धि जीवन का स्वाद बदल देती है।) संसार का काम-धंधा संयोग-वियोग की संवेदनाओं से चलता है (प्रभु-प्रेम ही संयोग है, माया-प्रवृत्ति ही वियोग है); एक से जीवात्मा-परमात्मा के बीच सम्बन्ध बढ़ते हैं, दूसरे से वे सम्बन्ध टूट जाते हैं। परमात्मा के उक्त भण्डार से कर्मानुसार सब जीवों को उनका उपयुक्त प्राप्य मिलता है। (अतः हे योगी!) तुम्हें उसी मालिक के सम्मुख प्रणमन करना चाहिए, जो प्रणाम का (आदेस का) सही अधिकारी है। वह परमात्मा आदि है, अनादि है, अनन्त है, पावन-निर्मल है और युग-युग से वह एक ही रूप में विद्यमान है (वह अपरिवर्तनीय है) ॥ २९ ॥

एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु ॥
इकु संसारी इकु भंडारी इकु लाए दीबाणु ॥
जिव तिसु भावै तिवै चलावै जिव होवै फुरमाणु ॥
ओहु वेखै ओना नदरि न आवै बहुता एहु विडाणु ॥
आदेसु तिसै आदेसु ॥
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु ॥३०॥

(यह विचार सामान्यतः सब जगह मान्य है कि) ब्रह्म तथा माया (अर्थात् शिव और शक्ति) का मिलन होने से माया युक्ति-विशेष से प्रस्विनी हुई और उसने तीन पुत्रों को जन्म दिया। (उनमें से) एक

संसारी अर्थात् संसार को रचनेवाला (ब्रह्मा) हुआ, एक भण्डारी अर्थात् संसार का पालन करनेवाला (विष्णु) एवं तीसरा संहार की अदालत लगाने और मृत्यु का हुकुम देनेवाला (शिव) हुआ। (तात्पर्य यह कि शिव और शक्ति या चेतन और प्रकृति के मेल से संसार को ऐसा यांत्रिक चलन दे दिया गया कि वह बनता, फैलता और मिटता रहे।) यह सब उसी पूर्णब्रह्म अकाल पुरुष की इच्छा से ही होता है (शिव-शक्ति स्वतन्त्र तत्त्व नहीं है), वही सब प्रकार की आज्ञाएँ देता है। आश्चर्य तो यह है कि परमात्मा (वाहिगुरु स्वयं सब कुछ करनेवाला है) सबको देखता है, सब जीवों की सम्भाल करता है, किन्तु उसे कोई नहीं देख पाता। (कारण शायद यह है कि सांसारिक जीव शिव-शक्ति तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश की रंगीन मायावी प्रक्रिया में खो जाते हैं, उसके पीछे के सशक्त अवलम्ब को भूल बैठते हैं।) (अतः हे योगियो!) तुम्हें उसी मालिक का प्रणमन करना चाहिए, जो प्रणाम का (आदेस का) सही अधिकारी है। वह परमात्मा आदि है, अनादि है, अनन्त है, पावन-निर्मल है और युग-युग से वह एक रूप में विद्यमान है-- (सदैव अपरिवर्तनीय है।) ॥ ३० ॥

आसणु लोइ लोइ भंडार, जो किछु पाइआ सु एका वार ॥
करि करि वेखै सिरजणहारु, नानक सचे की साची कार ॥
आदेसु तिसै आदेसु ॥
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु ॥३१॥

उस परमात्मा का निवास सब लोकों (सब जगह) में है, (किसी विशेष स्थान बैकुण्ठादि में नहीं) और सब लोकों में ही उसका भण्डारा है (अर्थात् सब जगह वह सबका पालनकर्ता है, सबको भोजन देता है)। इन भंडारों में उसने जो संग्रह करना था, वह एक ही बार कर दिया है (अर्थात् उसके भंडार अखुट हैं)। (पुनः) वह सृष्टि का निरन्तर निर्माण करता एवं जीवों की सदैव सम्भाल करता है। वही एकमात्र सत्य है और सत्य की रचना होने के कारण उसकी बनाई सृष्टि भी सत्य ही है। (अतः हे योगियो!) तुम्हें उस सत्यस्वरूप परमात्मा का प्रणमन करना चाहिए, वही प्रणाम (आदेस) का सच्चा अधिकारी है। वह प्रभु आदि-अनादि-अनन्त है, पावन-निर्मल है और युग-युग से वह एक रूप में विद्यमान है (सदैव अपरिवर्तनीय है) ॥ ३१ ॥

इकदू जीभौ लख होहि लख होवहि लख वीस ॥
लखु लखु गेड़ा आखीअहि एकु नामु जगदीस ॥
एतु राहि पति पवड़ीआ चड़ीऐ होइ इकीस ॥

सुणि गला आकास की कीटा आई रीस ॥
नानक नदरी पाईऐ कूड़ी कूड़ै ठीस ॥३२॥

(ऊपर कहा जा चुका है कि नाम-जाप सर्वोत्तम धर्म है, यहाँ नाम का स्वरूप स्पष्ट करते हुए गुरुजी कहते हैं कि) यदि एक जिह्वा से लाख जिह्वाएँ हो जायँ, लाख की भी बीस गुणा हों और प्रत्येक जिह्वा से उस परमात्मा के नाम की लाख-लाख रट लगाई जाय अर्थात् निरन्तर प्रत्येक जिह्वा से नाम का स्मरण किया जाय—तभी पति (प्रभु) को मिला जा सकता है। नाम-स्मरण परमात्मा को मिलने की सीढ़ी है, इस पर चढ़ने के लिए एक-मात्र उसी का सहारा लेना होता है (अर्थात् समर्पणात्मक दृष्टि से ही प्रभु-पथ पर चलना सम्भव है।) यों तो परमात्मा की ऊँची बातें सुनकर नीच जीवों (कीटों) को भी उस तक पहुँचने की इच्छा प्रबल होती है, वे भी चाहते हैं कि परमात्मा को प्राप्त कर सकें, किन्तु उसकी प्राप्ति उसी की कृपा से सम्भव है। (यह कृपा केवल समर्पित जीवों पर ही होती है), झूठे लोगों के झूठे दावे अनाधारित हैं— वे सही अर्थों में परमार्थी नहीं होते ॥ ३२ ॥

आखणि जोरु चुपै नह जोरु । जोरु न मंगणि देणि न जोरु ॥
जोरु न जीवणि मरणि नह जोरु । जोरु न राजि मालि मनि सोरु ॥
जोरु न सुरती गिआनि वीचारि । जोरु न जुगती छुटै संसारु ॥
जिसु हथि जोरु करि वेखै सोइ । नानक उतमु नीचु न कोइ ॥३३॥

(अब गुरुजी बताते हैं कि परमात्मा की इच्छा के बिना कुछ भी सम्भव नहीं—मानवी सामर्थ्य परमात्मा की इच्छा के सम्मुख शून्य है।) बोलने या चुप रहने में किसी का ज़ोर (बल) नहीं, अर्थात् अपनी इच्छा से तो कोई बोल भी नहीं सकता, न ही चुप रह सकता है। मांगने या देने में भी किसी का वश नहीं, न ही अपने सामर्थ्य से कोई जी या मर सकता है। सम्पन्नता-समृद्धि (राज-माल) की प्राप्ति या विनाश में किसी का ज़ोर नहीं, बेकार ही मनुष्य इसे पाकर अभिमान करता है। ऊँचे विचार, विवेक और ज्ञान को पाने या उनमें रहने का भी निजी सामर्थ्य नहीं। इस संसार से मुक्त होने की युक्ति पा जाने में भी अपना वश नहीं। ज़ोर, वश, सामर्थ्य या बल केवल उस परमात्मा का ही है, और वही सृष्टि-निर्माण करके जीवों की सम्भाल भी कर रहा है। गुरु नानकदेव कहते हैं कि अपने से तो कोई भी उत्तम या नीच, कुछ भी नहीं बन सकता। (अर्थात् उसकी कृपा हो जाय तो नीच भी उत्तम बन सकता है, उपेक्षा हो जाय तो उत्तम भी नीचतम हो जाता है) ॥ ३३ ॥

राती रुती थिती वार । पवण पाणी अगनी पाताल ।।
तिसु विचि धरती थापि । रखी धरमसाल ।।
तिसु विचि जीअ जुगति के रंग । तिन के नाम अनेक अनंत ।।
करमी करमी होइ वीचारु । सचा आपि सचा दरबारु ।।
तिथै सोहनि पंच परवाणु । नदरी करमि पवै नीसाणु ।।
कच पकाई ओथै पाइ । नानक गइआ जापै जाइ ।।३४।।

[यहाँ से आगे ३४-३८ पदों में आत्मा के परमात्मा के लोक— सत्लोक— तक पहुँचने के पाँच पड़ावों का चित्रण है । इन पड़ावों को गुरुजी ने खण्ड कहा है । नाम, नीचे से ऊपर, इस प्रकार हैं— धरमखंड, ज्ञानखंड, सरमखंड, करमखंड तथा सचखंड । आत्मा परमात्मा के प्रति समर्पिता होकर उसी का नाम स्मरण करते हुए धरम (धर्म) खंड से सचखण्ड तक की यात्रा पूर्ण करती और वहाँ परमात्मा में लीन हो जाती है ।]

रात-दिन, ऋतुओं, तिथियों, वारों आदि, एवं हवा, पानी, अग्नि, पाताल आदि के बीच परमेश्वर ने धरती को स्थापित किया है, जो जीव के लिए कर्तव्य-पालन का स्थान है । तात्पर्य यह कि भौतिक नियमों में बद्ध धरती जीव के लिए कर्तव्य-लोक है; उसे यहाँ रहते धर्म-पालन करना होता है (यह पहला खण्ड अर्थात् धर्मखण्ड है) । इस धरती पर अनेक प्रकार-भेद के जीव हैं, उन जीवों के असंख्य नाम हैं और जो कर्म वे जीव इस धर्मलोक में कमाते हैं, उन्हीं के अनुसार प्रभु के दरबार में उन्हें दण्ड या पुरस्कार मिलता है । परमेश्वर सत्यस्वरूप है, इसलिए उसका दरबार भी सत्य है (जहाँ उचित न्याय होता है) । (प्रभु के दरबार में) वहाँ सन्तजन ही समादृत होते हैं, उनका समादर भी प्रभु-कृपा से ही होता है । इसी खण्ड पर जीवों के (कर्मानुसार) कच्चे या पक्के (सद्‌गुणी या निर्गुणी) होने की परख होती है । गुरु नानकजी कहते हैं कि कच्ची-पक्की स्थिति का पता वहाँ पहुँच कर ही लगता है ।। ३४ ।।

धरम खंड का एहो धरमु । गिआन खंड का आखहु करमु ।।
केते पवण पाणी वैसंतर केते कान महेस ।।
केते बरमे घाड़ति घड़ीअहि रूप रंग के वेस ।।
केतीआ करम भूमी मेर केते केते धू उपदेस ।।
केते इंद चंद सूर केते केते मंडल देस ।।
केते सिध बुध नाथ केते केते देवी वेस ।।
केते देव दानव मुनि केते केते रतन समुंद ।।

केतीआ खाणी केतीआ बाणी केते पात नरिंद ॥
केतीआ सुरती सेवक केते नानक अंतु न अंतु ॥३५॥

'धर्मखंड' यही नियम है (जो ऊपर बताया गया है, अर्थात् गुण-वृद्धि), अब ज्ञान-खंड का वर्णन कहते हैं। (इस खंड में पहुँचकर अर्थात् ज्ञानावस्था को प्राप्त करके ही पता चलता है कि) पवन, पानी, अग्नि के भी असंख्य रूप हैं, कृष्ण और शिव भी अनेक हैं। परमात्मा कितने ही अलग-अलग रंग, रूप और वेश के ब्रह्मा बना रहा है। कर्म कमाने की धरतिओं (कर्मक्षेत्रों) की संख्या भी निश्चित नहीं, कितने ही सुमेरु पर्वत हैं, कितने ही ध्रुव-भक्त तथा उनके उपदेश हैं। कितने ही चन्द्र, इन्द्र और सूर्य हैं, कितने ही खंड-मंडल और देश हैं; सिद्धों, बुद्धों, नाथों की संख्या नहीं, अनेक तो देवी के ही रूप हैं (दुर्गा, चण्डी, काली, लक्ष्मी, सरस्वती, भगवती आदि)। अनेक देव, दैत्य और ऋषि-मुनि हैं; कितने ही समुद्र हैं और (समुद्र से निकलनेवाले) कितने ही रत्न भी हैं। अनेक लोक-मण्डल हैं, अनेक वाणियाँ हैं, असंख्य शासक हैं। कितने ही तत्त्वों का ध्यान किया जाता है, कितने ही ध्यानस्थ सेवक हैं। गुरु जी कहते हैं कि इन सब का कोई अन्त नहीं (इस अनन्तता का पता ज्ञान-खंड में पहुँचकर ही चलता है, तभी जीव ज्ञानवान् होता है) ॥ ३५ ॥

गिआन खंड महि गिआनु परचंडु। तिथै नाद विनोद कोड अनंदु॥
सरम खंड की बाणी रूपु। तिथै घाड़ति घड़ीऐ बहुतु अनूपु॥
ता कीआ गला कथीआ ना जाहि। जे को कहै पिछै पछुताइ॥
तिथै घड़ीऐ सुरति मति मनि बुधि।
तिथै घड़ीऐ सुरा सिधा की सुधि ॥३६॥

'ज्ञानखंड' में ज्ञान ही प्रचंड होता है, किन्तु इस अवस्था में राग-रंग, कौतुक-चमत्कार आदि से लब्ध आनन्द का अस्तित्व बना रहता है। सरमखंड (श्रमखंड) की रचना सौंदर्यात्मक है। इस खंड के निर्माण में (जीव का सौंदर्य बढ़ता है, कर्मशील होने से वह सुयोग्य बनता है) सुन्दरता का विशेष स्थान है। उस अवस्था की बातों का वर्णन सम्भव नहीं। (यदि) कोई वर्णन का प्रयत्न करेगा, उसे बाद में पश्चाताप करना होगा (अर्थात् यह अनिर्वचनीय स्थिति है)। यहाँ मन और बुद्धि, चित्त और आत्मा विशिष्ट स्तर पर एक हो जाते हैं तथा जीव को देवताओं अथवा सिद्धों सरीखी पावन सूझ प्राप्त होती है। (वास्तव में तीसरा पड़ाव 'श्रमखंड' है। गुरुजी की दृष्टि में कर्तव्यपालन तथा ज्ञानोदय के उपरांत जीव को परिश्रम से प्रभु का साक्षात् करना होता है—यहाँ श्रम से तात्पर्य समर्पण और अनथक नाम-स्मरण है) ॥ ३६ ॥

करम खंड की बाणी जोरु । तिथै होरु न कोई होरु ॥
तिथै जोध महा बल सूर । तिन महि रामु रहिआ भरपूर ॥
तिथै सीतो सीता महिमा माहि । ताके रूप न कथने जाहि ॥
ना ओहि मरहि न ठागे जाहि । जिन कै रामु वसै मन माहि ॥
तिथै भगत वसहि के लोअ । करहि अनंदु सचा मनि सोइ ॥
सच खंडि वसै निरंकारु । करि करि वेखै नदरि निहाल ॥
तिथै खंड मंडल वरभंड । जे को कथै त अंत न अंत ॥
तिथै लोअ लोअ आकार । जिव जिव हुकमु तिवै तिव कार ॥
वेखै विगसै करि वीचारु । नानक कथना करड़ा सारु ॥३७॥

[चौथी मंज़िल 'करमखंड' है, जहाँ सच्चे सेवक पर परमात्मा का करम (कृपा) होता है और वह ज्ञानी होने के साथ-साथ पराभक्ति (प्रपत्ति-भाव) ग्रहण करता है। ऐसा ज्ञानी-भक्त ही नाम-स्मरण द्वारा पाँचवीं मंज़िल अर्थात् 'सचखण्ड' में प्रवेश का अधिकारी बनता है।]

'करमखण्ड' की रचना आत्म-बल से हुई है (अर्थात् ईश्वर-कृपा पाकर जीव में आत्मबल बढ़ जाता है)। इस स्थिति में हर रंग में परमात्मा ही परमात्मा दृश्यमान् होता है (अर्थात् प्रभु-कृपा होने से जीव प्रभुमय हो जाता है, जिधर भी उसकी दृष्टि उठती है, उसे प्रभु-दर्शन होता है)। इस स्थिति की प्राप्ति आत्मबल वाले शूरवीरों और योद्धाओं को होती है, जिनके भीतर स्वयं राम (परमात्मा) भरपूर समाया रहता है। वहाँ व्याप्त राम की महिमा में सीता ही सीता (दाम्पत्य-भावी भक्तः समर्पित भक्त) होती हैं। ऐसी सीताओं (भक्तों) की आध्यात्मिक सुन्दरता का वर्णन नहीं किया जा सकता। जिनके मन में राम बस जाता है वे अमर और निर्भ्रम हो जाते हैं। करमखंड में वे पावन भक्तजन निवसित हैं, जो हृदयासन पर परमात्मा को आसीन कर सदैव आनन्द-मग्न रहते हैं। इस (करमखंड) से आगे 'सचखंड' है, जिसमें परमात्मा स्वयं रहता है। वह परमात्मा सृष्टि करता और अतीव कोमल कृपा-दृष्टि से सदैव उसे देखता है। प्रभु की रचना के अनेक खंड, मंडल, ब्रह्माण्ड उस अवस्था में भी मौजूद हैं, उनके वर्णन के प्रयास में भी उनका अन्त नहीं मिलता। (अर्थात् वे भी अनन्त हैं)। वहाँ अनेक लोक और अनेक आकार हैं; निरंकार के हुकुम के अनुसार ही वहाँ सब नियमित और नियन्त्रित है। स्वयं परब्रह्म उन समर्पित भक्तों के कर्मलेख पर विचार करता, उन्हें आत्मलीन करता एवं प्रसन्न होता है। गुरु नानक कहते हैं कि इस (परम) अवस्था का चित्रण कर सकना लोहे के चने चबाने के समान है (लोहे की तरह कठिन है)॥ ३७ ॥

जतु पाहारा धीरजु सुनिआरु । अहरणि मति वेदु हथीआरु ॥
भउ खला अगनि तपताउ । भांडा भाउ अंम्रितु तितु ढालि ॥
घड़ीऐ सबदु सची टकसाल । जिन कउ नदरि करमु तिन कार ॥
नानक नदरी नदरि निहाल ॥३८॥

(ऊपर जिस उच्चावस्था का आध्यात्मिक चित्रण हुआ है, वहाँ पहुँचने के लिए निर्मल आचरण की आवश्यकता होती है। उसी आचरण को पाकर जीव नाम-स्मरण करता और उस अवस्था को प्राप्त होता है, जहाँ सच्ची वाणी का स्फोट होता है। यहाँ उक्त निर्मल आचरण की प्राप्ति का नुस्खा बताया जा रहा है—जैसे सुनार स्वर्ण को भट्ठी पर चढ़ाता और उसे ठोक-पीटकर शुद्ध करता है, वैसे ही जिज्ञासु जीव को आचरण के शुद्धिकरण की प्रक्रिया करनी पड़ती है)

यतीत्व (इन्द्रिय-निग्रह) की भट्ठी हो, धैर्य का सुनार हो, बुद्धि की अहरण हो, ज्ञान का हथौड़ा हो, प्रेम की कुठाली हो और इस कुठाली में अमृतमय नाम को गलाया जाय तो उसी सच्ची टकसाल में शब्द (सच्ची वाणी) का स्फोट होता है। [तात्पर्य यह कि यदि जीव इन्द्रिय-निग्रह, धैर्य, विवेक, ज्ञान और प्रेम को मन में बसाकर सद्भावपूर्ण ढंग से नाम का जाप करे, तो वह अनाहत शब्द (नाद) की लहरियों को पकड़कर नामी (परमात्मा) को पा सकता है]। जिन जीवों पर प्रभु की कृपा-दृष्टि होती है, वे ही ये कार्य कर सकते हैं (यह साधन उन्हीं के लिए सम्भव है)। गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि ऐसे जीव परमात्मा की दया-दृष्टि से निहाल हो जाते हैं (अर्थात् वे प्रभु में ही लीन हो जाते हैं) ॥ ३८ ॥

॥ सलोकु ॥ पवणु गुरू पाणी पिता माता धरति महतु ॥
दिवसु राति दुइ दाई दाइआ खेलै सगल जगतु ॥
चंगिआईआ बुरिआईआ वाचै धरमु हदूरि ॥
करमी आपो आपणी के नेड़ै के दूरि ॥
जिनी नामु धिआइआ गए मसकति घालि ॥
नानक ते मुख उजले केती छुटी नालि ॥१॥

(जपुजी साहब के इस अन्तिम श्लोक में गुरुजी ने मानव-जीवन के अस्तित्व, स्थिति और स्वरूप को एक सुन्दर रूपक द्वारा समझाया है। मानव-जीवन का यथार्थ लक्ष्य क्या है और उसकी उपलब्धि क्योंकर हो सकती है, यह भी इस श्लोक में स्पष्ट किया गया है)। सांसारिक जीवों के लिए पवन गुरु है, पानी पिता है तथा धरती माँ है (गुरु का कार्य

मार्गदर्शन कराना है, पवन शरीर को चलाता है, इसलिए गुरु है। पानी जनक है, उसीके प्रवेश से धरती से वनस्पतियाँ फूटती हैं; धरती जननी है)। दिन और रात, दोनों इन जीवों को खेल-खिलानेवाले सेवक-सेविका हैं (अर्थात् सब जीव रात-दिन की गोद में खेलते या कार्य-रत रहते हैं)। परलोक में परमात्मा के सम्मुख धर्मराज इन जीवों का कर्मालेख जाँचता है और अपने-अपने कर्मों के अनुसार कई जीव प्रभु-नैकट्य पा लेते हैं और कई उससे दूर भी हट जाते हैं। गुरुनानक कहते हैं कि सत्कर्मी जीव प्रभु की शरण में विलीन हो जाते हैं; (इतना ही नहीं) बहुत-से दूसरे जीव भी इन मुक्तात्माओं से जुड़कर (मोह-माया के बंधनों से) छूट जाते हैं॥ १ ॥

सो दरु रागु आसा महला १

१ ओं सतिगुर प्रसादि।

॥ सो दरु तेरा केहा सो घरु केहा जितु बहि सरब समाले। वाजे तेरे नाद अनेक असंखा केते तेरे वावणहारे। केते तेरे राग परी सिउ कहीअहि केते तेरे गावणहारे। गावनि तुधनो पवणु पाणी बैसंतरु गावै राजा धरमु दुआरे। गावनि तुधनो चितु गुपतु लिखि जाणनि लिखि लिखि धरमु बीचारे। गावनि तुधनो ईसरु ब्रहमा देवी सोहनि तेरे सदा सवारे। गावनि तुधनो इंद्र इंद्रासणि बैठे देवतिआ दरि नाले। गावनि तुधनो सिध समाधी अंदरि गावनि तुधनो साध बीचारे। गावनि तुधनो जती सती संतोखी गावनि तुधनो वीर करारे। गावनि तुधनो पंडित पड़नि रखीसुर जुगु जुगु वेदा नाले। गावनि तुधनो मोहणीआ मनु मोहनि सुरगु मछु पइआले। गावनि तुधनो रतन उपाए तेरे अठसठि तीरथ नाले। गावनि तुधनो जोध महाबल सूरा गावनि तुधनो खाणी चारे। गावनि तुधनो खंड मंडल ब्रहमंडा करि करि रखे तेरे धारे। सेई तुधनो गावनि जो तुधु भावनि रते तेरे भगत रसाले। होरि केते तुधनो गावनि से मै चिति न आवनि नानकु किआ बीचारे। सोई सोई सदा सचु साहिबु साचा साची नाई। है भी होसी जाइ न जासी रचना जिनि रचाई। रंगी रंगी भाती करि करि जिनसी माइआ जिनि उपाई। करि करि देखै

कीता आपणा जिउ तिस दी वडिआई । जो तिसु भावै सोई करसी फिरि हुकमु न करणा जाई । सो पातिसाहु साहा पतिसाहिबु नानक रहणु रजाई ॥ १ ॥

[यह सम्पूर्ण पद 'जपुजी' के २७वें पद के रूप में पृष्ठ ५३-५४ पर व्याख्यायित हो चुका है, कृपया वहाँ देखिए ।] ['सोदरु' वाणी का नाम है ।]

॥ आसा महला १ ॥ सुणि वडा आखै सभु कोइ । केवडु वडा डीठा होइ । कीमति पाइ न कहिआ जाइ । कहणै वाले तेरे रहे समाइ ॥ १ ॥ वडे मेरे साहिबा गहिर गंभीरा गुणी गहीरा । कोइ न जाणै तेरा केता केवडु चीरा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सभि सुरती मिलि सुरति कमाई । सभ कीमति मिलि कीमति पाई । गिआनी धिआनी गुर गुरहाई । कहणु न जाई तेरी तिलु वडिआई ॥ २ ॥ सभि सत सभि तप सभि चंगिआईआ । सिधा पुरखा कीआ वडिआईआ । तुधु विणु सिधी किनै न पाईआ । करमि मिलै नाही ठाकि रहाईआ ॥ ३ ॥ आखण वाला किआ वेचारा । सिफती भरे तेरे भंडारा । जिसु तू देहि तिसै किआ चारा । नानक सचु सवारणहारा ॥ ४ ॥ २ ॥

उसका नाम सुन-सुनकर सब उसे (परमात्मा) को महान कहते हैं। किन्तु वह कितना महान है, (यह तो वही बता सकेगा), जिसने (उसे) देखा होगा ! हे परमेश्वर, कोई तुम्हारा मोल नहीं जानता और न उसका कथन ही कर सकता है । जो तुम्हारा बड़प्पन बता सकने में समर्थ होते हैं (अर्थात् जो तुम्हें साक्षात् कर लेते हैं), वे तुम्हीं में लीन हो जाते हैं। हे मेरे महान प्रभु, हे गहन-गम्भीर, हे गुणों के अथाह कोष; कोई नहीं जानता कि तुम्हारा कितना विशाल विस्तार है (तुम कितने व्यापक हो) । आध्यात्मिक शक्ति-सम्पन्न महापुरुषों ने (तुम्हारा अन्त खोजने के लिए) समाधियाँ लगाईं; बड़े-बड़े सौदागरों (मोल डालनेवालों) ने मिलकर तुम्हारी कीमत लगाने का प्रयास किया; ज्ञानी, ध्यानी, गुरु और गुरुओं के भी गुरु यह प्रयत्न करते रहे, किन्तु तुम्हारी महानता का तिल-भर भी वे अनुमान नहीं कर सके । सतत्त्व, तपस्या, श्रेष्ठता, सिद्ध लोगों की प्राप्तियाँ, इन सबके होते हुए भी, तुम्हारी कृपा के बिना किसी को सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकी । (यदि तुम्हारी कृपा हो जाय) तो कोई राह रोक नहीं सकता । (तुम्हारे गुणों का) कथन करनेवाले बेचारे की क्या बिसात ? तुम्हारे गुणों के तो भण्डार भरे हैं । जिसे तुम (उन गुणों में से) थोड़ा भी प्रदान कर दो, उसे फिर किसी अन्य सहारे की अपेक्षा नहीं रह

जाती। गुरु नानक कहते हैं कि वह गुण ही (जीव को) सँवारनेवाला है ॥ २ ॥

॥ आसा महला १ ॥ आखा जीवा विसरै मरि जाउ। आखणि अउखा साचा नाउ। साचे नाम की लागै भूख। उतु भूखै खाइ चलीअहि दूख ॥ १ ॥ सो किउ विसरै मेरी माइ। साचा साहिबु साचै नाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ साचे नाम की तिलु वडिआई। आखि थके कीमति नही पाई। जे सभि मिलि कै आखण पाहि। वडा न होवै घाटि न जाइ ॥ २ ॥ ना ओहु मरै न होवै सोगु। देदा रहै न चूकै भोगु। गुणु एहो होरु नाही कोइ। ना को होआ ना को होइ ॥ ३ ॥ जेवडु आपि तेवड तेरी दाति। जिनि दिनु करि कै कीती राति। खसमु विसारहि ते कमजाति। नानक नावै बाझु सनाति ॥ ४ ॥ ३ ॥

जब तक मैं (तेरे नाम का) कथन करता हूँ, जीवित हूँ (वही जीवन है), (तेरा नाम) विस्मृत करने में ही मृत्यु निहित है। किन्तु सच्चे नाम का कथन बड़ा कठिन है। जीव को जब सच्चे नाम की भूख लगती है, और वह उस भूख में (नाम का) भोजन करता है, तो उसके सब दुःख निवृत्त हो जाते हैं। अत;, हे माँ, जीव को वह सच्चा नाम कभी विस्मृत नहीं होना चाहिए, उसी नाम से तो परमात्मा प्राप्त होता है। सच तो यह कि सब कथन कर-करके थक गये, किन्तु वे सच्चे नाम की तिल-भर भी महिमा नहीं पा सके। यदि समस्त जीव मिलकर भी उसका महात्म्य कहने लगें, तो वह बड़ा नहीं बन जाता, (और यदि न कहें तो) वह छोटा भी नहीं होता। उसका कोई अन्त नहीं (वह अनन्त-अमर है), (उसके सेवकों को) कभी (उसकी मृत्यु का) शोक नहीं होता। वह महान् दानेश्वर है, उसकी दान-शक्ति कभी नहीं चूकती। उसकी यही विशेषता है कि उसके समान और कोई नहीं, न हुआ है, न भविष्य में होगा। जितना महान् वह परमात्मा है, उतनी ही महान् उसकी बख्शीश है। यह रात और दिन उसी के द्वारा निर्मित है। जो जीव ऐसे परमात्मा (पति) को भुला देते हैं, वे नीच हैं। गुरुजी कहते हैं कि नाम से विमुख जीव अपावन होते हैं ॥ ३ ॥

॥ राग गूजरी महला ४ ॥ हरि के जन सतिगुर सतपुरखा बिनउ करउ गुर पासि। हम कीरे किरम सतिगुर सरणाई करि दइआ नामु परगासि ॥ १ ॥ मेरे मीत गुरदेव मोकउ राम नामु परगासि ॥ १ ॥ गुरमति नामु मेरा प्रान सखाई हरि कीरति

हमरी रहरासि ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हरिजन के वड भाग वडेरे जिन हरि हरि सरधा हरि पिआस । हरि हरि नामु मिलै त्रिपतासहि मिलि संगति गुण परगासि ॥ २ ॥ जिन हरि हरि हरिरसु नामु न पाइआ ते भागहीण जम पासि । जो सतिगुर सरणि संगति नही आए ध्रिगु जीवे ध्रिगु जीवासि ॥ ३ ॥ जिन हरिजन सतिगुर संगति पाई तिन धुरि मसतकि लिखिआ लिखासि । धनु धंनु सतसंगति जितु हरिरसु पाइआ मिलि जन नानक नामु परगासि ॥ ४ ॥ ४ ॥

हे सतिगुरु, हे सतिपुरुष पूर्णगुरु (हरि-जन), मेरी (आपके चरणों में) यह विनती है कि मैं नीच कीट के समान हूँ, तुम्हारी शरण में हूँ, कृपा करके मेरे अन्तःकरण में नाम का आलोक प्रदान करो। हे मेरे सच्चे सखा गुरुदेव, मुझे उस हरिनाम का आलोक दरकार है, जो गुरु के मतानुसार हो। वही मेरे प्राणों का सही अवलम्ब है, उस परमात्मा का गुणगान ही मेरे जीवन की दिनचर्या है। (मैंने तो यही जाना है कि) जो जीव हरि में श्रद्धा रखते हैं और जिन्हें हरिनाम की ही प्यास है, उन हरिजनों का अहोभाग्य है। वही हरिनाम मुझे भी प्रदान कीजिए, ताकि मेरी तृप्ति हो और मैं भी सतिसंगत में मिलकर उस परमात्मा के गुणों का प्रकाश (हृदय में धारण कर सकूँ)। जिन जीवों को परमात्मा के नाम का सच्चा रस उपलब्ध नहीं हुआ, वे भाग्यहीन हैं और यम के पंजों में (रह रहे) हैं। जो सतिगुरु की शरण में नहीं आए, उनके जीवन पर धिक् है, उनका भावी जीवन भी व्यर्थ है। जिन श्रद्धालुओं ने सतिगुरु की शरण पा ली है, उनके भाग्य में शुरू से ही (कृपा का) लेख मौजूद है। वे जीव धन्य हैं जिन्होंने हरिजनों का दामन थामकर हरि-रस को पा लिया है। गुरु नानक कहते हैं कि जो जन (हरि के सम्मुख समर्पित होते हैं), उन्हें नाम का आलोक प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

॥ रागु गूजरी महला ५ ॥ काहे रे मन चितवहि उदमु जा आहरि हरि जीउ परिआ । सैल पथर महि जंत उपाए ता का रिजकु आगै करि धरिआ ॥ १ ॥ मेरे माधउ जी सतसंगति मिले सु तरिआ । गुर परसादि परमपदु पाइआ सूके कासट हरिआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जननि पिता लोक सुत बनिता कोइ न किस की धरिआ । सिरि सिरि रिजकु संबाहे ठाकुरु काहे मन भउ करिआ ॥ २ ॥ ऊडे ऊडि आवै सै कोसा तिसु पाछै बचरे छरिआ । तिन कवणु खलावै कवणु चुगावै मन महि

सिमरनु करिआ ।। ३ ।। सभि निधान दसअसट सिधान ठाकुर करतल धरिआ । जन नानक बलि बलि सद बलि जाईऐ तेरा अंतु न पारावरिआ ।। ४ ।। ५ ।।

हे मन (हे जीव), तू क्यों चिन्ता करता है (अपने जीवन के यत्नों में क्यों लीन है ?) इसके प्रबन्ध में तो स्वयं परमात्मा संलग्न है। (अर्थात् जब परमात्मा सबके लिये, भाव तुम्हारे लिये भी, सब प्रबन्ध कर रहा है, तो तू क्यों यत्नों की चिन्ता करता है ?) उस परमात्मा ने तो पत्थर में रहनेवाले जीव के लिये भी भोजन दिया है। हे मेरे माधव (परमेश्वर), मुझे तो सतिसंगत प्रदान करो, उसी में मोक्ष है। जिसे गुरु की कृपा से परम-पद लब्ध हुआ है (जिसे नाम-रहस्य ज्ञात हो गया है), वह तो (समझो कि) सूखी लकड़ी से हरा-भरा (पेड़) हो गया है। (तात्पर्य यह कि परम-पद प्राप्त करनेवालों के पाप धुल जाते हैं और वे पावन-आत्मा हो जाते हैं।)। संसार में माता, पिता, पुत्र, पत्नी, कोई किसी का सहारा नहीं बनता। वह परमात्मा ही सबको भोजन पहुँचाता है, इसलिए (हे मन) तू क्यों भय करता है। (अब यहाँ कूंज पक्षी का दृष्टांत देते हैं) उड़-उड़कर सैंकड़ों कोस वे (कूँजें) आगे निकल जाती हैं, बच्चे पीछे छोड़ आती हैं। कभी तुमने सोचा है कि उन्हें (पीछे) कौन खिलाता-पिलाता है ! वह ठाकुर (परमात्मा) ही नौनिधियाँ, अठारह सिद्धियों को देनेवाला है। गुरुजी कहते हैं, इसीलिए उस परब्रह्म के हम बलिहार हैं, उसकी महानता का कोई अन्त नहीं (अर्थात् उसकी व्यापकता या विस्तार हमारी कल्पना से बहुत बड़ा है) ।। ५ ।।

[नौ निधियाँ : पद्म, महापद्म, संख, मकर, कच्छप, कुन्द, नील, मुकुन्द, खरब]
[अठारह सिद्धियाँ : अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्रकाम्य, ईशिता, वशिता, अनूरमि, दूर-श्रवण, दूर-दर्शन, मनोवेग, कामरूप, परकाय प्रवेश, स्वेच्छ मृत्यु, सुरक्रीड़ा, संकल्प सिद्धि, अप्रतिहत-गति]

रागु आसा महला ४ सो पुरखु

१ ओं सतिगुर प्रसादि । सो पुरखु निरंजनु हरि पुरखु निरंजनु हरि अगमा अगम अपारा । सभि धिआवहि सभि धिआवहि तुधु जी हरि सचे सिरजणहारा । सभि जीअ तुमारे जी तूं जीआ का दातारा । हरि धिआवहु संतहु जी सभि दूख विसारणहारा । हरि आपे ठाकुरु हरि आपे सेवकु जी किआ नानक जंत विचारा ।। १ ।। तूं घट घट अंतरि

सरब निरंतरि जी हरि एको पुरखु समाणा। इकि दाते इकि भेखारी जी सभि तेरे चोज विडाणा। तूं आपे दाता आपे भुगता जी हउ तुधु बिनु अवरु न जाणा। तूं पारब्रहमु बेअंतु बेअंतु जी तेरे किआ गुण आखि वखाणा। जो सेवहि जो सेवहि तुधु जी जनु नानकु तिन कुरबाणा ॥ २॥ हरि धिआवहि हरि धिआवहि तुधु जी से जन जुग महि सुखवासी। से मुकतु से मुकतु भए जिन हरि धिआइआ जी तिन तूटी जम की फासी। जिन निरभउ जिन हरि निरभउ धिआइआ जी तिन का भउ सभु गवासी। जिन सेविआ जिन सेविआ मेरा हरि जी ते हरि हरि रूपि समासी। से धंनु से धंनु जिन हरि धिआइआ जी जनु नानकु तिन बलि जासी ॥ ३ ॥ तेरी भगति तेरी भगति भंडार जी भरे बिअंत बेअंता। तेरे भगत तेरे भगत सलाहनि तुधु जी हरि अनिक अनेक अनंता। तेरी अनिक तेरी अनिक करहि हरि पूजा जी तपु तापहि जपहि बेअंता। तेरे अनेक तेरे अनेक पड़हि बहु सिम्रिति सासत जी करि किरिआ खटु करम करंता। से भगत से भगत भले जन नानक जी जो भावहि मेरे हरि भगवंता ॥ ४ ॥ तूं आदि पुरखु अपरंपरु करता जी तुधु जेवडु अवरु न कोई। तूं जुगु जुगु एको सदा सदा तूं एको जी तूं निहचलु करता सोई। तुधु आपे भावै सोई वरतै जी तूं आपे करहि सु होई। तुधु आपे स्रिसटि सभ उपाई जी तुधु आपे सिरजि सभ गोई। जनु नानकु गुण गावै करते के जी जो सभसै का जाणोई ॥५॥१॥

['सो पुरख' वाणी का नाम है।, इन चारों पदों में परमात्मा का स्तुति-गान है।]

वह परब्रह्म मायातीत, मन-वाणी से परे है, भूतकाल में भी अगम था और भविष्य में भी अगम्य रहेगा। हे सच्चे परमात्मा, तू सबका रचयिता है, सब केवल तुम्हारा ध्यान ही करते हैं, अतीत में तेरा ही ध्यान लगाते थे और भविष्य में भी तुझे स्मरण करते रहेंगे। सब जीव तुम्हारे द्वारा ही निर्मित हैं, तू ही उनका पोषक और रक्षक है। इसलिए हे सन्तजनो, उस दुःखमोचन हरि का स्मरण करो। वास्तव में परमात्मा स्वयं स्वामी है, सेवक भी स्वयं ही है, गुरु नानक जी कहते हैं कि बेचारे जीव तो तुच्छ हैं, (उसकी गहनता को नहीं पहचान सकते) ॥ १ ॥

परमात्मा सब जीवों के अन्तःकरण में समाया हुआ है। (फिर भी यदि) कोई दाता है और कोई भिखारी, वह सब उस (परमात्मा) के

विस्मयकारक कौतुक ही हैं। (हे परमेश्वर!) तू ही देनेवाला है और तू ही भोगनेवाला; मैं तुम्हारे अतिरिक्त और किसी को नहीं जानता। तू परब्रह्म है, अनादि और अनन्त है, तेरे गुणों का बखान कर सकने का सामर्थ्य मुझमें नहीं। गुरु नानक जी कहते हैं कि जो जीव तुम्हारा स्मरण करते हैं, तुम्हारी सेवा में समर्पित हैं, वे उनके बलिहार जाते हैं ॥ २ ॥

हे प्रभु, जो जीव तुम्हारा ध्यान करते हैं, तुम्हें स्मरण करते हैं, वे सदैव सुख में वास करते हैं। हरि का स्मरण करनेवाले जीव मोक्ष-लाभ करते हैं, वे यम के फंदे से भी मुक्त हो जाते हैं। जिन जीवों ने निर्भयतापूर्वक उस परम निर्भय भगवान का ध्यान किया, उनका जागतिक भय मूलतः नष्ट हो जाता है। जो हरि की सेवा में आत्मसमर्पित होते हैं, वे तो उसी के रूप में विलीन हो जाते हैं। हरि-स्मरण करनेवाले जीव धन्य हैं, नानक उनपर बलिहार है ॥ ३ ॥

हे अनन्त हरि जी, भक्तों के हृदयों में तीनों काल तुम्हारी भक्ति के अखुट कोष भरे पड़े हैं। तुम्हारे भक्त निरन्तर अनेक प्रकार की पूजा-विधियों से तुम्हारे चरणों में अनन्त वन्दना अर्पण करते हैं। अनेक प्रकार से तुम्हारी उपासना होती है, योगी-जती आदि जप-जाप और अनन्त तपस्याओं के माध्यम से तुम्हारी प्रशंस्ति करते हैं। तुम्हारे अनेक जीव स्मृतियों-शास्त्रों आदि धार्मिक ग्रन्थों का वाचन करते और षट्कर्म (मनुस्मृति के अनुसार पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना, दान लेना, आदि छः कार्य) की दिनचर्या को अपनाते हैं, किन्तु नानक जी कहते हैं कि इन सब प्रकार के भक्त जीवों में वे ही सफल हैं, जो परमात्मा को प्रिय हैं ॥ ४ ॥

हे प्रभु तुम आदि पुरुष हो, असीम हो, तुम्हारी महानता को पा सकना किसी और के बूते में नहीं। तुम भूत, भविष्य और वर्तमान में सदैव एक ही हो। तुम्हीं एक-मात्र अपरिवर्तनीय हो, (शेष सब संसार परिवर्तनशील है)। जो तुम्हें प्रिय है, वही होता है; तुम्हारे करने से ही सबका अस्तित्व है। यह समूची सृष्टि तुमने स्वयं निर्मित की है (और इच्छा होने पर), स्वयं ही इसे अपने में लीन भी कर लेते हो। गुरु नानक कहते हैं कि इसीसे हमें उस कर्त्तार का स्तुति-गान मात्र करना चाहिए। जो सबका आधार है, उसकी जाँच-पड़ताल सम्भव नहीं (आशय यह कि जाँच-पड़ताल तो वह करे, जो उस परमात्मा की सीमा से बाहर रहकर उसे देखे! यह असम्भव है) ॥ ५ ॥ १ ॥

॥ आसा महला ४ ॥ तूं करता सचिआरु मैडा सांई। जो तउ भावै सोई थीसी जो तूं देहि सोई हउ पाई ॥ १ ॥ रहाउ ॥

सभ तेरी तूं सभनी धिआइआ। जिस नो क्रिपा करहि तिनि नाम रतनु पाइआ। गुरमुखि लाधा मनमुखि गवाइआ। तुधु आपि विछोड़िआ आपि मिलाइआ ॥ १ ॥ तूं दरीआउ सभ तुझ ही माहि। तुझ बिनु दूजा कोई नाहि। जीअ जंत सभि तेरा खेलु। विजोगि मिलि विछुड़िआ संजोगी मेलु ॥ २ ॥ जिस नो तू जाणाइहि सोई जनु जाणै। हरिगुण सद ही आखि वखाणै। जिनि हरि सेविआ तिनि सुखु पाइआ। सहजे ही हरिनामि समाइआ ॥ ३ ॥ तू आपे करता तेरा कीआ सभु होइ। तुधु बिनु दूजा अवरु न कोइ। तू करि करि वेखहि जाणहि सोइ। जन नानक गुरमुखि परगटु होइ ॥ ४ ॥ २ ॥

हे प्रभु, तुम्हीं सच्चे स्रष्टा हो, तुम मेरे स्वामी हो। जो तुम्हें स्वीकार है, वही होता है और जो तुम देते हो, वही मेरी प्राप्ति है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ ('रहाउ' शब्द पद के पाठ में उक्त पंक्ति को दोहराने का सूचक है अर्थात् टेक की पंक्ति)। समूची सृष्टि तुम्हारी रचना है, सब जीव तुम्हारा ही स्मरण करते हैं, किन्तु (जिनकी सेवा से प्रसन्न होकर) तुम कृपा कर देते हो, वे तुम्हारे पावन नाम को पा जाते हैं। गुरु का आश्रय लेनेवाला जीव नाम-रत्न प्राप्त करता है, किन्तु मन-मुखी जीव (गुरु से विमुख, मन के भ्रमों में पड़ा हुआ व्यक्ति) उस नाम-धन से वंचित रह जाता है। जीवों का मिलन या वियोग तुम्हारी ही कृपा-अकृपा का परिणाम है (यह जीव के सामर्थ्य से बाहर है) ॥ १ ॥ हे मालिक, तुम गहरे सागर हो, (संसार के कौतुक) सब सागर की तरंगों के समान हैं; मूलतः तुम्हारे बिना और कोई नहीं। विश्व के समस्त जीव-जन्तु तुम्हारा खेल हैं; यह वियोग और संयोग के नियम तुम्हारी ही रचना हैं, जिनसे मिले हुए बिछुड़ते और बिछुड़े हुए मिल जाते हैं ॥ २ ॥ अपने अस्तित्व की जानकारी जिसे तुम स्वयं देते हो, वही तुम्हें जान सकता है। (वह भी जानने के पश्चात् तुम्हारा बयान नहीं कर सकता, केवल) तुम्हारे गुणों का गान करता हुआ ही तुम्हारे बखान का प्रयास करता है। हे हरि, जो तुम्हारी सेवा में आत्म-समर्पण कर देते हैं, वे सहज में ही (प्रकृतिस्थ रूप में ही) हरिनाम में लीन हो जाते हैं ॥ ३ ॥ तुम स्वयं स्रष्टा हो, तुम्हारे करने से ही सब होता है। तुम्हारे सिवा दूसरा और कोई (समर्थ) नहीं। तुम सृजन करते हो, इसलिए स्वयं ही रचना के भेदों के ज्ञाता हो। (भाग्यशाली भक्त जीवों पर) इन रहस्यों का उद्घाटन सतिगुरु के माध्यम से ही होता है ॥ ४ ॥ २ ॥

॥ आसा महला १ ॥ तितु सरवरड़ै भईले निवासा पाणी पावकु तिनहि कीआ। पंकजु मोह पगु नही चालै हम देखा तह डूबीअले ॥ १ ॥ मन एकु न चेतसि मूड़ मना। हरि बिसरत तेरे गुण गलिआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ ना हउ जती सती नही पड़िआ मूरख मुगधा जनमु भइआ। प्रणवति नानक तिन की सरणा जिन तू नाही वीसरिआ ॥ २ ॥ ३ ॥

हम सब जीव ऐसे संसार में निवास करते हैं, जिसमें (प्रभु ने) पानी की जगह (तृष्णा की) अग्नि भर रखी है। (इस संसार-सागर में) मोह का कीचड़ है, जिस कारण पैर नहीं चलते (फिसलते हैं)। हमने उसमें कई जीवों को डूबते भी देखा है (अर्थात् मोह और तृष्णा के वश में पड़े देखा है)। हे मूढ़ मन, फिर भी तू परमात्मा को याद नहीं करता। परमेश्वर को भुला देने के ही कारण तुम्हारे आध्यात्मिक गुण नष्ट हो गये हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे प्रभु, मैं यति, सती या विद्वान नहीं हूँ, मेरा मूर्ख, गँवारों जैसा जीवन है; इसलिये मुझे (गुरुजी कहते हैं) हे दाता, उन महानात्माओं की शरण प्रदानकरो, जो तुम्हें कदापि विस्मृत नहीं करते अर्थात् सदैव तुम्हारा नाम-स्मरण करते हैं) ॥ २ ॥ ३ ॥

॥ आसा महला ५ ॥ भई परापति मानुख देहुरीआ। गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ। अवरि काज तेरै कितै न काम। मिलु साध संगति भजु केवल नाम ॥ १ ॥ सरंजामि लागु भवजल तरन कै। जनमु ब्रिथा जात रंगि माइआ कै ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जपु तपु संजमु धरमु न कमाइआ। सेवा साध न जानिआ हरि राइआ। कहु नानक हम नीच करंमा। सरणि परे की राखहु सरमा ॥ २ ॥ ४ ॥

(अब गुरुजी जीव को उद्बोधन करते हुए कहते हैं) हे जीव, तुम्हें (परमात्मा की कृपा से) मानव-शरीर अर्थात् मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ है; यही परमात्मा को मिल सकने का स्वर्ण-अवसर है। (तात्पर्य यह कि मनुष्य शरीर में ही नाम-स्मरण द्वारा परमात्मा में लीन हुआ जा सकता है, अन्य योनियों में मोक्ष सम्भव नहीं।)। इस जन्म में और सब काम तुम्हारे लिये व्यर्थ हैं; तुम्हें तो मनुष्य योनि में आकर केवल साधु-संगति और नाम-स्मरण ही में संलग्न होना चाहिए ॥ १ ॥ (इस स्वर्णावसर का लाभ उठाते हुए) तुम्हें संसार-सागर तिरने अर्थात् मोक्ष-लब्धि का प्रबन्ध करना चाहिए; ऐसा न हो कि माया के आकर्षणों में ही तुम इस जन्म को व्यर्थ गँवा दो ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (इस श्रेष्ठतम योनि में, मनुष्य शरीर

पाकर भी) हमने जप, तप नहीं किया, विषय-विकारों से मन को नहीं हरकाया, धर्म का कोई भी कार्य नहीं किया, साधुजनों की सेवा में भी रति नहीं की और न ही परमात्मा को पहचानने का प्रयास किया। गुरु नानक जी कहते हैं कि हम ऐसे नीच-कर्मी हैं (करणीय कुछ भी नहीं कर पाये), फिर भी हे परमेश्वर, तुम्हारी शरण में हैं, कृपा करके अपने विरद की लाज रख लो (अर्थात् हम पर दया करके हमें अपने चरणों में स्थान दो) ॥ २ ॥ ४ ॥

सोहिला रागु गउड़ी दीपकी महला १।

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ जै घरि कीरति आखीऐ करते का होइ बीचारो। तितु घरि गावहु सोहिला सिवरिहु सिरजणहारो ॥ १ ॥ तुम गावहु मेरे निरभउ का सोहिला। हउ वारी जितु सोहिलै सदा सुखु होइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ नित नित जीअड़े समालीअनि देखैगा देवणहारु। तेरे दानै कीमति ना पवै तिसु दाते कवणु सुमारु ॥ २ ॥ संबति साहा लिखिआ मिलि करि पावहु तेलु। देहु सजण असीसड़ीआ जिउ होवै साहिब सिउ मेलु ॥ ३ ॥ घरि घरि एहो पाहुचा सदड़े नित पवंनि। सदण हारा सिमरीऐ नानक से दिह आवंनि ॥ ४ ॥ १ ॥

['सोहिला' वाणी का नाम है; इस वाणी का पाठ सिक्ख-मतानुसार रात को सोने के समय किया जाता है। 'सोहिला' का शाब्दिक अर्थ है 'यश', अर्थात् इस वाणी में परमात्मा का यशोगान किया जाता है।]

जिस घर (मनःस्थिति) में परमात्मा का गुणगान होता है, उसीमें रहकर (उसी मानसिक स्थिति में) तुम भी प्रभु का भजन करो। (मन को उसी संयत स्थिति में रखते हुए) उसी घर में परमेश्वर का यश गाओ और उस स्रष्टा का स्मरण करो। (हे भाई) तुम उस निर्भय परमात्मा का यश-गान करो (और निर्भय हो जाओ)। (एक जनश्रुति के अनुसार एक बार सिक्खों ने गुरु अर्जुनदेव जी से प्रार्थना की, कि वे व्यापार करने के लिए अनेक दुर्गम और भयंकर स्थानों पर जाते हैं, उन्हें कोई कवच-मन्त्र प्रदान किया जाय, जिसके जाप से उनकी रक्षा हो। गुरुजी ने उन्हें 'सोहिला' का पाठ करने का आदेश दिया और इसे निर्भयतादायी मन्त्र की संज्ञा दी।) मैं उस प्रभु पर बलिहार हूँ जिसका गुण-गान करने से नित्य सुख की उपलब्धि होती है ॥ १ ॥ ॥ रहाउ ॥ जो अकाल-पुरुष प्रभु नित्य-नित्य जीवों की सम्भाल कर रहा है, वह तुम पर भी कृपा करेगा

(या, यदि तुम नित्यप्रति परमात्मा का स्मरण करो तो वह दाता तुम्हें भी देखेगा अर्थात् तुम पर दया करेगा) तुम उस दाता (देवणुहारु) के दान का मूल्य नहीं डाल सकते, उसकी देन का अन्त ही नहीं ॥ २ ॥ अन्त (मृत्यु) का दिन पूर्व-निश्चित है, हे सज्जनो, मिलकर शगुन मनाओ (तेल डालो) और ऐसी शुभाशीष दो कि जीव का प्रभु से संयोग हो सके। (यहाँ गुरुजी ने विवाह का बिम्ब प्रस्तुत किया है। मृत्यु दुल्हिन से विवाह का दिन (साहा) निश्चित है। पंजाब में दुल्हिन के प्रथम गृह-प्रवेश के समय द्वार पर तेल डाला जाता है, दुल्हिन को पति-मिलन के आशीर्वाद-युक्त गीत गाये जाते हैं) ॥ ३ ॥ घर-घर में निमन्त्रण दिया जा रहा है (अर्थात् पास-पड़ोस में नित्य मौतें हो रही हैं), अतः हमें निमन्त्रण देनेवाले (परमात्मा) का स्मरण करना चाहिए, क्योंकि वह निमन्त्रण का दिन (मृत्यु) हम पर भी आने वाला है ॥ ४ ॥ १ ॥

॥ रागु आसा महला १ ॥ छिअ घर छिअ गुर छिअ उपदेस। गुरु गुरु एको वेस अनेक ॥ १ ॥ बाबा जै घरि करते कीरति होइ। सो घरु राखु वडाई तोइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ विसुए चसिआ घड़ीआ पहरा थिती वारी माहु होआ। सूरजु एको रुति अनेक। नानक करते के केते वेस ॥ २ ॥ २ ॥

छः दर्शन-शास्त्रों के छः लेखक हैं और उनके छः सिद्धान्त हैं (छः शास्त्र : सांख्य, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, योग और वेदांत। छः लेखक : कपिल, गौतम, कणाद, जैमिनी, पतंजलि और व्यास) किन्तु इन छः के ऊपर भी नियंता एक प्रभु ही है। उसीने अपने भावों को भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रकाशित किया है ॥ १ ॥ हे भाई (बाबा) जिस शास्त्र (घर) में स्रष्टा की प्रशस्ति हो, उसी के पाठ में तुम्हारा कल्याण है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (यह एक से अनेक मत क्यों हुए, इसका दृष्टांत काल-विभाजन और सूर्य के गिर्द धरती की गति से देते हैं) जैसे विसुए, चसे, घड़ीयों, पहरों, तिथियों, वारों के मेल से महीने बनते जाते हैं, फिर भी सूर्य एक स्थिर सत्य है, 'ऋतुएँ' बदलती हैं, वैसे ही (नानक) स्रष्टा एक ही है, उसके अनेक अंग, अनेक पहलू दीख पड़ते हैं ॥ २ ॥ २ ॥

[टिप्पणी : विसुआ=१५ बार आँख की फड़कन। चसा=१५ विसुए। पल=३० चसे। घड़ी=६० पल। पहर=८ घड़ियाँ। रात-दिन=८ पहर। तिथियाँ=१५, एकम् से अमावस या पूर्णिमा तक। वार=७, रविवार से शनिवार तक। ऋतुएँ=६।]

॥ रागु धनासरी महला १ ॥ गगनमै थालु रवि चंदु दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती। धूपु मलआनलो पवणु चवरो

करे सगल बनराइ फूलंत जोती ॥ १ ॥ कैसी आरती होइ । भवखंडना तेरी आरती । अनहता सबद वाजंत भेरी ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सहस तव नैन नन नैन हहि तोहि कउ सहस मूरति नना एक तुोही । सहस पद बिमल नन एक पद गंध बिनु सहस तव गंध इव चलत मोही ॥ २ ॥ सभ महि जोति जोति है सोइ । तिस दै चानणि सभ महि चानणु होइ । गुरसाखी जोति परगटु होइ । जो तिसु भावै सु आरती होइ ॥ ३ ॥ हरि चरण कवल मकरंद लोभित मनो अनदिनो मोहि आही पिआसा । क्रिपा जलु देहि नानक सारिंग कउ होइ जा ते तेरै नाइ वासा ॥ ४ ॥ ३ ॥

[यह आरती गुरु नानकदेव जी ने, कहते हैं, जगन्नाथजी के मन्दिर में उच्चरित की।]

हे प्रभु, तुम्हारे पूजन के लिए गगन के थाल में चन्द्र और सूर्य के दो दीप जले हैं और समूचा तारामण्डल मानों थाल में मोती भरे हैं। स्वयं मलयगिरि के चन्दन की गन्ध धूप की सुगन्धि है, पवन चँवर झुला रहा है, तथा सृष्टि की समूची वनस्पति ही, हे परमात्मा, तुम्हारी आराधना के पुष्प हैं। तुम्हारी यह प्राकृतिक आरती नित्य और अति मनोहर है। हे भवखण्डन (आवागमन का नाश करनेवाले) प्रभु, यही तेरी मनमोहक आरती है। तुम्हारे सब जीवों के भीतर बज रहा अनाहत शब्द ही मन्दिर की भेरी है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (जिस प्रभु की स्तुति में आरती गाई जा रही है, वह सब जीवों के भीतर निवास करता है, इसलिये हे परमेश्वर!) तुम्हारी असंख्य (सहस्रों) आँखें हैं (अर्थात् सब जीव तुम्हारा ही रूप है, इसलिये उनकी आँखें तुम्हारी ही तो हैं), किन्तु तुम्हारी कोई भी आँख नहीं। इसी प्रकार तुम्हारी सहस्रों शक्लें हैं, किन्तु फिर भी तुम्हारी कोई शक्ल नहीं (अर्थात् तुम निर्गुण, निराकार हो)। तुम्हारे असंख्य विमल चरण हैं, निर्गुण रूप में कोई चरण नहीं। सगुण रूप में प्रकट होने पर (इन सब जीवों के रूप में) तुम्हारी असंख्य नासिकाएँ गन्ध लेती हैं, अन्यथा निराकार रूप में तुम्हारी कोई नासिका नहीं। यह तुम्हारा विचित्र कौतुक है, जिसे देख-देखकर मेरा मन मोहित हो रहा है ॥ २ ॥ सब जीवों में उस परमात्मा की ज्योति का ही आलोक है, सब उसी से सिंचित हैं; वह पावन, परम आलोक गुरु की कृपा और शिक्षा से ही प्रकट होता है। उस परम ज्योति को जो भी स्वीकार्य होता है, वही पूजा बन जाती है ॥ ३ ॥ हे परमात्मा, तुम्हारे चरण-कमलों के मकरंद का प्यार मुझे रात-दिन रहता है। गुरु नानकदेव कहते हैं कि हे

कृपानिधि, मुझ पपीहे को अपनी कृपा की स्वाति-बूँद प्रदानकर, जिससे मैं परमात्मा के नाम में ही लीन हो जाऊँ ॥ ४ ॥ ३ ॥

॥ रागु गउड़ी पूरबी महला ४ ॥ कामि करोधि नगरु बहु भरिआ मिलि साधू खंडल खंडा हे। पूरबि लिखत लिखे गुरु पाइआ मनि हरि लिव मंडल मंडा हे ॥ १ ॥ करि साधू अंजुली पुनु वडा हे। करि डंडउत पुनु वडा हे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ साकत हरिरस सादु न जाणिआ तिन अंतरि हउमै कंडा हे। जिउ जिउ चलहि चुभै दुखु पावहि जमकालु सहहि सिरि डंडा हे ॥ २ ॥ हरिजन हरि हरि नामि समाणे दुखु जनम मरण भव खंडा हे। अबिनासी पुरखु पाइआ परमेसरु बहु सोभ खंड ब्रहमंडा हे ॥ ३ ॥ हम गरीब मसकीन प्रभ तेरे हरि राखु राखु वड वडा हे। जन नानक नामु अधारु टेक है हरिनामे ही सुखु मंडा हे ॥ ४ ॥ ४ ॥

शरीर रूपी नगर में काम-क्रोधादि विकार भरे थे, किन्तु गुरु के सम्पर्क में आने से (उन सब विकारों का) नाश हो गया है। हे भाई, जिस भाग्यशाली जीव ने कर्मलेखानुसार गुरु पा लिया है, उसका मन हरिनाम में ही मंडित हो गया है ॥ १ ॥ गुरु को प्रणाम करो, गुरु की साष्टांग वन्दना करो, यह महान् पुण्य है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मायावी जीव ('साकत' शब्द शाक्त-शक्ति के उपासकों के लिए प्रयुक्त होता था, किन्तु शक्ति को मायारूप मानने के कारण अब इस शब्द का अर्थ माया के प्रभाव में रहनेवाला है) हरि-रस के स्वाद से वंचित हैं, उनके मन में सदैव अहम् का काँटा रहता है। वे ज्यों-ज्यों माया के प्रभाव में चलते हैं, वह काँटा उन्हें सालता है और वे यमदूतों द्वारा दण्डित होते हैं ॥ २ ॥ किन्तु जो हरि-जन हैं अर्थात् जो माया की अपेक्षा परमपिता प्रभु की शरण लेते हैं, उसके नाम में लीन हैं, उनके आवागमन के कष्ट नाश हो जाते हैं। वे जीव उस अविनाशी परमेश्वर को पाकर खण्डों-ब्रह्मण्डों में चिर-शोभा अर्जित कर लेते हैं ॥ ३ ॥ हम बेकस, बेसहारा जीव, तुम्हारी शरण में हैं, कृपा करके, हे परम, हमारी रक्षा करो। गुरु नानकदेव जी कहते हैं, जिस जीव को तुम्हारे ही नाम का आसरा है, उसी का अवलम्ब है, वह परमसुख को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ ४ ॥

॥ रागु गउड़ी पूरबी महला ५ ॥ करउ बेनंती सुणहु मेरे मीता संत टहल की बेला। ईहा खाटि चलहु हरिलाहा आगै बसनु सुहेला ॥ १ ॥ अउध घटै दिनसु रैणा रे। मन गुर

मिलि काज सवारे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ इहु संसारु बिकारु संसे महि तरिओ ब्रहमगिआनी । जिसहि जगाइ पीआवै इहु रसु अकथ कथा तिनि जानी ॥ २ ॥ जा कउ आए सोई बिहाझहु हरि गुर ते मनहि बसेरा । निजघरि महलु पावहु सुख सहजे बहुरि न होइगो फेरा ॥ ३ ॥ अंतरजामी पुरख बिधाते सरधा मन की पूरे । नानक दासु इहै सुखु मागै मो कउ करि संतन की धूरे ॥ ४ ॥ ५ ॥

हे मित्रो, सुनो, मैं विनतीपूर्वक कहता हूँ कि (यह मनुष्य शरीर) सच्चे सन्तों (सद्गुरु) की सेवा की वेला है । (अतः शरीर रहते सद्गुरु की सेवा अर्थात् उसके आदेशानुसार नाम-स्मरणादि के द्वारा) इस संसार में रहते हरि-नाम की कमाई कर लो, तो परलोकवास सरल (सुहेला) हो सकता है ॥ १ ॥ (बीतते हुए) रात-दिन आयु घट रही है; मन को गुरु के उपदेशों में लीनकर अपना भविष्य सँवार लो ॥ १ ॥ रहाउ ॥ यह संसार विषय-विकारों और भ्रम-संशयों से भरपूर है, इसे कोई ब्रह्मज्ञानी ही पार कर सकता है । ऐसा ब्रह्मज्ञानी (सद्गुरु) ही मोह-निद्रा में सोए जीव को जगाकर हरिनाम का रस पिलाता है, वही समूची रहस्यमयी कथा को जानता है (परमात्मा के रहस्य वही जानता है ।) ॥ २ ॥ अतः, हे जीवो, जिसलिए संसार में आए हो, उसी हरिनाम के सौदे का व्यापार करो । गुरु के आश्रय हरि को मन में बसाओ । (ऐसा करने से) अपने शरीर में ही तुम परम-पिता प्रभु को पा जाओगे, अखण्ड सुख का भोग करोगे और आवागमन से (सदा के लिए) मुक्त हो जाओगे ॥ ३ ॥ हे अन्तर्यामी, कर्त्तार, मेरे मन की श्रद्धा को पूर्णता प्रदान करो, तुम्हारा दास (नानक) तुमसे यही वर चाहता है कि उसे निरन्तर सन्तजनों की चरण-धूलि प्राप्त हो ! (अर्थात् साधु-संगति में जीव लीन रह सके) ॥ ४ ॥ ५ ॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥

रागु सिरीरागु महला पहिला १ घरु १ ॥

मोती त मंदर ऊसरहि रतनी त होहि जड़ाउ । कसतूरि कुंगू अगरि चंदनि लीपि आवै चाउ । मतु देखि भूला वीसरै तेरा चिति न आवै नाउ ॥ १ ॥ हरि बिनु जीउ जलि बलि

जाउ । मै आपणा गुरु पूछि देखिआ अवरु नाही थाउ ।। १ ।। रहाउ ।। धरती त हीरे लाल जड़ती पलघि लाल जड़ाउ । मोहणी मुखि मणी सोहै करे रंगि पसाउ । मतु देखि भूला वीसरै तेरा चिति न आवै नाउ ।। २ ।। सिधु होवा सिधि लाई रिधि आखा आउ । गुपतु परगटु होइ बैसा लोकु राखै भाउ । मतु देखि भूला वीसरै तेरा चिति न आवै नाउ ।। ३ ।। सुलतानु होवा मेलि लसकर तखति राखा पाउ । हुकमु हासलु करी बैठा नानका सभ वाउ । मतु देखि भूला वीसरै तेरा चिति न आवै नाउ ।। ४ ।। १ ।।

['घरु' ताल या स्वर की स्थापना-संख्या को कहते हैं। 'महला' गुरुओं की वाणी में गुरु की संख्या का द्योतक है। महला १ गुरु नानक देव जी से महला ९ गुरु तेग़बहादुर तक की वाणी के साथ महला संख्या स्थान-स्थान पर रखी जायगी।]

यदि मेरे लिए मोतियों और रत्नों से जड़े महल हों, उनमें कस्तूरी, केसर, अगरु चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थों का लेप है, जिससे मन को महान् सन्तोष होता हो; फिर भी (मैं चाहता हूँ) कहीं ऐसा न हो कि मैं उन्हें देखकर तुम्हारा नाम ही विस्मृत कर दूँ और चित्त में उसे बसाऊँ ही ना ! (सच तो यह है) कि जिस हृदय में प्रभु का प्यार नहीं, वह (अभिमान की अग्नि में) जल जाता है। मैंने अपने गुरु से यही सीखा है कि परमात्मा के बिना जीव का और कोई सहारा नहीं ।। १ ।। रहाउ ।। यदि मेरे घर की धरती में भी हीरे जड़े हों, पलंग में लाल जटित हों, साथ में सुन्दर स्त्री भी हो, जिसने मणि-जटित आभूषण पहने हों और जो खूब हाव-भाव भी प्रकटती हो; तो भी (मैं चाहता हूँ कि) कहीं ऐसा न हो कि इन्हें देखकर मुझे तुम विस्मृत हो जाओ और चित्त में तुम्हारा नाम ही न बसे ! ।। २ ।। यदि मैं रिद्धि-सिद्धियों का स्वामी बनूँ और करामातों की शक्ति भी पा लूँ, इच्छानुसार मैं गुप्त या प्रकट हो सकने का सामर्थ्य पा जाऊँ और लोग मुझमें निश्चय भी रखने लगें; फिर भी (मैं चाहता हूँ कि) कहीं ऐसा न हो कि इन्हें देखकर मुझे तुम विस्मृत हो जाओ और मेरे चित्त में तुम्हारा नाम ही न बसे ! ।। ३ ।। यदि मैं सम्राट बन जाऊँ और सेना की शक्ति से सिंहासन पर बैठूँ; जनता से कर वसूल करूँ और अपना सिक्का चलाऊँ, किन्तु यह सब भी पवन की तरह अस्थिर है; फिर भी (मैं चाहता हूँ) कि इसे देखकर कहीं ऐसा न हो, मैं तुम्हें विस्मृत कर बैठूँ और मेरे चित्त में तुम्हारा नाम ही न बसे ! ।। ४ ।। १ ।।

[टिप्पणी : यहाँ गुरुजी परमात्मा के प्रति जीव को प्रेरित कर रहे हैं। आगे अनेक शब्दों (पदों) में यही प्रवृत्ति चलती है। महान सम्पन्नता, अनुपम समृद्धियाँ

पाकर भी जीव को हरि-नाम विस्मृत नहीं होना चाहिये, यही बताना इन पदों का लक्ष्य है]।

॥ सिरीरागु महला १ ॥ कोटि कोटी मेरी आरजा पवणु पीअणु अपिआउ। चंदु सूरजु दुइ गुफै न देखा सुपनै सउण न थाउ। भी तेरी कीमति ना पवै हउ केवडु आखा नाउ ॥ १ ॥ साचा निरंकारु निज थाइ। सुणि सुणि आखणु आखणा जे भावै करे तमाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ कुसा कटीआ वार वार पीसणि पीसा पाइ। अगी सेती जालीआ भसम सेती रलि जाउ। भी तेरी कीमति ना पवै हउ केवडु आखा नाउ ॥ २ ॥ पंखी होइ कै जे भवा सै असमानी जाउ। नदरी किसै न आवऊ ना किछु पीआ न खाउ। भी तेरी कीमति ना पवै हउ केवडु आखा नाउ ॥ ३ ॥ नानक कागद लख मणा पड़ि पड़ि कीचै भाउ। मसू तोटि न आवई लेखणि पउणु चलाउ। भी तेरी कीमति ना पवै हउ केवडु आखा नाउ ॥ ४ ॥ २ ॥

यदि करोड़ों वर्षों की आयु मुझे दी जाय और फिर भी मेरा खाना-पीना मात्र पवन ही हो; मैं सारी उमर ऐसी गुफा में बैठकर (तुम्हारा ध्यान करूँ) जहाँ चाँद-सूर्य दीख न पड़ें (अर्थात् अँधेरी गुफा जहाँ रात-दिन का भी पता न चले) और मुझे स्वप्न में भी निद्रा न हो, तो भी मैं तेरी सही कीमत नहीं डाल सकता, तुम्हारे नाम की महानता का अनुमान नहीं कर सकता ॥ १ ॥ वह परमात्मा स्वयं अपने ही स्वरूप में स्थित है। लोग जैसा-जैसा उसके बारे में सुनते हैं, कह देते हैं (अर्थात् जीव आत्मानुभव नहीं करते, इसीलिये यथार्थ से वंचित हैं।) (किन्तु सही जानकार वही है) जिसपर स्वेच्छा से वह कृपा करता है (और अपने यथार्थ को प्रकट कर देता है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥ यदि (तपस्या के नाते) मुझे काटकर टुकड़े-टुकड़े कर दिया जाय, चक्की में डालकर पीस दिया जाय! (या कठोर तपस्या के हेतु) मैं आग में जलकर राख हो जाऊँ, राख भी मिट्टी में मिल जाय; तो भी मैं तेरा सही मोल नहीं कह सकता, तुम्हारे नाम की महानता का अनुमान नहीं कर सकता ॥ २ ॥ यदि मैं पक्षी बनकर सैकड़ों आकाशों में उड़ता फिरूँ, (इतनी ऊँचाई पर उड़ने में समर्थ होऊँ कि) कोई मुझे देख ही न सके और न ही मुझे खाने-पीने की कोई आवश्यकता रहे; तो भी मैं तेरा सही मोल नहीं कह सकता, तुम्हारे नाम की महानता का अनुमान नहीं कर सकता ॥ ३ ॥ गुरु नानक कहते हैं, यदि मेरे पास (पुस्तकें लिखने-पढ़ने के लिए) लाखों मन काग़ज हो और मैं

खूब सोच-विचार कर भी उनमें कोई सिद्धान्त प्रस्तुत करूँ; मेरी स्याही कभी समाप्त न हो और मेरी लेखनी लिखते हुए कभी न रुके; तो भी मैं तेरा सही मोल नहीं लिख सकता, तुम्हारे नाम की महानता का अनुमान नहीं कर सकता ॥ ४ ॥ २ ॥ (इस पद में गुरुजी ने बताया है कि रिद्धि-सिद्धि शक्तियों और अति मानवीय सामर्थ्यों को पाकर भी प्रभु के नाम की महानता का अन्दाज़ा नहीं हो सकता।) ॥ ४ ॥ २ ॥

॥ सिरीरागु महला १ ॥ लेखै बोलणु बोलणा लेखै खाणा खाउ। लेखै वाट चलाईआ लेखै सुणि वेखाउ। लेखै साह लवाईअहि पड़े कि पुछण जाउ ॥ १ ॥ बाबा माइआ रचना धोहु। अंधै नामु विसारिआ ना तिसु एह न ओहु ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जीवण मरणा जाइ कै एथै खाजै कालि। जिथै बहि समझाईऐ तिथै कोइ न चलिओ नालि। रोवणवाले जेतड़े सभि बंनहि पंड परालि ॥ २ ॥ सभु को आखै बहुतु बहुतु घटि न आखै कोइ। कीमति किनै न पाईआ कहणि न वडा होइ। साचा साहबु एकु तू होरि जीआ केते लोअ ॥ ३ ॥ नीचा अंदरि नीच जाति नीची हू अति नीचु। नानकु तिन कै संगि साथि वडिआ सिउ किआ रीस। जिथै नीच समालीअनि तिथै नदरि तेरी बखसीस ॥ ४ ॥ ३ ॥

('लेखे में' का अर्थ है कर्मानुसार, लिखे हुए हिसाब के मुताबिक : माया के राह पर चलनेवाले जीव की हर बात का हिसाब रखा जाता है) जीवों का बोलना, खाना-पीना आदि सबका आलेख मौजूद है। उनके द्वारा यात्रा करना, सुनना, देखना आदि भी सब हिसाब में लिखा गया है। उनके श्वास-श्वास का हिसाब रखा जाता है और यह इतना स्पष्ट है कि इस पर आपत् कथन की अपेक्षा ही नहीं ॥ १ ॥ हे भाई, माया का समूचा प्रसार ही भ्रम है, अज्ञानी जीव नाम को विस्मृत किये बैठा है (जो माया के हिसाब-किताब से छुटकारा दिलाने में समर्थ है), इसलिये उसको लोक और परलोक दोनों जगह हानि है (माया स्थिर नहीं और परलोक की पूँजी नाम है—उसने माया संचित की है, नाम विस्मृत किया है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जीव जन्म से मृत्यु तक के जीवन में माया-भोगी ही रहता है, किन्तु (प्रभु के सम्मुख) जहाँ कर्मलेख की जाँच होती है, वहाँ माया साथ छोड़ देती है। (मृत्यु के पश्चात्) रोने-पीटनेवाले सम्बन्धियों के रोने से भी (जीव को कोई लाभ नहीं पहुँचता), वे रोने-धोने का व्यर्थ कर्म (पराली की गठड़ी) करते हैं ॥ २ ॥ यों तो सभी जीव उस परमेश्वर को अनन्त और महान बताते हैं, कोई कम नहीं कहता,

किन्तु आज तक कोई उसका सही मूल्य नहीं आँक सका। जबानी बतियाने से उसका मूल्यांकन सम्भव नहीं (अर्थात् जब तक माया त्यागकर जीव परमात्मा में लीन नहीं हो जाता, तब तक प्रभु की पहचान नहीं हो सकती। हे हरि, केवल तुम ही स्थिर (सच्चे स्वामी) हो, जीवों के तो समूह के समूह (अस्थिर) हैं ॥ ३ ॥ (माया किसी का साथ नहीं देती, माया को पाकर बड़ा बनने का कोई लाभ नहीं, इसलिये) जो नीच से नीच, और उससे भी नीच जाति है, (नानक) उसका साथी बनना चाहिये (मायावियों का नहीं), बड़े लोगों अर्थात् मायाधारियों की क्या तुलना! (उनके समान नहीं बनना है), क्योंकि जहाँ नीच-जन की सेवा होती है, वहीं (हे प्रभु) तुम्हारी कृपा-दृष्टि भी रहती है ॥ ४ ॥ ३ ॥

॥ सिरीरागु महला १ ॥ लबु कुता कूड़ु चूहड़ा ठगि खाधा मुरदारु। पर निंदा पर मलु मुख सुधी अगनि क्रोधु चंडालु। रस कस आपु सलाहणा ए करम मेरे करतार ॥ १ ॥ बाबा बोलीऐ पति होइ। ऊतम से दरि ऊतम कहीअहि नीच करम बहि रोइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ रसु सुइना रसु रुपा कामणि रसु परमल की वासु। रसु घोड़े रसु सेजा मंदर रसु मीठा रसु मासु। एते रस सरीर के कै घटि नाम निवासु ॥ २ ॥ जितु बोलिऐ पति पाईऐ सो बोलिआ परवाणु। फिका बोलि विगुचणा सुणि मूरख मन अजाण। जो तिसु भावहि से भले होरि कि कहण वखाण ॥ ३ ॥ तिन मति तिन पति तिन धनु पलै जिन हिरदै रहिआ समाइ। तिन का किआ सालाहणा अवर सुआलिउ काइ। नानक नदरी बाहरे राचहि दानि न नाइ ॥ ४ ॥ ४ ॥

(मेरे मन में) लिप्सा का कुत्ता, मिथ्या का नीच भंगी तथा दूसरे को ठग लेने की नीच वृत्तियाँ मौजूद हैं। पराई निंदा कर-करके मेरा मुख मलिन हो गया है, तथा चाण्डाल क्रोध मेरे भीतर अग्नि भड़काता है। स्वप्रशंसा ही (मेरी जिह्वा का) खट्टा-मीठा रस है और हे मेरे प्रभु, (मेरे अन्य कर्म भी) इसी प्रकार के मेरे कर्म हैं ॥ १ ॥ हे भाई, (ये सब कर्म उचित नहीं, हमें) ऐसे कथन करने चाहिए, जिनसे परमात्मा के सम्मुख (हमारा) आदर हो (अर्थात् विनम्रता, मधुरता और प्रेम से बोलना चाहिए)। श्रेष्ठ जीव वही है, जो उस (प्रभु) के दरबार में श्रेष्ठ माना जाय, नीच-कर्मी तो वहाँ प्रताड़ित होकर रोते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (जीव को) स्वर्ण से प्यार है, चाँदी से प्यार है, स्त्री और परिमल (सुगंधि)

से प्यार है; घोड़ों की सवारी, कोमल बिस्तर, मधुर रसों और मांसाहार आदि से प्यार है; किन्तु जिस मन में इतने एन्द्रिक-रसों का आकर्षण है, वहाँ नाम का प्यार कैसे हो सकता है ? ॥ २ ॥ वही बोलना उचित है, जिससे परमात्मा के घर आदर मिले; मिथ्या (फीके) बोल बोलने से ऐ मूर्ख अजान, (व्यक्ति) प्राय: ख्वार होता है। इसलिये वही कथन भले हैं, जो ईश्वर को स्वीकार हैं, अन्य कथनों की बात ही क्यों की जाय ! ॥ ३ ॥ जिनके मन में स्वयं परमात्मा निवास करता है, वे ही योग्य, सत्कार्य और धनी हैं, उनकी क्या प्रशंसा की जाय ? उनसे इतर कोई और श्रेष्ठ नहीं हो सकता। (गुरुजी कहते हैं) जो जीव प्रभु की कृपा से वंचित हैं, वे प्रभु की दी समृद्धियों में मग्न रहते हैं (माया में लीन होते हैं), नाम की लीनता उन्हें प्राप्त नहीं ॥ ४ ॥ ४ ॥

॥ सिरीरागु महला १ ॥ अमलु गलोला कूड़ का दिता देवणहारि। मती मरणु विसारिआ खुसी कीती दिन चारि। सचु मिलिआ तिन सोफीआ राखण कउ दरवारु ॥ १ ॥ नानक साचे कउ सचु जाणु। जितु सेविऐ सुखु पाईऐ तेरी दरगह चलै माणु ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सचु सरा गुड़ बाहरा जिसु विचि सचा नाउ। सुणहि वखाणहि जेतड़े हउ तिन बलिहारै जाउ। ता मनु खीवा जाणीऐ जा महली पाए थाउ ॥ २ ॥ नाउ नीरु चंगिआईआ सतु परमलु तनि वासु। ता मुखु होवै उजला लख दाती इक दाति। दूख तिसै पहि आखीअहि सूख जिसै ही पासि ॥ ३ ॥ सो किउ मनहु विसारीऐ जा के जीअ पराण। तिसु विणु सभु अपवित्रु है जेता पैनणु खाणु। होरि गलां सभि कूड़ीआ तुधु भावै परवाणु ॥ ४ ॥ ५ ॥

देनेवाले (प्रभु) ने (जीवों को) मिथ्यात्व रूपी अफ़ीम (अमलु = नशा) की गोली दे रखी है। (इसी के नशे में) जीवों ने मृत्यु को भुला दिया है और अस्थिर आनन्द में ही मस्त हुए पड़े हैं। परमात्मा ने (सत्य की खोज करनेवाले) सूफ़ियों को सत्य भी प्रदान किया है, ताकि वे उसके दरबार में रह सकें ॥ १ ॥ (नानक) सच्चे परमात्मा को ही सच्चा मानो; उसीकी सेवा से सुख की लब्धि होती और प्रभु-शरण में स्वीकृति होती है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सत्य भी नशा है (सुरा), किन्तु इसमें गुड़ के बजाय नाम की मधुरता घुली होती है (जिससे सम्पूर्ण जीवन में मधुरता भर जाती है)। जिन जीवों ने सच्चे नाम का श्रवण और बखान किया है, मैं उनपर बलिहार हूँ। वही मन वास्तव में मस्ती भरा (नशे में लीन)

समझो, जिसे प्रभु की शरण प्राप्त हो जाय ॥ २ ॥ यदि जीव परमात्मा के नाम रूपी जल से (स्नान करे) और (पुण्य-दानादि) सुगन्धियाँ शरीर में बसाए, तब वह पावन होता है। लाखों उपलब्धियों में से यही एक उपलब्धि प्राप्त करने योग्य है। अपने दुःखों का रोना उसे (प्रभु को) ही सुनाना उचित है, जिसके पास सुखों का भण्डार मौजूद है ॥ ३ ॥ उस परमात्मा को कदापि विस्मृत नहीं किया जाना चाहिए, जिसके सहारे हमारी आत्मा और प्राण विद्यमान हैं। उसके अतिरिक्त जीव का सब खाना-पहिनना अपावन और व्यर्थ है। (सच तो यह है) अन्य सब बातें झूठी हैं, केवल वही ग्राह्य है जो प्रभु को परवान (प्रिय) है ॥ ४ ॥ ५ ॥

॥ सिरीरागु महलु १ ॥ जालि मोहु घसि मसु करि मति कागदु करि सारु। भाउ कलम करि चितु लेखारी गुर पुछि लिखु बीचारु। लिखु नामु सालाह लिखु लिखु अंतु न पारावारु ॥ १ ॥ बाबा एहु लेखा लिखि जाणु। जिथै लेखा मंगीऐ तिथै होइ सचा नीसाणु ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिथै मिलहि वडिआईआ सद खुसीआ सद चाउ। तिन मुखि टिके निकलहि जिन मनि सचा नाउ। करमि मिलै ता पाईऐ नाही गली वाउ दुआउ ॥ २ ॥ इकि आवहि इकि जाहि उठि रखीअहि नाव सलार। इकि उपाए मंगते इकना वडे दरवार। अगै गइआ जाणीऐ विणु नावै वेकार ॥ ३ ॥ भै तेरै डरु अगला खपि खपि छिजै देह। नाव जिना सुलतान खान होदे डिठे खेह। नानक उठी चलिआ सभि कूड़े तुटे नेह ॥ ४ ॥ ६ ॥

(जीव के लिये उपदेश है) (हे भाई!) मोह की वृत्ति को जलाकर (कोयला कर दो, और उस कोयले को) पीसकर स्याही बनाओ। अपनी मति का सुन्दर काग़ज़ बनाओ। प्रेम की लेखनी करो; मन को लेखक बनाकर, गुरु के बताये विचारों को लिखो। (अपनी बुद्धि के काग़ज़ पर) हरि-नाम लिखो, परमात्मा की प्रशस्ति लिखो और उसकी अनन्तता का वर्णन लिखो ॥ १ ॥ हे भाई, उक्त प्रकार का लेखा (हिसाब-किताब) लिखने की तरकीब सीखो, ताकि जहाँ (प्रभु के दरबार में) तुम्हारे लेखों की जाँच हो, वहाँ उन लेखों की परवानगी तुम्हारे पास पहले से मौजूद हो ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (परमात्मा का दरबार ही ऐसा स्थान है जहाँ) तुम्हारी बड़ाई होती है और स्थायी उल्लास तथा आनन्द लब्ध होते हैं। जिनके हृदय में हरि-नाम का वास है, उन्हीं के माथे तिलक मिलता है, अर्थात् वे ही जीव परमात्मा की शरण में स्वीकार्य होते हैं। जब प्रभु

की कृपा होती है, तभी (सच्चे) नाम की प्राप्ति होती है, व्यर्थ की बातों से नाम नहीं मिलता ॥ २ ॥ संसार में कोई जीव आता है (जन्म लेता है), कोई यहाँ से जाता है (मृत्यु को प्राप्त होता है), और कोई सबका नायक बन बैठता है। कोई जीव जन्मजात निर्धन होता है, और कोई दरबार सजाकर रहता है, किन्तु आगे बढ़ने पर ही यह पता चलता है कि नाम के बग़ैर सब (अमीरी, ग़रीबी या नायकत्व) बेकार है ॥ ३ ॥ मैं तुमसे डरता हूँ, मुझे तुम्हारा भय कचोटता है और मेरा शरीर दुखित होकर छीज रहा है। मैंने ऐसे लोगों को भी मिट्टी में मिलते देखा है, जो अपने को खान और सुलतान कहलाते हैं। अतः (नानक) प्रत्येक जीव को अन्ततः संसार से विदा होना है; उसी प्रक्रिया में उसके सब मिथ्या प्रीति-बन्धन टूट जाते हैं। (पार्थिव पदार्थों के प्रति सब आकर्षण नष्ट हो जाते हैं।) ॥ ४ ॥ ६ ॥

॥ सिरीरागु महला १ ॥ सभि रस मिठे मंनिऐ सुणिऐ सालोणे। खट तुरसी मुखि बोलणा मारण नाद कीए। छतीह अंम्रित भाउ एकु जा कउ नदरि करेइ ॥ १ ॥ बाबा होरु खाणा खुसी खुआरु। जितु खाधै तनु पीड़ीऐ मन महि चलहि विकार ॥ १ ॥ रहाउ ॥ रता पैनणु मनु रता सुपेदी सतु दानु। नीली सिआही कदा करणी पहिरणु पैर धिआनु। कमरबंदु संतोख का धनु जोबनु तेरा नामु ॥ २ ॥ बाबा होरु पैनणु खुसी खुआरु। जितु पैधै तनु पीड़ीऐ मन महि चलहि विकार ॥ १ ॥ रहाउ ॥ घोड़े पाखर सुइने साखति बूझणु तेरी वाट। तरकस तीर कमाण सांग तेगबंद गुण धातु। वाजा नेजा पति सिउ परगटु करमु तेरा मेरी जाति ॥ ३ ॥ बाबा होरु चड़णा खुसी खुआरु। जितु चड़िऐ तनु पीड़ीऐ मन महि चलहि विकार ॥१॥ रहाउ ॥ घर मंदर खुसी नाम की नदरि तेरी परवारु। हुकमु सोई तुधु भावसी होरु आखणु बहुतु अपारु। नानक सचा पातिसाहु पूछि न करे बीचारु ॥ ४ ॥ बाबा होरु सउणा खुसी खुआरु। जितु सुतै तनु पीड़ीऐ मन महि चलहि विकार ॥ १ ॥ रहाउ ॥ ४ ॥ ७ ॥

(यहां गुरुजी उपदेश देते हैं कि नाम-रस का आस्वादन करनेवाले को जिह्वा के रसों—खट्टा-मीठा आदि की ललक नहीं रहती, वे तो उसके हस्तामलक ही समझो,) (क्योंकि) नाम के मनन से सब मीठे रस और श्रवण से सब नमकीन, उपलब्ध हुए समझना चाहिए। नाम का उच्चारण

करने से खट्टे-तुर्श रस और नाम-संकीर्तन से सब चटपटे (मसालेदार) रसों की प्राप्ति मानिए। (तात्पर्य यह कि नाम का रस प्राप्त करनेवाले को सभी रस प्राप्त होते हैं)। (सच तो यह है कि) प्रभु-प्रेम तथा उस परम की कृपा-दृष्टि प्राप्त करनेवाले जीव को छत्तीस प्रकार के भोजन-रस उसी में मिल जाते हैं ॥ १ ॥ हे मेरे भाई, उन सब भोजनों से प्राप्त हुई खुशी दुखदायी होती है, जिनके खाने से शरीर में कष्ट (रोग) और मन म विकार पैदा होते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हरि-नाम में मन को रंग लेना ही मनुष्य की लाल पोषाक है, सत्कर्म ही उजले वस्त्रों के समान हैं, मन से कालिमा और मलिनता दूर कर देना नीली पोषाक के समान है और यदि कोई जीव हरि-चरणों में ध्यान लगाले, तो वही उसके लिए सर्वोत्तम वस्त्र है। जीवन में सन्तोष प्राप्त कर लेना ही कमरबंद है और प्रभु-नाम का जाप धन और यौवन का उल्लास है ॥ २ ॥ हे भाई, उन सब पोषाकों से प्राप्त हुई खुशी दुखदायी होती है, जिनके पहनने से शरीर में कष्ट (रोग) और मन में विकार पैदा होते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ प्रभु-पथ का ज्ञान मानो जीवन में यात्रा के लिए ज़ीन-कसे घोड़े हैं, जिनपर स्वर्ण-खचित दुमचियाँ पड़ी हों। प्रभु के गुणों की ओर गतिशील होना मानो युद्ध का सामान तरकश, तीर, कमान, बर्छी, कृपाण आदि हो। प्रभु की शरण में स्वीकृत हो जाना मानो धौंसा-भालों की शान हो और प्रभु की कृपा प्राप्त कर लेना मानो उच्च कुलीनता हो ॥ ३ ॥ हे भाई, उन सब सवारियों से प्राप्त हुई खुशी दुखदायी होती है, जिनकी शान से शरीर में कष्ट (रोग) तथा मन में विकार पैदा होते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ प्रभुनाम का उल्लास मानो प्रासादों-भवनों को पा जाने का उल्लास हो, प्रभु की दया मानो परिवार की खुशियाँ हों। परमात्मा की इच्छा में रहना मानो हुकुम चलाना है और अन्ततः उस बे-अन्त का गुण-गान ही सब कुछ है। (नानक) वह कुल मालिक (सच्चा पातिशाह) किसी के परामर्श से अपने कृत्यों को निश्चित नहीं करता ॥ ४ ॥ अतः हे भाई, उन समृद्धियों से प्राप्त हुई खुशी दुखदायी होती है, जिनके भोग से शरीर में कष्ट (रोग) और मन में विकार पैदा होते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (तात्पर्य यह कि जीवात्मा के लिए सांसारिक खुशियाँ व्यर्थ और अस्थिर हैं, उसे प्रभु-नाम में लीनता की खुशी, जोकि परम हर्षोल्लास का आधार है, प्राप्त करनी चाहिए।) ॥ ४ ॥ ७ ॥

॥ सिरीरागु महला १ ॥ कुंगू की कांइआ रतना की ललिता अगरि वासु तनि सासु। अठसठि तीरथ का मुखि टिका तितु घटि मति विगासु। ओतु मती सालाहणा सचु नामु गुणतासु ॥ १ ॥ बाबा होर मति होर होर। जे सउ वेर

कमाईऐ कूड़ै कूड़ा जोरु ॥ १ ॥ रहाउ ॥ पूज लगै पीरु आखीऐ सभु मिलै संसारु । नाउ सदाए आपणा होवै सिधु सुमारु । जा पति लेखै ना पवै सभा पूज खुआरु ॥ २ ॥ जिन कउ सतिगुरि थापिआ तिन मेटि न सकै कोइ । ओना अंदरि नामु निधानु है नामो परगटु होइ । नाउ पूजीऐ नाउ मंनीऐ अखंडु सदा सचु सोइ ॥ ३ ॥ खेहू खेह रलाईऐ ता जीउ केहा होइ । जलीआ सभि सिआणपा उठी चलिआ रोइ । नानक नामि विसारिऐ दरि गइआ किआ होइ ॥ ४ ॥ ८ ॥

यदि मनुष्य का शरीर केसर की भाँति सुगन्धित और पवित्र हो, जिह्वा रत्नों की नाईं निमल हो और श्वास में से अगरु की सुवास बिखरती हो, माथे पर अठसठ तीर्थों की पावनता का सूचक तिलक हो, एवं ऐसे श्रेष्ठ शरीर में बुद्धि का पूर्ण विकास हुआ हो; तो उस परम पावन विकसित बुद्धि से उस गुणों के भण्डार प्रभु के नाम का गुणगान किया जाना चाहिए ॥ १ ॥ हे भाई, अन्य प्रकार की लुभावनी बुद्धि और-और ख़्याल पैदा करती है। ऐसी विकारयुक्त बुद्धि से सौ बार विचारने पर भी विकृत परिणाम ही उपजेगा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (आगे गुरुजी दृष्टांत देकर समझाते हैं)। किसी मनुष्य को यदि लोग पूजें, उसे पीर कहकर स्वीकारें और उसे सब संसार आदर दे; उसका नाम भी लोग मानते हों और वह करामाती सिद्ध कहा जाता हो, तो भी यदि हरि की शरण में उसे परवान नहीं किया गया, तो लोगों द्वारा अर्जित उसकी अपनी पूजा सब व्यर्थ है ॥ २ ॥ (दूसरी तरफ़) जिन्हें सतिगुरु ने सहारा दिया है, कोई उनका बाल भी बाँका नहीं कर सकता। उनके भीतर प्रभु-नाम का कोष है, वे उसी के बल से सृष्टि में आलोकित होते हैं। (वास्तव में) हरि का नाम ही माना और पूजा जाता है, नाम को धारण करनेवाले ही अविनाशी और अमर हो जाते हैं ॥ ३ ॥ (अन्यथा) मृत्यूपरांत शरीर तो मिट्टी में मिल जायगा, तब आत्मा का क्या होगा? उसकी सब बाहरी योग्यताएँ नष्ट हो जाएँगी और वह रोता रह जायगा। (क्योंकि बाहरी समृद्धियाँ मृत्यु के बाद साथ नहीं जातीं, केवल प्रभु-नाम ही साथ देता है) गुरु नानक जी कहते हैं कि जिन्होंने यहाँ हरि-नाम विस्मृत कर दिया है, उनकी क्या दशा होती होगी? ॥ ४ ॥ ८ ॥

॥ सिरीरागु महला १ ॥ गुणवंती गुण वीथरै अउगुणवंती झूरि । जे लोड़हि वरु कामणी नह मिलीऐ पिर कूरि । ना बेड़ी ना तुलहड़ा ना पाईऐ पिरु दूरि ॥ १ ॥ मेरे ठाकुर पूरै तखति अडोलु । गुरमुखि पूरा जे करे पाईऐ साचु अतोलु ॥१॥

रहाउ ॥ प्रभु हरिमंदरु सोहणा तिसु महि माणक लाल। मोती हीरा निरमला कंचन कोट रीसाल। बिनु पउड़ी गड़ि किउ चड़उ गुर हरि धिआन निहाल ॥ २ ॥ गुरु पउड़ी बेड़ी गुरू गुरु तुलहा हरिनाउ। गुरु सरु सागरु बोहिथो गुरु तीरथु दरीआउ। जे तिसु भावै ऊजली सतसरि नावण जाउ ॥ ३ ॥ पूरो पूरो आखीऐ पूरै तखति निवास। पूरै थानि सुहावणै पूरै आस निरास। नानक पूरा जे मिलै किउ घाटै गुणतास ॥४॥९॥

जो स्त्री (जीवात्मा) गुणवंती है, सभी उसके (प्रसारित) गुणों से प्रभावित होते हैं, अवगुणी स्त्री यों ही पछताया करती है। हे स्त्री (जीवात्मा) यदि तुझे पति-प्रभु की अपेक्षा है, तो (स्मरण रख) वह मिथ्या गुणों (साधनों) द्वारा प्राप्त नहीं होता। वह पति-परमात्मा बहुत दूर है, उसके निकट पहुँचने के लिए (दूरी की नदी पार करने हेतु) तुम्हारे पास कोई कश्ती या रस्सी का पुल भी नहीं (पार कैसे पहुँचोगी ?) ॥१॥ (आगे गुरुजी बताते हैं कि सच्चा गुरु ही कश्ती है) वह मालिक, स्वयं परब्रह्म अपने स्थान पर विराजता है (उसका आसन स्थिर है), यदि कोई सच्चा गुरु मिल जाय अर्थात् विधि बता दे तो उस अनुपम को पाया जा सकता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ परमात्मा एक भव्य भवन के समान है, उसके गुण उसमें जटित मणि-माणिक्य हैं। वहाँ स्वर्ण के गढ़ हैं, उसमें बड़े आनन्ददायी हीरे-मोती लगे हैं; किन्तु उस गढ़ पर सीढ़ी के बिना नहीं चढ़ा जा सकता। (सीढ़ी के रूप में) सद्गुरु का ध्यान करो, (ऊँचा उठ सकोगे और उस हरि के) दर्शन कर सकोगे ॥ २ ॥ गुरु ही सीढ़ी है (जो प्रभु के गढ़ पर चढ़ने का साधन है), गुरु ही नाव है (जो परमात्मा पति के निकट पहुँचाती है) और हरि-नाम ही पुल है (जो जीवात्मा [स्त्री] को प्रभु पति के पास लाता है)। गुरु संसार-सागर से पार होने का जहाज़ है और सब तीर्थों का पुण्य गुरु में ही संकलित है। यदि प्रभु-पति को निर्मल जीवात्मा (स्त्री) ही पा सकती है, तो गुरु ही सच्चा तीर्थ है, उसी की शरण लो (उसी के उपदेश-स्नान से निर्मलता मिलती है) ॥ ३ ॥ परमात्मा परमतत्त्व है, वह सम्पूर्ण है, पूर्णता का वासी है, निराश जीवों की एकमात्र आशा वही है। यदि जीव-रूपी स्त्री के ऐसा परमात्मा-पति मिल जायगा, तो उसके गुण घटेंगे नहीं, (अर्थात् निरन्तर बढ़ते रहेंगे) ॥ ४ ॥ ९ ॥

॥ सिरीरागु महला १ ॥ आवहु भैणे गलि मिलह अंकि सहेलड़ीआह। मिलि कै करह कहाणीआ संम्रथ कंत कीआह। साचे साहिब सभि गुण अउगण सभि असाह ॥ १ ॥ करता

सभु को तेरै जोरि। एकु सबदु बीचारीऐ जा तू ता किआ होरि ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जाइ पुछहु सोहागणी तुसी राविआ किनी गुणी। सहजि संतोखि सीगारीआ मिठा बोलणी। पिरु रीसालू ता मिलै जा गुर का सबदु सुणी ॥ २ ॥ केतीआ तेरीआ कुदरती केवड तेरी दाति। केते तेरे जीअ जंत सिफति करहि दिनु राति। केते तेरे रूप रंग केते जाति अजाति ॥ ३ ॥ सचु मिलै सचु ऊपजै सच महि साचि समाइ। सुरति होवै पति ऊगवै गुरबचनी भउ खाइ। नानक सचा पातिसाहु आपे लए मिलाइ ॥ ४ ॥ १० ॥

(इस पद के सम्बन्ध में मान्यता है कि गुरु नानकदेव ने शेखब्रह्म के साथ मुलाक़ात के समय इसका उच्चारण किया था।) मेरी बहिनो, मेरी सहेलियो, आओ हम गले मिलें और मिलकर उस सर्व-समर्थ प्रभु-पति की बातें करें। (अर्थात् एक जीवात्मा अन्य जीवात्माओं का आह्वान करती हुई कहती है कि उन सबका पति एक परमात्मा ही तो है, क्यों न वे गले मिलकर अपने पति की प्यार-भरी बातों में खो जाएँ।) उस परमात्मा में सब गुण ही गुण हैं और हममें सब अवगुण (इसलिए शायद उसकी बातचीत से उसके गुण हममें भी पैदा हो सकें) ॥ १ ॥ उस कर्त्तार के बल से ही सब स्थिति है, इसलिए उस एक का ध्यान करने से अन्य किसी की अपेक्षा नहीं रह जाती ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जाओ, उन सुहागिनों से पूछो कि उन्होंने किन गुणों से पति को (परमात्मा को) रिझाया था। (वे बताएँगी कि) उन्होंने धैर्य, सन्तोष और मधुर-भाषित के गुणों से अपना श्रृंगार किया था। वह सर्वरसों का स्वामी प्रभु-पति तभी उपलब्ध होता है, जब किसी पूरे गुरु से शिक्षा पाई हो अर्थात् उसके उपदेशों को सुना और मनन किया हो ॥ २ ॥ हे परमात्मा, तेरी क़ुदरत अनन्त है, सर्वस्व तेरा ही दिया है। रात-दिन तेरे असंख्य जीव तेरा गुणगान कर रहे हैं। विश्व के रूप-रंग, जाति-अजाति, समस्त प्रभु की बनाई ही तो हैं। (परमात्मा उन्हीं में से प्रकट है) ॥ ३ ॥ जब जीवात्मा-रूपी स्त्री सत्य (परम) का दामन पकड़ लेती है तो उसे सत्य-स्वरूप पति परमात्मा की प्राप्ति होती है (सत्य में सत्य के ही कारण मिलाप होता है)। जीवात्मा-रूपी स्त्री जब गुरु-शब्दों को समझकर प्रभु-पति से परम-प्रीति के कारण भय खाती है, तो उसकी अन्तरात्मा उज्ज्वल हो जाती है और उसमें पति-प्रेम ठाठें मारने लगता है। तब (गुरुजी कहते हैं) वह सच्चा स्वामी (कृपा करके) उसे अपने में ही लीन कर लेता है ॥ ४ ॥ १० ॥

॥ सिरीरागु महला १ ॥ भली सरी जि उबरी हउमै मुई घराहु । दूत लगे फिरि चाकरी सतिगुर का वेसाहु । कलप तिआगी बादि है सचा वेपरवाहु ॥ १ ॥ मन रे सचु मिलै भउ जाइ । भै बिनु निरभउ किउ थीऐ गुरमुखि सबदि समाइ ॥१॥ रहाउ ॥ केता आखणु आखीऐ आखणि तोटि न होइ । मंगण वाले केतड़े दाता एको सोइ । जिसके जीअ पराण है मनि वसिऐ सुखु होइ ॥ २ ॥ जगु सुपना बाजी बनी खिन महि खेलु खेलाइ । संजोगी मिलि एक से विजोगी उठि जाइ । जो तिसु भाणा सो थीऐ अवरु न करणा जाइ ॥ ३ ॥ गुरमुखि वसतु वेसाहीऐ सचु वखरु सचु रासि । जिनी सचु वणंजिआ गुर पूरे साबासि । नानक वसतु पछाणसी सचु सउदा जिसु पासि ॥ ४ ॥ ११ ॥

अच्छा हुआ जो मेरी बुद्धि अवगुणों से बच गई और अहम्, ममता आदि की वृत्तियाँ नष्ट हो गईं। (ममता आदि के नष्ट हो जाने से) सतिगुरु में विश्वास दृढ़ हुआ और कर्मेन्द्रियाँ, ज्ञानेन्द्रियाँ तथा कामेन्द्रियाँ सब संयत होकर उसी की सेवा में रत हो गईं। जब सच्चा बेपरवाह (परमात्मा) मिल गया, सब तर्क और वाद-विवाद नष्ट हो गये ॥ १ ॥ अतः हे मन, परमात्मा में विश्वास स्थित होने से ही भय नष्ट होता है। परमात्मा का भय मन में धारण करने से ही जीव निर्भय बनता है और गुरु-शब्द के आश्रय प्रभु में समा जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (प्रभु के गुणों का) जितना भी कथन करें, कथनों से उसका अन्त (भेद) नहीं मिलता। सब जीव माँगनेवाले हैं, वह दाता एक ही है जो सबको देता है। हमारे प्राण, हमारा जीव सब उसी की थाती हैं; इसलिये हरि को मन में बसा लेने पर ही सुख-प्राप्ति सम्भव है ॥ २ ॥ संसार स्वप्नवत् अस्थिर है, यह बाजीगर का खेल है जो पल-भर में समाप्त हो जाता है। संयोग की नियति वाले परमात्मा में लीन हो जाते हैं, वियोग की नियति वाले ठोकरें खाते रह जाते हैं। सच तो यह है कि जो उसे मंजूर हो, वही होता है; कुछ और नहीं होता, न ही किया जा सकता है ॥ ३ ॥ श्रद्धा की सच्ची पूंजीवाले गुरुमुख जीव ही सच्चे नाम का सौदा करते हैं। वे सत्य के व्यापारी होते हैं, उनपर सद्गुरु की विशेष कृपा होती है। गुरुजी कहते हैं कि जिनके पास सच्चे नाम का सौदा होता है, वे ही परब्रह्म में लीन हो सकेंगे ॥ ४ ॥ ११ ॥

॥ सिरीरागु महलु १ ॥ धातु मिलै फुनि धातु कउ सिफती सिफति समाइ । लालु गुलालु गहबरा सचा रंगु चड़ाउ ।

सचु मिलै संतोखीआ हरि जपि एकै भाइ ।। १ ।। भाई रे संत जना की रेणु । संत सभा गुरु पाईऐ मुकति पदारथु धेणु ।।१।। रहाउ ।। ऊचउ थानु सुहावणा ऊपरि महलु मुरारि । सचु करणी दे पाईऐ दरु घरु महलु पिआरि । गुरमुखि मनु समझाईऐ आतमरामु बीचारि ।। २ ।। त्रिबिधि करम कमाईअहि आस अंदेसा होइ । किउ गुर बिनु त्रिकुटी छुटसी सहजि मिलिऐ सुखु होइ । निजघरि महलु पछाणीऐ नदरि करे मलु धोइ ।। ३ ।। बिनु गुर मैलु न उतरै बिनु हरि किउ घर वासु । एको सबदु वीचारीऐ अवर तिआगै आस । नानक देखि दिखाईऐ हउ सद बलिहारै जासु ।। ४ ।। १२ ।।

जिस प्रकार धातु, धातु में मिल जाती है (कोई भेद नहीं रह जाता), उसी प्रकार प्रभु की स्तुति करनेवाला उसी में समा जाता है। उस पर परमात्मा का गूढ़ा लाल रंग चढ़ जाता है (अर्थात् वह प्रभु के रंग में रंग जाता है)। सच्चा आनन्द उन्हीं जीवों को मिलता है जो सन्तुष्ट भाव स्थितप्रज्ञ होकर परमात्मा में लीन रहते हैं ।। १ ।। हे भाई, सन्तों की चरण-धूलि बनकर रहो। उन्हीं की संगति में मुक्ति-रूपी अमूल्य पदार्थ देनेवाली कामधेनु-रूपी गुरु की प्राप्ति होती है ।। १ ।। रहाउ ।। वाहिगुरु (परमात्मा) का निवास ऊँचे सुहाने महलों में है (अर्थात् वह सचखण्ड में निवास करता है)। सत्कर्मों से जीव को मनुष्य शरीर (दर, मुक्तिद्वार = मनुष्य शरीर) प्राप्त होता है और प्रभु में प्यार के कारण परमात्मा के संग निवास करने का अधिकार मिलता है (अर्थात् जो प्रभु से प्यार करते हैं, वे परमात्मा के संग ही विराजते हैं)। गुरु के उपदेशों से मन को संयत किया जा सकता है और आत्मा को बुद्धि-विवेक से जाग्रत किया जा सकता है ।। २ ।। जब तक हम त्रिविध कर्म (सत्, रज, तम) करते हैं, तब तक चिन्ताएं और आशाएँ बनी रहेंगी। इन तीनों गुणों की कैद (त्रिकुटी) से छुटकारा दिलाने के लिये गुरु ही सहायक होता है; तब चतुर्थावस्था (सहजावस्था) प्राप्त कर जीव सुखी हो जाता है। इसलिये हे भाई, अपने आतमस्वरूप को पहचानो, तभी उसकी कृपा से सब मलिनता का अन्त होता है ।। ३ ।। गुरु के बिना आत्मा की मैल दूर नहीं होती, परमात्मा की कृपा के बग़ैर मुक्ति नहीं मिलती; इसलिए परमात्मा के नाम का ही उच्चारण करना चाहिए, अन्य सब आशाओं का त्याग करना ही उचित है। गुरु नानक कहते हैं कि वे उसपर बार-बार बलिहार हैं, जो परमात्मा को स्वयं देखता है और दूसरों को दिखा सकने में समर्थ है। (भाव 'गुरु' से है) ।। ४ ।। १२ ।।

॥ सिरीरागु महला १ ॥ ध्रिगु जीवणु दोहागणी मुठी दूजै भाइ । कलर केरी कंध जिउ अहिनिसि किरि ढहि पाइ । बिनु सबदै सुखु ना थीऐ पिर बिनु दूखु न जाइ ॥ १ ॥ मुंधे पिर बिनु किआ सीगारु । दरिघरि ढोई न लहै दरगह झूठु खुआरु ॥ १ ॥ रहाउ ॥ आपि सुजाणु न भुलई सचा वड किरसाणु । पहिला धरती साधि कै सचु नामु दे दाणु । नउ निधि उपजै नामु एकु करमि पवै नीसाणु ॥ २ ॥ गुर कउ जाणि न जाणई किआ तिसु चजु अचारु । अंधुलै नामु विसारिआ मनमुखि अंध गुबारु ॥ आवणु जाणु न चुकई मरि जनमै होइ खुआरु ॥ ३ ॥ चंदनु मोलि अणाइआ कुंगू मांग संधूरु । चोआ चंदनु बहु घणा पाना नालि कपूरु । जे धन कंति न भावई त सभि अडंबर कूड़ु ॥ ४ ॥ सभि रस भोगण बादि हहि सभि सीगार विकार । जबलगु सबदि न भेदीऐ किउ सोहै गुरदुआरि । नानक धंनु सुहागणी जिन सह नालि पिआरु ॥ ५ ॥ १३ ॥

उस दोहागिन (पति द्वारा त्यक्ता) का जीवन तिरस्कृत है, जो अपने पति की अपेक्षा किसी अन्य पुरुष के प्रेम में मग्न है। (अर्थात् वह आत्मा, जो प्रभु-पति को छोड़कर मायावी भावों में लीन रहती है, दुत्कार्य है)। (उसकी स्थिति ऐसी होती है जैसे) शोरा खाई दीवार रात-दिन भुरभुराती और अन्ततः दुर्बल होकर गिर जाती है। परमात्मा के नाम के बग़ैर सुखोपलब्धि नहीं, प्रियतम के बिना दुःखों का कोई अन्त नहीं। अतः ऐ नासमझ स्त्री (जीवात्मा), पिया के बिना किया गया शृंगार धूल है। (ऐसी जीवात्मा को) इस संसार में कोई सहारा नहीं मिलता, अगले जहान में भी वह ख़्वार ही होती है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ परमात्मा सब जानता है, वह कुछ भी नही भूलता; वह समझदार किसान है, जो पहले धरती तैयार करके उसमें 'सत्यनाम' का बीज बोता है। (अर्थात् वह पहले जीवात्मा में गुण पैदा करता है, फिर उसे 'नाम' की शिक्षा देता है।)। इस नाम के बीज से नव-निधि की फसल तैयार होती है, जो कि स्वामी की इच्छा से (दया से) परवान चढ़ती है ॥ २ ॥ जो गुरु को जानकर उससे परमात्मा का ज्ञान नहीं प्राप्त करता। वह गुरु के सही आचरण को नहीं पहचानता। वह नाम-विस्मरण करने के कारण अन्धा है, वह मोह-वश मन के संकेतों पर नाचता है। उसके आवगमन का कोई अन्त नहीं, वह बार-बार जन्म लेता है और मरता हुआ दुःखों को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ यदि स्त्री (जीवात्मा) शरीर में चन्दन का लेप करले, माँग में सिंदूर लगाकर शृंगार करे, मूल्यवान लाली से पट्टियाँ बनाए, इतर-चन्दन-कर्पूर

आदि सुगन्धित पदार्थों से अपने को आकर्षित बनाले, तो भी यदि वह (स्त्री, जीवात्मा) पति को नहीं लुभा पाती, तो उसका सब श्रृंगार व्यर्थ है ।। ४ ।।—जब तक जीवात्मा (स्त्री) गुरु के द्वारा भेद (प्रभु का रहस्य) नहीं पा लेती, वह सुशोभित नहीं हो सकती—उसके लिये रस-भोग व्यर्थ हैं और सब प्रकार के श्रृंगार विकार हैं। गुरुजी कहते हैं कि वे सुहागिनें (प्रभु की प्रिय आत्माएँ) धन्य हैं, जिन्हें केवल अपने प्रिय (प्रभु-पति) से ही प्यार है ।। ५ ।। १३ ।।

।। सिरीरागु महला १ ।। सुंञी देह डरावणी जा जीउ विचहु जाइ । भाहि बलंदी विझवी धूउ न निकसिओ काइ । पंचे रुंने दुखि भरे बिनसे दूजै भाइ ।। १ ।। मूड़े रामु जपहु गुण सारि । हउमै ममता मोहणी सभ मुठी अहंकारि ।। १ ।। रहाउ ।। जिनी नामु विसारिआ दूजी कारै लगि । दुबिधा लागे पचि मुए अंतरि तृसना अगि । गुरि राखे से उबरे होरि मुठी धंधै ठगि ।। २ ।। मुई परीति पिआरु गइआ मुआ वैरु विरोधु । धंधा थका हउ मुई ममता माइआ क्रोधु । करमि मिलै सचु पाईऐ गुरमुखि सदा निरोधु ।। ३ ।। सची कारै सचु मिलै गुरमति पलै पाइ । सो नरु जंमै ना मरै ना आवै ना जाइ । नानक दरि परधानु सो दरगहि पैधा जाइ ।। ४ ।। १४ ।।

जब शरीर में से प्राण निकल जाते हैं, शरीर सूना, डरावना और चेतनाहीन हो जाता है। (मनुष्य की दशा ऐसी हो जाती है जैसे) जलती हुई अग्नि बुझ गयी हो (चेतना-शून्यता), उसमें से धुआँ भी न निकल रहा हो (श्वास भी उसमें न हों)। पाँचों इन्द्रियाँ व्यर्थ में ही दुखी होकर द्वैत भाव में खप गयीं (अर्थात् इन्द्रियाँ माया-पथ पर लगी रहीं) ।। १ ।। हे मूर्ख नासमझ जीव, अपने में गुणों की वृद्धि कर और प्रभु का नाम जप—सृष्टि तो समूची मोह, ममता और अहंकार से युक्त है (उसमें चित्त लगाने से कोई लाभ नहीं।) ।। १ ।। रहाउ ।। जिन जीवों ने दूसरे (विकृत) कार्यों में संलग्न होकर नाम को विस्मृत कर रखा है, वे मन की अस्थिरता में खप जाते हैं, उनके भीतर की तृष्णा-अग्नि कभी शांत नहीं होती। जो (जीव) गुरु की शरण में आ गये, वे ही बच पाये, शेष सब विषय-विकारों में ठगे रहे ।। २ ।। संसार की प्रीति, आकर्षण, पारस्परिक वैर-विरोध, सब नष्ट हो जाते हैं (नश्वर हैं)। (शरीर के नाश होने के साथ ही मनुष्य का) व्यवहार तथा ममता, माया, क्रोध आदि वृत्तियाँ भी नाश हो जाती हैं। (केवल वे ही जीव) जिनपर सच्चे गुरु की कृपा होती है, इन्द्रिय-निरोध द्वारा उस सर्वसत्य-ज्ञान को

प्राप्त कर पाते हैं ॥ ३ ॥ सच्चे कर्मों से गुरु-आदेशानुसार आचरण करने पर ही सच्चा (परमात्मा) मिलता है। (और जिसे परमात्मा मिल जाता है, फिर वह मनुष्य) जन्म-मरण और आवागमन से मुक्त हो जाता है। गुरु नानक जी कहते हैं कि वह जीव परमात्मा के दरबार में सम्मानित होता है ॥ ४ ॥ १४ ॥

॥ सिरीरागु महल १ ॥ तनु जलि बलि माटी भइआ मनु माइआ मोहि मनूरु। अउगण फिरि लागू भए कूरि वजावै तूरु। बिनु सबदै भरमाईऐ दुबिधा डोबे पूरु ॥ १ ॥ मन रे सबदि तरहु चितु लाइ। जिनि गुरमुखि नामु न बूझिआ मरि जनमै आवै जाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ तनु सूचा सो आखीऐ जिसु महि साचा नाउ। भै सचि राती देहुरी जिहवा सचु सुआउ। सची नदरि निहालीऐ बहुड़ि न पावै ताउ ॥ २ ॥ साचे ते पवना भइआ पवनै ते जलु होइ। जल ते त्रिभवणु साजिआ घटि घटि जोति समोइ। निरमलु मैला ना थीऐ सबदि रते पति होइ ॥ ३ ॥ इहु मनु साचि संतोखिआ नदरि करे तिसु माहि। पंच भूत सचि भै रते जोति सची मन माहि। नानक अउगण वीसरे गुरि राखे पति ताहि ॥ ४ ॥ १५ ॥

(मृत्यु के बाद की स्थिति का चित्रण है) शरीर जलकर मिट्टी होता है और मोह-माया से प्रताड़ित मन भी जड़ हो जाता है। जीवन में किये पाप (अवगुण) तब उसे कष्ट पहुँचाते हैं (उसके लिये दण्ड का कारण बनते हैं) और झूठ ढोल पीट-पीटकर अपने अस्तित्व का परिचय देने लगता है। परमात्मा के नाम की पहचान के बिना जीव भ्रमित हुआ डोलायमान होता है। इस दुविधा ने समूह के समूह जीवों का सत्यानाश कर दिया है ॥ १ ॥ (इसलिये) ऐ मन, तू नाम-स्मरण में रम जा, (क्योंकि) जो गुरु के उपदेशों से प्रेरित होकर नाम नहीं जपते, वे जन्म-मरण के चक्र में ही पीड़ित होते रहते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ वही शरीर श्रेष्ठ है, जिसमें परमात्मा का नाम बसा है। जिसकी देह सच्चे प्रभु के भय में मग्न है, जिसकी जिह्वा निरन्तर उसका नाम जपती है, उसपर (सत्य-लोक में) कृपा की दृष्टि रखी जाती है और दोबारा कभी उसे प्रताड़ित नहीं किया जाता ॥ २ ॥ (अब उस परमात्मा को सृष्टि का मूल बताते हुए कहते हैं कि) उस सच्चे परमेश्वर ने ही पवन की रचना की है, पवन से जल हुआ है और पुनः जल से तीनों लोकों की रचना हुई है, प्रत्येक भूत में उसकी ज्योति विद्यमान है। यदि (ऐसे में) हम नाम के रंग में आत्मा को रंग लें, तो सदैव निर्मल रहेंगे, हमें (दुष्कर्मों और इन्द्रिय-भोगों की)

मैल नहीं लग सकेगी ॥ ३ ॥ मनुष्य का मन (जो तृष्णादि से पीड़ित था) सच्चे नाम को पाकर सन्तुष्ट होता है और हरिकृपा से जीव उसी में लीन हो जाता है। भौतिक तत्त्व (पंच-भूत) जिस वाहिगुरु के हुकुम में हैं, उसी की ज्योति को मन में बसा लो, तो (नानक) सब प्रकार के अवगुणों का नाश हो जाता है और स्वयं सतिगुरु उस जीव के रक्षक होते हैं ॥ ४ ॥ १५ ॥

॥ सिरीरागु महला १ ॥ नानक बेड़ी सच की तरीऐ गुर वीचारि। इकि आवहि इकि जावही पूरि भरे अहंकारि। मनहठि मती बूडीऐ गुरमुखि सचु सु तारि ॥ १ ॥ गुर बिनु किउ तरीऐ सुखु होइ। जिउ भावै तिउ राखु तू मै अवरु न दूजा कोइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ आगै देखउ डउ जलै पाछै हरिओ अंगूरु। जिस ते उपजै तिस ते बिनसै घटि घटि सचु भरपूरि। आपे मेलि मिलावही साचै महलि हदूरि ॥ २ ॥ साहि साहि तुझु संमला कदे न विसारेउ। जिउ जिउ साहबु मनि वसै गुरमुखि अंम्रितु पेउ। मनु तनु तेरा तू धणी गरबु निवारि समेउ ॥ ३ ॥ जिनि एहु जगतु उपाइआ त्रिभवणु करि आकारु। गुरमुखि चानणु जाणीऐ मनमुखि मुगधु गुबारु। घटि घटि जोति निरंतरी बूझै गुरमति सारु ॥ ४ ॥ गुरमुखि जिनी जाणिआ तिन कीचै साबासि। सचे सेती रलि मिले सचे गुण परगासि। नानक नामि संतोखीआ जीउ पिंडु प्रभ पासि ॥ ५ ॥ १६ ॥

यदि जीव गुरु-उपदेशों के अनुसार भजन-स्मरण करे, तो वह सत्यनाम की नौका में बैठकर भवसागर से पार होता है। यदि वह अहंकार की कश्ती में बैठेगा, तो अन्य असंख्य जीवों की भाँति जन्म-मरण के चक्र में पड़ेगा। (अर्थात्) मन की मानकर चलोगे तो डूबोगे, गुरु की मानोगे तो संसार-सिन्धु से पार हो जाओगे ॥ १ ॥ सतिगुरु की कृपा के बग़ैर कोई मुक्त नहीं होता और न ही सुख पाता है। अतः (उसमें इतना दृढ़ विश्वास बनाओ कि) जैसी उसकी इच्छा हो, वह रखे, हमारे मन में द्वैत-भाव नहीं आना चाहिए ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (संसार एक जंगल की नाईं हैं, जहाँ) आगे देखें तो धीरे-धीरे नश्वरता का हाथ फैल रहा है, दूसरी ओर नई कोपलें भी फूट रही हैं (अर्थात् एक ओर मृत्यु का प्रसार है तो दूसरी ओर रचना का विकास)। जीव जिस सत्य से पैदा होते हैं, उसी सत्य में समा जाते हैं, वही सत्य उनके भीतर निवास करता है; जिस पर उस सच्चे परमेश्वर की पूर्ण कृपा हो जाती है, वह ही सतिसंगति के लाभ

से सत्यस्वरूप हो जाता है ॥ २ ॥ (इसलिए) हे प्रभु, मैं श्वास-श्वास तुम्हारा स्मरण करूंगा, कभी तुम्हें विस्मृत नहीं करूँगा। ज्यों-ज्यों प्रभु-नाम के कारण स्वयं नामी (परमात्मा) मन में वास करेगा, मैं गुरु-कृपा के अमृत का पान कर सकूँगा। हे स्वामी, मेरा तन, मन सब तुम्हारे अर्पण है, (इसलिए) मेरा अभिमान विनष्ट करके मुझे अपने में ही लीन कर लो ॥ ३ ॥ जिस वाहिगुरु ने इस संसार की रचना की है, तीनो लोकों को आकार दिया है, उसकी सूझ पा लेनेवाले गुरुमुख जीव आलोक में प्रतिष्ठित हैं और मनमुख (मायाधारी जीव) जीव अज्ञान के अँधेरे में ही टटोल कर परेशान हो रहे हैं। (यों तो) प्रत्येक शरीर में परमात्मा की ज्योति मौजूद है, (तथापि) गुरमुख जीव ही उस यथार्थ तत्त्व को समझ पाते हैं ॥ ४ ॥ जिन गुरमुख जीवों (गुरु-उपदेश को शिरोधार्य करनेवाले जीव) ने परमात्मा को पहचाना है, वे धन्य हैं। वे उस सच्चे परमात्मा में विलीन हो गये हैं, उसी के आलोक से आलोकित हैं। गुरु नानक जी कहते हैं कि उन्होंने अपनी देह और आत्मा प्रभु को समर्पित कर दी है और नाम-रस में ही नित्य सन्तुष्ट हैं ॥ ५ ॥ १६ ॥

॥ सिरीरागु महला १ ॥ सुणि मन मित्र पिआरिआ मिलु वेला है एह। जब लगु जोबनि सासु है तबलगु इहु तनु देह। बिनु गुण कामि न आवई ढहि ढेरी तनु खेह ॥ १ ॥ मेरे मन लै लाहा घरि जाहि। गुरमुखि नामु सलाहीऐ हउमै निवरी भाहि ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सुणि सुणि गंढणु गंढीऐ लिखि पड़ि बुझहि भारु। त्रिसना अहिनिसि अगली हउमै रोगु विकारु। ओहु वेपरवाहु अतोलवा गुरमति कीमति सारु ॥ २ ॥ लख सिआणप जे करी लख सिउ प्रीति मिलापु। बिनु संगति साध न ध्रापीआ बिनु नावै दूख संतापु। हरि जपि जीअरे छुटीऐ गुरमुखि चीनै आपु ॥ ३ ॥ तनु मनु गुर पहि वेचिआ मनु दीआ सिरु नालि। त्रिभवणु खोजि ढंढोलिआ गुरमुखि खोजि निहालि। सतगुरि मेलि मिलाइआ नानक सो प्रभु नालि ॥ ४ ॥ १७ ॥

हे मन, हे मेरे प्रिय मित्र, प्रभु को मिल सकने का यही समय है (अर्थात् प्रभु-मिलन मानव शरीर में ही सम्भव है)। जब तक यौवन और प्राण मौजूद हैं, तब तक यह शरीर प्रभु को अर्पित कर दो (आशय यह कि बुढ़ापा आने पर प्रभु-भजन सम्भव न हो सकेगा)। गुण-रहित यह शरीर किसी काम का नहीं, यों ही बरबाद होकर मिट्टी में मिल

जायगा ॥ १ ॥ अतः मेरे मन, (इस अवसर का) लाभ उठाकर अपने असली घर (सत्लोक) में प्रवेश का उद्यम बना लो। गुरु के आदेशानुसार परमात्मा का नाम जपो; इससे अहंकार की अग्नि शीतल होती है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ नाम के अलावा व्यर्थ की बातें श्रवणकर यदि बनावटी प्रपंच रचे जायँ और शास्त्रों-वेदों आदि को पढ़-लिखकर अपने ऊपर बोझ लादने का प्रयास किया जाय, तो वह (गधे के लदान के समान) कष्ट का ही कारण होगा। मनुष्यों में रात-दिन तृष्णा का रोग बढ़ता चला जा रहा है, अहंकार का विकार पीड़ा पहुँचा रहा है, इसलिये गुरमति का आश्रय लेकर (हे जीव) उस अतुल्य, अनुपम ब्रह्म का रहस्य प्राप्त करो ॥ २ ॥ यदि तुम स्थित-प्रज्ञ नहीं रह सकते, अपनी बुद्धि पर विश्वास करते हुए अनेक अन्य प्रकार के मेल-मिलाप बनाते हो, तो भी सन्तों की संगति और नाम-जाप के बिना दुःख-पीड़ा ही प्राप्त होगी। अतः (सच्चाई यह है कि) गुरमुख का लक्ष्य प्रभु-नाम का जाप होना चाहिए, जिससे पूर्ण मोक्ष लाभ होता एवं जीव आत्मोपलब्धि करता है ॥ ३ ॥ मैंने तो अपना तन, मन गुरु को सौंप दिया है, उनके संकेत पर मैं प्राण भी न्यौछावर कर सकता हूँ। सच्चा गुरु परमात्मा से साक्षात्कार करवा देता है। वहाँ से ज्ञान-मार्ग आदि को प्राप्त करके सुख-लाभ होता है। गुरु नानक जी कहते हैं, सतिगुरु कृपा-वश जीव को परमात्मा के निकट पहुँचाता और दोनों का मिलाप करवा देता है ॥ ४ ॥ १७ ॥

॥ सिरीरागु महला १ ॥ मरणै की चिंता नही जीवण की नही आस। तू सरब जीआ प्रतिपालही लेखै सास गिरास। अंतरि गुरमुखि तू वसहि जिउ भावै तिउ निरजासि ॥ १ ॥ जीअरे राम जपत मनु मानु। अंतरि लागी जलि बुझी पाइआ गुरमुखि गिआनु ॥ १ ॥ रहाउ ॥ अंतर की गति जाणीऐ गुर मिलीऐ संक उतारि। मुइआ जितु घरि जाईऐ तितु जीवदिआ मरु मारि। अनहद सबदि सुहावणे पाईऐ गुर वीचारि ॥ २ ॥ अनहद बाणी पाईऐ तह हउमै होइ बिनासु। सतगुरु सेवे आपणा हउ सद कुरबाणै तासु। खड़ि दरगह पैनाईऐ मुखि हरिनाम निवासु ॥ ३ ॥ जह देखा तह रवि रहे सिव सकती का मेलु। त्रिहु गुण बंधी देहुरी जो आइआ जगि सो खेलु। विजोगी दुखि विछुड़े मनमुखि लहहि न मेलु ॥ ४ ॥ मनु बैरागी घरि वसै सच भै राता होइ। गिआन महारसु भोगवै बाहुड़ि भूख न

होइ। नानक इहु मनु मारि मिलु भी फिरि दुखु न होइ ॥ ५ ॥ १८ ॥

(जो लोग मन में यह निश्चय कर लेते हैं कि) परमात्मा ही सब जीवों का प्रतिपालक है और एक-एक श्वास तथा जीवन के भोगों का हिसाब-किताब उसके पास मौजूद रहता है, (उन लोगों के लिये) जीने की चिन्ता और मृत्यु का भय, सब दूर हो जाते हैं। गुरु की कृपा से उनके भीतर प्रभु निवास करता है; जैसा उसे रुचे, वैसा वह निर्णय करले (कोई परामर्श नहीं दिया जा सकता) ॥ १ ॥ हे मन, हरि-नाम जपने से मन में (ऐसा) निश्चय उपजता है और गुरु के उपदेशों को धारण करने से अन्तर की अग्नि (तृष्णा की) बुझ जाती है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मनुष्य भीतर की (आतमा की) गति तभी जान सकता है, जब वह सर्व-शंकाओं से ऊपर उठकर गुरु की शरण में आता है। मृत्यूपरांत जिस स्थिति को पाना है, मन की आशा-तृष्णाओं को मारकर जीते-जी उसका अनुभव करो। गुरु की कृपा से सुन्दर अनाहत शब्दों (नाद) का श्रवण सम्भव है ॥ २ ॥ अनाहत शब्द-श्रवण से अहंकार का नाश होता है। ऐसा सतिगुरु की अथक सेवा से ही सम्भव है, (हम) उसके नित्य बलिहार जाते हैं। (ऐसे जीवों की) जिह्वा पर हरिनाम का निरन्तर जाप रहता है और उन्हें परमात्मा के सम्मुख सत्कार का जोड़ा पहनाया जाता है (उन्हें सम्मानित किया जाता है) ॥ ३ ॥ जहाँ तक मेरी दृष्टि जाती है, यह सृष्टि प्रकृति (शक्ति) तथा पुरुष (चेतन) के मेल से बनी है (और स्वयं वाहिगुरु उसके कण-कण में व्याप्त है)। शरीर सत्, रज तथा तम, इन तीन गुणों की सीमाओं में बनता और अपने खेल रचाता है। जो मनमुखी होते हैं, वे वियोग का मार्ग पकड़ते हैं और परमात्मा से दूर हटते चलते हैं ॥ ४ ॥ (किन्तु) जो मन की चेतना को (वाह्य संसार से) विरक्त बनाकर उसे घर बसने के लिये (अन्तर्मखी) विवश कर लेते हैं; उसमें सच्चे परमात्मा का भय उदित होता है, वे ज्ञान-रूपी महारस का पान करते हैं (अर्थात् उन्हें ज्ञान उपलब्ध होता है) और उनकी सब सांसारिक इच्छाओं का नाश हो जाता है। गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि (ऐ मनुष्य) तू भी इस मन को मारकर (नियंत्रित करके) प्रभु की शरण में आ, तुझे कभी कोई दुःख-संताप नहीं सता पाएगा ॥ ५ ॥ १८ ॥

॥ सिरीरागु महला १ ॥ एहु मनो मूरखु लोभीआ लोभे लगा लुभानु। सबदि न भीजै साकता दुरमति आवनु जानु। साधू सतगुरु जे मिलै ता पाईऐ गुणी निधानु ॥ १ ॥ मन रे हउमै छोडि गुमानु। हरिगुरु सरवरु सेवि तू पावहि दरगह मानु ॥१॥

रहाउ ॥ रामनामु जपि दिनसु राति गुरमुखि हरि धनु जानु । सभि सुख हरि रस भोगणे संतसभा मिलि गिआनु । निति अहिनिसि हरि प्रभु सेविआ सतगुरि दीआ नामु ॥ २ ॥ कूकर कूड़ु कमाईऐ गुरनिंदा पचै पचानु । भरमे भूला दुखु घणो जमु मारि करै खुलहानु । मनमुखि सुखु न पाईए गुरमुखि सुखु सुभानु ॥ ३ ॥ ऐथै धंधु पिटाईऐ सचु लिखतु परवानु । हरि सजणु गुरु सेवदा गुर करणी परधानु । नानक नामु न वीसरै करमि सचै नीसाणु ॥ ४ ॥ १६ ॥

(ऐ भाई) यह मन मूर्ख है, (इसीलिए) सांसारिक पदार्थों का लोभ कर रहा । परमात्मा से दूर होने के कारण यह प्रभु-नाम में लीन नहीं होता और इसी मूर्खता-वश नित्य जन्म-मरण के चक्कर में रहता है । यदि इसे पूरा सतिगुरु मिल जाय, तो यह उस गुणों के भण्डार प्रभु को पा सकता है ॥ १ ॥ (इसलिये) ऐ मन, तू अहंकार का त्यागकर और गुरु की सेवा में रत हो, तभी पवित्र होने पर तुझे परब्रह्म के सम्मुख सम्मान मिलेगा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गुरु की कृपा से हरि-धन को पहचानो और रात-दिन प्रभु-नाम का भजन करो । सन्तों की संगति में रहने के कारण जब शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति होगी, तो हरि-रस का भोग करने से सभी सुख हस्तामलक-सम हो जायँगे । सतिगुरु जब नाम का रहस्य बता देता है तो नित्य रात-दिन जीव उसी की सेवा में लीन हो जाता है ॥ २ ॥ यदि (वह जीव) मिथ्या तत्त्वों में रम जाए तो कुत्ते की नाईं (खाद्य-अखाद्य में मुँह मारता है) और गुरु-निन्दा उसका भोजन हो जाता है । वह भ्रमों में पड़ा असीम दुःखों का भोग करता है, यमदूत उसे दण्डित करते और कष्ट पहुँचाते हैं । मन के मार्ग पर चलने से कभी सुख नहीं मिलता, केवल गुरु-सेवी को ही सर्वसुखों की लब्धि होती है ॥ ३ ॥ यहाँ सांसारिक धन्धों में पड़े दुखी होते हैं, वहाँ (प्रभु के दरबार में) सत्कर्मों का हिसाब ही स्वीकार हो सकता है; (इसलिये सही पथ पर चलनेवाला जीव निरन्तर) हरि के प्रतिनिधि गुरु की ही सेवा करता है, उसके लिये गुरु-सेवा सर्वोच्च कमाई है । (नानक) उसे कभी नाम विस्मृत नहीं होता; उस पर परमात्मा की कृपा होती है और कृपा-पात्रता का चिह्न अंकित कर दिया जाता है ॥ ४ ॥ १९ ॥

॥ सिरीरागु महला १ ॥ इकु तिलु पिआरा वीसरै रोगु वडा मन माहि । किउ दरगह पति पाईऐ जा हरि न वसै मन माहि । गुरि मिलिऐ सुखु पाईऐ अगनि मरै गुण माहि ॥ १ ॥ मन रे अहिनिसि हरिगुण सारि । जिन खिनु पलु नामु न वीसरै ते जन

विरले संसारि ।। १ ।। रहाउ ।। जोती जोति मिलाईऐ सुरती सुरति संजोगु । हिंसा हउमै गतु गए नाही सहसा सोगु । गुरमुखि जिसु हरि मनि वसै तिसु मेले गुरु संजोगु ।। २ ।। काइआ कामणि जे करी भोगे भोगणहारु । तिसु सिउ नेहु न कीजई जो दीसै चलणहारु । गुरमुखि रवहि सोहागणी सो प्रभु सेज भतारु ।। ३ ।। चारे अगनि निवारि मरु गुरमुखि हरि जलु पाइ । अंतरि कमलु प्रगासिआ अंम्रितु भरिआ अघाइ । नानक सतगुरु मीतु करि सचु पावहि दरगह जाइ ।। ४ ।। २० ।।

क्षण-भर के लिये भी यदि प्रियतम प्रभु विस्मृत हो, तो मन विकृत (रोगी) हो जाता है । (इसलिए) जब तक परमात्मा का नाम मन में न बसाया जायगा, उसके सम्मुख सम्मानित हो सकने की कल्पना ही सम्भव नहीं । सच्चे गुरु से भेंट हो जाय तो स्थायी सुख की उपलब्धि होती है और भीतर की अग्नि (तृष्णा) शान्त हो जाती है ।। १ ।। ऐ मन, दिन-रात (तू) प्रभु के गुणों का उच्चारण कर (नाम जपा कर); संसार में ऐसे लोग विरले ही होते हैं, जिन्हें क्षण-भर के लिये भी प्रभु-नाम नहीं भूलता ।। १ ।। रहाउ ।। यदि (हम) अपनी आत्मा की ज्योति को परमात्मा की ज्योति में लीन कर दें, अपनी चित्त-वृत्तियों को आध्यात्मिक वृत्तियों में मिला दें तो हिंसा, अभिमान, शंका, शोक आदि की वृत्तियाँ स्वतः ही नष्ट हो जाएँगी । तब हरि-स्मरण द्वारा जो गुरु-उपदेशों को चित्त में धारण करेगा, वही प्रभु से संयोग का अधिकारी हो जायगा ।। २ ।। यदि शरीर-रूपी स्त्री को निष्कामना द्वारा शुद्ध करके श्रेष्ठतम भोग (गुरु का उपदेश) भोगने को तत्पर किया जाय और सब नश्वर वस्तुओं से लगाव तोड़कर (वह केवल अपने प्रभु-पति से ही प्रेम रखे) तो वह गुरु की सही शिक्षा के कारण वास्तव में सुहागिन हो सकेगी और अपने पति (परमात्मा) के साथ रंग-रेलियाँ मनाएगी ।। ३ ।। वे गुरमुख जीव हरिनाम का शीतल जल डालकर हिंसा, मोह, लोभ और क्रोध की चारों अग्नियाँ बुझा देते हैं । उनके अन्तर में हृदय-कमल आत्मप्रकाश से आलोकित हो उठता है और उनका मन आत्मानन्द-रूपी अमृत से लबालब भर जाता है । अतः गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि ऐ जीव, तू सतिगुरु के साथ मित्रता बना, वही तुझे प्रभु की शरण में पहुँचाएगा ।। ४ ।। २० ।।

।। सिरीरागु महला १ ।। हरि हरि जपहु पिआरिआ गुरमति ले हरि बोलि । मनु सच कसवटी लाईऐ तुलीऐ पूरै तोलि । कीमति किनै न पाईऐ रिद माणक मोलि अमोलि ।।१।।

भाई रे हरि हीरा गुर माहि । सतसंगति सतगुरु पाईऐ अहिनिसि सबदि सलाहि ।। १ ।। रहाउ ।। सचु वखरु धनु रासि लै पाईऐ गुर परगासि । जिउ अगनि मरै जलि पाइऐ तिउ त्रिसना दासनिदासि । जम जंदारु न लगई इउ भउजलु तरै तरासि ।। २ ।। गुरमुखि कूड़ु न भावई सचि रते सच भाइ । साकत सचु न भावई कूड़ै कूड़ी पांइ । सचि रते गुरि मेलिऐ सचे सचि समाइ ।। ३ ।। मन महि माणकु लालु नामु रतनु पदारथु हीरु । सचु वखरु धनु नामु है घटि घटि गहिर गंभीरु । नानक गुरमुखि पाईऐ दइआ करे हरि हीरु ।। ४ ।। २१ ।।

हे प्रिय जीव, गुरु की शिक्षा द्वारा हरि का नाम जपो; इससे मन को संयम की सच्ची कसौटी पर कसकर वाहिगुरु की यथार्थ तुला पर तोला जा सकता है । यह हृदय की मणि अमूल्य है, इसका मोल (वाहिगुरु के अतिरिक्त) कोई नहीं डाल सकता ।। १ ।। हे भाई, हरि-रूपी हीरा गुरु के रूप में ही दीख पड़ता है, किन्तु उसकी उपलब्धि दिन-रात नाम-स्तुति करने एवं साधु-संगति से ही होती है ।। १ ।। रहाउ ।। श्रद्धा की राशि द्वारा सत्य का सौदा किया जाता है, जिससे गुरुकृपा-रूपी आलोक मिलता है । जैसे जल डालने से अग्नि बुझ जाती है, वैसे ही तृष्णा (-रूपी अग्नि गुरुभक्ति-रूपी जल से) दासों की दास (निपट समर्पित) हो जाती है । (ऐसा जीव) यमदूतों के दण्ड से सुरक्षित होता, भवसागर से स्वयं पार उतरता तथा दूसरों को भी मुक्तिदान देता है ।। २ ।। गुरमुख जीव को मिथ्यात्व स्वीकृत नहीं होता, वे सदैव सच्चे भाव से सच्चे परमात्मा में लीन रहते हैं । किन्तु गुरु से विमुख जीवों को सत्य नहीं रुचता, क्योंकि वहाँ झूठ की नींव भी झूठ पर ही धरी होती है । जो सच्चे परमात्मा से प्यार करते और गुरु की शिक्षाएँ पालते हैं, वे अपने सच्चे भाव के कारण परम-सत्य में ही समा जाते हैं ।। ३ ।। उनके मन में हीरे-सा अमूल्य परम पदार्थ निवास करता है, परमात्मा घट-घट में गम्भीरता-पूर्वक विद्यमान है, इसकी लब्धि नाम-राशि से ख़रीदे सच्चे सौदे के समान है । गुरुजी कहते हैं कि जीव को, गुरु प्राप्त हो जाय तो, वह उसकी दया से परमात्मा-रूपी हीरा खोज ही निकालता है ।। ४ ।। २१ ।।

।। सिरीरागु महला १ ।। भरमे भाहि न विझवै जे भवै दिसंतर देसु । अंतरि मैलु न उतरै ध्रिगु जीवणु ध्रिगु वेसु । होरु कितै भगति न होवई बिनु सतिगुर के उपदेस ।। १ ।। मन रे गुरमुखि अगनि निवारि । गुर का कहिआ मनि वसै हउमै

त्रिसना मारि ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मनु माणकु निरमोलु है रामनामि पति पाइ । मिलि सतसंगति हरि पाईऐ गुरमुखि हरि लिव लाइ । आपु गइआ सुखु पाइआ मिलि सललै सलल समाइ ॥ २ ॥ जिनि हरि हरि नामु न चेतिओ सु अउगुणि आवै जाइ । जिसु सतगुरु पुरखु न भेटिओ सु भउजलि पचै पचाइ । इहु माणकु जीउ निरमोलु है इउ कउडी बदलै जाइ ॥ ३ ॥ जिंना सतगुरु रसि मिलै से पूरे पुरख सुजाण । गुर मिलि भउजलु लंघीऐ दरगह पति परवाणु । नानक ते मुख उजले धुनि उपजै सबदु नीसाणु ॥ ४ ॥ २२ ॥

देश-देश में वैरागियों की भाँति घूमते रहने से तृष्णा की आग ठण्डी नहीं होती । मन से यदि मैल ही दूर न हुई तो ऐसे जीवन और ऐसे (वैरागियों जैसे) वेष को धिक्कार है । भक्ति की प्राप्ति सतिगुरु के बताए पथ पर चलने से ही सम्भव है (उक्त बनावटी बातों से भक्ति नहीं होती) ॥ १ ॥ हे मन, तू गुरु के उपदेशों में रत होकर इस तृष्णा-अग्नि का निवारण कर । यदि तू गुरु की आज्ञा को शिरोधार्य करेगा, तो अहंकार और तृष्णा स्वत: नष्ट हो जायँगे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मन के भीतर ही राम कहलानेवाला (रमणशील) अमूल्य वाहिगुरु मौजूद है, जिसे सबके स्वामी रूप में जाना जाता है । भीतर से भी उसकी उपलब्धि तब होती है जब जीव साधुजनों की संगति करता एवं गुरु-उपदेशों के अनुसार परमात्मा में ध्यान लगाता है । (जीव का) अहंकार दूर होता है तो (वह परम ज्योति में ऐसे लीन हो जाता है जैसे) जल में जल मिलकर अभेद होता है । उसे परम सुख-आनन्द की प्राप्ति होती है ॥ २ ॥ जो जीव हरि-नाम का चिन्तन नहीं करता, वह अवगुणी निरन्तर आवागमन के चक्कर में पड़ा रहता है । जिसे सच्चा सतिगुरु नहीं मिला, वह संसार-सागर की ऊब-डूब में ही खपते हैं । यह अमूल्य रत्नों के समान जीवात्मा इस प्रकार कौड़ियों में तुल जाता है ॥ ३ ॥ जिन्हें सतिगुरु से सूझ मिल गयी है, वे ज्ञानी हैं और परमात्मा को पा लेते हैं । गुरु के आश्रय से ही संसार-सागर को पार किया जा सकता है, उसी की कृपा से प्रभु-शरण की प्राप्ति होती है । गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि जिन जीवों के अन्तर में परमात्मा का नाद प्रकट हो जाता है और जिनकी वृत्ति प्रभु में दृढ़ हो जाती है, वे निर्मल हैं, उनके मुख उज्ज्वल होते हैं ॥ ४ ॥ २२ ॥

॥ सिरीरागु महला १ ॥ वणजु करहु वणजारिहो वखरु लेहु समालि । तैसी वसतु विसाहीऐ जैसी निबहै नालि । अगै साहु सुजाणु है लैसी वसतु समालि ॥ १ ॥ भाई रे रामु कहहु

चितु लाइ । हरिजसु वखरु लै चलहु सहु देखै पतीआइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिना रासि न सचु है किउ तिना सुखु होइ । खोटै वणजि वणंजिऐ मनु तनु खोटा होइ । फाही फाथे मिरग जिउ दूखु घणो नित रोइ ॥ २ ॥ खोटे पोतै ना पवहि तिन हरिगुर दरसु न होइ । खोटे जाति न पति है खोटि न सीझसि कोइ । खोटे खोटु कमावणा आइ गइआ पति खोइ ॥ ३ ॥ नानक मनु समझाईऐ गुर कै सबदि सालाह । रामनाम रंगि रतिआ भारु न भरमु तिनाह । हरि जपि लाहा अगला निरभउ हरि मन माह ॥ ४ ॥ २३ ॥

[यहाँ गुरुजी जीवात्मा को व्यापारी रूप में प्रस्तुत करते हैं और उससे इस संसार में आकर ऐसे सौदे के व्यापार की कामना करते हैं, जिसमें कभी हानि न हो] ।

हे व्यापारी जीवात्मा, तू यहाँ (संसार में) व्यापार करने आई है, सम्भल कर अपने माल का सौदा करना । ऐसी ही वस्तु में (धन) लगाना, जिसमें हानि की कोई सम्भावना न हो । आगे परमात्मा (रूपी सौदागर) बड़ा चतुर है, (तुम्हारी वस्तु का) सही-सही मोल लगा देगा ॥ १ ॥ हे भाई, एकाग्र मन होकर राम-भजन करो, हरि-यश का सौदा लेकर (जीवन का) व्यापार करो, प्रभु रूपी सौदागर (इसे) देखते ही माल से सन्तुष्ट हो जायगा (और मुँह माँगे दाम देगा) ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिनके पास सत्य की पूँजी नहीं, उन्हें कभी सुख नहीं मिल सकता । मिथ्या का सौदा करनेवाले जीव का तो तन-मन सब मिथ्या होता है । उसकी दशा जाल में फँसे मृग के समान होती है; वह नित्य कष्ट सहता और दु:खों में रोता है ॥ २ ॥ मिथ्या का आश्रय लेनेवाला कभी परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकता, वह परमज्योति में (पोता=ख़ज़ाना, वह परमात्मा के ख़ज़ाने नहीं पड़ता) कभी लीन नहीं होता । मिथ्या व्यापार का कोई नियम-सिद्धान्त (जाति व पति) नहीं, न ही ऐसे व्यापार में कोई सफलता मिलती है । मिथ्या कर्म से तो कमाई भी मिथ्या ही होगी और व्यापारी की बनी साख सदा के लिए नष्ट हो जायगी । गुरु जी कहते हैं (इसलिए हमें) (भटके हुए) मन को गुरु के श्रेष्ठ उपदेशों द्वारा सतपथ पर लगाना होगा, (क्योंकि) जो राम-नाम के रंग में लीन होते हैं, उन्हें पापों का बोझ या बाह्य भ्रम नहीं रह जाता । (अत: ऐ मन !) हरि-नाम का स्मरण करके अधिकाधिक लाभ कमाओ और परमात्मा को मन में बसाकर निर्भय हो जाओ ॥ ४ ॥ २३ ॥

॥ सिरीरागु महला १ घरु २ ॥ धनु जोबनु अरु फुलड़ा नाठीअड़े दिन चारि । पबणि केरे पत जिउ ढलि ढुलि

जुंमणहार ।। १ ।। रंगु माणि लै पिआरिआ जा जोबनु नउहुला । दिन थोड़ड़े थके भइआ पुराणा चोला ।। १ ।। रहाउ ।। सजण मेरे रंगुले जाइ सुते जीराणि । हंभी वंञा डुमणी रोवा झीणी बाणि ।। २ ।। की न सुणेही गोरीए आपण कंनी सोइ । लगी आवहि साहुरै नित न पेईआ होइ ।। ३ ।। नानक सुती पेईऐ जाणु विरती संनि । गुणा गवाई गंठड़ी अवगण चली बंनि ।। ४ ।। २४ ।।

(मनुष्य का) धन और यौवन तो फूलों की नाईं चार दिन का मेहमान होता है; ये तत्त्व पानी में पैदा होनेवाले पत्तों की भाँति मुरझाकर नष्ट हो जानेवाले हैं ।। १ ।। (इसलिए) ऐ प्रिय, जब तक जवानी का चढ़ाव है, आनन्द और उल्लास मना ले, थोड़े ही दिनों में यह चोला (शरीर) पुराना पड़ जायगा ।। १ ।। रहाउ ।। (हमारे प्रियजनों में) अनेक परिजन खुशियों में झूमते रहकर भी अन्ततः श्मशान में जा सोए (मृत्यु को प्राप्त हुए) और मैं भी (अर्थात् अन्य शेष भी) जो पीछे अकेली रहकर उन्हें रोती रही (अनिर्णीत भाव से, शायद मैं बच जाऊँ !), अब वहीं जा रहूँगी ।। २ ।। हे सुन्दरी (जीवात्मा !) क्या तू रोज़-रोज़ यह बात नहीं सुनती कि तुझे ससुराल जाना है, कोई (स्त्री) सदा के लिए पीहर नहीं रहती ? ।। ३ ।। नानक जी कहते हैं कि जो (स्त्री) बेपरवाह हुई पीहर में ही सोई रहे, वह दिन-दहाड़े लुट जानेवाले राही के समान है। (उसका आचरण) अपने यथार्थ गुणों के कोष को गँवाकर अवगुणों की गठरी बाँधने के समान है ।। ४ ।। २४ ।।

[टिप्पणी—गुरुजी ने यहाँ जीवात्मा को सुन्दर स्त्री, परमात्मा के घर को ससुराल, संसार के कर्म-कलाप को पीहर कहा है। स्त्री का वास्तविक घर पति की शरण है, अर्थात् उसे परमात्मा के मिलन का उपाय करना चाहिए, बेपरवाह होकर पीहर में सोई नहीं रहना चाहिए ।]

।। सिरीरागु महला १ घरु दूजा २ ।। आपे रसीआ आपि रसु आपे रावणहारु । आपे होवै चोलड़ा आपे सेज भतारु ।।१।। रंगि रता मेरा साहिबु रवि रहिआ भरपूरि ।। १ ।। रहाउ ।। आपे माछी मछुली आपे पाणी जालु । आपे जाल मणकड़ा आपे अंदरि लालु ।। २ ।। आपे बहुबिधि रंगुला सखीए मेरा लालु । नित रवै सोहागणी देखु हमारा हालु ।। ३ ।। प्रणवै नानकु बेनती तू सरवरु तू हंसु । कउलु तू है कवीआ तू है आपे वेखि विगसु ।। ४ ।। २५ ।।

परमात्मा रसवान् है, रस है और स्वत: रस को भोगनेवाला भी है। (कामिनी) स्त्री का रूप भी है और पति की सेज पर भी वही मौजूद है (अर्थात् सभी रूपों में प्रभु स्वयं ही व्याप्त है) ॥ १ ॥ मेरा स्वामी बड़ा रंगीला है, वह एक-रंग है और सर्वस्व में रमण भी कर रहा है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ वह मछेरा है, मछली है, पानी है और जाल भी स्वयं ही है। जाल के साथ बँधे (लोहे के) मनके और मछली के पेट से निकलनेवाली मणि, सब वह प्रभु ही है ॥ २ ॥ हे मित्रो, मेरा प्रियतम बहुविध रंगीला है, सब रूपों में बसता है। वह प्रेम-दीवानी सुहागनों के संग नित्य रमण करता है, (हम सरीखी) द्वैत-भावी आत्माओं का बुरा हाल है, वह हमें नहीं अपनाता ॥ ३ ॥ (नानक) विनम्रतापूर्वक विनती करता है (कि हे स्वामी!) तू सरोवर है, तू ही हंस भी है। कमल है, तू कुमुदिनी है और उनको खिलते देखकर तू प्रसन्न होता है अर्थात् तू ही सूर्य और चाँद है, जो क्रमश: कमल और कुमुदिनी के खिलने का कारण बनता है ॥ ४ ॥ २५ ॥

[टिप्पणी—इस पद में गुरुजी ने वाहिगुरु की सर्व-व्यापकता की बात कही है। कहते हैं, एक समय गुरुजी अपने शिष्यों बाला-मरदाना सहित घूमते हुए किसी नदि-तट पर पहुँचे, वहाँ मछुए मछली पकड़ रहे थे। बाला-मरदाना ने उनके कार्य को गर्हित बताया। तभी गुरु नानकदेव भावावेश में आकर, कण-कण में प्रभु के देख सकने के कारण, यह पद गाने लगे]।

॥ सिरीरागु महला १ घरु ३ ॥ इहु तनु धरती बीजु करमा करो सलिल आपाउ सारिंगपाणी। मनु किरसाणु हरि रिदै जंमाइ लै इउ पावसि पदु निरबाणी ॥ १ ॥ काहे गरबसि मूड़े माइआ। पित सुतो सगल कालत्र माता तेरे होहि न अंति सखाइआ ॥ रहाउ ॥ बिखै बिकार दुसट किरखा करे इन तजि आतमै होइ धिआई। जपु तपु संजमु होहि जब राखे कमलु बिगसै मधु आस्रमाई ॥ २ ॥ बीस सपताहरो बासरो संग्रहै तीनि खोड़ा नित कालु सारै। दस अठार मै अपरंपरो चीनै कहै नानकु इव एकु तारै ॥ ३ ॥ २६ ॥

[अब कृषि का दृष्टांत देकर गुरुजी जीवात्मा का पथ-प्रदर्शन कर रहे हैं]

इस शरीर को धरती बनाओ, शुभ कर्मों का बीज बोओ और प्रभु के नाम-स्मरण के जल से उसे सींचो। मन को किसान बनाकर परमात्मा के साक्षात्कार की खेती कर लो, इसी में मोक्ष का रहस्य है ॥ १ ॥ ऐ मूर्ख, माया का अहंकार क्यों करता है; इस संसार में माता-पिता, पुत्र-स्त्री कोई भी अंत समय तुम्हारा सहायी नहीं होगा ॥ रहाउ ॥ विषय-विकारों

के बेकार पौदों को (जो खेती ख़राब करते हैं) उखाड़ फेंको और इनको हटाकर अन्तर-मग्न हो जाओ। (जैसे किसान को खेती के लिए चौकन्ना रहना होता है, वैसे) जप, तप, संयम द्वारा धरती (शरीर) को तैयार करो, तब वहाँ कमल खिलेंगे (हृदय-कमल) और मधु-रस टपकेगा (नाम का रस प्राप्त होगा) ॥ २ ॥ बीस और सात के निवास-स्थान में (इन सत्ताईस को) इकट्ठा करे अर्थात् संयत करे तथा तीनों अवस्थाओं में मृत्यु को याद रखे। दसों दिशाओं और समूची वनस्पति (अर्थात् प्रकृति) में वाहिगुरु को साक्षात् महसूस करे, तभी वह परमात्मा जीव को तार देगा। (बीस=५ महाभूत, ५ तन्मात्राएँ, ५ कर्मेन्द्रियाँ, ५ ज्ञानेन्द्रियाँ। सात=५ प्राण तथा मन और बुद्धि। यह सब शरीर में विद्यमान हैं, इन्हें संयत करना ही जीव का धर्म है।) ॥ ३ ॥ २६ ॥

॥ सिरीरागु महला १ घरु ३ ॥ अमलु करि धरती बीजु सबदो करि सच की आब नित देहि पाणी। होइ किरसाणु ईमानु जंमाइ लै भिसतु दोजकु मूड़े एव जाणी ॥ १ ॥ मतु जाणसहि गली पाइआ। माल कै माणै रूप की सोभा इतु बिधी जनमु गवाइआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ ऐब तनि चिकड़ो इहु मनु मीडको कमल की सार नही मूलि पाई। भउरु उसतादु नित भाखिआ बोले किउ बूझै जा नह बुझाई ॥ २ ॥ आखणु सुनणा पउण की बाणी इहु मनु रता माइआ। खसम की नदरि दिलहि पसिंदे जिनी करि एकु धिआइआ ॥ ३ ॥ तीह करि रखे पंज करि साथी नाउ सैतानु मतु कटि जाई। नानकु आखै राहि पै चलणा मालु धनु कितकू संजिआही ॥ ४ ॥ २७ ॥

शुभ कर्मों की धरती पर हरि-नाम का बीज डालो और उसे नित्य सत्यनाम-रूपी जल से सींचो। इस प्रकार कृषि द्वारा धर्म की खेती करो, वही स्वर्गोपलब्धि है—इसी से स्वर्ग-नरक का ज्ञान सम्भव है ॥ १ ॥ शायद तुम समझते होगे कि यह ज्ञान बातों-बातों में प्राप्त है! धन के मान में तथा रूप की शोभा करते-करते तुमने समूचा जीवन गँवा दिया है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (मानव के) अवगुण शरीर में कीचड़ के समान हैं और यह मन मेंढक के समान है, जिसको कमल की कोई पहचान ही नहीं (अर्थात् मनरूपी मेंढक अवगुणों के कीचड़ में ही रमता है, धर्म के कमल उगे हुए उसे दीख नहीं पड़ते)। भ्रमररूपी गुरु नित्य वाणी उच्चार कर उपदेश देते हैं, किन्तु (उस उपदेश को) वही समझ पाता और लाभान्वित होता है, जिस पर गुरु की कृपा-दृष्टि होती है ॥ २ ॥ शास्त्रसम्मत ज्ञान जिनके लिए घड़े में पवन की गूंज के समान है, उनका मन

निरन्तर माया में लीन रहता है। जो परमात्मा का ध्यान करते हैं, वे उसके दिल-पसन्द होते हैं और उस पर प्रभु-कृपा-दृष्टि सदैव बनी रहती है ॥ ३ ॥ तूने (ऐ जीव!) प्रभु को पाने के लिए तीस रोज़े रखे, पाँच समय की नमाज़ पढ़ी, किन्तु देखना शैतान बड़ा मक्कार है; कहीं तेरी लग्न की डोरी को काट न दे। तूने तो मौत के मार्ग से यहीं सब छोड़ जाना है, फिर यह दौलत क्यों इकट्ठी करते हो ॥ ४ ॥ २७ ॥

॥ सिरीरागु महला १ घरु ४ ॥ सोई मउला जिनि जगु मउलिआ हरिआ कीआ संसारो। आब खाकु जिनि बंधि रहाई धंनु सिरजणहारो ॥ १ ॥ मरणा मुला मरणा। भी करतारहु डरणा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ ता तू मुला ता तू काजी जाणहि नामु खुदाई। जे बहुतेरा पड़िआ होवहि को रहै न भरीऐ पाई ॥२॥ सोई काजी जिनि आपु तजिआ इकु नामु कीआ आधारो। है भी होसी जाइ न जासी सचा सिरजणहारो ॥ ३ ॥ पंज वखत निवाज गुजारहि पड़हि कतेब कुराणा। नानकु आखै गोर सदेई रहिओ पीणा खाणा ॥ ४ ॥ २८ ॥

वही सबका स्वामी है, जिसने जगत् को प्रफुल्लित किया एवं संसार को हरा-भरा कर दिया। (रचना करते हुए) जिसने पानी, मिट्टी आदि तत्त्वों को एकत्रित किया है, वह स्रष्टा धन्य है ॥ १ ॥ मरना तो सब को है, मुल्ला, काज़ी या आम संसारी, सब मरते हैं; (किन्तु यह विचार कि मर ही जाना है तो किसी से क्यों डरें, उचित नहीं है) परमात्मा से फिर भी डरते रहना चाहिए ॥ १ ॥ रहाउ ॥ तुम्हारे मुल्ला या क़ाज़ी होने की एकमात्र पहचान यही है कि तुम्हें ख़ुदा के नाम की सही जानकारी हो। पढ़ा-लिखा विद्वान (होने से कोई बच नहीं सकता), जब भी उसके श्वासों की पाई (पनघड़ी : वह कटोरा जिसके तले में छेद होता है और पानी के भर जाने से अपने-आप डूब जाता है) भरेगी, वह मृत्यु को प्राप्त करेगा ॥ २ ॥ वास्तविक क़ाज़ी वही है जिसने अहम्भाव का त्यागकर परमात्मा के नाम का एकमात्र सहारा लिया है। वह नाम उस सच्चे सृजनहार का है, जो अतीत, वर्तमान और भविष्य में सदैव विद्यमान है, और सर्वनाश होने पर भी वह कभी नाश को प्राप्त नहीं होता ॥ ३ ॥ पाँच समय नमाज़ पढ़ने, क़ुर्आन आदि धर्मग्रंथों का अध्ययन करने से कुछ नहीं होगा। (नानक) क़ब्र तुम्हें बुला रही है, यह पढ़ना-लिखना, खाना-पीना सब यहीं छूट जानेवाला है ॥ ४ ॥ २८ ॥

॥ सिरीरागु महला १ घरु ४ ॥ एकु सुआनु दुइ सुआनी नालि। भलके भउकहि सदा बइआलि। कूड़ु छुरा मुठा

मुरदारु । धाणक रूपि रहा करतार ॥ १ ॥ मै पति की पंदि न करणी की कार । हउ बिगड़ै रूपि रहा बिकराल । तेरा एकु नामु तारे संसारु । मै एहा आस एहो आधारु ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मुखि निंदा आखा दिनु राति । परघरु जोही नीच सनाति । कामु क्रोधु तनि वसहि चंडाल । धाणक रूपि रहा करतार ॥२॥ फाही सुरति मलूकी वेसु । हउ ठगवाड़ा ठगी देसु । खरा सिआणा बहुता भारु । धाणक रूपि रहा करतार ॥ ३ ॥ मै कीता न जाता हरामखोरु । हउ किआ मुहु देसा दुसटु चोरु । नानकु नीचु कहै बीचारु । धाणक रूपि रहा करतार ॥ ४ ॥ २९ ॥

(दुनिया में जीव की दशा व्यक्त करते हैं) जीव के साथ एक कुत्ता (लोभ) और दो कुत्तियाँ (आशा, तृष्णा) चलती हैं। दिन का उदय होते ही, सदैव वे तीनों भोंकते रहते हैं, (अर्थात् जीव दिन-रात लोभ, आशा, तृष्णा में पड़ा समय बिता रहा है)। उसके (जीव के) पास मिथ्या का छुरा है और ठगी की आदत हराम खाने के समान है। इस प्रकार उसका रूप धानक (अपराध-पेशा जाति : वे गृहहीन लोग जो कुत्ते, छुरे आदि लेकर शिकार को जाते और चोरी-ठगी आदि भी करते हैं) सरीखा बना है ॥ १ ॥ मैं (जीव के लिए प्रथम पुरुष में कहते हैं) ने सम्मानित होनेवाली कोई शिक्षा नहीं ली, न ही कोई योग्य कार्य किया है। मैं तो मनुष्य के बिगड़े रूप में विकराल बना हुआ हूँ। (जीव मनुष्य-शरीर में आकर शरीर को ही, जो कि उसका बिगड़ा रूप है, वास्तविक मान बैठता है) किन्तु फिर भी मुझे विश्वास है कि हे प्रभु, केवल तेरा नाम ही संसार से पार लगा सकता है; इसीलिए मुझे उसी से एकमात्र आशा है, उसी का सहारा है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मुँह से मैं दिन-रात दूसरों की निन्दा करता और नीच अपराधी लोगों की भाँति (चोरी के लिए) दूसरों के घरों में झाँकता फिरता हूँ। काम-क्रोधरूपी चण्डाल मेरे शरीर में बसते हैं; हे स्वामी, मैं धानकरूप बन गया हूँ ॥ २ ॥ भीतर से मेरा ध्यान सदा लोगों को फाँसने में लगा रहता है, ऊपर मैं कोमल वेष बनाये घूमता हूँ। मैं ठग हूँ और देश को ठगता हूँ। अपने आपको समझदार मानता हूँ, लेकिन मेरे पापों की गाँठ नित्य भारी होती जा रही है। इस प्रकार, हे प्रभु, मैंने धानक रूप बनाया हुआ है ॥ ३ ॥ मैंने तुम्हारे उपकारों को भुला दिया है, इसलिए हरामखोर हूँ। मैं दुष्ट और चोर हो रहा हूँ, तुम्हें क्या मुँह दिखाऊँ। इस प्रकार नीच हुआ (नानक) मैं विचार करता हूँ कि हे प्रभु, मैं धानक रूप हो गया हूँ (मेरा कल्याण कैसे हो ?) ॥ ४ ॥ २९ ॥

॥ सिरीरागु महला १ घरु ४ ॥ एका सुरति जेते है जीअ । सुरति विहूणा कोइ न कीअ । जेही सुरति तेहा तिन राहु । लेखा इको आवहु जाहु ॥ १ ॥ काहे जीअ करहि चतुराई । लेवै देवै ढिल न पाई ॥ १ ॥ रहाउ ॥ तेरे जीअ जीआ का तोहि । कित कउ साहिब आवहि रोहि । जे तू साहिब आवहि रोहि । तू ओना का तेरे ओहि ॥ २ ॥ असी बोल विगाड़ विगाड़ह बोल । तू नदरी अंदरि तोलहि तोल । जह करणी तह पूरी मति । करणी बाझहु घटे घटि ॥ ३ ॥ प्रणवति नानक गिआनी कैसा होइ । आपु पछाणै बूझै सोइ । गुर परसादि करे बीचारु । सो गिआनी दरगह परवाणु ॥ ४ ॥ ३० ॥

जितने भी जीव यहाँ हैं, सबको (निजत्व की) एक समान सूझ है । इस प्रकार की सूझ के बिना कोई नहीं बनाया गया । जैसी किसी की सूझ (वृत्ति) होगी, वैसा उसका रहन-सहन होगा । इस सबको एक ही परिमाण में नाप-तोल कर जीव को आवागमन के चक्र में डाला गया है ॥ १ ॥ ऐसे में, हे प्रभु, ये जीव किस बात की चतुराई दिखाते हैं, लेने-देने में तुम्हारी ढील तो कभी होती ही नहीं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे ईश्वर, ये सब जीव तुम्हारे हैं, तुम जीवों के स्वामी हो, फिर किसलिए उन पर क्रोध करते हो ? और हे प्रभु, यदि तुम क्रोध करोगे भी, तो भी वे तुम्हारे और तुम उनके (जीवों के) स्वामी ही रहोगे ॥ २ ॥ हम बकवादी जीव बोलकर बातें बिगाड़ते हैं, किन्तु हे वाहिगुरु, तुम तो अपनी दिव्यदृष्टि से ही समस्त सच्चाई को तोल लेते हो ! जहाँ हमारे कर्म शुभ हैं, वहाँ सही समझदारी है, बिना सत्कर्मों के सब घटिया कार्य है ॥ ३ ॥ (नानक) मैं विनती करता हूँ कि ज्ञानी कैसा होता है ? (वही ज्ञानी है जो) अपने स्वरूप को पहचानता और उसी के माध्यम से प्रभु को जान लेता है । जो गुरु की विशेष कृपा से सूझवान बनता है, वही ज्ञानी प्रभु-शरण में स्वीकार होता है ॥ ४ ॥ ३० ॥

॥ सिरीरागु महला १ घरु ४ ॥ तू दरीआउ दाना बीना मै मछुली कैसे अंतु लहा । जह जह देखा तह तह तू है तुझ ते निकसी फूटि मरा ॥ १ ॥ न जाणा मेउ न जाणा जाली । जा दुखु लागै ता तुझै समाली ॥ १ ॥ रहाउ ॥ तू भरपूरि जानिआ मै दूरि । जो कछु करी सु तेरै हदूरि । तू देखहि हउ मुकरि पाउ । तेरै कंमि न तेरै नाइ ॥ २ ॥ जेता देहि तेता हउ

खाउ। बिआ दरु नाही कै दरि जाउ। नानकु एक कहै अरदासि। जीउ पिंडु सभुतेरै पासि॥ ३॥ आपे नेड़ै दूरि आपे ही आपे मंझि मिआनुो। आपे वेखै सुणे आपे ही कुदरति करे जहानुो। जो तिसु भावै नानका हुकमु सोई परवानुो॥ ४॥ ३१॥

हे परमेश्वर, तू सागर की भाँति व्यापक है, सर्वज्ञाता और सर्वद्रष्टा है, मैं मछली के समान सागर का छोटा-सा जीव हूँ, मैं तुम्हारा अन्त कैसे ले सकता हूँ (अर्थात् तुम्हारा भेद क्योंकर जान सकता हूँ।) (मेरी स्थिति तो यह है कि) जहाँ तक मेरी दृष्टि जाती है, तू ही (सागर ही) दीख पड़ता है और यदि तुझसे अलग जाऊँ (सागर से बाहर निकाल दिया जाऊँ) तो तड़पकर मर जाऊँगा। (मछली जल से अलग होकर मर जाती है)॥ १॥ (सागर में मछली पर अनेक विपत्तियाँ भी आती हैं, अर्थात् संसार में जब-तब जीव पर विपत्ति आती है) मैं मछेरे या उसके जाल को (काल तथा उसके हथकंडे) नहीं जानता, जब कभी मुझपर कष्ट आता है, तो केवल तुझे ही याद करता हूँ॥ १॥ रहाउ॥ तू तो सर्व-रमण है, मैं तुझे दूर समझता हूँ। जो भी करता हूँ, वह तुमसे छिपा नहीं; तू सब देखता है, फिर भी मैं मुकर जाता हूँ। मैं तुम्हारा किसी काम का (जीव) नहीं और न ही तुम्हारे नाम को उजागर करता हूँ॥ २॥ हे मालिक, तू जो देता है, वही मैं अंगीकार करता हूँ। मेरे लिए दूसरा कोई आश्रय ही नहीं, किसके द्वार जाऊँ। इसलिए (नानक) विनती करता हूँ कि हे प्रभु, यह जीव और शरीर, सब तुम्हारे हवाले हैं॥ ३॥ निकट भी तू है, दूर भी तू है और तू ही बीचोबीच व्यापक है। तू स्वयं देखता, सुनता और समूची सृष्टि का सृजन कर रहा है। इसलिए (नानक) जो तुझे रुचिकर है, जो तेरा हुक्म है, वही सबको परवान (मान्य) होता है॥ ४॥ ३१॥

॥ सिरीरागु महला १ घरु ४॥ कीता कहा करे मनि मानु। देवणहारे कै हथि दानु। भावै देइ न देई सोइ। कीते कै कहिऐ किआ होइ॥ १॥ आपे सचु भावै तिसु सचु। अंधा कचा कचु निकचु॥ १॥ रहाउ॥ जा के रुख बिरख आराउ। जेही धातु तेहा तिन नाउ। फुलु भाउ फलु लिखिआ पाइ। आपि बीजि आपे ही खाइ॥ २॥ कची कंध कचा विचि राजु। मति अलूणी फिका सादु। नानक आणे आवै रासि। विणु नावै नाही साबासि॥ ३॥ ३२॥

जो तेरा बनाया जीव है, वह भला अपने मन में क्या अभिमान कर सकता है। समूची बख्शीश तो सब तुम्हारे हाथ है। देने या न देने की इच्छा तुम्हारी स्वतन्त्र है, बनाए हुए जीव के कहने से क्या हो सकता है ॥ १ ॥ वह स्वयं भी सत्य है और उसे सत्य ही स्वीकार होता है। बनाया हुआ (जीव) तो अंधा है (अज्ञानी), वह पूर्णतः अस्थिर है, अपरिपक्व है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिस माली के पेड़-पौदे होते हैं वही उन्हें सँवारता और देख-भाल करता है और जैसी पेड़ की नसल होती है, वैसा ही उसका नाम रखा जाता है। (इसी प्रकार मानव-जीवन के पेड़ से भी) उसके अच्छे-बुरे भावानुसार फूल लगते हैं और (कर्मानुसार) फल मिलते हैं। जैसा वह बीजता है, वैसा फल पा लेता है (कर्म के अनुसार फल मिलने का संकेत है) ॥ २ ॥ यदि दीवार बनानेवाला कच्चा होगा, तो दीवार भी कच्ची होगी (जीवन की दीवार का निर्माण यदि मायाधारित होगा तो वह कच्ची रह जायगी, उसकी परिपक्वता के लिए सच्चे सतिगुरु की अपेक्षा होती है।) जीव की बुद्धि नीरस है, उससे नीरसता ही उपजती है (जैसे लवण-हीन व्यंजन में कोई स्वाद नहीं होता), इसलिए हे वाहिगुरु, जिसे तू सत्य की पूँजी प्रदान करता है, वही सफल है। तुम्हारे नाम के बिना किसी को शरण नहीं मिलती। (वाहिगुरु के सम्मुख शाबाश का पात्र नहीं होता) ॥ ३ ॥ ३२ ॥

॥ सिरीरागु महला १ घरु ५ ॥ अछल छलाई नह छलै नह घाउ कटारा करि सकै। जिउ साहिबु राखै तिउ रहै इसु लोभी का जीउ टलपलै ॥ १ ॥ बिनु तेल दीवा किउ जलै ॥१॥ रहाउ ॥ पोथी पुराण कमाईऐ। भउ वटी इतु तनि पाईऐ। सचु बूझणु आणि जलाईऐ ॥ २ ॥ इहु तेलु दीवा इउ जलै। करि चानणु साहिब तउ मिलै ॥ १ ॥ रहाउ ॥ इतु तनि लागै बाणीआ। सुखु होवै सेव कमाणीआ। सभ दुनीआ आवण जाणीआ ॥ ३ ॥ विचि दुनीआ सेव कमाईऐ। ता दरगह बैसणु पाईऐ। कहु नानक बाह लुडाईऐ ॥ ४ ॥ ३३ ॥

(सच तो यह है) कि नित्य अछल माया भी मनुष्य को (अपने आप) नहीं छल सकती, न ही उसे कोई हथियार घाव लगा सकता है। वह तो यों रहता है, जैसे उसे मालिक रखता है। फिर भी वह लोभी है, सन्तुष्ट नहीं होता। उसके मन में अनेक वलवले जगते रहते हैं ॥ १ ॥ आखिर तेल के बिना दिया कैसे जल सकता है? (भाव यह कि यदि प्रभु-प्रेम का स्नेह न हो, जीवन का दीपक बेकार है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (यहाँ गुरुजी स्वयं ही उत्तर देते हैं) उसमें धार्मिक ग्रंथों की शिक्षा का

तेल, भय की बाती तथा सद्ज्ञान की लौ हो, तभी वह दीप जल सकता है ।। २ ।। इस प्रकार के तेल से दिया जले और उसका आलोक जीव को प्राप्त हो, तभी वह परमात्मा से मिल सकता है ।। १ ।। रहाउ ।। इस शरीर में आकर जीव को गुरु के उपदेशों को धारण करना चाहिए, गुरुकी सेवा में रत होना चाहिए; उसी में सुख है, शेष सारा संसार अस्थिर है, जन्म-मरण का चक्कर है ।। ३ ।। इस संसार में आकर यदि जीव सेवा कमाए (अर्थात् गुरुसेवा से उसे प्रसन्न करे), तभी उसे प्रभु की शरण प्राप्त हो सकती है और (नानक) वह उल्लासपूर्वक बाँह प्रसार सकता है ।। ४ ।। ३३ ।।

सिरीरागु महला ३ घरु १

(महला ३ से गुरु अमरदास जी की वाणी प्रकट है)

१ ओं सतिगुर प्रसादि । हउ सतिगुरु सेवी आपणा इकमनि इकचिति भाइ । सतिगुरु मनकामना तीरथु है जिस नो देइ बुझाइ । मनचिंदिआ वरु पावणा जो इछै सो फलु पाइ । नाउ धिआईऐ नाउ मंगीऐ नामे सहजि समाइ ।। १ ।। मन मेरे हरिरसु चाखु तिख जाइ । जिनी गुरमुखि चाखिआ सहजे रहे समाइ ।। १ ।। रहाउ ।। जिनी सतिगुरु सेविआ तिनी पाइआ नामु निधानु । अंतरि हरिरसु रवि रहिआ चूका मनि अभिमानु । हिरदै कमलु प्रगासिआ लागा सहजि धिआनु । मनु निरमलु हरि रवि रहिआ पाइआ दरगहि मानु ।। २ ।। सतिगुरु सेवनि आपणा ते विरले संसारि । हउमै ममता मारि कै हरि राखिआ उरधारि । हउ तिन कै बलिहारणै जिना नामे लगा पिआरु । सेई सुखीए चहु जुगी जिना नामु अखुटु अपारु ।। ३ ।। गुर मिलिऐ नामु पाईऐ चूकै मोह पिआस । हरि सेती मनु रवि रहिआ घर ही माहि उदासु । जिना हरि का सादु आइआ हउ तिन बलिहारै जासु । नानक नदरी पाईऐ सचु नामु गुणतासु ।। ४ ।। १ ।। ३४ ।।

मैं अपने सतिगुरु को ब्रह्म से अभेद मानकर उसकी प्रेमपूर्वक और एकाग्र-चित्त होकर सेवा करता हूँ। सतिगुरु मनोकामना-पूर्ति-तीर्थ है, जो कि मेरी सब प्रकार की तृप्ति करता है। मुझे उससे मनोवांछित वर

प्राप्त है; जो चाहते हो, वही (उससे) लब्ध है। अतः मैं उस गुरु से परमात्मा का नाम ही चाहता हूँ, उसी में ध्यानस्थ होता हूँ, क्योंकि नाम द्वारा ही सहजावस्था (आत्मा की वह अवस्था जो त्रिगुणातीत है) में लीन हुआ जाता है ॥ १ ॥ हे मेरे मन, हरि-रस के पीने से सब तृष्णा नष्ट हो जाती है। जिन जीवों ने गुरु के उपदेशानुसार उसका आस्वादन किया, वे सहज में समा गए ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जो सतिगुरु की सेवा करता है, उसे नाम का ख़ज़ाना प्राप्त है। उसके भीतर हरि-रस स्रवित होता है और उसके मन का अहंकार समाप्त हो जाता है। उसके मन में आत्मा का कमल विकसित होता और उसका ध्यान सहज में लीन होता है। उसका हृदय निर्मल हो जाता है, जिसमें परमात्मा बसता है और उसे प्रभु के दरबार में सम्मान प्राप्त होता है ॥ २ ॥ संसार में सतिगुरु-सेवा में संलग्न कुछ विरले लोग ही होते हैं। वे अहंकार और ममता की वृत्तियों का दमन करके परमात्मा को मन में धारण करते हैं। मैं प्रभु-नाम से प्यार करनेवाले जीव पर बलिहार हूँ; क्योंकि नाम-धन अखुट और अपार होता है, इसको पानेवाला स्थायी आनन्द और उल्लास को पा जाता है ॥ ३ ॥ नाम की दौलत गुरु की प्राप्ति से ही मिलती है। (जिस जीव को वह प्राप्त हो) उसका मन परमेश्वर में लीन होता है और वह कर्मशील रहते हुए भी अनासक्त रहता है। अतः जिन (जीवों ने) प्रभु-रस का आस्वादन किया, मैं उनके बलिहार हूँ। (नानक) वह गुणों का भण्डार 'नाम' प्रभु की कृपा से ही मिलता है ॥ ४ ॥ १ ॥ ३४ ॥

॥ सिरीरागु महला ३ ॥ बहु भेख करि भरमाईऐ मनि हिरदै कपटु कमाइ। हरि का महलु न पावई मरि विसटा माहि समाइ ॥ १ ॥ मन रे ग्रिह ही माहि उदासु। सचु संजमु करणी सो करे गुरमुखि होइ परगासु ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गुर कै सबदि मनु जीतिआ गति मुकति घरै महि पाइ। हरि का नामु धिआईऐ सतसंगति मेलि मिलाइ ॥ २ ॥ जे लख इसतरीआ भोग करहि नवखंड राजु कमाहि। बिनु सतगुर सुखु न पावई फिरि फिरि जोनी पाहि ॥ ३ ॥ हरि हारु कंठि जिनी पहिरिआ गुर चरणी चितु लाइ। तिना पिछै रिधि सिधि फिरै ओना तिलु न तमाइ ॥ ४ ॥ जो प्रभ भावै सो थीऐ अवरु न करणा जाइ। जनु नानकु जीवै नामु लै हरि देवहु सहजि सुभाइ ॥ ५ ॥ २ ॥ ३५ ॥

चाहे कितना भी भाँति-भाँति के वेष बनाकर देश-देशान्तर में घूमिए; किन्तु मन में कपट रहते परमात्मा के घर में प्रवेश नहीं मिल सकता,

जीव को आवागमन के मल में ही समाना होगा ॥ १ ॥ (मर कर नरकादि की त्रिष्टा में रहना होगा)। (इसलिए) हे मन, गृहस्थी की कर्मशीलता में भी अनासक्त रहो। गुरु की शरण में आकर प्रकाश (ज्ञान) प्राप्त करो और सत्य-संयम का आचरण करो ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (ऐसा करने से) गुरु के उपदेशों से मन संयमित होता है और घर में ही (दैनिक दिनचर्या में ही) गति और मुक्ति उपलब्ध होती है। साधु-संगति में विचरण से हरि-नाम में ध्यान पुष्ट होता है ॥ २ ॥ यदि जीव को भोगार्थ लाखों सुन्दरियाँ प्राप्त हों, नवखण्डों का (संसार का) राज्य भी मिल जाय, तो भी सतिगुरु के बिना स्थायी सुख की उपलब्धि नहीं होती, जीव को बार-बार जन्म लेना पड़ता है ॥ ३ ॥ जिस जीव ने गुरु-चरणों में मन को आसक्त किया और गले में हरि-नाम की माला पहन रखी है, ऋद्धि-सिद्धी की शक्तियाँ उसकी दासी हैं, किन्तु वह तिल-भर भी उनकी परवाह नहीं करता ॥ ४ ॥ जो प्रभु को रुचता है, वही होता है, किसी के करने से और कुछ नहीं होता। गुरु जी कहते हैं कि हे प्रभु, तुम्हारे नामोच्चारण से ही मेरा जीवन है, अतः कृपा करके मुझे शान्त-स्वभाव का वरदान दीजिए ॥ ५ ॥ २ ॥ ३५ ॥

॥ सिरीरागु महला ३ घरु १ ॥ जिस ही की सिरकार है तिस ही का सभु कोइ ॥ गुरमुखि कार कमावणी सचु घटि परगटु होइ। अंतरि जिस कै सचु वसै सचे सची सोइ। सचि मिले से न विछुड़हि तिन निजघरि वासा होइ ॥ १ ॥ मेरे राम मै हरि बिनु अवरु न कोइ। सतगुरु सचु प्रभु निरमला सबदि मिलावा होइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सबदि मिलै सो मिलि रहै जिस नउ आपे लए मिलाइ। दूजै भाइ को ना मिलै फिरि फिरि आवै जाइ। सभ महि इकु वरतदा एको रहिआ समाइ। जिस नउ आपि दइआलु होइ सो गुरमुखि नामि समाइ ॥ २ ॥ पड़ि पड़ि पंडित जोतकी वाद करहि बीचारु। मति बुधि भवी न बुझई अंतरि लोभ विकारु। लख चउरासीह भरमदे भ्रमि भ्रमि होइ खुआरु। पूरबि लिखिआ कमावणा कोइ न मेटणहारु ॥ ३ ॥ सतगुर की सेवा गाखड़ी सिरु दीजै आपु गवाइ। सबदि मिलहि ता हरि मिलै सेवा पवै सभ थाइ। पारसि परसिऐ पारसु होइ जोती जोति समाइ। जिन कउ पूरबि लिखिआ तिन सतगुरु मिलिआ आइ ॥ ४ ॥ मन भुखा भुखा मत करहि मत तू करहि पूकार। लख चउरासीह जिनि

सिरी सभसै देइ अधारु। निरभउ सदा दइआलु है सभना करदा सार। नानक गुरमुखि बुझीऐ पाईऐ मोखदुआरु ॥५॥३॥३६॥

जिस प्रकार, जिसकी हुकूमत होती है, उसकी आज्ञा सब कोई मानता है (वैसे ही जो अपने पर गुरु की हुकूमत स्वीकार कर लेता है, वह पूर्णतः गुरु के प्रभाव में रहता है)। गुरु के उपदेशानुसार कार्य करने से सत्यरूप वाहिगुरु मन में प्रकट हो जाता है। जिसके भीतर सत्य का निवास होता है, उस सच्चे की सच्ची शोभा होती है। एक बार जो सत्य-रूप परमात्मा से मिल जाता है, उसे कभी वियोग नहीं होता; वह स्वसुरूप में लीन हो जाता है ॥ १ ॥ हे मेरे प्रभु, मेरे लिए हरि के बिना और कुछ नहीं। किन्तु प्रभु का निर्मल सत्यरूप केवल सतिगुरु के उपदेशानुसार आचरण करने से ही प्राप्त होता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जो गुरु के उपदेश को पा गये हैं, उन्हें वाहिगुरु से मिला ही समझना चाहिए, क्योंकि गुरु का उपदेश उसी को उपलब्ध होता है, जो परमात्मा का कृपा-पात्र होता है। जिसमें द्वैतभाव है, वह कभी परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकता, वह बार-बार जन्म-मरण के चक्र में ही पड़ा रहेगा। (इसलिए हे मन!) केवल एक वाहिगुरु का हुकुम ही सब में व्याप्त है, वही प्रभु सब जगह समाया है। जिस पर भगवान की दया होती है, वह गुरु-उपदेश पर आचरण करने से मुक्ति को प्राप्त करता है ॥ २ ॥ (ग्रंथों-पोथियों) को पढ़-पढ़ कर विद्वान और ज्योतिषी वाद-विवादों पर विचार करते हैं (आत्मा पर विचार नहीं करते)। उनका बुद्धि-विवेक (परमात्मा से) विमुख है; वे मन में लोभ का विकार होने के कारण सही भाव को नहीं जान पाते। इसीलिए चौरासी लाख योनियों में भटकते और दुःख उठाते हैं। (उन्हें भी क्या दोष!) वे भी पूर्व-कर्मों का (प्रारब्ध का) फल पाते हैं, उससे कोई बच भी तो नहीं सकता ॥ ३ ॥ सतिगुरु की सेवा बड़ी कठिन है, उसके लिए अहंकार-त्याग और समर्पण अपेक्षित है। यदि सतिगुरु का उपदेश माना जायगा, तो प्रभु मिल सकेगा और सेवा का सही अभिगम सम्भव होगा। गुरु पारस रूप है, उसके छूने से जीव भी पारस हो जाता है (सामाजिक धारणा के अनुसार पारस को छूने से लोहा कंचन होता है, किन्तु सन्तों का स्पर्श तो अद्वितीय है, अपने ही समान कर लेता है) और आत्म-ज्योति परमात्म-ज्योति में लीन हो जाती है। जिनके प्रारब्ध शुभ हैं, उन्हें स्वतः सतिगुरु की प्राप्ति हो जाती है ॥ ४ ॥ हे मन, तू चीख-चीख कर अपनी पुकार न सुना, न अपनी दीनता (मैं भूखा हूँ, ऐसा कहकर) दिखा। जिसने चौरासी लाख योनियों की सृष्टि की है और जो सबका पोषक है, वह निर्भय परमात्मा सदा कृपालु है और सबका ध्यान रखता है। गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि ऐसे परमात्मा

को गुरु के उपदेश से ही जाना जा सकता है और वही (चौरासी लाख योनियों से) मुक्ति-प्राप्ति का द्वार है ।। ५ ।। ३ ।। ३६ ।।

।। सिरीरागु महला ३ ।। जिनी सुणि कै मंनिआ तिना निजघरि वासु । गुरमती सालाहि सचु हरि पाइआ गुणतासु । सबदि रते से निरमले हउ सद बलिहारै जासु । हिरदै जिन कै हरि वसै तितु घटि है परगासु ।। १ ।। मन मेरे हरि हरि निरमलु धिआइ । धुरि मसतकि जिन कउ लिखिआ से गुरमुखि रहे लिव लाइ ।। १ ।। रहाउ ।। हरि संतहु देखहु नदरि करि निकटि वसै भरपूरि । गुरमति जिनी पछाणिआ से देखहि सदा हदूरि । जिन गुण तिन सद मनि वसै अउगुणवंतिआ दूरि । मनमुख गुण तै बाहरे बिनु नावै मरदे झूरि ।। २ ।। जिन सबदि गुरू सुणि मंनिआ तिन मनि धिआइआ हरि सोइ । अनदिनु भगती रतिआ मनु तनु निरमलु होइ । कूड़ा रंगु कसुंभ का बिनसि जाइ दुखु रोइ । जिसु अंदरि नाम प्रगासु है ओहु सदा सदा थिरु होइ ।। ३ ।। इहु जनमु पदारथु पाइ कै हरिनामु न चेतै लिव लाइ । पगि खिसिऐ रहणा नही आगै ठउरु न पाइ । ओह वेला हथि न आवई अंति गइआ पछुताइ । जिसु नदरि करे सो उबरै हरि सेती लिव लाइ ।। ४ ।। देखा देखी सभ करे मनमुखि बूझ न पाइ । जिन गुरमुखि हिरदा सुधु है सेव पई तिन थाइ । हरिगुण गावहि हरि नित पड़हि हरिगुण गाइ समाइ । नानक तिन की बाणी सदा सचु है जि नामि रहे लिव लाइ ।। ५ ।। ४ ।। ३७ ।।

जिन्होंने गुरु के उपदेशों को सुनकर उनका मनन किया, वे ही अपने घर में प्रविष्ट हो गए, अर्थात् उनको मोक्ष प्राप्त हुआ । गुरमुख जीव परमात्मा के सच्चे यश का कथन करते हुए उस गुणागार हरि को ही पा लेते हैं । जो गुरु के शब्दों (उपदेश) में रत हैं, मैं उनके बलिहार हूं । उनके हृदय में हरि निवास करता है, वे भीतर से आलोकित हैं ।। १ ।। (इसलिए) हे मेरे मन, तू उस निर्मल परब्रह्म का नाम जप । जिनके भाग्य में नियति ने (प्रभु-प्राप्ति) लिख रखी है, वे गुरु द्वारा मार्ग पाकर परमात्मा में एकचित्त हो जाते हैं ।। १ ।। रहाउ ।। हे साधुजनो, ज़रा ध्यान से देखो, परमात्मा तो सबके निकट ही, सबके भीतर निवास करता है । जो गुरु-शब्दों से राह पाकर उसे पहचान

गए हैं, वे सदा उसे अपने सम्मुख देखते हैं। जिन जीवों में आध्यात्मिक गुण विद्यमान हैं, उनके मन में परमात्मा प्रकट है, अवगुणियों से वह दूर रहता है। अवगुणी मनमुख हैं, वे यों ही दुखी हो-होकर मरते हैं ॥ २ ॥ जिन्होंने गुरु-शब्दों को सुनकर मनन किया, वे ही हरि में ध्यानस्थ हो पाए। दिन-रात भक्ति में रत रहने के कारण उनका तन-मन निर्मल हो गया, किन्तु जो कुसुंमी रंग की तरह कच्चे रंग में (वेषधारी) डूबे हैं, वे निश्चय ही रंग के नष्ट हो जाने पर (विषय-वासना के जल से धुल जाने पर) दुखी होंगे और रोयेंगे। जिनके भीतर प्रभु-नाम का प्रकाश होगा, उनकी मस्ती, उनकी रंगत सदा स्थायी होगी ॥ ३ ॥ (मनुष्य इतना कुबुद्धि है कि) मनुष्य-जन्म जैसा अनमोल पदार्थ पाकर भी ध्यानपूर्वक हरि-भजन नहीं करता। बढ़ती हुई अवस्था साक्षी है कि किसी को भी यहाँ सदा नहीं रहना और आगे के ठौर-ठिकाने का कुछ ज्ञान नहीं। एक बार बीता समय पुनः हाथ नहीं आता, अन्ततः पछताना पड़ता है। जिस पर उसकी कृपा होती है, वही प्रेम-पूर्वक परमात्मा में ध्यान लगाता है ॥ ४ ॥ परमेश्वर में निष्ठा बनाए बग़ैर मनमुखी जीव वास्तविक ज्ञान को नहीं पा सकते। जिन गुरुमुखों का हृदय शुद्ध है, उन्हीं का (सेवा) भजन-जपादि सुफल होता है। (हृदय किसका शुद्ध होता है?) जो नित्य हरि का गुण गाते हैं, हरि का स्तुति-पाठ करते और गुण गाते हुए हरि में ही समा जाते हैं। गुरु नानकदेव जी (गुरु अमरदास जी : सभी गुरुओं ने अपने पदों के नाम-छाप नानक ही दी है, केवल महला संख्या से ही गुरु का नाम निश्चित होता है) कहते हैं कि उन जीवों की वाणी सदैव सत्य है, जो निरन्तर हरि में लग्न लगाए रहते हैं ॥ ५ ॥ ४ ॥ ३७ ॥

॥ सिरीरागु महला ३ ॥ जिनी इकमनि नामु धिआइआ गुरमती वीचारि। तिन के मुख सद उजले तितु सचै दरबारि। ओइ अंम्रितु पीवहि सदा सदा सचै नामि पिआरि ॥ १ ॥ भाई रे गुरमुखि सदा पति होइ। हरि हरि सदा धिआईऐ मलु हउमै कढै धोइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मनमुख नामु न जाणनी विणु नावै पति जाइ। सबदै सादु न आइओ लागे दूजै भाइ। विसटा के कीड़े पवहि विचि विसटा से विसटा माहि समाइ ॥ २ ॥ तिन का जनमु सफलु है जो चलहि सतगुर भाइ। कुलु उधारहि आपणा धंनु जणेदी माइ। हरि हरि नामु धिआईऐ जिस नउ किरपा करे रजाइ ॥ ३ ॥ जिनी गुरमुखि नामु धिआइआ विचहु आपु गवाइ। ओइ अंदरहु बाहरहु निरमले सचे सचि

समाइ। नानक आए से परवाणु हहि जिन गुरमती हरि धिआइ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ३८ ॥

जिन जीवों ने गुरु के उपदेशानुसार एकाग्रचित्त होकर प्रभु का नाम स्मरण किया है, तिनके मुख उस प्रभु के सच्चे दरबार में सदैव उजले होते हैं। वे ही जीव सदा सच्चे नाम से प्यार करते हुए अमृत-पान करते हैं ॥ १ ॥ (इसलिए) हे भाई, गुरुमुख जीव हमेशा (प्रभु दरबार में) सम्मानित होता है। हरिनाम का सदा ध्यान कीजिए, क्योंकि इससे अहंकार का मल धुल जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मनमुख जीव नाम-रहस्य को नहीं समझते और बिना नाम के सम्मान प्राप्त नहीं होता। जिनमें द्वैत-भाव होता है, उन्हें गुरु के उपदेश का भी कोई आनन्द नहीं मिलता। वे गन्दे जीव हैं, विष्ठा के कीड़े हैं, दुर्मति की मैल में रहते और नरक में सड़ते हैं ॥ २ ॥ उन जीवों का जन्म सफल हो जाता है, जो सतिगुरु की शरण लेते और उसी के उपदेशों पर आचरण करते हैं। वे अपने समूचे वंश का उद्धार करते हैं, उनकी जननी धन्य है। हरि-हरि नाम का ध्यान करना चाहिए, किन्तु यह ध्यान वही पुरुष कर सकता है, जिस पर प्रभु की विशेष कृपा होती है ॥ ३ ॥ जिन जीवों ने गुरु की शरण लेकर हरि-नाम का स्मरण किया, उनके भीतर से अहंकार की वृत्ति नष्ट हो गई। वे बाहर-भीतर, सब ओर से निर्मल हुए परमसत्य में समा गए। गुरुजी कहते हैं कि संसार में आए वे ही जीव परवान हैं जिन्होंने गुरु के उपदेशानुसार प्रभु-भजन किया है ॥ ४ ॥ ५ ॥ ३८ ॥

॥ सिरीरागु महला ३ ॥ हरि भगता हरिधनु रासि है गुर पूछि करहि वापारु। हरिनामु सलाहनि सदा सदा वखरु हरिनामु अधारु। गुरि पूरै हरिनामु द्रिड़ाइआ हरि भगता अतुटु भंडारु ॥ १ ॥ भाई रे इसु मन कउ समझाइ। ए मन आलसु किआ करहि गुरमुखि नामु धिआइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हरि भगति हरि का पिआरु है जे गुरमुखि करे बीचारु। पाखंडि भगति न होवई दुबिधा बोलु खुआरु। सो जनु रलाइआ ना रलै जिसु अंतरि बिबेक बीचारु ॥ २ ॥ सो सेवकु हरि आखीऐ जो हरि राखै उरि धारि। मनु तनु सउपे आगै धरे हउमै विचहु मारि। धनु गुरमुखि सो परवाणु है जि कदे न आवै हारि ॥३॥ करमि मिलै ता पाईऐ विणु करमै पाइआ न जाइ। लख

चउरासीह तरसदे जिसु मेले सो मिलै हरि आइ। नानक गुरमुखि हरि पाइआ सदा हरिनामि समाइ ॥ ४ ॥ ६ ॥ ३९ ॥

हरि-भक्तों के लिए हरिनाम पूँजी के समान है, वे गुरु के आदेशानुसार (इसी पूँजी से) व्यापार करते हैं। वे सदा हरिनाम का शोभा-गान करते और हरिनाम के सौदे को जीवनाधार बनाते हैं। हरि-नाम का भण्डार अखुट है और उसकी निश्चित उपलब्धि गुरु से होती है ॥ १ ॥ (इसलिए) हे भाई, इस मन को समझाओ, ताकि यह आलस्य का त्याग करके गुरु-उपदेशानुसार नाम-स्मरण कर सके ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (अब प्रश्न उठता है कि हरि-भक्ति क्या है ? गुरुजी उत्तर देते हैं) हरि-भक्ति हरि से प्यार करने को ही कहते हैं, किन्तु (यह अन्धानुसरण अथवा समर्पण नहीं, बुद्धि-विवेक-पूर्ण) गुरु निर्देशनानुसार विचारयुक्त प्रेमार्पण है। दम्भ या पाखण्डों द्वारा भक्ति नहीं होती, द्वैत-भाव जीव को ख्वार करता है, अर्थात् दम्भी व्यक्ति को कुछ प्राप्त नहीं, वह नित्य भ्रमित ही रहता है। जिस मनुष्य में सत्य-असत्य की सूझ है, वह दम्भियों में छिपा नहीं रहता, अलग दीखता है ॥ २ ॥ अतः उसी को हरि-सेवक कहना उपयुक्त होगा, जो सदा परमात्मा को अपने हृदय में धारण किए रहता है। वह अपने तन-मन का शुद्धिकरण करके प्रभु-अर्पित करता एवं अपने भीतर के अहंकार को नष्ट कर देता है। गुरु-आज्ञानुसार आचरण करनेवाला (गुरुमुख) धन्य है, प्रभु-दरबार में भी वह परवान है, कभी उसकी पराजय नहीं होती ॥ ३ ॥ प्रभु-मिलन की सम्भावना प्रभु-कृपा से ही है, बिना उसकी दया के उसे कोई नहीं पा सका। चौरासी लाख योनियों में पड़े जीव सब परमात्मा के मिलन को तड़प रहे हैं, जिसे वह स्वयं कृपा-पूर्वक संयोग प्रदान करता है, वही हरि से मिलता है। गुरुजी कहते हैं कि गुरुमुख जीव ही हरि-मिलन को प्राप्त करता है और फिर हरि-नाम में ही विलीन हो जाता है ॥ ४ ॥ ६ ॥ ३९ ॥

॥ सिरीरागु महला ३ ॥ सुख सागरु हरिनामु है गुरमुखि पाइआ जाइ। अनदिनु नामु धिआईऐ सहजे नामि समाइ। अंदरु रचै हरि सच सिउ रसना हरिगुण गाइ ॥ १ ॥ भाई रे जगु दुखीआ दूजै भाइ। गुर सरणाई सुखु लहहि अनदिनु नामु धिआइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ साचे मैलु न लागई मनु निरमलु हरि धिआइ। गुरमुखि सबदु पछाणीऐ हरि अंम्रित नामि समाइ। गुर गिआनु प्रचंडु बलाइआ अगिआनु अंधेरा जाइ ॥ २ ॥ मनमुख मैले मलु भरे हउमै त्रिसना विकारु। बिनु सबदै मैलु न उतरै मरि जंमहि होइ खुआरु। धातुरबाजी पलचि रहे ना

उरवारु न पारु ।। ३ ।। गुरमुखि जप तप संजमी हरि कै नामि पिआरु । गुरमुखि सदा धिआईऐ एकु नामु करतारु । नानक नामु धिआईऐ सभना जीआ का आधारु ।। ४ ।। ७ ।। ४० ।।

परमात्मा का नाम सुख का भण्डार है, किन्तु इसकी प्राप्ति केवल गुरु की आज्ञा-पालन द्वारा ही सम्भव है । यदि दिन-रात हरि-नाम का स्मरण करें, तो सहज ही हरि-नाम में लीन हुआ जाता है । नाम-स्मरण करनेवाले का अन्तर्मन सच्चे परमात्मा से हिल-मिल जाता है और जिह्वा नित्य हरि के गुण गाती है ।। १ ।। हे भाई, संसार के दुःखों का कारण द्वैत-भाव (गुरु या परमात्मा में दृढ़ विश्वास का अभाव) है । सुख की उपलब्धि दिन-रात नाम में लीन रहने से होती है, और नाम-रहस्य की जानकारी गुरु की शरण में मिलती है ।। १ ।। रहाउ ।। हरि का ध्यान करने से मन निर्मल होता है और उसमें कभी मलिनता नहीं आती । गुरु-शब्दों को पहचानने से जीव अमृतरूपी प्रभु में विलीन होता है । गुरु का ज्ञान तीव्र आलोक की भाँति प्रकाशमान होता है, उससे अज्ञान का अन्धेरा नष्ट हो जाता है ।। २ ।। (इसके विपरीत) मनमुख जीव अहंकार, तृष्णा आदि विकारों के मैल से भरे होते हैं । यह मैल गुरु-उपदेशों के बिना नहीं उतरती और जीव आवागमन के चक्र में दुखी होते हैं । वे संसार के नश्वर खेल में फँसे रहते हैं, न इहलोक में उन्हें सुख मिलता है, न परलोक में उनको विश्राम मिलता है ।। ३ ।। गुरुमुख जीवों का हरि-नाम में प्यार होता है, (इसी में) उनका जप, तप, संयम सब कुछ है । वे सदा एक परमात्मा के नाम में ही ध्यानस्थ होते हैं । गुरुजी कहते हैं कि हरि-नाम समस्त जीवों का आधार है, उसीका जाप शुभ है ।। ४ ।। ७ ।। ४० ।।

।। स्रीरागु महला ३ ।। मनमुखु मोहि विआपिआ बैरागु उदासी न होइ । सबदु न चीनै सदा दुखु हरि दरगहि पति खोइ । हउमै गुरमुखि खोईऐ नामि रते सुखु होइ ।। १ ।। मेरे मन अहिनिसि पूरि रही नित आसा । सतगुरु सेवि मोहु परजलै घर ही माहि उदासा ।। १ ।। रहाउ ।। गुरमुखि करम कमावै बिगसै हरि बैरागु अनंदु । अहिनिसि भगति करे दिनु राती हउमै मारि निचंदु । वडै भागि सतिसंगति पाई हरि पाइआ सहजि अनंदु ।। २ ।। सो साधू बैरागी सोई हिरदै नामु वसाए । अंतरि लागि न तामसु मूले विचहु आपु गवाए । नामु निधानु सतगुरू दिखालिआ हरिरसु पीआ अघाए ।। ३ ।।

जिनि किनै पाइआ साधसंगती पूरै भागि बैरागि। मनमुख फिरहि न जाणहि सतगुरु हउमै अंदरि लागि। नानक सबदि रते हरिनामि रंगाए बिनु भै केही लागि ॥ ४ ॥ ८ ॥ ४१ ॥

मनमुख जीव मोह-माया में फँसा होता है, उससे वैराग्य या अनासक्ति नहीं हो सकती। वह नाम की सत्ता को नहीं पहचानता, इसलिए सदा दुःख उठाता है और प्रभु के दरबार में उसे कोई सम्मान नहीं मिलता। अहंकार का नाश केवल गुरु की शरण में ही सम्भव है (और) नाम का आश्रय लेनेवाला जीव ही सुखी होता है ॥ १ ॥ हे मेरे मन, दिन-रात तुममें तृष्णा भरी रहती है। यदि तुम किसी सच्चे गुरु की शरण लो, तो तुम्हारा मोह दूर होगा और तुम घर में ही उदास हो सकोगे (संसार के कर्मशील जीवन में विचरते हुए भी अनासक्त रह सकोगे) ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गुरुमुख बनकर यदि जीव प्रभु-कृपा की पात्रता अर्जित कर ले तो उसके भीतर परमात्मा का आलोक होता तथा उसे वैराग्य का आनन्द मिलता है। (वैराग्य में उदासी या विरक्ति होती है, किन्तु प्रभु-मिलन से उत्पन्न वैराग्य आनन्द का कारण होता है।)। वह अहंकार का नाश करके निश्चिन्त होता और दिन-रात प्रभु-भक्ति में लीन रहता है। साधु-संगति सौभाग्य से ही मिलती है, उससे हरि का नाम और नाम से सहज खुशी प्राप्त होती है ॥ २ ॥ हृदय में प्रभु-नाम को बसानेवाला जीव ही साधु-वैरागी है। उसके अन्तर्मन में कभी तमोगुण जाग्रत नहीं होता, उसका अहम्-भाव दूर हो जाता है। सतिगुरु उसे नाम के भण्डार परमात्मा से परिचित करवा देता है और वह तृप्त होकर हरि रस का पान करता है ॥ ३ ॥ जिस किसी ने भी ऐसा अनासक्त-योग प्राप्त किया है, वह सौभाग्य, साधुसंगति आदि से ही पाया है। मनमुख पुरुष उस परब्रह्म को नहीं पहचानता (उसे सतिगुरु का उपदेश लब्ध नहीं), क्योंकि उसके मन में अहंता रहती है। गुरुजी कहते हैं कि जो जीव हरि-नाम से प्यार करते हैं, वे गुरुरूपी रंगरेज के द्वारा सुन्दर रंग में रंगे जाते हैं। रंग कहीं कच्चा न रहे, इसे पकाने के लिए प्रभु के भय की पुट दी जाती है ॥ ४ ॥ ८ ॥ ४१ ॥

॥ सिरीरागु महला ३ ॥ घर ही सउदा पाईऐ अंतरि सभ वथु होइ। खिनु खिनु नामु समालीऐ गुरमुखि पावै कोइ। नामु निधानु अखुटु है वडभागि परापति होइ ॥ १ ॥ मेरे मन तजि निंदा हउमै अहंकारु। हरि जीउ सदा धिआइ तू गुरमुखि एकंकारु ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गुरमुखा के मुख उजले गुरसबदी बीचारि। हलति पलति सुखु पाइदे जपि जपि रिदै मुरारि।

घर ही विचि महलु पाइआ गुरसबदी वीचारि ॥ २ ॥ सतगुर ते जो मुह फेरहि मथे तिन काले । अनदिनु दुख कमावदे नित जोहे जमजाले । सुपनै सुखु न देखनी बहु चिंता परजाले ॥ ३ ॥ सभना का दाता एकु है आपे बखस करेइ । कहणा किछू न जावई जिसु भावै तिसु देइ । नानक गुरमुखि पाईऐ आपे जाणै सोइ ॥ ४ ॥ ९ ॥ ४२ ॥

(हे भाई) नामरूपी सौदा शरीर के भीतर ही प्राप्त होता है और गुण-रूपी सब सामग्री भी अन्तर में ही विद्यमान है। किन्तु उसकी प्राप्ति पल-पल हरि-भजन करनेवाले किसी गुरुमुख को ही होती है। नाम का अखुट भण्डार किसी भाग्यशाली जीवात्मा को ही प्राप्त होता है ॥ १ ॥ (इसलिए, गुण-वृद्धि हेतु) ऐ मेरे मन, तू निंदा, अहंकार आदि (दुर्गुणों का) त्यागकर, और गुरु-सन्मत्त भाव से, स्थिर-बुद्धि होकर भगवान का ध्यान कर ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जो जीव गुरु के शब्दों द्वारा प्रभु की उपलब्धि पर विचार करता है, उसका मुख उज्ज्वल है। वे लोग हृदय में वाहिगुरु को धारण करने और वाणी से उसे जपने के कारण सदैव इहलोक एवं परलोक में सुख-लाभ करते हैं। गुरु-उपदेशानुसार आचरण करने से वे अपने अन्तःकरण (घर) में ही ब्रह्म-रूपी साक्षी आत्मा (महल) को पा लेते हैं ॥ २ ॥ जो जीव सतिगुरु से विमुख होते हैं, उनका मुख कलंकित है। रात-दिन वे दुःख में पलते और माया-जाल में फँसे रहते हैं। उन्हें सपने में भी सुख नहीं मिलता, वे भाँति-भाँति की चिन्ताओं में जलते रहते हैं ॥ ३ ॥ सर्व जीवों का दाता परमेश्वर स्वयं है, वही स्वेच्छा से सब पर कृपा करता है। उसकी देन अवर्णनीय है, जिसे चाहता है, देता है। गुरुजी कहते हैं कि जब गुरु के उपदेशों से जीव को ज्ञान हो जाता है, तो वह अपने-आप रहस्य को जान लेता है ॥ ४ ॥ ९ ॥ ४२ ॥

॥ सिरीरागु महला ३ ॥ सचा साहिबु सेवीऐ सचु वडिआई देइ । गुरपरसादी मनि वसै हउमै दूरि करेइ । इहु मनु धावतु ता रहै जा आपे नदरि करेइ ॥ १ ॥ भाई रे गुरमुखि हरिनामु धिआइ । नामु निधानु सद मनि वसै महली पावै थाउ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मनमुख मनु तनु अंधु है तिस नउ ठउर न ठाउ । बहु जोनी भउदा फिरै जिउ सुंञैं घरि काउ । गुरमती घटि चानणा सबदि मिलै हरिनाउ ॥ २ ॥ त्रै गुण बिखिआ अंधु है माइआ मोह गुबार । लोभी अन कउ सेवदे पड़ि वेदा करै पूकार । बिखिआ अंदरि पचि मुए ना उरवारु

न पारु ॥ ३ ॥ माइआ मोहि विसारिआ जगत पिता प्रतिपालि । बाझहु गुरू अचेतु है सभ बधी जमकालि । नानक गुरमति उबरे सचा नामु समालि ॥ ४ ॥ १० ॥ ४३ ॥

सच्चे मालिक अर्थात् वाहिगुरु की सेवा करें तो वह स्वरूप की प्राप्ति-रूपी बड़प्पन प्रदान करता है। गुरु की कृपा से वह वाहिगुरु जीव के अन्तःकरण में बस जाता है और जीव के अहम्-भाव को नष्ट करता है। (मन चंचल है, चारों दिशाओं में भ्रमता है) मन का भ्रमणा तभी समाप्त हो सकता है, जब प्रभु की महती कृपा होती है ॥ १ ॥ हे भाई, गुरु के उपदेशानुकूल प्रभु का नाम जपो; उसी से नाम का भण्डार मन में बसेगा और परमात्मा रूपी पति के महलों में स्थान प्राप्त होगा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (इसके विपरीत) मनमुख जीव का तन-मन अन्धकारमय है, उसका कोई ठिकाना या सहारा नहीं होता। वह ख़ाली घर में कौए की नाईं विभिन्न योनियों में भटकता है। केवल गुरु की शिक्षा से ही जीव के मन में ज्ञान का प्रकाश होता है और उसके शब्दों द्वारा हरिनाम लब्ध होता है ॥ २ ॥ त्रिगुणी विषय-विकारों का अन्धकार तथा माया-मोह की धुन्ध है। लोभी विद्वान, यद्यपि सस्वर वेद-पाठ करते हैं, किन्तु वे द्वैत-भाव में लिप्त वाहिगुरु को छोड़कर पार्थिव पूजा करते हैं। अन्ततः वे विषय-विकारों में ही सिर-पटखकर मर जाते हैं, उन्हें इधर या उधर का कोई किनारा नहीं मिलता अर्थात् वे बेसहारा रहते हैं ॥ ३ ॥ जीवों ने मोह-माया में लीन होकर सृष्टि के प्रतिपालक पिता (परमात्मा) को भुला रखा है। समूची प्रजा गुरु के उपदेशों के अभाव में ज्ञान-रहित है, यम-काल की मायावी शक्तियों ने उसे बाँध रखा है। गुरुजी कहते हैं कि गुरु के आदेशानुसार सत्यनाम का स्मरण करके ही वह बन्धन-मुक्त हो सकती है ॥४॥१०॥४३॥

॥ सिरीरागु महला ३ ॥ त्रै गुण माइआ मोहु है गुरमुखि चउथा पदु पाइ । करि किरपा मेलाइअनु हरिनामु वसिआ मनि आइ । पोतै जिन कै पुंनु है तिन सतसंगति मेलाइ ॥ १ ॥ भाई रे गुरमति साचि रहाउ । साचो साचु कमावणा साचै सबदि मिलाउ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिनी नामु पछाणिआ तिन विटहु बलि जाउ । आपु छोडि चरणी लगा चला तिन कै भाइ । लाहा हरि हरि नामु मिलै सहजे नामि समाइ ॥ २ ॥ बिनु गुर महलु न पाईऐ नामु न परापति होइ । ऐसा सतगुरु लोड़िलहु जिदू पाईऐ सचु सोइ । असुर संघारै सुखि वसै जो तिसु भावै सु होइ ॥ ३ ॥ जेहा सतगुरु करि जाणिआ तेहो जेहा

सुखु होइ। एहु सहसा मूले नाही भाउ लाए जनु कोइ। नानक एक जोति दुइ मूरती सबदि मिलावा होइ ॥४॥११॥४४॥

तीन गुणों (सत्, रज, तम) की सीमा में मोह व्याप्त है (उनमें रहनेवाले जीव माया-बन्धन में हैं) केवल गुरुमुख जीव ही इन सीमाओं से बाहर (मायातीत) चौथा पद प्राप्त करता है। यदि परमात्मा की कृपा हो, तो गुरु मिलता है और तब हरि-नाम मन में उपजता है। जिनके कोष में पुण्य है, उन्हें साधु-संगति प्राप्त होती है ॥ १ ॥ (इसलिए) हे भाई, गुरु के आदेशानुसार सत्य में विचरण करो और वृत्ति को परमेश्वर में स्थिर करके बीज-भाव से सत्यनाम का जाप करो; ऐसा करने से ही सच्चे परमात्मा से मिलन सम्भव होता है और जीव शब्द-ब्रह्म में अभेद होता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिन जीवों ने नाम की कमाई की है, मैं उनपर बलिहार जाता हूँ। (हे जीवो!) अहंकार को छोड़कर (तुम भी) उनकी शरण लो और उनके (नाम की कमाई द्वारा स्वरूप पहचान लेनेवाले महापुरुषों के) निर्देशानुसार आचरण करो। इससे (तुम्हें) हरि-नाम की प्राप्ति का लाभ होगा और तुम भी सहजावस्था में प्रविष्ट होकर नाम में ही लीन हो सकोगे ॥ २ ॥ गुरु के बिना कोई अवलम्ब नहीं, न ही नाम-रहस्य की जानकारी हो सकती है। अतः ऐसा सतिगुरु खोजो, जिससे उस परम-सत्य का सही ज्ञान हो सके। तभी (उसके उपदेशों से) काम-क्रोधादि विकारों (असुरों) का अन्त होगा, जीव उसकी इच्छा पर आश्रित होना सीखेगा और फिर वह सुख ही सुख प्राप्त कर सकेगा ॥ ३ ॥ जैसा निश्चय किसी जीव का सतिगुरु में होता है, वैसा ही उसे लाभ मिलता है। इसमें मूलतः कोई शंका नहीं, चाहे तो कोई सतिगुरु से प्रेम करके आज़मा ले। वह गुरु तथा वाहिगुरु (परमेश्वर) चाहे दो अलग रूप दीख पड़ते हैं, किन्तु वास्तव में दोनों की ज्योति एक है, उसका मिलाप शब्द द्वारा होता है ॥ ४ ॥ ११ ॥ ४४ ॥

॥ सिरीरागु महिला ३ ॥ अंम्रितु छोडि बिखिआ लोभाणे सेवा करहि विडाणी। आपणा धरमु गवावहि बूझहि नाही अनदिनु दुखि विहाणी। मनमुख अंध न चेतही डूबि मुए बिनु पाणी ॥ १ ॥ मन रे सदा भजहु हरि सरणाई। गुर का सबदु अंतरि वसै ता हरि विसरि न जाई ॥ १ ॥ रहाउ ॥ इहु सरीरु माइआ का पुतला विचि हउमै दुसटी पाई। आवणु जाणा जंमणु मरणा मनमुखि पति गवाई। सतगुरु सेवि सदा सुखु पाइआ जोती जोति मिलाई ॥ २ ॥ सतगुर की सेवा अति

सुखाली जो इछे सो फलु पाए। जतु सतु तपु पवितु सरीरा हरि हरि मंनि वसाए। सदा अनंदि रहै दिनु राती मिलि प्रीतम सुखु पाए ॥ ३ ॥ जो सतगुर की सरणागती हउ तिन कै बलि जाउ। दरि सचै सची वडिआई सहजे सचि समाउ। नानक नदरी पाईऐ गुरमुखि मेलि मिलाउ ॥ ४ ॥ १२ ॥ ४५ ॥

(भ्रमित जीव) अमृत छोड़कर अर्थात् वाहिगुरु से विमुख हो विष-फल पर मोहित होते हैं (अर्थात् माया के भ्रम में हैं) और पराई सेवा में लीन हैं (मोह-माया में लिप्त हैं)। वे अपने धर्म से च्युत हैं, ब्रह्म-ज्ञान से वंचित हैं, इसी से रात-दिन उनकी आयु यों ही बरबाद हो रही है। वे मनमुख हैं, उन्हें गुरु-प्रदत्त ज्ञान उपलब्ध नहीं, इससे बिना पानी डूब रहे हैं, अर्थात् मिथ्या प्रपंच में खोए हैं ॥ १ ॥ हे मन, गुरु की शरण लेकर नित्य हरि-भजन करो। यदि (इस प्रकार) गुरु के शब्दों को मन में बसा लोगे, तो हरि कभी विस्मृत नहीं होगा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ यह शरीर माया का पुतला है, जिसमें अहम्भाव का दोष (विकार) भरा है। (इसी कारण) यदि जीव मनमुख बना रहे, तो वह आवागमन के चक्र में फँसकर प्रभु के सम्मुख उपेक्षित हो जाता है। जो जीव सतिगुरु की शरण लेते हैं, वे सुखी होते हैं और उनकी आत्मा-रूपी ज्योति परमात्मा की परम-ज्योति में विलीन हो जाती है ॥ २ ॥ सतिगुरु की सेवा सुखद या सुगम है (क्योंकि वे तो आज्ञा-पालन मात्र से ही प्रसन्न हो जाते हैं), सेवक जीव मनोवांछित फल प्राप्त करता है। गुरु के मिलाप से जप, तप, संयम आदि के द्वारा शरीर पवित्र बनता एवं हरि-नाम मन में उजागर होता है। वह जीव दिन-रात सदैव आनन्द-मग्न रहता है, क्योंकि स्वयं वाहिगुरु उसके मन में निवास करता है ॥ ३ ॥ अतः जो जीव सतिगुरु की शरण को प्राप्त हैं, मैं उनके बलिहार हूँ। सच्चे प्रभु के द्वार पर उन्हें सच्चा सम्मान मिलता है और वे सहज में ही उस सच्चे परमेश्वर से अभेद हो जाते हैं। गुरुजी कहते हैं कि प्रभु-मिलन की सम्भावना ईश्वर की कृपा एवं गुरु निर्देशानुसार आचरण में ही निहित है ॥ ४ ॥ १२ ॥ ४५ ॥

॥ सिरीरागु महला ३ ॥ मनमुख करम कमावणे जिउ दोहागणि तनि सीगारु। सेजै कंतु न आवई नित नित होइ खुआरु। पिर का महलु न पावई ना दीसै घरु बारु ॥ १ ॥ भाई रे इकमनि नामु धिआइ। संता संगति मिलि रहै जपि रामनामु सुखु पाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गुरमुखि सदा सोहागणी पिरु राखिआ उरधारि। मिठा बोलहि निवि चलहि सेजै रवै

भतारु। सोभावंती सोहागणी जिन गुर का हेतु अपारु ॥ २ ॥ पूरै भागि सतगुरु मिलै जा भागै का उदउ होइ। अंतरहु दुखु भ्रमु कटीऐ सुखु परापति होइ। गुर कै भाणै जो चलै दुखु न पावै कोइ ॥ ३ ॥ गुर के भाणे विचि अंम्रितु है सहजे पावै कोइ। जिना परापति तिन पीआ हउमै विचहु खोइ। नानक गुरमुखि नामु धिआईऐ सचि मिलावा होइ ॥ ४ ॥ १३ ॥ ४६ ॥

मनमुखी जीव यदि 'सत्कर्म' भी करता है, तो उसके कर्म त्यक्ता स्त्री के द्वारा धारण किए वस्त्राभूषणों के समान होते हैं। (श्रृंगार करने पर भी उस) स्त्री की सेज पर कन्त (पति) रमण नहीं करता और वह पर-पुरुषों के साथ नित्य भ्रष्ट होती है (अर्थात् वह लोभ, मोहादि विकारों में भ्रष्ट हुई रहती है)। वह अपने गृहिणी-रूप को सही अर्थों में पहचान ही नहीं पाती, इसीलिए उसे प्रियतम (प्रभु-पति) के घर में आश्रय नहीं मिलता ॥ १ ॥ हे भाई (इसलिए) एकाग्र-चित्त होकर परमात्मा का नाम-स्मरण करो। जो लोग साधु-संगति में आते हैं, वे ही राम-नाम को जप करके सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जो लोग गुरुमुख हैं, अर्थात् गुरु-आज्ञा में विचरते हैं, वे सदा सुहागिन (अर्थात् प्रभु को प्रिय) होते हैं। प्रभु-पति सदैव उनके चित्त में रहता है। वे अपने पति की प्रसन्नता के लिए मधुर वचन कहते, विनम्र आचरण करते हैं, तभी उनको भर्तार (प्रभु-पति) की संगति प्राप्त होती है। (अर्थात् वे जीवात्माएँ प्रभु-रूपी पति से सम्भोग प्राप्त करती हैं)। जिनके मन में गुरु का अपार प्रेम होता है, वे ही आत्माएं ईश्वर की शरण में सुहाग-भरी शोभा की अधिकारी होती हैं ॥ २ ॥ जब जीव का भाग्योदय होता है, तो शुभ फल के तौर पर उसे सतिगुरु का मिलाप होता है। गुरु उसके दुःखों और भ्रमों का नाश करके उसके जीवन में सुख का आलोक बिखरा देता है। और यदि जीव निरन्तर गुरु के आदेशानुसार आचरण करता रहे, तो उसे कदापि दुःख नहीं होता ॥ ३ ॥ गुरु के आज्ञा-पालन में आत्मानन्द-रूपी अमृत है; जो उसकी आज्ञानुसार चलते हैं, वे सहज में ही उस अमृत को पा जाते हैं। जिनके भाग्य में उस अमृत की प्राप्ति बदा है, वे अहंकार त्यागकर उसे पी लेते हैं। गुरुजी कहते हैं कि मनुष्य को गुरु के कथनानुसार नाम का जाप करना चाहिए, इसी से परम-सत्य का मिलाप सम्भव है ॥ ४ ॥ १३ ॥ ४६ ॥

॥ सिरीरागु महला ३ ॥ जा पिरु जाणै आपणा तनु मनु अगै धरेइ। सोहागणी करम कमावदीआ सेई करम करेइ। सहजे साचि मिलावड़ा साचु वडाई देइ ॥ १ ॥ भाई रे गुर

बिनु भगति न होइ। बिनु गुर भगति न पाईऐ जे लोचै सभु कोइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ लख चउरासीह फेरु पइआ कामणि दूजै भाइ। बिनु गुर नीद न आवई दुखी रैणि विहाइ। बिनु सबदै पिरु न पाईऐ बिरथा जनमु गवाइ ॥ २ ॥ हउ हउ करती जगु फिरी ना धनु संपै नालि। अंधी नामु न चेतई सभ बाधी जमकालि। सतगुरि मिलिऐ धनु पाइआ हरिनामा रिदै समालि ॥ ३ ॥ नामि रते से निरमले गुर कै सहजि सुभाइ। मनु तनु राता रंग सिउ रसना रसन रसाइ। नानक रंगु न उतरै जो हरि धुरि छोडिआ लाइ ॥ ४ ॥ १४ ॥ ४७ ॥

यदि मनुष्य परमात्मा को अपना स्वामी मान ले (अर्थात् यदि जीवात्मा-रूपी पत्नी प्रभु को अपना पति स्वीकार करे), सहज में ही तन-मन उसको अर्पित कर दे। पुनः वे सब कर्म भी करे जो सुहागिनें अपने पति को रिझाने को करती हैं (अर्थात् जिज्ञासु प्रपत्ति भाव से परमात्मा की शरण में आए); तब सत्य-पद को प्रदान करनेवाले सर्वस्व के स्वामी (वाहिगुरु) से मिलाप हो सकता है ॥ १ ॥ हे भाई, भक्ति का संकल्प गुरु के बिना नहीं होता। कितने भी प्रयास क्यों न किए जायँ, गुरु के बिना प्रभु-भक्ति कभी सम्भव नहीं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जो द्वैत-भावी मनमुखी जीवात्मा (पर-पुरुष भुक्ता स्त्री) है, वह चौरासी लाख योनियों के चक्र में पड़ी रहती है (अर्थात् जन्म-मरण के फन्दे में है)। गुरु-कृपा के बिना जीवात्मा को मिलन-सुख की मादक निद्रा नहीं मिलती, वह तड़प-तड़पकर दुःखपूर्वक रात व्यतीत करती है। उसका जीवन व्यर्थ हो जाता है, गुरु के उपदेशों से वंचित रहकर वह जीवात्मा-रूपी दुल्हिन कभी अपने परमेश्वर-पति की भुजाओं में नहीं जा पाती ॥ २ ॥ ऐसी जीवात्मा अहंकार के मद में जगत में विचरती है, किन्तु धन-सम्पत्ति किसी के साथ नहीं जाती। वह अज्ञानवश माया का अन्धानुसरण कर रही है, नाम-रहस्य को जानने का प्रयास नहीं करती, (इसीलिए) यम के राज्य में बन्धनों में पड़ती है। जिन (सुहागिन) आत्माओं को सतिगुरु मिल गया है (उनका अहोभाग्य है), उन्होंने सावधानी-पूर्वक हरि-नाम के अमूल्य धन को हृदय में धारण कर लिया है ॥ ३ ॥ जो जीव स्वभाववश गुरु के उपदेशों द्वारा नाम में लीन हो गए हैं, वे ही पूर्णतः निर्मल हैं। उनका मन-तन उस प्रभु के रंग में रंग गया है, उनकी रसना पर सदैव उसी का नाम व्याप्त है। गुरुजी कहते हैं, ब्रह्मवेत्ता जीव का रंग इतना प्रगाढ़ होता है कि कभी फीका नहीं पड़ता (अर्थात् वे ब्रह्मानन्द में मग्न होने के कारण कभी सांसारिक विषयों के आनन्द में लिप्त नहीं होते) ॥ ४ ॥ १४ ॥ ४७ ॥

॥ सिरीरागु महला ३ ॥ गुरमुखि क्रिपा करे भगति कीजै बिनु गुर भगति न होई । आपै आपु मिलाए बूझै ता निरमलु होवै सोई । हरि जीउ साचा साची बाणी सबदि मिलावा होई ॥ १ ॥ भाई रे भगतिहीणु काहे जगि आइआ । पूरे गुर की सेव न कीनी बिरथा जनमु गवाइआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ आपे जगजीवनु सुखदाता आपे बखसि मिलाए । जीअ जंत ए किआ वेचारे किआ को आखि सुणाए । गुरमुखि आपे देइ वडाई आपे सेव कराए ॥ २ ॥ देखि कुटंबु मोहि लोभाणा चलदिआ नालि न जाई । सतगुरु सेवि गुणनिधानु पाइआ तिस दी कीम न पाई । हरिप्रभु सखा मीतु प्रभु मेरा अंते होइ सखाई ॥ ३ ॥ आपणै मनि चिति कहै कहाए बिनु गुर आपु न जाई । हरि जीउ दाता भगतिवछलु है करि किरपा मंनि वसाई । नानक सोभा सुरति देइ प्रभु आपे गुरमुखि दे वडिआई ॥४॥१५॥४८॥

गुरमुखों अर्थात् सन्तों की कृपा से ही भक्ति सम्भव होती है, बिना गुरु के कदाचित् भक्ति नहीं होती। जब गुरु शिष्य को अपने साथ मिलाता और सिक्ख (शिष्य) उसके उपदेशों को समझता है, तो वासना-रूपी मैल के धुल जाने से वह निर्मल होता है। परमात्मा सत्य-स्वरूप है, उसकी वाणी भी सच्ची है, क्योंकि उसी के श्रवण और मनन से जीव परमात्मा से मिल पाता है ॥ १ ॥ हे भाई, भक्ति-हीन जीव का जगत में आना बेकार है। जो मनमुख सतिगुरु की सेवा में लीन नहीं, उसका समूचा जीवन ही निरर्थक है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ वाहिगुरु स्वयं जगत का प्राण है, सर्व प्रकार के सुखों को देनेवाला है। वह स्वतः जिस पर कृपा करता है, उसे अपने में ही अभेद बना लेता है। इन सूक्ष्म या स्थूल जीवों के सामर्थ्य में कुछ नहीं और परमेश्वर के अतिरिक्त किसी की कोई क्या विनती कर सकता है। परमात्मा का प्रक्षेपण गुरु के द्वारा ही होता है, वह स्वयं इसी माध्यम से जीव से सेवा करवाता और उसे बड़ाई देता है ॥ २ ॥ यह जीव परिवार के मोह-जाल में पड़ा है, किन्तु मृत्यु-समय कोई सहायक नहीं होता, कोई साथ नहीं जाता। जो जीव सतिगुरु की सेवा द्वारा गुणागार प्रभु को प्राप्त कर लेता है, वह परमात्मा से अभेद होने के कारण अमूल्य बन जाता है। इसलिए जीव का सच्चा मित्र, सखा, साथी स्वयं परमात्मा ही है, जो कि अन्तकाल में भी सहायी होता है, (मैत्री निभाता है) ॥ ३ ॥ अपने मन-चित्त से सोचने-विचारने अथवा किसी के कहने से व्यक्ति अहम्-रहित नहीं हो जाता। गुरु के बिना अहंकार का अन्त नहीं होता। हरि सब जीवों का दाता और भक्त-वत्सल है, जिस पर

उसकी कृपा होती है उसी के मन में निवास करता है। गुरमुख जीव को ज्ञान का प्रकाश देकर शोभायमान् करता और लोक-परलोक में (स्वयं प्रभु उसे) सम्मानित करता है ॥ ४ ॥ १५ ॥ ४८ ॥

॥ सिरीरागु महला ३ ॥ धनु जननी जिनि जाइआ धंनु पिता परधानु । सतगुरु सेवि सुखु पाइआ विचहु गइआ गुमानु । दरि सेवनि संत जन खड़े पाइनि गुणी निधानु ॥ १ ॥ मेरे मन गुरमुखि धिआइ हरि सोइ । गुर का सबदु मनि वसै मनु तनु निरमलु होइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ करि किरपा घरि आइआ आपे मिलिआ आइ । गुर सबदी सालाहीऐ रंगे सहजि सुभाइ । सचै सचि समाइआ मिलि रहै न विछुड़ि जाइ ॥ २ ॥ जो किछु करणा सु करि रहिआ अवरु न करणा जाइ । चिरी विछुंने मेलिअनु सतगुर पंनै पाइ । आपे कार कराइसी अवरु न करणा जाइ ॥ ३ ॥ मनु तनु रता रंग सिउ हउमै तजि विकार । अहिनिसि हिरदै रवि रहै निरभउ नामु निरंकार । नानक आपि मिलाइअनु पूरै सबदि अपार ॥ ४ ॥ १६ ॥ ४९ ॥

उस साधुजन की जननी धन्य है (जिसने उसे जन्म दिया) और उसका पिता भी श्रेष्ठ है (जिसके गृह का वह कुलदीप बना), जिसने सच्चे गुरु को खोजकर उसकी सेवा कमाई है और अपने अहंकार का विनाश किया है। ऐसे परम सन्त के द्वार पर अनेक जिज्ञासु अपनी मनोकामना पूरी करते हैं अर्थात् उस गुणों के भण्डार प्रभु को प्राप्त कर लेते हैं ॥ १ ॥ हे मेरे मन, गुरु के माध्यम से परमात्मा का ध्यान करो। गुरु का उपदेश मन में बस जाने से तन-मन पवित्र हो जाता है; अर्थात् शरीर पापों से और मन अविद्या-रूपी मैल से रहित हो जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ वाहिगुरु की परम कृपा से ही चंचल गतिशील मन संयत हुआ है और संयत मनुष्य को वह प्रभु स्वयं ही गुरु बनकर आ मिला है। परमात्मा की स्तुति गुरु के निर्देशानुसार ही होती है और जीव (तीनों अवस्थाओं से ऊपर चतुर्थ) सहजावस्था में स्थित होता है। तब विकार-रहित जीव सत्यरूप होकर उस परमसत्य से अभेद हो जाता है, दोबारा कभी अलग नहीं होता ॥ २ ॥ जो परमात्मा को रुचता है, वह कर रहा है, अन्य जीवों के किये कुछ नहीं बन सकता। जो जीव जन्म-जन्मान्तर से प्रभु से बिछुड़े होते हैं, वे भी गुरु की कृपा से पुनः उसकी (परमात्मा की) कृपा-परिधि में प्रवेश पा जाते हैं। जो कृत्य उसे स्वीकार होगा, वह जीव से करवा लेगा; स्वेच्छा से (जीव) कुछ नहीं कर सकता ॥ ३ ॥ (जिन

जीवों ने परमेश्वर की शरण ली है) उनका तन-मन परमात्मा के प्रेम में रंगा है, वे मन के अहंकारादि विकारों का त्याग कर देते हैं। (क्योंकि) रात-दिन उनके मन में वह मायातीत परब्रह्म निर्भय वास करता है। गुरुजी कहते हैं कि ऐसे जीवों को उस वाहिगुरु ने स्वयं ही अनाहत नाद के माध्यम से अपने में विलीन कर रखा है ॥ ४ ॥ १६ ॥ ४९ ॥

॥ सिरीरागु महला ३ ॥ गोविदु गुणी निधानु है अंतु न पाइआ जाइ। कथनी बदनी न पाईऐ हउमै विचहु जाइ। सतगुरि मिलिऐ सद भै रचै आपि वसै मनि आइ ॥ १ ॥ भाई रे गुरमुखि बूझै कोइ। बिनु बूझे करम कमावणे जनमु पदारथु खोइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिनी चाखिआ तिनी सादु पाइआ बिनु चाखे भरमि भुलाइ। अंम्रितु साचा नामु है कहणा कछू न जाइ। पीवत हू परवाणु भइआ पूरै सबदि समाइ ॥ २ ॥ आपे देइ त पाईऐ होरु करणा किछू न जाइ। देवणवाले कै हथि दाति है गुरू दुआरै पाइ। जेहा कीतोनु तेहा होआ जेहे करम कमाइ ॥ ३ ॥ जतु सतु संजमु नामु है विणु नावै निरमलु न होइ। पूरै भागि नामु मनि वसै सबदि मिलावा होइ। नानक सहजे ही रंगि वरतदा हरिगुण पावै सोइ ॥४॥१७॥५०॥

(हे भाई) गोविन्द, परमात्मा गुणों का भण्डार है, उसका अन्त नहीं पाया जा सकता। कोरी कल्पित बातों से भी उसकी उपलब्धि नहीं; अन्तर से अहंकार का अन्त होने पर ही परमात्मा की निकटता मिलती है। सतिगुरु की शरण में आने से जिस जीव के मन में परमात्मा का भय होता है, उसके भीतर वह वाहिगुरु स्वयं वास करता है ॥ १ ॥ हे भाई, परमात्मा के इन रहस्यों को कोई गुरमुख जन ही समझ सकता है; (इन रहस्यों को) समझे बग़ैर जीवन में कर्मशील होना समूचे मानव-जन्म को व्यर्थ गँवा देने के समान है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सच तो यह है कि जिसने प्रभु-रस चखा है, वही उसके स्वाद से परिचित होता है, जिसने चखा ही नहीं, वह व्यर्थ के भ्रमों में भटकता रह गया। परमात्मा का सच्चा नाम अमृत-रस के समान है, उसका माहात्म्य कहा नहीं जाता। उस अमृतमय नाम के जपने से ही जीव प्रभु की शरण में परवान होता और पूर्ण शब्द-ब्रह्म में विलीन होता है ॥ २ ॥ सच्चे नाम की प्राप्ति उसकी कृपा से ही होती है, अन्य कोई उपाय नहीं। पात्र का चुनाव देनेवाले के हाथ है, केवल गुरु ही एक माध्यम हो सकता है। जो पूर्वजन्म में कर्म किए, आज वह नियति बने जीव का भोग हैं और वर्तमान में किए जा रहे कर्मों

का फल भविष्य में मिलेगा ही। जीव का समूचा जप, तप, संयम नाम के अन्तर्गत निहित है, यदि नाम नहीं तो जीव अपवित्र है, मलिन है। (अर्थात् नाम-जल से धुले बिना जीव निर्मल नहीं हो सकता)। (अब प्रश्न उठता है कि यह नाम कैसे प्राप्त हो ?) यदि जीव सौभाग्यशाली हो, तभी नाम उसके चित्त में उजागर होता है और शब्द-रूपी परब्रह्म से उसका मिलाप सम्भव हो पाता है। गुरुजी कहते हैं कि जो पुरुष (इस प्रकार नाम-रस को पा जाते हैं, वे) स्वभावतः हरि के रंग में रंगे जाते और ईश्वर से अभेद होते हैं ॥ ४ ॥ १७ ॥ ५० ॥

॥ सिरीरागु महला ३ ॥ कांइआ साधै उरध तपु करै विचहु हउमै न जाइ। अधिआतम करम जे करे नामु न कबही पाइ। गुर कै सबदि जीवतु मरै हरिनामु वसै मनि आइ ॥ १ ॥ सुणि मन मेरे भजु सतगुर सरणा। गुरपरसादी छुटीऐ बिखु भवजलु सबदि गुर तरणा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ त्रै गुण सभा धातु है दूजा भाउ विकारु। पंडितु पड़ै बंधन मोह बाधा नह बूझै बिखिआ पिआरि। सतगुरि मिलिऐ त्रिकुटी छूटै चउथै पदि मुकति दुआरु ॥ २ ॥ गुर ते मारगु पाईऐ चूकै मोहु गुबारु। सबदि मरै ता उधरै पाए मोखदुआरु। गुरपरसादी मिलि रहै सचु नामु करतारु ॥ ३ ॥ इहु मनूआ अति सबल है छडे न कितै उपाइ। दूजै भाइ दुखु लाइदा बहुती देइ सजाइ। नानक नामि लगे से उबरे हउमै सबदि गवाइ ॥ ४ ॥ १८ ॥ ५१ ॥

जो लोग तपस्या द्वारा काया साधते और उरध (ऊपर की ओर होकर) तप करते हैं, उनके मन से भी अहंकार की वृत्ति नष्ट नहीं होती। जो अध्यात्म कर्म (शरीर तथा आत्मा की शुद्धिकरण हेतु किए गए बाह्य कर्म) करते हैं, वे भी कभी सच्चे नाम को नहीं प्राप्त करते। किन्तु जो गुरु की शरण में आते और उसके आदेशानुसार जीवित मरते (अर्थात् अनासक्त होते) हैं, उनके मन में स्वयं ही हरि-नाम उजागर होता है ॥ १ ॥ इसलिए ऐ मेरे मन, सुनो, सतिगुरु की शरण में आओ, क्योंकि उसी की (गुरु की) कृपा से संसार-सागर की विष-ज्वाला से छुटकारा सम्भव है; गुरु का शब्द (निर्देश) ही भवजल का पोत है, उसी के द्वारा पार हुआ जा सकता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ विश्व का समूचा त्रिगुणात्मक प्रपंच नश्वर है, द्वैत-भाव मन का विकार है। वेद-शास्त्रादि का कोरा अध्ययन करनेवाले भी मोह-बन्धनों और विषय-विकारों में पड़े हैं, उन्हीं में उनकी मनोवृत्ति स्थिर है। यदि उन्हें सतिगुरु मिल जाय, तो वे भी

त्रिगुणात्मक जगत से ऊपर उठकर चतुर्थावस्था में मुक्ति का द्वार खोज सकेंगे ।।२।। गुरु से ज्ञान-मार्ग प्राप्त होता है, जिससे अज्ञान का अन्धकार दूर होता है। गुरु के उपदेशों के श्रवण और मनन से यदि जीव का आत्मभाव समाप्त हो सके, तो वहीं मोक्ष का द्वार स्थित है। गुरु की कृपा से जीव वहीं सत्यनाम-धारी परमात्मा में विलीन हो सकता है।। ३ ।। यह मन बड़ा बलवान है, किसी भी उपाय से यह जीव को स्वतन्त्र नहीं करता। संकल्प-विकल्प द्वारा जीव में द्वैत-भाव पैदा करके उसे सज़ा दिलवाता है। गुरुजी कहते हैं कि जो हरिनाम का स्मरण करते हैं, उन्हीं का उद्धार होता है, उनके अन्तर से अहंकार दूर हो जाता है ।। ४ ।। १८ ।। ५१ ।।

।। सिरीरागु महला ३ ।। किरपा करे गुरु पाईऐ हरिनामो देइ द्रिड़ाइ । बिनु गुर किनै न पाइओ बिरथा जनमु गवाइ । मनमुख करम कमावणे दरगह मिलै सजाइ ।। १ ।। मन रे दूजा भाउ चुकाइ । अंतरि तेरै हरि वसै गुर सेवा सुखु पाइ ।।रहाउ।। सचु बाणी सचु सबदु है जा सचि धरे पिआरु । हरि का नामु मनि वसै हउमै क्रोधु निवारि । मनि निरमल नामु धिआईऐ ता पाए मोखदुआरु ।। २ ।। हउमै विचि जगु बिनसदा मरि जंमै आवै जाइ । मनमुख सबदु न जाणनी जासनि पति गवाइ । गुर सेवा नाउ पाईऐ सचे रहै समाइ ।। ३ ।। सबदि मंनिऐ गुरु पाईऐ विचहु आपु गवाइ । अनदिनु भगति करे सदा साचे की लिव लाइ । नामु पदारथु मनि वसिआ नानक सहजि समाइ ।। ४ ।। १९ ।। ५२ ।।

जब जीव पर ईश्वर की कृपा होती है, तो उसे गुरु मिलता है जो उसे हरिनाम दृढ़ करवाता है। गुरु के बिना कोई नाम की कमाई नहीं कर सकता। गुरु-विहीनों का जन्म वृथा है। जो जीव मन के संकेत पर चलकर (मनमुख) कर्म करते हैं, उन्हें परमेश्वर के दरबार में दण्ड मिलता है ।। १ ।। (इसलिए) ऐ मन, द्वैत-भाव को छोड़ो; तुम्हारे भीतर अप्रत्यक्ष रूप से हरि विद्यमान है, गुरु की सेवा द्वारा (गुरु निर्देशानुसार आचरण करके) तुम उसे प्रकट कर सकते हो, उसी में चिर-सुख लब्ध होता है ।। १ ।। रहाउ ।। जब जीव उस (सच्चे) परमेश्वर में प्रेम की वृत्ति धारण करता है तो उसकी वाणी और उपदेशों में भी सत्य-स्वरूप उजागर होता है। वह अहंकार, क्रोधादि विकारों का त्यागकर हृदय में केवल हरि-नाम को ही बसा लेता है। नाम के स्मरण से उसका चित्त

निर्मल होता और उसके लिए मुक्ति का द्वार प्रकट हो जाता है (अर्थात् वह मुक्त हो जाता है) ॥ २ ॥ (अब मनमुखों की स्थिति चित्रित करते हैं) शेष समस्त जगत अहंकार में पड़ा विनष्ट हो रहा है। मनमुख जीव जन्म-मरण और आवागमन में फँसे हैं। गुरु के शब्दों का ज्ञान उन्हें नहीं होता, इसलिए वे प्रभु के सम्मुख सम्मानित नहीं होते। हरि-नाम का भेद केवल गुरु-सेवा से ही प्राप्त होता है, तभी जीव वाहिगुरु से अभेद हो सकता है ॥ ३ ॥ (गुरुवाणी, गुरु और वाहिगुरु में कोई अन्तर मानती, इसलिए उसे) आस्तिक भावना के रूप में स्वीकार करने से अर्थात् गुरुवाणी के अनुसार गुरु को परमात्मा-रूप मानने से ही गुरु की उपलब्धि होती है। गुरु का उपदेश-श्रवण से मन का अहंकार नष्ट होता है। तब जीव उस सत्यस्वरूप परमात्मा में ध्यान लगाकर दिन-रात उसकी भक्ति करता है। गुरु-कृपा से उसके चित्त में नाम-रस सिंचित होता है, (जिसके परिणाम-स्वरूप) गुरुजी कहते हैं, वह त्रिगुणातीत चौथा निर्वाण-पद प्राप्त करता है ॥ ४ ॥ १९ ॥ ५२ ॥

॥ सिरीरागु महला ३ ॥ जिनी पुरखी सतगुरु न सेविओ से दुखीए जुग चारि। घरि होदा पुरखु न पछाणिआ अभिमानि मुठे अहंकारि। सतगुरू किआ फिटकिआ मंगि थके संसारि। सचा सबदु न सेविओ सभि काज सवारणहारु ॥ १ ॥ मन मेरे सदा हरि वेखु हदूरि। जनम मरन दुखु परहरै सबदि रहिआ भरपूरि ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सचु सलाहनि से सचे सचा नामु अधारु। सची कार कमावणी सचे नालि पिआरु। सचा साहु वरतदा कोइ न मेटणहारु। मनमुख महलु न पाइनी कूड़ि मुठे कूड़िआर ॥ २ ॥ हउमै करता जगु मुआ गुर बिनु घोर अंधारु। माइआ मोहि विसारिआ सुखदाता दातारु। सतगुरु सेवहि ता उबरहि सचु रखहि उरधारि। किरपा ते हरि पाईऐ सचि सबदि वीचारि ॥ ३ ॥ सतगुरु सेवि मनु निरमला हउमै तजि विकार। आपु छोडि जीवत मरै गुर कै सबदि वीचार। धंधा धावत रहि गए लागा साचि पिआरु। सचि रते मुख उजले तितु साचै दरबारि ॥ ४ ॥ सतगुरु पुरखु न मंनिओ सबदि न लगो पिआरु। इसनानु दानु जेता करहि दूजै भाइ खुआरु। हरि जीउ आपणी क्रिपा करे ता लागै नाम पिआरु। नानक नामु समालि तू गुर कै हेति अपारि ॥ ५ ॥ २० ॥ ५३ ॥

जिन पुरुषों ने सतिगुरु की सेवा नहीं की (गुरु के आदेशानुसार आचरण नहीं किया), वे युग-युग (चारों युगों) तक दुखी रहते हैं। वे अहंकार से पीड़ित, अहम् द्वारा ठगे हुए भ्रष्ट जीव हैं, जिन्होंने अपने ही भीतर निवसित परमेश्वर को नहीं पहचाना। वे गुरु-विमुख हैं, सतिगुरु से तिरस्कृत हैं, इसलिए संसार में भटकते मर जाते हैं। वे जीव कामधेनु-रूप सच्चे गुरु-शब्द से वंचित रहते हैं, जो सब प्रकार के कार्यों को सँवारता है ॥ १ ॥ हे मेरे मन, यदि तू सदैव प्रभु को अंग-संग मान ले, तो तुम्हारे भीतर भी परमात्मा का शब्द-रूप उजागर होगा और तुम्हारा जन्म-मरण का कष्ट सदा के लिए कट जायगा ॥ रहाउ ॥ जो जीव सत्यस्वरूप परमात्मा का यशोगान करते हैं, वे भी नाम के आश्रय सत्यस्वरूप में ही लीन हो जाते हैं। वाहिगुरु के साथ उनका उत्कट प्रेम होता है और वे सत्कर्म में संलग्न रहते हैं। परमात्मा का सच्चा हुकुम ही सब ओर व्याप्त है, कोई उसका उल्लंघन नहीं कर सकता। मनमुख जीव परमात्मा की शरण नहीं लेते, मिथ्या संसार के मोह में वे मिथ्या जीवन जीते हैं ॥ २ ॥ सारा संसार अहम्भाव में आवृत्त गुरु के बिना अज्ञानान्धकार में बेसुध है। मनमुख जीवों ने माया-मोह के बन्धनों में पड़कर सुखदाता वाहिगुरु को विस्मृत कर दिया है। (ऐसे जीवों का उद्धार कैसे हो ?) यदि वे सच्चे गुरु के आदेशों पर चलें और उस सत्यस्वरूप ब्रह्म को हृदय में धारण करें, तभी उनका उद्धार सम्भव है। सतिगुरु की कृपा से ही शब्द-रूपी परमेश्वर का ज्ञान पाया जा सकता है ॥ ३ ॥ जब सतिगुरु की ओर प्रवृत्ति होने से काम-क्रोधादि विकारों का त्याग किया जायगा, तभी मन निर्मल होगा। गुरु के उपदेशों को ग्रहण करके जब वह जीव-भाव छोड़ेगा तो जीवन्मुक्त हो जायगा। संसार में लगे उसके संकल्प-विकल्प शान्त हो जायँगे और वह सत्य-स्वरूप परमात्मा से प्यार करने लगेगा। सत्य से प्रेम करने के कारण उसका मुख उज्ज्वल होगा और वह प्रभु के सच्चे दरबार में सम्मानित होगा ॥ ४ ॥ जो लोग सतिगुरु को परमेश्वर रूप नहीं मानते, उनको गुरु के उपदेशों से प्यार नहीं होता। कितना भी स्नान, दान-पुण्य करें, फिर भी द्वैत-भाव के कारण वे कष्ट उठाते हैं। भगवत्कृपा हो, तभी नाम से उनका प्यार बन सकता है। गुरुजी कहते हैं, (इसलिए) ऐ जीव, तू गुरु में अपार प्रेम धारण करके वाहिगुरु का नाम स्मरण कर ॥ ५ ॥ २० ॥ ५३ ॥

॥ सिरीरागु महला ३ ॥ किसु हउ सेवी किआ जपु करी सतगुर पूछउ जाइ। सतगुर का भाणा मंनि लई विचहु आपु गवाइ। एहा सेवा चाकरी नामु वसै मनि आइ। नामै ही ते सुखु पाईऐ सचै सबदि सुहाइ ॥ १ ॥ मन मेरे अनदिनु जागु

हरि चेति । आपणी खेती रखि लै कूंज पड़ैगी खेति ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मन कीआ इछा पूरीआ सबदि रहिआ भरपूरि । भै भाइ भगति करहि दिनु राती हरि जीउ वेखै सदा हदूरि । सचै सबदि सदा मनु राता भ्रमु गइआ सरीरहु दूरि । निरमलु साहिबु पाइआ साचा गुणीगहीरु ॥ २ ॥ जो जागे से उबरे सूते गए मुहाइ । सचा सबदु न पछाणिओ सुपना गइआ विहाइ । सुंञे घर का पाहुणा जिउ आइआ तिउ जाइ । मनमुख जनमु बिरथा गइआ किआ मुहु देसी जाइ ॥ ३ ॥ सभ किछु आपे आपि है हउमै विचि कहनु न जाइ । गुर कै सबदि पछाणीऐ दुखु हउमै विचहु गवाइ । सतगुरु सेवनि आपणा हउ तिन कै लागउ पाइ । नानक दरि सचै सचिआर हहि हउ तिन बलिहारै जाउ ॥ ४ ॥ २१ ॥ ५४ ॥

यदि जीव के मन में यह आशंका हो कि उसे किसकी सेवा करना और कौन-सा नाम जपना चाहिए, तो भी सतिगुरु से ही शंका-समाधान हो सकता है। मन से अहंकार को दूर करके सतिगुरु का उपदेश विनम्रता-पूर्वक स्वीकार करने से ही (समाधान होता है)। इस तरह चाव-भरी गुरु-सेवा करने से हरिनाम मन में बसता है। और नाम के जपने से शब्द-रूपी ब्रह्म की पहचान द्वारा परमसुख की प्राप्ति होती है ॥ १ ॥ ऐ मेरे मन, हरिनाम जपते हुए तू दिन-रात सावधान रह और अपनी खेती (मानव-जन्म) की रक्षा कर। असावधान रहने से तेरी खेती (मनुष्य-योनि) व्यर्थ में कूँजों (मृत्यु) द्वारा चुग ली जायगी ॥ रहाउ ॥ गुरु-शब्द के तन में व्याप्त होने पर समस्त मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। जीव परमात्मा के भय में मग्न रात-दिन नाम-स्मरण करता और वाहिगुरु को सदैव अंग-संग समझने लगता है। जब मन सच्चे शब्द में (नाम में) लीन होता है तो सर्व प्रकार का भ्रम शरीर से निवृत्त हो जाता है। (उस परम स्थिति में) माया और अविद्या रूपी मलों से रहित होता है, गुण-सागर परमेश्वर की प्राप्ति होती है ॥ २ ॥ जो सावधान रहते हैं, अर्थात् काम-क्रोधादि विकारों से अपने को बचाते हैं, वे उबरते हैं; असावधान जीव लुट जाते हैं (पंचेन्द्रियों—काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार—का शिकार हो जाते हैं)। उनका जीवन स्वप्न की तरह निरर्थक ही बीत जाता है, वे शब्द-रूपी परमेश्वर को पहचानने में असमर्थ रहते हैं। उनकी स्थिति सूने घर में आने वाले अतिथि की भाँति होती है; जो जैसे आता है, वैसे ही लौट जाता है। मनमुख जीवन भी व्यर्थ होता है, परमात्मा के दरबार में वह क्या मुँह दिखा सकता है ॥ ३ ॥ सम्पूर्ण

संसार का प्रपंच भी परमेश्वर का ही रचा हुआ है, किन्तु जब तक अन्तर में अहंकार विराजता है, यह भी नहीं कहा जाता कि सब परमेश्वर का ही प्रसार है। यह सामर्थ्य भी गुरु के उपदेश से ही प्राप्त होता है; अहम्-भाव के नष्ट होने से जीव संसार-तत्त्व को भी पहचान लेता है। जो जीव सतिगुरु की सेवा में संलग्न हैं, (वे महान हैं) मैं उनके चरण पकड़ता हूँ। गुरुजी कहते हैं कि जो लोग वाहिगुरु के द्वार पर खरे उतरे हैं, मैं उन गुरुमुखों पर बलिहार जाता हूँ ॥ ४ ॥ २१ ॥ ५४ ॥

॥ सिरीरागु महला ३ ॥ जे वेला वखतु वीचारीऐ ता कितु वेला भगति होइ । अनदिनु नामे रतिआ सचे सची सोइ । इकु तिलु पिआरा विसरै भगति किनेही होइ । मनु तनु सीतलु साच सिउ सासु न बिरथा कोइ ॥ १ ॥ मेरे मन हरि का नामु धिआइ । साची भगति ता थीऐ जा हरि वसै मनि आइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सहजे खेती राहीऐ सचु नामु बीजु पाइ । खेती जंमी अगली मनूआ रजा सहजि सुभाइ । गुर का सबदु अंम्रितु है जितु पीतै तिख जाइ । इहु मनु साचा सचि रता सचे रहिआ समाइ ॥ २ ॥ आखणु वेखणु बोलणा सबदे रहिआ समाइ । बाणी वजी चहु जुगी सचो सचु सुणाइ । हउमै मेरा रहि गइआ सचै लइआ मिलाइ । तिन कउ महलु हदूरि है जो सचि रहे लिव लाइ ॥ ३ ॥ नदरी नामु धिआईऐ विणु करमा पाइआ न जाइ । पूरै भागि सतसंगति लहै सतगुरु भेटै जिसु आइ । अनदिनु नामे रतिआ दुखु बिखिआ विचहु जाइ । नानक सबदि मिलावड़ा नामे नामि समाइ ॥ ४ ॥ २२ ॥ ५५ ॥

यदि समय, काल या अवसर का विचार किया जाय, तो भक्ति कब हो सकेगी; (अर्थात् बचपन, जवानी में नहीं बुढ़ापे में भक्ति करेंगे, ऐसा सोचनेवाले जीव बुढ़ापे में भी क्या कर सकते हैं, जबकि अंग में गलितम् पलितम् मुण्डम् की स्थिति आ जाती है) जीवन का सार यही है कि जीव दिन-रात प्रभु-नाम में लीन रहे, तभी ज्ञान-युक्त होकर वह सच्चे (वाहिगुरु) में विलीन होगा। ऐसे जीव का दृढ़ संकल्प होता है कि यदि श्वास-मात्र के लिए भी वाहिगुरु विस्मृत हो जाय तो वह भक्ति का लक्षण नहीं (तात्पर्य यह कि भक्त जीव साँस-साँस प्रभु को भजता है, एक क्षण भी उससे विरत नहीं होता)। वह सच्चे परमात्मा में ध्यान लगाए तन-मन की पावनता का ग्राहक होता है, एक भी श्वास व्यर्थ नहीं जाने देना चाहता ॥ १ ॥ (इसलिए) हे मेरे मन, तू हरि-नाम में ध्यान लगा ले। ऐसा करने से

जब नामी (हरि) स्वयं तुम्हारे में बसने लगेगा, तभी सच्ची भक्ति उदित होगी ॥ रहाउ ॥ जिन्होंने हृदय-क्षेत्र में सहज ही नीति, धैर्यादि गुणों का हल चलाकर प्रभु के सच्चे नाम का बीज बोया, उनके घनी फसल जमी (भक्ति की)। उनका मन तृप्त हो गया और संसार में रहते भी वे शान्त स्वभाव को प्राप्त हुए। गुरु का उपदेश अमृत-समान है, जिसे पीकर प्यास (तृष्णा) बुझती है, मन में सत्य उजागर होता है और सत्य-प्राप्त जीव स्वयं सत्य में ही विलीन हो जाता है ॥ २ ॥ जीव के कथन, दृष्टि और वाचा सब शब्द-रूपी ब्रह्म में लीन रहते हैं (अर्थात् वह ब्रह्म की ही कथा कहता है, उसकी दृष्टि प्रत्येक वस्तु में सत्य का दर्शन करती है और उसकी रसना निरन्तर प्रभु का ही गुण गाती है)। परमात्मा की सच्ची वाणी (अनाहत शब्द) चारों युगों मे प्रकट है; जो (भक्तजन उपर्युक्त ढंग से) सत्य को पहचान गए हैं, वे उसके श्रवण का रस-पान करते हैं। उनका अहम्-भाव जड़-मूल से नष्ट हो जाता है और वे मनसा, वाचा, कर्मणा वाहिगुरु में समा जाते हैं। जो इस प्रकार नित्य सत्य-मग्न रहते हैं, वे परमात्मा के स्वरूप में ही निवास करते हैं ॥ ३ ॥ यदि जीव पर परमात्मा की कृपा (नदरी) होती है, तभी गुरु के उपदेशानुसार नाम-स्मरण सम्भव हो पाता है। प्रभु-कृपा की प्राप्ति प्रारब्ध का फल है (यदि प्रारब्ध कर्म किसी के अच्छे नहीं हैं, तो वह परमात्मा की कृपा का पात्र नहीं हो सकता, उसे गुरु प्राप्त नहीं होगा और इसीलिए वह नाम-जाप से वंचित रह जायगा)। बहुत ऊँचे भाग्यवाला जीव ही ससार में आकर सतिगुरु से भेंटता और सतिसंगति में हरि-नाम का रस प्राप्त करता है। वह रात-दिन नाम-मग्न होता है, उसमें से विषय-विकारों के दुःखों का नाश हो जाता है। गुरुजी कहते हैं उन (पुरुषों) का शब्दब्रह्म से मिलाप होता है और नाम (स्मरण करनेवाला) तथा नामी (परमात्मा, जिसका नाम स्मरण किया जाता है) में अभेद हो जाता है ॥४॥२२॥५५॥

॥ सिरीरागु महला ३ ॥ आपणा भउ तिन पाइओनु जिन गुर का सबदु बीचारि। सतसंगती सदा मिलि रहे सचे के गुण सारि। दुबिधा मैलु चुकाईअनु हरि राखिआ उरधारि। सची बाणी सचु मनि सचे नालि पिआरु ॥ १ ॥ मन मेरे हउमै मैलु भर नालि। हरि निरमलु सदा सोहणा सबदि सवारणहारु ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सचै सबदि मनु मोहिआ प्रभि आपे लए मिलाइ। अनदिनु नामे रतिआ जोती जोति समाइ। जोती हू प्रभु जापदा बिनु सतगुर बूझ न पाइ। जिन कउ पूरबि लिखिआ सतगुरु भेटिआ तिन आइ ॥ २ ॥ विणु नावै

सभ डुमणी दूजै भाइ खुआइ । तिसु बिनु घड़ी न जीवदी दुखी रैणि विहाइ । भरमि भुलाणा अंधुला फिरि फिरि आवै जाइ । नदरि करे प्रभु आपणी आपे लए मिलाइ ।। ३ ।। सभु किछु सुणदा वेखदा किउ मुकरि पइआ जाइ । पापो पापु कमावदे पापे पचहि पचाइ । सो प्रभु नदरि न आवई मनमुखि बूझ न पाइ । जिसु वेखाले सोई वेखै नानक गुरमुखि पाइ ।। ४ ।। २३ ।। ५६ ।।

जो जीव गुरु-उपदेशों का विचार करते हैं, उनके चित्त में परमात्मा का भय नित्य बना रहता है। वे लोग सदैव सतिसंगति में रहते हैं और सत्य-स्वरूप परमेश्वर के गुणों को ग्रहण करते हैं। उनके मन की दुविधा-रूपी मैल नष्ट हो जाती है और वे निर्मल-चित्त होकर परमात्मा को हृदय में धारण करते हैं। ऐसे महानात्मा जीवों के कथन और चिन्तन सत्य-सम्बन्धी होते हैं, सत्य-स्वरूप परमेश्वर से उनका अबाध प्यार होता है ।। १ ।। हे मेरे मन, ये सांसारिक जीव तो अहम्-ममता की मैल से भरे हैं किन्तु वह हरि सदैव निर्मल और सुन्दर है, गुरु के उपदेशों को वही सँवारता है ।। रहाउ ।। उन लोगों का मन गुरु के उपदेशों से मोहित होता है और हरि स्वयं उन्हें अपने प्रिय जीवों में मिला लेते हैं। वे दिन-रात नाम-रस में मग्न रहते हैं और उनकी ज्योति (आत्मा) परमज्योति (परमात्मा) में अभेद हो जाती है। (जैसे प्रकाश में ही सब चीज़ें दिखाई देती हैं, वैसे ही) ज्योति (गुरु का आलोक) से प्रभु का ज्ञान होता है (अज्ञानान्धकार कटता है) और बिना गुरु के, ज्ञान का प्रदाता और कोई नहीं। जिनके भाग्य में गुरु-मिलन बदा होता है, उन्हें कहीं न कहीं, कभी न कभी सच्चे गुरु की प्राप्ति हो ही जाती है ।। २ ।। नाम-विहीन जीव सब दुखी होते हैं, वे द्वैत-भाव में भटकते रहते हैं। वाहिगुरु के बिना घड़ी-भर के लिए भी यह सृष्टि जीवित नहीं रह सकती, सबकी (रात्रि) अवस्था दुःखपूर्ण हो जाती है। जीव भ्रम के स्थूल आवरण के कारण अज्ञानान्ध होता है और बार-बार जन्म-मरण की चक्की में पिसता रहता है। (इस सबसे बचने का एक मात्र साधन यही है कि) यदि परमेश्वर स्वयं कृपा करे, तो वह जीवों को अपने में मिला ले (अर्थात् उनके दुःख-शोक काटकर उनका सम्बन्ध सत्यनाम से जोड़ दे) ।। ३ ।। वाहिगुरु सर्व-व्यापक होने के नाते सब कुछ देखता-सुनता है अर्थात् जीव के दुष्कर्मों से भली-भाँति परिचित है; जीव उसके सम्मुख अपने बुरे कर्मों को छिपा नहीं सकता, न मुकर ही सकता है। जो लोग पाप कमाते हैं, वाहिगुरु को सर्वव्यापक जानकर भी दुष्कर्म करते हैं, वे पाप में ही जलते-जलाते हैं। उन मनमुखों को कण-कण में बसनेवाला परमात्मा भी सूझ नहीं पड़ता।

सच है, गुरु जी कहते हैं, कि इस सत्य का ज्ञान भी उसी को होता है जिसका मार्ग-निर्देशन गुरु के उपदेशों के माध्यम से वह परमात्मा स्वयं करता है ॥ ४ ॥ २३ ॥ ५६ ॥

॥ स्रीरागु महला ३ ॥ बिनु गुर रोगु न तुटई हउमै पीड़ न जाइ । गुर परसादी मनि वसै नामे रहै समाइ । गुर-सबदी हरि पाईऐ बिनु सबदै भरमि भुलाइ ॥ १ ॥ मन रे निजघरि वासा होइ । रामनामु सालाहि तू फिरि आवणजाणु न होइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हरि इको दाता वरतदा दूजा अवरु न कोइ । सबदि सालाही मनि वसै सहजे ही सुखु होइ । सभ नदरी अंदरि वेखदा जै भावै तै देइ ॥ २ ॥ हउमै सभा गणत है गणतै नउ सुखु नाहि । बिखु की कार कमावणी बिखु ही माहि समाहि । बिनु नावै ठउरु न पाइनी जमपुरि दूख सहाहि ॥ ३ ॥ जीउ पिंडु सभु तिस दा तिसै दा आधारु । गुर परसादी बुझीऐ ता पाए मोखदुआरु । नानक नामु सलाहि तूं अंतु न पारावारु ॥ ४ ॥ २४ ॥ ५७ ॥

गुरु के बिना न (अज्ञान का) रोग दूर हो सकता है और न अहंकार का शमन सम्भव है । गुरु की कृपा से जिनके मन में नाम का वास होता है, वे नामी (परमात्मा) से अभेद हो जाते हैं । गुरु के उपदेशों से ही परमात्मा की उपलब्धि होती है, बिना उसके जीव भ्रम में भटकता रह जाता है ॥ १ ॥ हे मन, तू अपने वास्तविक स्वरूप में तभी निवास कर सकेगा, जब तू सदैव राम-नाम का यशोगान करेगा ! ऐसा होने से तू आवागमन के चक्र से भी मुक्त हो जायगा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (यहाँ प्रश्न उठा कि दुःखों की निवृत्ति कैसे हो ?) परमेश्वर सबका दाता है, उसी का हुकुम सब पर लागू होता है । उसके अतिरिक्त अन्य कोई इतना समर्थ नहीं, जो हुकुम दे सके । गुरु के वचनों को मानकर यदि कोई परमात्मा का स्तुति-गान करे और उसे अपने मन में बसा ले, तो सहज ही परम सुख की प्राप्ति होती है । वाहिगुरु सब जीवों को अपने सम्मुख देखता-परखता है, जिसे चाहता है, गुरु का मिलाप प्रदान करता है । (जो परम-सुख का कारण-भूत होता है) ॥ २ ॥ (पुनः प्रश्न उठा कि अन्य कर्म करनेवाले भी तो सुखी होते हैं ? उत्तर देते हैं) गुरु-उपदेश-रहित जो जीव अहंकार धारणकर तथा-कथित पुण्य-कर्म करते हैं, वे दान, यज्ञ, व्रतादि कर्मों का हिसाब-किताब करते रहते हैं, परिणामतः सुख से वंचित रहते हैं । स्वर्गादिक विषय-भोगों की आशा करते हुए वे विष-कर्म कमाते हैं, इसलिए अन्ततः विषय-

भोग में ही लिप्त रह जाते हैं। वे प्रभु-नाम से वंचित होते हैं, इसलिए उन्हें कहीं ठिकाना नहीं मिलता, वे यमपुर में दण्ड भोगते और दुःख सहते हैं ॥ ३ ॥ (इसलिए हे मन) ये प्राण और शरीर सब परमेश्वर की ही देन हैं और समूचे जगत को उसी का आश्रय है। यदि गुरु-कृपा हो तो ज्ञान-प्राप्ति होती है और ज्ञानी जीव मोक्ष का अधिकारी हो जाता है। गुरुजी कहते हैं, इसलिए (हे मन) तू वाहिगुरु के नाम का यशोगान कर; उस वाहिगुरु के ओर-छोर का कोई अन्त नहीं। (उसकी व्यापकता का कोई अन्त नहीं) ॥ ४ ॥ २४ ॥ ५७ ॥

॥ सिरीरागु महला ३ ॥ तिना अनंदु सदा सुखु है जिना सचु नामु आधारु। गुरसबदी सचु पाइआ दूख निवारणहारु। सदा सदा साचे गुण गावहि साचै नाइ पिआरु। किरपा करि कै आपणी दितोनु भगति भंडारु ॥ १ ॥ मन रे सदा अनंदु गुण गाइ। सची बाणी हरि पाईऐ हरि सिउ रहै समाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सची भगती मनु लालु थीआ रता सहजि सुभाइ। गुरसबदी मनु मोहिआ कहणा कछू न जाइ। जिहवा रती सबदि सचै अंम्रितु पीवै रसि गुण गाइ। गुरमुखि एहु रंगु पाईऐ जिसनो किरपा करे रजाइ ॥ २ ॥ संसा इहु संसारु है सुतिआ रैणि विहाइ। इकि आपणै भाणै कढि लइअनु आपे लइओनु मिलाइ। आपे ही आपि मनि वसिआ माइआ मोहु चुकाइ। आपि वडाई दितीअनु गुरमुखि देइ बुझाइ ॥ ३ ॥ सभना का दाता एकु है भुलिआ लए समझाइ। इकि आपे आपि खुआइअनु दूजै छडिअनु लाइ। गुरमती हरि पाईऐ जोती जोति मिलाइ। अनदिनु नामे रतिआ नानक नामि समाइ ॥ ४ ॥ २५ ॥ ५८ ॥

जिन लोगों को सच्चे नाम का एकमात्र सहारा है, उन्हें सुख-स्वरूप परमात्मा के मिलन का परम आनन्द प्राप्त होता है। गुरमुख जन सर्व-दुःख-निवारक, सत्यस्वरूप परमेश्वर को पा लेते हैं। इसलिए (ऐ भले लोगो) सदैव वाहिगुरु (परमात्मा) के गुण गाओ और उस सत्य-स्वरूप परब्रह्म से प्यार करो। प्रसन्न होकर प्रभु तुम पर कृपा करेगा और तुम्हें भक्ति के भण्डार प्रदान करेगा ॥ १ ॥ हे मन, परमात्मा का गुणगान करने से सदा आनन्द प्राप्त होता है। गुरु-उपदेश-रूपी सच्ची वाणी से हरि-मिलन होता है और जीव अपने मूल उत्स (उद्गम) हरि से अभेद हो जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ दम्भ-पाखण्ड से रहित सच्ची भक्ति से मन

परम आनन्द को प्राप्त होता है (लाल होता है) और सहज शान्त स्वभाव को ग्रहण करता है। गुरु के उपदेशों से उन (जीवन्मुक्त जीवों) का मन मोहित होता है; उनकी आध्यात्मिक स्थिति का शाब्दिक वर्णन नहीं किया जा सकता। उनकी जिह्वा सच्चे गुरु-वचनों को पुनरुच्चारित करने में मग्न रहती है और वह प्रेम-पूर्वक वाहिगुरु के गुण-गान-रूपी अमृत-रस का पान करता है। परमेश्वर के गुण-गान का आनन्द-रूपी रंग गुरु की शरण से उपलब्ध है और जिस पर हरि-कृपा होती है, उसे ही मिलता है ।। २ ।। मनमुख जीवों के लिए संसार संशय-रूप है, अज्ञान-निद्रा में सोते हुए ही उनकी आयु-रूपी रात्रि व्यतीत हो जाती है। परमेश्वर ने स्वेच्छा से कुछ जीवों को संसार-सागर से उबारकर मोह-निद्रा से जगा लिया है। (अज्ञान-रात्रि के बीतने और मोह-निद्रा से जगने के उपरान्त) जीव का माया-मोह चुक जाता है और स्वयं परमेश्वर उसके हृदय में प्रकट होता है। जो लोग गुरु-उपदेशों के द्वारा सद्ज्ञान-लाभ करते हैं, उन्हें परमात्मा ने ही बड़ाई दी है, (ऐसा मानना उचित है) ।। ३ ।। सृष्टि के समस्त जीवों का पालक एक ही है, भूले हुए लोगों को वही मार्ग दिखाता है। एक ओर मनमुख जीवों को उनके कर्मानुसार अपने से अलग कर रखा है; उन्हें द्वैत-भाव में संलग्न किया है। दूसरी ओर कुछ भाग्यशाली जीवों को गुरु की शरण दिला दी है और उसी के माध्यम से स्वयं उन पर प्रकट है। उनकी ज्योति (आत्मा) परमज्योति (परमात्मा) में विलीन हो जाती है। ऐसे जीव रात-दिन नाम के आनन्द में मग्न रहते हैं और अन्ततः, गुरुजी कहते हैं, नामी (परमात्मा) में ही समा जाते अर्थात् अभेद होते हैं ।। ४ ।। २५ ।। ५८ ।।

।। सिरीरागु महला ३ ।। गुणवंती सचु पाइआ त्रिसना तजि विकार। गुरसबदी मनु रंगिआ रसना प्रेम पिआरि। बिनु सतिगुर किनै न पाइओ करि वेखहु मनि वीचारि। मनमुख मैलु न उतरै जिचरु गुरसबदि न करे पिआरु ।। १ ।। मन मेरे सतिगुर कै भाणै चलु। निजघरि वसहि अंम्रितु पीवहि ता सुख लहहि महलु ।। १ ।। रहाउ ।। अउगुणवंती गुणु को नही बहणि न मिलै हदूरि। मनमुखि सबदु न जाणई अवगणि सो प्रभु दूरि। जिनी सचु पछाणिआ सचि रते भरपूरि। गुरसबदी मनु बेधिआ प्रभु मिलिआ आपि हदूरि ।। २ ।। आपे रंगणि रंगिओनु सबदे लइओनु मिलाइ। सचा रंगु न उतरै जो सचि रते लिव लाइ। चारे कुंडा भवि थके मनमुख बूझ न पाइ। जिसु सतिगुरु मेले सो मिलै सचै सबदि समाइ ।। ३ ।। मित्र

घणेरे करि थकी मेरा दुखु काटै कोइ। मिलि प्रीतम दुखु कटिआ सबदि मिलावा होइ। सचु खटणा सचु रासि है सचे सची सोइ। सचि मिले से न विछुड़हि नानक गुरमुखि होइ ॥ ४ ॥ २६ ॥ ५९ ॥

पतिव्रता आत्मा अर्थात् गुणवंती दुल्हिन मोह-माया के विकारों का नाश करके अपने पति (प्रभु) की प्रसन्नता अर्जित करती है (सचु पाइआ)। उसका मन गुरु-उपदेशों के कारण उल्लसित होता है और उसकी जिह्वा पर नित्य प्रभु-प्रेम के गीत रहते हैं। किन्तु (यह उच्च आध्यात्मिक स्थिति) गुरु के बिना किसी को प्राप्य नहीं, यह एक जाँचा हुआ तथ्य है। मनमुख जीव तृष्णादि मलिनता में लीन रहता है। जब तक वह गुरु-वचनों से प्यार करना नहीं सीखता, निर्मल नहीं हो सकता ॥ १ ॥ इसलिए ऐ मेरे मन, तू सतिगुरु की इच्छा में मग्न रहना सीख; तभी तू निज स्वरूप को पहचानकर परमसुख और आनन्द का अमृत-रस पान कर सकेगा तथा सत्लोक में अवस्थित होगा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जो आत्मा अवगुणी है, व्यक्ति मनमुखी आचरण करता है, उसे परमात्मा की शरण नहीं मिलती। मन-मुखी जीव गुरु-उपदेशों को नहीं मानता, इसलिए ममता, तृष्णा आदि अवगुणों के कारण वह प्रभु से दूर रहता है। जो जीव सत्य को पहचानता है और परमात्मा के सत्य-स्वरूप में आत्मलीन रहता है, वह गुरु के वचनों से प्रेरित होकर मन को संयत करता और परमेश्वर में ही विलीन हो जाता है ॥२॥ जिन जीवों को गुरु सतिसंग की भट्टी में नाम-रंग में रंगीन बना लेता है, वे ब्रह्म के यथार्थ से अभेद प्राप्त कर लेते हैं। भगवान् के सत्य-स्वरूप में लीन जीवों का परम आनन्द (रंग) कभी क्षीण नहीं होता। किन्तु मनमुख जीव चाहे सृष्टि के कण-कण में खोज ले, वह परमात्मा से कभी एकाकार नहीं हो सकता। जिसे सतिगुरु की कृपा और उपदेश प्राप्त हों, वही हरि-मिलन के पथ का सही पथिक बन सकता है ॥ ३ ॥ (अब गुरुजी बताते हैं कि संसार की मित्रता व्यर्थ है) मैंने अनेक सांसारिक व्यक्तियों (वेषधारियों) से मैत्री की, ताकि कोई तो मेरा (आवागमन का) दुःख मिटा सके, किन्तु प्रभु को मिले बिना दुःख दूर नहीं होता और उसे मिलने के लिए गुरु-उपदेशानुसार आचरण अनिवार्य है। जिन गुरमुखों के पास सच्चे नाम की पूँजी है, वे ही सत्य-स्वरूप प्रभु को पाने में वह पूँजी लगा सकते हैं और उन्हीं की वास्तविक शोभा भी है। अतः गुरुजी कहते हैं कि जो लोग उपर्युक्त ढंग से नाम-स्मरण द्वारा वाहिगुरु से मिलाप करते हैं, वे स्थायी मुक्ति पा जाते हैं, उन्हें पुनः कभी वियोग नहीं होता ॥ ४ ॥ २६ ॥ ५९ ॥

॥ सिरीरागु महला ३ ॥ आपे कारणु करता करे स्रिसटि देखै आपि उपाइ । सभ एको इकु वरतदा अलखु न लखिआ जाइ । आपे प्रभू दइआलु है आपे देइ बुझाइ । गुरमती सद मनि वसिआ सचि रहे लिव लाइ ॥ १ ॥ मन मेरे गुर की मंनि लै रजाइ । मनु तनु सीतलु सभु थीऐ नामु वसै मनि आइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिनि करि कारणु धारिआ सोई सार करेइ । गुर कै सबदि पछाणीऐ जा आपे नदरि करेइ । से जन सबदे सोहणे तितु सचै दरबारि । गुरमुखि सचै सबदि रते आपि मेले करतारि ॥ २ ॥ गुरमती सचु सलाहणा जिस दा अंतु न पारावारु । घटि घटि आपे हुकमि वसै हुकमे करे बीचारु । गुरसबदी सालाहीऐ हउमै विचहु खोइ । साधन नावै बाहरी अवगणवंती रोइ ॥ ३ ॥ सचु सलाही सचि लगा सचै नाइ त्रिपति होइ । गुण वीचारी गुण संग्रहा अवगुण कढा धोइ । आपे मेलि मिलाइदा फिरि वेछोड़ा न होइ । नानक गुरु सालाही आपणा जिदू पाई प्रभु सोइ ॥ ४ ॥ २७ ॥ ६० ॥

मालिक (परमात्मा) स्वयं कारणों का कारण है (मूल तत्त्वों का स्रष्टा है) और स्वयमेव उन कारणों (जल, वायु आदि मूल तत्त्वों) से सृष्टि की रचना करके, उसे देख (भोग) रहा है। इसीलिए सब जीवों में बसनेवाला (सर्वव्यापक) है, किन्तु अदृश्य रूप होने के कारण जीवों को दीख नहीं पड़ता। (प्रश्न उठता है कि उसे देख कौन सकता है ?) परमात्मा दया करके जिस पर प्रकट हो, वही जान सकता है। जो जीव गुरु के उपदेशों पर आचरण करते हैं, उनके मन में सदैव प्रभु का आलोक रहता है और वे निरन्तर परमसत्य में लीन रहते हैं ॥ १ ॥ (इसलिए) ऐ मेरे मन, तू गुरु की आज्ञा मानकर चल; इससे परमेश्वर का नाम मन में बसेगा और सब तन-मन शीतल होगा (अर्थात् शान्ति और सन्तोष की दिव्यता मिलेगी) ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिस परमेश्वर ने मूल तत्त्वों की रचना करके सृष्टि की स्थिति की है, वही समस्त जीवों की सम्भाल करता है (अर्थात् उनका भरण-पोषण करता है)। उस परमात्मा की जानकारी तभी सम्भव है, जब उसकी कृपा से गुरु-उपदेश प्राप्त हो। (बिना गुरु के उपदेश को धारण किए कोई अध्यात्मवादी परमात्मा को साक्षात् नहीं कर सकता), अतः जो गुरु-शब्दों को अपनाएगा, वह प्रभु के सच्चे दरबार में सुशोभित हो सकेगा। जो गुरुमुख गुरु के द्वारा शब्द-रूप ब्रह्म में लीन हैं, उन्हें परमात्मा ने अपने में अभेद कर लिया है ॥ २ ॥

जो गुरुमत पर आचरण करनेवाले हैं, वे सदैव उस परमसत्य का गुण गाते हैं, जो अनन्त है, अनादि है, जिसका कोई आर-पार नहीं। सब घट (शरीरों में) वाहिगुरु (हुकमी) स्वयं निवसित है और अपनी इच्छानुसार (हुकुमानुसार) जीवों के पापों-पुण्यों के हिसाब-किताब पर विचार करता है। (ऐसे परमात्मा का) प्रशस्ति-गान भी गुरु-कथनानुसार अहम्-त्याग द्वारा ही सम्भव है। जो जीवात्मा हरि-नाम को पहचानने में असमर्थ है, वह पति-विहीन नायिका के समान अवगुणों से भरी वियोग-पीड़ित रहती है॥ ३॥ (मनुष्य को) वाणी द्वारा सच्चे परमात्मा का गुण-गान करना चाहिए, शरीर से सतिगुरु की सेवा तथा मन से सत्यनाम का स्मरण करना चाहिए, तभी मन की समूची तृष्णाओं का विनाश होता और तृप्ति मिलती है। पुनः परमात्मा के गुणों को विचारने और मन में धारण करने से (संग्रह करने से) शरीर के समस्त अवगुण धुल जाते हैं। इससे आत्मा का परमात्मा से पूर्ण मिलाप होता है, दोबारा उसे कभी वियोग-ताप नहीं सहना होता। गुरुजी कहते हैं कि जिन गुणों से वह प्रभु प्राप्त होता है, वे गुरु की कृपा-युक्त देन हैं। (इसलिए गुरु की स्तुति भी अपेक्षित है)॥ ४॥ २७॥ ६०॥

॥ सिरीरागु महला ३॥ सुणि सुणि काम गहेलीए किआ चलहि बाह लुडाइ। आपणा पिरु न पछाणही किआ मुहु देसहि जाइ। जिनी सखीं कंतु पछाणिआ हउ तिन कै लागउ पाइ। तिन ही जैसी थी रहा सतसंगति मेलि मिलाइ॥ १॥ मुंधे कूड़ि मुठी कूड़िआरि। पिरु प्रभु साचा सोहणा पाईऐ गुर बीचारि॥ १॥ रहाउ॥ मनमुखि कंतु न पछाणई तिन किउ रैणि विहाइ। गरबि अटीआ त्रिसना जलहि दुखु पावहि दूजै भाइ। सबदि रतीआ सोहागणी तिन विचहु हउमै जाइ। सदा पिरु रावहि आपणा तिना सुखे सुखि विहाइ॥ २॥ गिआन विहूणी पिर मुतीआ पिरमु न पाइआ जाइ। अगिआन मती अंधेरु है बिनु पिर देखे भुख न जाइ। आवहु मिलहु सहेलीहो मै पिरु देहु मिलाइ। पूरै भागि सतिगुरु मिलै पिरु पाइआ सचि समाइ॥ ३॥ से सहीआ सोहागणी जिन कउ नदरि करेइ। खसमु पछाणहि आपणा तनु मनु आगै देइ। घरि वरु पाइआ आपणा हउमै दूरि करेइ। नानक सोभावंतीआ सोहागणी अनदिनु भगति करेइ॥ ४॥ २८॥ ६१॥

हे काम-ग्रस्त जीवात्मा, ध्यान देकर सुनो; तुम क्यों असावधानी से

विचरण कर रही हो ! (गुरुजी जीवात्मा को वासना-लिप्त स्त्री कहकर सम्बोधन करते हैं)। तुम अपने पति-परमेश्वर को भी नहीं पहचानतीं, समाज में (परमात्मा के दरबार में) क्या मुँह दिखाओगी। (जीव काम-ज्वार में दुष्कर्म करता है, दुनिया में बदनाम होता है, परमात्मा के द्वार पर उसे आश्रय कैसे मिल सकेगा ?)। मैं तो उन सुहागिनों (प्रभु-प्रिय जीवों) पर बलिहार हूँ, जिन्होंने अपने पति-प्रभु को अपना बना लिया है; (मेरी कामना है कि) मैं उनके सम्पर्क में आकर उनके जैसी ही बन सकूँ ॥ १ ॥ हे मिथ्यात्व में ठगी हुई जिज्ञासु आत्मा, तू मिथ्या भ्रम में पड़ी है, तेरा प्रियतम साक्षात् सत्य का स्वरूप है; उसकी प्राप्ति केवल गुरु के उपदेशों पर आचरण करने से ही सम्भव है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मनमुखी आत्मा कुलटा है, वह अपने पति (परमेश्वर) को नहीं पहचानती; उसकी रातों में सुख कहाँ ? वह गर्व के भाग तले दबी, तृष्णा में जलती, द्वैत-भाव में नित्य दुःख संजोती है। (इसके विपरीत) गुरुमुख-रूपी सुहागिन आत्मा अपने अन्तर से अहम्-भाव का त्यागकर गुरु-उपदेशों में लीन होती है। उसका प्रियतम निरन्तर उसके साथ रमण करता है और वह परम आनन्द को प्राप्त कर लेती है ॥ २ ॥ (पुनः मनमुखी आत्मा की चर्चा करते हैं) मनमुखी जीवात्मा ज्ञान-विहीन होने के कारण पति-त्यक्ता होती है, इसलिए उसे प्रभु का प्रेम भी लब्ध नहीं होता। अपने चतुर्दिक अज्ञानता के अन्धकार के कारण, मनमुखी जीवात्मा कुछ भी नहीं देख पाती। द्वैत-भाव से उसकी क्षुधा-शमित नहीं होती (तात्पर्य यह कि अन्य देवी-देवताओं की उपासना में उसे सन्तोष नहीं मिलता, अपने प्रियतम के दर्शन से ही आनन्द मिलता है)। अतः मनमुखी जीवात्मा को मुक्तात्माओं के सम्पर्क में जाकर प्रियतम से मिलवा देने का आह्वान करना होगा, तभी यदि सौभाग्य हुआ तो उसे सतिगुरु मिलेगा, जो जीवात्मा को परमात्मा से मिलाकर सदा के लिए उस परम सत्य से अभेद कर देगा ॥ ३ ॥ अतः वे सखियाँ (जीवात्माएँ) ही सुहागिन होती हैं, जिन पर प्रभु-पति की कृपा-दृष्टि होती है और जो गुरु के द्वारा अपने पति को पहचानकर तन-मन सब उसके सम्मुख अर्पित कर देती हैं। वे जीवात्माएँ अहम्, ममता-माया आदि को दूर कर गुरु की कृपा से घर (हृदय) में ही परमेश्वर को पा लेती हैं और रात-दिन पति-परमेश्वर की भक्ति करती हुईं चिर-सुहागिनी सुशोभित होती हैं ॥ ४ ॥ २८ ॥ ६१ ॥

॥ सिरीरागु महला ३ ॥ इकि पिरु रावहि आपणा हउ कै दरि पूछउ जाइ । सतिगुरु सेवी भाउ करि मै पिरु देहु मिलाइ । सभु उपाए आपे वेखै किसु नेड़ै किसु दूरि । जिनि पिरु संगे जाणिआ पिरु रावे सदा हदूरि ॥ १ ॥ मुंधे तू चलु

गुर कै भाइ। अनदिनु रावहि पिरु आपणा सहजे सचि समाइ ।। १ ।। रहाउ ।। सबदि रतीआ सोहागणी सचै सबदि सीगारि। हरिवरु पाइनि घरि आपणै गुर कै हेति पिआरि। सेज सुहावी हरि रंगि रवै भगति भरे भंडार। सो प्रभु प्रीतमु मनि वसै जि सभसै देइ अधारु ।। २ ।। पिरु सालाहनि आपणा तिन कै हउ सद बलिहारै जाउ। मनु तनु अरपी सिरु देई तिनकै लागा पाइ। जिनी इकु पछाणिआ दूजा भाउ चुकाइ। गुरमुखि नामु पछाणीऐ नानक सचि समाइ ।। ३ ।। २९ ।। ६२ ।।

(प्रथम पंक्ति में जिज्ञासु का प्रश्न है और द्वितीय से उत्तर आरम्भ होता है) ज्ञानवान् जीवात्मा अपने पति के साथ केलि-रत है, मैं किसके द्वार पर जाकर अपने (प्रभु) पति के सम्बन्ध में जानूँ ? (गुरुजी उत्तर देते हैं) हे जीव, तू प्रेमपूर्वक अपने सतिगुरु की सेवा कर और उससे विनती कर कि तुझे परमेश्वर-पति से मिला दे। वह परमात्मा स्वयं सबका स्रष्टा और रक्षक है, उसके लिए कोई दूर या नज़दीक नहीं। जिस जीवात्मा (स्त्री) ने प्रभु-पति को अपने संग जान लिया है, वह सदैव उसकी संगति का आनन्द उठाती है ।। १ ।। हे मूर्खा, तू गुरु की इच्छानुसार कर्म कर; ऐसा करने से (गुरु-उपदेशानुसार आचरण करने से) रात-दिन परमेश्वर-पति का संयोग प्राप्त होगा और सहज में ही तू परमसत्य में विलीन हो जायगी ।। १ ।। रहाउ ।। जो आत्माएँ गुरु-शब्दों में रत हैं, वे ही सुहागिनें हैं—वे नित्य सच्चे शब्द (शब्द-ब्रह्म) से श्रृंगार करती हैं। वे गुरु के प्यार में लीन रहने से अपने अन्तर में ही हरि-रूपी वर प्राप्त करती हैं। (हृदय की) सुन्दर सेज पर परमात्मा-रूपी पति से उनका संयोग होता है और उनमें भक्ति के भण्डार भरपूर रहते हैं। वह प्रभु-प्रियतम उनके मन में बसता है जो सबको आश्रय देता है ।। २ ।। जो (आत्माएँ) अपने पति (परमात्मा) की स्तुति करती हैं, मैं उनके बलिहार हूँ। मैं तन-मन उन्हें अर्पित करता एवं उनके चरण स्पर्श करता हूँ, जिन्होंने सदा के द्वैत-भाव का त्यागकर तथा एक ब्रह्म को पहचानकर अपना लिया है। गुरु के उपदेशों से ही हरि-नाम का ज्ञान होता है और गुरुजी कहते हैं कि वह गुरुमुख ही परमसत्य में विलीन होता है ।। ३ ।। २९ ।। ६२ ।।

।। सिरीरागु महला ३ ।। हरि जी सचा सचु तू सभु किछु तेरै चीरै। लख चउरासीह तरसदे फिरे बिनु गुर भेटे पीरै। हरि जीउ बखसे बखसि लए सूख सदा सरीरै। गुर परसादी सेव करी सचु गहिर गंभीरै ।। १ ।। मन मेरे नामि रते सुखु होइ।

गुरमती नामु सलाहीऐ दूजा अवरु न कोइ ।। १ ।। रहाउ ।। धरमराइ नो हुकमु है बहि सचा धरमु बीचारि । दूजै भाइ दुसटु आतमा ओहु तेरी सरकार । अधिआतमी हरि गुण तासु मनि जपहि एकु मुरारि । तिनकी सेवा धरमराइ करै धंनु सवारणहारु ।। २ ।। मन के बिकार मनहि तजै मनि चूकै मोहु अभिमानु । आतमरामु पछाणिआ सहजे नामि समानु । बिनु सतिगुर मुकति न पाईऐ मनमुखि फिरै दिवानु । सबदु न चीनै कथनी बदनी करे बिखिआ माहि समानु ।। ३ ।। सभु किछु आपे आपि है दूजा अवरु न कोइ । जिउ बोलाए तिउ बोलीऐ जा आपि बुलाए सोइ । गुरमुखि बाणी ब्रहमु है सबदि मिलावा होइ । नानक नामु समालि तू जितु सेविऐ सुखु होइ ।। ४ ।। ३० ।। ६३ ।।

हे परमात्मा, तू ही परमसत्य है और (हमारे सामर्थ्य का) सब कुछ तुम्हारे पास उल्लिखित है । हम चौरासी लाख योनियों में गुरु-मिलन के बग़ैर प्रभु-प्राप्ति के लिए डोलते रहे । हरि-कृपा हो तो वह क्षमा करके अपना बना सकता है, तभी दु:खों से मुक्त होकर व्यक्ति सुखी होता है । उस गहन, गम्भीर और परम-सत्य की सही सेवा केवल गुरु की दया से ही सम्भव है ।। १ ।। अत: ऐ मेरे मन, प्रभु-नाम में लीन होने से परम सुख की उपलब्धि होती है । गुरु-उपदेशानुसार नाम-स्मरण किया जा सकता है, उसके अतिरिक्त और कुछ भी स्तुत्य नहीं ।। १ ।। रहाउ ।। धर्मराज को सत्य-न्याय का विचार करने का आदेश परमात्मा ने ही दिया है । (उसे यह अधिकार दिया गया है कि) द्वैत-भावी दुष्टात्मा उसके नरकों-स्वर्गों की प्रजा बनी रहेगी । आध्यात्मिक जीवात्माएँ, जो गुणवान हैं और परमात्मा का भजन करती हैं, स्वयं धर्मराज उनकी सेवा करता है; वे धन्य हैं, उनका रचयिता धन्य है ।। २ ।। उन श्रेष्ठ जीवों ने मन के विकारों को मन से त्याग दिया होता है और मोह अभिमान आदि से मुक्त होकर निर्मल हो जाते हैं । वे आत्मा में ही परमात्मा (अंश में अंशी) को पहचान लेते और सहज ही नाम में समा जाते हैं । किन्तु गुरु-विहीन मनमुखी जीव मारा-मारा भ्रमता है, उसे मुक्ति नहीं मिलती । वह गुरु के उपदेशों को नहीं पहचानता, व्यर्थ वाद-विवाद करता है; विषय-विकारों में लीन रहता है ।। ३ ।। परमात्मा स्वयं ही सब कुछ है, दूसरा और कुछ नहीं । जैसे वह बुलाता है, जीव वैसा ही बोलते हैं—जीव उसके बुलाने पर ही बोलते हैं । गुरु की वाणी है ब्रह्म-रूप है, उसके उपदेशों से ही मिलन सम्भव है । (इसलिए) गुरुजी कहते हैं

कि हे जीव, तू नाम का स्मरण कर, इसी से परम सुख उपलब्ध होता है ॥ ४ ॥ ३० ॥ ६३ ॥

॥ सिरीरागु महला ३ ॥ जगि हउमै मैलु दुखु पाइआ मलु लागी दूजै भाइ । मलु हउमै धोती किवै न उतरै जे सउ तीरथ नाइ । बहुबिधि करम कमावदे दूणी मलु लागी आइ । पड़िऐ मैलु न उतरै पूछहु गिआनीआ जाइ ॥ १ ॥ मन मेरे गुर सरणि आवै ता निरमलु होइ । मनमुख हरि हरि करि थके मैलु न सकी धोइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मनि मैलै भगति न होवई नामु न पाइआ जाइ । मनमुख मैले मैले मुए जासनि पति गवाइ । गुर परसादी मनि वसै मलु हउमै जाइ समाइ । जिउ अंधेरै दीपकु बालीऐ तिउ गुरगिआनि अगिआनु तजाइ ॥ २ ॥ हम कीआ हम करहगे हम मूरख गावार । करणैवाला विसरिआ दूजै भाइ पिआरु । माइआ जेवडु दुखु नही सभि भवि थके संसारु । गुरमती सुखु पाईऐ सचु नामु उरधारि ॥ ३ ॥ जिस नो मेले सो मिलै हउ तिसु बलिहारै जाउ । ए मन भगती रतिआ सचु बाणी निजथाउ । मनि रते जिहवा रती हरिगुण सचे गाउ । नानक नामु न वीसरै सचे माहि समाउ ॥ ४ ॥ ३१ ॥ ६४ ॥

समस्त संसार माया (द्वैत-भाव) में लीन हुआ अहंकार के मैल से दुखी है। यह अहंकार का मैल धोने से भी नहीं उतरता, चाहे कोई सौ-सौ तीर्थों का स्नान करले। बल्कि उस स्थिति में (बहुविधि) अनेक प्रकार के कर्मों के कारण यह मैल दो-गुणी हो जाती है। धर्म-ग्रन्थों (वेद-शास्त्रों-उपनिषदों आदि) के अध्ययन से भी यह मलिनता दूर नहीं होती, चाहे ज्ञानी जनों से पूछ देखो ॥ १ ॥ हे मेरे मन, इस मलिनता से बचने का एक ही मार्ग है—गुरु की शरण में आ जाना। मनमुख जन भले ही कितना हरि-हरि करते रहें, अहंकार की मैल को वे नहीं धो सकते ॥ १ ॥ रहाउ ॥ पुनः, यदि मन मैला है (अभिमान-युक्त है), तो भक्ति कर सकना सम्भव नहीं, हरि-नाम का आलोक भी वहाँ नहीं होता। मनमुख जीव मलिन जन्मते हैं, मलिन ही मर जाते हैं, उन्हें कहीं सम्मान नसीब नहीं। यदि गुरु-कृपा से हृदय में नाम का प्रकाश हो जाय, तो अहंकार का मैल आमूल नष्ट हो जाता है। गुरु के ज्ञान से अज्ञान का नाश उसी प्रकार हो जाता है जैसे दीपक जलाने से अंधकार का दमन होता है ॥ २ ॥ (ये मूर्ख मनमुखी लोग कहते हैं) हमने किया या हम

करेंगे, वे (हम) अहम् के कारण ही मूर्ख-गँवार हैं। वे कर्त्तार को विस्मृत करके द्वैत-भाव में लिप्त रहते हैं। माया-प्रेमी सदैव दुखी रहता है, चाहे वह समस्त संसार घूमकर सुख-संचय का प्रयास ही क्यों न करता रहे! सुख का एकमात्र आधार हृदय में हरिनाम को बसा लेना है, जोकि गुरु के उपदेशों से ही प्राप्य है ॥ ३ ॥ परमात्मा जिसे चाहे, संयोग-सुख प्रदान कर सकता है। मैं उसके बलिहार जाता हूँ (जो परमात्मा से मिलाप प्राप्त कर चुका हो)। (उसके दर्शन-मात्र से ही) यह मन भक्ति में लीन होता और सच्ची गुरुवाणी के मनन से सत्लोक में स्थान पा लेता है। परमात्मा के प्यार में मन और जिह्वा ऐसे रंग जाते हैं, कि क्षण-क्षण परमसत्य हरि के गुण गाते हैं। गुरुजी कहते हैं कि तब जीव नाम को कभी विस्मृत नहीं करता और अन्ततः सत्य में ही विलीन हो जाता है ॥ ४ ॥ ३१ ॥ ६४ ॥

[यहाँ से सिरीराग के अन्तर्गत महला ४ अर्थात् गुरु रामदास जी की वाणी का श्रीगणेश होता है।]

॥ सिरीरागु महला ४ घरु १ ॥ मै मनि तनि बिरहु अति अगला किउ प्रीतमु मिलै घरि आइ। जा देखा प्रभु आपणा प्रभि देखिऐ दुखु जाइ। जाइ पुछा तिन सजणा प्रभु कितु बिधि मिलै मिलाइ ॥ १ ॥ मेरे सतिगुरा मै तुझ बिनु अवरु न कोइ। हम मूरख मुगध सरणागती करि किरपा मेले हरि सोइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सतिगुरु दाता हरिनाम का प्रभु आपि मिलावै सोइ। सतिगुरि हरिप्रभु बुझिआ गुर जेवडु अवरु न कोइ। हउ गुरसरणाई ढहि पवा करि दइआ मेले प्रभु सोइ ॥ २ ॥ मनहठि किनै न पाइआ करि उपाव थके सभु कोइ। सहस सिआणप करि रहे मनि कोरै रंगु न होइ। कूड़ि कपटि किनै न पाइओ जो बीजै खावै सोइ ॥ ३ ॥ सभना तेरी आस प्रभु सभ जीअ तेरे तूं रासि। प्रभ तुधहु खाली को नही दरि गुरमुखा नो साबासि। बिखु भउजल डुबदे कढि लै जन नानक की अरदासि ॥ ४ ॥ १ ॥ ६५ ॥

मेरा तन-मन विरह-ताप में अत्यधिक जल रहा है, प्रियतम कब आकर मुझे मिलेगा? प्रियतम को देखने की आकांक्षा है, उसे देखने से ही मेरा दुःख दूर होगा। (यह जीवात्मा की पुकार है। प्रभु-मिलन की कामना से पीड़ित वह प्रियतम-परमात्मा का दर्शन चाहती है)। मुझे उन साधुजनों (सतिगुरु से भाव है) से जाकर पूछना होगा कि परमात्मा को

किस विधि से प्राप्त किया जा सकता है ।। १ ।। हे मेरे सतिगुरु, तुम्हारे अतिरिक्त मेरा और कोई नहीं । मैं मूर्ख हूँ, गँवार हूँ, तुम्हारी शरण में आई हूँ (जीवात्मा-रूपी स्त्री कह रही है), तुम्हीं दया करके मुझे हरि-पिय से मिला दो ।। १ ।। रहाउ ।। एकमात्र सतिगुरु ही हरि-नाम का दाता है, वही आत्मा-परमात्मा का मिलाप करवा सकता है । सतिगुरु ने सति-पुरुष (परमात्मा) को जान लिया होता है, इसलिए उसके बराबर कोई महान नहीं हो सकता । अतः, मैं भी गुरु की शरण में पड़ी हूँ, वही दया-वश मुझे कन्त (परमात्मा) से मिला देगा ।। २ ।। गुरु-विहीन लोग मन की हठ से कभी प्रभु को नहीं पा सकते, चाहे कितने भी प्रयत्न कर-कर थक जायँ ! वे हज़ारों चतुराइयाँ क्यों न करें, (भय और प्रीति की भट्टी चढ़े बग़ैर) उनके कोरे मन पर हरि-प्रेम का रंग नहीं चढ़ सकता । झूठ और छल से किसी ने परमात्मा को प्राप्त नहीं किया, जैसा वह बीजेगा (अर्थात् झूठ और छल), वैसा ही फल पाएगा ।। ३ ।। समस्त जीव, हे प्रभु, तुम्हारे ही हैं, उनकी समूची पूंजी तुम ही हो (और यदि भविष्य में कुछ मिलने की आशा है, वह भी तुम्हीं से है) । हे परमात्मा, तुम्हारी शरण में आनेवाला कोई ख़ाली नहीं जाता; और यदि वह गुरमुख है तो तुम्हारे दरबार में विशेष प्रशस्ति का अधिकारी बन जाता है । गुरुजी कहते हैं, हे परमात्मा, मेरी विनती है कि हमें (जीवों को) विषय-विकारों के संसार-सागर में डूबने से बचा लो ।। ४ ।। १ ।। ६५ ।।

।। सिरीरागु महला ४ ।। नामु मिलै मनु त्रिपतीऐ बिनु नामै ध्रिगु जीवासु । कोई गुरमुखि सजणु जे मिलै मै दसे प्रभु गुणतासु । हउ तिसु विटहु चउखंनीऐ मै नाम करे परगासु ।।१।। मेरे प्रीतमा हउ जीवा नामु धिआइ । बिनु नावै जीवणु ना थीऐ मेरे सतिगुर नामु द्रिड़ाइ ।। १ ।। रहाउ ।। नामु अमोलकु रतनु है पूरे सतिगुर पासि । सतिगुर सेवै लगिआ कढि रतनु देवै परगासि । धंनु वडभागी वडभागीआ जो आइ मिले गुर पासि ।। २ ।। जिना सतिगुरु पुरखु न भेटिओ से भागहीण वसि काल । ओइ फिरि फिरि जोनि भवाईअहि विचि विसटा करि विकराल । ओना पासि दुआसि न भिटीऐ जिन अंतरि क्रोधु चंडाल ।। ३ ।। सतिगुरु पुरखु अंम्रितसरु वडभागी नावहि आइ । उन जनम जनम की मैलु उतरै निरमल नामु द्रिड़ाइ । जन नानक उतमपदु पाइआ सतिगुर की लिव लाइ ।। ४ ।। २ ।। ६६ ।।

(इस जगत में) नाम की उपलब्धि से ही मानसिक सन्तोष होता है। बिना नाम जीवन को धिक्कार है (अर्थात् जीवन की सार्थकता नाम-स्मरण में है, उसी में सन्तुष्टि है।)। (प्रश्न उठता है, यह नाम क्या है, कौन इसका भेद बताए ? गुरुजी उत्तर देते हैं) कोई सच्चा सतिगुरु मिल जाय, तो वही मुझे गुणागार प्रभु का रहस्य बता सकता है। जो मुझे नाम का आलोक दे, मैं उसपर चार टुकड़े होकर बलिहार जाता हूँ ॥ १ ॥ हे मेरे प्रियतम, नाम-स्मरण में ही मेरा जीवन है। नाम के बिना जीवन व्यर्थ है, इसलिए मेरे सतिगुरु, मुझे भलीभाँति नाम-रहस्य समझा दीजिए ॥ १ ॥ रहाउ ॥ नाम अनमोल रत्न के समान है, जिसकी उपलब्धि पूरे सतिगुरु से ही होती है। सतिगुरु की सेवा में संलग्न होने से वे प्रसन्न होते हैं और ज्ञान का प्रकाश कर वे नाम-रत्न को खोज देते हैं। सौभाग्यशाली लोगों में भी वे भाग्यशाली धन्य हैं, जो गुरु से मिलकर (नाम) इस ख़ज़ाने को प्राप्त कर लेते हैं ॥ २ ॥ जो सतिगुरु-सरीखी समर्थशक्ति के मिलाप से वंचित हैं, वे अभागे मृत्यु के वश में हैं। पुनः पुनः विभिन्न योनियों में जन्मते-मरते और मलिनता के भयानक कीड़े बने पड़े हैं। ऐसे जीवों के तो निकट भी नहीं छूना चाहिए, जिनके अन्तर में क्रोधादि दुश्वृत्तियाँ पनपती हैं ॥ ३ ॥ सामर्थ्यवान् सतिगुरु अमृत का सरोवर है, केवल सौभाग्यशाली जीव ही उसमें स्नान करते हैं अर्थात् उसके समीप आकर उसके कृपा-पात्र बनते हैं। वहाँ जन्म-जन्म की मलिनता दूर हो जाती है और गुरु निर्मल नाम की उपासना करवाता है। गुरुजी कहते हैं कि उन्हें (गुरु-भक्तों को) सतिगुरु का ध्यान करने से उच्च स्थान प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ २ ॥ ६६ ॥

॥ सिरीरागु महला ४ ॥ गुण गावा गुण विथरा गुण बोली मेरी माइ। गुरमुखि सजणु गुणकारीआ मिलि सजण हरि गुण गाइ। हीरै हीरु मिलि बेधिआ रंगि चलूलै नाइ ॥ १ ॥ मेरे गोविंदा गुण गावा त्रिपति मनि होइ। अंतरि पिआस हरिनाम की गुरु तुसि मिलावै सोइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मनु रंगहु वडभागी हो गुरु तुठा करे पसाउ। गुरु नामु द्रिड़ाइ रंग सिउ हउ सतिगुर कै बलि जाउ। बिनु सतिगुर हरिनामु न लभई लख कोटी करम कमाउ ॥ २ ॥ बिनु भागा सतिगुरु ना मिलै घरि बैठिआ निकटि नित पासि। अंतरि अगिआन दुखु भरमु है विचि पड़दा दूरि पईआसि। बिनु सतिगुर भेटे कंचनु ना थीऐ मनमुखु लोहु बूडा बेड़ी पासि ॥ ३ ॥ सतिगुरु बोहिथु हरिनाव है कितु बिधि चड़िआ जाइ। सतिगुर कै भाणै जो

चलै विचि बोहिथ बैठा आइ। धंनु धंनु वडभागी नानका जिना सतिगुरु लए मिलाइ ॥ ४ ॥ ३ ॥ ६७ ॥

मेरी माता, मैं तो उस प्रभु के गुण गाता हूँ, उसी के गुणों की व्याख्या करता हूँ, मेरी समूची बातचीत उसी (परमात्मा) के गुणों पर सीमित है। गुरमुख-जन (प्रभु-प्रिय लोग) परोपकारी होते हैं, उन्हीं के सम्पर्क में आकर हरि-गुण गाया जा सकता है। हीरे से मिलकर हीरा बिंध जाता है और उस पर गाढ़ा लाल रंग चढ़ जाता है (अर्थात् गुरु-रूपी हीरे से मिलकर मन-रूपी हीरा बिंध जाता है और उसपर (मन पर) परमात्मा के प्रेम का रंग चढ़ जाता है।) ॥ १ ॥ हे मेरे गोविंदा (परमात्मा) तुम्हारे गुण गाने से ही मेरे मन में तृप्ति होती है। मेरे मन में हरि की प्यास तीव्र है, हे सतिगुरु, आप प्रसन्न होकर मुझे प्रभु से मिलवा दो ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे भाग्यशाली जीवो, गुरु तुम पर प्रसन्न है, आगे बढ़कर अपना मन रंग लो (अर्थात् परमात्मा से प्यार कर लो)। मैं अपने सतिगुरु के बलिहार हूँ जो बड़े ही प्रेम से हरि-नाम का भेद बताता है। सतिगुरु पर बिना लाखों-करोड़ों प्रयास करने पर भी हरि-नाम की प्राप्ति सम्भव नहीं होती ॥ २ ॥ शुभ कर्मों और उच्च भाग्य के बिना घर में रहते, अति समीप होते हुए भी सतिगुरु नहीं मिलता। मन में अज्ञान तथा भ्रम का दुखद आवरण है, इसी कारण से (निकटतर होते हुए भी) दूरी बनी रहती है। सतिगुरु से सम्पर्क हुए बग़ैर मनमुखी जीव-रूपी लोहा कंचन-समान नहीं हो सकता। उसकी दशा उस लोहे के समान होती है जो नाव के अति निकट होते हुए भी नाव में पड़ने से पहले डूब जाता है। (गुरु पारस है, जीव लोहा है, पारस के सम्पर्क में लोहा कंचन हो जाता है। दूसरे चरण में गुरु नाव है, मनमुखी जीव लोहा है, नाव में पड़ने से पूर्व ही डूब जाता है) ॥ ३ ॥ (अब गुरुजी कहते हैं कि) सतिगुरु हरि-नाम का जहाज़ है, किन्तु (संसार-सागर से) पार जाने के लिए उसमें क्योंकर चढ़ा जा सकता है? (स्वयं ही उत्तर देते हैं) जो जीव सतिगुरु के हुकुम की पालना करते हैं, वे ही जहाज़ में चढ़कर पार उतरते हैं। (नानक) वे जीव धन्य हैं, जिनका मिलाप सतिगुरु से हो जाता है ॥ ४ ॥ ३ ॥ ६७ ॥

॥ सिरीरागु महला ४ ॥ हउ पंथु दसाई नित खड़ी कोई प्रभु दसे तिनि जाउ। जिनी मेरा पिआरा राविआ तिन पीछै लागि फिराउ। करि मिंनति करि जोदड़ी मै प्रभु मिलणै का चाउ ॥ १ ॥ मेरे भाई जना कोई मो कउ हरि प्रभु मेलि मिलाइ। हउ सतिगुर विटहु वारिआ जिनि हरि प्रभु दीआ दिखाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ होइ निमाणी ढहि पवा पूरे सतिगुर

पासि । निमाणिआ गुरु माणु है गुरु सतिगुरु करे साबासि । हउ गुरु सालाहि न रजऊ मै मेले हरि प्रभु पासि ॥ २ ॥ सतिगुर नो सभ को लोचदा जेता जगतु सभु कोइ । बिनु भागा दरसनु ना थीऐ भागहीण बहि रोइ । जो हरि प्रभ भाणा सो थीआ धुरि लिखिआ न मेटै कोइ ॥ ३ ॥ आपे सतिगुरु आपि हरि आपे मेलि मिलाइ । आपि दइआ करि मेलसी गुर सतिगुर पीछै पाइ । सभु जगजीवनु जगि आपि है नानक जलु जलहि समाइ ॥ ४ ॥ ४ ॥ ६८ ॥

मैं नित्य खड़ी-खड़ी लोगों से रास्ता पूछती हूँ, कोई मुझे प्रभु-निकटता पाने की राह बता दे, तो मैं वहाँ जा सकूँ । जिन्होंने मेरे प्रियतम से मिलाप प्राप्त कर लिया है (अर्थात् जो परमात्मा का भेद जानते हैं), मैं उन्हीं के पीछे-पीछे फिरती हूँ (उन्हीं का अनुकरण करती हूँ) । उनकी मन्नत करती, उनकी कठोर सेवा करती हूँ, क्योंकि मुझे प्रभु-मिलन का चाव है (और वे मुक्त जीव कृपा-पूर्वक मुझे परमात्मा के साथ मिला सकते हैं) ॥ १ ॥ हे मेरे भाइयो, कोई तो मुझे परमेश्वर से मिलवा दो । (ऐसे में) मैं अपने सतिगुरु पर कुर्बान हूँ, जिसने मेरी प्रभु-मिलन की कामना पूर्ण कर दी (मुझे परमात्मा दिखला दिया) ॥ १ ॥ रहाउ ॥ अत्यन्त विनम्र होकर मैं अपने सतिगुरु के चरणों में गिर जाऊँगी; निराश्रित जीवों का एक-मात्र सहारा गुरु ही तो है, वही मुझे परवान करेगा । मेरे सतिगुरु ने ही मुझे परमात्मा से मिला दिया है, इसलिए मैं उसका गुण गाते तृप्त नहीं होती । (यह पद जीवात्मा की ओर से कहा जा रहा है, इसलिए प्रथमपुरुष स्त्री-लिंग अर्थ निकलता है) ॥ २ ॥ (यों तो) सतिगुरु को भी सब लोग उतना ही चाहते हैं जितना जगत की उपलब्धियों को, किन्तु भाग्यवान् को ही दर्शन मिलता है, अभागे बैठे रोते रह जाते हैं । (वास्तव में) जो हरि को (मालिक को) मंज़ूर था, वही हुआ है । उस परम उत्स से जो हुकुम होता है, उसे कोई नहीं टाल सकता ॥ ३ ॥ एक ही परमशक्ति सतिगुरु में भी आलोकित है और अपने आप में भी विराजती है (अर्थात् सतिगुरु और परमात्मा में अभेद है), शक्ति वही तत्त्व-अभेद के नाते जीव को अपने में विलीन कर लेती है । वही परमात्मा दया करके जीव को सतिगुरु की शरण प्रदान करता है (अर्थात् गुरु भी उसी की कृपा से मिलता है) । वह प्रभु स्वयं ही सृष्टि में सृष्टि का जीवन है, और अपने में जब किसी (जीव) को विलीन करता है, तो (नानक) वह जल में जल की नाईं अभेद हो जाता है ॥४॥४॥६८॥

॥ सिरीरागु महला ४ ॥ रसु अंम्रितु नामु रसु अति

भला कितु बिधि मिलै रसु खाइ । जाइ पुछहु सोहागणी तुसा किउकरि मिलिआ प्रभु आइ । ओइ वेपरवाह न बोलनी हउ मलि मलि धोवा तिन पाइ ॥ १ ॥ भाई रे मिलि सजण हरिगुण सारि । सजणु सतिगुरु पुरखु है दुखु कढै हउमै मारि ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गुरमुखीआ सोहागणी तिन दइआ पई मनि आइ । सतिगुर वचनु रतंनु है जो मंने सु हरिरसु खाइ । से वडभागी वड जाणीअहि जिन हरिरसु खाधा गुरभाइ ॥ २ ॥ इहु हरिरसु वणि तिणि सभतु है भागहीण नही खाइ । बिनु सतिगुर पलै ना पवै मनमुख रहे बिललाइ । ओइ सतिगुर आगै ना निवहि ओना अंतरि क्रोधु बलाइ ॥ ३ ॥ हरि हरि हरि रसु आपि है आपे हरिरसु होइ । आपि दइआ करि देवसी गुरमुखि अंम्रितु चोइ । सभु तनु मनु हरिआ होइआ नानक हरि वसिआ मनि सोइ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६९ ॥

(अब गुरुजी नाम-रस को पाने का साधन बताते हैं) नाम-रस अमृत समान मधुर है, और अतिश्रेष्ठ है। इस रस का पान करने के लिए इसे कहाँ से प्राप्त किया जा सकता है ? (रास्ता वही बता सकता है, जो मंज़िल पर पहुँचा हो, अतः गुरुजी सुझाव देते हैं) उन सुहागिनों (प्रभु-लब्धा आत्माओं) से जाकर पूछूँगी कि उन्होंने प्रभु-प्रियतम की संगति क्योंकर प्राप्त की है। (हो सकता है कि) वे बेपरवाही से मेरी उपेक्षा करें, किन्तु मैं तो बार-बार उनके चरण धोऊँगी (ताकि वे पसीजकर मुझ-पर करुणा करें और यह रहस्य मुझे बता दें) ॥ १ ॥ हे भाई, सतिगुरु-साजन से मिलो और हरिगुण गाओ; वह सतिगुरु ही भीतर के अभिमान का नाश करके सब प्रकार के दुःखों को दूर करता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गुरमुख आत्माएँ ही प्रभु-सुहाग को प्राप्त करती हैं, और तब वे करुणावती हो जाती हैं (उनके मन में दया उपजती है)। (दया करके वे बताती हैं कि) गुरु का उपदेश अनमोल रत्न के समान है; उसे परवान करनेवाली (आत्मा) हरि-नाम के रस का पान करती है। वे जीव भाग्यशाली हैं, जिन्होंने गुरु-कथनानुसार हरि-रस का पान किया है ॥ २ ॥ यह हरि-रस वन-तृण सब जगह मौजूद है (अर्थात् समूची सृष्टि में व्याप्त है), भाग्यहीन जीव इससे फिर भी वंचित रहते हैं। सतिगुरु की कृपा बिना इसकी सही पहचान नहीं होती, इसीलिए मनमुखी जीव बिलखते रह जाते हैं (प्राप्त नहीं कर पाते; प्राप्ति केवल गुरमुख को ही सम्भव है)। वे (मनमुख जीव) विनम्र होकर सतिगुरु के सम्मुख समर्पित नहीं करते, उनके भीतर क्रोध आदि विकार रहते हैं (इसीलिए वे गुरमुख नहीं हो पाते) ॥ ३ ॥

वह प्रभु ही हरि-नाम का स्वाद है और हरि-नाम भी आप ही है। कृपा करके, वही, गुरु के माध्यम से यह नामामृत दुहकर जीव को प्रदान करता है। गुरुजी कहते हैं कि (इस प्रक्रिया से) मन में हरि-नाम के बस जाने से तन-मन उल्लसित हो उठता है ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६९ ॥

॥ सिरीरागु महला ४ ॥ दिनसु चड़ै फिरि आथवै रैणि सबाई जाइ। आंव घटै नरु ना बुझै निति मूसा लाजु टुकाइ। गुड़ मिठा माइआ पसरिआ मनमुखु लगि माखी पचै पचाइ ॥ १ ॥ भाई रे मै मीतु सखा प्रभु सोइ। पुतु कलतु मोहु बिखु है अंति बेली कोइ न होइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गुरमति हरि लिव उबरे अलिपतु रहे सरणाइ। ओनी चलणु सदा निहालिआ हरि खरचु लीआ पति पाइ। गुरमुखि दरगह मंनीअहि हरि आपि लए गलि लाइ ॥ २ ॥ गुरमुखा नो पंथु परगटा दरि ठाक न कोई पाइ। हरिनामु सलाहनि नामु मनि नामि रहनि लिव लाइ। अनहद धुनी दरि वजदे दरि सचै सोभा पाइ ॥ ३ ॥ जिनी गुरमुखि नामु सलाहिआ तिना सभ को कहै साबासि। तिन की संगति देहि प्रभ मै जाचिक की अरदासि। नानक भाग वडे तिना गुरमुखा जिन अंतरि नामु परगासि ॥ ४ ॥ ३३ ॥ ३१ ॥ ६ ॥ ७० ॥

दिन चढ़ता है, साँझ होती है और रात भी आकर बीत जाती है। इस प्रकार आयु घटती रहती है (किन्तु मनुष्य समझता नहीं कि) नित्य काल-रूपी चूहा आयु-रूपी रस्सी को काट रहा है। (यहाँ गुरुजी माया-मोह के मधुर स्वाद में लीन असावधान जीव की बात कर रहे हैं जो मिथ्या स्वादों में विस्मृत होकर कटती हुई रस्सी के सहारे ही लटकते रहना चाहता है)। उसके आस-पास माया का मीठा गुड़ बिखरा पड़ा है और वह मक्खी की नाईं उसी स्वाद में डूबा अमूल्य मनुष्य-जीवन गँवा रहा है ॥ १ ॥ हे भाइयो, मेरा मित्र, सहायी, सब वह परम पुरुष ही है; यह स्त्री-पुत्रों का मोह सब विषैला है, अन्तिम समय कोई साथ नहीं देता ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जो जीव गुरु के उपदेशानुसार परमात्मा में ध्यान लगाते रहे, वे तिर गये और हरि-शरण के कारण माया से अप्रभावित रहे। उन्होंने इहलोक से प्रस्थान-लीला को सदैव अपने सम्मुख रखा और प्रवास में व्यय के लिये हरि-नाम की राशि अपने साथ बाँध ली, ताकि आगे के स्थानों (लोकों) में उन्हें सम्मान प्राप्त हो। गुरु का आदेश माननेवाले जीवों का सम्मान होता है और स्वयं परमात्मा उन्हें गले से लगा लेता है ॥ २ ॥ गुरमुख जीवों के लिए रास्ता साफ़ होता है, उन्हें मालिक के

द्वार में प्रवेश करने से कोई नहीं रोक सकता। वे सदैव हरिनाम का गुण गाते हैं, उनके नाम में नाम स्थित होता है और वे नित्य नाम में ही तल्लीन रहते हैं। (उन गुरमुखों के प्रभु-शरण में पहुँचने पर) वाहिगुरु के द्वार पर अनाहत ध्वनि होती है और उस सच्चे दरबार में वे सम्मानित होते हैं ॥ ३ ॥ जो गुरमुख प्रभु-नाम का यशोगान करते हैं, उन्हें सबकी प्रशंसा मिलती है। मुझ भिखारी की भी यही प्रार्थना है कि हे प्रभु, मुझे उनकी (मुक्तात्माओं की) संगति प्रदान करो। गुरुजी कहते हैं कि उन गुरमुखों के उत्तम भाग्य हैं, जिनके हृदय में हरि-नाम का आलोक प्रसरित है ॥ ४ ॥ ३३ ॥ ३१ ॥ ६ ॥ ७० ॥

[महला ५, पाँचवें गुरु श्री अर्जुनदेवजी का संकेत है। यहाँ से सिरीराग के अन्तर्गत गुरु अर्जुनदेवजी की वाणी का शुभारम्भ होता है]

॥ सिरीरागु महला ५ घरु १ ॥ किआ तू रता वेखि कै पुत्र कलत्र सीगार। रस भोगहि खुसीआ करहि माणहि रंग अपार। बहुतु करहि फुरमाइसी वरतहि होइ अफार। करता चिति न आवई मनमुख अंध गवार ॥ १ ॥ मेरे मन सुखदाता हरि सोइ। गुरपरसादी पाईऐ करमि परापति होइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ कपड़ि भोगि लपटाइआ सुइना रुपा खाकु। हैवर गैवर बहुरंगे कीए रथ अथाक। किस ही चिति न पावही बिसरिआ सभ साक। सिरजणहारि भुलाइआ विणु नावै नापाक ॥ २ ॥ लैदा बददुआइ तूं माइआ करहि इकत। जिसनो तूं पतीआइदा सो सणु तुझै अनित। अहंकारु करहि अहंकारीआ विआपिआ मन की मति। तिनि प्रभि आपि भुलाइआ ना तिसु जाति न पति ॥ ३ ॥ सतिगुरि पुरखि मिलाइआ इको सजण सोइ। हरिजन का राखा एकु है किआ माणस हउमै रोइ। जो हरिजन भावै सो करे दरि फेरु न पावै कोइ। नानक रता रंगि हरि सभ जग महि चानणु होइ ॥ ४ ॥ १ ॥ ७१ ॥

(हे जीव) तुम क्यों पुत्र-स्त्री आदि के शृंगार-सौंदर्य पर मुग्ध हुए पड़े हो ? दुनिया की इन्हीं बातों में हर्ष, आनन्द पाते और अनन्त रंगों में रत हो ! बहुत हुकुम चलाते और पूरा होने पर अभिमानी होते हो ! कभी अपने बनानेवाले का स्मरण नहीं किया, मन द्वारा प्रेरित होते रहे, अज्ञानांध और मूर्ख बने हो ! ॥ १ ॥ हे मेरे मन, वास्तविक सुख का स्रोत हरि है, जिसे गुरु-कृपा से पाया जा सकता है और गुरु सद्भाग्य से ही

मिलता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ तुम सुन्दर कपड़ों और भोग-विलास में मग्न हो, किन्तु यह सोना-चाँदी मिट्टी हो जानेवाली वस्तु है। अच्छे-अच्छे घोड़े, हाथी और अथक रथ तुमने बनाए हैं; वैभव की मस्ती में तुम किसी की परवाह नहीं करते, अपने सम्बन्धियों की भी उपेक्षा कर दी है। अपने सर्जक (परमात्मा) को भी भुला दिया है, नाम के बिना मलिन जीवन जी रहे हो ॥ २ ॥ लोगों की बद्-दुआ (अशुभ-चिन्तन) ले-लेकर भी तुम धन इकट्ठा करते हो; जिन सम्बन्धियों की खुशी के लिए तुम यह करते हो, वे भी तुम्हारे सहित नश्वर हैं। गर्व में लीन तुम मन-मति (स्वेच्छा) पर चलते हो। अपने प्रभु को विस्मृत कर रखा है, (ऐसे में) तुम्हारा क्या सम्मान हो सकता है? ॥ ३ ॥ सतिगुरु (कृपावश) उस परम-पुरुष से मिलाता है, जो एक-मात्र सच्चा मित्र है। प्रभु-भक्तों का रक्षक वह परमात्मा ही है, अहंकारी व्यक्ति व्यर्थ रोते रह जाते हैं। हरि-जन जो चाहता है, वही परमेश्वर स्वीकार करता है। ऐसे हरिजन को प्रभु के द्वार से कोई नहीं मोड़ सकता। गुरुजी कहते हैं कि हरि के प्रेम में लिप्त होने के कारण वह हरि-जन (हरि-भक्त) समूचे संसार में आलोक प्रसारित करता है ॥ ४ ॥ १ ॥ ७१ ॥

॥ सिरीरागु महला ५ ॥ मनि बिलासु बहु रंगु घणा द्रिसटिभूलि खुसीआ। छत्रधार बादिसाहीआ विचि सहसे परीआ ॥ १ ॥ भाई रे सुखु साधसंगि पाइआ। लिखिआ लेखु तिनि पुरखि बिधातै दुखु सहसा मिटि गइआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जेते थान थनंतरा तेते भवि आइआ। धनपाती वडभूमीआ मेरी मेरी करि परिआ ॥ २ ॥ हुकमु चलाए निसंग होइ वरतै अफरिआ। सभु को वसगति करि लइओनु बिनु नावै खाकु रलिआ ॥ ३ ॥ कोटि तेतीस सेवका सिध साधिक दरि खरिआ। गिरंबारी वडसाहबी सभु नानक सुपनु थीआ ॥ ४ ॥ २ ॥ ७२ ॥

मन में आनन्द-उल्लास हो, दृष्टि हर्षोन्माद से मुग्ध हो; व्यक्ति छत्रपति सम्राट भी हो जाय, तो भी चिन्ता-मग्न ही रहता है ॥ १ ॥ हे भाई, सच्चा सुख केवल साधु-संगति (सतिगुरु की शरण में) में ही मिलता है। यदि परमात्मा ने हमारे भाग्य में वह (साधु-संगति) लिखी है तो समझो कि दुःख-चिन्ता सब मिट जायँगी ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जितने तीर्थ और पुण्य-स्थान हैं, सब घूम-घूमकर देख लिये। धनाढ्य लोग ज़िमींदारी के मद में गर्वशील होकर मर रहे हैं (नाम के बिना उनके सब साधन व्यर्थ हैं) ॥ २ ॥ वे (धनवान्) निधड़क होकर हुकुम चलाते और अहंकार

से फूले फिरते हैं। उन्होंने सबको अपने अधीन कर लिया है, किन्तु वे नाम के बिना मिट्टी में ही मिल जायँगे ।। ३ ।। (इससे भी अधिक यदि) तेंतीस करोड़ देवता किसी के दास हो जायँ, बड़े-बड़े सिद्ध-साधक भी उसकी चाकरी करें, बड़ी धनाढ्य स्थिति हो जाय, तो भी (नानक) अन्ततः सब सपना बनकर रह जायगा ।। ४ ।। २ ।। ७२ ।।

।। सिरीरागु महला ५ ।। भलके उठि पपोलीऐ विणु बुझे मुगध अजाणि । सो प्रभु चिति न आइओ छुटैगी बेबाणि । सतिगुर सेती चितु लाइ सदा सदा रंगु माणि ।। १ ।। प्राणी तूं आइआ लाहा लैणि । लगा कितु कुफकड़े सभ मुकदी चली रैणि ।। १ ।। रहाउ ।। कुदम करे पसु पंखीआ दिसै नाही कालु । ओतै साथि मनुखु है फाथा माइआ जालि । मुकते सेई भालीअहि जि सचा नामु समालि ।। २ ।। जो घरु छडि गवावणा सो लगा मन माहि । जिथै जाइ तुधु वरतणा तिस की चिंता नाहि । फाथे सेई निकले जि गुर की पैरी पाहि ।। ३ ।। कोई रखि न सकई दूजा को न दिखाइ । चारे कुंडा भालि कै आइ पइआ सरणाइ । नानक सचै पातिसाहि डुबदा लइआ कढाइ ।। ४ ।। ३ ।। ७३ ।।

प्रतिदिन प्रातः उठकर (हम) (इस शरीर का) पालन-पोषण करते हैं, किन्तु जब तक ज्ञान नहीं होता, यह (शरीर) मूर्ख और नासमझ ही बना रहता है। यदि प्रभु-स्मरण न किया गया, तो व्यर्थ ही यह (शरीर) उजाड़ (स्मशान) में फेंक दिया जायगा। यदि इस शरीर में (मानव-योनि में) रहते हम सतिगुरु को हृदय में बसा लें, तो सदैव के लिये स्थायी आनन्द की उपलब्धि होगी ।। १ ।। हे प्राणी, तू यहाँ मनुष्य योनि में लाभ उठाने को आया था किन्तु व्यर्थ के कर्मों में संलग्न हो गया, जिससे धीरे-धीरे रात्रि (आयु) यों ही समाप्त होती जा रही है। (तुमने कोई सत्कर्म नहीं किया) ।। १ ।। रहाउ ।। जैसे पशु-पक्षी क्रीड़ा मग्न रहते हैं, उन्हें मृत्यु नहीं सूझती, वैसे ही मनुष्य है जो माया-जाल में फँस जाता है। (इस माया-जाल से) वही मुक्त होता है, जो नाम-स्मरण करता है ।। २ ।। (विचित्र विडम्बना है कि) जो घर अन्ततः त्यागना ही पड़ेगा (शरीर), तुमने उसी से मोह किया है और जहाँ जाकर प्रभु की शरण में सदा रहना है, उसकी कभी चिन्ता ही नहीं की। इस स्थिति में फँसे हुए वे ही जीव मुक्त हो सकते हैं, जो सतिगुरु के चरण पकड़ेंगे अर्थात् जो गुरु की शरण लेंगे ।। ३ ।। (गुरु के अतिरिक्त) कोई तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकता,

न कोई दूसरा सक्षम दीख ही पड़ता है। (इसीलिए) मैं चारों दिशाओं में खोजकर अन्ततः उसकी शरण में आया हूँ। (गुरुजी कहते हैं कि) वही गुरु मेरी डूबते हुए की रक्षा कर सकता है ॥ ४ ॥ ३ ॥ ७३ ॥

॥ सिरीरागु महला ५ ॥ घड़ी मुहत का पाहुणा काज सवारणहारु। माइआ कामि विआपिआ समझै नाही गावारु। उठि चलिआ पछुताइआ परिआ वसि जंदार ॥ १ ॥ अंधे तूं बैठा कंधी पाहि। जे होवी पूरबि लिखिआ ता गुर का बचनु कमाहि ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हरी नाही नह डडुरी पकी वढणहार। लै लै दात पहुतिआ लावे करि तईआरु। जा होआ हुकमु किरसाण दा ता लुणि मिणिआ खेतारु ॥ २ ॥ पहिला पहरु धंधै गइआ दूजै भरि सोइआ। तीजै झाख झखाइआ चउथै भोरु भइआ। कद ही चिति न आइओ जिनि जीउ पिंडु दीआ ॥३॥ साध संगति कउ वारिआ जीउ कीआ कुरबाणु। जिस ते सोझी मनि पई मिलिआ पुरखु सुजाणु। नानक डिठा सदा नालि हरि अंतरजामी जाणु ॥ ४ ॥ ४ ॥ ७४ ॥

जीव इस संसार में घड़ी दो घड़ी का मेहमान बनकर अपना काज सँवारने आया था, किन्तु यहाँ के मोह-माया के आकर्षणों में फँसकर यह मूर्ख नासमझ बना पड़ा है। अन्तकाल में यमदूतों के वश में पड़कर पश्चाताप करता हुआ दुखी होता है ॥ १ ॥ हे अज्ञानांध जीव, तू मृत्यु-रूपी नदी के किनारे बैठा है (शीघ्र ही उसमें बह जायगा); यदि तेरे भाग्य में हुआ तभी गुरु के वचनानुसार आचरण कर सकेगा (अर्थात् यदि सत्कर्मों के फल-स्वरूप तुम्हें गुरु मिल गया और तुमने उसके उपदेशानुसार नाम-स्मरण में मन लगाया, तभी तुम्हारा कल्याण सम्भव है) ॥१॥रहाउ॥ यह खेती (मानव-जीवन) हरी, अधपकी या पूर्णतः तैयार, कुछ भी हो, कट सकती है (खेती पूरी तरह पकने पर ही काटते हैं, किन्तु यह आयु की खेती कभी भी कट सकती है)। किसान (यमराज) खेती-मज़दूरों (यमदूतों) को तैयार कर दराँतियाँ लेकर आ पहुँचा है। खेतों के स्वामी (परमात्मा) का जब आदेश हुआ तो उन खेती-मज़दूरों ने खेतों (सृष्टि के लोगों) को काट कर माप लिया ॥ २ ॥ पहला पहर (आयु का पहला भाग) काम-धन्धे में लीन रहकर गँवा दिया, दूसरे पहर निद्रा-मग्न रहा, तीसरे भाग में यह जीव भोग-विलास में डूबा रहा और चौथा पहर आते-आते बुढ़ापा आ गया (अर्थात् आयु बीत गई)। किन्तु जिस मालिक ने यह शरीर और प्राण दिये हैं, उसे कभी स्मरण ही नहीं किया ॥ ३ ॥ साधु-संगति (सतिगुरु-मिलन) के बलिहार हूँ, उसपर से प्राण न्यौछावर

करती हूँ, जिसके कारण मन में ज्ञान का उजाला हुआ है और परमपुरुष परमात्मा से मिलन सम्भव हो पाया है। गुरुजी कहते हैं कि वह अन्तर्यामी प्रभु सदा अंग-संग प्रतीत होने लगा है ॥ ४ ॥ ४ ॥ ७४ ॥

॥ सिरीरागु महला ५ ॥ सभे गला विसरनु इको विसरि न जाउ। धंधा सभु जलाइ कै गुरि नामु दीआ सचु सुआउ। आसा सभे लाहि कै इका आस कमाउ। जिनी सतिगुरु सेविआ तिन अगै मिलिआ थाउ ॥ १ ॥ मन मेरे करते नो सालाहि। सभे छडि सिआणपा गुर की पैरी पाहि ॥ १ ॥ रहाउ ॥ दुख भुख नह विआपई जे सुखदाता मनि होइ। कित ही कंमि न छिजीऐ जा हिरदै सचा सोइ। जिसु तूं रखहि हथ दे तिसु मारि न सकै कोइ। सुखदाता गुरु सेवीऐ सभि अवगण कढै धोइ ॥२॥ सेवा मंगै सेवको लाईआं अपुनी सेव। साधू संगु मसकते तूठै पावा देव। सभु किछु वसगति साहिबै आपे करण करेव। सतिगुर कै बलिहारणै मनसा सभ पूरेव ॥ ३ ॥ इको दिसै सजणो इको भाई मीतु। इकसै दी सामगरी इकसै दी है रीति। इकस सिउ मनु मानिआ ता होआ निहचलु चीतु। सचु खाणा सचु पैनणा टेक नानक सचु कीतु ॥ ४ ॥ ५ ॥ ७५ ॥

(यहाँ गुरुजी जीव-कल्याण का एक अमोघ मन्त्र बताते हैं) सब चीज़ें विस्मृत हों, किन्तु वह एक (परमात्मा) विस्मृत नहीं होना चाहिए। दुनिया का कार्य-व्यापार सब दूर हटाकर गुरु ने (तुम्हें) नाम-रहस्य बता दिया है, जो कि (जीवन का) यथार्थ प्रयोजन है। (इसलिए अब) अन्य सब आशाओं-कामनाओं का त्यागकर केवल एक ही आशा को जीवनाधार बनाओ। जो जीव सतिगुरु की सेवा करता है (गुरु आदेशानुसार जीवन-यापन करता है), उसे परमात्मा के दरबार में सम्मान प्राप्त होता है ॥१॥ ऐ मेरे मन, स्रष्टा (परमात्मा) का गुण-गान कर और अपनी सब चतुराई को छोड़कर गुरु की शरण ले ॥ १ ॥ रहाउ ॥ यदि सर्वसुखदाता प्रभु मन में बसा हो, तो जीव दु खों-तृष्णा से मुक्त हो जाता है। यदि वह सच्चा वाहिगुरु मन में है तो किसी भी कार्य में पराजय नहीं होती। वह परमात्मा खुद हाथ देकर जिसकी रक्षा करता है, उसे कोई नहीं मार सकता; इसलिए सुखदाता गुरु के आदेशानुसार आचरण करना ही अपेक्षित है, क्योंकि वह जीव के सब अवगुणों को धोकर निर्मल बना देता है ॥ २ ॥ जो जीव हरि से उसकी सेवा की याचना करते हैं, उन्हें वह अपनी सेवा में लगाता है। हे वाहिगुरु, तुम्हारे सन्तोष और कृपा से साधु-संगति एवं

सेवा-सामर्थ्य प्राप्त होते हैं। सब कुछ मालिक के अधीन है, वह स्वयमेव ही सर्वस्व करने योग्य है। मैं अपने सतिगुरु से कुर्बान हूँ, जो मेरी सब इच्छाएँ पूर्ण करता है ॥ ३ ॥ (इस समूचे ब्रह्माण्ड में) मुझे एक ही सज्जन या अपना भाई-मित्र दीख पड़ रहा है। विश्व की सारी सामग्री तथा उससे सम्बद्ध मर्यादा, उस एक परमात्मा की ही है। उस एक में ही यदि दृढ़ विश्वास बन जाय तो चित्त एकाग्र हो जाता है। गुरुजी कहते हैं, तब जीव सत्य का भोजन करता, सत्य को ओढ़ता एवं परमात्मा-रूपी एक-मात्र सत्य का ही सहारा लेता है ॥ ४ ॥ ५ ॥ ७५ ॥

॥ सिरीरागु महला ५ ॥ सभे थोक परापते जे आवै इकु हथि। जनमु पदारथु सफलु है जे सचा सबदु कथि। गुर ते महलु परापते जिसु लिखिआ होवै मथि ॥ १ ॥ मेरे मन एकस सिउ चितु लाइ। एकस बिनु सभ धंधु है सभ मिथिआ मोहु माइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ लख खुसीआ पातिसाहीआ जे सतिगुरु नदरि करेइ। निमख एक हरिनामु देइ मेरा मनु तनु सीतलु होइ। जिस कउ पूरबि लिखिआ तिनि सतिगुर चरन गहे ॥२॥ सफल मूरतु सफला घड़ी जितु सचे नालि पिआरु। दूखु संतापु न लगई जिसु हरि का नामु अधारु। बाह पकड़ि गुरि काढिआ सोई उतरिआ पारि ॥ ३ ॥ थानु सुहावा पवितु है जिथै संत सभा। ढोई तिस ही नो मिलै जिनि पूरा गुरू लभा। नानक बधा घरु तहां जिथै मिरतु न जनमु जरा ॥ ४ ॥ ६ ॥ ७६ ॥

एक वाहिगुरु को प्राप्त कर लेने से समस्त चीज़ों की प्राप्ति हो जाती है। यदि हरि-नाम का स्मरण किया जाय तो मानव-जन्म सफल होता है। जिसके भाग्य में बदा हो, उसी को गुरु के द्वारा परमात्मा की उपलब्धि होती है ॥ १ ॥ (इसलिए) ऐ मेरे मन, उस एक परमात्मा का ही स्मरण कर। हरि के अतिरिक्त जो कुछ भी करोगे, वह व्यर्थ होगा, माया का मिथ्या आचरण होगा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ यदि सतिगुरु की कृपा-दृष्टि हो, तो लाखों खुशियाँ और ऊँचे पद पावों में बिखर जायँ। एक क्षण का भी हरि-स्मरण मेरा तन-मन उल्लसित कर देता है। जिनके पूर्व-कर्मों का भाग्य-फल है, वे ही सतिगुरु की शरण में आ पाते हैं ॥ २ ॥ वह क्षण, वह मुहूर्त सफल है, जब जीव को वाहिगुरु से प्यार उमगता है। जिसे हरिनाम का सहारा है, उसे किसी प्रकार का दुःख, सन्ताप नहीं होता। जिसे गुरु ने बाँह पकड़कर उबारा, वही (इस संसार-सागर से) पार हो सका है ॥ ३ ॥ वह स्थान सुन्दर और पवित्र है, जहाँ सन्त-

समागम होता है। जो वहाँ (पहुँचकर) सतिगुरु को खोज लेता है, उसी को सहारा मिलता है। गुरुजी कहते हैं, तब जीव वहाँ मुकाम कर लेता है, जहाँ जन्म-मरण या वृद्धावस्था का प्रश्न ही शेष हो जाता है ॥ ४ ॥ ६ ॥ ७६ ॥

॥ स्रीरागु महल ५ ॥ सोई धिआईऐ जीअड़े सिरि साहां पातिसाहु । तिस ही की करि आस मन जिस का सभसु वेसाहु । सभि सिआणपा छडि कै गुर की चरणी पाहु ॥ १ ॥ मन मेरे सुख सहज सेती जपि नाउ । आठ पहर प्रभु धिआइ तूं गुण गोइंद नित गाउ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ तिस की सरनी परु मना जिसु जेवडु अवरु न कोइ । जिसु सिमरत सुखु होइ घणा दुखु दरदु न मूले होइ । सदा सदा करि चाकरी प्रभु साहिबु सचा सोइ ॥ २ ॥ साध संगति होइ निरमला कटीऐ जम की फास । सुखदाता भैभंजनो तिसु आगै करि अरदासि । मिहर करे जिसु मिहरवानु तां कारजु आवै रासि ॥ ३ ॥ बहुतो बहुतु वखाणीऐ ऊचो ऊचा थाउ । वरना चिहना बाहरा कीमति कहि न सकाउ । नानक कउ प्रभ मइआ करि सचु देवहु अपुणा नाउ ॥ ४ ॥ ७ ॥ ७७ ॥

हे जीव उसी का ध्यान कर, जो सम्राटों का भी सम्राट है; जिसका सब को भरोसा है, ऐ मन, तू भी उसी का आश्रय ले। अपनी चतुराइयों का त्याग करके गुरु के चरणों में शरण ले ॥ १ ॥ हे मेरे मन, सहज भाव और आनन्द से प्रभु-नाम का जाप कर। तू आठों याम प्रभु का ध्यान कर और अनवरत मालिक का गुण-गान कर ॥ १ ॥ रहाउ ॥ ऐ मेरे मन, तू उसकी शरण में जा, जिसके बराबर कोई और नहीं; जिसके स्मरण से बहुत सुख होता है, दुःख-दर्द का मूलतः नाश हो जाता है। इसलिए तू सदैव उस सच्चे परमात्मा की सेवा में रत रहा कर ॥ २ ॥ साधु-संगति से जीव निर्मल होता है और उसकी आवागमन-फाँसी सदा के लिए कट जाती है। वह परमेश्वर सुख देने और भय का नाश करने वाला है, उसी के आगे विनती करो। वह कृपालु जिस पर दया करता है, उसी का कार्य सम्पन्न होता है ॥ ३ ॥ उसे (प्रभु को) ज़्यादा से ज़्यादा चर्चायित किया जाता है और उसका स्थान भी ऊँचे से ऊँचा है; वह वर्ण-भेद, जाति-चिह्न आदि से परे अनमोल रत्न के समान है। गुरुजी कहते हैं, हे प्रभु, दया करके हमें अपना सच्चा नाम प्रदान करो ॥ ४ ॥ ७ ॥ ७७ ॥

॥ स्रीरागु महला ५ ॥ नामु धिआए सो सुखी तिसु मुखु ऊजलु होइ । पूरे गुर ते पाईऐ परगटु सभनी लोइ । साधसंगति कै घरि वसै एको सचा सोइ ॥ १ ॥ मेरे मन हरि हरि नामु धिआइ । नामु सहाई सदा संगि आगै लए छडाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ दुनीआ कीआ वडिआईआ कवनै आवहि कामि । माइआ का रंगु सभु फिका जातो बिनसि निदानि । जा कै हिरदै हरि वसै सो पूरा परधानु ॥ २ ॥ साधू की होहु रेणुका अपणा आपु तिआगि । उपाव सिआणप सगल छडि गुर की चरणी लागु । तिसहि परापति रतनु होइ जिसु मसतकि होवै भागु ॥ ३ ॥ तिसै परापति भाईहो जिसु देवै प्रभु आपि । सतिगुर की सेवा सो करे जिसु बिनसै हउमै तापु । नानक कउ गुरु भेटिआ बिनसे सगल संताप ॥ ४ ॥ ८ ॥ ७८ ॥

जो जीव नाम-स्मरण करते हैं, उनके मुख उज्ज्वल होते हैं अर्थात् उन्हें परमात्मा के सम्मुख आदर प्राप्त होता है। यद्यपि यह (नाम) नव-खण्ड, चौदह भुवनों में पहले से ही व्याप्त है, तो भी इसकी यथार्थ प्राप्ति गुरु से ही होती है। सत्संगति में वह परमात्मा स्वयं वास करता है ॥ १ ॥ इसलिए ऐ मेरे मन, तू सदा हरि-नाम का ध्यान कर। प्रभु का नाम इहलोक में सहायक है और परलोक में भी सदैव दुःखों से मुक्ति दिलवाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सांसारिक सम्मान और बड़ाई किस काम आएँगे; वे माया के रंग हैं, अन्ततः फीके पड़कर नष्ट हो जायँगे। जिसके हृदय में हरि का नाम है, वही वास्तव में आदरणीय है ॥ २ ॥ (अतः ऐ जीव) तू अपना अहम्-भाव त्यागकर साधु-जन (सतिगुरु) की चरण-धूलि बन जा। व्यर्थ के उपाय और चतुराई को छोड़कर गुरु की शरण में आ जा। नाम-रत्न की (गुरु के द्वारा) प्राप्ति उसी को होती है, जिसके मस्तक में भाग्य-रेखाएँ उज्ज्वल होती हैं ॥ ३ ॥ हे भाई, नाम की अमूल्य निधि उसी को प्राप्त होती है, जिसे वह परमेश्वर स्वयं प्रदान करता है। जिसके अन्तर से अहंकार निकल जाता है, वही सतिगुरु की सेवा का सामर्थ्य प्राप्त कर सकता है। गुरुजी कहते हैं कि जिस जीव को गुरु मिल गया, उसका सकल सन्ताप नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥ ८ ॥ ७८ ॥

॥ सिरीरागु महला ५ ॥ इकु पछाणू जीअ का इको रखणहारु । इकस का मनि आसरा इको प्राण अधारु । तिसु सरणाई सदा सुखु पारब्रहमु करतारु ॥ १ ॥ मन मेरे सगल उपाव तिआगु । गुरु पूरा आराधि नित इकसु की लिव

लागु ॥ १ ॥ रहाउ ॥ इको भाई मितु इकु इको मात पिता । इकस की मनि टेक है जिनि जीउ पिंडु दिता । सो प्रभु मनहु न विसरै जिनि सभु किछु वसि कीता ॥ २ ॥ घरि इको बाहरि इको थान थनंतरि आपि । जीअ जंत सभि जिनि कीए आठ पहर तिसु जापि । इकसु सेती रतिआ न होवी सोग संतापु ॥३॥ पारब्रहमु प्रभु एकु है दूजा नाही कोइ । जीउ पिंडु सभु तिस का जो तिसु भावै सु होइ । गुरि पूरै पूरा भइआ जपि नानक सचा सोइ ॥ ४ ॥ ९ ॥ ७९ ॥

हे जीव, तू वाहिगुरु से पहचान कर, वही एकमात्र संरक्षक है । मन में उसी का विश्वास बना और उसी को प्राणों का सहारा समझ । वह परब्रह्म है, सृष्टि का रचयिता है, उसकी शरण में जाने से सदा सुखोपलब्धि होती है ॥ १ ॥ ऐ मेरे मन, सब प्रकार के उपायों (कर्मकाण्ड) का त्याग करके पूर्ण गुरु में ध्यान लगा । उस एक ब्रह्म का स्मरण कर ॥१॥ रहाउ ॥ वही एक तुम्हारा भाई, मित्र, माता, पिता सब कुछ है (अर्थात् परमेश्वर का नाता ही यथार्थ नाता है, शेष मिथ्या हैं) । मन को उसी एक का सहारा है, जिसने शरीर और प्राणों को सौंपा है । (इसलिए) जिस प्रभु के वश में यह समूचा ब्रह्माण्ड है, वह मन से कभी विस्मृत नहीं होना चाहिए ॥ २ ॥ वह प्रभु घर में एक है, बाहर भी एक है तथा सब जगहों में वह स्वयं ही बसा हुआ है । सृष्टि के समस्त जीव-जन्तु जिसकी रचना हैं, आठों याम उसका स्मरण कर । यदि उस एक के ही रंग में तू अपने को रंग ले, तो समस्त शोक-सन्तापों का विनाश हो जायगा ॥ ३ ॥ वह परब्रह्म ही एकमात्र परमेश्वर है, दूसरा कोई नहीं; यह हमारा शरीर और प्राण, सब उनकी देन है; जो उसे स्वीकार है, वही होता है । गुरुजी कहते हैं कि मनुष्य गुरु के सहयोग से प्रभु-स्मरण करता हुआ उसी को प्राप्त होता है (अर्थात् जीव और ब्रह्म में अभेद हो जाता है) ॥ ४ ॥ ९ ॥ ७९ ॥

॥ सिरीरागु महला ५ ॥ जिना सतिगुर सिउ चितु लाइआ से पूरे परधान । जिन कउ आपि दइआलु होइ तिन उपजै मनि गिआनु । जिन कउ मसतकि लिखिआ तिन पाइआ हरिनामु ॥ १ ॥ मन मेरे एको नामु धिआइ । सरब सुखा सुख ऊपजहि दरगह पैधा जाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जनम मरण का भउ गइआ भाउ भगति गोपाल । साधू संगति निरमला आपि करे प्रतिपाल । जनम मरण की मलु कटीऐ गुरदरसनु

देखि निहाल ॥ २ ॥ थान थनंतरि रवि रहिआ पारब्रहमु प्रभु सोइ । सभना दाता एकु है दूजा नाही कोइ । तिसु सरणाई छुटीऐ कीता लोड़े सु होइ ॥ ३ ॥ जिन मनि वसिआ पारब्रहमु से पूरे परधान । तिन की सोभा निरमली परगटु भई जहान । जिनी मेरा प्रभु धिआइआ नानक तिन कुरबान ॥४॥१०॥८०॥

जो जीव सतिगुरु का नित्य ध्यान करते हैं, वे ही सत्कर्मी हैं। जिनपर उसकी दया होती है, उनके मन में ज्ञान का उजाला हो जाता है और जिनके भाग्य में बदा है (जिनके मस्तक में लिखा है) उन्हें हरि-नाम की प्राप्ति होती है ॥ १ ॥ अत:, ऐ मेरे मन, परमात्मा के नाम का ही एकमात्र स्मरण कर, तभी सब सुख (तुम्हारे भीतर) पैदा होंगे और तुम वाहिगुरु के सम्मुख सम्मानित हो सकोगे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ परमात्मा में भाव-भक्ति के सहज परिणाम-स्वरूप (जीव में) जन्म-मरण का भय नष्ट हो जाता है। जो लोग गुरु की संगति में निर्मल हो गये हैं, वाहिगुरु स्वयं उनकी सम्भाल करता है। उनकी जन्म-मरण की मैल कट जाती है और वे सच्चे गुरु का दर्शन पाकर निहाल हो जाते हैं ॥ २ ॥ वह परमात्मा हर जगह, कण-कण में व्याप्त है; वही सबका दाता (स्वामी) है, दूसरा कोई और नहीं। उसकी शरण में आने से ही जन्म-मरण के बन्धनों से मुक्ति मिलती है। जो कुछ वह चाहता है, वही होता है ॥ ३ ॥ जिनके मन में वह परमात्मा वास करता है, वे प्रणम्य हैं। उनकी शोभा (ख्याति) जगत-जनित होती है। गुरुजी कहते हैं कि जिसने परमात्मा का स्मरण किया है, वे उसपर न्यौछावर हैं ॥ ४ ॥ १० ॥ ८० ॥

॥ सिरीरागु महला ५ ॥ मिलि सतिगुर सभु दुखु गइआ हरिसुखु वसिआ मनि आइ । अंतरि जोति प्रगासीआ एकसु सिउ लिव लाइ । मिलि साधू मुखु ऊजला पूरबि लिखिआ पाइ । गुण गोविंद नित गावणे निरमल साचै नाइ ॥ १ ॥ मेरे मन गुरसबदी सुखु होइ । गुर पूरे की चाकरी बिरथा जाइ न कोइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मन कीआ इछां पूरीआ पाइआ नामु निधानु । अंतरजामी सदा संगि करणैहारु पछानु । गुरपरसादी मुखु ऊजला जपि नामु दानु इसनानु । कामु क्रोधु लोभु बिनसिआ तजिआ सभु अभिमानु ॥ २ ॥ पाइआ लाहा लाभु नामु पूरन होए काम । करि किरपा प्रभि मेलिआ दीआ अपणा नामु । आवण जाणा रहि गइआ आपि होआ मिहरवानु । सचु महलु घरु पाइआ गुर का सबदु पछानु ॥ ३ ॥ भगत जना

कउ राखदा आपणी किरपा धारि। हलति पलति मुख ऊजले साचे के गुण सारि। आठ पहर गुण सारदे रते रंगि अपार। पारब्रहमु सुख सागरो नानक सद बलिहार ॥ ४ ॥ ११ ॥ ८१ ॥

सतिगुरु के मिलन से जीव के सब दुःख नष्ट हो गये और उसके मन में आध्यात्मिक आनन्द का प्रकाश हुआ। वाहिगुरु के साथ लग्न लग जाने से आत्मा आलोकित हुई है, गुरु-मिलन से उज्ज्वल भाग्य का उदय हुआ है और अब हम नित्य हरि-गुण गाते और सत्यनाम के स्पर्श से निर्मल हुए हैं ॥ १ ॥ ऐ मेरे मन, गुरु-आदेशों पर आचरण करने में ही वास्तविक सुख है। सच्चे गुरु की सेवा कभी वृथा नहीं जाती ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (गुरु प्राप्त होने से) मन की सब इच्छाएँ पूर्ण हुईं और नाम-राशि की उपलब्धि से (जीव सम्पन्न हो गया)। अन्तर्यामी वाहिगुरु को हमने सदैव अपने अंग-संग पहचान लिया। गुरु-कृपा से नाम-दान आदि के द्वारा जीवन को पवित्र बना लिया। परिणामतः काम, क्रोध, लोभ और अहंकार से (जीव का) छुटकारा हो गया ॥ २ ॥ समूचे व्यापार में नाम-राशि का लाभ प्राप्त हुआ। प्रभु ने कृपा-पूर्वक जीव के सम्मुख नाम-रहस्य उद्घाटित करके उसे अपने में ही लीन कर लिया। उसकी दया पाकर जीव का आवागमन सदा के लिए समाप्त हो गया। उसने गुरु-उपदेशानुसार आचरण करते हुए सचखण्ड में वास पा लिया (सचखण्ड उस प्रदेश के लिए कल्पित संज्ञा है जहाँ परमेश्वर स्वयं निवास करता और अपने से अभेद मुक्तात्माओं को स्थान देता है) ॥ ३ ॥ प्रभु अपने भक्तों की रक्षा दया-वश स्वयं करता है। वाहिगुरु के गुणों का स्मरण करके इहलोक और परलोक, दोनों जगह उनका (भक्तों का) मुख उजला होता है और वे उस अपार ब्रह्म के प्यार के रंग में रंगे हुए आठों पहर परमात्मा का यशोगान करते हैं। सुख के सागर परब्रह्म पर से, हे नानक, वे सदा कुर्बान हैं ॥ ४ ॥ ११ ॥ ८१ ॥

॥ सिरीरागु महला ५ ॥ पूरा सतिगुरु जे मिलै पाईऐ सबदु निधानु। करि किरपा प्रभ आपणी जपीऐ अंम्रित नामु। जनम मरण दुखु काटीऐ लागै सहजि धिआनु ॥ १ ॥ मेरे मन प्रभ सरणाई पाइ। हरि बिनु दूजा को नही एको नामु धिआइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ कीमति कहणु न जाईऐ सागरु गुणी अथाहु। वडभागी मिलु संगती सचा सबदु विसाहु। करि सेवा सुखसागरै सिरि साहा पातिसाहु ॥ २ ॥ चरण कमल का आसरा दूजा नाही ठाउ। मै धर तेरी पारब्रहम तेरै ताणि रहाउ।

निमाणिआ प्रभु माणु तूं तेरै संगि समाउ ॥ ३ ॥ हरि जपीऐ आराधीऐ आठ पहर गोविंदु । जीअ प्राण तनु धनु रखे करि किरपा राखी जिंदु । नानक सगले दोख उतारिअनु प्रभु पारब्रहम बखसिंदु ॥ ४ ॥ १२ ॥ ८२ ॥

पूर्ण सतिगुरु की प्राप्ति से ही शब्द (नाम) के ख़ज़ाने की उपलब्धि होती है। परमात्मा की कृपा हो जाय तो (जीव) नाम का स्मरण कर पाता है और उसके जन्म-मरण का दुःख समाप्त होकर उसका ध्यान चौथे पद (पूर्णज्ञानावस्था) पर लीन हो जाता है ॥ १ ॥ हे मेरे मन, प्रभु की शरण पकड़; परमात्मा के बिना और कोई समर्थ नहीं, इसलिए मात्र उसी का नाम-स्मरण कर ॥ १ ॥ रहाउ ॥ वह परमेश्वर गुणों का अथाह सागर है, उसका सही मूल्यांकन सम्भव ही नहीं। सौभाग्य के नाते तू उसे सत्संगति में मिल और वहीं सच्चे शब्द को प्राप्त कर। (इस प्रकार) उस सुख-सागर प्रभु की, जो शाहों का भी शाह है, सेवा में संलग्न हो जा ॥ २ ॥ उसी के चरण-कमल का सहारा लो, उसके बग़ैर दूसरा कोई ठिकाना ही नहीं। हे प्रभु, परमेश्वर, मुझे तुम्हारा ही आश्रय है, तुम्हारे ही बल से मेरा अस्तित्व है। हे परमात्मा, बे-सहारों की तू ही टेक है, तुम्हारे में ही हमें विलीन होना है ॥ ३ ॥ रात-दिन, आठों पहर हमें हरि-स्मरण करना तथा प्रभु की आराधना करनी अपेक्षित है। उसी ने कृपा-वश हमें जीव, प्राण, तन और धन प्रदान किए हैं। गुरुजी कहते हैं कि वह परमात्मा क्षमाशील है, कृपा करके जीव के सब दोषों को मिटा देता है ॥ ४ ॥ १२ ॥ ८२ ॥

॥ सिरीरागु महला ५ ॥ प्रीति लगी तिसु सच सिउ मरै न आवै जाइ । ना वेछोड़िआ विछुड़ै सभ महि रहिआ समाइ । दीन दरद दुख भंजना सेवक कै सतभाइ । अचरज रूपु निरंजनो गुरि मेलाइआ माइ ॥ १ ॥ भाई रे मीतु करहु प्रभु सोइ । माइआ मोह परीति ध्रिगु सुखी न दीसै कोइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ दाना दाता सीलवंतु निरमलु रूपु अपारु । सखा सहाई अति वडा ऊचा वडा अपारु । बालकु बिरधि न जाणीऐ निहचलु तिसु दरवारु । जो मंगीऐ सोई पाईऐ निधारा आधारु ॥ २ ॥ जिसु पेखत किलविख हिरहि मनि तनि होवै सांति । इकमनि एकु धिआईऐ मन की लाहि भरांति । गुणनिधानु नवतनु सदा पूरन जा की दाति । सदा सदा आराधीऐ दिनु विसरहु नही राति ॥ ३ ॥ जिन कउ पूरबि लिखिआ तिन का सखा गोविंदु ।

तनु मनु धनु अरपी सभो सगल वारीऐ इह जिंदु। देखै सुणै हदूरि सद घटि घटि ब्रहमु रविंदु। अकिरतघणा नो पालदा प्रभ नानक सद बखसिंदु ॥ ४ ॥ १३ ॥ ८३ ॥

परमसत्य वाहिगुरु में जिसकी प्रीति निष्ठ होती है, उसका आवागमन चुक जाता है। वह सर्व-व्यापक है, फिर तो दूर होने पर भी वियोग नहीं होता (वह हृदय में साक्षात् रूप धारण किए सदा विद्यमान रहता है)। वह परमेश्वर दीनों-अनाथों के दुःख-दर्द नाश करता एवं सेवकों को आदर-भाव से मिलता है। वह माया-रहित आश्चर्यमय रूपवाला है। हे मेरी माँ, उसका मिलन गुरु के द्वारा ही होता है ॥ १ ॥ (इसलिए) हे भाई, उस परमेश्वर से ही दोस्ती रखो। मोह-माया की प्रीति को धिक्कार है, उसमें कोई भी सुखी नहीं दीख पड़ता ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हरि सर्वज्ञाता, सर्व-प्रदाता, करुणामय, पावन एवं परमसुन्दर है। वही जीव का यथार्थ मित्र और सहायक है, वह महान और सर्वोच्च है। वह बालक या वृद्ध नहीं होता, उसका दरबार निश्चल है (अर्थात् उसका हुकुम अटल है, लिहाज़ या भय के कारण उसकी अदालत में फ़ैसले नहीं बदलते)। (उसके दरबार में) जो माँगें, वही मिलता है; वह बे-सहारों का एकमात्र सहारा है ॥ २ ॥ जिसके दर्शन-मात्र से पापों का विनाश होता और तन-मन में शान्ति उपजती है। अतः (ऐसे प्रभु को) एकाग्रचित्त होकर तथा मन की सब भ्रान्तियों को तजकर स्मरण करना चाहिए। वह परमेश्वर गुणागार है, सदैव नीरोग और दानशील है। सदा-सदा हमें उसकी आराधना करनी चाहिए, दिन या रात, कभी भी उसका विस्मरण नहीं होना चाहिए ॥ ३ ॥ जिनके भाग्य में बदा है, गोविन्द (प्रभु) उन्हीं का सच्चा मित्र बनता है। उसपर तन-मन-धन अर्पित करके हमें ये प्राण भी उसपर न्यौछावर कर देना चाहिए। क्योंकि वह घट-घट में व्याप्त है, इसलिए हमारी प्रत्येक हरकत देखता-सुनता है। गुरुजी कहते हैं कि वह प्रभु तो इतना क्षमाशील है कि कृतघ्नों की भी नित्य पालना करता है ॥ ४ ॥ १३ ॥ ८३ ॥

॥ सिरीरागु महला ५ ॥ मनु तनु धनु जिनि प्रभि दीआ रखिआ सहजि सवारि। सरब कला करि थापिआ अंतरि जोति अपार। सदा सदा प्रभु सिमरीऐ अंतरि रखु उरधारि ॥ १ ॥ मेरे मन हरि बिनु अवरु न कोइ। प्रभ सरणाई सदा रहु दूखु न विआपै कोइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ रतन पदारथ माणका सुइना रुपा खाकु। मात पिता सुत बंधपा कूड़े सभे साक। जिनि कीता तिसहि न जाणई मनमुख पसु नापाक ॥ २ ॥ अंतरि

बाहरि रवि रहिआ तिस नो जाणै दूरि। त्रिसना लागी रचि रहिआ अंतरि हउमै कूरि। भगती नाम विहूणिआ आवहि वंञहि पूर ॥ ३ ॥ राखि लेहु प्रभु करणहार जीअ जंत करि दइआ। बिनु प्रभ कोइ न रखनहारु महा बिकट जम भइआ। नानक नामु न वीसरउ करि अपुनी हरि मइआ ॥४॥१४॥८४॥

जो परमात्मा तन-मन-धन देकर कुदरती तौर पर हमारी देख-भाल कर रहा है, जिसने समस्त भौतिक शक्तियाँ प्रदान कर हमारी रचना की है और उसके भीतर अपना अपार प्रकाश प्रकट किया है, उस परमेश्वर को सदैव हृदय में धारणकर पल-पल स्मरण करना चाहिए ॥ १ ॥ हे मेरे मन, हरि के अतिरिक्त दूसरा और कोई नहीं। प्रभु की ओट लेनेवाले जीव को कोई दु.ख-सन्ताप नहीं होता ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हीरे, मोती, सोना, चाँदी आदि वैभव-पदार्थ सब मिट्टी हो जाते हैं; माता-पिता, पुत्र, भाई आदि सब दुनियावी सम्बन्ध मिथ्या हैं। जिस प्रभु ने मनुष्य को बनाया है, यदि वह उसी को विस्मृत करता है तो मनमुखी मलिन पशु के समान है ॥ २ ॥ परमेश्वर तो कण-कण में बाहर-भीतर व्याप्त है, उसी को मनुष्य दूर मानता है। उसे भोग-विलास की लालसा है, वह विषयों में लिप्त है और मन में मिथ्या अहंकार भरा है। प्रेम और नाम से वंचित होने के कारण (जीवों के) समूह के समूह आवागमन में फँसे हुए हैं ॥ ३ ॥ हे करुणा-निधान परमात्मा, इन जीव-जन्तुओं पर दया करके इनकी रक्षा करो; तुम्हारे बिना इनका कोई रक्षक नहीं, यमराज बड़ा विकट है। गुरुजी कहते हैं कि हे दयामय, इतनी कृपा तो अवश्य करना कि मुझे नाम कभी विस्मृत न हो ॥ ४ ॥ १४ ॥ ८४ ॥

॥ सिरीरागु महला ५ ॥ मेरा तनु अरु धनु मेरा राज रूप मै देसु। सुत दारा बनिता अनेक बहुतु रंग अरु वेस। हरिनामु रिदै न वसई कारजि कितै न लेखि ॥ १ ॥ मेरे मन हरि हरि नामु धिआइ। करि संगति नित साध की गुरचरणी चितु लाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ नामु निधानु धिआईऐ मसतकि होवै भागु। कारज सभि सवारीअहि गुर की चरणी लागु। हउमै रोगु भ्रमु कटीऐ ना आवै ना जागु ॥ २ ॥ करि संगति तू साध की अठसठि तीरथ नाउ। जीउ प्राण मनु तनु हरे साचा एहु सुआउ। ऐथै मिलहि वडाईआ दरगहि पावहि थाउ ॥ ३ ॥ करे कराए आपि प्रभु सभु किछु तिस ही हाथि।

मारि आपे जीवालदा अंतरि बाहरि साथि। नानक प्रभ सरणागती सरब घटा के नाथ ॥ ४ ॥ १५ ॥ ८५ ॥

(इस पद में गुरुजी बाह्य भोग-विलास को व्यर्थ बताते हैं) जीव में अपने सशक्त शरीर, अधिक धन, सम्पत्ति और देश का मान होता है। (किसी भी वस्तु को अपना कहकर उसकी अधिकार-भावना का सन्तोष होता है।) किन्तु (सुख देनेवाले) पुत्र, पत्नी एवं (भोग-विलास के लिए) अन्य अनेक स्त्रियाँ भी क्यों न हों, मनोरंजन के असंख्य साधन और सुन्दर पोशाकें भी हों, तो भी यदि परमात्मा का नाम मन में नहीं, ये सब वस्तुएँ व्यर्थ हैं, बेकार हैं। (नश्वर ऐश्वर्य का अभिमान व्यर्थ है) ॥ १ ॥ इसलिए हे मेरे मन, तू सदैव हरि-नाम का स्मरण कर। नित्य-प्रति साधु-जन की संगति में रहने का प्रयास कर और गुरु के चरणों में ध्यानस्थ हो (इसी में जीवन की सार्थकता है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥ प्रभु का नाम, जो सबसे मूल्यवान है, तभी स्मरण किया जा सकता है, जब माथे पर सौभाग्य-चिह्न मौजूद हो अर्थात् ईश्वर की कृपा हो। (सच तो यह है कि) गुरु की शरण में जाने से ही सब कार्य स्वतः सँवर जाते हैं; (गुरु-कृपा से) मन के भ्रम तथा अहम्-भाव, सब नष्ट हो जाते हैं और जीव का आना-जाना (आवागमन) मिट जाता है ॥ २ ॥ (अब गुरुजी जीव को आदेश देते हैं कि) तुम साधु-संगति अर्थात् गुरु के सम्पर्क में आओ, वही तुम्हारे लिए अठसठ तीर्थों की पावनता के समान है। इससे तुम्हारी आत्मा, मन, प्राण और शरीर, सब सफल हो जायँगे—यही सच्चा लाभ है। यहाँ (इहलोक में) तुम्हें यश मिलेगा और परमात्मा के दरबार में भी तुम समादृत होगे ॥ ३ ॥ वास्तव में वह प्रभु सर्व-कर्त्ता है, सब कुछ उसी के हाथ है। वह सर्व-व्यापक है (अन्दर-बाहर विद्यमान है), मारने और जिलानेवाला वही है। (गुरुजी कहते हैं कि) हे प्रभु, हे सर्वजीवन के स्वामी, इसीलिए मैं केवल तुम्हारी ही शरण में हूँ (मुझपर दया-दृष्टि रखना) ॥ ४ ॥ १५ ॥ ८५ ॥

॥ सिरीरागु महला ५ ॥ सरणि पए प्रभ आपणे गुरु होआ किरपालु। सतगुर कै उपदेसिऐ बिनसे सरब जंजाल। अंदरु लगा रामनामि अंम्रित नदरि निहालु ॥ १ ॥ मन मेरे सतिगुर सेवा सारु। करे दइआ प्रभु आपणी इक निमख न मनहु विसारु ॥ रहाउ ॥ गुण गोविंद नित गावीअहि अवगुण कटणहार। बिनु हरिनाम न सुखु होइ करि डिठे बिसथार। सहजे सिफती रतिआ भवजलु उतरे पारि ॥ २ ॥ तीरथ वरत लख संजमा पाईऐ साधू धूरि। लूकि कमावै किस ते जा वेखै

सदा हदूरि । थान थनंतरि रवि रहिआ प्रभु मेरा भरपूरि ।।३।। सचु पातिसाही अमरु सचु सचे सचा थानु । सची कुदरति धारीअनु सचि सिरजिओनु जहानु । नानक जपीऐ सचु नामु हउ सदा सदा कुरबानु ।। ४ ।। १६ ।। ८६ ।।

जिन जीवों पर गुरु की कृपा होती है, वे प्रभु की शरण को प्राप्त होते हैं। सच्चे गुरु के उपदेशों को हृदय में धारण करने से सब प्रकार के बन्धनों से मुक्ति मिलती है। ऐसे जीवों की वृत्ति राम-नाम जपने में स्थिर होती है और वे जन्म-मरण से परे अमृत समान परमात्मा को सम्मुख पाकर (दृष्टि से देखकर) सर्व-दुःख-रहित (निहाल) हो जाते हैं ।। १ ।। हे मेरे मन, तुम सतिगुरु की सेवा में प्रवृत्त होओ; उसी से तुम पर प्रभु की कृपा लब्ध होगी। क्षण-भर के लिए भी उसे (गुरु-सेवा को) विस्मृत न करना ।। १ ।। रहाउ ।। हमें नित्य-प्रति परमात्मा का गुण-गान करना चाहिए, क्योंकि (ऐसा करने से) हमारे अवगुण दूर होते हैं अर्थात् परमात्मा का गुण-गान हमारे अवगुणों को नष्ट करता है। हमने अनेक विस्तार किए अर्थात् भोग-विलास, साधन-समृद्धियाँ प्राप्त कीं, किन्तु हरि-नाम के बिना कहीं वास्तविक सुख उपलब्ध नहीं हो सका। जो माया के तीनों गुणों से इतर रहकर एकाग्रचित्त हरि-भजन करते हैं, वे संसार-सागर से पार हो जाते हैं ।। २ ।। संसार के तीर्थ-व्रत और साधन-संयम आदि का फल तो सच्चे महात्मा-जन की चरण-धूलि मात्र से प्राप्त हो जाता है। कोई दुष्कर्म आखिर किससे छिपकर किया जायगा, जबकि कर्म-फल-प्रदाता सर्वव्यापक होने के नाते सब कुछ सम्मुख देख रहा है। वाहिगुरु तो जगह-जगह तथा जगहों के अन्तराल में सर्वदा व्याप्त है ।। ३ ।। उस सर्वव्यापी परमात्मा का शासन, उसका हुकुम तथा उसका निजी स्थान, सब सत्य हैं (उसके शासन में कोई उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता, उसका हुकुम नहीं टाल सकता, उसकी इच्छा के विरुद्ध सचखण्ड में प्रवेश नहीं कर सकता—उसके तन्त्र की सत्यता में विश्वास लाना ही अनिवार्य है।) उस परमेश्वर की सब शक्तियाँ सत्य हैं और उसके द्वारा निर्मित यह संसार भी सत्य है। (इसीलिए गुरुजी कहते हैं कि) उसी सच्चे प्रभु का सच्चा नाम जपना चाहिए, जिसपर मैं सदा बलिहार जाता हूँ ।। ४ ।। १६ ।। ८६ ।।

।। सिरीरागु महला ५ ।। उदमु करि हरि जापणा वडभागी धनु खाटि । संत संगि हरि सिमरणा मलु जनम जनम की काटि ।। १ ।। मन मेरे रामनामु जपि जापु । मन इछे फल भुंचि तू सभु चूकै सोगु संतापु ।। रहाउ ।। जिसु कारणि तनु धारिआ सो प्रभु डिठा नालि । जलि थलि महीअलि पूरिआ प्रभु आपणी

नदरि निहालि ॥ २ ॥ मनु तनु निरमलु होइआ लागी साचु परीति । चरण भजे पारब्रहम के सभि जप तप तिन ही कीति ॥ ३ ॥ रतन जवेहर माणिका अंम्रितु हरि का नाउ । सूख सहज आनंद रस जन नानक हरिगुण गाउ ॥४॥१७॥८७॥

परिश्रम-पूर्वक हरि-भजन का धन कठिनाई से कमाया जाता है। और यदि (इस उद्यम में) किसी सतिगुरु का सहयोग मिल जाय तो जन्म-जन्म की मलिनता धुल जाती है ॥ १ ॥ ऐ मन, तू राम-नाम का स्मरण कर। (ऐसा करने से) तुझे मनोवांछित फल-प्राप्ति होगी और तुम्हारा शोक-सन्ताप सब नष्ट हो जायगा ॥ रहाउ ॥ जिस परमात्मा के कारण जीव ने जन्म धारण किया है, वह उससे दूर नहीं अर्थात् अभिन्न है। वह जल, थल तथा धरती-आकाश के बीच अपनी दया-दृष्टि लिए सर्व-व्याप्त है ॥ २ ॥ उसके साथ सच्ची प्रीति होने से तन-मन निर्मल हो जाता है। जो जीव वाहिगुरु के चरणों का ध्यान करता है, उसने सब जप-तप कर लिए हैं ॥ ३ ॥ परमात्मा का अमृत-रूपी नाम हीरे-जवाहरात की नाईं अमूल्य है। अतः गुरुजी का कथन है कि हरि का गुण-गान ही सुखों और सहज आनन्द का आधार है ॥ ४ ॥ १७ ॥ ८७ ॥

॥ सिरीरागु महला ५ ॥ सोई सासतु सउणु सोइ जितु जपीऐ हरिनाउ । चरण कमलु गुरि धनु दीआ मिलिआ निथावे थाउ । साची पूंजी सचु संजमो आठ पहर गुण गाउ । करि किरपा प्रभु भेटिआ मरणु न आवणु जाउ ॥ १ ॥ मेरे मन हरि भजु सदा इकरंगि । घट घट अंतरि रवि रहिआ सदा सहाई संगि ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सुखा की मिति किआ गणी जा सिमरी गोविंदु । जिन चाखिआ से त्रिपतासिआ उह रसु जाणै जिंदु । संता संगति मनि वसै प्रभु प्रीतमु बखसिंदु । जिनि सेविआ प्रभु आपणा सोई राज नरिंदु ॥ २ ॥ अउसरि हरि जसु गुण रमण जितु कोटि मजन इसनानु । रसना उचरै गुणवती कोइ न पुजै दानु । द्रिसटि धारि मनि तनि वसै दइआल पुरखु मिहरवानु । जीउ पिंडु धनु तिस दा हउ सदा सदा कुरबानु ॥ ३ ॥ मिलिआ कदे न विछुड़ै जो मेलिआ करतारि । दासा के बंधन कटिआ साचै सिरजणहारि । भूला मारगि पाइओनु गुण अवगुण न बीचारि । नानक तिसु सरणागती जि सगल घटा आधारु ॥ ४ ॥ १८ ॥ ८८ ॥

शास्त्र और शगुण (शकुन) विचारने की सीमाएँ हरिनाम-स्मरण में ही समाप्त हैं (अर्थात् कर्मों के शुभाशुभ के लिए शास्त्र विचारना या समय-कुसमय के लिए शगुण जाँचना हरि-नाम स्मरण के साथ अवांछित ठहरते हैं)। गुरु-कृपा से जीव को प्रभु के चरण-कमलों का धन प्राप्त होता है, जिससे बेसहारा जीव सम्बल पा लेता है। आठों पहर परमात्मा के गुण-गान की सच्ची पूँजी उसे प्राप्त होती है और गुरु-कृपा से ही प्रभु-मिलन होता है, जिससे जन्म-मरण और आवागमन का अन्त हो जाता है ॥ १ ॥ (इसलिए) ऐ मेरे मन, तू सदैव एकाग्र होकर हरि का भजन कर। वह (हरि) घट-घट-वासी है और सदैव सम्पर्क में आकर सहयोग देनेवाला है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गोबिन्द का स्मरण करने से वे सुख प्राप्त होते हैं कि जिनकी कोई सीमा ही नहीं। वही जीव उस रस को जानता है, जिसने इसे चखा है। क्षमाशील प्रभु सन्तों की संगति में ही मन में वास करता है। अपने स्वामी (परमात्मा) की सेवा करनेवाला (जीव) राजाओं का भी राजा है। अर्थात् सतिसंगति में परमात्मा को मन में बसाकर उसी की सेवा में रत जीव की सर्व-अभिलाषा पूर्ण हो जाती हैं, वह अपने को राजाधिराज समझता है ॥ २ ॥ जिस अवसर पर हरि-गुण का स्मरण किया जाता है, वह करोड़ों तीर्थ-स्थानों के तुल्य पावन है। जब जिह्वा हरि का यशोगान करती है, तो कोई दान-पुण्य उसकी तुलना नहीं कर सकता। (ऐसे जीव के) तन-मन में वह परमात्मा दया-दृष्टि धारण किए स्वयं निवास करता है। यह जीवात्मा और शरीर उसी की सम्पत्ति है, मैं तो सदैव उस पर कुर्बान हूँ ॥ ३ ॥ परमात्मा को मिलनेवाला कभी वियोगी नहीं होता, अर्थात् वह कभी बिछुड़ता नहीं। वह प्रभु, सच्चा नियंता अपने सेवकों के बन्धन काट देता है। वह गुण-अवगुण पर विचार किए बिना ही भूले-भटके जीवों को सुमार्ग पर लाता है। (गुरुजी कहते हैं) जो सब हृदयों का एक-मात्र सम्बल है, उसी की शरण लेने में (कल्याण है) ॥ ४ ॥ १८ ॥ ८८ ॥

॥ सिरीरागु महला ५ ॥ रसना सचा सिमरीऐ मनु तनु निरमलु होइ। मात पिता साक अगले तिसु बिनु अवरु न कोइ। मिहर करे जे आपणी चसा न विसरै सोइ ॥ १ ॥ मन मेरे साचा सेवि जिचरु सासु। बिनु सचे सभ कूड़ु है अंते होइ बिनासु ॥ १ ॥ रहाउ ॥ साहिबु मेरा निरमला तिसु बिनु रहणु न जाइ। मेरै मनि तनि भुख अति अगली कोई आणि मिलावै माइ। चारे कुंडा भालीआ सह बिनु अवरु न जाइ ॥२॥ तिसु आगै अरदासि करि जो मेले करतारु। सतिगुरु दाता नाम

का पूरा जिसु भंडारु। सदा सदा सालाहीऐ अंतु न पारावारु ॥३॥ परवदगारु सालाहीऐ जिस दे चलत अनेक। सदा सदा आराधीऐ एहा मति विसेख। मनि तनि मिठा तिसु लगै जिसु मसतकि नानक लेख ॥ ४ ॥ १६ ॥ ८६ ॥

जिह्वा से सच्चे प्रभु का स्मरण करने से तन-मन निर्मल हो जाता है। माता-पिता तथा सगे-सम्बन्धी चाहे कितने भी हितू हों, किन्तु परमात्मा के बिना कोई अपना नहीं बनता। यदि उसकी कृपा हो, तो क्षण-भर भी विस्मृत नहीं होता। अर्थात् हरि-कृपा के बिना हरि-भजन नहीं होता ॥ १ ॥ अतः ऐ मेरे मन, जब तक श्वास है अर्थात् घट में प्राण हैं, तब तक ईश्वर की सेवा में तल्लीन रह, क्योंकि उसके अतिरिक्त शेष सब मिथ्या है और अन्ततः विनाश को प्राप्त होता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मेरा स्वामी (परमेश्वर) अविद्या की मैल से रहित है और मैं उसके बिना रह नहीं सकता हूँ। मेरे तन-मन में उसके (मिलन) के लिए तीव्र एषणा है, कोई प्रभु का प्यारा मुझे उससे मिला दे। मैंने चारों दिशाएँ खोज कर देख ली हैं, (और इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि) उस परम-पति परमेश्वर के बिना और कोई सहारा मेरा नहीं हो सकता ॥ २ ॥ मैं उस (गुरु) के आगे विनती करता हूँ, ताकि वह मुझे कर्त्तार (परमात्मा) से मिला दे। सतिगुरु का भण्डार अखुट है, वही सबको नाम-दान देने में समर्थ है। सदैव उसका यशोगान करना चाहिए, क्योंकि उसका कोई अन्त नहीं अर्थात् उसकी कृपा असीम है ॥ ३ ॥ हम उस पालनहार प्रभु का गुण गाते हैं, जिसके अन्तहीन उपागम आश्चर्य-चकित कर देते हैं। सदैव उसकी आराधना करना ही विशिष्ट विवेक का प्रमाण है। (गुरुजी कहते हैं कि) जिसके मस्तक में प्रभु-मिलन की रेखा है (जिसके भाग्य में प्रभु-मिलन बदा है) उसके तन-मन पर मधुर नाम-रस का अंकन होता है ॥ ४ ॥ १९ ॥ ८९ ॥

॥ सिरीरागु महला ५ ॥ संत जनहु मिलि भाईहो सचा नामु समालि। तोसा बंधहु जीअ का ऐथै ओथै नालि। गुर पूरे ते पाईऐ अपणी नदरि निहालि। करमि परापति तिसु होवै जिस नो होइ दइआलु ॥ १ ॥ मेरे मन गुर जेवडु अवरु न कोइ। दूजा थाउ न को सुझै गुर मेले सचु सोइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सगल पदारथ तिसु मिले जिनि गुरु डिठा जाइ। गुर चरणी जिन मनु लगा से वडभागी माइ। गुरु दाता समरथु गुरु गुरु सभ महि रहिआ समाइ। गुरु परमेसरु पारब्रहमु गुरु डुबदा

लए तराइ ॥ २ ॥ कितु मुखि गुरु सालाहीऐ करणकारण समरथु । से मथे निहचल रहे जिन गुरि धारिआ हथु । गुरि अंम्रित नामु पीआलिआ जनम मरन का पथु । गुरु परमेसरु सेविआ भै भंजनु दुख लथु ॥ ३ ॥ सतिगुरु गहिर गभीरु है सुख सागरु अघखंडु । जिनि गुरु सेविआ आपणा जमदूत न लागै डंडु । गुर नालि तुलि न लगई खोजि डिठा ब्रहमंडु । नामु निधानु सतिगुरि दीआ सुखु नानक मन महि मंडु ॥४॥२०॥९०॥

हे भाइयो, सन्त-जनों का सम्पर्क करो (गुरु की शरण लो) और प्रभु का नाम-स्मरण करो। यही जीवात्मा के लिए यात्रा-भत्ता है (जीवात्मा को इहलोक से सत्लोक की यात्रा करनी है, यात्रा-व्यय के रूप में प्रभु-नाम का भजन ही साथ बाँधना होगा), यहाँ और वहाँ (अर्थात् इहलोक और परलोक में) इसी का सहारा है। यह यात्रा-भत्ता (नाम-दान) सच्चे सतिगुरु से ही प्राप्त होता है। जब गुरु की कृपा होती है, तभी वह नाम-दान देता है। जिसपर वह दयालु होता है, उसी को वरदान-रूप में बख्शता है ॥ १ ॥ ऐ मेरे मन, विश्व में गुरु के बराबर और कोई महान नहीं। मुझे दूसरा कोई सहारा नहीं सूझता; बस, गुरु की शरण में ही हरि-मिलन सम्भव है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिन जीवों ने गुरु पा लिया है, उन्हें संसार की सब नियामतें उपलब्ध हैं; वे लोग भाग्यशाली हैं, जिनका मन गुरु-चरणों में लीन है। गुरु दाता है, समर्थ है और सबमें व्याप्त है। गुरु परमेश्वर है और संसारेतर व्यापक रूप हरि भी गुरु ही है, गुरु डूबते जीव को भी उबारने में समर्थ है ॥ २ ॥ गुरु करने-कराने में समर्थ है, उसकी सराहना किस मुँह से करूँ। वे मस्तक (यहाँ जीव) स्थिर हो जाते हैं, जिनपर गुरु का आशीष-पूर्ण हाथ होता है। गुरु ही जन्म-मरण के रोग के पथ्य-रूप में अमृत नाम पिलाता है। गुरु के माध्यम से ही उस भय-भंजन परमेश्वर की सेवा सम्भव है, जिससे सब दुःखों का नाश हो जाता है ॥ ३ ॥ सतिगुरु गहन, गम्भीर, सुखों का सागर और पापों का विनाश करनेवाला है। जो जीव गुरु की सेवा करता है, उसे यमराज के दण्ड का कोई भय नहीं रह जाता। मैंने सारा विश्व खोजकर देख लिया है, कोई गुरु-तुल्य नहीं। गुरु से जो नाम का ख़ज़ाना प्राप्त हुआ है (हे नानक) तू उसे अपने अन्तर में धारण कर ले ॥४॥२०॥९०॥

॥ सिरीरागु महला ५ ॥ मिठा करि कै खाइआ कउड़ा उपजिआ सादु । भाई मीत सुरिद कीए बिखिआ रचिआ बादु । जांदे बिलम न होवई विणु नावै बिसमादु ॥ १ ॥ मेरे मन सतगुर की सेवा लागु । जो दीसै सो विणसणा मन की मति

तिआगु ।। १ ।। रहाउ ।। जिउ कूकरु हरकाइआ धावै दहदिस जाइ । लोभी जंतु न जाणई भखु अभखु सभ खाइ । काम क्रोध मदि बिआपिआ फिरि फिरि जोनी पाइ ।। २ ।। माइआ जालु पसारिआ भीतरि चोग बणाइ । त्रिसना पंखी फासिआ निकसु न पाए माइ । जिनि कीता तिसहि न जाणई फिरि फिरि आवै जाइ ।। ३ ।। अनिक प्रकारी मोहिआ बहु बिधि इहु संसारु । जिसनो रखै सो रहै संम्रिथु पुरखु अपारु । हरिजन हरि लिव उधरे नानक सद बलिहारु ।। ४ ।। २१ ।। ९१ ।।

(गुरुजी संसार की स्थिति की चर्चा करते हैं) जीव संसार के पदार्थों को मीठा जानकर (उत्तम समझकर) अंगीकार करता है, किन्तु उनका स्वाद कटु होता है अर्थात् परिणाम दुखद निकलते हैं। भाई, मित्र, सुहृद-सरीखे सम्बन्ध बना-बनाकर बेकार विषय-विकारों का झगड़ा खड़ाकर लिया है। इन सब वस्तुओं के नाश होने में विलम्ब नहीं लगता—नाम के अतिरिक्त सब पदार्थ नश्वर हैं, मनुष्य को आश्चर्य में डाल जाते हैं ।।१।। ऐ मेरे मन, तू निर्द्वन्द्व होकर सतिगुरु की सेवा में तल्लीन रह। यह दृश्यमान जगत नश्वर है, मन की प्रेरणाओं से सावधान रहो, मनोविकारों का त्याग कर दो ।। १ ।। रहाउ ।। (यह मन इतना दुःशील है कि) पागल कुत्ते की भाँति दसो दिशाओं में डोलता है। लोभी पशु की नाईं (अविवेक के कारण) खाद्य-अखाद्य सबको ग्रहण करता है। काम-क्रोध के नशे में लीन होकर यह आत्म-विस्मृत-सा अनेक योनियों में पुनः पुनः भ्रमता है ।। २ ।। माया ने चतुर्दिक (इसे फाँसने को) जाल बिछा रखा है और नीचे विषय-तृष्णा-रूपी दाना भी डाला है। हे माँ, तृष्णा के कारण मन-रूपी पक्षी वहाँ फँस जाता है, निकल नहीं पा रहा। अपने सर्जक को भी नहीं पहचानता और इसीलिए बार-बार आवागमन का शिकार हो रहा है ।। ३ ।। इस संसार (-माया) ने अनेक प्रकार से मोह रखा है। केवल समर्थ सतिगुरु ही जिसकी रक्षा करे, वही सुरक्षित है। हरिजनों की संगति में हरि-भजन-द्वारा जो जीव मुक्त होते हैं, नानक उनके बलिहार है ।। ४ ।। २१ ।। ९१ ।।

।। सिरीरागु महला ५ घरु २ ।। गोइलि आइआ गोइली किआ तिसु डंफु पसारु । मुहलति पुंनी चलणा तूं संमलु घरबारु ।। १ ।। हरिगुण गाउ मना सतिगुरु सेवि पिआरि । किआ थोड़ड़ी बात गुमानु ।। १ ।। रहाउ ।। जैसे रैणि पराहुणे उठि चलसहि परभाति । किआ तूं रता गिरसत सिउ सभ फुला

की बागाति ॥ २ ॥ मेरी मेरी किआ करहि जिनि दीआ सो प्रभु लोड़ि । सरपर उठी चलणा छडि जासी लख करोड़ि ॥३॥ लख चउरासीह भ्रमतिआ दुलभ जनमु पाइओइ । नानक नामु समालि तूं सो दिनु नेड़ा आइओइ ॥ ४ ॥ २२ ॥ ९२ ॥

(मानव की दशा कुछ ऐसी है, जैसे) ग्वाले अपने पशु चराने के लिए किसी चरागाह में ले जाते हैं और वहीं अपने पाखण्डों का प्रसार करते हैं। (यह जीव भी यहाँ पशु चराने जैसा आया है, किन्तु चरागाह से ही प्यार कर बैठा है)। (गुरुजी आह्वान करते हैं कि) कालावधि समाप्त होते ही तुम्हें चलना है, इसलिए, ऐ जीव, तू अपना घर-बार तथा अन्य सामग्री को सम्भाल ले ॥ १ ॥ ऐ मन, (वह सामग्री) प्यारपूर्वक हरि-गुण गाने तथा सतिगुरु-सेवा से ही प्राप्त है। छोटी और नश्वर बातों का मान करना व्यर्थ है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (ऐ जीव !) जैसे रात का मेहमान प्रातः उठकर चल देता है, वैसे ही गृहस्थ ! तू भी क्यों लीन है ? यह फूलों के उद्यान की नाईं शीघ्र ही मुरझा जानेवाला तथ्य है ॥ २ ॥ प्रत्येक वस्तु पर अपना अधिकार दर्शाता हुआ तू मेरी-मेरी क्या करता है, उस सर्व-प्रदाता प्रभु को याद कर। (धर्मराज का बुलावा आते ही) संसार को छोड़ जाना होगा; लाखों-करोड़ों का संग्रह भी त्यागना ही पड़ेगा ॥ ३ ॥ तुम्हारा सौभाग्य है कि चौरासी लाख योनियों के चक्र में भ्रमते हुए अब तुमने दुर्लभ मानव-जन्म प्राप्त किया है। इसलिए (गुरुजी कहते हैं) कि अब अवसर का लाभ उठाकर प्रभु-नाम स्मरण करले, (दुनिया छोड़ जाने का) दिन निकट आ रहा है ॥ ४ ॥ २२ ॥ ९२ ॥

॥ सिरीरागु महला ५ ॥ तिचरु वसहि सुहेलड़ी जिचरु साथी नालि । जा साथी उठी चलिआ ता धन खाकू रालि ॥१॥ मनि बैरागु भइआ दरसनु देखणै का चाउ । धंनु सु तेरा थानु ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिचरु वसिआ कंतु घरि जीउ जीउ सभि कहाति । जा उठी चलसी कंतड़ा ता कोइ न पुछै तेरी बात ॥ २ ॥ पेईअड़ै सहु सेवि तूं साहुरड़ै सुखि वसु । गुरमिलि चजु आचारु सिखु तुधु कदे न लगै दुखु ॥ ३ ॥ सभना साहुरै वंञणा सभि मुकलावणहार । नानक धंनु सोहागणी जिन सह नालि पिआरु ॥ ४ ॥ २३ ॥ ९३ ॥

शरीर तब तक ही सुखी है, जब तक उसके भीतर जीव (साथी) स्थित है। जब जीव निकल जायगा, शरीर (-रूपी स्त्री) मिट्टी में मिल जायगा ॥ १ ॥ जिन्हें प्रभु के दर्शनों का चाव होता है, वे मन में विरक्ति

धारण करते और परमात्मा के स्थान (सचखण्ड) को धन्य मानते हैं, उसकी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ शरीररूपी स्त्री का जीवरूपी पति जब तक उसके साथ है, उसका आदर-सत्कार होता है, जब पति स्त्री को छोड़ जायगा, तो कोई उसकी बात तक नहीं पूछेगा अर्थात् मृत शरीर को सब शीघ्र हटा देने को कहने लगेंगे ॥ २ ॥ ऐ स्त्री (देहयुक्त मनुष्य), तुम्हें यदि पीहर और ससुराल (इहलोक और परलोक) दोनों जगह सुख से रहना है, तो गुरु की शरण में जाकर उपयुक्त आचरण और रहन-सहन के ढंग की शिक्षा प्राप्त कर। अर्थात् परमात्मा के चरणों में जाने से पूर्व अपने भीतर गुणों का विकास कर लो, तब तुम्हें कभी कोई दुःख-सन्ताप नहीं सता पायेंगे ॥ ३ ॥ यों तो सभी स्त्रियाँ ससुराल जाती हैं, उनका गौना होता है, किन्तु वह सुहागिन धन्य है जो पति का प्यार जीत लेती है। अर्थात् सभी लोगों को मरकर परलोक तो जाना ही है, किन्तु वे जीव धन्य हैं जो समय रहते अपने प्रभु-पति का प्यार प्राप्त कर लेते हैं ॥ ४ ॥ २३ ॥ ९३ ॥

॥ सिरीरागु महला ५ घरु ६ ॥ करणकारण एकु ओही जिनि कीआ आकारु। तिसहि धिआवहु मन मेरे सरब को आधारु ॥ १ ॥ गुर के चरन मन महि धिआइ। छोडि सगल सिआणपा साचि सबदि लिव लाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ दुखु कलेसु न भउ बिआपै गुरमंत्रु हिरदै होइ। कोटि जतना करि रहे गुर बिनु तरिओ न कोइ ॥ २ ॥ देखि दरसनु मनु साधारै पाप सगले जाहि। हउ तिन कै बलिहारणै जि गुर की पैरी पाहि ॥ ३ ॥ साध संगति मनि वसै साचु हरि का नाउ। से वडभागी नानका जिना मनि इहु भाउ ॥ ४ ॥ २४ ॥ ९४ ॥

वही एक परमेश्वर सब कुछ करने-करवाने वाला है, जिसने इस समूचे जगत को आकार दिया है। ऐ मेरे मन, तू नित्यप्रति उसी का ध्यानकर, वही सबका एकमात्र आधार है ॥ १ ॥ मन में नित्य गुरु-चरणों का ध्यान करो और गुरु के शब्दों द्वारा ही हरि में प्रीति लगाओ— शेष सब योग्यताओं का अभिमान त्याग दो ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिसके हृदय में गुरु-मन्त्र वसित है, उसे किसी प्रकार का दुःख-क्लेश या भय नहीं रह जाता। करोड़ों ही यत्न क्यों न करो, गुरु के बिना कभी किसी को मुक्ति लब्ध नहीं होती ॥ २ ॥ (गुरु वह कल्याण-तत्त्व है कि) उसे देखने मात्र से ही मन स्थिर होता है और सब पापों का नाश हो जाता है। मैं तो उन जीवों पर कुर्बान हूँ, जो गुरु के चरण पकड़ लेते हैं ॥ ३ ॥ गुरु की संगति में सच्चा हरि-नाम मन में उजागर होता है। गुरु नानकजी

कहते हैं कि वे जीव भाग्यशाली हैं जिनके मन में सतिसंगति का प्यार विद्यमान है ॥ ४ ॥ २४ ॥ ९४ ॥

॥ सिरीरागु महला ५ ॥ संचि हरिधनु पूजि सतिगुरु छोडि सगल विकार। जिनि तूं साजि सवारिआ हरि सिमरि होइ उधारु ॥ १ ॥ जपि मन नामु एकु अपारु। प्रान मनु तनु जिनहि दीआ रिदे का आधारु ॥ १ ॥ रहाउ ॥ कामि क्रोधि अहंकारि माते विआपिआ संसारु। पउ संत सरणी लागु चरणी मिटै दूखु अंधारु ॥ २ ॥ सतु संतोखु दइआ कमावै एह करणी सार। आपु छोडि सभ होइ रेणा जिसु देइ प्रभु निरंकारु ॥ ३ ॥ जो दीसै सो सगल तूं है पसरिआ पासारु। कहु नानक गुरि भरमु काटिआ सगल ब्रहम बीचारु ॥४॥२५॥९५॥

ऐ जीव, हरि-नाम के धन का संग्रह कर, सतिगुरु की आराधना में प्रवृत्त हो और शेष सब मनोविकारों का त्याग कर दे। जिस परमेश्वर ने अंग-प्रत्यंग गढ़कर तुझे बनाया है, उसी का स्मरण कर, तेरा उद्धार होगा ॥ १ ॥ ऐ मन, अपार नाम की उपासना कर; जिसने तुझे तन, मन, प्राण दिए हैं, उसी को अपनी अन्तरात्मा का सही आधार बना ले ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सम्पूर्ण विश्व में काम, क्रोध, अहंकारादि विकार व्याप्त हैं, जीव इसी मोह-पाश में बँधा है। हे मनुष्य, तू सन्तों की शरण में जा, उन्हीं के चरणों में लगकर उनका आदेश पालन कर, इसी से तेरे अज्ञान के सब दुःखों का नाश होगा ॥ २ ॥ संसार में सत्य, सन्तोष और दया की वृत्तियाँ श्रेष्ठ हैं। (इनके कारण) जिस पर प्रभु की कृपा हो जाती है, वह अहंकार का त्याग कर उसी अमर की चरण-धूलि बन जाता है ॥ ३ ॥ समूचा दृश्यमान जगत उसी परमेश्वर का प्रसार है, वही उसमें व्याप्त है। (नानक कहते हैं) गुरु ही जीव के भ्रम का नाश करके परमात्मा के सर्व-व्यापकत्व का बोध करवाता है ॥ ४ ॥ २५ ॥ ९५ ॥

॥ सिरीरागु महला ५ ॥ दुक्रित सुक्रित मंधे संसारु सगलाणा। दुहहूं ते रहत भगतु है कोई विरला जाणा ॥ १ ॥ ठाकुरु सरबे समाणा। किआ कहउ सुणउ सुआमी तूं वडपुरखु सुजाणा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मान अभिमान मंधे सो सेवकु नाही। तत समदरसी संतहु कोई कोटि मंधाही ॥ २ ॥ कहन कहावन इहु कीरति करला। कथन कहन ते मुकता गुरमुखि कोई विरला ॥ ३ ॥ गति अवगति कछु नदरि न आइआ। संतन की रेणु नानक दानु पाइआ ॥ ४ ॥ २६ ॥ ९६ ॥

सारा संसार ही अच्छे-बुरे कर्मों की उधेड़-बुन में फँसा है। कोई विरल भक्तजन ही कर्मों के इस गोरखधन्धे से मुक्त रहता है ॥१॥ मालिक (प्रभु) सर्व-व्यापक है, सर्वोच्च और सर्व-ज्ञाता है, उसके गुणों का बखान क्योंकर सम्भव है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मान-अपमान विचारनेवाला अर्थात् बड़ाई का इच्छुक या अपमान से भयभीत जीव सच्चा सेवक नहीं हो सकता। यथार्थ को पहचानने एवं सबको समान दृष्टि से देखनेवाला कोई करोड़ों में एक होता है ॥ २ ॥ स्तुति-कथन आदि को ही लोगों ने परमेश्वर के यशोगान का रास्ता समझ लिया है। ऐसे कथनों से परे (यथार्थ-चेत्ता) कोई विरल ही होता है ॥ ३ ॥ (यशोगान का मार्ग केवल कहने-सुनने के शब्द ही नहीं, बल्कि एक ऐसा सुनिर्मित जीवन है जो परमात्मा की शरण में व्यतीत होता है), मुक्ति या बन्धन कोई दृश्यमान तत्त्व नहीं हैं। मैंने तो सन्त-चरणों की धूलि का दान पा लिया है अर्थात् सन्तों के चरणों में रहने का अवसर पाकर मैं बन्धन-मुक्ति के चक्र से ही मुक्त हो गया हूँ ॥ ४ ॥ २६ ॥ ९६ ॥

॥ सिरीरागु महला ५ घरु ७ ॥ तेरै भरोसै पिआरे मै लाड लडाइआ। भूलहि चूकहि बारिक तूं हरि पिता माइआ ॥१॥ सुहेला कहनु कहावनु। तेरा बिखमु भावनु ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हउ माणु ताणु करउ तेरा हउ जानउ आपा। सभ ही मधि सभहि ते बाहरि बेमुहताज बापा ॥ २ ॥ पिता हउ जानउ नाही तेरी कवन जुगता। बंधन मुकतु संतहु मेरी राखै ममता ॥ ३ ॥ भए किरपाल ठाकुर रहिओ आवण जाणा। गुर मिलि नानक पारब्रहमु पछाणा ॥ ४ ॥ २७ ॥ ९७ ॥

हे परमपिता, मैं तो तुम्हारे ही भरोसे हास-विलास में लीन रहा (कि अन्तकाल तुम सहायी होगे)। बालक से अनेक भूल-चूक हुई होंगी; हे हरि, तू ही मेरा पिता और माता है, (क्षमा कर देना) ॥ १ ॥ कहने-कहाने की बातें सुगम हैं, किन्तु तुझे पसन्द आ सकने की योग्यता को धारण करना कठिन है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मुझे तुम्हारा ही मान है, मैं तुझे अपना समझता हूँ। हे पिता, तू सबमें व्याप्त है, सबसे बाहर भी तू है, तुझे किसी का आश्रय अपेक्षित नहीं ॥ २ ॥ हे परमपिता, मुझे ज्ञात नहीं कि तुम्हें कैसे प्रसन्न कर सकता हूँ। बन्धनों से मुक्त करनेवाला सतिगुरु मेरी ममता को रोककर मुझे सुरक्षित करता है ॥ ३ ॥ हे ठाकुर (परमेश्वर) तुम्हारी दया से मेरा आवागमन चुक गया है; गुरु को पाकर मैंने परब्रह्म को पहचान लिया है ॥ ४ ॥ २७ ॥ ९७ ॥

॥ सिरीरागु महला ५ घरु १ ॥ संत जना मिलि भाईआ कटिअड़ा जमकालु । सचा साहिबु मनि वुठा होआ खसमु दइआलु । पूरा सतिगुरु भेटिआ बिनसिआ सभु जंजालु ॥ १ ॥ मेरे सतिगुरा हउ तुधु विटहु कुरबाणु । तेरे दरसन कउ बलिहारणै तुसि दिता अंम्रित नामु ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिन तूं सेविआ भाउ करि सेई पुरख सुजान । तिना पिछै छुटीऐ जिन अंदरि नामु निधानु । गुर जेवडु दाता को नही जिनि दिता आतम दानु ॥ २ ॥ आए से परवाणु हहि जिन गुरु मिलिआ सुभाइ । सचे सेती रतिआ दरगह बैसणु जाइ । करते हथि वडिआईआ पूरबि लिखिआ पाइ ॥ ३ ॥ सचु करता सचु करणहारु सचु साहिबु सचु टेक । सचो सचु वखाणीऐ सचो बुधि बिबेक । सरब निरंतरि रवि रहिआ जपि नानक जीवै एक ॥ ४ ॥ २८ ॥ ९८ ॥

सन्तजनों की संगति में, हे भाइयो, हमने जन्म-मरण काट दिया है। मूल से ही काल का नाश कर दिया है। प्रभु की दया होने पर परमेश्वर स्वयं मन में आ बसता है। पूरे सतिगुरु को पाकर संसार का समूचा मोह-जाल विनष्ट हो जाता है ॥ १ ॥ हे मेरे सतिगुरु, मैं तुम पर कुर्बान हूँ। मुझे तुम्हारे ही दर्शनों की ललक है, तुम्हीं सन्तुष्ट होकर अमृत-नाम का दान प्रदान करते हो ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जो प्यारपूर्वक तुम्हारी सेवा करते हैं, वे ही मनुष्य विवेकी हैं। जिन साधुजनों के अन्तर में हरि-नाम का कोष विद्यमान है, उन्हीं की बदौलत मुक्ति लब्ध हो सकती है। गुरु के समान कोई महान नहीं, जो जीवों को जागृति प्रदान करता है ॥ २ ॥ जिन्हें उत्तम भावना के कारण गुरु प्राप्त हो जाता है, वे प्रभु के दरबार में भी स्वीकृत होते हैं। जो सच्चे परमात्मा के रंग में रंग जाते हैं, उन्हें सत्‌लोक में प्रवेश मिल जाता है अर्थात् वे परमेश्वर से अभिन्न हो जाते हैं। समूची उपलब्धियाँ परमात्मा के हाथ हैं, जिनके कर्मों में होती हैं, वे प्राप्त कर लेते हैं ॥ ३ ॥ कर्त्तार, उसकी करनी, उसका स्वभाव सदैव सत्य था, भविष्य में भी सत्य ही होगा, इसलिए उसी की टेक (सहारा) सत्य है। जो ऐसा सर्वकालीन सच्चा परमात्मा है, उसकी स्तुति करने से सच्चा आत्म-विचार प्राप्त होता है। गुरु-कथन है कि जो परब्रह्म कण-कण में रमा है, उसी एक का ध्यान कर मैं जीवित हूँ ॥ ४ ॥ २८ ॥ ९८ ॥

॥ सिरीरागु महला ५ ॥ गुरु परमेसुरु पूजीऐ मनि तनि लाइ पिआरु । सतिगुरु दाता जीअ का सभसै देइ अधारु ।

सतिगुर बचन कमावणे सचा एहु वीचारु। बिनु साधू संगति रतिआ माइआ मोहु सभु छारु ॥ १ ॥ मेरे साजन हरि हरि नामु समालि। साधू संगति मनि वसै पूरन होवै घाल ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गुरु समरथु अपारु गुरु वडभागी दरसनु होइ। गुरु अगोचरु निरमला गुर जेवडु अवरु न कोइ। गुरु करता गुरु करणहारु गुरमुखि सची सोइ। गुर ते बाहरि किछु नही गुरु कीता लोड़े सु होइ ॥ २ ॥ गुरु तीरथु गुरु पारजातु गुरु मनसा पूरणहारु। गुरु दाता हरिनामु देइ उधरै सभु संसारु। गुरु समरथु गुरु निरंकारु गुरु ऊचा अगम अपारु। गुर की महिमा अगम है किआ कथे कथनहारु ॥ ३ ॥ जितड़े फल मनि बाछीअहि तितड़े सतिगुर पासि। पूरब लिखे पावणे साचु नामु दे रासि। सतिगुर सरणी आइआं बाहुड़ि नही बिनासु। हरि नानक कदे न विसरउ एहु जीउ पिंडु तेरा सासु ॥ ४ ॥ २६ ॥ ९६ ॥

तन-मन के समूचे प्यार से गुरु को परमेश्वर मानकर उसकी आराधना करो। सतिगुरु जीव को आत्मिक जीवन देनेवाला है, वही मोक्ष का प्रदाता है। अतः सतिगुरु के उपदेशानुसार आचरण करना ही सच्चा विवेक है। सतिगुरु की संगति में रत हुए बिना सब माया, मोह की धूल-मात्र है ॥ १ ॥ हे मेरे प्यारे, हरि-नाम का भजन कर, किन्तु जब गुरु की संगति मिल जायगी, कुछ करने को शेष नहीं रह जायगा। अर्थात् गुरु-प्राप्ति मानव-प्रयत्नों की चरम सीमा है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गुरु समर्थ है, उसकी शक्तियाँ असीम हैं, किसी भाग्यशाली जीव को ही उसके दर्शन होते हैं। गुरु अगोचर है, नित्य निर्मल है, उसकी महानता की कोई समानता नहीं। गुरु कर्त्ता है, करने में समर्थ है, उसी की शरण में आने से जीव की वास्तविक शोभा है। गुरु की इच्छा के बाहर कुछ भी नहीं, जो उसकी इच्छा होती है, वही होता है ॥ २ ॥ गुरु सर्वोत्तम तीर्थ है, गुरु सर्वेच्छा-पूरक पारिजात (कल्पवृक्ष) है, वह जीव के मन की सब इच्छाएँ पूर्ण करता है। गुरु हरि-नाम का दाता है, जिससे संसार का उद्धार होता है। गुरु सब प्रकार से समर्थ है, वह माया के तीनों गुणों से परे है, वह अगम और अनिर्वचनीय है। उसकी महिमा का कोई अन्त नहीं, ज़बान से कहाँ तक उसकी स्तुति कर सकते हैं ? ३ ॥ मनोवांछित फल सतिगुरु से ही प्राप्त होते हैं, किन्तु सुकर्मी जीव ही नाम-स्मरण का मूल्य चुकाकर भाग्य-वश उन्हें खरीद सकते हैं।

एक बार सच्चे गुरु की शरण में आ जाने पर कभी दोबारा कष्ट नहीं झेलना होता। गुरुजी प्रार्थना करते हैं कि हे हरि, तुम्हारा नाम मुझे कभी विस्मृत न हो, मेरा यह तन-मन और प्राण सब तुम्हारी ही देन हैं ॥ ४ ॥ २९ ॥ ९९ ॥

॥ सिरीरागु महला ५ ॥ संत जनहु सुणि भाईहो छूटनु साचै नाइ। गुर के चरण सरेवणे तीरथ हरि का नाउ। आगै दरगहि मंनीअहि मिलै निथावे थाउ ॥ १॥ भाई रे साची सतिगुर सेव। सतिगुर तुठै पाईऐ पूरन अलख अभेव ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सतिगुर विटहु वारिआ जिनि दिता सचु नाउ। अनदिनु सच सलाहणा सचे के गुण गाउ। सचु खाणा सचु पैनणा सचे सचा नाउ ॥ २ ॥ सासि गिरासि न विसरै सफलु मूरति गुरु आपि। गुर जेवडु अवरु न दिसई आठ पहर तिसु जापि। नदरि करे ता पाईऐ सचु नामु गुणतासि ॥ ३ ॥ गुर परमेसरु एकु है सभ महि रहिआ समाइ। जिन कउ पूरबि लिखिआ सेई नामु धिआइ। नानक गुर सरणागती मरै न आवै जाइ ॥ ४ ॥ ३० ॥ १०० ॥

[यह उपदेश का पद है] हे सन्तो, हे भाइयो, सुनो, संसार के बन्धनों से छुटकारा केवल हरिनाम के बल से ही होता है। गुरु के चरणों की पूजा करो, हरि-नाम के तीर्थ में स्नान करो। इसीसे परलोक में तुम्हारा सत्कार होगा और बेसहारा जीव को अवलम्ब मिलेगा ॥ १ ॥ हे भाई, सतिगुरु की सेवा ही सच्ची है। उसी के सन्तुष्ट होने से अदृश्य निर्भय-पूर्ण परमात्मा की उपलब्धि होती है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मैं सतिगुरु पर कुर्बान हूँ, जिसने सत्यनाम का रहस्य मुझे समझा दिया है। (अब तो मैं) रात-दिन परमसत्य की स्तुति करता और गुण गाता हूँ। उस सच्चे प्रभु का सच्चा नाम लेनेवाले का खाना-पहिनना ही सत्य है। (शेष सब व्यर्थ है) ॥ २ ॥ जीते-जी, पदार्थिक जीवन व्यतीत करते हुए वह फल-दाता गुरु-मूर्ति कभी विस्मृत नहीं होनी चाहिए। गुरु के बराबर और कोई नहीं दीखता, इसलिए आठों पहर उसकी उपासना करो। उसकी कृपा-दृष्टि से ही सत्यनाम का वास्तविक आधार, गुणों का कोष ब्रह्म मिलता है ॥ ३ ॥ गुरु और परमेश्वर अभिन्न हैं, सब में समाए हुए हैं। पूर्व-लिखित सुकर्मी जीव ही नाम-भजन कर पाते हैं। गुरुजी कहते हैं कि गुरु की शरण लेनेवाले का जन्म-मरण, आवागमन सदा के लिए छूट जाता है ॥ ४ ॥ ३० ॥ १०० ॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।

सिरीरागु महला १ घरु १ असटपदीआ ।

आखि आखि मनु वावणा जिउ जिउ जापै वाइ । जिस नो वाइ सुणाईऐ सो केवडु कितु थाइ । आखण वाले जेतड़े सभि आखि रहे लिव लाइ ।। १ ।। बाबा अलहु अगम अपारु । पाकी नाई पाक थाइ सचा परवदिगारु ।। १ ।। रहाउ ।। तेरा हुकमु न जापी केतड़ा लिखि न जाणै कोइ । जे सउ साइर मेलीअहि तिलु न पुजावहि रोइ । कीमति किनै न पाईआ सभि सुणि सुणि आखहि सोइ ।। २ ।। पीर पैकामर सालक सादक सुहदे अउरु सहीद । सेख मसाइक काजी मुला दरि दरवेस रसीद । बरकति तिन कउ अगली पड़दे रहनि दरूद ।। ३ ।। पुछि न साजे पुछि न ढाहे पुछि न देवै लेइ । आपणी कुदरति आपे जाणै आपे करणु करेइ । सभना वेखै नदरि करि जै भावै तै देइ ।। ४ ।। थावा नाव न जाणीअहि नावा केवडु नाउ । जिथै वसै मेरा पातिसाहु सो केवडु है थाउ । अंबड़ि कोइ न सकई हउ किस नो पुछणि जाउ ।। ५ ।। वरना वरन न भावनीजे किसै वडा करेइ । वडे हथि वडिआईआ जै भावै तै देइ । हुकमि सवारे आपणै चसा न ढिल करेइ ।। ६ ।। सभु को आखै बहुतु बहुतु लैणै कै वीचारि । केवडु दाता आखीऐ दे कै रहिआ सुमारि । नानक तोटि न आवई तेरे जुगह जुगह भंडार ।।७।।१।।

['असटपदीआ' आठ पंक्ति के पद को कहा गया है । यहाँ से महला १ (गुरु नानकदेवजी) की उक्त छन्द की वाणी आरम्भ होती है । प्रस्तुत पद में बताया गया है कि ईश्वर अगम अपार है, वह वर्णनातीत है, अपनी इच्छा का अनन्त स्वामी है ।]

परमेश्वर को याद करते हुए हम मन-रूपी वाद्य को बजाते हैं और ज्यों-ज्यों उसके (प्रभु के) महत्त्व को पहचानते हैं, त्यों-त्यों मन को और भी अधिक बजाते हैं; अर्थात् ईश्वर की पहचान होने पर मन अधिक एकाग्र होकर उसी में ध्यानस्थ हो जाता है । जिसे मन-वाद्य बजाकर सुनाया जाता है वह कितना महान है और कहाँ बसा हुआ है ? (यह सहज प्रश्न उठता है, आगामी पंक्तियों में गुरुजी इसी का उत्तर देते हैं) । जो कुछ कह सकने में समर्थ थे, वे भी (उसका अन्त न पा सकने के कारण) उसके

प्रेम में लीन होकर चुप रह गए हैं ।। १ ।। भाइयो, परमात्मा अगम और अपार है; वह पालनहार, पावन नाम तथा पावन स्थान वाला प्रभु परम सत्य है ।। १ ।। रहाउ ।। परमात्मा की महानता की सीमा कोई नहीं जानता, न आज तक कोई उसका उल्लेख कर सका है । यदि सैकड़ों कवि भी एकत्र हो बैठें, तो वे सिर खपा कर भी उसका तिल-मात्र वर्णन करने में सफल नहीं हो सकते । कोई उसका यथार्थ मूल्यांकन नहीं कर सका, सब सुनी-सुनाई बातें करते हैं ।। २ ।। पीर, पैग़म्बर, रहबर, धैर्यशील, मस्त फ़क़ीर और बड़े-बड़े शहीद । अनेक शेख़, क़ाज़ी, मुल्ला और परमात्मा के दरबार तक रसाई करनेवाले महात्मा । वे मुक्तात्मा लोग, जिन पर प्रभु की विशेष कृपा है और जो नित्य प्रार्थना में लीन रहते हैं, (आदि सब लोगों में से कोई भी परमेश्वर का यथार्थ मूल्यांकन कर सकने में असमर्थ है) ।। ३ ।। वह परम निर्माता किसी के परामर्श से न बनाता है, न गिराता है, किसी से पूछकर लेता-देता भी नहीं अर्थात् उसकी दया या दण्ड भी स्वेच्छित ही है, कोई उसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता । उसका मंतव्य वही जानता है, स्वेच्छा से करुणा करता है । सब को वह परखता है, जिस पर चाहता है, दया करता और मनोवांछित वरदान देता है ।। ४ ।। (बेचारा असमर्थ मनुष्य) उसके स्थान का नाम भी नहीं जानता, न ही यह जानता है कि उसके विश्व की समस्त संज्ञाओं में परमात्मा का नाम (संज्ञा) कितना बड़ा है । जहाँ वाहिगुरु का निवास है, वह जगह कितनी महान है ? वहाँ तक कोई नहीं पहुँच सका, फिर यह रहस्य किससे पूछा जा सकता है ।। ५ ।। (एक वर्ण दूसरे वर्ण को पसन्द नहीं करता, इसलिए) यदि परमात्मा किसी एक जाति को बड़ाई दे, तो निश्चय ही दूसरी जाति को यह पसन्द नहीं । किन्तु वह समर्थ है, जिसे चाहे बड़ाई दे सकता है, (उठाना-गिराना) उसी के हाथ है । वह जगदीश्वर अपने आदेशों का सत्वर पालन करवाता है, ज़रा भी ढील नहीं होने देता ।। ६ ।। उससे प्राप्त करने के विचार से सब उसकी महानता और बहुलता की चर्चा करते हैं—किन्तु वह कितना बड़ा दाता है, उसकी देन की कोई गणना ही सम्भव नहीं । गुरुजी कहते हैं कि उस परमेश्वर का भण्डार असीम है, उसमें (निरन्तर देते रहने से भी) कभी कमी नहीं पड़ती ।। ७ ।। १ ।।

।। महला १ ।। सभे कंत सहेलीआ सगलीआ करहि सीगारु । गणत गणावणि आईआ सूहा वेसु विकारु । पाखंडि प्रेमु न पाईऐ खोटा पाजु खुआरु ।। १ ।। हरि जीउ इउ पिरु रावै नारि । तुधु भावनि सोहागणी अपणी किरपा लैहि सवारि ।। १ ।। रहाउ ।। गुरसबदी सीगारीआ तनु मनु पिर कै

पासि। दुइ कर जोड़ि खड़ी तकै सचु कहै अरदासि। लालि रती सच भै वसी भाइ रती रंगि रासि ॥ २ ॥ प्रिअ की चेरी कांढीऐ लाली मानै नाउ। साची प्रीति न तुटई साचे मेलि मिलाउ। सबदि रती मनु वेधिआ हउ सद बलिहारै जाउ ॥३॥ साधन रंड न बैसई जे सतिगुर माहि समाइ। पिरु रीसालू नउतनो साचउ मरै न जाइ। नित रवै सोहागणी साची नदरि रजाइ ॥ ४ ॥ साचु धड़ी धन माडीऐ कापड़ु प्रेम सीगारु। चंदनु चीति वसाइआ मंदरु दसवा दुआरु। दीपकु सबदि विगासिआ रामनामु उर हारु ॥ ५ ॥ नारी अंदरि सोहणी मसतकि मणी पिआरु। सोभा सुरति सुहावणी साचै प्रेमि अपार। बिनु पिर पुरखु न जाणई साचे गुर कै हेति पिआरि ॥ ६ ॥ निसि अंधिआरी सुतीए किउ पिर बिनु रैणि विहाइ। अंकु जलउ तनु जालीअउ मनु धनु जलिबलि जाइ। जा धन कंति न रावीआ ता बिरथा जोबनु जाइ ॥ ७ ॥ सेजै कंत महेलड़ी सूती बूझ न पाइ। हउ सुती पिरु जागणा किस कउ पूछउ जाइ। सतिगुरि मेली भै वसी नानक प्रेमु सखाइ ॥ ८ ॥ २ ॥

[इस पद में वाहिगुरु की असीमता का चित्रण है। स्त्री के झूठे और सच्चे शृंगार का रूपक प्रस्तुत करते हुए आडम्बरों के त्याग और सत्कर्मों के ग्रहण की प्रेरणा दी गई है।]

समस्त जीवात्माएँ उस परमात्मा-पति की स्त्रियाँ हैं, और सब (उसे प्रसन्न करने के लिए) शृंगार करती हैं। किन्तु जो अपने शृंगार का मोल डलवाने आई हैं अर्थात् अपने शृंगार के दिखावे से उसे मोह लेना चाहती हैं, उनका दुल्हिन-वेष भी बेकार है। पाखण्ड-पूर्वक आडम्बर करने से कोई स्त्री पति का प्रेम नहीं पा सकती—उसका मिथ्या आडम्बर विकारोत्पादक होता है ॥ १ ॥ परमात्मा-पति सुहागिनों को समादृत करता है। हे प्रभु, तुम्हें सच्ची सुहागिन स्त्रियाँ (आत्माएँ) ही अच्छी लगती हैं, तुम अपनी विशेष कृपा से उन्हें सँवार लेते हो (सुहागिन के गुण आगे बताए हैं—मिथ्या बाहरी शृंगार प्रभु को स्वीकार नहीं) ॥१॥ रहाउ॥ सुहागिन (आत्मा) गुरु के उपदेशों से शृंगार करती है और अपना तन-मन निष्ठा-पूर्वक अपने पति (परमात्मा) को सौंप देती है। वह पति-सेवा में कर-बद्ध उपस्थित रहती है और सदैव सत्य की प्राप्ति की अभिलाषा बनाए रखती है। वह अपने प्रिय पति में ही लीन रहती है, उसी के आग्रह में

कर्म करती, उसके प्रेम में आत्म-विस्मृत और उसी के प्रेम से शृंगार करती है ॥ २ ॥ वह अपने प्रिय की दासी का नाम धारण कर उसकी सेवा में संलग्न रहती है। उसकी प्रीति सच्ची है, अटूट है; उसी से वह अपने प्रिय से मिलाप कर पाती है। वह गुरु-शब्द में रति के कारण गुरुमुख होती है, एतदर्थ मैं उस पर सदा बलिहार हूँ ॥ ३ ॥ सतिगुरु के शब्दों में लीन हो जाने वाली स्त्री (जीवात्मा) कभी विधवा नहीं होती। उसका पति सदैव सुन्दर, युवा और जन्म-मरणेतर है, वास्तव में वह सत्य-स्वरूप है। प्रभु-पति सदैव अपनी इच्छा से ऐसी सुहागिन के संग रास रचाता है ॥ ४ ॥ जो जीवात्मा-रूपी स्त्री जीवन-सत्य की माँग सँवारती, प्रभु-प्रेम की पोशाक पहनती है; पति को हृदय में धारण करने का चन्दन लगाती तथा दसवें द्वार (शरीर के नौ द्वारों से ऊपर सच्ची आत्मा का विश्राम-स्थल) को अपना स्थायी निवास बना लेती है; वहाँ सच्चे नाम का दीपक प्रज्वलित कर हरिनाम की माला धारण करती है ॥ ५ ॥ (वही सुहागिन है)। वही जीवात्मा सुन्दरी मानी जायगी, जिसके माथे प्रभु-प्रेम की मणि-जटित टीका शोभायमान होगा। उसकी यथार्थ शोभा सच्चे और अपार परमात्मा में लीन होने में ही है और वह सच्चे गुरु के प्रेम में रत अपने पति के अतिरिक्त और किसी को पुरुष ही नहीं गिनती ॥ ६ ॥ हे काली अन्धेरी (माया और अज्ञान-युक्त) रात में सुप्ता जीवात्मा स्त्री, प्रभु-पति के बिना तेरी यह दुःख-भरी लम्बी रात कैसे गुजर सकेगी। उसके बिना शरीर के अंग-अंग में जलन है, तन-मन-धन सब तप्त हैं। यदि जीव-रूपी स्त्री को परमात्मा-रूपी पति आदर न दे, तो उसका यौवन निरर्थक हो जाता है ॥ ७ ॥ (मैं इतनी दुर्भाग्यशाली हूँ कि) सेज पर पति के साथ सोते हुए भी उसे पहचान नहीं पाई। मैं सोई हूँ, वह सदैव निद्रा-रहित है, मैं किससे जाकर पूछूँ (कि इस माया-मोह की नींद से क्योंकर जागा जा सकता है)। जो सुहागिन प्रभु-भय में रहकर कर्म करती है, सतिगुरु उसे परमात्मा से मिलाप करवा देते हैं और फिर वह सदैव प्रभु-प्रेम के सहारे अमर हो जाती है ॥ ८ ॥ २ ॥

॥ सिरीरागु महला १ ॥ आपे गुण आपे कथै आपे सुणि वीचारु। आपे रतनु परखि तूं आपे मोलु अपारु। साचउ मानु महतु तूं आपे देवणहारु ॥ १ ॥ हरि जीउ तूं करता करतारु। जिउ भावै तिउ राखु तूं हरिनामु मिलै आचारु ॥१॥ रहाउ ॥ आपे हीरा निरमला आपे रंगु मजीठ। आपे मोती ऊजलो आपे भगत बसीठु। गुर कै सबदि सलाहणा घटि घटि डीठु अडीठु ॥ २ ॥ आपे सागरु बोहिथा आपे पारु अपारु।

साची वाट सुजाणु तूं सबदि लघावणहारु। निडरिआ डरु जाणीऐ बाझु गुरू गुबारु ॥ ३ ॥ असथिरु करता देखीऐ होरु केती आवै जाइ। आपे निरमलु एकु तूं होर बंधी धंधै पाइ। गुरि राखे से उबरे साचे सिउ लिव लाइ ॥ ४ ॥ हरि जीउ सबदि पछाणीऐ साचि रते गुर वाकि। तितु तनि मैलु न लगई सच घरि जिसु ओताकु। नदरि करे सचु पाईऐ बिनु नावै किआ साकु ॥ ५ ॥ जिनी सचु पछाणिआ से सुखीए जुग चारि। हउमै त्रिसना मारि कै सचु रखिआ उरधारि। जग महि लाहा एकु नामु पाईऐ गुर वीचारि ॥ ६ ॥ साचउ वखरु लादीऐ लाभु सदा सचु रासि। साची दरगह बैसई भगति सची अरदासि। पति सिउ लेखा निबड़ै राम नामु परगासि ॥ ७ ॥ ऊचा ऊचउ आखीऐ कहउ न देखिआ जाइ। जह देखा तह एकु तूं सतिगुरि दीआ दिखाइ। जोति निरंतरि जाणीऐ नानक सहजि सुभाइ ॥ ८ ॥ ३ ॥

परमात्मा स्वयं ही गुण रूप है, स्वतः उसकी व्याख्या भी करता है, व्याख्या को सुनकर उस पर विचार भी वह खुद ही करता है। वह प्रभु स्वयं ही अमूल्य रत्न है, रत्न की परख करनेवाला एवं उसकी अपार मूल्य-राशि भी वही है। हे प्रभु, तू ही प्रशंसा और महत्ता है और उनके देने-वाला दाता भी तू है ॥ १ ॥ हे प्रभु, तू रचना और रचयिता स्वयं ही है। अतः जैसा तुझे शोभता है, तू हरिनाम का आचरण प्रदान कर वैसे ही (मेरे जीवन को) गढ़ ले ॥ १ ॥ रहाउ ॥ वह परमात्मा नाम-रूपी रत्न है और स्वयं ही भक्ति का मजीठ (गूढ़, लाल) रंग भी है। वही निर्मल मोती है और वही भक्तों में मध्यस्थ भी बन बैठता है। गुरु के शब्दों के मनन द्वारा घट-घट में बैठे उस अदृष्ट को प्रकट किया जाता है ॥ २ ॥ परमेश्वर सागर भी है और उससे पार होने का जहाज भी; सागर का इस पार और उस पार का किनारा भी वही है। तू ही सच्चा मार्ग है, खुद ही मार्ग का जानकार है और सच्चे शब्द के सहारे तू ही संसार-सागर से पार लगाने में समर्थ है। हरि के प्रेम के भय से वंचित जीव ही संसार-सागर में भयभीत होते हैं, गुरु के बिना सब अन्धकार ही है ॥ ३ ॥ इस जगत में केवल परमात्मा ही एकमात्र स्थायी तत्त्व है, शेष सब जन्म-मरण के चक्कर में हैं। मात्र वह प्रभु ही निर्मल है, अन्य सब जीव अपने-अपने धन्धों में बँधे हैं। गुरु ने जिनकी रक्षा की, केवल वे ही जीव परमात्मा में लीन होकर माया-मोह के बन्धनों से मुक्त हो सके हैं ॥ ४ ॥ जो जीव गुरु-शब्दों के कारण सत्य में रत हैं उन्हें गुरु के

कर्म करती, उसके प्रेम में आत्म-विस्मृत और उसी के प्रेम से शृंगार करती है ॥ २ ॥ वह अपने प्रिय की दासी का नाम धारण कर उसकी सेवा में संलग्न रहती है। उसकी प्रीति सच्ची है, अटूट है; उसी से वह अपने प्रिय से मिलाप कर पाती है। वह गुरु-शब्द में रति के कारण गुरुमुख होती है, एतदर्थ मैं उस पर सदा बलिहार हूँ ॥ ३ ॥ सतिगुरु के शब्दों में लीन हो जाने वाली स्त्री (जीवात्मा) कभी विधवा नहीं होती। उसका पति सदैव सुन्दर, युवा और जन्म-मरणेतर है, वास्तव में वह सत्य-स्वरूप है। प्रभु-पति सदैव अपनी इच्छा से ऐसी सुहागिन के संग रास रचाता है ॥ ४ ॥ जो जीवात्मा-रूपी स्त्री जीवन-सत्य की माँग सँवारती, प्रभु-प्रेम की पोशाक पहनती है; पति को हृदय में धारण करने का चन्दन लगाती तथा दसवें द्वार (शरीर के नौ द्वारों से ऊपर सच्ची आत्मा का विश्राम-स्थल) को अपना स्थायी निवास बना लेती है; वहाँ सच्चे नाम का दीपक प्रज्वलित कर हरिनाम की माला धारण करती है ॥ ५ ॥ (वही सुहागिन है)। वही जीवात्मा सुन्दरी मानी जायगी, जिसके माथे प्रभु-प्रेम की मणि-जटित टीका शोभायमान होगा। उसकी यथार्थ शोभा सच्चे और अपार परमात्मा में लीन होने में ही है और वह सच्चे गुरु के प्रेम में रत अपने पति के अतिरिक्त और किसी को पुरुष ही नहीं गिनती ॥ ६ ॥ हे काली अन्धेरी (माया और अज्ञान-युक्त) रात में सुप्ता जीवात्मा स्त्री, प्रभु-पति के बिना तेरी यह दुःख-भरी लम्बी रात कैसे गुज़र सकेगी। उसके बिना शरीर के अंग-अंग में जलन है, तन-मन-धन सब तप्त हैं। यदि जीव-रूपी स्त्री को परमात्मा-रूपी पति आदर न दे, तो उसका यौवन निरर्थक हो जाता है ॥ ७ ॥ (मैं इतनी दुर्भाग्यशाली हूँ कि) सेज पर पति के साथ सोते हुए भी उसे पहचान नहीं पाई। मैं सोई हूँ, वह सदैव निद्रा-रहित है, मैं किससे जाकर पूछूँ (कि इस माया-मोह की नींद से क्योंकर जागा जा सकता है)। जो सुहागिन प्रभु-भय में रहकर कर्म करती है, सतिगुरु उसे परमात्मा से मिलाप करवा देते हैं और फिर वह सदैव प्रभु-प्रेम के सहारे अमर हो जाती है ॥ ८ ॥ २ ॥

॥ सिरीरागु महला १ ॥ आपे गुण आपे कथै आपे सुणि वीचारु। आपे रतनु परखि तूं आपे मोलु अपारु। साचउ मानु महतु तूं आपे देवणहारु ॥ १ ॥ हरि जीउ तूं करता करतारु। जिउ भावै तिउ राखु तूं हरिनामु मिलै आचारु ॥१॥ रहाउ ॥ आपे हीरा निरमला आपे रंगु मजीठ। आपे मोती ऊजलो आपे भगत बसीठु। गुर कै सबदि सलाहणा घटि घटि डीठु अडीठु ॥ २ ॥ आपे सागरु बोहिथा आपे पारु अपारु।

साची वाट सुजाणु तूं सबदि लघावणहारु। निडरिआ डरु जाणीऐ बाझु गुरू गुबारु ॥ ३ ॥ असथिरु करता देखीऐ होरु केती आवै जाइ। आपे निरमलु एकु तूं होर बंधी धंधै पाइ। गुरि राखे से उबरे साचे सिउ लिव लाइ ॥ ४ ॥ हरि जीउ सबदि पछाणीऐ साचि रते गुर वाकि। तितु तनि मैलु न लगई सच घरि जिसु ओताकु। नदरि करे सचु पाईऐ बिनु नावै किआ साकु ॥ ५ ॥ जिनी सचु पछाणिआ से सुखीए जुग चारि। हउमै त्रिसना मारि कै सचु रखिआ उरधारि। जग महि लाहा एकु नामु पाईऐ गुर वीचारि ॥ ६ ॥ साचउ वखरु लादीऐ लाभु सदा सचु रासि। साची दरगह बैसई भगति सची अरदासि। पति सिउ लेखा निबड़ै राम नामु परगासि ॥ ७ ॥ ऊचा ऊचउ आखीऐ कहउ न देखिआ जाइ। जह देखा तह एकु तूं सतिगुरि दीआ दिखाइ। जोति निरंतरि जाणीऐ नानक सहजि सुभाइ ॥ ८ ॥ ३ ॥

परमात्मा स्वयं ही गुण रूप है, स्वत: उसकी व्याख्या भी करता है, व्याख्या को सुनकर उस पर विचार भी वह खुद ही करता है। वह प्रभु स्वयं ही अमूल्य रत्न है, रत्न की परख करनेवाला एवं उसकी अपार मूल्य-राशि भी वही है। हे प्रभु, तू ही प्रशंसा और महत्ता है और उनके देने-वाला दाता भी तू है ॥ १ ॥ हे प्रभु, तू रचना और रचयिता स्वयं ही है। अत: जैसा तुझे शोभता है, तू हरिनाम का आचरण प्रदान कर वैसे ही (मेरे जीवन को) गढ़ ले ॥ १ ॥ रहाउ ॥ वह परमात्मा नाम-रूपी रत्न है और स्वयं ही भक्ति का मजीठ (गूढ़, लाल) रंग भी है। वही निर्मल मोती है और वही भक्तों में मध्यस्थ भी बन बैठता है। गुरु के शब्दों के मनन द्वारा घट-घट में बैठे उस अदृष्ट को प्रकट किया जाता है ॥ २ ॥ परमेश्वर सागर भी है और उससे पार होने का जहाज भी; सागर का इस पार और उस पार का किनारा भी वही है। तू ही सच्चा मार्ग है, खुद ही मार्ग का जानकार है और सच्चे शब्द के सहारे तू ही संसार-सागर से पार लगाने में समर्थ है। हरि के प्रेम के भय से वंचित जीव ही संसार-सागर में भयभीत होते हैं, गुरु के बिना सब अन्धकार ही है ॥ ३ ॥ इस जगत में केवल परमात्मा ही एकमात्र स्थायी तत्त्व है, शेष सब जन्म-मरण के चक्कर में हैं। मात्र वह प्रभु ही निर्मल है, अन्य सब जीव अपने-अपने धन्धों में बँधे हैं। गुरु ने जिनकी रक्षा की, केवल वे ही जीव परमात्मा में लीन होकर माया-मोह के बन्धनों से मुक्त हो सके हैं ॥ ४ ॥ जो जीव गुरु-शब्दों के कारण सत्य में रत हैं उन्हें गुरु के

उपदेशों से परमात्मा की पहचान सम्भव होती है। जिनका ठिकाना सचखण्ड में हो जाता है, उन्हें अज्ञानता की कोई मैल नहीं सालती। परमात्मा की कृपा-दृष्टि से ही सत्य का ज्ञान होता है; परमात्मा का प्यारा नाम जपने के अतिरिक्त उससे और क्या सम्बन्ध हो सकता है ॥ ५ ॥ जिन सौभाग्यशाली जीवात्माओं ने सच्चे परमात्मा को पहचान लिया है, वे चारों युगों—सतियुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग में सदैव सुखी रहती हैं। वे अपने भीतर के अभिमान और तृष्णा का नाश करके सत्य को हृदय में धारण करती हैं। इस संसार में लाभ की एकमात्र वस्तु हरिनाम ही है, जिसकी उपलब्धि गुरु की कृपा से ही सम्भव है ॥ ६ ॥ (अतः जीव को चाहिए कि) वह सदैव सत्य की पूँजी लगाकर सच का सौदा करे और लाभ पाए। सच्ची भक्ति और विनय से ही वह सच्चे परमात्मा के दरबार में स्थान पा सकेगा। हृदय में राम-नाम का प्रकाश होने से वह परमात्मा के दरबार में सम्मानित होगा और उसके कर्मों का हिसाब-किताब मिट जायगा ॥ ७ ॥ परमात्मा को ऊंचे से ऊँचा कहा जाता है, किन्तु कहने मात्र से वह दीख तो नहीं पड़ता। उस सर्व-व्यापक प्रभु को केवल गुरु ही दिखा सकता है। गुरुजी कहते हैं कि उस निरन्तर प्रकाशमान ज्योति के दर्शन सहजावस्था में पहुँचने पर स्वाभाविक ही होते हैं ॥ ८ ॥ ३ ॥

॥ सिरीरागु महला १ ॥ मछुली जालु न जाणिआ सरु खारा असगाहु। अति सिआणी सोहणी किउ कीतो वेसाहु। कीते कारणि पाकड़ी कालु न टलै सिराहु ॥ १ ॥ भाई रे इउ सिरि जाणहु कालु। जिउ मछी तिउ माणसा पवै अचिंता जालु ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सभु जगु बाधो काल को बिनु गुर कालु अफारु। सचि रते से उबरे दुबिधा छोडि विकार। हउ तिन कै बलिहारणै दरि सचै सचिआर ॥ २ ॥ सीचाने जिउ पंखीआ जाली बधिक हाथि। गुरि राखे से उबरे होरि फाथे चोगै साथि। बिनु नावै चुणि सुटीअहि कोइ न संगी साथि ॥ ३ ॥ सचो सचा आखीऐ सचे सचा थानु। जिनी सचा मंनिआ तिन मनि सचु धिआनु। मनि मुखि सूचे जाणीअहि गुरमुखि जिना गिआनु ॥ ४ ॥ सतिगुर अगै अरदासि करि साजनु देइ मिलाइ। साजनि मिलिऐ सुखु पाइआ जमदूत मुए बिखु खाइ। नावै अंदरि हउ वसां नाउ वसै मनि आइ ॥ ५ ॥ बाझु गुरू गुबारु है बिनु सबदै बूझ न पाइ। गुरमती परगासु होइ सचि रहै लिव लाइ। तिथै कालु न संचरै जोती जोति समाइ ॥ ६ ॥

तूं है साजनु तूं सुजाणु तूं आपे मेलणहारु। गुर सबदी सालाहीऐ अंतु न पारावारु। तिथै कालु न अपड़ै जिथै गुर का सबदु अपारु ॥ ७ ॥ हुकमी सभे ऊपजहि हुकमी कार कमाहि। हुकमी कालै वसि है हुकमी साचि समाहि। नानक जो तिसु भावै सो थीऐ इना जंता वसि किछु नाहि ॥ ८ ॥ ४ ॥

(इस पद का मूल भाव यह है कि मनुष्य ईश्वरेच्छा पर आश्रित है, अपने-आप में उसकी कोई सत्ता नहीं) मछली न तो जाल को जानती है, न गहरे सागर को पहचानती है (कि एक उसकी मौत है और दूसरा उसका जीवन—ऐसा जानती तो जीवन-रूपी सागर को छोड़कर मृत्यु-रूपी जाल में न फँसती)। बहुत समझदार और सुन्दर होते हुए भी उसने (जाल का) विश्वास कैसे कर लिया ? (लोभ-वश)। (वास्तव में) वह कर्त्ता (प्रभु) के ही कारण पकड़ी जाती है। किसी के भी सिर से काल नहीं टलता ॥ १ ॥ हे भाई, तू भी काल को सदैव सिर पर खड़ा जान। जैसे मछली (फँसती है) तैसे ही यह मनुष्य भी अचानक मौत के फन्दे में पहुँच जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सारा संसार काल के बन्धन में है, गुरु की कृपा के बग़ैर काल अनिवार्य है। जो जीव सत्य में लीन हैं और दुविधा-विकार से ऊपर उठ गए हैं, वे ही काल से मुक्त हो पाते हैं। मैं उन पर कुर्बान हूँ, वे ही प्रभु के सम्मुख सम्मानित होते हैं ॥ २ ॥ ज्यों पक्षी बाज़ के वश में हैं और शिकारी के हाथ में जाल है (त्यों ही मनुष्य काल के वश में हैं)। सद्गुरु ने जिसकी रक्षा की, वे ही बच पाए, अन्य सब दाना देखकर (लोभ-वश) फँसे हैं। जिसके पास नाम का बल नहीं, वे सब (जीव) (काल द्वारा) चुन लिए जायँगे। कोई उनका साथ तक नहीं देता ॥ ३ ॥ वह परमात्मा ही एकमात्र सत्य है, उसका स्थान भी सब सच है। जो उस सत्य को शिरोधार्य करते हैं, उनका मन उस प्रभु के ध्यान में रत हो जाता है। गुरु से ज्ञान प्राप्त करनेवाले जीव मन और मुख से शुचि होते हैं ॥ ४ ॥ हे भाई, परमात्मा से मिलने के लिए सतिगुरु से विनती करो। प्रभु-मिलन हो जाय तो यथार्थ सुख का आभास होता है और यमदूत तो विष खाकर मर जाते हैं (अर्थात् असमर्थ हो जाते हैं)। वाहिगुरु परमात्मा के नाम में मैं बसता हूँ और नाम मेरे हृदय में समाया है ॥ ५ ॥ गुरु के बिना यह रहस्य व्यर्थ है और प्रभु-नाम के बग़ैर कोई इसे नहीं पा सकता। यदि गुरु का सही उपदेश मिल जाय तो जीव उस परम-सत्य में लीन होता है। वहाँ वह काल के प्रभाव की सीमाओं से बच निकलता है और उसकी ज्योति परम की ज्योति में लीन हो जाती है ॥ ६ ॥ हे परमात्मा, तू ही मेरा प्रिय है, मेरा पथ-प्रदर्शक भी तू है और तू ही मुझे अपने संग मिलानेवाला है। तेरी गहराइओं का कोई

अन्त नहीं, केवल गुरु-उपदेशों से ही उनका बिरद जाना जा सकता है। जहाँ गुरु का उपदेश गुंजरित होता है, वहाँ काल कभी चोट नहीं कर सकता ॥ ७ ॥ सार यह कि विश्व-भर में सब जीवों का उदय प्रभु-इच्छा से ही होता है, उनके कृत्य सब उसी के संकेत पर आश्रित हैं। काल के वश पड़ना या सत्य-संलग्न होना, सब कालाधीन है। गुरु नानकजी कहते हैं कि होता वही है, जो परमात्मा को मंजूर होता है, जीवों के वश में कुछ भी नहीं ॥ ८ ॥ ४ ॥

॥ सिरीरागु महला १ ॥ मनि जूठै तनि जूठि है जिहवा जूठी होइ। मुखि झूठै झूठु बोलणा किउकरि सूचा होइ। बिनु अभ सबद न मांजीऐ साचे ते सचु होइ ॥ १ ॥ मुंधे गुणहीणी सुखु केहि। पिरु रलीआ रसि माणसी साचि सबदि सुखु नेहि ॥ १ ॥ रहाउ ॥ पिरु परदेसी जे थीऐ धन वांढी झूरेइ। जिउ जलि थोड़ै मछुली करण पलाव करेइ। पिर भावै सुखु पाईऐ जा आपे नदरि करेइ ॥ २ ॥ पिरु सालाही आपणा सखी सहेली नालि। तनि सोहै मनु मोहिआ रती रंगि निहालि। सबदि सवारी सोहणी पिरु रावे गुण नालि ॥ ३ ॥ कामणि कामि न आवई खोटी अवगणिआरि। ना सुखु पेईऐ साहुरै झूठि जली वेकारि। आवणु वंञणु डाखड़ो छोडी कंति विसारि ॥ ४ ॥ पिर की नारि सुहावणी मुती सो कितु सादि। पिर कै कामि न आवई बोले फादिलु बादि। दरि घरि ढोई ना लहै छूटी दूजै सादि ॥ ५ ॥ पंडित वाचहि पोथीआ ना बूझहि वीचारु। अन कउ मती दे चलहि माइआ का वापारु। कथनी झूठी जगु भवै रहणी सबदु सु सारु ॥ ६ ॥ केते पंडित जोतकी बेदा करहि बीचारु। वादि विरोधि सलाहणे वादे आवणु जाणु। बिनु गुर करम न छुटसी कहि सुणि आखि वखाणु ॥ ७ ॥ सभि गुणवंती आखीअहि मै गुणु नाही कोइ। हरि वरु नारि सुहावणी मै भावै प्रभु सोइ। नानक सबदि मिलावड़ा ना वेछोड़ा होइ ॥ ८ ॥ ५ ॥

मन में जूठन (विकार) होने से शरीर और जिह्वा भी जूठे (विकृत) होते हैं। यदि मुख में झूठ है तो वाणी भी झूठी ही होगी, सत्य क्योंकर हो सकती है? (वाहिगुरु के) शब्द-जल के बिना जूठन (विकारों) को निर्मल नहीं किया जा सकता; सच्चे परमेश्वर से ही सत्य जन्मता है ॥१॥

हे जीवात्मा-रूपी स्त्री, गुणहीन को सुख कहाँ (नसीब है) ? किन्तु जिसने सच्चे शब्द द्वारा प्रभु के प्रेम में लीनता का सुख पा लिया है, वही (सुहागिन) परमात्मा के संग रंग-रलियाँ मना सकती है ।। १ ।। रहाउ ।। यदि पति (परमेश्वर) जीवात्मा (स्त्री) से दूर परदेश चला जाय, तो वियोग में पीड़ित वह दुखी होती है । (उसकी स्थिति ऐसी होती है) जैसे थोड़े जल में मछली करुण प्रलाप करती है । सुख पति की चाहत और कृपा-दृष्टि से ही मिलता है ।। २ ।। मैं अपनी सहेलियों के साथ बैठकर (अन्य सात्विक आत्माओं के साथ) पति-परमेश्वर का यशोगान करती हूँ । वह मेरे तन में शोभता है, मेरा मन उसपर मोहित है और मैं उसके प्रेम में लीन सर्वत्र उसी को देखती हूँ । गुरु-शब्दों द्वारा श्रृंगार करनेवाली प्रत्येक स्त्री सुन्दर होती है और गुणवती होकर वह पति-परमेश्वर की सेवा में उपस्थित रहती है ।। ३ ।। (दूसरी ओर) वासना-सभर स्त्री का अवगुणों-भरा जीवन निरर्थक होता है । वह व्यर्थ विकारों में तड़पती रहती है—पीहर और ससुराल, दोनों जगह उसे सुख उपलब्ध नहीं होता । जिसे पति ने त्याग दिया है अर्थात् जो पति के प्रेम से वंचित है, उसका आना-जाना (जन्म-मरण, पीहर-ससुराल) एक बोझ बन जाता है ।। ४ ।। प्रियतम की बनकर जीनेवाली स्त्री सुहागिन है, त्यक्ता के लिए जीवन का क्या रस ? वह प्रियतम के लिए बेकार है, उसका बोलना भी निरर्थक और विवादपूर्ण होता है । उसे अपने पति के घर सहारा नहीं मिलता, वह दूसरे के रस में मग्न अपने पति-गृह से निष्कासित होती है (तात्पर्य यह कि जीवात्मा जब परमात्मा में लीन रहने की अपेक्षा काल-जाल में फँसकर मायावी स्थितियों में रम जाती है, तभी परमात्मा भी उसके प्रति बे-परवाह हो जाता है) ।। ५ ।। पण्डित-जन धर्म-ग्रन्थों का पाठ करते हैं, किन्तु वे ग्रन्थों की वाणी का मनन नहीं करते । वे दूसरों को उपदेश देते हैं, किन्तु स्वयं माया-व्यापार में मग्न रहते हैं । अतः (सच्चाई यह है कि) मात्र वाचालता मिथ्या जीवन का आधार है, सच्चा जीवन गुरु-उपदेशानुसार व्यवहार करने में निहित है ।। ६ ।। कितने ही विद्वान और ज्योतिष विद्या में प्रवीणजन वेदों के कथनों पर विचार करते हैं । सही-ग़लत के वाद-विवाद में पड़े वे जन्म-मरण के चक्कर में आवागमन भोगते हैं, किन्तु (सत्य यह है कि) गुरु की कृपा के बग़ैर वेद-वाणी की व्याख्या और वाद-विवाद में पड़े रहने से मुक्ति उपलब्ध नहीं हो सकती ।। ७ ।। सब स्त्रियाँ (जीवात्माएँ) गुणवान् हैं किन्तु मैं अवश गुण-हीना हूँ । जो वह प्रभु-पति किसी तरह मुझे पसन्द कर ले तभी मैं उसकी सुन्दर पत्नी बन सकती हूँ । गुरु-कथन है कि जो आत्मा (स्त्री) गुरु-शब्द के आश्रय परमात्मा (पति) से मिलाप करती है, उसे कभी वियोग नहीं होता ।। ८ ।। ५ ।।

॥ सिरीरागु महला १ ॥ जपु तपु संजमु साधीऐ तीरथि कीचै वासु । पुंन दान चंगिआईआ बिनु साचे किआ तासु । जेहा राधे तेहा लुणै बिनु गुण जनमु विणासु ॥ १ ॥ मुंधे गुण दासी सुखु होइ । अवगण तिआगि समाईऐ गुरमति पूरा सोइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ विणु रासी वापारीआ तके कुंडा चारि । मूलु न बुझै आपणा वसतु रही घरबारि । विणु वखर दुखु अगला कूड़ि मुठी कूड़िआरि ॥ २ ॥ लाहा अहिनिसि नउतना परखे रतनु वीचारि । वसतु लहै घरि आपणै चलै कारजु सारि । वणजारिआ सिउ वणजु करि गुरमुखि ब्रहमु बीचारि ॥ ३ ॥ संतां संगति पाईऐ जे मेले मेलणहारु । मिलिआ होइ न विछुड़ै जिसु अंतरि जोति अपार । सचै आसणि सचि रहै सचै प्रेम पिआर ॥ ४ ॥ जिनी आपु पछाणिआ घर महि महलु सुथाइ । सचे सेती रतिआ सचो पलै पाइ । त्रिभवणि सो प्रभु जाणीऐ साचो साचै नाइ ॥ ५ ॥ साधन खरी सुहावणी जिनि पिरु जाता संगि । महली महलि बुलाईऐ सो पिरु रावै रंगि । सचि सुहागणि सा भली पिरि मोही गुण संगि ॥ ६ ॥ भूली भूली थलि चड़ा थलि चड़ि डूगरि जाउ । बन महि भूली जे फिरा बिनु गुर बूझ न पाउ । नावहु भूली जे फिरा फिरि फिरि आवउ जाउ ॥ ७ ॥ पुछहु जाइ पधाऊआ चले चाकर होइ । राजनु जाणहि आपणा दरि घरि ठाक न होइ । नानक एको रवि रहिआ दूजा अवरु न न कोइ ॥ ८ ॥ ६ ॥

यदि जप-तप और संयम की साधना की जाय, तीर्थों में वास किया जाय, पुण्यदान भी किया जाय, गुण-वृद्धि हो, तो भी सच्चे परमात्मा को हृदय में धारण किए बिना (इन सबका) क्या लाभ हो सकता है ? मनुष्य जैसा बीजता है, वैसा काटता है; परम गुणों की प्राप्ति के बिना जीवन निष्फल है ॥ १ ॥ हे जीवात्मा (स्त्री), गुणवान् की (परम गुणोंवाले प्रभु की) सेवा किए बग़ैर आत्मिक सुख कभी नहीं मिल सकता । सही गुरमत यही है कि जीव अवगुणों (विकारों) का त्याग कर हरि में ही लीन हो जाय ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिस व्यापारी के पास (गुणों की) पूँजी नहीं, वह चारों ओर झाँकता रह जाता है (व्यापार नहीं कर सकता), तात्पर्य यह कि गुण-विहीन आत्मा प्रभु-शरण नहीं पा सकती । वह (व्यापारी) अपने मूलधन (नाम) को नहीं पहचानता, वस्तु बिकती ही नहीं (लाभ

क्या हो ?) । सौदा बेचे बग़ैर उसे बहुत दुःख होता है और वह मिथ्या जीवन जीनेवाला ही बना रह जाता है । अर्थात् जब तक जीवात्मा नाम-रूपी पूँजी को नहीं पहचानती, उसकी सही कमाई नहीं करती, तब तक वह माया के फन्दे में फँसी रहती है ।। २ ।। जो जीवात्मा नाम-रत्न को जाँचकर पहचान लेती है, उसे नित्य अधिकाधिक लाभ मिलता है । वह जीव अपने भीतर से ही प्रभु को खोज लेता है और उसका जीवन-लक्ष्य पूर्ण हो जाता है । वह आत्मा अपनी सखियों (अन्य सात्विक आत्माओं) के संग नाम का व्यापार करते हुए गुरु के माध्यम से परमात्मा को पा लेता है ।। ३ ।। यदि परमात्मा स्वयं आत्मा पर कृपा कर उसे अपने साथ मिलाना चाहता है, तो सन्तों की संगति से उसका मिलन होता है । इस प्रकार जिसके भीतर अपार आलोक होता है, वह परमात्मा को मिलकर दोबारा कभी नहीं बिछुड़ता । वह सत्य के आसन का अधिकारी होता है और सदैव प्रभु-प्रेम में विचरता है ।। ४ ।। जिसने अपने यथार्थ को पहचान लिया है, वह हृदय-मन्दिर में अपने शरीर के भीतर ही वाहिगुरु को पा लेता है । प्रभु-प्रेम में लीन उन आत्माओं को परमसत्य की उपलब्धि होती है । यह परमसत्य तीनों लोकों में व्याप्त है और अपने सत्यनाम के कारण सच्चा कहलवाता है ।। ५ ।। वही स्त्री (जीवात्मा) सुहागिन है, जिसने पति (प्रभु) को सदैव अंग-संग जाना है । उसे पति के महलों में बुला लिया जाता है और वह सदैव प्रेम-पूर्वक अपने पति की सेवा में रत होती है । वह अपने सद्गुणों के कारण सुहागिन होती है और पति के गुणों पर नित्य मोहित रहती है ।। ६ ।। हरि के भुलावे में भले ही मैं (जीवात्मा-स्त्री) धरती में घूमती रहूँ, फिर पर्वतों पर चढ़ूँ, बनों में घूमती रहूँ, किन्तु गुरु के पथ-प्रदर्शन के बिना प्रभु-मिलन सम्भव नहीं होता । नाम को भूलकर तो आवागमन में ही रह जाऊँगी ।। ७ ।। गुरु के मार्ग पर चलनेवाले सेवकों से जाकर पूछो । वे उसे (प्रभु को) अपना बादशाह मानते हैं, (इसीलिए वफ़ादार प्रजा होने के कारण) उन्हें उसके महल के द्वार पर कोई नहीं रोकता । गुरुजी कहते हैं कि वे प्रभु-पति में लीन हो जाते हैं, उनके लिए किसी दूसरे का अस्तित्व ही नहीं होता ।। ८ ।। ६ ।।

।। सिरीरागु महला १ ।। गुर ते निरमलु जाणीऐ निरमल देह सरीरु । निरमलु साचो मनि वसै सो जाणै अभ पीर । सहजै ते सुखु अगलो न लागै जम तीरु ।। १ ।। भाई रे मैलु नाही निरमल जलि नाइ । निरमलु साचा एकु तू होरु मैलु भरी सभ जाइ ।। १ ।। रहाउ ।। हरि का मंदरु सोहणा कीआ

करणैहारि। रवि ससि दीप अनूप जोति त्रिभवणि जोति अपार। हाट पटण गड़ कोठड़ी सचु सउदा वापार ॥ २ ॥ गिआन अंजनु भैभंजना देखु निरंजन भाइ। गुपतु प्रगटु सभ जाणीऐ जे मनु राखै ठाइ। ऐसा सतिगुरु जे मिलै ता सहजे लए मिलाइ ॥ ३ ॥ कसि कसवटी लाईऐ परखे हितु चितु लाइ। खोटे ठउर न पाइनी खरे खजानै पाइ। आस अंदेसा दूरि करि इउ मलु जाइ समाइ ॥ ४ ॥ सुख कउ मागै सभु को दुखु न मागै कोइ। सुखै कउ दुखु अगला मनमुखि बूझ न होइ। सुख दुख सम करि जाणीअहि सबदि भेदि सुखु होइ ॥ ५ ॥ बेदु पुकारे वाचीऐ बाणी ब्रहम बिआसु। मुनिजन सेवक साधिका नामि रते गुणतासु। सचि रते से जिणि गए हउ सद बलिहारै जासु ॥ ६ ॥ चहु जुगि मैले मलु भरे जिन मुखि नामु न होइ। भगती भाइ विहूणिआ मुहु काला पति खोइ। जिनी नामु विसारिआ अवगण मुठी रोइ ॥ ७ ॥ खोजत खोजत पाइआ डरु करि मिलै मिलाइ। आपु पछाणै घरि वसै हउमै त्रिसना जाइ। नानक निरमल ऊजले जो राते हरिनाइ ॥ ८ ॥ ७ ॥

[पद का मूल भाव यह है कि वाहिगुरु पवित्र है, उसकी शरण में जाने के लिए जीव को भी निर्विकार होना होगा और इसकी सम्भावना केवल गुरु-प्रदर्शित मार्ग पर चलने में ही है।]

उस निर्मल परमात्मा को गुरु-कृपा से जाना जा सकता है; तब तन-मन सब निर्मल हो जाता है। निर्मल प्रभु के मन में प्रकट होने पर, मानव-हृदय की वास्तविक पीड़ा (भीतर के आध्यात्मिक रोग) का ज्ञान होता है। ज्ञान के द्वारा खूब सहज सुख मिलता है और तब यम (काल) की प्रताड़ना से मुक्ति होती है ॥ १ ॥ हे भाई, नामरूपी पावन जल से स्नान करने पर (अवगुणों की) मैल धुल जाती है। एकमात्र तू ही (प्रभु ही) सच्चा और निर्मल है, अन्य सब जगह मैल भरी है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मानव-शरीर या मनुष्य-हृदय परमात्मा का सुन्दर मन्दिर है, जिसे स्वयं कर्त्तार ने बनाया है। इसी हृदय में त्रिभुवन की अपार ज्योति (ब्रह्म) के अंश चन्द्र, सूर्य आदि का आलोक विद्यमान है। शरीर में ही दिल-दिमाग़ आदि दूकानें, कोठड़ियाँ, किले और नगर हैं, जहाँ सत्य के सौदे का व्यापार होता है ॥ २ ॥ परमात्मा के प्यार में लीन होकर देखो, ज्ञान का अंजन जीव को निर्भीक बनाता है। यदि मन एकाग्र हो जाय तो

गुप्त-प्रकट परमात्मा को भी साक्षात् किया जाता है। यदि ऐसा सतिगुरु मिल जाय (जो स्वयं हरि-रस-लीन हो) तो सहज में ही वह परमात्मा से मिला देता है ॥ ३ ॥ जीव परमात्मा की कसौटी पर परखा जाता है, वह भलीभाँति प्रेम-पूर्वक ध्यान से उसे परखता है। और गुणपूर्ण भले जीवों को अपना सम्पर्क प्रदान करके अवगुणी और माया-लिप्त जीवों को अपने द्वार से अलग कर देता है। इस प्रकार (जीव की) भ्रम-चिन्ताएँ समाप्त होती हैं और वह निर्मल हो जाता है ॥ ४ ॥ सब (जीव) सुख माँगते हैं, दुःख की माँग कोई नहीं करता। किन्तु मनमुखी जीव को यह सूझ नहीं होती कि सुखों की आशा करनेवाले को और अधिक दुःख होता है। यदि जीव सुख, दुःख को एक समान माने और निरन्तर शब्द में लीन रहे, तभी सुखोपलब्धि होती है ॥ ५ ॥ व्यास (व्यापक) ब्रह्मावाणी वेदों अथवा स्मृतियों, पुराणों को पढ़-सुनकर देखें, तो वे पुकारकर कहते हैं कि मुनिजन, सेवक और साधक, सब नाम-रत हैं, क्योंकि नाम गुणागार है। सत्य में लीन होनेवाले सदैव विजयी होते हैं, मैं नित्य उनके बलिहार जाता हूँ ॥ ६ ॥ जिन मलिन जीवों के मुख नाम नहीं (अर्थात् जो नाम का जाप नहीं करते), वे चारों युगों में मलिन और विकार-भरे होते हैं। वे भक्ति-भाव से वंचित होते हैं, उनका मुख मलिन होता है और वे हर जगह निरादृत होते हैं। नाम को विस्मृत करनेवाला हमेशा अवगुणों में लिप्त रहता और रोता है ॥ ७ ॥ (जन्म-जन्म से) खोजते हुए हरि तभी मिला है, जब जीव उसके भय में रहना सीख लेता है। जिसे आत्मोपलब्धि हो जाती है (जो जान लेता है कि वही ज्योति-स्वरूप है), वह अपने ही स्वरूप में स्थित होता है और उसकी आशा-तृष्णा सब नाश हो जाती है। गुरुजी कहते हैं कि हरिनाम के रंग में रंगे जानेवाले जीव चिर-निर्मल और पावन हो जाते हैं ॥ ८ ॥ ७ ॥

॥ सिरीरागु महला १ ॥ सुणि मन भूले बावरे गुर की चरणी लागु। हरि जपि नामु धिआइ तू जमु डरपै दुख भागु। दूखु घणो दोहागणी किउ थिरु रहै सुहागु ॥ १ ॥ भाई रे अवरु नाही मै थाउ। मै धनु नामु निधानु है गुरि दीआ बलि जाउ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गुरमति पति साबासि तिसु तिस कै संगि मिलाउ। तिसु बिनु घड़ी न जीवऊ बिनु नावै मरि जाउ। मै अंधुले नामु न वीसरै टेक टिकी घरि जाउ ॥ २ ॥ गुरू जिना का अंधुला चेले नाही ठाउ। बिनु सतिगुर नाउ न पाईऐ बिनु नावै किआ सुआउ। आइ गइआ पछुतावणा जिउ सुंञै घरि काउ ॥ ३ ॥ बिनु नावै दुखु देहुरी जिउ कलर की भीति।

तबलगु महलु न पाईऐ जबलगु साचु न चीति । सबदि रपै घरु पाईऐ निरबाणी पदु नीति ॥ ४ ॥ हउ गुर पूछउ आपणे गुर पुछि कार कमाउ । सबदि सलाही मनि वसै हउमै दुखु जलि जाउ । सहजे होइ मिलावड़ा साचे साचि मिलाउ ॥ ५ ॥ सबदि रते से निरमले तजि काम क्रोधु अहंकारु । नामु सलाहनि सद सदा हरि राखहि उरधारि । सो किउ मनहु विसारीऐ सभ जीआ का आधारु ॥ ६ ॥ सबदि मरै सो मरि रहै फिरि मरै न दूजी वार । सबदै ही ते पाईऐ हरिनामे लगै पिआरु । बिनु सबदै जगु भूला फिरै मरि जनमै वारो वार ॥ ७ ॥ सभ सालाहै आप कउ वडहु वडेरी होइ । गुर बिनु आपु न चीनीऐ कहे सुणे किआ होइ । नानक सबदि पछाणीऐ हउमै करै न कोइ ॥ ८ ॥ ८ ॥

हे मेरे भूले दीवाने मन, (मेरी बात) सुनो और गुरु की शरण में जाओ। हरिनाम का जाप करो, (जिसके परिणाम स्वरूप) यम भी (तुझसे) भयभीत होगा, सब दुःख दूर होंगे। प्रभु से बिछुड़ी आत्माओं (पति-त्यक्ता स्त्रियों) को बहुत दुःख होता है—(तुम प्रयास करो) किसी प्रकार तुम्हारा सुहाग बना रहे ॥ १ ॥ हे भाई, मेरा और कोई अवलम्ब नहीं। मेरी एकमात्र पूंजी नाम-धन है, जो मुझे गुरु से प्राप्त हुई है; मैं उस पर (गुरु पर) सदा कुर्बान हूँ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गुरुमत धारण करने से आदर मिलता है। शाबाश है ऐसे गुरु को, मैं सदैव उसके सम्पर्क में रहने का अभिलाषी हूँ। मैं उसके बिना घड़ी-भर नहीं जी सकता, नाम-धन से वंचित होकर मेरी मौत है। मैं अज्ञानांध हूँ, कहीं मुझे नाम विस्मृत न हो जाय ! मैं तो इसी (नाम के आलोक) में स्वरूप की पहचान करना चाहता हूँ ॥ २ ॥ जिनका गुरु अज्ञानी (मोह-माया-रत अन्धा) है, उन सेवकों को कहीं कोई सहारा नहीं। (सत्य तो यह है कि) सतिगुरु के बिना नामोपलब्धि नहीं होती और यदि (मानव-जीवन में आकर भी) नाम प्राप्त न हुआ तो जीवन ही अकार्थ है। (नाम-विहीन जीव) संसार में आकर पश्चाताप करता हुआ उसी प्रकार खाली हाथ जाता है, जैसे उजड़े मकान में से कौआ (बिना कुछ प्राप्त किए उड़ जाता है) ॥ ३ ॥ नाम के बगैर जीव का शरीर दुःखों में ऐसा टूटता है, जैसे शोरा लगी ईंटों की दीवार गिरती है। जब तक सच्चा नाम हृदय में धारण नहीं किया जाता, तब तक परम-पुरुष की संगति नहीं मिलती। जो जीव नाम-रंग में लीन हो जाते हैं, वे सदा के लिए निर्वाण-पद को पा जाते हैं ॥ ४ ॥ अतः मैं अपने सतिगुरु से शिक्षा लेकर उसके अनुसार ही आचरण करूँगा। गुरु के

आदेशानुसार प्रभु का विरद-गान करूँगा, ताकि वह मेरे हृदय में वास करे और अहंकार का दु:ख नाश हो। तभी सहजावस्था में प्रभु से मिलन होगा और सत्यांश अपने मूल सत्य में लीन होगा ॥ ५ ॥ जो जीव गुरु के शब्द (नाम) में रंग जाते हैं, वे काम, क्रोध, अहंकारादि विकारों का त्याग कर निर्मल हो जाते हैं। वे सदैव नाम-जाप करते और प्रभु को हृदय में धारण करते हैं। वह परमात्मा सर्व-जीवों का सहारा है, उसे मन से क्योंकर विस्मृत किया जा सकता है ॥ ६ ॥ जो जीव शब्द द्वारा अहम् को मारकर जीवन्मुक्त हो जाता है, वह जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है। नाम में लीन (प्यार होने से) होने से शब्द द्वारा ही परमात्मा की प्राप्ति होती है। शब्द-विहीन संसार यथार्थ से अनभिज्ञ है, अतः बार-बार जन्म-मरण (आवागमन) का चक्र भोगता है ॥ ७ ॥ सब अपने आप की प्रशंसा करते हैं और बड़े से बड़ा बनना चाहते हैं। (किन्तु) गुरु की शिक्षा के बिना आत्म-पहचान नहीं होती, (कोरी बातें) कहने-सुनने से कोई लाभ नहीं होता। गुरुजी कहते हैं कि जो शब्द द्वारा आत्म-पहचान करता है, वह कभी अहंकार नहीं करता ॥ ८ ॥ ८ ॥

॥ सिरीरागु महला १ ॥ बिनु पिर धन सीगारीऐ जोबनु बादि खुआरु। ना माणे सुखि सेजड़ी बिनु पिर बादि सीगारु। दूखु घणो दोहागणी ना घरि सेज भतारु ॥ १ ॥ मन रे राम जपहु सुखु होइ। बिनु गुर प्रेमु न पाईऐ सबदि मिलै रंगु होइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गुर सेवा सुखु पाईऐ हरि वरु सहजि सीगारु। सचि माणे पिर सेजड़ी गूड़ा हेतु पिआरु। गुरमुखि जाणि सिञाणीऐ गुरि मेली गुण चारु ॥ २ ॥ सचि मिलहु वर कामणी पिरि मोही रंगु लाइ। मनु तनु साचि विगसिआ कीमति कहणु न जाइ। हरि वरु घरि सोहागणी निरमल साचै नाइ ॥ ३ ॥ मन महि मनुआ जे मरै ता पिरु रावै नारि। इकतु तागै रलि मिलै गलि मोतीअन का हारु। संतसभा सुखु ऊपजै गुरमुखि नाम अधारु ॥ ४ ॥ खिन महि उपजै खिनि खपै खिनु आवै खिनु जाइ। सबदु पछाणै रवि रहै ना तिसु कालु संताइ। साहिबु अतुलु न तोलीऐ कथनि न पाइआ जाइ ॥ ५ ॥ वापारी वणजारिआ आए वजहु लिखाइ। कार कमावहि सच की लाहा मिलै रजाइ। पूंजी साची गुरु मिलै ना तिसु तिलु न तमाइ ॥ ६ ॥ गुरमुखि तोलि तुोलाइसी सचु तराजी तोलु। आसा मनसा मोहणी गुरि ठाकी सचु बोलु। आपि तुलाए

तोलसी पूरे पूरा तोलु ।। ७ ।। कथनै कहणि न छुटीऐ ना पड़ि पुसतक भार । काइआ सोच न पाईऐ बिनु हरि भगति पिआर । नानक नामु न वीसरै मेले गुरु करतार ।। ८ ।। ९ ।।

प्रभु-पति के बिना शृंगार करनेवाली जीव-स्त्री का कृत्रिम सुन्दर यौवन व्यर्थ होता है। उसे पति की सेज का सुख ही प्राप्त नहीं होता (क्योंकि पति उपस्थित नहीं), तो उसका शृंगार व्यर्थ है। उस त्यक्ता को अतीव दुःख होता है, क्योंकि उसकी हृदय-सेज पर कभी पति रमण नहीं करता ।। १ ।। हे मन, राम-नाम जपने से परम सुख मिलता है। गुरु के बिना नाम से प्यार नहीं होता और नाम का प्यार निश्चय ही गुरु-आदेश का पालन करने से होता है ।। १ ।। रहाउ ।। गुरु की सेवा से ही परम-सुख मिलता है और सहज में ही प्रभु-पति आत्मा-दुल्हिन का शृंगार करता है। सत्य में स्थिर होकर ही पति-सेज पर आदर मिलता है और तभी प्रभु से प्रगाढ़ प्रेम होता है। इस प्रकार गुरु द्वारा प्रभु की पहचान होती है; जब गुरु परमात्मा से मिला देता है तब जीव-स्त्री में गुण-सम्पन्न आचरण का बल आ जाता है ।। २ ।। हे जीव-स्त्री सच्चे परमात्मा में लीन रहो, उसी ने तुम्हें अपने प्रेम से मोहित किया है। जीव-स्त्री का मन-तन ऐसे विकसित होता है कि उसका मोल ही नहीं आँका जा सकता। जिस सुहागिन के हृदय में प्रभु-पति बस जाता है, उसका चित्त नाम के जल से धुलकर निर्मल होता है ।। ३ ।। यदि जीव-स्त्री अपने मन से मन को मार दे (अर्थात् अहम् त्याग दे), तो प्रभु-पति उसे सम्मानित करता है। तब दोनों (पति-पत्नी, प्रभु और आत्मा) एक-दूसरे से ऐसा मिल जाते हैं, जैसे मोतियों की माला गले से मिल जाती है। सतिसंगति में सुख प्राप्त होता है, गुरु से मिला नाम जीवन का एकमात्र सहारा बनता है ।। ४ ।। (नाम-विहीन जीव के मन की) अवस्था क्षण-क्षण में ऊहापोह करती क्षणिक भाव-बद्ध हो जाती है। किन्तु जब मन को शब्द की पहचान होती है, तो वह परमात्मा से मिल जाता है। वह काल के प्रपंच से मुक्त हो जाता है। (मिलन के बावजूद) परमात्मा अतुलनीय है, जीव उसे नहीं परख सकता, न ही बातों से ही उसकी स्थिति जाँची जा सकती है ।। ५ ।। हरि-नाम का व्यापार करनेवाले अपनी सांसारिक सेवा का पारिश्रमिक पहले से ही प्राप्त कर लेते हैं। सत्याचरण और आदेशानुसार कर्म, यही उनके व्यापार में प्राप्त होनेवाला लाभ है। उन्हें ऐसा गुरु मिलता है, जिसे लोभ और भ्रम विचलित नहीं करते। उस गुरु से उन्हें नाम की पूँजी प्राप्त होती है ।। ६ ।। जीवों के कर्मों को सत्य के तराज़ू पर तोला जायगा। केवल गुरमुख जीव (गुरु के आदेश में चलनेवाले) ही तराज़ू पर पूरा उतरेंगे। उनकी आशाएँ-तृष्णाएँ सत्य-स्वरूप गुरु नाश कर देता

है। परमात्मा स्वयं जीवों को परखता है, उसका अपना तोल-परिमाण पूर्ण और परम है ॥ ७ ॥ केवल बातों या ग्रन्थाध्ययन से किसी की मुक्ति नहीं होती, न केवल शौच (शारीरिक पवित्रता) से उस प्रभु की प्राप्ति होती है। वह तो भक्ति और प्रेम द्वारा मिलता है। गुरुजी कहते हैं कि सतिगुरु जिस जीव को परमात्मा से मिलाप करवा देता है, उसे नाम कभी विस्मृत नहीं होता ॥ ८ ॥ ९ ॥

॥ सिरीरागु महला १ ॥ सतिगुरु पूरा जे मिलै पाईऐ रतनु बीचारु। मनु दीजै गुर आपणे पाईऐ सरब पिआरु। मुकति पदारथु पाईऐ अवगण मेटणहारु ॥ १ ॥ भाई रे गुर बिनु गिआनु न होइ। पूछहु ब्रहमे नारदै बेदबिआसै कोइ ॥१॥ रहाउ ॥ गिआनु धिआनु धुनि जाणीऐ अकथु कहावै सोइ। सफलिओ बिरखु हरीआवला छाव घणेरी होइ। लाल जवेहर माणकी गुर भंडारै सोइ ॥ २ ॥ गुर भंडारै पाईऐ निरमल नाम पिआरु। साचो वखरु संचीऐ पूरै करमि अपारु। सुखदाता दुख मेटणो सतिगुरु असुर संघारु ॥ ३ ॥ भवजलु बिखमु डरावणो ना कंधी ना पारु। ना बेड़ी ना तुलहड़ा ना तिसु वंझु मलारु। सतिगुरु भै का बोहिथा नदरी पारि उतारु ॥ ४ ॥ इकु तिलु पिआरा विसरै दुखु लागै सुखु जाइ। जिहवा जलउ जलावणी नामु न जपै रसाइ। घटु बिनसै दुखु अगलो जमु पकड़ै पछुताइ ॥ ५ ॥ मेरी मेरी करि गए तनु धनु कलतु न साथि। बिनु नावै धनु बादि है भूलो मारगि आथि। साचउ साहिबु सेवीऐ गुरमुखि अकथो काथि ॥ ६ ॥ आवै जाइ भवाईऐ पइऐ किरति कमाइ। पूरबि लिखिआ किउ मेटीऐ लिखिआ लेखु रजाइ। बिनु हरिनाम न छुटीऐ गुरमति मिलै मिलाइ ॥ ७ ॥ तिसु बिनु मेरा को नही जिस का जीउ परानु। हउमै ममता जलि बलउ लोभु जलउ अभिमानु। नानक सबदु वीचारीऐ पाईऐ गुणी निधानु ॥ ८ ॥ १० ॥

यदि जीव को सच्चे गुरु का सहारा मिल जाय, तो वह ज्ञान-रूपी रत्न को प्राप्त करता है। यदि प्रेमपूर्वक वह गुरु-चरणों में अपने मन को अर्पित कर दे (पूर्ण समर्पण) तो वह सर्वप्रिय परमेश्वर उपलब्ध हो जाता है। तब अवगुणों का नाश होकर मुक्ति-रूपी अमूल्य पदार्थ मिल पाता है ॥ १ ॥ हे भाई, (याद रखो) गुरु के बिना ज्ञान नहीं होता।

(विश्वास न हो तो) ब्रह्मा, नारद, वेदों के रचयिता ऋषि व्यास आदि से पूछ लो (अर्थात् बड़े-बड़े देवताओं और ऋषियों से पूछो--उनकी रचनाओं से बात की प्रामाणिकता खोज लो) ॥ १ ॥ रहाउ ॥ ज्ञान और प्रभु का ध्यान, दोनों की प्राप्ति गुरु-शब्द से ही होती है। अकथनीय वाहिगुरु का कथन करने में केवल गुरु ही समर्थ है। गुरु हरे-भरे छायादार और फल-फूल से भरे पेड़ के समान है। गुण-रूपी जवाहर, हीरे, रत्न सब गुरु के भण्डार से ही मिलते हैं ॥ २ ॥ (यहाँ वाणी में बल दिया जा रहा है कि गुरु ही परमात्मा को मिलने का एकमात्र साधन है। वह सर्वशक्तिमान और सर्वप्रदाता है।) गुरु के कोष (गुरुवाणी) से ही नाम का प्यार प्राप्त होता है। सतिगुरु की कृपा से ही सच्ची वस्तु (नाम) का संचय सम्भव होता है। सतिगुरु सुखदायी है, दुःखों का नाश करता एवं काम-क्रोधादि दैत्यों को मिटाता है ॥ ३ ॥ यह संसार-सागर बड़ा विषम भयानक है, इसका आर-पार कोई नहीं। इसे पार करने के लिए न कोई नाव है, न लकड़ी है, न चप्पू, न खेवैय्या है। केवल सतिगुरु ही भव-सागर का पोत है और उसका शब्द पार लगानेवाला खेवैय्या है ॥ ४ ॥ क्षण-भर के लिए भी प्यारा प्रभु विस्मृत होता है, तो सुखों का नाश होकर चतुर्दिक् दुःख ही दुःख जीव को घेर लेते हैं। जो जिह्वा रस-पूर्ण भाव से नाम का जाप नहीं करती वह जलाने योग्य है, उसे फूँक डालो। नाम-विहीन शरीर जब टूटता है (मृत्यु होती है), तो भयंकर दुःख-कष्ट भोगता है और यमदूत उसे आ पकड़ते हैं ॥ ५ ॥ जीव तन, धन, स्त्री आदि को अपना कहता है, किन्तु (मृत्यूपरान्त) ये सब छोड़ जाते हैं, कोई साथ नहीं निभाता। नाम के अतिरिक्त कोई भी धन व्यर्थ है, जीव माया-मार्गी बना भ्रम में पड़ा हुआ है। सच्चे स्वामी (परमात्मा) की सेवा करने से अकथनीय प्रभु का कथन भी सम्भव होता है ॥ ६ ॥ जीव आवागमन में पड़ा जन्मता-मरता और स्वभावानुसार भ्रमात्मक कर्म करता रहता है। प्रभु की इच्छा से लिखी नियति को पूर्व-निश्चित स्थिति के नाते कोई नहीं मिटा सकता। हरिनाम के बिना (जन्म-मरण के चक्र से) छूटना और गुरुमत अपनाए बग़ैर परमात्मा से मिलन सम्भव ही नहीं ॥ ७ ॥ मेरे जीव-प्राणों के स्वामी परमेश्वर के बिना मेरा अपना कोई नहीं। (उससे मुझे अलग कर देनेवाले मेरे) लोभ, ममता, अहंकार आदि सब जल जायँ। गुरु-कथन है कि (तब) गुरु-शब्द का ज्ञान होने से वह गुणी-निधान ब्रह्म प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ १० ॥

॥ सिरीरागु महला १ ॥ रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि जैसी जल कमलेहि। लहरी नालि पछाड़ीऐ भी विगसै असनेहि। जल महि जीअ उपाइ कै बिनु जल मरणु तिनेहि ॥१॥

मन रे किउ छूटहि बिनु पिआर। गुरमुखि अंतरि रवि रहिआ बखसे भगति भंडार ॥ १ ॥ रहाउ ॥ रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि जैसी मछुली नीर। जिउ अधिकउ तिउ सुखु घणो मनि तनि सांति सरीर। बिनु जल घड़ी न जीवई प्रभु जाणै अभ पीर ॥ २ ॥ रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि जैसी चात्रिक मेह। सर भरि थल हरीआवले इक बूंद न पवई केह। करमि मिलै सो पाईऐ किरतु पइआ सिरि देह ॥ ३ ॥ रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि जैसी जल दुध होइ। आवटणु आपे खवै दुध कउ खपणि न देइ। आपे मेलि विछुंनिआ सचि वडिआई देइ ॥ ४ ॥ रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि जैसी चकवी सूर। खिनु पलु नीद न सोवई जाणै दूरि हजूरि। मनमुखि सोझी ना पवै गुरमुखि सदा हजूरि ॥ ५ ॥ मनमुखि गणत गणावणी करता करे सु होइ। ता की कीमति ना पवै जे लोचै सभु कोइ। गुरमति होइ त पाईऐ सचि मिलै सुखु होइ ॥ ६ ॥ सचा नेहु न तुटई जे सतिगुरु भेटै सोइ। गिआन पदारथु पाईऐ त्रिभवण सोझी होइ। निरमलु नामु न वीसरै जे गुण का गाहकु होइ ॥ ७ ॥ खेलि गए से पंखणूं जो चुगदे सर तलि। घड़ी कि मुहति कि चलणा खेलणु अजु कि कलि। जिसु तूं मेलहि सो मिलै जाइ सचा पिड़ु मलि ॥ ८ ॥ बिनु गुर प्रीति न ऊपजै हउमै मैलु न जाइ। सोहं आपु पछाणीऐ सबदि भेदि पतीआइ। गुरमुखि आपु पछाणीऐ अवर कि करे कराइ ॥ ९ ॥ मिलिआ का किआ मेलीऐ सबदि मिले पतीआइ। मनमुखि सोझी ना पवै वीछुड़ि चोटा खाइ। नानक दरु घरु एकु है अवरु न दूजी जाइ ॥ १० ॥ ११ ॥

[पद का भाव यह है कि सतिगुरु-प्रदत्त ईश्वर-प्रेम की प्रामाणिकता दुःखों के नाश, उत्साह, नित्य मिलनेषणा, आत्म-बलिदान तथा नित्यसेवा में है।]

हे मन, तुम हरि से ऐसा प्रगाढ़ प्रेम बनाओ, जैसा जल और जलज में होता है। जल की लहरें कमल को निरन्तर धकियाती रहती हैं, फिर भी वह उसके प्यार में खिला रहता है। कमल को जल से ही जीवन मिलता है, उससे बाहर उसका मरण है (अर्थात् जैसे जल ही कमल के जीवन का आधार है, बिना उसके वह मर जाता या मुरझा जाता है, वैसे ही परमात्मा ही जीव का जीवनाधार है, जीव भी उसके बिना मिट्टी के

समान है, अत: जीव को प्रभु से अटूट प्यार करना चाहिए।) ॥ १ ॥ हे मेरे मन, तुम प्रभु से प्रेम किए बिना क्योंकर छूट सकोगे अर्थात् तुम्हें मुक्ति नहीं मिलेगी। वह प्रभु गुरु के माध्यम से कार्यान्वित है, गुरु से ही भक्ति की प्राप्ति होती है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे मन, हरि से ऐसी प्रीति कर, जैसी मछली जल से करती है। ज्यों-ज्यों (जल) बढ़ता है, त्यों-त्यों वह उल्लसित होती और समूचे तन-मन में शान्ति पाती है। जल के बिना घड़ी-भर भी जीवित नहीं रहती, वाहिगुरु जानता है कि उसे जल के बिना कितनी व्याकुलता होती है ॥ २ ॥ हे मन, परमात्मा से ऐसी प्रीति कर, जैसी चातक स्वाति-वर्षा से करता है। सरोवर भरे रहें, चारों ओर हरे-भरे स्थल हों, किन्तु (यदि स्वाति-वर्षा नहीं तो) उसे क्या ? प्रभु की कृपा हो तभी सत्कर्मों के फलस्वरूप उसकी चाहत पूरी होती है ॥ ३ ॥ हे मन, प्रभु से ऐसी प्रीति कर, जैसी दूध के संग जल करता है। समूचा ताप और उबाल (जल) स्वयं सहारता है, दूध को कष्ट नहीं होने देता (आत्म-बलिदान)। (वह प्रभु) आप ही मिलाप के बाद वियोग देता है और पुनः आप ही सत्य के द्वारा यश प्रदान करता है ॥ ४ ॥ हे मन, परमेश्वर से ऐसी प्रीति कर, जैसी चकवी सूर्य से करती है। पल-भर के लिए भी वह नहीं सोती, दूर उगनेवाले सूर्य को भी निकटतर समझती है। सच यह है कि प्रभु मनमुखी जीवों को नहीं दिखाई पड़ता, गुरु के आदेशों का पालन करनेवाला तो नित्य उसे अंग-संग देखता है ॥ ५ ॥ मनमुखी जीव गिनती और परिमाण का लेखा-जोखा करता है, होता वही है, जो प्रभु को मंज़ूर होता है। सब कोई चाहकर भी उसके यथार्थ को नहीं समझ सकते। गुरु की आज्ञा में आचरण करें, तभी सत्य-पथ की प्राप्ति होती और सुख मिलता है ॥ ६ ॥ यदि सतिगुरु की दया हो तो ईश्वर के साथ ऐसा अटूट प्यार बनता है, जो कभी क्षय नहीं होता। ज्ञान-रूपी अमूल्य पदार्थ उपलब्ध होता है और तीनों लोकों की सूझ होती है। गुणों के सही ग्राहक को प्रभु का पवित्र नाम कभी विस्मृत नहीं होता ॥ ७ ॥ भोग-विलास करनेवाले सब लद गए (जल-स्थान पर चुगनेवाले पंछी उड़ गए), अन्य सबको भी शीघ्र ही चले जाना है; यह खेल दो दिन का ही तो है। (सच तो यह है कि) जिसे तुम (हे प्रभु) परम-पुरुष से मिला लेते हो, वही विजयी होता है ॥ ८ ॥ गुरु के बिना न तो अहंकार की मैल धुलती है, न ही प्रीति उपजती है। शब्द-रहस्य को जानकर ही 'सोऽहं' अर्थात् अभेदता की उपलब्धि होती है। आत्म-पहचान भी गुरु के ही द्वारा सम्भव है, अन्याश्रित व्यक्ति कुछ भी कर-करा नहीं सकता ॥ ९ ॥ जो जीव गुरु के शब्द के माध्यम से गुरु को मिले हैं, उनका विश्वास अडिग है, उन्हें और किसी प्रकार के मिलाप की अपेक्षा नहीं होती। मनमुखी (गुरु से विमुख) जीवों को प्रभु का ज्ञान नहीं होता, इसलिए वे अपने मूल से टूटकर दु:ख

उठाते हैं। (गुरुजी कहते हैं) जीव का आश्रय केवल एक परमात्मा ही है, उनके लिए और कोई दूसरा सहारा नहीं ॥ १० ॥ ११ ॥

॥ सिरीरागु महला १ ॥ मनमुखि भुलै भुलाईऐ भूली ठउर न काइ। गुर बिनु को न दिखावई अंधी आवै जाइ। गिआन पदारथु खोइआ ठगिआ मुठा जाइ ॥ १ ॥ बाबा माइआ भरमि भुलाइ। भरमि भुली डोहागणी ना पिर अंकि समाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ भूली फिरै दिसंतरी भूली ग्रिहु तजि जाइ। भूली डूंगरि थलि चड़ै भरमै मनु डोलाइ। धुरहु विछुंनी किउ मिलै गरबि मुठी बिललाइ ॥ २ ॥ विछुड़िआ गुरु मेलसी हरि रसि नाम पिआरि। साचि सहजि सोभा घणी हरिगुण नाम अधारि। जिउ भावै तिउ रखु तूं मै तुझ बिनु कवनु भतारु ॥ ३ ॥ अखर पड़ि पड़ि भुलीऐ भेखी बहुतु अभिमानु। तीरथ नाता किआ करे मन महि मैलु गुमानु। गुर बिनु किनि समझाईऐ मनु राजा सुलतानु ॥ ४ ॥ प्रेम पदारथु पाईऐ गुरमुखि ततु वीचारु। साधन आपु गवाइआ गुर कै सबदि सीगारु। घर ही सो पिरु पाइआ गुर कै हेति अपारु ॥ ५ ॥ गुर की सेवा चाकरी मनु निरमलु सुखु होइ। गुर का सबदु मनि वसिआ हउमै विचहु खोइ। नामु पदारथु पाइआ लाभु सदा मनि होइ ॥ ६ ॥ करमि मिलै ता पाईऐ आपि न लइआ जाइ। गुर की चरणी लगि रहु विचहु आपु गवाइ। सचे सेती रतिआ सचो पलै पाइ ॥ ७ ॥ भुलण अंदरि सभु को अभुलु गुरू करतारु। गुरमति मनु समझाइआ लागा तिसै पिआरु। नानक साचु न वीसरै मेले सबदु अपारु ॥ ८ ॥ १२ ॥

[इस पद का समूचा भाव यह है कि परमज्ञान की उपलब्धि केवल सद्गुरु से ही सम्भव है। अन्य आडम्बरपूर्ण विद्याओं एवं तीर्थ-व्रत के भ्रमों को गुरु ही दूर कर सकता है, तभी जीव परमात्मा से मिल पाता है।]

मनमुखी (गुरु-विमुख) जीव मायाजाल में आत्म-विस्मृत होता है, ऐसे जीव का कोई सहारा नहीं होता। ऐसी जीवात्मा (स्त्री) अज्ञानांध ही संसार में आती-जाती है, गुरु के बिना उसे ज्ञानालोक देनेवाला कोई नहीं। उसने ज्ञान की राशि तो गँवा दी होती है, इसलिए माया द्वारा उसे ठग लिया जाता है ॥ १ ॥ हे भाई, माया पथ-भ्रष्ट करती है और

भूली हुई जीवात्मा अपने प्रभु-पति से बिछुड़कर पुनः कभी उससे संयोग नहीं प्राप्त कर सकती ।। १ ।। रहाउ ।। ऐसी भ्रम में पड़ी जीवात्मा देश-देशान्तर में भटकती है, घर-गृहस्थी का त्याग करती है। भ्रम के ही कारण वह पर्वतों-मैदानों में मारी-मारी फिरती है, उसका चित्त सदैव अस्थिर रहता है। वह तो मूलतः अपने पति से वियुक्त होती है, अब क्योंकर उससे मिल सकती है ? अहंकार के कारण वह सब कुछ गँवाकर रोती-चिल्लाती है ।। २ ।। वियुक्ता आत्मा को हरि-नाम के प्यार का अमृत देकर केवल गुरु ही मिला सकता है। (गुरु द्वारा दिए) ज्ञान तथा हरिगुण और नाम के सहारे वियोगिनी आत्माएँ भी सुशोभित हो उठती हैं। अतः हे मेरे स्वामी तुम्हारे, सिवा मेरा कौन मालिक है ? जैसे तुम्हें रुचे, वैसे मुझे संरक्षण दो ।। ३ ।। शास्त्र-ज्ञान से भी भटकना सम्भव है और (गृह त्यागकर) आडम्बर करने से अहंकार उपजता है। तीर्थादि के स्नान का भी कोई विशेष लाभ नहीं होता, क्योंकि मन में अहंकार की मैल बनी रहती है। गुरु ही समझा सकता है कि (धर्म-कर्म में लिप्त) मन अहंकार-वश अपने को राजा या सुलतान से कम नहीं समझता ।। ४ ।। कोई गुरुमुख ही तत्त्व-ज्ञान देकर जीव को प्रेम-पदार्थ के योग्य बनाता है। गुरु के शब्द-श्रृंगार से ही जीवात्मा स्त्री आत्म-त्याग करती है और गुरु के प्रेम से ही अपने भीतर ही से प्रियतम परमात्मा को प्राप्त कर लेती है ।। ५ ।। गुरु की सेवा-चाकरी से मन में निर्मलता उपजती है और जीव सुख-लाभ करता है। जब गुरु का उपदेश मन में बसता है तो अहंकार स्वतः नष्ट हो जाता है। गुरु से जो नाम-पदार्थ प्राप्त होता है, वह सदा लाभ का ही सौदा है ।। ६ ।। यह नाम-पदार्थ गुरु की कृपा से ही मिलता है, अपने सामर्थ्य से कोई इसका अधिकारी नहीं बनता। इसलिए (जीवात्मा को चाहिए कि) अहंकार का नाश करके वह गुरु की शरण ले, क्योंकि सच्चे गुरु का आश्रय लेने से ही वह सच्चा प्रभु प्राप्त होता है ।।७।। केवल कर्त्तार-रूपी गुरु ही भूल से परे है, शेष समूचा संसार भूलने योग्य है। जो जीव ऐसे गुरु के उपदेशों से अपने को समझा लेता है, वही परम-पुरुष के सच्चे प्यार का अधिकारी होता है। गुरुजी कहते हैं कि तब उसे वह सत्य-स्वरूप परमात्मा कभी विस्मृत नहीं होता, गुरु का अपार शब्द उसे परमात्मा से मिला देता है ।। ८ ।। १२ ।।

।। सिरीरागु महला १ ।। त्रिसना माइआ मोहणी सुत बंधप घर नारि। धनि जोबनि जगु ठगिआ लबि लोभि अहंकारि। मोह ठगउली हउ मुई सा वरतै संसारि ।। १ ।। मेरे प्रीतमा मै तुझ बिनु अवरु न कोइ। मै तुझ बिनु अवरु न भावई तूं भावहि सुखु होइ ।। १ ।। रहाउ ।। नामु सालाही रंग सिउ गुर कै

सबदि संतोखु । जो दीसै सो चलसी कूड़ा मोहु न वेखु । वाट वटाऊ आइआ नित चलदा साथु देखु ।। २ ।। आखणि आखहि केतड़े गुर बिनु बूझ न होइ । नामु वडाई जे मिलै सचि रपै पति होइ । जो तुधु भावहि से भले खोटा खरा न कोइ ।। ३ ।। गुर सरणाई छुटीऐ मनमुख खोटी रासि । असट धातु पातिसाह की घड़ीऐ सबदि विगासि । आपे परखे पारखू पवै खजानै रासि ।। ४ ।। तेरी कीमति ना पवै सभ डिठी ठोकि वजाइ । कहणै हाथ न लभई सचि टिकै पति पाइ । गुरमति तूं सालाहणा होरु कीमति कहणु न जाइ ।। ५ ।। जितु तनि नामु न भावई तितु तनि हउमै वादु । गुर बिनु गिआनु न पाईऐ बिखिआ दूजा सादु । बिनु गुण कामि न आवई माइआ फीका सादु ।। ६ ।। आसा अंदरि जंमिआ आसा रस कस खाइ । आसा बंधि चलाईऐ मुहे मुहि चोटा खाइ । अवगणि बधा मारीऐ छूटै गुरमति नाइ ।। ७ ।। सरबे थाई एकु तूं जिउ भावै तिउ राखु । गुरमति साचा मनि वसै नामु भलो पति साथु । हउमै रोगु गवाईऐ सबदि सचै सचु भाखु ।। ८ ।। आकासी पातालि तूं त्रिभवणि रहिआ समाइ । आपे भगती भाउ तूं आपे मिलहि मिलाइ । नानक नामु न वीसरै जिउ भावै तिवै रजाइ ।। ९ ।। १३ ।।

पुत्र, कलत्र, रिश्ते-नातेदारों के मोह के कारण जीव को मोहिनी माया की तृष्णा लगी है। धन-यौवन, मिथ्या, लोभ और अहंकार ने समूचे संसार को ठग लिया है। मोह-माया की ठगउरी (नशे की बूटी) से मैं ठगा गया हूँ, सारा संसार उसी के प्रभाव में है ।। १ ।। हे मेरे प्रभु-प्रियतम, मेरे लिए तुम्हारे सिवा और कोई सहारा नहीं। मुझे तुम्हारे अतिरिक्त और कुछ नहीं भाता, तुम्हारी ही चाहत में सुख होता है ।। १ ।। रहाउ ।। गुरु-उपदेशों से सन्तोष-लाभ करके मैं प्रेम-पूर्वक प्रभु-नाम का गान करता हूँ। समूचा दृश्यमान जगत नश्वर है, इसके झूठे मोह में न पड़ना। यह सारा संसार यात्री है, नित्य अपने साथियों को हम चलता देखते हैं ।। २ ।। कथनी करनेवाले अनेक हैं, किन्तु गुरु के बिना ज्ञान की उपलब्धि नहीं होती। यदि कोई नाम-लाभ कर ले, तो वह परम-सत्य के रंग में लीन होता और प्रभु-दरबार में सम्मान प्राप्त करता है। अतः हे प्रभु, जो तुम्हें रुचते हैं, वे ही भले हैं; (अपने बल-सामर्थ्य से) कोई खोटा-खरा नहीं हो सकता ।। ३ ।। गुरु की शरण लेने पर ही छुटकारा सम्भव

है, मनमुख की तो पूंजी ही खोटी है (वह क्या लाभ अर्जित कर सकेगा?)। संसार की आठों धातुएँ राजा की (परमात्मा की) हैं, वही उन्हें शब्द द्वारा अलग-अलग रूपों में ढालता है (अर्थात् जैसे सोना, चाँदी, ताँबा, जिस्ता, कलई, लोहा, सिक्का, पीतल आदि आठों धातुओं पर राजा का अधिकार होता है और वह अपनी इच्छा से सिक्के आदि ढालता और उनका मूल्य निश्चित करता है, वैसे ही सब जीव उस परमात्मा के ही हैं, वही उन्हें शब्द के साँचे में ढालकर रूपायित करता है।) प्रभु स्वयं जीवों को परखता है और जिसे शुद्ध मानता है, मुक्ति प्रदान करता है (अपने कोष में जमा कर लेता है) ॥ ४ ॥ हे प्रभु, सारा संसार मैंने देखा है किन्तु तुम्हारा मोल नहीं डाला जा सकता। कोरी बातों से परमात्मा के घर नहीं पहुँचा जा सकता, केवल वही जीव, जो उसकी जाँच पर पूरा उतरे, प्रभु के द्वार का अधिकारी बनता है। केवल गुरु के बताए मार्ग पर चलने से ही (तुम्हारा सही मोल जाना जा सकता है) और किसी भी प्रकार तुम्हारा मूल्यांकन सम्भव नहीं ॥ ५ ॥ जिस चित्त में प्रभु-नाम का प्यार नहीं, वहाँ अहंकार और व्यर्थ के झगड़े निवास करते हैं। गुरु के बिना ज्ञान की उपलब्धि नहीं होती; वाहिगुरु के बिना अन्य सब रस विषैले हैं। माया का रस फीका है, गुणों के बिना माया किसी काम नहीं आती ॥ ६ ॥ जीव तृष्णा में जन्म लेता है और तृष्णा का बँधा माया-रसों (सांसारिक भोग-विलास) का भोग करता। तृष्णा में ही मृत्यु होती है और पुन: पुन: मुँह पर चोट खाता है (यमदूतों की चोटें और कर्मगति के कारण आवागमन की चोट खाता है)। जीव अवगुणों का बँधा पछतावा करता है, केवल गुरु के उपदेशों से प्राप्त नाम में ही इसकी मुक्ति निहित है ॥ ७ ॥ हे प्रभु, तुम सर्वव्यापक हो (सब जगह तुम्हारी है), जैसे भी चाहो जीव का (मेरा) पोषण करो। गुरु-कृपा से ही मन में नाम उजागर होता है, यह नाम जीव का सर्वोच्च साथी और सम्मानाधार है। नाम ही अहंकार के रोग को दूर करता है, इसलिए हे प्रिय, गुरु के सच्चे उपदेशों के अनुसार ही प्रभु का गुणगान कर ॥ ८ ॥ प्रभु (तुम) आकाश-पाताल, तीनों लोकों में सब जगह समाए हुए हो। तुम ही भक्ति और प्यार हो, स्वयं ही तुम जीव को अपने साथ मिलाते हो। गुरु नानक कहते हैं (कि मेरी विनती है कि) हे प्रभु, मुझे कभी नाम न विस्मृत हो, जैसे तुम्हें जचे, वैसे तुम मुझे अपनी इच्छानुसार पोषित करो ॥ ९ ॥ १३ ॥

॥ सिरीरागु महला १ ॥ राम नामि मनु बेधिआ अवरु कि करी वीचारु। सबद सुरति सुखु ऊपजै प्रभ रातउ सुख सारु। जिउ भावै तिउ राखु तूं मै हरिनामु अधारु ॥ १ ॥ मन रे साची खसम रजाइ। जिनि तनु मनु साजि सीगारिआ

तिसु सेती लिव लाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ तनु बैसंतरि होमीऐ इक रती तोलि कटाइ । तनु मनु समधा जे करी अनदिनु अगनि जलाइ । हरिनामै तुलि न पुजई जे लख कोटी करम कमाइ ॥ २ ॥ अरध सरीरु कटाईऐ सिरि करवतु धराइ । तनु हैमंचलि गालीऐ भी मन ते रोगु न जाइ । हरिनामै तुलि न पुजई सभ डिठी ठोकि वजाइ ॥ ३ ॥ कंचन के कोट दतु करी बहु हैवर गैवर दानु । भूमि दानु गऊआ घणी भी अंतरि गरबु गुमानु । रामनामि मनु बेधिआ गुरि दीआ सचु दानु ॥ ४ ॥ मन हठ बुधी केतीआ केते बेद बीचार । केते बंधन जीअ के गुरमुखि मोखदुआर । सचहु ओरै सभु को उपरि सचु आचारु ॥ ५ ॥ सभु को ऊचा आखीऐ नीचु न दीसै कोइ । इकनै भांडे साजिऐ इकु चानणु तिहु लोइ । करमि मिलै सचु पाईऐ धुरि बखस न मेटै कोइ ॥ ६ ॥ साधु मिलै साधू जनै संतोखु वसै गुर भाइ । अकथ कथा वीचारीऐ जे सतिगुर माहि समाइ । पी अम्रितु संतोखिआ दरगहि पैधा जाइ ॥ ७ ॥ घटि घटि वाजै किंगुरी अनदिनु सबदि सुभाइ । विरले कउ सोझी पई गुरमुखि मनु समझाइ । नानक नामु न वीसरै छूटै सबदु कमाइ ॥ ८ ॥ १४ ॥

[पद का समूचा भाव यह है कि हरि-नाम की सच्ची कमाई के मुकाबले कोई दान-पुण्य, हठ-साधन या काशी-करवट आदि के आडम्बर नहीं हो सकते । यह हरि-नाम गुरु के द्वारा प्राप्त होता है ।]

मेरा चित्त राम-नाम से बिंध गया है, अतः किसी अन्य विचार की अब कोई आवश्यकता नहीं रह गई । गुरु-शब्दों में आत्म-लीन होने से मैं प्रभु-प्रेम में रंग गया हूँ, यही सुख का आधार है । हे परमात्मा, जैसे उचित हो, वैसे मुझे सहारा दो; मुझे तुम्हारे नाम के सहारे की ही जरूरत है ॥ १ ॥ हे मेरे मन, परमात्मा की मर्जी ही सत्य है; इसलिए तुम उसी के प्यार में लीन रहो, जिसने यह तन-मन बनाया और श्रृंगारित किया है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ यदि समूचे शरीर को रत्ती-रत्ती के टुकड़ों में काटकर यज्ञाग्नि में आहुतियाँ दे डालें; रात-दिन आग जलाकर तन-मन को समिधा बनाकर होम कर दें, तो भी लाखों-करोड़ों कर्म हरि-नाम के तुल्य नहीं पहुँच सकते ॥ २ ॥ शरीर को बीच से आरे द्वारा कटवा भी दें (प्राचीनकाल में पापों से मुक्त होने के लिए लोग काशी में जाकर आरे से शरीर कटवा लेते थे और इस प्रकार करवट लेने से मोक्ष-प्राप्ति की आशा करते थे),

या हिमालय की बर्फ़ में जाकर शरीर को गला दें, तो भी मन की मैल दूर नहीं होती। मेरा यह दावा है, मैंने ख़ूब जाँचकर देख लिया है कि हरि-नाम के तुल्य इन दोनों में से कुछ भी नहीं ॥ ३ ॥ यदि मैं (जीव) स्वर्ण के महल भी दान करूँ, अच्छी नस्ल के घोड़े-हाथियों की बड़ी संख्या का दान कर दूँ। भूमि या बहु-संख्यक गायों का दान भी करूँ, तो भी मन में अहंकार तो बना ही रहता है। गुरु ने मुझे सच्चा दान (नाम-दान) प्रदान किया है, उसी से अब मेरा मन तो राम-नाम में लीन हो गया है ॥ ४ ॥ मन के हठ और बुद्धि से हम कितने ही कर्म करते हैं, कुछ वेदों के विचारानुसार भी (कर्म करते हैं)। ऐसे ही जीव के लिए अनेक बन्धन हैं, मोक्ष का रास्ता केवल गुरु को ही मालूम है। सब कुछ सत्य से नीचा है, यदि कुछ ऊपर है तो वह सच्चा कर्म और सच्चा आचरण है ॥ ५ ॥ संसार में समूची चेतना ऊँची है, नीचा किसी को नहीं कह सकते, क्योंकि सबका कर्त्ता वह हरि है, उसकी रचना निकृष्ट नहीं है, उसी ने सब शरीरों में एक ही ज्योति प्रदान की है। यदि उसी की कृपा हो तो सत्य का ज्ञान होता है; मूल से प्राप्त इस दया (बख्शीश) को कोई रोक नहीं सकता ॥ ६ ॥ गुरुमुख जीवों को गुरु की संगति में परम सन्तोष मिलता है। यदि वह (गुरुमुख जीव) गुरु में ही लीन हो जाय तो परमात्मा की अकथनीय कथा का जानकार बन जाता है। हरिनाम के अमृत-पान से सन्तुष्ट होकर वह हरि-दरबार में प्रवेश पा लेता है ॥ ७ ॥ सब शरीरों (हरि के बनाए) में रात-दिन प्रभु का आलोक है, मानो सहज वीणा बज रही है। कोई विरल जीव ही गुरुमुख की संगति में उस तथ्य की सूझ प्राप्त कर सकता है। गुरु-कथन है कि यदि वह जीव गुरु-प्रदत्त शब्द की सही कमाई करे और नाम को कभी विस्मृत न करे, (तो वह मुक्ति का अधिकारी होता है) ॥ ८ ॥ १४ ॥

॥ सिरीरागु महला १ ॥ चिते दिसहि धउलहर बगे बंक दुआर। करि मन खुसी उसारिआ दूजै हेति पिआरि। अंदरु खाली प्रेम बिनु ढहि ढेरी तनु छारु ॥ १ ॥ भाई रे तनु धनु साथि न होइ। रामनामु धनु निरमलो गुरु दाति करे प्रभु सोइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ रामनामु धनु निरमलो जे देवै देवणहारु। आगै पूछ न होवई जिसु बेली गुरु करतारु। आपि छडाए छुटीऐ आपे बखसणहारु ॥ २ ॥ मनमुखु जाणै आपणे धीआ पूत संजोगु। नारी देखि विगासीअहि नाले हरखु सु सोगु। गुरमुखि सबदि रंगावले अहिनिसि हरिरसु भोगु ॥ ३ ॥ चितु चलै वितु जावणो साकत डोलि डोलाइ। बाहरि ढूंढि विगुचीऐ

घर महि वसतु सुथाइ । मनमुखि हउमै करि मुसी गुरमुखि पलै पाइ ॥ ४ ॥ साकत निरगुणिआरिआ आपणा मूलु पछाणु । रकतु बिंदु का इहु तनो अगनी पासि पिराणु । पवणै कै वसि देहुरी मसतकि सचु नीसाणु ॥ ५ ॥ बहुता जीवणु मंगीऐ मुआ न लोड़ै कोइ । सुख जीवणु तिसु आखीऐ जिसु गुरमुखि वसिआ सोइ । नाम विहूणे किआ गणी जिसु हरिगुर दरसु न होइ ॥६॥ जिउ सुपनै निसि भुलीऐ जबलगि निद्रा होइ । इउ सरपनि कै वसि जीअड़ा अंतरि हउमै दोइ । गुरमति होइ वीचारीऐ सुपना इहु जगु लोइ ॥ ७ ॥ अगनि मरै जलु पाईऐ जिउ बारिक दूधै माइ । बिनु जल कमल सु ना थीऐ बिनु जल मीनु मराइ । नानक गुरमुखि हरिरसि मिलै जीवा हरिगुण गाइ ॥ ८ ॥ १५ ॥

जैसे चित्र-लिखे महल या भवन हों, उनके श्वेत और आकर्षक द्वार भी दीख पड़ें (परन्तु यदि उनमें कोई रहता न हो, तो वे व्यर्थ हैं), जैसे शरीर को ख़ूब पौष्टिक ढंग से पोषित किया हो और बाहर से अलंकृत भी हो, किन्तु यह सब प्रभु के अतिरिक्त किसी अन्य (माया) के प्रेम में किया हो, तो वह प्रेम-विहीन शरीर खण्डहर के समान नष्ट-प्राय ही समझा जाना चाहिए ॥ १ ॥ हे मेरे भाई, शरीर और धन सदैव साथ नहीं देते। निर्मल और स्थायी धन राम-नाम का है, जो कि वाहिगुरु से मिलता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ देनेवाला यदि कृपा करके दे, तो एकमात्र निर्मल धन हरि-नाम ही है। जिसे गुरु-कर्त्तार का सहारा मिल जाता है उसके लिए आगे कोई प्रतिरोध नहीं रह जाता (अर्थात् सचखण्ड-प्रवेश के लिए उसे कोई बाधा नहीं रह जाती)। उस क्षमाशील प्रभु के द्वारा बन्धन-मुक्त किए जाने पर ही जीव मोक्ष-लाभ करता है ॥ २ ॥ प्रकृति के संयोग से एकत्रित हुए बेटी-बेटों को मनमुखी जीव अपनी रचना मान बैठता है। स्त्रियों को देखकर वह प्रफुल्लित हो उठता है, उसे हर्ष-शोक दोनों का सामना करना पड़ता है। किन्तु (दूसरी ओर) गुरु-शब्दों के रंग में रंगीन गुरुमुख जीव रात-दिन हरि के प्रेम-रस का भोग करते हैं ॥ ३ ॥ धन के नष्ट होने पर माया के उपासक जीव का चित्त तो डोलायमान होता ही है। वास्तविक कोष तो हृदय सरीखी सुन्दर जगह पर संगृहीत है, किन्तु (मनमुखी जीव) बाहर खोजते-खोजते अपनी शक्ति का व्यर्थ क्षय करता है। मनमुखी जीव अहंकार के कारण लुट जाता है, गुरमुख जीव विनम्रता और समर्पण के कारण उस परम धन को प्राप्त कर लेता है ॥४॥ अतः, ऐ गुणहीन मायाधारी जीव, तू अपने मूल की पहचान कर। तुम्हारा शरीर माता-पिता के शुक्र और वीर्य की रचना है और इसका अन्त अग्नि

में जलकर राख हो जाने में है। सबकी यह नियति है (अर्थात् सब के माथे पर यह चिह्न विद्यमान है) कि शरीर का आधार प्राण का पवन ही है ॥ ५ ॥ इसी पर सब अधिक समय तक जीना चाहते हैं, कोई मरना नहीं चाहता, किन्तु उसी का जीवन सुखी कहा जा सकता है, जिस गुरुमुख के मन में प्रभु स्वयं वास करता है। नाम-विहीन जीव का क्या महत्व है ? उसे कभी हरि या सतिगुरु के दर्शन नहीं हो पाते ॥ ६ ॥ ज्यों रात्रि के सपने में मनुष्य तभी तक भूला रहता है, जब तक वह निद्रा-मग्न होता है, इसी प्रकार यह जीव माया-रूपी सर्पिणी के वश में है और उसके भीतर अहंकार और द्वैत-भाव दोनों मौजूद हैं। अतः जीव को गुरु के उपदेशानुसार इस संसार को स्वप्नवत् ही जानना चाहिए ॥ ७ ॥ जैसे अग्नि जल डालने से शमित होती है, बालक माता का दुग्ध-पान कर शान्त होता है, जल के बिना कमल मुरझा जाते हैं, मछलियाँ मर जाती हैं; गुरुजी कहते हैं कि वैसे ही (प्रेमी जीव) हरि-रस का पान करके सन्तुष्ट होता है, उसी के नाम-जाप में लीन होकर जीता है ॥ ८ ॥ १५ ॥

॥ सिरीरागु महला १ ॥ डूंगरु देखि डरावणो पेईअड़ै डरीआसु। ऊचउ परबतु गाखड़ो ना पउड़ी तितु तासु। गुरमुखि अंतरि जाणिआ गुरि मेली तरीआसु ॥ १ ॥ भाई रे भवजलु बिखमु डरांउ। पूरा सतिगुरु रसि मिलै गुरु तारे हरिनाउ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ चला चला जे करी जाणा चलणहारु। जो आइआ सो चलसी अमरु सु गुरु करतारु। भी सचा सालाहणा सचै थानि पिआरु ॥ २ ॥ दर घर महला सोहणे पके कोट हजार। हसती घोड़े पाखरे लसकर लख अपार। किसही नालि न चलिआ खपि खपि मुए असार ॥ ३ ॥ सुइना रुपा संचीऐ मालु जालु जंजालु। सभ जग महि दोही फेरीऐ बिनु नावै सिरि कालु। पिंडु पड़ै जीउ खेलसी बदफैली किआ हालु ॥ ४ ॥ पुता देखि विगसीऐ नारी सेज भतार। चोआ चंदनु लाईऐ कापड़ु रूपु सीगारु। खेहू खेह रलाईऐ छोडि चलै घर बारु ॥ ५ ॥ महर मलूक कहाईऐ राजा राउ कि खानु। चउधरी राउ सदाईऐ जलि बलीऐ अभिमान। मनमुखि नामु विसारिआ जिउ डवि दधा कानु ॥ ६ ॥ हउमै करि करि जाइसी जो आइआ जग माहि। सभु जगु काजल कोठड़ी तनु मनु देह सुआहि। गुरि राखे से निरमले सबदि निवारी भाहि ॥ ७ ॥ नानक तरीऐ सचि नामि सिरि साहा पातिसाहु।

मै हरिनामु न वीसरै हरिनामु रतनु वेसाहु । मनमुख भउजलि पचि मुए गुरमुखि तरे अथाहु ॥ ८ ॥ १६ ॥

[जीव-रूपी स्त्री संसार-पीहर में पति-वियोग सहन कर रही है । वह समझती है कि पति कहीं पहाड़ों की ओट में छिपा हुआ है । वह भयानक पहाड़ों को देख-देख कर घबराती है; यही सोच रही है कि वह पति तक क्योंकर पहुँच सकेगी । तभी गुरु मिलता है, उसे पति-परमेश्वर के हृदय में ही निवासित होने का ज्ञान करवाता है । स्त्री पति को पा लेती है—उसका भय निर्मूल सिद्ध होता है ।]

(आत्मा-रूपी स्त्री कहती है) मैं पीहर में बैठी पर्वतों की जटिलता देखकर डर रही हूँ । पर्वत ऊँचा है, चढ़ना कठिन है । वहाँ पहुँचने के लिए कोई सीढ़ी भी नहीं । (किन्तु) गुरु ने मुझे बता दिया है कि मेरा पति (परमेश्वर) मेरे अन्तर में ही वास करता है; उसने मुझे उससे मिलाप करवा दिया है और अब तो मैं (संसार-सागर) तिर गई हूँ ॥ १ ॥ हे भाई, संसार-सागर बड़ा कठिन और भयानक है । किन्तु यदि सतिगुरु प्रसन्नतापूर्वक हरि-नाम का आसरा दे, तो मुक्ति में कोई बाधा नहीं रह जाती ॥ १ ॥ रहाउ ॥ यदि मैं मृत्यु को सदैव याद रखूँ और संसार को नश्वर मानकर यह विश्वास बना लूँ कि जो पैदा हुआ है, वह मृण्मयी है; केवल गुरु कर्त्तार ही अमर है, तभी सत्य से मेरा प्यार बनेगा और मैं प्रभु के दरबार की चाहवान बनूँगी ॥ २ ॥ यदि (मनुष्य के पास) भवन, भव्य महल और बड़े-बड़े दुर्ग भी हों; हाथी-घोड़े पालकियाँ और लाखों की सेना हो, तो क्या ये साथ जा सकते हैं ? बेसमझ लोग व्यर्थ ही इनके लिए जूझ-जूझकर मरते हैं ॥ ३ ॥ कोई कितना सोना-चाँदी इकट्ठा कर ले, अन्ततः यह माल जीव को फँसाने के ही काम आता है । यदि जग में मनुष्य की श्रेष्ठता का ढिंढोरा पिट जाय, तो भी नाम की कमाई के बिना सिर पर काल (मृत्यु) बना ही रहता है । शरीर का खेल समाप्त होने पर जीव भी अपनी क्रीड़ा समाप्त कर देता है, तब दुष्कर्मियों का क्या हाल होगा ?॥ ४ ॥ स्त्री, पुत्रों को देखकर प्रसन्न होती है; पति, पत्नी को सेज पर देखकर ख़ुश होता है । शरीर को सुगन्धि और चन्दन लगाकर, सुन्दर कपड़ों और रूप-यौवन से सजाते हैं, किन्तु जब जीव इसे छोड़कर चला जाता है तो शरीर की मिट्टी, मिट्टी में मिला दी जाती है ॥ ५ ॥ हम चौधरी, राजा या अफ़सर कहलवाने की कामना करते हैं । चौधरी, राजा आदि कहलवाकर हम अभिमान की अग्नि में जल जाते हैं । तब हम नाम-विस्मृत किए हुए मनमुखी जीव होते हैं जिनकी दशा जंगल की अग्नि में जले सरकण्डे जैसी होती है ॥ ६ ॥ जो भी इस संसार में आया है, अभिमान का खेल खेलकर चला जाता है । यह संसार काजल-कोठरी के समान है, जो भी इसमें आता है, उसका तन-मन राख हो जाता है । जिन जीवों की तृष्णा-अग्नि गुरु ने शब्द द्वारा बुझा दी है, वे ही निर्मल

और अमर होते हैं ॥ ७ ॥ बादशाहों के बादशाह उस परमात्मा के नाम से ही (नानक) तिर गया है। हे प्रभु कृपा कर, ताकि मेरा ख़रीदा हुआ हरिनाम-रूपी अमूल्य रत्न कभी मुझसे जुदा न हो। (सच है कि) मनमुख संसार-सागर में (मायाबद्ध होने के कारण) नष्ट हो जाते हैं, किन्तु गुरुमुख मुक्ति प्राप्त करते हैं ॥ ८ ॥ १६ ॥

॥ सिरीरागु महला १ घरु २ ॥ मुकामु करि घरि बैसणा नित चलणै की धोख। मुकामु ता परु जाणीऐ जा रहै निहचलु लोक ॥१॥ दुनीआ कैसि मुकामे। करि सिदकु करणी खरचु बाधहु लागि रहु नामे ॥१॥ रहाउ ॥ जोगी त आसणु करि बहै मुला बहै मुकामि। पंडित वखाणहि पोथीआ सिध बहहि देवसथानि ॥२॥ सुर सिध गण गंधरब मुनिजन सेख पीर सलार। दरि कूच कूचा करि गए अवरे भि चलणहार ॥ ३ ॥ सुलतान खान मलूक उमरे गए करि करि कूचु। घड़ी मुहति कि चलणा दिल समझु तूं भि पहूचु ॥ ४ ॥ सबदाह माहि वखाणीऐ विरला त बूझै कोइ। नानकु वखाणै बेनती जलि थलि महीअलि सोइ ॥ ५ ॥ अलाहु अलखु अगंमु कादरु करणहारु करीमु। सभ दुनी आवण जावणी मुकामु एकु रहीमु ॥ ६ ॥ मुकामु तिसनो आखीऐ जिसु सिसि न होवी लेखु। असमानु धरती चलसी मुकामु ओही एकु ॥ ७ ॥ दिन रवि चलै निसि ससि चलै तारिका लख पलोइ। मुकामु ओही एकु है नानका सचु बुगोइ ॥ ८ ॥ १७ ॥ महले पहिले सतारह असटपदीआ।

जीव दुनियावी घर को ही अपना स्थायी ठिकाना समझता है, उसे यहाँ से चले जाने (मृत्यु) की भीति भी सदैव बनी रहती है। यह घर तो तभी स्थायी माना जा सकता है, जब यह संसार अनश्वर हो ॥ १ ॥ यह जगत स्थायी क्योंकर हो सकता है? इसलिए (आगे तो चलना ही है) श्रद्धायुक्त होकर सदाचरण की कमाई करो और हरिनाम में लीन रहो (यही पूँजी मार्ग-व्यय का काम देगी) ॥ १ ॥ रहाउ ॥ योगी आसन लगाता है, मुल्ला तकिया बनाता है, पण्डित (अपनी जगह) बैठा पोथी विचारता है और सिद्ध देव-मन्दिरों में आसन जमाते हैं ॥ २ ॥ (परन्तु वे भूलते हैं कि) देवता, शिव-गण, गन्धर्व, ऋषि-मुनि और शेख़, पीर, सरदार, ये सब अपनी-अपनी बारी से मृत्यून्मुखी हुए और उन्हें भी चले ही जाना है ॥ ३ ॥ जब बड़े-बड़े सम्राट, ख़ान, बादशाह और धन-कुबेर सब संसार छोड़ गए, तो ऐ मन, तू भी समझ ले कि घड़ी-दो-घड़ी में (एक दिन) यहाँ

से जाना ही पड़ेगा ॥ ४ ॥ (यह तथ्य) गुरु-शब्द में ज्ञातव्य है, किन्तु कोई विरल ही इसे समझ पाता है। गुरुजी विनती करते हैं कि वह परमात्मा तो जल-थल और धरती-आकाश सब जगह व्याप्त है ॥ ५ ॥ अमरता केवल अल्लाह में है, वह अदृश्य, अगम, कर्ता और कृपालु है। वह दीनदयालु परमात्मा ही स्थिर है, शेष समूचा संसार मरणशील मानो ॥ ६ ॥ स्थिर केवल वही हो सकता है, जिसके शीश पर कर्मों का आलेख नहीं। यह सब धरती, आकाश नष्ट हो जाएँगे, केवल वही एक (प्रभु) ही स्थिर रहेगा ॥ ७ ॥ दिन में चमकनेवाला सूर्य, रात्रि का चन्द्र और लाखों सितारे चलायमान हैं, केवल वह प्रभु ही स्थिर है, यह अटल सत्य है ॥ ८ ॥ १७ ॥ महला पहला की सत्रह अष्टपदियाँ ॥

सिरीरागु महला ३ घरु १ असटपदीआ

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ गुरमुखि क्रिपा करे भगति कीजै बिनु गुर भगति न होइ। आपै आपु मिलाए बूझै ता निरमलु होवै कोइ। हरि जीउ सचा सची बाणी सबदि मिलावा होइ ॥ १ ॥ भाई रे भगतिहीणु काहे जगि आइआ। पूरे गुर की सेव न कीनी बिरथा जनमु गवाइआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ आपे हरि जगजीवनु दाता आपे बखसि मिलाए। जीअ जंत ए किआ वेचारे किआ को आखि सुणाए। गुरमुखि आपे दे वडिआई आपे सेव कराए ॥ २ ॥ देखि कुटंबु मोहि लोभाणा चलदिआ नालि न जाई। सतिगुरु सेवि गुणनिधानु पाइआ तिसकी कीम न पाई। प्रभु सखा हरि जीउ मेरा अंते होइ सखाई ॥ ३ ॥ पेईअड़ै जग जीवनु दाता मनमुखि पति गवाई। बिनु सतिगुर को मगु न जाणै अंधे ठउर न काई। हरिसुखदाता मनि नही वसिआ अंति गइआ पछुताई ॥ ४ ॥ पेईअड़ै जगजीवनु दाता गुरमति मंनि वसाइआ। अनदिनु भगति करहि दिनु राती हउमै मोहु चुकाइआ। जिसु सिउ राता तैसो होवै सचे सचि समाइआ ॥ ५ ॥ आपे नदरि करे भाउ लाए गुरसबदी बीचारि। सतिगुरु सेविऐ सहजु ऊपजै हउमै त्रिसना मारि। हरि गुणदाता सद मनि वसै सचु रखिआ उरधारि ॥ ६ ॥ प्रभु मेरा सदा निरमला मनि निरमलि पाइआ जाइ। नामु निधानु हरि मनि वसै हउमै दुखु सभु जाइ। सतिगुरि सबदु सुणाइआ हउ सद

बलिहारै जाउ ॥ ७ ॥ आपणै मनि चिति कहै कहाए बिनु गुर आपु न जाई । हरि जीउ भगतिवछलु सुखदाता करि किरपा मंनि वसाई । नानक सोभा सुरति देइ प्रभु आपे गुरमुखि दे वडिआई ॥ ८ ॥ १ ॥ १८ ॥

[म० ३, श्री गुरु अमरदास जी की आगामी सभी अष्टपदिओं का विषय ईश्वर-भक्ति के बिना जीवन की व्यर्थता दर्शाने का है । भक्ति-भाव सतिगुरु से प्राप्त होता है, यह भी कुछ पदों में व्यक्त है ।]

सतिगुरु की कृपा से ही भक्ति-भाव प्राप्त होता है, गुरु-विहीन जीव भक्ति से वंचित रहता है । यदि गुरु-कृपा-वश जीव को अपने संग मिलाए, तभी वह रहस्य समझने के योग्य होता है और संसार के कीच से निर्मल रह सकता है । परमात्मा सत्य-स्वरूप है, उसकी वाणी भी सत्य है, किन्तु उसकी उपलब्धि गुरु-शब्दों (उपदेशों) द्वारा ही सम्भव है ॥ १ ॥ हे भाई, यदि जीवन को भक्ति-हीन ही रखना था, तो इस जगत में जन्म ही क्यों लिया ? इस जीवन में यदि गुरु की सेवा नहीं की (अर्थात् गुरु के उपदेशानुसार जीवन-यापन नहीं किया), तो मानव-जीवन को ही व्यर्थ समझो ॥ १ ॥ रहाउ ॥ परमात्मा ही स्वयं इस विश्व का पालनहार है और वही कृपा करके जीव को गुरु से मिला देता है । इन बेचारे जीव-जन्तुओं के हाथ क्या है ? वे क्या कह सकते हैं (अर्थात् वे अल्पज्ञ हैं), सर्वज्ञ परमात्मा का रहस्य उन्हें ज्ञात नहीं । सच्चा गुरु जीव को नाम की सार्थकता प्रदान करता है और स्वयं ही उसे सेवा का बल देता है ॥ २ ॥ यह मोह-बिद्ध जीव कुटुम्ब के चक्करों में लुभायमान हुआ है, किन्तु कुटुम्ब किसी का साथ नहीं देता (मृत्यु के समय परिवार का कोई सदस्य साथ नहीं मरता) । जीव गुरु की सेवा द्वारा वाहिगुरु (परमात्मा) को प्राप्त करता है, किन्तु उसका सही महत्त्व नहीं आँक पाता । (तात्पर्य यह कि वाहिगुरु को प्राप्त करनेवाला जीव उसी में लीन हो जाता है, इसलिए प्रभु का महत्त्वांकन नहीं कर सकता) । सच्चा मित्र, वह परमात्मा ही है, वही अन्तिम समय सहायक हो सकता है ॥ ३ ॥ संसार को जीवन देनेवाला प्रभु इसी लोक में रहते हुए प्राप्त किया जा सकता था, किन्तु जीव ने मनमुख होकर अपनी प्रतिष्ठा खो दी है । बिना सतिगुरु कोई जीव प्रभु-पथ को नहीं जान पाता, वह अज्ञानान्ध रहकर परलोक में स्थान-विहीन ही रह जाता है । उसके मन में सुख-दाता प्रभु कभी वास नहीं कर पाता और वह अन्त में पश्चाताप करता रह जाता है (कि मनुष्य-जन्म लेकर भी क्यों प्रभु-भक्ति न की) ॥ ४ ॥ ज्ञानवान् जीव गुरु के उपदेशानुकूल इसी लोक में उस विश्व-प्राण परमात्मा को अपने मन में रमा लेता है और अहंकार तथा मोह का त्याग करके रात-दिन उसकी भक्ति करता है । वह

परमात्मा के रंग में रंगीन हो जाता है और सच्चे परमात्मा का ही रूप हो बनता है ।। ५ ।। परमात्मा की विशेष कृपा के फल-स्वरूप ही जीव में प्रेम उपजता है और वह गुरु के उपदेशानुसार तत्त्व-चिन्तन करने में समर्थ होता है । (गुरु के उपदेशों के अनुसार जीवन-यापन ही गुरु-सेवा है) अहंकार और तृष्णा को मारकर जीव जब गुरु-सेवा में लीन होता है, तभी तुरीयापद का अधिकारी बनता है । जो जीव सत्यनाम को हृदय में धारण करते हैं, उन्हीं के मन में सदैव वाहिगुरु निवास करता है ।। ६ ।। परमात्मा सदैव निर्मल है और केवल निर्मल चित्त में ही उसकी स्थिति होती है । जब जीव (मन में) भगवान का नाम धारण कर लेता है तो अहंकार-बद्ध सभी दु:खों का आमूल नष्ट हो जाता है । अत:, मैं उस सतिगुरु पर सदा बलिहार हूँ, जो प्रभु-प्राप्ति के आधार-रूप में उपदेशामृत प्रदान करता है ।। ७ ।। जीव के अन्तर्मन का अहंकार कहने-कहलाने अथवा पढ़ने-पढ़ाने से शेष नहीं होता; गुरु के बिना अहम् का कोई अन्त नहीं । हरि स्वयं भक्त-वत्सल हैं, जिस पर दया करते हैं, उसी के चित्त में निवास करते हैं । गुरुजी कहते हैं कि वाहिगुरु स्वयं ही कृपा-वश जीव को अपने निकट (अपने दरबार में) प्रतिष्ठित और सुशोभित करता है ।। ८ ।। १ ।। १८ ।।

।। सिरीरागु महला ३ ।। हउमै करम कमावदे जमडंडु लगै तिन आइ । जि सतिगुरु सेवनि से उबरे हरि सेती लिव लाइ ।। १ ।। मन रे गुरमुखि नामु धिआइ । धुरि पूरबि करतै लिखिआ तिना गुरमति नामि समाइ ।। १ ।। रहाउ ।। विणु सतिगुर परतीति न आवई नामि न लागो भाउ । सुपनै सुखु न पावई दुख महि सवै समाइ ।। २ ।। जे हरि हरि कीचै बहुतु लोचीऐ किरतु न मेटिआ जाइ । हरि का भाणा भगती मंनिआ से भगत पए दरि थाइ ।। ३ ।। गुरु सबदु दिड़ावै रंग सिउ बिनु किरपा लइआ न जाइ ।। जे सउ अंम्रितु नीरीऐ भी बिखु फलु लागै धाइ ।। ४ ।। से जन सचे निरमले जिन सतिगुर नालि पिआरु । सतिगुर का भाणा कमावदे बिखु हउमै तजि विकारु ।। ५ ।। मनहठि कितै उपाइ न छूटीऐ सिम्रिति सासत्र सोधहु जाइ । मिलि संगति साधू उबरे गुर का सबदु कमाइ ।।६।। हरि का नामु निधानु है जिसु अंतु न पारावारु । गुरमुखि सेई सोहदे जिन किरपा करे करतारु ।। ७ ।। नानक दाता एकु है दूजा अउरु न कोइ । गुरपरसादी पाईऐ करमि परापति होइ ।। ८ ।। २ ।। १९ ।।

जो जीव अहंकार में बँधे कर्म करते हैं, उन्हें यम-यातना सहना पड़ती है अर्थात् वह निरन्तर जन्म-मरण की चक्की में पिसते हैं। (इसके विपरीत) जो लोग सतिगुरु के उपदेश को स्वीकार करते एवं प्रभु-नाम में चित्त लगाते हैं, वे यम-यातना से सुरक्षित हो जाते हैं ॥ १ ॥ हे मन, गुरु-शिक्षा के माध्यम से नाम का ध्यान कर; (क्योंकि) जिनके भाग्य में प्रारब्ध के फल के नाते कर्त्ता (प्रभु) ने पहले से उत्कर्ष लिखा है, वे ही गुरु-उपदेशानुसार नाम के निमित्त नामी (परमेश्वर) में समा जाते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सतिगुरु के बिना जीव के मन में विश्वास पैदा नहीं होता और न ही वह ईश्वर के नाम में प्रेम-लीनता प्राप्त कर सकता है। वह स्वप्न में भी सुख-लाभ नहीं करता, सदैव दुःख भोगता हुआ ही वह मृत्यून्मुखी होता है ॥ २ ॥ यदि मन्दभागी जीव को परमात्मा के प्रति लीनता का उपदेश किया जाय, सुख पहुँचाने के भी प्रयास हों, तो भी प्रारब्ध मिट नहीं सकती (अर्थात् पूर्व-जन्म के बुरे कर्म उसे प्रभु-नाम में लीन नहीं होने देंगे।) जिन भक्तों ने हरि-आज्ञा का सही पालन किया, वे ही परमेश्वर के द्वार पर स्वीकृत हुए ॥ ३ ॥ सतिगुरु बड़े प्रेम से जीव को उपदेश देते हैं किन्तु प्रभु-कृपा के बग़ैर वह भी सम्भव नहीं। सैकड़ों बार अमृत से सींचने पर भी विष-वृक्ष पर विष का ही फल लगता है (अर्थात् यदि कड़वा फल देनेवाले किसी पेड़ को सैकड़ों बार भी अमृत से सींच दिया जाय, तो भी उसका फल सदैव कड़वा ही रहता है। आशय यह कि मनमुखी जीव को सैकड़ों बार हरि-स्मरण में लगाओ, तो भी वह मन्दभागी दुष्कर्मों में ही प्रवृत्त होता है।) ॥ ४ ॥ सतिगुरु से हार्दिक प्रेम करनेवाले जीव सचमुच निर्मल हो जाते हैं। वे अहंकार का विष त्यागकर गुरु के आज्ञा-पालन में ही प्रवृत्त रहते हैं ॥ ५ ॥ सतिगुरु की कृपा के बग़ैर मन के हठ से किए गए किसी भी उपाय से जीव का छुटकारा नहीं हो सकता—विश्वास न हो तो स्मृति शास्त्रादि प्रामाणिक ग्रन्थों में देख लो। केवल साधु-जनों की संगति में गुरु-उपदेशानुसार आचरण करने से ही जीव का कल्याण सम्भव है ॥ ६ ॥ हरि का नाम अपरिमित भण्डार है, उसका कोई अन्त या पारावार नहीं। जिन पर परमात्मा की दया होती है वे ही गुरुमुख कहलाते हैं और प्रभु के दरबार में प्रतिष्ठित होते हैं ॥ ७ ॥ गुरुजी कहते हैं कि सब जीवों का एक ही दाता है, (वही सर्वस्व प्रदान करता है), उसके अतिरिक्त और कोई नहीं। परमेश्वर की प्राप्ति गुरु-कृपा से होती है और गुरु की उपलब्धि उत्तम कर्मों से सम्भव है ॥ ८ ॥ २ ॥ १९ ॥

॥ सिरीरागु महला ३ ॥ पंखी बिरखि सुहावड़ा सचु चुगै गुर भाइ। हरिरसु पीवै सहजि रहै उडै न आवै जाइ। निजघरि वासा पाइआ हरि हरि नामि समाइ ॥ १ ॥ मन रे

गुर की कार कमाइ। गुर कै भाणै जे चलहि ता अनदिनु राचहि हरिनाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ पंखी बिरख सुहावड़े ऊडहि चहु दिसि जाहि। जेता ऊडहि दुख घणे नित दाझहि तै बिललाहि। बिनु गुर महलु न जापई ना अंम्रित फल पाहि ॥ २ ॥ गुरमुखि ब्रहमु हरीआवला साचै सहजि सुभाइ। साखा तीनि निवारीआ एक सबदि लिव लाइ। अंम्रित फलु हरि एकु है आपे देइ खवाइ ॥ ३ ॥ मनमुख ऊभे सुकि गए ना फलु तिंना छाउ। तिंना पासि न बैसीऐ ओना घरु न गिराउ। कटीअहि तै नित जालीअहि ओन्हा सबदु न नाउ ॥ ४ ॥ हुकमे करम कमावणे पइऐ किरति फिराउ। हुकमे दरसनु देखणा जह भेजहि तह जाउ। हुकमे हरि हरि मनि वसै हुकमे सचि समाउ ॥ ५ ॥ हुकमु न जाणहि बपुड़े भूले फिरहि गवार। मनहठि करम कमावदे नित नित होहि खुआरु। अंतरि सांति न आवई ना सचि लगै पिआरु ॥ ६ ॥ गुरमुखीआ मुह सोहणे गुर कै हेति पिआरि। सची भगती सचि रते दरि सचै सचिआर। आए से परवाणु है सभ कुल का करहि उधारु ॥ ७ ॥ सभ नदरी करम कमावदे नदरी बाहरि न कोइ। जैसी नदरि करि देखै सचा तैसा ही को होइ। नानक नामि वडाईआ करमि परापति होइ ॥ ८ ॥ ३ ॥ २० ॥

शरीर-रूपी सुन्दर पेड़ पर बैठा जीवात्मा-रूपी पक्षी गुरु के प्रेम में तल्लीन होकर सत्य का फल चखता है। परमेश्वर का नामामृत पान करने के कारण वह सदैव चतुर्थ स्थिति (तुरीया पद) में रहता है और शरीर को त्यागकर इधर-उधर कहीं नहीं जाता (अर्थात् जन्म-मरण से मुक्त रहता है)। वह जीवन्मुक्ति को प्राप्त कर लेता है, इसलिए मृत्यूपरान्त हरिनाम में ही समा जाता है (नामी में लीन हो जाता है) ॥ १ ॥ हे मन, गुरु के बताए पथ पर चलो, (क्योंकि) जो जीव गुरु-आज्ञानुसार चलते हैं, वे रात-दिन परमेश्वर के नाम में अनुरक्त रहते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ अनेक शरीर-रूपी सुहाने पेड़ों पर निवसित जीवात्माएँ मन के संकल्प-विकल्पों के कारण इधर-उधर चतुर्दिक उड़ती हैं—जितना वे उड़ती हैं (अर्थात् मनमुखी होती हैं) उतना ही दुखी होती और विलाप करती हैं (उन्हें सत्य का सहारा नहीं मिलता, मन के संकल्पों-विकल्पों में पीड़ित रहती हैं)। गुरु के पद-प्रदर्शन के बिना जीव-रूपी पक्षी (कितना भी इधर-उधर भटकें) परमाश्रय को प्राप्त नहीं कर सकते और न ही उन्हें

मुक्ति-रूपी अमृत-फल की उपलब्धि होती है ।। २ ।। गुरुमुख ब्रह्मरूपी हरा-भरा वृक्ष होता है, जो सहज ही सत्य-स्वरूप हरि में लीन रहता है। (अन्य सब शरीर-रूपी पेड़ों की त्रिगुणात्मक—सत्, रज् और तम्—शाखाएँ होती हैं किन्तु) गुरु की ओर प्रवृत्त (गुरुमुख) जीव इन तीनों शाखाओं से ऊँचा उठकर एकमात्र प्रभु के नाम में मग्न रहता है। परमात्मा ही अमृत-फल है; गुरुमुख पुरुष ब्रह्म-रूप होकर स्वयं वह सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है कि वह विश्वास लानेवालों को उस फल का रसास्वादन करवा सके ।। ३ ।। मनमुखी जीव (मन के संकल्प-विकल्पों में प्रवृत्त) ऐसे पेड़ हैं जो खड़े-खड़े सूख जाते हैं, किन्तु उनमें (अमृत-)फल और (शान्तिदायी) छाया नहीं होते। उन मनमुखी अज्ञानी जीवों की संगति भी नहीं करनी चाहिए, क्योंकि उनका घर और गाँव कहीं नहीं होता (अर्थात् उन्हें स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती और न ही सतिसंगति-रूपी उनका कोई ठिकाना होता है)। ये मनमुखी जीव नित्य जलाने योग्य लकड़ियों के समान काटे और जलाये जाते हैं (जन्म-मरण की पीड़ा सहन करते हैं), क्योंकि उनके पास न तो गुरु का उपदेश होता है, न हरिनाम के स्मरण की पूँजी ।। ४ ।। सब जीव ईश्वर के हुकुम से ही कर्म करते हैं और अपने प्रारब्ध के अनुसार उत्तम-अधम योनियों में भ्रमते हैं। परमात्मा के हुकुम से ही गुरुमुख पुरुष हरि-दर्शन के अधिकारी होते हैं और उसकी इच्छा के अनुकूल ही सब जीव योनि धारण करते हैं। प्रभु-इच्छा से ही हरि-नाम मन में वसित होता है और उसकी आज्ञा से ही कोई उसी के सत्यस्वरूप में समा जाता है ।। ५ ।। जो बेचारे मूढ़ हुकुम को नहीं पहचानते और उसके अनुसार नहीं चलते, वे ही भ्रम में पड़े जन्म-मरण का चक्कर भोगते हैं। वे मन के संकल्पों में पड़े अनुचित कार्य करते हैं और सदैव दुःखी होते हैं। उनके मन में कभी धैर्य और शान्ति नहीं होती, वे परमसत्य से प्यार नहीं कर पाते ।। ६ ।। गुरुमुख जीवों के मुख आलोकित होते हैं, वे अपने सतिगुरु से अनुपम प्रेम करते हैं। वे परमसत्य की भक्ति में लीन रहते हैं और परमपुरुष के दरबार में वे (गुरुमुख) सत्यवादी रूप में प्रतिष्ठित होते हैं। उनका संसार में जन्म लेना सफल है, वे अपने समूचे परिवार का उद्धार करने में समर्थ होते हैं ।। ७ ।। जीवों का प्रत्येक कर्म प्रभु की दृष्टि में है, उसकी नज़र से बचकर कोई कुछ नहीं कर सकता। परन्तु वह सत्पुरुष जिस पर जैसी दृष्टि रखता, वह वैसा ही कर्म करने लगता है (अर्थात् यदि कृपा-दृष्टि होती है तो जीव सद्गुणी कर्म करता है और यदि विकारी दृष्टि होती है तो जीव विकारोन्मुखी होता है)। गुरुजी कहते हैं कि हरि-नाम के उपासक को सब ओर आदर और प्रतिष्ठा ही मिलती है, किन्तु नाम की उपलब्धि ईश्वर-कृपा से होती है ।। ८ ।। ३ ।। २० ।।

।। सिरीरागु महला ३ ।। गुरमुखि नामु धिआईऐ मनमुखि बूझ न पाइ। गुरमुखि सदा मुख ऊजले हरि वसिआ मनि आइ। सहजे ही सुखु पाईऐ सहजे रहै समाइ ।। १ ।। भाई रे दासनिदासा होइ। गुर की सेवा गुरभगति है विरला पाए कोइ ।। १ ।। रहाउ ।। सदा सुहागु सुहागणी जे चलहि सतिगुर भाइ। सदा पिरु निहचलु पाईऐ ना ओहु मरै न जाइ। सबदि मिली ना वीछुड़ै पिर कै अंकि समाइ ।। २ ।। हरि निरमलु अति ऊजला बिनु गुर पाइआ न जाइ। पाठु पड़ै ना बूझई भेखी भरमि भुलाइ। गुरमती हरि सदा पाइआ रसना हरि रसु समाइ ।। ३ ।। माइआ मोहु चुकाइआ गुरमती सहजि सुभाइ। बिनु सबदै जगु दुखीआ फिरै मनमुखा नो गई खाइ। सबदे नामु धिआईऐ सबदे सचि समाइ ।। ४ ।। माइआ भूले सिध फिरहि समाधि न लगै सुभाइ। तीने लोअ विआपत है अधिक रही लपटाइ। बिनु गुर मुकति न पाईऐ ना दुबिधा माइआ जाइ ।। ५ ।। माइआ किस नो आखीऐ किआ माइआ करम कमाइ। दुखि सुखि एहु जीउ बधु है हउमै करम कमाइ। बिनु सबदै भरमु न चूकई ना विचहु हउमै जाइ ।। ६ ।। बिनु प्रीती भगति न होवई बिनु सबदै थाइ न पाइ। सबदे हउमै मारीऐ माइआ का भ्रमु जाइ। नामु पदारथु पाईऐ गुरमुखि सहजि सुभाइ ।। ७ ।। बिनु गुर गुण न जापनी बिनु गुण भगति न होइ। भगतिवछलु हरि मनि वसिआ सहजि मिलिआ प्रभु सोइ। नानक सबदे हरि सालाहीऐ करमि परापति होइ ।। ८ ।। ४ ।। २१ ।।

[उपर्युक्त अष्टपदी में प्रस्तुत भाव को यहाँ और अधिक विस्तार से समझाया गया है।]

प्रभु-कृपा से गुरुमुख जन हरि-भजन करते हैं, किन्तु मनमुखी अज्ञानांध होने के कारण सत्य के रहस्य को कभी समझ नहीं पाते। जिनके हृदय में परमात्मा स्वयं निवास करता है, उन गुरुमुखों के मुख उजले होते हैं; वे तुरीयावस्था में लीन होकर परमसुख को प्राप्त करते हैं और नित्य परमेश्वर में ही लीन रहते हैं ।। १ ।। हे भाई, प्रभु के दासों का भी दास बन। गुरु की सेवा (आज्ञा-पालन) ही गुरु-भक्ति है, किन्तु इसकी उपलब्धि किसी विरल जीव को ही होती है ।। १ ।। रहाउ ।। जो

जीव-स्त्री सतिगुरु के आदेशानुसार आचरण करती है, वह चिर सौभाग्यवती होती है। वह जन्म-मरण से अतीत अविनाशी परमेश्वर को प्राप्त कर लेती है। वह शब्द (गुरु-उपदेश) द्वारा प्रभु से मिलाप करती है, इसलिए उसे कभी वियोग नहीं होता। वह नित्य अपने पिया की अंक-शायिनी होती है ॥ २ ॥ परमात्मा निर्मल है, सर्वोच्च है, उसकी प्राप्ति गुरु के सहयोग के बिना सम्भव नहीं। सत्पुरुष की जानकारी (वेदों, शास्त्रों के) पाठ करने से नहीं होती, व्यर्थ के कृत्रिम वेषों के भ्रम में भूलने से कुछ भी प्राप्य नहीं; केवल सतिगुरु के उपदेश से ही परमात्मा लब्ध होता है और जीव की रसना नित्य हरि-रस का पान करने लगती है ॥ ३ ॥ गुरु-मुख जीव गुरु के उपदेशों के कारण सहज में ही माया-मोह से अतीत होता है। गुरु-उपदेश के बग़ैर सारा जगत दुःखी है, मनमुख जीवों को माया खाए जा रही है। गुरु-शब्दों से ही हरि-नाम का स्मरण एवं परमसत्य में लीनता सम्भव है ॥ ४ ॥ सिद्ध लोग अपनी सिद्धि के संकल्प के कारण माया के घेरे में ही भूले रहते हैं, उन्हें भी निर्विकल्प समाधि प्राप्त नहीं। (वास्तव में) माया का घेरा इतना व्याप्त है कि तीनों लोक इसके अन्तर्गत हैं, मनमुख जीव तो इसी में अनुरक्त रहते हैं। गुरु के बिना माया-दुविधा का अन्त करके कोई जीव मुक्ति-लाभ नहीं कर सकता ॥ ५ ॥ (अब प्रश्न उठता है कि) माया किसे कहते हैं और वह क्या कर्म करती है? (उत्तर देते हैं) इस विश्व में रहता जीव जिस सुख-दुःख के संकल्प में बँधा है, वही माया है और अहम्भाव की कल्पना ही उसका कर्म है। (पुनः प्रश्न उठा कि इससे मुक्ति क्योंकर हो? गुरुजी साथ ही स्पष्टीकरण करते हैं) गुरु-उपदेश के बग़ैर मन के संकल्प-विकल्प रूपी माया का अन्त सम्भव नहीं, अहम्भाव से भी तभी छुटकारा मिल सकता है। (अर्थात् माया और उसके उत्पादन अहंकार का निवारण केवल गुरु-भक्ति से ही सम्भव है।) ॥ ६ ॥ गुरु-भक्ति भी सच्चे प्रेम के बिना नहीं हो पाती और न ही गुरु-आज्ञा-पालन के बग़ैर जीव को स्व-स्वरूप की पहचान होती है। गुरु के उपदेशानुकूल आचरण द्वारा ही हम माया के भ्रम-जाल से बच सकते हैं, इसीसे अहंकार का अन्त होता है। गुरु में प्रवृत्त (गुरुमुख) जीव सहजभाव से गुरु-भक्ति में लीनता द्वारा हरि-नाम का अमूल्य पदार्थ प्राप्त करता है ॥ ७ ॥ गुरु के बिना उत्तम गुण नहीं उपजते और न ही विवेक, वैराग्य और अनुरागादि गुणों के अभाव में प्रभु-भक्ति हो सकती है। यदि जीव (गुणयुक्त होकर) प्रभु-भक्ति को प्राप्त करले तो स्वयं भक्त-वत्सल प्रभु उसके हृदय में निवास करने लगता है और जीव सहज ही प्रभु के साथ अभेद हो जाता है। (अन्त में पुनः) गुरुजी कहते हैं, गुरु-उपदेशों के अनुसार ही परमात्मा की प्रशस्ति (हरि-नाम-स्मरण) करनी चाहिए—(हाँ) सतिगुरु की प्राप्ति प्रारब्ध के उत्तम फलानुसार होती है ॥८॥४॥२१॥

॥ सिरीरागु महला ३ ॥ माइआ मोहु मेरै प्रभि कीना आपे भरमि भुलाए। मनमुखि करम करहि नही बूझहि बिरथा जनमु गवाए। गुरबाणी इसु जग महि चानणु करमि वसै मनि आए॥ १॥ मन रे नामु जपहु सुखु होइ। गुरु पूरा सालाहीऐ सहजि मिलै प्रभु सोइ॥ १ ॥ रहाउ॥ भरमु गइआ भउ भागिआ हरि चरणी चितु लाइ। गुरमुखि सबदु कमाईऐ हरि वसै मनि आइ। घरि महलि सचि समाईऐ जमकालु न सकै खाइ ॥२॥ नामा छीबा कबीरु जुोलाहा पूरे गुर ते गति पाई। ब्रहम के बेते सबदु पछाणहि हउमै जाति गवाई। सुरिनर तिन की बाणी गावहि कोइ न मेटै भाई॥ ३ ॥ दैत पुतु करम धरम किछु संजम न पड़ै दूजा भाउ न जाणै। सतिगुरु भेटिऐ निरमलु होआ अनदिनु नामु वखाणै। एको पड़ै एको नाउ बूझै दूजा अवरु न जाणै॥ ४॥ खटु दरसन जोगी संनिआसी बिनु गुर भरमि भुलाए। सतिगुरु सेवहि ता गति मिति पावहि हरि जीउ मंनि वसाए। सची बाणी सिउ चितु लागै आवणु जाणु रहाए॥ ५॥ पंडित पड़ि पड़ि वादु वखाणहि बिनु गुर भरमि भुलाए। लख चउरासीह फेरु पइआ बिनु सबदै मुकति न पाए। जा नाउ चेतै ता गति पाए जा सतिगुरु मेलि मिलाए॥ ६॥ सतसंगति महि नामु हरि उपजै जा सतिगुरु मिलै सुभाए। मनु तनु अरपी आपु गवाई चला सतिगुर भाए। सद बलिहारी गुर अपुने विटहु जि हरि सेती चितु लाए॥ ७॥ सो ब्राहमणु ब्रहमु जो बिंदे हरि सेती रंगि राता। प्रभु निकटि वसै सभना घट अंतरि गुरमुखि विरलै जाता। नानक नामु मिलै वडिआई गुर कै सबदि पछाता॥ ८॥ ५॥ २२॥

माया-मोहादि की रचना भी स्वयं प्रभु ने ही की है (जीव के पूर्व कर्मानुसार उसे दण्डित अथवा पुरस्कृत करने के लिए संकल्प-विकल्प की उत्पत्ति भी ईश्वर ने ही की है।) और सब जीवों को उसके भ्रम में भुला दिया है। मनमुखी जीव प्रमाद-वश उसी स्थिति को सत्य मानकर अज्ञान के अन्धकार में पड़े कर्म करते हैं और मनुष्य-जन्म को अकार्थ कर देते हैं। केवल गुरु का उपदेश ही उस अन्धकार का निवारण कर सकता है और यह परमालोक प्रभु-कृपा से उपलब्ध होता है॥ १॥ हे मन, प्रभु का नाम जपने से सुख प्राप्त होता है। गुरु के उपदेशों पर पूरा

आचरण करने से सहज ही ईश्वर से मिलन हो जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ परमात्मा के चरणों में मन रमाने से भ्रम और भय का नाश हो जाता है। जिज्ञासु जीव जब गुरु-कृपा से शब्द की साधना करता है तो उसके मन में स्वयं परमेश्वर निवास करते हैं। वह शरीर के भीतर ही प्रभु के सत्य-स्वरूप को पा लेता है और तब कालातीत हो जाता है (अर्थात् जन्म-मरण से मुक्त हो जाता है) ॥ २ ॥ छीपी जाति के नामदेव और जुलाहा मुसलमान कबीर ने भी सतिगुरु के सहारे मुक्ति प्राप्त कर ली (अर्थात् छोटी जाति के इन लोगों ने भी गुरु के उपदेशों से मुक्ति लाभ की—भाव यह कि सच्चा गुरु मिल जाने से प्रभु-प्राप्ति के मार्ग में जातिगत ऊँच-नीच बाधा नहीं बनती)। वे गुरु-शब्द की जानकारी पाकर ब्रह्मवेत्ता हुए और उन्होंने जातिगत गौरव या अहम्भाव का पूर्ण त्याग कर दिया। आज सुर-नर सब उनकी पावन वाणी का पाठ करते हैं, कोई उसमें अवरोध पैदा नहीं कर सकता ॥ ३ ॥ दैत्य (हिरण्यकश्यपु) का पुत्र (प्रह्लाद) न तो शास्त्रों का ज्ञाता था और न यज्ञ-व्रतादि नियमों का पालक; किन्तु (उसका सर्वोत्तम गुण था कि) वह द्वैत में विश्वास नहीं रखता था (अर्थात् उसका मन चंचल या अस्थिर नहीं था)। वह सतिगुरु से मिलाप (नारद मुनि के उपदेशों आदि) के ही कारण निर्मल-बुद्धि वाला हो गया था और रात-दिन अनवरत प्रभु-भजन में लीन रहता था। वह परमात्मा के नाम का निरन्तर स्मरण करता था, उसी में विश्वास रखता था, उसके चित्त में दूसरा भाव नहीं था ॥ ४ ॥ योगी संन्यासी आदि षट्दर्शनों के अध्येता होने पर भी गुरु के अभाव में भ्रम में भूले पड़े हैं। इनमें से जो सतिगुरु की सेवा का सौभाग्य पा लेता है (अर्थात् गुरु-आदेश के अनुसार आचरण करता है) वह अपने अन्तर में ही परमात्मा को खोजने में समर्थ होता है। उसका मन गुरु के सच्चे शब्द से संगुंठित हो जाता है और वह जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है ॥ ५ ॥ भ्रम में भूल गुरु-विहीन पण्डित शास्त्रादि पढ़कर वाद-विवाद करते हैं; किन्तु शब्द की कमाई के बग़ैर उन्हें मुक्ति प्राप्त नहीं होती—चौरासी लाख योनियों में भ्रमते रह जाते हैं। जब प्रभु-कृपा होती है तो सतिगुरु से मिलन होता है और जब सतिगुरु के उपदेशानुकूल आचरण किया जाता है, तो परमेश्वर का मिलाप सहज हो जाता है ॥ ६ ॥ यदि जीव को गुरु मिल जाय तो सत्संगति के कारण वह हरि-नाम-स्मरण कर पाता है। (अतः जीव को चाहिए कि) वह तन-मन सतिगुरु के चरणों में समर्पित करके सदैव उसकी आज्ञा में रहता हुआ कर्म करे। मैं तो अपने गुरु पर सदैव न्यौछावर हूँ, जिसने मेरे चित्त को परमात्मा में स्थिर किया है ॥ ७ ॥ (अब प्रश्न उठा कि चारों वर्गों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है तो क्या उसे गुरु के बिना मुक्ति मिलेगी ? गुरुजी उत्तर देते हैं) ब्राह्मण वही है जो ब्रह्म को पहचानता है और ब्रह्मज्ञान

की उपलब्धि गुरु के द्वारा ही होती है। सच्चा जीव परमात्मा के प्रेम में लीन रहता है। यों तो परमात्मा सब जीवों के अति निकट, उनके भीतर ही निवास करता है, किन्तु इस रहस्य की जानकारी किसी विरल जीव को ही होती है। गुरुजी कहते हैं कि परब्रह्म को पहचाननेवाले जीवों को सहज प्रतिष्ठा प्राप्त होती है ॥ ८ ॥ ५ ॥ २२ ॥

॥ सिरीरागु महला ३ ॥ सहजै नो सभ लोचदी बिनु गुर पाइआ न जाइ। पड़ि पड़ि पंडित जोतकी थके भेखी भरमि भुलाइ। गुरु भेटे सहजु पाइआ आपणी किरपा करे रजाइ ॥१॥ भाई रे गुर बिनु सहजु न होइ। सबदै ही ते सहजु ऊपजै हरि पाइआ सचु सोइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सहजे गाविआ थाइ पवै बिनु सहजै कथनी बादि। सहजे ही भगति ऊपजै सहजि पिआरि बैरागि। सहजै ही ते सुख साति होइ बिनु सहजै जीवणु बादि ॥ २ ॥ सहजि सालाही सदा सदा सहजि समाधि लगाइ। सहजे ही गुण ऊचरै भगति करे लिव लाइ। सबदे ही हरि मनि वसै रसना हरिरसु खाइ ॥ ३ ॥ सहजे कालु विडारिआ सच सरणाई पाइ। सहजे हरिनामु मनि वसिआ सची कार कमाइ। से वडभागी जिनी पाइआ सहजे रहे समाइ ॥ ४ ॥ माइआ विचि सहजु न ऊपजै माइआ दूजै भाइ। मनमुख करम कमावणे हउमै जलै जलाइ। जंमणु मरणु न चूकई फिरि फिरि आवै जाइ ॥ ५ ॥ त्रिहु गुणा विचि सहजु न पाईऐ त्रै गुण भरमि भुलाइ। पड़ीऐ गुणीऐ किआ कथीऐ जा मुंढहु घुथा जाइ। चउथे पद महि सहजु है गुरमुखि पलै पाइ ॥ ६ ॥ निरगुण नामु निधानु है सहजे सोझी होइ। गुणवंती सालाहिआ सचे सची सोइ। भुलिआ सहजि मिलाइसी सबदि मिलावा होइ ॥ ७ ॥ बिनु सहजै सभु अंधु है माइआ मोहु गुबारु। सहजे ही सोझी पई सचै सबदि अपारि। आपे बखसि मिलाइअनु पूरे गुर करतारि ॥ ८ ॥ सहजे अदिसटु पछाणीऐ निरभउ जोति निरंकारु। सभना जीआ का इकु दाता जोती जोति मिलावणहारु। पूरै सबदि सलाहीऐ जिसदा अंतु न पारावारु ॥ ९ ॥ गिआनीआ का धनु नामु है सहजि करहि वापारु। अनदिनु लाहा हरिनामु लैनि अखुट भरे भंडार। नानक तोटि न आवई दीए देवणहारि ॥ १० ॥ ६ ॥ २३ ॥

समूची सृष्टि सहज (सुख) को चाहती है, (उसके लिए जिस अध्यात्मज्ञान की अपेक्षा है), वह गुरु के बिना प्राप्त नहीं हो सकता। (उस ज्ञान की साधना में) बड़े-बड़े पण्डित, ज्योतिषी लोग वेद-शास्त्रादि पढ़-पढ़ थके, फिर भी आडम्बर के भ्रमों में भूले रहे। (केवल वे ही जीव) जिनपर ईश्वर ने दया की, सतिगुरु को पा सके और उसके उपदेशों पर आचरण करने से सहज (परमसुख) को भी प्राप्त कर गए ॥ १ ॥ हे भाई, गुरु की शरण के बग़ैर सहज ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। जिसने सत्यस्वरूप परमात्मा को पा लिया है, उसी गुरु के उपदेश से सहजोपलब्धि होती है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ प्रभु-प्रशस्ति भी ज्ञानयुक्त साधना से ही सफल है, बिना ज्ञान के कथनी मात्र (तोता-रटंत) व्यर्थ है। सहज ज्ञान में ही भक्ति के बीज रहते हैं, उसी में प्यार के कारण जीव संसार से विरत होकर प्रभु की ओर प्रवृत्त होता है। सहजावस्था में ही जीव की मूल शान्ति है, उसके बिना जीवन ही व्यर्थ है ॥ २ ॥ सहज ज्ञान से ही जीव भगवद्भक्ति में लीन होते हैं, योगीजन भी इसी शक्ति द्वारा समाधिस्थ होते हैं। ज्ञान द्वारा ही ईश्वर का गुण-गान सम्भव है, इसीसे दत्तचित्त होकर भक्ति की जाती है। गुरु के शब्दों (उपदेशों) से प्रभावित होकर जो जीव मन में ईश्वर को धारण करता है, वही हरि-रस का सही पान कर सकता है ॥ ३ ॥ परमसत्य परमेश्वर की शरण लेनेवाला जीव सहजावस्था में मृत्यु-भय से मुक्त हो जाता है। जब प्रभु का नाम जीव के चित्त में निवास करता है, तो वह सच्चा कार (उत्तम कर्म : भक्ति) करता है। ज्ञान को प्राप्त करनेवाले जीव भाग्यशाली होते हैं और वे निरन्तर प्रभु-नाम में लीन रहते हैं ॥ ४ ॥ मायावी जीव कभी सहज-ज्ञान को नहीं पा सकता; माया द्वैत-भाव को बढ़ाती है। मनमुखी जीव (मनःप्रेरित कार्यों में प्रवृत्त रहनेवाले) सदैव दुष्कर्मों में लीन रहते हैं और अहम्भाव के कारण ख़ुद जलते और दूसरों को जलाते हैं। वे कभी जन्म-मरण से निवृत्त (मुक्त) नहीं होते, पुनः पुनः जन्म लेते और मृत्यु को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥ मनुष्य का चित्त जब तक माया के तीनों गुणों (रजस्, तमस्, सत्) में लिप्त रहता है, वह सहज-ज्ञान का अधिकारी नहीं हो पाता; उक्त तीनों गुण भ्रान्ति पैदा करते हैं। ऐसे मनुष्य के पढ़ने-लिखने का ज्ञान भी बेकार होता है, क्योंकि वह जगत के मूल कारण (परमात्मा) को ही विस्मृत किए रहता है। वास्तव में सहज-ज्ञान उक्त तीनों गुणों से ऊपर चौथे पद पर लभ्य होता है, जिसकी प्राप्ति केवल गुरमुख को ही होती है (तात्पर्य यह कि जब जीव मनःप्रेरणाओं को संयत करके गुरु की आज्ञा में चलना सीखता है, तभी वह माया-प्रसूत तीनों गुणों पर विजयी होता और चौथे पद को प्राप्त करता है) ॥ ६ ॥ निर्गुण परमात्मा का सच्चा नाम ही मुक्तिदायक निधि है, उसकी सही जानकारी भी सहज-ज्ञान

से ही मिलती है। परम गुणवन्त प्रभु की स्तुति करनेवाले जीव श्रेष्ठ हैं, उनकी नित्य-शोभा होती है। भूले-भ्रमित जीव भी परमात्मा की प्रशस्ति द्वारा सहज के अधिकारी होते हैं, किन्तु उक्त सहज-ज्ञान की उपलब्धि गुरु-उपदेशों के पालन द्वारा ही सम्भव है ॥ ७ ॥ सद्ज्ञान के अभाव में मोह-माया के अन्धकार के कारण सब जीव अन्धे हो रहे हैं। उन्हें सत्य-स्वरूप परमात्मा की सही सूझ-बूझ सहज-ज्ञान से ही प्राप्त हो सकती है। प्रभु के अनुग्रह से ही सच्चा गुरु मिलता है, जो जीव को परमात्मा में संलग्न करता है ॥ ८ ॥ जिज्ञासु जीव सहज-ज्ञान द्वारा ही उस अदृष्ट, निर्भय, निरंकार ज्योति को पहचानता है। वह ईश्वर सब जीवों का एक-मात्र पोषक है, वही अपनी ज्योति द्वारा जीवों को प्रकाशित कर रहा है। उस ईश्वर की कोई सीमा या अन्त नहीं, वह सागर की नाईं गम्भीर और अपरिमित है, अतः गुरु के आदेशानुसार जीवों को उसका गुणगान करना चाहिए ॥ ९ ॥ ज्ञानवान् जीवों का मूलधन हरिनाम होता है, जिससे वे सहजावस्था में रहकर अध्यात्म-व्यापार करते हैं। इससे उन्हें रात-दिन प्रभु-भजन की नित्य अभिवृद्धिशील उपलब्धि होती है और उनके हृदय-भण्डार निरन्तर भरे रहते हैं। गुरु-कथन है कि उक्त भण्डार में कभी कमी नहीं होती, क्योंकि प्रभु स्वयं अनुग्रह-वश उस (भण्डार) को निरन्तर भरते रहते हैं ॥ १० ॥ ६ ॥ २३ ॥

॥ सिरीरागु महला ३ ॥ सतिगुरि मिलिऐ फेरु न पवै जनम मरण दुखु जाइ। पूरै सबदि सभ सोझी होई हरिनामै रहै समाइ ॥ १ ॥ मन मेरे सतिगुर सिउ चितु लाइ। निरमलु नामु सद नवतनो आपि वसै मनि आइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हरि जीउ राखहु अपुनी सरणाई जिउ राखहि तिउ रहणा। गुर कै सबदि जीवतु मरै गुरमुखि भवजलु तरणा ॥ २ ॥ वडै भागि नाउ पाईऐ गुरमति सबदि सुहाई। आपे मनि वसिआ प्रभु करता सहजे रहिआ समाई ॥ ३ ॥ इकना मनमुखि सबदु न भावै बंधनि बंधि भवाइआ। लख चउरासीह फिरि फिरि आवै बिरथा जनमु गवाइआ ॥ ४ ॥ भगता मनि आनंदु है सचै सबदि रंगि राते। अनदिनु गुणु गावहि सद निरमल सहजे नामि समाते ॥ ५ ॥ गुरमुखि अंम्रित बाणी बोलहि सभ आतमरामु पछाणी। एको सेवनि एकु अराधहि गुरमुखि अकथ कहाणी ॥६॥ सचा साहिबु सेवीऐ गुरमुखि वसै मनि आइ। सदा रंगि राते सच सिउ अपुनी किरपा करे मिलाइ ॥ ७ ॥ आपे करे कराए

आपे इकना सुतिआ देइ जगाइ। आपे मेलि मिलाइदा नानक सबदि समाइ ॥ ८ ॥ ७ ॥ २४ ॥

(शब्द में गुरुजी ने प्रभु-नाम तथा गुरु का महत्त्व दर्शाया है और जीव को ईश्वरोन्मुखी होने की प्रेरणा दी है।) जो जिज्ञासु जीव सच्चे गुरु के सम्पर्क में आ जाता है, वह जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है, पुनः आवागमन में नहीं पड़ता। वह गुरु के उत्तम उपदेशों के कारण सर्वतोन्मुखी आध्यात्मिक जानकारी पा लेता है और नित्य हरि-नाम में लीन रहता है ॥ १ ॥ हे मेरे मन, तू सच्चे गुरु में मन रमा; (ऐसा करने से) प्रभु का नित्य नवीन और निर्मल नाम स्वतः मन में निवास करता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे मेरे स्वामी, मुझे अपनी शरण में रखो; मुझे तो आप जैसा रखेंगे, मुझे उसी अवस्था में रहना है। गुरु के उपदेश पर आचरण करने से जीव जीवित मरना सीख लेता है अर्थात् उसका 'स्व' नष्ट हो जाता है और 'स्व'-भाव से मुक्त गुरुमुख व्यक्ति संसार-सागर से पार हो जाता है ॥ २ ॥ केवल भाग्यशाली जीव ही गुरु-आदेश-पालन से हरि-नाम को प्राप्त करते हैं। ऐसे लोगों के मन में सदैव प्रभु निवास करता है और वे नित्य सहज-ज्ञान में समाहित रहते हैं ॥ ३ ॥ मनमुखी जीवों को गुरु के उपदेश नहीं सुहाते; वे लोग प्रायः अज्ञान-बन्धन में बँधे चौरासी लाख योनियों में भ्रमते रहते हैं। वे योनि-चक्र से मुक्त नहीं हो पाते, उनका (मानव-) जीवन अकार्थ है ॥ ४ ॥ ईश्वर की भक्ति करनेवाले परमात्मा के नाम में रंगे परमानन्द का भोग करते हैं। वे रात-दिन प्रभु का गुण-गान करते हैं, उनका चित्य सदा निर्मल है, इसलिए वे सहज-नाम में ही लीन रहते हैं ॥ ५ ॥ गुरमुख जीव सदैव अमृत समान मीठी वाणी बोलते हैं, क्योंकि वे सब जीवों के अन्दर प्रभु के अंश आत्मा की समानता को पहचानते हैं (किसी जीव का तिरस्कार प्रभु का तिरस्कार है) सच्चे गुरुमुख जीव उस अद्वैत ब्रह्म की सेवा करते, मन से आराधना और जिह्वा से उसी की अकथनीय कथाएँ कहते हैं (अर्थात् वे तन, मन और वचन से सदैव प्रभु-सेवा में लीन रहते हैं) ॥ ६ ॥ गुरु की शिक्षाओं को निबाहते हुए जब जीव परमात्मा (सच्चा साहिब) की आराधना करता है, तब वह उसके मन में निवास करता है। जीव सत्य के रंग में विभोर हो जाता है, परमात्मा कृपा-पूर्वक उसे अपने में मिला लेता है ॥ ७ ॥ (यह सब प्रभु का खिलवाड़ है) वही सबका रचयिता है, अपने प्रतिनिधियों (ब्रह्मा, विष्णु आदि) से रचना को नित्य-गति भी दिलवाता है और कभी अनुग्रह-वश मोह-निद्रा में सोए जीवों को गुरमुख बनाकर जन्म-मरण के चक्र से मुक्त कर देता है। गुरुजी कहते हैं कि सद्गुरु के साथ भी जीव का मिलाप वही (परमात्मा ही) करवाता और अपने स्वरूप में ही मिला लेता है ॥ ८ ॥ ७ ॥ २४ ॥

॥ सिरीरागु महला ३ ॥ सतिगुरि सेविऐ मनु निरमला भए पवितु सरीर । मनि आनंदु सदासुखु पाइआ भेटिआ गहिर गंभीरु । सची संगति बैसणा सचि नामि मनु धीर ॥ १ ॥ मन रे सतिगुरु सेवि निसंगु । सतिगुरु सेविऐ हरि मनि वसै लगै न मैलु पतंगु ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सचै सबदि पति ऊपजै सचे सचा नाउ । जिनी हउमै मारि पछाणिआ हउ तिन बलिहारै जाउ । मनमुख सचु न जाणनी तिन ठउर न कतहू थाउ ॥ २ ॥ सचु खाणा सचु पैनणा सचे ही विचि वासु । सदा सचा सालाहणा सचै सबदि निवासु । सभु आतमरामु पछाणिआ गुरमती निजघरि वासु ॥ ३ ॥ सचु वेखणु सचु बोलणा तनु मनु सचा होइ । सची साखी उपदेसु सचु सचे सची सोइ । जिंनी सचु विसारिआ से दुखीऐ चले रोइ ॥ ४ ॥ सतिगुरु जिनी न सेविओ से कितु आए संसारि । जम दरि बधे मारीअहि कूक न सुणै पूकार । बिरथा जनमु गवाइआ मरि जंमहि वारो वार ॥ ५ ॥ एहु जगु जलता देखि कै भजि पए सतिगुर सरणा । सतिगुरि सचु दिड़ाइआ सदा सचि संजमि रहणा । सतिगुर सचा है बोहिथा सबदे भवजलु तरणा ॥ ६ ॥ लख चउरासीह फिरदे रहे बिनु सतिगुर मुकति न होई । पड़ि पड़ि पंडित मोनी थके दूजै भाइ पति खोई । सतिगुरि सबदु सुणाइआ बिनु सचे अवरु न कोई ॥ ७ ॥ जो सचै लाए से सचि लगे नित सची कार करंनि । तिना निजघरि वासा पाइआ सचै महलि रहंनि । नानक भगत सुखीए सदा सचै नामि रचंनि ॥ ८ ॥ १७ ॥ ८ ॥ २५ ॥

सतिगुरु की सेवा (आदेशानुसार भजन-स्मरण करने) से जीव का मन निर्मल हो जाता है और शरीर में पावनता आती है। परम अगाध ईश्वर को पाकर मन आनन्दित होता और परमसुख लाभ करता है। सन्तों की सत्संगति में बैठनेवाला जिज्ञासु सतिनाम के रहस्य को जानकर अतीव धैर्यवान हो जाता है (क्योंकि इसी में परमेश्वर की उपलब्धि है) ॥ १ ॥ हे मन, तू निःशंक होकर अपने सतिगुरु की सेवा कर, (क्योंकि) सतिगुरु की सेवा से मन में प्रभु का वास होता है और चित्त पूर्णतः निर्मल हो जाता है (उस पर मोह-माया रूपी मैल नहीं चढ़ती) ॥१॥ रहाउ ॥ सत्य-स्वरूप परमात्मा के सच्चे नाम की प्राप्ति सतिगुरु के सच्चे आदेश के पालन से ही सम्भव होती है, उसी से जीव को लोक-परलोक में

प्रतिष्ठा मिलती है। मैं उन जीवों पर बलिहार हूँ जिन्होंने अहम्‌भाव का नाश करके परम-सत्य प्रभु को पहचान लिया है। मनमुखी जीव कभी उस सत्य को नहीं पा सकते, उनके लिए कहीं भी कोई ठौर-ठिकाना नहीं॥ २॥ गुरुमुख जीवों का खाना, पहनना और रहना, सब उस परम-सत्य से सम्बद्ध होता है (अर्थात्‌ भक्तजनों का प्रत्येक कर्म-व्यवहार पावन होता है)। भक्त जीव सदैव और हर समय अपने परमात्मा का प्रशस्ति-गान करते हैं और सत्य-स्वरूप ब्रह्म में नित्य लीन रहते हैं। वे सब जीवों को आत्मरूप अर्थात्‌ ब्रह्मस्वरूप से ही पहचानते हैं, और स्वयं भी सदैव उसी में निवास करते हैं॥ ३॥ ऐसे पावन जीव केवल सत्य बोलते और सत्य ही देखते हैं (अर्थात्‌ उनके वचन और दृष्टि सदैव पवित्र होती है, किसी को बुरी नज़र से नहीं देखते, किसी को बुरा नहीं कहते), उनका तन-मन सब पवित्र होता है (अर्थात्‌ वे विषय-विकारों और दुष्कर्मों को त्याग देते हैं)। वे (भक्तजन) ईश्वर का अनुभूत सत्य दूसरों पर प्रकट करते हैं, परम-सत्य का उपदेश देते हैं, इसी से संसार में उनकी सच्ची शोभा होती है। (इसके विपरीत) जिन्होंने सत्य और पवित्रता को छोड़ा, वे सदा दुखी रहते और असफल जीवन के कारण रोते चले जाते हैं॥ ४॥ (गुरुजी आध्यात्मिक विडम्बना की ओर संकेत करते हुए कहते हैं) जिन्होंने सतिगुरु की सेवा (आज्ञा-पालन) नहीं की, वे व्यर्थ ही संसार में आए अर्थात्‌ सतिगुरु से विमुख होनेवाले जीवों का जीवन ही अकार्थ होता है। ऐसे भक्ति-हीन जीवों को यम के द्वार पर बाँधकर पीटा जाता है और कोई उनकी पुकार सुननेवाला नहीं होता। मनुष्य योनि में उनका जन्म व्यर्थ होता है, वे पुनः पुनः मरते-जन्मते रहते हैं अर्थात्‌ उन्हें मोक्ष-प्राप्ति नहीं होती॥ ५॥ जिज्ञासु जीव इस संसार को मोह-तृष्णा के अनल में जलता देखकर भागते हुए सद्‌गुरु की शरण लेते हैं। सतिगुरु अपनी शरण में आए जीवों को सत्य-स्वरूप परमात्मा का नाम दृढ़ करवाता और संयमित जीवन जीना सिखाता है। सतिगुरु वह जहाज है जो गुरमुख जीव को अपने उपदेशामृत-रूपी ऊर्जा द्वारा संसार-सागर से पार लगाता है॥ ६॥ गुरु के सच्चे उपदेश के बिना मोह-माया में फँसे जीव चौरासी लाख योनियों में भ्रमते हैं, उन्हें मुक्ति नहीं मिलती। बड़े-बड़े पण्डित-विद्वान ग्रन्थों के अध्ययन करते और मौनी साधु वाणी का निरोध करते थक गए हैं, किन्तु द्वैत-भाव में पगे होने के कारण वे सदैव सच्ची प्रतिष्ठा से वंचित हैं। केवल सतिगुरु के उपदेश से ही यह सत्य प्रकाशित होता है कि सत्य-स्वरूप परमात्मा के सिवाय संसार में मोक्ष का और कोई साधन नहीं है॥ ७॥ ईश्वर-कृपा से जो जीव सुमार्ग पर लगे हैं, वे ही हरि-भजन में लीन रहते हैं और निर्मल कर्म करते हैं। वे आत्मरूप में वास करते हैं इसलिए सचखंड में प्रवेश पा लेते हैं। (गुरुजी कहते हैं कि)

भक्तजन सच्चे नाम में अनुरक्त रहने के कारण सदैव सुखी रहते हैं ॥ ८ ॥ १७ ॥ ८ ॥ २५ ॥ [गुरु अमरदासजी के पद समाप्त ।]

॥ सिरीरागु महला ५ ॥ जा कउ मुसकलु अति बणै ढोई कोइ न देइ । लागू होए दुसमना साक भि भजि खले । सभो भजै आसरा चुकै सभु असराउ । चिति आवै ओसु पारब्रहमु लगै न तती वाउ ॥ १ ॥ साहिबु निताणिआ का ताणु । आइ न जाई थिरु सदा गुर सबदी सचु जाणु ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जे को होवै दुबला नंग भुख की पीर । दमड़ा पलै ना पवै ना को देवै धीर । सुआरथु सुआउ न को करे ना किछु होवै काजु । चिति आवै ओसु पारब्रहमु ता निहचलु होवै राजु ॥ २ ॥ जा कउ चिंता बहुतु बहुतु देही विआपै रोगु । ग्रिसति कुटंबि पलेटिआ कदे हरखु कदे सोगु । गउणु करे चहुकुंट का घड़ी न बैसणु सोइ । चिति आवै ओसु पारब्रहमु तनु मनु सीतलु होइ ॥ ३ ॥ कामि करोधि मोहि वसि कीआ किरपन लोभि पिआरु । चारे किलविख उनि अघ कीए होआ असुर संघारु । पोथी गीत कवित किछु कदे न करनि धरिआ । चिति आवै ओसु पारब्रहमु ता निमख सिमरत तरिआ ॥ ४ ॥ सासत सिम्रिति बेद चारि मुखागर बिचरे । तपे तपीसर जोगीआ तीरथि गवनु करे । खटु करमा ते दुगुणे पूजा करता नाइ । रंगु न लगी पारब्रहम ता सरपर नरके जाइ ॥ ५ ॥ राज मिलक सिकदारीआ रस भोगण बिसथार । बाग सुहावे सोहणे चलै हुकमु अफार । रंग तमासे बहुबिधी चाइ लगि रहिआ । चिति न आइओ पारब्रहमु ता सरप की जूनि गइआ ॥ ६ ॥ बहुतु धनाढि अचारवंतु सोभा निरमल रीति । मात पिता सुत भाईआ साजन संगि परीति । लसकर तरकसबंद बंद जीउ जीउ सगली कीत । चिति न आइओ पारब्रहमु ता खड़ि रसातलि दीत ॥ ७ ॥ काइआ रोगु न छिद्रु किछु ना किछु काड़ा सोगु । मिरतु न आवी चिति तिसु अहिनिसि भोगै भोगु । सभ किछु कीतोनु आपणा जीइ न संक धरिआ । चिति न आइओ पारब्रहमु जम कंकर वसि परिआ ॥ ८ ॥ किरपा करे जिसु पारब्रहमु होवै साधू संगु । जिउ जिउ ओहु वधाईऐ तिउ तिउ

हरि सिउ रंगु। दुहा सिरिआ का खसमु आपि अवरु न दूजा थाउ। सतिगुर तुठै पाइआ नानक सचा नाउ ॥६॥१॥२६॥

[प्रस्तुत पद महला ५ अर्थात् गुरु अर्जुनदेव जी का है। इसमें उन्होने हरिनाम-स्मरण के लाभ और उससे विमुख होने की हानियों का निरूपण किया है।]

यदि मनुष्य पर अनेक विपत्तियाँ आएँ, कोई सहारा देनेवाला न रहे; चारों ओर से वह शत्रुओं से घिर जाय, सम्बन्धी-नातेदार सब उपेक्षा कर दें; विपत्ति-समय आश्रय के आधार धन-सम्पत्ति सब नष्ट हो जाएँ, सहारा देने में समर्थजन भी तिरस्कार कर दें, तब भी यदि उस मनुष्य का मन परब्रह्म परमात्मा में स्थिर होगा, उसे किसी प्रकार का कष्ट छू भी नहीं सकेगा ॥ १ ॥ वह परमेश्वर स्वामी सदैव निर्बलों का बल है, वह जन्म-मरण से इतर है और हमेशा स्थिर रहनेवाला है, गुरु के सोपदेश से (ऐ जीव तू) इस तथ्य को जान ले ॥ १ ॥ रहाउ ॥ यदि कोई मनुष्य दुर्बल है, उसके पास शरीर ढाँपने को वस्त्र और भूख मिटाने को भोजन का अभाव है, उसके पास कोई धन-राशि नहीं, न ही उसे कोई धैर्य बँधाने वाला है, वह विपत्ति-ग्रस्त होकर न अपना स्वार्थ सिद्ध कर सकता है और न ही शारीरिक दुर्बलता के कारण कोई प्रयोजन-सफलता प्राप्त करता है, वह भी यदि उस भयानक विपत्तिकाल में परब्रह्म का नाम हृदय में धारण करे तो ध्रुव के समान अविचलित राज्य प्राप्त कर लेता है ॥ २ ॥ जो अत्यन्त चिन्तातुर रहता है, जिसे नित्य दैहिक रुग्णता बनी रहती है; जो गृहस्थी में पारिवारिक दुखों-सुखों में घिरा रहने के कारण कभी हर्ष, कभी शोक को भोगता है, (इस हर्ष-शोक से मुक्त होने के लिए) वह चारों दिशाओं का भ्रमण करता फिरे, तो भी क्षण-भर विश्राम के लिए उसे कोई स्थान प्राप्त न हो—ऐसे में यदि वह परमात्मा का नाम हृदय में धारण कर ले तो उसके तन-मन के सब सन्ताप विलीन हो जाते हैं ॥ ३ ॥ जिस मनुष्य को काम-क्रोध-मोहादि ने अपने वश कर रखा है और जो धन के निरन्तर लोभ में कृपण बना रहता है; जिसने चारों महापाप (सुरा-पान, स्वर्ण-चोरी, गुरु-पत्नी गमन और ब्राह्मण-हत्या) तथा अनेक पाप (मित्र-द्रोह या विश्वासघात आदि) किए हों; दानव-प्रकृति के कारण निर्दयता-पूर्वक जिसने जीव-हत्या की हो, जिसने कभी कोई धर्म-पुस्तक-उपदेश अथवा ईश्वर-प्रेम की कविता तक न सुनी हो, यदि क्षण-भर के लिए भी वह मन में परमेश्वर का पावन नाम धारण कर ले तो इस संसार-सागर से तिर जाता है ॥ ४ ॥ यदि कोई विद्वान हो, जिसे चारों वेद, छः शास्त्र और सब स्मृतियाँ कण्ठाग्र हों, जो तपस्या के क्षेत्र में तपस्वियों का शिरोमणि बन गया हो और जिसने अठसठ तीर्थों की यात्रा की हो; कोई विद्वान यदि सदाचार-पूर्वक द्वादश कर्मों (स्नान, संध्या, जप, होम, अतिथि-सत्कार,

देवार्चन, वेदाध्ययन-अध्यापन, यज्ञ करना-कराना, दान लेना-देना आदि) को करता एवं प्रातःसायं स्नान करके उपासना करता हो, तो भी वह परब्रह्म के वास्तविक रंग से अनभिज्ञ ही रहता और नरक का भागी बनता है ॥ ५ ॥ (प्रथम चार पदांशों में गुरुजी ने हरिनाम-स्मरण की महिमा कही है। अब पाँचवें पदांश से इसके विपरीत परमात्मा से विमुख रहनेवाले लोगों के ढकोसलों और आडम्बरों की चर्चा करते हुए बताते हैं कि लाख आडम्बर रचकर भी प्रभु-विमुख जीव नरक में ही जाएगा।) राज्याधिकार, धन-सम्पत्ति, शासन एवं अन्य असंख्य भोग करनेवाला जीव हो या कोई सुन्दर उद्यानों का स्वामी हो कि जिसका आदेश सब पालन करते हों, या कोई रंग-तमाशों के विषय-विलासों में आसक्त व्यक्ति हो; यदि उसके मन में प्रभु-नाम के लिए कोई प्यार नहीं, तो वह निश्चय ही सर्प-योनि में जन्म लेगा ॥ ६ ॥ मनुष्य यदि धनवान, सदाचारी, निर्मल-व्यवहारी तथा सर्व-प्रिय हो, उसे माता-पिता, सुत-भाई एवं अन्य स्वजनों से प्रीति भी हो; उसके पास शस्त्र हों, सेना हो और असंख्य लोग उसकी चापलूसी करते हों, तब भी यदि उसका मन परब्रह्म के पवित्र नाम से रहित है तो उसे नरक में ही फेंका जायगा ॥ ७ ॥ यदि शरीर भी पूर्णतः नीरोग है, यदि कोई शोक-सन्ताप भी उसके भीतर उत्पात नहीं करता, यदि वह रात-दिन भोग-विलास में लीन रहता है, उसे मृत्यु का भय नहीं सताता; यदि उसने अपने भुजबल से सबको अधीन कर लिया है और उसे अब किसी शत्रु का भी भय नहीं रहा, तब भी यदि उसका चित्त हरि-विमुख है तो वह निश्चय ही यमदूतों के हाथों प्रताड़ित होगा ॥ ८ ॥ (सत्य तो यह है कि) जिस पर प्रभु-कृपा होती है, उसे ही सद्गुरु का सम्पर्क प्राप्त होता है। ज्यों-ज्यों सत्संग में चित्त लगता है, प्रभु के रंग में भी प्रगाढ़ता आती चलती है। परब्रह्म ही लोक-परलोक का स्वामी है, उसके बिना जीवों के सुख का और कोई आश्रय नहीं। किन्तु उस परब्रह्म के पवित्र नाम की प्राप्ति सतिगुरु की प्रसन्नता से ही होती है अर्थात् जब जीव सेवा द्वारा सतिगुरु को सन्तुष्ट कर लेता है, तभी नाम-निधि का अधिकारी बनता है ॥ ९ ॥ १ ॥ २६ ॥

॥ सिरीरागु महला ५ घरु ५ ॥ जानउ नही भावै कवन बाता। मन खोजि मारगु ॥ १ ॥ रहाउ ॥ धिआनी धिआनु लावहि। गिआनी गिआनु कमावहि। प्रभु किनही जाता ॥१॥ भगउती रहत जुगता। जोगी कहत मुकता। तपसी तपहि राता ॥ २ ॥ मोनी मोनि धारी। सनिआसी ब्रहमचारी। उदासी उदासि राता ॥ ३ ॥ भगति नवै परकारा। पंडितु वेदु

पुकारा। गिरसती गिरसति धरमाता ॥ ४ ॥ इकसबदी बहुरूपि अवधूता। कापड़ी कउते जागूता। इकि तीरथि नाता ॥ ५ ॥ निरहार वरती आपरसा। इकि लूकि न देवहि दरसा। इकि मन ही गिआता ॥ ६ ॥ घाटि न किनही कहाइआ। सभ कहते है पाइआ। जिसु मेले सो भगता ॥७॥ सगल उकति उपावा। तिआगी सरनि पावा। नानकु गुरचरणि पराता ॥ ८ ॥ २ ॥ २७ ॥

हे मन, ईश्वर की खोज के अनेक (भक्ति, योग, प्रेमादि) मार्ग हैं, किन्तु यह कहना कठिन है कि उसे इनमें से कौन-सी बात (मार्ग) पसन्द है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ योगी-जन उसकी प्राप्ति के लिए समाधि लगाते हैं, वेदान्ती (ज्ञानी) आत्म-मोक्ष के लिए श्रवण, मनन और निदिध्यासन के द्वारा ज्ञानार्जन करते हैं। किन्तु इनमें से कोई विरल व्यक्ति ही सही अर्थ में परमात्मा को पहचानता है ॥ १ ॥ भगवती-जन लीला-नृत्य में लीन रहते हैं। (अर्थात् वैष्णव लोग विधि-विधान में संलग्न होते हैं।) योगी-जन अष्टांग-भाव से मुक्ति की कल्पना करते हैं। तपस्वी लोग तपस्या में ही कल्याण मानते हैं ॥ २ ॥ मौनी साधु मौन धारण करने में ही परमात्मा की प्राप्ति सम्भव मानते हैं। संन्यासी, ब्रह्मचारी और उदासी आदि व्यक्ति अपने-अपने ढंग से निष्कामना रहकर, ब्रह्मचर्य-पालन द्वारा अथवा जगत के प्रति उदासीन रहकर ईश्वर की उपलब्धि सम्भव समझते हैं ॥ ३ ॥ कुछ जिज्ञासु नौ प्रकार (नवधा) की भक्ति को ही ईश-प्राप्ति का साधन मानते हैं (श्रवणं, कीर्तनं, विष्णोःस्मरणं, पाद सेवनम्; अर्चनं, वन्दनं, दास्यं, सख्यमात्म निवेदनम्। श्रीमद्भागवत्) वेद-पाठी विद्वान सस्वर वेदों का उच्चारण करते हैं और गृहस्थ-जन धर्मशास्त्रानुसार यज्ञ-दानादि धर्मों के पालन में ही कल्याण समझते हैं ॥ ४ ॥ शब्दी अर्थात् वैयाकरण शब्द के शुद्ध उच्चारण तथा जानकारी को ही लक्ष्य मानते हैं, बहुरूपी अर्थात् राम-कृष्ण-लीला में अनेक रूप धारणेवाले लीलाधर उसी में मस्त हैं और अवधूत अर्थात् नांगे साधु शरीर पर विभूति रमाने में ही कल्याण समझते हैं। कापड़िए साधु केसरिया कपड़े पहनते हैं, कउते अर्थात् राम-कृष्ण का यशोगान करनेवाले कविजन काव्य-गान में ही मुक्ति समझते हैं, जागूता अर्थात् रात्रि जागरण करनेवाले लोग भी जगराते में ही मोक्ष सम्भव मानते हैं। कुछ लोग तीर्थ-यात्रा में जगह-जगह स्नान द्वारा भी ईश्वर-प्राप्ति की सम्भावना स्वीकारते हैं ॥ ५ ॥ निराहार रहनेवाले व्रत-उपवास को ही प्रभु-मिलन का साधन मानते हैं, ऊँची जाति के लोग नीच जाति से परहेज़ को ही उत्तम समझते हैं। कुछ लोग गुफ़ाओं में छिपे रहते हैं, बाहर आकर किसी के सामने नहीं होते और कुछ ऐसे भी होते हैं,

जो शास्त्र-ज्ञान को धारण करने में ही कल्याण समझते हैं ॥ ६ ॥ ईश्वरोपलब्धि के अपने साधन को कोई भी दूसरे से कम नहीं मानता और दूसरों को प्रभावित करने के लिए सब अपने-अपने मार्ग पर चलते हुए परमात्मा को पा लेने का दावा भी करते हैं, किन्तु सत्य यही है कि अधिकारी व्यक्ति गुरु के बताए मार्ग पर चलकर ही परमात्मा का नैकट्य प्राप्त कर सकता है, वही सच्चा भक्त होता है ॥ ७ ॥ गुरुजी का कथन है, 'उक्त सब प्रकार के साधनों-उपायों को त्यागकर मैंने वाहिगुरु की शरण ली है; मैं गुरु-चरणों को ही मुक्ति का आधार मानता हूँ' ॥ ८ ॥ २ ॥ २७ ॥

[श्रीमद्भगवद्गीता में भी शरण-ग्रहण को ही एकमात्र प्रभु-प्राप्ति का मार्ग कहा गया है— सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज । अहंत्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ अ० १८, श्लोक ६६ ॥]

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ सिरीरागु महला १ घरु ३ ॥

जोगी अंदरि जोगीआ तूं भोगी अंदरि भोगीआ । तेरा अंतु न पाइआ सुरगि मछि पइआलि जीउ ॥ १ ॥ हउ वारी हउ वारणै कुरबाणु तेरे नाव नो ॥ १ ॥ रहाउ ॥ तुधु संसारु उपाइआ । सिरे सिरि धंधे लाइआ । वेखहि कीता आपणा करि कुदरति पासा ढालि जीउ ॥ २ ॥ परगटि पाहारै जापदा । सभु नावै नो परतापदा । सतिगुर बाझु न पाइओ सभ मोही माइआ जालि जीउ ॥ ३ ॥ सतिगुर कउ बलि जाईऐ । जितु मिलिऐ परम गति पाईऐ । सुरिनर मुनिजन लोचदे सो सतिगुरि दीआ बुझाइ जीउ ॥ ४ ॥ सतसंगति कैसी जाणीऐ । जिथै एको नामु वखाणीऐ । एको नामु हुकमु है नानक सतिगुरि दीआ बुझाइ जीउ ॥ ५ ॥ इहु जगतु भरमि भुलाइआ । आपहु तुधु खुआइआ । परतापु लगा दोहागणी भाग जिना के नाहि जीउ ॥ ६ ॥ दोहागणी किआ नीसाणीआ । खसमहु घुथीआ फिरहि निमाणीआ । मैले वेस तिना कामणी दुखी रैणि विहाइ जीउ ॥ ७ ॥ सोहागणी किआ करमु कमाइआ । पूरबि लिखिआ फलु पाइआ । नदरि करे कै आपणी आपे लए मिलाइ जीउ ॥ ८ ॥ हुकमु जिना नो मनाइआ । तिन अंतरि सबदु वसाइआ । सहीआ से सोहागणी जिन सह नालि पिआरु जीउ ॥ ९ ॥ जिना भाणे का रसु आइआ । तिन विचहु भरमु

चुकाइआ। नानक सतिगुरु ऐसा जाणीऐ जो सभसै लए मिलाइ जीउ ॥ १० ॥ सतिगुरि मिलिऐ फलु पाइआ। जिनि विचहु अहकरणु चुकाइआ। दुरमति का दुखु कटिआ भागु बैठा मसतकि आइ जीउ ॥ ११ ॥ अंम्रितु तेरी बाणीआ। तेरिआ भगता रिदै समाणीआ। सुख सेवा अंदरि रखिऐ आपणी नदरि करहि निसतारि जीउ ॥ १२ ॥ सतिगुरु मिलिआ जाणीऐ। जितु मिलिऐ नामु वखाणीऐ। सतिगुर बाझु न पाइओ सभ थकी करम कमाइ जीउ ॥ १३ ॥ हउ सतिगुर विटहु घुमाइआ। जिनि भ्रमि भुला मारगि पाइआ। नदरि करे जे आपणी आपे लए रलाइ जीउ ॥ १४ ॥ तूं सभना माहि समाइआ। तिनि करतै आपु लुकाइआ। नानक गुरमुखि परगटु होइआ जा कउ जोति धरी करतारि जीउ ॥ १५ ॥ आपे खसमि निवाजिआ। जीउ पिंडु दे साजिआ। आपणे सेवक की पैज रखीआ दुइ कर मसतकि धारि जीउ ॥ १६ ॥ सभि संजम रहे सिआणपा। मेरा प्रभु सभु किछु जाणदा। प्रगट प्रतापु वरताइओ सभु लोकु करै जैकारु जीउ ॥ १७ ॥ मेरे गुण अवगन न बीचारिआ। प्रभि अपणा बिरदु समारिआ। कंठि लाइ कै रखिओनु लगै न तती वाउ जीउ ॥ १८ ॥ मै मनि तनि प्रभू धिआइआ। जीइ इछिअड़ा फलु पाइआ। साह पातिसाह सिरि खसमु तूं जपि नानक जीवै नाउ जीउ ॥ १९ ॥ तुधु आपे आपु उपाइआ। दूजा खेलु करि दिखलाइआ। सभु सचो सचु वरतदा जिसु भावै तिसै बुझाइ जीउ ॥ २० ॥ गुर परसादी पाइआ। तिथै माइआ मोहु चुकाइआ। किरपा करि कै आपणी आपे लए समाइ जीउ ॥ २१ ॥ गोपी नै गोआलीआ। तुधु आपे गोइ उठालीआ। हुकमी भांडे साजिआ तूं आपे भंनि सवारि जीउ ॥ २२ ॥ जिन सतिगुर सिउ चितु लाइआ। तिनी दूजा भाउ चुकाइआ। निरमल जोति तिन प्राणीआ ओइ चले जनमु सवारि जीउ ॥ २३ ॥ तेरीआ सदा सदा चंगिआईआ। मै राति दिहै वडिआईआं। अणमंगिआ दानु देवणा कहु नानक सचु समालि जीउ ॥ २४ ॥ १ ॥

(गुरु नानकदेवजी प्रार्थना करते हैं कि) हे परमात्मा, तुम योगियों में

योगीराज एवं भोगियों में महाभोगी हो। स्वर्ग के देवता, मृत्युलोक के वासी तथा पाताल के नागादि जीवों ने तुम्हारा भेद नहीं पाया ॥ १ ॥ मैं तुम पर बलिहार हूँ, तुम्हारी प्राप्ति के साधन तुम्हारे पावन नाम पर न्यौछावर हूँ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ तुम कर्त्ता हो, तुमने ही संसार की रचना करके सबको नियत कार्य में संलग्न कर दिया है। अपनी रचना का स्वयं ही तुम ध्यान रखते हो (अर्थात् पालन-पोषण करते हो) और अपनी माया-शक्ति से इस जगत की चौपड़ पर निरन्तर पासा फेंक रहे हो ॥ २ ॥ समूचे विश्व में तुम्हारा प्रसार प्रकट है, संसार के समस्त जीव तुम्हारे ही नाम को मचल रहे हैं, किन्तु सतिगुरु के बग़ैर कोई तुम्हें प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि समूची सृष्टि को माया ने अज्ञानावरण में ढँक रखा है। (केवल गुरु से ही आलोक प्राप्त होता है) ॥ ३ ॥ मैं उस सतिगुरु पर कुर्बान हूँ, जिसके सम्पर्क मात्र में आने से परम-गति प्राप्त होती है। जिस सत्य को देवता, मानव और ऋषि-मुनि, सब पाना चाहते हैं, मुझे उसकी सही जानकारी सतिगुरु से ही मिली है ॥ ४ ॥ सत्संगति किसे कहा जाय? (गुरुजी ने प्रश्न खड़ा किया है और आगे स्वयं ही समाधान करते हैं) वही स्थल सत्संग कहा जायगा, जहाँ मुक्ति के एक-मात्र साधन हरिनाम का बहुविधि बखान होगा; तात्पर्य यह कि जहाँ नाम की चर्चा होगी, वही सत्संग होगा। हरिनाम ही प्रभु का यथार्थ आदेश है, ऐसा मुझे गुरु ने समझा दिया है ॥ ५ ॥ यह विश्व मोह-माया के भ्रम में पड़ा है और हे प्रभु, जीवों के कर्मानुसार तुमने ही उन्हें भुलाया है। भूल-भुलैय्याँ में पड़े वे जीव, जिनके भाग्य में ईश्वर का मिलन नहीं, वियोगिनी स्त्री के समान नित्य तड़पते रहते हैं ॥ ६ ॥ दोहागणी अर्थात् त्यक्ता स्त्रियों की क्या निशानी है? वे पति द्वारा उपेक्षित मान-रहित होकर व्यर्थ भटकती रहती हैं। उन दुर्भाग्यशाली स्त्रियों की वेश-भूषा मलिन होती है और (क्योंकि उन्हें पति की संगति प्राप्त नहीं, इसलिए) वे नित्य तड़प-तड़पकर रात्रि बिताती हैं ॥ ७ ॥ (पुन: गुरुजी स्वयं ही प्रश्नोत्तर शैली में अपनी बात कहते हैं) सुहागिन ने आखिर क्या शुभ कार्य किया है? उसे परमात्मा ने पूर्वजन्म के किसी उत्तम कर्म का फल प्रदान किया होता है। उस पर अनुग्रह के कारण ईश्वर उसे अपने साथ मिला लेता है ॥ ८ ॥ जिन जिज्ञासु जीवों (सुहागिन स्त्रियों) ने परमेश्वर का हुकुम माना है, वे गुरु का सच्चा उपदेश मन में धारण करते हैं। वे सखियाँ (जीव) ही सुहागिन होती हैं, जो अपने पति (परमेश्वर) का अनुग्रह और अनुराग पा लेती हैं ॥ ९ ॥ जो जीव आज्ञा-पालन का आनन्द पा लेते हैं, उनमें से सब माया-भ्रम दूर हो जाता है। गुरुदेव कहते हैं कि सच्चा सतिगुरु वही है, जो सब अधिकारी जीवों को परमात्मा के साथ मिला देता है ॥ १० ॥ सौभाग्यवश यदि जिज्ञासु जीव को सच्चे गुरु की प्राप्ति हो जाय तो उसे

मोक्ष-फल की प्राप्ति होती है और उसके अन्तर्मन का अहम्भाव सदा के लिए नष्ट हो जाता है। गुरु अपने सेवक के दुर्मति के कारण उपजनेवाले सब दुःखों को निरस्त करता है, (यह तभी सम्भव है जब) सेवक के मस्तक में पूर्व-जन्म के शुभ-कर्मों के परिणाम-स्वरूप भाग्योदय हुआ हो ।। ११ ।। हे वाहिगुरु, तुम्हारी वाणी अमृत के समान गुणयुक्त अर्थात् मृत्युंजयी बनानेवाली है, जोकि तुम्हारे भक्तों के हृदय में समा रही है। तुम्हारी सेवा में (आज्ञा-पालन में) ही वास्तविक सुख की उपलब्धि है और अपने सेवकों (आदेशानुसार आचरण करनेवालों) का उद्धार तुम कृपा-दृष्टि मात्र से कर देते हो ।। १२ ।। सतिगुरु का मिलाप तभी वास्तविक समझना चाहिए, जब उसके मिलन-प्रभाव में जीव हरिनाम जपने लगे (अर्थात् सतिगुरु से मिलने पर जीव प्रभु-भजन में लीन होता है), (और यह एक यथार्थता है कि) चाहे जीव लाखों प्रपंच रचे, असंख्य विधि-विधान करे, सतिगुरु के बग़ैर कभी हरिनाम-रहस्य को नहीं पा सकता ।। १३ ।। मैं अपने सतिगुरु पर बलिहार हूँ, जिसने मुझे माया-तृष्णा के भ्रमों से निकालकर सही रास्ते पर लगाया है। वह कृपालु सतिगुरु जिस जिज्ञासु जीव पर कृपा करता है, वह उसे परमात्मा के साथ अभेद कर देता है ।। १४ ।। हे प्रभु, तुम सर्व-व्यापक हो, तुम्हीं ने सबकी रचना की है, फिर भी अज्ञानियों से तुमने अपने को छिपा रखा है। जो जीव गुरमुख हैं (अर्थात् गुरु-उपदेशानुसार आचरण करते हैं) उन्हें स्वयं कर्त्तार आलोक प्रदान कर रहस्य को भी प्रत्यक्ष देख सकने का सामर्थ्य देता है ।। १५ ।। हे परमेश्वर, तुमने ही तो मुझे प्रतिष्ठा दी है, मेरे शरीर की मूर्त्ति गढ़कर उसमें प्राणों का संचार किया है। तुम ही तो सदैव अति कृपा-वश (दोनों हाथ माथे पर रखकर) अपने सेवक का मान रखते हो, (उसकी प्रतिज्ञा पूरी करवाते हो) ।। १६ ।। मेरे सब संयम, जप-व्रतादि साधन और लौकिक चतुराइयाँ परमात्मा को पा सकने में अशक्त रही हैं; मेरा ईश्वर मेरी इन शक्तियों और न्यूनताओं को भली-भाँति जानता है, इसीलिए उसने मेरा प्रताप सब ओर प्रकट किया है और सब मेरी जय-जयकार करने लगे हैं ।। १७ ।। (गुरुजी अब ईश्वर के उपकारों की चर्चा कर रहे हैं) परमात्मा ने मेरे गुणों-अवगुणों पर ध्यान नहीं दिया (दिया होता तो अधिक अवगुण देख वह मुझसे विमुख हो जाता), उसने तो केवल अपने विरद की लाज निभाई है अर्थात् मेरे कर्म अच्छे नहीं थे, वह तो अपने कृपालु स्वभाव के कारण ही परमात्मा ने मुझे शरण दी है। ईश्वर ने ही मुझे अपने गले लगा लिया है और (तीनों प्रकार के) कष्टों से मुक्ति दी है ।। १८ ।। हे मेरे स्वामी, मैंने तन-मन से तुम्हारी ही आराधना की है और इसीलिए मुझे मनोवांछित फल भी प्राप्त हुआ है। हे परमात्मा, तुम सम्राटों के भी सम्राट-शिरोमणि हो, इसलिए तुम्हारे ही नाम-जाप से मैं जीवन धारण करता

हूँ ॥ १९ ॥ तुम स्वयम्भू हो, तुमने अपने को आप ही प्रकट किया है, सृष्टि की रचना तो तुम्हारा द्वैत का खेल है। तुम्हारी रचना सत्य की बनाई होने से सत्य ही है, किन्तु उसके मूल रहस्य को वही समझता है जिसे तुम सुझाते हो ॥ २० ॥ जिस जिज्ञासु जीव ने गुरु की दया से प्रभु-नाम को पा लिया, उसके अन्तःकरण से मोह-माया की मलिनताएँ धुल जाती हैं। उस पर परमात्मा विशेष कृपा करके उसे अपने संग मिला लेता है ॥ २१ ॥ हे देव, अनेक रूपों में एक तुम ही हो, गोपी, यमुना या श्रीकृष्ण, सब तुम्हीं हो; तुमने ही तो धरती उठा रखी है अर्थात् यह समूची सृष्टि तुम्हारे ही आश्रय है। विश्व के समस्त जीव तुम्हारे ही आदेश से अस्तित्व में आए हैं, तुम्हीं उन्हें सदैव तोड़ते-बनाते रहते हो ॥ २२ ॥ जिन जिज्ञासुओं ने सतिगुरु से मन लगाया है अर्थात् जो जीव गुरु-भक्ति में लीन हैं, वे अपने चित्त में द्वैत-भाव का सदैव के लिए निराकरण कर देते हैं। उन प्राणियों की आत्मा निर्मल और पवित्र हो जाती है और उनका मनुष्य योनि में आगमन सार्थक होता है ॥ २३ ॥ इसीलिए हे प्रभु तुमसे सदैव उपकार पाकर मैं रात-दिन तुम्हारा महिमा-गान करता हूँ। तुम तो हे परमात्मा, सदा बिना माँगे मुझे भरपूर देते रहे हो, अतः मैं (नानक) नित्य तुम्हारे सत्य-स्वरूप का ध्यान लगाए रहता हूँ। तात्पर्य यह कि गुरु-आदेशानुसार परमात्मा को खोजनेवाला सदैव परमात्मा का कृपा-पात्र बनता है और मनोवांछित फलों को प्राप्त करता है ॥ २४ ॥ १ ॥

॥ सिरीरागु महला ५ ॥ पै पाइ मनाई सोइ जीउ। सतिगुर पुरखि मिलाइआ तिसु जेवडु अवरु न कोइ जीउ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गोसाई मिहंडा इठड़ा। अंम अबे थावहु मिठड़ा। भैण भाई सभि सजणा तुधु जेहा नाही कोइ जीउ ॥ १ ॥ तेरै हुकमे सावणु आइआ। मै सत का हलु जोआइआ। नाउ बीजण लगा आस करि हरि बोहल बखस जमाइ जीउ ॥ २ ॥ हउ गुर मिलि इकु पछाणदा। दुया कागलु चिति न जाणदा। हरि इकतै कारै लाइओनु जिउ भावै तिंवै निबाहि जीउ ॥ ३ ॥ तुसी भोगिहु भुंचहु भाईहो। गुरि दीबाणि कवाइ पैनाईओ। हउ होआ माहरु पिंड दा बंनि आदे पंजि सरीक जीउ ॥ ४ ॥ हउ आइआ सामै तिहंडीआ। पंजि किरसाण मुजेरे मिहडिआ। कंनु कोई कढि न हंघई नानक वुठा घुघि गिराउ जीउ ॥ ५ ॥ हउ वारी घुंमा जावदा। इकसाहा तुधु धिआइदा। उजड़ु थेहु वसाइओ हउ तुध विटहु कुरबाणु जीउ ॥ ६ ॥ हरि इठै नित

धिआइदा । मनि चिंदी सो फलु पाइदा । सभे काज सवारिअनु लाहीअनु मन की भुख जीउ ॥ ७ ॥ मै छडिआ सभो धंधड़ा । गोसाई सेवी सचड़ा । नउ निधि नामु निधानु हरि मै पलै बधा छिकि जीउ ॥ ८ ॥ मै सुखी हूं सुखु पाइआ । गुरि अंतरि सबदु वसाइआ । सतिगुरि पुरखि विखालिआ मसतकि धरि कै हथु जीउ ॥ ६ ॥ मै बधी सचु धरमसाल है । गुरसिखा लहदा भालि कै । पैर धोवा पखा फेरदा तिसु निवि निवि लगा पाइ जीउ ॥ १० ॥ सुणि गला गुर पहि आइआ । नामु दानु इसनानु दिड़ाइआ । सभु मुकतु होआ सैसारड़ा नानक सची बेड़ी चाड़ि जीउ ॥ ११ ॥ सभ स्रिसटि सेवे दिनु राति जीउ । दे कंनु सुणहु अरदासि जीउ । ठोकि वजाइ सभ डिठीआ तुसि आपे लइअनु छडाइ जीउ ॥ १२ ॥ हुणि हुकमु होआ मिहरवाण दा । पै कोइ न किसै रञाणदा । सभ सुखाली वुठीआ इहु होआ हलेमी राजु जीउ ॥ १३ ॥ झिमि झिमि अंम्रितु वरसदा । बोलाइआ बोली खसम दा । बहु माणु कीआ तुधु उपरे तूं आपे पाइहि थाइ जीउ ॥ १४ ॥ तेरिआ भगता भुख सद तेरीआ । हरि लोचा पूरन मेरीआ । देहु दरसु सुखदातिआ मै गल विचि लैहु मिलाइ जीउ ॥ १५ ॥ तुधु जेवडु अवरु न भालिआ । तूं दीप लोअ पइआलिआ । तूं थानि थनंतरि रवि रहिआ नानक भगता सचु अधारु जीउ ॥१६॥ हउ गोसाई दा पहिलवानड़ा । मै गुर मिलि उचदुमालड़ा । सभ होई छिंझ इकठीआ दयु बैठा वेखै आपि जीउ ॥ १७ ॥ वात वजनि टंमक भेरीआ । मल लथे लैदे फेरीआ । निहते पंजि जुआन मै गुर थापी दिती कंडि जीउ ॥ १८ ॥ सभ इकठे होइ आइआ । घरि जासनि वाट वटाइआ । गुरमुखि लाहा लै गए मनमुख चले मूलु गवाइ जीउ ॥ १६ ॥ तूं वरना चिहना बाहरा । हरि दिसहि हाजरु जाहरा । सुणि सुणि तुझै धिआइदे तेरे भगत रते गुणतासु जीउ ॥ २० ॥ मै जुगि जुगि दयै सेवड़ी । गुरि कटी मिहडी जेवड़ी । हउ बाहुड़ि छिंझ न नचऊ नानक अउसरु लधा भालि जीउ ॥ २१ ॥ २ ॥ २६ ॥

(गुरुजी परमात्मा से प्रार्थना करते हैं) मैं सतिगुरु के चरणों में पड़ा

रहकर मन्नत करता हूँ, क्योंकि उसने मुझे उस अकाल-पुरुष से मिला दिया है, जिससे बड़ा अन्य कोई नहीं ।। १ ।। रहाउ ।। हे प्रभु, तुम मेरे मालिक और प्यारे हो। मेरे लिए तुम अम्मा-बाबा (माता-पिता) से भी अधिक मीठे (सुखदायी) हो। बहन-भाई, मित्रादि स्वजनों में मेरे लिए तुम सरीखा अन्य कोई नहीं है ।। १ ।। तुम्हारे ही आदेश से मेरे जीवन में सावन आया है (मुझे मनुष्य योनि मिली है) इसलिए तुम्हारी प्रसन्नता के लिए ही मैंने सत्य का हल जोड़ा है (शुभ कर्मों का कर्षण कर रहा हूँ)। अपने चित्त-रूपी खेत में मैं तुम्हारे ही सहारे नाम का बीज बो रहा हूँ। (चाहता हूँ कि) तुम्हारी कृपा-रूपी अन्न की खेती खूब जमे ।। २ ।। सतिगुरु से मिलन के कारण मैं, हे प्रभु, केवल तुम्हें ही पहचानता हूँ, द्वैत के तो शब्द को भी मैं नहीं जानता। हे परमात्मा, मुझे मेरे गुरु ने भक्ति-रूपी कारज में प्रवीण कर दिया है, अब तुम्हें जैसे भावे, वैसे निबाह लो अर्थात् अपनी इच्छानुसार मुझे कर्मरत कर लो ।। ३ ।। हे भाई, गुरु-दरबार में मुझे भक्ति-रूपी पोषाक भेंटकर प्रतिष्ठा दी गई है; अब तो मुझे उस प्रेमामृत को स्वयं पीना एवं दूसरों को पिलाना है (दरबारी प्रतिष्ठा के कारण हरि-नाम-रस का आस्वादन करना एवं दूसरों को करवाना है)। अब मैं अपने शरीर-रूपी गाँव का चौधरी हो गया हूँ (मैंने गुरु-आदेश पर आचरण करते हुए आत्म-संयम पा लिया है) और काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि अपने पाँचों शरीकों (विरोधी सम्बन्धियों) को मैंने बाँध लिया है (संयत कर लिया है) ।। ४ ।। मैंने जब से गुरु की शरण ली है, तब से मेरी पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ मेरे सेवकों की नाईं मेरी आज्ञा में रहती हैं। अधीनता के कारण कोई इन्द्रिय मेरी इच्छा के विरुद्ध सिर नहीं उठाती। अब मेरा मन-रूपी गाँव आध्यात्मिक सम्पदा की सघनता से बस गया है (अर्थात् मेरे मन में आध्यात्मिक भावों के ज्वार आ रहे हैं) ।। ५ ।। हे मेरे सतिगुरु, मैं तुम पर कुर्बान हूँ, बलिहार हूँ; श्वास-श्वास मैं तुम्हारा ही नाम जपता हूँ। मेरा मन ऊजड़-ग्राम (गुण-रहित) की नाईं था, तुमने उसे बसा दिया (गुण-युक्त कर दिया), इसलिए मैं तुम पर कुर्बान हूँ ।। ६ ।। अपने प्रिय-प्रभु का मैं नित्य स्मरण करता हूँ, अतः मुझे मनोवांछित फल मिलता है। प्रभु ने मेरे सब कार्य सम्पन्न कर दिये हैं और मेरी मोह-तृष्णा (भूख) भी मिटा दी है ।। ७ ।। मैं अब संसार के सब मिथ्या धंधे त्यागकर सच्चे मालिक की आराधना करता हूँ। नव-निधि को देने में समर्थ कल्पवृक्ष-सम हरिनाम मुझे मिला है, जिसे बड़े यत्न से मैं अपने अन्तर्मन में संजोए हुए हूँ ।। ८ ।। जब से सतिगुरु की कृपा से मुझे शब्द के रहस्य का ज्ञान हुआ है, मैंने सुखों में श्रेष्ठतर आत्मसुख को पा लिया है। सतिगुरु ने मेरे माथे पर हाथ रखकर (अर्थात् सतिगुरु के आशीर्वाद से) मुझे सत्पुरुष का साक्षात् करवा दिया है ।। ९ ।। मैंने सत्य (और

परमानन्द) की धर्मशाला बनाई है, जिसमें प्रभु के प्रिय जीवों को सदैव दखल है (अर्थात् मेरी सीमाएँ आध्यात्मिक सत्य का मन्दिर हैं, जिसमें केवल हरिजनों को ही प्रवेश मिलता है); मैं सेवार्थ स्वयं उन हरिजनों के पैर धुलाता, पंखा झुलाता और विनम्रता-पूर्वक झुक-झुककर उनके चरण छूता हूँ ।। १० ।। ईश्वर-प्राप्ति का साधन जानने के लिए मैंने गुरु की शरण ली और मेरे सतिगुरु ने मुझसे नाम-जाप, दान, प्रतिदिन स्नान आदि का संकल्प दृढ़ करवाया । (गुरुजी कहते हैं कि) मेरे गुरु ने सद्भक्ति की नाव पर चढ़ाकर संसार के सब जीवों को दुःखों से मुक्त कर दिया ।। ११ ।। हे प्रभु, समूची सृष्टि रात-दिन तुम्हारी आराधना (सेवा) करती है, तुम कृपया मेरी प्रार्थना को भी कान देकर सुनो । मैंने भली-भाँति जाँचकर देख लिया है कि जिस पर तुम्हारी कृपा है, वह जगत के माया-बन्धनों से मुक्त हो जाता है ।। १२ ।। हे मालिक, अब तुम्हारा आदेश-पत्र मिल गया है, इसलिए मेरे भीतर कोई दुर्गुण मेरे सद्गुण पर आच्छादित नहीं होता । अब मेरे सभी सद्गुण मज़े में अन्तःकरण-वासी हैं, क्योंकि वहाँ सात्विकता का राज्य स्थापित हो गया है ।। १३ ।। सतिगुरु मदिर गम्भीर मेघ की नाईं नाम-रूपी अमृत बरसा रहे हैं, उनके मधुर स्वर में अपने मालिक (वाहिगुरु) की ध्वनि गुंजरित है (अर्थात् गुरु परमात्मा का प्रतिनिधि है, उसका माउथ-पीस है) । हे दाता, मुझे तुम पर बड़ा मान है, तुम स्वयं ही मेरे कर्मों को निर्दिष्ट कर सफल बनाते हो ।। १४ ।। तुम्हारे भक्तों को सदा तुम्हारी ही भूख (लग्न) है; हे परमात्मा, तुम मेरी मनोवांछित कामनाओं को सफल करो । हे सुखदाता प्रभो, कृपा-कर मुझे दर्शन दो और अपने गले लगालो अर्थात् मुझे अपने साथ अद्वैतकर लो ।। १५ ।। तुमसे बड़ा अन्य कोई नहीं, सातों द्वीपों और पातालों (१४ भुवनों) में तुम्हारा ही आलोक प्रसारित है । हे परमात्मा, तुम हर स्थान पर रमण कर रहे हो और अपने भक्तों का एक-मात्र सहारा हो ।। १६ ।। मैं अपने स्वामी का एक कारिंदा हूँ, (उसके अखाड़े का एक मामूली पहलवान हूँ); मेरा गुरु बहुत ख्याति-लब्ध ऊँची दस्तार पहननेवाला नामी पहलवान है । अखाड़े में (संसार में) अपने-अपने पक्ष के पहलवान (गुरुमुख और मनमुख) दंगल के लिए उतर रहे हैं, मेरा नामी गुरु (मालिक) बैठा उनका हस्त-मेल देख रहा है ।। १७ ।। अखाड़े में तूतीयाँ, शहनाई और नगाड़े बज रहे हैं, पहलवान-जन वहाँ उतरकर खम ठोंकते हुए घूम रहे हैं; मैं भी अपने गुरु से शाबाश (आशीर्वाद) लेकर अखाड़े में आया हूँ और मैंने अकेले ही पाँच जवानों (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार) को पराजित कर दिया है । (इन पंक्तियों में गुरुजी ने संसार में गुरुमुख कर्म को दंगल के अखाड़े के रूपक से चित्रित किया है) ।। १८ ।। (इस जगत में) सभी जीव (गुरुमुख और मनमुख) एक

सरीखा शरीर लेकर आते हैं, किन्तु वापिसी में उनके रास्ते बदल जाते हैं (अर्थात् अपने-अपने कर्मानुसार वे मृत्यु और मोक्ष को पाते हैं); गुरमुख (दुनिया के मेले में) लाभ उठा लेते हैं और मनमुख गाँठ की पूँजी भी खो बैठते हैं ॥ १९ ॥ हे ईश्वर, तुम वर्णों-चिह्नों से परे हो, तथापि सबके समीप प्रत्यक्ष प्रकट हो। हे गुण-निधि हरि, तुम्हारे भक्त तुम्हारा यशोगान सुन-सुनकर तुम्हारे ही ध्यान में रमे रहते हैं ॥ २० ॥ मैं तो युग-युग तक (मोह-तृष्णा की) दासता में पड़ा हुआ था, सद्गुरु की कृपा से ही मेरे माया-बन्धन कट सके हैं। गुरुजी कहते हैं कि मैं संसार के अखाड़े में पुनः पुनः दंगल करने नहीं आऊँगा (अर्थात् मेरा पुनर्जन्म नहीं होगा), क्योंकि मैंने मानव-जीवन का सही मूल्य जानकर उसे सार्थक कर लिया है ॥ २१ ॥ २ ॥ २९ ॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि॥ सिरीरागु महला १ पहरे घरु १॥

पहिलै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा हुकमि पइआ गरभासि। उरध तपु अंतरि करे वणजारिआ मित्रा खसम सेती अरदासि। खसम सेती अरदासि वखाणै उरध धिआनि लिव लागा। नामरजादु आइआ कलि भीतरि बाहुड़ि जासी नागा। जैसी कलम वुड़ी है मसतकि तैसी जीअड़े पासि। कहु नानक प्राणी पहिलै पहरै हुकमि पइआ गरभासि ॥ १ ॥ दूजै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा विसरि गइआ धिआनु। हथो हथि नचाईऐ वणजारिआ मित्रा जिउ जसुदा घरि कानु। हथो हथि नचाईऐ प्राणी मात कहै सुतु मेरा। चेति अचेत मूड़ मन मेरे अंति नही कछु तेरा। जिनि रचि रचिआ तिसहि न जाणै मन भीतरि धरि गिआनु। कहु नानक प्राणी दूजै पहरै विसरि गइआ धिआनु ॥ २ ॥ तीजै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा धन जोबन सिउ चितु। हरि का नामु न चेतही वणजारिआ मित्रा बधा छुटहि जितु। हरि का नामु न चेतै प्राणी बिकलु भइआ संगि माइआ। धन सिउ रता जोबनि मता अहिला जनमु गवाइआ। धरम सेती वापारु न कीतो करमु न कीतो मितु। कहु नानक तीजै पहरै प्राणी धन जोबन सिउ चितु ॥ ३ ॥ चउथै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा लावी आइआ खेतु। जा जमि पकड़ि चलाइआ वणजारिआ मित्रा किसै न मिलिआ

भेतु। भेतु चेतु हरि किसै न मिलिओ जा जमि पकड़ि चलाइआ। झूठा रुदनु होआ दुोआलै खिन महि भइआ पराइआ। साई वसतु परापति होई जिसु सिउ लाइआ हेतु। कहु नानक प्राणी चउथै पहरै लावी लुणिआ खेतु ॥ ४ ॥ १ ॥

[यहाँ गुरु नानकदेवजी जीव को वणजारा और आयु को रात्रि कहकर एक रूपक प्रस्तुत करते हैं। कहते हैं कि यह पद गुरुजी ने वणजारों के एक गाँव में पुत्र-शोक-संतप्त एक वणजारे को उपदेश देते हुए उच्चारण किया था।]

हे वणजारे मित्र, आयु-रूपी रात्रि के प्रथम प्रहर में परमात्मा के हुकुमानुसार जीव माता के गर्भ में आता है। (हे कर्मों के व्यापारी !) वहाँ गर्भाशय में पड़ा जीव सिर नीचा और टाँगें ऊपर किए तपस्या में रत अपने प्रभु से प्रार्थना करता है—'हे परमात्मा, मुझे इस दण्ड से मुक्त करो, मैं जीवन-भर तुम्हारा नाम-स्मरण करता रहूँगा'। उलटा लटका जीव दत्त-चित्त प्रभु की आराधना में लीन होता है। जीव संसार में मर्यादा का (जाति-वर्णादि का) कोई बन्धन लेकर पैदा नहीं होता, न ही मृत्यु के समय यहाँ की कमाई का कोई अंश साथ ले जा पाता है। विधाता ने जीव के कर्मानुसार उसके माथे पर जो भाग्य-रेखाएँ खींच दी हैं उसी के अनुसार उसे सम्पत्ति या विपत्ति उपलब्ध होती है। गुरुजी कहते हैं कि अवस्था-रूपी रात्रि के पहले प्रहर में जीव परमात्मा की आज्ञा से माता के गर्भ में स्थान पाता है ॥ १ ॥

हे वणजारे मित्र, अवस्था-रूपी रात्रि के दूसरे प्रहर में (जब जीव गर्भ से बाहर आता और जन्म लेता है) जीव परमात्मा के ध्यान को विस्मृत कर देता है (गर्भ में की गई प्रतिज्ञा और प्रार्थना को भुला देता है)। उसके परिजन, भाई-बन्धु सब उसे हाथों-हाथ उठाए फिरते और प्रसन्न होते हैं, जैसे यशोदा के घर कान्ह ने जन्म पाया हो। परिवार के सभी लोग बच्चे को उछालते-खेलाते हैं और माता मोह-वश उसे अपना पुत्र कहकर गर्व करती है। हे मेरे मूढ़-मन, होश में आ और परमात्मा का स्मरण कर क्योंकि अन्तकाल में कोई तेरा सहायक नहीं होनेवाला। जिसने पंचभूतों से तेरा शरीर रचा है, तू उसी को नहीं जानता ? तुझे चाहिए कि अपने मन में निरन्तर उसका सही ज्ञान धारण कर। गुरुजी कहते हैं कि आयु-रूपी रात्रि के दूसरे पहर में जीव परमात्मा का ध्यान विसर्जित कर बैठता है ॥ २ ॥

हे वणजारे मित्र, अवस्था-रूपी रात्रि के तीसरे प्रहर में जीव का चित्त धन-यौवन में रम जाता है। अर्थात् वह धन-संग्रह करने और यौवन के भोग-विलास में संलग्न होता है। हे मित्र वणजारे, वह हरि का

नाम-स्मरण नहीं करता, जिससे वह माया-बन्धनों से छूट सकता है। प्राणी ईश्वर का नाम नहीं जपता और माया के सम्पर्क में सदैव विकल हुआ रहता है। वह धन की आसक्ति और यौवन की मस्ती में ऐसा लीन हो जाता है कि इस श्रेष्ठ मनुष्य-जन्म को व्यर्थ गँवा देता है। वह न तो धर्मानुसार आचरण करता है और न ही शुभ-कर्मों के साथ मैत्री बनाता है। गुरुजी कहते हैं कि जीव की आयु-रूपी रात्रि का तीसरा प्रहर भी धन यौवन की लालसा में ही नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

हे वणजारे मित्र, आयु-रूपी रात्रि के चौथे प्रहर (वृद्धावस्था) में जीवन-रूपी खेत को काटने के लिए यमदूत उपस्थित हो जाते हैं, अर्थात् शरीर का खेत तब तक पककर कटने को तैयार हो जाता है। हे मित्र, जब यमदूत जीव को पकड़कर साथ ले चलते हैं तो (शरीर से प्राणों के अलग होने का) यह रहस्य किसी को पता ही नहीं चलता। जब यमदूत जीव को ले चलते हैं तो यह रहस्य किसी को पता नहीं चलता (कि जीव शरीर से अलग होकर कहाँ चला गया)। जीव के पराया (यमदूतों का) होते ही सगे-सम्बंधी रुदन करते हैं किन्तु वह भी स्वार्थ-पूर्ण होने के कारण मिथ्या है। आगामी लोक में जीव को वही उपलब्धि होती है, जिसमें उसने चित्त एकाग्र किया होता है (अर्थात् माया के चक्र में वह लीन रहता है)। गुरुदेव कहते हैं कि आयु के चौथे प्रहर में मनुष्य जीवन का पका खेत लावी (खेत काटनेवाला) द्वारा काट लिया जाता है अर्थात् वृद्धावस्था में शरीर का अन्त निकट आ जाता है और समय पर यमदूत जीव को पकड़ ले जाते हैं (प्राणों को शरीर से अलग कर देते हैं) ॥ ४ ॥ १ ॥

॥ सिरीरागु महला १ ॥ पहिलै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा बालक बुधि अचेतु। खीरु पीऐ खेलाईऐ वणजारिआ मित्रा मात पिता सुत हेतु। मात पिता सुत नेहु घनेरा माइआ मोहु सबाई। संजोगी आइआ किरतु कमाइआ करणी कार कराई। रामनाम बिनु मुकति न होई बूडी दूजै हेति। कहु नानक प्राणी पहिलै पहरै छूटहिगा हरि चेति ॥ १ ॥ दूजै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा भरि जोबनि मैमति। अहिनिसि कामि विआपिआ वणजारिआ मित्रा अंधुले नामु न चिति। रामनामु घट अंतरि नाही होरि जाणै रस कस मीठे। गिआनु धिआनु गुण संजमु नाही जनमि मरहुगे झूठे। तीरथ वरत सुचि संजमु नाही करमु धरमु नही पूजा। नानक भाइ भगति निसतारा दुबिधा विआपै दूजा ॥ २ ॥ तीजै पहरै रैणि कै वणजारिआ

मित्रा सरि हंस उलथड़े आइ। जोबनु घटै जरूआ जिणै वणजारिआ मित्रा आंव घटै दिनु जाइ। अंति कालि पछुतासी अंधुले जा जमि पकड़ि चलाइआ। सभु किछु अपुना करि करि राखिआ खिन महि भइआ पराइआ। बुधि विसरजी गई सिआणप करि अवगण पछुताइ। कहु नानक प्राणी तीजै पहरै प्रभु चेतहु लिव लाइ ॥ ३ ॥ चउथै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा बिरधि भइआ तनु खीणु। अखी अंधु न दीसई वणजारिआ मित्रा कंनी सुणै न वैण। अखी अंधु जीभ रसु नाही रहे पराकउ ताणा। गुण अंतरि नाही किउ सुखु पावै मनमुख आवणजाणा। खड़ु पकी कुड़ि भजै बिनसै आइ चलै किआ माणु। कहु नानक प्राणी चउथै पहरै गुरमुखि सबदु पछाणु ॥ ४ ॥ ओड़कु आइआ तिन साहिआ वणजारिआ मित्रा जरु जरवाणा कंनि। इक रती गुण न समाणिआ वणजारिआ मित्रा अवगण खड़सनि बंनि। गुण संजमि जावै चोट न खावै ना तिसु जंमणु मरणा। कालु जालु जमु जोहि न साकै भाइ भगति भै तरणा। पति सेती जावै सहजि समावै सगले दूख मिटावै। कहु नानक प्राणी गुरमुखि छूटै साचे ते पति पावै ॥ ५ ॥ २ ॥

[पहले पद में गुरुजी ने गर्भाधान, बाल्यावस्था, यौवन और मरण, जीवन के ये चार पहलू चित्रित किए हैं। पुनः प्रस्तुत पद में उसी प्रकार रात्रि के प्रहरों को आयु के चार पहलुओं—बालक, युवा, प्रौढ़ और पूर्ण वृद्धावस्था—के रूप में चर्चायित करते हैं।]

हे वणजारे मित्र, अवस्था-रूपी रात्रि के प्रथम प्रहर में जीव बालक होता है; उसकी बुद्धि इतनी अपरिपक्व होती है कि उसे खाने-पीने का भी ठीक बोध नहीं होता। माता-पिता ही मोह-वश पुत्र को दूध पिलाते और खेलाते हैं (वह स्वयं न खेल सकता है, न खाने-पीने में समर्थ होता है)। विश्व में व्याप्त मोह-माया के ही कारण माता-पिता पुत्र-प्यार में उसके पोषण में उठाए कष्टों की भी उपेक्षा कर देते हैं। (बालक अपनी इच्छा से धरती पर नहीं आता) वह अपने पूर्व-जन्म के कर्मों से प्रेरित हुआ संसार में जन्म लेता है और आगे भी वे ही कर्म करता है जो पूर्व कर्मानुसार स्वयं ईश्वर उससे करवाता है। यह एक अकाट्य सत्य है कि राम-नाम के बग़ैर जीव का मोक्ष कभी सम्भव नहीं, द्वैत-भाव में रत रहने के कारण समूची सृष्टि विनाश को प्राप्त हो रही है। गुरुदेव कहते हैं कि हे प्राणी, आयु के प्रथम प्रहर में ही यदि तुझे मुक्ति अपेक्षित है, तो वह हरि-नाम के स्मरण से ही सम्भव हो सकती है॥ १ ॥

हे वणजारे मित्र, आयु-रूपी रात्रि के द्वितीय प्रहर में जीव यौवन की भरपूर मस्ती में मदांध रहता है। ऐ वणजारे, वह जीव (इस प्रहर में) रात-दिन कामासक्त रहता है, अज्ञानांध होने के कारण उसे कभी हरि-नाम की याद नहीं आती। दैहिक अनुरक्ति के कारण वह षटरस भोजन-पान के आस्वादन में निरत रहता है, मन में राम-नाम को कोई स्थान नहीं देता। इस अवस्था में उसके भीतर प्रभु के ज्ञान या ध्यान के लिए कोई स्थान नहीं, न ही वह जीवन को संयमित करता है; यों ही मिथ्याचरण में लिप्त जन्म गँवा बैठता है। जीवन के इस प्रहर में जीव तीर्थ, व्रत, शोच, संयम, धर्म-कर्म, पूजा-आराधना कुछ भी नहीं करता। गुरु-कथन है कि यदि पूर्व-कर्मों के कारण इस अवस्था में ही ईश्वर की कृपा हो जाय, तो जीव का निस्तार सम्भव है, अन्यथा बेचारा जीव द्वैत-भाव की दुविधा में आवागमन-चक्र में पड़ा रह जाता है ॥ २ ॥

हे वणजारे मित्र, अवस्था-रूपी रात्रि के तीसरे प्रहर में शरीर-सरोवर पर हंस आ बैठते हैं अर्थात् मनुष्य के सिर पर हंसों की नाईं सफ़ेद बाल पकने लगते हैं। हे वणजारे, यौवन के बीतने पर शरीर का बल घट जाता है और धीरे-धीरे शरीर पर प्रौढ़ावस्था हावी होने लगती है। यह अज्ञानी जीव, अन्तकाल पछताता है, जब यमदूत इसे आ पकड़ते हैं अर्थात् मृत्यु के निकट आने पर जीव पश्चाताप करने लगता है। (वह सोचता है कि) वह सब कुछ जिसे वह नित्य अपना कहता था, क्षण में ही उससे पराया हो जाता है (अर्थात् उसकी समूची धन-सम्पत्ति उससे छिन जाती है)। यमदूतों के वश पड़ते ही जीव का विवेक कुण्ठित हो जाता है, सब चतुराई धरी रह जाती है और वह अपने अवगुणों को याद कर-करके पछताने लगता है। इसलिए गुरुदेव कहते हैं कि हे प्राणी, अवस्था-रूपी रात्रि के तीसरे प्रहर में ही तुम परमात्मा में चित्त रमा लो ॥ ३ ॥

हे वणजारे मित्र, आयु-रूपी रात्रि के चौथे प्रहर में शरीर वृद्ध होकर क्षीण पड़ जाता है। उसमें दुर्बलता आ जाती है। आँखों-कानों की शक्ति भी दग़ा दे जाती है; हे मित्र, उसे आँखों से सुझाई नहीं देता, कानों से वह सुन नहीं पाता। दाँतों की असमर्थता के कारण जीभ का स्वाद भी जाता रहता है और वह पराए सहारे की आशा में विगलित जीवन निर्वाह करने लगता है। उस मनमुख के भीतर कोई आध्यात्मिक गुण कभी नहीं पनपता, इसलिए उसे सुख क्योंकर लब्ध हो ! बेचारा यों ही आवागमन के चक्र में पड़ा रहता है। शरीर-रूपी खेती पककर झुक जाती है (कमर झुक जाती है), कभी अपने-आप टूट जाती है (अंग टूटने लगते हैं), नष्ट हो जाती है, उसके जीवन-मरण की इस लोक में कोई प्रतिष्ठा नहीं रह जाती। इसलिए गुरुजी कहते हैं कि ऐ जीव, अवस्था के इस चौथे प्रहर में ही सतिगुरु के उपदेशानुसार आचरण करना सीख लो ॥ ४ ॥

हे वणजारे मित्र, अब उन श्वासों का भी अन्त निकट आ गया है (जिनसे चारों प्रहर यह शरीर चलता रहा है) और निर्दयी बुढ़ापा कंधे पर आन चढ़ा है। मनमुख जीव आजीवन कोई गुण संचित नहीं कर पाता, इसलिए अन्तकाल में उसे यमदूत पकड़कर ले जाते हैं। जो जीव शुभ गुणों का संग्रह करके संयम से जीता है, वह यम के आघात से बचा रहता है और उसका आवागमन शेष हो जाता है। यमदूत अपने मृत्यु-जाल में उस जीव को नहीं पकड़ पाते जो भाव-भक्ति द्वारा पहले ही संसार-सागर से पार हो जाता है। भक्ति द्वारा परमानन्द लाभ करनेवाला जीव सम्मानित होता और जन्म-मरण दु:खों से मुक्त हो जाता है। गुरु नानकदेव कहते हैं कि जन्म-मरण के बन्धन से छूटनेवाले गुरमुख जीव अपनी विवेक-बुद्धि (ब्रह्म-ज्ञान) द्वारा ईश्वर के दरबार में प्रतिष्ठा लाभ करते हैं ॥ ५ ॥ २ ॥

॥ सिरीरागु महला ४ ॥ पहिलै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा हरि पाइआ उदर मंझारि। हरि धिआवै हरि उचरै वणजारिआ मित्रा हरि हरि नामु समारि। हरि हरि नामु जपे आराधे विचि अगनी हरि जपि जीविआ। बाहरि जनमु भइआ मुखि लागा सरसे पिता मात थीविआ। जिस की वसतु तिसु चेतहु प्राणी करि हिरदै गुरमुखि बीचारि। कहु नानक प्राणी पहिलै पहरै हरि जपीऐ किरपा धारि ॥ १ ॥ दूजै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा मनु लागा दूजै भाइ। मेरा मेरा करि पालीऐ वणजारिआ मित्रा ले मात पिता गलि लाइ। लावै मात पिता सदा गल सेती मनि जाणै खटि खवाए। जो देवै तिसै न जाणै मूड़ा दिते नो लपटाए। कोई गुरमुखि होवै सु करै वीचारु हरि धिआवै मनि लिव लाइ। कहु नानक दूजै पहरै प्राणी तिसु कालु न कबहूं खाइ ॥ २ ॥ तीजै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा मनु लगा आलि जंजालि। धनु चितवै धनु संचवै वणजारिआ मित्रा हरिनामा हरि न समालि। हरिनामा हरि हरि कदे न समालै जि होवै अंति सखाई। इहु धनु संपै माइआ झूठी अंति छोडि चलिआ पछुताई। जिसनो किरपा करे गुरु मेले सो हरि हरि नामु समालि। कहु नानक तीजै पहरै प्राणी से जाइ मिले हरि नालि ॥ ३ ॥ चउथै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा हरि चलण वेला आदी। करि सेवहु पूरा

सतिगुरू वणजारिआ मित्रा सभ चली रैणि विहादी। हरि सेवहु खिनु खिनु ढिल मूलि न करिहु जितु असथिरु जुगु जुगु होवहु। हरि सेती सद माणहु रलीआ जनम मरण दुख खोवहु। गुर सतिगुर सुआमी भेदु न जाणहु जितु मिलि हरि भगति सुखांदी। कहु नानक प्राणी चउथै पहरै सफलिओ रैणि भगता दी ॥ ४ ॥ १ ॥ ३ ॥

[यह गुरु रामदासजी का पद है। गुरु नानकदेवजी के उपर्युक्त दो पदों की परम्परा में ही चौथी पातशाही उपदेश करते हैं और आयु-रूपी रात्रि के चारों पहरों में वणजारे को सम्बोधन कर रहे हैं।]

हे वणजारे मित्र, आयु-रूपी रात्रि के प्रथम प्रहर में परमात्मा जीव को माँ के पेट में डालता है। गर्भ की पीड़ा से दुखी होकर वह परमात्मा का ध्यान करता, प्रभु-नाम का उच्चारण एवं हरि-स्मरण करता है। वह बार-बार हरि-नाम की स्तुति और आराधना करता है। गर्भ की अग्नि में वह परमात्मा के नाम के ही कारण जीवित रह पाता है। गर्भ से बाहर आने पर जीव माता-पिता का दुलारा होता है, वे सन्तान का मुख देख-देखकर आनन्दित होते हैं। परन्तु हे प्राणी, गुरु के उपदेशानुसार तू हृदय में विचार कर और यह बालक जिसकी दी हुई वस्तु है, उसका चिन्तन-मनन कर। गुरुजी कहते हैं कि अवस्था के पहले प्रहर में ही (जीवन को सुचारु बनाने के लिए) कृपानिधि भगवान का पावन नाम जपना चाहिए ॥ १ ॥

हे वणजारे मित्र, अवस्था-रूपी रात्रि के दूसरे प्रहर में जीव का चित्त दूजे भाव (अन्यान्य आकर्षणों) में लीन हो जाता है। माता-पिता उसे 'मेरा-मेरा' करके बड़े प्यार से गले लगाते और पोषित करते हैं। माता-पिता भी (स्वार्थ-वश) गले से लगाते हुए सोचते हैं कि वह बड़ा होकर उन्हें कमाकर खिलाएगा। प्राणी कितना मूर्ख है कि देनेवाले (दाता) को तो पहचानने का प्रयत्न नहीं करता और उसकी दी हुई नश्वर वस्तुओं से लिपटता फिरता है। यदि किसी को सतिगुरु मिल जाए और वह उसके विवेक को जागृति प्रदान करे तो वह मन लगाकर ईशोपासना कर सकता है। गुरुजी कहते हैं कि ऐसे सुबुद्ध प्राणी को कभी काल परेशान नहीं कर सकता ॥ २ ॥

हे वणजारे मित्र, जीवन के तीसरे चरण में जीव का मन धन्धे-व्यवहार में आसक्त हो जाता है। युवावस्था में हे मित्र, जीव धनार्जन के बारे में सोचता और धन का ही संग्रह करता है; वह हरिनाम का स्मरण कभी नहीं करता। जीव भगवान् के सुखदायी नाम का स्मरण नहीं करता,

जो कि अन्तकाल में सबका सहायी होता है। यह धन-सम्पत्ति आदि झूठा माया-बन्धन ही तो है, जिसे अन्तकाल में छोड़कर पछताते हुए जाना पड़ेगा। जिस पर परमात्मा की दया होती है, उसे गुरु से मिलाप होता है और वह प्रभु-आराधना में लीन हो जाता है। गुरुजी कहते हैं कि अवस्था के तीसरे प्रहर में जो जीव हरि-भजन करता है, वह परमात्मा में ही विलीन हो जाता है (अभेदावस्था को पाता है) ॥ ३ ॥

हे मित्र, अवस्था-रूपी रात्रि का चतुर्थ प्रहर (बुढ़ापा) में भगवान ने मृत्यु का समय निकट ला दिया है। अब तो ऐ दोस्त, सतिगुरु को पाकर उसकी सेवा करो क्योंकि अवस्था-रूपी समूची रात्रि अब व्यतीत होने को आई है। प्रतिक्षण प्रभु की सेवा करो, इसमें विलम्ब उचित नहीं क्योंकि इससे तुम युग-युग के लिए अमर हो जाओगे। तुम, ऐ प्राणी, परमात्मा के रंग में आनन्द मनाओ और जन्म-मरण के दुःख को सदा के लिए भुला दो। जिस सतिगुरु के मिलाप से हरि-भक्ति सुखद प्रतीत होती है, उसमें और परमेश्वर में अभेद जानो। गुरुजी कहते हैं कि अवस्था के चौथे प्रहर को सही तौर पर सम्भालने (अर्थात् भजन-स्मरण करने) से भक्त जीव का समूचा जीवन सफल हो जाता है ॥ ४ ॥ १ ॥ ३ ॥

॥ सिरीरागु महला ५ ॥ पहिलै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा धरि पाइता उदरै माहि। दसी मासी मानसु कीआ वणजारिआ मित्रा करि मुहलति करम कमाहि। मुहलति करि दीनी करम कमाणे जैसा लिखतु धुरि पाइआ। मात पिता भाई सुत बनिता तिन भीतरि प्रभू संजोइआ। करम सुकरम कराए आपे इसु जंतै वसि किछु नाहि। कहु नानक प्राणी पहिलै पहरै धरि पाइता उदरै माहि ॥ १ ॥ दूजै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा भरि जुआनी लहरी देइ। बुरा भला न पछाणई वणजारिआ मित्रा मनु मता अहंमेइ। बुरा भला न पछाणै प्राणी आगै पंथु करारा। पूरा सतिगुरु कबहूं न सेविआ सिरि ठाढे जम जंदारा। धरमराइ जब पकरसि बवरे तब किआ जबाबु करेइ। कहु नानक दूजै पहरै प्राणी भरि जोबनु लहरी देइ ॥ २ ॥ तीजै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा बिखु संचै अंधु अगिआनु। पुत्रि कलत्रि मोहि लपटिआ वणजारिआ मित्रा अंतरि लहरि लोभानु। अंतरि लहरि लोभानु परानी सो प्रभु चिति न आवै। साध संगति सिउ संगु न कीआ बहु जोनी दुखु पावै। सिरजनहारु विसारिआ सुआमी इक निमख न लगो

धिआनु । कहु नानक प्राणी तीजै पहरै बिखु संचे अंधु अगिआनु ॥ ३ ॥ चउथै पहरै रैणि कै वणजारिआ मित्रा दिनु नेड़ै आइआ सोइ । गुरमुखि नामु समालि तूं वणजारिआ मित्रा तेरा दरगह बेली होइ । गुरमुखि नामु समालि पराणी अंते होइ सखाई । इहु मोहु माइआ तेरै संगि न चालै झूठी प्रीति लगाई । सगली रैणि गुदरी अंधिआरी सेवि सतिगुरु चानणु होइ । कहु नानक प्राणी चउथै पहरै दिनु नेड़ै आइआ सोइ ॥ ४ ॥ लिखिआ आइआ गोविंद का वणजारिआ मित्रा उठि चले कमाणा साथि । इक रती बिलम न देवनी वणजारिआ मित्रा ओनी तकड़े पाए हाथ । लिखिआ आइआ पकड़ि चलाइआ मनमुख सदा दुहेले । जिनी पूरा सतिगुरु सेविआ से दरगह सदा सुहेले । करम धरती सरीरु जुग अंतरि जो बोवै सो खाति । कहु नानक भगत सोहहि दरवारे मनमुख सदा भवाति ॥ ५ ॥ १ ॥ ४ ॥

हे वणजारे मित्र, आयु-रूपी रात्रि के प्रथम प्रहर में जीव जगत में आने के लिए माता के उदर में स्थान बनाता है। हे मित्र, वहाँ परमात्मा दस महीने में उसके लिए शरीर तैयार करता है और उसके जीने की अवधि निश्चित करता है। जब तक जीव संसार में रहता है, वह शुभ-अशुभ कर्म करता है। जो अवधि उसे मिलती है और विधाता ने उसके लिए जो लिख दिया है, वह तब तक वैसे ही कर्म कमाता है। प्रभु जीव को माता-पिता, भाई, पुत्र-पत्नी आदि के सम्बन्धों में बाँध देता है। उसके द्वारा किए जानेवाले शुभ अथवा अशुभ कर्म, सब वह परमात्मा ही करवाता है, जीव के अपने वश कुछ नहीं। गुरुजी कहते हैं कि अवस्था के प्रथम चरण में प्राणी मातृगर्भ में स्थान लेता है ॥ १ ॥

हे वणजारे मित्र, अवस्था-रात्रि के दूसरे प्रहर में जीव पर जवानी आती है, वह भरी नदी के समान काम, मोह और तृष्णा की तरंगों में बहता है। वह अहंकार में मदमस्त बुरा-भला पहचानने में भी असमर्थ होता है अर्थात् मोह-ममता के कारण वह अच्छाई-बुराई को भी नहीं समझ पाता। इस अवस्था में प्राणी अपना बुरा-भला विचारने के अयोग्य होता है, जबकि आगे बढ़ने का मार्ग उसके लिए अधिक कठोर हो जाता है। वह सतिगुरु को पहचानकर उसकी सेवा में रत नहीं होता और उसे मारने के लिए निर्दयी यमदूत सदा सिर पर दण्ड धारण किए खड़ा रहता है। ऐ मूर्ख, जब धर्मराज के सामने पेश होगा, तब अपने मन्द कर्मों की क्या

सफ़ाई दोगे। गुरुजी कहते हैं कि आयु के दूसरे चरण में जीव यौवन-रूपी नदी की तरंगों में बहता है ॥ २ ॥

हे वणजारे मित्र, आयु के तीसरे प्रहर में अज्ञानान्ध में पड़ा जीव विषय-वासनाओं के विष का संग्रह करता है। इस अवस्था में वह पत्नी-पुत्र के मोह में मग्न रहता है और उसके मन में लोभ की लहरें उठती हैं। मन में आकर्षक पदार्थों के लोभ के कारण जीव परमात्मा की ओर प्रवृत्त नहीं हो पाता। ऐसी प्रवृत्ति के प्रेरणा-स्थल साधु-संगति से भी वह दूर ही रहता है, इसलिए अनेक योनियों तक योंही भटकता हुआ दुःखों का पात्र बनता है। अपने स्रष्टा ईश्वर को विस्मृत कर रखा है, इसीलिए एक क्षण के लिए भी उसका (जीव का) ध्यान प्रभु में नहीं रमता। गुरुजी का कथन है, कि अवस्था के तीसरे चरण में अज्ञानांध हुआ जीव विषय-वासनाओं का विष संचित करता रहता है ॥ ३ ॥

हे वणजारे मित्र, अवस्था-रूपी रात्रि के चतुर्थ प्रहर में वह दिन निकट दीखने लगता है (जब प्राणी की मृत्यु होगी) अर्थात् बुढ़ापा आ जाता है और मौत नज़दीक दीखती है। हे मित्र, (अब भी) तू किसी सतिगुरु की शरण लेकर परमात्मा का नाम स्मरण कर ले, वही परलोक में तेरा एकमात्र सहारा होगा। गुरु-आदेशानुसार, ऐ प्राणी, प्रभु-नाम का जाप कर ले, वही अन्तकाल में तुम्हारा सखा होगा। जिस मोह-माया के साथ तुमने प्रीति लगा रखी है, यह मिथ्या है, मृत्यु के समय तुम्हारा साथ नहीं देगी। तुम्हारी समूची आयु-रूपी रात्रि अज्ञान के अन्धेरे में ही बीत रही है, अब भी यदि तुम सतिगुरु की शरण लो तो ज्ञान-ज्योति मिल सकती है। गुरुजी कहते हैं कि अवस्था के इस अन्तिम चरण में मृत्यु-काल निकट आ गया है ॥ ४ ॥

हे वणजारे मित्र, जब परमात्मा का बुलावा आता है तो विवश जाना ही पड़ता है, उस समय केवल कर्मलिख ही साथ जाता है। धर्मराज का निमन्त्रण इतना प्रबल होता है कि वह जीव को एक भी अतिरिक्त श्वास नहीं लेने देता अर्थात् यमदूत एकदम प्राण निकाल लेते हैं। परमात्मा का लिखित आदेश मिलते ही प्राणी को संसार से अलग कर दिया जाता है; ऐसे में मनमुख जीव (यमदूतों के हाथों) दुःख सहते हैं। इसके विपरीत जिन जीवों ने सतिगुरु की सेवा की होती है, वे बैकुण्ठ में सदा सुखी बसते हैं। इस युग में शरीर की धरती में यथा-कर्म का बीज जीव बो लेता है, वैसा ही फल चखता है। गुरुजी कहते हैं कि भक्त जीव तो परमात्मा के दरबार में प्रतिष्ठित होते हैं, किन्तु मनमुखी लोग सदैव आवागमन के चक्र में भ्रमित होते हैं ॥ ५ ॥ १ ॥ ४ ॥

सिरीरागु महला ४ घरु २ छंत

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ मुंध इआणी पेईअड़ै किउकरि हरि दरसनु पिखै । हरि हरि अपनी किरपा करे गुरमुखि साहुरड़ै कंम सिखै । साहुरड़ै कंम सिखै गुरमुखि हरि हरि सदा धिआए । सहीआ विचि फिरै सुहेली हरि दरगह बाह लुडाए । लेखा धरमराइ की बाकी जपि हरि हरि नामु किरखै । मुंध इआणी पेईअड़ै गुरमुखि हरि दरसनु दिखै ॥ १ ॥ वीआहु होआ मेरे बाबुला गुरमुखे हरि पाइआ । अगिआनु अंधेरा कटिआ गुर गिआनु प्रचंडु बलाइआ । बलिआ गुरगिआनु अंधेरा बिनसिआ हरि रतनु पदारथु लाधा । हउमै रोगु गइआ दुखु लाथा आपु आपै गुरमति खाधा । अकाल मूरति वरु पाइआ अबिनासी ना कदे मरै न जाइआ । वीआहु होआ मेरे बाबोला गुरमुखे हरि पाइआ ॥ २ ॥ हरि सति सते मेरे बाबुला हरिजन मिलि जंञ सुहंदी । पेवकड़ै हरि जपि सुहेली विचि साहुरड़ै खरी सोहंदी । साहुरड़ै विचि खरी सोहंदी जिनि पेवकड़ै नामु समालिआ । सभु सफलिओ जनमु तिना दा गुरमुखि जिना मनु जिणि पासा ढालिआ । हरि संत जना मिलि कारजु सोहिआ वरु पाइआ पुरखु अनंदी । हरि सति सति मेरे बाबोला हरिजन मिलि जंञ सुोहंदी ॥ ३ ॥ हरिप्रभु मेरे बाबुला हरि देवहु दानु मै दाजो । हरि कपड़ो हरि सोभा देवहु जितु सवरै मेरा काजो । हरि हरि भगती काजु सुहेला गुरि सतिगुरि दानु दिवाइआ । खंडि वरभंडि हरि सोभा होई इहु दानु न रलै रलाइआ । होरि मनमुख दाजु जि रखि दिखालहि सु कूड़ु अहंकारु कचु पाजो । हरि प्रभ मेरे बाबुला हरि देवहु दानु मै दाजो ॥ ४ ॥ हरि राम राम मेरे बाबोला पिर मिलि धन वेल वधंदी । हरि जुगह जुगो जुग जुगह जुगो सद पीड़ी गुरू चलंदी । जुगि जुगि पीड़ी चलै सतिगुर की जिनी गुरमुखि नामु धिआइआ । हरि पुरखु न कब ही बिनसै जावै नित देवै चड़ै सवाइआ । नानक संत संत हरि एको जपि हरि हरि नामु सोहंदी । हरि राम राम मेरे बाबुला पिर मिलि धन वेल वधंदी ॥ ५ ॥ १ ॥

[महला ४, श्री गुरु रामदासजी इस पद में स्त्री के रूपक से प्रश्नोत्तर शैली में आत्मा की स्थिति का वर्णन करते हैं]

अल्पावस्था की मुग्धा स्त्री (जैसे) पीहर में रहती हुई ससुराल में रहनेवाले अपने पति के दर्शन नहीं कर सकती, वैसे ही संसार-चक्र में लीन आत्मा सचखण्डवासी अपने पति-परमेश्वर का दर्शन नहीं पाती। सर्व-दुःख-हर्त्ता परमात्मा यदि कृपा कर दे तो ससुराल (परलोक) में सुखाधार कर्मों को जीव-स्त्री गुरु द्वारा यहीं सीख लेती है (अर्थात् ईश्वर-कृपा से गुरु मिल जाय तो आत्मा सचखण्ड-वास के लिए धारणा बना लेती है)। ससुराल में सुखाश्रयी कर्मों को सीखने का तात्पर्य यही है कि जीव-स्त्री इस जगत में गुरु-शरण में रहकर प्रभु-नाम स्मरण करना सीख ले। ऐसा करने से जीव-स्त्री यहाँ सत्संगति पाती और वहाँ आनन्द-विभोर हुई निःशंक भाव से जाती है। वह धर्मराज के हिसाब-किताब से बच जाती है और अपने प्रिय के ध्यान में मग्न हरि-भजन करती है। इस प्रकार नासमझ जीव-स्त्री को गुरु की सहायता से पीहर में ही (इसी लोक में) अपने पति-परमेश्वर के साक्षात् दर्शन हो जाते हैं ॥ १ ॥

गुरु की संगति में मैंने पति-परमेश्वर को पा लिया है अर्थात् ऐ बाबुल (पिता), अब मेरा विवाह हो गया है। गुरु ने प्रचण्ड ज्ञानाग्नि को प्रज्वलित कर मेरा अज्ञान-रूपी अन्धेरा नष्ट कर दिया है। ज्ञान-ज्योति के प्रकाशित होने पर अन्धेरा नष्ट हो गया है और उस आलोक में मुझे परमात्मा-रूपी रत्न-पदार्थ मिल गया है। गुरु के उपदेशानुसार आचरण करने से जीव को आत्मरूप की पहचान हुई, उसका अहंकार-रूपी रोग नष्ट हुआ और वह सब प्रकार के दुःखों से मुक्त हो गया। जीव-स्त्री अकाल-पुरुष परमात्मा को वरण कर लेती है, जो जन्म और मरण से सदा ऊपर है। हे पिता, मैंने (जीव-स्त्री ने) गुरु-कृपा से हरि-पति को पा लिया है, मैं विवाहित हुई हूँ ॥ २ ॥

पितृसमान सन्तजनो, मेरा पति-परमेश्वर सत्य-स्वरूप है; सभी हरि-भक्तों का मिलन ही मेरी सुशोभित बारात है। मैंने तो पीहर में ही (इहलोक में ही) पति का नाम-स्मरण कर सुखाश्रय पा लिया था, अब ससुराल में भी (परलोक में) उसी सत्यनाम की बदौलत सुखी बसती हूँ। जिन गुरमुखों ने मन की तृष्णाओं पर विजय पाकर अपनी संसार-यात्रा पूर्ण की है उनका समूचा जीवन सफल हो गया है। परमात्मा के सन्तजनों ने मिलकर मेरा विवाह रचाया है और वह परमानन्दी पुरुष मेरा दूल्हा बना है। हे सन्तो, मेरा पति सत्य-स्वरूप है, मेरी बारात में सब हरिजन शामिल हुए हैं ॥ ३ ॥

हे मेरे बाबुल, मेरे पति-परमेश्वर का पावन नाम ही तुम मेरे दहेज में

मुझे देना। सर्व-दुःख-हर्त्ता हरि-नाम का कपड़ा ही मेरी पोशाक हो, जो विवाह-काज के समय मुझे पहनाई जाय। हरि-नाम-स्मरण (भक्ति) के ही कारण मेरा विवाह-प्रसंग सदा सुखद रहा है, यह भक्ति-दान मुझे सतिगुरु से प्राप्त हुआ है। खण्डों-ब्रह्मण्डों में इस अद्वितीय दान-दहेज की शोभा हुई और मेरा दहेज अनुपम रहा। हरिनाम के दहेज के अतिरिक्त जो लोग पार्थिव दान-दहेज का प्रदर्शन करते हैं, वे मिथ्याडम्बरी और अहंकारी हैं अर्थात् प्रभु-नाम के अतिरिक्त पदार्थों का दहेज मिथ्या और त्याज्य है। इसलिए ऐ मेरे बाबा, मुझे दहेज में केवल हरि-नाम ही देना ॥ ४ ॥

हे पिता, मुझे रामरूप पति प्राप्त हुआ है; उस सर्व-व्यापक परमेश्वर के साथ मेरा मिलाप हुआ है, जिससे मेरे परिवार (भक्तजनों) की लता विकसित हुई है अर्थात् प्रभु-मिलन से सैकड़ों अन्य जिज्ञासु उदित हुए हैं। परमात्मा से मिलन पाकर यह भक्तजनों की परम्परा सदैव वृद्धिशील होगी। जिस सतिगुरु के कारण सेवकों में हरिनाम-स्मरण सम्भव हुआ है, उसकी परम्परा युग-युग तक चलती रहे। परम-पुरुष परमात्मा कभी विनाश को प्राप्त नहीं होता, न ही कहीं जाता है; वह तो उत्तरोत्तर अधिक देता है। गुरुजी कहते हैं कि सन्त हरि-रूप हैं, हरि सन्त-रूप में अभिव्यक्त होता है, दोनों में अभेद है। मैं सन्तों की कृपा से (गुरु-कृपा से) ही हरिनाम-स्मरण कर प्रभु-चरणों में स्थान पा सकी हूँ। हे मेरे बाबुल, मुझे रामरूप पति मिला है, उस सर्वव्यापक परमेश्वर के साथ मेरा मिलन हुआ है, जिससे मेरे परिवार में नित्य अभिवृद्धि हुई है ॥ ५ ॥ १ ॥

सिरीरागु महला ५ छंत

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ मन पिआरिआ जीउ मित्रा गोबिंद नामु समाले। मन पिआरिआ जी मित्रा हरि निबहै तेरै नाले। संगि सहाई हरिनामु धिआई बिरथा कोइ न जाए। मन चिंदे सेई फल पावहि चरणकमल चितु लाए। जलि थलि पूरि रहिआ बनवारी घटि घटि नदरि निहाले। नानकु सिख देइ मन प्रीतम साधसंगि भ्रमुजाले ॥ १ ॥ मन पिआरिआ जी मित्रा हरि बिनु झूठु पसारे। मन पिआरिआ जीउ मित्रा बिखुसागरु संसारे। चरणकमल करि बोहिथु करते सहसा दूखु न बिआपै। गुरु पूरा भेटै वडभागी आठ पहर प्रभु जापै।

आदि जुगादी सेवक सुआमी भगता नामु अधारे । नानकु सिख देइ मन प्रीतम बिनु हरि झूठ पसारे ॥ २ ॥ मन पिआरिआ जीउ मित्रा हरि लदे खेप सवली । मन पिआरिआ जीउ मित्रा हरि दरु निहचलु मली । हरि दरु सेवे अलख अभेवे निहचलु आसणु पाइआ । तह जनम न मरणु न आवण जाणा संसा दूखु मिटाइआ । चित्र गुपत का कागदु फारिआ जमदूता कछू न चली । नानकु सिख देइ मन प्रीतम हरि लदे खेप सवली ॥ ३ ॥ मन पिआरिआ जीउ मित्रा करि संता संगि निवासो । मन पिआरिआ जीउ मित्रा हरिनामु जपत परगासो । सिमरि सुआमी सुखह गामी इछ सगली पुंनीआ । पुरबे कमाए स्त्री रंग पाए हरि मिले चिरी विछुंनिआ । अंतरि बाहरि सरबति रविआ मनि उपजिआ बिसुआसो । नानकु सिख देइ मन प्रीतम करि संता संगि निवासो ॥ ४ ॥ मन पिआरिआ जीउ मित्रा हरि प्रेम भगति मनु लीना । मन पिआरिआ जीउ मित्रा हरि जल मिलि जीवे मीना । हरि पी आघाने अंम्रितबाने स्रब सुखा मन वुठे । स्री धर पाए मंगल गाए इछ पुंनी सतिगुर तुठे । लड़ि लीने लाए नउ निधि पाए नाउ सरबसु ठाकुरि दीना । नानक सिख संत समझाई हरि प्रेम भगति मनु लीना ॥ ५ ॥ १ ॥ २ ॥

हे मेरे प्राण-मित्र मन, तू प्रभु का नाम स्मरण कर। हे मित्र मन, वह परमात्मा ही सदैव तुम्हारा सहयोगी-सहायी हो सकता है। हरि-नाम का ध्यान करनेवाले का परम सहायक स्वयं वह हरि होता है, उसे कोई व्यथा नहीं रहती। प्रभु का स्मरण करनेवाला जीव मनोवांछित फल प्राप्त करता है और सदैव परमात्मा के चरणों में चित्त को रमाए रहता है। हे मन, ईश्वर जल-थल में सर्व-व्याप्त है, वह प्रत्येक जीव को दया-दृष्टि से देखता है। गुरुजी कहते हैं कि जिज्ञासु जीव को अपने प्यारे मन को संयत करके साधु-संगति में संलग्न करना चाहिए, ताकि उसका भ्रम-आवरण नष्ट हो सके ॥ १ ॥

हे मेरे प्यारे मित्र मन, भगवान् के सिवाय शेष सब संकल्प-विकल्प मिथ्या है। हे मन, यह संसार विष का सागर है, (इसे पार करने के लिए) परमात्मा के चरण-कमलों (में ध्यान लगाने) को जहाज़ बनाओ। (उसमें सवार होने से) तुम्हें संशय और आवागमन के दुखों से मुक्ति मिलेगी। जो भाग्यशाली जीव सतिगुरु को पा लेता है, वह आठों प्रहर

परमात्मा के भजन में रम जाता है। जो आदिकाल से ही सदैव परमात्मा की सेवा में लीन हैं, उन जीवों को केवल हरिनाम का ही सहारा है। गुरुजी कहते हैं कि ऐ जीव, तुम अपने मन को भली-भाँति यह समझा दो कि हरि के बिना यह समूचा माया-प्रसार झूठ है (यह तुम्हारा लक्ष्य नहीं हो सकता।) ॥ २ ॥

हे मेरे प्यारे दोस्त मन, हरिनाम के व्यापार में ही लाभ है। (हरिनाम का सौदा लादने में लाभ है)। इसलिए ऐ मन-मित्र, हरि के द्वार पर आसन जमा ले (उसे कभी न त्याग)। जिन जीवों ने अगोचर परमात्मा का द्वार (एकमात्र आश्रय) पकड़ा है, वे वहीं समाधिस्थ हो गए हैं (अर्थात् उन्होंने स्व-स्वरूप को पा लिया है)। उस अवस्था में पहुँचकर वे जन्म-मरण तथा आवागमन से छूट गए हैं, उनके संशयों-दुःखों का नाश हो गया है। वे उच्च पद के अधिकारी होते हैं कि चित्रगुप्त द्वारा उनके कर्मों का लेखा-जोखा भी समाप्त हो जाता है और यमदूत भी उनके सम्मुख असमर्थ होते हैं। (इसीलिए) गुरुजी कहते हैं कि ऐ जीव, अपने मन को समझा कि केवल हरिनाम के व्यापार में ही लाभ है ॥ ३ ॥

हे मेरे मित्र मन, साधु-संगति में रहना सीख। हे मन, (वहाँ तुम हरिनाम जपना सीखोगे) हरिनाम के जपने से ही अन्तर में आलोक होगा। तुम सुखदायी ईश्वर का नाम-स्मरण करो, उससे तुम्हारी समस्त इच्छाएँ पूर्ण होंगी। वही उत्तम जीव परमात्मा को प्राप्त करता है, जिसके पूर्वजन्म के कर्म शुभ होते हैं; वह दीर्घकालीन वियोग से मुक्त होकर अपने मूल (प्रभु) से अभेद प्राप्त करता है। प्रभु से प्रेम करनेवालों के मन में ऐसा विश्वास उत्पन्न होता है कि ईश्वर भीतर-बाहर सर्वत्र रमणशील है। अतः गुरुजी कहते हैं कि ऐ जीव अपने मन को साधु-संगति में रमण की बात समझाओ ॥ ४ ॥

ऐ मेरे मन-मित्र, जिनका मन परमात्मा की रागात्मिका भक्ति में लीन होता है, वे मछली की नाईं हरिनाम-रूपी जल से मिलकर ही जी पाते हैं (अर्थात् जैसे मछली जल के बिना मर जाती है वे हरिनाम के अभाव में निर्जीव हो जाते हैं)। जो जीव हरिनामामृत पीकर संतुष्ट होते हैं, उनकी वाणी भी अमृत-समान होती है और उनके मन में सर्वांगीण सुख निवसित होते हैं। जिनपर सतिगुरु की कृपा होती है और जिन्हें गुरुदेव शरण देते हैं, वे सम्पूर्ण पादार्थिक निधियों के स्वामी ही नहीं, बल्कि परमात्मा के नाम की अखण्ड विभूति का अमोघ दान पाकर स्वयं ठाकुर-सम बन जाते हैं। इसलिए गुरुजी मन को समझाते हुए कहते हैं कि बाह्य क्रिया-कलाप से हटकर उसे परमात्मा की प्रेम-भक्ति में लीन होना चाहिए ॥ ५ ॥ १ ॥ २ ॥

सिरीराग के छंत महला ५

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।। डखणा ।। हठ मझाहू मा पिरी पसे किउ दीदार । संत सरणाई लभणे नानक प्राण अधार ।। १ ।। छंतु ।। चरन कमल सिउ प्रीति रीति संतन मनि आवए जीउ । दुतीआ भाउ बिपरीति अनीति दासा नह भावए जीउ । दासा नह भावए बिनु दरसावए इक खिनु धीरजु किउ करै । नाम बिहूना तनु मनु हीना जल बिनु मछुली जिउ मरै । मिलु मेरे पिआरे प्रान अधारे गुण साध संगि मिलि गावए । नानक के सुआमी धारि अनुग्रहु मनि तनि अंकि समावए ।। १ ।। डखणा ।। सोहंदड़ो हभ ठाइ कोइ न दिसै डूजड़ो । खुल्हड़े कपाट नानक सतिगुर भेटते ।। १ ।। छंतु ।। तेरे बचन अनूप अपार संतन आधार बाणी बीचारीऐ जीउ । सिमरत सास गिरास पूरन बिसुआस किउ मनहु बिसारीऐ जीउ । किउ मनहु बेसारीऐ निमख नही टारीऐ गुणवंत प्रान हमारे । मन बांछत फल देत है सुआमी जीअ की बिरथा सारे । अनाथ के नाथे स्रब कै साथे जपि जूऐ जनमु न हारीऐ । नानक की बेनंती प्रभ पहि क्रिपा करि भवजलु तारीऐ ।। २ ।। डखणा ।। धूड़ी मजनु साध खे साई थीए क्रिपाल । लधे हभे थोकड़े नानक हरि धनु माल ।। १ ।। छंतु ।। सुंदर सुआमी धाम भगतह बिस्राम आसा लगि जीवते जीउ । मनि तने गलतान सिमरत प्रभ नाम हरि अंम्रितु पीवते जीउ । अंम्रितु हरि पीवते सदा थिरु थीवते बिखै बनु फीका जानिआ । भए किरपाल गोपाल प्रभु मेरे साधसंगति निधि मानिआ । सरब सो सूख आनंद घन पिआरे हरिरतनु मन अंतरि सीवते । इकु तिलु नही विसरै प्रान आधारा जपि जपि नानक जीवते ।। ३ ।। डखणा ।। जो तउ कीने आपणे तिना कूं मिलिओहि । आपे ही आपि मोहिओहु जसु नानक आपि सुणिओहि ।। १ ।। छंतु ।। प्रेम ठगउरी पाइ रीझाइ गोबिंद मनु मोहिआ जीउ । संतन कै परसादि अगाधि कंठे लगि सोहिआ जीउ । हरि कंठि लगि सोहिआ दोख सभि जोहिआ भगति लख्यण करि वसि भए । मनि सरब सुख वुठे

गोविद तुठे जनम मरणा सभि मिटि गए। सखी मंगलो गाइआ इछ पुजाइआ बहुड़ि न माइआ होहिआ। करु गहि लीने नानक प्रभ पिआरे संसारु सागरु नही पोहिआ ॥ ४ ॥ डखणा ॥ साई नामु अमोलु कीम न कोई जाणदो। जिना भाग मथाहि से नानक हरिरंगु माणदो ॥ १ ॥ छंतु ॥ कहते पवित्र सुणते सभि धंनु लिखतीं कुलु तारिआ जीउ। जिन कउ साधू संगु नामहरि रंगु तिनी ब्रहमु बीचारिआ जीउ। ब्रहमु बीचारिआ जनमु सवारिआ पूरन किरपा प्रभि करी। करु गहि लीने हरिजसो दीने जोनि ना धावै नह मरी। सतिगुर दइआल किरपाल भेटत हरे कामु क्रोधु लोभु मारिआ। कथनु न जाइ अकथु सुआमी सदकै जाइ नानकु वारिआ ॥ ५ ॥ १ ॥ ३ ॥

[टिप्पणी—यहाँ महला ५ श्री गुरु अर्जुनदेवजी के पाँच डखणे और छन्त दिए गए हैं। दोहे या सोरठे के प्रवाह का जो छन्द बहावलपुरी एवं सिंधी-वत् भाषा में लिखा जाय और जिसमें 'द' के स्थान 'ड' तथा 'स' की जगह 'ह' का प्रयोग हो, डखणा कहलाता है। छंत छन्द को कहते हैं। यहाँ गुरुजी ने प्रथम दो पंक्तियों में डखणा कहकर आगे की छ: पक्तियों में छंत (छंद) कहा है, जिसमें डखणे के भाव की ही व्याख्या की गई है।]

मेरे हृदय के भीतर ही पति-परमेश्वर निवास करता है, मैं उसका दीदार (दर्शन) क्योंकर कर सकता हूँ? (इस प्रश्न का उत्तर स्वयं देते हैं) गुरुजी कहते हैं कि वह प्यारा प्रभु जो मेरे प्राणों का आधार है, केवल सन्तों की शरण ग्रहण करने से ही मिल सकता है ॥ १ ॥ (छंतु) सन्तों के मन में प्रभु-मिलन की यह रीति परमात्मा के चरण-कमलों के संग प्रीति की ही द्योतक है अर्थात् प्रेम-भक्ति द्वारा प्रभु-मिलन का योग ही सन्तों की रीति है। द्वैत-भाव मर्यादा-विरोधी है, अतः अनीतिकर है। यह अनीति प्रभु के दासों या भक्तों को कभी स्वीकार नहीं होती। भक्तजनों को प्रभु-दर्शनों के अतिरिक्त और कुछ नहीं भाता, वे अपने प्रेम-पात्र को क्षण भर के लिए भी विस्मृत नहीं कर सकते। प्रभु-नाम से वंचित जीव तन-मन से क्षीण होता है और जल-बिन मीन की नाईं तड़प-तड़प कर मरता है। (अत: मेरी प्रार्थना है कि) हे प्राणाधार मेरे प्रियतम, दया कर मुझे दर्शन दो। मुझे वह साधु-संगति प्रदान करो, जिसमें बैठ मैं तुम्हारा यशोगान कर सकूँ। गुरुजी कहते हैं कि ऐ मेरे स्वामी, मुझ पर ऐसा अनुग्रह (कृपा) करो कि मेरा तन-मन तुम्हारे ही स्वरूप में विलीन हो जाय ॥ १ ॥

हे परमात्मा, तुम सब जगह शोभायमान हो, तुम्हारे सिवाय अन्य

कोई दीख नहीं पड़ता। गुरुजी कहते हैं कि सतिगुरु के मिलाप से ही भ्रमावरण विदीर्ण होता है। (भ्रम के कपाट-द्वार खुल जाते हैं) ॥ १ ॥ (छंतु) हे परमेश्वर, तुम्हारे वचन अनन्त-अनुपम हैं; सन्तजन इन्हीं के सहारे रहते और इन्हीं पर चिन्तन करते हैं। जो भक्त जीव नित्य-प्रति, श्वास-श्वाव विश्वास-पूर्वक तुम्हारा स्मरण करते हैं, उन्हें तुम क्योंकर मन से विस्मृत कर सकते हो? हे प्राण-प्रिय गुणवंत प्रभु, क्षण भर के लिए भी हम आपको कैसे भुला सकते हैं, कैसे मन से अलग कर सकते हैं? तुम परम कृपालु ठाकुर हो, जीव को मनोवांछित फल प्रदान करते और उसकी व्यथा को जानते हो। हे भगवन्, तुम निराश्रितों का आश्रय हो, सदैव सबके सहायक हो; तुम्हारा नाम जपनेवाला कभी विषय-तृष्णा-रूपी जुए में मानव-जन्म को व्यर्थ नहीं गँवाता। अतः, गुरुजी प्रभु के समक्ष विनती करते हुए कहते हैं कि हे परमात्मा, कृपा करके (मुझे) इस गहन संसार-सागर से पार कर दो ॥ २ ॥

सन्त-महात्माओं की चरण-रज में स्नान करने से परमात्मा भी मुझसे प्रसन्न हो गया। गुरुजी कहते हैं कि प्रभु की प्रसन्नता से मुझे नाम-धन प्राप्त हो गया और अन्य समस्त पदार्थ भी मैंने पा लिए ॥ १ ॥ भक्त-जनों के निवास के लिए परमेश्वर एक सुन्दर धाम के समान है, उसी को पाने की आशा में भक्तजन जीवित हैं। वे तन-मन से निमग्न होकर हरि-स्मरण करते और आनन्दामृत का पान करते हैं। हरि-नाम का पीयूष-पान कर वे सदैव स्थिर रहते और विषय-रूपी जल को फीका (व्यर्थ) मानते हैं। (सचमुच) साधु-संगति को अमृत-समान माननेवाले भक्तों पर मेरे प्रभु श्रीगोपाल कृपालु हुए हैं। हरिनाम पदार्थ को जो भक्तजन अपने मन में सम्हालते हैं, वे सर्वसुख-मूल ब्रह्मानन्द के चाहक होते हैं। गुरुजी कहते हैं कि उन्हें प्राणाधार परमात्मा कभी निमिष-मात्र के लिए भी विस्मृत नहीं होता, वे मन-वाणी से उसी का नाम जपकर जीवित हैं ॥ ३ ॥

हे परमात्मा, जिन जीवों को तुमने स्वयं अपनाया है, तुम उन्हें ही प्राप्त हो। गुरुजी कहते हैं कि तुम भक्तजनों से अपना यशोगान सुनकर अपने-आप मोहित हो जाते हो ॥ १ ॥ प्रेम की ठगौरी (ठग-बूटी, ठगने का साधन) से परमात्मा को प्रसन्न करके भक्तों ने अपने मोह-जाल में फँसा लिया है। जीव परमात्मा की दया से ही उसके गले लगकर शोभित होता है। मैं हरि-कण्ठ से लगकर शोभायमान हूँ, मेरे दोष दूर हो गए हैं और मुझमें उन दैवी गुणों का उदय हुआ है जिन पर स्वयं परमात्मा भी रीझते हैं। गोविंद की प्रसन्नता से समस्त सुख मेरे मन में आवसित हैं और मैं जन्म-मरणादि विकारों से मुक्त हो गया हूँ। जब-जब भक्तों की संगति में प्रभु का यशोगान किया है, तब-तब मेरी वांछाएँ सम्पन्न हुई हैं,

माया के हर्ष-शोकादि मोह से मैं निवृत्त हूँ। गुरुजी कहते हैं, जब से प्रभु ने भक्तों को भुजा गहकर संरक्षण प्रदान किया है, तब से वे संसार-सागर की विकृत काई से अप्रभावित हो गए हैं ।। ४ ।।

परमात्मा का नाम एक अमूल्य पदार्थ है, जिसका सही मोल कोई नहीं जानता। गुरुजी कहते हैं कि जिनके माथे में भाग्य-रेखाएँ मौजूद हैं, वे तो अनवरत परमात्मा के प्रेम में तल्लीन रहते हैं ।। १ ।। हरिनाम इतना पावन है कि उसका उच्चारण करनेवाले पवित्र हैं, श्रवण-कर्त्ता भी धन्य हैं और नाम-महिमा लिखनेवालों का तो समूचा वंश ही मोक्ष को प्राप्त होता है। जिन जीवों को सत्संगति प्राप्त है, वे ही हरिनाम से प्रेम करते और ब्रह्म विचारते हैं। ब्रह्म विचारनेवालों का जन्म सफल होता है और प्रभु भी उनपर पूर्ण कृपालु होता है। परमात्मा उनका हाथ थाम कर उन्हें यश देता है— वे योनियों में आवागमन से मुक्त हो जाते हैं। दयालु सतिगुरु की कृपापूर्ण भेंट से काम, क्रोध, लोभादि विकारों का नाश होता है। गुरुजी कहते हैं कि वह पूर्ण स्वामी अकथ, अगम है, इसलिए वे उसपर बारहा बलिहार हैं ।। ५ ।। १ ।। ३ ।।

सिरीरागु महला ४ वणजारा

१ ओं सतिनामु गुर प्रसादि ।। हरि हरि उतमु नामु है जिनि सिरिआ सभु कोइ जीउ। हरि जीअ सभे प्रतिपालदा घटि घटि रमईआ सोइ। सो हरि सदा धिआईऐ तिसु बिनु अवरु न कोइ। जो मोहि माइआ चितु लाइदे से छोडि चले दुखु रोइ। जन नानक नामु धिआइआ हरि अंति सखाई होइ ।। १ ।। मै हरि बिनु अवरु न कोइ। हरि गुरसरणाई पाईऐ वणजारिआ मित्रा वडभागि परापति होइ ।। १ ।। रहाउ ।। संत जना विणु भाईआ हरि किनै न पाइआ नाउ। विचि हउमै करम कमावदे जिउ वेसुआ पुतु निनाउ। पिता जाति ता होईऐ गुरु तुठा करे पसाउ। वडभागी गुरु पाइआ हरि अहिनिसि लगा भाउ। जन नानकि ब्रहमु पछाणिआ हरि कीरति करम कमाउ ।। २ ।। मनि हरि हरि लगा चाउ। गुरि पूरै नामु दृड़ाइआ हरि मिलिआ हरिप्रभ नाउ ।। १ ।। रहाउ ।। जबलगु जोबनि सासु है तबलगु नामु धिआइ। चलदिआ नालि हरि चलसी हरि अंते लए छडाइ। हउ बलिहारी तिन कउ जिन हरि मनि वुठा

आइ । जिनी हरि हरि नामु न चेतिओ से अंति गए पछुताइ । धुरि मसतकि हरिप्रभि लिखिआ जन नानक नामु धिआइ ॥ ३ ॥ मन हरि हरि प्रीति लगाइ । वडभागी गुरु पाइआ गुरसबदी पारि लघाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हरि आपे आपु उपाइदा हरि आपे देवै लेइ । हरि आपे भरमि भुलाइदा हरि आपे ही मति देइ । गुरमुखा मनि परगासु है से विरले केई के । हउ बलिहारी तिन कउ जिन हरि पाइआ गुरमते । जन नानकि कमलु परगासिआ मनि हरि हरि वुठड़ा हे ॥ ४ ॥ मनि हरि हरि जपनु करे । हरि गुर सरणाई भजि पउ जिंदू सभ किलविख दुख परहरे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ घटि घटि रमईआ मनि वसै किउ पाईऐ कितु भति । गुरु पूरा सतिगुरु भेटीऐ हरि आइ वसै मनि चिति । मै धर नामु अधारु है हरिनामै ते गति मति । मै हरि हरि नामु विसाहु है हरिनामे ही जति पति । जन नानक नामु धिआइआ रंगि रतड़ा हरि रंगि रति ॥ ५ ॥ हरि धिआवहु हरिप्रभु सति । गुर बचनी हरिप्रभु जाणिआ सभ हरिप्रभु ते उतपति ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिन कउ पूरबि लिखिआ से आइ मिले गुर पासि । सेवक भाइ वणजारिआ मित्रा गुरु हरि हरि नामु परगासि । धनु धनु वणजु वापारीआ जिन वखरु लदिअड़ा हरि रासि । गुरमुखा दरि मुख उजले से आइ मिले हरि पासि । जन नानक गुरु तिन पाइआ जिना आपि तुठा गुणतासि ॥ ६ ॥ हरि धिआवहु सासि गिरासि । मनि प्रीति लगी तिना गुरमुखा हरिनामु जिना रहरासि ॥ १ ॥ रहाउ ॥ १ ॥

[कहते हैं कि एक वणजारे को उपदेश देते हुए श्री गुरु अमरदासजी ने यह शब्द उस समय उच्चरित किया, जब वह गुरुजी के निकट जीवन के लिए कल्याणप्रद साधन की खोज में जिज्ञासा करने लगा।]

जिस परमात्मा ने सबको उत्पन्न किया है, जो सबका सर्जक है, उसी का सुखदायी नाम जीव-कल्याण का श्रेष्ठ साधन है। वह प्रभु सब जीवों का पालक है और घट-घट में व्यापक है। उसी हरि की निरन्तर आराधना करो, क्योंकि उसके अतिरिक्त और कोई उपास्य नहीं हो सकता। जो जीव परमेश्वर की अपेक्षा माया-मोह में मग्न रहते हैं, वे अन्तिम समय उन्हें (सांसारिक पदार्थों को) छोड़ते हुए दुखी होते और रोते हैं। गुरुजी कहते हैं कि जिन जीवों ने प्रभुनाम का स्मरण किया है,

अन्त समय परमात्मा उनका सहायी होता है ॥ १ ॥ हे वणजारे मित्र, हरि के सिवाय मेरा कोई सहायक नहीं। उस हरि की प्राप्ति गुरु की शरण में ही सम्भव है, जो कि बड़े भाग्य से मिलती है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे भाई, सन्तजनों (सतिगुरु) की कृपा के बग़ैर आज तक किसी को प्रभु-नाम की प्राप्ति नहीं हुई। गुरु-विमुख जीव अहम्वादी होकर कर्म करते हैं। वे लोग वेश्या की सन्तान की नाईं पितृ-कुल से अपरिचित ही रहते हैं। पितृ-जाति का ज्ञान (अपने कर्त्ता अर्थात् परमात्मा की जानकारी) उन्हें तभी होता है, जब वे सच्ची सेवा द्वारा गुरु को प्रसन्न करके उसकी अमर-कृपा के पात्र बनते हैं। मनुष्य को सौभाग्य से ही गुरु मिलता है और गुरु-कृपा से वह परमात्मा से प्रेम करना सीखता है। गुरुजी का कथन है कि हरिभक्त-जन परमात्मा का यशोगान करते हुए सर्वत्र ब्रह्म को पहचान लेते हैं ॥ २ ॥ जिन जीवों के मन में सर्वदुःखहर्त्ता परमात्मा का चाव होता है, उन्हें गुरु हरिनाम पर दृढ़ करता एवं ईश्वर से मिला देता है ॥१॥ रहाउ॥ (ऐ मित्र वणजारे,) जब तक शरीर स्वस्थ है और उसमें प्राणों का संचार होता है, तुम हरिनाम का भजन करो। केवल हरिनाम ही परलोक में भी तुम्हारा साथ देगा और तुम्हें काल-ग्रास बनने से बचाएगा। जिनके मन में हरि निवसित है, मैं उनपर बलिहार हूँ; जो लोग दुःख-भंजक परमात्मा का स्मरण नहीं करते वे अन्त में पछताते हैं। गुरुजी कहते हैं कि परमात्मा ने जिनके मस्तक पर वह भाग्य-रेखा दी है, वे भाग्यशाली ही हरिनाम का भजन कर पाते हैं ॥ ३ ॥ हे मन, तुम हरि से प्यार करो, उसी की कृपा से भाग्यवान जीव सतिगुरु को प्राप्त करता और उसके उपदेशानुसार आचरण द्वारा संसार-सागर से पार उतरता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ परमेश्वर इस संसार को स्वयं उत्पन्न करता है और मनुष्य को स्वेच्छा से प्राणों का दान देता और लेता है। जीव को भ्रम-मोहित वह परमात्मा ही करता है और अनुग्रह-वश उसके भीतर विवेक जागृत कर स्वयं ही उसे भ्रम-पाश से मुक्त भी कर लेता है। गुरु की शरण लेनेवाले विवेकशील (प्रकाशवान्) हैं, किन्तु उनकी संख्या नगण्य (कोई-कोई, विरल) है। जिन जीवों ने गुरु के उपदेशों पर आचरण करके परमात्मा को पा लिया है, मैं (गुरुजी) उनपर बलिहार हूँ। गुरुजी कहते हैं कि उन (गुरमुखों) का हृदय-कमल पूर्णतः विकसित हो जाता है और उनके चित्त में स्वयं हरि निवास करता है ॥ ४ ॥ हे मन, दुःख-भंजन परमात्मा का नाम जप। हे जीव, तुम दौड़कर परमात्मा और गुरु की शरण ग्रहण करो, वे तुम्हारे सब पापों-दुःखों का निवारण कर देंगे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ वह रमणशील परमेश्वर प्रत्येक प्राणी के हृदय में निवास करता है, किन्तु उसका सही ज्ञान क्योंकर हो? किस भाँति उसे पाया जाय? यदि जीव को भाग्य-वश पूरे सतिगुरु की शरण मिल जाय,

तभी उसके हृदय में हरि प्रकट होता है। (यहाँ प्रथम पंक्ति में एक प्रश्न खड़ा करके दूसरी में समाधान पेश किया गया है।) हे मित्र, मुझे केवल हरिनाम का ही सहारा है, इसीलिए मुक्तिदायिनी सूझ मिलती है। मुझे हरिनाम का दृढ़ विश्वास है; वही मेरी जाति और सम्मान है। गुरुजी कहते हैं कि प्रत्येक स्थिति में रहते हुए मैं हरि-रंग में मग्न उसी का नाम स्मरण करता हूँ ॥ ५ ॥ हे वणजारे मित्र, सत्य-स्वरूप परमात्मा का भजन करो। वह प्रभु गुरु के उपदेश से ज्ञातव्य है, वही समूची सृष्टि का कर्त्ता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (प्रश्न उठता है कि फिर सभी लोग क्यों गुरु का उपदेश नहीं लेते?) जिन जीवों के भाग्य में (प्रारब्ध के फल निमित्त) प्राप्ति लिखी है, वे ही गुरु से मिलते हैं। (गुरु के निकट आनेवालों में भी) हे भाई वणजारे, जो गुरु की सेवा द्वारा उसे सन्तुष्ट कर लेते हैं, वह उन्हें ही हरिनाम का उपदेश देता है। वह व्यापार और व्यापारी, दोनों स्तुत्य हैं, जो श्रद्धा की पूँजी लगाकर प्रभुनाम की सामग्री लादते हैं। गुरु की सेवा में संलग्न जीव ईश्वर के दरबार में शोभते हैं और प्रभु के समीप विराजते हैं। (अब पुनः कहते हैं कि गुरु मिलता किसे है—समाधान दिया है) गुरुजी कहते हैं कि वह गुणागार परमात्मा स्वयं जिस जीव पर अनुग्रह करता है, वही सतिगुरु को पाने का अधिकारी होता है ॥ ६ ॥ अतः ऐ मित्र वणजारे, तुम श्वास-श्वास परमात्मा का भजन करो, क्योंकि श्रद्धा की राशि से ही गुरमुख जीव हरि से प्रेम निभाते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ सिरीराग की वार महला ४ सलोका नालि ॥ सलोक म० ३ ॥ रागा विचि स्रीरागु है जे सचि धरे पिआरु। सदा हरि सचु मनि वसै निहचल मति अपारु। रतनु अमोलकु पाइआ गुर का सबदु बीचारु। जिहवा सची मनु सचा सचा सरीर अकारु। नानक सचै सतिगुरि सेविऐ सदा सचु वापारु ॥ १ ॥ म० ३ ॥ होरु बिरहा सभ धातु है जबलगु साहिब प्रीति न होइ। इहु मनु माइआ मोहिआ वेखणु सुनणु न होइ। सह देखे बिनु प्रीति न ऊपजै अंधा किआ करेइ। नानक जिनि अखी लीतीआ सोई सचा देइ ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ हरि इको करता इकु इको दीबाणु हरि। हरि इकसै दा है अमरु इको हरि चिति धरि। हरि तिसु बिनु कोई नाहि डरु भ्रमु भउ दूरि करि। हरि तिसै नो सालाहि जि तुधु रखै बाहरि घरि। हरि जिस नो होइ दइआलु सो हरि जपि भउ बिखमु तरि ॥ १ ॥

['वार' यशोगान की कविता को कहते हैं। 'पउड़ी' एक प्रकार का छन्द है, जिसमें वीरता (शारीरिक अथवा आध्यात्मिक) की गाथा कही जाती है। यहां महला ४, श्री गुरु रामदासजी प्रभु का यशोगान कर रहे हैं। साथ में लिखे गए श्लोक पउड़ी के भावानुसार भिन्न-भिन्न स्थानों से लेकर गुरु अर्जुनदेवजी ने सम्पादित किए हैं।]

रागों का गायन करते हुए श्रीराग की उत्तमता तभी है, यदि मनुष्य सत्य-ब्रह्म में आसक्ति बनाए। (ऐसा करने से) सत्य-स्वरूप परमात्मा सदा उसके हृदय में निवास करता है और उसमें स्थिर विवेक जाग्रत होता है। गुरु के उपदेशानुसार आचरण करने से जिज्ञासु जीव परब्रह्म-रूपी मूल्यवान् रत्न को प्राप्त करता है। (प्रभु का यशोगान करने से) जीव की जिह्वा सत्य को प्राप्त करती है, (भक्ति से) उसका मन निर्मल होता तथा (सेवा से) शरीर भी सार्थक हो जाता है। गुरुजी कहते हैं कि सतिगुरु की आज्ञा-पालन करने से हमारा (इच्छा, ज्ञान, कर्मादि) व्यापार पावन होता है ॥ १ ॥ (म० ३) जब तक परमेश्वर से सच्चा प्यार नहीं उपजता, तब तक अन्य देवी-देवताओं की भक्ति निरर्थक है। जब तक मन माया द्वारा मोहित होता है, तब तक जीव सही आध्यात्मिक दृष्टि से न तो देख पाता है, न सुन पाता है। (तात्पर्य यह कि मायावी जीव का श्रवण-मनन दूषित होता है।) क्योंकि (ऐसे में) जीव अपने पति-परमेश्वर को (माया के कारण) देख नहीं पाता, इसीलिए उसकी प्रीति नहीं बनती। वह अज्ञानांध होने के कारण प्रभु-प्राप्ति कैसे कर सकता है? गुरुजी कहते हैं कि जिस प्रभु ने जीव की आँखें (विवेक की) ले ली हैं, वही सच्चा परमात्मा चाहे तो उसे आँखें दे भी सकता है। (माया ब्रह्म की ही शक्ति है, परमात्मा ने ही इसे बीच में डालकर जीव के विवेक-चक्षु हर लिए हैं।) ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ परमात्मा इस सृष्टि का एक मात्र कारण है, निमित्ति भी है और उपादान भी। वही सर्वस्व का आधार है। सृष्टि के समस्त जीवों पर एक हरि का ही हुकम चलता है, इसलिए जिज्ञासु जीव उसी (शक्तिशाली) को हृदय में धारण करे। (यदि जीव यह निश्चय दृढ़ करे कि) हरि के अतिरिक्त कोई अन्य शक्ति इस जगत की शासक या नियंता नहीं है तो उसके सब भय और भ्रम नष्ट हो जायँ। परमात्मा का ही विरुद है कि वह घर और बाहर, सब जगह तुम्हारी रक्षा करता है। जिसपर प्रभु की दया होती है, वह विषम संसार-समुद्र को तिर लेता है अर्थात् वह जन्म-मरण से मुक्त हो जाता है ॥ १ ॥

॥ सलोक म० १ ॥ दाती साहिब संदीआ किआ चलै तिसु नालि। इक जागंदे ना लहंनि इकना सुतिआ देइ उठालि ॥ १ ॥ म० १ ॥ सिदकु सबूरी सादिका सबरु तोसा मलाइकां। दीदारु पूरे पाइसा थाउ नाही खाइका ॥ २ ॥

पउड़ी ।। सभ आपे तुधु उपाइ कै आपि कारै लाई । तूं आपे वेखि विगसदा आपणी वडिआई । हरि तुधहु बाहरि किछु नाही तूं सचा साई । तूं आपे आपि वरतदा सभनी ही थाई । हरि तिसै धिआवहु संत जनहु जो लए छडाई ।। २ ।।

।। स० म० १ ।। परमात्मा ने हमें हज़ारों नियामतें दी हैं, किन्तु उस पर किसी की ज़ोर-ज़बरदस्ती नहीं चलती (अमुक को दीं, मुझे क्यों नहीं दीं ? ऐसा प्रश्न-चिह्न नहीं लगाया जा सकता ।) । कुछ जीव जागते हुए भी परमात्मा की देन को प्राप्त नहीं कर पाते और कुछ (कृपावश) को निद्रा से जगाकर वह देता है (अर्थात् जिसे वह योग्य समझता है, देता है) ।। १ ।। म० १ ।। साधक जीवों के पास विश्वास और सन्तोष की पूँजी है, सन्त-महात्माओं के पास धैर्य की राशि होती है । ज्ञानवान् जीवों ने प्रभु का दर्शन पाया है, जिज्ञासुजन भी अवश्य पा लेंगे, किन्तु पेट भरनेवाले मूढ़ों के लिए कोई स्थान नहीं ।। २ ।। पउड़ी ।। हे परमात्मा, यह सम्पूर्ण सृष्टि तुमने पैदा की है और तुम्हीं ने उसे अलग-अलग धन्धों में लगा रखा है। अपनी बड़ाई देखकर तुम खुश होते हो। हे प्रभु, तुमसे बाहर कुछ नहीं, तुम्हीं सर्वस्व के वास्तविक स्वामी हो। तुम सब जगह व्याप्त हो। हे सन्तो, उसी प्रभु का स्मरण करो, जो अन्तकाल में बन्धनों से मुक्त करवा लेता है ।। २ ।।

।। सलोक म० १ ।। फकड़ जाती फकड़ु नाउ । सभना जीआ इका छाउ । आपहु जे को भला कहाए । नानक तापरु जापै जा पति लेखै पाइ ।। १ ।। म० २ ।। जिसु पिआरे सिउ नेहु तिसु आगै मरि चलीऐ । ध्रिगु जीवणु संसारि ता कै पाछै जीवणा ।। २ ।। पउड़ी ।। तुधु आपे धरती साजीऐ चंदु सूरजु दुइ दीवे । दसचारि हट तुधु साजिआ वापारु करीवे । इकना नो हरि लाभु देइ जो गुरमुखि थीवे । तिन जमकालु न विआपई जिन सचु अंम्रितु पीवे । ओइ आपि छुटे परवार सिउ तिन पिछै सभु जगतु छुटीवे ।। ३ ।।

।। स० म० १ ।। ऊंची जाति या नाम का अभिमान व्यर्थ है । सब का एक-मात्र सहारा ईश्वर है । यदि कोई जाति या नाम की श्रेष्ठता के कारण अपने को महत्त्वपूर्ण माने (तो वह उचित नहीं, क्योंकि) गुरुजी कहते हैं कि ईश्वर के दरबार में सम्मानित होने पर ही जीव की श्रेष्ठता का पता चलेगा ।। १ ।। सलोक म० २ ।। (गुरु नानकदेवजी के शरीर छोड़ने पर गुरु अंगददेवजी उनके प्रेम में विह्वल होकर ये पंक्तियाँ कहते हैं :—)

जिस प्रियतम से प्यार होता है, उसके शरीर त्यागने से पूर्व ही प्रेम करनेवाले को मर जाना चाहिए। प्रियतम के पश्चात् संसार में जीवित रहने को धिक्कार है। (भाव यह भी हो सकता है कि जिस प्रियतम से प्यार हो, उसके सामने जाति-नामादि की बड़ाई त्याग देनी चाहिए, उससे विमुख होकर जीने को धिक्कार है) ।। २ ।। (पउड़ी) हे परमात्मा, तुमने इस धरती की स्थापना की है, चाँद और सूर्य ये दो दीपक बनाए हैं। तुम्हींने इस ब्रह्माण्ड में चौदह भुवनों की रचना की है, जहाँ जीव-कर्मों का निरन्तर व्यापार होता है। (इन चौदह भुवनों में) जो व्यापारी जीव गुरमुख होते अर्थात् ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, उन्हें तुम मुक्ति-रूपी लाभ प्रदान करते हो। जो परब्रह्म का नामामृत पान कर लेता है, उसे यमदूत नहीं पकड़ते। ऐसे प्रभु से प्यार करनेवाले जीव स्वयं मुक्त होते हैं, उनका परिवार भी भव-बन्धन से छूटता है और उनके पीछे सारा संसार (उनके उपदेशानुसार आचरण करनेवाले जीव) बन्धन-मुक्त हो जाता है ।। ३ ।।

।। सलोक म० १ ।। कुदरति करि कै वसिआ सोइ। वखतु वीचारे सु बंदा होइ। कुदरति है कीमति नही पाइ। जा कीमति पाइ त कही न जाइ। सरै सरीअति करहि बीचारु। बिनु बूझे कैसे पावहि पारु। सिदकु करि सिजदा मनु करि मखसूदु। जिहि धिरि देखा तिह धिरि मउजूदु ।। १ ।। म० ३ ।। गुरसभा एव न पाईऐ ना नेड़ै ना दूरि। नानक सतिगुरु तां मिलै जा मनु रहै हदूरि ।। २ ।। पउड़ी ।। सपत दीप सपत सागरा नव खंड चारि वेद दसअसट पुराणा। हरि सभना विचि तूं वरतदा हरि सभना भाणा। सभि तुझै धिआवहि जीअ जंत हरि सारगपाणा। जो गुरमुखि हरि आराधदे तिन हउ कुरबाणा। तूं आपे आपि वरतदा करि चोज विडाणा ।। ४ ।।

।। स० म० १ ।। प्रभु सृष्टिरचना करके स्वयं उसी में निवसता है। जो जीव मनुष्य-जन्म में परमात्मा की भक्ति कर लेता है, वही सच्चा भक्त है। समूची सृष्टि का अनुभव करते हुए भी प्रायः सृष्टि के कर्त्ता की सही कीमत हम नहीं डाल सकते। (तात्पर्य यह कि मनुष्य कुदरत में क़ादर को महसूस करता है, फिर भी उसके स्वरूप को नहीं जान पाता)। यदि कोई कीमत डाल भी ले, तो वह कह नहीं सकता (अर्थात् यदि कोई उसके स्वरूप को जान लेता है तो वह उस अद्वितीय आलोक में इतना मग्न हो जाता है कि उसे शब्दों में अभिव्यक्ति नहीं दे सकता)। यदि क़ुदरत में ही क़ादर को जानने का विचार छोड़कर जीव धर्म-मर्यादा और शास्त्रों

में उसकी खोज करे, तो भी बात अनुकूल नहीं होती। सही ज्ञान तथा आत्मानुभव के बग़ैर उसका (परमात्मा का) अन्त कोई नहीं पा सकता। (अब प्रश्न उठता है कि फिर कोई उसका अन्त क्योंकर पा सकता है? आगे उत्तर देते हैं) ईश्वर में परम विश्वास को नमन करो और मन से उस प्रभु का स्मरण करो, फिर तुम जिधर भी देखोगे, तुम्हें उधर ही प्रभु व्याप्त दीखेगा ॥ १ ॥ सलोक म० ३ ॥ गुरु की यथार्थता निश्चय ही (शारीरिक रूप से) निकट या दूर रहने से प्राप्त नहीं होती। (गुरुजी कहते हैं कि) सतिगुरु की सही प्राप्ति तो मनसा उसकी शरण ग्रहण करने से सम्भव है ॥ २ ॥ (पउड़ी) समूचे ब्रह्माण्ड में, सप्तद्वीप, सातों सागर और नव-खण्ड में, तथा वेदों, शास्त्रों और अठारह पुराणों में प्रतिपादन-योग्य अर्थ के रूप में स्वयं प्रभु ही व्याप्त है और वही सबको भाता (अच्छा लगता) है। हे सारंगपाणि परमात्मा, सब जीव-जन्तु सदैव तुम्हारा ही ध्यान करते हैं। मैं तो उन गुरुमुख जीवों पर कुरबान हूँ, जो गुरु-उपदेशानुसार हरि-आराधना करते हैं। हे परमात्मा, विश्व के सभी आश्चर्यों-कौतुकों के मूल में तुम ही तुम व्याप्त हो ॥ ४ ॥

॥ सलोक म० ३ ॥ कलउ मसाजनी किआ सदाईऐ हिरदै ही लिखि लेहु। सदा साहिब कै रंगि रहै कबहूं न तूटसि नेहु। कलउ मसाजनी जाइसी लिखिआ भी नाले जाइ। नानक सह प्रीति न जाइसी जो धुरि छोडी सचै पाइ ॥ १ ॥ म० ३ ॥ नदरी आवदा नालि न चलई वेखहु को विउपाइ। सतिगुरि सचु द्रिड़ाइआ सचि रहहु लिव लाइ। नानक सबदी सचु है करमी पलै पाइ ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ हरि अंदरि बाहरि इकु तूं तूं जाणहि भेतु। जो कीचै सो हरि जाणदा मेरे मन हरि चेतु। सो डरै जि पाप कमावदा धरमी विगसेतु। तूं सचा आपि निआउ सचु ता डरीऐ केतु। जिना नानक सचु पछाणिआ से सचि रलेतु ॥ ५ ॥

॥ स० म० ३ ॥ (एक दिन गुरु अमरदासजी उपदेश दे रहे थे, तभी किसी शिष्य ने उनके उपदेश लिख लेने के लिए कलम-दवात मँगवाई। इसी पर यह श्लोक उच्चरित किया गया) लेखनी और दवात मँगवाने की क्या आवश्यकता है, जो लिखना चाहते हो वह अपने मन में ही लिखो। (मन में लिख लेने से) तुम सदैव परमेश्वर के प्रेम में लीन रहोगे और कभी उस परमासक्ति से अलग नहीं होगे। कलम-दवात तो नश्वर हैं, लिखित काग़ज़ भी नष्ट हो जायगा। किन्तु, गुरुजी कहते हैं, जो प्रीति प्रभु ने मन में उपजाई है, वह कभी धूमिल नहीं होगी ॥ १ ॥ म० ३ ॥

तुम आज़मा कर देख सकते हो कि जो वस्तु दृश्यमान् है, वह कभी अनन्तकाल तक जीव का साथ नहीं देती। इसीलिए सतिगुरु ने सदैव सत्य की प्रेरणा दी है; उसी सत्य (प्रभु) में नेह लगाने से सत्य की प्राप्ति होगी। गुरुजी कहते हैं कि सतिगुरु के आदेश में वह सत्य मौजूद है, किन्तु उसकी उपलब्धि प्रभु-कृपा अथवा शुभ-कर्मानुसार होती है ॥ २ ॥ (पउड़ी) हे परमेश्वर, अन्दर-बाहर अर्थात् समस्त ब्रह्माण्ड में तुम ही व्याप्त हो, इसीलिए सम्पूर्ण रहस्य के जानकार अर्थात् सर्वान्तिर्यामी हो। हम जो कुछ भी भीतर-बाहर करते हैं, वह सर्वद्रष्टा सब जानता है, इसलिए ऐ मेरे मन, तू उसी प्रभु का स्मरण कर। पाप-कर्म करनेवाला तो डरता है, किन्तु धर्मी जीव नित्य प्रसन्न-चित्त रहता है (इसलिए तुम कोई पाप-कर्म मत करो)। हे परमात्मा, तुम सत्य-स्वरूप हो, तुम्हारा न्याय भी सत्य है, अतः हमें (तुम्हारी शरण में) किस बात का भय है। गुरुजी कहते हैं कि जिन जीवों ने उस सत्य-स्वरूप को पहचना लिया है, वे उसके साथ अभेद हो जाते हैं (तद्‌रूप हो जाते हैं) ॥ ५ ॥

॥ सलोक म० ३ ॥ कलम जलउ सणु मसवाणीऐ कागदु भी जलि जाउ। लिखण वाला जलि बलउ जिनि लिखिआ दूजा भाउ। नानक पूरबि लिखिआ कमावणा अवरु न करणा जाइ ॥ १ ॥ म० ३ ॥ होरु कूड़ु पड़णा कूड़ु बोलणा माइआ नालि पिआरु। नानक विणु नावै को थिरु नही पड़ि पड़ि होइ खुआरु ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ हरि की वडिआई वडी है हरि कीरतनु हरि का। हरि की वडिआई वडी है जा निआउ है धरम का। हरि की वडिआई वडी है जा फलु है जीअ का। हरि की वडिआई वडी है जा न सुणई कहिआ चुगल का। हरि की वडिआई वडी है अपुछिआ दानु देवका ॥ ६ ॥

॥ स० म० ३ ॥ दवात सहित क़लम जल जाय, लिखा हुआ काग़ज़ भी जल जाय, स्वयं लिखनेवाला भी जल जाय, जिसने द्वैत-भाव की बातें लिखी हैं। (अर्थात् मन को दूषित करनेवाला शृंगारिक अथवा सांसारिक काव्य लिखनेवाला व्यक्ति, उसकी क़लम-दवात और क़ाग़ज़ सब नष्ट हो जाना चाहिए।) गुरुजी कहते हैं कि प्रत्येक जीव पूर्वजन्म के कर्म-फलानुसार कर्म करता है, अपनी इच्छा से प्राणी कुछ नहीं कर सकते ॥ १ ॥ म० ३ ॥ (ईश्वर के सिवाय) सब प्रकार का (शास्त्रों आदि का) पढ़ना और भाषण-व्याख्या आदि मिथ्या है, यह माया-मोह की देन है। (गुरु) नानक कहते हैं कि हरि-नाम के बग़ैर किसी जीव को स्थिरता प्राप्त नहीं हो सकती, चाहे कोई कितने भी (धर्मशास्त्रादि) ग्रन्थ पढ़कर दुखी होता

रहे ।। २ ।। (पउड़ी) परमात्मा का यश महनीय है, उसका कीर्तन सर्वदुःखनाशक है। क्योंकि परमेश्वर का न्याय धर्माधारित होता है, इसलिए उसका विरुद महान् है। प्रभु जीवों को उनके कर्मों का फल देता है, अतः उसका यश बड़ा है। परमात्मा किसी चुग़लख़ोर की कही बात (चुग़ली या शिकायत) पर कान नहीं धरता, किसी के कहने पर ग़लत क़दम नहीं उठाता, इसलिए वह बड़ाई योग्य है। क्योंकि वह बिना पूछे ही सबके मनोरथ पूर्ण कर देता है, इसलिए उसकी बड़ाई अनुपम है ।। ६ ।।

।। सलोक म० ३ ।। हउ हउ करती सभ मुई संपउ किसै न नालि। दूजै भाइ दुखु पाइआ सभ जोही जमकालि। नानक गुरमुखि उबरे साचा नामु समालि ।। १ ।। म० १ ।। गलीं असी चंगीआ आचारी बुरीआह। मनहु कुसुधा कालीआ बाहरि चिटवीआह। रीसा करिह तिनाड़ीआ जो सेवहि दरु खड़ीआह। नालि खसमै रतीआ माणहि सुखि रलीआह। होदै ताणि निताणीआ रहहि निमानणीआह। नानक जनमु सकारथा जे तिन कै संगि मिलाह ।। २ ।। पउड़ी ।। तूं आपे जलु मीना है आपे आपे ही आपि जालु। तूं आपे जालु वताइदा आपे विचि सेबालु। तूं आपे कमलु अलिपतु है सै हथा विचि गुलालु। तूं आपे मुकति कराइदा इक निमख घड़ी करि खिआलु। हरि तुधहु बाहरि किछु नही गुरसबदी वेखि निहालु ।। ७ ।।

।। स० म० ३ ।। संसार अधिकार-भावना से पीड़ित हुआ मेरी-मेरी करता पदार्थ-संग्रहण में लीन है, किन्तु यह सम्पत्ति किसी के साथ नहीं जाती। ईश्वर के सिवाय माया-मोह के द्वैत-भाव में पड़ा प्राणी दुखी होता है, निरन्तर यमदूत उसे प्रताड़ित करते हैं। गुरु-कथन है कि केवल गुरमुख (गुरु-उपदेशानुसार आचरण करनेवाला) जीव ही हरिनाम स्मरण द्वारा माया-बन्धनों से मुक्त हो सकते हैं ।। १ ।। सलोक म० १ ।। बातों में तो हम उत्तम विचार प्रस्तुत करते हैं किन्तु आचरण से पतित है। (सदैव विषय-चिन्तन के कारण) हम मन से अशुद्ध और मलिन हैं, जबकि बाहरी वेश-भूषा से सफ़ेद-पोश बने दीखते हैं। (ऐसी मिथ्या स्थिति में रहते हुए भी) हम उन मुक्तात्माओं की बराबरी करते हैं जो प्रभु के द्वार पर स्थिर-बुद्धि से उसकी सेवा में संलग्न हैं। किन्तु वे (मुक्तात्माएँ) परमात्मा के रंग में मस्त हैं और समस्त सुखों को भोगती हैं—वे सशक्त होने पर भी विनीत और स-सम्मान होती हुई भी निरभिमान रहती हैं। गुरुजी कहते हैं कि जो प्राणी ऐसी मुक्तात्माओं की संगति में रहते हैं, उनका मानव-जन्म सफल है ।। २ ।। (पउड़ी) हे परमेश्वर, तुम स्वयं

ही जल हो, मछली भी हो और जाल भी तुम खुद ही हो। (अर्थात् निमित्ति, उपादान और आधारभूत कारण सब तुम में ही माजूद हैं)। जाल फेंकनेवाले (धीवर) भी तुम हो और जल के भीतर फैला हरा सेवार भी तुम ही हो। जल में रहकर अनासक्त कमल तुम हो और जल की सहस्रों लहरों के थपेड़े खाकर भी रंगीन हो (अर्थात् जल की मलिनता से अलिप्त कोमल और निर्मल कमल के समान आनन्द-स्रोत हो)। जो प्राणी घड़ी भर के लिए भी तुम्हारा ध्यान करते हैं, तुम उनके मुक्ति-दाता हो। हे परमात्मा, सचमुच तुमसे बाहर (इतर) कुछ भी नहीं। गुरु का उपदेश ग्रहण करनेवाले गुरमुख जीव इस सत्य को जानकर सदैव प्रसन्न रहते हैं ॥ ७ ॥

।। सलोक म० ३ ।। हुकमु न जाणै बहुता रोवै। अंदरि धोखा नीद न सोवै। जे धन खसमै चलै रजाई। दरि घरि सोभा महलि बुलाई। नानक करमी इह मति पाई। गुर परसादी सचि समाई ।। १ ।। म० ३ ।। मनमुख नाम विहूणिआ रंगु कसुंभा देखि न भुलु। इस का रंगु दिन थोड़िआ छोछा इस दा मुलु। दूजै लगे पचि मुए मूरख अंध गवार। बिसटा अंदरि कीट से पइ पचहि वारो वार। नानक नाम रते से रंगुले गुर कै सहजि सुभाइ। भगती रंगु न उतरै सहजे रहै समाइ ।।२।।पउड़ी।। सिसटि उपाई सभ तुधु आपे रिजकु संबाहिआ। इकि वलु छलु करि कै खावदे मुहहु कूड़ु कुसतु तिनी ढाहिआ। तुधु आपे भावै सो करहि तुधु ओतै कंमि ओइ लाइआ। इकना सचु बुझाइओनु तिना अतुट भंडार देवाइआ। हरि चेति खाहि तिना सफलु है अचेता हथ तडाइआ ।। ८ ।।

।। स० म० ३ ।। जो मनुष्य परमात्मा के हुकुम को नहीं पहचानता, वह व्यर्थ निरन्तर दुखी होता रहता है। उनके मन में संशय रहता है, इसलिए वह सदैव चिन्तित रहने के कारण कभी सुख की नींद नहीं सोता। जो जीव-स्त्री अपने परमेश्वर-पति की आज्ञानुसार आचरण करती है, वह उसके दरबार में सुशोभित होती और अन्ततः उसी के स्वरूप में अभेद प्राप्त करती है। गुरुजी कहते हैं कि प्रभु-कृपा से ही जीव के भीतर यह विवेक जगता है और सतिगुरु के अनुग्रह से वह परमात्मा में लीन हो जाता है ।। १ ।। म० ३ ।। प्रभु-नाम-विहीन मनमुखी जीव! तू कच्चे चमकीले रंगों को देखकर न भूल अर्थात् मोह-माया के क्षणिक सुखों में आत्म-विस्मृत न हो। यह मायिक आनन्द अस्थिर तथा तुच्छ होता है। जो लोग प्रभु से विमुख

होकर पार्थिव मोह-ममता में लीन रहते हैं, वे अज्ञानी और मूर्ख हैं। वे मलिनता के कीड़ों की नाईं बार-बार उसी में पड़कर पीड़ित होते और जलते-मरते हैं। गुरुजी कहते हैं कि जो मनुष्य नाम-रंग में रंग जाते हैं वे सहज में ही गुरु-उपदेशानुसार आनन्द-विभोर रहते हैं। भक्ति का रंग पक्का होता है, वह प्रभु से प्यार करनेवालों के मन से कभी नहीं उतरता—वे सदैव परमात्मा में लीन रहते हैं ॥ २ ॥ (पउड़ी) हे परमेश्वर, तुमने समूची सृष्टि उत्पन्न की है और स्वयं ही सब प्राणियों का पोषण करते हो। कुछ लोग (इस सत्य को न समझते हुए) छल-कपट से कमाते-खाते हैं, वे मिथ्या-कुत्सित वचन कहते और परस्पर निन्दा-वचन बोलते हैं। (किन्तु, हे प्रभु) जो तुम्हें भला प्रतीत होता है, तुम वही करते और जीवों को अलग-अलग धन्धे से लगाते हो। कुछ (अधिकारी) जीवों को तुमने ही सत्य-स्वरूप की सूझ-बूझ प्रदान की है और गुरु के द्वारा उन्हें अनन्त हरिनाम का भण्डार दिलवा दिया है। जो लोग प्रभु-नाम का स्मरण करते हैं, उन्हीं का भोजन-पान सफल है। जो लोग नाम स्मरण नहीं करते, वे दूसरों के सम्मुख हाथ फैलाते अथवा भीख माँगते फिरते हैं ॥ ८ ॥

॥ सलोक म० ३ ॥ पड़ि पड़ि पंडित बेद वखाणहि माइआ मोह सुआइ। दूजै भाइ हरिनामु विसारिआ मन मूरख मिलै सजाइ। जिनि जीउ पिंडु दिता तिसु कबहूं न चेतै जो देंदा रिजकु संबाहि। जम का फाहा गलहु न कटीऐ फिरि फिरि आवै जाइ। मनमुखि किछू न सूझै अंधुले पूरबि लिखिआ कमाइ। पूरै भागि सतिगुरु मिलै सुखदाता नामु वसै मनि आइ। सुखु माणहि सुखु पैनणा सुखे सुखि विहाइ। नानक सो नाउ मनहु न विसारीऐ जितु दरि सचै सोभा पाइ ॥ १ ॥ म० ३ ॥ सतिगुरु सेवि सुखु पाइआ सचु नामु गुण तासु। गुरमती आपु पछाणिआ रामनाम परगासु। सचो सचु कमावणा वडिआई वडे पासि। जीउ पिंडु सभु तिस का सिफति करे अरदासि। सचै सबदि सालाहणा सुखे सुखि निवासु। जपु तपु संजमु मनै माहि बिनु नावै ध्रिगु जीवासु। गुरमती नाउ पाईऐ मनमुख मोहि विणासु। जिउ भावै तिउ राखु तूं नानकु तेरा दासु ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ सभु को तेरा तूं सभसु दा तूं सभना रासि। सभि तुधै पासहु मंगदे नित करि अरदासि। जिसु तूं देहि तिसु सभु किछु मिलै इकना दूरि है पासि। तुधु बाझहु थाउ को नाही

जिसु पासहु मंगीऐ मनि वेखहु को निरजासि। सभि तुधै नो सालाहदे दरि गुरमुखा नो परगासि ॥ ९ ॥

॥ स० म० ३ ॥ पण्डित या विद्वान लोग वेद-शास्त्रों का अध्ययन करते एवं लोगों को उपदेश देते हैं, किन्तु इसमें उनका मोह-मायापूर्ण स्वार्थ निहित रहता है। वे द्वैत-भाव में अर्थात् पार्थिव प्रेम में लीन होकर हरिनाम को विस्मृत किए बैठे हैं, वे मनमुखी मूढ़ दण्ड के अधिकारी होते हैं। (वे इतने स्वार्थांध हो जाते हैं कि) जिस ईश्वर ने उन्हें प्राण और शरीर दिया है, जो उन सबका पोषण कर रहा है, वे कभी उसका स्मरण नहीं करते। उन मनमुखी जीवों के गले यम-पाश नित्य बना रहता है और वे सदैव जन्म-मरण के चक्कर में दुःख उठाते हैं। मनमुखी होने के नाते वे अज्ञानांध होते हैं और सत्य को देखने में असमर्थ रहते हैं। पूर्व-जन्म के कर्मों के अनुसार वे आश्रित-से जीवन व्यतीत करते हैं। सौभाग्यवश जब यदि उन्हें सतिगुरु की शरण मिल जाय तो सुखदायी हरिनाम उनके चित्त में निवास करने लगता है। तब वे सर्वांगीण सुख को प्राप्त करते हैं (अर्थात् सुखरूप हरिनाम का भोजन करते, उसी को पहनते और समूचा जीवन सुख में व्यतीत करते हैं)। गुरुजी कहते हैं कि प्रभु का पवित्र नाम कभी मन से विस्मृत नहीं करना चाहिए—उसी की बदौलत ईश्वर के दरबार में जीव को प्रतिष्ठा मिलती है ॥ १ ॥ म० ३ ॥ सतिगुरु की शरण लेनेवाले जीव गुणों के सागर प्रभु के सच्चे नाम का स्मरण करके नित्य सुख को प्राप्त करते हैं। गुरु के उपदेशों पर आचरण करने से ही जीव प्रभु के प्रकाश में स्व-स्वरूप को पहचानता है। वे मन-वाणी से सत्य का गुण गाते हैं, इसलिए उनकी बड़ाई आप-से-आप प्रभु के पास पहुँच जाती है। (वे इस सत्य को पहचानते हैं कि) प्राण और शरीर सब ईश्वर की देन है, इसलिए वे उसका गुणगान करते और उसी के दरबार में प्रार्थना करते हैं। पुनः जो लोग उस सत्य-स्वरूप परमात्मा की स्तुति करते हैं, वे ही परमसुख-रूपी उस परमेश्वर में स्थित होते हैं। मनुष्य में हरिनाम के अस्तित्व से ही जप, तप, संयम आदि का महत्त्व है, अन्यथा जीवनाशा को ही धिक्कार है। गुरु-उपदेशानुसार आचरण करनेवाले जीव हरिनाम को प्राप्त करते हैं, किन्तु मनमुखी लोग मोह के कारण विनाश को पाते हैं। अतः गुरुजी कहते हैं कि ऐसे गुरमुख जीव अपने को परमात्मा की दासता में समर्पित कर देते हैं, जैसा उसे अच्छा लगे, वैसा ही रहने में उन्हें ख़ुशी होती है ॥ २ ॥ (पउड़ी) हे परमात्मा, सब प्राणी तुम्हारे दास हैं, तुम सबके स्वामी हो और सबको प्राण-रूपी राशि प्रदान करते हो। सब नित्य-प्रति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तुम्हारे सम्मुख प्रार्थना करते हैं। जिन्हें तुम देते हो, उन्हें सब कुछ मिल जाता है, किन्तु कुछ

(मनमुखी) के प्रति तुम दूर हो और कुछ (गुरमुख) को समीप में ही प्राप्य हो। हे प्रभु, तुम्हारे सिवाय इच्छानुसार प्रदान करनेवाला कोई और ऐसा दाता नहीं, जिससे हम माँग सकें। यह बात परखकर देख ली है। सब जन तुम्हारा ही स्तुति-गान करते हैं, किन्तु तुम्हारे दरबार में केवल गुरमुखों को ही प्रकाश मिलता है (मनमुख अन्धकार में ही भटकते रह जाते हैं) ॥ ९ ॥

॥ सलोक म० ३ ॥ पंडितु पड़ि पड़ि उचा कूकदा माइआ मोहु पिआरु। अंतरि ब्रहमु न चीनई मनि मूरखु गावारु। दूजै भाइ जगतु परबोधदा ना बूझै बीचारु। बिरथा जनमु गवाइआ मरि जंमै वारो वार ॥१॥ म० ३॥ जिनी सतिगुरु सेविआ तिनी नाउ पाइआ बूझहु करि बीचारु। सदा सांति सुखु मनि वसै चूकै कूक पुकार। आपै नो आपु खाइ मनु निरमलु होवै गुरसबदी वीचारु। नानक सबदि रते से मुकतु है हरि जीउ हेति पिआरु ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ हरि की सेवा सफल है गुरमुखि पावै थाइ। जिसु हरि भावै तिसु गुरु मिलै सो हरिनामु धिआइ। गुरसबदी हरि पाईऐ हरि पारि लघाइ। मनहठि किनै न पाइओ पुछहु वेदा जाइ। नानक हरि की सेवा सो करे जिसु लए हरि लाइ ॥ १० ॥

॥ स० म० ३ ॥ पण्डित लोग वेद-शास्त्रों का अध्ययन कर (प्रभावित करने के लिए) ऊँचे स्वर में उपदेश देते हैं, किन्तु भीतर से वे ही मोह-माया के संकीर्ण घेरे में बन्द होते हैं। वे मनस्थित प्रभु की मूर्ति को नहीं पहचानते, इसलिए मूर्ख और गँवार हैं। विद्वान शास्त्री द्वैत-भाव से संसार को उपदेश करता है, किन्तु वह स्वयं आत्म-विचार से वंचित है। ऐसी मिथ्या स्थिति में वह जन्म व्यर्थ गँवाता और आवागमन के चक्कर में पड़ा रहता है ॥ १ ॥ म० ३ ॥ जिन्होंने सतिगुरु की शरण ली, उन्हें हरिनाम प्राप्त हुआ। विचार करो कि उन्हें क्या मिला ? उनके चित्त में सदैव सुख-शान्ति का वास होता है, उसके दुःख, दीनता नष्ट हो जाते हैं। गुरु-शब्दों का मनन करनेवाला जीव अपनेपन के अभिमान से मुक्त होता है, उसका मन निर्मल हो जाता है। अतः गुरुजी कहते हैं कि परमात्मा से प्यार करनेवाले वे जीव जो हरिनाम में लीन रहते हैं, मुक्ति लाभ करते हैं ॥ २ ॥ हरि की सेवा तभी सफल होती है, जब वह गुरु के माध्यम से की जाती है। गुरु की प्राप्ति ईश्वर-कृपा से होती है और वही जीव को प्रभु-नाम-स्मरण करवाता है। गुरु-शब्दों का मनन करनेवाला जीव हरि

को प्राप्त करता है और वह उसे संसार-सागर से पार कर देता है। वेदों-शास्त्रों के अधिकारी, ज्ञानानुसार मनन करके देख लो (कि गुरु के बिना) मन के हठ से कोई परमात्मा को (नहीं) पा सकता। किन्तु, गुरुजी कहते हैं कि प्रभु की शरण वही जीव लेता है, जिसपर हरि-कृपा होती है (और जिसे स्वयं वह अपना अभिन्न बनाता है।) ॥ १० ॥

॥ सलोक म० ३ ॥ नानक सो सूरा वरीआमु जिनि विचहु दुसटु अहंकरणु मारिआ। गुरमुखि नामु सालाहि जनमु सवारिआ। आपि होआ सदा मुकतु सभु कुलु निसतारिआ। सोहनि सचि दुआरि नामु पिआरिआ। मनमुख मरहि अहंकारि मरणु विगाड़िआ। सभो वरतै हुकमु किआ करहि विचारिआ। आपहु दूजै लगि खसमु विसारिआ। नानक बिनु नावै सभु दुखु सुखु विसारिआ ॥ १ ॥ म० ३ ॥ गुरि पूरै हरिनामु दिड़ाइआ तिनि विचहु भरमु चुकाइआ। रामनामु हरि कीरति गाई करि चानणु मगु दिखाइआ। हउमै मारि एक लिव लागी अंतरि नामु वसाइआ। गुरमती जमु जोहि न साकै साचै नामि समाइआ। सभु आपे आपि वरतै करता जो भावै सो नाइ लाइआ। जन नानकु नामु लए ता जीवै बिनु नावै खिनु मरि जाइआ ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ जो मिलिआ हरि दीबाण सिउ सो सभनी दीबाणी मिलिआ। जिथै ओहु जाइ तिथै ओहु सुरखरू ओस कै मुहि डिठै सभ पापी तरिआ। ओसु अंतरि नामु निधानु है नामो परवरिआ। नाउ पूजीऐ नाउ मंनीऐ नाइ किलविख सभ हिरिआ। जिनी नामु धिआइआ इक मनि इक चिति से असथिरु जगि रहिआ ॥ ११ ॥

॥ स० म० ३ ॥ गुरुजी कहते हैं कि वही पुरुष श्रेष्ठवीर है, जिसने अपने मन से अहंकार का नाश कर दिया है तथा जिसने गुरु के उपदेशानुसार हरि-नाम स्मरण कर अपना जीवन सफल कर लिया है। वह व्यक्ति सदा के लिए मुक्त होता तथा अपने समूचे कुल को भी संसार-सागर से उबार लेता है। वह प्रभु-नाम से प्यार के कारण उसके दरबार में सुशोभित होता है। (इसके विपरीत) मनमुखी जीव अहंकार में मरते हैं और अन्ततः अपनी मृत्यु को भी बिगाड़ लेते हैं अर्थात् उनकी मृत्यु आवागमन की सूचक होती है। (यह भी सच है कि) सब ओर परमात्मा का हुकुम चलता है, बेचारे जीव के हाथ है ही क्या? (अर्थात् यदि मनमुखी भला कार्य करने को स्वतन्त्र भी होता, तो अहंकार ही करता।) वह अपने स्वरूप को

भुलाकर द्वैत-भाव में लगा हुआ परमेश्वर को विस्मृत कर देता है। गुरुजी कहते हैं कि मनमुखी जीव प्रभु-नाम के बिना नित्य दु:ख उठाते हैं, सुख से वंचित रहते हैं ॥ १ ॥ सलोक म० ३ ॥ जिन जीवों को पूरे तौर पर गुरु ने प्रभु-नाम दृढ़ करवाया है, वे मन के भ्रमों से उबर गए हैं। और जिन्हें गुरु के प्रकाश में परमेश्वर के दर्शन हो गए हैं, वे नित्यप्रति हरिनाम का यश गाते हैं। (जिन जीवों ने) अहंकार का अन्त करके प्रभु में चित्त लगाया है, उनके अन्तर्मन में प्रभु-नाम का निवास होता है। वे गुरु-उपदेशानुसार आचरण करते हैं, इसलिए वे यमदूतों की पकड़ से बाहर परमात्मा के सच्चे नाम में समा जाते हैं। सृष्टि की समूची घटनात्मकता में परमकर्त्ता व्याप्त है; वह जिसे चाहता है, उसे अपने नाम में लीन कर लेता है। गुरुजी कहते हैं कि हरिनाम ही यथार्थ जीवन है (नाम-स्मरण करनेवाला ही जीवित है), नाम-विहीन की स्थिति मृत्यु-समान है ॥ २ ॥ (पउड़ी) परमात्मा के दरबार में प्रतिष्ठित होनेवाला जीवन्मुक्त जीव, संसार की प्रत्येक सभा में सम्मानित होता है। वह जहाँ भी जाता है, वहीं मुक्त विचरण करता है। उसके दर्शन-मात्र से पापी-जन तिर जाते हैं। उसके भीतर हरिनाम की निधि होने से वह सदैव सुरक्षित होता है। हरिनाम पूजनीय है, मननीय है, इससे सभी सांसारिक पापों का नाश होता है। अत: जो जीव दत्त-चित्त होकर नाम-स्मरण करते हैं, वे मोक्ष को प्राप्त होते हैं (अमर हो जाते हैं) ॥ ११ ॥

॥ सलोक म० ३ ॥ आतमा देउ पूजीऐ गुर कै सहजि सुभाइ। आतमे नो आतमे दी प्रतीति होइ ता घर ही परचा पाइ। आतमा अडोलु न डोलई गुर कै भाइ सुभाइ। गुर विणु सहजु न आवई लोभु मैलु न विचहु जाइ। खिनु पलु हरिनामु मनि वसै सभ अठसठि तीरथ नाइ। सचे मैलु न लगई मलु लागै दूजै भाइ। धोती मूलि न उतरै जे अठसठि तीरथ नाइ। मनमुख करम करे अहंकारी सभु दुखो दुखु कमाइ। नानक मैला ऊजलु ता थीऐ जा सतिगुर माहि समाइ ॥ १ ॥ म० ३ ॥ मनमुखु लोकु समझाईऐ कदहु समझाइआ जाइ। मनमुखु रलाइआ ना रलै पइऐ किरति फिराइ। लिव धातु दुइ राह है हुकमी कार कमाइ। गुरमुखि आपणा मनु मारिआ सबदि कसवटी लाइ। मन ही नालि झगड़ा मन ही नालि सथ मन ही मंझि समाइ। मनु जो इछे सो लहै सचै सबदि सुभाइ। अंम्रित नामु सद भुंचीऐ गुरमुखि कार कमाइ। विणु मनै जि होरी नालि लुझणा

जासी जनमु गवाइ। मनमुखी मनहठि हारिआ कूड़ु कुसतु कमाइ। गुर परसादी मनु जिणै हरि सेती लिव लाइ। नानक गुरमुखि सचु कमावै मनमुखि आवै जाइ ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ हरि के संत सुणहु जन भाई हरि सतिगुर की इक साखी। जिसु धुरि भागु होवै मुखि मसतकि तिनि जनि लै हिरदै राखी। हरि अंम्रित कथा सरेसट ऊतम गुरबचनी सहजे चाखी। तह भइआ प्रगासु मिटिआ अंधिआरा जिउ सूरज रैणि किराखी। अदिसटु अगोचरु अलखु निरंजनु सो देखिआ गुरमुखि आखी ॥ १२ ॥

॥ स० म० ३ ॥ (सब प्रकार की साधनाओं को छोड़कर) तुम सहज ही गुरु-उपदेशानुसार सर्वत्र व्याप्त आलोक-रूप प्रभु की साधना करो। यदि अन्तःकरण का आलोक उस परमालोक से अभेद हो जाय तो अपने ही भीतर से जीव को परमेश्वर का परिचय प्राप्त हो जायगा। आत्मा निश्चल है, गुरु से प्रेम करनेवाले जीवों का अन्तःकरण निर्विकार रहता है और वे सदैव शोभा पाते हैं। गुरु के वचनों के अभाव में सहज-ज्ञान की उपलब्धि नहीं होती और न ही मन से लोभ-मोह आदि की मलिनता दूर होती है। गुरु-उपदेशानुसार आचरण करने से मन में प्रभु-नाम निवासता है, जिसके रहते जीव को अड़सठ तीर्थों का पुण्य सहज ही हस्तामलक-सम होता है। शुद्ध आत्मा कभी मलिन नहीं होती, द्वैत-भाव से ही राग-द्वेष की मैल लगती है। यह मैल अड़सठ तीर्थों पर नहाने और वहाँ के 'पवित्र' जल से धोने पर भी दूर नहीं होती। अज्ञान के कारण मन के इशारों पर चलनेवाला जीव सदैव अहंकार-पोषित रहता है, इसलिए सदैव दुखों का बोझ वहन करता है। गुरुजी कहते हैं कि मन की मैल तभी दूर हो सकती है, जब जीव सतिगुरु के उपदेशानुसार करता है ॥ १ ॥ ॥ सलोक म० ३ ॥ मनमुख जीवों को यदि सही बात समझाई जाय, तो भी वे समझ नहीं पाते। ऐसे मूढ़ जनों को यदि गुरमुखों के साथ मिलाने का यत्न करें, तो भी वे कर्म-बन्धनों के कारण भटकते ही रहते हैं (गुरु-निर्दिष्ट पथ ग्रहण नहीं करते)। संसार में दो ही रास्ते हैं, ईश्वरोन्मुख और पदार्थोन्मुख। इन दोनों रास्तों पर चलनेवाले प्रभु की आज्ञा में ही (शुभ-अशुभ) कर्म करते हैं। गुरुमुख जीव अपने मन को संयत करके गुरु के उपदेशों की कसौटी पर कसता है (इस प्रकार वह अपने दुर्गुणों को समाप्त करता है)। सच्चा गुरुमुख मन के साथ संघर्ष करता है, उसी की सहायता से निर्णय लेता है और मन को जीतकर नित्य ही आत्मा में लीन रहता है। गुरुमुख व्यक्ति का मन गुरु-उपदेश से बँधा

होने के कारण प्रत्येक मनोरथ में सफल होता है। गुरुमुख जीव सदा हरि-नामामृत को भोग करते और गुरु की आज्ञा में कर्म कमाते हैं। मन के सिवाय किसी और से झगड़ा करनेवाले जीव मनुष्य-जीवन को व्यर्थ ही खोकर जाते हैं। मन के इशारों पर चलनेवाले मिथ्या कुत्सा अर्जित करके जीवन को व्यर्थ गँवा देते हैं। विवेकशील गुरुमुख जीव गुरु-कृपा से मन पर विजय पाते और परमात्मा में रमण करते हैं। गुरुजी कहते हैं कि गुरुमुख परम-सत्य ब्रह्म में लीनता प्राप्त करता है, जबकि मनमुखी प्राणी जन्म-मरण के चक्र में आबद्ध रहता है ॥ २ ॥ (पउड़ी) हे मेरे प्यारे परमात्मा के सेवको ! हे भाइयो ! हरि-मिलन के लिए गुरु की शिक्षा का स्वरूप मुझसे सुनो ! जो जीव भाग्यशाली है, अर्थात् जिसके माथे पर शुरू से ही भाग्य-रेखाएँ मौजूद हैं, वही गुरु की शिक्षा को हृदय में धारण करता है। जिन्होंने सहज ही श्रेष्ठ-उत्तम हरि-कथा का रस-पान किया है, वे ज्ञान का आलोक पाकर अज्ञानांधकार की सीमाओं से निवृत्त हो जाते हैं, जैसे सूर्य द्वारा खिची हुई रात्रि का नाश होता है। और तब उस अदृष्ट, अगोचर और अलख परमात्मा को गुरुमुख साक्षात् देख लेता है अर्थात् उसके हृदय-चक्षु खुल जाते हैं और वह अपने भीतर ही प्रभु के दर्शन पा लेता है ॥ १२ ॥

॥ सलोकु म० ३ ॥ सतिगुरु सेवे आपणा सो सिरु लेखै लाइ। विचहु आपु गवाइ कै रहनि सचि लिव लाइ। सतिगुरु जिनी न सेविओ तिना बिरथा जनमु गवाइ। नानक जो तिसु भावै सो करे कहणा किछू न जाइ ॥ १ ॥ म० ३ ॥ मनु वेकारी वेड़िआ वेकारा करम कमाइ। दूजै भाइ अगिआनी पूजदे दरगह मिलै सजाइ। आतम देउ पूजीऐ बिनु सतिगुर बूझ न पाइ। जपु तपु संजमु भाणा सतिगुरू का करमी पलै पाइ। नानक सेवा सुरति कमावणी जो हरि भावै सो थाइ पाइ ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ हरि हरि नामु जपहु मन मेरे जितु सदा सुखु होवै दिनु राती। हरि हरि नामु जपहु मन मेरे जितु सिमरत सभि किलविख पाप लहाती। हरि हरि नामु जपहु मन मेरे जितु दालदु दुख भुख सभ लहि जाती। हरि हरि नामु जपहु मन मेरे मुखि गुरमुखि प्रीति लगाती। जितु मुखि भागु लिखिआ धुरि साचै हरि तितु मुखि नामु जपाती ॥ १३ ॥

॥ स० म० ३ ॥ समर्पणात्मक भाव से सतिगुरु की सेवा करनेवाले मनुष्य का शीश सही अर्थों में ऊँचा होता है। ऐसा मनुष्य अहंकार का त्याग कर

सत्य-स्वरूप प्रभु में मन रमाता है। जिसने सतिगुरु के प्रति समर्पण नहीं किया, अर्थात् जिसने सतिगुरु की सेवा नहीं की, उसका जीवन ही व्यर्थ हो गया। गुरुजी कहते हैं कि सर्व-नियंता परमात्मा स्वेच्छा से सब कुछ करता है, उसे कुछ भी करने का निर्देश नहीं दिया जा सकता ॥ १ ॥ ॥ म० ३ ॥ जिस जीव का मन विकार-ग्रस्त है, वह विकारोत्पादक कर्म ही करता है। वह अज्ञानी द्वैत-भाव में पड़कर अपूजनीय की उपासना करता है, इसलिए उसे परलोक में सज़ा मिलती है। आत्म-देव अर्थात् अपनी आत्मा के मूल (अंशी) को पूजने से भी सतिगुरु-निर्देश के अभाव में ज्ञान का प्रकाश नहीं मिलता। सतिगुरु की आज्ञा में रहनेवाले जीव को ईश्वर-कृपा से जप-तप, संयम-संतोष, सब कुछ सहज ही प्राप्त होता है। गुरुजी कहते हैं कि प्रेमपूर्वक समर्पण-भाव से की गई सेवा ही हरि को प्रिय है, वही दरगाह में स्वीकार होती है ॥ २ ॥ (पउड़ी) हे मेरे मन, तुम रात-दिन दुःखनाशक हरि-नाम का स्मरण करो, जिससे तुम्हें चिरन्तन सुख प्राप्त होगा। हे मेरे मन, तुम हरि-नाम भजो, जिससे तुम्हारे सब पाप नष्ट होते हैं। हे मेरे मन, तुम प्रभु-नाम का जाप करो, जिससे दुःख, दरिद्रता, क्षुधा-तृषा सब से मुक्ति मिलती है। ऐ मेरे चित्त, भगवान का नाम धारण करो, जिससे जिज्ञासु को सतिगुरु से आसक्ति होती है। जिसके माथे पर शुरू से ही सच्चे परमात्मा ने भाग्य-रेखा खींच रखी है, उसी के मुख से प्रभु स्वयं अपना नाम जपाता है (अर्थात् जिसके कर्मों में होता है, वही प्रभु-इच्छा से हरि-स्मरण करता है) ॥ १३ ॥

॥ सलोक म० ३ ॥ सतिगुरु जिनी न सेविओ सबदि न कीतो वीचारु। अंतरि गिआनु न आइओ मिरतकु है संसारि। लख चउरासीह फेरु पइआ मरि जंमै होइ खुआरु। सतिगुर की सेवा सो करे जिस नो आपि कराए सोइ। सतिगुर विचि नामु निधानु है करमि परापति होइ। सचि रते गुरसबद सिउ तिन सची सदा लिव होइ। नानक जिस नो मेले न विछुड़ै सहजि समावै सोइ ॥ १ ॥ म० ३ ॥ सो भगउती जु भगवंतै जाणै। गुर परसादी आपु पछाणै। धावतु राखै इकतु घरि आणै। जीवतु मरै हरिनामु वखाणै। ऐसा भगउती उतमु होइ। नानक सचि समावै सोइ ॥ २ ॥ म० ३ ॥ अंतरि कपटु भगउती कहाए। पाखंडि पारब्रहमु कदे न पाए। पर निंदा करे अंतरि मलु लाए। बाहरि मलु धोवै मन की जूठि न जाए। सत संगति सिउ बादु रचाए। अनदिनु दुखीआ दूजै भाइ रचाए।

हरिनामु न चेतै बहु करम कमाए। पूरब लिखिआ सु मेटणा न जाए। नानक बिनु सतिगुर सेवे मोखु न पाए ॥ ३ ॥ पउड़ी ॥ सतिगुरु जिनी धिआइआ से कड़ि न सवाही। सतिगुरु जिनी धिआइआ से त्रिपति अघाही। सतिगुरु जिनी धिआइआ तिन जम डरु नाही। जिन कउ होआ क्रिपालु हरि से सतिगुर पैरी पाही। तिन ऐथै ओथै मुख उजले हरि दरगह पैधे जाही ॥ १४ ॥

॥ स० म० ३ ॥ न तो सतिगुरु की सेवा की, और न ही उनके उपदेशों को अन्तःकरण में धारण किया है, उनका अन्तर्मन कभी ज्ञान के प्रकाश से आलोकित नहीं होता और वे संसार में मृतक के समान होते हैं। वे अज्ञानी जीव चौरासी लाख योनियों में जन्मते-मरते और दुःख उठाते हैं। सतिगुरु की सेवा वही प्राणी करता है, जिससे वह प्रभु स्वयं करवाता है। सतिगुरु-सेवा में ही नाम का भण्डार निहित है, जिसकी प्राप्ति गुरु-कृपा से होती है। जो प्राणी गुरु के उपदेशानुसार आचरण करते हैं, उनकी चित्त-वृत्ति सदैव सत्य-स्वरूपा होती है। गुरु-कथन है कि जिस प्राणी को परमात्मा आत्म-लीन कर लेता है, वह कभी बिछड़ता नहीं; परमेश्वर में ही समा जाता है ॥ १ ॥ म० ३ ॥ भगवद्भक्त का पद उसी को दिया जा सकता है, जो भगवान् को जानता-पहचानता है। गुरु की कृपा से जो आत्म को चीह्नता है और जिज्ञासा-वश विकारों की ओर भागते हुए मन को संयत करके आत्म-केन्द्रित करता है, वही जीवन्मुक्ति को प्राप्त करता और परमात्मा के नाम का आख्यान करता है। ऐसा भगवद्भक्त श्रेष्ठ होता है; गुरु-कथन है कि वह (भगवती) सत्य-रूप परमात्मा में समा जाता है ॥ २ ॥ म० ३ ॥ जो प्राणी भीतर से कपटी है और ऊपर से भगवती (भगवद्भक्त) होने का आडम्बर करता है, वह पाखण्डी होता है; वह कभी परब्रह्म को प्राप्त नहीं कर पाता। जो अपनी मिथ्या प्रतिष्ठा के लिए भले लोगों की निन्दा करता और पाप-कीच में लिपटता है, वह बाहर से कितना भी निर्मल होने का प्रयास करे (मलिनता को धो ले) किन्तु उसके मन की मलिनता कभी दूर नहीं हो सकती। जो जीव भले लोगों की संगति में बैठकर उनसे वाद-विवाद करता है, जिसकी बुद्धि द्वैत-भाव से विकृत है, वह रात-दिन दुखी रहता है। जो प्राणी मुक्ति-साधन के रूप में हरि-नाम स्मरण करने की अपेक्षा आवागमनापेक्षी कर्म करता है, वह पूर्व-लिखित कर्मालेखानुसार फल-भोग से छूट नहीं पाता। गुरुजी कहते हैं कि सतिगुरु की शरण लिए बिना किसी को मोक्ष लब्ध नहीं होता ॥ ३ ॥ (पउड़ी) जिन्होंने सतिगुरु की शरण ली है, उनकी इन्द्रियाँ उनकी वश-वर्तिनी होती हैं। सतिगुरु की शरण लेनेवाले जीव सदैव तृप्ति और

आत्म-शान्ति लाभ करते हैं। सतिगुरु का स्मरण करनेवाले को यमराज का भी भय नहीं रह जाता। परमात्मा जिनपर विशेष कृपा करता है, वे ही जीव सतिगुरु की शरण लेते हैं। ऐसे जीव इहलोक और परलोक, दोनों जगह सम्मानित होते हैं—उनके मुख उज्ज्वल होते हैं ॥ १४ ॥

॥ सलोक म० २ ॥ जो सिरु सांई ना निवै सो सिरु दीजै डारि। नानक जिसु पिंजर महि बिरहा नही सो पिंजरु लै जारि ॥ १ ॥ म० ५ ॥ मुंढहु भुली नानका फिरि फिरि जनमि मुईआसु। कसतूरी कै भोलड़ै गंदे डुंमि पईआसु ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ सो ऐसा हरिनामु धिआईऐ मन मेरे जो सभना उपरि हुकमु चलाए। सो ऐसा हरिनामु जपीऐ मन मेरे जो अंती अउसरि लए छडाए। सो ऐसा हरिनामु जपीऐ मन मेरे जु मन की त्रिसना सभ भुख गवाए। सो गुरमुखि नामु जपिआ वडभागी तिन निंदक दुसट सभि पैरी पाए। नानक नामु अराधि सभना ते वडा सभि नावै अगै आणि निवाए ॥ १५ ॥

॥ स० म० २ ॥ जो शीश परमात्मा के सम्मुख नमन नहीं करता, वह शीश काट डालना चाहिए। गुरुजी कहते हैं कि जिस तन में हरि से प्रेम की तड़प नहीं, वह तन जला डालना चाहिए ॥ १ ॥ म० ५ ॥ गुरु-कथन है कि जो जीव-स्त्री अपने मूलाधार परमात्मा-पति से विमुख होती है वह पुनः पुनः जन्म-मरण को प्राप्त होती है। (उसकी स्थिति) उस कस्तूरी-मृग सरीखी होती है, जो नाभि में सुगंध का आधार लेकर बाहर गन्दे और दुर्गन्ध-पूर्ण पानियों में गिरता फिरता है (अर्थात् यह जीव अपने भीतर के सत्य को जाने बग़ैर बाहर के माया-मोह में प्रवृत्त रहता है) ॥ २ ॥ (पउड़ी) ऐ मेरे मन, जो हरि सब पर शासन करता है, उसका पावन नाम स्मरण करना चाहिए। ऐ मन, ऐसे परमात्मा का नाम-जाप करो, जो अन्त समय तुम्हें यम से छुटकारा दिला सके। ऐसा प्रभु-नाम स्मरण करना चाहिए जो जन्म-जन्म की क्षुधा-तृष्णा का नाश कर दे। वे गुरमुख भाग्यशाली हैं, जो उस परम-पुरुष का नाम जपकर निन्दकों-दुष्टों को अपने अधीन कर लेते हैं। गुरुजी कहते हैं कि सब साधनों से ऊपर उस महान हरिनाम का भजन करो, जिसके आगे अन्य सब झुकते हैं। (अर्थात् हरिनाम का उपासक इतना महान हो जाता है कि अन्य सब उसको नमन करते हैं) ॥ १५ ॥

॥ सलोक म० ३ ॥ वेस करे कुरूपि कुलखणी मनि खोटै कूड़िआरि। पिर कै भाणै ना चलै हुकमु करे गावारि। गुर कै

भाणै जो चलै सभि दुख निवारणहारि। लिखिआ मेटि न सकीऐ जो धुरि लिखिआ करतारि। मनु तनु सउपे कंत कउ सबदे धरे पिआरु। बिनु नावै किनै न पाइआ देखहु रिदै बीचारि। नानक सा सुआलिओ सुलखणी जि रावी सिरजनहारि॥ १॥ म० ३॥ माइआ मोहु गुबारु है तिस दा न दिसै उरवारु न पारु। मनमुख अगिआनी महा दुखु पाइदे डुबे हरिनामु विसारि। भलके उठि बहु करम कमावहि दूजै भाइ पिआरु। सतिगुरु सेवहि आपणा भउजलु उतरे पारि। नानक गुरमुखि सचि समावहि सचु नामु उरधारि॥ २॥ पउड़ी॥ हरि जलि थलि महीअलि भरपूरि दूजा नाहि कोइ। हरि आपि बहि करे निआउ कूड़िआर सभ मारि कढोइ। सचिआरा देइ वडिआई हरि धरम निआउ कीओइ। सभ हरि की करहु उसतति जिनि गरीब अनाथ राखि लीओइ। जैकारु कीओ धरमीआ का पापी कउ डंडु दीओइ॥ १६॥

॥ स० म० ३॥ (इस श्लोक में मनमुख को कुलक्षणी स्त्री के रूप में चित्रित किया गया है) जिस प्रकार कोई स्त्री ऊपर से अलंकरण द्वारा सुशोभित हो, किन्तु वास्तव में शरीर से असुन्दर व्यवहार से कुलक्षणी और मन से कपटी हो; जो पति की आज्ञा में न रहकर मूढ़ता-वश उसी पर शासन करती हो (लगभग वैसी ही दशा गुरु-विमुख मनमुखी जीव की होती है)। (इसके विपरीत) जो (जीव-रूपी) स्त्री गुरु की आज्ञा मानती हुई उसके आदेशानुसार आचरण करती है, वह (सर्व-सुखों को प्राप्त करती है), क्योंकि गुरु दुःख-हर्त्ता होता है। (परन्तु विवशता है) परमात्मा ने पूर्व-कर्म-फल रूप में जो लिख दिया है, वह मिटाया या बदला भी तो नहीं जा सकता। इसलिए जीव-स्त्री को चाहिए कि वह तन-मन अपने पति-परमेश्वर को सौंपकर गुरु-शब्दों से प्रेम करे। (ऐ जीव) तू मन में विचार कर देख ले, नाम-स्मरण के बिना कभी किसी को प्रभु नहीं मिला। गुरुजी कहते हैं कि वही जीव-स्त्री प्रसंशनीय और सुलक्षणा है, जिसकी सेज पर पति-परमेश्वर रमण करता है॥ १॥ म० ३॥ (इस श्लोक में अज्ञानी जीवों की दशा का निरूपण है) अज्ञानांध जीव मिथ्या मोह-माया के गुबार में डूबा है, जिसका आर-पार कुछ भी नहीं सूझता। गुरु-विमुख अज्ञानी जीव अतीव दुःखों को प्राप्त होते हैं और हरि-नाम का विस्मरण कर संसार-सागर में ऊब-डूब करते रह जाते हैं। वे प्रतिदिन अनेक विकार-युक्त व्यवहार करते और द्वैत-भाव में लीन होने के कारण उससे उबर नहीं पाते। केवल वे ही लोग जो सच्चे सतिगुरु की शरण लेते हैं, संसार-सागर

से पार होते हैं। गुरुजी कहते हैं कि गुरमुख जीव सच्चे नाम का सहारा लेकर उस सत्य-स्वरूप परमात्मा में ही विलीन हो जाता है ॥ २ ॥ (पउड़ी) परमात्मा जल-थल, पृथ्वी-आकाश, सब ओर परिपूर्ण है; उसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी उतना व्यापक नहीं। (सर्वज्ञता के कारण) परमात्मा स्वयं गुरुमुखों और मनमुखों का न्याय करता है तथा मिथ्या-आचरण करनेवालों को मारकर अपने दरबार से निकाल देता है। प्रभु सत्याचरण करनेवालों को प्रतिष्ठा देता है और कर्मानुसार प्रत्येक जीव को फल देकर उनका न्याय करता है। (इसलिए) सब जीव मिलकर हरि की स्तुति करो, जिसने निर्धनों और अनाथों की सदैव रक्षा की है। परमात्मा ने धर्मी-जन का जय-जयकार किया है, जबकि पापियों को भारी दण्ड भी दिया है ॥ १६ ॥

॥ सलोक म० ३ ॥ मनमुख मैली कामणी कुलखणी कुनारि। पिरु छोडिआ घरि आपणा पर पुरखै नालि पिआरु। त्रिसना कदे न चुकई जलदी करे पूकार। नानक बिनु नावै कुरूपि कुसोहणी परहरि छोडी भतारि ॥ १ ॥ म० ३ ॥ सबदि रती सोहागणी सतिगुर कै भाइ पिआरि। सदा रावे पिरु आपणा सचै प्रेमि पिआरि। अति सुआलिउ सुंदरी सोभावंती नारि। नानक नामि सोहागणी मेली मेलणहारि ॥२॥ पउड़ी ॥ हरि तेरी सभ करहि उसतति जिनि फाथे काढिआ। हरि तुधनो करहि सभ नमसकारु जिनि पापै ते राखिआ। हरि निमाणिआ तूं माणु हरि डाढीहूं तूं डाढिआ। हरि अहंकारीआ मारि निवाए मनमुख मूड़ साधिआ। हरि भगता देइ वडिआई गरीब अनाथिआ ॥ १७ ॥

॥ स० म० ३ ॥ मनमुख जीव कुलटा के समान है जो अशुभ लक्षणों-वाली एवं मन से मलिन होती है। वह अपने पति-परमेश्वर को छोड़कर पराए मर्द से प्यार करती है (अर्थात् मनमुखी जीव परमात्मा से विमुख होकर द्वैत-भाव में संलग्न होता है।) उसकी तृष्णा (मोह-माया) कभी समाप्त नहीं होती, वह उसी की अग्नि में जलती हुई चीखती-चिल्लाती है। गुरुजी कहते हैं कि नाम-स्मरण के बिना जीव-स्त्री कुरूपा और कुलक्षणी बनती है, पति-परमेश्वर उसका त्याग कर देता है ॥ १ ॥ म० ३ ॥ जो गुरमुख जीव (स्त्री) गुरु-उपदेशानुसार प्रभु से प्रेम करती है, वह सौभाग्यवती है। वह स्त्री (जीव) सदैव अपने पति के साथ रमण करती है और सत्य-स्वरूप परमात्मा से प्यार पाती है। वह प्रशंसनीय और शोभावन्ती नारी होती

है; गुरुजी कहते हैं कि मिलानेवाले सतिगुरु ने उसे परमात्मा से मिला दिया होता है, अतः वही सच्ची सौभाग्यवती होती है ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ हे परमात्मा, तुमने मोह-बन्धनों में पड़े जीवों को मुक्ति दी है, इसलिए सब तुम्हारी स्तुति करते हैं। हे प्रभु, तुमने दुखों-तापों से सबकी रक्षा की है, इसलिए तुम्हें प्रणाम है। हे भगवान, तुम बलशालियों से बलशाली हो और मान-हीनों के सच्चे मान हो। हे देव, तुमने अहंकारी जीवों को दण्डित करके झुका दिया है और मूढ़ गुरु-विमुख लोगों को सुधारा है। और हे परमेश्वर, तुम ही गरीब अनाथ गुरमुख जीवों को सम्मान देते हो ॥ १७ ॥

॥ सलोक म० ३ ॥ सतिगुर कै भाणै जो चलै तिसु वडिआई वडी होइ। हरि का नामु उतमु मनि वसै मेटि न सकै कोइ। किरपा करे जिसु आपणी तिसु करमि परापति होइ। नानक कारणु करते वसि है गुरमुखि बूझै कोइ ॥ १ ॥ म० ३ ॥ नानक हरिनामु जिनी आराधिआ अनदिनु हरि लिवतार। माइआ बंदी खसम की तिन अगै कमावै कार। पूरै पूरा करि छोडिआ हुकमि सवारणहार। गुर परसादी जिनि बुझिआ तिनि पाइआ मोखदुआरु। मनमुख हुकमु न जाणनी तिन मारे जम जंदारु। गुरमुखि जिनी अराधिआ तिनी तरिआ भउजलु संसारु। सभि अउगण गुणी मिटाइआ गुरु आपे बखसणहारु ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ हरि की भगता परतीति हरि सभ किछु जाणदा। हरि जेवडु नाही कोई जाणु हरि धरमु बीचारदा। काड़ा अंदेसा किउ कीजै जा नाही अधरमि मारदा। सचा साहिबु सचु निआउ पापी नरु हारदा। सालाहिहु भगतहु कर जोड़ि हरि भगत जन तारदा ॥ १८ ॥

॥ स० म० ३ ॥ जो सतिगुरु के उपदेश पर चलते हैं, उनकी बड़ी महिमा है। जिसके मन में हरि-नाम निवास करता है, उसकी बड़ाई कभी मिट नहीं सकती। जिस पर प्रभु की कृपा होती है, उसी श्रेष्ठ-जन को हरिनाम लब्ध होता है। गुरुजी कहते हैं कि सृष्टि की समूची संघटना का कारण ईश्वर के अधीन है, कोई गुरमुख ज्ञानवान् जन ही इसे समझता है ॥ १ ॥ ॥ म० ३ ॥ गुरुदेव कहते हैं कि जो जन नाम-आराधना करते हैं, उनकी चित्तवृत्ति रात-दिन हरि-चरणों में लगी रहती है। माया, जो ईश्वर की दासी है, उन भक्तजन के सम्मुख सेवा करती है। सृष्टि को अपनी आज्ञा में बाँधनेवाले ने अपने उपासकों को भी अपनी ही तरह पूर्ण बना लिया है

(इसीलिए माया जैसे प्रभु की दासी है, वैसे ही उसके भक्तों की भी दासी है)। गुरु की दया से जिसने इस रहस्य को जान लिया है, उन्हें मोक्ष-द्वार अर्थात् सत्य-ज्ञान प्राप्त हुआ है। गुरु से विमुख (मनमुख) जन प्रभु की आज्ञा को नहीं जानते, इससे वे यमदूतों द्वारा मारे जाते हैं अर्थात् जन्म-मरण का दुःख भोगते हैं। गुरु-आदेश पर आचरण करते हुए जिसने परमात्मा का भजन किया है, वह संसार-सागर से तिर गया। उसके सब दुर्गुण क्षमाशील सतिगुरु की कृपा से मिट जाते हैं ॥ २ ॥ (पउड़ी) भक्तों का दृढ़ विश्वास है कि हरि सब कुछ जानता है। सर्वज्ञ प्रभु धर्म-पूर्वक न्याय करता है; उससे बड़ा कोई नैयायिक नहीं है। क्योंकि परमात्मा किसी को अन्यायपूर्वक कष्ट नहीं पहुँचाता, इसलिए चिन्ता और शंका का कोई अवसर नहीं। परमेश्वर सत्य-स्वरूप है, उसका न्याय भी सत्य है, केवल पापी मनुष्य ही उसके सम्मुख पराजित होता है। हाथ जोड़कर पूर्ण परमात्मा की स्तुति करनी चाहिए, क्योंकि वह सदैव अपने भक्तों का कल्याण करता है ॥ १८ ॥

॥ सलोक म० ३ ॥ आपणे प्रीतम मिलि रहा अंतरि रखा उरि धारि। सालाही सो प्रभ सदा सदा गुर कै हेति पिआरि। नानक जिसु नदरि करे तिसु मेलि लए साई सुहागणि नारि ॥ १ ॥ म० ३ ॥ गुर सेवा ते हरि पाईऐ जाकउ नदरि करेइ। माणस ते देवते भए धिआइआ नामु हरे। हउमै मारि मिलाइअनु गुर कै सबदि तरे। नानक सहजि समाइअनु हरि आपणी क्रिपा करे ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ हरि आपणी भगति कराइ वडिआई वेखालीअनु। आपणी आपि करे परतीति आपे सेव घालीअनु। हरि भगता नो देइ अनंदु थिरु घरी बहालिअनु। पापीआ नो न देई थिरु रहणि चुणि नरक घोरि चालिअनु। हरि भगता नो देइ पिआरु करि अंगु निसतारिअनु ॥ १९ ॥

॥ स० म० ३ ॥ (आत्मा की कामना है कि) अपने प्रभु-प्रियतम को सदा अंग-संग रखूँ और अपने चित्त में उसे निवास दूँ। गुरु की शुभेषणा और प्यार द्वारा मैं सदा उस शक्तिशाली परमात्मा की स्तुति करती रहूँ। गुरुजी कहते हैं कि हरि जिसपर कृपा-दृष्टि करता है, उसे अपने में ही लीन कर लेता है—वही जीव-स्त्री सुहागिन होती है ॥ १ ॥ म० ३ ॥ सतिगुरु की सेवा से परमात्मा की प्राप्ति होती है, किन्तु वह सेवा भी तो प्रभु की कृपा-दृष्टि से ही मिलती है। जिन जीवों ने हरि-नाम स्मरण किया है, वे लोग मनुष्य से देवता हो गए हैं (अर्थात् हरि नाम स्मरण से उनका पद

बढ़ा है)। जिन्होंने अहंकार को जीत लिया है, उन्हें परमात्मा ने निज में लीन कर लिया है; वे सतिगुरु के शब्दों का पालन कर संसार-सागर से तिर जाते हैं। गुरुजी कहते हैं कि उनपर परमात्मा की कृपा होती है तो वे सहज (ज्ञान) को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥ (पउड़ी) परमात्मा अपनी महत्ता प्रकट कर अपने भक्तों से भक्ति करवाता है। वह स्वयं ही भक्तों के मन में अपने प्रति विश्वास दृढ़ाता है और आप ही उनकी सेवा को स्वीकार करता है। परमात्मा अपने जनों को आनन्द देता और अपने रूप में स्थित कर उन्हें अपना लेता है। किन्तु पापी-दुष्ट जनों को वह स्थित नहीं होने देता। उन्हें चुन-चुनकर नरकों में भेजता है। प्रभु अपने भक्तों से प्रेम करता है, और नित्य उनका पक्ष लेते हुए उनका उद्धार करता है ॥ १९ ॥

॥ सलोक म० १ ॥ कुबुधि डूमणी कुदइआ कसाइणि परनिंदा घट चूहणी मुठी क्रोधि चंडालि। कारी कढी किआ थीऐ जां चारे बैठीआ नालि। सचु संजमु करणी कारां नावणु नाउ जपेही। नानक अगै ऊतम सेई जि पापां पंदि न देही ॥ १ ॥ म० १ ॥ किआ हंसु किआ बगुला जा कउ नदरि करेइ। जो तिसु भावै नानका कागहु हंसु करेइ ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ कीता लोड़ीऐ कंमु सु हरि पहि आखीऐ। कारजु देइ सवारि सतिगुर सचु साखीऐ। संता संगि निधानु अंम्रितु चाखीऐ। भै भंजन मिहरवान दास की राखीऐ। नानक हरिगुण गाइ अलखु प्रभु लाखीऐ ॥ २० ॥

॥ स० म० १ ॥ (गुरु नानक ने इस श्लोक में ब्राह्मणों को वाह्याडम्बरों के विरुद्ध आन्तरिक आसुरी वृत्तियों से सावधान किया है।) हृदय की कुमति, निर्दयता, परनिन्दा और क्रोध की वृत्तियाँ क्रमशः डोमनी, कसाइन, भंगिन तथा चाण्डालिन जैसी हैं। ये चारों अपवित्र वृत्तियाँ जब तक हमारे भीतर मौजूद हैं, तब तक बाहरी रेखाएँ खींचने से क्या सिद्ध होगा ? सच बोलना तथा विकारों के प्रति संयम रखना ही यथार्थ रेखाएँ हैं और हरिनाम ही एकमात्र पावनता का साधन है। गुरुजी कहते हैं कि प्रभु-दरबार में वे ही जीव उत्तम माने जायँगे जो किसी को पापमयी शिक्षा या प्रोत्साहन नहीं देते ॥ १ ॥ म० १ ॥ परमात्मा की कृपा-दृष्टि मिलने पर न कोई हंस (साधु-वृत्ति का विवेकी जीव) रह जाता है और न कोई बगुला (दुर्वृत्ति का दुष्ट)। यह तो प्रभु का कृपा-भाव है, चाहे तो कौवे को हंस बना दे (बुरे को भला बना दे) ॥ २ ॥ (पउड़ी) आराधक के मन में यदि किसी कार्य की इच्छा हो, तो उसकी सफलता के लिए उसे प्रभु से

प्रार्थना करनी चाहिए। (प्रार्थना करने से) परमात्मा सब कार्य सफल करता है। सतिगुरु इस तथ्य का नित्य साक्षी होता है। सन्तों की संगति में नाम का खज़ाना विद्यमान है, उन्हीं की शरण में रहकर नामामृत चखा जा सकता है। भय का निवारण करनेवाले हे देव, मुझ दास की रक्षा कीजिए। गुरुजी कहते हैं कि जो जीव श्रद्धापूर्वक हरि-गुण-गान करते हैं, वे उस अदृश्य ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेते हैं ॥ २० ॥

॥ सलोक म० ३ ॥ जीउ पिंडु सभु तिस का सभसै देइ अधारु। नानक गुरमुखि सेवीऐ सदा सदा दातारु। हउ बलिहारी तिन कउ जिनि धिआइआ हरि निरंकारु। ओना के मुख सद उजले ओना नो सभु जगतु करे नमसकारु॥१॥ म० ३॥ सतिगुर मिलिऐ उलटी भई नव निधि खरचिउ खाउ। अठारह सिधी पिछै लगीआ फिरनि निजघरि वसै निजथाइ। अनहद धुनी सद वजदे उनमनि हरि लिव लाइ। नानक हरि भगति तिना कै मनि वसै जिन मसतकि लिखिआ धुरि पाइ ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ हउ ढाढी हरिप्रभ खसम का हरि कै दरि आइआ। हरि अंदरि सुणी पूकार ढाढी मुखि लाइआ। हरि पुछिआ ढाढी सदि कै कितु अरथि तूं आइआ। नित देवहु दानु दइआल प्रभ हरिनामु धिआइआ। हरि दातै हरिनामु जपाइआ नानकु पैनाइआ ॥ २१ ॥ १ ॥ सुधु

॥ स० म० ३ ॥ शरीर और प्राण सब प्रभु की देन है, वही सबका एकमात्र अवलम्ब है। गुरुजी कहते हैं कि हमें सदा उस अविनाशी का भजन गुरु के उपदेशानुसार करना चाहिए, वही सबका दाता है। मैं उन जीवों पर बलिहार हूँ, जो उस निर्गुण परब्रह्म का ध्यान और पूजन करते हैं। उनके (परमात्मा के भक्तों के) मुख सदा उज्ज्वल होते हैं, सारा संसार उन्हें नमस्कार करता है अर्थात् उनके सम्मुख झुकता है ॥ १ ॥ म० ३ ॥ सतिगुरु के मिलाप से जगतोन्मुखी वृत्ति उलट कर परमात्मोन्मुखी हो जाती है और वे जीव नव-निधियों के अधिकारी होते हैं। स्वयं अठारह सिद्धियाँ उन जीवों का अनुसरण करती हैं किन्तु वे स्व-स्वरूप में स्थिर रहते हैं (उन्हें सिद्धियों की कोई अपेक्षा नहीं रहती)। उनके लिए आन्तरिक अध्यात्म-वादन सदा बजते रहते हैं और वे हरि में लीन होकर मन की उच्चावस्था में पहुँच जाते हैं। गुरुजी कहते हैं कि हरि-भक्ति उन्हीं जीवों को प्राप्त होती है, जिनके भाल में शुरू से ही ईश्वर ने भाग्य-रेखा खींची है ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ मैं परमात्मा का यशोगान करनेवाला चारण बनकर

प्रभु के द्वार पर आया हूँ। महल के भीतर से परमेश्वर ने मेरी पुकार सुनकर मुझे अपने सम्मुख बुलाया। हरि ने मुझसे पूछा कि हे चारण, तू किस लिए आया है! उत्तर में मैंने विनति की—हे दयालु स्वामी! कृपा करके तुम मुझे यह सामर्थ्य दो कि मैं सदैव तुम्हारे नाम का जाप करता रहूँ। मेरी प्रार्थना सुनकर प्रभु-दाता ने प्रसन्न हो मुझे हरिनाम की साधना दी और प्रेम से मुझे सम्मानित किया ।। २१ ।। १ ।। सुधु ।।

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।। सिरीरागु कबीर जीउ का। एकु सुआनु कै घरि गावणा। जननी जानत सुतु बडा होतु है इतनाकु न जानै जि दिन दिन अवध घटतु है। मोर मोर करि अधिक लाडु धरि पेखत ही जमराउ हसै ।। १ ।। ऐसा तैं जगु भरमि लाइआ। कैसे बूझै जब मोहिआ है माइआ ।। १ ।। रहाउ ।। कहत कबीर छोडि बिखिआ रस इतु संगति निहचउ मरणा। रमईआ जपहु प्राणी अनत जीवण बाणी इन बिधि भवसागरु तरणा ।। २ ।। जां तिसु भावै ता लागै भाउ। भरमु भुलावा विचहु जाइ। उपजै सहजु गिआन मति जागै। गुरप्रसादि अंतरि लिव लागै ।। ३ ।। इतु संगति नाही मरणा। हुकमु पछाणि ता खसमै मिलणा ।। १ ।। रहाउ दूजा ।। १ ।।

दिनों के व्यतीत होने से जननी यह मानने लगती है कि उसका पुत्र बड़ा हो रहा है, जबकि सत्य यह है कि प्रतिदिन आयु तो घटती है। माँ बड़े लाड़-प्यार से उसे 'मेरा-मेरा' कहती है, किन्तु यह देखकर यमराज मुस्कराता है (अर्थात् जीव की आशा-तृष्णा को देख-देखकर यमराज मुस्कराता है कि वह जीव मृत्यु की पहुँच को नहीं जानता) ।। १ ।। हे मालिक, तुमने ही जीव को भ्रमा रखा है। वह तुम्हारी ही माया में पगा सत्यता को नहीं जान पाता ।। १ ।। रहाउ ।। कबीर जी कहते हैं कि हे प्राणी, विषय-रस का त्याग करो; इसकी संगति में तो जीव निश्चय ही आवागमन में फँसता है। हे प्राणी, तुम राम-नाम का स्मरण करो। वही अनन्त जीवनदायी वाणी है और उसीसे भवसागर से पार हुआ जा सकता है ।।२।। प्रभु की इच्छा होती है तो जीव के मन में उसके लिए श्रद्धा और प्रेम उपजता है तथा माया-प्रसूत भ्रम और कपट का उसमें से निराकरण हो जाता है। गुरु-कृपा से जब प्राणी की अन्तर्वृत्ति ज्ञानयुक्त होती है तो गुरु-कृपा से अन्तर्मन में शान्ति अनुभव होने लगती है ।। ३ ।। दैवी गुणों की संगति में जन्म-मरण का चक्र नष्ट होता है। जीव जब प्रभु की

आज्ञा को जानने-समझने लगता है, तो वह परमात्मा से मिलन को प्राप्त होता है ।। १ ।। रहाउ दूजा ।। १ ।।

सिरीरागु त्रिलोचन का । माइआ मोहु मनि आगलड़ा प्राणी जरा मरणु भउ विसरि गइआ । कुटंबु देखि बिगसहि कमला जिउ पर घरि जोहहि कपट नरा ।। १ ।। दूड़ा आइओहि जमहि तणा । तिन आगलड़ै मै रहणु न जाइ । कोई कोई साजणु आइ कहै । मिलु मेरे बीठुला लै बाहड़ी वलाइ । मिलु मेरे रमईआ मै लेहि छडाइ ।। १ ।। रहाउ ।। अनिक अनिक भोग राज बिसरे प्राणी संसार सागर पै अमरु भइआ । माइआ मूठा चेतसि नाही जनमु गवाइओ आलसीआ ।। २ ।। बिखम घोर पंथि चालणा प्राणी रवि ससि तह न प्रवेसं । माइआ मोहु तब बिसरि गइआ जां तजीअले संसारं ।।३।। आजु मेरै मनि प्रगटु भइआ है पेखीअले धरमराओ । तह करदल करनि महाबली तिन आगलड़ै मै रहणु न जाइ ।। ४ ।। जे को मूं उपदेसु करतु है ता वणि त्रिणि रतड़ा नाराइणा । ऐजी तूं आपे सभ किछु जाणदा बदति त्रिलोचनु रामईआ ।। ५ ।। २ ।।

हे प्राणी ! तुम्हारे मन में मोह-माया की इतनी अधिक आसक्ति है, कि तुम बुढ़ापे और मृत्यु के भय को भी विस्मृत किए हुए हो । (सूर्य को देखकर) प्रसन्न होनेवाले कमलों की नाईं तुम कुटुम्ब को देखकर खुश होते हो, किन्तु मन में कपट धारण किए पर-स्त्री को निहारते हो ।। १ ।। जब यम के दूत शस्त्र-सज्जित होकर आते हैं तो उनके सम्मुख ठहरना कठिन होता है । (माया में फँसे असंख्य जीवों में से) कोई विरला ही सज्जन पुकारता है कि हे मेरे परमात्मा, मुझे गले में भुजा डालकर मिलो (अर्थात् माया-बन्धन से मुक्त करो) । हे मेरे सर्व-व्यापक रामजी, मुझे मिलो और बन्धन से मुझे छुड़ा लो ।। १ ।। रहाउ ।। हे प्राणी, तुम अनेक भोग-विलासों में पड़े परमात्मा को भूल गए हो और संसार-सागर में ऊब-डूब करते हुए भी अपने को अमर समझते हो । माया द्वारा ठगे होने पर तुम सम्भलते नहीं—तुमने दुर्लभ मनुष्य जीवन को व्यर्थ गँवा दिया है ।।२।। हे मनुष्य, तुम्हें किसी दिन उस कठोर और भयानक मार्ग पर चलना है, जहाँ सूर्य-चन्द्र का भी प्रवेश नहीं । जब तू यमदूतों के फन्दे में पड़ा मृत्यु को प्राप्त होगा, तब मोह-माया का सब प्रेम विस्मृत हो जायगा ।। ३।। आज मुझे यह ज्ञान हुआ है कि (यदि मैं शुभ कर्म नहीं करता तो) मुझे धर्मराज की कठोरता का ज़रूर सामना करना पड़ेगा । (और) यमराज

के महाबली दूत अपने हाथों से मुझ सरीखे पापी का दलन कर देंगे ।। ४ ।। (इस भय से अब मैं हरि-स्मरण करता हूँ, इसलिए अब) यदि कोई हितैषी मुझे यम का भय देता है तो मैं निर्भीक रहकर कहता हूँ कि मुझे तो तिनके-तिनके में व्यापक प्रभु दीख पड़ता है । भक्त त्रिलोचन जी कहते हैं कि हे सर्वज्ञ परमात्मा तुम तो स्वयं ही सब कुछ (मेरी भावना को) जानते हो ।। ५ ।। २ ।।

स्रीरागु भगत कबीर जीव का । अचरज एकु सुनहु रे पंडीआ अब किछु कहनु न जाई । सुरिनर गण गंध्रब जिनि मोहे त्रिभवण मेखुली लाई ।। १ ।। राजा राम अनहद किंगुरी बाजै । जा की दिसटि नाद लिव लागै ।। १ ।। रहाउ ।। भाठी गगनु सिंङिआ अरु चुंङिआ कनक कलस इकु पाइआ । तिसु महि धार चुऐ अति निरमल रस महि रसन चुआइआ ।। २ ।। एक जु बात अनूप बनी है पवन पिआला साजिआ । तीनि भवन महि एको जोगी कहहु कवनु है राजा ।। ३ ।। ऐसे गिआन प्रगटिआ पुरखोतम कहु कबीर रंगि राता । अउर दुनी सभ भरमि भुलानी मनु राम रसाइन माता ।। ४ ।। ३ ।।

(पण्डितों और योगियों को कबीरजी उपदेश करते हैं) हे पण्डित, मैं तुम्हें प्रकृति के आश्चर्यों का ज्ञान करवाता हूँ, सचमुच उनकी अद्वितीयता के सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं जा सकता । माया (त्रिगुणमयी) ने मनुष्यों, देवताओं, गण-गन्धर्वों आदि को मोहित करके समूची सृष्टि को अपने कटिपट में बाँध रखा है ।। १ ।। जिस राम की मैं उपासना करता हूँ, ऐ योगी ! वही अनाहत किंगुरी है, जिसकी लय में मेरी चित्त-वृत्ति गुरु के उपदेश में रमती है ।। १ ।। रहाउ ।। शून्य दशम द्वार ही मदिरा खींचने की भट्ठी है, इड़ा-पिंगला दोनों नलकियाँ हैं और शुद्ध अन्त:करण मदिरा भरने के लिए स्वर्ण-पात्र है । इसी पात्र में दशम द्वार से स्रवित होता हुआ आनन्द-रस एकत्रित होता और अन्त:करण को निर्मल करता है ।। २ ।। हे योगी, एक अपूर्व बात यह है कि इस मदिरा-अमृत को पीने के लिए मैंने श्वास-निरोध का प्याला बनाया है । त्रिलोकी मुझ सरीखा निर्भय योगी कोई एकाध ही होगा । तुम ही कहो, फिर मुझ-सा समृद्ध (राजा) और कौन हो सकता है ? ।। ३ ।। कबीरजी कहते हैं कि उक्त योग से मेरे भीतर प्रभु का ज्ञान उपजा है, इसलिए मैं सदैव उसी के नाम-रंग में मस्त रहता हूँ । शेष सब संसार माया-भ्रम में भूला पड़ा है, किन्तु मेरा मन राम-नाम के रसायन में आनन्द-मग्न है ।। ४ ।। ३ ।।

स्रीराग बाणी भगत बेणी जीउ की ।।

पहरिआ कै घरि गावणा ।।

१ ओं सतिगुर प्रसादि । रे नर गरभ कुंडल जब आछत उरध धिआन लिव लागा। मिरतक पिंडि पद मद ना अहिनिसि एकु अगिआन सुनागा । ते दिन संमलु कसट महा दुख अब चितु अधिक पसारिआ । गरभ छोडि म्रित मंडल आइआ तउ नरहरि मनहु बिसारिआ ।। १ ।। फिरि पछुतावहिगा मूड़िआ तूं कवन कुमति भ्रमि लागा । चेति रामु नाही जमपुरि जाहिगा जनु बिचरै अनराधा ।। १ ।। रहाउ ।। बाल बिनोद चिंद रस लागा खिनु खिनु मोहि बिआपै । रसु मिसु मेधु अंम्रितु बिखु चाखी तउ पंच प्रगट संतापै । जपु तपु संजमु छोडि सुक्रित मति रामनामु न अराधिआ । उछलिआ कामु काल मति लागी तउ आनि सकति गलि बांधिआ ।। २ ।। तरुण तेजु परत्रिअ मुखु जोहहि सरु अपसरु न पछाणिआ । उनमत कामि महा बिखु भूलै पापु पुंनु न पछानिआ । सुत संपति देखि इहु मनु गरबिआ रामु रिदै ते खोइआ । अवर मरत माइआ मनु तोले तउ भग मुखि जनमु विगोइआ ।। ३ ।। पुंडर केस कुसम ते धउले सपत पाताल की बाणी । लोचन स्रमहि बुधि बल नाठी ता कामु पवसि माधाणी । ता ते बिखै भई मति पावसि काइआ कमलु कुमलाणा । अवगति बाणि छोडि म्रित मंडलि तउ पाछै पछुताणा ।। ४ ।। निकुटी देह देखि धुनि उपजै मान करत नही बूझै । लालचु करै जीवन पद कारन लोचन कछू न सूझै । थाका तेजु उडिआ मनु पंखी घरि आंगनि न सुखाई । बेणी कहै सुनहु रे भगतहु मरन मुकति किनि पाई ।। ५ ।।

[इस पद को 'पहरे' वाणी की लय में गाने का आदेश दिया गया है । वेणी जी इसमें शरीर की चार अवस्थाएँ बताकर मंगल उपदेश देते हैं] ।

हे प्राणी, जब तुम मातृ-गर्भ में थे तो उल्टे लटककर (टाँगें ऊपर, सिर नीचे) परमात्मा के ध्यान में लीन थे । उस समय तुम्हें इस मिट्टी के शरीर का अहंकार नहीं था और तुम अज्ञानांधकार से रहित प्रभु का ध्यान

करते थे। उन कष्टपूर्ण दिनों (गर्भस्थ अवस्था) की याद करो। (तुम ऐसा न करके) सांसारिक-व्यवहार में अपनी चित्त-वृत्तियों का प्रसार करते हो। अब जब गर्भ-मण्डल से तुम्हें मुक्ति मिल गई, तुमने परमात्मा को विस्मृत कर दिया है ॥ १ ॥ ऐ मूढ़ प्राणी, तुम्हें फिर पछताना पड़ेगा— क्यों भ्रम में पड़कर तुम कुमति कर रहे हो। राम-नाम स्मरण करो, नहीं तो यमपुर को जाओगे। मूर्खों की नाईं व्यर्थ भ्रमण में न पड़ो (अर्थात् राम-नाम-स्मरण द्वारा मुक्ति का साधन जुटाओ, अन्यथा पछताओगे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ बाल्यावस्था में क्रीड़ा-विनोद में ही मन लगा रहा और क्षण-क्षण प्राणी मोह में व्यापने लगा। किशोरावस्था में आनन्द के बहाने पवित्र अमृत समझकर शराबादि विष का पान करता है और परिणाम-स्वरूप काम-क्रोधादि पंच-विकारों का कष्ट उपजने लगता है। इस अवस्था में जप, तप, संयम आदि भले कार्यों को छोड़कर प्राणी राम-स्मरण से भी विमुख हो जाता है। युवावस्था में जब वासना बढ़ती है और स्त्री-भोग की कामना होने लगती है तो माता-पिता स्त्री को लाकर उसके गले में बाँध देते हैं ॥२॥ तरुणाई के कारण अवसर-कुअवसर विचारे बिना प्राणी स्त्री-मुखापेक्षी हो जाता है। कामोन्मत्त प्राणी श्रेष्ठ विषयों को विस्मृत करके धर्म-अधर्म (पाप-पुण्य) की अवहेलना करने लगता है। स्त्री-सन्तानादि देखकर प्राणी अभिमान करने लगता और राम-नाम से पूर्णतः विमुख हो जाता है। सगे-सम्बन्धियों की मृत्यु पर प्राणी (अपनी मृत्यु का विचार करने के बजाय) उपलब्ध माया को तोलता है और उत्तम और श्रेष्ठ मनुष्य-जन्म को व्यर्थ गँवा देता है ॥ ३ ॥ वृद्धावस्था में बाल स्फेद कमल की भाँति पक जाते हैं और वाणी सातवें पाताल से बोली जाने के समान मद्धम हो जाती है। आँखों से जल स्रवित होता है, शरीर का बल और बुद्धि क्षीण पड़ जाते हैं—कामनाएँ मन में उत्पन्न होकर मथनी चलाती हैं। इससे बुद्धि में पावसवत् वासना का अन्धकार छाता है, जिसमें शरीर-रूपी कमल मुरझा जाता है। हरिनाम की अविगत वाणी को छोड़कर प्राणी जीवन-भर मोहासक्ति में लीन रहता है और बुढ़ापे में पश्चाताप करता है ॥ ४ ॥ छोटे बाल-बच्चों को देखकर वृद्धावस्था में प्राणी के मन से ध्वनि उठती है और वह उनके पालन-पोषण का मान करने लगता है; किन्तु वे सब उसके अन्तःकरण को नहीं समझते। यद्यपि उस अवस्था में आँखें भी साथ नहीं देतीं, तो भी जीवन का लोभ बना ही रहता है। प्राण-बल क्षीण होकर जब आत्म-रूपी पक्षी लोक-लोकांतर की उड़ान लेता है तो आँगन में रखा मृत-शरीर भी किसी को नहीं भाता। भक्त बेणी कहते हैं कि हे सज्जनो, (आत्म-ज्ञान की उपलब्धि के बग़ैर केवल) मर कर किसी को मुक्ति नहीं मिलती ॥ ५ ॥

सिरीरागु । तोही मोही मोही तोही अंतरु कैसा । कनक कटिक जल तरंग जैसा ॥ १ ॥ जउपै हम न पाप करंता अहे अनंता । पतितपावन नामु कैसे हुंता ॥ १ ॥ रहाउ ॥ तुम्ह जु नाइक आछहु अंतरजामी । प्रभ ते जनु जानीजै जन ते सुआमी ॥ २ ॥ सरीरु आराधै मोकउ बीचारु देहू । रविदास समदल समझावै कोऊ ॥ ३ ॥

हे परमात्मा तुम में और मुझ में अन्तर ही क्या ? (मुझ में तुम्हारा ही अंश है—तुम समष्टि हो और मैं व्यष्टि, किन्तु तत्त्व-भेद हममें कुछ नहीं ।) यदि दृश्य स्तर पर कोई अन्तर दीखता भी है तो वह स्वर्ण और आभूषण अथवा जल और तरंग जैसा है (जैसे सोने के आभूषण भी सोना ही हैं, लहरें जल की भिन्न रूप होते भी जल हैं, वैसे ही जीव और ब्रह्म हैं)॥१॥ हे अनन्त भगवन्, यदि हम लोग, सांसारिक प्राणी पाप न करते, तो तुम पतित-पावन का पद क्योंकर धारण कर सकते ? ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे अन्तर्यामी परमेश्वर, यदि तुम अपने को स्वामी और हमें दास मानकर भेद स्थापित करना चाहते हो, तो वह भी सम्भव नहीं । क्योंकि स्वामी से दास जाने जाते हैं और दासों से स्वामी, अर्थात् ये दोनों शब्द अन्योन्याश्रित हैं । दास-विहीन स्वामी की कोई सत्ता नहीं और स्वामी की अनुपस्थिति में कोई दास नहीं होता ॥ २ ॥ हे परमात्मा मुझे शक्ति दो कि जब तक शरीर बना रहे, मैं तुम्हारी आराधना में मग्न रहूँ । भक्त रविदास जी कहते हैं कि मुझे ऐसे सतिगुरु की शरण दो, जो मुझे समस्त जीवों के बीच परम-सत्य ईश्वर का ज्ञान दे सके ॥ ३ ॥

॥ सिरीराग समाप्त ॥

रागु माझ चउपदे घरु १ महला ४

१ ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु अकाल मूरति अजूनी सैभं गुरप्रसादि ॥

हरि हरि नामु मै हरि मनि भाइआ। वडभागी हरिनामु धिआइआ। गुरि पूरै हरिनाम सिधि पाई को विरला गुरमति चलै जीउ ॥ १ ॥ मै हरि हरि खरचु लइआ बंनि पलै। मेरा प्राण सखाई सदा नालि चलै। गुरि पूरै हरि नामु दिड़ाइआ हरि निहचलु हरि धनु पलै जीउ ॥ २ ॥ हरि हरि सजणु मेरा प्रीतमु राइआ। कोई आणि मिलावै मेरे प्राण जीवाइआ। हउ रहि न सका बिनु देखे प्रीतमा मै नीरु वहे वहि चलै जीउ ॥ ३ ॥ सतिगुरु मित्रु मेरा बाल सखाई। हउ रहि न सका बिनु देखे मेरी माई। हरि जीउ क्रिपा करहु गुरु मेलहु जन नानक हरि धनु पलै जीउ ॥ ४ ॥ १ ॥

[प्रथम सात चउपदों में गुरुजी हरि-मिलन के लिए गुरु और सत्संगति को माध्यम बनाकर बढ़ने का उपदेश देते हैं।]

गुरुजी कहते हैं कि हरि का नाम दुखों का नाश करनेवाला है, इसलिए यह नाम मेरे मन को भला लगा है। सौभाग्यवश मैंने हरि-नाम का स्मरण किया है। पूर्णगुरु की कृपा से मुझे हरि-नाम की प्राप्ति हुई है, परन्तु कोई बिरला पुरुष ही गुरु की शिक्षा के अनुसार चलता है ॥ १ ॥ मैंने हरि का नाम-रूपी धन पल्ले में बाँध लिया है, अर्थात् परलोक के लिए संग्रह कर लिया है। यही नाम-धन मेरा प्राण एवं सखारूप है जो हमेशा साथ चलेगा। पूर्णगुरु ने ईश्वर नाम से मुझे जोड़ दिया है अर्थात् मुझे आस्थावान बना दिया है, इसलिए नाम-रूपी अचल धन मेरे हृदय-रूपी पल्ले में आ गया है ॥ २ ॥ हरि ही मेरा साजन और प्रियतम प्रभु है, यदि कोई मुझे उससे मिलाए तो वह मेरा प्राणरक्षक होगा। मैं प्रियतम वाहिगुरु के देखे बिना नहीं रह सकता, इसलिए (प्रेम-वश) मेरे नेत्रों से जल के धारे बह रहे हैं ॥३॥ सतिगुरु मेरा बाल सखा है। हे सन्तजनो,

मैं हरि को देखे बिना नहीं रह सकता। गुरुजी का कथन है कि (जीवों को यह कहना चाहिए,) हे हरि, अपनी कृपा कर गुरु से भेंट कराइए ताकि हरिनाम-रूपी धन हृदय-रूपी पल्ले में प्राप्त हो ॥ ४ ॥ १ ॥

॥ माझ महला ४ ॥ मधुसूदन मेरे मन तन प्राना। हउ हरि बिनु दूजा अवरु न जाना। कोई सजणु संतु मिलै वडभागी मै हरि प्रभु पिआरा दसै जीउ ॥ १ ॥ हउ मनु तनु खोजी भालि भालाई। किउ पिआरा प्रीतमु मिलै मेरी माई। मिलि सतसंगति खोजु दसाई विचि संगति हरि प्रभु वसै जीउ ॥ २ ॥ मेरा पिआरा प्रीतमु सतिगुरु रखवाला। हम बारिक दीन करहु प्रतिपाला। मेरा मात पिता गुरु सतिगुरु पूरा गुर जल मिलि कमलु विगसै जीउ ॥ ३ ॥ मै बिनु गुर देखे नीद न आवै। मेरे मन तनि वेदन गुर बिरहु लगावै। हरि हरि दइआ करहु गुरु मेलहु जन नानक गुर मिलि रहसै जीउ ॥ ४ ॥ २ ॥

मधुसूदन परमेश्वर ही मेरे मन, तन और प्राण-रूप हैं क्योंकि मैं हरि के अतिरिक्त किसी दूसरे को नहीं जानता हूँ। यदि कोई भाग्यशाली सन्त मिले तो वही मुझे प्रभु प्रियतम के बारे में बतला सकता है ॥ १ ॥ मैं मन, तन से अर्थात् पूर्णरूप से जिज्ञासु बनकर उस प्रभु को ढूँढता हूँ। हे सन्तजनो! मेरा प्रियतम प्रभु मुझे किस प्रकार मिले? सन्तों की संगति में रहकर परमात्मा का पता पूँछता हूँ क्योंकि सत्संगति के बीच हरि-प्रभु का निवास है ॥ २ ॥ मेरा प्रिय प्रियतम सतिगुरु ही रक्षक है। वही हम दीन बालकों की रक्षा करनेवाला है। पूर्ण सतिगुरु ही मेरे माता-पिता हैं, उन्हीं के दर्शन-रूपी जल के मिलने से हृदय-रूपी कमल विकसित होगा ॥ ३ ॥ गुरु के दर्शन किए बिना मुझे नींद नहीं आती। क्योंकि गुरु का विरह मेरे मन-तन में पीड़ा जगाता है। हे समस्त दुखों के निवारक हरि, अपनी कृपा कर गुरु से मिलाइए, क्योंकि भक्त का मन गुरु के मिलाप से ही प्रसन्नता को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ २ ॥

॥ माझ महला ४ ॥ हरिगुण पड़ीऐ हरिगुण गुणीऐ। हरि हरि नाम कथा नित सुणीऐ। मिलि सतसंगति हरिगुण गाए जगु भउजलु दुतरु तरीऐ जीउ ॥ १ ॥ आउ सखी हरि मेलु करेहा। मेरे प्रीतम का मै देइ सनेहा। मेरा मित्रु सखा सो प्रीतमु भाई मै दसे हरि नरहरीऐ जीउ ॥ २ ॥ मेरी बेदन

हरि गुरु पूरा जाणै । हउ रहि न सका बिनु नाम वखाणे । मै अउखधु मंत्रु दीजै गुर पूरे मै हरि हरि नामि उधरीऐ जीउ ॥ ३ ॥ हम चात्रिक दीन सतिगुर सरणाई । हरि हरि नामु बूंद मुखि पाई । हरि जलनिधि हम जल के मीने जन नानक जल बिनु मरीऐ जीउ ॥ ४ ॥ ३ ॥

(जीवों को चाहिए,) हरि के गुण पढ़ें और हरि के गुणों का चिन्तन करें। नित्य हरि-कथा का श्रवण करें, सत्संगति में मिलकर हरि के गुण गाएँ ताकि जगत-रूपी समुद्र जिसमें आवागमन का दुस्तर जल है, पार किया जा सके ॥ १ ॥ हे सखी, आओ, हरि के समान हरिजनों से मेल करें? वे मेरे प्रियतम का सन्देश मुझे देंगे, अर्थात् परमात्मा के मिलाप का मार्ग बनाएँगे। वही मेरा मित्र और संगी है, वही प्रियतम और भाई है जो मुझे (मानवों से लेकर सब जीवों को सुखी बनानेवाले) नरसिंह-रूपी परमात्मा के सम्बन्ध में बताए ॥ २ ॥ मेरी पीड़ा को हरि-रूपी पूर्ण गुरु ही जानता है। मैं प्रभु के नाम-स्मरण के बिना नहीं रह सकता। हे पूर्णगुरु! मुझे हरिनाम-रूपी औषधि और मन्त्र दीजिए जिससे मेरा उद्धार हो ॥ ३ ॥ हम दीन चातक हैं और सतिगुरु शरणदाता है। तभी उन्होंने हरिनाम-रूपी बूँद हमारे मुख में डाली, अर्थात् उन्होंने हरि-नाम का उपदेश दिया। गुरु नाम-रूपी जल का समुद्र है और हम मछलियाँ। इसलिए गुरुजी कहते हैं कि नाम-रूपी जल से अलग होने पर मरण निश्चित है ॥ ४ ॥ ३ ॥

॥ माझ महला ४ ॥ हरिजन संत मिलहु मेरे भाई । मेरा हरिप्रभु दसहु मै भुख लगाई । मेरी सरधा पूरि जगजीवन दाते मिलि हरि दरसनि मनु भीजै जीउ ॥ १ ॥ मिलि सतसंगि बोली हरि बाणी । हरि हरि कथा मेरै मनि भाणी । हरि हरि अंम्रितु हरि मनि भावै मिलि सतिगुर अंम्रितु पीजै जीउ ॥ २ ॥ वडभागी हरि संगति पावहि । भागहीन भ्रमि चोटा खावहि । बिनु भागा सतसंगु न लभै बिनु संगति मैलु भरीजै जीउ ॥ ३ ॥ मै आइ मिलहु जगजीवन पिआरे । हरि हरि नामु दइआ मनि धारे । गुरमति नामु मीठा मनि भाइआ जन नानक नामि मनु भीजै जीउ ॥ ४ ॥ ४ ॥

गुरुजी कहते हैं कि हे भाइयो, हरि के सन्तजनो, मुझे मिलो। मुझे मेरा प्रभु प्रियतम बताओ, क्योंकि उस हरि के मिलाप की चाह मेरे भीतर जग गई है। हे जगजीवन, मेरी मनोकामना पूर्ण करो। हे दाता मुझे

दर्शन दो, ताकि आपके दर्शनों से मेरा मन भीग जाय ।। १ ।। सत्संगति में बैठकर हरि की बाणी बोलूं । हरि की दुःखनाशक कथा मेरे मन को भली लगी है । हरि का नाम-रूपी अमृत मन को भला लगा है जिसका पान सतिगुरु की संगति में बैठकर किया जाता है ।। २ ।। भाग्यशाली पुरुष ही हरि-संगति पाते हैं और जो भाग्यहीन हैं, वे भ्रमों में भटकते हुए चोटें खाते हैं । पुण्यों के बिना सत्संग प्राप्त नहीं होता और सत्संगति के बिना पाप-रूपी मैल बढ़ता है ।। ३ ।। हे जगजीवन प्रभु, मुझे दर्शन दो और मन में दया धारण कर अपना नाम मुझे दो । हे भाई, गुरु की शिक्षा से हरि-नाम मेरे मन को मीठा लगा है । गुरुजी कहते हैं कि हे सन्तजनो, मेरा मन हरि-नाम में भीग गया है ।। ४ ।। ४ ।।

।। माझ महला ४ ।। हरि गुर गिआनु हरिरसु हरि पाइआ । मनु हरि रंगि राता हरिरसु पीआइआ । हरि हरि नामु मुखि हरि हरि बोली मनु हरिरसि टुलि टुलि पउदा जीउ ।। १ ।। आवहु संत मै गलि मेलाईऐ । मेरे प्रीतम की मै कथा सुणाईऐ । हरि के संत मिलहु मनु देवा जो गुरबाणी मुखि चउदा जीउ ।। २ ।। वडभागी हरि संतु मिलाइआ । गुरि पूरै हरि रसु मुखि पाइआ । भागहीन सतिगुरु नही पाइआ मनमुखु गरभ जूनी निति पउदा जीउ ।। ३ ।। आपि दइआलि दइआ प्रभि धारी । मलु हउमै बिखिआ सभ निवारी । नानक हट पटण विचि कांइआ हरि लैंदे गुरमुखि सउदा जीउ ।। ४ ।। ५ ।।

गुरुजी प्रथम दशा का वर्णन करते हैं कि जब गुरु के उपदेश द्वारा हरि का हरिनाम-रूपी रस प्राप्त हुआ, तब मेरा मन हरि के रंग में रंग गया । तत्पश्चात् मैंने दूसरों को भी हरिनाम-रूपी रस पिलाया । जो हरि पाप-निवारक है उस हरि का नाम मुख से बोलता हूँ तत्पश्चात् मन हरि के नाम-रस को उलट-पुलट कर पढ़ता है ।। १ ।। हे सन्तजनो ! मुझे गले से लगाइए और मुझे प्रियतमप्रभु की कथा सुनाइए । हरि के सन्तजनो, मुझे मिलिए (क्योंकि) जो महात्मा अपने मुख से हरि की वाणी उच्चरित करे मैं उसे तन-मन अर्पित करूँ ।। २ ।। किसी भाग्यशाली अथवा पुण्यात्मा को हरि ने सन्त गुरु से मिलाया है और पूर्णगुरु ने हरि के नाम-रूपी रस का उपदेश दिया है । भाग्यहीन जीव को सतिगुरु प्राप्त नहीं हुआ । इसलिए मनमुख जीव नित्य ही गर्भ-योनि में पड़ता फिरता है अर्थात् आवागमन के चक्र में पड़ा रहता है ।। ३ ।। जिस पुरुष के प्रति दयालु पुरुष-प्रभु, आप दयावान हैं उस पुरुष ने अहंकार, ममत्व-रूपी समूची

मैल हटा दी है। देह-रूपी नगर में इन्द्रिय-रूपी दूकाने हैं जहाँ गुरमुख पुरुष-रूपी व्यापारी नाम का सौदा लेते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

॥ माझ महला ४ ॥ हउ गुण गोविंद हरिनामु धिआई। मिलि संगति मनि नामु वसाई। हरि प्रभ अगम अगोचर सुआमी मिलि सतिगुर हरिरसु कीचै जीउ ॥ १ ॥ धनु धनु हरिजन जिनि हरि प्रभु जाता। जाइ पुछा जन हरि की बाता। पाव मलोवा मलि मलि धोवा मिलि हरिजन हरिरसु पीचै जीउ ॥ २ ॥ सतिगुर दातै नामु दिड़ाइआ। वडभागी गुर दरसनु पाइआ। अंम्रित रसु सचु अंम्रितु बोली गुरि पूरै अंम्रितु लीचै जीउ ॥ ३ ॥ हरि सतसंगति सतपुरखु मिलाईऐ। मिलि सतिसंगति हरिनामु धिआईऐ। नानक हरि कथा सुणी मुखि बोली गुरमति हरिनामि परीचै जीउ ॥ ४ ॥ ६ ॥

हरिप्रभु अगम, अगोचर एवं स्वामी है, सो सतिगुरु के साथ मिलकर उस हरि के साथ मिलाप कीजिए ॥ १ ॥ हरि के जन (दास) धन्य हैं जिन्होंने हरिप्रभु को जाना है। ऐसे हरिजनों के पास जाकर हरि की बात करूँ। उनके चरणों को दबाऊँ और मल-मल कर धोऊँ। उन हरि-भक्तों के साथ मिलकर हरि के नाम-रस का पान किया जाता है ॥ २ ॥ सतिगुरु दाता ने नाम दृढ़ कराया है। बड़े भाग्य से मैंने गुरु का दर्शन किया है। वे गुरु सच्चे अमृत-रस का पान करते हैं और अमृत-रूप ही उनकी वाणी है। इसलिए ऐसे पूर्ण गुरु से नाम-रूपी अमृत लीजिए ॥ ३ ॥ हे हरि ! मुझे सत्पुरुषों की सत्संगति में मिलाइए। सत्संगति में मिलकर हरि-नाम स्मरण करूँ। गुरुजी कहते हैं कि हरि की कथा का श्रवण करूँ और हरि की कथा ही उच्चरित करूँ और गुरु की शिक्षा से मन हरि-नाम में लगा रहे ॥ ४ ॥ ६ ॥

॥ माझ महला ४ ॥ आवहु भैणे तुसी मिलहु पिआरीआ। जो मेरा प्रीतमु दसे तिस कै हउ वारीआ। मिलि सतसंगति लधा हरि सजणु हउ सतिगुर विटहु घुमाईआ जीउ ॥ १ ॥ जह जह देखा तह तह सुआमी। तू घटि घटि रविआ अंतरजामी। गुरि पूरै हरि नालि दिखालिआ हउ सतिगुर विटहु सद वारिआ जीउ ॥ २ ॥ एको पवणु माटी सभ एका सभ एका जोति सबाईआ। सभ इका जोति वरतै भिनि भिनि न रलई किसै दी रलाईआ। गुर परसादी इकु नदरी आइआ हउ सतिगुर विटहु

वताइआ जीउ ॥ ३ ॥ जनु नानकु बोलै अंम्रित बाणी । गुरसिखां कै मनि पिआरी भाणी । उपदेसु करे गुरु सतिगुरु पूरा गुरु सतिगुरु परउपकारीआ जीउ ॥ ४ ॥ ७ ॥ सत चउपदे महले चउथे के ॥

हे प्यारी सखियो ! तुम आकर मुझसे मिलो । जो मेरा प्रियतम परमेश्वर बताए मैं उसपर बलिहारी जाता हूँ । सत्संगति में मिलकर हरि-साजन प्राप्त हुआ है, इसलिए ऐसे सतिगुरु पर मैं हमेशा बलिहारी जाता हूँ ॥ १ ॥ जहाँ-जहाँ देखता हूँ, वहाँ-वहाँ पूर्ण-स्वामी है । हे अन्तर्यामी तू घट-घट-व्यापक है । पूर्णगुरु ने हरि को साथ ही दिखाया है। इसलिए मैं सदा सतिगुरु पर बलिहारी जाता हूँ ॥ २ ॥ (सर्व-पर्यन्त) सबमें एक ही पवन है, सबमें एक मिट्टी है और सबमें एक ही ज्योति व्याप्त है । समूची सृष्टि में एक ज्योति है, लेकिन व्यवहारिकता अलग-अलग है, अर्थात् प्रारब्ध और क्रिया सब जीवों की भिन्न-भिन्न है जो किसी के मिलाने से नहीं मिलती । गुरु-कृपा से एक अद्वितीय परमेश्वर दृष्टिगोचर हुआ है, इसलिए सतिगुरु पर बलिहारी जाता हूँ ॥ ३ ॥ जो अमृतरूपी वाणी गुरुजी कथन करते हैं, वही गुरमुखों के मन को भली लगी है । पूर्ण सतिगुरु उपदेश करते हैं कि गुरु पूर्ण सतिगुरु है, क्योंकि वे केवल परोपकार-स्वरूप हैं ॥ ४ ॥ ७ ॥

माझ महला ५ चउपदे घरु १

मेरा मनु लोचै गुर दरसन ताई । बिलप करे चात्रिक की निआई । त्रिखा न उतरै सांति न आवै बिनु दरसन संत पिआरे जीउ ॥ १ ॥ हउ घोली जीउ घोलि घुमाई गुर दरसन संत पिआरे जीउ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ तेरा मुखु सुहावा जीउ सहज धुनि बाणी । चिरु होआ देखे सारिंगपाणी । धंनु सु देसु जहा तूं वसिआ मेरे सजण मीत मुरारे जीउ ॥ २ ॥ हउ घोली हउ घोलि घुमाई गुर सजण मीत मुरारे जीउ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ इक घणी न मिलते ता कलिजुगु होता । हुणि कदि मिलीऐ प्रिअ तुधु भगवंता । मोहि रैणि न विहावै नीद न आवै बिनु देखे गुर दरबारे जीउ ॥ ३ ॥ हउ घोली जीउ घोलि घुमाई तिसु सचे गुर दरबारे जीउ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ भागु होआ गुरि संतु मिलाइआ । प्रभु अबिनासी घर महि पाइआ । सेव करी पलु

चसा न विछुड़ा जन नानक दास तुमारे जीउ ।। ४ ।। हउ घोली जीउ घोलि घुमाई जन नानक दास तुमारे जीउ ।।रहाउ।। १ ।। ८ ।।

हे गुरुजी, आपके दर्शन के लिए मेरा मन व्याकुल है और चातक की तरह विलाप करता है । हे सन्तजनों के प्यारे, आपके दर्शनों के बिना प्यास नहीं बुझती ।। १ ।। गुरु अर्जुनदेवजी कहते हैं कि हे सन्तों के प्रिय, मैं आपके दर्शनों के लिए मन, वाणी और देह से बलिहारी जाता हूँ ।। १ ।। रहाउ ।। तेरा मुख शोभनीय है और वाणी सहज अर्थात् शान्तिरूप है । हे सारंगपाणी, (अर्थात् विष्णुरूप महाराज) आपके दर्शन किए चिरकाल हो गया है, अथवा ऐसी अवस्था हो गई है जैसे जल की चाह में चातक की अवस्था होती है । हे मेरे वाहिगुरु, मेरे मित्र, मेरे सज्जन, वह स्थान धन्य है जहाँ आप बस रहे हैं ।। २ ।। मैं मन, तन और वाणी से आप पर बलिहार जाता हूँ, क्योंकि हे सज्जन, हे गुरुजी, आप प्रभु के प्रिय हो ।। १ ।। रहाउ ।। एक घड़ी दर्शन न होने पर तो समय कलियुग-सा लगता है, अर्थात् विछोह के एक घड़ी समय का आभास कलियुग (बहुत दुखदकाल) की तरह होता है, लेकिन हे प्यारे, अब आपको कब मिलूँगा । हे गुरु, आपका दरबार देखे बिना मुझे नींद नहीं आती और न ही मेरी रात्रि बीतती है ।। ३ ।। मैं मन, तन और वाणी से उस गुरु पर बलिहारी जाता हूँ जिसका दरबार सच्चा है ।। १ ।। रहाउ ।। जब पुण्यों का प्रभाव हुआ, अर्थात् जब सौभाग्य हुआ तब सन्तों ने आप ही गुरु से मिलाप करा दिया और अब (आपकी कृपा से) अविनाशी प्रभु अन्तःकरण-रूपी घर में प्राप्त हुआ है । अब प्रार्थना है कि आपकी सेवा करते हुए पल या चसा भर भी (अर्थात् क्षणमात्र भी) न बिछड़ूँ । मैं आपका दास हूँ ।। ४ ।। नानक गुरु ~~अर्जुनदेव~~ जी कहते हैं कि मैं मन-तन-वाणी से उन पर बलिहारी हूँ जो आपके दास हैं ।। १ ।। ८ ।।

।। रागु माझ महला ५ ।। सा रुति सुहावी जितु तुधु समाली । सो कंमु सुहेला जो तेरी घाली । सो रिदा सुहेला जितु रिदै तूं वुठा सभना के दातारा जीउ ।। १ ।। तूं साझा साहिबु बापु हमारा । नउ निधि तेरै अखुट भंडारा । जिसु तूं देहि सु त्रिपति अघावै सोई भगतु तुमारा जीउ ।। २ ।। सभु को आसै तेरी बैठा । घट घट अंतरि तूं है वुठा । सभे साझीवाल सदाइनि तूं किसै न दिसहि बाहरा जीउ ।। ३ ।। तूं आपे गुरमुखि मुकति कराइहि । तूं आपे मनमुखि जनमि भवाइहि । नानक दास तेरै बलिहारै सभु तेरा खेलु दसाहरा जीउ ।।४।।२।।९।।

[टिप्पणी—इस पद के विभिन्न अंश अलग-अलग लिखे गए थे। कहते हैं एक बार गुरु अर्जुन को अपने पिता से अलग रहना पड़ा। वे बराबर मिलने की इजाजत पाने के लिए एक-एक अंश लिखकर भेजते रहे, किन्तु दुष्टों के षड्यन्त्र के कारण वे अंश गुरु अर्जुन के पिता श्री गुरु रामदास के पास पहुँच ही नहीं सके।]

हे भगवान, वही ऋतु शोभनीय है जिसमें आपका स्मरण करूँ। वही कार्य सुखद है, जिसमें आपकी सेवा होवे। वही हृदय सुखी है, जिसमें सब कुछ देनेवाले का (आपका) निवास है ॥ १ ॥ तुम सबके सम्मिलित स्वामी हो, और हमारे पिता हो। तुम्हारे पास नवों निधियाँ हैं, तुम्हारा भण्डार अक्षय है। आप जिसे देते हैं, वह जीव मन और तन से सन्तुष्ट हो जाता है और वही आपका भक्त है ॥ २ ॥ प्रत्येक व्यक्ति आपसे आशा लगाए बैठा है। आप घट-घट में बस रहे हो। सभी आपको एक (सम्मिलित रूप) कहते हैं क्योंकि किसी को अपने से बाहर दिखाई नहीं देते ॥ ३ ॥ आप अपने आप ही गुरमुखों को मुक्त कराते हो और आप ही मनमुखों को आवागमन के चक्कर में डालते हो। गुरु अर्जुनदेवजी कहते हैं कि हे भगवान, मैं आप पर बलिहारी जाता हूँ ॥ ४ ॥ २ ॥ ९ ॥

॥ माझ महला ५ ॥ अनहदु वाजै सहजि सुहेला। सबदि अनंद करे सद केला। सहज गुफा महि ताड़ी लाई आसणु ऊच सवारिआ जीउ ॥ १ ॥ फिरि घिरि अपुने ग्रिह महि आइआ। जो लोड़ीदा सोई पाइआ। त्रिपति अघाइ रहिआ है संतहु गुरि अनभउ पुरखु दिखारिआ जीउ ॥ २ ॥ आपे राजनु आपे लोगा। आपि निरबाणी आपे भोगा। आपे तखति बहै सचु निआई सभ चूकी कूक पुकारिआ जीउ ॥ ३ ॥ जेहा डिठा मै तेहो कहिआ। तिसु रसु आइआ जिनि भेदु लहिआ। जोती जोति मिली सुखु पाइआ जन नानक इकु पसारिआ जीउ ॥ ४ ॥ ३ ॥ १० ॥

[गुरुजी ने प्रस्तुत अंश में 'ध्यान' की दशा का वर्णन किया है।]

(मन में निरन्तर नाम का उच्चारण-रूपी) शब्द बाजा बज रहा है जिससे स्वाभाविक ही सुख की प्राप्ति हो रही है। शब्द में आनन्दित होकर सभी केलि कर रहे हैं। सहज-रूपी गुफा में समाधि लगाई है और ऊँचा आसन बनाया है ॥ १ ॥ अनेक प्रकार के पदार्थों में घूम-फिरकर अपने गृह अर्थात् निज स्वरूप में स्थित हो गया हूँ। जो प्राप्तव्य था सो प्राप्त हो गया है। हे सन्तजनो, गुरु ने अनुभव-रूपी पुरुष का दर्शन

कराया है, इसलिए मेरा मन (बाहरी पदार्थों से) तृप्त तथा (भीतर की वासना से) शान्त हो रहा है ॥ २ ॥ परमात्मा आप ही राजा है और आप ही प्रजा-स्वरूप है। प्रभु आप ही विरक्त (निरवाणी) है और आप ही पदार्थों को भोगता है। प्रभु आप ही सिंहासन पर बैठकर सत्य न्याय करता है, इसलिए मेरे मन की समूची पुकार निवृत हो गई है ॥ ३ ॥ मैंने जैसा देखा है, वैसा ही कहा है। यह रस उसी पुरुष को आया है, जिसने इस रहस्य को पा लिया है। गुरुजी कहते हैं कि समूचा प्रपंच उसी एक परमेश्वर का प्रसार है जिसकी ज्योति में निहित होने पर मन को सुख प्राप्त हुआ है ॥ ४ ॥ ३ ॥ १० ॥

॥ माझ महला ५ ॥ जितु घरि पिरि सोहागु बणाइआ। तितु घरि सखीए मंगलु गाइआ। अनद बिनोद तितै घरि सोहहि जो धन कंति सिगारी जीउ ॥ १ ॥ सा गुणवंती सा वडभागणि। पुत्रवंती सीलवंति सोहागणि। रूपवंति सा सुघड़ि बिचखणि जो धन कंत पिआरी जीउ ॥ २ ॥ अचारवंति साई परधाने। सभ सिंगार बणे तिसु गिआने। सा कुलवंती सा सभराई जो पिरि कै रंगि सवारी जीउ ॥ ३ ॥ महिमा तिसकी कहणु न जाए। जो पिरि मेलि लई अंगि लाए। थिरु सुहागु वरु अगमु अगोचरु जन नानक प्रेम साधारी जीउ ॥ ४ ॥ ४ ॥ ११ ॥

हे सन्तजनो, जिस घर में पति ने सुहाग बनाया है, अर्थात् जिसके हृदय में परमेश्वर पति का प्रकाश हुआ है। हे सखी, उस घर में मंगलरूप हरि का यश-गायन किया है। समस्त आनन्द-मनोविनोद उस स्त्री के घर में शोभा पाते हैं जो पति ने सजाई है ॥ १ ॥ वही स्त्री गुणवान है, वही भाग्यशालिनी है, वही पुत्रवती, सुशीला तथा सुहागिनी है। जो जीव-रूपी स्त्री प्रियतम की प्यारी है, वही रूपसी है और वही चतुर है ॥ २ ॥ वही शुभ आचरणवाली है और वही स्त्रियों में मुख्य अर्थात् प्रधान है जिसके ज्ञान से समस्त शृंगार बने हैं। वही कुलीना है, वही पटरानी है जो प्रियतम के प्रेम में निमज्जित कर सँवारी गई है ॥ ३ ॥ उसकी महिमा कथन से परे है जिसे प्रियतम ने अपने साथ मिला अभेद कर लिया है। जिस जीव-स्त्री का पति अगम-अगोचर परमेश्वर है वह प्रेम-सहित उस पति के पास चली है, इसलिए उसका सुहाग सदा स्थिर है ॥ ४ ॥ ४ ॥ ११ ॥

॥ माझ महला ५ ॥ खोजत खोजत दरसन चाहे। भाति भाति बन बन अवगाहे। निरगुणु सरगुणु हरि हरि मेरा

कोई है जीउ आणि मिलावै जीउ ॥ १ ॥ खटु सासत बिचरत मुखि गिआना । पूजा तिलकु तीरथ इसनाना । निवली करम आसन चउरासीह इन महि सांति न आवै जीउ ॥ २ ॥ अनिक बरख कीए जप तापा । गवनु कीआ धरती भरमाता । इकु खिनु हिरदै सांति न आवै जोगी बहुड़ि बहुड़ि उठि धावै जीउ ॥ ३ ॥ करि किरपा मोहि साधु मिलाइआ । मनु तनु सीतलु धीरजु पाइआ । प्रभु अबिनासी बसिआ घट भीतरि हरि मंगलु नानकु गावै जीउ ॥ ४ ॥ ५ ॥ १२ ॥

(जिज्ञासु जनों ने) जिस परमेश्वर को खोजते हुए दर्शनों की कामना की है, उसके लिए नाना बनों में भ्रमण किया है। कोई ऐसा जीव है जो मेरे गुणातीत और सर्वगुणसम्पन्न (ब्रह्म) हरि को, आकर मुझे मिलाए ॥ १ ॥ अनेक पुरुष छः शास्त्रों को विचारते हैं, अनेक मुख से ज्ञान-कथन करते हैं, अनेक तिलक लगाकर पूजा करते हैं और अनेक तीर्थस्नान करते हैं। अनेकों ही निम्नस्तरीय कर्म (योगियों के शरीर-शुद्धि के लिए जल निकालना जैसे काम) और अनेकों सिद्धों के चौरासी आसन लगाते हैं, लेकिन इन कर्मों के करने से शान्ति नहीं मिलती ॥ २ ॥ अनेक वर्ष जप-तप किए और भ्रमणशील होकर समूची पृथ्वी पर गमन किया। एक क्षण भी हृदय में शान्ति नहीं आती क्योंकि (विषयों में बँधा हुआ) मन पुनः पुनः विषयों की ओर दौड़ता है ॥ ३ ॥ परमेश्वर ने कृपा करके मुझे सन्तों से मिलाया है। आपने ही मुझे हृदय में धैर्य दिया है, इससे तन-मन शीतल हो गया है। प्रभु अविनाशी मेरे हृदय में बस गया है, इसलिए मैं हरि के मंगल-रूप गुण गाता हूँ ॥ ४ ॥ ५ ॥ १२ ॥

॥ माझ महला ५ ॥ पारब्रहम अपरंपर देवा । अगम अगोचर अलख अभेवा । दीन दइआल गोपाल गोबिंदा हरि धिआवहु गुरमुखि गाती जीउ ॥ १ ॥ गुरमुखि मधुसूदनु निसतारे । गुरमुखि संगी क्रिसन मुरारे । दइआल दमोदरु गुरमुखि पाईऐ होरतु कितै न भाती जीउ ॥ २ ॥ निरहारी केसव निरवैरा । कोटि जना जा के पूजहि पैरा । गुरमुखि हिरदै जा कै हरि हरि सोई भगतु इकाती जीउ ॥ ३ ॥ अमोघ दरसन बेअंत अपारा । वड समरथु सदा दातारा । गुरमुखि नामु जपीऐ तितु तरीऐ गति नानक विरली जाती जीउ ॥ ४ ॥ ६ ॥ १३ ॥

परमेश्वर परंब्रह्म और अपरम्पार है; वही अगम, अगोचर अलख और अभेद है। हे भगवान, तू दीनदयालु है, पृथ्वीपालक और गोविन्द है, इसलिए मैं आपकी उपासना करता हूँ, क्योंकि आप ही गुरुमुखों की गति करनेवाले हैं ॥ १ ॥ हे मधुसूदन ! तूने गुरुमुखों को पार किया है। हे कृष्णमुरारी ! आप गुरुमुखों के संगी हो। हे दयालु दामोदर (वाहिगुरु) ! तुझे केवल गुरमुखी होने से पाया जा सकता है और किसी प्रकार नहीं ॥ २ ॥ हे केशव ! तू सदैव निराहारी है, वैर-रहित है और करोड़ों पुरुष तेरे चरणों को पूजते हैं। वही जीव भक्ति करनेवाला है, जिस (गुरुमुख) के हृदय में हरि-नाम है ॥ ३ ॥ हे अनन्त अपरम्पार, तेरा दर्शन अमोघ (सार्थक) है। तू बड़ा सामर्थ्यवान और चिरकाल तक दान देनेवाला है। गुरुजी कहते हैं कि गुरुमुख होकर (या गुरु के अनुसार चलकर) नाम को जपा जाए तो संसार-सागर से पार हुआ जाता है (परन्तु) यह रीति किसी विरले पुरुष ने ही जानी है ॥ ४ ॥ ६ ॥ १३ ॥

॥ माझ महला ५ ॥ कहिआ करणा दिता लैणा। गरीबा अनाथा तेरा माणा। सभ किछु तूं है तूं है मेरे पिआरे तेरी कुदरति कउ बलि जाई जीउ ॥ १ ॥ भाणै उझड़ भाणै राहा। भाणै हरिगुण गुरमुखि गावाहा। भाणै भरमि भवै बहु जूनी सभ किछु तिसै रजाई जीउ ॥ २ ॥ ना को मूरखु ना को सिआणा। वरतै सभ किछु तेरा भाणा। अगम अगोचर बेअंत अथाहा तेरी कीमति कहणु न जाई जीउ ॥ ३ ॥ खाकु संतन की देहु पिआरे। आइ पइआ हरि तेरै दुआरै। दरसनु पेखत मनु आघावै नानक मिलणु सुभाई जीउ ॥ ४ ॥ ७ ॥ १४ ॥

जो आपका उपदेश (कथन) है वही करणीय है, जो तेरा दिया हुआ (सुख या दुःख) है वही लेना है अर्थात् भोग्य है। दीनों और अनाथों को तेरा ही मान है। मेरे प्रिय परमेश्वर, सब कुछ तू ही है, मैं तेरी कुदरत (शक्ति) पर बलिहारी हूँ ॥ १ ॥ हे प्रभु, आपकी इच्छा से हम पथ-भ्रष्ट होते हैं, तथा आपकी ही इच्छा से सन्मार्ग (भक्ति का मार्ग) ग्रहण करते हैं। गुरुमुख-जन आपकी इच्छा से ही आपके गुणों को गाते हैं। आपके हुक्म के अनुसार भ्रमवश योनियों में भटकते हैं। (इस प्रकार) सब कुछ आपकी इच्छानुसार घटित होता है ॥ २ ॥ न कोई मूर्ख है और न कोई आप चतुर। सब कुछ तेरे हुक्म के अधीन क्रियान्वित है। हे अगम, अगोचर, अनन्त और अथाह प्रभु, तेरा मूल्यांकन शब्दों से परे है, अर्थात् तेरा माहात्म्य बखाना नहीं जा सकता ॥ ३ ॥ हे प्रिय परमेश्वर, मुझे सन्तजनों के चरणों की धूलि दीजिए। हे हरि, मैं आपके द्वार पर आ

गया हूँ। गुरुजी कहते हैं कि जब सन्तों के दर्शन से मन तृप्त होता है, तब तेरा मिलाप सहज हो जाता है ॥ ४ ॥ ७ ॥ १४ ॥

॥ माझ महला ५ ॥ दुखु तदे जा विसरि जावै। भुख विआपै बहु बिधि धावै। सिमरत नामु सदा सुहेला जिसु देवै दीन दइआला जीउ ॥ १ ॥ सतिगुरु मेरा वड समरथा। जीइ समाली ता सभु दुखु लथा। चिंता रोगु गई हउ पीड़ा आपि करे प्रतिपाला जीउ ॥ २ ॥ बारिक वांगी हउ सभ किछु मंगा। देदे तोटि नाही प्रभ रंगा। पैरी पै पै बहुतु मनाई दीनदइआल गोपाला जीउ ॥ ३ ॥ हउ बलिहारी सतिगुर पूरे। जिनि बंधन काटे सगले मेरे। हिरदै नामु दे निरमल कीए नानक रंगि रसाला जीउ ॥ ४ ॥ ८ ॥ १५ ॥

हे परमेश्वर, जब तुझे विस्मृत कर दिया जाता है तब ही दुःख प्राप्त होता है। बहुत प्रकार की तृष्णाएँ पैदा हो जाती हैं और जीव अनेक प्रकार से दौड़ता है। हे दीनदयालु, जिसे तू अपना नाम देता है, वह नाम स्मरण से सदा ही सुखी होता है ॥ १ ॥ हे परमात्मा, मेरा सतिगुरु बड़ा समर्थ है जिसकी कृपा से तुझे स्मरण करने पर मेरा समूचा दुःख दूर हो गया है चिन्ता-रूपी रोग और अहंकार-रूपी पीड़ा दूर हो गई है। हे परमेश्वर, तू आप ही रक्षा करता है ॥ २ ॥ हे वाहिगुरु, मैं बच्चे के समान सब कुछ माँगता हूँ। हे प्रभु, आनन्द-रूपी तेरे घर में देते हुए कमी नहीं है। बारम्बार चरणों पर गिरकर, हे दीनदयालु गोपाल! मैं आपकी बहुत मिन्नतें करता हूँ ॥ ३ ॥ मैं पूर्ण सतिगुरु पर बलिहारी जाता हूँ जिसने मेरे सम्पूर्ण बन्धन काट दिए हैं। गुरुजी कहते हैं कि हे वाहिगुरु! सतिगुरु ने आनन्द-रस का स्थान आपका नाम हृदय में देकर निर्मल कर दिया है, अर्थात् आपके नाम-स्मरण से मन शान्त, स्वच्छ तथा शुद्ध हो गया है ॥ ४ ॥ ८ ॥ १५ ॥

॥ माझ महला ५ ॥ लाल गोपाल दइआल रंगीले। गहिर गंभीर बेअंत गोविंदे। ऊच अथाह बेअंत सुआमी सिमरि सिमरि हउ जीवां जीउ ॥ १ ॥ दुख भंजन निधान अमोले। निरभउ निरवैर अथाह अतोले। अकाल मूरति अजूनी संभौ मन सिमरत ठंडा थीवां जीउ ॥ २ ॥ सदा संगी हरि रंग गोपाला। ऊच नीच करे प्रतिपाला। नामु रसाइणु मनु त्रिपताइणु गुरमुखि अंम्रितु पीवां जीउ ॥ ३ ॥ दुखि सुखि

पिआरे तुधु धिआई। एह सुमति गुरू ते पाई। नानक की धर तूं है ठाकुर हरि रंगि पारि परीवां जीउ ॥ ४ ॥ ९ ॥ १६ ॥

हे लाल गोपाल, हे दयालु रंगीले, हे गोबिन्द, असीम तू अत्यन्त गम्भीर है। तू सर्वोच्च तथा अथाह है, हे अनन्त वाहिगुरु, मैं तुझे मन-तन से स्मरण कर जीवित रहता हूँ ॥ १ ॥ हे दुखों के नाशक, हे अनन्त निधियों के घर, तू निर्भय, निर्वैर, अथाह तथा नापतोल से परे है ॥ २ ॥ हे हरि गोपाल, जो तुम में अनुरक्त हैं, तुम सदा उनके संगी हो और हमेशा ऊँच-नीच की रक्षा करते हो। तेरा नाम रसायन मन को तृप्त करनेवाला है परन्तु यह अमृत सतिगुरु द्वारा पान किया जाता है ॥ ३ ॥ हे प्यारे, दुख और सुख में तेरा ही स्मरण करता हूँ। यह श्रेष्ठ मति सतिगुरु से ही मिली है। गुरुजी कहते हैं कि हे स्वामी, मेरी ओट पर आप ही हैं, अर्थात् मेरे रक्षक आप ही हैं। हे वाहिगुरु, तेरे प्रेम द्वारा संसार-सागर से पार होऊंगा ॥ ४ ॥ ९ ॥ १६ ॥

॥ माझ महला ५ ॥ धंनु सुवेला जितु मै सतिगुरु मिलिआ। सफलु दरसनु नेत्र पेखत तरिआ। धंनु मूरत चसे पल घड़ीआ धंनि सु ओइ संजोगा जीउ ॥ १ ॥ उदमु करत मनु निरमलु होआ। हरि मारगि चलत भ्रमु सगला खोइआ। नामु निधानु सतिगुरू सुणाइआ मिटि गए सगले रोगा जीउ ॥ २ ॥ अंतरि बाहरि तेरी बाणी। तुधु आपि कथी तै आपि वखाणी। गुरि कहिआ सभु एको एको अवरु न कोई होइगा जीउ ॥ ३ ॥ अंम्रितरसु हरि गुर ते पीआ। हरि पैनणु नामु भोजनु थीआ। नामि रंग नामि चोज तमासे नाउ नानक कीने भोगा जीउ ॥ ४ ॥ १० ॥ १७ ॥

वह समय धन्य है, जब मुझे सतिगुरु मिला है। जिसने उसे नेत्रों से देखा है, वह संसार-समुद्र से पार हो गया है। वह मुहूर्त, चस, पल और घड़ियाँ धन्य हैं और वह प्रारब्ध धन्य है जिससे सतिगुरु का मिलाप हुआ है ॥ १ ॥ सतिगुरु की संगति के लिए पुरुषार्थ करने से मन निर्मल हो गया है और सतिगुरु द्वारा हरि-मार्ग में चलने से सम्पूर्ण भ्रम खो दिया है। नाम जो निधियों का घर है सो सतिगुरु ने सुनाया है, जिससे सम्पूर्ण रोग मिट गए हैं ॥ २ ॥ हे भगवान, भीतर और बाहर तेरी ही वाणी है, अर्थात् अन्तरा (परा १, पश्यन्ती २, मध्यमा ३) और बाहर (वैखरी) तेरी ही वाणी है और तूने आप ही कही है और आप ही उसका बखान किया है। जिस बाणी के सिद्धान्त को लेकर गुरुओं ने (भूतकाल और

वर्तमानकाल में) तुम्हें एक कहा है, भविष्य में भी वह एक ही रहेगा ॥ ३ ॥ हरिनाम-रूपी अमृतरस गुरुओं से पान किया है, अर्थात् जिन्होंने गुरु का उपदेश सुना है उनके लिए हरि-नाम ही भोजन और हरिनाम ही वस्त्र हुआ है। सतिगुरु जी कहते हैं कि उन्होंने नाम के आनन्द, नाम के ही आश्चर्यजनक तमाशों और नाम को ही भोग्य बनाया है, अर्थात् सर्वत्र परमेश्वर नामी को ही जाना है ॥ ४ ॥ १० ॥ १७ ॥

॥ माझ महला ५ ॥ सगल संतन पहि वसतु इक मांगउ। करउ बिनंती मानु तिआगउ। वारि वारि जाई लख वरीआ देहु संतन की धूरा जीउ ॥ १ ॥ तुम दाते तुम पुरख बिधाते। तुम समरथ सदा सुखदाते। सभ को तुम ही ते वरसावै अउसरु करहु हमारा पूरा जीउ ॥ २ ॥ दरसनि तेरै भवन पुनीता। आतम गड़ु बिखमु तिना ही जीता। तुम दाते तुम पुरख बिधाते तुधु जेवड़ु अवरु न सूरा जीउ ॥ ३ ॥ रेनु संतन की मेरै मुखि लागी। दुरमति बिनसी कुबुधि अभागी। सच घरि बैसि रहे गुण गाए नानक बिनसे कूरा जीउ ॥ ४ ॥ ११ ॥ १८ ॥

हे महाराज, समस्त सन्तजनों के पास जो धूलि-रूप वस्तु है, सो मैं माँगता हूँ और मान त्यागकर विनती करता हूँ। और लाख बार आप पर बलिहारी जाता हूँ। मुझे सन्तजनों के चरणों की धूलि दो ॥ १ ॥ तुम दाता और विधाता पुरुष हो तथा समस्त सुखों के देने में समर्थ हो। सब जीवों को समस्त पदार्थ तुमसे ही प्राप्त होते हैं, इसलिए हमारा समय अर्थात् मनुष्य-जन्म सफल करो ॥ २ ॥ हे वाहिगुरु, तेरे दर्शनों से ही चौदह लोक पवित्र होते हैं। (जिन्होंने दर्शन किया है) उन्होंने आत्मगढ़ (मन-रूपी) जो विषम (कठिन) किला है सो जीत लिया है। तुम ही दाता हो और तुम ही विधाता पुरुष हो। तुम जैसा बड़ा कोई शूरवीर नहीं है ॥ ३ ॥ जब सन्तों की चरण-धूलि मेरे मुख में लगी तब खोटी चेतना को धारण करनेवाली कुबुद्धि नष्ट हो गई है। गुरुजी कहते हैं कि जब परमेश्वर के गुणगायन से झूठ आदि विकार विनष्ट हो गए हैं, तब सत्य के घर में बैठ गए हैं, अर्थात् परमात्मा-स्वरूप में अभेद हो गए हैं ॥ ४ ॥ ११ ॥ १८ ॥

॥ माझ महला ५ ॥ विसरु नाही एवड दाते। करि किरपा भगतन संगि राते। दिनसु रैणि जिउ तुधु धिआई एहु दानु मोहि करणा जीउ ॥ १ ॥ माटी अंधी सुरति समाई। सभ किछु दीआ भलीआ जाई। अनद बिनोद चोज तमासे तुधु

भावै सो होणा जीउ ।। २ ।। जिसदा दिता सभु किछु लैणा । छतीह अंम्रित भोजनु खाणा । सेज सुखाली सीतलु पवणा सहज केल रंग करणा जीउ ।। ३ ।। सा बुधि दीजै जितु विसरहि नाही । सा मति दीजै जितु तुधु धिआई । सास सास तेरे गुण गावा ओट नानक गुर चरणा जीउ ।। ४ ।। १२ ।। १९ ।।

जो इतने बड़े दानी हैं वे भुलाए नहीं जा सकते क्योंकि तुम कृपा करके अपने भक्तों के साथ मिले हुए (अनुरक्त) हो। इसलिए (मुझे) यह दान दीजिए जिससे मैं दिन-रात्रि आपको स्मरण करूँ ।। १ ।। पृथ्वी जड़ है और उसमें सुरति समाई हुई है, अर्थात् पृथ्वी आदि पाँच तत्व जड़ हैं और पाँच तत्वों के मध्य चेतनसत्ता विद्यमान है। सब कुछ ईश्वर-प्रदत्त हैं और उसी प्रभु ने अच्छे स्थान दिए हैं। अनेक प्रकार के विलास, विनोद, तमाशों से शरीर को आनन्द दिया है। जो तुझे भाता है वही होता है ।। २ ।। हे महाराज, तेरा दिया हुआ सब कुछ हमारे लिए ग्राह्य अर्थात् स्वीकारणीय है, जैसे छत्तीस प्रकार के अमृत, भोजन और खाद्य-पदार्थ। (उस प्रभु ने) सुखदायक सेज और शीतल-पवन दी हैं और हम स्वतः ही आनन्दकारी और विलासपूर्ण क्रीड़ाएँ करते हैं ।। ३ ।। अब वह बुद्धि दीजिए जिससे आप विस्मृत न हो जायँ और ऐसी शिक्षा दीजिए जिससे आपका ध्यान करता रहूँ। गुरु का कथन है कि सतिगुरु के चरणों का सहारा लेकर प्रत्येक साँस द्वारा तेरे गुणों का गायन करूँ ।। ४ ।। १२ ।। १९ ।।

।। माझ महला ५ ।। सिफति सालाहणु तेरा हुकमु रजाई । सो गिआनु धिआनु जो तुधु भाई । सोई जपु जो प्रभ जीउ भावै भाणै पूर गिआना जीउ ।। १ ।। अंम्रितु नामु तेरा सोई गावै । जो साहिब तेरै मनि भावै । तूं संतन का संत तुमारे संत साहिब मनु माना जीउ ।। २ ।। तूं संतन की करहि प्रतिपाला । संत खेलहि तुम संगि गोपाला । अपुने संत तुधु खरे पिआरे तू संतन के प्राना जीउ ।। ३ ।। उन संतन कै मेरा मनु कुरबाने । जिन तूं जाता जो तुधु मनि भाने । तिन कै संगि सदा सुखु पाइआ हरिरस नानक त्रिपति अघाना जीउ ।। ४ ।। १३ ।। २० ।।

हे इच्छा के स्वामी परमेश्वर! तेरी स्तुति करूँ और हुक्म मानूँ। जो ज्ञान और ध्यान वृत्ति तुझे भली लगी है, वही सफल है। हे प्रभु! जो तुझे भला लगता है, वही जप है और तेरे हुक्म का पालन करना ही पूर्ण ज्ञान है ।। १ ।। तेरे अमृत-रूपी नाम को वही गाता है जो व्यक्ति,

हे मालिक, तेरे मन को भला लगता है। तू सन्तों का स्वामी है और सन्त तेरे दास हैं। हे स्वामी! सन्तों का मन तुझमें माना हुआ है ॥ २ ॥ तू सन्तजनों की रक्षा करता है। हे गोपाल! सन्त तेरे साथ खेल रहे हैं। तुझे अपने सन्त बहुत ही (विशुद्ध रूप में) प्रिय हैं और तू सन्तों का प्राण-रूप है ॥ ३ ॥ उन सन्तजनों पर मेरा मन बलिहारी है जिन्होंने तुझे पहचाना है और जो मेरे मन को भाए हैं। जिन पुरुषों ने उन सन्तजनों का संग किया है, उन्होंने सर्वदा सुख पाया है और उनका मन हरि-नाम का रस लेकर विषयों से निर्लिप्त हुआ है ॥ ४ ॥ १३ ॥ २० ॥

॥ माझ महला ५ ॥ तूं जलनिधि हम मीन तुमारे। तेरा नामु बूंद हम चात्रिक तिखहारे। तुमरी आस पिआसा तुमरी तुम ही संगि मनु लीना जीउ ॥ १ ॥ जिउ बारिकु पी खीरु अघावै। जिउ निरधनु धनु देखि सुखु पावै। त्रिखावंत जलु पीवत ठंढा तिउ हरि संगि इहु मनु भीना जीउ ॥ २ ॥ जिउ अंधिआरै दीपकु परगासा। भरता चितवत पूरन आसा। मिलि प्रीतम जिउ होत अनंदा तिउ हरि रंगि मनु रंगीना जीउ ॥ ३ ॥ संतन मो कउ हरि मारगि पाइआ। साध क्रिपालि हरि संगि गिझाइआ। हरि हमरा हम हरि के दासे नानक सबदु गुरू सचु दीना जीउ ॥ ४ ॥ १४ ॥ २१ ॥

हे महाराज! तू जलनिधि है और हम जल में रहनेवाली मछलियाँ हैं। तेरा नाम जल की बूंद के समान है और हम प्यासे पपीहे हैं। तुम्हारी ही आशा है, तुम्हारे ही दर्शनों की तीव्र पिपासा है और हमारा मन तुम्हारे संग ही लीन हो रहा है ॥ १ ॥ जैसे बालक माँ का दूध पीकर तृप्त होता है, जैसे निर्धन, धन प्राप्त हुआ देख सुख महसूसता है, जैसे प्यासा (तृषातुर) ठण्डा जल पानकर प्रसन्न होता है, वैसे ही यह मन, हे हरि! तेरे साथ में लीन होकर (भीगकर) सुख महसूसता है, अर्थात् प्रभु का नाम स्मरण कर अत्यन्त सुखी होता है ॥ २ ॥ जैसे अँधेरे में दीपक के प्रकाश से आनन्द होता है। जैसे परदेश गए पति को पत्नी स्मरण करती है और पति के दर्शन से उसे सुख होता है, अर्थात् उसकी आस पूर्ण हो जाती है। जैसे मित्र के मिलने से मित्र को आनन्द होता है उसी प्रकार हरि-रंग में रंगा मेरा मन आनन्दित हुआ है ॥ ३ ॥ हे हरि! सन्तजनों ने मुझे तेरा मार्ग बतलाया है, अर्थात् हरि-नाम का बोध कराया है। सन्तजन कृपालु हैं, उन्होंने ही हरि के साथ रिझा दिया है, अर्थात् ईश्वर-प्रेमी बना दिया है। हे हरि! तू हमारा स्वामी है, हम आपके

दास हैं। सतिगुरु ने मुझे सच्चा उपदेश दिया है, अर्थात् सतिगुरु द्वारा ही आपका स्वरूप जाना है ।। ४ ।। १४ ।। २१ ।।

।। माझ महला ५ ।। अंम्रित नामु सदा निरमलीआ। सुखदाई दूख बिडारनहरीआ। अवरि साद चखि सगले देखे मन हरिरसु सभ ते मीठा जीउ ।। १ ।। जो जो पीवै सो त्रिपतावै। अमरु होवै जो नामरसु पावै। नाम निधान तिसहि परापति जिसु सबदु गुरू मनि वूठा जीउ ।। २ ।। जिनि हरिरसु पाइआ सो त्रिपति अघाना। जिनि हरिसादु पाइआ सो नाहि डुलाना। तिसहि परापति हरि हरि नामा जिसु मसतकि भागीठा जीउ ।। ३ ।। हरि इकसु हथि आइआ वरसाणे बहुतेरे। तिसु लगि मुकतु भए घणेरे। नामु निधाना गुरमुखि पाईऐ कहु नानक विरली डीठा जीउ ।। ४ ।। १५ ।। २२ ।।

हे वाहिगुरु! तेरा नाम अमृत के समान सदा निर्मल है अथवा निर्मल करनेवाला है। सुखों का दाता और दुखों का दूर करनेवाला है। हे हरी! दूसरे सभी पदार्थों के आस्वादन चखकर देखे हैं, अर्थात् लौकिक पदार्थों का सुख भोगा है, लेकिन तेरे नाम का रस मन को सब पदार्थों से अधिक मीठा लगता है ।। १ ।। ऐसे नाम-रूपी अमृत को जो-जो पुरुष पीता है, वही-वही तृप्त होता है। जो नाम-रस को पाता है, वह अमर होता है। लेकिन नाम-रूपी भण्डार उसी को प्राप्त होता है, जिसके मन के बीच गुरु का उपदेश बसा है ।। २ ।। जिस पुरुष ने हरि के नाम का रस पाया है यह सर्वथा तृप्त हो गया है, अर्थात् भीतर-बाहर से तृप्त हो गया है जिस पुरुष ने हरि-रस का आस्वादन किया है, वह अन्य पदार्थों की ओर आकृष्ट नहीं होता। भाव यह है कि वह पुरुष मायादिक पदार्थों में आसक्त नहीं होता, जिसे परमात्मा के नाम-रस का आस्वादन हो। हे हरी! तेरा नाम उसको प्राप्त होता है, जिससे मस्तक में सौभाग्य हो अर्थात् जिसके माथे पर पुण्य लिखा हो ।। ३ ।। हे हरी! जब तू एक के हाथ आया तो उससे बहुत उपकृत हुए हैं, अर्थात् उससे बहुत से सांसारिकों को तेरा ज्ञान हुआ है और उसकी संगति से बहुत पुरुष मुक्त हुए हैं। नाम-रूपी विधान अर्थात् भण्डार सतिगुरु द्वारा प्राप्त होता है। गुरुजी कहते हैं कि वह परमात्मा कुछ ही व्यक्तियों ने देखा है।।४।।१५।।२२।।

।। माझ महला ५ ।। निधि सिधि रिधि हरि हरि हरि मेरै। जनमु पदारथु गहिर गंभीरै। लाख कोट खुसीआ रंग रावै जो गुर लागा पाई जीउ।। १।। दरसनु पेखत भए पुनीता।

सगल उधारे भाई मीता। अगम अगोचरु सुआमी अपुना गुर किरपा ते सचु धिआई जीउ ॥ २ ॥ जा कउ खोजहि सरब उपाए। वडभागी दरसनु को विरला पाए। ऊच अपार अगोचर थाना ओहु महलु गुरू देखाई जीउ ॥ ३ ॥ गहिर गंभीर अंम्रित नामु तेरा। मुकति भइआ जिसु रिदै वसेरा। गुरि बंधन तिन के सगले काटे जन नानक सहजि समाई जीउ ॥ ४ ॥ १६ ॥ २३ ॥

हे स्वामी ! हरि ही मेरी निधि, सिद्धि और ऋद्धियाँ हैं। (तेरी कृपा से ही) मेरा जन्म-पदार्थ सफल हुआ है। जो जीव सतिगुरु की चरण-सेवा में लगा है वह लाखों, करोड़ों ख़ुशियों और आनन्दों को भोगता है ॥ १ ॥ उनका दर्शन करने से दूसरे लोग भी पवित्र हो गए हैं और उन्होंने भाई और मित्रों का उद्धार कर दिया है। स्वामी अगम और अगोचर हैं, अर्थात् मन तथा वाणी की पकड़ से परे हैं, उस सत्यस्वरूप को सतिगुरु की कृपा से भजते हैं ॥ २ ॥ जिस परमात्मा को समस्त जीव अनेक उपायों से खोजते हैं (उसके) दर्शन कोई विरला पुण्यात्मा (सौभाग्यशाली) ही पाता है। हे सर्वोच्च तथा अपरम्पार, तेरा जो स्वरूप स्थान है सो महल अर्थात् स्वरूप-प्राप्ति का स्थान सतिगुरु ने दिखाया है ॥ ३ ॥ हे गहन, गम्भीर परमेश्वर ! तेरा नाम अमृत-रूप है। (वह) जिस पुरुष के हृदय में बसा है वह मुक्त हो जाता है। सतिगुरु ने उसके तमाम बन्धन काट दिये हैं और उस पुरुष की वृत्ति सहज अर्थात् परमात्मा-रूप में टिक गई है ॥ ४ ॥ १६ ॥ २३ ॥

॥ माझ महला ५ ॥ प्रभ किरपा ते हरि हरि धिआवउ। प्रभू दइआ ते मंगलु गावउ। ऊठत बैठत सोवत जागत हरि धिआईऐ सगल अवरदा जीउ ॥ १ ॥ नामु अउखधु मो कउ साधू दीआ। किलबिख काटे निरमलु थीआ। अनदु भइआ निकसी सभ पीरा सगल बिनासे दरदा जीउ ॥ २ ॥ जिसका अंगु करे मेरा पिआरा। सो मुकता सागर संसारा। सति करे जिनि गुरू पछाता सो काहे कउ डरदा जीउ ॥ ३ ॥ जब ते साधू संगति पाए। गुर भेटत हउ गई बलाए। सासि सासि हरि गावै नानकु सतिगुर ढाकि लीआ मेरा पड़दा जीउ ॥ ४ ॥ १७ ॥ २४ ॥

हे प्रभु ! तुम्हारी कृपा से हरिनाम स्मरण करता हूँ और आपकी दया से मंगल-रूपी यश-गायन करता हूँ। हे हरि ! उठते-बैठते, सोते और

जागते सब अवस्थाओं में सारी आयु तेरा स्मरण करें ॥१॥ हरिनाम-रूपी औषधि मुझे सतिगुरु ने दी है, जिसने मेरे सम्पूर्ण पाप काट दिए हैं और मन निर्मल हो गया है। उससे समूची अहंरूपी पीड़ा निकल गई और ईर्ष्या आदि दर्द भी निकल गए, अर्थात् ईश्वर-कृपा से परमानन्द-प्राप्ति हो गई है ॥ २ ॥ मेरा प्यारा परमेश्वर ! जिसकी सहायता करता है सो संसार से मुक्त हो जाता है, अर्थात् पार हो जाता है। हे सत्यस्वरूप, जिस पुरुष ने सतिगुरु को परमात्मरूप में पहचाना है, वह किसी से क्यों डरे ? ॥ ३ ॥ जब से सन्तजनों की संगति पाई है तब से गुरु से भेंट होते ही अहंकार दूर हो गया। हे हरि ! मैं प्रत्येक साँस में तेरा गुणगान करता हूँ। सतिगुरु जी ने मेरी कमियों को दूर कर दिया है, अर्थात् पर्दा ढक लिया है ॥ ४ ॥ १७ ॥ २४ ॥

॥ माझ महला ५ ॥ ओति पोति सेवक संगि राता। प्रभ प्रतिपाले सेवक सुखदाता। पाणी पखा पीसउ सेवक कै ठाकुर ही का आहरु जीउ ॥ १ ॥ काटि सिलक प्रभि सेवा लाइआ। हुकमु साहिब का सेवक मनि भाइआ। सोई कमावै जो साहिब भावै सेवकु अंतरि बाहरि माहरु जीउ ॥ २ ॥ तूं दाना ठाकुरु सभ बिधि जानहि। ठाकुर के सेवक हरि रंग माणहि। जो किछु ठाकुर का सो सेवक का सेवकु ठाकुर ही संगि जाहरु जीउ ॥ ३ ॥ अपुनै ठाकुरि जो पहिराइआ। बहुरि न लेखा पुछि बुलाइआ। तिसु सेवक कै नानक कुरबाणी सो गहिर गभीरा गउहरु जीउ ॥ ४ ॥ १८ ॥ २५ ॥

हे वाहिगुरु ! ताने-बाने की तरह तू सेवकों के साथ मिला हुआ है, अर्थात् दास तुझमें हैं और तू दासों में है। हे सुखदाता प्रभु, तू दासों की रक्षा करता है। हे ठाकुर ! जिन सेवकों को हमेशा तेरे भजन का ही कामकाज है, अर्थात् जो तेरे भजन में लगे हैं उन पर पंखा करूँ, उन्हें पानी पिलाऊँ और उनकी चक्की पीसूँ ॥ १ ॥ हे प्रभु, तूने 'सिलक' अर्थात् वासना-रूपी फाँसी को काटकर अपनी सेवा में लगा लिया है, इसलिए स्वामी का हुक्म सेवक के मन को भला लगा है। सेवक वही कर्म करता है जो स्वामी के मन को भला लगता है, अर्थात् भक्ति-रूपी कर्म करता है। इसलिए सेवक भीतर-बाहर चौधरी हो रहा है ॥ २ ॥ हे बुद्धिमान ठाकुर ! तू समस्त विधि-विधानों को जानता है। तेरे सेवक सब प्रकार के आनन्दों को भोगते हैं। हे ठाकुर ! जो कुछ आपका है वही सेवक का है क्योंकि सेवक स्वामी के कारण ही प्रकट है ॥ ३ ॥ अपने स्वामी ने जो पति नियुक्त किया है, उसे फिर बुलाकर लेखा नहीं पूछा है। गुरुजी

कहते हैं कि मैं उस सेवक पर बलिहारी जाता हूँ, क्योंकि वह गहन, गम्भीर मोती के तुल्य उज्ज्वल-स्वरूप है ॥ ४ ॥ १८ ॥ २५ ॥

॥ माझ महला ५ ॥ सभ किछु घर महि बाहरि नाही । बाहरि टोलै सो भरमि भुलाही । गुरपरसादी जिनी अंतरि पाइआ सो अंतरि बाहरि सुहेला जीउ ॥ १ ॥ झिमि झिमि वरसै अंम्रित धारा । मनु पीवै सुनि सबदु बीचारा । अनद बिनोद करे दिन राती सदा सदा हरि केला जीउ ॥ २ ॥ जनम जनम का विछुड़िआ मिलिआ । साध क्रिपा ते सूका हरिआ । सुमति पाए नामु धिआए गुरमुखि होए मेला जीउ ॥ ३ ॥ जलतरंगु जिउ जलहि समाइआ । तिउ जोती संगि जोति मिलाइआ । कहु नानक भ्रम कटे किवाड़ा बहुड़ि न होईऐ जउला जीउ ॥ ४ ॥ १९ ॥ २६ ॥

हे वाहिगुरु ! सब कुछ अर्थात् सब गुणों के सहित तुम भीतर अन्तःकरण में हो, बाहर नहीं हो । जो पुरुष भ्रमवश भूले हैं वे बाहर ढूँढते हैं । जिन्होंने सतिगुरु की कृपावश तुझे हृदय में पाया है वे भीतर और बाहर सुखी हैं ॥ १ ॥ सतिगुरु-रूपी बादल से नाम-रूपी अमृत रिम-झिम बरसते हैं, उस उपदेश को सुनकर अर्थात् विवेक-युक्त विचार को परखकर सेवक का मन पान करता है, अर्थात् नाम धारण करता है । इसीलिए रात-दिन मन, वचन, कर्म से हरि के संग विलास कर रहा है ॥ २ ॥ हे वाहिगुरु ! तू जन्म-जन्मान्तरों का बिछुड़ा हुआ मिला है । सन्तों की कृपा से सूखा हुआ मन हरा हुआ है । गुरमुखों के साथ मिलाप होने से सुमति पाकर तेरे नाम का स्मरण किया है ॥ ३ ॥ जैसे जल की तरंग जल के बीच समाहित है, उसी प्रकार है ज्योति-स्वरूप परमेश्वर ! तूने जीव की ज्योति को अपने भीतर समाहित किया है । सतिगुरु जी कहते हैं कि हे वाहिगुरु ! जब भ्रम-रूपी किवाड़ कट जाते हैं, तब पुनः तुझसे वियुक्त नहीं हुआ जाता ॥ ४ ॥ १९ ॥ २६ ॥

॥ माझ महला ५ ॥ तिसु कुरबाणी जिनि तूं सुणिआ । तिसु बलिहारी जिनि रसना भणिआ । वारि वारि जाई तिसु विटहु जो मनि तनि तुधु आराधे जीउ ॥ १ ॥ तिसु चरण पखाली जो तेरै मारगि चालै । नैन निहाली तिसु पुरख दइआलै । मनु देवा तिसु अपुने साजन जिनि गुर मिलि सो प्रभु लाधे जीउ ॥ २ ॥ से वडभागी जिनि तुम जाणे । सभ कै मधे

अलिपत निरबाणे। साध कै संगि उनि भउजलु तरिआ सगल दूत उनि साधे जीउ ॥ ३ ॥ तिन की सरणि परिआ मनु मेरा। माणु ताणु तजि मोहु अंधेरा। नामु दानु दीजै नानक कउ तिसु प्रभ अगम अगाधे जीउ ॥ ४ ॥ २० ॥ २७ ॥

हे प्रभु, जिसने तेरा नाम सुना है, मैं उसपर बलिहारी जाता हूँ। जिसने जिह्वा से जपा है, मैं उसपर बलिहारी जाता हूँ। जो पुरुष मन, तन से तेरी आराधना करता है, मैं उसपर बलिहारी जाता हूँ ॥ १ ॥ जो तेरे मार्ग में चले मैं उसके चरण धोता हूँ। उस दयालु पुरुष का दर्शन नेत्रों से करूँ, उस अपने साजन को अपना मन भी दे दूँ, जिस (मन) ने गुरु के साथ मिलकर प्रभु को मिलाया है ॥ २ ॥ जिन्होंने आपको जाना है वे पुण्यात्मा हैं। वे पुरुष सबके मध्य निर्लिप्त और निर्विकार हैं। उन्होंने सत्संगति से संसार-समुद्र पार कर लिया है और काम आदि सकल दूत वश में किए हैं ॥ ३ ॥ अपना बल तथा मोह-रूपी अँधेरा छोड़कर मेरा मन उनकी शरण में पड़ा है। गुरुजी कहते हैं कि हे वाहिगुरु, अगम, अगाध संगति द्वारा मुझे नाम का दान दीजिए ॥ ४ ॥ २० ॥ २७ ॥

॥ माझ महला ५ ॥ तूं पेडु साख तेरी फूली। तूं सूखमु होआ असथूली। तूं जलनिधि तूं फेनु बुदबुदा तुधु बिनु अवरु न भालीऐ जीउ ॥ १ ॥ तूं सूतु मणीए भी तूं है। तूं गंठी मेरु सिरि तूं है। आदि मधि अंति प्रभु सोई अवरु न कोइ दिखालीऐ जीउ ॥ २ ॥ तूं निरगुणु सरगुणु सुखदाता। तूं निरबाणु रसीआ रंगि राता। अपणे करतब आपे जाणहि आपे तुधु समालीऐ जीउ ॥ ३ ॥ तूं ठाकुरु सेवकु फुनि आपे। तूं गुपतु परगटु प्रभ आपे। नानक दासु सदा गुण गावै इक भोरी नदरि निहालीऐ जीउ ॥ ४ ॥ २१ ॥ २८ ॥

हे भगवान! तू वृक्ष है, अर्थात् विश्व का मूल रूप है और सृष्टि तेरी शाखा है। तू सूक्ष्म रूप ही विराट रूप में बदल गया है। तू आप ही जलनिधि है और तू ही उसके मध्य जल-स्वरूप है। तू ही पदार्थ-रूपी फेन अर्थात् झाग है और तू ही जीव-रूपी बुदबुदा है। तुझसे अलग कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं होता ॥ १ ॥ हे प्रभु, शरीर-रूपी माला के लिए तू ही प्राण-रूपी सूत है, अर्थात् तू ही समूचे प्राणियों में प्राणतत्व है या माला में पिरोए मनके भी तू ही है, उसके सिरे पर जो गाँठ तथा मेरु मनका है, वह भी तू ही है। हे भगवान! तेरे जिस स्वरूप का निरूपण पूर्वकाल में हो चुका है वही प्रभु आदि, मध्य और अन्त में प्रकट हुआ है। तुझसे

अलग कोई दूसरा नहीं है जो किसी को दिखाएँ। (भाव यह है कि समस्त ग्रन्थों में उसी एक प्रभु का ही वर्णन है) ॥२॥ हे सुखदाता! तूही निर्गुण है और तू ही सगुण है। तू ही निर्वाण-प्राप्त है और तू ही भोगी होकर समस्त रंगों में अनुरक्त है। हे भगवान! तू अपने कार्यों को आप ही जानता है। तू आप ही सबकी रक्षा करता है या देख-रेख करता है ॥३॥ तू आप ही ठाकुर और आप ही सेवक है। हे प्रभु! तू आप ही प्रकट और आप ही गुप्त-स्वरूप है। सतिगुरु नानक कहते हैं कि हे परमात्मा! मैं सदा तेरा गुणगान करता हूँ। तू अपनी कृपा-दृष्टि से एक बार तो देख ॥ ४ ॥ २१ ॥ २८ ॥

॥ माझ महला ५ ॥ सफलु सु बाणी जितु नामु वखाणी। गुर परसादि किनै विरलै जाणी। धंनु सु वेला जितु हरि गावत सुनणा आए ते परवाना जीउ ॥ १ ॥ से नेत्र परवाणु जिनी दरसनु पेखा। से कर भले जिनी हरि जसु लेखा। से चरण सुहावे जो हरि मारगि चले हउ बलि तिन संगि पछाणा जीउ ॥ २ ॥ सुणि साजन मेरे मीत पिआरे। साधसंगि खिन माहि उधारे। किलविख काटि होआ मनु निरमलु मिटि गए आवण जाणा जीउ ॥ ३ ॥ दुइ कर जोड़ि इकु बिनउ करीजै। करि किरपा डुबदा पथरु लीजै। नानक कउ प्रभ भए क्रिपाला प्रभ नानक मनि भाणा जीउ ॥ ४ ॥ २२ ॥ २९ ॥

वह वाणी सफल है जिससे परमात्मा का नाम कहा जाय, परन्तु यह बात गुरु की कृपा से किसी बिरले पुरुष ने ही जानी है। वह समय धन्य है, जिसमें हरि का गुणकथन और श्रवण किया जाए और संसार में आए वही जीव प्रामाणिक होते हैं जो हरि के गुणकथन और श्रवण में लीन हैं ॥ १ ॥ वही नेत्र सच्चे हैं जिन्होंने भगवान के रूप (निर्गुण या सगुण) का दर्शन किया है। वही हाथ भले हैं, जिनसे परमात्मा का यश लिखा गया है। वही पैर शोभनीय हैं जो हरि के मार्ग में चले हैं। मैं उनपर बलिहारी जाता हूँ, क्योंकि उन भक्तों के सम्पर्क से तुझे पहचाना है ॥ २ ॥ हे मेरे साजन, तू मेरी विनती सुन। तेरी सत्संगति ने क्षणमात्र में जीव पार कर दिए हैं, अर्थात् उनका उद्धार कर दिया है। सम्पूर्ण पापों के कटने से मन निर्मल हो गया है और आवागमन मिट गया है, अर्थात् सत्संगति के फलस्वरूप जीवों की जन्म-मरण से निवृत्ति हो चुकी है ॥ ३ ॥ मैं दोनों हाथ जोड़कर एक प्रार्थना करता हूँ कि कृपा करके डूबता हुआ पत्थर तार लीजिए, अर्थात् मैं पापों के बोझ से भारी पत्थर बन गया हूँ।

हे प्रभु ! जब आप मुझपर कृपालु हुए तब ही, हरि, तू मेरे मन को भाया है ॥ ४ ॥ २२ ॥ २९ ॥

॥ माझ महला ५ ॥ अंम्रित बाणी हरि हरि तेरी । सुणि सुणि होवै परमगति मेरी । जलनि बुझी सीतलु होइ मनूआ सतिगुर का दरसनु पाए जीउ ॥ १ ॥ सूखु भइआ दुखु दूरि पराना । संत रसन हरिनामु वखाना । जल थल नीरि भरे सर सुभर बिरथा कोइ न जाए जीउ ॥ २ ॥ दइआ धारी तिनि सिरजनहारे । जीअ जंत सगले प्रतिपारे । मिहरवान किरपाल दइआला सगले त्रिपति अघाए जीउ ॥ ३ ॥ वणु त्रिणु त्रिभवणु कीतोनु हरिआ । करणहारि खिन भीतरि करिआ । गुरमुखि नानक तिसै अराधे मन की आस पुजाए जीउ ॥ ४ ॥ २३ ॥ ३० ॥

हरि-हरि उच्चारण-रूपी अमृत जो तेरी वाणी है, उसे सुनकर मेरी परमगति होगी । सतिगुरु के दर्शनों से मेरी तृष्णा-रूपी जलन बुझ गई और मन शान्ति को प्राप्त हो गया है ॥ १ ॥ आत्म-सुख अनुभूत हुआ है और जन्म-मरण का दुःख भाग चुका है । सतिगुरु की वाणी से परमात्मा के नाम को जपा है । समुद्र-रूपी गुरु नाम-जल से लबालब भरे हैं, अर्थात् भक्ति नाम तथा ईश्वरीय ज्ञान के कारण सतिगुरु परिपूर्ण हैं, उनके सम्पर्क से कोई भी व्यक्ति खाली नहीं जाता है ॥ २ ॥ हे परमात्मा ! जिसने सकल जीव-जन्तु पाले-पोसे हैं, उसी सृजनहार ने मुझपर कृपा की है । हे कृपालु और दयालु परमेश्वर ! (तेरे उपदेश को सन्तजनों से सुनकर) सकलजनों को इस लोक के विषयों से तृप्ति हो गई और वे लौकिक विषयों से निर्लिप्त हो गए ॥ ३ ॥ हे सृजनहार ! तूने वन, तृण और त्रिभुवन का निर्माण कर पल-मात्र में हरा-भरा किया है । तू जो मन की आशा पूर्ण करनेवाला है, गुरुजी कहते हैं कि मैं उसी की आराधना करता हूं ॥ ४ ॥ २३ ॥ ३० ॥

॥ माझ महला ५ ॥ तूं मेरा पिता तूं है मेरा माता । तूं मेरा बंधपु तूं मेरा भ्राता । तूं मेरा राखा सभनी थाई ता भउ केहा काड़ा जीउ ॥ १ ॥ तुमरी क्रिपा ते तुधु पछाणा । तूं मेरी ओट तूं है मेरा माणा । तुझ बिनु दूजा अवरु न कोई सभु तेरा खेलु अखाड़ा जीउ ॥ २ ॥ जीअ जंत सभि तुधु उपाए । जितु जितु भाणा तितु तितु लाए । सभ किछु

कीता तेरा होवै नाही किछु असाड़ा जीउ ॥ ३ ॥ नामु धिआइ महा सुखु पाइआ । हरिगुण गाइ मेरा मनु सीतलाइआ । गुरि पूरै वजी वाधाई नानक जिता बिखाड़ा जीउ ॥ ४ ॥ २४ ॥ ३१ ॥

तू ही मेरा पिता है, तू ही मेरी माता है। तू ही मेरा सम्बन्धी है और तू मेरा भाई है। जब तू सब स्थानों पर मेरा रक्षक है, तब मुझे किसी का भय और दुःख कैसे होगा? ॥ १ ॥ तेरी कृपा से ही मैंने तुझे पहचाना है, इसलिए तू ही मेरी ओट है और तू ही मेरा मान है। तुझसे अलग कोई दूसरा नहीं है, यह सम्पूर्ण जगत तेरा खेलने का अखाड़ा है ॥ २ ॥ जीव और जन्तु सब तूने उत्पन्न किए हैं। जिस-जिस कार्य में जीवों को तूने लगाना चाहा है—उसी-उसी में लगाए हैं। सब कुछ तेरा किया हुआ है। हमारा किया कुछ नहीं है ॥ ३ ॥ तेरे नाम को स्मरण कर मैंने महासुख पाया है। हे हरि! तेरे गुण गाकर मेरा मन शीतल हो गया है। हे भगवान! पूर्णगुरु द्वारा प्रसन्नता प्रकट हुई है, अर्थात् आत्मानन्द की प्राप्ति हुई है और जिससे संसार-रूपी विषम अखाड़ा जीत लिया है ॥ ४ ॥ २४ ॥ ३१ ॥

॥ माझ महला ५ ॥ जीअ प्राण प्रभ मनहि अधारा । भगत जीवहि गुण गाइ अपारा । गुणनिधानु अंम्रितु हरिनामा हरि धिआइ धिआइ सुखु पाइआ जीउ ॥ १ ॥ मनसा धारि जो घर ते आवै । साधसंगि जनमु मरणु मिटावै । आस मनोरथु पूरनु होवै भेटत गुर दरसाइआ जीउ ॥ २ ॥ अगम अगोचर किछु मिति नही जानी । साधिक सिध धिआवहि गिआनी । खुदी मिटी चूका भोलावा गुरि मन ही महि प्रगटाइआ जीउ ॥३॥ अनद मंगल कलिआण निधाना । सूख सहज हरिनामु वखाना । होइ क्रिपालु सुआमी अपना नाउ नानक घर महि आइआ जीउ ॥ ४ ॥ २५ ॥ ३२ ॥

हे प्रभु! तू जीवों के मन और प्राणों का आधार है और भक्त-जन तेरे अपार गुणों को गाकर जीते हैं। तेरा हरिनाम-रूपी अमृत सब गुणों की निधि है, जिसे स्मरण कर मुझे सुख प्राप्त हुआ है ॥ १ ॥ जो पुरुष इच्छा धारण कर घर से आता है, वह सत्संगति द्वारा जन्म-मरण मिटा लेता है। सतिगुरु का दर्शन होने से मन में जिस पदार्थ की आशा होती है, वह पूर्ण हो जाती है ॥ २ ॥ हे हरि! तू मन वाणी से परे है। तेरी मर्यादा नहीं जानी जाती। ज्ञानी-सिद्ध तथा साधक तेरी उपासना करते

हैं। जिन जीवों की अहंभावना मिट चुकी है, उनका अज्ञान निवृत्त हो गया है, क्योंकि उनके मन में सतिगुरु ने सुख प्रकट कर दिया है ॥ ३ ॥ वह सुख सब प्रकार के आनन्द तथा कल्याण आदि का भण्डार है, लेकिन तेरा नाम जपने से ही सहज सुख प्राप्त होता है। हे स्वामी! अपना दास जानकर तू मुझ पर कृपालु हुआ है, इसलिए मेरे घर में नाम आया है ॥ ४ ॥ २५ ॥ ३२ ॥

॥ माझ महला ५ ॥ सुणि सुणि जीवा सोइ तुमारी। तूं प्रीतमु ठाकुरु अति भारी। तुमरे करतब तुम ही जाणहु तुमरी ओट गोपाला जीउ ॥ १ ॥ गुण गावत मनु हरिआ होवै। कथा सुणत मलु सगली खोवै। भेटत संगि साध संतन कै सदा जपउ दइआला जीउ ॥ २ ॥ प्रभु अपुना सासि सासि समारउ। इह मति गुरप्रसादि मनि धारउ। तुमरी क्रिपा ते होइ प्रगासा सरब मइआ प्रतिपाला जीउ ॥ ३ ॥ सति सति सति प्रभु सोई। सदा सदा सद आपे होई। चलित तुमारे प्रगट पिआरे देखि नानक भए निहाला जीउ ॥ ४ ॥ २६ ॥ ३३ ॥

हे परमेश्वर! तेरी शोभा सुनकर जीता हूँ। हे ठाकुर! तू मेरा अत्यन्त प्रिय मित्र है। अपने आश्चर्यजनक कामों को तुम ही जानते हो। हे वाहिगुरु! मुझे तुम्हारी ओट है ॥ १ ॥ तुम्हारे गुणों का गायन करने से मन प्रसन्न होता है और तुम्हारी कथा सुनने से समूची मैल कट जाती है। हे दयालु! साधु-सन्तों की संगति से सदैव तुझे जपूँ ॥ २ ॥ हे प्रभु! सतिगुरु की कृपा से यह बुद्धि धारण करूँ कि प्रभु का स्मरण प्रत्येक साँस करूँ। हे सब पर दया करके रक्षा करनेवाले! तुम्हारी कृपा से ज्ञान-रूपी प्रकाश होता है ॥ ३ ॥ हे समर्थ, सत्य-स्वरूप प्रभु! सदा तेरे सत्य-स्वरूप की प्रतीति हुई है। हे प्यारे परमेश्वर! तेरे चरित्र प्रकट ही हैं, जिन्हें देखकर दास कृतार्थ हुए हैं ॥ ४ ॥ २६ ॥ ३३ ॥

॥ माझ महला ५ ॥ हुकमी वरसण लागे मेहा। साजन संत मिलि नामु जपेहा। सीतल सांति सहज सुखु पाइआ ठाढि पाई प्रभि आपे जीउ ॥ १ ॥ सभु किछु बहुतो बहुतु उपाइआ। करि किरपा प्रभि सगल रजाइआ। दाति करहु मेरे दातारा जीअ जंत सभि ध्रापे जीउ ॥ २ ॥ सचा साहिबु सची नाई। गुरपरसादि तिसु सदा धिआई। जनम मरण भै काटे मोहा बिनसे सोग संतापे जीउ ॥ ३ ॥ सासि सासि नानकु सालाहे।

सिमरत नामु काटे सभि फाहे । पूरन आस करी खिन भीतरि हरि हरि हरि गुण जापे जीउ ॥ ४ ॥ २७ ॥ ३४ ॥

हे परमेश्वर ! तेरे हुक्म से गुरु-रूपी मेघ बरसने लगे हैं, अर्थात् उपदेश करने लगे हैं। उन शान्ति-रूप सतिगुरु के साथ मिलकर जिन्होंने नाम जपा है, उन पुरुषों को ज्ञान द्वारा शान्ति की प्राप्ति हुई है और स्वाभाविक ही सुख प्राप्त हुआ है। परन्तु हे प्रभुजी, यह सब आपकी कृपा है ॥ १ ॥ उनके हृदय में सब कुछ अत्यधिक मात्रा में उपजाया है, अर्थात् उदात्त गुणों को हृदय में भर दिया है और दया करके सब प्रकार के अधिकारियों को आत्मानन्द से तृप्त किया है। हे मेरे दाता, जब देन देते हो तब समस्त जीव-जन्तु, उत्तम-मध्यम अधिकारी तृप्त होते हैं ॥ २ ॥ तू सच्चा साहिब है और तेरी महानता भी सत्य है, इसलिए मैं सतिगुरु की कृपा से सर्वदा तुझे स्मरण करता हूँ। हे हरि ! आपने मेरे जन्म-मरण, मोह तथा भय समाप्त कर दिये हैं, इससे मेरे शोक-सन्ताप विनष्ट हो गए हैं ॥ ३ ॥ गुरुजी कहते हैं कि मैं प्रत्येक साँस तेरी सराहना करता हूँ, अर्थात् स्तुति-पूर्वक स्मरण करता हूँ, क्योंकि तेरे नाम-स्मरण से मेरे सब बन्धन काटे गए हैं। जिन्होंने हरि के गुण गाए हैं और नाम जपा है उनकी सब आशाएँ क्षणमात्र में पूरी कर दी हैं ॥ ४ ॥ २७ ॥ ३४ ॥

॥ माझ महला ५ ॥ आउ साजन संत मीत पिआरे । मिलि गावह गुण अगम अपारे । गावत सुणत सभे ही मुकते सो धिआईऐ जिनि हम कीए जीउ ॥ १ ॥ जनम जनम के किलबिख जावहि । मनि चिंदे सेई फल पावहि । सिमरि साहिबु सो सचु सुआमी रिजकु सभसु कउ दीए जीउ ॥ २ ॥ नामु जपत सरब सुखु पाईऐ । सभु भउ बिनसै हरि हरि धिआईऐ । जिनि सेविआ सो पार गिरामी कारज सगले थीए जीउ ॥ ३ ॥ आइ पइआ तेरी सरणाई । जिउ भावै तिउ लैहि मिलाई । करि किरपा प्रभु भगती लावहु सचु नानक अंम्रितु पीए जीउ ॥ ४ ॥ २८ ॥ ३५ ॥

[प्रस्तुत अंश में नाम-स्मरण की महत्ता को बताना ही गुरु अर्जुनदेव का लक्ष्य है।]

हे मन, तन तथा वाणी के मित्र सन्तजनो ! आओ अगम, अपार वाहिगुरु के गुण मिलकर गाएँ। क्योंकि हरि के गुण गानेवाले और सुननेवाले सब ही मुक्त होते हैं। इससे उस वाहिगुरु को स्मरण करें, जिसने सब जीव उत्पन्न किए हैं ॥ १ ॥ (जो जीव हरि को स्मरण करते हैं) उनके जन्म-जन्मान्तरों के पाप जाते रहते हैं और वे जीव जो मन से चाहते हैं, वही फल पा लेते हैं। इसलिए जिस सच्चे साहिब ने भोजन आदि पदार्थ

सबको दिए हैं, उसको तू स्मरण कर ।। २ ।। क्योंकि उसके नाम जपने से सब सुख पाते हैं और उस हरि के स्मरण से सम्पूर्ण भय विनष्ट हो जाते हैं। जिसने हरि की आराधना की है, अर्थात् हरि को भजा है वह संसार-समुद्र से पार हुआ है और उसके सम्पूर्ण कार्य सिद्ध हो गए हैं ।। ३ ।। हे महाराज, मैं तेरी शरण में आ पड़ा हूँ, जैसे चाहे वैसे मिलाले। गुरुजी कहते हैं कि हे प्रभु, कृपा करके मुझे अपनी भक्ति में लगा लो जिससे तेरा नाम-अमृत पान किया जाय, अर्थात् जपा जाय ।। ४ ।। २८ ।। ३५ ।।

।। माझ महला ५ ।। भए क्रिपाल गोविंद गुसाई। मेघु वरसै सभनी थाई। दीन दइआल सदा किरपाला ठाढि पाई करतारे जीउ ।। १ ।। अपुने जीअ जंत प्रतिपारे। जिउ बारिक माता संमारे। दुख भंजन सुख सागर सुआमी देत सगल आहारे जीउ ।। २ ।। जलि थलि पूरि रहिआ मिहरवाना। सद बलिहारि जाईऐ कुरबाना। रैणि दिनसु तिसु सदा धिआई जि खिन महि सगल उधारे जीउ ।। ३ ।। राखि लीए सगले प्रभि आपे। उतरि गए सभ सोग संतापे। नामु जपत मनु तनु हरीआवलु प्रभ नानक नदरि निहारे जीउ ।। ४ ।। २९ ।। ३६ ।।

हे गोविन्द गोसाईं, आप सब पर ऐसे कृपालु हैं, जैसे मेघ सर्वत्र बरसता है; अर्थात् जैसे मेघ पक्षपात, अपना-पराया, मित्र-अमित्र आदि सबसे अलग रहकर सबकी प्यास बुझाता है, वैसे ही परमात्मा सब पर कृपा करते हैं। इसका अर्थ यों भी सम्भव है—जब परमेश्वर दयालु हुए तब गुरु-रूपी मेघों ने सबको उपदेश दिया। हे दीनदयाल करतार, शाश्वत कृपा के आगार, तूने भक्तों के हृदय में शान्ति दी है ।। १ ।। तुम्हीं अपने जीव-जन्तुओं की देखभाल ऐसे करते हो जैसे संसार में बालक को माँ सँभालती है। हे दुःख-भंजन और सुखों के समुद्र। तू ही सबको भोजन देनेवाला है ।। २ ।। हे कृपालु ! तू जल, थल सर्वत्र सर्वव्यापक है। मैं सदैव मन, तन से तुझपर बलिहारी जाता हूँ। (सभी) रात-दिन तुझे स्मरण करें क्योंकि तू क्षणमात्र में सम्पूर्ण जीवों का उद्धार करता है ।। ३ ।। हे प्रभु ! तूने अपने सेवकों को आप ही सँभाल लिया है, इसलिए तेरी कृपा से सब शोक-सन्ताप दूर हो गए हैं। गुरुजी कहते हैं कि नाम के जपने से जब तू कृपा-दृष्टि से देखे तब तन, मन में आनन्द की अनुभूति होती है ।। ४ ।। २९ ।। ३६ ।।

।। माझ महला ५ ।। जिथै नामु जपीऐ प्रभ पिआरे। से असथल सोइन चउबारे। जिथै नामु न जपीऐ मेरे गोइदा

सेई नगर उजाड़ी जीउ ॥ १ ॥ हरि रुखी रोटी खाइ समाले । हरि अंतरि बाहरि नदरि निहाले । खाइ खाइ करे बदफैली जाणु विसू की वाड़ी जीउ ॥ २ ॥ संता सेती रंगु न लाए । साकत संगि विकरम कमाए । दुलभ देह खोई अगिआनी जड़ अपुणी आपि उपाड़ी जीउ ॥ ३ ॥ तेरी सरणि मेरे दीन दइआला । सुख सागर मेरे गुर गोपाला । करि किरपा नानकु गुण गावै राखहु सरम असाड़ी जीउ ॥ ४ ॥ ३० ॥ ३७ ॥

हे प्यारे प्रभु ! जिस स्थान में तेरा नाम जपा जाता है वह स्थान स्वर्ण के चौबारे के समान है, अर्थात् अति शोभायमान है । हे गोविन्द ! जहाँ तेरा नाम नहीं जपा जाता वह नगर उजाड़ प्रदेश जैसा है ॥ १ ॥ हे हरि, जो रूखी-सूखी रोटी खाकर तुझे स्मरण करता है, वही तेरी कृपा के परिणाम-स्वरूप भीतर और बाहर तुझे ही देखता है । जो नाना पदार्थों को खा-खाकर खोटे कर्म करता है वह जानलेवा विषैली झाड़ी है ॥ २ ॥ क्योंकि उसका मन सन्तों के साथ नहीं लगता और वह शाक्तों का साथ करके नीच कर्म करता है । उस अज्ञानी जीव ने दुर्लभ मनुष्य देह गँवा दी है और अपनी जड़ आप उखाड़ी है, अर्थात् अपने मूल रूप परमात्मा को भूल गया है ॥ ३ ॥ हे दीनदयालु, सुखों के समुद्र, वाहिगुरु ! मैं तेरी शरणागत हूँ । गुरुजी कहते हैं कि हे वाहिगुरु ! ऐसी कृपा कर जो तेरे गुणों को गाऊँ, और हमारी लाज-प्रतिष्ठा रखो ॥ ४ ॥ ३० ॥ ३७ ॥

॥ माझ महला ५ ॥ चरण ठाकुर के रिदै समाणे । कलि कलेस सभ दूरि पइआणे । सांति सूख सहज धुनि उपजी साधू संगि निवासा जीउ ॥ १ ॥ लागी प्रीति न तूटै मूले । हरि अंतरि बाहरि रहिआ भरपूरे । सिमरि सिमरि सिमरि गुण गावा काटी जम की फासा जीउ ॥ २ ॥ अंम्रितु वरखै अनहद बाणी । मन तन अंतरि सांति समाणी । त्रिपति अघाइ रहे जन तेरे सतिगुरि कीआ दिलासा जीउ ॥ ३ ॥ जिस का सा तिस ते फलु पाइआ । करि किरपा प्रभ संगि मिलाइआ । आवण जाण रहे वडभागी नानक पूरन आसा जीउ ॥४॥३१॥३८॥

हे ठाकुर ! तेरे चरण जिनके हृदय में स्थित हैं, अर्थात् जिन भक्तों ने तुम्हारे चरणों का ध्यान किया है, उनके दुःख और क्लेश दूर हो गए हैं । जिन्होंने सन्तों के संग में निवास किया है, उनमें शान्ति और सुख के देनेवाली ध्वनि अर्थात् वृत्ति सहज स्वाभाविक ही उत्पन्न हुई है ॥ १ ॥

(और उनकी पूर्वोक्त प्रकार से) तुझसे ऐसी प्रीति लगी है, जो कभी नहीं टूटती। भीतर-बाहर हरि व्याप्त है—यह उनका निश्चय है। इसलिए स्मरणीय प्रभु का गुणगान जिन्होंने किया है, उनकी यम की फाँसी कट गई है ॥ २ ॥ जो प्रभु-स्मरण कर ऐसी वाणी बोलते हैं (जो प्रभु-गुणों से सम्बद्ध हो) लगता है, जैसे अमृत वर्षा होती हो जिनके भीतर यह वाणी समाई है, उनके मन, तन में शान्ति अनुभूत होती है। तेरे भक्तजनों को सतिगुरु ने ढाढस बँधाया है, इससे वे मन, तन में तृप्त हो रहे हैं ॥ ३ ॥ जिस वाहिगुरु का मैं सेवक था, उस तुझी से यह फल पाया है कि कृपा कर तूने अपने साथ मिला लिया है। गुरुजी कहते हैं कि हम सौभाग्यशाली, जन्म-मरण से रहित हो गए हैं और हमारी सब आशाएँ पूर्ण हुई हैं ॥ ४ ॥ ३१ ॥ ३८ ॥

॥ माझ महला ५ ॥ मीहु पइआ परमेसरि पाइआ। जीअ जंत सभि सुखी वसाइआ। गइआ कलेसु भइआ सुखु साचा हरि हरि नामु समाली जीउ ॥ १ ॥ जिस के से तिन ही प्रतिपारे। पारब्रहम प्रभ भए रखवारे। सुणी बेनंती ठाकुरि मेरै पूरन होई घाली जीउ ॥ २ ॥ सरब जीआ कउ देवणहारा। गुर परसादी नदरि निहारा। जल थल महीअल सभि त्रिपताणे साधू चरन पखाली जीउ ॥ ३ ॥ मन की इछ पुजावणहारा। सदा सदा जाई बलिहारा। नानक दानु कीआ दुख भंजनि रते रंगि रसाली जीउ ॥ ४ ॥ ३२ ॥ ३९ ॥

ईश्वर कृपा द्वारा सतिगुरु का उपदेश-रूपी मेंह बरसा है इससे हरि ने सभी जीव-जन्तुओं को सुखी बसाया है, अर्थात् गुरु-उपदेश द्वारा सबका उद्धार किया है। जो हरि-नाम को मन, तन तथा बाणी से स्मरण करते हैं, उनका क्लेश समाप्त हो गया और उन्हें सच्चा सुख अनुभूत हुआ है ॥ १ ॥ जिस वाहिगुरु के सेवक थे, उस (वाहिगुरु) ने ही रक्षा की है और वही पारब्रह्म प्रभु ही रक्षा करनेवाले हुए हैं। जब मेरे ठाकुर ने प्रार्थना सुनी तब सेवा पूर्ण हो गई, अर्थात् सफल हो गई ॥ २ ॥ जो वाहिगुरु सब जीवों को दान देनेवाला है वह सतिगुरु की कृपा से ज्ञानदृष्टि द्वारा देखा जाता है। जिन्होंने सन्तों के चरण धोए हैं वे जल, स्थल और ब्रह्माण्ड में (हरि को व्यापक मानकर) तृप्त हुए हैं ॥ ३ ॥ जो हरि मन की इच्छा पूर्ण करनेवाला है, उस हरि पर सदैव मन, तन वचन से बलिहारी जाएँ। गुरुजी कहते हैं कि दुःखनाशक वाहिगुरु ने जिनको सत्संग दान किया है वे पुरुष अद्भुत आनन्द में अनुरक्त हैं, अर्थात् डूबे हैं ॥ ४ ॥ ३२ ॥ ३९ ॥

॥ माझ महला ५ ॥ मनु तनु तेरा धनु भी तेरा । तूं ठाकुरु सुआमी प्रभु मेरा । जीउ पिंडु सभु रासि तुमारी तेरा जोरु गोपाला जीउ ॥ १ ॥ सदा सदा तूं है सुखदाई । निवि निवि लागा तेरी पाई । कार कमावा जे तुधु भावा जा तूं देहि दइआला जीउ ॥ २ ॥ प्रभ तुम ते लहणा तूं मेरा गहणा । जो तूं देहि सोई सुखु सहणा । जिथै रखहि बैकुंठु तिथाई तूं सभना के प्रतिपाला जीउ ॥ ३ ॥ सिमरि सिमरि नानक सुखु पाइआ । आठ पहर तेरे गुण गाइआ । सगल मनोरथ पूरन होए कदे न होइ दुखाला जीउ ॥ ४ ॥ ३३ ॥ ४० ॥

[प्रस्तुत अंश में 'आत्मनिवेदन' भक्ति के प्रायोगिक रूप का प्रदर्शन किया है और अपना सब कुछ 'वाहिगुरु' को स्थापित किया गया है ।]

मेरा मन और तन तेरा है, धन भी तेरा है । हे ठाकुर, तू मेरा समर्थ स्वामी है । हे गोपाल ! जीव की देह सब तुम्हारी ही पूँजी है और मुझे तेरा ही बल है ॥ १ ॥ तू ही सर्वदा सुखदाता है और मैं विनम्र होकर तेरे चरणों को स्पर्श करता हूँ । हे दयालु ! मैं वही कार्य करूँ जो तू दे और जो तुझे भावे ॥ २ ॥ हे प्रभु ! मुझे तुझसे लाभ है और तू मेरा गहना है, अर्थात् मेरी शोभा में वृद्धि करनेवाला है । जो सुख-दुःख तू देता है वह मैं प्रसन्न होकर सहन करता हूँ । हे भगवान ! जहाँ तू रखे वहीं वैकुण्ठ है । तू सबके प्राणों की रक्षा करता है ॥ ३ ॥ सतिगुरु जी कहते हैं कि हमने तेरा नाम-स्मरण किया है और आठ प्रहर तेरे गुणों का गायन किया है, इसीलिए सुख पाया है । तेरे गुण-गान से सकल मनोरथ पूर्ण हुए हैं तथा हमारा चित्त कभी भी दुखी नहीं हुआ ॥ ४ ॥ ३३ ॥ ४० ॥

॥ माझ महला ५ ॥ पारब्रहमि प्रभि मेघु पठाइआ । जलि थलि महीअलि दहदिसि वरसाइआ । सांति भई बुझी सभ त्रिसना अनदु भइआ सभ ठाई जीउ ॥ १ ॥ सुखदाता दुख भंजनहारा । आपे बखसि करे जीअ सारा । अपने कीते नो आपि प्रतिपाले पइ पैरी तिसहि मनाई जीउ ॥ २ ॥ जा की सरणि पइआ गति पाईऐ । सासि सासि हरिनामु धिआईऐ । तिसु बिनु होरु न दूजा ठाकुरु सभ तिसै कीआ जाई जीउ ॥ ३ ॥ तेरा माणु ताणु प्रभ तेरा । तूं सचा साहिबु गुणी गहेरा । नानकु दासु कहै बेनंती आठ पहर तुधु धिआई जीउ ॥ ४ ॥ ३४ ॥ ४१ ॥

हे भाई, पारब्रह्म प्रभु ने गुरु-रूपी बादल भेजा है और जिसने जल, थल, पृथ्वी, आकाश दसों दिशाओं में जल बरसाया है। उस गुरु-उपदेश-रूपी वर्षा से सम्पूर्ण तृष्णा बुझने से शान्ति हो गई है और सब स्थानों में आनन्द हो गया है ॥ १ ॥ हे भाई, वह हरि सुखों का देनेवाला है और दुखों का नाश करनेवाला है तथा आप ही जीवों की सँभाल करता है। वह अपने रचे जीव की आप रक्षा करता है इसीलिए उसके चरणों में पड़कर उसे मनाएँ ॥ २ ॥ क्योंकि जिस वाहिगुरु की शरण पड़ने से मोक्ष मिलती है, उस हरि के नाम का प्रत्येक साँस स्मरण करें। उस वाहिगुरु के अतिरिक्त कोई दूसरा ठाकुर नहीं है, क्योंकि सब कुछ उसी द्वारा निर्मित है ॥ ३ ॥ हे प्रभु! तेरा ही मान है, तेरा ही बल है। हे सच्चे साहिब, तू ही गुणों को ग्रहण करनेवाला है। गुरुजी कहते हैं, मैं दास यह प्रार्थना करता हूँ कि मैं आठ प्रहर तेरा स्मरण करूँ ॥ ४ ॥ ३४ ॥ ४१ ॥

॥ माझ महला ५ ॥ सभे सुख भए प्रभ तुठे। गुर पूरे के चरण मनि वुठे। सहज समाधि लगी लिव अंतरि सो रसु सोई जाणै जीउ ॥ १ ॥ अगम अगोचरु साहिबु मेरा। घट घट अंतरि वरतै नेरा। सदा अलिपतु जीआ का दाता को विरला आपु पछाणै जीउ ॥ २ ॥ प्रभ मिलणै की एह नीसाणी। मनि इको सचा हुकमु पछाणी। सहजि संतोखि सदा त्रिपतासे अनदु खसम कै भाणै जीउ ॥ ३ ॥ हथी दिती प्रभि देवणहारै। जनम मरण रोग सभि निवारे। नानक दास कीए प्रभि अपुने हरि कीरतनि रंग माणे जीउ ॥ ४ ॥ ३५ ॥ ४२ ॥

जिस पर प्रभु प्रसन्न हुए हैं, उन्हें समस्त सुख प्राप्त हुए हैं। उनके मन में पूर्णगुरु के चरण बसे हैं। उनकी सहज समाधि लग गई है, अर्थात् प्रभु-कृपा से स्वतः ही उनकी समाधि लग गई है और उनकी वृत्ति अन्तर्मुखी हो गई है। वह आनन्द वही जानता है जिसकी वृत्तियाँ आत्मपरायण हों ॥ १ ॥ मेरा साहिब अगम तथा अगोचर है, अर्थात् स्थूल दृष्टि से मेरा साहिब परे है (लेकिन) वह प्रत्येक प्राणी के भीतर निकट ही विद्यमान है। वह प्रभु सदा निर्लिप्त है और जीवों को खान-पान देनेवाला है। ऐसे निस्संग वाहिगुरु को कोई विरला ही पहचानता समझता है ॥ २ ॥ अगले पद में प्रभु-मिलन की पहचान के सम्बन्ध में बताया है कि प्रभु-मिलन की यही निशानी है कि मन परिपक्व कर अर्थात् सुख-दुख में समरस कर एक वाहिगुरु का सच्चा हुक्म पहचाना जाय। वे पुरुष स्वतः ही सन्तुष्ट होकर सदैव तृप्त रहे हैं क्योंकि स्वामी के 'भाणे' को मानने से उन्हें आनन्द

प्राप्त हुआ है ।। ३ ।। जिनको दाता वाहिगुरु ने बाँह दी है, अर्थात् सहारा दिया है, उनके जन्म, मरण आदि सब रोग निवृत्त कर दिए हैं। गुरुजी कहते हैं कि जिन्हें प्रभु ने अपना दास बनाया, वे हरि के यश का आनन्द भोगते हैं ।। ४ ।। ३५ ।। ४२ ।।

।। माझ महला ५ ।। कीनी दइआ गोपाल गुसाई । गुर के चरण वसे मन माही । अंगीकारु कीआ तिनि करतै दुख का डेरा ढाहिआ जीउ ।। १ ।। मनि तनि वसिआ सचा सोई । बिखड़ा थानु न दिसै कोई । दूत दुसमण सभि सजण होए एको सुआमी आहिआ जीउ ।। २ ।। जो किछु करे सु आपे आपै । बुधि सिआणप किछू न जापै । आपणिआ संता नो आपि सहाई प्रभि भरम भुलावा लाहिआ जीउ ।। ३ ।। चरण कमल जन का आधारो । आठ पहर रामनामु वापारो । सहज अनंद गावहि गुण गोविंद प्रभ नानक सरब समाहिआ जीउ ।। ४ ।। ३६ ।। ४३ ।।

जिन पर गोपाल गोसाईं ने दया की उनके हृदय में गुरु के चरण बसे हैं। वाहिगुरु ने उन भक्तों को अंगीकार किया है, अर्थात् उन्हें स्वीकार किया है और जन्मादि क्लेशों का डेरा गिराया अर्थात् दुखों से मुक्त किया ।। १ ।। जिन्होंने मन, तन में वाहिगुरु के वास को पहचाना है, उन्हें दुर्गम स्थान कोई दिखाई नहीं देता, अर्थात् वे सर्वत्र वाहिगुरु की उपस्थिति महसूसते हैं। जब एक स्वामी को चाहा तब यमदूत-रूपी दुश्मन भी सब मित्र हो गए ।। २ ।। जो कुछ करता है सो आप ही करता है। बुद्धि से उपजी चतुराई कुछ भी जान नहीं पाती। जो भ्रमों का भ्रान्तिजनक पर्दा था सो उतार दिया है, इसलिए प्रभु अपने सन्तों को आप सहायता करनेवाले हुए हैं ।। ३ ।। भक्त-जनों को प्रभु के चरण-कमलों का सहारा है और वे आठ प्रहर राम-नाम का व्यापार करते हैं। गुरुजी कहते हैं कि भक्त-जन आनन्द में मग्न होकर उस गोविन्द के गुण गाते हैं, जो सर्वत्र व्यापक है ।। ४ ।। ३६ ।। ४३ ।।

।। माझ महला ५ ।। सो सचु मंदरु जितु सचु धिआईऐ । सो रिदा सुहेला जितु हरिगुण गाईऐ । सा धरति सुहावी जितु वसहि हरिजन सचे नाम विटहु कुरबाणो जीउ ।। १ ।। सचु वडाई कीम न पाई । कुदरति करमु न कहणा जाई । धिआइ धिआइ जीवहि जन तेरे सचु सबदु मनि माणो जीउ ।। २ ।। सचु सालाहणु वडभागी पाईऐ । गुर परसादी हरिगुण गाईऐ । रंगि रते तेरै तुध भावहि सचु नामु नीसाणो जीउ ।। ३ ।।

सचे अंतु न जाणै कोई। थानि थनंतरि सचा सोई। नानक सचु धिआईऐ सद ही अंतरजामी जाणो जीउ ॥ ४ ॥ ३७ ॥ ४४ ॥

हे सत्य-स्वरूप परमात्मा, वह मन्दिर सफल है, जिसमें हे सत्य-स्वरूप वाहिगुरु, तेरा स्मरण किया जाता है। वही हृदय सुखी है जिस हृदय में हरि-गुण गाये जाते हैं। यद्यपि गाना वाणी का विषय है, हृदय का नहीं, तथापि यहाँ गाने से हृदय में धारण करने का भाव है। हे हरि, वह धरती शोभा वाली है, जहाँ तेरे सन्त बसते हैं। हे सत्य-स्वरूप, तेरे नाम पर बलिहारी हैं ॥ १ ॥ हे सत्य-स्वरूप, तेरी महानता का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। हे अनेक शक्तियों वाले हरि! तेरा काम-काज बखाना नहीं जा सकता। बारम्बार तुम्हें ध्यान कर तेरे भक्त-जन जीते हैं और सच्चे उपदेश का आनन्द मन में भोगते हैं ॥ २ ॥ हे सच्चे! तेरा गुण-स्तवन बड़े पुण्यों से प्राप्त होता है। तेरे गुण सतिगुरु की कृपा से गाए जाते हैं। जो तेरे प्रेम में अनुरक्त हैं सो तुझे भाते हैं, क्योंकि उनके पास सच्चे नाम का निशान है ॥ ३ ॥ हे सच्चे! तेरा अन्त कोई नहीं जानता है। सर्वत्र वही सच्चा व्यापक है। गुरुजी कहते हैं कि हे अन्तर्यामी सच्चे! तू जानता है कि मेरी यह भावना है कि हमेशा तेरा ही स्मरण करूँ ॥ ४ ॥ ३७ ॥ ४४ ॥

॥ माझ महला ५ ॥ रैणि सुहावड़ी दिनसु सुहेला। जपि अंम्रित नामु संत संगि मेला। घड़ी मूरत सिमरत पल वंञहि जीवणु सफलु तिथाई जीउ ॥ १ ॥ सिमरत नामु दोख सभि लाथे। अंतरि बाहरि हरिप्रभु साथे। भै भउ भरमु खोइआ गुरि पूरै देखा सभनी जाई जीउ ॥ २ ॥ प्रभु समरथु वड ऊच अपारा। नउ निधि नामु भरे भंडारा। आदि अंति मधि प्रभु सोई दूजा लवै न लाई जीउ ॥ ३ ॥ करि किरपा मेरे दीन दइआला। जाचिकु जाचै साध रवाला। देहि दानु नानकु जनु मागै सदा सदा हरि धिआई जीउ ॥ ४ ॥ ३८ ॥ ४५ ॥

वही रात्रि शोभनीय है और दिन भी सुखद है जिसमें सन्तों के साथ मिलकर अमृत नाम जपा है। जिस सत्संग में घड़ी मुहूर्त अर्थात् दो घड़ी और पल स्मरण करते हुए बीतें, उसी स्थान में जीवन सफल है ॥ १ ॥ (अगली पंक्तियों में स्मरण करने से भक्तों को क्या लाभ हुए हैं, यह बतलाया है) जिन्होंने नाम-स्मरण किया है उनके सब दोष समाप्त हो गए हैं, जो हरि ब्रह्माण्ड में है, उस प्रभु को उन्होंने साथ ही जाना है, अर्थात् अपने आपको ब्रह्मरूप स्वीकारा है। जन्म-मरण का जो भय और भ्रम

था, उसे पूर्ण सतिगुरु ने मिटा दिया है और तब समस्त स्थानों में परिपूर्ण वाहिगुरु को देखा है ।। २ ।। वह प्रभु समर्थ है और सबसे बड़ा, उच्च तथा अपार है, उसका नाम नवनिधियों को देनेवाला तथा भण्डार को भरनेवाला है । आदि, मध्य तथा अन्त में वही एक पूर्णप्रभु है और दूसरा कोई निकट नहीं लाया जाता, अर्थात् ब्रह्म केवल एक है, उस जैसा अन्य कोई नहीं है । वह स्वजातीय, विजातीय एवं स्वगत तीनों से अलग है ।। ३ ।। हे दीनदयालु प्रभु ! मुझपर कृपा करो । मैं याचक सन्तों की चरण-धूलि चाहता हूँ । गुरुजी कहते हैं, मैं दास आपसे माँगता हूँ, मुझे यह दान दो कि सर्वदा तेरा स्मरण करूँ ।। ४ ।। ३८ ।। ४५ ।।

।। माझ महला ५ ।। ऐथै तूं है आगै आपे । जीअ जंत्र सभि तेरे थापे । तुधु बिनु अवरु न कोई करते मै धर ओट तुमारी जीउ ।। १ ।। रसना जपि जपि जीवै सुआमी । पारब्रहम प्रभ अंतरजामी । जिनि सेविआ तिन ही सुखु पाइआ सो जनमु न जूऐ हारी जीउ ।। २ ।। नामु अवखधु जिनि जन तेरै पाइआ । जनम जनम का रोगु गवाइआ । हरि कीरतनु गावहु दिनु राती सफल एहा है कारी जीउ ।। ३ ।। द्रिसटि धारि अपना दासु सवारिआ । घट घट अंतरि पारब्रहमु नमसकारिआ । इकसु विणु होरु दूजा नाही बाबा नानक इह मति सारी जीउ ।। ४ ।। ३९ ।। ४६ ।।

इस लोक में तू ही पूर्ण है और परलोक में भी तू आप ही है । सूक्ष्म, स्थूल सब जीव तेरे द्वारा स्थापित किए हुए हैं । हे कर्त्ता वाहिगुरु ! तुझसे अलग कोई नहीं है । मुझे शरीर-रूपी आधार के लिए केवल आपकी शरण है ।। १ ।। हे स्वामी ! जिह्वा तेरा नाम जपकर जीती है । हे पारब्रह्म प्रभु ! तू अन्तर्यामी है । हे प्रभु ! जिन्होंने तुझे भजा है, उन्होंने ही सुख पाया है और वे पुरुष जन्म-मरण के पासे खेलने में नहीं हारते हैं ।। २ ।। जिस तेरे भक्त ने तेरे नाम-रूपी औषधि को पाया है, उसने जन्म-मरण के अज्ञान का रोग गवाँ दिया है । हे हरि ! तेरा यश दिन-रात्रि गाता हूँ, क्योंकि यही औषधि जीव के लिए सफल अर्थात् फलदायक है ।। ३ ।। कृपा-दृष्टि करके तूने जिस भक्त को सँवार लिया है उस भक्त ने घट-घट में तुझे व्यापक जानकर प्रणाम किया है । एक तुझसे अलग दूसरा कोई नहीं जाना है । गुरुजी कहते हैं कि हे महान् परमेश्वर ! यह बुद्धि श्रेष्ठ है ।। ४ ।। ३९ ।। ४६ ।।

।। माझ महला ५ ।। मनु तनु रता राम पिआरे । सरबसु

दीजै अपना वारे। आठ पहर गोबिंद गुण गाईऐ बिसरु न कोई सासा जीउ ॥ १ ॥ सोई साजन मीतु पिआरा। रामनामु साध संगि बीचारा। साधू संगि तरीजै सागरु कटीऐ जम की फासा जीउ ॥ २ ॥ चारि पदारथ हरि की सेवा। पारजातु जपि अलख अभेवा। कामु क्रोधु किलबिख गुरि काटे पूरन होई आसा जीउ ॥ ३ ॥ पूरन भाग भए जिसु प्राणी। साध संगि मिले सारंगपाणी। नानक नामु वसिआ जिसु अंतरि परवाणु गिरसत उदासा जीउ ॥ ४ ॥ ४० ॥ ४७ ॥

[प्रस्तुत पद में उन सन्तजनों की महिमा वर्णित की गई है जिनकी मति परमेश्वर-परायण है।]

जिनका मन, तन परमेश्वर के भक्तों में अनुरक्त है, उनके ऊपर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया जाए। हे भाई ! उनके संग आठ प्रहर गोविन्द का गुणगान करें और किसी साँस में भी विस्मृत न करें ॥ १ ॥ सोई मेरा मन, तन तथा वाणी का मित्र है, जिसने राम-नाम साधु लोगों के साहचर्य में विचारा है। सन्तों की संगति से संसार-समुद्र पार किया जाता है और यम की फाँसी काटी जाती है, अर्थात् आवागमन से मुक्ति हो जाती है ॥ २ ॥ (अगली पंक्तियों में हरि-सेवा से होनेवाले लाभों का उल्लेख है) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारों पदार्थ हरि की सेवा से प्राप्त होते हैं। अलख, अभेद वाहिगुरु का जाप कल्पवृक्ष के समान है, अर्थात् समस्त कामनाओं का पूरक है। काम, क्रोध और पाप सतिगुरु ने काट दिए हैं, जिससे सम्पूर्ण आशा पूर्ण हो गई है ॥ ३ ॥ (अगले अंश में गृहस्थ और त्याग में कौन श्रेष्ठ है—इसका उत्तर दिया है) जिस प्राणी के भाग्य पूर्ण हुए हैं, वह पुरुष सन्तों के साथ सारंगपाणि विष्णु भगवान में मिला है। गुरुजी कहते हैं, जिनके मन में नाम बसा है वही स्वीकार्य है, चाहे वह गृहस्थी हो अथवा त्यागी ॥ ४ ॥ ४० ॥ ४७ ॥

॥ माझ महला ५ ॥ सिमरत नामु रिदै सुखु पाइआ। करि किरपा भगतीं प्रगटाइआ। संत संगि मिलि हरि हरि जपिआ बिनसे आलस रोगा जीउ ॥ १ ॥ जा कै ग्रिहि नव निधि हरि भाई। तिसु मिलिआ जिसु पुरब कमाई। गिआन धिआन पूरन परमेसुर प्रभु सभना गला जोगा जीउ ॥ २ ॥ खिन महि थापि उथापनहारा। आपि इकंती आपि पसारा। लेपु नही जग जीवन दाते दरसन डिठे लहनि विजोगा जीउ ॥ ३ ॥ अंचलि लाइ सभ सिसटि तराई। आपणा नाउ आपि

जपाई । गुर बोहिथु पाइआ किरपा ते नानक धुरि संजोगा जीउ ॥ ४ ॥ ४१ ॥ ४८ ॥

जिसने हृदय में नाम-स्मरण किया है, उसने सुख पाया है, लेकिन जिनपर कृपा की है, उन भक्तों को हरि स्वयं प्रकट हुआ है। हे भाई! जिन्होंने सत्संग में मिलकर हरि-हरि जपा है, उनके आलस आदि रोग मिट गए हैं ॥ १ ॥ जिसके हृदय-रूपी घर में नवनिधि-रूपी हरि-नाम है या जिसके पास पूर्व-कृत शुभ कर्मों की कमाई है, वह वाहिगुरु उसे ही प्राप्त होता है। परमेश्वर ज्ञान-ध्यान से पूर्ण है और सभी बातों से योग्य है, अर्थात् सर्व-प्रकारेण समर्थ है ॥ २ ॥ परमेश्वर क्षण के बीच स्थित करनेवाला है, क्षण के बीच उठानेवाला है, अर्थात् यह कि क्षण के भीतर उत्पत्ति तथा प्रलय करनेवाला है। आप ही निराकार-स्वरूप है और ब्रह्माण्ड-रूपी सगुण भी आप ही है। वह जगजीवन दाता निर्लिप्त है, अर्थात् विश्व-सृजन के पश्चात् असंग है, उसके दर्शनों से बिछुड़े हुए व्यक्तियों के दुःख दूर हो जाते हैं ॥ ३ ॥ जिसने अपने आँचल में बाँधकर समूची सृष्टि सतिगुरु द्वारा पार कराई है, सो वह अपना नाम आप जपाता है। गुरुजी कहते हैं वाहिगुरु की कृपा से जिन्हें प्रारम्भ से पुण्यों का संयोग था, उन्होंने गुरु-रूपी जहाज पाया है ॥ ४ ॥ ४१ ॥ ४८ ॥

॥ माझ महला ५ ॥ सोई करणा जि आपि कराए । जिथै रखै सा भली जाए । सोई सिआणा सो पतिवंता हुकमु लगै जिसु मीठा जीउ ॥ १ ॥ सभ परोई इकतु धागै । जिसु लाइ लए सो चरणी लागै । ऊंध कवलु जिसु होइ प्रगासा तिनि सरब निरंजनु डीठा जीउ ॥ २ ॥ तेरी महिमा तूं है जाणहि । अपणा आपु तूं आपि पछाणहि । हउ बलिहारी संतन तेरे जिनि कामु क्रोधु लोभु पीठा जीउ ॥३॥ तूं निरवैरु संत तेरे निरमल। जिन देखे सभ उतरहि कलमल । नानक नामु धिआइ धिआइ जीवै बिनसिआ भ्रमु भउ धीठा जीउ ॥ ४ ॥ ४२ ॥ ४९ ॥

वही कार्य किया जाए जो तू आप कराता है और वही स्थान भला है, जहाँ तू रखता है। हे भगवान! जिस पुरुष को तेरा हुक्म मीठा लगता है, वही चतुर है, वही आदरणीय है ॥ १ ॥ सम्पूर्ण सृष्टि तूने एक हुक्म-रूपी डोरे में पिरोई है, जिसे चरण लगाता है, वही चरण लगता है, अर्थात् प्रभु के चरणों में उसी की प्रीति होती है, जिसपर ईश्वर स्वयं कृपा करता है। जिसके हृदय में प्रकाश हुआ है, अर्थात् सत्य-असत्य का विवेक उपजा है, उसका हृदय-रूपी कमल जो पहले उल्टा लटका हुआ था, सीधा

हो गया और उसने सर्वत्र निरंजन प्रभु को देखा है ।। २ ।। अपनी महिमा को तू आप ही जानता है और अपने आपको तू आप ही पहचानता है। मैं तेरे उन सन्तों पर बलिहारी जाता हूँ, जिन्होंने काम, क्रोध, लोभ आदि के समुदाय को समाप्त कर दिया है ।। ३ ।। हे परमात्मा ! तू वैर-रहित है और तेरे सन्त भी उज्ज्वल हैं, जिनके दर्शन से समस्त पाप दूर हो जाते हैं। गुरुजी कहते हैं, तेरा नाम स्मरण कर सन्त जीते हैं, इसी से उनका भ्रम, भय और कठोर स्वभाव समाप्त हो गया है ।।४।।४२।।४९।।

।। मांझ महला ५ ।। झूठा मंगणु जे कोई मागै । तिस कउ मरते घड़ी न लागै । पारब्रहमु जो सद ही सेवै सो गुर मिलि निहचलु कहणा ।। १ ।। प्रेम भगति जिस कै मनि लागी। गुण गावै अनदिनु निति जागी। बाह पकड़ि तिसु सुआमी मेलै जिस कै मसतकि लहणा ।। २ ।। चरन कमल भगतां मनि वुठे। विणु परमेसर सगले मुठे। संतजनां की धूड़ि नित बांछहि नामु सचे का गहणा ।। ३ ।। ऊठत बैठत हरि हरि गाईऐ । जिसु सिमरत वरु निहचलु पाईऐ । नानक कउ प्रभ होइ दइआला तेरा कीता सहणा ।। ४ ।। ४३ ।। ५० ।।

यदि कोई (प्रभु नाम से अलग) झूठे पदार्थों की याचना करता है, उसे मरते हुए घड़ी नहीं लगती। हे पारब्रह्म ! जो सदा तुझको भजता है, अर्थात् तेरी आराधना करता है, वह सतिगुरु के साथ मिलकर जन्म-मरण से रहित हुआ है ।। १ ।। जिसके हृदय में प्रेम-भक्ति उपजी है, उसकी बुद्धि रात-दिन तेरे गुणगान में लगी है। हे स्वामी ! आप बाँह पकड़कर उसे स्वयं मिला लेते हो, जिसके मस्तक में ऐसा लिखा है ।। २ ।। तेरे चरण-कमल भक्तों के मन में बसे हैं। हे परमेश्वर ! तेरे नाम के बिना सब ठगे हुए हैं। हम नित्यप्रति सन्तजनों की चरण-धूलि चाहते हैं और हमें तेरे नाम ही भूषण हैं, अर्थात् हमें केवल तेरा नाम ही ग्राह्य है ।। ३ ।। हे हरि ! उठते-बैठते तेरे गुणों का ही गायन करें, जिसे स्मरण कर मोक्ष पदवी प्राप्त होती है। गुरुजी कहते हैं, हे प्रभु ! मुझपर कृपालु हूजिएगा (जिससे) तेरा किया हुआ सहन कर सकूँ ।। ४ ।। ४३ ।। ५० ।।

रागु माझ असटपदीआ महला १ घरु १

१ ओं सतिगुर प्रसादि । सबदि रंगाए हुकमि सबाए । सची दरगह महलि बुलाए । सचे दीन दइआल मेरे साहिबा सचे

मनु पतीआवणिआ ।। १ ।। हउ वारी जीउ वारी सबदि सुहावणिआ । अंम्रित नामु सदा सुखदाता गुरमती मंनि वसावणिआ ।। १ ।। रहाउ ।। ना को मेरा हउ किसु केरा । साचा ठाकुरु त्रिभवणि मेरा । हउमै करि करि जाइ घणेरी करि अवगण पछोतावणिआ ।। २ ।। हुकमु पछाणै सु हरिगुण वखाणै । गुर कै सबदि नामि नीसाणै । सभना का दरि लेखा सचै छूटसि नामि सुहावणिआ ।। ३ ।। मनमुखु भूला ठउरु न पाए । जम दरि बधा चोटा खाए । बिनु नावै को संगि न साथी मुकते नामु धिआवणिआ ।। ४ ।। साकत कूड़े सचु न भावै । दुबिधा बाधा आवै जावै । लिखिआ लेखु न मेटै कोई गुरमुखि मुकति करावणिआ ।। ५ ।। पेईअड़ै पिरु जातो नाही । झूठि विछुंनी रोवै धाही । अवगणि मुठी महलु न पाए अवगण गुणि बखसावणिआ ।। ६ ।। पेईअड़ै जिनि जाता पिआरा । गुरमुखि बूझै ततु बीचारा । आवणु जाणा ठाकि रहाए सचै नामि समावणिआ ।। ७ ।। गुरमुखि बूझै अकथु कहावै । सचे ठाकुर साचो भावै । नानक सचु कहै बेनंती सचु मिलै गुण गावणिआ ।। ८ ।। १ ।।

हे वाहिगुरु ! जो गुरु के उपदेश द्वारा अपने हुक्म में रंगाए हैं, वे सभी सत्संग-द्वार पर अपने (महल) स्वरूप में बुलाए हैं, अर्थात् तूने अपने में मिला लिए हैं । हे मेरे सच्चे साहिब, दीनदयाल ! तू सच्चे नाम के जपनेवालों पर मन से विश्वास करनेवाला है ।। १ ।। हे महाराज ! मैं उनपर बलिहारी हूँ, जो सतिगुरु-उपदेश से शोभायमान हैं । नाम-रूपी अमृत सदा सुखदाता है, जिसे गुरमुखों ने मन में बसाया है ।। १ ।। रहाउ ।। न कोई मेरा है और न मैं किसी का हूँ । हे सच्चे त्रिलोकी के स्वामी ! मेरा तो तू ही है । अहंकार कर-करके कितनी ही दुनिया चली जाती है, क्योंकि दुष्कर्म करके जीव पश्चातापी होता है ।। २ ।। हे हरि ! जो तेरे हुक्म को पहचानता है, वही तेरे गुणकथन करता है । हे नामी अर्थात् अनगिनत नामों वाले ! तू सतिगुरु के उपदेश से प्रकट हुआ है । हे सच्चे ! सब का लेखा-जोखा तेरे दरबार में है; जो नाम जपकर शोभा पाते हैं, वे यम के लेखे से छूट जाते हैं ।। ३ ।। मनमुख भटका हुआ टिक नहीं पाता, इसलिए यमराज के दरबार में बाँधा हुआ चोटें खाता है । नाम के बिना कोई संगी-साथी नहीं होता और जो नाम को स्मरण करनेवाले हैं, वे मुक्त हुए हैं ।। ४ ।। झूठे शाक्त को सत्य-नाम भला नहीं लगता, इसीलिए

द्वैतबद्ध होकर जन्मता-मरता रहता है। लिखे हुए लेख को कोई मिटा नहीं सकता, अर्थात् मनमुखों के खोटे भाग्य कौन मिटाए ? जो गुरमुख हैं, उनको तू गुरु से मुक्ति कराता है ।। ५ ।। जिस जीव-रूपी स्त्री ने, हे पति-परमेश्वर ! तुझे इस लोक में नहीं पहचाना, वह झूठ-रूपी संसार में लगकर तुझसे बिछुड़कर छाती पीट-पीटकर रो रही है। अवगुणों के कारण ठगी हुई स्व-रूप को नहीं पाती, अर्थात् तुझे प्राप्त नहीं कर पाती; लेकिन आप (गुरुद्वारे) सब गुण देकर अवगुण भी क्षमा कर देते हैं ।। ६ ।। जिसने इस लोक में प्रियतम-प्रभु को जाना है, सो गुरमुख जीव गुरुद्वारे में तत्व विचारकर तुझे समझता है। उन गुरमुखों का आवागमन रोक दिया है और वे सच्चे नाम में समा गए हैं ।।७।। गुरमुखों ने आप तुझे पहचाना है, और हे अकथनीय! आपका नाम उच्चरित कराता है। हे सच्चे ठाकुर! तुझे सत्य-नाम लेनेवाला भला लगता है। गुरुजी कहते हैं, हे सत्यस्वरूप वाहिगुरु ! मैं आपसे विनती करता हूँ कि जो तेरे सच्चे गुण हैं, मैं उन्हें गाऊँ ।। ८ ।। १ ।।

।। माझ महला ३ घरु १ ।। करमु होवै सतिगुरू मिलाए। सेवा सुरति सबदि चितु लाए। हउमै मारि सदा सुखु पाइआ माइआ मोहु चुकावणिआ ।। १ ।। हउ वारी जीउ वारी सतिगुर कै बलिहारणिआ। गुरमती परगासु होआ जी अनदिनु हरिगुण गावणिआ ।। १ ।। रहाउ ।। तनु मनु खोजे ता नाउ पाए। धावतु राखै ठाकि रहाए। गुर की बाणी अनदिनु गावै सहजे भगति करावणिआ ।। २ ।। इसु काइआ अंदरि वसतु असंखा। गुरमुखि साचु मिलै ता वेखा। नउ दरवाजे दसवै मुकता अनहद सबदु वजावणिआ ।।३।। सचा साहिबु सची नाई। गुरपरसादी मंनि वसाई। अनदिनु सदा रहै रंगि राता दरि सचै सोझी पावणिआ ।। ४ ।। पाप पुंन की सार न जाणी। दूजै लागी भरमि भुलाणी। अगिआनी अंधा मगु न जाणै फिरि फिरि आवण जावणिआ ।। ५ ।। गुर सेवा ते सदा सुखु पाइआ। हउमै मेरा ठाकि रहाइआ। गुर साखी मिटिआ अंधिआरा बजर कपाट खुलावणिआ ।। ६ ।। हउमै मारि मंनि वसाइआ। गुर चरणी सदा चितु लाइआ। गुर किरपा ते मनु तनु निरमलु निरमल नामु धिआवणिआ ।।७।। जीवणु मरणा सभु तुधै ताईं। जिसु बखसे तिसु दे वडिआई। नानक नामु धिआइ सदा तूं जंमणु मरणु सवारणिआ ।। ८ ।। १ ।। २ ।।

[प्रस्तुत पद में श्री गुरु अमरदासजी गुरु की महिमा का बखान करते हैं।]

यदि शुभ कर्म हों तो परमात्मा सतिगुरु से मेल कराता है और सेवा में सुरति कर शब्द में चित्त लगाता है। जिन्होंने अहंकार को मारा है, उन्होंने सदा सुख पाया है और वही माया का मोह समाप्त करनेवाले हुए हैं ॥ १ ॥ मैं मन, तन तथा वाणी से सतिगुरु पर बलिहारी जाता हूँ, जिनकी शिक्षा से जीव के हृदय में प्रकाश हुआ है और वह रात-दिन हरि के गुणों का गायक हुआ है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ यदि सूक्ष्म मन में उसे खोजो तो परमात्मा का नाम-स्मरण होता है, अर्थात् यदि मन में यह सोचा जाय कि मन किसकी सत्ता से स्फुरित होता है तो आत्मानन्द का अनुभवन होता है। इसलिए इन्द्रियों को विषयों के प्रति दौड़ने से अर्थात् विषयाकर्षण से रोको और मन को संकल्पों-विकल्पों से हटाकर वश में रखो। वह आप गुरु की वाणी स्वत: ही दिन-रात गाता है और दूसरों से भक्ति कराता है ॥ २ ॥ (यहाँ परमात्मदर्शन के सम्बन्ध में सतिगुरुजी ने लिखा है) इस शरीर के भीतर ही वस्तु-रूप अपरिमेय अर्थात् गणना से परे वाहिगुरु का निवास है, सतिगुरु द्वारा सच्चा नाम मिले तो उसे देखा जा सकता है, अर्थात् उसका साक्षात्कार (दर्शन) हो सकता है। जो निरन्तर अनहद नाद का बजानेवाला अर्थात् सतिगुरु के शब्द (उपदेश) का उच्चारण करनेवाला है, वह नौ द्वारों से ऊपर दसों इन्द्रियों का नियमन कर परमेश्वर को पाकर मुक्त हुआ है ॥ ३ ॥ जो हरि सच्चा साहिब है, उसकी महानता भी सच्ची है, जिसने सतिगुरु की कृपा से आपकी महानता मन में बसाई है। वह पुरुष रात-दिन आनन्द में मस्त रहता है और उसने शरीर के बीच ही सच्चे परमात्मा को महसूस किया है ॥ ४ ॥ जो मनमुख हैं, उन्होंने पाप-पुण्य के भेद को नहीं पहचाना, अर्थात् वे धर्म-अधर्म के भेद-भाव से बिल्कुल अलग हैं, क्योंकि अज्ञानियों की बुद्धि परमेश्वर से भिन्न संसार में लगी हुई है, इसलिए भ्रमों में भटकी हुई है। अज्ञानी अन्धा होने के कारण वाहिगुरु के मार्ग को नहीं जानता। वह पुन:पुन: जन्मता और मरता है ॥ ५ ॥ गुरमुखों ने सतिगुरु की सेवा से बड़ा सुख पाया है और अहं, 'मेरा' आदि संकल्पों से अपने को रोक रखा है। सतिगुरु की शिक्षा से अज्ञान-रूपी अन्धकार मिटा है और वज्र की तरह जो जड़ता-रूपी कपाट थे, वे खुल गए हैं ॥ ६ ॥ जिसने अहंकार को मारकर वाहिगुरु को मन में बसाया है, उस पुरुष ने सदैव गुरु के चरणों में चित्त लगाया है। सतिगुरु की कृपा से उसका मन, तन निर्मल हुआ है और निर्मल नाम को स्मरण किया है ॥ ७ ॥ (जब सतिगुरु की कृपा से चित्त शुद्ध हो जाता है, तब वह ऐसे विनती करता है) हे परमेश्वर ! जन्म-मरण सब कुछ तेरे प्रति अर्पित है, अर्थात् जब तक हम जीते हैं या मरते हैं तुझे ही स्मरण करते रहेंगे। जिसपर तुम कृपा करते हो, उसे अपने नाम की महानता

देते हो। श्री गुरुजी कहते हैं जिन्होंने तेरा नाम स्मरण किया है उनका तू जन्म-मरण सफल कर देता है ॥ ८ ॥ १ ॥ २ ॥

॥ माझ महला ३ ॥ मेरा प्रभु निरमलु अगम अपारा। बिनु तकड़ी तोलै संसारा। गुरमुखि होवै सोई बूझै गुण कहि गुणी समावणिआ ॥ १ ॥ हउ वारी जीउ वारी हरि का नामु मंनि वसावणिआ। जो सचि लागे से अनदिनु जागे दरि सचै सोभा पावणिआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ आपि सुणै तै आपे वेखै। जिस नो नदरि करे सोई जनु लेखै। आपे लाइ लए सो लागै गुरमुखि सचु कमावणिआ ॥ २ ॥ जिसु आपि भुलाए सु किथै हथु पाए। पूरबि लिखिआ सु मेटणा न जाए। जिन सतिगुरु मिलिआ से वडभागी पूरै करमि मिलावणिआ ॥ ३ ॥ पेईअड़ै धन अनदिनु सुती। कंति विसारी अवगणि मुती। अनदिनु सदा फिरै बिललादी बिनु पिर नीद न पावणिआ ॥ ४ ॥ पेईअड़ै सुख दाता जाता। हउमै मारि गुरसबदि पछाता। सेज सुहावी सदा पिरु रावे सचु सीगारु बणावणिआ ॥ ५ ॥ लख चउरासीह जीअ उपाए। जिस नो नदरि करे तिसु गुरू मिलाए। किलबिख काटि सदा जन निरमल दरि सचै नामि सुहावणिआ ॥ ६ ॥ लेखा मागै ता किनि दीऐ। सुखु नाही फुनि दूऐ तीऐ। आपे बखसि लए प्रभु साचा आपे बखसि मिलावणिआ ॥ ७ ॥ आपि करे तै आपि कराए। पूरे गुर कै सबदि मिलाए। नानक नामु मिलै वडिआई आपे मेलि मिलावणिआ ॥ ८ ॥ २ ॥ ३ ॥

मेरा प्रभु निर्मल है जो मन, वाणी से अगम्य तथा अपार है और जो बिना तराजू के समस्त विश्व को तोलता है, अर्थात् वह बिना किसी सहायता के सब कुछ जानता है। परन्तु जो गुरमुख होता है, वही ऐसे जानता है और वाहिगुरु के गुण कहकर उसी में समा जाता है ॥ १ ॥ मैं मन, तन से उनपर बलिहारी हूँ, जो हरि का नाम मन में बसानेवाले हैं। जो रात-दिन अविद्या निद्रा से जागे हैं, वे सत्य में लगे वाहिगुरु के दरबार में शोभा पाते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ परमेश्वर आप ही सुनता, आप ही देखता है। वह जिसपर कृपा करता है, वही पुरुष काम-काज में लगता है। वह आप ही जिसको नाम में लगाता है, वह लगता है और वही गुरमुख सच कमाता है ॥ २ ॥ जिसको वह भुलाए वह किसका आश्रय ले। पूर्व-जन्म का लिखा लेख मिटाया नहीं जाता। जिन्हें सतिगुरु मिला है, वे

सौभाग्यशाली हैं परन्तु सतिगुरु की प्राप्ति पूर्ण कर्मों से होती है ।। ३ ।। जो जीव-स्त्री इस लोक में रात-दिन अज्ञान-निद्रा में सोई हुई है, अर्थात् परमात्मा से निरपेक्ष है, उसे कन्त अर्थात् परमात्मा स्वामी ने भी भुला दिया है और उसका परित्याग उसके अवगुणों के कारण हुआ है । वह रात-दिन सदैव चौरासी लाख योनियों में विलाप करती है, क्योंकि पति-प्राप्ति के बिना शान्ति-रूपी नींद को नहीं पाती ।। ४ ।। जिन्होंने इस लोक में सुखदाता वाहिगुरु को जाना है, उन्होंने अहंकार को मारकर गुरु के उपदेश से पहचाना है । उसकी अन्तःकरण-रूपी सेज शोभायमान है और वह निरन्तर पति के आनन्द को भोग रही है, क्योंकि उसने सच्चा शृंगार किया हुआ है ।। ५ ।। (प्रश्न पैदा होता है कि समस्त जीव सतिगुरु के साथ मिलकर उसके आनन्द को क्यों नहीं भोगते ?) परमेश्वर ने चौरासी लाख योनियाँ उत्पन्न की हैं, परन्तु वह जिसपर दया-दृष्टि करता है, उसी को गुरु के साथ मिलाते हैं । वे पुरुष पापों को काटकर सदा निर्मल हैं और नाम-स्मरण कर सच्चे वाहिगुरु के दरबार में शोभा पाते हैं या अन्तःकरण में परमेश्वर को पाकर शोभा पाते हैं ।। ६ ।। यदि वाहिगुरु जीवों से कर्मों का हिसाब माँगे तो किससे दिया जाता है ? जीवों को द्वैत या त्रैगुणी स्थिति में सुख महसूस नहीं होता । जब सच्चा प्रभु आप कृपा करे और कृपा करके अपने साथ मिला ले, तब सुख होता है ।। ७ ।। प्रभु ने आप ही जीव उत्पन्न किए हैं और वे आप ही जीवों से कर्म कराते हैं और पूर्ण सतिगुरु के उपदेश द्वारा अपने साथ मिला लेते हैं । परमात्मा के नाम से जीवों को प्रशंसा मिलती है । वह आप ही सत्संग-रूपी मेल में जिनको मिलाता है, उन्हें ही नाम मिलता है ।। ८ ।। २ ।। ३ ।।

।। माझ महला ३ ।। इको आपि फिरै परछंना। गुरमुखि वेखा ता इहु मनु भिना । त्रिसना तजि सहज सुखु पाइआ एको मंनि वसावणिआ ।। १ ।। हउ वारी जीउ वारी इकसु सिउ चितु लावणिआ । गुरमती मनु इकतु घरि आइआ सचै रंगि रंगावणिआ ।। १ ।। रहाउ ।। इहु जगु भूला तैं आपि भुलाइआ । इकु बिसारि दूजै लोभाइआ । अनदिनु सदा फिरै भ्रमि भूला बिनु नावै दुखु पावणिआ ।। २ ।। जो रंगि राते करम बिधाते । गुर सेवा ते जुग चारे जाते । जिसनो आपि देइ वडिआई हरि कै नामि समावणिआ ।। ३ ।। माइआ मोहि हरि चेतै नाही । जमपुरि बधा दुख सहाही । अंना बोला किछु नदरि न आवै मनमुख पापि पचावणिआ ।। ४ ।। इकि रंगि राते जो तुधु आपि लिव लाए । भाइ भगति तेरै

मनि भाए। सतिगुरु सेवनि सदा सुखदाता सभ इछा आपि पुजावणिआ ॥ ५ ॥ हरि जीउ तेरी सदा सरणाई। आपे बखसिहि दे वडिआई। जमकालु तिसु नेड़ि न आवै जो हरि हरि नामु धिआवणिआ ॥ ६ ॥ अनदिनु राते जो हरि भाए। मेरै प्रभि मेले मेलि मिलाए। सदा सदा सचे तेरी सरणाई तूं आपे सचु बुझावणिआ ॥ ७ ॥ जिन सचु जाता से सचि समाणे। हरिगुण गावहि सचु वखाणे। नानक नामि रते बैरागी निजघरि ताणी लावणिआ ॥ ८ ॥ ३ ॥ ४ ॥

एक तू ही माया उत्पन्न कर भिन्न-भिन्न रूपों में सक्रिय है। जब गुरु-द्वारा तेरे निरुपाधि स्वरूप को देखा, तब यह मन आत्मानन्द में स्निग्ध हो गया है। तृष्णा त्यागकर स्वाभाविक ही सहज सुख पाया है और हे वाहिगुरु, तेरे एक स्वरूप को ही मन में बसाया है ॥ १ ॥ हे वाहिगुरु! जो एक तुझमें मन लगाते हैं, मैं उनपर बलिहारी जाता हूँ। जो गुरु की शिक्षा लेनेवाले हैं, उनका मन एकता के घर में आ गया है, अर्थात् अभेद हो गया है और सच्चे प्रभु के प्रेम में रंगा हुआ है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ यह जग भूला हुआ है, तूने आप ही इसे भुलाया हुआ है। तुझ एक को भुलाकर द्वैतभाव में आसक्त है। रात-दिन सदैव भ्रमों में भूला हुआ फिरता है और तेरे नाम के बिना दुखों को पाता है ॥ २ ॥ हे कर्मफल के देनेवाले, जो तेरे प्रेम में अनुरक्त हैं, वे गुरु की सेवा से चारों युगों में प्रकट हुए हैं। तू जिस पुरुष को अपनी महानता देता है, वह आपके नाम के स्वरूप के मध्य अभेद होता है ॥ ३ ॥ जो माया के मोहवश तुझे स्मरण नहीं करता, वह यमपुरी में बँधा हुआ दुःख सहन करता है। मनमुख अन्धा व बहरा है, जिसे शुभ-अशुभ कुछ दृष्टिगोचर नहीं होता। वह पापों में आप जलता है और साथियों को भी जलाता है ॥४॥ जिन्हें तूने आप अपने प्रेम में लगाया है, वे एक तेरे प्रेम में अनुरक्त हैं और प्रेमा-भक्ति करने से तुझे भाए हैं। जो सुखदाता सतिगुरु की उपासना करते हैं, उनकी सम्पूर्ण इच्छा तू आप पूर्ण करता है ॥ ५ ॥ हे हरि ! जो सदा तेरी शरण है, उसके पाप क्षमा कर तू उसे आप ही महानता देता है। जो हरि के नाम का स्मरण करते हैं, उनके निकट यमकाल नहीं आता ॥ ६ ॥ हे हरि ! जो तुझे भाए हैं वे निरन्तर नाम में अनुरक्त रहते हैं और हे प्रभु ! तूने सत्संग द्वारा उन्हें अपने साथ मिलाया है। हे सच्चे ! मैंने सर्वदा तेरी शरण ली है, तू आप ही अपने सत्य-स्वरूप की समझ देनेवाला है ॥ ७ ॥ जिन्होंने तेरे सत्य-स्वरूप को जाना है, वे तुझ में समाए हैं। वे हरि का गुणगान करते हैं और तेरे सत्य-स्वरूप की कथा करते हैं। श्री गुरुजी

कहते हैं, हे परमात्मा, जो तुझमें अनुरक्त हैं, वे विरागी हैं और वे अपने घर में समाधि लगाते हैं ।। ८ ।। ३ ।। ४ ।।

।। माझ महला ३ ।। सबदि मरै सु मुआ जापै । कालु न चापै दुखु न संतापै । जोती विचि मिलि जोति समाणी सुणि मन सचि समावणिआ ।। १ ।। हउ वारी जीउ वारी हरि कै नाइ सोभा पावणिआ । सतिगुरु सेवि सचि चितु लाइआ गुरमती सहजि समावणिआ ।। १ ।। रहाउ ।। काइआ कची कचा चीरु हंढाए । दूजै लागी महलु न पाए । अनदिनु जलदी फिरै दिनु राती बिनु पिर बहु दुखु पावणिआ ।। २ ।। देही जाति न आगै जाए । जिथै लेखा मंगीऐ तिथै छुटै सचु कमाए । सतिगुरु सेवनि से धनवंते ऐथै ओथै नामि समावणिआ ।। ३ ।। भै भाइ सीगारु बणाए । गुर परसादी महलु घरु पाए । अनदिनु सदा रवै दिनु राती मजीठै रंगु बणावणिआ ।। ४ ।। सभना पिरु वसै सदा नाले । गुरपरसादी को नदरि निहाले । मेरा प्रभु अति ऊचो ऊचा करि किरपा आपि मिलावणिआ ।। ५ ।। माइआ मोहि इहु जगु सुता । नामु विसारि अंति विगुता । जिस ते सुता सो जागाए गुरमति सोझी पावणिआ ।। ६ ।। अपिउ पीऐ सो भरमु गवाए । गुर परसादि मुकति गति पाए । भगती रता सदा बैरागी आपु मारि मिलावणिआ ।। ७ ।। आपि उपाए धंधै लाए । लख चउरासी रिजकु आपि अपड़ाए । नानक नामु धिआइ सचि राते जो तिसु भावै सु कार करावणिआ ।।८।।४।।५।।

जो जीव उपदेश द्वारा जीवित भाव से मृत है, वही मृत माना जाता है। ऐसे मृत को काल नहीं दबोच सकता और न उसे दुःख संतप्त कर सकता है, अर्थात् वह व्यक्ति जन्म-मरण आदि से मुक्त हो जाता है। परमात्मा में मिलकर जीव-रूपी ज्योति अभेद हुई है तथा मन श्रवण-मनन द्वारा सत्य-स्वरूप में समा गया है ।। १ ।। मैं तन-मन से उनपर न्योछावर हूँ, जो हरि-नाम से शोभा पाते हैं और जो सतिगुरु की सेवा कर सत्य में चित्त लगाये हैं। गुरु की शिक्षा लेनेवाले शान्ति में समा गए हैं ।। १ ।। रहाउ ।। (परमेश्वर के भजन बिना) देह कच्ची है, अर्थात् नाशमान है और जीवात्मा देह-रूपी कच्चा वस्त्र धारण किए है, इसलिए द्वैत-भाव में लगी अपने स्वरूप को प्राप्त नहीं कर सकती। वह रात-दिन चौरासी योनियों में जलती फिरती है और उस वाहिगुरु स्वामी के बिना बहुत दुःख पाती

है ॥ २ ॥ देह और जाति आगे नहीं जाती, अर्थात् जीवात्मा परलोक में अकेला जाता है, स्थूल देह नहीं। जहाँ लेखा माँगा जाता है वहाँ वह सत्य कमाने से छूट जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि लौकिक सुखोपभोग की सामग्रियाँ साथ नहीं जातीं जिनके लोभ में फँसकर जीव परमतत्व को विस्मृत कर देता है। जो सतिगुरु की सेवा करते हैं वे दैवी गुणों के स्वामी लोक-परलोक में वाहिगुरु में समा जाते हैं, अर्थात् जीवनमुक्त हो जाते हैं ॥ ३ ॥ जिन्होंने वाहिगुरु के भय और प्रेम जैसे साधनों का शृंगार किया है, सतिगुरु की कृपा से उन्होंने अपना स्वरूप अन्तःकरण में ही पाया है। और वह दिन-रात्रि निरन्तर ही उसके स्वरूप में रमण करते हैं। मजीठ के रंग के समान उन्होंने परमात्मरंग में अपने आपको रंग लिया है, अर्थात् जैसे मजीठ का रंग सच्चा होता है, उसी प्रकार उसने आत्मानन्द महसूस किया है ॥ ४ ॥ हरि-रूपी पति सबके साथ बसता है, परन्तु गुरु की कृपा से ही कोई ज्ञान-दृष्टि द्वारा उसे देखता है। मेरा प्रभु सर्वोच्च है और अपनी दया से अपने साथ मिलानेवाला है ॥ ५ ॥ माया-मोह के कारण जीव अविद्या निद्रा में सोया हुआ है और नाम विस्मरण कर अन्त में दुखी हुआ है। जिस परमेश्वर के संकल्प से जीव सोया है वही जगाता है। भाव यह है कि जीव परतन्त्र है, परन्तु यह ज्ञान गुरु की शिक्षा से होता है ॥ ६ ॥ जो गुरु का उपदेश-रूपी अमृतपान करता है वह भ्रम को गँवा देता है और गुरु-कृपा से मुक्ति को प्राप्त करता है। अभेद भक्ति में अनुरक्त होकर अपने अहंकार को मारकर स्वयं को हरि में मिलाया है ॥ ७ ॥ आप ही वाहिगुरु ने जीव उत्पन्न कर उन्हें धन्धों में लगाया है और चौरासी लाख योनियों को आप ही अन्न पहुँचाता है। गुरुजी कहते हैं जो नाम स्मरण कर सत्य-स्वरूप में अनुरक्त हैं, वे तेरी (इच्छानुसार) जो तुझे भला लगता है सो काम करते हैं ॥ ८ ॥ ४ ॥ ५ ॥

॥ माझ महला ३ ॥ अंदरि हीरा लालु बणाइआ। गुर कै सबदि परखि परखाइआ। जिन सचु पलै सचु वखाणहि सचु कसवटी लावणिआ ॥ १ ॥ हउ वारी जीउ वारी गुर की बाणी मंनि वसावणिआ। अंजन माहि निरंजनु पाइआ जोती जोति मिलावणिआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ इसु काइआ अंदरि बहुतु पसारा। नामु निरंजनु अति अगम अपारा। गुरमुखि होवै सोई पाए आपे बखसि मिलावणिआ ॥ २ ॥ मेरा ठाकुरु सचु द्रिड़ाए। गुरपरसादी सचि चितु लाए। सचो सचु वरतै सभनी थाई सचे सचि समावणिआ ॥ ३ ॥ वेपरवाहु सचु मेरा पिआरा। किलविख अवगण काटणहारा। प्रेम प्रीति सदा धिआईऐ भै

भाइ भगति द्रिड़ावणिआ ॥ ४ ॥ तेरी भगति सची जे सचे भावै । आपे देइ न पछोतावै । सभना जीआ का एको दाता सबदे मारि जीवावणिआ ॥ ५ ॥ हरि तुधु बाझहु मै कोई नाही । हरि तुधै सेवी तै तुधु सालाही । आपे मेलि लैहु प्रभ साचे पूरै करमि तूं पावणिआ ॥ ६ ॥ मै होरु न कोई तुधै जेहा । तेरी नदरी सीझसि देहा । अनदिनु सारि समालि हरि राखहि गुरमुखि सहजि समावणिआ ॥ ७ ॥ तुधु जेवडु मै होरु न कोई । तुधु आपे सिरजी आपे गोई । तूं आपे ही घड़ि भंनि सवारहि नानक नामि सुहावणिआ ॥ ८ ॥ ५ ॥ ६ ॥

ज्ञानी पुरुषों का अन्तर्मन शुद्ध-स्वरूप एवं प्रिय बना हुआ है । जिनको सतिगुरु के उपदेश की परख हो गई है, उन्होंने निशंक होकर निश्चय कर लिया है । जिनके हृदय-रूपी पल्ले में सत्य नाम है वे मुख से भी सत्य का बखान करते हैं । उन्हें सतिगुरु ने सच्चे साधनों की कसौटी दी है ॥ १ ॥ मैं तन-मन से उनपर बलिहारी हूँ, जिन्होंने सतिगुरु की वाणी मन में बसाई है और माया के अञ्जन के बीच ही निरञ्जन वाहिगुरु को पाया है, तथा ज्योति-रूप में ज्योति को मिलाया है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ इस काया के भीतर बहुत कुछ विद्यमान है । जो निरञ्जन प्रभु अगम्य और अपार हैं, वे भी इसी काया में विद्यमान हैं । जो जीव गुरमुख होता है वही उसे पाता है और वह आप ही ज्ञान देकर अर्थात् गुरुमुख बनाकर अपने साथ मिला लेता है ॥ २ ॥ जिनको मेरा ठाकुर सत्य में लगाता है, वे सतिगुरु की कृपा से चित्त को सत्य में लगाते हैं । उनके लिए सर्वत्र सत्य ही सक्रिय है और वे सत्य-स्वरूप होकर सत्य में समाए हैं ॥ ३ ॥ मेरा प्रिय सदा बेपरवाह है और अवगुणों तथा पापों को काटनेवाला है । इसलिए अत्यन्त प्रेम से उनका स्मरण करें । जिन्हें प्रेमा-भक्ति प्राप्त हुई है, वे इस भक्ति में आप अनुरक्त होते हैं और दूसरों को भी अनुरक्त करते हैं ॥ ४ ॥ हे सत्यस्वरूप ! तेरी भक्ति सच्ची है, अर्थात् प्राप्तव्य है यदि तुझे स्वीकार हो, अर्थात् जीव के कर्म तुझे भले लगें । जिसे तू अपनी भक्ति देता है, वह पश्चाताप नहीं करता । समस्त जीवों का दाता तू एक ही है और तू ही सतिगुरु के उपदेश से लौकिक रूप से मारकर अपनी ओर से जीवंत बना लेता है । कहने का अभिप्राय यह है कि जिस पर वाहिगुरु की कृपा है, वह लौकिक रूप से वीतरागी होकर भी अर्थात् सांसारिक दृष्टि से मृत होकर भी ईश्वरीय प्रसाद के कारण अमर है ॥ ५ ॥ हे हरि ! तेरे बिना मेरा कोई नहीं है । इसलिए तेरी सेवा करूँ और तेरी ही स्तुति करूँ । हे प्रभु सत्य-स्वरूप, आप मुझे अपने में मिला लो ।

भाग्यशाली जीवों ने तुझे पाया है ।। ६ ।। तेरे जैसा मुझे कोई दूसरा प्रतीत नहीं होता, क्योंकि तेरी कृपा से शरीर सहित कल्याण होता है, अर्थात् जीव जीवन-मुक्त होता है। परमात्मा रात-दिन सब जीवों की सँभाल करता है, इसलिए गुरमुख स्वाभाविक ही तुझमें समाए हैं ।। ७ ।। तुझ जैसा महान् मुझे दूसरा कोई नहीं लगता। तूने आप ही सृष्टि रची है और आप ही विनष्ट की है। तू आप ही प्रपंच को रचता है, आप ही पालता है और आप ही प्रलय करता है। सतिगुरु जी कहते हैं कि हे नामी, तू परमार्थ से असंग होकर शोभायमान है ।। ८ ।। ५ ।। ६ ।।

।। माझ महला ३ ।। सभ घट आपे भोगणहारा। अलखु वरतै अगम अपारा। गुर कै सबदि मेरा हरि प्रभु धिआईऐ सहजे सचि समावणिआ ।। १ ।। हउ वारी जीउ वारी गुरसबदु मंनि वसावणिआ। सबदु सूझै ता मन सिउ लूझै मनसा मारि समावणिआ ।। १ ।। रहाउ ।। पंच दूत मुहहि संसारा। मनमुख अंधे सुधि न सारा। गुरमुखि होवै सु अपणा घरु राखै पंच दूत सबदि पचावणिआ ।। २ ।। इकि गुरमुखि सदा सचै रंगि राते। सहजे प्रभु सेवहि अनदिनु माते। मिलि प्रीतम सचे गुण गावहि हरि दरि सोभा पावणिआ ।। ३ ।। एकम एकै आपु उपाइआ। दुबिधा दूजा त्रिबिधि माइआ। चउथी पउड़ी गुरमुखि ऊची सचो सचु कमावणिआ ।। ४ ।। सभु है सचा जे सचे भावै। जिनि सचु जाता सो सहजि समावै। गुरमुखि करणी सचे सेवहि साचे जाइ समावणिआ ।। ५ ।। सचे बाझहु को अवरु न दूआ। दूजै लागि जगु खपि खपि मूआ। गुरमुखि होवै सु एको जाणै एको सेवि सुखु पावणिआ ।। ६ ।। जीअ जंत सभि सरणि तुमारी। आपे धरि देखहि कची पकी सारी। अनदिनु आपे कार कराए आपे मेलि मिलावणिआ ।। ७ ।। तूं आपे मेलहि वेखहि हदूरि। सभ महि आपि रहिआ भरपूरि। नानक आपे आपि वरतै गुरमुखि सोझी पावणिआ ।। ८ ।। ६ ।। ७ ।।

प्रस्तुत राग में परमेश्वर के स्वरूप के सम्बन्ध में गुरुजी की धारणा है कि हे भाई ! सर्व-प्राणियों में हरि आप ही भोगनेवाला है। वह अप्रत्यक्ष, अगम्य, अपार आप ही सर्वत्र व्यापक है, परन्तु गुरु के उपदेश से ऐसे हरि-प्रभु को स्मरण करना चाहिए। जिन्होंने हरि-प्रभु को स्मरण किया है, वे सहज ही सत्य में समा गए हैं ।। १ ।। जो गुरु का उपदेश मन में बसाते हैं, मैं उनपर मन, तन से बलिहारी जाता हूँ। सतिगुरु के

उपदेश से जिसे परलोक का ज्ञान हुआ है, वह मन के साथ झगड़ता है, अर्थात् विकारों से मन को हटाता है और वासना को मारकर वाहिगुरु में समा जाता है ॥१॥रहाउ॥ पाँच दूत (काम, क्रोध, मद आदि) संसार को लूट रहे हैं, परन्तु जो ज्ञानहीन अन्धे मनमुख हैं, उन्हें इसकी सुधि नहीं। जो गुरमुख होता है, वह अपने घर की रक्षा करता है, अर्थात् वह अपने हृदय की लूट-खसोट से रक्षा करता है, जिसे पाँचों विकार लूटने को आतुर रहते हैं। इसलिए उसने पाँचों दूत सतिगुरु के उपदेश से जलाए हैं ॥ २ ॥ एक गुरुमुख जन ही हैं, जो सदा सच्चे के प्रेम में रंगे रहते हैं और रात-दिन मस्त हुए स्वाभाविक ही प्रभु की सेवा करते हैं। और प्रियतम प्यारे गुरु से मिलकर सच्चे के गुण गाते हैं, इसलिए हरि के दरबार में शोभा पाते हैं ॥ ३ ॥ उस अद्वितीय वाहिगुरु ने आप ही जगत उत्पन्न किया है। इस जगत में उन्हीं को दुबिधा हुई है, जो द्वैतभाव में उलझे हैं और जो त्रिगुणात्मक (सत, रज, तम त्रैगुणी) माया से प्रभावित हैं। चौथी पउड़ी अर्थात् जो तुरीया पद है, उसमें गुरमुख जीव पहुँच गए हैं क्योंकि उन्होंने मन, तन से सत्य को कमाया है ॥ ४ ॥ हे भाई ! जो सच्चे परमात्मा को भला लगे, वही सब कुछ सार्थक है, अर्थात् वास्तविक है। जिसने सत्य को जाना है, वही ब्रह्म में समाता है। गुरमुखों की यही करनी है कि वे सत्य-स्वरूप परमात्मा की उपासना करते हैं और वे सत्य में समा जाते हैं ॥ ५ ॥ सत्य-स्वरूप परमात्मा से अलग कोई भी दूसरा सत्य नहीं, इसलिए द्वैतभाव में लगकर जग खप-खपकर मृत्यु को प्राप्त हुआ है। जो गुरमुख होते हैं, वे एक ईश्वर को ही जानते हैं और एक की ही सेवा कर सुख पाते हैं ॥ ६ ॥ गुरमुख इस प्रकार प्रार्थना करते हैं कि जितने जीव-जन्तु हैं, सभी तेरी शरणागत हैं। तू आप ही सृष्टि को धारण कर कच्ची-पक्की सारों को देखता है, अर्थात् भले-बुरे को पहचानता है। रात-दिन आप ही काम-काज कराता है और आप सत्संग के मेल में मिलाता है ॥ ७ ॥ जिनको तू आप सत्संग में मिलाता है, वे तुझे निकट ही देख लेते हैं। वह आप ही सब में परिव्याप्त हो रहा है। गुरुजी कहते हैं कि तू आप सर्वत्र व्याप्त है और गुरमुखों को ज्ञान देता है ॥ ८ ॥ ६ ॥ ७ ॥

॥ माझ महला ३ ॥ अंम्रित बाणी गुर की मीठी। गुरमुखि विरलै किनै चखि डीठी। अंतरि परगासु महा रसु पीवै दरि सचै सबदु वजावणिआ ॥ १ ॥ हउ वारी जीउ वारी गुर चरणी चितु लावणिआ। सतिगुरु है अंम्रितसरु सचा मनु नावै मैलु चुकावणिआ ॥ १ ॥ रहाउ। तेरा सचे किनै अंतु न पाइआ। गुर परसादि किनै विरलै चितु लाइआ। तुधु सालाहि न रजा

कबहूं सचे नावै की भुख लावणिआ ॥ २ ॥ एको वेखा अवरु न बीआ । गुरपरसादी अंम्रितु पीआ । गुर कै सबदि तिखा निवारी सहजे सूखि समावणिआ ॥ ३ ॥ रतनु पदारथु पलरि तिआगै । मनमुखु अंधा दूजै भाइ लागै । जो बीजै सोई फलु पाए सुपनै सुखु न पावणिआ ॥ ४ ॥ अपनी किरपा करे सोई जनु पाए । गुर का सबदु मंनि वसाए । अनदिनु सदा रहै भै अंदरि भै मारि भरमु चुकावणिआ ॥ ५ ॥ भरमु चुकाइआ सदा सुखु पाइआ । गुर परसादि परम पदु पाइआ । अंतरु निरमलु निरमल बाणी हरिगुण सहजे गावणिआ ॥ ६ ॥ सिम्रिति सासत बेद वखाणै । भरमे भूला ततु न जाणै । बिनु सतिगुर सेवे सुखु न पाए दुखो दुखु कमावणिआ ॥ ७ ॥ आपि करे किसु आखै कोई । आखणि जाईऐ जे भूला होई । नानक आपे करे कराए नामे नामि समावणिआ ॥ ८ ॥ ७ ॥ ८ ॥

[प्रस्तुत अंश में गुरमुखों की वाणी का फल तथा स्वरूप का वर्णन है ।]

सतिगुरु की अमृत-रूपी वाणी मीठी है, लेकिन किसी विरले ने ही गुरु द्वारा इसे चखकर देखा है, अर्थात् धारण किया है । जब हृदय में ज्ञान का प्रकाश होता है, तब आत्मानन्द को पान करते हैं और सत्संग में शबद को जपते हैं ॥ १ ॥ मैं मन, तन से उनपर बलिहारी हूँ जो गुरु के चरणों में चित्त लगाते हैं । सतिगुरु आत्म-रूपी जल का सच्चा सरोवर है । जो पुरुष मन से उसमें स्नान करते हैं, उन्होंने राग-द्वेष के मैल को समाप्त कर दिया है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गुरमुख इस प्रकार प्रार्थना करते हैं कि हे सच्चे परमेश्वर, तेरा अन्त किसी ने नहीं पाया, और सतिगुरु की कृपा से किसी विरले ने तुझमें मन लगाया है । तेरी गुणस्तुति करके मैं कभी तृप्त नहीं होता । अपने सत्य-नाम की चाह लगानेवाला तू ही है ॥ २ ॥ जिन्होंने सतिगुरु की कृपा से उपदेश-रूपी अमृत-पान किया है, उन्होंने केवल एक को ही देखा है, कभी भी किसी दूसरे का सहारा नहीं लिया । जिन्होंने सतिगुरु के उपदेश से तृष्णा मिटाई है, वे पुरुष स्वतः ही सुख में समाए हैं ॥ ३ ॥ गुरमुखों की स्थिति के पश्चात् अगले भाग में मनमुखों का विवरण है । मनमुखों ने अमूल्य नाम-पदार्थ को पुआल की तरह खाली अर्थात् व्यर्थ जानकर त्याग दिया है । वे (मनमुख) ज्ञान-नेत्रों से हीन होकर दूसरे भाव में लगे हैं । जैसा बोते हैं, वैसा ही फल पाते हैं, अर्थात् जो नीच कर्म-रूपी बीज बोते हैं, वे दुःख-रूपी फल पाते हैं और वे कभी स्वप्न में भी सुख नहीं पाते ॥ ४ ॥ जिसपर प्रभु कृपा करता

है,वही पुरुष गुरु को पाता है और गुरु का उपदेश मन में बसाता है। ऐसा पुरुष ही सदा परमेश्वर के भय के भीतर रहता है। इसीसे उसने यमों का भय समाप्त कर भ्रम को हटाया है ॥ ५ ॥ जिसने भ्रम हटाया है, उसने सदा सुख पाया है और सतिगुरु की कृपा से मोक्ष-पद को पाया है। जो सहज ही हरि के गुण गाता है, उसका हृदय भी निर्मल है और उनकी वाणी भी निर्मल है ॥ ६ ॥ (वह व्यक्ति जिसका भ्रम दूर नहीं हुआ है) यदि वेद, शास्त्र तथा स्मृतियों का कथन करता है, तो भी भ्रमों में भटका हुआ सार वस्तु को नहीं जानता। वह सतिगुरु की सेवा के बिना सुख नहीं पाता, इसलिए सदा दुःख ही दुःख पाता है ॥ ७ ॥ सब कुछ वाहिगुरु आप करता है, इसलिए कोई किसे कहे कि इस प्रकार कर; क्योंकि कहने के लिए तो तब जाएँ, जब वह भूलकर करता हो। गुरुजी कहते हैं वह आप ही जीवों की सृजना करता है और आप ही उनसे कर्म कराता है, लेकिन जो नाम जपता है, वही नामी में समा जाता है ॥ ८ ॥ ७ ॥ ८ ॥

॥ माझ महला ३ ॥ आपे रंगे सहजि सुभाए। गुर कै सबदि हरिरंगु चड़ाए। मनु तनु रता रसना रंगि चलूली भै भाइ रंगु चड़ावणिआ ॥ १ ॥ हउ वारी जीउ वारी निरभउ मंनि वसावणिआ। गुर किरपा ते हरि निरभउ धिआइआ बिखु भउजलु सबदि तरावणिआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मनमुख मुगध करहि चतुराई। नाता धोता थाइ न पाई। जेहा आइआ तेहा जासी करि अवगण पछोतावणिआ ॥ २ ॥ मनमुख अंधे किछू न सूझै। मरणु लिखाइ आए नही बूझै। मनमुख करम करे नही पाए बिनु नावै जनमु गवावणिआ ॥ ३ ॥ सचु करणी सबदु है सारु। पूरै गुरि पाईऐ मोखदुआरु। अनदिनु बाणी सबदि सुणाए सचि राते रंगि रंगावणिआ ॥ ४ ॥ रसना हरि रसि राती रंगु लाए। मनु तनु मोहिआ सहजि सुभाए। सहजे प्रीतमु पिआरा पाइआ सहजे सहजि मिलावणिआ ॥ ५ ॥ जिसु अंदरि रंगु सोई गुण गावै। गुर कै सबदि सहजे सुखि समावै। हउ बलिहारी सदा तिन विटहु गुर सेवा चितु लावणिआ ॥ ६ ॥ सचा सचो सचि पतीजै। गुर परसादी अंदरु भीजै। बैसि सुथानि हरिगुण गावहि आपे करि सति मनावणिआ ॥ ७ ॥ जिस नो नदरि करे सो पाए। गुरपरसादी हउमै जाए। नानक नामु वसै मन अंतरि दरि सचै सोभा पावणिआ ॥ ८ ॥ ८ ॥ ९ ॥

(जो नाम जपकर नामी में समा गए हैं, उनकी दशा को यहाँ गुरुजी ने बतलाया है।) जिन्हें हरि ने आप अनुरक्त किया है, अर्थात् जिन्हें आप वाहिगुरु ने अपने रंग में रंगा है, वे सहज ही शोभायमान हो रहे हैं, क्योंकि गुरु-उपदेश से उनपर वाहिगुरु अपना रंग चढ़ाता है ॥ १ ॥ मैं मन-तन से उसपर बलिहारी जाता हूँ, जो निर्भय परमेश्वर को मन में बसाते हैं और सतिगुरु की कृपा से निर्भय हरि को स्मरण कर दूसरों को उपदेश देकर भवसागर-रूपी विष से पार कर लेते हैं, अर्थात् बचा लेते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मनमुख बाहरी चतुराइयाँ करता है और स्नान आदि कार्यों में लगा रहता है, लेकिन उसे कुछ बोध नहीं होता, अर्थात् उसकी तमाम बाहरी चतुराइयाँ व्यर्थ जाती हैं। वह जैसा आया है वैसा ही जाएगा, अर्थात् खाली आया है और खाली ही जाएगा तथा अवगुणों के कारण पश्चाताप करता है ॥ २ ॥ मनमुख अन्धे को कुछ नहीं दीखता। उसे यह नहीं सूझता कि सब जीव मरण लिखाकर आए हैं। मनमुख वाहिगुरु के नाम के बिना कर्म करता है, इसलिए उसे परमेश्वर-प्राप्ति नहीं होती और वह जन्म बरबाद करता है ॥ ३ ॥ जिनकी करनी सच्ची है और उपदेश श्रेष्ठ है, उन्हें पूर्णगुरु द्वारा मोक्ष का द्वार मिलता है। रात-दिन सतिगुरु की वाणी का उपदेश सुनाते हैं, अर्थात् सतिगुरु के उपदेशों का पाठ करते हैं। वे आप सच्चे के प्रेम में अनुरक्त हैं और दूसरों को अनुरक्त करते हैं ॥ ४ ॥ जिनकी जिह्वा हरि के प्रेम-रस में अनुरक्त है और मन-तन सहज-स्वभाव ही आकृष्ट है, उन्होंने स्वतः ही अत्यन्त-प्रिय गुरु को पाया है और वे सहज ही सहजपद में मिल गए हैं ॥ ५ ॥ जिनके मन में प्रेम है, वही गुण गाता है और सतिगुरु के उपदेश से सहज ही सुख-स्वरूप में समा जाता है। मैं उनपर हमेशा बलिहारी जाता हूँ, जो गुरु की सेवा में चित्त लगाते हैं ॥ ६ ॥ सत्य-स्वरूप वाहिगुरु सत्य-नाम से विश्वस्त होता है अर्थात् सत्य-नाम की उपासना से ही वह विश्वास करता है। सतिगुरु की कृपा से ही हृदय परमात्म-प्रेम में भीगता है। गुरमुख उत्तम स्थान अर्थात् सत्संग में बैठकर हरि के गुण गाते हैं और जिज्ञासु जनों को आप सत्य-स्वरूप का बोध कराते हैं अर्थात् उनके परामर्श से जिज्ञासु जन परमात्मा को स्वीकारते हैं ॥ ७ ॥ जिसपर वह कृपा करता है, वही नाम पाता है और सतिगुरु की कृपा से अहंकार और ममता समाप्त हो जाती है। गुरुजी कहते हैं, जिनके मन में नाम बसता है, वही सच्चे के दरबार में शोभा पाते हैं ॥ ८ ॥ ८ ॥ ९ ॥

॥ माझ महला ३ ॥ सतिगुरु सेविऐ वडी वडिआई। हरि जी अचिंतु वसै मनि आई। हरि जीउ सफलिओ बिरखु है अंम्रितु जिनि पीता तिसु तिखा लहावणिआ ॥ १ ॥ हउ वारी

जीउ वारी सचु संगति मेलि मिलावणिआ। हरि सत संगति आपे मेलै गुरसबदी हरिगुण गावणिआ ॥ १ ॥ रहाउ॥ सतिगुरु सेवी सबदि सुहाइआ। जिनि हरि का नामु मंनि वसाइआ। हरि निरमलु हउमै मैलु गवाए दरि सचै सोभा पावणिआ ॥ २ ॥ बिनु गुर नामु न पाइआ जाइ। सिध साधिक रहे बिललाइ। बिनु गुर सेवे सुखु न होवी पूरै भागि गुरु पावणिआ ॥ ३ ॥ इहु मनु आरसी कोई गुरमुखि वेखै। मोरचा न लागै जा हउमै सोखै। अनहत बाणी निरमल सबदु वजाए गुरसबदी सचि समावणिआ ॥ ४ ॥ बिनु सतिगुर किहु न देखिआ जाइ। गुरि किरपा करि आपु दिता दिखाइ। आपे आपि आपि मिलि रहिआ सहजे सहजि समावणिआ ॥ ५ ॥ गुरमुखि होवै सु इकसु सिउ लिव लाए। दूजा भरमु गुरसबदि जलाए। काइआ अंदरि वणजु करे वापारा नामु निधानु सचु पावणिआ ॥ ६ ॥ गुरमुखि करणी हरि कीरति सारु। गुरमुखि पाए मोखदुआरु। अनदिनु रंगि रता गुण गावै अंदरि महलि बुलावणिआ ॥ ७ ॥ सतिगुरु दाता मिलै मिलाइआ। पूरै भागि मनि सबदु वसाइआ। नानक नामु मिलै वडिआई हरि सचे के गुण गावणिआ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥

[यहाँ उन पुरुषों की सेवा की महिमा बतलाई है, जिन्होंने सतिगुरु की कृपा से अहंत्व, ममत्व को समाप्त कर दिया है।]

सतिगुरु की सेवा से बड़ी महानता मिलती है और हरि जी अकस्मात् ही मन में आ बसते हैं। हरि जी सफल वृक्ष हैं, उसका फल ज्ञान-रूपी अमृत है। जिन्होंने गुरु के द्वारा ज्ञान-अमृत पान किया है, वह उनकी तृष्णाएँ समाप्त कर देता है ॥ १ ॥ मैं उन पर तन-मन से बलिहारी जाता हूँ, जो सत्य-रूपी सत्संगति में अपने आपको मिलाते हैं। हरि जिनको अपने आप ही सत्संगति में मिलाता है, वे सतिगुरु के उपदेश से हरि के गुण गाते हैं ॥ १ ॥ रहाउ॥ जो सतिगुरु की सेवा करता है, वह गुरु-उपदेश (शब्द) से शोभायमान हो रहा है, (क्योंकि) उसने हरि का नाम अपने मन में बसाया है। निर्मल हरि जिनके हृदय से अहंत्व, ममत्व दूर करता है, वही सच्चे वाहिगुरु के द्वार पर शोभा पाते हैं ॥ २ ॥ सतिगुरु के बिना नाम नहीं जपा जाता। सिद्ध-साधक सब विलाप कर रहे हैं। गुरु-सेवा के बिना सुख नहीं होता, लेकिन बड़े भाग्य से गुरु मिलता है ॥ ३ ॥ इस मन-दर्पण को कोई गुरमुख देखता है। जब अहंत्व, ममत्व-रूपी जल को सोख लिया

जाय तो मन को जंग नहीं लगता। अनहद वाणी निर्मल है, अर्थात् परमात्मा का नाम-जाप निर्मल है, जिसको गुरु-उपदेश से निरन्तर बजाते हैं अर्थात् जपते हैं, वे सत्य-स्वरूप परमेश्वर में समा जाते हैं ॥ ४ ॥ सतिगुरु के बिना परमेश्वर का रूप या गुण कुछ नहीं देखा जाता। जिस पर सतिगुरु ने कृपा की है, उसे परमात्मा ने अपना स्वरूप दिखा दिया है। वह परमेश्वर आप ही विश्वरूप हो रहा है, और उसमें आप ही मिल रहा है। (जिनका ऐसा विश्वास है) वे सहज स्वाभाविक ही सहज पद में समा जाते हैं ॥ ५ ॥ जो गुरमुख होता है, वह एक परमेश्वर से नेह लगाता है, और द्वैत, भ्रम आदि गुरु के उपदेश से जला देता है। परमात्मा के नाम का सच्चा भण्डार पाकर और देह के भीतर रहकर नाम का जपना-जपाना अर्थात् नाम-व्यापार करता है ॥ ६ ॥ गुरमुखों की करनी यही है कि वे हरि की कीर्त्ति को सँभालते हैं। इसलिए वे गुरमुख मोक्ष का द्वार पाते हैं। जो परमात्मा के प्रेम में रंगा हुआ निरन्तर उसके गुण गाता है, उसे आत्म-स्वरूप में बुला लिया जाता है, अर्थात् उसे परमात्म-प्राप्ति होती है ॥ ७ ॥ सतिगुरु दाता परमेश्वर का मिलाया हुआ मिलता है, परन्तु कोई सौभाग्यशाली ही गुरु का उपदेश मन में बसाता है। गुरुजी कहते हैं, जो सच्चे हरि के गुण गाता है, उसे नाम-स्मरण से प्रशंसा मिलती है ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥

॥ माझ महला ३ ॥ आपु वञाए ता सभ किछु पाए। गुरसबदी सची लिव लाए। सचु वणंजहि सचु संघरहि सचु वापारु करावणिआ ॥ १ ॥ हउ वारी जीउ वारी हरिगुण अनदिनु गावणिआ। हउ तेरा तूं ठाकुरु मेरा सबदि वडिआई देवणिआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ वेला वखत सभि सुहाइआ। जितु सचा मेरे मनि भाइआ। सचे सेविऐ सचु वडिआई गुर किरपा ते सचु पावणिआ ॥ २ ॥ भाउ भोजनु सतिगुरि तुठै पाए। अनरसु चूकै हरिरसु मंनि वसाए। सचु संतोखु सहज सुखु बाणी पूरे गुर ते पावणिआ ॥ ३ ॥ सतिगुरु न सेवहि मूरख अंध गवारा। फिरि ओइ किथहु पाइनि मोखदुआरा। मरि मरि जंमहि फिरि फिरि आवहि जम दरि चोटा खावणिआ ॥ ४ ॥ सबदै सादु जाणहि ता आपु पछाणहि। निरमल बाणी सबदि वखाणहि। सचे सेवि सदा सुखु पाइनि नउनिधि नामु मंनि वसावणिआ ॥ ५ ॥ सो थानु सुहाइआ जो हरि मनि भाइआ। सत संगति बहि हरिगुण गाइआ। अनदिनु हरि सालाहहि साचा

निरमल नादु वजावणिआ ।। ६ ।। मनमुख खोटी रासि खोटा पासारा । कूड़ु कमावनि दुखु लागै भारा । भरमे भूले फिरनि दिन राती मरि जनमहि जनमु गवावणिआ ।। ७ ।। सचा साहिबु मै अति पिआरा । पूरे गुर कै सबदि अधारा । नानक नामि मिलै वडिआई दुखु सुखु सम करि जानणिआ ।।८।।१०।।११।।

अहंकार समाप्त करने पर सब कुछ प्राप्त होता है, अर्थात् अहंत्व दूर करने पर ही समस्त गुण प्राप्त होते हैं, और (तभी) गुरु-उपदेश से परमात्मा में अटूट लौ लगाते हैं। वे सच्चे उपदेश को स्वीकारते हैं, उसी का संचयन करते हैं, और सत्य का ही लेन-देन जिज्ञासुओं से कराते हैं ।। १ ।। मैं उन पर बलिहारी जाता हूँ, जो रात-दिन हरि के गुण गाते हैं और विनती करते हैं कि हे परमेश्वर मैं तेरा दास हूँ, तू मेरा ठाकुर है। तू अपने शब्द से हम दासों को महानता देनेवाला है ।। १ ।। रहाउ ।। मनुष्य-जन्म का समय तभी शोभायमान है जिस समय सच्चा वाहिगुरु मेरे मन को भाया है। सच्चे की सेवा करने से सच्ची महानता मिलती है, परन्तु सत्य-स्वरूप परमात्मा सतिगुरु की कृपा से प्राप्त होता है ।। २ ।। जब सतिगुरु प्रसन्न हुए तब ज्ञान आदि गुण-रूपी भोजन हमने पाए हैं और हरि-रस के मन में बसाने से इतर रस भूल गए हैं। सत्य, सन्तोष और आत्मसुख वाणी से प्राप्त होते हैं, अर्थात् सतिगुरु के उपदेश से प्राप्त होते हैं और वह वाणी पूर्ण-गुरु से प्राप्त होती है ।। ३ ।। जो सतिगुरु की सेवा नहीं करते, वे निपट मूर्ख हैं और ज्ञान-नेत्रों से हीन हैं, फिर वे कहाँ से ज्ञान पाएँगे, अर्थात् उनको मोक्ष-प्राप्ति कैसे होगी ? वे बारम्बार जन्मते-मरते हैं और तदन्तर पुनः जन्म लेकर यम के द्वार पर चोटें खाएँगे ।। ४ ।। जो गुरु-उपदेश का रस जाने और अपने स्वरूप को पहचाने तथा उपदेश-रूपी निर्मल वाणी का कथन करे, (उसे आवागमन के चक्र से मुक्ति मिल सकती है)। जो सच्चे की सेवा करते हैं, वे सदा सुख पाते हैं और पुनः नवनिधि-रूपी नाम मन में बसाते हैं ।। ५ ।। वह शरीर सुशोभित अर्थात् सफल है, जो हरि के मन को भाया है। जिसने सत्संगति में बैठकर हरि के गुणों को गाया है। जो रात-दिन सच्चे हरि को सराहते हैं और निर्मल नाद अर्थात् गुरु-उपदेश को बजाते हैं, अर्थात् जपते हैं ।। ६ ।। मनमुखों की पूँजी खोटी है और (उस पूँजी के प्रति श्रद्धायुक्त होने से) उनके कर्मों का प्रसार भी खोटा है। वे झूठ कमाते हैं, अर्थात् नीच कर्म करते हैं, इसलिए उन्हें भारी दुःख प्राप्त होता है। वे रात-दिन भ्रम में भूले फिरते हैं और जन्म को गँवाकर जन्मते-मरते रहते हैं ।। ७ ।। जो सच्चा साहिब मुझे अत्यन्त प्रिय है, पूर्णगुरु के उपदेश से मैंने उसका सहारा लिया है। गुरुजी कहते हैं कि नामी वाहिगुरु से जिनको महानता मिलती

है वे सुख-दुख बराबर मानकर सहन करते हैं, अर्थात् सुख-दुख को कर्मों का फल जानकर शोक-रहित रहते हैं ।। ८ ।। १० ।। ११ ।।

।। माझ महला ३ ।। तेरीआ खाणी तेरीआ बाणी । बिनु नावै सभ भरमि भुलाणी । गुर सेवा ते हरिनामु पाइआ बिनु सतिगुर कोइ न पावणिआ ।। १ ।। हउ वारी जीउ वारी हरि सेती चितु लावणिआ । हरि सचा गुर भगती पाईऐ सहजे मंनि वसावणिआ ।। १ ।। रहाउ ।। सतिगुरु सेवे ता सभ किछु पाए । जेही मनसा करि लागै तेहा फलु पाए । सतिगुरु दाता सभना वथू का पूरै भागि मिलावणिआ ।। २ ।। इहु मनु मैला इकु न धिआए । अंतरि मैलु लागी बहु दूजै भाए । तटि तीरथि दिसंतरि भवै अहंकारी होरु वधेरै हउमै मलु लावणिआ ।।३।। सतिगुरु सेवे ता मलु जाए । जीवतु मरै हरि सिउ चितु लाए । हरि निरमलु सचु मैलु न लागै सचि लागै मैलु गवावणिआ ।।४।। बाझु गुरू है अंध गुबारा । अगिआनी अंधा अंधु अंधारा । बिसटा के कीड़े बिसटा कमावहि फिरि बिसटा माहि पचावणिआ ।। ५ ।। मुकते सेवे मुकता होवै । हउमै ममता सबदे खोवै । अनदिनु हरि जीउ सचा सेवी पूरै भागि गुरु पावणिआ ।। ६ ।। आपे बखसे मेलि मिलाए । पूरे गुर ते नामु निधि पाए । सचै नामि सदा मनु सचा सचु सेवे दुखु गवावणिआ ।। ७ ।। सदा हजूरि दूरि न जाणहु । गुरसबदी हरि अंतरि पछाणहु । नानक नामि मिलै वडिआई पूरे गुर ते पावणिआ ।। ८ ।। ११ ।। १२ ।।

हे परमेश्वर, चारों दिशाएँ तेरी हैं, चारों वाणी तेरी हैं, लेकिन तेरे नाम के बिना चारों दिशाओं की सृष्टि भ्रम में भूली हुई है । गुरु की सेवा से तेरा नाम पाया जाता है । गुरु के बिना कोई नाम नहीं पा सकता ।। १ ।। मैं मन, तन से उन पर बलिहारी जाता हूँ, जो हरि के प्रति मन लगाते हैं, लेकिन सच्चा हरि, गुरु की भक्ति से प्राप्त होता है । जिन्होंने गुरु-भक्ति की है, उन्होंने सहज ही परमात्म-नाम बसाया है ।। १ ।। रहाउ ।। जब जीव सतिगुरु की सेवा करे, तब वह सब कुछ पाता है और जैसी इच्छा धारण कर सेवा में लगता है, वैसा ही फल प्राप्त होता है। सतिगुरु सब पदार्थों का दाता है, परन्तु तू बड़े भाग्यों से उसे मिलाता है ।। २ ।। यह विकृत मन एक वाहिगुरु को स्मरण नहीं करता, क्योंकि

हृदय में द्वैत-भाव की बहुत सी मैल लगी है। यह अहंकारी मन तीर्थों के किनारे देशान्तरों में फिरता है, इसलिए अहंकार की मैल और अधिक लगाता है ॥ ३ ॥ (यदि वह) सतिगुरु की सेवा करे तो मैल जाए। तदनन्तर वह अहंत्व को मार परमात्मा में चित्त लगाए। क्योंकि सत्य-स्वरूप निर्मल हरि को कोई मैल नहीं लगती और जो उस सच्चे के भजन में लगे हैं, उन्होंने मैल को गवाँया है ॥ ४ ॥ गुरु के बिना गहरा अँधेरा है। जो अज्ञानी है वह पूर्णरूपेण अन्धा है। अज्ञानी जीव पहले गर्भ के कीड़े थे, अब भी गर्भप्राप्ति कर्म करते हैं और ये मृत्यु के उपरान्त भी विष्ठा में जलेंगे ॥ ५ ॥ जो सतिगुरु के उपदेश से अहंत्व, ममत्व को दूर कर गुर-सेवा में लगता है वह मुक्त होता है और सौभाग्यवश सतिगुरु को पाकर रात-दिन सच्चे हरि की सेवा करता है ॥ ६ ॥ जिसे सत्संगति में मिलाकर हरि आप क्षमा करता है, वह सतिगुरु से नाम-रूपी निधि पाता है। और उनका मन सच्चे नामी को पाकर सदा सच्चा हुआ है। जो सच्चे की सेवा करते हैं, उन्होंने दुःख गवाँया है ॥ ७ ॥ वह परमेश्वर सदा निकट है, उसे दूर न समझो। सतिगुरु के उपदेश से हरि को हृदय में ही पहचानो। गुरुजी कहते हैं, नाम से महानता मिलती है, परन्तु वह नाम सतिगुरु से प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ ११ ॥ १२ ॥

॥ माझ महला ३ ॥ ऐथै साचे सु आगै साचे। मनु सचा सचै सबदि राचे। सचा सेवहि सचु कमावहि सचो सचु कमावणिआ ॥ १ ॥ हउ वारी जीउ वारी सचा नामु मंनि वसावणिआ। सचे सेवहि सचि समावहि सचे के गुण गावणिआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ पंडित पड़हि सादु न पावहि। दूजै भाइ माइआ मनु भरमावहि। माइआ मोहि सभ सुधि गवाई करि अवगण पछोतावणिआ ॥ २ ॥ सतिगुरु मिलै ता ततु पाए। हरि का नामु मंनि वसाए। सबदि मरै मनु मारै अपुना मुकती का दरु पावणिआ ॥ ३ ॥ किलविख काटै क्रोधु निवारे। गुर का सबदु रखै उरधारे। सचि रते सदा बैरागी हउमै मारि मिलावणिआ ॥ ४ ॥ अंतरि रतनु मिलै मिलाइआ। त्रिबिधि मनसा त्रिबिधि माइआ। पड़ि पड़ि पंडित मोनी थके चउथे पद की सार न पावणिआ ॥ ५ ॥ आपे रंगे रंगु चड़ाए। से जन राते गुर सबदि रंगाए। हरि रंगु चड़िआ अति अपारा हरि रसि रसि गुण गावणिआ ॥ ६ ॥ गुरमुखि रिधि सिधि सचु संजमु सोई। गुरमुखि गिआनु नामि मुकति होई।

गुरमुखि कार सचु कमावहि सचे सचि समावणिआ ॥ ७ ॥
गुरमुखि थापे थापि उथापे । गुरमुखि जाति पति सभु आपे ।
नानक गुरमुखि नामु धिआए नामे नामि समावणिआ ॥८॥१२॥१३॥

[प्रस्तुत अंश में उन जीवों की महिमा वर्णित है, जिन्हें परमात्मा ने महानता प्रदान की है ।]

वे पुरुष इस लोक में सच्चे हैं और परलोक में भी सच्चे हैं; उनका मन भी सच्चा है जो गुरु के उपदेश में रंगे हैं । शरीर से वह सच्चे नाम की सेवा करते हैं और वाणी से सच्चे की सेवा करते हैं, इस प्रकार वे सच्चे नाम को मन से कमाते हैं ॥ १ ॥ जो सच्चा नाम मन में बसाते हैं, और जो सच्चे के गुण गाते हैं, मैं उनपर बलिहारी जाता हूँ । जो भी सच्चे की सेवा करते हैं, वे सत्य में समा जाते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ पण्डित जन शास्त्रों को पढ़ते हैं, परन्तु रस नहीं पाते क्योंकि द्वैत-भाव के कारण माया में मन को भटकाते हैं । माया के मोह ने सब सुधि गवाँ दी है, और अवगुणों के कारण बहुत पश्चाताप करते हैं ॥ २ ॥ जब सतिगुरु मिले तो हरि का नाम मन में बसता है, और तभी वह तत्व वस्तु को पाता है । जो गुरु-उपदेश से अपना मन मारकर मरे, अर्थात् अहंत्व से मुक्त होवे वे मुक्ति का द्वार अर्थात् ज्ञान पाते हैं ॥ ३ ॥ इसलिए पापों को काट देवे और क्रोध को निवृत करे तथा सतिगुरु का उपदेश हृदय में धारण करे । जो सत्य में अनुरक्त हैं, वे सदा वैराग्यवान रहते हैं । वे अहंत्व को मार दूसरों को भी मिला लेते हैं ॥ ४ ॥ चेतन-रूपी रत्न भीतर ही है, परन्तु सतिगुरु के द्वारा मिलाने से वह मिलता है । गुरु के बिना तीन प्रकार की माया में लगकर जीव की बुद्धि में त्रिविध (सत, रज, तम) आकांक्षाएं आ जाती हैं । उसमें लगकर शास्त्र पढ़-पढ़ कर पण्डित थक गए हैं, और मौनी मौन कर-करके थक गए हैं, लेकिन गुरु के बिना चौथे पद का भेद नहीं पाते ॥ ५ ॥ जिनको आप वाहिगुरु ने प्रेम का रंग चढ़ाकर आनन्द में रंगा है, वे पुरुष गुरु-उपदेश में अनुरक्त हुए तल्लीन हैं । उन्हें हरि का रंग बहुत अधिक चढ़ गया है, इसलिए वे हरि के प्रेम-रस में रसमग्न होकर हरि के गुण गाते हैं ॥ ६ ॥ गुरमुखों की ऋद्धि, सिद्धि, सत्य और संयम वही है, इसीलिए गुरमुखों की मुक्ति नाम जपने से (अनुभूत) ज्ञान से हुई है । गुरमुख सच्ची भक्ति का धन्धा करते हैं, इसलिए ऐसा करने पर सच्चे वाहिगुरु में समा जाते हैं ॥ ७ ॥ गुरमुखों ने यह जान लिया है कि वाहिगुरु ने आप ही जगत को रचा है, और आप ही स्थापना कर पालन करता है, तथा आप ही प्रलय करता है । भाव यह है कि सृष्टि का उत्पादक, पालक तथा संहारक वाहिगुरु आप है । हमारी जात-पात,

सब कुछ हरि आप ही है। गुरुजी कहते हैं गुरमुख नाम की उपासना करते हैं, और नाम जपकर नामी में समा जाते हैं ॥ ८ ॥ १२ ॥ १३ ॥

॥ मांझ महला ३ ॥ उतपति परलउ सबदे होवै। सबदे ही फिरि ओपति होवै। गुरमुखि वरतै सभु आपे सचा गुरमुखि उपाइ समावणिआ ॥ १ ॥ हउ वारी जीउ वारी गुरु पूरा मंनि वसावणिआ। गुरते साति भगति करे दिनु राती गुण कहि गुणी समावणिआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गुरमुखि धरती गुरमुखि पाणी। गुरमुखि पवणु बैसंतरु खेलै विडाणी। सो निगुरा जो मरि मरि जंमै निगुरे आवण जावणिआ ॥ २ ॥ तिनि करतै इकु खेलु रचाइआ। काइआ सरीरै विचि सभु किछु पाइआ। सबदि भेदि कोई महलु पाए महले महलि बुलावणिआ ॥ ३ ॥ सचा साहु सचे वणजारे। सचु वणंजहि गुर हेति अपारे। सचु विहाझहि सचु कमावहि सचो सचु कमावणिआ ॥ ४ ॥ बिनु रासी को वथु किउ पाए। मनमुख भूले लोक सबाए। बिनु रासी सभ खाली चले खाली जाइ दुखु पावणिआ ॥ ५ ॥ इकि सचु वणंजहि गुरसबदि पिआरे। आपि तरहि सगले कुल तारे। आए से परवाणु होए मिलि प्रीतम सुखु पावणिआ ॥ ६ ॥ अंतरि वसतु मूड़ा बाहरु भाले। मनमुख अंधे फिरहि बेताले। जिथै वथु होवै तिथहु कोइ न पावै मनमुख भरमि भुलावणिआ ॥ ७ ॥ आपे देवै सबदि बुलाए। महली महलि सहज सुखु पाए। नानक नामि मिलै वडिआई आपे सुणि सुणि धिआवणिआ ॥ ८ ॥ १३ ॥ १४ ॥

सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय ब्रह्म से होती है, और महाप्रलय के बाद पुनः उत्पत्ति शब्द से होती है। गुरमुख जानते हैं कि सच्चा परमेश्वर आप ही सब में व्याप्त होकर विद्यमान है और वह आप ही सृष्टि को उत्पन्न कर प्रलय करनेवाला है ॥ १ ॥ मैं उनपर मन, तन से बलिहारी जाता हूँ, जो पूर्णगुरु को मन में बसाते हैं और सतिगुरु द्वारा रात-दिन भक्ति करते हैं, वे शान्त-रूप हैं। (वे) वाहिगुरु के गुणों का उच्चारण कर वाहिगुरु में समा जाते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ वह परमात्मा धरती में, पानी में, पवन में तथा अग्नि में या इन सबका एकत्रित रूप होकर आप ही आश्चर्यजनक खेल, खेल रहा है। जो गुणरहित है वह बारम्बार जन्मता-मरता है। निर्गुणी (गुणहीन) जीव संसार में आते-जाते हैं ॥ २ ॥

उस कर्त्ता ने एक खेल रचा है, अर्थात् मिथ्या जगत् उत्पन्न किया है और स्थूल शरीर में सब कुछ समाविष्ट किया है, अर्थात् समस्त गुण और चेतनसत्ता को प्रविष्ट किया। कोई विरला ही सतिगुरु के उपदेश से उस स्वरूप को पाता है, जो स्वरूप से अवगत हैं। अर्थात् ज्ञानी हैं वे दूसरों को महल में बुलाते हैं, अर्थात् स्वरूप की प्राप्ति कराते हैं ॥ ३ ॥ सच्चा साहूकार गुरु है और सच्चे वनजारे जिज्ञासु हैं। वे जिज्ञासु गुरु में अत्यन्त नेह करके सत्य-नाम को खरीदते हैं। वे सत्य खरीदते हैं, इसलिए सच्ची कमाई करते हैं। वे मन, तन से सच के कमाने वाले हो गए हैं ॥ ४ ॥ श्रद्धा-रूपी पूँजी के बिना आत्म-वस्तु को कोई कैसे पावे ? मनमुख लोग सब भटके हुए हैं। श्रद्धा-रूपी पूँजी के बिना सब खाली चले हैं, और खाली जाकर दुःख पाते हैं ॥ ५ ॥ जो गुरु के उपदेश के प्रिय हैं वे सत्य-नाम को खरीदते हैं, वे आप संसार से तरे हैं, और उन्होंने पूर्ण-कुल को तार दिया है। सो पुरुष आए हुए स्वीकृत हुए हैं, जिन्होंने प्रियतम को मिलकर सुख पाया है ॥ ६ ॥ आत्मतत्व के भीतर होने पर मूर्ख बाहर ढूँढता है, इसीलिए मनमुख अन्धे होकर भूतरूप अर्थात् अपवित्र होकर भूले हुए फिरते हैं। जिस स्थान पर आत्मवस्तु हो वहाँ जाकर उन्हें (मनमुखों को) कुछ नहीं मिलता, अर्थात् उन मनमुखों की दृष्टि में सत्संग का कोई महत्व नहीं। इसीसे वे आप भ्रम में भटके हुए हैं और दूसरों को भटकाते हैं ॥ ७ ॥ जिसको सतिगुरु आप बुलाकर उपदेश देता है, वह जिज्ञासु सत्य-स्वरूप सुख को सहज ही प्राप्त कर लेता है। गुरुजी कहते हैं, नाम के जपनेवाले को महानता मिलती है, और आप ही जिज्ञासु-रूप होकर गुरु के द्वार पर सुन-सुनकर स्मरण करता है ॥ ८ ॥ १३ ॥ १४ ॥

॥ माझ महला ३ ॥ सतिगुर साची सिख सुणाई। हरि चेतहु अंति होइ सखाई। हरि अगमु अगोचरु अनाथु अजोनी सतिगुर कै भाइ पावणिआ ॥ १ ॥ हउ वारी जीउ वारी आपु निवारणिआ। आपु गवाए ता हरि पाए हरि सिउ सहजि समावणिआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ पूरबि लिखिआ सु करमु कमाइआ। सतिगुरु सेवि सदा सुखु पाइआ। बिनु भागा गुरु पाईऐ नाही सबदै मेलि मिलावणिआ ॥ २ ॥ गुरमुखि अलिपतु रहै संसारे। गुर कै तकीऐ नामि अधारे। गुरमुखि जोरु करे किआ तिस नो आपे खपि दुखु पावणिआ ॥ ३ ॥ मनमुखि अंधे सुधि न काई। आतमघाती है जगत कसाई। निंदा करि करि बहु भारु उठावै बिनु मजूरी भारु पहुचावणिआ ॥ ४ ॥ इहु जगु वाड़ी मेरा प्रभु माली। सदा समाले को नाही खाली। जेही वासना पाए तेही

वरतै वासू वासु जणावणिआ ॥ ५ ॥ मनमुखु रोगी है संसारा। सुखदाता विसरिआ अगम अपारा। दुखीए निति फिरहि बिललादे बिनु गुर सांति न पावणिआ ॥ ६ ॥ जिनि कीते सोई बिधि जाणै। आपि करे ता हुकमि पछाणै। जेहा अंदरि पाए तेहा वरतै आपे बाहरि पावणिआ ॥ ७ ॥ तिसु बाझहु सचे मै होरु न कोई। जिसु लाइ लए सो निरमलु होई। नानक नामु वसै घट अंतरि जिसु देवै सो पावणिआ ॥ ८ ॥ १४ ॥ १५ ॥

[प्रस्तुत अंश में गुरु की महिमा को व्यक्त किया है।]

यह सच्ची शिक्षा सतिगुरु ने सुनाई है कि हे भाई, हरि को भजो, वही अन्तिम काल में तुम्हारा सहायक होगा। जो हरि मन तथा इन्द्रियों से परे है, जिसका कोई स्वामी नहीं है और जो अयोनि है, वह सतिगुरु के साथ प्रेम करने से पाया जाता है ॥ १ ॥ जिन्होंने अहंत्व को गवाँया है, मैं उन पर मन, तन से बलिहारी जाता हूँ, क्योंकि जब जीव 'मैं' को खोए तब हरि को पाता है और हरि के साथ सहज ही समा जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जो पूर्व-निर्धारित है अर्थात् प्रारब्ध-अनुसार भोग्य है, वही शुभ कर्म अब फलीभूत हुआ है। जिन्होंने सतिगुरु की सेवा की है, उन्होंने शाश्वत सुख पाया है। परन्तु उत्तम भाग्य के बिना सतिगुरु की प्राप्ति नहीं होती। गुरु उपदेश कर सत्संग में या परमेश्वर के साथ मिलाकर अभेद कर देते हैं ॥ २ ॥ गुरमुख जन संसार में निर्लिप्त रहते हैं और गुरु के आश्रय में नाम का सहारा लेते हैं। जो गुरमुख हैं, उनसे कोई मनमुख क्या झगड़ा करेगा और यदि करेगा तो आप ही खप कर दुःख पाएगा ॥ ३ ॥ मनमुख अंधे को कोई सुधि नहीं, क्योंकि वह आत्मघाती है, और (निर्दयी होकर) जगत् को कसाई के तुल्य देखता है। वह निन्दा करके पाप-रूपी भार उठाता है और बिना पारिश्रमिक भार पहुँचाता है ॥ ४ ॥ हे भाई, यह जगत् बगीचा है और मेरा प्रभु माली है। वह हमेशा सबको सँभालता है और कोई उसकी सँभाल (देखभाल) से अलग नहीं। (पूर्व कर्मों के अनुसार) ईश्वर जैसी वासना जीव के हृदय में डालता है, उसी प्रकार जीव कार्य करता है। वासना-युक्त जीव वासना का बोध अपनी प्रवृत्ति द्वारा कराता है ॥ ५ ॥ मनमुख होने के कारण अर्थात् नास्तिक होने के कारण संसार रोगी है, क्योंकि उसे सुखदाता, अगम्य, अपार प्रभु बिसर गया है। ऐसे जीव दुखी होकर नित्य विलाप करते फिरते हैं और सतिगुरु के बिना शान्ति नहीं पाते ॥ ६ ॥ जिस परमात्मा ने जीवों को उत्पन्न किया है, वही इनकी गति जानता है। यदि परमात्मा आप कृपा करे तो जीव हरि के हुक्म को पहचानता है। परमात्मा जैसा स्वभाव जीव को देता है,

वह उसी के अनुसार कार्यरत होता है और वह आप ही बाहर उसे (विकृत स्वभाव को) निकाल देता है ॥७॥ उस सत्यस्वरूप परमात्मा के बिना मेरा कोई नहीं है। वह हरि जिसे अपनी भक्ति में लगा लेता है, वह निर्मल हो जाता है। गुरुजी कहते हैं, जगत्-प्रसिद्ध वाहिगुरु हृदय में बसता है, लेकिन जिसे सतिगुरु परमात्म-नाम दे, अर्थात् उसका बोध कराए वही परमात्मा को पाता है॥ ८ ॥ १४ ॥ १५ ॥

॥ माझ महला ३ ॥ अंम्रित नामु मंनि वसाए। हउमै मेरा सभु दुखु गवाए। अंम्रित बाणी सदा सलाहे अंम्रिति अंम्रितु पावणिआ ॥ १ ॥ हउ वारी जीउ वारी अंम्रित बाणी मंनि वसावणिआ। अंम्रित बाणी मंनि वसाए अंम्रितु नामु धिआवणिआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ अंम्रितु बोलै सदा मुखि वैणी। अंम्रितु वेखै परखै सदा नैणी। अंम्रित कथा कहै सदा दिनु राती अवरा आखि सुणावणिआ ॥ २ ॥ अंम्रित रंगि रता लिव लाए। अंम्रितु गुरपरसादी पाए। अंम्रितु रसना बोलै दिनु राती मनि तनि अंम्रितु पीआवणिआ ॥ ३ ॥ सो किछु करै जु चिति न होई। तिस दा हुकमु मेटि न सकै कोई। हुकमे वरतै अंम्रित बाणी हुकमे अंम्रितु पीआवणिआ ॥ ४ ॥ अजब कंम करते हरि केरे। इहु मनु भूला जांदा फेरे। अंम्रित बाणी सिउ चितु लाए अंम्रित सबदि वजावणिआ ॥ ५ ॥ खोटे खरे तुधु आपि उपाए। तुधु आपे परखे लोक सबाए। खरे परखि खजानै पाइहि खोटे भरमि भुलावणिआ ॥ ६ ॥ किउकरि वेखा किउ सालाही। गुर परसादी सबदि सलाही। तेरे भाणे विचि अंम्रितु वसै तूं भाणै अंम्रितु पीआवणिआ ॥ ७ ॥ अंम्रित सबदु अंम्रित हरि बाणी। सतिगुरि सेविऐ रिदै समाणी। नानक अंम्रित नामु सदा सुखदाता पी अंम्रितु सभ भुख लहि जावणिआ ॥ ८ ॥ १५ ॥ १६ ॥

[प्रस्तुत भाग में उनकी महिमा का बखान किया है, जिन्होंने अमृत-रूपी नाम मन में बसाया है।]

हे भाई, जो अमृत-रूपी नाम मन में बसाते हैं, वे पुरुष मैं, मेरा संकल्प तथा समस्त दुःख गँवाते हैं। वे अमृत-रूपी वाणी से नाम की सराहना करते हैं और नाम-अमृत से अमरत्व को प्राप्त हुए हैं ॥ १ ॥ मैं उन पर बलिहारी जाता हूँ, जो अमृत-वाणी-रूपी हरि के नाम को मन में

बसाते हैं और अमृत-वाणी-रूपी सतिगुरु के उपदेश को मन में बसाकर अमृत-नाम स्मरण करते हैं ।। १ ।। रहाउ ।। जो गुरुमुख हैं, वे अमृत-नाम-रूपी वाणी को सदा बोलते हैं और अमृत-रूपी ब्रह्म को सदा नेत्रों से देखते हैं, तथा नाम की परख करते हैं, अर्थात् महिमा स्वीकारते हैं । वे आप अमृत-कथा को दिन-रात कहते हैं और दूसरों को कहकर सुनाते हैं ।। २ ।। जो नाम-अमृत में वृत्ति लगाकर परमात्म-प्रेम में अनुरक्त है, वह सतिगुरु की कृपा से अमरता को पाता है । वह रात-दिन जिह्वा से नाम-अमृत उच्चारण करता है और तन-मन से आप अमृत पान करता है और दूसरों को पिलाता है ।। ३ ।। उनका विश्वास है कि परमेश्वर जो कुछ करता है, वह जीव को स्मरण नहीं होता और उसका हुक्म कोई मिटा नहीं सकता । उसके हुक्म-अनुसार अमृत-वाणी में भक्त अनुरक्त है, या तन्मय है और हुक्म-अनुसार ही नाम-अमृत पिलाता है ।। ४ ।। कर्ता हरि के काम आश्चर्यजनक हैं, इसलिए जिज्ञासु इस भटके हुए मन को विषयों से मोड़े । सतिगुरु की अमृत-वाणी के साथ मन लगाए और अमृत-शब्द को बजाए, अर्थात् सतिगुरु की वाणी का जाप करे ।। ५ ।। हे परमात्मा, खोटे और खरे सब तूने उत्पन्न किए हैं और तूने आप ही सब लोग परखे हैं । भले पुरुषों को परखकर मोक्ष-रूपी ख़ज़ाने में डाल देता है और दुष्टों को भ्रमों में भटकाता है ।। ६ ।। हे परमेश्वर, मैं तुझे कैसे देखूँ और किस प्रकार गुण-स्तवन करूँ ? (इसका उपाय यह है) सतिगुरु की कृपा से शब्द द्वारा, और गुरु-उपदेश द्वारा वाहिगुरु की स्तुति करूँ । तेरे हुक्म में ही अमृत विद्यमान है, तू अपने हुक्म से ही अमृत पिलाता है, अर्थात् सतिगुरु की प्राप्ति भी तेरी कृपा द्वारा होती है ।। ७ ।। शब्द अमृत-रूप है और सतिगुरु की हरि-नाम का उच्चारण करनेवाली वाणी भी अमृत-रूप है, लेकिन जिन्होंने सतिगुर की सेवा की है, वह उनके हृदय में समाई है । गुरुजी कहते हैं, ऐसा नाम-अमृत सदा सुखदाता है जिसे पान कर सब तृष्णाएं और भूख मिट जाती हैं ।। ८ ।। १५ ।। १६ ।।

।। माझ महला ३ ।। अंम्रितु वरसै सहजि सुभाए । गुरमुखि विरला कोई जनु पाए । अंम्रितु पी सदा त्रिपतासे करि किरपा त्रिसना बुझावणिआ ।। १ ।। हउ वारी जीउ वारी गुरमुखि अंम्रितु पीआवणिआ । रसना रसु चाखि सदा रहै रंगि राती सहजे हरिगुण गावणिआ ।। १ ।। रहाउ ।। गुरपरसादी सहजु को पाए । दुबिधा मारे इकसु सिउ लिव लाए । नदरि करे ता हरिगुण गावै नदरी सचि समावणिआ ।। २ ।। सभना उपरि नदरि प्रभ तेरी । किसै थोड़ी किसै है घणेरी । तुझ ते

बाहरि किछु न होवै गुरमुखि सोझी पावणिआ ॥ ३ ॥ गुरमुखि ततु है बीचारा। अंम्रिति भरे तेरे भंडारा। बिनु सतिगुर सेवे कोई न पावै गुर किरपा ते पावणिआ ॥ ४ ॥ सतिगुरु सेवै सो जनु सोहै। अंम्रित नामि अंतरु मनु मोहै। अंम्रिति मनु तनु बाणी रता अंम्रितु सहजि सुणावणिआ ॥ ५ ॥ मनमुखु भूला दूजै भाइ खुआए। नामु न लेवै मरै बिखु खाए। अनदिनु सदा विसटा महि वासा बिनु सेवा जनमु गवावणिआ ॥ ६ ॥ अंम्रितु पीवै जिसनो आपि पीआए। गुरपरसादी सहजि लिव लाए। पूरन पूरि रहिआ सभ आपे गुरमति नदरी आवणिआ ॥ ७ ॥ आपे आपि निरंजनु सोई। जिनि सिरजी तिनि आपे गोई। नानक नामु समालि सदा तूं सहजे सचि समावणिआ ॥ ८ ॥ १६ ॥ १७ ॥

गुरु नाम-अमृत की वर्षा सहज-स्वभाव ही करते हैं, परन्तु गुरु द्वारा कोई विरला जन ही इसे पाता है। जो नाम-अमृत पान करते हैं, वे सदा तृप्त हुए हैं और कृपा करके (दूसरों की) तृष्णा बुझाते हैं ॥ १ ॥ जो गुरमुख हैं, वह आप नाम-अमृत पान करते हैं। मैं उन पर तन-मन से बलिहारी जाता हूँ। उनकी जिह्वा नाम-रस का आस्वादन कर सदा आनन्द में मस्त रहती है और स्वाभाविक ही हरि के गुण गाती है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सतिगुरु की कृपा से सहज (ज्ञान) कोई विरला ही पाता है और दुबिधा को मारकर एक में वृत्ति लगाता है। जब वाहिगुरु कृपादृष्टि करे तब ही कोई हरि के गुण गाता है और सच्चे कृपालु परमात्मा में समा जाता है ॥ २ ॥ (प्रभु-प्रार्थना इस प्रकार करनी चाहिए) हे प्रभु, सब पर तेरी कृपा है, किसी पर अधिक है और किसी पर कम। तेरे हुक्म से बाहर कुछ भी नहीं है, परन्तु यह सूझ-बूझ गुरमुखों को होती है ॥ ३ ॥ जो गुरमुख हैं, वे तत्व का चिन्तन-मनन करते हैं। हे अमृत-रूप वाहिगुरु, उन गुरमुखों ने ही तेरे नाम-ज्ञान आदि गुणों का भण्डार भरा हुआ है। सतिगुरु की सेवा के बिना (उन गुणों को) कोई नहीं पाता, क्योंकि सतिगुरु की कृपा से ही वे गुण पाए जाते हैं ॥ ४ ॥ जो सतिगुरु की सेवा करता है, वही पुरुष शोभा पाता है; जिसके भीतर नाम-अमृत है और जिसका मन नाम-अमृत में तन्मय है, अर्थात् उसका मन नाम-अमृत पर मोहित है। गुरमुख मन, तन और वाणी से नाम-रूपी अमृत में अनुरक्त है, इसलिए सहज-स्वाभाविक अमृत-उपदेश सुनाता है ॥ ५ ॥ मनमुख आप द्वैतभाव में भूला हुआ है और दूसरों को भटकाता है, क्योंकि वह नाम नहीं जपता और विषय-रूपी विष खाकर जन्मता-मरता रहता है। उसका निवास

रात-दिन दुर्गंध-रूपी कर्मों के मध्य रहता है और वह सतिगुरु की सेवा के बिना जन्म गवाँता है ॥ ६ ॥ वह पुरुष नाम-अमृत पीता है, जिसे आप वाहिगुरु पिलाता है, वह सतिगुरु की कृपा से स्वतः ही वृत्ति लगाता है। पूर्ण-परमेश्वर आप ही सब में परिव्याप्त है, लेकिन सतिगुरु की शिक्षा लेने से परमात्मा आता है। आशय यह है कि सतिगुरु की शिक्षा स्वीकारने से ही परमात्मा अपने भीतर महसूसा जा सकता है ॥ ७ ॥ वह पूर्णनिरंजन स्वतःसिद्ध है, जिसने सृष्टि का सृजन आप किया है और आप ही विनाश किया है। गुरुजी कहते हैं, तू नाम का स्मरण कर, इससे तू सहज ही सत्य में समा जाएगा ॥ ८ ॥ १६ ॥ १७ ॥

॥ माझ महला ३ ॥ से सचि लागे जो तुधु भाए। सदा सचु सेवहि सहज सुभाए। सचै सबदि सचा सालाही सचै मेलि मिलावणिआ ॥ १ ॥ हउ वारी जीउ वारी सचु सालाहणिआ। सचु धिआइनि से सचि राते सचे सचि समावणिआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जह देखा सचु सभनी थाई। गुरपरसादी मंनि वसाई। तनु सचा रसना सचि राती सचु सुणि आखि वखानणिआ ॥ २ ॥ मनसा मारि सचि समाणी। इनि मनि डीठी सभ आवण जाणी। सतिगुरु सेवे सदा मनु निहचलु निजघरि वासा पावणिआ ॥ ३ ॥ गुर कै सबदि रिदै दिखाइआ। माइआ मोहु सबदि जलाइआ। सचो सचा वेखि सालाही गुर सबदी सचु पावणिआ ॥ ४ ॥ जो सचि राते तिन सची लिव लागी। हरिनामु समालहि से वडभागी। सचै सबदि आपि मिलाए सतसंगति सचु गुण गावणिआ ॥ ५ ॥ लेखा पड़ीऐ जे लेखे विचि होवै। ओहु अगमु अगोचरु सबदि सुधि होवै। अनदिनु सच सबदि सालाही होरु कोइ न कीमति पावणिआ ॥ ६ ॥ पड़ि पड़ि थाके सांति न आई। त्रिसना जाले सुधि न काई। बिखु बिहाझहि बिखु मोह पिआसे कूड़ु बोलि बिखु खावणिआ ॥ ७ ॥ गुर परसादी एको जाणा। दूजा मारि मनु सचि समाणा। नानक एको नामु वरतै मन अंतरि गुर परसादी पावणिआ ॥ ८ ॥ १७ ॥ १८ ॥

वही सत्यस्वरूप परमात्मा में समाए हैं, जो तुझे भाए हैं और जो अनायास ही सदा तेरी सेवा करते हैं। सच्चे सतिगुरु के उपदेश द्वारा तुझ सत्यस्वरूप की सराहना करते हैं और जो सत्यस्वरूप से मिलाप कर दूसरों

को भी मिलाते हैं ॥ १ ॥ जो पुरुष सच्चे को सराहते हैं, मैं मन, तन से उनपर बलिहारी जाता हूँ। जो सत्य की उपासना करते हैं, वे सत्य में अनुरक्त हैं, इसलिए वे निश्चय करके सत्य में समा जाते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जहाँ देखा है, वहाँ सभी स्थानों में सत्यस्वरूप परमेश्वर है, परन्तु सतिगुरु की कृपा से ही वह मन में बसता है। जब जिह्वा सत्य में अनुरक्त हुई, तब शरीर सफल हुआ है, अर्थात् सत्यस्वरूप हो गया है। इसलिए अब सत्य को सुनते हैं और सत्य की कथा कहते हैं ॥ २ ॥ जिनकी वृत्ति वासना को मारकर सत्य में समाई है, उसने इस मन से समूची सृष्टि को क्षणभंगुर देखा है। सतिगुरु की सेवा से मन सदा निश्चल हुआ है और उसने अपने घर में वास पाया है ॥ ३ ॥ गुरु के उपदेश ने जिन्हें हृदय में वाहिगुरु को दिखा दिया है, उन्होंने गुरु-शब्द से माया-मोह जला दिया है। वे सत्य को ही परमात्म-तुल्य देखते हैं और सत्य की ही सराहना करते हैं, परन्तु गुरु-उपदेश को स्वीकारने वालों ने सत्य को पाया है ॥ ४ ॥ जो सच्चे नाम में अनुरक्त हैं, उनकी प्रीति सच्ची लगी है। वे सौभाग्यशाली हरि के नाम को सँभालते हैं। जो सत्संगति में सत्य के गुण गाते हैं, उन्हें सत्यस्वरूप ब्रह्म ने अपने साथ मिला लिया है ॥ ५ ॥ लेखा-जोखा तब पढ़ा जाय यदि परमात्मा इसमें सीमित हो, अर्थात् उसे व्यक्त किया जा सके। वह अगम्य और अगोचर है और उसकी सुधि सतिगुरु के उपदेश से होती है। जिन्होंने रात-दिन सतिगुरु के उपदेश से सत्य को सराहा है। उन्होंने जान लिया है कि और कोई इस कीमत की अदायगी नहीं कर सकता, अर्थात् परमात्म-प्राप्ति का सर्वोत्तम माध्यम प्रभु-स्तुति और गुण-स्तवन है ॥ ६ ॥ जो पढ़-पढ़कर थक रहे हैं, परन्तु शान्ति अनुभूत नहीं हुई, वे तृष्णाओं से दग्ध हैं; इसलिए उन्हें कुछ सूझ नहीं आती। वे मोह के वशीभूत हो विषयों के प्यासे हैं, इसलिए विषयों को खरीदते हैं और झूठ बोलकर विषय-रूपी विष को खाते हैं ॥ ७ ॥ जिन्होंने सतिगुरु की कृपा से एक को जाना है, उनका मन द्वैत को मारकर सत्य में समाया है। गुरुजी कहते हैं, एक परमेश्वर मन में बसता है, परन्तु उसे गुरु-कृपा से पाया जाता है ॥ ८ ॥ १७ ॥ १८ ॥

॥ माझ महला ३ ॥ वरन रूप वरतहि सभ तेरे। मरि मरि जंमहि फेर पवहि घणेरे। तूं एको निहचलु अगम अपारा गुरमती बूझ बुझावणिआ ॥ १ ॥ हउ वारी जीउ वारी रामनामु मंनि वसावणिआ। तिसु रूपु न रेखिआ वरनु न कोई गुरमती आपि बुझावणिआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सभ एका जोति जाणै जे कोई। सतिगुरु सेविऐ परगटु होई। गुपतु परगटु

वरतै सभ थाई जोती जोति मिलावणिआ ॥ २॥ तिसना अगनि जलै संसारा। लोभु अभिमानु बहुतु अहंकारा। मरि मरि जनमै पति गवाए अपणी बिरथा जनमु गवावणिआ ॥ ३ ॥ गुर का सबदु को विरला बूझै। आपु मारे ता त्रिभवणु सूझै। फिरि ओहु मरै न मरणा होवै सहजे सचि समावणिआ ॥ ४ ॥ माइआ महि फिरि चितु न लाए। गुर कै सबदि सद रहै समाए। सचु सलाहे सभ घट अंतरि सचो सचु सुहावणिआ ॥५॥ सचु सालाही सदा हजूरे। गुर कै सबदि रहिआ भरपूरे। गुरपरसादी सचु नदरी आवै सचे ही सुखु पावणिआ ॥ ६ ॥ सचु मन अंदरि रहिआ समाइ। सदा सचु निहचलु आवै न जाइ। सचे लागै सो मनु निरमलु गुरमती सचि समावणिआ ॥७॥ सचु सालाही अवरु न कोई। जितु सेविऐ सदा सुखु होई। नानक नामि रते वीचारी सचो सचु कमावणिआ ॥ ८ ॥ १८ ॥ १९ ॥

हे परमातमा, 'सर्वत्र तेरा ही रंग, रूप है' जो ऐसा नहीं जानते हैं वे पुनःपुनः मृत्यु को प्राप्त कर जन्मते हैं और बहुत बार चौरासी के चक्र में पड़ते हैं। तू निश्चल, अगम, अपार तो एक ही है, लेकिन तूने गुरमुखों को ही यह समझ प्रदान की है ॥ १ ॥ जिन्होंने राम-नाम मन में बसाया है, मैं उनपर मन-तन से बलिहारी जाता हूँ। उसका रूप, रंग, आकार-प्रकार कुछ नहीं है, लेकिन गुरमुखों को यह समझ (ज्ञान) वह आप देता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ यदि कोई जाने अर्थात् समझे तो सबमें एक ही ज्योति है, लेकिन सतिगुरु की सेवा से ज्योति प्रकट हुई है अथवा होती है। वह गुप्त तथा प्रकट परमातमा सर्वत्र आप ही परिव्याप्त है, जिन्होंने ऐसा जाना है, उनकी ज्योति प्रभु की ज्योति के साथ मिली है ॥ २ ॥ संसार तृष्णा की अग्नि में जल रहा है (क्योंकि) लोभ, अभिमान तथा अहंकार बहुत हो रहा है। मर-मरकर पुनः जन्म लेता है, अपनी प्रतिष्ठा गवाँता है और इस प्रकार उसने व्यर्थ ही जन्म समाप्त किया है ॥ ३ ॥ सतिगुरु का उपदेश कोई विरला ही समझता है। यदि कोई अहंकार को मारे तो त्रिभुवन के मिथ्या रूप की सूझ होती है। यदि मिथ्या-तत्व की परख के बाद वह मृत्यु को प्राप्त करे तो तत्पश्चात् उसकी मृत्यु नहीं होती और वह सहज ही सत्य में समा जाता है ॥ ४ ॥ फिर वह माया में चित्त नहीं लगाता और सदा सतिगुरु के उपदेश में डूबा रहता है। समस्त प्राणियों के बीच सत्य को जानकर उसकी स्तुति करता है और सत्य को पाकर वह

निश्चित ही शोभायमान हो रहा है ॥ ५ ॥ उसे सदा प्रत्यक्ष जानकर सत्य की सराहना कर रहा है, क्योंकि सतिगुरु के उपदेश से उसने परमात्मा को सर्वव्यापक जाना है। सतिगुरु की कृपा से सत्यरूप कृपा करता है, जो निश्चय करके उसकी सेवा करते हैं, वे सुख पाते हैं ॥ ६ ॥ जो सच्चा सदा निश्चल है, आवागमन से परे है, वह सच्चा मन के बीच समा रहा है। ऐसे सच्चे वाहिगुरु में जो मन लगे हैं, वे मन निर्मल हुए हैं और वे गुरमुख अर्थात् गुरु के उपदेश के स्वीकर्त्ता सत्य में समा जाते हैं ॥ ७ ॥ जो सत्य को सराहते हैं, उन्होंने किसी दूसरे को नहीं जाना (क्योंकि) उन्होंने उसी की उपासना की है, जिसकी सेवा से सदा सुख होता है। गुरुजी कहते हैं, जो विचारशील पुरुष नामी में अनुरक्त हैं, वे निश्चय करके सत्य की ही कमाई करते हैं ॥ ८ ॥ १८ ॥ १९ ॥

॥ माझ महला ३ ॥ निरमल सबदु निरमल है बाणी। निरमल जोति सभ माहि समाणी। निरमल बाणी हरि सालाही जपि हरि निरमलु मैलु गवावणिआ ॥ १ ॥ हउ वारी जीउ वारी सुखदाता मंनि वसावणिआ। हरि निरमलु गुर सबदि सलाही सबदो सुणि तिसा मिटावणिआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ निरमल नामु वसिआ मनि आए। मनु तनु निरमलु माइआ मोहु गवाए। निरमल गुण गावै नित साचे के निरमल नादु वजावणिआ ॥ २ ॥ निरमल अंम्रितु गुर ते पाइआ। विचहु आपु मुआ तिथै मोहु न माइआ। निरमल गिआनु धिआनु अति निरमलु निरमल बाणी मंनि वसावणिआ ॥ ३ ॥ जो निरमलु सेवे सु निरमलु होवै। हउमै मैलु गुर सबदे धोवै। निरमल वाजै अनहद धुनि बाणी दरि सचै सोभा पावणिआ ॥ ४ ॥ निरमल ते सभ निरमल होवै। निरमलु मनूआ हरि सबदि परोवै। निरमल नामि लगे बडभागी निरमलु नामि सुहावणिआ ॥ ५ ॥ सो निरमलु जो सबदे सोहै निरमल नामि मनु तनु मोहै। सचि नामि मलु कदे न लागै मुखु ऊजलु सचु करावणिआ ॥ ६ ॥ मनु मैला है दूजै भाइ। मैला चउका मैलै थाइ। मैला खाइ फिरि मैलु वधाए मनमुख मैलु दुखु पावणिआ ॥ ७ ॥ मैले निरमल सभि हुकमि सबाए। से निरमल जो हरि साचे भाए। नानक नामु वसै मन अंतरि गुरमुखि मैलु चुकावणिआ ॥ ८ ॥ १९ ॥ २० ॥

उनका उपदेश निर्मल है और उनकी साधारण वाणी भी निर्मल है और उन्होंने निर्मलरूप परमेश्वर की ज्योति सब में परिव्याप्त मानी है। वे अपनी निर्मल वाणी से हरि की स्तुति करते हैं और इसीलिए उन्होंने निर्मल हरि को जप कर पाप गवाँए हैं ॥ १ ॥ मैं उनपर तन, मन से बलिहारी जाता हूँ, जो सुखदाता हरि को मन में बसाते हैं और निर्मल हरि को सतिगुरु के उपदेश से सराहते हैं, तथा उपदेश सुनकर तृष्णाएँ मिटाते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिनके मन में निर्मल नाम आकर बसा है, उनका मन-तन निर्मल हुआ है और माया से उपजे मोह आदि विकार उन्होंने गवाँए हैं। नित्यप्रति सच्चे के गुण गाते हैं और निर्मल सतिगुरु का उपदेश उच्चरित करते हैं ॥ २ ॥ (उसने) नाम-अमृत निर्मल सतिगुरु से पाया है। जिस हृदय के बीच में अहंकार मर गया है, उस हृदय में माया और मोह नहीं है। जिन्होंने सतिगुरु की वाणी निर्मल मन में बसाई है, उन्हें संशय आदि विकारों से रहित निर्मल ज्ञान हुआ है ॥ ३ ॥ जो निर्मल परमात्मा की सेवा करता है, वही निर्मल होता है और वही अहंकार के मैल को सतिगुरु के उपदेश से धो देता है। निरन्तर (अनाहत) राम-नाम वाणी को सुनने से जिनको माया-अविद्या से रहित वाहिगुरु प्रकट हुआ है, वे सच्चे के द्वार पर शोभा पाते हैं ॥ ४ ॥ निर्मल नाम सब निर्मल हो जाते हैं और निर्मल मन ही हरि शब्द अर्थात् वाहिगुरु के नाम से अभेदता प्राप्त करता है। जो निर्मल नाम में लगे हैं और निर्मल नामी को पाकर सुशोभित हैं, वे पुरुष सौभाग्यशाली हैं ॥ ५ ॥ जो सतिगुरु के उपदेश से शोभा पाते हैं, वे निर्मल हैं। निर्मल नामी सूक्ष्म मन के ही भीतर है, बाहर नहीं। सच्चे नामी को मन की मैल कभी नहीं लगती, बल्कि वह तो अपना नाम देकर जीवों का मुख उज्ज्वल कराता है ॥ ६ ॥ मन द्वैतभावना के कारण मैला है और जब तक मन मैला है, तब तक चौका भी मैला है और वह स्थान भी अशुद्ध है। आशय यह है कि जब तक मन अशुद्ध है बाह्य विधि-विधानों का कोई महत्व नहीं है। वह जो पदार्थ खाता है, वह भी मैला है और उसे खाकर वह पाप-रूपी मैल बढ़ाता है, वह मनमुख उस मैल के कारण दुःख पाता है ॥ ७ ॥ मैले और निर्मल सभी उस वाहिगुरु के हुक्म में बँधे हैं, लेकिन निर्मल वही हैं, जो हरि के मन में भाए हैं। गुरुजी कहते हैं, जिन गुरमुखों के मन में नाम बसा है, उनकी मैल नाम ने निवृत की है ॥ ८ ॥ १९ ॥ २० ॥

॥ माझ महला ३ ॥ गोविंदु ऊजलु ऊजल हंसा। मनु बाणी निरमल मेरी मनसा। मनि ऊजल सदा मुख सोहहि अति ऊजल नामु धिआवणिआ ॥ १ ॥ हउ वारी जीउ वारी गोबिंद गुण गावणिआ। गोबिदु गोबिदु कहै दिन राती गोबिद गुण

सबदि सुणावणिआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गोबिदु गावहि सहजि सुभाए। गुर कै भै ऊजल हउमै मलु जाए। सदा अनंदि रहहि भगति करहि दिनु राती सुणि गोबिद गुण गावणिआ ॥ २ ॥ मनूआ नाचै भगति द्रिड़ाए। गुर कै सबदि मनै मनु मिलाए। सचा तालु पूरे माइआ मोहु चुकाए सबदे निरति करावणिआ ॥ ३ ॥ ऊचा कूके तनहि पछाड़े। माइआ मोहि जोहिआ जमकाले। माइआ मोहु इसु मनहि नचाए अंतरि कपटु दुखु पावणिआ ॥ ४ ॥ गुरमुखि भगति जा आपि कराए। तनु मनु राता सहजि सुभाए। बाणी वजै सबदि वजाए गुरमुखि भगति थाइ पावणिआ ॥ ५ ॥ बहु ताल पूरे वाजे वजाए। ना को सुणे न मंनि वसाए। माइआ कारणि पिड़ बंधि नाचै दूजै भाइ दुखु पावणिआ ॥ ६ ॥ जिसु अंतरि प्रीति लगै सो मुकता। इंद्री वसि सच संजमि जुगता। गुर कै सबदि सदा हरि धिआए एहा भगति हरि भावणिआ ॥ ७ ॥ गुरमुखि भगति जुग चारे होई। होरतु भगति न पाए कोई। नानक नामु गुर भगती पाईऐ गुर चरणी चितु लावणिआ ॥ ८ ॥ २० ॥ २१ ॥

गोविन्द उज्ज्वल मानसरोवर है और हंस अर्थात् सन्तों का समुदाय भी उज्ज्वल है। जो मैं-पर, मेरी-तेरी की भावना से अलग हैं, उनका मन, वाणी उज्ज्वल है और उनकी चेतना भी निर्मल है। मन, वाणी और चेतना (बुद्धि) से शुद्ध ऐसे सन्तों के पास मेरा मन, वाणी और चेतना भी उज्ज्वल हुई है। जिनके मन उज्ज्वल हैं, उनके मुख सर्वदा शोभित हैं, क्योंकि वे अति उज्ज्वल नाम को स्मरण करते हैं ॥ १ ॥ जो रात-दिन मन-वाणी से गोविन्द का नाम-स्मरण करते हैं और दूसरों को उपदेश भी गोविन्द के गुणों का ही सुनाते हैं, उन गोविन्द के गुणगान करनेवालों पर मैं तन-मन से बलिहारी जाता हूँ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ वे गोविन्द को सहज-स्वभाव ही भजते हैं। सतिगुरु के भय से उज्ज्वल हुए हैं और उनकी अहंकार की मैल भी जाती रही है। जो पुरुष दिन-रात भक्ति करते हैं और गोविन्द के गुण गाते हैं, वे सदा आनन्दित रहते हैं ॥ २ ॥ जो भक्त भगवद्भजन में लीन होकर नृत्य करते हैं, उनका मन सब ओर से उन्हें सावधान करता है—यही उनका नृत्य है। वे आप भक्ति करते हैं और दूसरों को इस दिशा में दृढ़ करते हैं। इस प्रकार वे सतिगुरु के उपदेश से ईश्वर में मन को मिलाते हैं। वे सत्यस्वरूप होकर और माया का मोह समाप्त कर तालपूर्ण नृत्य करते हैं और दूसरों को उपदेश कर उनसे भी

नृत्य कराते हैं ।। ३ ।। जो कपटपूर्ण नृत्य करता है, देह को बार-बार धरती पर गिराता है और शोर मचाता है (वह भक्त नहीं कहा जा सकता)। जो माया-जन्य मोह के कारण ऐसा करता है, वह यम-काल द्वारा प्रतीक्षित है, अर्थात् उसे आवागमन से मुक्ति नहीं मिल सकती। जो इस मन को माया-मोह के परिणामस्वरूप नचाता है और हृदय में कपट लिए है, वह दुःख पाता है ।। ४ ।। सतिगुरु की प्रेरणा द्वारा भक्ति तब होती है, जब आप परमेश्वर कराता है। (ऐसी स्थिति में) उनका मन-तन सहज-स्वभाव ही परमेश्वर में अनुरक्त है। जो शब्द को जपते हैं, उनके यश की वाणी प्रकट हुई है और उन गुरमुखों की भक्ति प्रतिष्ठापित हुई है, अर्थात् सफल हुई है ।। ५ ।। मनमुख बहुत ताल लगाते हैं और बाजे बजाते हैं। कोई महात्मा जन न तो विषय सम्बन्धी बाजों को सुनता है और न मन में बसाता है। जो माया के कारण अखाड़ा बाँधकर नाचते हैं, वे द्वैतभाव के कारण दुःख ही पाते हैं ।। ६ ।। जिसके हृदय में प्रीति होती है, वह मुक्त-स्वरूप है और इन्द्रियों को संयमित कर जितेन्द्रिय हुआ है। (वह) सतिगुरु के उपदेश से सदा हरि को स्मरण करता है। ऐसी भक्ति ही हरि को भली लगती है ।। ७ ।। चारों युगों में अर्थात् सृष्टि के आदिमकाल से सतिगुरु के माध्यम से ही भक्ति हुई है। दूसरे उपायों से कोई भक्ति नहीं कर पाता। गुरुजी कहते हैं, गुरु के चरणों में चित्त लगाने वालों को गुरु की सेवा से नाम प्राप्त होता है ।।८।।२०।।२१।।

।। माझ महला ३ ।। सचा सेवी सचु सालाही। सचै नाइ दुखु कबही नाही। सुखदाता सेवनि सुखु पाइनि गुरमति मंनि वसावणिआ ।। १ ।। हउ वारी जीउ वारी सुख सहजि समाधि लगावणिआ। जो हरि सेवहि से सदा सोहहि सोभा सुरति सुहावणिआ ।। १ ।। रहाउ।। सभु को तेरा भगतु कहाए। सेई भगत तेरै मनि भाए। सचु बाणी तुधै सालाहनि रंगि राते भगति करावणिआ ।। २ ।। सभु को सचे हरि जीउ तेरा। गुरमुखि मिलै ता चूकै फेरा। जा तुधु भावै ता नाइ रचावहि तूं आपे नाउ जपावणिआ ।। ३ ।। गुरमती हरि मंनि वसाइआ। हरखु सोगु सभु मोहु गवाइआ। इकसु सिउ लिव लागी सदही हरिनामु मंनि वसावणिआ ।। ४ ।। भगत रंगि राते सदा तेरै चाए। नउ निधि नामु वसिआ मनि आए। पूरै भागि सतिगुरु पाइआ सबदे मेलि मिलावणिआ ।। ५ ।। तूं दइआलु सदा सुखदाता। तूं आपे मेलिहि गुरमुखि जाता। तूं आपे देवहि

नामु वडाई नामि रते सुखु पावणिआ ॥ ६ ॥ सदा सदा साचे तुधु सालाही । गुरमुखि जाता दूजा को नाही । एकसु सिउ मनु रहिआ समाए मनि मंनिऐ मनहि मिलावणिआ ॥ ७ ॥ गुरमुखि होवै सो सालाहे । साचे ठाकुर वेपरवाहे । नानक नामु वसै मन अंतरि गुर सबदी हरि मेलावणिआ ॥ ८ ॥ २१ ॥ २२ ॥

[प्रस्तुत राग में गुरुजी वाहिगुरु के प्रति अपना प्रेम प्रकट करते हुए कहते हैं—]

हे सच्चे वाहिगुरु, मैं तेरी सेवा करूँ और तेरी स्तुति करूँ। (क्योंकि) हे सच्चे, तेरे नाम से कभी दुःख नहीं होता । हे सुखदाता, जिन्होंने सतिगुरु की शिक्षा ग्रहण कर सेवा की है, वे सुख पाते हैं ॥ १ ॥ जो पुरुष सुख-स्वरूप में समाधि लगाते हैं, मैं उनपर तन-मन से बलिहारी जाता हूँ । हे हरि, जो पुरुष तेरी सेवा करते हैं, वे अनन्त काल तक मन, वाणी और शरीर से शोभा पाते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हर व्यक्ति अपने आपको तेरा भक्त बताता है, लेकिन भक्त वही है जो तुझे अच्छा लगता है। जो तेरी सराहना करते हैं, उनकी वाणी सच्ची है, क्योंकि वे आप प्रेम में रंगे हुए हैं और दूसरों से भक्ति कराते हैं ॥ २ ॥ हे सच्चे हरि, प्रत्येक जीव तेरा है । यदि वह सतिगुरु के माध्यम से मिले तो उसका चौरासी (लाख) योनियों में भटकना मिट जाता है। यदि तुझे अच्छा लगता है तो नाम में प्रीति कराता है और फिर तू आप ही नाम जपाता है ॥ ३ ॥ हे हरि, गुरमुखों ने तुझे मन में बसाया है, तथा हर्ष, शोक तथा मोह— इन सबको गवांया है । एक तेरे साथ ही सदा प्रीति लगी है । हे हरि, तेरा नाम ही मन में बसाया है ॥ ४ ॥ भक्तगण सदा उत्साहित होकर तेरे प्रेम में डूबे रहते हैं और नवनिधि के तुल्य तेरा नाम मन में बस गया है। जिन्होंने सौभाग्य से सतिगुरु को पाया है, उन्हें उपदेश करके मेल में मिलाया है ॥ ५ ॥ तू सर्वदा सुखदाता और दयालु है। जिन्होंने तुझे गुरु द्वारा जाना है उन्हें तू आप मिला लेता है । तू आप ही नाम की महानता देता है। हे नामी, तुझ में अनुरक्त सब पुरुष सुख पाते हैं ॥ ६ ॥ हे सच्चे, सदा तेरी स्तुति करूँ, (क्योंकि) गुरमुखों ने तेरे बिना दूसरे किसी को नहीं जाना । एक तेरे साथ उनका मन मिल रहा है। मन के विश्वस्त होने पर तू सब ओर से हटाकर अपने में मिला लेता है ॥ ७ ॥ हे सच्चे साहिब, गुरमुख जो निश्चिन्त होता है, वह तेरी सराहना करता है। गुरुजी कहते हैं, हे हरि, जिन गुरमुखों के भीतर नाम का वास है, उन्हें तू मिला लेता है ॥ ८ ॥ २१ ॥ २२ ॥

॥ माझ महला ३ ॥ तेरे भगत सोहहि साचै दरबारे । गुर कै सबदि नामि सवारे । सदा अनंदि रहहि दिनु राती गुण

कहि गुणी समावणिआ ।। १ ।। हउ वारी जीउ वारी नामु सुणि मंनि वसावणिआ । हरि जीउ सचा ऊचो ऊचा हउमै मारि मिलावणिआ ।। १ ।। रहाउ ।। हरि जीउ साचा साची नाई । गुरपरसादी किसै मिलाई । गुर सबदि मिलहि से विछुड़हि नाही सहजे सचि समावणिआ ।। २ ।। तुझते बाहरि कछू न होइ । तूं करि करि वेखहि जाणहि सोइ । आपे करे कराए करता गुरमति आपि मिलावणिआ ।। ३ ।। कामणि गुणवंती हरि पाए । भै भाइ सीगारु बणाए । सतिगुरु सेवि सदा सोहागणि सच उपदेसि समावणिआ ।। ४ ।। सबदु विसारनि तिना ठउरु न ठाउ । भ्रमि भूले जिउ सुंञै घरि काउ । हलतु पलतु तिनी दोवै गवाए दुखे दुखि विहावणिआ ।। ५ ।। लिखदिआ लिखदिआ कागद मसु खोई । दूजै भाइ सुखु पाए न कोई । कूड़ु लिखहि तै कूड़ु कमावहि जलि जावहि कूड़ि चितु लावणिआ ।। ६ ।। गुरमुखि सचो सचु लिखहि वीचारु । से जन सचे पावहि मोखदुआरु । सचु कागदु कलम मसवाणी सचु लिखि सचि समावणिआ ।। ७ ।। मेरा प्रभु अंतरि बैठा वेखै । गुरपरसादी मिलै सोई जनु लेखै । नानक नामु मिलै वडिआई पूरे गुर ते पावणिआ ।। ८ ।। २२ ।। २३ ।।

हे सच्चे वाहिगुरु, तेरे भक्त तेरे दरबार में शोभा पाते हैं। हे नामी, तूने गुरु के उपदेश से उन्हें सँवारा है। वे रात-दिन आनन्दित रहते हैं और तुझ सर्वगुण-सम्पन्न के गुण उच्चरित कर तुझ में समाए हैं ।। १ ।। जो नाम सुनकर मन में बसाते हैं, मैं उनपर मन, तन से बलिहारी जाता हूँ। हरि सत्यस्वरूप है और उच्चतम है, अर्थात् सबसे महान् है। जो अहंकार को मारते हैं, उनको तू मिला लेता है ।। १ ।। रहाउ ।। हे हरि, तू सच्चा है और तेरी महानता सच्ची है। तू गुरु-कृपा से किसी विरले को मिलाता है। जो गुरु के उपदेश द्वारा तुझ से मिलतें हैं, वे तुझ से भिन्न नहीं रहते। हे सत्यस्वरूप, वे सहज ही तुझ में समा जाते हैं ।। २ ।। तुझ से अलग कुछ नहीं होता, अर्थात् तू ही कर्त्ता है, तू ही संसार को रच-रच कर देखता है और तू ही सबके कर्मों को जानता है। हे कर्त्ता-पुरुष, तू आप ही कर्त्ता है और आप ही दूसरों से कराता है और गुरमुखों को अपने साथ मिला लेता है ।। ३ ।। वह जीव-रूपी स्त्री गुणवान है जिसने भय और प्रेम से श्रृंगार करके तुम्हें पाया है। जीव-स्त्री सतिगुरु की सेवा करके सौभाग्यवती हुई है और फिर सच्चे उपदेश में समाई

है ॥ ४ ॥ जो सतिगुरु के उपदेश को बिसारते हैं, उन्हें ठहरने को शुभ स्थान नहीं मिलता। वे भ्रमों में इस प्रकार भटके हुए हैं, जैसे सूने घर में कौआ। उन्होंने लोक-परलोक दोनों बिगाड़ लिए हैं और उनकी आयु दु:ख ही दु:ख में बीतती है ॥ ५ ॥ लिखते-लिखते कागज़ तथा स्याही व्यर्थ समाप्त की है (क्योंकि) द्वैतभाव में सुख कोई नहीं पाता। जो झूठे कर्म (कमाते) करते हैं, सो झूठ ही लिखते हैं। वे झूठे संसार में चित्त लगानेवाले तृष्णा-अग्नि से जल जाते हैं ॥ ६ ॥ गुरमुख सत्य लिखते हैं और सत्य ही विचारते हैं। वे गुरमुख जन मोक्षद्वार अर्थात् सच्चा ज्ञान पाते हैं। उनका कागज़, कलम और स्याही सब सत्य हैं, जो सत्य ज्ञान को लिखते हैं और सत्य में ही समा जाते हैं ॥ ७ ॥ मेरा प्रभु भीतर बैठकर सब कुछ देखता है, परन्तु सतिगुरु की कृपा से जो तुझे मिलता है, वही जीव मिलाप के लेखे में पड़ता है। गुरुजी कहते हैं, तेरे नाम से महानता मिलती है और नाम पूर्णगुरु से प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ २२ ॥ २३ ॥

॥ माझ महला ३ ॥ आतमराम परगासु गुर ते होवै। हउमै मैलु लागी गुर सबदी खोवै। मनु निरमलु अनदिनु भगती राता भगति करे हरि पावणिआ ॥ १ ॥ हउ वारी जीउ वारी आपि भगति करनि अवरा भगति करावणिआ। तिना भगत जना कउ सद नमसकारु कीजै जो अनदिनु हरिगुण गावणिआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ आपे करता कारणु कराए। जितु भावै तितु कारै लाए। पूरै भागि गुर सेवा होवै गुर सेवा ते सुखु पावणिआ ॥ २ ॥ मरि मरि जीवै ता किछु पाए। गुरपरसादी हरि मंनि वसाए। सदा मुकतु हरि मंनि वसाए सहजे सहजि समावणिआ ॥ ३ ॥ बहु करम कमावै मुकति न पाए। देसंतरु भवै दूजै भाइ खुआए। बिरथा जनमु गवाइआ कपटी बिनु सबदै दुखु पावणिआ ॥ ४ ॥ धावतु राखै ठाकि रहाए। गुर परसादी परम पदु पाए। सतिगुरु आपे मेलि मिलाए मिलि प्रीतम सुखु पावणिआ ॥ ५ ॥ इकि कूड़ि लागे कूड़े फल पाए। दूजै भाइ बिरथा जनमु गवाए। आपि डुबे सगले कुल डोबे कूड़ु बोलि बिखु खावणिआ ॥ ६ ॥ इसु तन महि मनु को गुरमुखि देखै। भाइ भगति जा हउमै सोखै। सिध साधिक मोनिधारी रहे लिव लाइ तिन भी तन महि मनु न दिखावणिआ ॥ ७ ॥ आपि कराए करता सोई। होरु कि करे

कीतै किआ होई । नानक जिसु नामु देवै सो लेवै नामो मंनि वसावणिआ ॥ ८ ॥ २३ ॥ २४ ॥

[प्रस्तुत राग में गुरुजी ने यह बतलाया है कि आत्मा परमात्म-रूप ही है और यह ज्ञान हृदय में किन उपायों से होता है ।]

आत्मा परमात्म-रूप है यह विवेक सतिगुरु से होता है, क्योंकि अहंकार और ममत्व की लगी हुई मैल सतिगुरु के उपदेश से हटाई जा सकती है। रात-दिन भक्ति में लगा हुआ मन निर्मल हुआ है और भक्ति करके हरि को पा लेता है ॥ १ ॥ जो आप भक्ति करते हैं और दूसरों से कराते हैं, मैं उनपर मन-तन से बलिहारी जाता हूँ और जो रात-दिन हरि के गुण गाते हैं, उन भक्तजनों को सदा नमस्कार कीजिए ॥ १ ॥ रहाउ ॥ परमेश्वर कर्त्ता आप ही माया, अहंकार आदि के माध्यम से सृष्टि को उत्पन्न करता है और फिर जिस काम में चाहे उसमें लगाता है। पूर्ण भाग्य हों तब गुरु-सेवा होती है, क्योंकि गुरु-सेवा से सुख पाया जाता है ॥ २ ॥ संसार की तरफ़ से मर जाए, अर्थात् मोहमाया से निर्लिप्त हो जाए और परमेश्वर की भक्ति में जीवे, अर्थात् परमात्म-भजन में अनुरक्त हो तभी कुछ पाया जाता है और सतिगुरु की कृपा से हरि-नाम को मन में बसाता है। जिन्होंने हरि-नाम मन में बसाया है, वे सदा मुक्त हैं और स्वाभाविक ही सहज पद में समा जाते हैं ॥ ३ ॥ हरि की भक्ति के बिना जीव बहुत से कर्म करता है, लेकिन मुक्ति नहीं पाता। द्वैतभाव में देश-देशान्तर भटकता है और दुःख पाता है। कपटी जीव ने व्यर्थ ही जन्म गवांया है और वह सतिगुरु के उपदेश के बिना दुःख पाता है ॥ ४ ॥ जो विषयों की ओर दौड़ती इन्द्रियों को नियन्त्रित करता है और मन को अशुभ संकल्पों से बचा रखता है, वह सतिगुरु की कृपा से परमपद पाता है। वाहिगुरु आप ही सतिगुरु के साथ मेल कराता है और फिर सतिगुरु के साथ मिलकर सुख पाया जाता है ॥ ५ ॥ जो पुरुष झूठे कर्मों में लगे हैं, वे उनका फल भी झूठा ही पाते हैं और द्वैतभावना के कारण व्यर्थ ही जन्म गवाँते हैं। आप समुद्र में डूबे हैं और सम्पूर्ण कुल के व्यक्तियों को डुबाए हुए हैं। वे झूठ बोलकर विष खाते हैं ॥ ६ ॥ इस शरीर के बीच स्थित आत्मा या मन को कोई गुरमुख देखता है। वह ऐसी दृष्टि या तो अहंत्व को सुखाकर पाता है, या प्रेमा भक्ति द्वारा। सिद्ध, साधक, मौनी आदि सभी परमात्म-प्रेम में तन्मय हैं; उन्होंने भी तन के भीतर स्थित मन को नहीं देखा अथवा उन्हें भी सतिगुरु के बिना आत्मा का देह के भीतर साक्षात्कार नहीं हुआ ॥ ७ ॥ कर्त्ता जो आप कराता है, वही होता है। दूसरा कोई क्या कर सकता है या

दूसरों के करने से होता क्या है ? गुरुजी कहते हैं, जिसको वाहिगुरु नाम देता है, वह लेकर नाम को ही मन में बसाता है ॥ ८ ॥ २३ ॥ २४ ॥

॥ माझ महला ३ ॥ इसु गुफा महि अखुट भंडारा । तिसु विचि वसै हरि अलख अपारा । आपे गुपतु परगटु है आपे गुर सबदी आपु वंञावणिआ ॥ १ ॥ हउ वारी जीउ वारी अंम्रित नामु मंनि वसावणिआ । अंम्रित नामु महारसु मीठा गुरमती अंम्रितु पीआवणिआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हउमै मारि बजर कपाट खुलहाइआ । नामु अमोलकु गुर परसादी पाइआ । बिनु सबदै नामु न पाए कोई गुर किरपा मंनि वसावणिआ ॥ २ ॥ गुर गिआन अंजनु सचु नेत्री पाइआ । अंतरि चानणु अगिआनु अंधेरु गवाइआ । जोती जोति मिली मनु मानिआ हरि दरि सोभा पावणिआ ॥ ३ ॥ सरीरहु भालणि को बाहरि जाए । नामु न लहै बहुतु वेगारि दुखु पाए । मनमुख अंधे सूझै नाही फिरि घिरि आइ गुरमुखि वथु पावणिआ ॥ ४ ॥ गुर परसादी सचा हरि पाए । मनि तनि वेखै हउमै मैलु जाए । बैसि सुथानि सद हरि गुण गावै सचै सबदि समावणिआ ॥ ५ ॥ नउ दर ठाके धावतु रहाए । दसवै निजघरि वासा पाए । ओथै अनहद सबद वजहि दिनु राती गुरमती सबदु सुणावणिआ ॥ ६ ॥ बिनु सबदै अंतरि आनेरा । न वसतु लहै न चूकै फेरा । सतिगुर हथि कुंजी होरतु दरु खुलै नाही गुरु पूरै भागि मिलावणिआ ॥ ७ ॥ गुपतु परगटु तूं सभनी थाई । गुरपरसादी मिलि सोझी पाई । नानक नामु सलाहि सदा तूं गुरमुखि मंनि वसावणिआ ॥ ८ ॥ २४ ॥ २५ ॥

इस शरीर-रूपी गुफा में शुभ गुणों का अक्षय भण्डार है । उसके मध्य अलख, अपार हरि बसता है । जो सतिगुरु के उपदेश से अहंकार को गवाँनेवाले हुए हैं, उन्हें वह आप ही प्रकट है और मनमुखों को आप ही गुप्त है ॥ १ ॥ जो हरि के नाम-अमृत को मन में बसाते हैं, मैं उनपर मन, तन से बलिहारी जाता हूँ । नाम-अमृत अति मधुर रस है, परन्तु गुरु का उपदेश लेनेवाले पीते हैं और पिलाते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिन्होंने अहंत्व, ममत्व दूर करके वज्र कपाट खोला है, अर्थात् अज्ञान-रूपी कपाट हटाया है, उन्होंने सतिगुरु की कृपा से अमूल्य नाम पाया है । सतिगुरु के उपदेश के बिना नाम कोई नहीं पाता, परन्तु वह गुरु की कृपा से मन में बसता

है ॥ २ ॥ अज्ञान दूर करने की विधि यह है कि जब सतिगुरु ने ज्ञान-रूपी अंजन बुद्धि-रूपी नेत्रों में डाल दिया और अज्ञान-अँधेरा गवाँ दिया तब भीतर प्रकाश हुआ। जब मन विश्वस्त हुआ तब ज्योति से ज्योति मिली और जीव हरि के द्वार पर शोभा पानेवाला हुआ ॥ ३ ॥ जो शरीर के बाहर ढूंढने जाए वह नाम को नहीं पाता और बेगारियों के समान बहुत दु:ख पाता है। मनमुख अंधे को कुछ दिखाई नहीं देता और इधर-उधर भटककर शरीर के भीतर ही सतिगुरु के द्वारा वस्तु को पाता है ॥ ४ ॥ सतिगुरु की कृपा से सच्चा हरि मिलता है। जब अहंकार-मैल दूर हो जाए तो वह तन-मन में हरि को देखता है। वह सत्संग में बैठकर सदा हरि के गुण गाता है और सच्चे ब्रह्म में समा जाता है ॥ ५ ॥ इन्द्रियों को बाहर जाने से नौ द्वार रोके हैं, अर्थात् नौ द्वार अन्तर्मन को स्थिर किए हैं, दसवाँ द्वार जो नौ द्वारों की प्राप्ति के पश्चात् प्राप्त होता है और जो उनका आसरा है, अर्थात् निवासस्थान है, उस दसवें द्वार में दिन-रात अनाहत ध्वनि होती है, परन्तु जो गुरमुख हैं, अर्थात् जो अधिकारी हैं, उनको ही उपदेश सुनाई देते हैं ॥ ६ ॥ सतिगुरु के उपदेश बिना हृदय में अँधेरा है और अंधेरे की निवृत्ति किए बिना न (जीव) आत्मवस्तु को लेता है और न चौरासी का चक्र हटता है। सतिगुरु के हाथ में ब्रह्म-विद्या-रूपी कुंजी है, दूसरे किसी उपाय से द्वार खुलता नहीं, लेकिन सतिगुरु बड़े भाग्य से मिलता है ॥ ७ ॥ तुझे गुप्त एवं प्रकट रूप में सर्वत्र जानकर जिनको गुरु की कृपा मिली है, उन्होंने ही रहस्य को जाना है। गुरुजी कहते हैं कि हे भाई, तू सदा नाम जप, (क्योंकि) गुरमुखों ने मन में नाम ही बसाया है ॥ ८ ॥ २४ ॥ २५ ॥

॥ माझ महला ३ ॥ गुरमुखि मिलै मिलाए आपे। कालु न जोहै दुखु न संतापे। हउमै मारि बंधन सभ तोड़ै गुरमुखि सबदि सुहावणिआ ॥ १ ॥ हउ वारी जीउ वारी हरि हरि नामि सुहावणिआ। गुरमुखि गावै गुरमुखि नाचै हरि सेती चितु लावणिआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गुरमुखि जीवै मरै परवाणु। आरजा न छीजै सबदु पछाणु। गुरमुखि मरै न कालु न खाए गुरमुखि सचि समावणिआ ॥ २ ॥ गुरमुखि हरि दरि सोभा पाए। गुरमुखि विचहु आपु गवाऐ। आपि तरै कुल सगले तारे गुरमुखि जनमु सवारणिआ ॥ ३ ॥ गुरमुखि दुखु कदे न लगै सरीरि। गुरमुखि हउमै चूकै पीर। गुरमुखि मनु निरमलु फिरि मैलु न लागै गुरमुखि सहजि समावणिआ ॥ ४ ॥ गुरमुखि नामु मिलै वडिआई। गुरमुखि गुण गावै सोभा पाई। सदा

अनंदि रहै दिनु राती गुरमुखि सबदु करावणिआ ॥ ५ ॥ गुरमुखि अनदिनु सबदे राता । गुरमुखि जुग चारे है जाता । गुरमुखि गुण गावै सदा निरमलु सबदे भगति करावणिआ ॥ ६ ॥ बाझु गुरू है अंध अंधारा । जमकालि गरठे करहि पुकारा । अनदिनु रोगी बिसटा के कीड़े बिसटा महि दुखु पावणिआ ॥ ७ ॥ गुरमुखि आपे करे कराए । गुरमुखि हिरदै वुठा आपि आए । नानक नामि मिलै वडिआई पूरे गुर ते पावणिआ ॥ ८ ॥ २५ ॥ २६ ॥

[प्रस्तुत अंश में गुरुजी ने उन गुरमुखों की महिमा का वर्णन किया है, जिन्होंने मन में नाम बसाया है ।]

गुरमुख प्रभु वाहिगुरु से आप मिले हैं और दूसरों को भी मिलाते हैं । काल भी उनकी प्रतीक्षा नहीं करता और उन्हें दुःख भी संतप्त नहीं करता । गुरमुखों ने अहंकार को मारकर सब बन्धन तोड़े हैं और गुरु-उपदेश से सुशोभित हुए हैं ॥ १ ॥ जो हरि-नाम जपकर शोभा पाते हैं, मैं उनपर मन, तन से बलिहारी जाता हूँ । गुरमुख नाचते-गाते हैं और वही हरि के साथ चित्त लगाते हैं, अर्थात् वही समस्त अंगों से हरि की भक्ति करते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गुरमुखों का जीना-मरना सफल है, उनकी आयु व्यर्थ नहीं जाती, क्योंकि उन्होंने ब्रह्म को पहचाना है । गुरमुखों को काल नहीं खाता, इसीसे वे मृत्यु को प्राप्त नहीं होते, क्योंकि गुरमुख सत्य में समाते हैं ॥ २ ॥ गुरमुख हृदय में से आपाभाव गवाँते हैं और वे हरि के द्वार पर शोभा पाते हैं । वे आप पार उतरे हैं और समूचे वंश का उद्धार किया है । (इस प्रकार) गुरमुखों ने जन्म सवाँर लिया है ॥ ३ ॥ गुरमुखों को दुःख कभी नहीं लगता, क्योंकि वे शरीर से असंग रहते हैं । गुरमुखों की देह में से अहंकार और ममत्व-जन्य पीड़ा समाप्त हो गई है । गुरमुखों का मन निर्मल है, उन्हें पुनः मैल नहीं लगती; इसलिए गुरमुख सहज पद में जाते हैं ॥ ४ ॥ गुरमुखों को नाम से महानता मिलती है । गुरमुख गुण गाते हैं, इसलिए उन्होंने हरि के द्वार में शोभा पाई है । गुरमुख दिन-रात सदा आनन्दित रहते हैं और शब्द का जपना और दूसरों से जपवाना कराते हैं ॥ ५ ॥ गुरमुखों का मन निरन्तर शब्द में अनुरक्त रहा है और उन्होंने चारों युगों में परमेश्वर को जाना है । गुरमुख सदा गुण गाते हैं, इसलिए निर्मल हुए हैं और दूसरों को उपदेश देकर भक्ति कराते हैं ॥ ६ ॥ सतिगुरु के बिना अंधों को सदा ही अज्ञान-रूपी अँधेरा है, वे यमकाल के पकड़े जाने पर पुकार करते हैं, अर्थात् जन्मते-मरते हैं । वे (मनमुख) रात-दिन रोगी हैं और विष्ठा के कीड़े हैं, अर्थात् गर्भ में

निवास करते हैं और पुनः विष्ठा में ही दुःख पाते हैं ॥ ७ ॥ गुरमुख आप भक्ति करते हैं, तथा दूसरों से कराते हैं। गुरमुखों के हृदय में आप वाहिगुरु आकर बसा है। गुरुजी कहते हैं, नामी अर्थात् परमेश्वर से ही महानता मिलती है और परमेश्वर की प्राप्ति पूर्णगुरु से होती है ॥ ८ ॥ २५ ॥ २६ ॥

॥ माझ महला ३ ॥ एका जोति जोति है सरीरा। सबदि दिखाए सतिगुरु पूरा। आपे फरकु कीतोनु घट अंतरि आपे बणत बणावणिआ ॥ १ ॥ हउ वारी जीउ वारी हरि सचे के गुण गावणिआ। बाझु गुरू को सहजु न पाए गुरमुखि सहजि समावणिआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ तूं आपे सोहहि आपे जगु मोहहि। तूं आपे नदरी जगतु परोवहि। तूं आपे दुखु सुखु देवहि करते गुरमुखि हरि देखावणिआ ॥ २ ॥ आपे करता करे कराए। आपे सबदु गुर मंनि वसाए। सबदे उपजै अंम्रित बाणी गुरमुखि आखि सुणावणिआ ॥ ३ ॥ आपे करता आपे भुगता। बंधन तोड़े सदा है मुकता। सदा मुकतु आपे है सचा आपे अलखु लखावणिआ ॥ ४ ॥ आपे माइआ आपे छाइआ। आपे मोहु सभु जगतु उपाइआ। आपे गुणदाता गुण गावै आपे आखि सुणावणिआ ॥ ५ ॥ आपे करे कराए आपे। आपे थापि उथापे आपे। तुझ ते बाहरि कछू न होवै तूं आपे कारै लावणिआ ॥ ६ ॥ आपे मारे आपि जीवाए। आपे मेले मेलि मिलाए। सेवा ते सदा सुखु पाइआ गुरमुखि सहजि समावणिआ ॥ ७ ॥ आपे ऊचा ऊचो होई। जिसु आपि विखाले सु वेखै कोई। नानक नामु वसै घट अंतरि आपे वेखि विखालणिआ ॥ ८ ॥ २६ ॥ २७ ॥

[प्रस्तुत अंश में गुरुजी ने नामी (परमेश्वर) की सर्वव्यापक सत्ता और जो उसमें समाए हैं, उनकी महिमा का वर्णन किया है।]

एक अद्वितीय जो ज्योति है, उसकी सत्ता समस्त शरीरों में है, लेकिन पूर्ण-सतिगुरु ही उपदेश कर उसे दिखाता है। उसने आप ही स्थावर-जंगम रूपभेद किया है। शरीरों के भीतर वही ज्योति स्थिर है। उसने आप ही सब रचना बनाई है ॥ १ ॥ जो सच्चे वाहिगुरु के गुण गाते हैं, मैं उनपर तन, मन से बलिहारी जाता हूँ। सतिगुरु के बिना कोई ज्ञान नहीं पाता और गुरमुख सहज ही शान्ति में समा जाते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ तू

आप ही सुशोभित होता है और आप ही जगत् को मोहित कर रहा है। हे कृपालु, तू आप ही सत्ता-रूपी सूत्र में विश्व को गूँथता है। हे कर्त्ता, तू आप ही दुख-सुख देता है और हे हरि, तू गुरमुखों को अपना स्वरूप दिखा देता है ॥ २ ॥ हे वाहिगुरु, तू आप ही कर्त्ता है और आप ही कराता है तथा आप ही गुरु का उपदेश मन में बसाता है। उपदेश कर नाम-रूपी अमृत-वाणी प्रकट करता है और सतिगुरु द्वारा कहकर सुनवाता है ॥ ३ ॥ तू आप ही कर्त्ता है, आप ही भोगनेवाला है। जिसने संसार-रूपी बन्धन तोड़े हैं, वह सदा ही मुक्त है। हे सच्चे, तू सदा आप ही मुक्त-रूप है और अपने अप्रत्यक्ष स्वरूप को आप ही दिखाता है ॥ ४ ॥ तू आप ही माया है और आप ही उस माया में प्रतिबिम्बित है। तूने आप ही सम्पूर्ण जगत् में उस माया का मोह उत्पन्न कर दिया है। तू आप ही गुणदाता गुरु है, आप ही गुणगायक है और आगे आप ही कह-कह सुनवाता है ॥ ५ ॥ आप ही जीवों का कर्त्ता है और आप ही उनसे कर्म कराता है। आप ही सृष्टि की प्रतिष्ठापना करता है और आप ही प्रलय करता है। तुझसे अलग कुछ नहीं होता। तू आप ही जीवों को काम में लगाता है ॥ ६ ॥ तूने आप ही जीव मारे हैं और आप ही जिलाए हैं। तू आप ही सत्संगति के मेल में मिलाकर अपने साथ मिलाता है। जिसने सेवा की है, उसने सदा सुख पाया है। गुरमुख सहज ही तुझमें समाए हैं ॥ ७ ॥ तू आप ही सर्वोच्च हो रहा है, अर्थात् ब्रह्मा आदि सभी से तू उच्च है। जिसे तू आप दिखाता है सो ही तेरे को देखता है। गुरुजी कहते हैं, जिनके हृदय में तेरा नाम बसा है सो तेरे को आप देखते हैं तथा दूसरों को दिखाते हैं ॥ ८ ॥ २६ ॥ २७ ॥

॥ माझ महला ३ ॥ मेरा प्रभु भरपूरि रहिआ सभ थाई। गुर परसादी घर ही महि पाई। सदा सरेवी इक मनि धिआई गुरमुखि सचि समावणिआ ॥ १ ॥ हउ वारी जीउ वारी जग जीवनु मंनि वसावणिआ। हरि जगजीवनु निरभउ दाता गुरमति सहजि समावणिआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ घर महि धरती धउलु पाताला। घर ही महि प्रीतमु सदा है बाला। सदा अनंदि रहै सुखदाता गुरमति सहजि समावणिआ ॥ २ ॥ काइआ अंदरि हउमै मेरा। जंमण मरणु न चूकै फेरा। गुरमुखि होवै सु हउमै मारे सचो सचु धिआवणिआ ॥ ३ ॥ काइआ अंदरि पापु पुंनु दुइ भाई। दुही मिलि कै स्रिसटि उपाई। दोवै मारि जाइ इकतु घरि आवै गुरमति सहजि समावणिआ ॥ ४ ॥ घर ही

माहि दूजै भाइ अनेरा। चानणु होवै छोडै हउमै मेरा। परगटु सबदु है सुखदाता अनदिनु नामु धिआवणिआ॥ ५॥ अंतरि जोति परगटु पासारा। गुर साखी मिटिआ अंधिआरा। कमलु बिगासि सदा सुखु पाइआ जोती जोति मिलावणिआ॥ ६॥ अंदरि महल रतनी भरे भंडारा। गुरमुखि पाए नामु अपारा। गुरमुखि वणजे सदा वापारी लाहा नामु सद पावणिआ॥ ७॥ आपे वथु राखै आपे देइ। गुरमुखि वणजहि केई केइ। नानक जिसु नदरि करे सो पाए करि किरपा मंनि वसावणिआ॥ ८॥ २७॥ २८॥

[प्रस्तुत अंश में गुरुजी ने भक्तों की महिमा और उनका अनुभव व्यक्त किया है।]

मेरा प्रभु सर्वत्र परिव्याप्त है, लेकिन सतिगुरु की कृपा से उसे शरीर में पाया जाता है। इसलिए सर्वदा एकाग्रचित्त होकर सेवा करें और नाम-स्मरण करें, क्योंकि स्मरण से गुरमुख सत्य में समा गए हैं॥ १॥ जो जगजीवन वाहिगुरु को मन में बसाते हैं, मैं उनपर बलिहारी जाता हूँ। जगजीवन प्रभु निर्भयता को देनेवाला है। जिन्होंने गुरु की शिक्षा ग्रहण की है, वे सहज ही उसमें समा जाते हैं॥ १॥ रहाउ॥ शरीर के भीतर ही धरती, धवलु और पाताल हैं, अर्थात् देह में ही क्षमा, धर्म और गम्भीरता हैं और शरीर के भीतर ही नितनूतन प्रियतम परमेश्वर है। वह सुखदाता सदा आनन्दित रहता है और उसमें गुरमुख सहज ही समा जाते हैं॥ २॥ जब तक शरीर के भीतर अहंत्व, ममत्व है, तब तक जन्म-मरण का चक्र समाप्त नहीं होता। जो गुरमुख होता है, वह अहंत्व, ममत्व को मारता है और निश्चय कर सत्य का स्मरण करता है॥ ३॥ हे भाई, काया के भीतर पाप तथा पुण्य दोनों हैं और दोनों ने मिलकर ही सृष्टि को उत्पन्न किया है। इन दोनों को मारकर जब जीव एकता-रूपी घर में आ जाए, तब सतिगुरु की शिक्षा लेकर स्व-रूप में समा जाते हैं॥ ४॥ हृदय के बीच ही द्वैतभाव का अँधेरा है, लेकिन प्रकाश तब होवे जब जीव 'मैं, मेरा' से अलग हो जाए। (जिन्हें उपदेश मिला है) और रात-दिन नाम जपते हैं, उन्हें सुखदाता प्रभु सदा प्रकट हुआ है॥ ५॥ जिसका प्रसार प्रत्यक्ष है, उसकी ज्योति उन्होंने भीतर ही पहचानी है, गुरु के उपदेश से जिनका अन्धकार मिट गया है, उनका हृदय-रूपी कमल विकसित हुआ है, उन्होंने सदा सुख पाया है और ज्योति में ज्योति को मिलाया है॥ ६॥ शरीर के भीतर ही भण्डार भरे पड़े हैं, अर्थात् वैराग्य आदि गुण परिपूरित हैं। उन गुणों से सम्पन्न होकर अपार परमेश्वर का नाम सतिगुरु द्वारा पाया है। गुरमुख व्यापारी होकर सदा नाम को

खरीदते हैं और नाम से शाश्वत मुक्ति-रूपी लाभ पाते हैं ।।७।। परमेश्वर आप नाम-रूपी वस्तु गुरु के पास रखता है, आप ही गुरुरूप होकर देता है, लेकिन कोई गुरमुख ही यह व्यापार करते हैं । गुरुजी कहते हैं, जिस पर वाहिगुरु कृपा करता है, वह गुरु को पाता है और जिस पर सतिगुरु कृपा करते हैं, वे नाम को मन में बसाते हैं ।। ८ ।। २७ ।। २८ ।।

।। माझ महला ३ ।। हरि आपे मेले सेव कराए । गुर कै सबदि भाउ दूजा जाए । हरि निरमलु सदा गुणदाता हरिगुण महि आपि समावणिआ ।। १ ।। हउ वारी जीउ वारी सचु सचा हिरदै वसावणिआ । सचा नामु सदा है निरमलु गुरसबदी मंनि वसावणिआ ।। १ ।। रहाउ ।। आपे गुरुदाता करमि बिधाता । सेवक सेवहि गुरमुखि हरि जाता । अंम्रित नामि सदा जन सोहहि गुरमति हरिरसु पावणिआ ।। २ ।। इसु गुफा महि इकु थानु सुहाइआ । पूरै गुरि हउमै भरमु चुकाइआ । अनदिनु नामु सलाहनि रंगि राते गुर किरपा ते पावणिआ ।। ३ ।। गुर कै सबदि इहु गुफा वीचारे । नामु निरंजनु अंतरि वसै मुरारे । हरिगुण गावै सबदि सुहाए मिलि प्रीतम सुखु पावणिआ ।। ४ ।। जमु जागाती दूजै भाइ करु लाए । नावहु भूले देइ सजाए । घड़ी मुहत का लेखा लेवै रतीअहु मासा तोल कढावणिआ ।। ५ ।। पेईअड़ै पिरु चेते नाही । दूजै मुठी रोवै धाही । खरी कुआलिओ कुरूपि कुलखणी सुपनै पिरु नही पावणिआ ।। ६ ।। पेईअड़ै पिरु मंनि वसाइआ । पूरै गुरि हदूरि दिखाइआ । कामणि पिरु राखिआ कंठि लाइ सबदे पिरु रावै सेज सुहावणिआ ।। ७ ।। आपे देवै सदि बुलाए । आपणा नाउ मंनि वसाए । नानक नामु मिलै वडिआई अनदिनु सदा गुण गावणिआ ।। ८ ।। २८ ।। २९ ।।

जिन्हें हरि ने आप गुरु के साथ मिलाया है, वह उनसे गुरु की सेवा कराता है, इस प्रकार गुरु के उपदेश से द्वैतभाव समाप्त हो जाता है । हरि निर्मल हैं, जो सब शुभ गुणों के दाता हैं । ऐसे हरि के गुणों में सेवक आप समाए हैं ।। १ ।। जो निश्चय करके सच्चे को हृदय में बसाते हैं, मैं उनपर मन, तन से बलिहारी जाता हूँ । सच्चा नाम सदा निर्मल है, लेकिन सतिगुरु के उपदेश माननेवालों ने उन्हें मन में बसाया है ।। १ ।। रहाउ ।। वह आप ही कर्म-फल प्रदाता है, आप ही बड़ा दाता है, जो

सेवक होकर सेवा करते हैं, उन गुरमुखों ने उस हरि को जाना है। अमृत-रूपी नामी को पाकर सदा भक्तजन शोभा पाते हैं और पूर्ण सतिगुरु की शिक्षा से हरि-रस को पाते हैं ॥ २ ॥ इस देह-गुफा में अन्तःकरण-रूपी एक स्थान सुशोभित हो रहा है, अर्थात् पाँच तत्वों से निर्मित देह में एक अन्तःकरण विद्यमान है। उस अन्तःकरण में से पूर्णगुरु ने जिनका अहंत्व, ममत्व उठा दिया है, वे रात-दिन प्रेम में अनुरक्त हो नाम जपते हैं (लेकिन) पूर्ण-सतिगुरु की कृपा से ही उन्होंने नाम पाया है ॥ ३ ॥ सतिगुरु के उपदेश से ही यह गुफा में चिन्तन-मनन करता है (और महसूस करता है) कि निरंजन वाहिगुरु भीतर ही बसता है। सतिगुरु के उपदेश से हरि को सुशोभित करनेवाले गुण गाते हैं और फिर प्रियतम के साथ मिलकर सुख पाते हैं ॥ ४ ॥ यम-रूपी कर वसूल करनेवाले द्वैतभाव में भटके हुए व्यक्तियों पर कर लगाते हैं और नाम विस्मृत करनेवालों को दण्ड देते हैं। यमदूत द्वैतभाव में निमग्न मनमुखों का घड़ी, आधी घड़ी और मुहूर्त भर का भी लेखा-जोखा लेते हैं ॥ ५ ॥ इस लोक में अर्थात् पितृगृह में जीव-रूपी स्त्री परमेश्वर को स्मरण नहीं करती। द्वैतभाव के कारण ठगी हुई छाती पीट-पीटकर रोती है। वह सर्वथा निन्दित, कुरूप (भीतर से विकृत) तथा अशुभ लक्षणों वाली है (इसलिए) वह स्वप्न में भी परमात्म-प्रियतम को नहीं पाती है ॥ ६ ॥ जिसने इस लोक में पति को मन में बसाया है उसे पूर्ण-सतिगुरु ने पति को प्रत्यक्ष दिखाया है। जिस जीव-स्त्री ने प्रियतम को गले के साथ लगाकर रखा है, अर्थात् प्रियतम के साथ अभेदत्व महसूस किया है, वह सतिगुरु की शिक्षा से पति के आनन्द को भोगती है, इसलिए उसकी अन्तःकरण-रूपी सेज शोभा पाती है ॥ ७ ॥ परमात्मा आप ही बुलाकर श्रेष्ठता देता है, अर्थात् सत्संग में बुलाकर आप ही दैवी गुणों से सम्पन्न करता है और अपना नाम हृदय में बसाता है। गुरुजी कहते हैं, जिन्हें नाम से महानता मिलती है, वे रात-दिन सदैव हरि के गुणों को गाते हैं ॥ ८ ॥ २८ ॥ २९ ॥

॥ माझ महला ३ ॥ ऊतम जनमु सुथानि है वासा। सतिगुरु सेवहि घर माहि उदासा। हरि रंगि रहहि सदा रंगि राते हरि रसि मनु त्रिपतावणिआ ॥ १ ॥ हउ वारी जीउ वारी पड़ि बुझि मंनि वसावणिआ। गुरमुखि पड़हि हरिनामु सलाहहि दरि सचै सोभा पावणिआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ अलख अभेउ हरि रहिआ समाए। उपाइ न किती पाइआ जाए। किरपा करे ता सतिगुरु भेटै नदरी मेलि मिलावणिआ ॥ २ ॥ दूजै भाइ पड़ै नही बूझै। त्रिबिधि माइआ कारणि लूझै। त्रिबिधि बंधन

तूटहि गुर सबदी गुर सबदी मुकति करावणिआ ॥ ३ ॥ इहु मनु चंचलु वसि न आवै । दुबिधा लागै दहदिसि धावै । बिखु का कीड़ा बिखु महि राता बिखु ही माहि पचावणिआ ॥ ४ ॥ हउ हउ करे तै आपु जणाए । बहु करम करै किछु थाइ न पाए । तुझ ते बाहरि किछू न होवै बखसे सबदि सुहावणिआ ॥ ५ ॥ उपजै पचै हरि बूझै नाही । अनदिनु दूजै भाइ फिराही । मनमुख जनमु गइआ है बिरथा अंति गइआ पछुतावणिआ ॥ ६ ॥ पिरु परदेसि सिगारु बणाए । मनमुख अंधु ऐसे करम कमाए । हलति न सोभा पलति न ढोई बिरथा जनमु गवावणिआ ॥ ७ ॥ हरि का नामु किनै विरलै जाता । पूरे गुर कै सबदि पछाता । अनदिनु भगति करे दिनु राती सहजे ही सुखु पावणिआ ॥ ८ ॥ सभ महि वरतै एको सोई । गुरमुखि विरला बूझै कोई । नानक नामि रते जन सोहहि करि किरपा आपि मिलावणिआ ॥ ९ ॥ २९ ॥ ३० ॥

वाहिगुरु ने उत्तम मनुष्य जन्म दिया है और शुभ स्थान पर निवास हुआ है। यह जानकर सतिगुरु की सेवा करते हैं और घर में रहते भी अथवा देह-रूपी घर में रहते हुए निर्लिप्त रहते हैं। प्रेममूर्त्ति हरि के प्रेम से सदा मस्त रहते हैं और हरि-रस से उनका मन तृप्त रहता है ॥ १ ॥ जो शास्त्रों को पढ़-पढ़कर उनके सिद्धान्तों को मन में बसाते हैं, मैं उनपर मन, तन से बलिहारी जाता हूँ। गुरमुख पढ़ते हैं, हरि-नाम की सराहना करते हैं और फिर सच्चे के द्वार पर शोभा पाते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ अदृश्य, अभेद हरि सर्वव्यापक है और किसी उपाय से वह पाया नहीं जाता। यदि वाहिगुरु आप ही कृपा करे तभी सतिगुरु से भेंट सम्भव है, अर्थात् वाहिगुरु की कृपा से ही सतिगुरु से मिलाप होता है, इसलिए वह सतिगुरु ही वाहिगुरु के साथ मिलानेवाला है ॥ २ ॥ जो द्वैतभाव के कारण शास्त्रों को पढ़ता है, वह धर्म-अधर्म को नहीं समझता और त्रिगुणात्मक माया के लिए झगड़ता है। त्रिगुणात्मक माया के बन्धन गुरु-उपदेश से टूटते हैं। गुरु-उपदेशक स्वयं मुक्त हैं तथा दूसरों को साधना द्वारा मुक्त कराते हैं ॥ ३ ॥ यह चंचल मन वश में नहीं आता क्योंकि दुबिधा में ग्रस्त बहुत प्रकार से दौड़ता है। विषय-रूपी विष का कीड़ा विषय-रूपी निम्न कर्मों में अनुरक्त है, अर्थात् मनमुख सर्वदा विषयवासनाओं में ही डूबा रहता है, और विषयवासनाओं के विष में ही वह समाप्त हो जाता है ॥ ४ ॥ जो पुरुष अहंत्व, ममत्व द्वारा अपने आपको दिखाता है, अर्थात् अहंकार द्वारा अपने महत्व का बोध कराता है, वह पुरुष बहुत प्रकार

के कर्म करता है, लेकिन उसे कोई टिकाव नहीं मिलता। यहाँ टिकाव से अभिप्राय मोक्ष से है, जहाँ समस्त दुबिधाओं से जीव को मुक्ति मिल जाती है। (इसलिए जीव परमेश्वर के प्रति इस प्रकार प्रार्थना करे) हे परमेश्वर, तेरे हुक्म के बाहर कुछ नहीं होता। जो गुरु-उपदेश से सुशोभित हो रहे हैं, उन्हें तूने बख्श दिया है, अर्थात् उनपर तूने ही कृपा की है ॥ ५ ॥ जो हरि को नहीं समझता, वह आवागमन में समाप्त होता है, अर्थात् उपज की वासना-रूपी अग्नि में जलता है और रात-दिन द्वैतभाव में लगा रहता है। मनमुख का जन्म वृथा बीत गया है और अन्त में पश्चाताप करता हुआ गया है ॥ ६ ॥ मनमुख अंधे व्यक्तियों के सभी कर्म ऐसे हैं, जैसे पति के परदेश होने पर स्त्री बहुत शृंगार करे। अर्थात् जैसे प्रोषितपतिका के समस्त शृंगार व्यर्थ हैं, उसी प्रकार मनमुखों के समूचे कर्म परमेश्वर में अनासक्त होने से निरर्थक हैं। इस लोक में उन्हें शोभा नहीं, और परलोक में भी परमेश्वर का सामीप्य नहीं मिलता। वे वृथा जन्म गवाँते हैं ॥ ७ ॥ हरि का नाम किसी विरले ने ही जाना है। जिसने पूर्ण सतिगुरु के उपदेश को पहचाना है, वे रात-दिन भक्ति करते हैं, इसलिए स्वतः ही सुख पाते हैं ॥ ८ ॥ वह एक परमात्मा ही सब में परिव्याप्त है, परन्तु इसे कोई विरला गुरमुख ही जानता है। गुरुजी कहते हैं, जो नाम में अनुरक्त हैं, वे पुरुष शोभा पाते हैं; लेकिन वह आप ही कृपा करके मिलाता है ॥ ९ ॥ २९ ॥ ३० ॥

॥ माझ महला ३ ॥ मनमुख पड़हि पंडित कहावहि। दूजै भाइ महा दुखु पावहि। बिखिआ माते किछु सूझै नाही फिरि फिरि जूनी आवणिआ ॥ १ ॥ हउ वारी जीउ वारी हउमै मारि मिलावणिआ। गुर सेवा ते हरि मनि वसिआ हरि रसु सहजि पीआवणिआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ वेदु पड़हि हरि रसु नही आइआ। वादु वखाणहि मोहे माइआ। अगिआन मती सदा अंधिआरा गुरमुखि बूझि हरि गावणिआ ॥ २ ॥ अकथो कथीऐ सबदि सुहावै। गुरमती मनि सचो भावै। सचो सचु रवहि दिनु राती इहु मनु सचि रंगावणिआ ॥ ३ ॥ जो सचि रते तिन सचो भावै। आपे देइ न पछोतावै। गुर कै सबदि सदा सचु जाता मिलि सचे सुखु पावणिआ ॥ ४ ॥ कूड़ु कुसतु तिना मैलु न लागै। गुर परसादी अनदिनु जागै। निरमल नामु वसै घट भीतरि जोती जोति मिलावणिआ ॥ ५ ॥ त्रै गुण पड़हि हरि ततु न जाणहि। मूलहु भुले गुर सबदु न पछाणहि।

मोह बिआपे किछु सूझै नाही गुर सबदी हरि पावणिआ ॥ ६ ॥ वेदु पुकारै त्रिबिधि माइआ । मनमुख न बूझहि दूजै भाइआ । त्रै गुण पड़हि हरि एकु न जाणहि बिनु बूझे दुखु पावणिआ ॥ ७ ॥ जा तिसु भावै ता आपि मिलाए । गुर सबदी सहसा दूखु चुकाए । नानक नावै की सची वडिआई नामो मंनि सुखु पावणिआ ॥ ८ ॥ ३० ॥ ३१ ॥

मनमुख द्वैतभाव के कारण पढ़ते हैं और पण्डित कहलाते हैं। (इसलिए) द्वैतभाव के कारण बहुत दुःख पाते हैं। विषयों में मस्त जीव को कुछ नहीं सूझता और पुनःपुनः योनियों में आते हैं ॥ १ ॥ जिन्होंने अहंकार को मारकर मन को वाहिगुरु के साथ मिलाया है, मैं उनपर बलिहारी जाता हूँ। सतिगुरु की सेवा से हरि-नाम मन में बसता है और वे हरि के नाम-रस को स्वतः ही पीते-पिलाते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ वेद को पढ़ते भी हैं (लेकिन) उनको हरि-रस नहीं आया। क्योंकि माया द्वारा मोहित होकर व्यर्थ ही वैरभाव बखानते हैं। अज्ञान बुद्धि वालों को सदा अन्धकार है और गुरमुख शास्त्र के सिद्धान्त को समझकर हरि-रस को गाते हैं ॥ २ ॥ जो सतिगुरु के उपदेश से सुशोभित होकर अकथनीय वाहिगुरु के यश को बखानते हैं, (ऐसे) गुरमुखों अथवा सतिगुरु के उपदेशों का अनुसरण करनेवालों के मन में सच्चा ही भाता है। वे निरन्तर सत्य ही सत्य कहते हैं और उन्होंने अपना मन सत्य में रंगा लिया है ॥ ३ ॥ जो सत्य में अनुरक्त हैं, उनको सत्य ही भाता है। जिसे वाहिगुरु आप सत्य देता है, वह पश्चाताप नहीं करता। जिन्होंने सतिगुरु के उपदेश से सदा सत्य को जाना है, वे सच्चे को मिलकर सुख पाते हैं ॥ ४ ॥ झूठ तथा दुराचरण-रूपी मैल उनको नहीं लगती क्योंकि वे सतिगुरु की कृपा से निरन्तर भजन में जागे हैं। उनके हृदय में निर्मल नाम बसता है और उनकी ज्योति, ज्योति में मिली है ॥ ५ ॥ त्रिगुणात्मक जीव पढ़ते हैं, लेकिन हरि के वास्तविक स्वरूप को नहीं पहचानते। वे ब्रह्मरूप को भूले हैं, क्योंकि सतिगुरु का उपदेश नहीं पहचानते। वे मोहमग्न हैं, इसलिए उन्हें कुछ नहीं सूझता। सतिगुरु का उपदेश माननेवालों ने हरि को पाया है ॥ ६ ॥ त्रिगुणात्मक माया के लिए वेद पढ़ते हैं। मनमुख द्वैतभाव के कारण परमेश्वर को नहीं समझते। त्रैगुणीमाया के लिए वेदों का पठन-पाठन करते हुए एक हरि को नहीं जानते, इसलिए जाने बिना दुःख पाते हैं ॥ ७ ॥ यदि वाहिगुरु को भाए तो वह आप सतिगुरु को मिलाता है। गुरमुख सहसा ही दुःख को समाप्त कर देता है। गुरुजी कहते हैं, नाम की महानता सत्य है। नाम को मानकर जीव सुख पाते हैं ॥ ८ ॥ ३० ॥ ३१ ॥

।। माझ महला ३ ।। निरगुणु सरगुणु आपे सोई । ततु पछाणै सो पंडितु होई । आपि तरै सगले कुल तारै हरिनामु मंनि वसावणिआ ।। १ ।। हउ वारी जीउ वारी हरिरसु चखि सादु पावणिआ । हरिरसु चाखहि से जन निरमल निरमल नामु धिआवणिआ ।। १ ।। रहाउ ।। सो निहकरमी जो सबदु बीचारे । अंतरि ततु गिआनि हउमै मारे । नामु पदारथु नउ निधि पाए त्रै गुण मेटि समावणिआ ।। २ ।। हउमै करै निहकरमी न होवै । गुर परसादी हउमै खोवै । अंतरि बिबेकु सदा आपु वीचारे गुर सबदी गुण गावणिआ ।। ३ ।। हरि सरु सागरु निरमलु सोई । संत चुगहि नित गुरमुखि होई । इसनानु करहि सदा दिनु राती हउमै मैलु चुकावणिआ ।। ४ ।। निरमल हंसा प्रेम पिआरि । हरि सरि वसै हउमै मारि । अहिनिसि प्रीति सबदि साचै हरि सरि वासा पावणिआ ।। ५ ।। मनमुखु सदा बगु मैला हउमै मलु लाई । इसनानु करै परु मैलु न जाई । जीवतु मरै गुरसबदु बीचारै हउमै मैलु चुकावणिआ ।। ६ ।। रतनु पदारथु घर ते पाइआ । पूरै सतिगुरि सबदु सुणाइआ । गुरपरसादि मिटिआ अंधिआरा घटि चानणु आपु पछानणिआ ।। ७ ।। आपि उपाए तै आपे वेखै । सतिगुरु सेवै सो जनु लेखै । नानक नामु वसै घट अंतरि गुर किरपा ते पावणिआ ।। ८ ।। ३१ ।। ३२ ।।

वह प्रभु आप ही निर्गुण है और आप ही सगुण है । उसके स्वरूप को जो पहचाने, वह पण्डित होता है । हरि का नाम मन में बसाने से आप अपना तथा समूचे कुल का उद्धार करता है ।। १ ।। मैं उनपर मन, तन से बलिहारी जाता हूँ, जो हरि-रस चखकर आनन्द लेते हैं । जो हरि-रस को चखते हैं सो निर्मल हैं और निर्मल नाम का स्मरण करते हैं ।। १ ।। रहाउ ।। जो गुरु के उपदेश अर्थात् शब्द पर विचार करे, वह पुरुष निष्काम कर्मयोगी है । जो अहंकार को मारे उसके हृदय में यथार्थ ज्ञान होता है । वह नाम पदार्थ से नवनिधियों को पाता है और तीन गुणों को मिटाकर परमेश्वर में समा जाता है ।। २ ।। जो अहंकार-सहित कर्म करता है, वह निष्काम नहीं होता । जिसपर गुरु की कृपा हो वही अहंत्व और ममत्व खोता है । अन्तःकरण में विवेक धारण कर सदा अपने स्वरूप का विचार करे और सतिगुरु का उपदेश स्वीकार कर गुणगान करे ।। ३ ।। हरि के सन्तों का संग मानसरोवर के तुल्य है, इस संसार-सागर में सन्त नित्य ही मोती चुगते हैं, इसलिए उनकी बुद्धि गुरु के

अनुसार हो गई है। वे कथा-कीर्तन-रूपी जल में सदा निरन्तर भजन करते हैं और उन्होंने अहंकार के मैल को हटाया है ॥४॥ वे हंस जिनका प्रेम में ही लगाव है, बिल्कुल निर्मल हैं। वे अहंकार को मारकर हरि-सर अर्थात् सत्संग में बसते हैं। जो हरि-सर में वास करनेवाले हैं, उनकी सच्चे शब्द में रात दिन प्रीति लगी है ॥ ५ ॥ मनमुख बगुला सदा मैला है क्योंकि उसने अहंकार की मैल लिपटाई हुई है। यद्यपि सत्संग में जाकर कीर्त्तन, कथाश्रवण-रूपी स्नान भी करता है, परन्तु मैल नहीं हटती। जो सतिगुरु के उपदेश को विचारकर जीवित-भाव से मृत हैं, उन्होंने अहंकार के मैल को गवाँया है ॥ ६ ॥ जब पूर्ण-सतिगुरु ने उपदेश सुना दिया तब उत्तम पदार्थ अर्थात् आत्मा को हृदय में ही टिका लिया है, अर्थात् हृदय दुबिधाओं से मुक्त हो गया है। सतिगुरु की कृपा से अज्ञान-रूपी अँधेरा मिट गया और ज्ञान के प्रकाश से हृदय में अपने स्वरूप को पहचाना है ॥ ७ ॥ वाहिगुरु ने जीव आप उत्पन्न किए हैं और आप ही उन्हें देख रहा है। जो सतिगुरु की सेवा करता है, उस पुरुष का कर्म लेखे-जोखे में आता है, अर्थात् उस पुरुष का कर्म सफल है। गुरुजी कहते हैं, परमेश्वर हृदय में बसता है, लेकिन वह सतिगुरु की कृपा से प्राप्त होता है॥ ८ ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

॥ माझ महला ३ ॥ माइआ मोहु जगतु सबाइआ। त्रै गुण दीसहि मोहे माइआ। गुरपरसादी को विरला बूझै चउथै पदि लिव लावणिआ ॥ १ ॥ हउ वारी जीउ वारी माइआ मोहु सबदि जलावणिआ। माइआ मोहु जलाए सो हरि सिउ चितु लाए हरि दरि महली सोभा पावणिआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ देवी देवा मूलु है माइआ। सिम्रिति सासत जिनि उपाइआ। कामु क्रोधु पसरिआ संसारे आइ जाइ दुखु पावणिआ ॥ २ ॥ तिसु विचि गिआन रतनु इकु पाइआ। गुर परसादी मंनि वसाइआ। जतु सतु संजमु सचु कमावै गुरि पूरै नामु धिआवणिआ ॥ ३ ॥ पेईअड़ै धन भरमि भुलाणी। दूजै लागी फिरि पछोताणी। हलतु पलतु दोवै गवाए सुपनै सुखु न पावणिआ ॥ ४ ॥ पेईअड़ै धन कंतु समाले। गुरपरसादी वेखै नाले। पिर कै सहजि रहै रंगि राती सबदि सिंगारु बणावणिआ ॥ ५ ॥ सफलु जनमु जिना सतिगुरु पाइआ। दूजा भाउ गुर सबदि जलाइआ। एको रवि रहिआ घट अंतरि मिलि सत संगति हरिगुण गावणिआ ॥ ६ ॥ सतिगुरु न सेवे

सो काहे आइआ। ध्रिगु जीवणु बिरथा जनमु गवाइआ। मनमुखि नामु चिति न आवै बिनु नावै बहु दुखु पावणिआ ॥ ७ ॥ जिनि सिसटि साजी सोई जाणै। आपे मेलै सबदि पछाणै। नानक नामु मिलिआ तिन जन कउ जिन धुरि मसतकि लेखु लिखावणिआ ॥ ८ ॥ १ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

सम्पूर्ण जगत् माया में मोहबद्ध है और सभी त्रैगुणी जीव माया से मोहित दिखाई देते हैं। सतिगुरु की कृपा से कोई विरला ही समझता है और आत्मा में वृत्ति लगाता है ॥ १ ॥ जो सतिगुरु के उपदेश से माया का मोह जलाते हैं, मैं उनपर मन, तन से बलिहारी जाता हूं। जो माया, मोह जलाता है, वही हरि के साथ चित्त लगाता है और वही जिज्ञासु हरि के द्वार पर शोभा पाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ देवी-देवताओं का मूल माया है, जिन्होंने स्मृतियों तथा शास्त्रों को उत्पन्न किया है। संसार में काम, क्रोध फैला हुआ है, इसलिए सांसारिक जीव जन्मते-मरते दुःख पाते हैं ॥ २ ॥ इस संसार में एक ज्ञान-रूपी रत्न विद्यमान है, जिनपर सतिगुरु की कृपा हुई है, उन्होंने उसे मन में बसाया है। वे संयमित, सत्यपालक तथा जितेन्द्रिय होकर सत्य-रूपी परमेश्वर की भक्ति करते हैं और पूर्णगुरु द्वारा नाम का स्मरण करते हैं ॥ ३ ॥ जो जीव-स्त्री इस लोक में भ्रमों में भटकी हुई है, वह द्वैतभाव में लगी हुई फिर पछताई है। उसने लोक-परलोक दोनों गवाँए हैं और स्वप्न में भी सुख नहीं पाया है ॥ ४ ॥ जो जीव-रूपी स्त्री इस लोक में पति को स्मरण करती है, वह सतिगुरु की कृपा से पति को अपने साथ देखती है। वह सहज ही पति के प्रेम में अनुरक्त रहती है और उसने गुरु-उपदेश का शृंगार बनाया है ॥ ५ ॥ जिन्होंने सतिगुरु का उपदेश ग्रहण किया है और द्वैतभाव उपदेश से जलाया है, उनका जन्म सफल है। और वे एक ही रवि को हृदय में परिव्याप्त जानकर सत्संग में मिलकर हरि के गुण गाते हैं ॥ ६ ॥ जो सतिगुरु की सेवा नहीं करता, वह क्यों आया है, अर्थात् क्यों जन्मा है? धिक्कार है उसके जीने को, क्योंकि उसने व्यर्थ ही जन्म गवाँया है। मनमुख को नाम याद नहीं आता। बिना नाम के बहुत दुःख पाता है ॥ ७ ॥ जिसने सृष्टि रची है, वही जानता है। जो गुरु के उपदेश को पहचानता है, उसको आप वाहिगुरु मिलाता है। गुरुजी कहते हैं, जिन पुरुषों ने आदि से ही मस्तक में शुभ लेख लिखाया है, उन्हें नाम में मिलाया है ॥ ८ ॥ १ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

॥ माझ महला ४ ॥ आदि पुरखु अपरंपरु आपे। आपे थापे थापि उथापे। सभ महि वरतै एको सोई गुरमुखि सोभा

पावणिआ ।। १ ।। हउ वारी जीउ वारी निरंकारी नामु धिआवणिआ । तिसु रूपु न रेखिआ घटि घटि देखिआ गुरमुखि अलखु लखावणिआ ।। १ ।। रहाउ ।। तू दइआलु किरपालु प्रभु सोई । तुधु बिन दूजा अवरु न कोई । गुरु परसादु करे नामु देवै नामे नामि समावणिआ ।। २ ।। तूं आपे सचा सिरजणहारा । भगती भरे तेरे भंडारा । गुरमुखि नामु मिलै मनु भीजै सहजि समाधि लगावणिआ ।। ३ ।। अनदिनु गुण गावा प्रभ तेरे । तुधु सालाही प्रीतम मेरे । तुधु बिनु अवरु न कोई जाचा गुर परसादी तूं पावणिआ ।। ४ ।। अगमु अगोचरु मिति नही पाई । अपणी क्रिपा करहि तूं लैहि मिलाई । पूरे गुर कै सबदि धिआईऐ सबदु सेवि सुखु पावणिआ ।। ५ ।। रसना गुणवंती गुण गावै । नामु सलाहे सचे भावै । गुरमुखि सदा रहै रंगि राती मिलि सचे सोभा पावणिआ ।। ६ ।। मनमुखु करम करे अहंकारी । जूऐ जनमु सभ बाजी हारी । अंतरि लोभु महा गुबारा फिरि फिरि आवण जावणिआ ।। ७ ।। आपे करता दे वडिआई । जिन कउ आपि लिखतु धुरि पाई । नानक नामु मिलै भउभंजनु गुरसबदी सुखु पावणिआ ।।८।।१।।३४।।

हे वाहिगुरु, तू ही आदिपुरुष, अपरम्पार आदि ब्रह्म है । तू आप ही सृष्टि की स्थापना करता है और आप ही विनाश करता है । सबके बीच एक तू ही सर्वव्यापक है, ऐसा जानकर गुरमुख शोभा पाते हैं ।। १ ।। हे निरंकार, जो सदा तेरे नाम का स्मरण करते हैं, मैं उन पर मन, तन से बलिहारी जाता हूँ । जिस प्रभु का न कोई रूप है, न कोई रेखा है, उसे गुरमुखों ने घट-घट में देखा है । वे गुरमुख दूसरों को तेरा स्वरूप दिखा देते हैं ।। १ ।। रहाउ ।। हे दयालु, तू ही कृपा करनेवाला है । तेरे बिना दूसरा कोई नहीं । यदि गुरु कृपा करे और नाम दे तो उस नाम के द्वारा भक्त तुझ नामी में समा जाते हैं ।। २ ।। तू आप ही सच्चा सृष्टि-सृजनहार है । तेरे भण्डार भक्ति से भरे हुए हैं । जिन गुरमुखों को तेरा नाम मिला है, उनका मन भक्ति में भीग गया है और वे सहज ही समाधि लगाते हैं ।। ३ ।। हे प्रभु, ऐसी कृपा करो ताकि रात-दिन तेरे गुण गायन करूँ और हे मेरे प्रियतम, तेरी ही श्लाघा करूँ । तेरे बिना किसी दूसरे की याचना न करूँ, अर्थात् तेरी ही प्राप्ति चाहूँ । लेकिन तू सतिगुरु की कृपा से पाया जाता है ।। ४ ।। हे अगम्य, अगोचर, तेरी मर्यादा का पार नहीं पाया जाता । जिसपर तू अपनी कृपा करता है,

उसको मिला लेता है। जो पूर्ण-सतिगुरु के उपदेश ग्रहण कर ब्रह्म को स्मरण करते हैं, वे ब्रह्म की सेवा करके सुख पाते हैं ॥ ५ ॥ जो जिह्वा तेरे गुणों को गाती है, वह गुणवन्ती है। जो नाम की सराहना करते हैं सो हे सच्चे, तुझे भाते हैं। गुरमुखों की बुद्धि (वृत्ति) सदा प्रेम में मस्त रहती है और वे तुझ से मिलकर शोभा पाते हैं ॥ ६ ॥ जो मनमुख हैं, वे अहंकारयुक्त कर्म करते हैं। उनकी जन्म-रूपी बाजी विषयों के जूए में हार गई है। (उनके) हृदय में लोभ का महान् घटाटोप अर्थात् अत्यधिक लोभ है, इसलिए बार-बार जन्मते-मरते हैं ॥ ७ ॥ हे कर्त्ता, तू उन्हें आप महानता देता है, जिन्हें तूने आदि से ही कर्मों के लेख दिए थे, अर्थात् जिन्हें वाहिगुरु ने आदि से ही शुभ कर्मों का कर्त्ता बनाया उन्हें वह आप ही महानता देता है। गुरुजी कहते हैं, सतिगुरु के उपदेश द्वारा जिन्हें तेरा भयनाशक नाम मिला है, वे सुख पाते हैं ॥ ८ ॥ १ ॥ ३४ ॥

॥ माझ महला ५ घरु १ ॥ अंतरि अलखु न जाई लखिआ। नामु रतनु लै गुझा रखिआ। अगमु अगोचरु सभ ते ऊचा गुर कै सबदि लखावणिआ ॥ १ ॥ हउ वारी जीउ वारी कलि महि नामु सुणावणिआ। संत पिआरे सचै धारे वडभागी दरसनु पावणिआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ साधिक सिध जिसै कउ फिरदे। ब्रहमे इंद्र धिआइनि हिरदे। कोटि तेतीसा खोजहि ता कउ गुर मिलि हिरदै गावणिआ ॥ २ ॥ आठ पहर तुधु जापे पवना। धरती सेवक पाइक चरना। खाणी बाणी सरब निवासी सभना कै मनि भावणिआ ॥ ३ ॥ साचा साहिबु गुरमुखि जापै। पूरे गुर कै सबदि सिञापै। जिन पीआ सेई त्रिपतासे सचे सचि अघावणिआ ॥ ४ ॥ तिसु घरि सहजा सोई सुहेला। अनद बिनोद करे सद केला। सो धनवंता सो वड साहा जो गुर चरणी मनु लावणिआ ॥ ५ ॥ पहिलो दे तैं रिजकु समाहा। पिछो दे तैं जंतु उपाहा। तुधु जेवडु दाता अवरु न सुआमी लवै न कोई लावणिआ ॥ ६ ॥ जिसु तूं तुठा सो तुधु धिआए। साध जना का मंत्रु कमाए। आपि तरै सगले कुल तारे तिसु दरगह ठाक न पावणिआ ॥ ७ ॥ तूं वडा तूं ऊचो ऊचा। तूं बेअंतु अति मूचो मूचा। हउ कुरबाणी तेरै वंञा नानक दास दसावणिआ ॥ ८ ॥ १ ॥ ३५ ॥

हे अलख रूप, तू सर्वव्यापक है लेकिन देखा नहीं जाता। तूने अपना

नाम-रूपी रत्न भी गुप्त रखा है अर्थात् तेरा नाम-रत्न दुर्लभ है। हे अगम्य, अगोचर, तू सबसे महान् है अर्थात् सर्वोपरि है, परन्तु गुरु की कृपा से तुझे देखा जाता है ।। १ ।। जो कलियुग में तेरे नाम का उपदेश करते हैं, मैं उनपर मन, तन से बलिहारी जाता हूँ। हे सच्चे, तुझे सन्त प्यारे हैं, उन्हें अपने आश्रय पर रखा है। उन सन्त पुरुषों का दर्शन सौभाग्यशाली पाते हैं ।। १ ।। रहाउ ।। साधक, सिद्ध जिस तेरे स्वरूप की प्राप्ति के लिए फिरते हैं अर्थात् तीर्थ, व्रत आदि साधनों से तुझे पाना चाहते हैं और ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवता हृदय में स्मरण करते हैं। तेतीस करोड़ देवता जिस स्वरूप को खोजते हैं, उस स्वरूप को हृदय में धारण कर वही गानेवाले हुए हैं जो सतिगुरु को मिले हैं ।। २ ।। तुझे पवन आठ प्रहर जपता है और जो तेरे चरणों के दास हैं, धरती उनकी सेवक है। समस्त दिशाओं, समस्त वाणियों में तू निवास कर रहा है और सबके मन को भाता है ।। ३ ।। तू सच्चा साहिब है, तुझे गुरमुख जपते हैं लेकिन पूर्ण-सतिगुरु के उपदेश से पहचानते हैं। जिन्होंने तेरा नाम-रस पान किया है, वे पुरुष मन-वाणी से तृप्त हुए हैं ।। ४ ।। उसके हृदय में ज्ञान है और वही सुखी है तथा मोद-प्रमोद वृत्तियों से सदा विलास कर रहा है। जो सतिगुरु के चरणों में मन लगाता है, वही धनवान है और वही सौभाग्यशाली है ।। ५ ।। तूने पहले ही प्राणियों के लिए खाद्य-सामग्री भेज दी है, अर्थात् प्राणियों के उत्पन्न होने से पूर्व ही माता के स्तनों में दूध भेज दिया है और उसके पश्चात् जीवों को उत्पन्न किया है। हे स्वामी, तेरे समान बड़ा दाता दूसरा कोई नहीं है, तेरे जैसा कोई नहीं लगता अर्थात् तेरे समान स्वरूपवाला कोई नहीं है ।। ६ ।। जिसपर तू प्रसन्न हुआ है, वही तुझे स्मरण करता है और साधु पुरुषों के उपदेश को कमाता है, अर्थात् अनुसरण करता है। वह संसार-समुद्र से आप पार उतर जाता है और समूचे कुल को पार उतार लेता है और उसे परलोक में प्रभु दरबार में कोई रोक-टोक नहीं होती ।। ७ ।। तू महान् है, सर्वोच्च है। तू अनन्त है, विस्तृत है। गुरुजी कहते हैं, मैं तुझ पर बलिहारी जाता हूं और तेरी प्राप्ति के लिए तेरे दासों को पूछता हूं ।। ८ ।। १ ।। ३५ ।।

।। माझ महला ५ ।। कउणु सु मुकता कउणु सु जुगता। कउणु सु गिआनी कउणु सु बकता। कउणु सु गिरही कउणु उदासी कउणु सु कीमति पाए जीउ ।। १ ।। किनि बिधि बाधा किनि बिधि छूटा। किनि बिधि आवणु जावणु तूटा। कउण करम कउण निहकरमा कउणु सु कहै कहाए जीउ ।। २ ।। कउणु सु सुखीआ कउणु सु दुखीआ। कउणु सु सनमुखु कउणु

वेमुखीआ । किनि बिधि मिलीऐ किनि बिधि बिछुरै इह बिधि कउण प्रगटाए जीउ ॥ ३ ॥ कउणु सु अखरु जितु धावतु रहता । कउणु उपदेसु जितु दुखु सुखु सम सहता । कउणु सुचाल जितु पारब्रहमु धिआए किनि बिधि कीरतनु गाए जीउ ॥ ४ ॥ गुरमुखि मुकता गुरमुखि जुगता । गुरमुखि गिआनी गुरमुखि बकता । धंनु गिरही उदासी गुरमुखि गुरमुखि कीमति पाए जीउ ॥ ५ ॥ हउमै बाधा गुरमुखि छूटा । गुरमुखि आवणु जावणु तूटा । गुरमुखि करम गुरमुखि निहकरमा गुरमुखि करे सु सुभाए जीउ ॥ ६ ॥ गुरमुखि सुखीआ मनमुखि दुखीआ । गुरमुखि सनमुखु मनमुखि वे मुखीआ । गुरमुखि मिलीऐ मनमुखि विछुरै गुरमुखि बिधि प्रगटाए जीउ ॥ ७ ॥ गुरमुखि अखरु जितु धावतु रहता । गुरमुखि उपदेसु दुखु सुखु सम सहता । गुरमुखि चाल जितु पारब्रहमु धिआए गुरमुखि कीरतनु गाए जीउ ॥ ८ ॥ सगली बणत बणाई आपे । आपे करे कराए थापे । इकसु ते होइओ अनंता नानक एकसु माहि समाए जीउ ॥ ९ ॥ २ ॥ ३६ ॥

[यहाँ गुरुजी जिज्ञासु भाव से चौबीस प्रश्नों को प्रस्तुत करते हैं और तदनन्तर प्रश्नों के उत्तर देते हैं ।]

मुक्त रूप कौन है ? परमेश्वर में जुड़ा हुआ कौन है ? ज्ञानी कौन है ? और परमेश्वर के यश का वक्ता कौन है ? गृहस्थी कौन है ? उदासी कौन है ? परमेश्वर की कीमत पानेवाला अर्थात् ज्ञाता कौन है ? ॥ १ ॥ किस विधि से जीव बँधा हुआ है ? किस विधि से जीव मुक्त हुआ है ? किस विधि से आवागमन अर्थात् जन्म-मरण छूटा है ? कर्म-सहित कौन है ? कर्म-रहित कौन है ? वाहिगुरु के यश को कहनेवाला तथा दूसरों से कहलानेवाला कौन है ? ॥ २ ॥ सुखी कौन है ? दुखी कौन है ? कौन सन्मुख है और कौन उदास है ? किस प्रकार जीव परमेश्वर को मिलता है ? किस प्रकार अलग होता है ? इस विधि को कौन प्रकट करता है ? ॥ ३ ॥ कौन-सा अक्षर है, जिसके पढ़ने से मन टिक जाता है ? कौन-सा उपदेश है, जिससे जीव सुख-दुःख को समान जानकर सहन करता है । वह रीति कौन है, जिससे जीव पारब्रह्म का ध्यान करे ? किस प्रकार जीव कीर्त्तन गाए ? ॥ ४ ॥ गुरमुख मुक्त है और गुरमुख ही परमेश्वर के साथ जुड़ा हुआ है । गुरमुख ज्ञाता है और गुरमुख सतिगुरु के यश का उच्चारण करनेवाला है । यदि गुरमुख गृहस्थी है तो भी धन्य

है, यदि गुरमुख उदासी है तो भी धन्य है। गुरमुख ही परमेश्वर का मूल्यांकन करता है अर्थात् परमेश्वर की कीमत पाता है ॥ ५ ॥ मनमुख अहंत्व में बँधा हुआ है, गुरमुख अहंत्व से रहित होकर छूटा है, गुरमुखों का जन्म-मरण समाप्त हो गया है। गुरमुखों के कर्म सफल हैं, गुरमुख ही निर्लिप्त हैं। गुरमुख जो कथन करता है और कराता है, वही शोभनीय है ॥ ६ ॥ गुरमुख सुखी हैं, मनमुख दुखी हैं, गुरमुख सन्मुख है और मनमुख विमुख हैं। गुरमुख होने से मिलाप होता है, मनमुखता के कारण बिछुड़े हैं और गुरमुख ही पूर्वोक्त प्राप्ति-अप्राप्ति की विधि प्रकट करते हैं ॥ ७ ॥ वह अक्षर गुरमुखों का है, जिससे मन इधर-उधर भटकने से रुक जाता है और सतिगुरु के उपदेश द्वारा सुख-दुःख को समान जानकर सहा जाता है। वह सदाचरण गुरमुखों का है, जिससे पारब्रह्म को स्मरण किया जाता है और गुरमुख ही प्रभु कीर्त्तन गाते हैं ॥ ८ ॥ सब गुरमुख जीवों की संरचना आप की है, आप परमेश्वर ही जीवों का कर्त्ता है, आप ही कर्म कराता है और आप ही स्थित करता है। एक से ही जगत् का अनन्त रूप हुआ है, गुरुजी कहते हैं, अन्त में सब जीव एक परमेश्वर में समाएंगे ॥ ९ ॥ २ ॥ ३६ ॥

॥ माझ महला ५ ॥ प्रभु अबिनासी ता किआ काड़ा। हरि भगवंता ता जनु खरा सुखाला। जीअ प्रान मान सुखदाता तूं करहि सोई सुखु पावणिआ ॥ १ ॥ हउ वारी जीउ वारी गुरमुखि मनि तनि भावणिआ। तूं मेरा परबतु तूं मेरा ओला तुम संगि लवै न लावणिआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ तेरा कीता जिसु लागै मीठा। घटि घटि पारब्रहमु तिनि जनि डीठा। थानि थनंतरि तूं है तूं है इको इकु वरतावणिआ ॥ २ ॥ सगल मनोरथ तूं देवणहारा। भगती भाइ भरे भंडारा। दइआ धारि राखे तुधु सेई पूरै करमि समावणिआ ॥ ३ ॥ अंधकूप ते कंढै चाड़े। करि किरपा दास नदरि निहाले। गुण गावहि पूरन अबिनासी कहि सुणि तोटि न आवणिआ ॥ ४ ॥ ऐथै ओथै तूं है रखवाला। मात गरभ महि तुम ही पाला। माइआ अगनि न पोहै तिन कउ रंगि रते गुण गावणिआ ॥ ५ ॥ किआ गुण तेरे आखि समाली। मन तन अंतरि तुधु नदरि निहाली। तूं मेरा मीतु साजनु मेरा सुआमी तुधु बिनु अवरु न जानणिआ ॥ ६ ॥ जिसु कउ तूं प्रभ भइआ सहाई। तिसु तती वाउ न लगै काई। तू साहिबु सरणि सुखदाता

सतसंगति जपि प्रगटावणिआ ॥ ७ ॥ तूं ऊच अथाहु अपारु अमोला । तूं साचा साहिबु दासु तेरा गोला । तूं मीरा साची ठकुराई नानक बलि बलि जावणिआ ॥ ८ ॥ ३ ॥ ३७ ॥

अविनाशी प्रभु के होते हुए क्या दुःख है ? आशय यह है; उपासक, उपास्य का रूप हो जाते हैं, इसलिए वे अविनाशी हो जाएँगे । हे परमेश्वर, तू दुःखों का हरण करनेवाला है, तो तेरा दास निश्चित रूप से सुखी है । हे प्राण, मान, और सुख के दाता प्रभु, जो तू करता है, तेरे दास उसे सुख रूप जानकर उसे ही पाते हैं, अर्थात् भोगते हैं ॥ १ ॥ जिन गुरमुखों को तन, मन से भाया है, मैं उनपर मन, तन से बलिहारी जाता हूँ । तू मेरा पर्वत के तुल्य सहारा है, तू ही मेरा परदा है, तेरे समान दूसरा कोई नहीं लगता ॥ १ ॥ रहाउ ॥ तेरा किया हुआ जिसे मीठा लगता है, उन्हीं जीवों ने घट-घट में व्यापक पारब्रह्म को देखा है । सभी स्थानों में एक तू ही है और सर्वत्र तेरा ही हुक्म सक्रिय है ॥ २ ॥ तू समस्त मनोरथों को पूर्ण करनेवाला है, अर्थात् सिद्ध करनेवाला है । तेरे सन्तों के हृदय प्रेमाभक्ति के भण्डार से भरे हुए हैं । हे प्रभु, जो तेरी कृपा में समाए हैं, वे तूने कृपा करके रखे हैं ॥ ३ ॥ जो दास हैं, उन्हें कृपादृष्टि करके देखा है और वे संसार-रूपी अन्धकूप से पार किए हैं अर्थात् किनारे लगाए हैं । हे पूर्ण अविनाशी, तेरे गुण गाते हैं, कहते हैं और सुनते हैं. लेकिन गुणों का भण्डार समाप्त नहीं होता ॥ ४ ॥ लोक-परलोक में तू ही रक्षक है । माता के गर्भ में भी तू ही पालन-पोषण करता है । जो प्रेम में अनुरक्त हो तेरे गुणों को गाते हैं, उन्हें माया-अग्नि नहीं जलाती ॥ ५ ॥ तेरे गुणों को कह-कहकर कहाँ तक सँभालूं क्योंकि हे कृपालु, तन, मन के बीच मैं तुझे ही देखता हूँ । हे स्वामी, तू ही मेरा मित्र है और तू ही मेरा मालिक है, तेरे बिना मैं किसी दूसरे को नहीं जानता ॥ ६ ॥ हे प्रभु, जिस पुरुष को तू सहायक सिद्ध हुआ है, उसे कोई गर्म हवा नहीं लगती अर्थात् उसे किसी प्रकार का दुःख नहीं होता । हे मालिक, तू शरणागतों को सुख देनेवाला है लेकिन सत्संगति द्वारा जपने से प्रकट होता है ॥ ७ ॥ तू सर्वोच्च है, अथाह है, अमूल्य है, तू सच्चा स्वामी है । मैं तेरा दास हूँ । गुरुजी कहते हैं, तू बादशाह है, तेरी ठकुराई सच्ची है, मैं तन, मन से बलिहारी जाता हूँ ॥ ८ ॥ ३ ॥ ३७ ॥

॥ माझ महला ५ घरु २ ॥ नित नित दयु समालीऐ । मूलि न मनहु विसारीऐ ॥ रहाउ ॥ संता संगति पाईऐ । जितु जम कै पंथि न जाईऐ । तोसा हरि का नामु लै तेरे कुलहि न लागै गालि जीउ ॥ १ ॥ जो सिमरंदे सांईऐ । नरकि न

सेई पाईऐ । तती वाउ न लगई जिन मनि वुठा आइ जीउ ॥ २ ॥ सेई सुंदर सोहणे । साध संगि जिन बैहणे । हरिधनु जिनी संजिआ सेई गंभीर अपार जीउ ॥ ३ ॥ हरि अमिउ रसाइणु पीवीऐ । मुहि डिठै जन कै जीवीऐ । कारज सभि सवारि लै नित पूजहु गुर के पाव जीउ ॥ ४ ॥ जो हरि कीता आपणा । तिनहि गुसाई जापणा । सो सूरा परधानु सो मसतकि जिस दे भागु जीउ ॥ ५ ॥ मन मंधे प्रभु अवगाहीआ । एहि रस भोगण पातिसाहीआ । मंदा मूलि न उपजिओ तरे सची कारै लागि जीउ ॥ ६ ॥ करता मंनि वसाइआ । जनमै का फलु पाइआ । मनि भावंदा कंतु हरि तेरा थिरु होआ सोहागु जीउ ॥ ७ ॥ अटल पदारथु पाइआ । भै भंजन की सरणाइआ । लाइ अंचलि नानक तारिअनु जिता जनमु अपार जीउ ॥ ८ ॥ ४ ॥ ३८ ॥

हे भाई, नित्यप्रति प्रेरक वाहिगुरु को स्मरण कीजिए और कभी मन से न बिसारिए ॥ रहाउ ॥ सन्तों की संगति प्राप्त कीजिए, जिससे यम-मार्ग में न जाना पड़े। हरि का नाम जो परलोक का खर्च है, उसे ले लेने पर तुझे कुल-सहित कोई कलंक न लगेगा ॥ १ ॥ जो मालिक का स्मरण करते हैं, वे पुरुष नरक में नहीं जाते। जिनके मन में वाहिगुरु आकर बस गया है, उन्हें दुखों की हवा नहीं लगती, अर्थात् उन्हें दुःख नहीं सताते ॥ २ ॥ वही पुरुष शोभनीय हैं, अर्थात् तन-मन एवं गुणों के फलस्वरूप सुन्दर हैं, जिनका सत्संग में निवास हुआ है। जिन्होंने हरि का नाम-रूपी धन एकत्र किया है, वही गम्भीर और अपरम्पार हैं ॥ ३ ॥ हरि का नाम-अमृत पान करें जो रसों का घर है और सन्तजनों का मुख देखकर जीवन जीएँ। हे भाई, नित्यप्रति सतिगुरु के चरण पूजकर अपने सब कारज सँवार ले ॥४॥ जिस पुरुष को हरि ने अपना बनाया है, उसी ने गुसाईं अर्थात् स्वामी का जप किया है। वही शूरवीर है, वही प्रधान है, जिसके मस्तक में नाम जपने का भाग्य है ॥ ५ ॥ जिन्होंने मन में प्रभु के स्वरूप का विचार किया है (उनका यह चिन्तन-मनन) प्रभुत्व के रसों का भोगना है। उनमें नीच स्वभाव कभी नहीं उपजा और वे सच्ची वृत्ति अर्थात् भक्ति में लगकर पार हो गए हैं ॥ ६ ॥ जिसने कर्त्ता को मन में बसाया है, उस पुरुष ने जन्म लेने का फल पा लिया है। हे भाई, जब तूने मनभावन हरि प्रियतम को पा लिया, तब तेरा सुहाग स्थिर हो जायगा अर्थात् हरि को पाते ही तेरी समस्त दुविधाएँ समाप्त हो जाएंगी और स्थिर आनन्द की अनुभूति होगी ॥ ७ ॥ जो भयनाशक वाहिगुरु की

शरण में आया है, उसने अटल पदार्थ अर्थात् आत्मानन्द को पाया है। गुरुजी कहते हैं, जिन्हें वाहिगुरु ने अपने अंचल से बाँधकर संसार-सागर से पार किया है, उन्होंने जन्म जीत लिया है ॥ ८ ॥ ४ ॥ ३८ ॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ माझ महला ५ घरु ३ ॥ हरि जपि जपे मनु धीरे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सिमरि सिमरि गुर देउ मिटि गए भै दूरे ॥ १ ॥ सरनि आवै पारब्रहम की ता फिरि काहे झूरे ॥ २ ॥ चरन सेव संत साध के सगल मनोरथ पूरे ॥ ३ ॥ घटि घटि एकु वरतदा जलि थलि महीअलि पूरे ॥ ४ ॥ पाप बिनासनु सेविआ पवित्र संतन की धूरे ॥ ५ ॥ सभ छडाई खसमि आपि हरि जपि भई ठरूरे ॥ ६ ॥ करतै कीआ तपावसो दुसट मुए होई मूरे ॥ ७ ॥ नानक रता सचि नाइ हरि वेखै सदा हजूरे ॥ ८ ॥ ५ ॥ ३९ ॥ १ ॥ ३२ ॥ १ ॥ ५ ॥ ३९ ॥

[प्रस्तुत अंश में गुरुजी ने वह मार्ग बतलाया है, जिससे मन को धैर्य मिले और आन्तरिक क्लेश मिट जाए।]

हरि-नाम का जाप जपने से अन्तःकरण धैर्य को प्राप्त हुए हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सतिगुरु के उपदेश द्वारा परमेश्वर को तन, मन से स्मरण करने से भय मिट गए हैं ॥ १ ॥ जो पारब्रह्म की शरण आए उसे फिर दुःख कहाँ होता है, अर्थात् उसे कोई दुःख-क्लेश नहीं होता ॥ २ ॥ सन्त-साधुओं के चरणों की सेवा करने से सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण हुए हैं ॥ ३ ॥ घट-घट में वह एक विद्यमान है और जल-थल, पृथ्वी-आकाश में वही परिव्याप्त है ॥ ४ ॥ सन्तों की चरण-धूलि से पवित्र होकर पापों के विनाशक वाहिगुरु को भजा है ॥ ५ ॥ जो सृष्टि हरि का जाप करके शान्त हुई है, उसे प्रियतम ने आप ही मुक्ति प्रदान की है ॥ ६ ॥ जब कर्त्ता वाहिगुरु ने न्याय किया तो दुष्ट जड़ होकर मृत्यु को प्राप्त हुए ॥ ७ ॥ गुरुजी कहते हैं, जो सच्चे नाम में अनुरक्त है, वह पुरुष हरि को सदा निकट ही देखता है ॥ ८ ॥ ५ ॥ ३९ ॥ १ ॥ ३२ ॥ १ ॥ ५ ॥ ३९ ॥

बारह माहा मांझ महला ५ घरु ४

१ ओं सतिगुर प्रसादि। किरति करम के वीछुड़े करि किरपा मेलहु राम। चारि कुंट दह दिस भ्रमे थकि आए प्रभ की साम। धेनु दुधै ते बाहरी कितै न आवै काम। जल बिनु

साख कुमलावती उपजहि नाही दाम। हरि नाह न मिलीऐ साजनै कत पाईऐ बिसराम। जितु घरि हरि कंतु न प्रगटई भठि नगर से ग्राम। स्रब सीगार तंबोल रस सणु देही सभ खाम। प्रभ सुआमी कंत विहूणीआ मीत सजण सभि जाम। नानक की बेनंतीआ करि किरपा दीजै नामु। हरि मेलहु सुआमी संगि प्रभ जिसका निहचल धाम॥ १॥

पूर्वकृत कर्मों के कारण हम बिछुड़ गए हैं, इसलिए हे सतिगुरु, कृपा करके मुझे राम के साथ मिलाओ। चारों कोनों (उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम) और दसों दिशाओं में भटककर, थककर आप की शरण में आए हैं। जैसे दूध के बिना गाय किसी काम नहीं आती, जैसे जल के बिना खेती मुरझा जाती है, या जैसे दाम नहीं उपजते अर्थात् धन से परमात्म-प्राप्ति नहीं होती, उसी प्रकार यदि मनुष्य-जन्म को पाकर हरि प्रियतम को न मिला जाए तब स्थिरता को कहाँ पाया जा सकता है? जिस घर अर्थात् अन्तःकरण में हरि-पति प्रकट नहीं हुआ, वहाँ नगर और ग्राम सभी अर्थात् अमीर, गरीब भाड़ की तरह तपते हैं, अर्थात् वहाँ शान्ति नहीं आती। समूचे शृंगार, —पान आदि समस्त रस (जिनके कारण जीव परमात्मा को भूल जाता है) शरीर के सहित नाशमान् हैं। हे प्रभु, तुझ प्रियतम परमेश्वर के बिना मित्र, उपकारी सभी यमराज के समान प्रतीत होते हैं अर्थात् मित्र, उपकारी सभी प्रत्युपकार चाहते हैं, केवल परमेश्वर ही निष्काम होकर सहायता करते हैं। गुरुजी कहते हैं, मेरी प्रार्थना है कि कृपा करके मुझे अपना नाम दें। हे स्वामी गुरु, हरिप्रभु के साथ मुझे मिलाइए जिसका प्रकाश स्थिर है अर्थात् जिसका वास निश्चित है॥ १॥

चेति गोविंदु अराधीऐ होवै अनंदु घणा। संत जना मिलि पाईऐ रसना नामु भणा। जिनि पाइआ प्रभु आपणा आए तिसहि गणा। इकु खिनु तिसु बिनु जीवणा बिरथा जनमु जणा। जलि थलि महीअलि पूरिआ रविआ विचि वणा। सो प्रभु चिति न आवई कितड़ा दुखु गणा। जिनी राविआ सो प्रभू तिना भागु मणा। हरि दरसन कंउ मनु लोचदा नानक पिआस मना। चेति मिलाए सो प्रभू तिस कै पाइ लगा॥ २॥

[अगले पदों में बारहमासा वर्णित है।]

चैत्र द्वारा कहा है कि गोविन्द की आराधना कीजिए जिससे बहुत आनन्द होवे। जिह्वा से नाम का उच्चारण सन्तजनों के साथ

मिलकर प्राप्त होता है। जिन्होंने अपने प्रभु को पाया है, उन्हीं का आगमन अर्थात् जन्म सफल है। एक क्षण भी उस प्रभु के बिना जो जीना है, उससे पुरुषों का जन्म व्यर्थ जाता है। जल, थल, पृथ्वी, आकाश, सर्वत्र उसी का प्रसार है और वनों में भी वही परिव्याप्त है। जिनको ऐसा प्रभु स्मरण नहीं आता, उनका दुःख कितना अधिक है अर्थात् उनका दुःख अपरिमाप्य है। जिन्होंने उस प्रभु को जपा है, उनके भाग्य शिरोमणि हैं अर्थात् उनके भाग्य अनन्त हैं। गुरुजी कहते हैं, हरि के दर्शनों को मन चाहता है और मन में दर्शनों की अतीव उत्कण्ठा है। चैत्र द्वारा गुरुजी कहते हैं, जो उस प्रभु को मिलाए, मैं उसके चरणों को स्पर्श करता हूँ ॥ २ ॥

वैसाखि धीरनि किउ वाढीआ जिना प्रेम बिछोहु। हरि साजनु पुरखु विसारि कै लगी माइआ धोहु। पुत्र कलत्र न संगि धना हरि अविनासी ओहु। पलचि पलचि सगली मुई झूठै धंधै मोहु। इकसु हरि के नाम बिनु अगै लईअहि खोहि। दयु विसारि विगुचणा प्रभ बिनु अवरु न कोइ। प्रीतम चरणी जो लगे तिन की निरमल सोइ। नानक की प्रभ बेनती प्रभ मिलहु परापति होइ। वैसाखु सुहावा तां लगै जा संतु भेटै हरि सोइ ॥ ३ ॥

बैसाख द्वारा गुरुजी कहते हैं, परमेश्वर से वियुक्त जिनके प्रेम का बिछोह हुआ है, वे कैसे धैर्य धारण करें। हरि साजन (प्रियतम) को विस्मृत कर छल-रूपी माया में बुद्धि लगी है। पुत्र, स्त्री तथा धन कोई भी जीव का साथ नहीं करता, केवल वह अविनाशी हरि ही सहायक होता है। मिथ्या व्यवहार में मोहबद्ध होकर समूची सृष्टि फँस-फँस कर मरी है। एक हरि के नाम के बिना दूसरे सकाम कर्म —मार्ग में छीन लिए जाते हैं। प्रेरक वाहिगुरु को विस्मृत कर दुखी होना है अर्थात् खराब होना है क्योंकि प्रभु के बिना दूसरा कोई सहायक नहीं होता। जो प्यारे वाहिगुरु के चरणों में लगे हैं, उनकी शोभा निर्मल है। गुरुजी कहते हैं, प्रभु, मेरी विनती है कि यदि आप मिलें तो मेरी वास्तविक उपलब्धि हो अर्थात् कुछ प्राप्तव्य फिर शेष न रहे। हे हरि, तेरा जो सन्त है यदि वह मिले तो बैसाख शोभनीय लगता है ॥ ३ ॥

हरि जेठि जुड़ंदा लोड़ीऐ जिसु अगै सभि निवंनि। हरि सजण दावणि लगिआ किसै न देई बंनि। माणक मोती नामु प्रभ उन लगै नाही संनि। रंग सभे नाराइणै जेते मनि भावंनि।

जो हरि लोड़े सो करे सोई जीअ करंनि। जो प्रभि कीते आपणे सेई कहीअहि धंनि। आपण लीआ जे मिलै विछुड़ि किउ रोवंनि। साधू संगु परापते नानक रंग माणंनि। हरि जेठु रंगीला तिसु धणी जिस कै भागु मथंनि ॥ ४ ॥

जेठ महीने द्वारा गुरुजी कहते हैं, हरि में मन जुड़ा हुआ होना चाहिए, जिसके समक्ष सब झुकते हैं। सज्जन हरि के साथ जुड़कर अर्थात् शरणागत हुए किसको संरक्षण नहीं दिया जाता? अर्थात् प्रभु शरणागत-रक्षक हैं। प्रभु का नाम माणिक्य-मोती के तुल्य है, उस प्रभु-नाम-रूपी धन को सेंध नहीं लगाई जा सकती। जितने जीवों के मन परमात्म-प्रेम में रंगे हैं, अर्थात् प्रभु-रंग में रंगे हैं, वे सभी रंग नारायण के हैं। जो-जो कर्म हरि कराना चाहते हैं, जीव वही-वही कर्म करते हैं। जो पुरुष प्रभु ने अपने दास बनाए हैं, वही स्तुति योग्य कहे जाते हैं। यदि अपनाया हुआ हरि मिल जाए तो परमेश्वर से बिछुड़कर जीव क्यों रोएँ? ईश्वर-प्राप्ति के विषय में गुरु जी कहते हैं कि जिनको सन्तों का संग प्राप्त हुआ है, वे हरि को प्राप्त होकर आनन्द भोगते हैं। जेठ के द्वारा गुरुजी कहते हैं कि हरिप्रेमी उसे प्राप्त होता है, जिसके मस्तक में श्रेष्ठ भाग्य है ॥ ४ ॥

आसाड़ु तपंदा तिसु लगै हरि नाहु न जिना पासि। जग जीवन पुरखु तिआगि कै माणस संदी आस। दुयै भाइ विगुचीऐ गलि पईसु जम की फास। जेहा बीजै सो लुणै मथै जो लिखिआसु। रैणि विहाणी पछुताणी उठि चली गई निरास। जिन कौ साधू भेटीऐ सो दरगह होइ खलासु। करि किरपा प्रभ आपणी तेरे दरसन होइ पिआस। प्रभ तुधु बिनु दूजा को नही नानक की अरदासि। आसाड़ु सुहंदा तिसु लगै जिसु मनि हरि चरण निवास ॥ ५ ॥

जिनके पास हरि प्रियतम नहीं उन्हें आषाढ़ तपता हुआ लगता है। जो जगजीवन पुरुष को त्यागकर मनुष्य की आशा करते हैं वे द्वैतभाव के कारण दुखी होते हैं और उनके गले में यम का फन्दा पड़ा हुआ समझो। वह जैसा कर्म करेगा वैसा भोगेगा अर्थात् जैसा बोएगा वैसा काटेगा। मस्तक में जो लेख लिखा था, (वही अब व्यावहारिक रूप में प्रकट हुआ है)। जब रात्रि-रूपी अवस्था बीत गई तब जीव-रूपी स्त्री पश्चाताप करती हुई, निराश होकर उठकर चली गई। जिनको सन्त पुरुष मिले हैं वे दरबार में बन्धनमुक्त हुए हैं। हे प्रभु, ऐसी कृपा कर जिससे तेरे दर्शनों की चाह हो। हे प्रभु, तुझसे अलग दूसरा कोई नहीं है (इसलिए) मेरी तेरे

समक्ष विनती है। हे हरी, जिसके मन में तेरे चरणों का निवास है, अर्थात् ध्यान है, उसी को आषाढ़ सुहावना लगता है ॥ ५ ॥

सावणि सरसी कामणी चरन कमल सिउ पिआरु। मनु तनु रता सच रंगि इको नामु अधारु। बिखिआ रंग कूड़ाविआ दिसनि सभे छारु। हरि अंम्रित बूंद सुहावणी मिलि साधू पीवणहारु। वणु तिणु प्रभ संगि मउलिआ संम्रथ पुरख अपारु। हरि मिलणै नो मनु लोचदा करमि मिलावणहारु। जिनी सखीए प्रभु पाइआ हंउ तिन कै सद बलिहार। नानक हरि जी मइआ करि सबदि सवारणहारु। सावणु तिना सुहागणी जिन रामनामु उरि हारु ॥ ६ ॥

सावन द्वारा गुरुजी कहते हैं, जो जीव-रूपी स्त्री चरण कमलों में नेह लगाती है, वह आनन्द को प्राप्त होती है। जिन्होंने एक नाम का आधार लिया है, उनका मन, तन सच्चे प्रेम में डूबा है। विषयों के सभी रंग झूठे और नाशमान दिखाई देते हैं। हरि-नाम शोभनीय एवं अमृत की बूँद है, परन्तु उसे, सन्तों के साथ मिलकर पीनेवाला हुआ जाता है। अपार सामर्थ्यवान पुरुष प्रभु की सत्ता के साथ वन के साथ तृणवत प्रफुल्लित हो रहा है। हरि के मिलाप को बहुत अधिक मन चाहता है, लेकिन शुभ कर्म ही मिलानेवाले हैं। जिन सन्त-रूपी सखियों ने प्रभु को पाया है, मैं उन पर सदा बलिहारी जाता हूँ। गुरुजी कहते हैं, हरि जीवों पर दया करके गुरु-उपदेश से उन्हें शुद्ध करनेवाला है। उन्हीं सुहागिनों का सावन सफल है, जिन्होंने राम के नाम का हार हृदय में धारण किया है ॥ ६ ॥

भादुइ भरमि भुलाणीआ दूजै लगा हेतु। लख सीगार बणाइआ कारजि नाही केतु। जितु दिनि देह बिनससी तितु वेलै कहसनि प्रेतु। पकड़ि चलाइनि दूत जम किसै न देनी भेतु। छडि खड़ोते खिनै माहि जिन सिउ लगा हेतु। हथ मरोड़ै तनु कपे सिआहहु होआ सेतु। जेहा बीजै सो लुणै करमा संदड़ा खेतु। नानक प्रभ सरणागती चरण बोहिथ प्रभ देतु। से भादुइ नरकि न पाईअहि गुरु रखणवाला हेतु ॥ ७ ॥

भादों के महीने के द्वारा गुरुजी कहते हैं, जो जीव-रूपी स्त्रियाँ भ्रम के कारण भूली हुई हैं, उनका द्वैत में प्रेम लगा है। यद्यपि लाख प्रकार के शृंगार बनाए हैं अर्थात् अगणित प्रकार से अपने आपको सुसज्जित किया है, तो भी सब कुछ निष्फल है। जिस दिन देह नष्ट हो जायगी, उसी समय

लोग प्रेत कहेंगे। (दुष्कर्म करनेवालों को) यमदूत पकड़कर यमपुरी भेज देंगे और किसी के साथ भेद नहीं करेंगे। जिन सम्बन्धियों के साथ नेह लगा है, वे एक क्षण में ही ममत्व छोड़कर खड़े हो जाएँगे। जीव हाथ मलेगा, उसका शरीर यमराज के भय से काँपेगा और उसका रंग काला हो जायगा। जीव जैसा बोता है, वैसा ही काटता है, यह शरीर कर्मों का खेत है। गुरुजी कहते हैं, जो प्रभु की शरण को प्राप्त हुए हैं, उन्हें वह प्रभु चरण-रूपी जहाज देता है। जिनके प्रेम का गुरु रक्षक है, वे नरक में नहीं डाले जाते ॥ ७ ॥

असुनि प्रेम उमाहड़ा किउ मिलीऐ हरि जाइ। मनि तनि पिआस दरसन घणी कोई आणि मिलावै माइ। संत सहाई प्रेम के हउ तिन कै लागा पाइ। विणु प्रभ किउ सुखु पाईऐ दूजी नाही जाइ। जिन्ही चाखिआ प्रेम रसु से त्रिपति रहे आघाइ। आपु तिआगि बिनती करहि लेहु प्रभू लड़ि लाइ। जो हरि कंति मिलाईआ सि विछुड़ि कतहि न जाइ। प्रभ विणु दूजा को नही नानक हरिसरणाइ। असू सुखी वसंदीआ जिना मइआ हरि राइ ॥ ८ ॥

आश्विन मास द्वारा गुरुजी कहते हैं कि प्रेम उमड़ आया है, इसलिए हरि को किस प्रकार मिला जाए? सन्तजनों के मन, तन में दर्शन की बहुत अधिक चाह है, कोई आकर मिलाए। जो सन्तजन प्रेम के सहायक हैं, मैं उनके चरण छूता हूँ। परमेश्वर के बिना कैसे सुख पाया जाए क्योंकि उससे अलग सुखदायक स्थान कोई नहीं है। जिन्होंने प्रेम-रस का आस्वादन किया है, वे लोक-परलोक के पदार्थों से तृप्त हुए हैं। वे अहंकार को त्यागकर ऐसे विनती करते हैं कि हे प्रभु, अपने साथ बाँध लो अर्थात् ईश्वर-प्रेम में ओत-प्रोत कर दो। जिन्हें हरि प्रियतम ने अपने साथ मिलाया है, वे जीव स्त्रियाँ बिछुड़कर कहीं नहीं जातीं। गुरुजी कहते हैं, प्रभु से अलग दूसरा कोई (रक्षक) नहीं है, इसीलिए हरि की शरण ली है। जिन पर हरि राजा की दया है, वे आश्विन में सुखी रहती हैं ॥ ८ ॥

कतिकि करम कमावणे दोसु न काहू जोगु। परमेसर ते भुलिआं विआपनि सभे रोग। वेमुख होए राम ते लगनि जनम विजोग। खिन महि कउड़े होइ गए जितड़े माइआ भोग। विचु न कोई करि सकै किस थै रोवहि रोज। कीता किछू न होवई लिखिआ धुरि संजोग। वडभागी मेरा प्रभु मिलै तां

उतरहि सभि बिओग । नानक कउ प्रभ राखि लेहि मेरे साहिब बंदी मोच । कतिक होवै साधसंगु बिनसहि सभे सोच ॥ ९ ॥

कार्त्तिक मास द्वारा गुरुजी कहते हैं, जैसे जीव कर्म कमाता है, वैसे ही फल भोगता है, किसी को दोष देना उपयुक्त नहीं। परमेश्वर को विस्मृत करनेवाले व्यक्तियों को सब रोग लगते हैं। जो राम से विमुख हुए हैं, उनको जन्म से बिछोह का दु:ख मिलता है। जितने माया के भोग थे, जो मधुर लगते थे, अन्तिम समय में क्षणमात्र के भीतर दुखदायक हो गए; कोई भी माध्यम नहीं बन सकता। किसके पास हमेशा का रोना रोएँ ! अपना किया हुआ कुछ नहीं होता, सब कुछ पूर्वनिर्धारित है अर्थात् ईश्वर द्वारा लिखा गया है। जब सौभाग्यवश मेरा प्रभु मिलता है, तब वियोग के दु:ख मिट जाते हैं। गुरुजी कहते हैं, हे प्रभु स्वामी, तू वासना-रूपी बेड़ियों को काटकर रक्षा कर अर्थात् अपने संरक्षण में रख क्योंकि जब सन्तों का सत्संग हो तब सम्पूर्ण शोक विनष्ट हो जाता है ॥ ९ ॥

मंघिरि माहि सोहंदीआ हरि पिर संगि बैठड़ीआह । तिन की सोभा किआ गणी जि साहिबि मेलड़ीआह । तनु मनु मउलिआ राम सिउ संगि साध सहेलड़ीआह । साध जना ते बाहरी से रहनि इकेलड़ीआह । तिन दुखु न कबहू उतरै से जम कै वसि पड़ीआह । जिनी राविआ प्रभु आपणा से दिसनि नित खड़ीआह । रतन जवेहर लाल हरि कंठि तिना जड़ीआह । नानक बांछै धूड़ि तिन प्रभ सरणी दरि पड़ीआह । मंघिरि प्रभु आराधणा बहुड़ि न जनमड़ीआह ॥ १० ॥

मार्गशीर्ष महीने के द्वारा गुरुजी कहते हैं, जो हरि प्रियतम के साथ बैठती हैं अर्थात् भजन करती हैं, वे शोभा पाती हैं। जिन्हें स्वामी ने मिलाया है, उनकी शोभा की क्या गिनती है ? अर्थात् उनकी शोभा अपार है। जिन्हें सन्त-रूपी सहेलियों का संग हुआ है, उनका तन, मन राम से मिल गया है, अर्थात् राममय हो गया है। जो संतों की संगति से अलग हैं, वे पति के बिना अकेली रहती हैं। इसलिए उनका दु:ख कभी दूर नहीं होता। वे यमराज के वश में पड़ गई हैं और जिन्होंने प्रभु को अपना समझकर स्वीकारा है, वे नित्य प्रभु-भजन में सावधान देखी गई हैं। उनके कण्ठ में रत्न, जवाहर, लाल-रूपी हरिनाम जड़ित है। गुरुजी कहते हैं, जिन्हें प्रभु के द्वार पर शरण मिली है, मैं उनकी चरणधूलि चाहता हूँ। मार्गशीर्ष द्वारा कहते हैं, जिन्होंने प्रभु की उपासना की है, उनका पुनर्जन्म नहीं होता ॥ १० ॥

पोखि तुखारु न विआपई कंठि मिलिआ हरि नाहु। मनु बेधिआ चरनारबिंद दरसनि लगड़ा साहु। ओट गोविंद गोपाल राइ सेवा सुआमी लाहु। बिखिआ पोहि न सकई मिलि साधू गुण गाहु। जह ते उपजी तह मिली सची प्रीति समाहु। करु गहि लीनी पारब्रहमि बहुड़ि न विछुड़ीआहु। बारि जाउ लख बेरीआ हरि सजणु अगम अगाहु। सरम पई नाराइणै नानक दरि पईआहु। पोखु सुोहंदा सरब सुख जिसु बखसे बेपरवाहु ॥ ११ ॥

पूस महीने द्वारा कहते हैं, जिनको जड़ता-रूपी शीत नहीं लगता उनके कण्ठ में हरि प्रियतम मिला है। जिनका मन हरि के चरण-कमलों में मिला है, उनको परमेश्वर का साक्षात्कार (दर्शन) हुआ है। (उन्होंने) गोविन्द-गोपाल स्वामी का सहारा लिया है और वे स्वामी की सेवा का लाभ लेते हैं। उनको विषयवासना स्पर्श नहीं कर सकती जो सत्संग में मिलकर प्रभु-गुण गाते हैं। जीव-रूपी स्त्री जिस परमेश्वर से उपजी थी उसी में मिल गई है, इसलिए सच्ची प्रीति का आनन्द अनुभूत हुआ है। पारब्रह्म ने जो जीव-रूपी स्त्री मन-रूपी हाथ से पकड़ ली है, वह फिर अलग नहीं होती। हरि प्रियतम अगम्य अथाह है, पर मैं लाख बार बलिहारी जाता हूँ। गुरुजी कहते हैं, कि जो नारायण के द्वार पर पड़े हैं, उनके लिए नारायण को लाज आई है। (परमात्मा शरणागत-रक्षक हैं, इसलिए द्वार पर पड़े लोगों के सम्बन्ध में सोचना स्वाभाविक है) पूस में वही पुरुष सुख-सम्पन्न तथा शोभनीय है, जिसे बेपरवाह परमात्मा बख्श दे अर्थात् अभयदान दे ॥ ११ ॥

माघि मजनु संगि साधूआ धूड़ी करि इसनानु। हरि का नामु धिआइ सुणि सभना नो करि दानु। जनम करम मलु उतरै मन ते जाइ गुमानु। कामि करोधि न मोहीऐ बिनसै लोभु सुआनु। सचै मारगि चलदिआ उसतति करे जहानु। अठसठि तीरथ सगल पुंन जीअ दइआ परवानु। जिस नो देवै दइआ करि सोई पुरखु सुजानु। जिना मिलिआ प्रभु आपणा नानक तिन कुरबानु। माघि सुचे से कांढीअहि जिन पूरा गुरु मिहरवानु ॥ १२ ॥

माघ महीने में स्नान आदि का फल उसको है, जो साधुओं की चरणरज के साथ स्नान करते हैं, अर्थात् सत्संग द्वारा परमेश्वर-भक्ति में लीन रहते हैं। हरि का नाम स्मरण कर और श्रवण कर और उसे सबको

बाँट। उससे जन्मान्तरों की कर्म-मैल उतर जायगी और मन से अहंकार जाता रहेगा। काम-क्रोध मोहित नहीं कर पाता और लोभ-रूपी कुत्ता मर जाता है। सत्य-मार्ग पर चलनेवालों की जगत् स्तुति करता है। अठसठ तीर्थों के स्नान और सम्पूर्ण पुण्य जीवों पर दया करने के तुल्य हैं। वाहिगुरु दया करके जिसे अपना नाम देता है, वही पुरुष चतुर है। गुरुजी कहते हैं, जिनको अपना स्वामी हरि मिला है, उनपर मैं कुरबान जाता हूँ। माघ में वे ही पवित्र कहे जाते हैं, जिनपर पूर्ण-सतिगुरु दयालु है ॥ १२ ॥

फलगुणि अनंद उपारजना हरि सजण प्रगटे आइ। संत सहाई राम के करि किरपा दीआ मिलाइ। सेज सुहावी सरब सुख हुणि दुखा नाही जाइ। इछ पुनी वडभागणी वरु पाइआ हरि राइ। मिलि सहीआ मंगलु गावही गीत गोविंद अलाइ। हरि जेहा अवरु न दिसई कोई दूजा लवै न लाइ। हलतु पलतु सवारिओनु निहचल दितीअनु जाइ। संसार सागर ते रखिअनु बहुड़ि न जनमै धाइ। जिहवा एक अनेक गुण तरे नानक चरणी पाइ। फलगुणि नित सलाहीऐ जिसनो तिलु न तमाइ ॥ १३ ॥

फाल्गुन में उनको आनन्द उपजा है, जिन पर हरि सज्जन प्रकट हुए हैं। लेकिन जब राम के प्यारे सन्तजन सहायक हुए तब उन्होंने कृपा करके (वाहिगुरु से) मिला दिया है। समस्त सुखों के होने से अन्तःकरण-रूपी सेज सुशोभित है, इसलिए अब दुखों को जगह नहीं रही। जिन्होंने हरि-राजा वर को पाया है, उन सौभाग्यशाली जीवों की सम्पूर्ण इच्छाएँ पूर्ण हुई हैं। जो सन्तजन-रूपी सखियाँ प्रभु-गुण गाती हैं, उनके साथ मिलकर गोविन्द के मांगलिक गीत गाऊँ। उन्हें हरि जैसा कोई दूसरा दिखाई नहीं देता, इसलिए कोई दूसरा उसके सदृश या उसके पास नहीं लाया जाता। प्रभु ने उन पुरुषों का लोक-परलोक सवाँरा है और उनमें बुद्धि जाग्रत कर दी है, अर्थात् उन्हें निश्चलता दी है। उनकी संसार-समुद्र से रक्षा की है और वे फिर जन्मते-मरते नहीं। गुरुजी कहते हैं, जिह्वा एक है और वाहिगुरु के गुण अनेक हैं। जिन जीवों को हरि ने अपने चरणों में जगह दी है, वही पार हुए हैं। फाल्गुन द्वारा गुरुजी कहते हैं, उसकी फाल्गुन में प्रतिदिन सराहना करें, जिसे तिलमात्र भी इच्छा नहीं, अर्थात् जो पूर्ण निष्काम है ॥ १३ ॥

जिनि जिनि नामु धिआइआ तिन के काज सरे। हरिगुरु पूरा आराधिआ दरगह सचि खरे। सरब सुखा निधि चरण हरि भउजलु बिखमु तरे। प्रेम भगति तिन पाईआ बिखिआ नाहि

जरे। कूड़ गए दुबिधा नसी पूरन सचि भरे। पारब्रहमु प्रभु सेवदे मन अंदरि एकु धरे। माह दिवस मूरत भले जिस कउ नदरि करे। नानकु मंगै दरस दानु किरपा करहु हरे ॥१४॥१॥

जिन-जिन पुरुषों ने नाम-स्मरण किया है, उनके कार्य पूर्ण हुए हैं। निश्चय करके जिन्होंने पूर्ण-गुरु की आराधना की है, वे पुरुष हरि के दरबार में शुद्ध सिद्ध हुए हैं। समस्त सुखों की निधि हरि के चरणों को पाकर संसार-समुद्र से पार हुए हैं। उन्होंने प्रेमा-भक्ति की है और वे विषय-वासनाओं में नहीं जलते। उनके मन में स्थित झूठ आदि विकार चले गए हैं, द्वैत-भावना भाग गई है तथा पूर्ण-परमेश्वर के निश्चय से हृदय भरे हुए हैं। वे मन में एक पारब्रह्म को धारण कर सेवा करते हैं। जिसपर वाहिगुरु कृपा करता है, उसे मास, दिवस सब मुहूर्त भले हैं। गुरुजी कहते हैं, आनन्ददाता परमेश्वर, मैं तेरा दर्शन-दान माँगता हूँ। कृपा कीजिए अर्थात् दर्शन दें ॥ १४ ॥ १ ॥

॥ माझ महला ५ ॥ दिन रैणि

१ ओं सतिगुर प्रसादि। सेवी सतिगुरु आपणा हरि सिमरी दिन सभि रैण। आपु तिआगि सरणी पवां मुखि बोली मिठड़े वैण। जनम जनम का विछुड़िआ हरि मेलहु सजणु सैण। जो जीअ हरि ते विछुड़े से सुखि न वसनि भैण। हरि पिर बिनु चैनु न पाईऐ खोजि डिठे सभि गैण। आप कमाणै विछुड़ी दोसु न काहू देण। करि किरपा प्रभ राखि लेहु होरु नाही करण करेण। हरि तुधु विणु खाकू रूलणा कहीऐ किथै वैण। नानक की बेनंतीआ हरि सुरजनु देखा नैण ॥ १ ॥ जीअ की बिरथा सो सुणे हरि संम्रिथ पुरखु अपारु। मरणि जीवणि आराधणा सभना का आधारु। ससुरै पेईऐ तिसु कंत की वडा जिसु परवारु। ऊचा अगम अगाधि बोध किछु अंतु न पारावारु। सेवा सा तिसु भावसी संता की होइ छारु। दीनानाथ दैआल देव पतित उधारणहारु। आदि जुगादी रखदा सचु नामु करतारु। कीमति कोइ न जाणई को नाही तोलणहारु। मन तन अंतरि वसि रहे नानक नही सुमारु। दिनु रैणि जि प्रभ कंउ सेवदे तिन कै सद बलिहार ॥ २ ॥ संत अराधनि सद सदा

सभना का बखसिंदु । जीउ पिंडु जिनि साजिआ करि किरपा दितीनु जिंदु । गुरसबदी आराधीऐ जपीऐ निरमल मंतु । कीमति कहणु न जाईऐ परमेसुरु बेअंतु । जिसु मनि वसै नराइणो सो कहीऐ भगवंतु । जीअ की लोचा पूरीऐ मिलै सुआमी कंतु । नानकु जीवै जपि हरी दोख सभे ही हंतु । दिनु रैणि जिसु न विसरै सो हरिआ होवै जंतु ॥ ३ ॥ सरब कला प्रभ पूरणो मंञु निमाणी थाउ । हरि ओट गही मन अंदरे जपि जपि जीवां नाउ । करि किरपा प्रभ आपणी जन धूड़ी संगि समाउ । जिउ तूं राखहि तिउ रहा तेरा दिता पैना खाउ । उदमु सोई कराइ प्रभ मिलि साधू गुण गाउ । दूजी जाइ न सुझई किथै कूकण जाउ । अगिआन बिनासन तम हरण ऊचे अगम अमाउ । मनु विछुड़िआ हरि मेलीऐ नानक एहु सुआउ । सरब कलिआणा तितु दिनि हरि परसी गुर के पाउ ॥ ४ ॥ १ ॥

हे वाहिगुरु, अपने सतिगुरु की सेवा कर, तमाम दिन-रात्रि मैं तेरा स्मरण करूँ। अहंकर को त्यागकर हरि की शरण ग्रहण करूँ और मुख से मधुर वचन बोलूँ। हे हरि साजन, मुझ जन्म-जन्म के बिछुड़े हुए को अपने साथ मिलाएँ। जो जीव हरि से बिछुड़े हुए हैं, हे बहन, वे सुख के साथ नहीं बसते। हरि-पति के बिना चैन नहीं पाया जाता क्योंकि सभी रास्ते (आकाश, पाताल, स्वर्गादि लोक) खोजकर देख लिए हैं। लेकिन दोष किसी को नहीं देना, क्योंकि अपने कर्मो के कारण ही परमात्मा से वियुक्त हुई हूँ। इसलिए हे प्रभु, कृपा करके रख ले। दूसरा करने-करानेवाला कोई नहीं। हे हरि, तेरे बिना धूल में मिलना है। अपने दुखों के वचन किसके पास कहें। गुरुजी कहते हैं, मेरी यही प्रार्थना है कि हे हरि चतुर, तुझे नेत्रों से देखता रहूँ ॥ १ ॥ जो हरि समर्थ एवं अपरम्पार पुरुष है, वही जीव की पीड़ा सुनता है। जो सर्व प्राणियों का जन्म-मरण काल में आसरा है, उसकी आराधना कीजिए। जिसका परिवार बड़ा है, उस पति की लोक-परलोक में जीव-रूपी स्त्री रखी हुई है। वह सर्वोच्च है, अगम्य है, अथाह है, उसके आर-पार का कुछ अन्त नहीं। सन्तों की चरणधूलि होकर जो सेवा की जाती है, वही उसे भली लगती है। वह दीनानाथ है, दयालु है और पापियों का उद्धार करनेवाला है। कर्त्तार का जो सच्चा नाम है, वह आदि-युगादि अर्थात् सदैव से स्मरणीय है। परमेश्वर की कीमत कोई नहीं जानता क्योंकि उसके स्वरूप को तोलनेवाला कोई नहीं है। गुरुजी कहते हैं, जिस प्रभु का अन्त नहीं, अर्थात् जो गणना से परे है, वह मन, तन के बीच बस रहे

हैं। जो दिन-रात प्रभु की सेवा करते हैं, मैं उनपर सदा बलिहारी जाता हूँ ॥ २ ॥ उस प्रभु की सन्त सदा-सदा उपासना करते हैं क्योंकि वह सब पर कृपा करनेवाला है। जिसने जीव का शरीर रचा है और कृपा करके प्राण-कला दी है। उस प्रभु की सतिगुरु के उपदेश द्वारा आराधना कीजिए और निर्मल मन्त्र-रूपी नाम जपिए। अनन्त परमेश्वर की कीमत नहीं मानी जाती। जिस मन में नारायण बसता है, वह भाग्यवान कहा जाता है। स्वामी प्रियतम जिसे मिले हैं, उसकी आन्तरिक इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं। गुरुजी कहते हैं, हरि को जपकर जो जीते हैं, उनके सभी कलंक नष्ट होनेवाले हैं अर्थात् परमात्म-स्मरण सभी कलंकों को नष्ट करनेवाला है। इसलिए वह परमात्मा जिसे दिन-रात विस्मृत नहीं होता, वही जीव आनन्दित होता है ॥ ३ ॥ प्रभु सर्वकलासम्पूर्ण अर्थात् समस्त शक्तियों से परिपूर्ण है, मुझ निराश्रित का तू ही आश्रय है। इसलिए हरि की मन के बीच ओट ली है, उसी प्रभु के नाम को जप-जपकर जीता हूं। हे प्रभु, अपनी ऐसे कृपा कर जो तेरे दासों की चरणधूलि के साथ मिलकर रहूँ। जैसे तू रखता है, वैसे रहता हूँ और तेरा दिया हुआ पहनता, खाता हूँ। हे प्रभु, मुझसे वही उद्यम करवाएँ जिससे सन्तों के संग मिलकर तेरे गुणों का गायन करूँ। क्योंकि तेरे बिना कोई जगह दिखाई नहीं देती। किसके पास पुकारने जाऊँ ? आप अज्ञान के नाश करनेवाले हो, तमोगुण के भी विनाशक या दूर करनेवाले हो, आप अगम्य अर्थात् पहुँच से परे हो और माप से रहित हो। गुरुजी कहते हैं, हे हरि ! मन से बिछुड़े हुए को मिला लीजिए, यही मेरा प्रयोजन है। हे हरि, उस दिन कैवल्यादि मोक्ष जानूँगा, जिस दिन गुरु के चरणों का स्पर्श करूँगा। आशय यह है कि सतिगुरु की शरण लेने से मोक्ष होता है ॥ ४ ॥ १ ॥

वार माझ की तथा सलोक महला १

मलक मुरीद तथा चंद्रहड़ा सोहीआ की धुनी गावणी

१ ओं सति नामु करता पुरखु गुरप्रसादि ॥

सलोकु म० १ ॥ गुरु दाता गुरु हिवै घरु गुरु दीपकु तिह लोइ ।
अमर पदारथु नानका मनि मानिऐ सुखु होइ ॥ १ ॥

[यह आठ तुकों की पउड़ी है, इसके साथ गुरुजी ने आठ तुकों की पउड़ी और जोड़ दी है। पउड़ियों में शूरवीरों का यशगान है, जिसमें सौ वारें हैं। माझ राग में परमेश्वर की यशोगाथा है। प्रारम्भिक अंश में गुरु की स्तुति एवं मंगलाचरण है।]

॥ सलोक महला १ ॥ गुरु ही नाम का दाता है और गुरु ही बर्फ

अर्थात् शान्ति का घर है। गुरुजी तीनों लोकों में प्रकाश करनेवाले हैं, अर्थात् ब्रह्मज्ञान के देनेवाले हैं। गुरुजी कहते हैं, मोक्ष पद में स्थित करनेवाले गुरु ही हैं, गुरु-उपदेश को स्वीकारने से अथवा पालन करने से सुख होता है ॥ १ ॥

॥ म० १ ॥ पहिलै पिआरि लगा थण दुधि। दूजै माइ बाप की सुधि। तीजै भया भाभी बेब। चउथै पिआरि उपंनी खेड। पंजवै खाण पीअण की धातु। छिवै कामु न पुछै जाति। सतवै संजि कीआ घर वासु। अठवै क्रोधु होआ तन नासु। नावै धउले उभे साह। दसवै दधा होआ सुआह। गए सिगीत पुकारी धाह। उडिआ हंसु दसाए राह। आइआ गइआ मुइआ नाउ। पिछै पतलि सदिहु काव। नानक मनमुखि अंधु पिआरु। बाझु गुरू डुबा संसारु ॥ २ ॥

[अब गुरुजी जीव की दस दशाएँ बतलाकर जीव को अविनाशी सिद्ध करते हैं।]

॥ महला १ ॥ जन्मोपरान्त सर्वप्रथम माता के दूध में जीव का मन लगा है। दूसरे माता-पिता की सुधि आई और तीसरे भाभी, बहन की पहचान हुई। चौथी यह दशा हुई कि खेलने में प्रीति उत्पन्न हुई। पाँचवे खाने-पीने में ललक जगी और छठी अवस्था में कामवश स्त्रियों की जात-पात नहीं पूछता। सातवें, पदार्थों का संग्रह कर घर में वास किया और आठवें, बुढ़ापे में क्रोध अधिक बढ़ गया और शरीर क्षीण हो गया। नौवीं अवस्था में केश श्वेत हो गये और वह उखड़े हुए श्वास लेने लगा, जिसे लोग लम्बे साँस कहते हैं। दसवीं दशा में मृत शरीर जलकर राख हो गया। जो जलाने के लिए साथ गए थे, उन्होंने अत्यन्त रोदन किया और देह से अलग होने पर जीव यमदूतों से मार्ग को पूछता है। जो जीव इस शरीर को प्राप्त हुआ था, वह इसे त्यागकर अन्य स्वरूप को पा गया है। वह केवल नाममात्र को मृत कहा गया है। मरणोपरान्त सम्बन्धी व्यक्ति श्राद्धों के दिनों में पत्तल परोसकर कौवों को बुलाते हैं। गुरुजी कहते हैं, कि मनमुख अज्ञानी जीव हैं और उनका अन्धविश्वासों में लगाव है। सतिगुरु के उपदेश बिना जीव संसार में डूबा हुआ है ॥ २ ॥

॥ म० १ ॥ दस बालतणि बीस रवणि तीसा का सुंदरु कहावै। चालीसी पुरु होइ पचासी पगु खिसै सठी के बोढेपा आवै। सतरि का मतिहीणु असीहां का विउहारु न पावै। नवै का सिहजासणी मूलि न जाणै अपबलु। ढंढोलिमु ढूढिमु डिठु मै नानक जगु धूए का धवलहरु ॥ ३ ॥

[अगले अंश में गुरुजी दस अवस्थाओं का उल्लेखन करते हैं। दस वर्ष को एक अवस्था के रूप में स्वीकारा है।]

।। महला १ ।। दस वर्ष पर्यन्त बाल अवस्था होती है, दस से लेकर बीस वर्ष तक खेलने-कूदने की अवस्था होती है। तीस वर्ष की अवस्था में जीव सुन्दर कहा जाता है। चालीस वर्ष में पूर्ण बल हो जाता है, पचास वर्ष तक बल का पैर खिसक जाता है और साठवें तक बुढ़ापा आ जाता है। सत्तर वर्ष में जीव बुद्धिहीन हो जाता है और अस्सी वर्षीय जीव व्यवहार नहीं कर पाता। नव्वे वर्षीय जीव घूमने-फिरने योग्य नहीं रहता और जीव का मूल जो परमेश्वर है, वह उसे भी नहीं जानता है तथा अपना बल तब भी दिखाता है। गुरुजी कहते हैं, मैंने वेद-शास्त्रों को भी पढ़ा है और प्रत्यक्ष भी देख लिया है कि जगत धूंए का घर है ।। ३ ।।

।। पउड़ी ।। तूं करता पुरखु अगंमु है आपि स्रिसटि उपाती। रंग परंग उपारजना बहु बहु बिधि भाती। तूं जाणहि जिनि उपाईऐ सभु खेलु तुमाती। इकि आवहि इकि जाहि उठि बिनु नावै मरि जाती। गुरमुखि रंगि चलूलिआ रंगि हरिरंगि राती। सो सेवहु सति निरंजनो हरि पुरखु बिधाती। तूं आपे आपि सुजाणु है वड पुरखु वडाती। जो मनि चिति तुधु धिआइदे मेरे सचिआ बलि बलि हउ तिन जाती ।। १ ।।

।। पउड़ी ।। परमेश्वर के सम्मुख प्रार्थना करते हुए कहते हैं, हे कर्त्तार! तू मन, वाणी से परे है; तूने आप सृष्टि की उत्पत्ति की है। बहुत प्रकार के रंग तथा बहुत प्रकार के पक्षियों के रंग-बिरंगे पंख उपजाए हैं। तू, जिसने यह सृष्टि उत्पन्न की है, इसे तू ही जानता है। यह सब खेल तेरा है। कुछ जन्मते हैं, कुछ मरते हैं, अर्थात् एक जीव जन्मता है और एक मरता है। नाम जपे बिना सृष्टि जन्मती-मरती है। गुरमुखों को गहरा रंग प्राप्त हुआ है, अर्थात् आत्मानन्द प्राप्त हुआ है, इसलिए उनकी जीवात्मा सब रंगों को त्यागकर तेरे प्रेम में अनुरक्त है। हे हरि विधाता, जो तेरा मायारहित शुद्ध स्वरूप है, उसकी आराधना करूँ। तू आप ही चतुर है और तेरी स्त्री माया भी बड़ी है। हे मेरे सत्यस्वरूप स्वामी, जो मन से तेरा स्मरण करते हैं, मैं उनकी जाति पर बलिहारी जाता हूँ। अर्थात् उस जीवात्मा की जाति पवित्र है, जो ईश्वर प्रेम में अनुरक्त है ।। १ ।।

।। सलोकु म० १ ।। जीउ पाइ तनु साजिआ रखिआ बणत बणाइ। अखी देखै जिहवा बोलै कंनी सुरति समाइ। पैरी चलै हथी करणा दिता पैनै खाइ। जिनि रचि रचिआ तिसहि

न जाणै अंधा अंधु कमाइ। जा भजै ता ठीकरु होवै घाड़त घड़ी न जाइ। नानक गुर बिनु नाहि पति पति विणु पारि न पाइ ॥ १ ॥

[प्रस्तुत श्लोक में परमेश्वर के उपकारों की गणना है।]

॥ सलोक महला १ ॥ वाहिगुरु ने पाँच तत्वों से निर्मित शरीर रचकर उसमें प्राणतत्व को धारण किया और संरचना कर उसकी रक्षा की है। उसकी सत्ता से ही जीव आँखों से देखता है, जिह्वा से बोलता है और कानों में सुनने की शक्ति समाई है। पैरों से चलता है, हाथों से काम-काज करता है और उसी का दिया हुआ पहनता, खाता है। जिस हरि ने तत्वों को रचकर उनके माध्यम से शरीर को बनाया है, जीव उसे नहीं जानता है, इसलिए अज्ञानी जीव अशुभ कर्म करता है। (अगले अंश में उन जीवों की अवस्था का उल्लेखन है, जिन्होंने अहंकारवश वाहिगुरु को विस्मृत कर दिया है) जब प्राण-तत्व भिन्न हो जाते हैं, तब जीव की स्थिति फूटे-टूटे बर्तन के टुकड़ों के समान निकम्मी हो जाती है। गुरुजी कहते हैं कि सतिगुरु के बिना प्रतिष्ठा नहीं और प्रतिष्ठा के बिना अपरम्पार परमेश्वर को नहीं पाया जाता ॥ १ ॥

॥ म० २ ॥ दंदे थावहु दिता चंगा मनमुखि ऐसा जाणीऐ। सुरति मति चतुराई ता की किआ करि आखि वखाणीऐ। अंतरि बहि कै करम कमावै सो चहु कुंडी जाणीऐ। जो धरमु कमावै तिसु धरम नाउ होवै पापि कमाणै पापी जाणीऐ। तूं आपे खेल करहि सभि करते किआ दूजा आखि वखाणीऐ। जिचरु तेरी जोति तिचरु जोती विचि तूं बोलहि विणु जोती कोई किछु करिहु दिखा सिआणीऐ। नानक गुरमुखि नदरी आइआ हरि इको सुघड़ सुजाणीऐ ॥ २ ॥

॥ महला २ ॥ मनमुखों के लक्षण इस प्रकार हैं। देनेवाले की अपेक्षा दिया हुआ पदार्थ उत्तम मानता है। आशय यह है कि वह परमेश्वर दाता की अपेक्षा ईश्वर-प्रदत्त स्त्री आदि पदार्थों से प्रीति करता है। ऐसा आचरण करनेवाले व्यक्ति को ही मनमुख जानिएगा। उसकी सुरति, बुद्धि तथा अनेक प्रकार की चतुराइयों का बखान नहीं किया जा सकता। वह भीतर बैठकर कोई भी कर्म करे सो चारों दिशा में जाना जाता है। इसलिए वह जो धर्म-रूपी कर्म कमाता है, उसका नाम धर्मात्मा होता है। पाप करने से पापी जाना जाता है। हे कर्त्तापुरुष, तू आप ही सब खेल कर रहा है। दूसरा, मुख से कहकर क्या सुनाया जाय, अर्थात् दूसरा तेरे

तुल्य कोई नहीं। जब तक तेरे शरीर में परमात्मा की ज्योति है, तब तक तू बोलता है। बिना ज्योति के कोई थोड़ा-बहुत काम भी कर सके तो तुम्हें चतुर कहे। गुरुजी कहते हैं, हे हरि, तू अत्यन्त चतुर है, गुरमुखों को एक तू ही दिखाई दिया है॥ २॥

॥ पउड़ी ॥ तुधु आपे जगतु उपाइ कै तुधु आपे धंधै लाइआ। मोह ठगउली पाइ कै तुधु आपहु जगतु खुआइआ। तिसना अंदरि अगनि है नह तिपतै भुखा तिहाइआ। सहसा इहु संसारु है मरि जंमै आइआ जाइआ। बिनु सतिगुरु मोहु न तुटई सभि थके करम कमाइआ। गुरमती नामु धिआईऐ सुखि रजा जा तुधु भाइआ। कुलु उधारे आपणा धंनु जणेदी माइआ। सोभा सुरति सुहावणी जिनि हरि सेती चितु लाइआ॥ २॥

॥पउड़ी॥ हे परमेश्वर, तूने आप ही जगत् उत्पन्न कर, आप ही धन्धों में लगा दिया है। मोहरूपी ठगिनी बूटी डालकर तूने अपने से जगत् को भुलाया है। अर्थात् जीव मोहवश तुझे स्मरण नहीं कर पाते। मन के भीतर तृष्णा-रूपी अग्नि है, इसलिए भूखा होकर व्याकुल रहता है और तृप्त नहीं होता। यह संसार संशय रूप है, जीव जन्म लेकर आता है और मृत्यु के पश्चात् जाया करता है। सतिगुरु के उपदेश ग्रहण किए बिना मोह नहीं टूटता, सब पुरुष कर्मों को कमाकर थके हैं। लेकिन जब तुझे भाया तब सतिगुरु के उपदेश द्वारा नाम स्मरण करने से आत्मसुख से तृप्त हुआ। वह पुरुष अपने कुल का उद्धार करता है, उसके उत्पन्न करनेवाली माता भी धन्य है। जिस पुरुष ने तुझमें चित्त लगाया है उसकी सुरति और शोभा सफल है॥ २॥

॥ सलोकु म० २॥ अखी बाझहु वेखणा विणु कंना सुनणा। पैरा बाझहु चलणा विणु हथा करणा। जीभै बाझहु बोलणा इउ जीवत मरणा। नानक हुकमु पछाणि कै तउ खसमै मिलणा॥ १॥

॥सलोकु महला २॥ यहाँ गुरुजी ने, परमात्मा की प्राप्ति कैसे होती है, यह बतलाते हुए कहा है कि नेत्रों से नहीं बल्कि सुरति, स्मृति द्वारा परमात्मा को देखना चाहिए और स्थूल कानों से नहीं बल्कि श्रद्धा से प्रभु-गुणों को सुनना चाहिए। बिना पैरों से चलना चाहिए, अर्थात् कर्मों के द्वारा ईश्वर-प्राप्ति करनी चाहिए और हाथों के बिना मानसिक पूजा-रूपी कर्त्तव्य करना चाहिए। स्थूल जिह्वा के बिना प्रीति जिह्वा से उसका यशोगान करना चाहिए। ऐसे ही परमात्मा का हुक्म पहचान कर और

जीवित भाव से मरकर अर्थात् अहंत्व खोकर परमात्मा से मिलाप होता है। वाहिगुरु आँख, कान, नाक और जिह्वा से रहित है, लेकिन विराट रूप ग्रहण कर वही चलता, फिरता, बोलता दिखाई देता है ॥ १ ॥

॥ म० २ ॥ दिसै सुणीऐ जाणीऐ साउ न पाइआ जाइ। रुहला टुंडा अंधुला किउ गलि लगै धाइ। भै के चरण कर भाव के लोइण सुरति करेइ। नानकु कहै सिआणीए इव कंत मिलावा होइ ॥ २ ॥

॥ महला २ ॥ जो परमात्मा आँखों से देखा जाता है, कानों से सुना जाता है और अनुभवों से जाना जाता है, अर्थात् जो परमेश्वर सबको देखता है, सब की सुनता है और सब के मन की जानता है, उसका आस्वादन क्यों नहीं किया जाता ? या जिस परमात्मा को न देखा जा सकता है, न सुना जा सकता है, न जाना जा सकता और न स्वाद महसूस किया जा सकता, उसकी इस स्थिति का कारण क्या है ? गुरुजी ने इस प्रश्न का समाधान यों किया है—जीव अपाहिज है, हाथों से रहित है और नेत्रों से हीन है, इसलिए वह किस प्रकार दौड़कर परमात्मा के गले लगे। यदि जीव परमात्म-प्राप्ति चाहे तो वह भय के चरण करे, प्रेम के हाथ करे और सुरति पूर्ण नेत्र करे। गुरुजी कहते हैं, हे चतुर स्त्री, कन्त का इस प्रकार मिलाप होता है ॥ २ ॥

॥ पउड़ी ॥ सदा सदा तूं एकु है तुधु दूजा खेलु रचाइआ। हउमै गरबु उपाइ कै लोभु अंतरि जंता पाइआ। जिउ भावै तिउ रखु तू सभ करे तेरा कराइआ। इकना बखसहि मेलि लैहि गुरमती तुधै लाइआ। इकि खड़े करहि तेरी चाकरी विणु नावै होरु न भाइआ। होरु कार वेकार है इकि सची कारै लाइआ। पुतु कलतु कुटंबु है इकि अलिपतु रहे जो तुधु भाइआ। ओहि अंदरहु बाहरहु निरमले सचै नाइ समाइआ ॥३॥

॥ पउड़ी ॥ हे महाराज, तू सदा एक है, दूसरा क्रीड़ा-रूपी जगत् है, जो तूने माया द्वारा उत्पन्न किया है। जीवों को उत्पन्न अहंत्व, ममत्व, लोभ आदि अवगुणों का समुदाय उन जीवों के हृदय में डाल दिया है। जैसे तुझे भाए उसी प्रकार तू रख, सब जीव तेरा कराया हुआ कर्म करते हैं। एक को तूने गुरु-शिक्षा में लगाया है और उसे क्षमा कर अपने साथ मिला लिया है। एक पुरुष सावधान होकर तेरी भक्ति करते हैं। नाम के बिना उनको और कुछ नहीं भाया है। जिन पुरुषों को तूने सच्चे काम-काज अर्थात् प्रभु-भक्ति में लगाया है, उन्होंने दूसरे काम-धन्धे को व्यर्थ

जाना है। जिन पुरुषों का काम-काज तुझे भाया है, वे स्त्री, पुत्र और कुटुम्ब से अलिप्त अर्थात् तटस्थ रहते हैं। हे सच्चे, जिनका मन तेरे नाम में समाया है, वे पुरुष तन, मन से उजले अर्थात् पाप-कर्म से रहित हुए हैं ॥ ३ ॥

॥ सलोकु म० १ ॥ सुइने कै परबति गुफा करी कै पाणी पइआलि। कै विचि धरती कै आकासी उरधि रहा सिरि भारि। पुरु करि काइआ कपडु पहिरा धोवा सदा कारि। बगा रता पीअला काला बेदा करी पुकार। होइ कुचीलु रहा मलु धारी दुरमति मति विकार। ना हउ ना मै ना हउ होवा नानक सबदु वीचारि ॥ १ ॥

॥ सलोकु महला १ ॥ सुमेरपर्वत पर जाकर गुफा बनाएँ अथवा पानी से भरे पाताल में। धरती के मध्य गुफा बनाएँ अथवा आकाश में, या ऊपर की ओर चरण करके खड़े रहें, (जिसे कापालिक आसन कहते हैं)। देह को पूर्ण-रूपेण ढाँपकर कपड़ा पहने, अर्थात् इतना संयमी हो कि अपना अंग भी किसी को न दिखाए और नहाई-धोई अर्थात् स्वच्छ होकर कर्म करे। श्वेत (सामवेद) लाल (ऋग्वेद) पीला (यजुर्वेद) काला (अथर्ववेद) —इन वेदों का पाठ भी करें। फटे-पुराने वस्त्रों वाला होकर शरीर पर मैल धारण किए रहें। यद्यपि जीव इतने सभी कर्म करे तथापि खोटी बुद्धि होने के कारण सब व्यर्थ हैं। सिद्धों के इस प्रश्न पर कि आप स्वयं को क्या मानते हो, गुरुजी का उत्तर इस प्रकार है, न मैं भूतकाल में था, न कुछ अब ही बना हूँ, न भविष्य में होऊँगा। हम तो शब्द (ब्रह्म) का ही विचार करते हैं ॥ १ ॥

॥ म० १ ॥ वसत्र पखालि पखाले काइआ आपे संजमि होवै। अंतरि मैलु लगी नही जाणै बाहरहु मलि मलि धोवै। अंधा भूलि पइआ जम जाले। वसतु पराई अपुनी करि जानै हउमै विचि दुखु घाले। नानक गुरमुखि हउमै तुटै ता हरि हरि नामु धिआवै। नामु जपे नामो आराधे नामे सुखि समावै ॥ २ ॥

[दुखी जीव सुखी कैसे हो ? —इस प्रश्न का उत्तर प्रस्तुत अंश में है।]

॥ महला १ ॥ वस्त्र धो लेने, देह स्वच्छ कर लेने और आप ही संयमी होने की कल्पना करना। अन्तःकरण में जो रागद्वेष की मैल लगी है, उससे अपरचित रहता है और बाहर से मल-मल कर धोता है। अज्ञानी जीव परमेश्वर से भूला हुआ यमराज के जाल में पड़ा है। पराई वस्तु अर्थात् देह को अपनी मानता है, इसलिए अहंत्व, ममत्व में पड़ जाने से

दुःख पाता है। गुरुजी कहते हैं, जब सतिगुरु द्वारा जीव का अहंत्व, ममत्व में पड़ना टूट जाए तब मन, तन से हरि-नाम स्मरण करे। नाम को जपे और नाम की ही आराधना करे, सो सुख में समा जाता है ॥ २ ॥

॥ पउड़ी ॥ काइआ हंसि संजोगु मेलि मिलाइआ। तिन ही कीआ विजोगु जिनि उपाइआ। मूरखु भोगे भोगु दुख सबाइआ। सुखहु उठे रोग पाप कमाइआ। हरखहु सोगु विजोगु उपाइ खपाइआ। मूरख गणत गणाइ झगड़ा पाइआ। सतिगुर हथि निबेड़ु झगड़ु चुकाइआ। करता करे सु होगु न चलै चलाइआ ॥ ४ ॥

॥ पउड़ी ॥ काया और जीव का संयोग कर्मों के माध्यम से हुआ है। जिस प्रभु ने शरीर को उत्पन्न किया था, उसी ने प्राणों को शरीर से भिन्न किया है। मूर्ख ऐसे भोग भोगता है, जिससे अधिक दुःख होता है। जिस सुख के आधिक्य के लिए पाप कमाया है, उस सुख से तो रोग उत्पन्न हुए हैं। हर्ष से शोक तथा संयोग से वियोग होता है। इस प्रकार (प्रभु ने) जगत् उत्पन्न कर उसका नाश किया है। मूर्ख जीव ने कुकर्मों की गिनती गिनाकर जन्म-मरण का झगड़ा डाल दिया है। जिनका न्याय सतिगुरु के हाथ में आया है, उनका झगड़ा समाप्त कर दिया है, अर्थात् वे जन्म-मरण से रहित कर दिए गये हैं। कर्त्तापुरुष जो करता है, वही होता है, किसी के हटाने से नहीं हटता, अर्थात् कर्म-फल भोगे बिना नहीं मिटता ॥ ४ ॥

॥ सलोकु म० १ ॥ कुड़ु बोलि मुरदारु खाइ। अवरी नो समझावणि जाइ। मुठा आपि मुहाए साथै। नानक ऐसा आगू जापै ॥ १ ॥

॥ सलोकु महला १ ॥ हे काजी, जो झूठ बोलकर खाना है, वह मरे हुए को खाना है, अर्थात् हरामखाना है। दूसरों को समझाने जाता है, कि झूठ न बोलो। तुझे आप तो कुकर्मों ने ठगा है, तू दूसरे संगी-साथियों को भी ठगाता है। गुरुजी कहते हैं, हे काजी, तू मुखिया जाना जाता है ॥ १ ॥

॥ महला ४ ॥ जिस दै अंदरि सचु है सो सचा नामु मुखि सचु अलाए। ओहु हरि मारगि आपि चलदा होरना नो हरि मारगि पाए। जे अगै तीरथु होइ ता मलु लहै छपड़ि नातै सगवी मलु लाए। तीरथु पूरा सतिगुरू जो अनदिनु हरि हरि

नामु धिआए। ओहु आपि छुटा कुटंब सिउ दे हरि हरि नामु सभ स्रिसटि छडाए। जन नानक तिसु बलिहारणै जो आपि जपै अवरा नामु जपाए ॥ २ ॥

॥ महला ४ ॥ जिसके हृदय में सत्य है, वह सच्चा नाम सुख-पूर्वक मुख से उच्चरित करता है। वह पुरुष हरि के मार्ग में आप चलता है और दूसरों को हरि के मार्ग में लगाता है। यदि आगे तीर्थ-रूपी सत्संग होवे तो पाप की मैल दूर हो जाती है। गन्दे तालाब में नहाने अर्थात् खोटे पुरुषों के साथ करने से तो मैल उतरने की जगह मैल लग जाती है। सतिगुरु पूर्णरूपेण तीर्थरूप है, जो रात-दिन हरि-नाम को स्मरण करता है। वह गुरु आप कुटुम्ब आदि समस्त बन्धनों से मुक्त हुआ है और हरि का दुःखनाशक हरिनाम देकर सम्पूर्ण सृष्टि को मुक्त कराता है। गुरुजी कहते हैं, मैं उस पुरुष पर बलिहारी जाता हूँ, जो आप हरि-नाम को जपता है तथा दूसरों से जपाता है ॥ २ ॥

॥ पउड़ी ॥ इकि कंद मूलु चुणि खाहि वण खंडि वासा। इकि भगवा वेसु करि फिरहि जोगी संनिआसा। अंदरि त्रिसना बहुतु छादन भोजन की आसा। बिरथा जनमु गवाइ न गिरही न उदासा। जम कालु सिरहु न उतरै त्रिबिधि मनसा। गुरमती कालु न आवै नेड़ै जा होवै दासनिदासा। सचा सबदु सचु मनि घर ही माहि उदासा। नानक सतिगुरु सेवनि आपणा से आसा ते निरासा ॥ ५ ॥

॥ पउड़ी ॥ एक कन्दमूल चुनकर खाते हैं और वनप्रदेश में रहते हैं। एक गेरुआ रंग के वस्त्र पहनकर योगी, संन्यासी बनकर फिरते हैं। उनके हृदय में बहुत तृष्णा है, उन्हें भोजन एवं वस्त्रों की ललक रहती है। उन पुरुषों ने व्यर्थ ही जन्म गवाँया है। न वे गृहस्थी हैं और न त्यागी। यमराज जो मृत्यु करनेवाला है, वह सिर से नहीं उतरता क्योंकि उसकी त्रिगुणात्मक वासनाएँ यथावत रहती हैं। जब जीव सतिगुरु की शिक्षा लेकर दासों का दास होवे तब काल निकट नहीं आता। जिन्होंने दृढ़ होकर सच्चा उपदेश माना है, वे गृह में रहते हुए भी निर्लिप्त रहते हैं। गुरुजी कहते हैं, जो पुरुष सतिगुरु की सेवा करते हैं, वे सांसारिक वासनाओं अर्थात् आकांक्षाओं से तटस्थ हैं ॥ ५ ॥

॥ सलोकु म० १ ॥ जे रतु लगै कपड़ै जामा होइ पलीतु। जो रतु पीवहि माणसा तिन किउ निरमलु चीतु। नानक नाउ

खुदाइ का दिलि हछै मुखि लेहु । अवरि दिवाजे दुनी के झूठे अमल करेहु ।। १ ।।

।। सलोकु महला १ ।। हे काजी, यदि रुधिर-वस्त्रों को लग जाता है, तब कहते हो कि वस्त्र अपवित्र हो गया । जो पुरुषों का रक्त पीते हैं, उनका चित्त शुद्ध कैसे होता है? अर्थात् जो रिश्वतखोर हैं, उनका चित्त शुद्ध हो जाय— यह असम्भव है । गुरुजी कहते हैं, शुद्ध चित्त होकर मुख से परमात्मा का नाम उच्चरित करो । दूसरे जो संसार के दिखावे, दावे और व्यवहार करते हो, वे सब झूठे हैं ।। १ ।।

।। म० १ ।। जा हउ नाही ता किआ आखा किहु नाही किआ होवा । कीता करणा कहिआ कथना भरिआ भरि भरि धोवां । आपि न बुझा लोक बुझाई ऐसा आगू होवां । नानक अंधा होइ कै दसे राहै सभसु मुहाए साथै । अगै गइआ मुहे मुहि पाहि सु ऐसा आगू जापै ।। २ ।।

[काजी के इस प्रश्न पर कि आपने भी तो अपने आपको कुछ माना होगा, गुरुजी का उत्तर इस प्रकार है ।]

।। महला १ ।। यदि मैं कहूँ कि मैं नहीं था, तब आपको क्या कहूँ? (भविष्य के बारे में भी स्थिति स्पष्ट करते हुए कहा है) पूर्वकाल में भी हम कुछ नहीं थे और आगे भी क्या हूँगा, अर्थात् कुछ नहीं हूँगा । जिस परमेश्वर ने जगत् रचा है, उस परमेश्वर के शास्त्रों में कथित यश का उच्चारण करते हैं, क्योंकि पापों के मैल से भरा हुआ अन्तःकरण नाम-रूपी जल से धोऊँ, अर्थात् नाम-जल की अञ्जलि भर-भर धोऊँ । आप तो समझूँ नहीं और लोगों को समझाऊँ, ऐसा सुधारक होऊँ ! अर्थात् ऐसे सुधारक तो केवल आप ही हो सकते हैं और दूसरा कोई नहीं । गुरुजी कहते हैं, जो ज्ञान-नेत्रों से हीन होकर मार्ग बतलाए वह पुरुष तो अपने सब साथियों को गाएगा । ऐसा जो सुधारक तूने जाना है, वह आगे होकर अपमानित होगा, अर्थात् यम की फटकार सहन करेगा ।। २ ।।

।। पउड़ी ।। माहा रुती सभ तूं घड़ी मूरत वीचारा । तूं गणतै किनै न पाइओ सचे अलख अपारा । पड़िआ मूरखु आखीऐ जिसु लबु लोभु अहंकारा । नाउ पड़ीऐ नाउ बुझीऐ गुरमती वीचारा । गुरमती नामु धनु खटिआ भगती भरे भंडारा । निरमलु नामु मंनिआ दरि सचै सचिआरा । जिसदा

जीउ पराणु है अंतरि जोति अपारा । सचा साहु इकु तूं होरु जगतु वणजारा ॥ ६ ॥

॥ पउड़ी ॥ हे महाराज, महीना, ऋतु, घड़ी, मुहूर्त आदि अर्थात् प्रत्येक समय तेरा विचार किया है । हे अलख, अपार, सच्चे, तुझे कर्मों की गणना करके किसी ने नहीं पाया । जिसे मिथ्या लोभ और अहंकार है, वह पढ़ा-लिखा भी मूर्ख कहा जाता है । इसलिए तेरे नाम को पढ़ा जाए और नाम को जाना जाए, लेकिन परमात्मा को सतिगुरु के उपदेश माननेवालों ने विचारा है । गुरु की शिक्षा माननेवालों ने नाम-धन प्राप्त किया है और भक्ति से उनके अन्तःकरण के भण्डार भरे हुए हैं । जिन्होंने निर्मल नाम को माना है, हे सच्चे, तेरे द्वार पर वे पुरुष सदाचारी हुए हैं । हे अनन्त, जिस प्रभु ने जीव को प्राण और हृदय के भीतर अपार ज्योति दी है, वह सच्चा शाह तू एक है और शेष जगत् तेरा बनजारा है ॥ ६ ॥

॥ सलोकु म० १ ॥ मिहर मसीति सिदकु मुसला हकु हलालु कुराणु । सरम सुंनति सीलु रोजा होहु मुसलमाणु । करणी काबा सचु पीरु कलमा करम निवाज । तसबी सा तिसु भावसी नानक रखै लाज ॥ १ ॥

॥ सलोकु महला १ ॥ वास्तविक रूप में मुसलमान बनने के लिए गुरुजी ने अपनी धारणा इस प्रकार प्रकट की है कि जीवों पर दया, मस्जिद व ख़ुदा पर विश्वास मुसल्ला, अपने हक़ या अपनी कमाई का खाना हलाल और सच बोलना ही क़ुर्आन का पढ़ना है । जब कुकर्मों से संकोच करना सुन्नत, संयम धारण करना रोज़ा होगा, तब मुसलमान सच्चा मुसलमान होगा । शुद्ध कर्म करना काबा, सत्यरूप ख़ुदा को जानना पीर की उपासना है, कृपापूर्वक किसी ग़रीब का संरक्षण कलमा और नमाज़ है । गुरुजी कहते हैं, शान्तिरूपी माला वही है, जो उसे भाए । अर्थात् वही माला बनाए जो परमात्मा को भाए, (ईश्वर की रज़ा में रहे) । हे काजी, जब ऐसे गुणों से युक्त होगा, तब तेरी लाज परमेश्वर रखेगा ॥ १ ॥

॥ म० १ ॥ हकु पराइआ नानका उसु सूअर उसु गाइ । गुरु पीरु हामा ता भरे जा मुरदारु न खाइ । गली भिसति न जाईऐ छुटै सचु कमाइ । मारण पाहि हराम महि होइ हलालु न जाइ । नानक गली कूड़ीई कूड़ो पलै पाइ ॥ २ ॥

॥ महला १ ॥ गुरुजी कहते हैं, पराया हक़ खाना मुसलमान के

लिए सूअर के समान और हिन्दू को गाय के समान है। हिन्दुओं के गुरु और मुसलमानों के पीर तभी रक्षा करने की स्वीकृति देंगे, यदि हराम न खाया जाय। बहुत बातें बनाने से जीव स्वर्ग नहीं जाता। सच्चा नाम कमाने से जीव नरक की आग से छूटता है। यदि हराम के मांस में मसाले डाले जाएँ तो वह हलाल नहीं हो जाता, क्योंकि रिश्वत का धन कुछ मात्रा में ख़ैरात (दान करने) से शुद्ध नहीं बन जाता। गुरुजी कहते हैं, इन झूठी बातों से झूठ ही पल्ले में पड़ता है ॥ २ ॥

॥ म० १ ॥ पंजि निवाजा वखत पंजि पंजा पंजे नाउ। पहिला सचु हलाल दुइ तीजा खैर खुदाइ। चउथी नीअति रासि मनु पंजवी सिफति सनाइ। करणी कलमा आखि कै ता मुसलमाणु सदाइ। नानक जेते कूड़िआर कूड़ै कूड़ी पाइ ॥ ३ ॥

[नमाज़ के सम्बन्ध में गुरुजी की धारणा बिल्कुल अलग है।]

॥ महला १ ॥ पाँच नमाज़ें हैं और पाँच ही वक्त हैं तथा पाँचों के पाँच ही नाम हैं। (मुसलमानों के अनुसार नमाज़े सुबह, नमाज़े पेशीन, नमाज़े दीगर, नमाज़े शाम, नमाज़े खुफतन—पाँच नमाज़ें हैं) गुरुजी ने भी पाँच नमाज़ें गिनवाई हैं, पहली सत्य की, दूसरी हलाल की, तीसरी ख़ुदा के नाम पर ख़ैर देने की, चौथी मन की नीयत अर्थात् वृत्तियों को मर्यादा के अनुकूल रखना और पाँचवी नमाज़ परमेश्वर की स्तुति करना। बन्दगी में कार्यरत रहना ही शुभ कर्म है, यही शुभ कर्मरूपी कलमा पढ़कर अपने आपको मुसलमान कहलाओ। भाव यह है कि शुभ करनी के बिना वास्तविक मुसलमान कहलाना भूल है। गुरुजी कहते हैं, जितने झूठे हैं, उनकी प्रतिष्ठा भी झूठी है ॥ ३ ॥

॥ पउड़ी ॥ इकि रतन पदारथ वणजदे इकि कचै दे वापारा। सतिगुरि तुठै पाईअनि अंदरि रतन भंडारा। विणु गुर किनै न लधिआ अंधे भउकि मुए कूड़िआरा। मनमुख दूजै पचि मुए ना बूझहि वीचारा। इकसु बाझहु दूजा को नही किसु अगै करहि पुकारा। इकि निरधन सदा भउकदे इकना भरे तुजारा। विणु नावै होरु धनु नाही होरु बिखिआ सभु छारा। नानक आपि कराए करे आपि हुकमि सवारणहारा ॥ ७ ॥

॥ पउड़ी ॥ कुछ पुरुष रत्न पदार्थ अर्थात् प्रभु-प्रेम का व्यापार करते हैं, अथवा सतिगुरु से प्रभु-प्रेम खरीदते हैं और कुछ नाशमान सुखों का व्यापार करते हैं। जब सतिगुरु प्रसन्न हों तब ही उनकी प्राप्ति होती है, अर्थात् उनके दर्शन होते हैं। शरीर के भीतर शुभगुणों-रूपी रत्नों का

भण्डार है। सतिगुरु के बिना वाहिगुरु किसी को प्राप्त नहीं हुआ। अज्ञानी, झूठे व्यर्थ ही भौंक-भौंककर मर गए हैं, मनमुख जीव द्वैतभाव में जलकर मर गए हैं, चिन्तन-मनन से वे परमात्मा को नहीं समझते हैं। एक परमेश्वर के बिना दूसरा कोई नहीं है, फिर किसके आगे पुकार करें। कुछ पुरुष निर्धन होकर सदा भटकते हैं और कुछ के सन्दूक या भण्डार भरे हुए हैं। बिना नाम के दूसरे सब धन सत्य नहीं हैं। दूसरे सब विषय धूलि के तुल्य हैं। गुरुजी कहते हैं, वाहिगुरु आप ही जीवों को उत्पन्न करनेवाला है, आप ही कर्म कराता है और फिर आप ही सवाँरने वाला भी है॥ ७॥

॥ सलोकु म० १ ॥ मुसलमाणु कहावणु मुसकलु जा होइ ता मुसलमाणु कहावै। अवलि अउलि दीनु करि मिठा मसकलमाना मालु मुसावै। होइ मुसलिमु दीन मुहाणै मरण जीवण का भरमु चुकावै। रब की रजाइ मंने सिर उपरि करता मंने आपु गवावै। तउ नानक सरब जीआ मिहरंमति होइ त मुसलमाणु कहावै॥ १॥

॥ सलोकु महला १॥ हे काजी, मुसलमान कहलाना कठिन है। यदि कोई मुसलमान के गुणों से युक्त है तभी मुसलमान कहा जा सकता है। सर्वप्रथम, औलिए अर्थात् सन्तजनों के धर्म को मीठा करके माने। तदन्तर जिन सन्तजनों ने मान दूर किया है, उन्हें अपना माल लुटावे। मल्लाह-रूपी जो सन्तजन हैं, उनके धर्म में स्थित हो तथा जन्म-मरण या जीवन-मृत्यु के भ्रम को दूर करे। सिर के ऊपर रब की रज़ा माने अर्थात् ईश्वरेच्छा को सर्वोपरि मानकर प्रसन्न रहे तथा अहंत्व को गवाँकर कर्त्ता-पुरुष को माने। गुरुजी कहते हैं, समस्त जीवों पर कृपा करे और ऐसे गुणों से संयुक्त हो तो मुसलमान कहलाए॥ १॥

॥ महला ४॥ परहरि काम क्रोधु झूठु निंदा तजि माइआ अहंकारु चुकावै। तजि कामु कामिनी मोहु तजै ता अंजन माहि निरंजनु पावै। तजि मानु अभमानु प्रीति सुत दारा तजि पिआस आस राम लिव लावै। नानक साचा मनि वसै साच सबदि हरिनामि समावै॥ २॥

[मुसलमान के गुणों को इंगित करने के पश्चात् यहाँ वास्तविक हिन्दू के लक्षणों को बतलाया है।]

॥ महला ४॥ काम, क्रोध को दूर करे, झूठ, निन्दा को त्यागे और मायाजन्य अहंकार समाप्त कर देवे। काम और कामिनी का मोह त्यागे

तो माया के बीच ही निरंजन वाहिगुरु को पा लेवे। मान, अभिमान तथा पुत्र, स्त्री आदि सम्बन्धियों की प्रीति को तजे, तृष्णा तजे, राम की आस करे तथा वृत्ति भी राम में लगाए। गुरुजी कहते हैं, जो मन में सच्चा उपदेश बस जाए तो सत्यरूप हरि नामी में समा जाए ॥ २ ॥

॥ पउड़ी ॥ राजे रयति सिकदार कोइ न रहसीओ। हट पटण बाजार हुकमी ढहसीओ। पके बंक दुआर मूरखु जाणै आपणे। दरबि भरे भंडार रीते इकि खणे। ताजी रथ तुखार हाथी पाखरे। बाग मिलख घर बार किथै सि आपणे। तंबू पलंघ निवार सराइचे लालती। नानक सच दातारु सिनाखतु कुदरती ॥ ८ ॥

॥ पउड़ी ॥ राजा, प्रजा और सरदार कोई भी नहीं रहेगा। दूकानें, शहर और बाज़ार वाहिगुरु के हुक्म से सब ढह जाएँगे। सुन्दर द्वारों वाले पक्के मन्दिरों को मूर्ख अपने जानता है। जो भण्डार द्रव्य से भरे हुए हैं वे एक क्षण में खाली हो जाते हैं। घोड़े, रथ, ऊँट, अम्बारियों वाले हाथी, बाग, जायदाद, घरबार आदि जिन्हें अपने जानता है वे अपने कहाँ हैं? तम्बू, निवार के पलंग, अतलस की कनातें, सब मिथ्या हैं। गुरुजी कहते हैं, कि इन पदार्थों का वास्तविक दाता वाहिगुरु है, जिसे कुदरत द्वारा पहचाना जा सकता है ॥ ८ ॥

॥ सलोकु म० १ ॥ नदीआ होवहि धेणवा सुंम होवहि दुधु घीउ। सगली धरती सकर होवै खुसी करे नित जीउ। परबतु सुइना रुपा होवै हीरे लाल जड़ाउ। भी तूं है सालाहणा आखण लहै न चाउ ॥ १ ॥

॥ सलोकु महला १ ॥ यदि नदियाँ गाएँ होवे, स्वतः निकलनेवाला जल दूध-घी होवे, समूची पृथ्वी शकर या मिठाई होवे और इन पदार्थों को पाकर जीव नित्य ही ख़ुशी महसूस करे। पर्वत सोने-चाँदी के हों तथा वे हीरे तथा लालों से जड़े हुए हों तो भी तेरी सराहना करता रहूँ और बारम्बार सराहना करता रहूँ ॥ १ ॥

॥ म० १ ॥ भार अठारह मेवा होवै गरुड़ा होइ सुआउ। चंदु सूरजु दुइ फिरदे रखीअहि निहचलु होवै थाउ। भी तूं है सालाहणा आखण लहै न चाउ ॥ २ ॥

॥ महला १ ॥ कुल वनस्पति मेरी भोज्य सामग्री मेवा होवे जिसका आस्वादन मेरे मुँह में घुल जाए। (पुराना ख्याल है कि हर एक वृक्ष के

पत्ते को लेकर तोला जाए तो उसका वजन १८ भार के बराबर होगा, जबकि एक भार कच्चे पाँच मन के बराबर है।)। चाँद, सूरज जो आठ प्रहर चलते फिरते हैं, उन्हें अपनी करामात से रोक लिया जाय। तो भी मैं तेरी ही सराहना करूँ और तेरी सराहना करने का चाव मेरे चित्त से न हटे ॥ २ ॥

॥ म० १ ॥ जे देहै दुखु लाईऐ पाप गरह दुइ राहु। रतु पीणे राजे सिरै उपरि रखीअहि एवै जापै भाउ। भी तूं है सालाहणा आखण लहै न चाउ ॥ ३ ॥

॥ महला १ ॥ यदि किसी दुश्मन की देह में दुःख लगाया जाए तो राहू तथा केतु जो दो पापग्रह हैं, उन्हें लगा दें। रक्त पीनेवाले अति दुःखदायक राजा अपने सिर पर पहरेवाले रखें या उनके सिर पर अपना हुक्म रखें और इस प्रकार उनका प्रताप जानें। तो भी मैं तेरी ही सराहना करता रहूँ और यहाँ तक प्रभु-स्तुति में लगूँ कि मेरा चाव कभी न टूटे ॥ ३ ॥

॥ म० १ ॥ अगी पाला कपड़ु होवै खाणा होवै वाउ। सुरगै दीआ मोहणीआ इसतरीआ होवनि नानक सभो जाउ। भी तू है सालाहणा आखण लहै न चाउ ॥ ४ ॥

॥ महला १ ॥ अग्नि और बर्फ वस्त्र हो अर्थात् गर्मियों में धूप में बैठ जाए और सर्दियों में ठण्ड में बैठ जाए तथा हवा भोजन होवे। स्वर्ग की मोहिनी अप्सराएँ घरों में औरते हों (तब भी) गुरुजी कहते हैं कि ये सब पदार्थ जानेवाले हैं। फिर भी तेरी सराहना करता रहूँ और यहाँ तक सराहना करूँ कि मेरा चाव कभी न उतरे ॥ ४ ॥

॥ पवड़ी ॥ बदफैली गैबाना खसमु न जाणई। सो कहीऐ देवाना आपु न पछाणई। कलहि बुरी संसारि वादे खपीऐ। विणु नावै वेकारि भरमे पचीऐ। राह दोवै इकु जाणै सोई सिझसी। कुफर गोअ कुफराणै पइआ दझसी। सभ दुनीआ सुबहानु सचि समाईऐ। सिझै दरि दीवानि आपु गवाईऐ ॥ ६ ॥

॥ पउड़ी ॥ जो कुकर्मी हैवान है, वह पति परमेश्वर को नहीं जानता है। जो अपने स्वरूप को नहीं जानता है, वह पुरुष बावरा कहा जाता है। संसार में कलह बुरी है क्योंकि कलह करके व्यर्थ ही खपा जाता है। नाम के जाप बिना भ्रम के कारण विकारों में जला जाता है।

जो दोनों राहों (देव-दानव, गुरमुख-मनमुख, हिन्दू-मुसलमान) में एकता जानेगा वही मुक्त होगा। जो झूठ बोलनेवाला है, वह नरक में पड़ा हुआ जलेगा। समूची सृष्टि को परमेश्वर-रूप जानकर उस सच्चे में समा जाता है। यदि अहंकार को गवाँया जाए तो परमेश्वर के दरबार में जीव अभेद होता है ॥ ९ ॥

॥ म० १ सलोकु ॥ सो जीविआ जिसु मनि वसिआ सोइ। नानक अवरु न जीवै कोइ। जे जीवै पति लथी जाइ। सभु हरामु जेता किछु खाइ। राजि रंगु मालि रंगु रंगि रता नचै नंगु। नानक ठगिआ मुठा जाइ। विणु नावै पति गइआ गवाइ ॥ १ ॥

॥ सलोकु महला १ ॥ वही पुरुष जिया है, जिसके मन में वाहिगुरु बसा है। गुरुजी कहते हैं, दूसरा कोई नहीं जीता। यदि पुरुष नाम के बिना जीता है, तो अन्त में प्रतिष्ठा गवाँ कर जाता है। जो कुछ वस्तु खाता है, सब हराम है अर्थात् पाप-रूप है। राज्य, धन आदि पदार्थों के प्रेम में अनुरक्त होकर नंगा नाच रहा है। गुरुजी कहते हैं, काम आदिक ठगों से ठगा हुआ परमेश्वर के बिना प्रतिष्ठा खोकर गया है ॥ १ ॥

॥ म० १ ॥ किआ खाधै किआ पैधै होइ। जा मनि नाही सचा सोइ। किआ मेवा किआ घिउ गुड़ु मिठा किआ मैदा किआ मासु। किआ कपड़ु किआ सेज सुखाली कीजहि भोग बिलास। किआ लसकर किआ नेब खवासी आवै महली वासु। नानक सचे नाम विणु सभे टोल विणासु ॥ २ ॥

॥ महला १ ॥ जिसके मन में वह सच्चा वाहिगुरु नहीं, तो अनेक पदार्थों के खाने या वस्त्रों के पहनने से क्या होता है। (नाम के बिना) मेवा, घी, गुण, मीठा, मैदा और मांस क्या हैं। उत्तम वस्त्र, सुखदायक सेज और अनेक प्रकार के भोग-विलासों से क्या है। बहुत से लश्कर, चोपदार, सेवा करनेवाले चौकीदार आदि तथा महलों का वास प्राप्त होवे तो क्या है। गुरुजी कहते हैं, सच्चे वाहिगुरु के बिना सब पदार्थों के समुदाय नाशमान हैं ॥ २ ॥

॥ पवड़ी ॥ जाती दै किआ हथि सचु परखीऐ। महुरा होवै हथि मरीऐ चखीऐ। सचे की सिरकार जुगु जुगु जाणीऐ। हुकमु मंने सिरदारु दरि दीबाणीऐ। फुरमानी है कार खसमि

पठाइआ। तबलबाज बीचार सबदि सुणाइआ। इकि होए असवार इकना साखती। इकनी बधे भार इकना ताखती ॥१०॥

॥ पउड़ी ॥ जाति-अभिमान की व्यर्थता पर प्रकाश डालते हुए गुरुजी कहते हैं, जातियों के वश में क्या है क्योंकि परलोक में तो सच्चे नाम की परीक्षा होती है। हाथ में विष हो तो उसे चखने पर मृत्यु होती है, चाहे व्यक्ति किसी जाति का हो। इसी प्रकार उत्तम जाति का अभिमान करने पर व्यक्ति को दुःख उत्पन्न होता है। सच्चे वाहिगुरु की हुकूमत युग-युग में अथवा सदा जानी जाती है। जो परमेश्वर का हुक्म मानते हैं, वे दीवान में पहुँचते हैं। जप, तप की कमाई परमेश्वर ने वेदों में कही है और गुरुजी के लिए पति-परमेश्वर ने घोड़ा भेजा है। उस हुक्म-रूपी घोड़े पर सवार होकर नगारा बजानेवाले गुरु ने उपदेश सुनाया है। कुछ आसन-रूपी घोड़े पर सवार हुए और कुछ ने तैयारी की अर्थात् चिन्तन-मनन करने लगे। कुछ ने भार बाँधा अर्थात् श्रवण करने लगे और कुछ ने स्वरूप में दौड़ना अर्थात् आत्मतत्व को पहचाना। (यहाँ फ़ौज के दृष्टान्त से गुरु ने कथ्य को प्रस्तुत किया है) ॥ १० ॥

॥ सलोकु म० १ ॥ जा पका ता कटिआ रही सु पलरि वाड़ि। सणु कीसारा चिथिआ कणु लइआ तनु झाड़ि। दुइ पुड़ चकी जोड़ि कै पीसण आइ बहिठु। जो दरि रहे सु उबरे नानक अजबु डिठु ॥ १ ॥

॥ सलोकु महला १ ॥ जब अनाज पक गया, तब किसान ने काट लिया और खेत की जो बाड़ थी, वह खाली रह गई। अनाज गाह लिया और उसके शरीर से दाना अर्थात् अनाज अलग कर लिया। चक्की के दोनों पाट जोड़कर पीसने बैठ गए। जो बीच में अर्थात् कीली के इर्द-गिर्द रहे, वे बच गए। गुरुजी कहते हैं, यह अचरज देखा है ॥ १ ॥

॥ म० १ ॥ वेखु जि मिठा कटिआ कटि कुटि बधा पाइ। खुंढा अंदरि रखि कै देनि सु मल सजाइ। रसु कसु टटरि पाईऐ तपै तै विललाइ। भी सो फोगु समालीऐ दिचै अगि जालाइ। नानक मिठै पतरीऐ वेखहु लोका आइ ॥ २ ॥

॥ महला १ ॥ यहाँ पर गन्ने के दृष्टान्त द्वारा गुरुजी ने कहा है, देखो, जो गन्ना काटा है, काटकर ठोक-पीटकर बन्धनों में बाँधा है। बेलनों के बीच रखकर मलकर या पहलवानों के तुल्य जो पुरुष हैं, वे दबाते हैं या सजा देते हैं। उसका रस खींचकर कड़ाह में डाला जाता है। उसमें पड़कर तपता है और तपकर विलाप करता है। गन्ने की खोई भी

जिसका रस निकाल लिया है, सँभालकर रखा जाता है और फिर अग्नि में जला दिया जाता है। गुरुजी कहते हैं, जैसी गन्ने की बेइज्जती हुई है, वह हे लोगो, आकर देखो ॥ २ ॥

॥ पवड़ी ॥ इकना मरणु न चिति आस घणेरिआ। मरि मरि जंमहि नित किसै न केरिआ। आपनड़ै मनि चिति कहनि चंगेरिआ। जम राजै नित नित मनमुख हेरिआ। मनमुख लूण हाराम किआ न जाणिआ। बधे करनि सलाम खसम न भाणिआ। सचु मिलै मुखि नामु साहिब भावसी। करसनि तखति सलामु लिखिआ पावसी ॥ ११ ॥

॥ पउड़ी ॥ एक पुरुषों को मरना याद नहीं, वे आशाएँ बहुत रखते हैं। नित्यप्रति जन्मते-मरते हैं, किसी गुरु पीर के न हुए। अपने मन में स्वयं को भला समझकर अपने को भला कहते हैं। उन मनमुखों को धर्मराज ने नित्यप्रति समाप्त करने के लिए देखा है, क्योंकि मनमुख नमकहरामों ने परमेश्वर का किया हुआ उपकार नहीं जाना। जो बँधे हुए प्रणाम करते हैं, वे पति परमेश्वर को नहीं भाते। जिनके मुख में सच्चा नाम है, वही स्वामी को भले लगेंगे। परमात्मरूप तख्त को सलाम करेंगे, अर्थात् स्वरूप को देखेंगे। ऐसा शास्त्र में लिखा है कि वे परमेश्वर को पाएँगे ॥ ११ ॥

॥ म० १ सलोकु ॥ मछी तारू किआ करे पंखी किआ आकासु। पथर पाला किआ करे खुसरे किआ घर वासु। कुते चंदनु लाईऐ भी सो कुती धातु। बोला जे समझाईऐ पड़ीअहि सिम्रिति पाठ। अंधा चानणि रखीऐ दीवे बलहि पचास। चउणे सुइना पाईऐ चुणि चुणि खावै घासु। लोहा मारणि पाईऐ ढहै न होइ कपास। नानक मूरख एहि गुण बोले सदा विणासु ॥ १ ॥

॥ सलोकु महला १ ॥ मछली जल का क्या कर सकती है, अर्थात् क्या पार पा सकती है और पक्षी भी आकाश का क्या अन्त पा सकते हैं? पत्थर को पाला क्या असर करेगा और खुसरे ने घर में क्या वास करना है। कुत्ते को चन्दन लगा दीजिए तो भी वह कुतियों की ओर दौड़ेगा। यदि स्मृतियों का पाठ पढ़कर उसको समझाए तो वह सुनकर समझता नहीं है। वह अन्धा है, उसे चाहे पचास दीपकों के प्रकाश में रखें तो भी उसे दिखाई नहीं देगा। गायों के समुदाय को यदि घास और सोना मिलाकर

डाल दें, तब वे घास को चुन-चुनकर खाएँगी। लोहे को कपास के समान लकड़ी के साथ झाड़ें तो भी वह नरम नहीं होता, आशय यह है कि जैसे कपास छड़ी मारने से नरम हो जाती है, वैसे लोहा नहीं होता। गुरुजी कहते हैं कि मूर्ख में ये सब मन्द गुण होते हैं, जो सदा क्षणभंगुर हैं ॥ १ ॥

॥ म० १ ॥ कैहा कंचनु तुटै सारु। अगनी गंढु पाए लोहारु। गोरी सेती तुटै भतारु। पुतीं गंढु पवै संसारि। राजा मंगै दितै गंढ पाइ। भुखिआ गंढु पवै जा खाइ। काला गंढु नदीआ मीह झोल। गंढु परीती मिठे बोल। बेदा गंढु बोले सचु कोइ। मुइआ गंढु नेकी सतु होइ। एतु गंढि वरतै संसारु। मूरख गंढु पवै मुहि मार। नानकु आखै एहु बीचारु। सिफती गंढु पवै दरबारि ॥ २ ॥

॥ महला १ ॥ यदि काँसी, लोहा, स्वर्ण टूट जाए तो सुनार अग्नि से गाँठ लगा देते हैं। यदि पत्नी के साथ पति टूट जाए, तब संसार में पुत्रों से गाँठ बँध जाती है, अर्थात् पुत्रों द्वारा सम्बन्ध दृढ़ हो जाता है। यदि राजा कुछ माँगे, तब देने से सम्बन्ध बनता है अर्थात् मिलाप होता है। भूखे प्राणों का सुख साथ तब बनता है, यदि कुछ खाए। अकाल से टूटे हुए जीवों का सम्बन्ध तब होता है, यदि अत्यन्त वर्षा होवे और नदियाँ उछलकर चलें। प्रीति में गाँठ मीठे बोलने से पड़ती है, अर्थात् मधुर बचनों से सम्बन्धों में दुगुनी परिपक्वता आती है। यदि कोई सत्य बोले तो उसका वेदों के साथ सम्बन्ध बन जाता है। मृत पुरुषों का संसार में यही सम्बन्ध है कि उन्होंने शुभ कर्म किए हों, अर्थात् शुभ कर्म करने से ही मरणोपरान्त नाम रहता है। इन गाँठों के द्वारा संसार सक्रिय है। मूर्ख की उपेक्षा करने से या उसके सामने चुप रहने से मूर्ख से सम्बन्ध बनता है। गुरुजी विचार कर यह कहते हैं कि परमेश्वर की सराहना करने से उसके दरबार में सम्बन्ध (गाँठ) बनता है ॥ २ ॥

॥ पउड़ी ॥ आपे कुदरति साजि कै आपे करे बीचारु। इकि खोटे इकि खरे आपे परखणहारु। खरे खजानै पाईअहि खोटे सटीअहि बाहरवारि। खोटे सची दरगह सुटीअहि किसु आगै करहि पुकार। सतिगुर पिछै भजि पवहि एहा करणी सारु। सतिगुरु खोटिअहु खरे करे सबदि सवारणहारु। सची दरगह मंनीअनि गुर कै प्रेम पिआरि। गणत तिना दी को किआ करे जो आपि बखसे करतारि ॥ १२ ॥

।। पउड़ी ।। आप अपनी शक्ति द्वारा सृष्टि को रचकर आप ही विचार करता है। एक खोटे हैं, एक खरे हैं, आप ही सबको परखनेवाला है। जो खरे हैं, उन्हें अभेदत्व की प्राप्ति हो जाती है और खोटे चौरासी योनियों में भटकते हैं। खोटे पुरुष सच्चे दरबार से निकाल दिए जाते हैं, वे किसके आगे पुकार करें। इसलिए सतिगुरु के पीछे अर्थात् शरण में शीघ्र ही दौड़कर पड़ जा क्योंकि यही कर्म उत्तम है। सतिगुरु जो उपदेश सवाँरनेवाले हैं, वे खोटों को खरे कर देनेवाले हैं। जिन पुरुषों का तन-मन से गुरु में प्रेम है, वे वाहिगुरु की शोभा में मान पाते हैं। जिन्हें कर्त्तार ने आप बख्शा है, अर्थात् क्षमा किया है, उनके कर्मों की गिनती कोई क्या करेगा ।। १२ ।।

।। सलोकु म० १ ।। हम जेर जिमी दुनीआ पीरा मसाइका राइआ। मे रवदि बादिसाहा अफजू खुदाइ। एक तूही एक तुही ।। १ ।। म० १ ।। न देव दानवा नरा। न सिध साधिका धरा। असति एक दिगरि कुई। एक तुई एक तुई ।। २ ।।

।। सलोकु महला १ ।। पीर लोग, मेहनत करनेवाले लोग और बादशाह लोग भी ज़मीन के नीचे जाते हैं। हे ख़ुदा, बाकी तू ही है। एक तू ही है और एक तू ही पीछे था, अर्थात् तू ही सार्वकालिक है। महला १ ।। देव, दानव और मनुष्य सत्य नहीं हैं। सिद्धगण, साधक और पृथ्वी भी सत्य नहीं है। एक तू ही सत्य है, दूसरा कोई सत्य नहीं है। तीनों कालों में एक तू ही सत्य है ।। २ ।।

।। म० १ ।। न दादे दिहंद आदमी। न सपत जेर जिमी। असति एक दिगरि कुई। एक तुई एक तुई ।। ३ ।। म० १ ।। न सूर ससि मंडलो। न सपत दीप नह जलो। अंन पउण थिरु न कुई। एकु तुई एकु तुई ।। ४ ।। म० १ ।। न रिजकु दसत आ कसे। हमारा एकु आस वसे। असति एकु दिगर कुई। एक तुई एक तुई ।। ५ ।।

।। महला १ ।। न्याय का देनेवाला आदमी नहीं है। पृथ्वी के नीचे जो सात पाताल हैं, उनमें न्याय देनेवाला कोई नहीं है। एक तू ही है, दूसरा कौन है। आदि में भी एक तू ही था और अन्त भी एक तू ही होगा ।। ३ ।। महला १ ।। न सूर्य, चन्द्रमा और न सातों द्वीप, न अन्न, न जल और न पवन, स्थिर कोई नहीं है। तीनों कालों में एक तू ही है ।। ४ ।। महला १ ।। खाद्य पदार्थ किसी और के हाथ नहीं है।

हम सभी को एक तेरी आस बहुत है। एक तू ही है, दूसरा कौन है, तीनों कालों में एक तू ही है ।। ५ ।।

।। म० १ ।। परंदए न गिराह जर। दरखत आब आस कर। दिहंद सुई। एक तुई एक तुई ।। ६ ।। म० १ ।। नानक लिलारि लिखिआ सोइ। मेटि न साकै कोइ। कला धरै हिरै सुई। एकु तुई एकु तुई ।। ७ ।।

।। महला १ ।। पक्षियों की गाँठ में धन नहीं है। वृक्ष और पानी की आस करते हैं या वृक्ष और जल ये भी तेरी ही आस करते हैं। जिस तूने उत्पन्न किए हैं, वही तू देता है अर्थात् तू ही दाता है। तीनों कालों में एक तू ही है ।। ६ ।। महला १ ।। गुरुजी कहते हैं, जो तूने मस्तक में लिखा है, उसे कोई नहीं मिटा सकता है। तू ही प्राण-कला को धारण करता है, वही तू निकाल लेता है। तीनों कालों में एक तू ही है ।। ७ ।।

।। पउड़ी ।। सचा तेरा हुकमु गुरमुखि जाणिआ। गुरमती आपु गवाइ सचु पछाणिआ। सचु तेरा दरबारु सबदु नीसाणिआ। सचा सबदु वीचारि सचि समाणिआ। मनमुख सदा कूड़िआर भरमि भुलाणिआ। विसटा अंदरि वासु सादु न जाणिआ। विणु नावै दुखु पाइ आवण जाणिआ। नानक पारखु आपि जिनि खोटा खरा पछाणिआ ।। १३ ।।

।। पउड़ी ।। हे वाहिगुरु, तेरा सच्चा हुक्म गुरमुखों ने जाना है। गुरु की शिक्षा के अनुसर्त्ताओं ने अहंत्व को गवाँकर सत्यस्वरूप तुझे पहचाना है। तेरा स्वरूप (दरबार) सच्चा है और शब्द ब्रह्मरूप तू प्रकट है या उपदेश से प्रकट होता है। हे सत्यस्वरूप ब्रह्म, जिन्होंने तेरा विचार किया है, वे हे सत्यस्वरूप, तुझ में समाए हैं। मनमुख झूठे भ्रमों के कारण सदा भूले हुए हैं, क्योंकि उसका वास विष्ठा-रूपी मन्द कर्मों में है और उसने तेरा आनन्द नहीं जाना है। और नाम जपे बिना जन्म-मरण का दुःख पाते हैं। गुरुजी कहते हैं, तू आप पारखी है। खोटे और खरे को तूने आप ही पहचाना है ।। १३ ।।

।। सलोकु म० १ ।। सीहा बाजा चरगा कुहीआ एना खवाले घाह। घाहु खानि तिना मासु खवाले एहि चलाए राह। नदीआ विचि टिबे देखाले थली करे असगाह। कीड़ा थापि देइ पातिसाही लसकर करे सुआह। जेते जीअ

जीवहि लै साहा जीवाले ता कि असाह। नानक जिउ जिउ सचे भावै तिउ तिउ देइ गिराह ॥ १ ॥

॥ सलोकु महला १ ॥ हे महाराज, शेरों, बाजों, चरगों, कुइयों आदि मांस खानेवालों को यदि तू चाहे तो घास खिला देता है, और जो घास खानेवाले हैं, उन्हे मांस खिला देता है। इस मार्ग पर चलाने के लिए तू ही समर्थ है। नदियों के बीच टीले दिखा देता है और थलों के बीच अथाह जल चढ़ा देता है। तुच्छ जीव (कीड़े) को बादशाहत अर्थात् सिंहासन पर प्रतिष्ठापित कर देवे और लश्कर को चाहे तो भस्म कर देवे। जितने हैं सभी साँस लेकर जीते हैं, यदि परमेश्वर साँसों के बिना जीवित रखे तो क्या आश्चर्य है। गुरुजी कहते हैं, जैसे-जैसे, हे सच्चे, तुझे भाता है, तैसे-तैसे ही तू भोजन के ग्रास देता है, अर्थात् सब कुछ आपके अधीन है ॥ १ ॥

॥ म० १ ॥ इकि मासहारी इकि त्रिणु खाहि। इकना छतीह अंम्रित पाहि। इकि मिटीआ महि मिटीआ खाहि। इकि पउण सुमारी पउण सुमारि। इकि निरंकारी नाम आधारि। जीवै दाता मरै न कोइ। नानक मुठे जाहि नाही मनि सोइ ॥ २ ॥

॥ महला १ ॥ एक मांस का भोजन करते हैं, एक घास खाते हैं। एक को अमृत-रूप छत्तीस प्रकार के भोजन प्राप्त होते हैं। कुछ मृतकों के बीच रहते हुए मृतक खाते हैं और कुछ पवन की गणना करनेवाले पवन को गिनते हैं। एक निरंकार प्रभु के नाम-आसरे रहते हैं। सबका जीवनदाता परमेश्वर है, इसलिए आहार के बिना कोई नहीं मरता। गुरुजी कहते हैं, जिनके मन में अन्नदाता नहीं वे विकारों से लूटे हुए परलोक में जाते हैं ॥ २ ॥

॥ पउड़ी ॥ पूरे गुर की कार करमि कमाईऐ। गुरमती आपु गवाइ नामु धिआईऐ। दूजी कारै लगि जनमु गवाईऐ। विणु नावै सभ विसु पैझै खाईऐ। सचा सबदु सालाहि सचि समाईऐ। विणु सतिगुरु सेवे नाही सुखि निवासु फिरि फिरि आईऐ। दुनीआ खोटी रासि कूड़ु कमाईऐ। नानक सचु खरा सालाहि पति सिउ जाईऐ ॥ १४ ॥

॥ पउड़ी ॥ पूर्णगुरु की सेवा उत्तम कर्मों से कमाई जाती है। गुरु की शिक्षा लेकर तथा अहंकार को गवाँकर नाम की उपासना की

जाए। दूसरे काम में लगकर तो जन्म को गवांना है। परमेश्वर के नाम के बिना जो कुछ पहनना खाना है, सब विष के समान है। इसलिए सच्चा उपदेश या ब्रह्म की सराहना करके सत्य में समाया जाता है। सतिगुरु की सेवा के बिना सुख में स्थिति नहीं होती। बारम्बार जन्म लिया जाता है। संसार की पूँजी खोटी है, और झूठे कर्म कमाते हैं। गुरुजी कहते हैं, शुद्ध रूप सच्चे की सराहना करके प्रतिष्ठित हुआ जाता है, अथवा पति के साथ हुआ जाता है ।। १४ ।।

।। सलोकु म० १ ।। तुधु भावै ता वावहि गावहि तुधु भावै जलि नावहि। जा तुधु भावहि ता करहि बिभूता सिंङी नादु वजावहि। जा तुधु भावै ता पड़हि कतेबा मुला सेख कहावहि। जा तुधु भावै ता होवहि राजे रस कस बहुतु कमावहि। जा तुधु भावै तेग वगावहि सिर मुंडी कटि जावहि। जा तुधु भावै जाहि दिसंतरि सुणि गला घरि आवहि। जा तुधु भावै नाइ रचावहि तुधु भाणे तूं भावहि। नानकु एक कहै बेनंती होरि सगले कूड़ु कमावहि ।। १ ।।

।। सलोकु महला १ ।। अगर तुझे भाए तो बाजे बजाते हैं और गाते हैं। अगर तुझे भाए तो तीर्थों में स्नान करते हैं। यदि तुझे जीव भाए तो शरीर पर भस्म मलते हैं, सिंगी तथा नाद बजाते हैं। यदि तुझे भाए तो किताबों को पढ़कर मुल्ला और शेख़ कहलाते हैं। यदि तुझे भाए तो राजा होकर अनेक प्रकार के रसों को भोगते हैं। यदि तुझे भाए तो शूरवीर होकर तेग चलाते हैं, अर्थात् युद्ध करते हैं और गर्दन से सिर काटे जाते हैं। यदि तुझे भाए तो देश-देशान्तरों को जाते हैं और अनेक प्रकार की बातें सुनकर घर को आते हैं। यदि तुझे भाए तो गुरु द्वारा नाम में रंगा लेता है। यदि तुझे भाए तो जीव को भाया है, अर्थात् प्यारा लगा है। गुरुजी एक प्रार्थना करते हैं कि तेरा भाणा (ईश्वरेच्छा) ही मुझे भला लगे, इसके बिना दूसरे सब जीव झूठ कर्म कमाते हैं ।। १ ।।

।। म० १ ।। जा तूं वडा सभि वडिआंईआ चंगै चंगा होई। जा तूं सचा ता सभु को सचा कूड़ा कोइ न कोई। आखणु वेखणु बोलणु चलणु जीवणु मरणा धातु। हुकमु साजि हुकमै विचि रखै नानक सचा आपि ।। २ ।।

।। महला १ ।। यदि 'तू महान्' प्राप्त हो जाए तो समस्त महानताएं प्राप्त हो जाती हैं, अर्थात् उत्तम लोक स्वर्गादि प्राप्त हो जाते हैं। हे भले

परमेश्वर, तुझसे जो होता है, वह सब भला ही होता है। जब तू सच्चा प्राप्त होता है, तब सब कोई सच्चा ही लगता है। उस आत्मचेता (विवेकी) की दृष्टि में झूठा कोई नहीं है। कथा-प्रसंगों का कहना, देखना, सहज वचनों को बोलना, चलना, जन्मना और मरना —सब कुछ माया रूप है। गुरुजी कहते हैं, हे सच्चे, तू आप ही हुक्म में लगाकर हुक्म के बीच रखता है ॥ २ ॥

॥ पउड़ी ॥ सतिगुरु सेवि निसंगु भरमु चुकाईऐ। सतिगुरु आखै कार सु कार कमाईऐ। सतिगुरु होइ दइआलु त नामु धिआईऐ। लाहा भगति सु सारु गुरमुखि पाईऐ। मनमुखि कूड़ु गुबारु कूड़ु कमाईऐ। सचे दै दरि जाइ सचु चवांईऐ। सचै अंदरि महलि सचि बुलाईऐ। नानक सचु सदा सचिआरु सचि समाईऐ ॥ १५ ॥

॥ पउड़ी ॥ सतिगुरु की निष्काम सेवा से भ्रम दूर किया जाता है। सतिगुरु जो काम बताए, वही काम किया जाए। यदि सतिगुरु कृपालु हो तो नाम स्मरण किया जाता है। भक्ति का लाभ गुरु द्वारा ही पाया जाता है। मनमुख झूठे व्यक्तियों को तो अज्ञान-रूपी अँधेरा है, इसी से वे झूठे कर्म कमाते हैं। इसलिए सच्चे के सत्संग में जाकर सत्य-नाम का उच्चारण कीजिए, कराइए। सच्चे नाम जपनेवाले को निज स्वरूप में बुला लिया जाता है। गुरुजी कहते हैं, सच नाम जपनेवाला सदा सच्चा है और वह देहरहित होकर सत्य में अभेद होगा ॥ १५ ॥

॥ सलोकु म० १ ॥ कलि काती राजे कासाई धरमु पंख करि उडरिआ। कूड़ु अमावस सचु चंद्रमा दीसै नाही कह चड़िआ। हउ भालि विकुंनी होई। आधेरै राहु न कोई। विचि हउमै करि दुखु रोई। कहु नानक किनि बिधि गति होई ॥ १ ॥

॥ सलोकु महला १ ॥ कलियुग की प्रक्रिया छुरी है और कलियुगी राजा कसाई है, इसलिए धर्म, पंख लगाकर उड़ गया है। झूठ अँधेरे के समान पसर गया है और सत्य बोलना चन्द्रमा के तुल्य है, जो अँधेरे में दिखाई नहीं देता कि कहाँ चढ़ा है? मैं ढूँढ-ढूँढकर व्याकुल हो रही हूँ, अँधेरे में मार्ग बतलानेवाला कोई नहीं है। अहंकार के बीच कर्म करके दुःख के कारण स्त्री रोई है। गुरुजी कहते हैं, जीवों की गति किस प्रकार होगी ॥ १ ॥

॥ म० ३ ॥ कलि कीरति परगटु चानणु संसारि। गुरमुखि कोई उतरै पारि। जिसनो नदरि करे तिसु देवै। नानक गुरमुखि रतनु सो लेवै ॥ २ ॥

॥ महला ३ ॥ कलियुग में परमेश्वर की कीर्त्ति संसार में प्रकाश-रूप है, अर्थात् प्रभु-कीर्त्ति ही रत्न है। लेकिन सतिगुरु द्वारा कोई विरला ही अज्ञान-अँधेरे से पार उतरता है। जिस पर वाहिगुरु कृपा करे, उसे देता है। गुरुजी कहते हैं, वही सतिगुरु द्वारा कीर्त्ति-रूपी रत्न लेता है ॥ २ ॥

॥ पउड़ी ॥ भगता तै सैसारीआ जोड़ु कदे न आइआ। करता आपि अभुलु है न भुलै किसै दा भुलाइआ। भगत आपे मेलिअनु जिनी सचो सचु कमाइआ। सैसारी आपि खुआइअनु जिनी कूड़ु बोलि बोलि बिखु खाइआ। चलण सार न जाणनी कामु करोधु विसु वधाइआ। भगत करनि हरि चाकरी जिनी अनदिनु नामु धिआइआ। दासनिदास होइ कै जिनी विचहु आपु गवाइआ। ओना खसमै कै दरि मुख उजले सचै सबदि सुहाइआ ॥ १६ ॥

॥ पउड़ी ॥ भक्तों और सांसारिक जीवों का मेल कभी ठीक नहीं हुआ। परमेश्वर स्वयं स्मरणीय है, वह किसी का भुलाया नहीं भूलता। जिन भक्तों ने केवल सत्य कमाया है, उन्हें अपने साथ मिला लिया है। जिन सांसारिकों ने झूठ बोल-बोलकर विषय-रूपी विष को खाया है, उनको आप ही हरि ने भुला दिया है। वे मरने की खबर नहीं जानते और उन्होंने काम, क्रोध-रूपी विष को बढ़ाया है। जिन भक्तों ने रात-दिन हरि का नाम जपा है, वे हरि की सेवा करते हैं। जिन्होंने दासों के दास होकर हृदय के बीच से अहंकार को गवाँया है, परमेश्वर के द्वार पर उन पुरुषों के मुख उज्ज्वल हैं और सत्य के उपदेश से उनका जन्म शोभायमान हुआ है ॥ १६ ॥

॥ सलोकु म० १ ॥ सबाही सालाह जिनी धिआइआ इक मनि। सेई पूरे साह वखतै उपरि लड़ि मुए। दूजै बहुते राह मन कीआ मती खिडीआ। बहुतु पए असगाह गोते खाहि न निकलहि। तीजै मुही गिराह भुख तिखा दुइ भउकीआ। खाधा होइ सुआह भी खाणे सिउ दोसती। चउथै आई ऊंघ अखी मीटि पवारि गइआ। भी उठि रचिओनु वादु सै वरिआ

की पिड़ बधी। सभे वेला वखत सभि जे अठी भउ होइ। नानक साहिबु मनि वसै सचा नावणु होइ ॥ १ ॥

॥ सलोकु महला १ ॥ जिन्होंने एक मन से परमेश्वर को स्मरण किया है, उसका गुणस्तवन किया है और सही वक्त पर लड़कर मृत्यु को प्राप्त हुए हैं, अर्थात् प्रथम प्रहर में ईश्वरोपासना की है, वे ही दैवी गुणों से युक्त हुए हैं, अथवा पूर्ण धनवान हैं। दूसरे प्रहर में बहुत से रास्ते हो जाते हैं। मन की इच्छाएँ फैल जाती हैं। वे अथाह संसार-रूपी समुद्र में पड़े हुए हैं, गोते खाते हैं और निकल नहीं सकते। तीसरे प्रहर में जब भूख और प्यास दोनों जाग गईं, तब सुख-पूर्वक भोजन करते हैं। जो खाया था वह भस्म हो गया, फिर भी खाने में ही प्रीति लगी रहती है। चौथे प्रहर में निद्रा ही आई, आँखें बन्द हो गईं, मानो मर गया। फिर भी निद्रा से उठकर सैकड़ों वर्ष जीने की हठ करके झगड़ा करते हैं। सभी वक्त सफल हैं, यदि आठ प्रहरों के बीच परमेश्वर का भय हो। गुरुजी कहते हैं, यदि परमात्मा मन में बसे तो सच्चा स्नान होता है ॥ १ ॥

॥ म० २ ॥ सेई पूरे साह जिनी पूरा पाइआ। अठी वे परवाह रहनि इकतै रंगि। दरसनि रूपि अथाह विरले पाईअहि। करमि पूरै पूरा गुरू पूरा जाका बोलु। नानक पूरा जे करे घटै नाही तोलु ॥ २ ॥

॥म० २॥ जिन्होंने पूर्ण वाहिगुरु को पाया है, वही पूर्ण शाह है अर्थात् सर्वगुण-सम्पन्न है। आठ प्रहरों में निष्काम रहते हैं और एक वाहिगुरु के रंग में रंगे रहते हैं। जिनको अथाह रूप परमेश्वर का दर्शन हुआ है, ऐसे विरले ही पाए जाते हैं अर्थात् देखे जाते हैं। जिसका उपदेश पूर्ण है, वह पूर्णगुरु, पूर्ण कर्मों द्वारा पाया जाता है। गुरुजी कहते हैं, यदि गुरु जिज्ञासु को उपदेश करे, तब विवेक बिल्कुल शिथिल नहीं होता ॥ २ ॥

॥ पउड़ी ॥ जा तूं ता किअ होरि मै सचु सुणाईऐ। मुठी धंधै चोरि महलु न पाईऐ। एनै चिति कठोरि सेव गवाईऐ। जितु घटि सचु न पाइ सु भंनि घड़ाईऐ। किउ करि पूरै वटि तोलि तुलाईऐ। कोइ न आखै घटि हउमै जाईऐ। लईअनि खरे परखि दरि बीनाईऐ। सउदा इकतु हटि पूरै गुरि पाईऐ ॥ १७ ॥

॥ पउड़ी ॥ हे महाराज, जब तू प्राप्त हो जाए तो जीव को और क्या चाहिए। इसलिए मुझे भी अपना सच्चा नाम सुनाओ। जिनकी

बुद्धि व्यवहाररूपी चोरों ने लूटी है, वे परमात्म-रूप को नहीं पाते हैं। इस कठोर चित्त वाले जीव ने भक्ति करने की प्रीति गवाँ दी है। जिसके शरीर में सत्यनाम नहीं प्राप्त होता, वह जन्मता-मरता रहता है। तब पूरे बाटों के साथ उन्हें कैसे तोला जाए ? लेकिन जिनका अहंत्व जाता रहता है, उन्हें उनसे कम कोई नहीं कहता। वे खरे हैं, यह परख कर परमेश्वर, हरि के द्वार पर बुला लिए जाते हैं। नाम का सौदा एक सत्संग-रूपी हाट है, लेकिन उसे पूर्णगुरु द्वारा पाया जाता है ॥ १७ ॥

॥ सलोकु म० २ ॥ अठी पहरी अठ खंड नावा खंडु सरीरु। तिसु विचि नउ निधि नामु एकु भालहि गुणी गहीरु। करमवंती सालाहिआ नानक करि गुरु पीरु। चउथै पहरि सबाह कै सुरतिआ उपजै चाउ। तिना दरीआवा सिउ दोसती मनि मुखि सचा नाउ। ओथै अंम्रितु वंडीऐ करमी होइ पसाउ। कंचन काइआ कसीऐ वंनी चड़ै चड़ाउ। जे होवै नदरि सराफ की बहुड़ि न पाई ताउ। सती पहरी सतु भला बहीऐ पड़िआ पासि। ओथै पापु पुंनु बीचारीऐ कूड़ै घटै रासि। ओथै खोटे सटीअहि खरे कीचहि साबासि। बोलणु फादलु नानका दुखु सुखु खसमै पासि ॥ १ ॥

॥ सलोक महला २ ॥ आठ प्रहरों के भीतर आठ का खण्डन करता रहूँ (५ काम आदि और ३ गुण सतोगुण आदि) और नौवें शरीर अभिमान का खण्डन करता रहूँ। उस शरीर में नवनिधि-रूप परमेश्वर का नाम रूप है और अद्वितीय प्रभु है, उसे विचार कर समस्त गुणों के समुद्र व्यक्ति ढूंढते हैं। गुरुजी कहते हैं, गुरु-पीरों को धारण करके उसे सराहा है। रात्रि के चौथे प्रहर जिज्ञासुओं को उत्साह उपजा है। उनकी स्नानार्थ नदियों से प्रत्यक्ष ही प्रीति है, अर्थात् सत्संग-रूपी नदियों से लगाव है, वे मन और मुख में सच्चा नाम धारण करते हैं। उस सत्संग में अमृत रूप परमेश्वर का नाम बाँटा जाता है, लेकिन शुभ कर्म करनेवालों को नाम की देन प्राप्त होती है। जिनकी कंचन काया कष्ट पाती है, उन्हें ज्ञान का चढ़ावा चढ़ता है। यदि सतिगुरु-रूपी सर्राफ की कृपा हो तब चौरासी योनियों के चक्र को वह पुरुष नहीं पाता। सात प्रहरों में सत्य बोलना भला है और विद्वानों की संगति में बैठना चाहिये। उन विद्वानों में पाप-पुण्य का विचार होता है, जिसे सुनकर झूठे कर्मों की पूँजी कम हो जाती है। वहाँ खोटे त्यागे जाते हैं और खरे पुरुषों को प्रशंसा मिलती है। गुरुजी कहते हैं, वहाँ बोलना व्यर्थ है, अर्थात् सुख-दुख के सम्बन्ध में कहना

बेकार है, क्योंकि सुख-दुख परमेश्वर के पास हैं, अर्थात् कर्मों का फलदाता ईश्वर है ।। १ ।।

।। म० २ ।। पउणु गुरू पाणी पिता माता धरति महतु । दिनसु राति दुइ दाई दाइआ खेलै सगल जगतु । चंगिआईआ बुरिआईआ वाचे धरमु हदूरि । करमी आपो आपणी के नेड़ै के दूरि । जिनी नामु धिआइआ गए मसकति घालि । नानक ते मुख उजले होर केती छुटी नालि ।। २ ।।

।। महला २ ।। गुरु पवन के तुल्य हैं, क्योंकि वे पवन के तुल्य जीवों की पाप-पुण्य प्रक्रिया देखते हैं और देखते हुए निर्लिप्त रहते हैं । गुरु पानी हैं अर्थात् पानी के समान मैल-निवारक है । गुरु संरक्षक होने के नाते माता-पिता के तुल्य हैं और धरती के तुल्य धैर्यवान हैं । गुरु ज्ञान से प्रकाश करते हैं और द्वैतरूपी रात्रि को समाप्त करते हैं । धाय की तरह स्वरूप-सुख में सुलाते हैं, अथवा धाय की तरह रक्षा करते हैं और समूचा संसार गुरु ने परमेश्वर की लीला रूप उपजाया है । धर्म-स्वरूप गुरमुखों के शुभ-अशुभ कर्म परमेश्वर पढ़ते हैं, अर्थात् गुण-अवगुण भिन्न-भिन्न करके सुनाते हैं । अपने-अपने कर्म के अनुसार सब फल पाते हैं, क्या निकट और क्या दूर? जिन्होंने गुरु के साथ मिलकर नाम का स्मरण किया है और जप-तप की मेहनत कर गए हैं । गुरुजी कहते हैं, वे पुरुष उज्ज्वल मुखवाले हैं, उनके साथ मिलकर बहुत सृष्टि बन्धनों से छूटी है ।। २ ।।

।। पउड़ी ।। सचा भोजनु भाउ सतिगुरि दसिआ । सचे ही पतीआइ सचि विगसिआ । सचै कोटि गिरांइ निज घरि वसिआ । सतिगुरि तुठै नाउ प्रेमि रहसिआ । सचै दै दीबाणि कूड़ि न जाईऐ । झूठो झूठु वखाणि सु महलु खुआईऐ । सचै सबदि नीसाणि ठाक न पाईऐ । सचु सुणि बुझि वखाणि महलि बुलाईऐ ।। १८ ।।

।। पउड़ी ।। सच्चा भोजन तो ज्ञान अथवा प्रेम है सो सतिगुरु ने बताया है । सच्चे पुरुष विश्वस्त हुए हैं, इसलिए उनका हृदय-कमल सच के कारण खिला है । जो अपने स्वरूप में स्थित हुआ है, उसकी इन्द्रियाँ और देह सच्चे हैं । जब सतिगुरु प्रसन्न हुए तब नाम से प्रेमी-जन आनन्दित हुआ । सच्चे परमेश्वर के स्वरूप में झूठे संसार में लगने से नहीं जाया जाता । जो झूठ में लगे हैं और झूठ ही बोलते हैं, वे स्वरूप से भुलाए जाते हैं । जिनके पास गुरु का उपदेश-रूप परवाना है, उन्हें

मार्ग में कोई विघ्न नहीं रोक पाता। जिन्होंने सत्य सुनकर समझा है और उच्चारण किया है, वे स्वरूप में बुला लिए जाते हैं ।। १८ ।।

।। सलोकु म० १ ।। पहिरा अगनि हिवै घरु बाधा भोजनु सारु कराई। सगले दूख पाणी करि पीवा धरती हाक चलाई। धरि ताराजी अंबरु तोली पिछै टंकु चड़ाई। एवडु वधा मावा नाही सभसै नथि चलाई। एता ताणु होवै मन अंदरि करी भि आखि कराई। जेवडु साहिबु तेवड दाती दे दे करे रजाई। नानक नदरि करे जिसु उपरि सचि नामि वडिआई ।। १ ।।

।। सलोकु महला १ ।। अग्नि को वस्त्रों के समान पहन लूँ, बर्फ में घर बाँध लें और लोहे का भोजन कर लें। समस्त दुखों को पानी की तरह पी लूँ और धरती को हाँककर चलाऊँ। तराजू में रखकर आकाश को तोलूँ और दूसरी ओर चार माशा का बाँट चढ़ाऊँ। सिद्धि द्वारा इतना बड़ा बढ़ूँ कि किसी जगह में समाऊँ नहीं और सबको अधीन कर चलाऊँ। मन के भीतर ऐसी शक्ति हो कि पूर्वकृत कार्य आप भी करें और दूसरों से भी करवाएँ। जितना बड़ा परमेश्वर है, उतनी ही बड़ी उसकी देन है और वाहिगुरु जीवों को दे देकर खुशी करता है। गुरुजी कहते हैं, वाहिगुरु जिसपर कृपादृष्टि करता है, उसे सत्यनाम की महानता बखशता है ।। १ ।।

।। म० २ ।। आखणु आखि न रजिआ सुनणि न रजे कंन। अखी देखि न रजीआ गुण गाहक इक वंन। भुखिआ भुख न उतरै गली भुख न जाइ। नानक भुखा ता रजै जा गुण कहि गुणी समाइ ।। २ ।।

।। महला २ ।। मुख शब्दों को कहकर तृप्त नहीं हुआ और शब्दों को सुनते हुए कान तृप्त नहीं हुए। आँखें परमेश्वर के रूप को देखकर तृप्त नहीं हुईं। गुण अपने-अपने रंग के भाव अर्थात् विषय को ग्रहण करनेवाले हैं। गुरुजी कहते हैं, सन्तोष की बातें करने से भूखों की भूख नहीं मिटती, अर्थात् तृष्णाएँ समाप्त नहीं होतीं। भूखा तो तब तृप्त होता है, जब गुण कथन करके गुणी परमेश्वर में समा जाए ।। २ ।।

।। पउड़ी ।। विणु सचे सभु कूड़ु कूड़ु कमाईऐ। विणु सचे कूड़िआरु बंनि चलाईऐ। विणु सचे तनु छारु छारु रलाईऐ। विणु सचे सभ भुख जि पैझै खाईऐ। विणु सचे दरबारु कूड़ि न पाईऐ। कूड़ै लालचि लगि महलु खुआईऐ।

सभु जगु ठगिओ ठगि आईऐ जाईऐ। तन महि त्रिसना अगि सबदि बुझाईऐ ।। १९ ।।

।। पउड़ी ।। बिना सच्चे नाम के सब झूठ है और दूसरे कर्मों का करना भी झूठा है। सच्चे नाम के बिना झूठे पुरुष बाँध कर यमपुरी भेज दिये जाते हैं। सच्चे नाम के बिना शरीर भस्म-रूप है और मर कर भस्म में मिल जाता है। जो खाएँ, पहनें वह सब सच्चे नाम के बिना तृष्णा को बढ़ानेवाले हैं। सच्चे नाम के बिना वाहिगुरु का दरबार झूठ बोलने से नहीं पाया जाता है। झूठे पदार्थों के लालच में लगकर परमेश्वर के स्वरूप से विस्मृत हो जाता है। विषय-रूपी ठगों ने समूचा जगत् ठगा है, इसलिए जीव आता-जाता है। शरीर में तृष्णा-रूपी जो अग्नि है, वह उपदेश से बुझाई जाती है ।। १९ ।।

।। सलोक म० १ ।। नानक गुरु संतोखु रुखु धरमु फुलु फल गिआनु। रसि रसिआ हरिआ सदा पकै करमि धिआनि। पति के साद खादा लहै दाना कै सिरि दानु ।। १ ।।

।। सलोक महला १ ।। गुरुजी कहते हैं कि गुरु सन्तोष के धारण करनेवाले वृक्ष-रूप हैं, अर्थात् वृक्षों की तरह आप दुःख सहते हैं और दूसरों को सुख देते हैं। उनमें धर्म-फल है और ज्ञान-फल है। ज्ञान-फल कैसा है ? इसके बारे में यहाँ संकेत है कि वह आनन्दकर्त्ता पूर्ण है और सदा ही जीर्णता से रहित है। वह ध्यान-रूपी कर्म से परिपक्व होता है। उस ज्ञान के द्वारा पति के आनन्द को वह प्राप्त करता है। आशय यह है कि उसके आनन्द को वह प्राप्त करता है, जो प्रत्येक कर्म ईश्वर-अर्पण करके करता है ।। १ ।।

।। म० १ ।। सुइने का बिरखु पत परवाला फुल जवेहर लाल। तितु फल रतन लगहि मुखि भाखित हिरदै रिदै निहालु। नानक करमु होवै मुखि मसतकि लिखिआ होवै लेखु। अठिसठि तीरथ गुर की चरणी पूजै सदा विसेखु। हंसु हेतु लोभु कोपु चारे नदीआ अगि। पवहि दझहि नानका तरीऐ करमी लगि ।। २ ।।

।। महला १ ।। गुरु सोने का वृक्ष है, जिसपर मूँग के पत्ते हैं, फूल जवाहर और लाल के हैं। उसपर रत्न आदि के फल लगते हैं। जो गुरु-शब्द को मुख से उच्चरित करते हैं, वे हृदय के बीच निहार लेते हैं। गुरुजी कहते हैं, जिस पुरुष के अब के श्रेष्ठ कर्म हों, और पूर्वकृत

श्रेष्ठ कर्मों का लेख मस्तक पर लिखा हो वह पुरुष सतिगुरु के चरणों में अढ़सठ तीर्थों को जानकर विशेषकर पूजन करे, तब ज्ञान-फल प्राप्त होता है। (अब जो अज्ञानी हैं, उनका हाल कहते हैं) हिंसा, मोह, लोभ, क्रोध —यह चारों अग्नि की नदियाँ हैं। गुरुजी कहते हैं, जो इनमें पड़े हैं, वे दग्ध हुए हैं, लेकिन उत्तम भाग्यों के सहारे लगकर पार हुआ जाता है ॥२॥

॥ पउड़ी ॥ जीवदिआ मरु मारि न पछोताईऐ। झूठा इहु संसारु किनि समझाईऐ। सचि न धरे पिआरु धंधै धाईऐ। कालु बुरा खै कालु सिरि दुनीआईऐ। हुकमी सिरि जंदारु मारे दाईऐ। आपे देइ पिआरु मंनि वसाईऐ। मुहतु न चसा विलंमु भरीऐ पाईऐ। गुरपरसादी बुझि सचि समाईऐ ॥ २० ॥

॥ पउड़ी ॥ जब जीते हुए कामादिकों को मारा जाए तब पश्चाताप नहीं किया जाता है। यह संसार झूठा है, किसको समझाइये। सत्य में स्नेह नहीं लगाते, झूठे धन्धों की ओर दौड़ते हैं। जन्म और मरण का समय दुनिया के सिर पर बुरा है, अर्थात् जीवों को जन्म-मरण का अति दुःख है। परमेश्वर के हुक्म से यमराज सिर पर डण्डा मारता है। जब परमेश्वर अपना प्रेम आप देता है, तब मन में बसा जाता है, फिर यमदूत नहीं मारता है। शरीर के छूटने में मुहूर्त या पल भर का विलम्ब नहीं लगता। जैसे पानी भर-भर कर उलट दिया जाय, वैसे ही पलभर में शरीर से प्राण निकल जाते हैं। गुरु की कृपा से हरि को समझकर सत्य में समाया जाता है ॥ २० ॥

॥ सलोकु म० १ ॥ तुमी तुमा विसु अकु धतूरा निमु फलु। मनिमुखि वसहि तिसु जिसु तूं चिति न आवही। नानक कहीऐ किसु हंढनि करमा बाहरे ॥ १ ॥

[नाम के बिना जो पुरुष है, उसकी निन्दा इस अंश में की गई है।]

॥ सलोकु महला १ ॥ जिसे तू चित्त में स्मरण नहीं आता, उस पुरुष के तुंबी, विष, आक, धतूरा, नीम जैसे कड़वे फलों जैसी कड़ुआहट मन और मुख में बसती है। गुरुजी कहते हैं, किसे कहें ? जीव अशुभ कर्मों को करते हुए घूमते-फिरते हैं ॥ १ ॥

॥ म० १ ॥ मति पंखेरू किरतु साथि कब उतम कब नीच। कब चंदनि कब अकि डालि कब उची परीति। नानक हुकमि चलाईऐ साहिब लगी रीति ॥ २ ॥

॥ महला १ ॥ मति अर्थात् चिताभास जीव-रूपी पक्षी है, जो

कर्मरूपी पंखों के साथ कभी उत्तमता और कभी नीचता को प्राप्त होता है। कभी चन्दन अर्थात् स्वर्ग में और कभी आक की डाली अर्थात् नरक में जाता है। कभी परमेश्वर में भी प्रीति हो जाती है। गुरुजी कहते हैं, परमेश्वर के हुक्म-अधीन जीव चलाए जाते हैं। यही रीति आदिकाल से चली आती है ॥ २ ॥

॥ पउड़ी ॥ केते कहहि वखाण कहि कहि जावणा। वेद कहहि वखिआण अंतु न पावणा। पड़िऐ नाही भेदु बुझिऐ पावणा। खटु दरसन कै भेखि किसै सचि समावणा। सचा पुरखु अलखु सबदि सुहावणा। मंने नाउ बिसंख दरगह पावणा। खालक कउ आदेसु ढाढी गावणा। नानक जुगु जुगु एकु मंनि वसावणा ॥ २१ ॥

॥ पउड़ी ॥ कितने पुरुष शास्त्रों की व्याख्या करते हैं, कह-कहकर उनका भी अन्त में जाना हुआ है। कितने वेदों का टीका करनेवाले हुए हैं, लेकिन उन्होंने भी अन्त नहीं पाया। पढ़ने से भेद प्राप्त नहीं होता। परमेश्वर की प्राप्ति समझकर होती है। जो भी छः दर्शन हैं, उनमें से किसी का ही सत्य में समाहार होता है। जिसने गुरु के उपदेश से सच्चा अलख पुरुष पाया है, वह शोभायमान है। जिन्होंने परमेश्वर अनन्त का नाम मनन किया है, उन्होंने अन्तःकरण-रूपी जगह को पवित्र किया है। सृष्टि के सृजनहार परमेश्वर को नमस्कार करके उसके यश को ढाढी के समान गाएँ। गुरुजी कहते हैं, जो समस्त युगों में एक ही है, उसे मन में बसाइए ॥ २१ ॥

॥ सलोकु महला २ ॥ मंत्री होइ अठूहिआ नागी लगै जाइ। आपण हथी आपणै दे कूचा आपे लाइ। हुकमु पइआ धुरि खसम का अती हू धका खाइ। गुरमुख सिउ मनमुखु अड़ै डुबै हकि निआइ। दुहा सिरिआ आपे खसमु वेखै करि विउपाइ। नानक एवै जाणीऐ सभ किछु तिसहि रजाइ ॥ १ ॥

॥ सलोकु महला २ ॥ कोई पुरुष मन्त्र तो बिच्छू का जाननेवाला हो, लेकिन सर्पों को जाकर पकड़ने लगे। वह पुरुष अपने हाथ से अपने आपको अग्नि का कूचा लगा देता है। आदिकाल से ही परमेश्वर का हुक्म ऐसे रहा है कि जो अति करता है, वह धक्का खाता है। जो मनमुख गुरमुख से अड़ता है, अर्थात् विरोध करता है, वह डूबता है, ऐसा सच्चा न्याय है। दोनों तरफ अर्थात् मनमुख एवं गुरमुख दोनों का स्वामी

आप है। वह निर्णय करके सबको देखता है। गुरुजी कहते हैं, इस तरह निश्चय करके जानिए कि सब कुछ उसकी इच्छानुसार होता है ॥ १॥

॥ महला २ ॥ नानक परखे आप कउ ता पारखु जाणु। रोगु दारू दोवै बुझै ता वैदु सुजाणु। वाट न करई मामला जाणै मिहमाणु। मूलु जाणि गला करे हाणि लाए हाणु। लबि न चलई सचि रहै सो विसटु परवाणु। सरु संधे आगास कउ किउ पहुचै बाणु। अगै ओहु अगंमु है वाहेदड़ु जाणु ॥ २ ॥

॥ महला २ ॥ गुरुजी कहते हैं, जो आपको परखे उसे परीक्षा करनेवाला गुरु अथवा पारखी जानो। जो रोग और औषधि दोनों को समझे, उसे ही गुरु-रूपी चतुर वैद्य जानो। आपको मेहमान अर्थात् राही जानकर किसी प्रकार का झमेला न करे और किसी प्रकार का संग्रह न करे। जो मूलरूप परमेश्वर को जानने की तथा जीव एवं ईश्वर की अभेदता की बातें करे एवं कामादिक हानिकारक तत्वों को समाप्त करे। जो झूठ की ओर न झुके, सत्य में स्थित रहे, वह परमेश्वर में मिलाने को प्रामाणिक वकील अर्थात् गुरु है। जो उसके साथ ईर्ष्या करता है, उसी का बुरा होता है, जैसे तीर कितना भी आकाश को बिद्ध करे, उस तक वह कैसे पहुँच सकता है ? आकाश अगम्य है, इसलिए उलटकर तीर चलाने पर ही तीर पड़ेगा ॥ २ ॥

॥ पउड़ी ॥ नारी पुरख पिआरु प्रेमि सीगारीआ। करनि भगति दिनु राति न रहनी वारीआ। महला मंझि निवासु सबदि सवारीआ। सचु कहनि अरदासि से वेचारीआ। सोहनि खसमै पासि हुकमि सिधारीआ। सखी कहनि अरदासि मनहु पिआरीआ। बिनु नावै ध्रिगु वासु फिटु सु जीविआ। सबदि सवारीआसु अंम्रितु पीविआ ॥ २२ ॥

॥ पउड़ी ॥ भक्तों-रूपी स्त्रियों का पुरुष-रूपी परमेश्वर में प्रेम है और उन्होंने प्रेम का श्रृंगार किया है। ये निरन्तर भक्ति करती हैं और रोकने पर भी नहीं रुकतीं। जो गुरु के उपदेश से शुद्ध अन्तःकरण वाली हैं, उन स्त्रियों का पति के स्वरूप में निवास हुआ है। वे बुद्धिमान होकर वाहिगुरु के समक्ष प्रार्थना करती हैं। जो स्त्रियाँ हुक्म को मानकर पहुँची हैं, वे वाहिगुरु के पास सुशोभित हैं। सखी भाव से प्रार्थना करती हैं और मन से पति को प्यारी हैं। नाम के बिना बसने को धिक्कार है और जीने को धिक्कार है। जो गुरु के उपदेश द्वारा सँवरी है, उसी ने नाम-रूपी अमृत-पान किया है ॥ २२ ॥

॥ सलोकु म० १ ॥ मारू मीहि न त्रिपतिआ अगी लहै न भुख। राजा राजि न त्रिपतिआ साइर भरे कि सुक। नानक सचे नाम की केती पुछा पुछ ॥ १ ॥

॥ सलोकु महला १ ॥ जैसे मरुस्थल की तृप्ति वृष्टि से नहीं होती, अग्नि की भूख लकड़ियों से तृप्त नहीं होती। राजा राज्य-संचालन से तृप्त नहीं होता और समुद्र किसने भरे हैं, अर्थात् किसी ने नहीं भरे। गुरुजी कहते हैं, जिन्हें सच्चे नाम की प्रीति है, उन्हें नाम की भूख कितनी पूछें, अर्थात् भूख अथाह है ॥ १ ॥

॥ महला २ ॥ निहफलं तसि जनमसि जावतु ब्रहम न बिंदते। सागरं संसारसि गुर परसादी तरहि के। करण कारण समरथु है कहु नानक बीचारि। कारणु करते वसि है जिनि कल रखी धारि ॥ २ ॥

॥ महला २ ॥ उस पुरुष का जन्म व्यर्थ है, जब तक उसने ब्रह्म को नहीं जाना। संसार-सागर को गुरु की कृपा से विरले पुरुषों ने पार किया है। गुरुजी कहते हैं, जो जगत् के कारण हैं, अर्थात् सर्जक हैं और कर्त्तार हैं, उन प्रभु का विचार करो। जिस परमेश्वर ने सब में प्राणकला प्रतिष्ठापित की हुई है, सब कारण उस कर्त्ता के अधीन हैं ॥ २ ॥

॥ पउड़ी ॥ खसमै कै दरबारि ढाढी वसिआ। सचा खसमु कलाणि कमलु विगसिआ। खसमहु पूरा पाइ मनहु रहसिआ। दुसमन कढे मारि सजण सरसिआ। सचा सतिगुरु सेवनि सचा मारगु दसिआ। सचा सबदु बीचारि कालु विधउसिआ। ढाढी कथे अकथु सबदि सवारिआ। नानक गुण गहि रासि हरि जीउ मिले पिआरिआ ॥ २३ ॥

॥ पउड़ी ॥ वाहिगुरु के सत्संग-रूपी दरबार में यशगान करनेवाला दास बसा हूँ। जब सच्चे वाहिगुरु का यशगान किया, तब हृदय-कमल विकसित हुआ है। जब वाहिगुरु की कृपा से पूर्ण-सतिगुरु प्राप्त हुआ, तब मन से आनन्दित हुआ। कामादिक दुश्मन मार-मारकर मन से निकाल दिए और जो दैवी गुण थे, उनका आधिक्य हो गया। जिन्होंने सच्चे सतिगुरु की सेवा की है, उनको सच्चा मार्ग सतिगुरु ने बताया है। सत्य-रूप ब्रह्म का विचार किया है और काल को नष्ट किया है, अर्थात् जन्म-मरण से रहित हुए हैं। चारण ने गुरु-उपदेश से अकथनीय प्रभु का बखान करके जन्म सवाँरा है। गुरुजी कहते हैं, हे प्रिय भाई, शुभ गुणों की पूंजी ग्रहण की है, हरि हमको मिले हैं ॥ २३ ॥

॥ सलोकु म० १ ॥ खतिअहु जंमे खते करनि त खतिआ विचि पाहि । धोते मूलि न उतरहि जे सउ धोवण पाहि । नानक बखसे बखसीअहि नाहि त पाही पाहि ॥ १ ॥

॥ सलोकु महला १ ॥ पापी जीव गुनाह करके उपजे हैं, अब गुनाह कर रहे हैं और भविष्य में भी गुनाहों में पड़ेंगे । यदि सौ बार भी तीर्थ-स्नान करें, लेकिन तब भी स्नान करके मैल नहीं उतरता क्योंकि मूलतः वृत्ति दूषित होने पर तीर्थादि सब व्यर्थ हैं । गुरुजी कहते हैं, यदि परमात्मा क्षमा करे तो सब गुनाह क्षमा कर दिये जाते हैं, यदि नहीं तो अत्यन्त प्रताड़ना होती है ॥ १ ॥

॥ म० १ ॥ नानक बोलणु झखणा दुख छडि मंगीअहि सुख । सुखु दुखु दुइ दरि कपड़े पहिरहि जाइ मनुख । जिथै बोलणि हारीऐ तिथै चंगी चुप ॥ २ ॥

॥ महला १ ॥ गुरुजी कहते हैं, वह बोलना खपना मात्र है, कि दुःख छोड़कर सुख माँगे, अर्थात् दुःख में द्वेष रखना और सुख के क्षणों में चाह रखना व्यर्थ है । सुख-दुख दोनों साधारण वस्त्र हैं, सांसारिक मनुष्य जिन्हें पहनते हैं, अर्थात् कर्मानुसार सुख-दुख प्राप्त करते हैं । जिस स्थान में बोलने से हार हो वहाँ मौन रहना ही भला है, अर्थातृ ईश्वर-प्रदत्त सुख-दुख को यथावत स्वीकार लेना सही है ॥ २ ॥

॥ पउड़ी ॥ चारे कुंडा देखि अंदरु भालिआ । सचै पुरखि अलखि सिरजि निहालिआ । ऊझड़ि भुले राह गुरि देखालिआ । सतिगुर सचे वाहु सचु समालिआ । पाइआ रतनु घराहु दीवा बालिआ । सचै सबदि सलाहि सुखीए सच वालिआ । निडरिआ डरु लगि गरबि सि गालिआ । नावहु भुला जगु फिरै बेतालिआ ॥ २४ ॥

॥पउड़ी॥ परमेश्वर की प्राप्ति के लिए चारों दिशाओं में छान-बीन की लेकिन उसे जब भीतर मन में खोजा तब पाया । तब ही सच्चे पुरुष, अलक्ष्य तथा सर्जक को देखा । उजाड़ संसार में भटके हुए को परमेश्वर का रास्ता सतिगुरु ने दिखला दिया । सच्चे सतिगुरु धन्य हैं, जिनकी कृपा से सत्यरूप को पा लिया है । जब गुरु ने ज्ञानरूपी दीपक जला दिया तब परमेश्वर-रत्न को शरीर-घर में पा लिया । जिन्होंने सतिगुरु के उपदेश द्वारा वाहिगुरु को सराहा है, वे सत्य की प्राप्ति वाले सुखी हुए हैं । जिन्होंने वाहिगुरु का भय नहीं माना उन्हें यम का भय लगेगा । उन

पुरुषों को अहंकार ने गला दिया है। नाम से भूला हुआ जगत् भूत बना फिरता है, अर्थात् आनन्दरहित हुआ इधर-उधर फिरता है ॥ २४ ॥

॥ सलोकु म० ३ ॥ भै विचि जंमै भै मरै भी भउ मन महि होइ। नानक भै विचि जे मरै सहिला आइआ सोइ ॥ १ ॥

॥ सलोकु महला ३ ॥ जीव भय में जन्मता है, भय में मरता है और मरने के पश्चात् परलोक में भी भय में ही जाता है। गुरुजी कहते हैं, जिनका मन परमेश्वर के भय को माने, उन्हें संसार में लाभसहित या सफल आया जानिए ॥ १ ॥

॥ म० ३ ॥ भै विणु जीवै बहुतु बहुतु खुसीआ खुसी कमाइ। नानक भै विणु जे मरै मुहि कालै उठि जाइ ॥ २ ॥

॥ महला ३ ॥ परमेश्वर का भय धारण किए बिना बहुत जीए तथा खुशियाँ ही खुशियाँ कमाए, फिर भी, गुरुजी कहते हैं, यदि भय के बिना मर जाए तो मुख पर कालिख लगाकर जाता है ॥ २ ॥

॥ पउड़ी ॥ सतिगुरु होइ दइआलु त सरधा पूरीऐ। सतिगुरु होइ दइआलु न कबहूं झूरीऐ। सतिगुरु होइ दइआलु ता दुखु न जाणीऐ। सतिगुरु होइ दइआलु ता हरि रंगु माणीऐ। सतिगुरु होइ दइआलु ता जम का डरु केहा। सतिगुरु होइ दइआलु ता सद ही सुखु देहा। सतिगुरु होइ दइआलु ता नव निधि पाईऐ। सतिगुरु होइ दइआलु त सचि समाईऐ ॥ २५ ॥

॥ पउड़ी ॥ यदि सतिगुरु दयालु होवे तो श्रद्धा पूर्ण होती है। यदि सतिगुरु दयालु होवे तो कभी क्लेश नहीं होता; यदि सतिगुरु दयालु होवे तो यम-डर कैसा? यदि सतिगुरु दयालु होवे तो देह सदा सुखी रहती है। यदि सतिगुरु दयालु होवे तो नौ निधियाँ प्राप्त होती हैं। यदि सतिगुरु दयालु होवे तो सत्यरूप परमात्मा में समाया जाता है ॥ २५ ॥

॥ सलोकु म० १ ॥ सिरु खोहाइ पीअहि मलवाणी जूठा मंगि मंगि खाही। फोलि फदीहति मुहि लैनि भड़ासा पाणी देखि सगाही। भेडा वागी सिरु खोहाइनि भरीअनि हथ सुआही। माऊ पीऊ किरतु गवाइनि टबर रोवनि धाही। ओना पिंडु न पतलि किरिआ न दीवा मुए किथाऊ पाही। अठसठि तीरथ देनि न ढोई ब्रहमण अंनु न खाही। सदा कुचील रहहि दिनु

राती मथै टिके नाही। झुंडी पाइ बहनि निति मरणै दड़ि दीबाणि न जाही। लकी कासे हथी फुंमण अगो पिछी जाही। ना ओइ जोगी ना ओइ जंगम ना ओइ काजी मुंला। दयि विगोए फिरहि विगुते फिटा वतै गला। जीआ मारि जीवाले सोई अवरु न कोई रखै। दानहु तै इसनानहु वंजे भसु पई सिरि खुथै। पाणी विचहु रतन उपंने मेरु कीआ माधाणी। अठसठि तीरथ देवी थापे पुरबी लगै बाणी। नाइ निवाजा नातै पूजा नावनि सदा सुजाणी। मुइआ जीवदिआ गति होवै जा सिरि पाईऐ पाणी। नानक सिर खुथे सैतानी एना गल न भाणी। वुठै होइऐ होइ बिलावलु जीआ जुगति समाणी। वुठै अंनु कमादु कपाहा सभसै पड़दा होवै। वुठै घाहु चरहि निति सुरही साधन दही विलोवै। तितु घिइ होम जग सद पूजा पइऐ कारजु सोहै। गुरू समुंदु नदी सभि सिखी नातै जितु वडिआई। नानक जे सिर खुथे नावनि नाही ता सत चटे सिरि छाई ॥ १ ॥

॥ सलोकु महला १ ॥ सिर के केश उखड़वाते हैं, मैलवाला पानी पीते हैं और जूठन माँग-माँगकर खाते हैं। कीड़े पड़ने के भय से हाथ में लकड़ी लेकर विष्टा को फैलाते हैं, उसकी गन्दी हवा मुख पर लेते हैं और पानी को देखकर शंका करते हैं। जैसे भेड़ों की ऊन को खसोट लेते हैं, वैसे ही भस्म लगाकर केश उखड़वाते हैं। माँ-बाप के प्रति जो कर्म था, उसे गवाँते हैं अर्थात् माँ-बाप की सेवा नहीं करते और स्त्रियाँ धाड़ मार-मारकर रोती हैं। उनका पिण्डदान, पत्तल (ग्रास निकालना) क्रिया, दीया आदि कोई कुछ नहीं करता, वे मरकर कहाँ पड़ेंगे। अड़सठ तीर्थ भी उन्हें सहारा नहीं देते और ब्राह्मण उनका अन्न नहीं खाते हैं। रात-दिन मैले रहते हैं और माथे पर टीका भी नहीं लगाते हैं। नित्यप्रति मुख पर वस्त्र डालकर बैठते हैं या विनम्र होकर बैठते हैं, अथवा जैसे मरनेवाले के घर औरतें मुख पर कपड़ा डालकर बैठती हैं और ईश्वर-भक्तों की सभा (सत्संग) के द्वार कोई नहीं जाता। वे कमर में प्याले और हाथों में सूत के गुच्छे पकड़ लेते हैं, तथा सब आगे-पीछे चलते हैं। न वह योगी है न वह जंगम है और न वह क़ाज़ी या मुल्ला है। ईश्वर के ख़राब किए हुए वे ख़राब हुए फिरते हैं और तिरस्कृत एवं प्रताड़ित हुए व्यर्थ फिरते हैं। वही वाहिगुरु जीवों को मारता एवं जिलाता है और कोई नहीं रख सकता। दान तथा स्नान न करनेवाले जैनियों के सिर पर राख पड़ती है। पानी में से रत्न उत्पन्न हुए हैं, जब मन्द्राचल पर्वत की मथनी बनाकर देवताओं ने अड़सठ तीर्थ स्थापित किए हैं। पुण्यकाल में मेला लगता है। ईश्वर

की वाणी अर्थात् वेद उसी का प्रमाण है। स्नान करके नमाजें पढ़ते हैं और स्नान करके पूजा होती है, इसलिए चतुर पुरुष सदा ही नहाते हैं। जन्मे हुए बालक को तथा मृत पुरुष को नहलाते हैं। जब सिर में जल डालें तब पवित्रता की प्राप्ति होती है। गुरुजी कहते हैं, जो शैतान के बिगाड़े हुए हैं, उन्हें यह स्नान की बात नहीं भाई है। क्योंकि जल के बरसने से आनन्द होता है और जीवों के जीने की युक्ति जल में विद्यमान है। मेघ बरसने से अनाज, गन्ना, कपास आदि अन्न जो सबके पोषक हैं, उत्पन्न होते हैं। मेघ के बरसने से घास होती है, गाएँ चरती हैं। इसलिए घास से दूध और दही होता है, तब स्त्रियाँ मंथन करती हैं। उसमें से जो घी निकलता है, उससे होम, यज्ञ, पूजा सदा ही सम्पन्न होते हैं। घी पड़ने से सब काम शोभित होते हैं। गुरु समुद्र है, सभी नदियाँ उसकी सेविकाएँ हैं, जिनमें स्नान करने से महानता प्राप्त होती है। आशय यह है, जैसे सिखों की सेवा या उनके दर्शन से पुण्य होता है, उसी प्रकार नदियों में स्नान करने से पुण्य होता है। गुरुजी कहते हैं, यदि सिर मुँडे हुए जैन मुनि स्नान नहीं करते हैं तो उनके सिर पर सौ अंजुलि भस्म की पड़ती हैं ॥ १ ॥

॥ म० २ ॥ अगी पाला कि करे सूरज केही राति। चंद अनेरा कि करे पउण पाणी किआ जाति। धरती चीजी कि करे जिसु विचि सभु किछु होइ। नानक ता पति जाणीऐ जा पति रखै सोइ ॥ २ ॥

॥ महला २ ॥ अग्नि को पाला क्या कर सकता है और सूरज को रात क्या कर सकती है। अन्धकार चन्द्रमा को क्या कर सकता है, पवन और पानी को जातियाँ क्या कर सकती हैं? अर्थात् किसी प्रकार भी पानी भ्रष्ट नहीं किया जा सकता। जिस पृथ्वी में सब वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं, उस पृथ्वी को वस्तुओं के समुदाय क्या कर सकते हैं। गुरुजी कहते हैं, वह वाहिगुरु यदि प्रतिष्ठा रखे तो उत्तम प्रतिष्ठा रहती हुई जानी जाती है। आशय यह है, हठ करके प्रतिष्ठित नहीं हुआ जा सकता ॥ २ ॥

॥ पउड़ी ॥ तुधु सचे सुबहानु सदा कलाणिआ। तूं सचा दीबाणु होरि आवण जाणिआ। सचु जि मंगहि दानु सि तुधै जेहिआ। सचु तेरा फुरमानु सबदे सोहिआ। मंनिऐ गिआनु धिआनु तुधै ते पाइआ। करमि पवै नीसानु न चलै चलाइआ। तूं सचा दातारु नित देवहि चड़हि सवाइआ। नानकु मंगै दानु जो तुधु भाइआ ॥ २६ ॥

॥ पउड़ी ॥ हे अचरज-रूप सच्चे, मैंने सदा ही तुझे सराहा है। तू सदा आसरा है और तू ही आने-जानेवाला है। जो सत्य-नाम का दान तुझसे माँगता है, वह सन्त तेरे जैसा ही है। जो गुरु-उपदेश द्वारा शोभायमान हुआ, उसने हे सत्यरूप, तेरा हुक्म माना है तथा उपदेश के मानने से तेरी कृपा द्वारा ज्ञान-ध्यान पाया है। जिनके मस्तक पर तेरी कृपा का निशान पड़ता है, वह किसी का चलाया हुआ नहीं चलता अर्थात् किसी का हटाया नहीं हटता। तू ही सच्चा दाता है, जो नित्यप्रति देता है। वह फिर अधिक ही अधिक होता है। गुरुजी कहते हैं, मैं दान माँगता हूँ, जो तेरे को भाता है ॥ २६ ॥

॥ सलोकु म० २ ॥ दीखिआ आखि बुझाइआ सिफती सचि समेउ। तिन कउ किआ उपदेसीऐ जिन गुरु नानक देउ ॥ १ ॥

॥ सलोकु महला २ ॥ जिनको गुरुजी ने शिक्षा दी है अथवा उपदेश दिया है, वे पुरुष सत्य में आस्था रखकर परमेश्वर में समाए हैं। जिनके गुरु नानकदेवजी प्रकाशरूप हैं अथवा साक्षात् ब्रह्मरूप हैं, उनको आप क्या उपदेश करेंगे। (यहाँ गुरु अंगददेवजी ने सिद्धों को उत्तर दिया है) ॥ १ ॥

॥ म० १ ॥ आपि बुझाए सोई बूझै। जिसु आपि सुझाए तिसु सभु किछु सूझै। कहि कहि कथना माइआ लूझै। हुकमी सगल करे आकार। आपे जाणै सरब वीचार। अखर नानक अखिओ आपि। लहै भराति होवै जिसु दाति ॥ २ ॥

॥ महला १ ॥ जिसको वाहिगुरु आप समझाता है, वही धर्म-अधर्म को समझता है। जिसको वाहिगुरु आप दिखाता है, उसको सब कुछ सत्य-असत्य दिखाई देता है और जीव कथा को कहकर माया के लिए झगड़ते हैं। हुक्मी परमेश्वर ने सब शरीर रचे हैं और सबके विचार को आप ही जानता है। गुरुजी कहते हैं, वेद-शास्त्र, रूप, अक्षर या नाम-उपदेश अक्षर परमेश्वर ने आप कहा है। जिसको मुझसे ज्ञान की देन होती है, उसी की भ्रान्ति उतरती है ॥ २ ॥

॥ पउड़ी ॥ हउ ढाढी वेकारु कारै लाइआ। राति दिहै कै वार धुरहु फुरमाइआ। ढाढी सचै महलि खसमि बुलाइआ। सची सिफति सालाह कपड़ा पाइआ। सचा अंम्रित नामु भोजनु आइआ। गुरमती खाधा रजि तिनि सुखु

पाइआ। ढाढी करे पसाउ सबदु वजाइआ। नानक सचु सालाहि पूरा पाइआ ॥ २७ ॥ सुधु ॥

॥ पउड़ी ॥ मैं चारण बेकार था, सतिगुरु ने दिन-रात भक्ति के काम में लगाया है, शाश्वत परमेश्वर ने यश-गायन आदिकाल से ही बतलाया है। चारण को सत्य-स्वरूप में पति ने बुला लिया है, आशय यह कि यश सुनकर परमेश्वर प्रसन्न हुए हैं। परमात्मा की जो सच्ची महानता है, उसकी सराहना-रूपी वस्त्र मुझ चारण ने पहन लिया है। सच्चा नाम-रूपी अमृत-भोजन आया है, मैंने सतिगुरु की शिक्षा लेकर खाया अर्थात् जपा है। इसलिए उससे तृप्ति अनुभव कर सुख पाया है। मुझ चारण ने उपदेश को जपा है, अब पुनः उसी का प्रसार करता हूँ। गुरुजी कहते हैं, सत्यरूप की सराहना कर मैंने ब्रह्म को पाया है ॥ २७ ॥ सुधु ॥

रागु गउड़ी गुआरेरी महला १ चउपदे दुपदे

१ ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु अकाल मूरति अजूनी सैभं गुरप्रसादि ॥

भउ मुचु भारा वडा तोलु। मनमति हउली बोले बोलु। सिरि धरि चलीऐ सहीऐ भारु। नदरी करमी गुर बीचारु ॥१॥ भै बिनु कोइ न लंघसि पारि। भै भउ राखिआ भाइ सवारि ॥ १ ॥ रहाउ ॥ भै तनि अगनि भखै भै नालि। भै भउ घड़ीऐ सबदि सवारि। भै बिनु घाड़त कचुनिकच। अंधा सचा अंधी सट ॥ २ ॥ बुधी बाजी उपजै चाउ। सहस सिआणप पवै न ताउ। नानक मनमुखि बोलणु वाउ। अंधा अखरु वाउ दुआउ ॥ ३ ॥ १ ॥

प्रभु का भय बहुत भारी है, इसकी गुरुता बहुत अधिक है (अर्थात् जिस मनुष्य के भीतर प्रभु का सम्मान है, उसका जीवन सुन्दर और गम्भीर बन जाता है)। जिसकी बुद्धि उसके मन के पीछे चलती है, वह ओछी रहती है, वह ओछे ही वचन बोलता है। यदि प्रभु का भय सिर पर धारण कर (अर्थात् स्वीकार कर) जीवन बिताएँ और उसकी गरिमा को

सहा जा सके तो प्रभु की कृपा-दृष्टि से, प्रभु की महिमा के प्रभाव से (मनुष्यता के बारे में) गुरु की (बतलाई हुई) सूझ-बूझ (जीवन का भाग) बन जाती है ।। १ ।। (संसार विकार भरा एक ऐसा समुद्र है जिसमें से परमात्मा का) भय हृदय में बसाए बिना कोई पार नहीं उतर सकता। (केवल वही पार उतर सकता है जिसने) प्रभु के भय में रहकर और (प्रभु-)प्रेम के द्वारा (अपना जीवन) सवाँरकर उसका भय-आदर (हृदय में) सँजो रखा है (अर्थात् जिसने यह विश्वास कर लिया है कि प्रभु सर्वत्र व्यापक है) ।। १ ।। रहाउ ।। प्रभु के भय में रहने से मनुष्य के भीतर प्रभु-मिलन की इच्छा बनी रहती है। गुरु के शब्द द्वारा (आत्मिक जीवन को) सुन्दर बनाकर ज्यों-ज्यों इस विश्वास में जिया जाए कि प्रभु हमारे भीतर है तथा सबके भीतर मौजूद है, यह इच्छा और अधिक प्रबल होती जाती है। प्रभु का भय रखे बिना (हमारी जीवन-चर्या), हमारे मन की अवस्था ओछी हो जाती है, बिल्कुल ओछी होती जाती है (क्योंकि) जिस रूप में जीवन ढलता है, वह ओछापन पैदा करनेवाला होता है, उस स्थिति में हमारे यत्न भी अज्ञानता वाले ही होते हैं ।। २ ।। हे नानक! स्वेच्छाचारी मनुष्य की बुद्धि जगत्-क्रीड़ा में लगी है, (जगत्-तमाशों का ही) चाव उसके भीतर पैदा होता रहता है। मनमुख चाहे हजारों चतुराइयाँ करे, उसका जीवन उपयुक्त साँचे में नहीं ढलता, मनमुख का बोल निस्सार होता है, वह अन्धा बेकार की बातें करता है ।। ३ ।। १ ।।

।। गउड़ी महला १ ।। डरि घरु घरि डरु डरि डरु जाइ। सो डरु केहा जितु डरि डरु पाइ। तुधु बिनु दूजी नाही जाइ। जो किछु वरतै सभ तेरी रजाइ ।। १ ।। डरीऐ जे डरु होवै होरु। डरि डरि डरणा मन का सोरु ।। १ ।। रहाउ ।। ना जीउ मरै न डूबै तरै। जिनि किछु कीआ सो किछु करै। हुकमे आवै हुकमे जाइ। आगै पाछै हुकमि समाइ ।। २ ।। हंसु हेतु आसा असमानु। तिसु विचि भूख बहुतु नैसानु। भउ खाणा पीणा आधारु। विणु खाधे मरि होहि गवार ।। ३ ।। जिसका कोइ कोई कोइ कोइ। सभु को तेरा तूं सभना का सोइ। जा के जीअ जंत धनु मालु। नानक आखणु बिखमु बीचारु ।। ४ ।। २ ।।

(हे प्रभु!) तेरे भय-सत्कार में रहने से वह आत्मिक अवस्था मिल जाती है, जहाँ मन तेरे चरणों में जुड़ा रहता है, हृदय में यह विश्वास बन जाता है कि तू मेरे भीतर बसता है और सबके भीतर भी बसता है। तेरे भय में रहने से (दुनिया में हर प्रकार का) भय दूर हो जाता है। तेरा भय ऐसा नहीं होता कि उस भय में रहने से कोई दूसरा भय बना रह

सके। (हे प्रभु !) तुझसे अलग जीव का कोई आश्रय नहीं है। जगत् में जो कुछ हो रहा है, सब तेरी इच्छा से हो रहा है ॥ १ ॥ (हे प्रभु ! तेरे भय के स्थान पर) यदि जीव के हृदय में कोई दूसरा भय बना रहे तो जीव सदा भयभीत रहता है, मन की घबराहट, दुविधा हर वक्त बनी रहती है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (प्रभु के भय-सत्कार में रहने से ही यह विश्वास बन सकता है कि) जीव न मरता है न कहीं डूब सकता है; न कहीं से पार उतरना (इसकी आवश्यकता रहती है, क्योंकि वह डूबता ही नहीं है)। (यह विश्वास बना रहता है कि) जिस परमात्मा ने यह जगत् बनाया है, वही सब कुछ कर रहा है, उसके हुक्म-अनुसार ही जीव पैदा होता है और हुक्म-अनुसार ही मरता है, लोक-परलोक में जीव को उसके हुक्म-अनुसार बना रहना पड़ता है ॥ २ ॥ (जिस हृदय में प्रभु का भय-सत्कार नहीं है, उस हृदय में) निर्दयता है, मोह है, आकांक्षा है, अहंकार है, नदी की तरह मचलती हुई तृष्णा है। प्रभु का भय-आदर ही आत्मिक जीवन की ख़ुराक है, आत्मा का आसरा है; जो यह ख़ुराक नहीं खाते वे (दुनिया के) भय में रहकर पागल बने रहते हैं ॥ ३ ॥ (हे प्रभु ! तेरे भय-सत्कार में रहने से यह विश्वास बनता है कि) जिस किसी का कोई सहायक बनता है, वह अस्थायी होता है (अर्थात्, हमेशा के लिए कोई किसी का सहायक नहीं बन सकता), लेकिन हरेक जीव तेरा (पैदा किया हुआ) है, तू सब की सुधि लेनेवाला है। हे नानक ! जिस परमात्मा के ये सारे जीव पैदा किए हुए हैं (जीवों के लिए) उसी का ही यह धनमाल (बनाया हुआ) है। (इससे अधिक यह) विचारना और कहना (कि वह प्रभु अपने पैदा किए जीवों की कैसे सँभाल करता है) कठिन काम है ॥ ४ ॥ २ ॥

॥ गउड़ी महला १ ॥ माता मति पिता संतोखु। सतु भाई करि एहु विसेखु ॥ १ ॥ कहणा है किछु कहणु न जाइ। तउ कुदरति कीमति नही पाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सरम सुरति दुइ ससुर भए। करणी कामणि करि मन लए ॥ २ ॥ साहा संजोगु वीआहु विजोगु। सचु संतति कहु नानक जोगु ॥ ३ ॥ ३ ॥

यदि कोई जीव-स्त्री सुबुद्धि को अपनी माँ बना ले, सन्तोष को अपना पिता बनाए, लोक-सेवा को विशेषत: अपना भाई बनाए ॥ १ ॥ [टिप्पणी—शेष भाव, पद के दूसरे चरण से सम्बन्धित है] हे प्रभु ! तेरे साथ मिलाप-अवस्था व्यक्त नहीं हो सकती, तनिकमात्र चर्चा है, (क्योंकि) हे प्रभु ! तेरी कुदरत का पूर्ण मूल्यांकन नहीं हो सकता (अर्थात् कुदरत ऐसी है— यह कहा नहीं जा सकता) ॥ १ ॥ रहाउ ॥ उद्यम तथा उच्चसुरति उस जीव-स्त्री के सास-ससुर बनें; हे मन ! यदि

जीव सदाचारी जीवन को स्त्री बना ले; ॥ २ ॥ यदि सत्संग (में जाना) प्रभु के साथ ब्याह का दिन निश्चित किया जाए (अर्थात्, जैसे ब्याह के लिए निश्चित किया दिन टाला नहीं जा सकता, वैसे सत्संग में से कभी अनुपस्थित न हो), यदि निर्लिप्तता-रूप (प्रभु से) ब्याह हो जाए तो (इस ब्याह से) सत्य (अर्थात् प्रभु का हृदय में टिके रहना, उस जीव-स्त्री की) सन्तान है। हे नानक ! कहो— यह है (सच्चा) प्रभु-मिलाप ॥ ३ ॥ ३ ॥

॥ गउड़ी महला १ ॥ पउणै पाणी अगनी का मेलु । चंचल चपल बुधि का खेलु । नउ दरवाजे दसवा दुआरु । बुझु रे गिआनी एहु बीचारु ॥ १ ॥ कथता बकता सुनता सोई । आपु बीचारे सु गिआनी होई ॥ १ ॥ रहाउ ॥ देही माटी बोलै पउणु । बुझु रे गिआनी मूआ है कउणु । मूई सुरति बादु अहंकारु । ओहु न मूआ जो देखणहारु ॥ २ ॥ जै कारणि तटि तीरथ जाही । रतन पदारथ घट ही माही । पड़ि पड़ि पंडितु बादु वखाणै । भीतरि होदी वसतु न जाणै ॥ ३ ॥ हउ न मूआ मेरी मुई बलाइ । ओहु न मूआ जो रहिआ समाइ । कहु नानक गुरि ब्रहमु दिखाइआ । मरता जाता नदरि न आइआ ॥ ४ ॥ ४ ॥

हे आत्मिक जीवन की सूझवाले मनुष्य ! (गुरु की शरण लेकर) यह बात समझ ले (कि जब) हवा, पानी, अग्नि आदि तत्वों का मिलाप होता है, (तब यह शरीर बनता है, और इसमें) चञ्चल तथा अस्थिर बुद्धि की भाग-दौड़ (शुरू हो जाती है)। (शरीर के) नवों द्वार (इस भाग-दौड़ में शामिल रहते हैं, केवल) मस्तिष्क (ही है जिससे आत्मिक जीवन की सूझ पैदा हो सकती है) ॥ १ ॥ हे भाई ! जो मनुष्य (गुरु की शरण लेकर) अपने आत्मिक जीवन की छानबीन करता रहता है वह मनुष्य आत्मिक जीवन की सूझ वाला हो जाता है, (उसे यह समझ आ जाती है कि) वह परमात्मा ही (हरेक जीव में व्यापक होकर) बोलनेवाला है, सुननेवाला है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे ज्ञानी मनुष्य ! इस बात को समझ (कि जब मनुष्य को गुरु मिल जाता है, तब मनुष्य के भीतर से केवल आपा-भाव की ही मौत होती है, वैसे) और कुछ नहीं मरता, मिट्टी आदि तत्वों से बने इस शरीर में श्वास चलता रहता है। (हाँ, गुरु मिलने से माया सम्बन्धी) आकर्षण समाप्त हो जाता है, (माया के लिए मन का) द्वन्द्व मिट जाता है, (मनुष्य के भीतर से माया का) अहंकार मर जाता है। पर वह (आत्मा) नहीं मरता, जो सब की सँभाल करनेवाले परमात्मा का

अंश है ।। २ ।। हे भाई ! जिस (नाम-रत्न) की खातिर लोग तीर्थों के किनारे पर जाते हैं, वह कीमती रत्न (मनुष्य के) हृदय में ही बसता है । (वेद आदि पुस्तकों का) विद्वान् (धार्मिक पुस्तकों को) पढ़-पढ़कर (भी) चर्चा करता रहता है । वह पण्डित (अपने) भीतर बसते हुए नाम-पदार्थ से सम्बन्ध नहीं जोड़ पाता ।। ३ ।। हे नानक ! कहो— (जिस मनुष्य को) गुरु ने परमात्मा का दर्शन करा दिया, उसे यह दिखाई दे जाता है कि प्रभु जन्मता-मरता नहीं । (उसे यह विश्वास हो जाता है कि) जीवात्मा नहीं मरता, (मनुष्य के भीतर से) माया की ममता-रूपी चुड़ैल ही मरती है । सब जीवों में व्यापक परमात्मा कभी नहीं मरता ।।४।।४।।

।। गउड़ी महला १ दखणी ।। सुणि सुणि बूझै मानै नाउ । ता कै सद बलिहारै जाउ । आपि भुलाए ठउर न ठाउ । तूं समझावहि मेलि मिलाउ ।। १ ।। नामु मिलै चलै मै नालि । बिनु नावै बाधी सभ कालि ।। १ ।। रहाउ ।। खेती वणजु नावै की ओट । पापु पुंनु बीज की पोट । कामु क्रोधु जीअ महि चोट । नामु विसारि चले मनि खोट ।। २ ।। साचे गुर की साची सीख । तनु मनु सीतलु साचु परीख । जल पुराइनि रस कमल परीख । सबदि रते मीठे रस ईख ।। ३ ।। हुकमि संजोगी गड़ि दस दुआर । पंच वसहि मिलि जोति अपार । आपि तुलै आपे वणजार । नानक नामि सवारणहार ।।४।।५।।

जो मनुष्य (सच्चे गुरु की सच्ची शिक्षा) सुन-सुनकर उसे विचारता-समझता है और यह विश्वास बना लेता है कि परमात्मा का नाम ही वास्तविक व्यापार है, मैं उसपर सदा बलिहारी जाता हूँ । जिस मनुष्य को प्रभु (इस ओर से) अलग कर देता है, उसे कोई दूसरा (आत्मिक) सहारा नहीं मिल सकता । हे प्रभु ! जिसे तू आप बुद्धि दे, उसे तू (गुरु की शिक्षा में) मिलाकर (अपने चरणों का) मिलाप (देता है) ।।१।। (हे प्रभु ! मेरी यह प्रार्थना है कि मुझे तेरा) नाम मिल जाए, (तेरा नाम ही जगत से जाते समय) मेरे साथ जा सकता है । तेरा नाम स्मरण किए बिना सारी दुनिया आत्मिक मौत में जकड़ी पड़ी है ।। १ ।। रहाउ ।। (हे भाई !) परमात्मा के नाम का आसरा (इस प्रकार लो जैसे) खेती को, व्यापार को अपने शारीरिक निर्वाह का सहारा बनाते हो । (कोई भी किया हुआ) पाप अथवा पुण्य (हरेक जीव के परलोक के लिए) बीज की पोटली बन जाता है (वह शुभ-अशुभ किए कर्मों को संस्कार-रूप में टिकाकर वैसे कर्म करने की प्रेरणा करता रहता है) । जिन मनुष्यों के मन में (प्रभु के नाम के स्थान पर) काम, क्रोध (आदि विकार) चोट

लगाते रहते हैं, वे व्यक्ति प्रभु का नाम भुलाकर (यहाँ से) मन में (विकारों की) खोट लेकर ही चल पड़ते हैं ॥ २ ॥ जिन मनुष्यों को सच्चे सतिगुरु की सच्ची शिक्षा प्राप्त होती है, उनका मन शान्त रहता है। वे सत्य-स्वरूप परमात्मा को पहचान लेते हैं। जैसे पानी की कमलिनी, कमल पुष्प (पानी के बिना जीवित नहीं रह सकते, उसी प्रकार उनकी आत्मा प्रभु-नाम का बिछोह नहीं सहन कर सकती)। वे गुरु के उपदेश में रंगे रहते हैं, वे गन्ने के रस के समान मीठे स्वभाव वाले होते हैं ॥ ३ ॥ प्रभु के हुक्म-अनुसार, पूर्वकृत कर्मों के संस्कारों के अनुसार संतजन अपार प्रभु की ज्योति के साथ मिलकर इस दस-द्वारी शरीर-रूपी किले में रहते हैं, (काम-क्रोध कोई विकार किले में उनपर चोट नहीं करता, उनके भीतर) प्रभु आप (नाम-वस्तु बनकर) व्यापार के रूप में प्रयुक्त किया जा रहा है। (उनके भीतर बैठा प्रभु) आप ही नाम-वस्तु का व्यापार करता है, और, हे नानक! (उन संतजनों को) अपने नाम में जोड़कर (आप ही) उनका जीवन पवित्र बनाता है ॥ ४ ॥ ५ ॥

॥ गउड़ी महला १ ॥ जातो जाइ कहा ते आवै। कह उपजै कह जाइ समावै। किउ बाधिओ किउ मुकती पावै। किउ अबिनासी सहजि समावै ॥ १ ॥ नामु रिदै अंम्रितु मुखि नामु। नरहर नामु नरहर निहकामु ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सहजे आवै सहजे जाइ। मन ते उपजै मन माहि समाइ। गुरमुखि मुकतो बंधु न पाइ। सबदु बीचारि छुटै हरिनाइ ॥ २ ॥ तरवर पंखी बहु निसि बासु। सुख दुखीआ मनि मोह विणासु। साझ बिहाग तकहि आगासु। दहदिसि धावहि करमि लिखिआसु ॥ ३ ॥ नाम संजोगी गोइलि थाटु। काम क्रोध फूटै बिखु माटु। बिनु वखर सूनो घरु हाटु। गुर मिलि खोले बजर कपाट ॥ ४ ॥ साधु मिलै पूरब संजोग। सचि रहसे पूरे हरि लोग। मनु तनु दे लै सहजि सुभाइ। नानक तिन कै लागउ पाइ ॥ ५ ॥ ६ ॥

यह कैसे समझ आए कि (यह वासना) कहाँ से आती है, कहाँ से उत्पन्न होती है, कहाँ जाकर समाप्त हो जाती है? मनुष्य इस वासना में कैसे बंध जाता है? कैसे इससे छुटकारा प्राप्त करता है? (छुटकारा पाकर) कैसे अटल, स्थिर अवस्था में टिक जाता है? ॥ १ ॥ जिस मनुष्य के हृदय में परमात्मा का नाम-अमृत बसता है, जो मनुष्य मुँह से प्रभु का नाम उच्चरित करता है, वह प्रभु का नाम लेकर प्रभु के समान कामना-रहित

हो जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (गुरु के सम्मुख होने से यह समझ आती है कि) वासना प्राकृतिक नियम अनुसार पैदा हो जाती है, प्राकृतिक नियम से ही समाप्त हो जाती है। (मनमुखता की दशा में) मन से पैदा होती है (गुरु के सम्मुख होने से) मन में ही समाप्त हो जाती है। जो मनुष्य गुरु के सम्मुख रहता है, वह वासना से बचा रहता है, वासना (उसके मार्ग में) रुकावट नहीं पैदा कर सकती। गुरु के शब्द को विचार कर वह मनुष्य प्रभु के नाम के द्वारा वासना (के जाल) से बच जाता है ॥ २ ॥ (जैसे) रात्रि के वक्त अनेकों पक्षी वृक्षों पर बसेरा कर लेते हैं, (वैसे जीव जगत में रात्रि के बसेरे के लिए आते हैं), कोई सुखी है, कोई दुखी है, कितनों के मन में माया का मोह बन जाता है और वे आत्मिक मृत्यु प्राप्त कर लेते हैं। पक्षी शाम को वृक्षों पर आ टिकते हैं, सबेरे आकाश को देखते हैं, (प्रकाश देखकर) दसों दिशाओं में उड़ जाते हैं, उसी प्रकार पूर्वकृत कर्मों के संस्कारों के अनुसार दसों दिशाओं में भटकते फिरते हैं ॥ ३ ॥ जैसे अत्यधिक उमस बढ़ने पर लोग नदियों के किनारे हरियाले स्थान पर चार दिनों का ठिकाना बना लेते हैं, वैसे ही प्रभु के नाम से सम्बन्ध बनानेवाले व्यक्ति जगत में कुछ दिन का ठिकाना समझते हैं। उनके भीतर से कामादिक का विषैला मटका टूट जाता है (अर्थात् उनके भीतर कामादिक विकार प्रभाव नहीं कर पाते)। जो मनुष्य नाम-पदार्थ से खाली रहते हैं, उनका हृदय-रूपी हाट खाली होता है, (उनके सूने हृदय-घर को, मानों, ताले लगे रहते हैं)। गुरु के मिलन पर वे कड़े किवाड़ खुल जाते हैं ॥ ४ ॥ जिन मनुष्यों को पूर्वकृत कर्मों के संस्कार प्रकट होने पर गुरु मिलता है, वे पूर्ण-पुरुष सत्यस्वरूप प्रभु में जुड़कर मग्न रहते हैं। हे नानक! (कहो—) जो मनुष्य मन को गुरु के हवाले करके, शरीर को गुरु के हवाले करके, स्थिरता में टिककर, प्रेम में जुड़कर (नाम की देन गुरु से) लेते हैं, मैं उनके चरण छूता हूँ ॥ ५ ॥ ६ ॥

॥ गउड़ी महला १ ॥ कामु क्रोधु माइआ महि चीतु। झूठ विकारि जागै हित चीतु। पूंजी पाप लोभ की कीतु। तरु तारी मनि नामु सुचीतु ॥ १ ॥ वाहु वाहु साचे मै तेरी टेक। हउ पापी तूं निरमलु एक ॥ १ ॥ रहाउ ॥ अगनि पाणी बोलै भड़ वाउ। जिहवा इंद्री एकु सुआउ। दिसटि विकारी नाही भउ भाउ। आपु मारे ता पाए नाउ ॥ २ ॥ सबदि मरै फिरि मरणु न होइ। बिनु मूए किउ पूरा होइ। परपंचि विआपि रहिआ मनु दोइ। थिरु नाराइणु करे सु होइ ॥ ३ ॥ बोहिथि चड़उ जा आवै वारु। ठाके बोहिथ

दरगह मार। सचु सालाही धंनु गुर दुआरु। नानक दरि घरि एकंकारु ॥ ४ ॥ ७ ॥

(मेरे भीतर) काम-क्रोध (प्रबल हैं), मेरा हृदय माया में (मुग्ध रहता) है। झूठ बोलने के दुराचरण में मेरा लगाव रहता है, मेरा हृदय तत्पर होता है। मैंने पाप तथा लोभ की राशि एकत्रित की हुई है। (तेरी कृपा से यदि मेरे) मन में पवित्र करनेवाला तेरा नाम (बस जाए तो यह मेरे लिए) नौका है, जहाज़ है ॥ १ ॥ हे सदा सत्यस्वरूप प्रभु ! तू अद्‌भुत है; (काम आदि विकारों से बचने के लिए) मुझे केवल तेरा ही आसरा है। मैं पापी हूँ, केवल तू पवित्र करने के लिए सामर्थ्यवान है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (जीवों के भीतर कभी) आग (का जोर हो जाता) है, (कभी) पानी (प्रबल हो जाता) है, (इसलिए यह) कड़वा-मीठा बोल बोलता रहता है। जीभ आदि हरेक इन्द्रिय को अपना-अपना चस्का (लगा हुआ) है, दृष्टि विकारों की ओर रहती है, (मन में) न डर है, न प्रेम है, (ऐसी हालत में प्रभु का नाम कैसे मिले ?) जीव आपाभाव को समाप्त करे, तो ही परमात्मा का नाम प्राप्त कर सकता है ॥ २ ॥ जब मनुष्य गुरु के शब्द में जुड़कर आपा-भाव समाप्त करता है, तो इसे आत्मिक मृत्यु नहीं होती। आपभाव के समाप्त हुए बिना मनुष्य पूर्ण नहीं हो सकता (दोषों से बच नहीं सकता, बल्कि) मन माया के छल में फँसा रहता है। (जीव के भी क्या वश ?) जिसे परमात्मा आप स्थिरचित्त करता है, वही होता है ॥ ३ ॥ मैं (प्रभु के नाम) जहाज़ में (तब ही) चढ़ सकता हूँ, जब (उसकी कृपा से) मुझे अवसर मिले। जिन व्यक्तियों को नाम-रूपी जहाज़ पर चढ़ना नहीं मिलता, उन्हें प्रभु के दरबार में परेशानी मिलती है, (धक्के पड़ते हैं, प्रभु का दर्शन नहीं मिलता)। (असली बात यह है कि) गुरु का द्वार सर्वश्रेष्ठ है (गुरु के द्वार पर रहकर ही) मैं परमात्मा की गुणस्तुति कर सकता हूँ। हे नानक ! (गुरु के) द्वार पर रहने से ही हृदय में परमात्मा का दर्शन होता है ॥ ४ ॥ ७ ॥

॥ गउड़ी महला १ ॥ उलटिओ कमलु ब्रहमु बीचारि। अंम्रित धार गगनि दस दुआरि। त्रिभवणु बेधिआ आपि मुरारि ॥ १ ॥ रे मन मेरे भरमु न कीजै। मनि मानिऐ अंम्रित रसु पीजै ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जनमु जीति मरणि मनु मानिआ। आपि मुआ मनु मन ते जानिआ। नजरि भई घरु घर ते जानिआ ॥ २ ॥ जतु सतु तीरथु मजनु नामि। अधिक बिथारु करउ किसु कामि। नर नाराइण अंतरजामि ॥ ३ ॥

आन मनउ तउ पर घर जाउ। किसु जाचउ नाही को थाउ। नानक गुरमति सहजि समाउ ॥ ४ ॥ ८ ॥

परमात्मा की गुणस्तुति में चित्त जोड़ने से हृदय-कमल माया के मोह से हट जाता है, मस्तिष्क में भी (गुणस्तुति के प्रभाव से) नाम-अमृत की वर्षा होती है (और माया के झंझटों की अशान्ति मिटकर ठण्डक पड़ती है)। (फिर यह पूर्ण विश्वास हो जाता है कि) प्रभु स्वयं समस्त जगत में व्याप्त है ॥ १ ॥ हे मेरे मन ! (माया की खातिर) दुबिधा छोड़ दे (और प्रभु की गुणस्तुति में जुड़)। (हे भाई !) जब मन को परमात्मा की गुण-स्तुति भली लगने लगती है, तब यह गुणस्तुति का स्वाद प्राप्त करने लगता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (गुणस्तुति में जुड़ने से) जन्म-मनोरथ प्राप्त करके मन को स्वार्थ का समाप्त हो जाना पसन्द आ जाता है। इस बात की सूझ मन को भीतर से आ जाती है कि आपा-भाव समाप्त हो गया है। जब प्रभु की कृपा-दृष्टि होती है तो हृदय में यह अनुभव हो जाता है कि सुरति प्रभु-चरणों में जुड़ी हुई है ॥ २ ॥ परमात्मा के नाम में जुड़ना ही जितेन्द्रियता तथा तीर्थ-स्थान (का उद्यम) है। मैं बहुत विस्तार भी क्यों करूँ ? (ये सारे उद्यम तो लोक दिखावे के ही हैं और) परमात्मा हरेक के दिल की जानता है ॥ ३ ॥ (माया वाली दुबिधा समाप्त करने के लिए प्रभु-द्वार के अतिरिक्त कोई सहारा नहीं, इसलिए) मैं तभी किसी दूसरे स्थान पर जाऊँ, यदि मैं (प्रभु से रहित) किसी स्थान को मान लूँ। कोई दूसरा स्थान ही नहीं, मैं किससे यह माँग करूँ (कि मेरा मन दुबिधा से हट जाए) ? हे नानक ! मुझे विश्वास है कि गुरु का उपदेश हृदय में बसाकर उस आत्मिक अवस्था में लीन रहा जा सकता है (जहाँ माया वाली दुबिधा नहीं है) जहाँ स्थिरता है ॥ ४ ॥ ८ ॥

॥ गउड़ी महला १ ॥ सतिगुरु मिलै सु मरणु दिखाए। मरण रहण रसु अंतरि भाए। गरबु निवारि गगनपुरु पाए ॥१॥ मरणु लिखाइ आए नही रहणा। हरि जपि जापि रहणु हरि सरणा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सतिगुरु मिलै त दुबिधा भागै। कमलु बिगासि मनु हरिप्रभ लागै। जीवतु मरै महा रसु आगै ॥ २ ॥ सतिगुरि मिलिऐ सच संजमि सूचा। गुर की पउड़ी ऊचो ऊचा। करमि मिलै जमका भउ मूचा ॥ ३ ॥ गुरि मिलिऐ मिलि अंकि समाइआ। करि किरपा घरु महलु दिखाइआ। नानक हउमै मारि मिलाइआ ॥ ४ ॥ ६ ॥

जिस मनुष्य को गुरु मिल जाता है, उसे वह मृत्यु दिखा देता है,

(विकारों की ओर से वह मृत्यु उसके जीवन-अनुभव में ला देता है) जिस मृत्यु का आनन्द (और उससे उत्पादित) शाश्वत आत्मिक जीवन का आनन्द उस मनुष्य को अपने हृदय में प्यारा लगने लगता है। वह मनुष्य (शरीर आदि का) अहंकार दूर कर वह आत्मिक अवस्था प्राप्त कर लेता है, जहाँ सुरति ऊँची उड़ान लगाती रहे ॥ १ ॥ (हे भाई ! सारे जीव शारीरिक) मृत्यु-रूपी हुक्म (प्रभु-दरबार से) लिखाकर उत्पन्न होते हैं। इसलिए, यहाँ शारीरिक तौर पर किसी को सदा नहीं रहना। (हाँ,) प्रभु का नाम-स्मरण कर, प्रभु की गुण-स्तुति करके, प्रभु की शरण में रहकर शाश्वत आत्मिक जीवन मिल जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ यदि सतिगुरु मिल जाए, तो मनुष्य की दुविधा दूर हो जाती है, हृदय-कमल खिलकर, उसका मन प्रभु के चरणों में जुड़ा रहता है, आदमी दुनियावी काम-काज करता हुआ भी माया के मोह से ऊँचा रहता है, उसे प्रत्यक्ष रूप से परमात्मा के स्मरण का महा-आनन्द अनुभव होता है ॥ २ ॥ यदि गुरु मिल जाए, तो मनुष्य स्मरण की युक्ति में रहकर पवित्र-आत्मा हो जाता है। गुरु की बतलाई सीढ़ी का आसरा लेकर (आत्मिक जीवन में) ऊँचा ही ऊंचा होता जाता है। (पर यह स्मरण, प्रभु की) कृपा द्वारा मिलता है, (जिसे मिलता है उसे) मृत्यु का भय नहीं रहता ॥ ३ ॥ यदि गुरु मिल जाए तो मनुष्य प्रभु की याद में जुड़कर प्रभु के चरणों में लीन हुआ रहता है। गुरु-कृपा करके उसे वह आत्मिक अवस्था दिखा देता है, जहाँ प्रभु का मिलाप सर्वदा रहे। हे नानक ! उस मनुष्य की अहंभावना दूर करके गुरु उसे प्रभु के साथ एकाकार कर देता है ॥ ४ ॥ ९ ॥

॥ गउड़ी महला १ ॥ किरतु पइआ नह मेटै कोइ। किआ जाणा किआ आगै होइ। जो तिसु भाणा सोई हूआ। अवरु न करणै वाला दूआ ॥ १ ॥ ना जाणा करम केवड तेरी दाति। करमु धरमु तेरे नाम की जाति ॥ १ ॥ रहाउ ॥ तू एवडु दाता देवणहारु। तोटि नाही तुधु भगति भंडार। कीआ गरबु न आवै रासि। जीउ पिंडु सभु तेरै पासि ॥ २ ॥ तू मारि जीवालहि बखसि मिलाइ। जिउ भावी तिउ नामु जपाइ। तूं दाना बीना साचा सिरि मेरै। गुरमति देइ भरोसै तेरै ॥ ३ ॥ तन महि मैलु नाही मनु राता। गुर बचनी सचु सबदि पछाता। तेरा ताणु नाम की वडिआई। नानक रहणा भगति सरणाई ॥ ४ ॥ १० ॥

जन्म-जन्मान्तरों के किए कर्मों के संस्कारों का समूह जो मन में

इकट्ठा हुआ पड़ा है, (कर्मों के द्वारा) कोई मनुष्य मिटा नहीं सकता। कोई समझ नहीं सकता कि आगामी जीवन के समय क्या घटित होगा। (कर्मों का आसरा छोड़ो; प्रभु-रज़ा को स्वीकारो) जगत में जो कुछ हो रहा है, प्रभु के बिना दूसरा कोई कुछ करनेवाला नहीं है ॥ १ ॥ मैं अपने किए कर्मों की सही कीमत नहीं जानता (लेकिन मैं इन्हें बहुत महत्ता देता हूँ), (दूसरी ओर) तेरी अनन्त देन मुझे मिल रही हैं, मैं उन्हें भी समझ नहीं सकता। (वास्तव में) तेरा नाम ही जाति है, तेरा नाम ही मेरा कर्म-धर्म है। (किसी लौकिक उपलब्धि का अभिमान मुझे नहीं है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे प्रभु ! तू देन देनेवाला इतना बड़ा दाता है, (भक्ति की देन भी तू ही देता है) तेरे भण्डार में भक्ति (की देन) की कोई कमी नहीं है, (मनुष्य का) अहंकार उसका कुछ सँवार नहीं सकता, मनुष्य की आत्मा और देह सब कुछ तेरे ही आसरे है ॥ २ ॥ (हे प्रभु !) तू आप ही मुझे गुरु की मति देकर, मुझपर कृपा कर, मुझे चरणों में जोड़कर, मेरा आपा-भाव मारकर और अपनी इच्छानुसार मुझे अपना नाम जपाकर आत्मिक जीवन देता है। तू मेरे मन की जानता है, तू (मेरी दशा) देखता है, तू मेरे सिर पर (रक्षक) है, मैं सदा तेरे ही सहारे हूँ, (मुझे अपने किसी कर्म का सहारा नहीं है) ॥ ३ ॥ हे प्रभु ! जिनका मन (तेरे प्रेम में) रंगा हुआ है, उनके शरीर में विकारों की मैल नहीं। गुरु के शब्दों पर चलकर, गुरु के शब्द में जुड़कर उन्होंने तुझ सत्यस्वरूप को पहचान लिया है। (कर्मों का आसरा लेने के स्थान पर) उन्हें तेरे नाम का ही आसरा है, वे सदा तेरे नाम की प्रशंसा करते हैं। हे नानक ! (कहो—) वे मनुष्य प्रभु की भक्ति में अनुरक्त रहते हैं, वे प्रभु की शरण में रहते हैं ॥ ४ ॥ १० ॥

॥ गउड़ी महला १ ॥ जिनि अकथु कहाइआ अपिओ पीआइआ। अनभै विसरे नामि समाइआ ॥ १ ॥ किआ डरीऐ डरु डरहि समाना। पूरे गुर कै सबदि पछाना ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिसु नर रामु रिदै हरि रासि। सहजि सुभाइ मिले साबासि ॥ २ ॥ जाहि सवारै साझ बिआल। इत उत मनमुख बाधे काल ॥ ३ ॥ अहिनिसि रामु रिदै से पूरे। नानक राम मिले भ्रम दूरे ॥ ४ ॥ ११ ॥

(गुरु के उपदेश को स्वीकार कर) जिस मनुष्य ने अकथनीय प्रभु को (आप स्मरण किया है तथा) दूसरों को स्मरण के लिए प्रेरित किया है, उसने आप नाम-अमृत पान किया है और दूसरों को पिलाया है। उसे (लौकिक) दूसरे तमाम भय विस्मृत हो जाते हैं, क्योंकि वह (सदा प्रभु के)

नाम में लीन रहता है ।। १ ।। जिस मनुष्य ने पूर्णगुरु के शब्द में जुड़कर परमात्मा से जान-पहचान कर ली, वह (लौकिक झंझटों में) डरता नहीं। (उसका लौकिक) भय (परमात्मा के लिए उसके मन में टिके) भय-आदर में समाप्त हो जाता है ।। १ ।। रहाउ ।। जिस मनुष्य के हृदय में हरिनाम-रूपी राशि है, वह स्थिर अवस्था में टिका रहता है, वह प्रभु-प्रेम में जुड़ा रहता है, उसे (प्रभु के द्वार से) आदर मिलता है ।। २ ।। (लेकिन) जिन मनुष्यों को प्रभु हर वक्त माया की निद्रा में सुलाए रखता है, वे स्वेच्छाचारी पुरुष सदा लोक-परलोक में मृत्यु के भय से बँधे रहते हैं ।। ३ ।। हे नानक ! जिनके हृदय में रात-दिन परमात्मा का वास है, वे पूर्ण मनुष्य हैं, (वे विचलित नहीं होते) । जिन्हें परमात्मा मिल गया, उनकी सब दुबिधाएँ समाप्त हो जाती हैं ।। ४ ।। ११ ।।

।। गउड़ी महला १ ।। जनमि मरै त्रै गुण हितकारु। चारे बेद कथहि आकारु। तीनि अवसथा कहहि वखिआनु। तुरीआवसथा सतिगुर ते हरि जानु ।। १ ।। राम भगति गुर सेवा तरणा। बाहुड़ि जनमु न होइहै मरणा ।। १ ।। रहाउ ।। चारि पदारथ कहै सभु कोई। सिम्रिति सासत पंडित मुखि सोई। बिनु गुर अरथु बीचारु न पाइआ। मुकति पदारथु भगति हरि पाइआ ।। २ ।। जा कै हिरदै वसिआ हरि सोई। गुरमुखि भगति परापति होई। हरि की भगति मुकति आनंदु। गुरमति पाए परमानंदु ।। ३ ।। जिनि पाइआ गुरि देखि दिखाइआ। आसा माहि निरासु बुझाइआ। दीनानाथु सरब सुखदाता। नानक हरि चरणी मनु राता ।। ४ ।। १२ ।।

चारों वेद जिस त्रिगुणात्मक संसार का वर्णन करते हैं, (जिस मनुष्य का) उस त्रैगुणी संसार से ही लगाव है, वह जन्मता-मरता रहता है । (ऐसे मनुष्य) जो भी व्याख्या करते हैं, मन की तीन अवस्थाओं का ही वर्णन करते हैं, (परमात्मा से एकाकार होने की स्थिति व्यक्त नहीं की जा सकती) । गुरु की शरण लेकर परमात्मा से गहरा परिचय प्राप्त कर लो, यह तुरीयावस्था है ।। १ ।। (जन्म-मरण का चक्र भटकाव है, इससे) परमात्मा की भक्ति तथा गुरु का बतलाया कार (धन्धा) करके पार उतरा जाता है, (जो पार उतर जाता है, उसे) पुनः न जन्म होता है, न मृत्यु। (उस अवस्था को तुरीयावस्था कह लो) ।। १ ।। रहाउ ।। हरेक जीव धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष —इन चारों का वर्णन तो करता है, स्मृतियों, शास्त्रों और पण्डितों के मुँह से यही सुना जाता है, पर मुक्ति पदार्थ क्या है ? गुरु की शरण लिए बिना इसका अनुभव नहीं हो सकता, यह पदार्थ परमात्मा

की भक्ति करने से मिलता है ।। २ ।। जिस मनुष्य के हृदय में परमात्मा आ बसता है, उसे भक्ति की प्राप्ति हो गई और यह भक्ति गुरु के द्वारा ही मिलती है। परमात्मा की भक्ति के द्वारा ही मुक्ति-पदार्थ का आनन्द प्राप्त किया जाता है, यह ऊँचे-से-ऊँचा आनन्द गुरु की शिक्षा पर चलने से मिलता है ॥ ३ ॥ जिस मनुष्य ने मुक्ति का आनन्द प्राप्त कर लिया, गुरु ने सर्वसुखदाता दीनानाथ प्रभु आप देखकर दिखा दिया, उसे दुनियावी आकांक्षाओं के भीतर रहते हुए ही आकांक्षाओं से निर्लिप्त रहने की जाँच गुरु सिखा देता है। हे नानक ! उस मनुष्य का मन प्रभु-चरणों में रंगा रहता है ॥ ४ ॥ १२ ॥

।। गउड़ी चेती महला १ ।। अंम्रित काइआ रहै सुखाली बाजी इहु संसारो। लबु लोभु मुचु कूड़ु कमावहि बहुतु उठावहि भारो। तूं काइआ मै रुलदी देखी जिउ धर उपरि छारो।। १।। सुणि सुणि सिख हमारी। सुक्रितु कीता रहसी मेरे जीअड़े बहुड़ि न आवै वारी ।। १ ।। रहाउ ।। हउ तुधु आखा मेरी काइआ तूं सुणि सिख हमारी। निंदा चिंदा करहि पराई झूठी लाइतबारी। वेलि पराई जोहहि जीअड़े करहि चोरी बुरिआरी। हंसु चलिआ तूं पिछै रहीएहि छुटड़ि होईअहि नारी ।। २ ।। तूं काइआ रहीअहि सुपनंतरि तुधु किआ करम कमाइआ। करि चोरी मै जा किछु लीआ ता मनि भला भाइआ। हलति न सोभा पलति न ढोई अहिला जनमु गवाइआ ।। ३ ।। हउ खरी दुहेली होई बाबा नानक मेरी बात न पुछै कोई ।। १ ।। रहाउ ।। ताजी तुरकी सुइना रुपा कपड़ केरे भारा। किस ही नालि न चले नानक झड़ि झड़ि पए गवारा। कूजा मेवा मै सभ किछु चाखिआ इकु अंम्रितु नामु तुमारा ।। ४ ।। दे दे नीव दिवाल उसारी भसमंदर की ढेरी। संचे संचि न देई किस ही अंध जाणै सभ मेरी। सोइन लंका सोइन माड़ी संपै किसै न केरी ।। ५ ।। सुणि मूरख मंन अजाणा। होगु तिसै का भाणा।। १ ।। रहाउ।। साहु हमारा ठाकुरु भारा हम तिस के वणजारे। जीउ पिंडु सभ रासि तिसै की मारि आपे जीवाले ।। ६ ।। १ ।। १३ ।।

यह शरीर अपने आपको अमर जानकर सुख प्राप्त करने में ही लगा रहता है, (यह नहीं समझता कि) यह जगत (एक) खेल है। हे मेरे शरीर ! तू झूठ, लोभ में फँसा है। तू बहुत कुछ कमा रहा है, तू (अपने

ऊपर लोभ, मोह, मिथ्या आदि के कारण किए गए नीच कर्मों का) भार उठाता जा रहा है। हे मेरे शरीर! मैंने तेरे जैसे इस प्रकार बरबाद होते देखे हैं, जैसे पृथ्वी पर राख ॥ १ ॥ हे मेरी देह! मेरी सीख ध्यान-पूर्वक सुन! की हुई नेक कमाई ही तेरे साथ जायगी। (यदि यह मनुष्य-जन्म गवाँ दिया), तो दोबारा (जल्दी से) बारी नहीं मिलेगी ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे मेरे शरीर! मैं तुझे समझाता हूँ, मेरी सीख सुन। तू पराई निन्दा का ध्यान रखता है, तू (दूसरों की) झूठी चुगली करता रहता है। हे जीव तू पराई स्त्री को (कुदृष्टि से) देखता है, तू चोरी करता है, दूसरी बुराइयाँ करता है। हे मेरी काया! जब जीवात्मा चला जायगा, तू यहीं रह जाएगी, तू (तब) परित्यक्ता स्त्री की तरह हो जाएगी ॥ २ ॥ हे मेरे शरीर! तू (माया की) नींद में ही सोया रहा, (तुझे समझ ही न आई कि) तू क्या करतूतें करता रहा। चोरी आदि करके जो माल-धन मैं (अर्थात् शरीर) लाता रहा, तुझे वह मन में पसन्द आता रहा। (इस प्रकार) न इस लोक में शोभा प्राप्त की, न परलोक में आसरा (मिलने का प्रबन्ध) हुआ। कीमती मनुष्य-जन्म व्यर्थ कर लिया ॥ ३ ॥ हे भाई! (जीवात्मा के चले जाने पर अब) काया अर्थात् मैं बहुत दुखी हुई हूँ। हे नानक! अब मेरी कोई बात नहीं पूछता ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे नानक! (कहो—) हे मूर्ख! बढ़िया घोड़े, सोने, चाँदी, कपड़ों के भार, कोई भी शक्ति (मृत्यु के वक्त) किसी के साथ नहीं जाती। सब यहीं रह जाते हैं। मिश्री, मेवा आदि मैंने सब कुछ चखकर देख लिया है, (इनमें भी इतना स्वाद नहीं, जितना हे प्रभु! तेरा नाम मीठा है ॥ ४ ॥ नींव रख-रखकर मकान की दीवारें खड़ी कीं, परन्तु (मौत आने पर) राख के मन्दिरों की ढेरी की तरह हो गए। मूर्ख (माया के) एकत्रित किए हुए भण्डार किसी को (हाथों से) नहीं देता, वह समझता है कि यह सब कुछ मेरा है, (यह नहीं जानता कि) सोने की लंका, सोने के महल (रावण के भी न रहे, तू कौन बेचारा है) यह धन किसी का भी नहीं बना रहता ॥ ५ ॥ हे मूर्ख अज्ञानी मन! सुन! उस परमात्मा की रज़ा ही फलीभूत होगी ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हमारा मालिक प्रभु बड़ा साहूकार है, हम सब जीव उसके भेजे हुए वनजारे-व्यापारी हैं, (यहाँ नाम-व्यापार करने आए हैं)। यह देह उसी शाह की दी हुई राशि है। वह आप ही मारता है और आप ही प्राण देता है ॥ ६ ॥ १ ॥ १३ ॥

॥ गउड़ी चेती महला १ ॥ अवरि पंच हम एक जना किउ राखउ घर बारु मना। मारहि लूटहि नीत नीत किसु आगै करी पुकार जना ॥ १ ॥ स्रीराम नामा उचरु मना।

आगै जमदलु बिखमु घना ।। १ ।। रहाउ ।। उसारि मड़ोली राखै दुआरा भीतरि बैठी साधना । अंम्रित केल करे नित कामणि अवरि लुटेनि सु पंच जना ।। २ ।। ढाहि मड़ोली लूटिआ देहुरा साधन पकड़ी एक जना । जम डंडा गलि संगलु पड़िआ भागि गए से पंच जना ।। ३ ।। कामणि लोड़ै सुइना रुपा मित्र लुड़ेनि सु खाधाता । नानक पाप करे तिन कारणि जासी जमपुरि बाधाता ।। ४ ।। २ ।। १४ ।।

हे मेरे मन ! मेरे पाँच वैरी हैं, मैं अकेला हूँ, मैं (इनसे) सारा घर कैसे बचाऊँ ? हे भाई ! ये पाँच मुझे नित्य मारते और लूटते रहते हैं, मैं किसके पास शिकायत करूँ ? ।। १ ।। हे मन ! परमात्मा का नाम स्मरण कर, सामने यमराज की भारी फ़ौज दिखाई दे रही है (अर्थात्, मौत आनेवाली है) ।। १ ।। रहाउ ।। परमात्मा ने यह शरीर बनाकर (इसके नाक, कान आदि) दस द्वार बना दिए । (उसके हुक्म अनुसार) इस शरीर में जीव-स्त्री आ टिकी । पर यह जीव-स्त्री अपने आपको अमर जानकर सदा (दुनियावाले) कौतुक तमाशे करती रहती है, और वे वैरी कामादिक पाँचों (भीतरी शुभ गुण) लूटते रहते हैं ।। २ ।। (आखिरकार, यम की फौज ने) शरीर-रूपी मठ को गिराकर मन्दिर लूट लिया, जीव-स्त्री अकेली ही पकड़ी गई । यमराज का डण्डा सिर पर बजा, फन्दा गले में पड़ा, वे (लूटनेवाले) पाँचों व्यक्ति भाग गए, (साथ छोड़ गए) ।। ३ ।। (सारी उम्र, जब तक जीव जीवित रहा) पत्नी सोने-चाँदी (के गहने) माँगती रहती है, सम्बन्धी मित्र खाने-पीने के पदार्थ माँगते रहते हैं, हे नानक ! इनकी खातिर जीव पाप करता रहता है, आखिरकार (पापों के कारण) बँधा हुआ, यम की नगरी में धकेला जाता है ।। ४ ।। २ ।। १४ ।।

।। गउड़ी चेती महला १ ।। मुंद्रा ते घट भीतरि मुंद्रा कांइआ कीजै खिथाता । पंच चेले वसि कीजहि रावल इहु मनु कीजै डंडाता ।। १ ।। जोग जुगति इव पावसिता । एकु सबदु दूजा होरु नासति कंद मूलि मनु लावसिता ।। १ ।। रहाउ ।। मूंडि मुंडाइऐ जे गुरु पाईऐ हम गुरु कीनी गंगाता । त्रिभवण तारणहारु सुआमी एकु न चेतसि अंधाता ।। २ ।। करि पटंबु गली मनु लावसि संसा मूलि न जावसिता । एकसु चरणी जे चितु लावहि लबि लोभि की धावसिता ।। ३ ।। जपसि निरंजनु रचसि मना । काहे बोलहि जोगी कपटु घना ।। १ ।। रहाउ ।।

काइआ कमली हंसु इआणा मेरी मेरी करत बिहाणीता।
प्रणवति नानकु नागी दाझै फिरि पाछै पछुताणीता ॥४॥३॥१५॥

हे योगी ! अपने शरीर के भीतर ही बुरी इच्छाओं को रोक —ये हैं असल कुण्डल। शरीर को नाशवान् समझ— इस विश्वास को गुदड़ी बना ! (हे योगी ! तुम दूसरों को शिष्य बनाते फिरते हो) अपनी पाँचों ज्ञानेन्द्रियों को वश में करो, शिष्य बनाओ और अपने मन को डण्डा बनाओ, (भाव, अपने मन पर काबू करो) ॥ १ ॥ (हे योगी !) तू गाजर, मूली आदि खाने में मन जोड़ता फिरता है, पर यदि तू उस गुरुशब्द में मन जोड़े, (जिसके अतिरिक्त) कोई दूसरा (जीवन-मार्ग दिखाने के योग्य) नहीं है, तो तू इस प्रकार योग (प्रभु-चरणों में जुड़ने) का तरीका प्राप्त कर लेगा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ यदि (गंगा के किनारे) सिर मुँडाने से गुरु मिलता है, तो हमने तो गुरु को ही गंगा बना लिया है (अर्थात्, हमारे लिए गुरु ही महान् पवित्र तीर्थ है)। अन्धा (योगी) उस एक मालिक को स्मरण नहीं करता जो तीनों भवनों (के जीवों) को पार करने में समर्थ है ॥ २ ॥ हे योगी ! तू (योग का) दिखावा करके केवलमात्र बातों से लोगों का मन बहलाता है, पर तेरा अपना संशय बिल्कुल दूर नहीं होता। यदि तू एक परमात्मा के चरणों में चित्त जोड़े, तो झूठ, लोभ के कारण बनी तेरी दुबिधा दूर हो जाए ॥ ३ ॥ हे योगी ! बहुत ठगी-फरेब के बोल क्यों बोलता है ? अपना मन जोड़कर माया-रहित प्रभु का नाम स्मरण कर ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिस मनुष्य का शरीर पागल हो, जिसका जीवात्मा मूर्ख हो, (जिन्दगी का सही रास्ता न समझता होवे) उसकी समस्त अवस्था माया की ममता में बीत जाती है। नानक प्रार्थना करता है कि जब (ममता के सारे पदार्थ जगत में ही छोड़कर) शरीर अकेला ही (श्मशान में) जलता है, तब समय समाप्त हुआ जानकर जीव पछताता है ॥ ४ ॥ ३ ॥ १५ ॥

॥ गउड़ी चेती महला १ ॥ अउखध मंत्र मूलु मन एकै जे करि द्रिड़ु चितु कीजै रे। जनम जनम के पाप करम के काटनहारा लीजै रे ॥ १ ॥ मन एको साहिबु भाई रे। तेरे तीनि गुणा संसारि समावहि अलखु न लखणा जाई रे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सकर खंडु माइआ तनि मीठी हम तउ पंड उचाई रे। राति अनेरी सूझसि नाही लजु टूकसि मूसा भाई रे ॥ २ ॥ मनमुखि करहि तेता दुखु लागै गुरमुखि मिलै वडाई रे। जो तिनि कीआ सोई होआ किरतु न मेटिआ जाई रे ॥ ३ ॥ सुभर भरे न

होवहि ऊणे जो राते रंगु लाई रे। तिन की पंक होवै जे नानकु तउ मूड़ा किछु पाई रे ॥ ४ ॥ ४ ॥ १६ ॥

हे भाई ! यदि तू जन्म-जन्मान्तरों के किए कुकर्मों के संस्कारों को काटनेवाले परमात्मा का नाम लेता रहे, यदि तू (उस नाम के स्मरण में) अपने चित्त को दृढ़ कर ले, तो (तुझे विश्वास आ जायगा कि) मन के रोग दूर करनेवाली सबसे बढ़िया औषधि प्रभु का नाम ही है, मन को वश में करनेवाला सबसे बढ़िया मन्त्र परमात्मा का नाम ही है ॥ १ ॥ हे भाई ! (विकारों से बचा सकनेवाला) मन का रक्षक एक प्रभु-नाम ही है (उसके गुण पहचान), पर जितनी देर तेरी त्रैगुणी इन्द्रियाँ संसार (के मोह) में लगी हैं, उस अलक्ष्य परमात्मा को समझा नहीं जा सकता ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे भाई ! हम जीवों ने तो माया की गठिया (हर वक्त सिर पर) उठाई हुई है, हमें तो अपने भीतर माया शक्कर जैसी मीठी लग रही है, (हमारे लिए मोह की) अन्धेरी रात फैली हुई है, (जिसमें) हमें कुछ नहीं दिखता और (ऊपर से) यमराज-चूहा हमारी उम्र की रस्सी काटता जा रहा है ॥ २ ॥ हे भाई ! स्वेच्छाचारी होकर मनुष्य जितना भी उद्यम करते हैं, उतना ही दुःख होता है। (लोक-परलोक में) शोभा उन्हें मिलती है जो गुरु के सम्मुख रहते हैं। जो (नियम) उस परमात्मा ने बना दिया है, वही होता है, (उस नियम के अनुसार) जन्म-जन्मान्तरों के किये कर्मों के संस्कारों का समूह (स्वेच्छाचारी होकर मिटाया नहीं जा सकता) ॥३॥ नानक (कहता है) जो मनुष्य प्रभु के चरणों में प्रीति जोड़कर उसके प्रेम में रँगे रहते हैं, उनके मन प्रेम-रस से सदा लबालब भरे रहते हैं, (वे प्रेम से) खाली नहीं होते। यदि (हमारा) मूर्ख (मन) उनके चरणों की धूलि बने तो इसे भी कुछ प्राप्ति हो जाए ॥ ४ ॥ ४ ॥ १६ ॥

॥ गउड़ी चेती महला १ ॥ कत की माई बापु कत केरा किदू थावहु हम आए। अगनि बिब जल भीतरि निपजे काहे कंमि उपाए ॥ १ ॥ मेरे साहिबा कउणु जाणै गुण तेरे। कहे न जानी अउगण मेरे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ केते रुख बिरख हम चीने केते पसू उपाए। केते नाग कुली महि आए केते पंख उडाए ॥ २ ॥ हट पटण बिज मंदर भंनै करि चोरी घरि आवै। अगहु देखै पिछहु देखै तुझ ते कहा छपावै ॥ ३ ॥ तट तीरथ हम नव खंड देखे हट पटण बाजारा। लै कै तकड़ी तोलणि लागा घट ही महि वणजारा ॥ ४ ॥ जेता समुंदु सागरु नीरि भरिआ तेते अउगण हमारे। दइआ करहु किछु मिहर उपावहु

डुबदे पथर तारे ॥ ५ ॥ जीअड़ा अगनि बराबरि तपै भीतरि वगै काती । प्रणवति नानकु हुकमु पछाणै सुखु होवै दिनु राती ॥ ६ ॥ ५ ॥ १७ ॥

(हे मेरे साहिब ! अनगिनत अवगुणों के कारण हमें अनेक योनियों में भटकना पड़ता है, हम क्या बताएँ कि) कब की हमारी माँ कौन है, कब का हमारा पिता कौन है, किस-किस स्थान से हम आए हैं ? (इन अवगुणों के कारण हमें यह भी नहीं सूझता कि) हम किस मनोरथ से पिता के वीर्य से माँ के पेट की आग में पड़े और किस लिए पैदा किए गए ॥ १ ॥ हे मेरे मालिक प्रभु ! मेरे भीतर इतने अवगुण हैं कि वे गिने नहीं जा सकते (और, जिस जीव के भीतर अनेक अवगुण हों, वह ऐसा कोई भी नहीं होता जो तेरे गुणों से गहरा रिश्ता बना सके) जो तेरी गुणस्तुति में जुड़ सके) ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (अनगिनत अवगुणों के कारण) हमने अनेक वृक्षों की योनियाँ देखीं, अनेक बार पशु-योनियों में उत्पन्न हुए, अनेक बार साँपों के वंशों में उत्पन्न हुए और अनेक बार पक्षी बन-बन कर उड़ते रहे ॥ २ ॥ (जन्म-जन्मान्तरों में किए कुकर्मों के प्रभाव से) मनुष्य शहरों की दूकानें तोड़ता है, पक्के घर तोड़ता है (सेंध लगाता है), चोरी करके (माल लेकर) अपने घर आता है, (चोरी का माल लाता हुआ) आगे-पीछे तकता है (पर मूर्ख यह नहीं जानता कि प्रभु सर्वव्यापक है और) तू छिपाव नहीं रख सकता ॥ ३ ॥ (पूर्वकृत कुकर्मों को धोने के लिए हम जीव) समस्त तीर्थों के दर्शन करते फिरते हैं, सब शहरों, बाज़ारों की प्रत्येक दूकान देखते फिरते हैं, (लेकिन विकार पीछा नहीं छोड़ते) । (जब कोई भाग्यशाली जीव—) वनजारा (तेरी कृपा से) अच्छी प्रकार परख करता है (तो उसे समझ पड़ती है कि तू तो) हमारे हृदय में ही बसता है ॥ ४ ॥ (हे मेरे साहिब !) जैसे (अतुलित) पानी से समुद्र भरा हुआ है, उसी प्रकार हम जीवों के अनगिनत अवगुण हैं। (हम इन्हें धोने में असमर्थ हैं), तू आप ही दया कर, कृपा कर। तू तो डूबते पत्थरों को तार सकता है ॥ ५ ॥ (हे मेरे साहिब !) मेरी देह आग के समान तप रही है, मेरे भीतर तृष्णा की छुरी चल रही है। नानक प्रार्थना करता है— जो मनुष्य परमात्मा की रज़ा को समझ लेता है, उसके भीतर रात-दिन आत्मिक आनन्द बना रहता है ॥ ६ ॥ ५ ॥ १७ ॥

॥ गउड़ी बैरागणि महला १ ॥ रैणि गवाई सोइ कै दिवसु गवाइआ खाइ । हीरे जैसा जनमु है कउडी बदले जाइ ॥ १ ॥ नामु न जानिआ राम का । मूड़े फिरि पाछै पछुताहि रे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ अनता धनु धरणी धरे अनत न

चाहिआ जाइ । अनत कउ चाहन जो गए से आए अनत गवाइ ॥ २ ॥ आपण लीआ जे मिलै ता सभु को भागठु होइ । करमा उपरि निबड़ै जे लोचै सभु कोइ ॥ ३ ॥ नानक करणा जिनि कीआ सोई सार करेइ । हुकमु न जापी खसम का किसै वडाई देइ ॥ ४ ॥ १ ॥ १८ ॥

(हे मूर्ख !) तू रात्रि सोकर गुजारता जा रहा है और दिन खा-खाकर व्यर्थ बिताता जाता है, तेरा यह मनुष्य-जन्म हीरे जैसा कीमती है, पर (स्मरण के बिना) कौड़ी के भाव जा रहा है ॥ १ ॥ हे मूर्ख ! तूने परमात्मा के नाम के साथ गहरा रिश्ता नहीं बनाया, (यदि मनुष्य-जीवन स्मरण के बिना बीत गया, तो) फिर समय बीत जाने पर पश्चाताप करेगा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जो मनुष्य अनन्त धन ही इकट्ठा करता रहता है, उसके भीतर अनन्त प्रभु के स्मरण की इच्छा पैदा नहीं हो सकती। जो भी अनन्त धन की लालसा में दौड़े फिरते हैं, वे अनन्त प्रभु के नाम-धन को गवाँ लेते हैं ॥ २ ॥ (लेकिन) यदि केवलमात्र चाहने से नाम-धन मिलता हो तो हरेक जीव नाम-धन के ख़जानों का मालिक बन जाए। चाहे जैसे हरेक मनुष्य (केवल मौखिक रूप में) नाम-धन की लालसा में रहता है, पर यह फैसला हरेक व्यक्ति के आचरण पर होता है ॥ ३ ॥ हे नानक ! (प्रयास करते हुए भी यह नहीं कहा जा सकता कि यह फलीभूत होगा अथवा नहीं), जिस परमात्मा ने यह जगत रचा है, वह हरेक जीव की सँभाल करता है, (प्रयास के फल के सम्बन्ध में) उस प्रभु-पति का हुक्म समझा नहीं जा सकता (यह पता नहीं लग सकता) कि किस मनुष्य को वह, (नाम जपने की) महानता दे देता है ॥ ४ ॥ १ ॥ १८ ॥

॥ गउड़ी बैरागणि महला १ ॥ हरणी होवा बनि बसा कंद मूल चुणि खाउ । गुर परसादी मेरा सहु मिलै वारि वारि हउ जाउ जीउ ॥ १ ॥ मै बनजारनि राम की । तेरा नामु वखरु वापारु जी ॥ १ ॥ रहाउ ॥ कोकिल होवा अंबि बसा सहजि सबद बीचारु । सहजि सुभाइ मेरा सहु मिलै दरसनि रूपि अपारु ॥ २ ॥ मछुली होवा जलि बसा जीअ जंत सभि सारि । उरवारि पारि मेरा सहु वसै हउ मिलउगी बाह पसारि ॥ ३ ॥ नागनि होवा धर वसा सबदु वसै भउ जाइ । नानक सदा सोहागणी जिन जोती जोति समाइ ॥ ४ ॥ २ ॥ १९ ॥

(हरिणी जंगल में घास के तिनके चुन-चुनकर खाती है और प्रसन्नता-पूर्वक रहती है) तेरा नाम मेरी देह के लिए ख़ुराक बने, जैसे हरिणी के

लिए कन्दमूल है। मैं तेरे नाम-रस को सप्रेम खाऊँ, मैं संसार-वन में निश्चिन्त होकर घूमूँ, जैसे हरिणी जंगल में (घूमती-फिरती है)। यदि गुरु की कृपा से मेरा पति-प्रभु मिल जाए तो मैं बार-बार उस पर बलिहारी जाऊँ ॥ १ ॥ (हे प्रभु! यदि तेरी कृपा होवे तो) मैं तेरे नाम की वनजारिन बन जाऊँ, तेरा नाम मेरा सौदा बने, मैं तेरे नाम का व्यापार करूँ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (यदि प्रभु के साथ वैसी प्रीति हो जाए, जैसी कोयल की आम के साथ है तो) मैं कोयल बनूँ, आम पर बैठूँ (अर्थात् प्रभु-नाम को अपनी ज़िन्दगी का सहारा बनाऊँ) और मस्त, स्थिर हालत में टिककर प्रभु की गुणस्तुति के शब्दों का विचार करूँ (शब्द में मन लगाऊँ)। स्थिर अवस्था में टिकने से, प्रेम में जुड़ने से प्यारा, सुन्दर, अनन्त प्रभु-पति मिलता है ॥ २ ॥ (मछली पानी के बिना जी नहीं सकती। यदि प्रभु से मेरी भी ऐसी ही प्रीति होवे तो) मैं मछली बनूँ, सदा उस जल-प्रभु में टिकी रहूँ, जो सारे जीव-जन्तुओं की देखभाल करता है। प्यारा पति-प्रभु (इस संसार-समुद्र के अथाह जल के) दोनों ओर (सर्वत्र) बसता है, (मैं भी मछली की तरह) बाहें फैलाकर (निसंग होकर) उससे मिलूँगी ॥ ३ ॥ (सर्पिणी बीन पर मस्त होती है। यदि प्रभु से मेरी प्रीति ऐसी हो जाए तो) मैं सर्पिणी बनूँ, धरती में रहूँ, (मेरे भीतर प्रभु की गुणस्तुति वाला) गुरु-शब्द बसे, (जैसे बीन में मस्त होकर सर्पिणी को वैरी की सुधि नहीं रहती) मेरा भी (दुनिया वाला) भय दूर हो जाए। हे नानक! जिन जीव-स्त्रियों की ज्योति (सुरति) सदा ज्योति-रूप प्रभु में टिकी रहती है, वे बड़ी भाग्यशालिनी हैं ॥ ४ ॥ २ ॥ १९ ॥

गउड़ी पूरबी दीपकी महला १ ॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि। जै घरि कीरति आखीऐ करते का होइ बीचारो। तितु घरि गावहु सोहिला सिवरहु सिरजणहारो ॥ १ ॥ तुम गावहु मेरे निरभउ का सोहिला। हउ वारी जाउ जितु सोहिलै सदा सुखु होइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ नित नित जीअड़े समालीअनि देखैगा देवणहारु। तेरे दानै कीमति ना पवै तिसु दाते कवणु सुमारु ॥ २ ॥ संबति साहा लिखिआ मिलि करि पावहु तेलु। देहु सजण आसीसड़ीआ जिउ होवै साहिब सिउ मेलु ॥ ३ ॥ घरि घरि एहो पाहुचा सदड़े नित पवंनि। सदणहारा सिमरीऐ नानक से दिह आवंनि ॥ ४ ॥ १ ॥ २० ॥

जिस (सत्संगति) घर में (परमात्मा की) गुणस्तुति कही जाती है और कर्त्तार के गुणों पर विचार होता है, (हे देह लड़की !) उस सत्संग-घर में जा (जाकर तू भी) परमात्मा की गुणस्तुति के गीत (मिलन की इच्छा के शब्द) गा, और अपने पैदा करनेवाले प्रभु को याद कर ॥ १ ॥ (हे देह !) तू (सत्संगियों के साथ मिलकर) प्यारे निर्भय (पति) की स्तुति के गीत गा (और कह—) मैं उस स्तुति के गीत पर बलिहारी जाता जाता हूँ, जिसके प्रभाव से सदा का सुख मिलता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे देह ! जिस पति के दरबार में) सदा ही जीवों की सँभाल हो रही है, जो देन देनेवाला मालिक (हरेक जीव की) सँभाल करता है, (जिस दाता की) देनों का मूल्य (हे देह !) तेरे द्वारा नहीं आँका जा सकता, उस दाता का तू क्या अनुमान (लगा सकती है) ? (अर्थात् वह दाता अपरम्पार है) ॥ २ ॥ (सत्संग में जाकर, हे देह ! प्रार्थना किया कर—) वह संवत्, वह दिन पूर्वनिश्चित है (जब प्रभु-पति के घर जाने के लिए मुझे मृत्यु-सन्देश आना है), हे सहेलियो ! मिलकर खुशी के गीत गाओ, मुझे आशीष भी दो, (मेरे लिए प्रार्थना भी करो) जिस प्रकार प्रभु-पति के साथ मेरा मिलाप हो जाए ॥ ३ ॥ (परलोक में जाने के लिए मृत्यु-रूपी) यह सन्देशवाहक हरेक घर में आ रहा है, ये सन्देश प्रतिदिन आ रहे हैं; (हे सत्संगियो !) उस सदा भेजनेवाले पति-प्रभु को याद करना चाहिए, (क्योंकि) हे नानक ! (हमारे भी) वे दिन (निकट) आ रहे हैं ॥ ४ ॥ १ ॥ २० ॥

रागु गउड़ी गुआरेरी महला ३ चउपदे

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ गुरि मिलिऐ हरि मेला होई । आपे मेलि मिलावै सोई । मेरा प्रभु सभ बिधि आपे जाणै । हुकमे मेले सबदि पछाणै ॥ १ ॥ सतिगुर कै भइ भ्रमु भउ जाइ । भै राचै सच रंगि समाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गुरि मिलिऐ हरि मनि वसै सुभाइ । मेरा प्रभु भारा कीमति नही पाइ । सबदि सालाहै अंतु न पारावारु । मेरा प्रभु बखसे बखसणहारु ॥ २ ॥ गुरि मिलिऐ सभ मति बुधि होइ । मनि निरमलि वसै सचु सोइ । साचि वसिऐ साची सभ कार । ऊतम करणी सबद बीचार ॥ ३ ॥ गुर ते साची सेवा होइ । गुरमुखि नामु पछाणै कोइ । जीवै दाता देवणहारु । नानक हरिनामे लगै पिआरु ॥ ४ ॥ १ ॥ २१ ॥

यदि गुरु मिल जाए तो परमात्मा के साथ मिलाप हो जाता है, वह परमात्मा आप ही (जीव को गुरु के साथ) मिलाकर (अपने चरणों में) मिला लेता है। प्यारा प्रभु आप ही (जीवों के अपने चरणों में मिलाने के) सारे तरीके जानता है। (जिस मनुष्य को परमात्मा अपने) हुक्म-अनुसार (गुरु के साथ) मिलाता है, वह मनुष्य गुरु के उपदेश द्वारा परमात्मा के साथ मेल कर लेता है ॥ १ ॥ गुरु के भय-आदर में रहने से (दुनियावी) दुबिधा तथा भय दूर हो जाता है। जो मनुष्य (गुरु के) भय-आदर में प्रसन्न रहता है, वह सदा सत्यस्वरूप परमात्मा के रंग में समाया रहता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ यदि गुरु मिल जाए तो परमात्मा (भी अपनी) प्रेम-रुचि के कारण (मनुष्य के) अपने मन में आ बसता है। प्यारा प्रभु अनन्त-गुणों का स्वामी है, कोई जीव उसका मूल्यांकन नहीं कर सकता। जो मनुष्य गुरु के उपदेश में जुड़कर उस परमात्मा की गुणस्तुति करता है, जिसके गुणों का रहस्य नहीं पाया जा सकता, जिसके आस्तित्व का ओर-छोर नहीं मिल सकता, क्षमा करनेवाला प्रभु (उसके समस्त दोष) क्षमा कर लेता है ॥ २ ॥ यदि गुरु मिल जाए (तो मनुष्य के भीतर) सद्‌बुद्धि पैदा हो जाती है, (मनुष्य के) पवित्र मन में वह सत्यस्वरूप प्रभु प्रकट हो जाता है। यदि सत्यस्वरूप प्रभु (जीव के मन में) आ बसे तो सत्यस्वरूप परमात्मा की गुणस्तुति उसका नित्यप्रति का काम-काज हो जाता है, उसके कर्म श्रेष्ठ हो जाते हैं, गुरु के शब्द का विचार उसके मन में टिका रहता है ॥ ३ ॥ सत्यस्वरूप प्रभु की सेवा-भक्ति गुरु से ही मिलती है, गुरु के सम्मुख रहकर ही कोई मनुष्य प्रभु के नाम से गहरे सम्बन्ध बनाता है। हे नानक! जिस मनुष्य का प्रेम हरि के नाम से परिपक्व हो जाता है, (उसे विश्वास हो जाता है कि सब देन) देने में समर्थ दाता-प्रभु (सदा उसके सिर पर) जीता-जागता स्थित है ॥ ४ ॥ १ ॥ २१ ॥

॥ गउड़ी गुआरेरी महला ३ ॥ गुर ते गिआनु पाए जनु कोइ। गुर ते बूझै सीझै सोइ। गुर ते सहजु साचु बीचारु। गुर ते पाए मुकति दुआरु ॥ १ ॥ पूरै भागि मिलै गुरु आइ। साचै सहजि साचि समाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गुरि मिलिऐ त्रिसना अगनि बुझाए। गुर ते सांति वसै मनि आए। गुर ते पवित पावन सुचि होइ। गुर ते सबदि मिलावा होइ ॥ २ ॥ बाझु गुरू सभ भरमि भुलाई। बिनु नावै बहुता दुखु पाई। गुरमुखि होवै सु नामु धिआई। दरसनि सचै सची पति होई ॥ ३ ॥ किस नो कहीऐ दाता इकु सोई। किरपा करे सबदि मिलावा

होई। मिलि प्रीतम साचे गुण गावा। नानक साचे साचि समावा ॥ ४ ॥ २ ॥ २२ ॥

कोई (भाग्यशाली) मनुष्य गुरु से परमात्मा के साथ गहरा मेल-मिलाप प्राप्त करता है। जो मनुष्य गुरु से (यह भेद) समझ लेता है, वह (जीवन-क्रीड़ा में) सफल हो जाता है। वह मनुष्य गुरु के द्वारा स्थिर आत्मिक अवस्था प्राप्त कर लेता है, सत्यस्वरूप प्रभु (के गुणों) की सूझ प्राप्त कर लेता है, वह मनुष्य गुरु के द्वारा (विकारों से) मुक्ति (प्राप्त करने) का दरवाज़ा प्राप्त कर लेता है ॥ १ ॥ जिस मनुष्य को सौभाग्यवश गुरु आकर मिल जाता है, वह सत्यस्वरूप प्रभु में लीन हो जाता है, वह सदा स्थिर रहनेवाली आत्मिक स्थिरता में टिका रहता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ यदि गुरु मिल जाए तो (मनुष्य अपने भीतर से) तृष्णा की अग्नि बुझा लेता है। गुरु के द्वारा ही (मनुष्य के) मन में शान्ति आ बसती है, गुरु से ही आत्मिक पवित्रता मिलती है। गुरु के द्वारा ही उसके उपदेश में जुड़कर परमात्मा से मिलाप होता है ॥ २ ॥ गुरु के बिना सारी दुनिया दुबिधा में पड़कर कुमार्गगामी हुई रहती है (और प्रभु के नाम से खाली रहती है), प्रभु के नाम के बिना दुनिया बहुत दुःख पाती है। जो मनुष्य गुरु की शरण लेता है, वह परमात्मा का नाम-स्मरण करता है। परमात्मा के दर्शन में लीन रहने से, सत्यस्वरूप प्रभु में टिकने से उसे अटल प्रतिष्ठा प्राप्त हो जाती है ॥ ३ ॥ (पर, हे भाई! प्रभु के नाम की इस देन के लिए प्रभु के अतिरिक्त) किससे प्रार्थना की जाए? केवल परमात्मा ही यह देने में समर्थ है। जिस मनुष्य पर वह कृपा करता है, गुरु के शब्द द्वारा उसका प्रभु से मिलाप हो जाता है। नानक (भी यही प्रार्थना करता है कि) प्रियतम गुरु को मिलकर मैं (भी) सत्यस्वरूप प्रभु के गुण गाता रहूँ और सदा स्थिर रहनेवाले परमात्मा में लीन रहूँ ॥ ४ ॥ २ ॥ २२ ॥

॥ गउड़ी गुआरेरी महला ३ ॥ सु थाउ सचु मनु निरमलु होइ। सचि निवासु करे सचु सोइ। सची बाणी जुग चारे जापै। सभु किछु साचा आपे आपै ॥ १ ॥ करमु होवै सतसंगि मिलाए। हरिगुण गावै बैसि सु थाए ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जलउ इह जिहवा दूजै भाइ। हरिरसु न चाखै फीका आलाइ। बिनु बूझे तनु मनु फीका होइ। बिनु नावै दुखीआ चलिआ रोइ ॥ २ ॥ रसना हरिरसु चाखिआ सहजि सुभाइ। गुर किरपा ते सचि समाइ। साचे राती गुरसबदु वीचार।

अंम्रित पीवै निरमल धार ॥ ३ ॥ नामि समावै जो भाडा होइ। ऊंधै भांडै टिकै न कोइ। गुर सबदी मनि नामि निवासु। नानक सचु भांडा जिसु सबद पिआस ॥ ४ ॥ ३ ॥ २३ ॥

वह (सत्संग का) स्थान सच्चा स्थान है, (वहाँ बैठे हुए मनुष्य का) मन पवित्र हो जाता है, सत्यस्वरूप प्रभु में (मनुष्य का मन) निवास करता है, (सत्संग के प्रभाव से मनुष्य) परमात्म-रूपवाला हो जाता है। (सत्संग में रहकर) सदा स्थिर प्रभु की गुणस्तुति की वाणी के प्रभाव से मनुष्य चारों युगों में प्रसिद्ध हो जाता है, (उसे विश्वास हो जाता है कि) यह सारा आकार सत्यस्वरूप प्रभु आप ही अपने आप से बनानेवाला है ॥ १ ॥ (जिस मनुष्य पर परमात्मा की) कृपा होवे (उसे वह) सत्संग में मिलाता है, उस स्थान पर वह मनुष्य बैठकर परमात्मा के गुण गाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ यह जीभ जल जाए, जो दूसरे स्वादों में लगी रहती है, यह प्रभु के नाम का आस्वादन नहीं करती, पर (निंदा आदि के) फीके बोल ही बोलती है। परमात्मा के नाम का आस्वादन किए बिना मन फीका (प्रेम से खाली) हो जाता है, शरीर भी फीका हो जाता है, (ज्ञानेन्द्रियाँ भी दुनिया के ओछे पदार्थों की ओर दौड़ने की आदी हो जाती हैं)। नाम के बिना रहकर मनुष्य दुखी जीवन व्यतीत करता है, दुखी होकर ही यहाँ से आखिर चला जाता है ॥ २ ॥ (जिस मनुष्य की) जीभ ने हरि-नाम का स्वाद चखा है, वह आत्मिक स्थिरता में प्रभु-प्रेम में डूबा रहता है, गुरु की कृपा से वह सत्यस्वरूप प्रभु (की गुणस्तुति) में रंगी रहती है, गुरु का शब्द ही उसका चिन्तन बन रहत है, वह मनुष्य आत्मिक जीवन देनेवाला नाम-रस पीता है, नाम-रस की पवित्र धारा पीता है। (गुरु की कृपा से) जो हृदय शुद्ध हो जाता है, वह प्रभु के नाम में लीन रहता है। परमात्मा से विमुख हृदय में कोई गुण नहीं टिकता। गुरु के उपदेश के प्रभाव से मनुष्य के मन में परमात्मा के नाम का निवास हो जाता है। हे नानक! उस मनुष्य का हृदय असल हृदय है, जिसे परमात्मा की गुणस्तुति की वाणी की इच्छा लगी रहती है ॥४॥३॥२३॥

॥ गउड़ी गुआरेरी महला ३ ॥ इकि गावत रहे मनि सादु न पाइ। हउमै विचि गावहि बिरथा जाइ। गावणि गावहि जिन नाम पिआरु। साची बाणी सबद बीचारु ॥ १ ॥ गावत रहै जे सतिगुर भावै। मनु तनु राता नामि सुहावै ॥ १ ॥ रहाउ ॥ इकि गावहि इकि भगति करेहि। नामु न पावहि बिनु असनेह। सची भगति गुर सबद पिआरि। अपना पिरु राखिआ सदा उरि धारि ॥ २ ॥ भगति करहि मूरख आपु

जणावहि। नचि नचि टपहि बहुतु दुखु पावहि। नचिऐ टपिऐ भगति न होइ। सबदि मरै भगति पाए जनु सोइ॥ ३॥ भगति वछलु भगति कराए सोइ। सची भगति विचहु आपु खोइ। मेरा प्रभु साचा सभ बिधि जाणै। नानक बखसे नामु पछाणै॥ ४॥ ४॥ २४॥

कई मनुष्य ऐसे हैं जो (भक्ति के गीत) गाते (तो) रहते हैं, (पर उनके) मन में कोई आनन्द पैदा नहीं होता, (क्योंकि वे अपने भक्त होने के) अहंकार में (भक्ति के गीत) गाते हैं। (उनका यह प्रयास) व्यर्थ चला जाता है। (गुणस्तुति के गीत) असल में वे मनुष्य गाते हैं, जिनका परमात्मा के नाम के साथ प्रेम है, जो सत्यस्वरूप प्रभु की गुणस्तुति की वाणी का, शब्द का विचार (अपने हृदय में टिकाते हैं)॥ १॥ यदि गुरु को भला लगे (यदि गुरु कृपा करे तो उसकी कृपा से शरणागत मनुष्य) परमात्मा के गुण गाता रहता है, उसका तन, मन प्रभु के नाम में रंग जाता है, और उसका जीवन सुन्दर बन जाता है॥ १॥ रहाउ॥ कई मनुष्य ऐसे हैं जो (भक्ति के गीत) गाते हैं, रास करते हैं, पर प्रभु-चरणों के प्रेम से बिना उन्हें परमात्मा का नाम प्राप्त नहीं होता। उनकी ही भक्ति प्रामाणिक होती है, जो गुरु के शब्द के प्यार में जुड़े रहते हैं, जिन्होंने अपने प्रभु-पति को सदा अपने हृदय में टिकाकर रखा हुआ है॥ २॥ मूर्ख लोग रास करते हैं, और अपने आपको भक्त प्रकट करते हैं, (वे मूर्ख रास रचाते समय) नाच-नाचकर मटकते हैं, (लेकिन भीतर अहंकार के कारण आत्मिक आनन्द के स्थान पर) दुःख-ही-दुःख पाते हैं। नाचने-कूदने से भक्ति नहीं होती। परमात्मा की भक्ति वही मनुष्य प्राप्त कर सकता है, जो गुरु के शब्द में जुड़कर (आपाभाव की ओर से) मरता है॥ ३॥ (पर जीवों के क्या वश!) भक्ति से प्रेम करनेवाला वह परमात्मा सब जीवों के ढंग जानता है, (कि ये भक्ति करते हैं या पाखण्ड)। हे नानक! जिस मनुष्य पर प्रभु कृपा करता है, वह मनुष्य उसके नाम को पहचानता है, (नाम के साथ गहरा सम्बन्ध बना लेता है)॥ ४॥ ४॥ २४॥

॥ गउड़ी गुआरेरी महला ३॥ मनु मारे धातु मरि जाइ। बिनु मूए कैसे हरि पाइ। मनु मरै दारू जाणै कोइ। मनु सबदि मरै बूझै जनु सोइ॥ १॥ जिसनो बखसे दे वडिआई। गुर परसादि हरि वसै मनि आई॥ १॥ रहाउ॥ गुरमुखि करणी कार कमावै। ता इसु मन की सोझी पावै। मनु मै मतु मैगल मिकदारा। गुरु अंकसु मारि जीवालणहारा॥ २॥ मनु

असाधु साधै जनु कोइ। अचरु चरै ता निरमलु होइ। गुरमुखि इहु मनु लइआ सवारि। हउमै विचहु तजे विकार ॥ ३ ॥ जो धुरि राखिअनु मेलि मिलाइ। कदे न विछुड़हि सबदि समाइ। आपणी कला आपे ही जाणै। नानक गुरमुखि नामु पछाणै ॥ ४ ॥ ५ ॥ २५ ॥

(गुरु की शरण लेकर जो मनुष्य अपने) मन पर काबू पा लेता है, उस मनुष्य की (माया वाली) दुबिधा समाप्त हो जाती है। मन वश में आए बिना परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती। उसी मनुष्य का मन वश में होता है, जो उसे वश में करने की औषधि जानता है, (जो मनुष्य गुरु की शरण लेता है) वही समझता है कि मन गुरु के उपदेश में जुड़ने से ही वश में आ सकता है ॥ १ ॥ (हे भाई!) जिस मनुष्य पर परमात्मा कृपा करता है, उसे (यह) महानता देता है (कि) गुरु की कृपा से वह प्रभु उसके मन में आ बसता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जब मनुष्य गुरु के सम्मुख रहनेवाले व्यक्तियों का आचरण बनाने का धन्धा करता है, तब उसे इस मन (के स्वभाव) की समझ आ जाती है, (तब वह जान लेता है कि) मन अहंकार में मस्त रहता है, जैसे कोई हाथी शराब में मस्त हो। गुरु ही (आत्मिक रूप से मृत इस मन को अपने शब्द का) अंकुश मारकर (दोबारा) आत्मिक जीवन देने में समर्थ है ॥ २ ॥ (यह) मन सहज तरीके से वश में नहीं आ सकता, कोई विरला मनुष्य (गुरु की शरण लेकर इसे) वश में लाता है। जब मनुष्य (गुरु की सहायता से अपने मन के) स्वेच्छाचरण को समाप्त कर लेता है, तब मन पवित्र हो जाता है। गुरु की शरण लेनेवाला मनुष्य इस मन को सुन्दर बना लेता है, वह (अपने भीतर से) अहंकार छोड़ देता है और विकार त्याग देता है ॥ ३ ॥ जिन मनुष्यों को परमात्मा ने अपने दरबार से ही गुरु के चरणों में जोड़कर रख लिया है, वे गुरु के शब्द में लीन रहकर कभी उस परमात्मा से नहीं बिछुड़ते। हे नानक! परमात्मा अपनी यह अन्तर्निहित शक्ति आप ही जानता है। (एक बात प्रत्यक्ष है कि) जो मनुष्य गुरु की शरण लेता है, वह परमात्मा के नाम को पहचान लेता है, (नाम से गहरा सम्बन्ध बना लेता है) ॥ ४ ॥ ५ ॥ २५ ॥

॥ गउड़ी गुआरेरी महला ३ ॥ हउमै विचि सभु जगु बउराना। दूजै भाइ भरमि भुलाना। बहु चिंता चितवै आपु न पछाना। धंधा करतिआ अनदिनु विहाना ॥ १ ॥ हिरदै रामु रमहु मेरे भाई। गुरमुखि रसना हरि रसन रसाई ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गुरमुखि हिरदै जिनि रामु पछाता। जग जीवनु

सेवि जुग चारे जाता। हउमै मारि गुरसबदि पछाता। क्रिपा करे प्रभ करम बिधाता ॥ २ ॥ से जन सचे जो गुरसबदि मिलाए। धावत वरजे ठाकि रहाए। नामु नव निधि गुर ते पाए। हरि किरपा ते हरि वसै मनि आए ॥ ३ ॥ राम राम करतिआ सुखु सांति सरीर। अंतरि वसै न लागै जम पीर। आपे साहिबु आपि वजीर। नानक सेवि सदा हरि गुणी गहीर ॥ ४ ॥ ६ ॥ २६ ॥

(हे भाई ! प्रभु-नाम से खाली होकर) अहंकार में (फँसकर) सारा जगत् पागल हो रहा है, माया-मोह के कारण दुबिधा में पड़कर कुमार्गगामी हो रहा है, दूसरी कई तरह के सोच सोचता रहता है, परन्तु अपने आत्मिक जीवन को नहीं खोजता (इस प्रकार) माया के लिए भाग-दौड़ करते हुए (जीव का) प्रत्येक दिन बीत रहा है ॥ १ ॥ हे मेरे भाई ! अपने हृदय में परमात्मा का नाम-स्मरण करता रह, गुरु की शरण लेकर अपनी जीभ को परमात्मा के नाम-रस से रसीली बना ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिस मनुष्य ने गुरु की शरण लेकर अपने हृदय में परमात्मा से जान-पहचान कर ली, वह मनुष्य जगत् की ज़िन्दगी के आसरे परमात्मा की सेवा-भक्ति करके सदा के लिए प्रकट हो जाता है। (जीवों के किये) कर्मों के अनुसार (जीवों को) पैदा करनेवाला परमात्मा जिस मनुष्य पर कृपा करता है, वह मनुष्य (अपने भीतर से) अहंकार दूर करके गुरु के शब्द के द्वारा (परमात्मा के साथ) सम्बन्ध बना लेता है ॥ २ ॥ जिन मनुष्यों को परमात्मा गुरु के शब्द में जोड़ता है, जिन्हें माया के पीछे दौड़ते हुए रोकता है, वे मनुष्य परमात्मा का रूप हो जाते हैं। वे मनुष्य गुरु से परमात्मा का नाम प्राप्त कर लेते हैं, जो उनके लिए (मानों, धरती के) नौ भण्डार ही हैं, परमात्मा अपनी कृपा से उनके वश में आ बसता है ॥३॥ (हे भाई !) परमात्मा का नाम स्मरण करते हुए शरीर को आनन्द मिलता है, शान्ति मिलती है। जिस मनुष्य के भीतर (हरि-नाम) आ बसता है, उसे यम का दुःख स्पर्श नहीं कर सकता। हे नानक ! जो परमात्मा आप जगत् का स्वामी है और आप ही (सृष्टि के पालन-पोषण) में सलाह देने-वाला है, जो सारे गुणों का मालिक है, जो बड़े विशाल हृदय वाला है, तू सदा उसकी सेवा-भक्ति कर ॥ ४ ॥ ६ ॥ २६ ॥

॥ गउड़ी गुआरेरी महला ३ ॥ सो किउ विसरै जिस के जीअ पराना। सो किउ विसरै सभ माहि समाना। जितु सेविऐ दरगह पति परवाना ॥ १ ॥ हरि के नाम विटहु बलि

जाउ । तूं विसरहि तदि ही मरि जाउ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ तिन तूं विसरहि जि तुधु आपि भुलाए । तिन तूं विसरहि जि दूजै भाए । मनमुख अगिआनी जोनी पाए ॥ २ ॥ जिन इकमनि तुठा से सतिगुर सेवा लाए । जिन इकमनि तुठा तिन हरि मंनि वसाए । गुरमती हरिनामि समाए ॥ ३ ॥ जिना पोतै पुंनु से गिआन बीचारी । जिना पोतै पुंनु तिन हउमै मारी । नानक जो नामि रते तिन कउ बलिहारी ॥ ४ ॥ ७ ॥ २७ ॥

(हे भाई !) जिस परमात्मा के दिए हुए ये देह और प्राण हैं, जो परमात्मा सब जीवों में व्यापक है, जिसकी सेवा-भक्ति करने से उसके दरबार में प्रतिष्ठा मिलती है, दरबार में स्वीकृति मिलती है, उसे कभी भी (मन से) भुलाना नहीं चाहिए ॥ १ ॥ मैं परमात्मा के नाम पर (सदा) बलिहारी जाता हूँ । (हे प्रभु !) जब तू विस्मृत हो जाता है, उस वक्त मेरी आत्मिक मृत्यु हो जाती है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे प्रभु !) जिन व्यक्तियों को तूने आप कुमार्गगामी बनाया है, जो (सदा) माया के मोह में ही (फँसे रहते हैं) उनके मन से तू बिसर जाता है । उन स्वेच्छाचारी अज्ञानी व्यक्तियों को तू योनियों में डाल देता है ॥ २ ॥ (हे भाई !) जिन मनुष्यों पर परमात्मा विशेष रूप से प्रसन्न होता है, उन्हें वह गुरु-सेवा में लगाता है, उनके मन में अपने आपको (परमात्मा) बसा देता है । वे मनुष्य गुरु की शिक्षा के अनुसार चलकर परमात्मा के नाम में लीन रहते हैं ॥ ३ ॥ (हे भाई !) जिन मनुष्यों के पास सौभाग्य होता है, वे मनुष्य परमात्मा के साथ गहरा सम्बन्ध बना लेते हैं, वे पवित्र विचार विचारते हैं, वे (अपने भीतर से) अहंकार दूर कर लेते हैं । हे नानक ! (कहो—) मैं उन मनुष्यों पर बलिहारी जाता हूँ, जो परमात्मा के नाम में रंगे रहते हैं ॥ ४ ॥ ७ ॥ २७ ॥

॥ गउड़ी गुआरेरी महला ३ ॥ तूं अकथु किउ कथिआ जाहि । गुर सबदु मारणु मन माहि समाहि । तेरे गुण अनेक कीमति नह पाहि ॥ १ ॥ जिस की बाणी तिसु माहि समाणी । तेरी अकथ कथा गुर सबदि वखाणी ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जह सतिगुरु तह सतसंगति बणाई । जह सतिगुरु सहजे हरिगुण गाई । जह सतिगुरु तहा हउमै सबदि जलाई ॥ २ ॥ गुरमुखि सेवा महली थाउ पाए । गुरमुखि अंतरि हरिनामु वसाए । गुरमुखि भगति हरिनामि समाए ॥ ३ ॥ आपे दाति करे

दातारु। पूरे सतिगुर सिउ लगै पिआरु। नानक नामि रते तिन कउ जैकारु ॥ ४ ॥ ८ ॥ २८ ॥

हे प्रभु ! तू अकथनीय है, तू अव्यक्त है। जिस मनुष्य के पास गुरु का शब्द-रूपी मसाला है, (उसने अपने मन को मार लिया है,) उसके मन में तू आ बसता है। हे प्रभु ! तेरे अनेकों ही गुण हैं, जीव तेरे गुणों का मूल्यांकन नहीं कर सकते ॥ १ ॥ यह गुणस्तुति जिस (परमात्मा) की है, उस (परमात्मा) में (ही) लीन रहती है, (परमात्मा के समान ही गुण-स्तुति भी अनन्त है)। हे प्रभु ! तेरे गुणों की कहानी अकथनीय है। गुरु के ज्ञान ने यही बात बतलाई है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिस हृदय में सतिगुरु बसता है, वह सत्संगति बन जाती है, (क्योंकि) जिस मनुष्य के हृदय में गुरु बसता है, वह मनुष्य आत्मिक स्थिरता में टिककर हरि के गुण गाता है। जिस हृदय में गुरु बसता है, उसमें गुरु के उपदेश ने अहंभावना जला दी है ॥ २ ॥ गुरु के सम्मुख रहनेवाला मनुष्य परमात्मा की सेवा-भक्ति करके परमात्मा के दरबार में स्थान प्राप्त कर लेता है, गुरु के सम्मुख रहकर मनुष्य अपने भीतर परमात्मा का नाम बसा लेता है। गुरु के सम्मुख रहनेवाला मनुष्य प्रभु-भक्ति के प्रभाव से प्रभु के नाम में लीन रहता है ॥ ३ ॥ देन देने में समर्थ परमात्मा आप ही जिस मनुष्य को (गुणस्तुति की) देन देता है, उसका प्यार पूर्णगुरु के साथ बन जाता है। हे नानक ! जो मनुष्य परमात्मा के नाम(-रंग) में रंगे रहते हैं, उन्हें (लोक-परलोक में) प्रशंसा मिलती है ॥ ४ ॥ ८ ॥ २८ ॥

॥ गउड़ी गुआरेरी महला ३ ॥ एकसु ते सभि रूप हहि रंगा। पउणु पाणी बैसंतरु सभि सहलंगा। भिन भिन वेखै हरिप्रभु रंगा ॥ १ ॥ एकु अचरजु एको है सोई। गुरमुखि वीचारे विरला कोई ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सहजि भवै प्रभु सभनी थाई। कहा गुपतु प्रगटु प्रभि बणत बणाई। आपे सुतिआ देइ जगाई ॥ २ ॥ तिस की कीमति किनै न होई। कहि कहि कथनु कहै सभु कोई। गुर सबदि समावै बूझै हरि सोई ॥ ३ ॥ सुणि सुणि वेखै सबदि मिलाए। वडी वडिआई गुर सेवा ते पाए। नानक नामि रते हरिनामि समाए ॥ ४ ॥ ९ ॥ २९ ॥

(संसार में दिखते हुए) सारे (अलग-अलग) रूप तथा रंग उस एक परमात्मा से ही बने हैं। उस एक से ही हवा पैदा हुई है, पानी बना है, आग पैदा हुई है और ये सारे (तत्व, भिन्न-भिन्न रूप-रंगों वाले जीवों में) मिले हुए हैं। वह परमात्मा (आप ही) अलग-अलग रंगों (वाले जीवों)

की सँभाल करता है ।। १ ।। यह एक आश्चर्यजनक कौतुक है कि परमात्मा आप ही (इस बहुरंगी संसार में सर्वत्र) मौजूद है। कोई विरला मनुष्य गुरु की शरण लेकर इसे विचारता है ।। १ ।। रहाउ ।। आत्मिक रूप से स्थिर वह परमात्मा सर्वत्र व्यापक हो रहा है। यह समस्त जगत्-क्रीड़ा प्रभु ने आप बनाई है। (माया-मोह की निद्रा में) सोए हुए जीव को वह परमात्मा आप ही जगा देता है ।। २ ।। हरेक जीव (अपनी तरफ़ से परमात्मा के गुण) कह-कहकर (उन गुणों का) वर्णन करता है, पर किसी जीव द्वारा उसका मूल्यांकन नहीं हो सकता। (हाँ) जो मनुष्य सतिगुरु के शब्द में जुड़ता है, वह परमात्मा से गहरा सम्बन्ध बना लेता है ।। ३ ।। (इस बहुरंगी संसार का स्वामी परमात्मा हरेक जीव की प्रार्थना) सुन-सुनकर (हरेक की) सँभाल करता है, (और प्रार्थना सुनकर ही जीव को) गुरु के शब्द में जोड़ता है। (गुरु के उपदेश में जुड़ा मनुष्य) गुरु की बतलाई सेवा से (लोक-परलोक में) बड़ा आदर-मान प्राप्त करता है। हे नानक! (गुरु के शब्द के प्रभाव से ही अनेकों) जीव परमात्मा के नाम (-रंग) में रँगे जाते हैं, परमात्मा के नाम में लीन हो जाते हैं ।। ४ ।। ९ ।। २९ ।।

।। गउड़ी गुआरेरी महला ३ ।। मनमुखि सूता माइआ मोहि पिआरि। गुरमुखि जागे गुण गिआन बीचारि। से जन जागे जिन नाम पिआरि ।। १ ।। सहजे जागै सवै न कोइ। पूरे गुर ते बूझै जनु कोइ ।। १ ।। रहाउ ।। असंतु अनाड़ी कदे न बूझै। कथनी करे तै माइआ नालि लूझै। अंधु अगिआनी कदे न सीझै ।। २ ।। इसु जुग महि रामनामि निसतारा। विरला को पाए गुर सबदि वीचारा। आपि तरै सगले कुल उधारा ।। ३ ।। इसु कलिजुग महि करम धरमु न कोई। कली का जनमु चंडाल कै घरि होई। नानक नाम बिना को मुकति न होई ।। ४ ।। १० ।। ३० ।।

स्वेच्छाचारी मनुष्य माया के मोह में, माया के ध्यान में (आत्मिक जीवन की ओर से) विस्मृत रहता है। गुरु के सम्मुख रहनेवाला मनुष्य परमात्मा के गुणों से जान-पहचान के विचार में (टिककर माया से) सचेत रहता है। (जिन मनुष्यों का परमात्मा के नाम में प्रेम हो जाता है) वे मनुष्य (माया-मोह की ओर से) सचेत रहते हैं ।। १ ।। जो कोई (सौभाग्यशाली मनुष्य) पूर्णगुरु से आत्मिक जीवन की सूझ प्राप्त करता है, वह आत्मिक स्थिरता में टिककर (माया के आक्रमणों से) सचेत रहता है,

वह माया के मोह की निद्रा में नहीं फँसता ।। १ ।। रहाउ ।। विकारी मनुष्य, विकारों के लिए हठ करनेवाला मनुष्य कभी भी आत्मिक जीवन की समझ प्राप्त नहीं कर सकता, वह ज्ञान की बातें करता रहता है, और माया के प्रति भी आकर्षित रहता है। (इस प्रकार माया के मोह में) अन्धा और अज्ञानी मनुष्य (ज़िन्दगी की बाज़ी में) कभी सफल नहीं होता ।। २ ।। इस मनुष्य जन्म में आकर परमात्मा के नाम के द्वारा ही (संसार-समुद्र से) उद्धार हो सकता है। कोई विरला मनुष्य ही गुरु के शब्द में जुड़कर, यह विचार पाता है। ऐसा मनुष्य आप (संसार-समुद्र से) पार उतर जाता है, अपने सारे वंशों को भी पार उतार लेता है ।। ३ ।। कुकर्मी मनुष्य के हृदय में (मानों) कलियुग आ जाता है, इस कलियुग के पंजे में फँसे हुए को कोई धर्म-कर्म छुड़ा नहीं सकता। हे नानक! परमात्मा के नाम के बिना कोई मनुष्य (कलियुग से) मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकता ।। ४ ।। १० ।। ३० ।।

।। गउड़ी महला ३ गुआरेरी ।। सचा अमरु सचा पातिसाहु। मनि साचै राते हरि वेपरवाहु। सचै महलि सचि नामि समाहु ।। १ ।। सुणि मन मेरे सबदु वीचारि। राम जपहु भवजलु उतरहु पारि ।। १ ।। रहाउ ।। भरमे आवै भरमे जाइ। इहु जगु जनमिआ दूजै भाइ। मनमुखि न चेतै आवै जाइ ।। २ ।। आपि भुला कि प्रभि आपि भुलाइआ। इहु जीउ विडाणी चाकरी लाइआ। महा दुखु खटे बिरथा जनमु गवाइआ ।। ३ ।। किरपा करि सतिगुरू मिलाए। एको नामु चेते विचहु भरमु चुकाए। नानक नामु जपे नाउ नउनिधि पाए ।। ४ ।। ११ ।। ३१ ।।

परमात्मा (जगत का) सदा स्थिर रहनेवाला बादशाह है, उसका हुक्म अटल है। जो मनुष्य (अपने) मन के द्वारा उस स्थायी परमात्मा के नाम में रंगे जाते हैं, वे उस निर्लिप्त हरि का रूप हो जाते हैं, वे उस अटल परमात्मा के दरबार में रहते हैं, उसके सत्यस्वरूप नाम में लीनता प्राप्त कर लेते हैं ।। १ ।। हे मेरे मन! (गुरु की शिक्षा) सुन, गुरु के शब्द को अपने विचार-मण्डल में बसाकर रख। यदि तू परमात्मा का नाम स्मरण करेगा तो संसार-समुद्र से पार उतर जायगा ।। १ ।। रहाउ ।। पर यह जगत् (स्वेच्छाचारी होकर) माया के मोह में फँसकर जन्म-मरण के चक्र में पड़ा रहता है, माया की दुबिधा में ही उत्पन्न होता है और माया की दुबिधा में ही मरता है। स्वेच्छाचारी जगत् परमात्मा को स्मरण नहीं करता और जन्मता-मरता रहता है ।। २ ।।

यह जीव आप कुमार्गगामी बना है, अथवा परमात्मा ने आप इसे कुमार्ग-गामी बना दिया है। (यह स्पष्ट है कि जीव अपना वास्तविक लक्ष्य भुलाए हुए है और माया के मोह में फँसकर) यह जीव दूसरों की नौकरी कर रहा है, (जिससे) यह बहुत दुःख पाता है, और मनुष्य-जन्म व्यर्थ गवाँ रहा है ।। ३ ।। परमात्मा कृपा करके जिस मनुष्य को गुरु से मिलाता है, वह मनुष्य (माया का मोह छोड़कर) केवल परमात्मा का नाम स्मरण करता है, और अपने भीतर से माया की दुबिधा दूर कर लेता है। हे नानक! वह मनुष्य सदा हरि-नाम स्मरण करता है, और हरि-नाम का भण्डार प्राप्त करता है, जो (उसके लिए, मानों जगत् के सारे) नौ भण्डार हैं ।। ४ ।। ११ ।। ३१ ।।

।। गउड़ी गुआरेरी महला ३ ।। जिना गुरमुखि धिआइआ तिन पूछउ जाइ। गुर सेवा ते मनु पतीआइ। से धनवंत हरिनामु कमाइ। पूरे गुर ते सोझी पाइ ।। १ ।। हरि हरि नामु जपहु मेरे भाई। गुरमुखि सेवा हरि घाल थाइ पाई ।। १ ।। रहाउ ।। आपु पछाणै मनु निरमलु होइ। जीवन मुकति हरि पावै सोइ। हरिगुण गावै मति ऊतम होइ। सहजे सहजि समावै सोइ ।। २ ।। दूजै भाइ न सेविआ जाइ। हउमै माइआ महा बिखु खाइ। पुति कुटंबि ग्रिहि मोहिआ माइ। मनमुखि अंधा आवै जाइ ।। ३ ।। हरि हरि नामु देवै जनु सोइ। अनदिनु भगति गुर सबदी होइ। गुरमति विरला बूझै कोइ। नानक नामि समावै सोइ ।। ४ ।। १२ ।। ३२ ।।

जिन मनुष्यों ने गुरु के मार्ग पर चलकर परमात्मा का नाम स्मरण किया है, (जब) मैं उनसे (स्मरण की जाँच) पूछता हूँ, (तो वे बतलाते हैं कि) गुरु की बतलाई सेवा से (ही) मनुष्य का मन (प्रभु-स्मरण में) विश्वस्त होता है। (गुरु की शरण लेनेवाले) वे मनुष्य परमात्मा का नाम-धन प्राप्त करके धनवान हो जाते हैं। यह बुद्धि पूर्णगुरु से ही मिलती है ।। १ ।। हे मेरे भाई! (गुरु की शरण लेकर) सदा परमात्मा का नाम स्मरण करते रहो, गुरु के माध्यम से की हुई सेवा-भक्ति की मेहनत परमात्मा स्वीकार कर लेता है ।। १ ।। रहाउ ।। (गुरु के माध्यम से जो मनुष्य) अपने आत्मिक जीवन को खोजता रहता है, उसका मन पवित्र हो जाता है, वह इस जन्म में ही माया के बन्धनों से मुक्ति प्राप्त कर लेता है और परमात्मा को मिल लेता है। जो मनुष्य (गुरु की शरण लेकर) परमात्मा के गुण गाता है, उसकी बुद्धि श्रेष्ठ हो जाती है, वह सदा

आत्मिक स्थिरता में टिका रहता है ॥ २ ॥ (हे मेरे भाई !) माया के मोह में फँसे रहने से परमात्मा की सेवा-भक्ति नहीं हो सकती। अहंकार एक बहुत तीखा जहर है, (यह जहर मनुष्य के आत्मिक जीवन को) समाप्त कर देता है। माया (मनुष्य को) पुत्र (के मोह) के द्वारा, परिवार (के मोह) के द्वारा, घर (के मोह) के द्वारा ठगती रहती है, (माया के मोह में) अन्धा हुआ मनुष्य स्वेच्छाचारी होकर जन्म-मरण के चक्र में पड़ा रहता है ॥ ३ ॥ परमात्मा गुरु के माध्यम से जिस मनुष्य को) अपने नाम की देन देता है, वह मनुष्य (उसका) सेवक बन जाता है। गुरु के शब्द के द्वारा ही प्रतिदिन परमात्मा की भक्ति हो सकती है। गुरु की शिक्षा लेकर ही कोई विरला मनुष्य (जीवन-मनोरथ को) समझता है, और हे नानक ! वह मनुष्य परमात्मा के नाम में लीन रहता है ॥४॥१२॥३२॥

॥ गउड़ी गुआरेरी महला ३ ॥ गुर सेवा जुग चारे होई। पूरा जनु कार कमावै कोई। अखुटु नाम धनु हरि तोटि न होई। ऐथै सदा सुखु दरि सोभा होई ॥ १ ॥ ए मन मेरे भरमु न कीजै। गुरमुखि सेवा अंम्रित रसु पीजै ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सतिगुरु सेवहि से महा पुरख संसारे। आपि उधरे कुल सगल निसतारे। हरि का नामु रखहि उरधारे। नामि रते भउजल उतरहि पारे ॥ २ ॥ सतिगुरु सेवहि सदा मनि दासा। हउमै मारि कमलु परगासा। अनहदु वाजै निजघरि वासा। नामि रते घर माहि उदासा ॥ ३ ॥ सतिगुरु सेवहि तिन की सची बाणी। जुगु जुगु भगती आखि वखाणी। अनदिनु जपहि हरि सारंगपाणी। नानक नामि रते निहकेवल निरबाणी ॥ ४ ॥ १३ ॥ ३३ ॥

गुरु की बतलाई सेवा करने का नियम सदा से ही चला आ रहा है। कोई पूर्ण मनुष्य ही गुरु के अनुसार काम-धन्धा करता है, (जो करता है वह) अक्षुण्ण हरि-नाम का धन, (एकत्रित कर लेता है, उस धन में कभी) घाटा नहीं होता। (यह नाम-धन इकट्ठा करनेवाला मनुष्य) इस लोक में सदा आत्मिक आनन्द प्राप्त करता है, प्रभु के दरबार में भी उसे शोभा मिलती है ॥ १ ॥ हे मेरे मन ! (गुरु की बतलाई शिक्षा के अनुसार) सन्देह नहीं करना चाहिए, गुरु की बतलाई सेवा-भक्ति करके आत्मिक जीवन देनेवाला हरिनाम-रस पीना चाहिए ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जो मनुष्य गुरु की शरण लेते हैं वे संसार में महापुरुष माने जाते हैं, वे संसार-समुद्र से पार उतर जाते हैं, और अपने तमाम वंश को भी पार करा देते हैं, वे

परमात्मा का नाम सदा अपने हृदय में सँभालकर रखते हैं। प्रभु-नाम (के रंग) में रंगे हुए वे मनुष्य संसार-समुद्र से पार उतर जाते हैं ॥ २ ॥ जो मनुष्य गुरु की शरण लेते हैं, वे अपने मन में सदा (सबके) दास बने रहते हैं, वे अपने भीतर से अहंकार दूर कर लेते हैं और उनका हृदय कमल खिला रहता है। उनके भीतर (गुणस्तुति का मानों बाजा) निरन्तर बजता रहता है, उनकी सुरति प्रभु-चरणों में टिकी रहती है। प्रभु-नाम में रंगे हुए वे मनुष्य गृहस्थ में रहते हुए भी माया से निर्लिप्त रहते हैं ॥३॥ जो मनुष्य गुरु की शरण लेते हैं, (परमात्मा की गुणस्तुति करती हुई) उनकी वाणी सदा के लिए अटल हो जाती है, हरेक युग में (सदा ही) भक्त-जन वह वाणी उच्चरित कर (दूसरों को भी) सुनाते हैं। वे मनुष्य प्रतिदिन सारंगपाणि प्रभु का नाम जपते रहते हैं। हे नानक ! जो मनुष्य (गुरु की शरण लेकर) प्रभु के नाम में रंग जाते हैं, उनका जीवन पवित्र हो जाता है, वे वासना-रहित हो जाते हैं ॥ ४ ॥ १३ ॥ ३३ ॥

॥ गउड़ी गुआरेरी महला ३ ॥ सतिगुरु मिलै वडभागि संजोग। हिरदै नामु नित हरिरस भोग ॥ १ ॥ गुरमुखि प्राणी नामु हरि धिआइ। जनमु जीति लाहा नामु पाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गिआनु धिआनु गुर सबदु है मीठा। गुर किरपा ते किनै विरलै चखि डीठा ॥ २ ॥ करम कांड बहु करहि अचार। बिनु नावै ध्रिगु ध्रिगु अहंकार ॥ ३ ॥ बंधनि बाधिओ माइआ फास। जन नानक छूटै गुर परगास ॥ ४ ॥ १४ ॥ ३४ ॥

जिस मनुष्य को सौभाग्यवश, संयोगवश गुरु मिल जाता है, उसके हृदय में परमात्मा का नाम बस जाता है, वह सदा परमात्मा के नाम-रस का आनन्द प्राप्त करता है ॥ १ ॥ जो प्राणी गुरु की शरण लेकर परमात्मा का नाम स्मरण करता रहता है, वह मनुष्य जन्म की बाजी जीतकर (जाता है, और) परमात्मा के नाम-धन की कमाई प्राप्त करता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिस मनुष्य को सतिगुरु का शब्द मीठा लगता है, गुरु का उपदेश ही (उसके लिए) धर्म-चर्चा है। (गुरु का शब्द ही उसके लिए) समाधि है। पर किसी विरले भाग्यों वाले मनुष्य ने गुरु की कृपा से (गुरु के मीठे शब्द का रस) चखकर देखा है ॥ २ ॥ जो व्यक्ति धार्मिक कर्मकाण्ड करते हैं तथा और दूसरी अनेक धार्मिक रस्में करते हैं, लेकिन परमात्मा के नाम से खाली रहते हैं, (यह कर्मकाण्ड उनके भीतर) अहंकार (पैदा करता है और उनका जीवन) धिक्कार योग्य ही (रहता) है ॥ ३ ॥ हे दास नानक ! (परमात्मा से बिछुड़ने पर मनुष्य) माया के बन्धन में ही

बंधा रहता है। यह तभी इस बन्धन से मुक्त होता है, जब गुरु (के उपदेश) का प्रकाश (उसे प्राप्त होता) है ॥ ४ ॥ १४ ॥ ३४ ॥

॥ महला ३ गउड़ी बैरागणि ॥ जैसी धरती ऊपर मेघुला बरसतु है किआ धरती मधे पाणी नाही । जैसे धरती मधे पाणी परगासिआ बिनु पगा वरसत फिराही ॥ १ ॥ बाबा तूं ऐसे भरमु चुकाही । जो किछु करतु है सोई कोई है रे तैसे जाइ समाही ॥ १ ॥ रहाउ ॥ इसतरी पुरख होइ कै किआ ओइ करम कमाही । नाना रूप सदा हहि तेरे तुझही माहि समाही ॥ २ ॥ इतने जनम भूलि परे से जा पाइआ ता भूले नाही । जा का कारजु सोई परुजाणै जे गुर कै सबदि समाही ॥ ३ ॥ तेरा सबदु तूं है हहि आपे भरमु कहा ही । नानक ततु तत सिउ मिलिआ पुनरपि जनमि न आही ॥ ४ ॥ १ ॥ १५ ॥ ३५ ॥

(धरती और बादल का दृष्टांत लेकर देखो) जैसी धरती है, वैसा ही इसके ऊपर वर्षा करनेवाला बादल है जो वर्षा करता है, धरती में भी (वैसा) पानी है, (जैसा बादल में है)। (कुआँ खोदने से) जैसे धरती से पानी निकल आता है, वैसे बादल भी (पानी की) वर्षा करते फिरते हैं, (जीवात्मा तथा परमात्मा दोनों का सम्बन्ध भी धरती और बादल जैसा है) ॥ १ ॥ हे भाई ! (सामायन्तः भ्रम यह है कि जीव अपना अस्तित्व प्रभु से भिन्न मानकर अपने आपको कर्मों के करनेवाले समझते हैं) तू अपना (यह) भ्रम, यह श्रद्धा बनाकर दूर कर कि प्रभु जैसा किसी जीव को बनाता है, वैसा ही वह जीव बन जाता है, और उसी दिशा में जीव लगे रहते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ क्या स्त्री और क्या पुरुष— तुझसे विपरीत कोई कुछ नहीं कर सकते। (ये सब स्त्रियाँ और पुरुष) सदा तेरे ही अलग-अलग रूप हैं और अन्त में तेरे भीतर समा जाते हैं ॥ २ ॥ (परमात्मा की स्मृति से हटकर) जीव अनेकों जन्मों में पड़े रहते हैं, जब परमात्मा का ज्ञान प्राप्त हो जाता है, तब कुमार्गगामी होने से हट जाते हैं। यदि जीव गुरु के शब्द में टिके रहें, तो यह समझ पड़ती है कि जिस परमात्मा का यह जगत बनाया हुआ है, वही इसे अच्छी प्रकार समझता है ॥ ३ ॥ (हे प्रभु ! सर्वत्र) तेरा (ही) हुक्म (सक्रिय) है, (सर्वत्र) तू आप ही मौजूद है— (जिस मनुष्य के भीतर यह निश्चय बन जाए, उसे) भ्रम कहाँ रह जाता है ? हे नानक ! (जिन मनुष्यों के भीतर परमात्मा से एकत्व वैसे ही हो जाता है, जैसे हवा पानी आदि हरेक) तत्व (अपने) तत्व से मिल जाता है। ऐसे मनुष्य दोबारा जन्म नहीं लेते ॥ ४ ॥ १ ॥ १५ ॥ ३५ ॥

॥ गउड़ी बैरागणि महला ३ ॥ सभु जगु कालै वसि है बाधा दूजै भाइ। हउमै करम कमावदे मनमुखि मिलै सजाइ ॥ १ ॥ मेरे मन गुर चरणी चितु लाइ। गुरमुखि नामु निधानु लै दरगह लए छडाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ लख चउरासीह भरमदे मन हठि आवै जाइ। गुर का सबदु न चीनिओ फिरि फिरि जोनी पाइ ॥ २ ॥ गुरमुखि आपु पछाणिआ हरिनामु वसिआ मनि आइ। अनदिनु भगती रतिआ हरिनामे सुखि समाइ ॥ ३ ॥ मनु सबदि मरै परतीति होइ हउमै तजे विकार। जन नानक करमी पाईअनि हरिनामा भगति भंडार ॥ ४ ॥ २ ॥ १६ ॥ ३६ ॥

(जब तक) यह जगत् माया के मोह में बँधा रहता है, (तब तक यह) सारा जगत् आत्मिक मृत्यु के कब्जे में आया रहता है। स्वेच्छाचारी मनुष्य (सारे) काम अहंकार के वशीभूत होकर करते हैं और उन्हें (आत्मिक मृत्यु की ही) सजा मिलती है ॥ १ ॥ हे मेरे मन! गुरु के चरणों में सुरति जोड़। गुरु की शरण लेकर परमात्मा का नाम-भण्डार एकत्रित कर ले, (यह तुझे) परमात्मा के दरबार में (तेरे किए कर्मों का लेखा करते वक्त) मुक्त करेगा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (माया के मोह में बँधे जीव) चौरासी लाख योनियों में फिरते रहते हैं। अपने मन के हठ के कारण (माया के मोह में फंसा जीव) जन्म-मरण के चक्र में पड़ा रहता है। जो मनुष्य गुरु के उपदेश को नहीं समझता, वह बार-बार योनियों में पड़ता है ॥ २ ॥ जो मनुष्य गुरु के सम्मुख रहकर आत्मिक जीवन खोजता रहता है, उसके मन में परमात्मा का नाम आ बसता है, हर रोज परमात्मा की भक्ति (के रंग) में रंगा रहने से वह परमात्मा के नाम में लीन रहता है, वह आत्मिक आनन्द में टिका रहता है ॥ ३ ॥ जिस मनुष्य का मन गुरु के शब्द में जुड़ने से आपा-भाव से रहित हो जाता है, उसकी (गुरु के उपदेश में) श्रद्धा बन जाती है और वह अपने भीतर से अहंकार (आदि) विकार त्यागता है। हे दास नानक! परमात्मा के नाम के खज़ाने, भक्ति के खज़ाने, परमात्मा की कृपा से ही मिलते हैं ॥ ४ ॥ २ ॥ १६ ॥ ३६ ॥

॥ गउड़ी बैरागणि महला ३ ॥ पेईअड़ै दिन चारि है हरि हरि लिखि पाइआ। सोभावंती नारि है गुरमुखि गुण गाइआ। पेवकड़ै गुण संमलै साहुरै वासु पाइआ। गुरमुखि सहजि समाणीआ हरि हरि मनि भाइआ ॥ १ ॥ ससुरै पेईऐ

पिरु वसै कहु कितु बिधि पाईऐ । आपि निरंजनु अलखु है आपे मेलाईऐ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ आपे ही प्रभु देहि मति हरिनामु धिआईऐ । वडभागी सतिगुरु मिलै मुखि अंम्रितु पाईऐ । हउमै दुबिधा बिनसि जाइ सहजे सुखि समाईऐ । सभु आपे आपि वरतदा आपे नाइ लाईऐ ॥ २ ॥ मनमुखि गरबि न पाइओ अगिआन इआणे । सतिगुर सेवा ना करहि फिरि फिरि पछुताणे । गरभ जोनी वासु पाइदे गरभे गलि जाणे । मेरे करते एवै भावदा मनमुख भरमाणे ॥ ३ ॥ मेरै हरि प्रभि लेखु लिखाइआ धुरि मसतकि पूरा । हरि हरि नामु धिआइआ भेटिआ गुरु सूरा । मेरा पिता माता हरिनामु है हरि बंधपु बीरा । हरि हरि बखसि मिलाइ प्रभ जनु नानकु कीरा ॥ ४ ॥ ३ ॥ १७ ॥ ३७ ॥

परमात्मा ने (हरेक जीव के मस्तक पर यही लेख) लिखकर रख दिया है कि हरेक को इस लोक में रहने के लिए थोड़े ही दिन मिले हुए हैं, (फिर भी सब जीव माया के मोह में फँसे रहते हैं) । वह जीव-स्त्री (लोक-परलोक में) शोभा प्राप्त करती है, जो गुरु की शरण लेकर परमात्मा के गुण गाती है । जो जीव-स्त्री इस पितृ-गृह में रहते हुए परमात्मा के गुण अपने हृदय में सँभालती है, उसे परलोक में आदरवाला स्थान मिलता है । गुरु के सम्मुख रहकर वह जीव-स्त्री आत्मिक स्थिरता में रहती है । परमात्मा (का नाम) उसे अपने मन में प्यारा लगता है ॥ १ ॥ (हे सत्संगी !) बता, वह पति-प्रभु किस तरीके से मिल सकता है, जो इस लोक-परलोक में (सर्वत्र) बसता है ? (हे जिज्ञासु जीव-स्त्री !) वह पति-प्रभु (हर स्थान पर मौजूद होकर भी) माया के प्रभाव से परे है और अलक्ष्य भी है । वह आप ही अपना मेल कराता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे परमात्मा !) तू आप ही (सब जीवों का) मालिक है, जिस जीव को तू आप ही बुद्धि देता है, उससे ही हरि-नाम का स्मरण किया जा सकता है । जिस मनुष्य को सौभाग्यवश गुरु मिल जाता है, उसके मुँह में आत्मिक जीवन देनेवाला नाम-रस पड़ता है । उस मनुष्य के भीतर से अहंतावना दूर हो जाती है, उसकी मानसिक अस्थिरता समाप्त हो जाती है, वह आत्मिक स्थिरता में टिका रहता है, वह आत्मिक आनन्द में डूबा रहता है । (हे भाई !) सर्वत्र प्रभु आप ही आप मौजूद है, वह आप ही (जीवों को) अपने नाम में जोड़ता है ॥ २ ॥ स्वेच्छाचारी मनुष्य अज्ञानी होते हैं, (जीवन-युक्ति से) अनजान होते हैं, वे अहंकार में रहते हैं, उन्हें परमात्मा का मिलाप नहीं होता । वह (अपने मान में

रहकर) सतिगुरु की शरण नहीं लेते। (कुमार्गगामी होकर) बार-बार पछताते भी रहते हैं। वे मनुष्य जन्म-मरण के चक्र में पड़े रहते हैं, इस चक्र में उनका आत्मिक जीवन गल जाता है। मेरे कर्त्तार को यही अच्छा लगता है कि स्वेच्छाचारी मनुष्य जन्म-मरण में ही भटकते रहें॥ ३॥ जिस (सौभाग्यशाली मनुष्य) के मस्तक पर मेरे हरिप्रभु ने अपने दरबार से (कृपा का) अटल लेख लिख दिया है, उसे (सब विकारों से हाथ देकर बचानेवाला) शूरवीर गुरु मिल जाता है, (गुरु की कृपा से) वह सदा परमात्मा का नाम स्मरण करता है। (हे भाई!) परमात्मा का नाम ही मेरा पिता है, नाम ही मेरी माँ है, परमात्मा (का नाम) ही मेरा सम्बन्धी है, मेरा भाई है, (मैं सदा परमात्मा के द्वार पर ही प्रार्थना करता हूँ कि) हे हरि! यह नानक तेरा तुच्छ दास है, इस पर कृपा कर और इसे (अपने चरणों में) जोड़े रख॥ ४॥ ३॥ १७॥ ३७॥

॥ गउड़ी बैरागणि महला ३॥ सतिगुर ते गिआनु पाइआ हरि ततु बीचारा। मति मलीण परगटु भई जपि नामु मुरारा। सिवि सकति मिटाईआ चूका अंधिआरा। धुरि मसतकि जिन कउ लिखिआ तिन हरिनामु पिआरा॥ १॥ हरि कितु बिधि पाईऐ संत जनहु जिसु देखि हउ जीवा। हरि बिनु चसा न जीवती गुर मेलिहु हरिरसु पीवा॥ १॥ रहाउ॥ हउ हरिगुण गावा नित हरि सुणी हरि हरि गति कीनी। हरिरसु गुर ते पाइआ मेरा मनु तनु लीनी। धनु धनु गुरु सतपुरखु है जिनि भगति हरि दीनी। जिसु गुर ते हरि पाइआ सो गुरु हम कीनी॥ २॥ गुणदाता हरि राइ है हम अवगणिआरे। पापी पाथर डूबदे गुरमति हरि तारे। तूं गुणदाता निरमला हम अवगणिआरे। हरि सरणागति राखि लेहु मूड़ मुगध निसतारे॥ ३॥ सहजु अनंदु सदा गुरमती हरि हरि मनि धिआइआ। सजणु हरिप्रभु पाइआ घरि सोहिला गाइआ। हरि दइआ धारि प्रभ बेनती हरि हरि चेताइआ। जन नानकु मंगै धूड़ि तिन जिन सतिगुरु पाइआ॥ ४॥ ४॥ १८॥ ३८॥

जिन मनुष्यों ने गुरु से (परमात्मा के साथ) गहरे सम्बन्ध (बनाने) सीख लिए, (जगत के) मूल परमात्मा को विचारना (सीख लिया), परमात्मा का नाम स्मरण कर उनकी बुद्धि परिष्कृत हो गई। कल्याण-स्वरूप परमात्मा ने (उनके भीतर से) माया (का प्रभाव) मिटा दिया। (उनके

भीतर से माया-मोह का) अन्धकार दूर हो गया। (परन्तु) परमात्मा का नाम उन्हें ही प्यारा लगता है, जिनके मस्तक पर परमात्मा ने अपने नाम का लेख लिख दिया ॥ १ ॥ जिस परमात्मा का दर्शन करके मेरे भीतर आत्मिक जीवन पैदा होता है, (कहो) उससे किस तरीके से मिला जा सकता है। उस प्रभु से बिछुड़कर मैं लेशमात्र के लिए भी (आत्मिक जीवन) जी नहीं सकता। (हे सन्तजनो !) मुझे गुरु के (साथ) मिलाओ, (ताकि गुरु की कृपा से) मैं परमात्मा के नाम का रस पान कर सकूँ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे सन्तजनो ! प्यारे गुरु की कृपा से) मैं नित्य परमात्मा के गुण गाता रहता हूँ, मैं नित्यप्रति परमात्मा का नाम सुनता रहता हूँ, उस परमात्मा ने मुझे ऊँची आत्मिक अवस्था प्रदान की है। गुरु से मैंने परमात्मा के नाम का आस्वादन प्राप्त किया है, (अब) मेरा तन-मन (उस स्वाद में) लीन रहता है। (हे संत जनो !) जिस गुरु ने (मुझे) परमात्मा की भक्ति (की देन) दी है, (मेरे वास्ते तो) वह सतिपुरुष गुरु (सदा ही) सराहना योग्य है। जिस गुरु से मैंने परमात्मा (का नाम) प्राप्त किया है, उस गुरु को मैंने अपना बना लिया है ॥ २ ॥ (हे भाई ! सारे जगत् का) मालिक परमात्मा (सब जीवों को सब) गुणों की देन देनेवाला है, हम (जीव) अवगुणों से भरे रहते हैं। (जैसे) पत्थर (पानी में डूब जाते हैं, वैसे ही हम) पापी (जीव विकारों के समुद्र में) डूबे रहते हैं, परमात्मा (हमें) गुरु की शिक्षा देकर (उस समुद्र से) पार कराता है। हे प्रभु ! तू पवित्र-स्वरूप है, तू गुण देनेवाला है, हम जीव अवगुणों से भरे पड़े हैं। हे हरि ! हम तेरी शरण आए हैं, (हमें अवगुणों से) बचा ले, (हम) महामूर्खों को (विकारों के समुद्र से) पार कर ले ॥ ३ ॥ जिन मनुष्यों ने परमात्मा को (अपने) मन में (सदा) स्मरण किया है, वह गुरु के उपदेश के अनुसार चलकर आत्मिक स्थिरता प्राप्त करते हैं। जिन्हें हरि-प्रभु सज्जन मिल जाता है, वे अपने हृदय-घर में परमात्मा की गुणस्तुति का गीत गाते रहते हैं। हे हरि ! कृपा कर, (मेरी) विनती (सुन), (मुझे) अपने नाम का स्मरण दे। (हे प्रभु !) दास नानक (तेरे द्वार से) उन मनुष्यों के चरणों की धूलि माँगता है, जिन्हें (तेरी कृपा से) गुरु मिल गया है ॥ ४ ॥ ४ ॥ १८ ॥ ३८ ॥

गउड़ी गुआरेरी महला ४ चउथा चउपदे

१ ओं सतिगुर प्रसादि। पंडितु सासत सिम्रिति पड़िआ। जोगी गोरखु गोरखु करिआ। मै मूरख हरि हरि जपु

पड़िआ ॥ १ ॥ ना जाना किआ गति राम हमारी । हरि भजु मन मेरे तरु भउजलु तू तारी ॥ १ ॥ रहाउ ॥ संनिआसी बिभूत लाइ देह सवारी । परत्रिअ तिआगु करी ब्रहमचारी । मै मूरख हरि आस तुमारी ॥ २ ॥ खत्री करम करे सूरतणु पावै । सूदु वैसु पर किरति कमावै । मै मूरख हरिनामु छडावै ॥ ३ ॥ सभ तेरी स्रिसटि तूं आपि रहिआ समाई । गुरमुखि नानक दे वडिआई । मै अंधुले हरि टेक टिकाई ॥ ४ ॥ १ ॥ ३९ ॥

पण्डित शास्त्र और स्मृतियाँ पढ़ता है, योगी (अपने) गुरु गोरखनाथ (के नाम) का जाप करता है (और उसकी बतलाई समाधि आदि को आत्मिक जीवन का सहारा बनाए बैठा है), पर मुझ मूर्ख (पण्डितों, योगियों के लिए मूर्ख) ने परमात्मा के नाम का जाप करना ही (अपने गुरु से) सीखा है ॥ १ ॥ हे मेरे राम ! मुझे नहीं सूझता (कि मैं तेरा नाम भुला दूँ, तो मेरी कैसी आत्मिक दशा हो जायगी) । (हे राम ! मैं तो अपने मन को यही समझाता हूँ—) हे मेरे मन ! परमात्मा का नाम स्मरण कर (और) संसार-समुद्र से पार उतर जा, (परमात्मा का नाम ही संसार-समुद्र से पार उतरने के लिए नाव है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥ संन्यासी ने राख मल कर अपने शरीर को संवारा हुआ है, उसने पर-नारी का परित्याग कर ब्रह्मचर्य धारण किया हुआ है, (उसकी दृष्टि में मेरे जैसा गृहस्थ तो मूर्ख है, पर) हे हरि ! मुझ मूर्ख को तेरे नाम का ही सहारा है ॥ २ ॥ (स्मृतियों के अनुसार) क्षत्री (शूरवीरता के) कार्य करता है और शौर्य की प्रसिद्धि प्राप्त करता है, (वह इसी को जीवन-लक्ष्य समझता है), शूद्र दूसरों की सेवा करता है, वैश्य भी (वाणिज्य आदि) काम करता है, (शूद्र और वैश्य दोनों अपने काम में मग्न हैं, पर मैं केवल निरे काम-काज को जीवन-मनोरथ नहीं समझता, इनकी दृष्टि में) मैं मूर्ख हूँ, (पर मुझे विश्वास है कि) परमात्मा का नाम ही (संसार-समुद्र के विकारों से) बचाता है ॥ ३ ॥ (पर, हे प्रभु !) यह सारी सृष्टि तेरे द्वारा निर्मित है, (सब जीवों में) तू आप ही व्यापक है, (जो कुछ तू उन्हें सुझाता है, वही उन्हें सूझता है), हे नानक ! (जिसपर प्रभु कृपा करता है उसे) गुरु की शरण देकर (अपने नाम की) महानता देता है, (इन लोगों के लिए मैं अन्धा हूँ, पर) मुझ अन्धे ने परमात्मा के नाम का आसरा लिया हुआ है ॥ ४ ॥ १ ॥ ३९ ॥

॥ गउड़ी गुआरेरी महला ४ ॥ निरगुण कथा कथा है हरि की । भजु मिलि साधू संगति जन की । तरु भउजलु अकथ कथा सुनि हरि की ॥ १ ॥ गोबिंद सतसंगति मेलाइ ।

हरिरसु रसना रामगुन गाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जो जन धिआवहि हरि हरिनामा। तिन दासनिदास करहु हम रामा। जन की सेवा ऊतम कामा ॥ २ ॥ जो हरि की हरि कथा सुणावै। सो जनु हमरै मनि चिति भावै। जन पग रेणु वडभागी पावै ॥ ३ ॥ संत जना सिउ प्रीति बनि आई। जिन कउ लिखतु लिखिआ धुरि पाई। ते जन नानक नामि समाई ॥ ४ ॥ २ ॥ ४० ॥

परमात्मा की गुणस्तुति की बातें तीनों गुणों से ऊपर हैं। हे भाई ! साधु जनों की संगति में मिलकर (उस परमात्मा का) भजन किया कर, उस परमात्मा की गुणस्तुति सुना कर, जिसके गुण अकथनीय हैं (और, गुणस्तुति के प्रभाव से) संसार-समुद्र से पार उतर ॥ १ ॥ हे गोविन्द ! मुझे सत्संगति का सान्निध्य दे (ताकि मेरी) जिह्वा हरि-नाम का स्वाद (लेकर) हरिगुण गाती रहे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे हरि ! जो मनुष्य तेरा नाम-स्मरण करते हैं, मुझे उनके दासों का दास बना। (तेरे) दासों की सेवा (मनुष्य जीवन में सबसे) श्रेष्ठ काम है। (हे भाई !) जो मनुष्य (मुझे) परमात्मा (की गुणस्तुति) की बातें सुनाता है, वह मुझे प्यारा लगता है। (परमात्मा के) भक्त की चरणधूलि कोई सौभाग्यशाली (ही) प्राप्त करता है ॥ ३ ॥ हे नानक ! (प्रभु के) संतजनों के साथ (उन मनुष्यों की प्रीति निभती है, जिनके माथे पर परमात्मा ने अपने दरबार से ही (अपनी कृपा का) लेख लिख दिया हो, वे मनुष्य परमात्मा के नाम में (सदा के लिए) लीनता प्राप्त कर लेते हैं ॥ ४ ॥ २ ॥ ४० ॥

॥ गउड़ी गुआरेरी महला ४ ॥ माता प्रीति करे पुतु खाइ। मीने प्रीति भई जलि नाइ। सतिगुर प्रीति गुरसिख मुखि पाइ ॥ १ ॥ ते हरिजन हरि मेलहु हम पिआरे। जिन मिलिआ दुख जाहि हमारे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिउ मिलि बछरे गऊ प्रीति लगावै। कामनि प्रीति जा पिरु घरि आवै। हरिजन प्रीति जा हरि जसु गावै ॥ २ ॥ सारिंग प्रीति बसै जल धारा। नरपति प्रीति माइआ देखि पसारा। हरिजन प्रीति जपै निरंकारा ॥ ३ ॥ नर प्राणी प्रीति माइआ धनु खाटे। गुरसिख प्रीति गुरु मिलै गलाटे। जन नानक प्रीति साध पग चाटे ॥ ४ ॥ ३ ॥ ४१ ॥

माँ प्रसन्न होती है, जब उसका पुत्र कोई बढ़िया चीज खाता है।

पानी में स्नान कर मछली को प्रसन्नता होती है, गुरु को प्रसन्नता होती है, जब कोई मनुष्य किसी गुरमुख के मुँह में (भोजन) डालता है, (जब कोई किसी गुरमुख की सेवा करता है) ॥ १ ॥ हे हरि ! मुझे अपने वे सेवक मिला, जिनके मिलने से सारे दुःख दूर हो जाएँ (और मेरे भीतर आत्मिक आनन्द पैदा हो जाए) ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जैसे (अपने) बछड़े से मिलकर गाय खुश होती है, वैसे ही स्त्री को खुशी होती है, जब उसका पति घर आता है, (वैसे ही) परमात्मा के सेवक को तब खुशी होती है, जब वह परमात्मा की गुणस्तुति करता है ॥ २ ॥ पपीहे को खुशी होती है, जब (स्वाति नक्षत्र में) मूसलाधार पानी बरसता है, माया का प्रसार देखकर (किसी) राजा-बादशाह को खुशी होती है। (उसी प्रकार) प्रभु के दास को खुशी होती है, जब उसे उसका गुरु गले लगाकर मिलता है। हे नानक ! परमात्मा के सेवक को खुशी होती है, जब वह किसी गुरमुख के चरण छूता है ॥ ४ ॥ ३ ॥ ४१ ॥

॥ गउड़ी गुआरेरी महला ४ ॥ भीख क प्रीति भीख प्रभ पाइ। भूखे प्रीति होवै अंनु खाइ। गुरसिख प्रीति गुर मिलि आघाइ ॥ १ ॥ हरि दरसनु देहु हरि आस तुमारी। करि किरपा लोच पूरि हमारी ॥ १ ॥ रहाउ ॥ चकवी प्रीति सूरजु मुखि लागै। मिलै पिआरे सभ दुख तिआगै। गुरसिख प्रीति गुरू मुखि लागै ॥ २ ॥ बछरे प्रीति खीरु मुखि खाइ। हिरदै बिगसै देखै माइ। गुरसिख प्रीति गुरू मुखि लाइ ॥ ३ ॥ होरु सभ प्रीति माइआ मोहु काचा। बिनसि जाइ कूरा कचु पाचा। जन नानक प्रीति त्रिपति गुरु साचा ॥ ४ ॥ ४ ॥ ४२ ॥

भिखारी को (तब) खुशी होती है, जब (उसे किसी गृहस्वामी से) भिक्षा मिलती है। भूखे मनुष्य को तब खुशी होती है, जब (वह) अन्न खाता है। (इसी प्रकार) गुरु के सिक्ख को खुशी होती है, जब वह गुरु से मिलकर माया की तृष्णा से सन्तुष्ट होता है ॥ १ ॥ हे हरि ! कृपा कर, मेरी इच्छा पूर्ण कर और मुझे दर्शन दे, (जीवन के ऊबड़-खाबड़ मार्ग में) मुझे तेरी ही (सहायता की) आशा है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ चकवी को खुशी होती है, जब उसे सूर्य दिखता है, क्योंकि (सूर्य चढ़ने पर वह) प्यारे (चकवे) को मिलती है, (और बिछोह के) सारे दुःख भुलाती है। गुरु-सिक्ख को खुशी होती है, जब उसे गुरु दिखता है ॥ २ ॥ बछड़े को (अपनी माँ का) दूध मुँह से पीकर खुशी होती है, वह (अपनी) माँ को देखता है और मन में खुश होता है, (इसी प्रकार) गुरु-सिक्ख को गुरु का दर्शन करके खुशी होती है ॥ ३ ॥ (गुरु-परमात्मा के बिना) दूसरा मोह

झूठा है, माया की प्रीति नाशमान है। दूसरा मोह नष्ट हो जाता है, झूठा है, बिल्कुल काँच के समान ही है। हे दास नानक ! जिसे सच्चा गुरु मिलता है, उसे (असली) खुशी होती है, (क्योंकि उसे गुरु मिलने से) सन्तोष प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ ४ ॥ ४२ ॥

॥ गउड़ी गुआरेरी महला ४ ॥ सतिगुर सेवा सफल है बणी। जितु मिलि हरिनामु धिआइआ हरि धणी। जिन हरि जपिआ तिन पीछै छूटी घणी ॥ १ ॥ गुरसिख हरि बोलहु मेरे भाई। हरि बोलत सभ पाप लहि जाई ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जब गुरु मिलिआ तब मनु वसि आइआ। धावत पंच रहे हरि धिआइआ। अनदिनु नगरी हरिगुण गाइआ ॥ २ ॥ सतिगुर पग धूरि जिना मुखि लाई। तिन कूड़ तिआगे हरि लिव लाई। ते हरि दरगह मुख ऊजल भाई ॥ ३ ॥ गुर सेवा आपि हरि भावै। क्रिसनु बलभद्रु गुर पग लगि धिआवै। नानक गुरमुखि हरि आपि तरावै ॥ ४ ॥ ५ ॥ ४३ ॥

सतिगुरु की शरण (मनुष्य के आत्मिक जीवन के लिए) लाभदायक बन जाती है, क्योंकि इस (गुरु-शरण) के द्वारा (सत्संगति में) मिलकर मालिक प्रभु का नाम स्मरण किया जा सकता है। जिन मनुष्यों ने (गुरु की शरण लेकर) परमात्मा का नाम जपा है, उनके अनुसरण से बहुत दुनिया विकारों से बच जाती है ॥ १ ॥ हे मेरे भाई ! गुरु के सिक्ख बनकर (गुरु द्वारा बतलाए मार्ग पर चलकर) परमात्मा का स्मरण करो, (तभी) प्रभु का नाम स्मरण करने से हरेक प्रकार का पाप (मन से) दूर हो जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जब (मनुष्य को) गुरु मिल जाता है तब (इसका) मन वश में आ जाता है (गुरु की शरण लेकर) परमात्मा का स्मरण करते हुए (मनुष्य की) पाँचों (ज्ञानेन्द्रियाँ विकारों की ओर) दौड़ने से रह जाती हैं और शरीर का स्वामी जीवात्मा प्रतिदिन परमात्मा के गुण गाता है ॥ २ ॥ जिन (सौभाग्यशालियों) ने गुरु के चरणों की धूलि अपने माथे पर लगा ली, उन्होंने झूठे मोह छोड़ दिए और परमात्मा के चरणों में अपनी सुरति जोड़ ली, परमात्मा के दरबार में वे मनुष्य मुक्त होते हैं ॥ ३ ॥ गुर की शरण लेना परमात्मा को भी अच्छा लगता है। कृष्ण (भी) गुरु के चरणों में लगकर परमात्मा को स्मरण करता रहा, बलभद्र भी गुरु के चरणों का आश्रय लेकर हरिनाम-स्मरण करता था। हे नानक ! जो मनुष्य गुरु की शरण लेता है, उसे परमात्मा आप (विकारों के संसार-समुद्र से) पार कर देता है ॥ ४ ॥ ५ ॥ ४३ ॥

।। गउड़ी गुआरेरी महला ४ ।। हरि आपे जोगी डंडाधारी। हरि आपे रवि रहिआ बनवारी। हरि आपे तपु तापै लाइ तारी।। १।। ऐसा मेरा रामु रहिआ भरपूरि। निकटि वसै नाही हरि दूरि।। १।। रहाउ।। हरि आपे सबदु सुरति धुनि आपे। हरि आपे वेखै विगसै आपे। हरि आपि जपाइ आपे हरि जापे।। २।। हरि आपे सारिंग अंम्रितधारा। हरि अंम्रितु आपि पीआवणहारा। हरि आपि करे आपे निसतारा।। ३।। हरि आपे बेड़ी तुलहा तारा। हरि आपे गुरमती निसतारा। हरि आपे नानक पावै पारा ।।४।।६।।४४।।

हाथ में डण्डा रखनेवाला जोगी भी परमात्मा आप ही है, क्योंकि वह हरि-परमात्मा आप ही (सर्वत्र) व्यापक हो रहा है।। १।। हे भाई! मेरा राम ऐसा है कि वह सर्वत्र मौजूद है। वह (हरेक जीव के) निकट बसता है, (किसी भी स्थान से) वह हरि दूर नहीं है।। १।। रहाउ।। परमात्मा आप ही शब्द है, आप ही सुरति है, आप ही लगन है। परमात्मा आप ही (सब जीवों में बैठा जगत् तमाशा) देख रहा है। (और, आप ही यह तमाशा देखकर) ख़ुश हो रहा है। परमात्मा आप ही (सब में बैठकर अपना नाम) जप रहा है।। २।। परमात्मा आप ही पपीहा है, (और आप ही पपीहे के लिए) वर्षा की धारा है। परमात्मा आप ही आत्मिक जीवन देनेवाला नाम-रस है और आप ही वह (जीवों को अमृत) पिलानेवाला है। प्रभु आप ही (जगत् के जीवों को) पैदा करता है और आप ही (जीवों को संसार-समुद्र से) पार कराता है।। ३।। परमात्मा आप ही (जीवों के संसार-समुद्र से पार होने के लिए) नाव है, और आप ही पार करानेवाला है। प्रभु आप ही गुरु की शिक्षा के अनुसार चलाकर विकारों से बचाता है। हे नानक! परमात्मा आप ही संसार-समुद्र से पार कराता है।। ४।। ६।। ४४।।

।। गउड़ी बैरागणि महला ४ ।। साहु हमारा तूं धणी जैसी तूं रासि देहि तैसी हम लेहि। हरिनामु वणंजह रंग सिउ जे आपि दइआलु होइ देहि।। १।। हम वणजारे राम के। हरि वणजु करावै दे रासि रे।। १।। रहाउ।। लाहा हरि भगति धनु खटिआ हरि सचे साह मनि भाइआ। हरि जपि हरि वखरु लदिआ जमु जागाती नेड़ि न आइआ।। २।। होरु वणजु करहि वापारीए अनंत तरंगी दुखु माइआ। ओइ जेहै वणजि हरि

लाइआ फलु तेहा तिन पाइआ ॥ ३ ॥ हरि हरि वणजु सो जनु करे जिसु क्रिपालु होइ प्रभु देई । जन नानक साहु हरि सेविआ फिरि लेखा मूलि न लेई ॥ ४ ॥ १ ॥ ७ ॥ ४५ ॥

हे प्रभु ! तू हमारा शाह है, मालिक है, तू हमें जैसा धन देता है, वैसा ही धन हम ले लेते हैं । यदि तू आप कृपालु होकर (हमें अपने नाम का धन) देवे तो हम सप्रेम तेरे नाम का व्यापार करने लगते हैं ॥ १ ॥ हे भाई ! हम जीव परमात्मा (साहूकार) के (भेजे हुए) व्यापारी हैं । वह साहूकार (अपने नाम का) धन देकर (हम जीवों से) व्यापार कराता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (जिस जीव वनजारे ने) परमात्मा-भक्ति की कमाई की है, परमात्मा का नाम-धन प्राप्त किया है, वह उस सत्यस्वरूप साहूकार प्रभु के मन में भला लगता है । जिस (जीव-व्यापारी ने) परमात्मा का नाम जपकर परमात्मा के नाम का सौदा किया है, यमराज-रूपी चुंगी लेने-वाला उसके निकट भी नहीं आता ॥ २ ॥ पर जो जीव वनजारे (प्रभु के नाम के अतिरिक्त) दूसरे व्यापार करते हैं, वे माया-मोह की अनन्त लहरों में फँसकर दुःख सहते रहते हैं । (उनके भी क्या वश ?) जैसे व्यापार में परमात्मा ने उन्हें लगा दिया है, वैसा फल उन्होंने पा लिया है ॥ ३ ॥ परमात्मा के नाम का व्यापार वही मनुष्य करता है, जिसे परमात्मा आप कृपालु होकर देता है । हे दास नानक ! जिस मनुष्य ने (सबके) साहूकार परमात्मा की सेवा-भक्ति की है, उससे वह साहूकार प्रभु कभी भी (उसके वाणिज्य-व्यापार का) लेखा नहीं माँगता ॥ ४ ॥ १ ॥ ७ ॥ ४५ ॥

॥ गउड़ी बैरागणि महला ४ ॥ जिउ जननी गरभु पालती सुत की करि आसा । वडा होइ धनु खाटि देइ करि भोग बिलासा । तिउ हरिजन प्रीति हरि राखदा दे आपि हथासा ॥ १ ॥ मेरे राम मै मूरख हरि राखु मेरे गुसईआ । जनकी उपमा तुझहि वडईआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मंदरि घरि आनंदु हरि हरि जसु मनि भावै । सभ रस मीठे मुखि लगहि जा हरिगुण गावै । हरिजनु परवारु सधारु है इकीह कुली सभु जगतु छडावै ॥ २ ॥ जो किछु कीआ सो हरि कीआ हरि की वडिआई । हरि जीअ तेरे तूं वरतदा हरि पूज कराई । हरि भगति भंडार लहाइदा आपे वरताई ॥ ३ ॥ लाला हाटि विहाझिआ किआ तिसु चतुराई । जे राजि बहाले ता हरि गुलामु घासी कउ हरिनामु कढाई । जनु नानकु हरि का दासु है हरि की वडिआई ॥ ४ ॥ २ ॥ ८ ॥ ४६ ॥

जैसे कोई माँ पुत्र (उत्पन्न करने की) आशा में (नौ महीने अपनी) कोख की रक्षा करती है, (वह आशा करती है कि मेरा पुत्र) बड़ा होते ही धन कमाकर हमारे सुख के लिए हमें (लाकर) देगा, इसी प्रकार परमात्मा अपने सेवकों की प्रीति को आप अपना हाथ देकर सुरक्षित रखता है ।। १ ।। हे मेरे राम ! मुझ मूर्ख को अपनी शरण में रख। तेरे सेवक की महानता तेरी ही महानता है ।। १ ।। रहाउ ।। जिस मनुष्य को अपने मन में परमात्मा की गुणस्तुति प्यारी लगती है, उसके हृदय-मन्दिर में (सदा) आनन्द बना रहता है। जब वह हरि के गुण गाता है, (उसे ऐसे लगता है जैसे) सारे स्वादिष्ट मीठे रस उसके मुँह में पड़ रहे हैं। परमात्मा का सेवक-भक्त अपनी इक्कीस पीढ़ियों में रक्षक है, आसरा है, परमात्मा का सेवक सारे जगत् को ही (विकारों से) बचा लेता है ।। २ ।। यह सारा जगत् जो बना हुआ दिखता है, तमाम ईश्वर-निर्मित है, सब उसी परमात्मा का महान् काम है। हे हरि ! (जगत् के सारे) जीव तेरे पैदा किए हुए हैं, (सब जीवों में) तू ही तू मौजूद है। (हे भाई ! सब जीवों से) परमात्मा (आप ही अपनी) पूजा-भक्ति करा रहा है। परमात्मा आप ही अपनी भक्ति के ख़ज़ाने (सब जीवों को) दिलाता है, आप ही बाँटता है ।। ३ ।। यदि कोई ग़ुलाम मण्डी से ख़रीदा हुआ हो, उस (ग़ुलाम) की (अपने मालिक के सामने) कोई चालाकी नहीं चल सकती, (परमात्मा का सेवक-भक्त सत्संग की दूकान से जीवात्मा का अपना बनाया हुआ होता है, उस सेवक को) यदि परमात्मा राज्यसिंहासन पर बिठा देवे तो भी वह परमात्मा का ग़ुलाम ही रहता है, (अपने बनाए हुए सेवक) घसियारे के मुख से भी परमात्मा हरि-नाम ही जपाता है। (हे भाई !) दास नानक परमात्मा का (क्रीत) दास है, यह परमात्मा की कृपा है (कि उसने नानक को अपना दास बनाया हुआ है) ।। ४ ।। २ ।। ८ ।। ४६ ।।

।। गउड़ी गुआरेरी महला ४ ।। किरसाणी किरसाणु करे लोचै जीउ लाइ। हलु जोतै उदमु करे मेरा पुतु धी खाइ। तिउ हरिजनु हरि हरि जपु करे हरि अंति छडाइ ।। १ ।। मै मूरख की गति कीजै मेरे राम। गुर सतिगुर सेवा हरि लाइ हम काम ।। १ ।। रहाउ ।। लै तुरे सउदागरी सउदागरु धावै। धनु खटै आसा करै माइआ मोहु वधावै। तिउ हरिजनु हरि हरि बोलता हरि बोलि सुखु पावै ।। २ ।। बिखु संचै हटवाणीआ बहि हाटि कमाइ। मोह झूठु पसारा झूठ का झूठे लपटाइ। तिउ हरिजनि हरिधनु संचिआ हरिखरचु लै जाइ ।। ३ ।। इहु माइआ मोह कुटंबु है भाइ दूजै फास। गुरमती सो जनु

तरै जो दासनिदास। जनि नानकि नामु धिआइआ गुरमुखि परगास ॥ ४ ॥ ३ ॥ ६ ॥ ४७ ॥

किसान खेती का काम जी लगाकर करता है, हल चलाता है, मेहनत करता है और इच्छा करता है (कि फसल अच्छी हो, ताकि) मेरा बेटा, बेटी खाएँ! इसी प्रकार परमात्मा का दास परमात्मा के नाम का जाप करता है (जिसका परिणाम यह निकलता है कि) अन्तिम समय (जब दूसरा कोई साथी नहीं होता) परमात्मा उसे (मोह-माया के पंजे से) छुड़ाता है ॥ १ ॥ हे मेरे राम! मुझ मूर्ख को ऊँची आत्मिक अवस्था दे, मुझे गुरु की सेवा के काम में लगा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सौदागर सौदागरी करने के लिए घोड़े लेकर चल पड़ता है, (सौदागरी में वह) धन प्राप्त करता है (तथा अधिक धन की) आशा करता है (ज्यों-ज्यों कमाई करता है, त्यों-त्यों) माया का मोह बढ़ता जाता है। इसी प्रकार परमात्मा का दास परमात्मा का नाम स्मरण करता है और नाम स्मरण कर आत्मिक आनन्द प्राप्त करता है ॥ २ ॥ दूकानदार दूकान में बैठकर दूकान का काम करता है और (माया) एकत्रित करता है (जो उसके आत्मिक जीवन के लिए) विष (का काम करती जाती) है, (क्योंकि यह तो बिल्कुल) मोह का मिथ्या फैलाव है, झूठ का फैलाव है, (ज्यों-ज्यों इसमें अधिक फँसता है, त्यों-त्यों) इस नाशमान के मोह में फँसता जाता है। इसी प्रकार परमात्मा के दास ने (भी) धन एकत्रित किया हुआ होता है, पर वह हरि-नाम का धन है, यह नाम-धन वह अपनी ज़िन्दगी की यात्रा के लिए खर्च (के रूप में) ले जाता है ॥ ३ ॥ माया-मोह का यह फैलाव (तो) माया-मोह में फँसाने के लिए फन्दा है। इसमें से वह मनुष्य पार निकलता है जो गुरु की शिक्षा-अनुसार परमात्मा के दासों का दास बनता है। दास नानक ने (भी) गुरु की शरण लेकर (आत्मिक जीवन के लिए) प्रकाश प्राप्त कर परमात्मा का नाम-स्मरण किया है ॥ ४ ॥ ३ ॥ ९ ॥ ४७ ॥

॥ गउड़ी बैरागणि महला ४ ॥ नित दिनसु राति लालचु करे भरमै भरमाइआ। वेगारि फिरै वेगारीआ सिरि भारु उठाइआ। जो गुर की जनु सेवा करे सो घर कै कंमि हरि लाइआ ॥ १ ॥ मेरे राम तोड़ि बंधन माइआ घर कै कंमि हरि लाइ। नित हरिगुण गावह हरिनामि समाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ नरु प्राणी चाकरी करे नरपति राजे अरथि सभ माइआ। कै बंधै कै डानि लेइ कै नरपति मरि जाइआ। धंनु धनु सेवा सफल सतिगुरू की जितु हरि हरि नामु जपि हरि सुखु पाइआ ॥ २ ॥

नित सउदा सूदु कीचै बहु भाति करि माइआ कै ताई। जा लाहा देइ ता सुखु मने तोटै मरि जाई। जो गुण साझी गुर सिउ करे नित नित सुखु पाई ॥ ३ ॥ जितनी भूख अन रस साद है तितनी भूख फिरि लागै। जिसु हरि आपि क्रिपा करे सो वेचे सिरु गुर आगै। जन नानक हरि रसि त्रिपतिआ फिरि भूख न लागै ॥ ४ ॥ ४ ॥ १० ॥ ४८ ॥

जो मनुष्य रात-दिन लालच करता रहता है, माया की प्रेरणा में आकर माया की खातिर भटकता फिरता है, वह उस बेगारी के समान है, जो अपने सिर पर (दूसरे का) भार उठाकर बेगार करता फिरता है। पर जो मनुष्य गुरु की शरण लेता है (गुरु की बतलाई सेवा करता है) उसे परमात्मा ने (नाम-स्मरण के) उस काम में लगा दिया है जो उसका अपना असली काम है ॥ १ ॥ हे मेरे राम! (हम जीवों के) माया के बन्धन तोड़कर हमें अपने असली काम में लगा, हम हरि-नाम में लीन होकर सदा हरि-गुण गाते रहें ॥ १ ॥ रहाउ ॥ केवल माया के लिए कोई मनुष्य किसी राजा-बादशाह की नौकरी करता है। राजा कई बार (किसी दोष के कारण) उसे क़ैद कर देता है, अथवा (कोई जुरमाना आदि) सज़ा देता है, अथवा, राजा (आप ही) मर जाता है (और मनुष्य की नौकरी समाप्त हो जाती है)। परन्तु सतिगुरु की सेवा सदा फल देनेवाली है, सदा सराहना योग्य है, क्योंकि इस सेवा के द्वारा मनुष्य परमात्मा का नाम जपकर आत्मिक आनन्द प्राप्त करता है ॥ २ ॥ माया कमाने के लिए कई प्रकार का वाणिज्य-व्यापार भी किया जाता है, जब (वह वाणिज्य-व्यापार) लाभ देता है, तो मन में खुशी होती है, पर घाटा होने पर (दुःख से) मर जाता है। पर जो मनुष्य अपने साथ परमात्मा की गुणस्तुति के सौदे का साझा करता है, वह सदा ही आत्मिक आनन्द प्राप्त करता है ॥ ३ ॥ दूसरे रसों और आस्वादनों की जितनी भी तृष्णा (मनुष्य को लगती) है, उतनी ही अधिक तृष्णा बार-बार लगती है, (माया सम्बन्धी रसों से कभी भी आदमी तृप्त नहीं होता)। जिस मनुष्य पर परमात्मा आप कृपा करता है, वह मनुष्य गुरु के सम्मुख (अपना) सिर बेच देता है, (वह अपना आपा गुरु के हवाले कर देता है)। हे दास नानक! वह मनुष्य परमात्मा के नाम-रस द्वारा तृप्त हो जाता है, उसे माया की तृष्णा नहीं होती ॥ ४ ॥ ४ ॥ १० ॥ ४८ ॥

॥ गउड़ी बैरागणि महला ४ ॥ हमरै मनि चिति हरि आस नित किउ देखा हरि दरसु तुमारा। जिनि प्रीति लाई सो जाणता हमरै मनि चिति हरि बहुतु पिआरा। हउ कुरबानी

गुर आपणे जिनि विछुड़िआ मेलिआ मेरा सिरजनहारा ॥ १ ॥ मेरे राम हम पापी सरणि परे हरि दुआरि । मतु निरगुण हम मेलै कबहूं अपुनी किरपा धारि ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हमरे अवगुण बहुतु बहुतु है बहु बार बार हरि गणत न आवै । तूं गुणवंता हरि हरि दइआलु हरि आपे बखसि लैहि हरि भावै । हम अपराधी राखे गुर संगती उपदेसु दीओ हरिनामु छडावै ॥ २ ॥ तुमरे गुण किआ कहा मेरे सतिगुरा जब गुरु बोलह तब बिसमु होइ जाइ । हम जैसे अपराधी अवरु कोई राखै जैसे हम सतिगुरि राखि लीए छडाइ । तूं गुरु पिता तूं है गुरु माता तूं गुरु बंधपु मेरा सखा सखाइ ॥ ३ ॥ जो हमरी बिधि होती मेरे सतिगुरा सा बिधि तुम हरि जाणहु आपे । हम रुलते फिरते कोई बात न पूछता गुर सतिगुर संगि कीरे हम थापे । धंनु धंनु गुरू नानक जन केरा जितु मिलिऐ चूके सभि सोग संतापे ॥ ४ ॥ ५ ॥ ११ ॥ ४६ ॥

हे हरि ! मेरे मन में सदा यह आशा रहती है कि मैं किसी प्रकार तेरा दर्शन कर सकूँ । (हे भाई !) जिस हरि ने मेरे भीतर अपना प्रेम पैदा किया है, वही जानता है कि मुझे अपने मन में हरि बहुत प्यारा लग रहा है । मैं अपने गुरु पर बलिहारी जाता हूँ, जिसने मुझे मेरा बिछुड़ा हुआ हरि मिला दिया है ॥ १ ॥ हे मेरे राम ! मैं पापी तेरी शरण आया हूँ, तेरे द्वार पर आ गिरा हूँ कि शायद (इस तरह) तू अपनी कृपा करके मुझ गुणहीन को अपने चरणों में जोड़ ले ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे हरि ! मेरे भीतर अनन्त अवगुण हैं, गणना से परे हैं, मैं बार-बार अवगुण करता हूँ । तू गुणों का मालिक है, दया का घर है, जब तेरी इच्छा होती है, तू आप ही बख्श लेता है । (हे भाई !) हम जैसे पापियों को हरि गुरु की संगति में रखता है और उपदेश देता है, उसका नाम विकारों से मुक्ति करा देता है ॥ २ ॥ हे मेरे सतिगुरु ! मैं तेरे क्या-क्या गुण बताऊँ ? जब मैं 'गुरु-गुरु' जपता हूँ, मेरी हालत आश्चर्यजनक बन जाती है । हमारे जैसे पापियों को जैसे सतिगुरु ने बचा लिया है, (विकारों के पंजे से) छुड़ा लिया है, दूसरा और कौन (इस प्रकार) रख सकता है ? हे हरि ! तू ही मेरा गुरु है, मेरा पिता है, मेरी माँ है, मेरा रिश्तेदार है, मेरा मित्र है ॥ ३ ॥ हे मेरे सतिगुरु ! जो मेरी हालत थी वह हालत तू आप ही जानता है । मैं व्यर्थ इधर-उधर फिरता था, कोई मेरी बात नहीं पूछता था, तूने मुझ कीड़े को सतिगुरु के चरणों में लाकर महानता दी । (हे भाई !)

दास नानक का गुरु धन्य है, जिसे मिलकर तमाम शोक दूर हो गए ॥ ४ ॥ ५ ॥ ११ ॥ ४९ ॥

॥ गउड़ी बैरागणि महला ४ ॥ कंचन नारी महि जीउ लुभतु है मोहु मीठा माइआ। घर मंदर घोड़े खुसी मनु अन रसि लाइआ। हरिप्रभु चिति न आवई किउ छूटा मेरे हरि राइआ ॥ १ ॥ मेरे राम इह नीच करम हरि मेरे। गुणवंता हरि हरि दइआलु करि किरपा बखसि अवगण सभि मेरे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ किछु रूपु नही किछु जाति नाही किछु ढंगु न मेरा। किआ मुहु लै बोलह गुण बिहून नामु जपिआ न तेरा। हम पापी संगि गुर उबरे पुंनु सतिगुर केरा ॥ २ ॥ सभु जीउ पिंडु मुखु नकु दीआ वरतण कउ पाणी। अंनु खाणा कपड़ु पैनणु दीआ रस अनि भोगाणी। जिनि दीए सु चिति न आवई पसू हउ करि जाणी ॥ ३ ॥ सभु कीता तेरा वरतदा तूं अंतरजामी। हम जंत विचारे किआ करह सभु खेलु तुम सुआमी। जन नानकु हाटि विहाझिआ हरि गुलम गुलामी ॥ ४ ॥ ६ ॥ १२ ॥ ५० ॥

मेरी देह स्वर्ण और नारी (के मोह) में फँसी हुई है, माया का मोह मुझे मीठा लग रहा है। घर, महल, घोड़े (देख-देखकर) मुझे चाव चढ़ता है, मेरा मन दूसरे (पदार्थों) के रस में लगा हुआ है। हे मेरे हरि! (तू) परमात्मा कभी मेरे चित्त में नहीं आता। मैं (इस मोह में से) किस प्रकार निकलूँ? ॥ १ ॥ हे मेरे राम! मेरे यह नीच काम हैं। पर तू गुणों का मालिक है, तू दया का घर है, कृपा करके मेरे तमाम अवगुण क्षमा कर ॥ १ ॥ रहाउ ॥ न मेरा (सुन्दर) रूप है, न मेरी उच्च जाति है, न मुझमें कोई चतुराई है। हे प्रभु! मैं गुणों से खाली हूँ, मैंने तेरा नाम नहीं जपा, मैं कौन-सा मुँह लेकर (तेरे सामने) बात करने योग्य हूँ? यह सतिगुरु की कृपा हुई है कि गुरु की संगति में रहकर मैं पापी (पापों से) बच गया हूँ ॥ २ ॥ यह देह, मुँह, नाक आदि अंग —यह सब कुछ परमात्मा की देन है, पानी (हवा आदि) मुझे उसने इस्तेमाल के लिए दिए हैं। उसने मुझे अन्न खाने को दिया है, कपड़ा पहनने को दिया है, दूसरे अनेक स्वादिष्ट पदार्थ भोगने को दिए हैं। पर जिस परमात्मा ने ये सारे पदार्थ दिए हैं, वह मुझे कभी स्मरण भी नहीं आता है। मैं (मूर्ख—) पशु अपने आपको बड़ा समझता हूँ ॥ ३ ॥ (हे प्रभु! हम जीवों के भी क्या वश है? जगत् में) जो कुछ हो रहा है, सब तेरा किया हुआ है, तू हरेक के दिल की जानता है। हम तुच्छ जीव (तुझसे दुश्मनी करके)

क्या कर सकते हैं? हे स्वामी! यह सारा तेरा ही खेल हो रहा है, (जैसे कोई गुलाम मण्डी से ख़रीदा जाता है, वैसे) तेरा यह दास नानक (तेरी सत्संगति की) दूकान में (तेरे सुन्दर नाम से) बिका हुआ है, तेरे गुलामों का गुलाम है ॥ ४ ॥ ६ ॥ १२ ॥ ५० ॥

॥ गउड़ी बैरागणि महला ४ ॥ जिउ जननी सुतु जणि पालती राखै नदरि मझारि । अंतरि बाहरि मुखि दे गिरासु खिनु खिनु पोचारि । तिउ सतिगुरु गुरसिख राखता हरि प्रीति पिआरि ॥ १ ॥ मेरे राम हम बारिक हरिप्रभ के है इआणे । धंनु धंनु गुरू गुरु सतिगुरु पाधा जिनि हरि उपदेसु दे कीए सिआणे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जैसी गगनि फिरंती ऊडती कपरे बागे वाली । ओह राखै चीतु पीछै बिचि बचरे नित हिरदै सारि समाली । तिउ सतिगुर सिख प्रीति हरि हरि की गुरु सिख रखै जीअ नाली ॥ २ ॥ जैसे काती तीस बतीस है विचि राखै रसना मास रतु केरी । कोई जाणहु मास काती कै किछु हाथि है सभ वसगति है हरि केरी । तिउ संत जना की नर निंदा करहि हरि राखै पैज जन केरी ॥ ३ ॥ भाई मत कोई जाणहु किसी कै किछु हाथि है सभ करे कराइआ । जरा मरा तापु सिरति सापु सभु हरि कै वसि है कोई लागि न सकै बिनु हरि का लाइआ । ऐसा हरिनामु मनि चिति निति धिआवहु जन नानक जो अंती अउसरि लए छडाइआ ॥ ४ ॥ ७ ॥ १३ ॥ ५१ ॥

जैसे माँ बेटे को जन्म देकर (उसे) अपनी देखरेख में रखती है, और पालती है। (घर में) भीतर बाहर क्षण-क्षण प्यार करती हुई उसके मुँह में ग्रास देती रहती है। इसी प्रकार गुरु सतिगुरु सिक्खों को परमात्मा की प्रीति देकर प्यार से सँभालता है ॥ १ ॥ हे मेरे राम! हे प्रभु! हम तेरे सीधे-सादे बच्चे हैं। गुरु सतिगुरु उपदेशदाता को शाबाश है, जिसने हमें हरि-नाम का उपदेश देकर चतुर बना दिया है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जैसे श्वेत पंखोंवाली (चिड़िया) आसमान में उड़ती फिरती है, पर उसका मन अपने पीछे छोड़े गए, बच्चों में अटका रहता है, उन्हें सदा अपने हृदय में सँभालती है; उसी प्रकार गुरु और सिक्ख की प्रीति है, गुरु अपने सिक्खों को हरि की प्रीति देकर उन्हें अपने शरीर के साथ रखता है ॥ २ ॥ जैसे तीस-बत्तीस (दातों) की कैंची है, (उस कैंची में) परमात्मा माँस तथा लहू की बनी हुई जीभ को बचाकर रखता है। कोई मनुष्य समझता रहे कि

(बच के रहना) माँस की जीभ के हाथ में है, अथवा (दाँतों की) कैंची के वश में है, यह तो परमात्मा के वश में है। इसी तरह लोग तो संतजनों की निंदा करते हैं, लेकिन परमात्मा अपने सेवकों की लाज (ही) रखता है ॥ ३ ॥ (हे भाई !) चाहे कोई मनुष्य समझता रहे कि किसी मनुष्य के कुछ वश में है। (लेकिन) यह तो सब कुछ परमात्मा आप ही करता है, आप ही कराता है। बुढ़ापा, मौत, सिर-दर्द, ताप आदि हरेक (दुःख) परमात्मा के हाथ में है। परमात्मा के लगाए बिना कोई रोग (किसी जीव को) लग नहीं सकता। हे दास नानक ! जो हरि-नाम अन्तिम समय में (यम आदि से) छुड़ा लेता है, उसे अपने चित्त में स्मरण करते रहो ॥ ४ ॥ ७ ॥ १३ ॥ ५१ ॥

॥ गउड़ी बैरागणि महला ४ ॥ जिसु मिलिऐ मनि होइ अनंदु सो सतिगुरु कहीऐ। मन की दुबिधा बिनसि जाइ हरि परम पदु लहीऐ ॥ १ ॥ मेरा सतिगुरु पिआरा कितु बिधि मिलै। हउ खिनु खिनु करी नमसकारु मेरा गुरु पूरा किउ मिलै ॥ १ ॥ रहाउ ॥ करि किरपा हरि मेलिआ मेरा सतिगुरु पूरा। इछ पुंनी जन केरीआ ले सतिगुर धूरा ॥ २ ॥ हरि भगति द्रिड़ावै हरि भगति सुणै तिसु सतिगुर मिलीऐ। तोटा मूलि न आवई हरि लाभु निति द्रिड़ीऐ ॥ ३ ॥ जिस कउ रिदै विगासु है भाउ दूजा नाही। नानक तिसु गुर मिलि उधरै हरिगुण गावाही ॥ ४ ॥ ८ ॥ १४ ॥ ५२ ॥

जिसके मिलने से मन में आनन्द पैदा हो जाए, मन की डावांडोल अवस्था समाप्त हो जाए, परमात्मा के मिलाप की सर्वोच्च अवस्था पैदा हो जाए, उसे ही गुरु कहा जा सकता है ॥ १ ॥ (हे भाई ! बता) मेरा प्यारा गुरु किस तरीके से मिल सकता है? (जो मनुष्य मुझे यह बताए कि) मेरा गुरु मुझे कैसे मिल सकता है (उसके आगे) मैं हर क्षण सिर झुकाता हूं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ परमात्मा ने कृपा करके जिस मनुष्य को मेरा पूर्णगुरु मिला दिया, गुरु की चरणधूलि प्राप्त कर उस मनुष्य की (हरेक किस्म की) इच्छा पूर्ण हो जाती है ॥ २ ॥ (हे भाई !) उस गुरु को मिलना चाहिए जो (मनुष्य के हृदय में) परमात्मा की भक्ति पक्की बिठा देता है, (जिसे मिलकर मनुष्य) परमात्मा की गुण-स्तुति (बड़े चाव से) सुनता है, (जिसे मिलकर मनुष्य) परमात्मा के नाम-धन की कमाई सदा प्राप्त करता है (और इस कमाई में) कभी घाटा नहीं होता ॥ ३ ॥ हे नानक ! जिस गुरु को (पूर्ण प्रभु की ओर से) हृदय की प्रसन्नता मिली (जिसके भीतर)

परमात्मा के अतिरिक्त कोई दूसरा मोह नहीं, उस गुरु से मिलकर मनुष्य (विकारों से) बच निकलता है (उस गुरु को मिलकर मनुष्य) परमात्मा के गुण गाते हैं ॥ ४ ॥ ८ ॥ १४ ॥ ५२ ॥

॥ महला ४ गउड़ी पूरबी ॥ हरि दइआलि दइआ प्रभि कीनी मेरै मनि तनि मुखि हरि बोली । गुरमुखि रंगु भइआ अति गूड़ा हरि रंगि भीनी मेरी चोली ॥ १ ॥ अपुने हरिप्रभ की हउ गोली । जब हम हरि सेती मनु मानिआ करि दीनो जगतु सभु गोल अमोली ॥ १ ॥ रहाउ ॥ करहु बिबेकु संत जन भाई खोजि हिरदै देखि ढंढोली । हरि हरि रूपु सभ जोति सबाई हरि निकटि वसै हरि कोली ॥ २ ॥ हरि हरि निकटि वसै सभ जग कै अपरंपर पुरखु अतोली । हरि हरि प्रगटु कीओ गुरि पूरै सिरु वेचिओ गुर पहि मोली ॥ ३ ॥ हरि जी अंतरि बाहरि तुम सरणागति तुम वड पुरख वडोली । जनु नानकु अनदिनु हरिगुण गावै मिलि सतिगुर गुर वेचोली ॥ ४ ॥ १ ॥ १५ ॥ ५३ ॥

दयालु हरि-प्रभु ने मुझ पर कृपा की और उसने मेरे मन-तन-मुँह में अपनी गुणस्तुति की वाणी रख दी । मेरे हृदय की चोली प्रभु-रंग में भीग गई, गुरु की शरण लेकर वह रंग बहुत गहरा हो गया ॥ १ ॥ मैं अपने हरि-प्रभु की दासी (बन गई) हूँ । जब मेरा मन परमात्मा (की याद के) साथ लग गया, परमात्मा ने सारे जगत् को मेरा बिना मूल्य वाला दास बना दिया ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे संतजनो ! आप अपने हृदय में खोजभाल कर देखकर विचार करो (तुम्हें यह बात प्रत्यक्ष दीख पड़ेगी कि यह सारा जगत्) परमात्मा का ही रूप है, सम्पूर्ण सृष्टि में परमात्मा की ही ज्योति विद्यमान है । परमात्मा हर जीव के निकट बसता है ॥ २ ॥ वह परमात्मा जो अपरम्पार है, सर्वव्यापक है, जिसके गुण-समूह का अंदाजा नहीं लाया जा सकता, सम्पूर्ण जगत् के निकट बस रहा है । उस परमात्मा को पूर्ण गुरु ने मेरे भीतर प्रकट कर दिया है, (इसलिए) मैंने अपना सिर गुरु के पास बेच दिया है ॥ ३ ॥ हे हरि ! (सारे जगत् में सब जीवों के) भीतर-बाहर तू बस रहा है । मैं तेरी शरण आया हूँ । मेरे वास्ते तू ही सबसे बड़ा मालिक है । दास नानक गुरु-मध्यस्थ को मिलकर हर दिन हरि के गुण गाता है ॥ ४ ॥ १ ॥ १५ ॥ ५३ ॥

॥ गउड़ी पूरबी महला ४ ॥ जगजीवन अपरंपर सुआमी जगदीसुर पुरख बिधाते । जितु मारगि तुम प्रेरहु सुआमी तितु

मारगि हम जाते ॥ १ ॥ राम मेरा मनु हरि सेती राते। सतसंगति मिलि राम रसु पाइआ हरि रामै नामि समाते ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हरि हरि नामु हरि हरि जगि अवखधु हरि हरि नामु हरि साते। तिन के पाप दोख सभि बिनसे जो गुरमति राम रसु खाते ॥ २ ॥ जिन कउ लिखतु लिखे धुरि मसतकि ते गुर संतोख सरि नाते। दुरमति मैलु गई सभ तिन की जो रामनाम रंगि राते ॥ ३ ॥ राम तुम आपे आपि आपि प्रभु ठाकुर तुम जेवड अवरु न दाते। जनु नानकु नामु लए तां जीवै हरि जपीऐ हरि किरपा ते ॥ ४ ॥ २ ॥ १६ ॥ ५४ ॥

हे जगजीवन प्रभु ! हे सर्वव्यापक, सृजनहार प्रभु ! हम जीवों को तू जिस मार्ग के लिए प्रेरित करता है, हम उस मार्ग पर ही चलते हैं ॥ १ ॥ हे राम ! (कृपा कर) मेरा मन तेरे (नाम) में रँगा रहे (हे भाई ! जिन मनुष्यों ने परमात्मा की कृपा से) सत्संगति में मिलकर राम-रस प्राप्त कर लिया, वे परमात्मा के नाम में ही मस्त रहते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे भाई !) परमात्मा का नाम जगत् में (सब रोगों की) औषधि है, परमात्मा का नाम (आत्मिक) शान्ति देनेवाला है। जो मनुष्य गुरु की शिक्षा के अनुसार परमात्मा का नाम-रस चखते हैं, उनके सब पाप, दोष दूर हो जाते हैं ॥ २ ॥ जिन मनुष्यों के मस्तक पर दरबार से (भक्ति का) लेख लिखा जाता है, वे मनुष्य गुरु-रूपी संतोष-सरोवर में स्नान करते हैं (अर्थात्, वे मनुष्य गुरु में अपने आप को लीन कर देते हैं और संतोषी जीवन जीते हैं) जो मनुष्य परमात्मा के नाम-रंग में रँगे जाते हैं, उनकी दुर्बुद्धि वाली सारी मैल दूर हो जाती है ॥ ३ ॥ हे राम ! तू आप ही मालिक है, तुझ जैसा महान् दूसरा कोई दाता नहीं है। दास नानक जब परमात्मा का नाम जपता है तो आत्मिक जीवन प्राप्त कर लेता है। (पर) परमात्मा का नाम परमात्मा की कृपा से ही जपा जा सकता है ॥ ४ ॥ २ ॥ १६ ॥ ५४ ॥

॥ गउड़ी पूरबी महला ४ ॥ करहु क्रिपा जगजीवन दाते मेरा मनु हरि सेती राचे। सतिगुरि बचनु दीओ अति निरमलु जपि हरि हरि हरि मनु माचे ॥ १ ॥ राम मेरा मनु तनु बेधि लीओ हरि साचे। जिह काल कै मुखि जगतु सभु ग्रसिआ गुर सतिगुर कै बचनि हरि हम बाचे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिन कउ प्रीति नाही हरि सेती ते साकत मूड़ नर काचे। तिन कउ जनमु मरणु अति भारी विचि विसटा मरि मरि पाचे ॥ २ ॥ तुम

दइआल सरणि प्रतिपालक मोकउ दीजै दानु हरि हम जाचे। हरि के दास दास हम कीजै मनु निरति करे करि नाचे ॥ ३ ॥ आपे साह वडे प्रभ सुआमी हम वणजारे हहि ताचे। मेरा मनु तनु जीउ रासि सभ तेरी जन नानक के साह प्रभ साचे ॥ ४ ॥ ३ ॥ १७ ॥ ५५ ॥

हे जगजीवन ! कृपा कर। मेरा मन तेरी याद में मस्त रहे। (तेरी कृपा से) सतिगुरु ने मुझे बहुत पवित्र उपदेश दिया है, अब मेरा मन हरि-नाम जप-जप कर प्रसन्न हो रहा है ॥ १ ॥ हे सत्यस्वरूप हरि ! तूने (कृपा करके) मेरे तन-मन को (अपने चरणों में) बींध लिया है। जिस आत्मिक मृत्यु के मुँह में सारा जगत् निगला हुआ है, (उस मौत से) मैं सतिगुरु के उपदेश से बच गया हूँ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिन मनुष्यों को परमात्मा (के चरणों में) प्रीति नहीं प्राप्त हुई, वे माया में डूबे मूर्ख मनुष्य कमज़ोर जीवन वाले रहते हैं। उनके लिए जन्म-मरण का दुखदायक चक्र बना रहता है। वे (विकारों की) दुर्गन्धि में आत्मिक मौत पाकर दुखी होते रहते हैं ॥ २ ॥ हे दयालु प्रभु ! हे शरणागत के रक्षक प्रभु ! मैं तेरे द्वार से तेरा नाम माँगता हूँ, मुझे यह देन दे। मुझे अपने दासों का दास बनाए रख ताकि मेरा मन (तेरे नाम में जुड़कर) सदा नृत्य करता रहे ॥ ३ ॥ प्रभु जी आप ही (नाम की पूँजी देनेवाले सब जीवों के) मालिक हैं। हम सब जीव उस साहूकार के वनजारे हैं (व्यापारी हैं)। हे सत्यस्वरूप प्रभु ! मेरा तन-मन सब कुछ तेरी दी हुई राशि है (मुझे अपने नाम की देन दे) ॥ ४ ॥ ३ ॥ १७ ॥ ५५ ॥

॥ गउड़ी पूरबी महला ४ ॥ तुम दइआल सरब दुख भंजन इक बिनउ सुनहु दे काने। जिस ते तुम हरि जाने सुआमी सो सतिगुरु मेलि मेरा प्राने ॥ १ ॥ राम हम सतिगुर पारब्रहम करि माने। हम मूड़ मुगध असुध मति होते गुर सतिगुर कै बचनि हरि हम जाने ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जितने रस अनरस हम देखे सभ तितने फीक फीकाने। हरि का नामु अंम्रित रसु चाखिआ मिलि सतिगुर मीठ रस गाने ॥ २ ॥ जिन कउ गुरु सतिगुरु नही भेटिआ ते साकत मूड़ दिवाने। तिन के करम हीन धुरि पाए देखि दीपकु मोहि पचाने ॥ ३ ॥ जिन कउ तुम दइआ करि मेलहु ते हरि हरि सेव लगाने। जन नानक हरि हरि हरि जपि प्रगटे मति गुरमति नामि समाने ॥ ४ ॥ ४ ॥ १८ ॥ ५६ ॥

हे (जीवों के) सारे दुःख समाप्त करनेवाले स्वामी ! तू दया का घर है, मेरी एक प्रार्थना ध्यानपूर्वक सुन । मुझे वह सतिगुरु मिला जो मेरी देह (का सहारा) है, जिसकी कृपा से तेरे साथ गहरा सम्बन्ध पैदा होता है ।। १ ।। (हे भाई !) मैंने सतिगुरु को (आत्मिक जीवन में) राम पारब्रह्म के बराबर माना है, मैं मूर्ख था, खोटी बुद्धि वाला था, गुरु के उपदेश (के प्रभाव) से मैंने परमात्मा से जान-पहचान कर ली है ।। १ ।। रहाउ ।। जगत् के जितने भी भिन्न-भिन्न (प्रकार के) रस हैं, मैंने देख लिए हैं, वे सब फीके हैं । गुरु को मिलकर मैंने आत्मिक जीवन देनेवाला परमात्मा का नाम-रस चखा है, वह रस गन्ने के रस के समान मीठा होता होता है ।। २ ।। जिन मनुष्यों को गुरु नहीं मिलता, वे मूर्ख परमात्मा से अलग रहते हैं, वे माया के पीछे पागल हुए फिरते हैं । (पर उनके भी क्या वश ?) दरबार से ही (परमात्मा ने) उनके भाग्यों में (यह) नीच कर्म डाल दिए हैं, वे माया के मोह में ऐसे जलते रहते हैं जैसे दीपक को देखकर (पतंगे) ।। ३ ।। हे प्रभु ! जिन मनुष्यों को तू कृपा करके (गुरु-चरणों में) मिलाता है, वे, हे हरि ! तेरी सेवा-भक्ति में लगे रहते हैं । हे दास नानक ! वे परमात्मा का नाम जप-जपकर चमक पड़ते हैं, गुरु की शिक्षा पर चलकर वे प्रभु के नाम में लीन रहते हैं ।। ४ ।। ४ ।। १८ ।। ५६ ।।

।। गउड़ी पूरबी महला ४ ।। मेरे मन सो प्रभु सदा नालि है सुआमी कहु किथै हरि पहु नसीऐ । हरि आपे बखसि लए प्रभु साचा हरि आपि छडाए छुटीऐ ।। १ ।। मेरे मन जपि हरि हरि हरि मनि जपीऐ । सतिगुर की सरणाई भजि पउ मेरे मना गुर सतिगुर पीछै छुटीऐ ।। १ ।। रहाउ ।। मेरे मन सेवहु सो प्रभ स्रब सुखदाता जितु सेविऐ निज घरि वसीऐ । गुरमुखि जाइ लहहु घरु अपना घसि चंदनु हरि जसु घसीऐ ।। २ ।। मेरे मन हरि हरि हरि हरि हरि जसु ऊतमु लै लाहा हरि मनि हसीऐ । हरि हरि आपि दइआ करि देवै ता अंम्रितु हरि रसु चखीऐ ।।३।। मेरे मन नाम बिना जो दूजै लागे ते साकत नर जमि घुटीऐ । ते साकत चोर जिना नामु विसारिआ मन तिन कै निकटि न भिटीऐ ।। ४ ।। मेरे मन सेवहु अलख निरंजन नरहरि जितु सेविऐ लेखा छुटीऐ । जन नानक हरि प्रभि पूरे कीए खिनु मासा तोलु न घटीऐ ।। ५ ।। ५ ।। १९ ।। ५७ ।।

हे मेरे मन ! वह स्वामी प्रतिपल (जीवों के) साथ (रहता) है । बता, वह कौन-सा स्थान है जहाँ प्रभु से दौड़कर जाया जा सकता है !

वह सत्यस्वरूप परमात्मा आप ही (हमारे अवगुण) क्षमा कर लेता है, वह हरि आप ही (विकारों के पंजे से) छुड़ा लेता है (उसी की सहायता से) विकारों से बचा जा सकता है ।। १ ।। हे मेरे मन ! सदा हरि-नाम जप। (हे हरि !) हरि-नाम सदा मन में जपना चाहिए। हे मेरे मन ! सतिगुरु की शरण ले। गुरु का आसरा लेने से (माया के बन्धनों से) बचा जाता है ।। १ ।। रहाउ ।। हे मेरे मन ! समस्त सुख देनेवाले उस परमात्मा का स्मरण कर, जिसकी शरण लेने से अपने घर में बसा जा सकता है। (हे मन !) गुरु की शरण लेकर अपना (वास्तविक) घर जाकर प्राप्त कर (प्रभु के चरणों में टिक)। (जैसे) चन्दन (सिल से) घिसकर (सुगंधि देता है वैसे) परमात्मा की गुणस्तुति को (अपने मन से) घिसाना चाहिए (आत्मिक जीवन में सुगंधि पैदा होगी) ।। २ ।। हे मेरे मन ! परमात्मा की गुणस्तुति सब से श्रेष्ठ पदार्थ है। (हे भाई !) हरि-नाम की कमाई करके मन में आत्मिक आनन्द प्राप्त किया जा सकता है। जब परमात्मा आप कृपा करके अपने नाम की देन देता है, तब आत्मिक जीवन देनेवाला उसका नाम-रस चखा जा सकता है ।। ३ ।। हे मेरे मन ! परमात्मा का नाम भुलाकर जो मनुष्य दूसरी ओर व्यस्त होते हैं; वे परमात्मा से टूट जाते हैं, यमराज उन्हें दबोच लेता है। जिन मनुष्यों ने परमात्मा का नाम भुला दिया; वे माया के मोह में जकड़े गए; वे परमात्मा के चोर बन गए। हे मेरे मन ! उनके निकट नहीं जाना चाहिए ।। ४ ।। हे मन ! उस परमात्मा की सेवा-भक्ति कर जो अगोचर है, जो माया के प्रभाव से परे है। उसकी सेवा-भक्ति करने से (पूर्वकृत कर्मों का) लेखा समाप्त हो जाता है। हे दास नानक ! जिन मनुष्यों को हरि-प्रभु ने पूर्ण शुद्ध जीवन वाला बना दिया है, उनके अत्मिक जीवन में तनिक मात्र भी विकृति नहीं आती ।। ५ ।। ५ ।। १९ ।। ५७ ।।

।। गउड़ी पूरबी महला ४ ।। हमरे प्रान वसगति प्रभ तुमरै मेरा जीउ पिंडु सभ तेरी। दइआ करहु हरि दरसु दिखावहु मेरै मनि तनि लोच घणेरी ।। १ ।। राम मेरै मनि तनि लोच मिलण हरि केरी। गुर क्रिपालि क्रिपा किंचत गुरि कीनी हरि मिलिआ आइ प्रभु मेरी ।। १ ।। रहाउ ।। जो हमरै मन चिति है सुआमी सा बिधि तुम हरि जानहु मेरी। अनदिनु नामु जपी सुखु पाई नित जीवा आस हरि तेरी ।। २ ।। गुरि सतिगुरि दातै पंथु बताइआ हरि मिलिआ आइ प्रभु मेरी। अनदिनु अनदु भइआ वडभागी सभ आस पुजी जन केरी ।। ३ ।। जगंनाथ

जगदीसुर करते सभ वस गति है हरि केरी। जन नानक सरणागति आए हरि राखहु पैज जन केरी ॥ ४ ॥ ६ ॥ २० ॥ ५८ ॥

हे प्रभु ! मेरे प्राण तेरे वश में ही हैं, मेरी देह आदि सब कुछ तेरी ही देन हैं। हे प्रभु ! कृपा कर, मुझे अपना दर्शन दे। (तेरे दर्शन की) मेरे मन-तन में बड़ी प्रबल इच्छा है ॥ १ ॥ हे मेरे राम ! मेरे हृदय में तुझे मिलने की (बड़ी) इच्छा है। (हे भाई !) कृपालु गुरु ने जब थोड़ी सी कृपा की, तब मेरा हरि-प्रभु मुझे आ मिला ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे मेरे स्वामी ! हम जीवों के मन में जो कुछ होता है; वह हालत तू आप ही जानता है। हे हरि ! मुझे (सदा) तेरी (कृपा की) आशा रहती है (कि तू कृपा करे तो) मैं प्रतिदिन तेरा नाम जपता रहूँ; आत्मिक आनन्द महसूसता रहूँ और सदा आत्मिक जीवन जीता रहूँ ॥ २ ॥ (नाम की) देन देनेवाले गुरु ने मुझे (परमात्मा से मिलने का) मार्ग बताया; और मेरा हरि-प्रभु मुझे आ मिला। सौभाग्यवश (मेरे हृदय में) प्रतिदिन आत्मिक आनन्द बना रहता है; मुझ दास की आशा पूरी हो गई है ॥ ३ ॥ हे जगत् के नाथ ! हे कर्त्तार ! यह सारी (जगत्-क्रीड़ा) तेरे वश में है। हे दास नानक ! (प्रार्थना कर और कह—) हे हरि ! मैं तेरी शरण आया हूँ; मुझ दास की लाज रख ॥ ४ ॥ ६ ॥ २० ॥ ५८ ॥

॥ गउड़ी पूरबी महला ४ ॥ इहु मनूआ खिनु न टिकै बहु रंगी दह दह दिसि चलि चलि हाढे। गुरु पूरा पाइआ वडभागी हरि मंत्रु दीआ मनु ठाढे ॥ १ ॥ राम हम सतिगुर लाले कांढे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हमरै मसतकि दागु दगाना हम करज गुरू बहु साढे। परउपकारु पुंनु बहु कीआ भउ दुतरु तारि पराढे ॥ २ ॥ जिन कउ प्रीति रिदै हरि नाही तिन कूरे गाढन गाढे। जिउ पाणी कागदु बिनसि जात है तिउ मनमुख गरभि गलाढे ॥ ३ ॥ हम जानिआ कछू न जानह आगै जिउ हरि राखै तिउ ठाढे। हम भूल चूक गुर किरपा धारहु जन नानक कुतरे काढे ॥ ४ ॥ ७ ॥ २१ ॥ ५९ ॥

(मेरा) यह मूर्ख मन, बहुत से रंग-तमाशों में (फँस कर) लेशमात्र भी नहीं टिकता, दसों दिशाओं में दौड़-दौड़कर भटकता है। (पर अब) सौभाग्यवश (मुझे) पूर्णगुरु मिल गया है, उसने प्रभु (-नाम-स्मरण का) उपदेश दिया है (जिससे) मन शान्त हो गया है ॥ १ ॥ हे राम ! मैं गुरु का ग़ुलाम कहलाता हूँ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (पूर्णगुरु ने) मेरा बहुत परोपकार किया है, मुझे उस संसार-समुद्र से पार करा दिया है जिससे पार उतरना

बहुत कठिन था। (गुरु के उपकार का यह) बहुत कर्जा एकत्रित हो गया है (मैं यह कर्जा उतार नहीं सकता इसलिए गुरु का ग़ुलाम बन गया हूं, और मेरे माथे पर (ग़ुलामी का) निशान बना दिया गया है ।। २ ।। जिन मनुष्यों के हृदय में परमात्मा का प्यार नहीं होता (यदि वे बाहर लोक-व्यवहार के रूप में प्रेम का कोई दिखावा करते हैं, तो) वे झूठी योजनाएँ ही करते हैं। जैसे पानी में कागज़ गल जाता है, वैसे स्वेच्छाचारी मनुष्य (प्रभु-प्रीति से खाली होने के कारण) योनियों के चक्र में (अपने आत्मिक जीवन से) गल जाते हैं ।। ३ ।। (पर हम जीवों की कोई चतुराई काम नहीं कर सकती) न (अब तक) हम जीव कोई चतुराई कर सके हैं, न आगे ही कर सकेंगे। जिस हालत में परमात्मा हमें रखता है, उसी हालत में हम टिकते हैं। हे दास नानक ! (उसके द्वार पर प्रार्थना ही शोभा पाती है। प्रार्थना करो और कहो—) हे गुरु हमारी गलतियों की (उपेक्षा कर) कृपा करो, हम (आपके द्वार पर) कुत्ते कहलाते हैं ।।४।।७।।२१।।५९।।

।। गउड़ी पूरबी महला ४ ।। कामि करोधि नगरु बहु भरिआ मिलि साधू खंडल खंडा हे। पूरबि लिखत लिखे गुरु पाइआ मनि हरि लिव मंडल मंडा हे ।। १ ।। करि साधू अंजुली पुंनु वडा हे। करि डंडउत पुनु वडा हे ।। १ ।। रहाउ ।। साकत हरि रस सादु न जानिआ तिन अंतरि हउमै कंडा हे। जिउ जिउ चलहि चुभै दुखु पावहि जम कालु सहहि सिरि डंडा हे ।। २ ।। हरिजन हरि हरि नामि समाणे दुखु जनम मरण भव खंडा हे ।। अबिनासी पुरखु पाइआ परमेसरु बहु सोभ खंड ब्रहमंडा हे ।। ३ ।। हम गरीब मसकीन प्रभ तेरे हरि राखु राखु वड वडा हे। जन नानक नामु अधारु टेक है हरिनामे ही सुखु मंडा हे ।। ४ ।। ८ ।। २२ ।। ६० ।।

(हे भाई !) यह शरीर-नगर काम-क्रोध से भरा रहता है (गंदा हुआ रहता है), गुरु को मिलकर (काम, क्रोध आदि के) सारे अंश नष्ट कर लिए जाते हैं। पूर्वकृत (कर्मों के संस्कारों के अनुसार जिस मनुष्य के मस्तक पर) लेख लिखे जाते हैं, उसे गुरु मिल जाता है और उसके मन में हरि-चरणों में सुरति जोड़ने के प्रभाव से आत्मिक प्रकाश की सजावट हो जाती है ।। १ ।। (हे भाई !) गुरु के समक्ष हाथ जोड़कर नमस्कार कर, यह बड़ा शुभ काम है। गुरु के समक्ष दण्डवत कर, यह बड़ा भला काम है ।। १ ।। रहाउ ।। माया में डूबे मनुष्य परमात्मा के नाम का स्वाद नहीं जानते, उनके भीतर अहंकार का काँटा (टिका रहता) है। वे मनुष्य

ज्यों-ज्यों (जीवन-मार्ग में) चलते हैं, त्यों-त्यों वह (अहं का काँटा उन्हें) चुभता है, वे दुःख पाते हैं, वे अपने सिर पर आत्मिक मौत-रूपी डण्डा सहते रहते हैं ॥ २ ॥ परमात्मा की भक्ति करनेवाले मनुष्य परमात्मा के नाम में लीन रहते हैं, उनके जन्म-मरण का दुःख, संसार-समुद्र के विकारों का दुःख नष्ट हो जाता है। उन्हें अनश्वर सर्वव्यापक परमेश्वर मिल जाता है और ब्रह्माण्ड के सारे खण्डों में उनकी बहुत शोभा होती है ॥ ३ ॥ हे प्रभु ! हम ग़रीब जीव हैं, तेरे प्रिय हैं, तू हमारा सबसे बड़ा सहारा है, हमारी रक्षा कर। हे दास नानक ! जिस मनुष्य ने परमात्मा के नाम को (ज़िन्दगी का) सहारा बनाया है, वह सदा परमात्मा के नाम में ही आत्मिक आनन्द महसूसता है ॥ ४ ॥ ८ ॥ २२ ॥ ६० ॥

॥ गउड़ी पूरबी महला ४ ॥ इसु गड़ महि हरि राम राइ है किछु सादु न पावै धीठा। हरि दीन दइआलि अनुग्रहु कीआ हरि गुर सबदी चखि डीठा ॥ १ ॥ राम हरि कीरतनु गुर लिव मीठा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हरि अगमु अगोचरु पारब्रहमु है मिलि सतिगुर लागि बसीठा। जिन गुर बचन सुखाने हीअरै तिन आगै आणि परीठा ॥ २ ॥ मनमुख हीअरा अति कठोरु है तिन अंतरि कार करीठा। बिसीअर कउ बहु दूधु पीआईऐ बिखु निकसै फोलि फुलीठा ॥ ३ ॥ हरिप्रभ आनि मिलावहु गुरु साधू घसि गरुड़ु सबदु मुखि लीठा। जन नानक गुर के लाले गोले लगि संगति करूआ मीठा ॥ ४ ॥ ९ ॥ २३ ॥ ६१ ॥

इस (शरीर) किले में राजा हरि-परमात्मा बसता है, (पर विकारों के स्वादों में) धूर्त्त बने मनुष्य को (भीतर बसते हुए परमात्मा के मिलाप का कोई) आनन्द नहीं आता। जिस मनुष्य पर दीनदयालु परमात्मा ने कृपा की, उसने गुरु के उपदेश द्वारा (हरि-नाम का रस) चखकर देख लिया है (कि यह सचमुच ही मीठा है) ॥ १ ॥ (हे भाई !) गुरु (के चरणों में) लौ लगाकर परमात्मा की गुणस्तुति (करो। दुनिया के सब रसों से यह रस) मीठा है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जो हरि-पारब्रह्म अगम्य है जिस तक मनुष्य की ज्ञानेन्द्रियों की पहुँच नहीं हो सकती, वह हरि-प्रभु गुरु को मिलकर, गुरु वकील के चरण छूकर (ही मिलता है)। जिन मनुष्यों को गुरु के वचन हृदय में प्यारे लगते हैं, गुरु उनके आगे (परमात्मा का नाम-अमृत) लाकर परोस देता है ॥ २ ॥ स्वेच्छाचारी मनुष्यों का हृदय बड़ा कठोर होता है, उनके भीतर (विकारों की) कालिख ही कालिख होती है। साँप को कितना भी दूध पिलाएँ पर उसके भीतर से विष ही

निकलता है (यही दशा मनमुख की होती है) ।। ३ ।। हे प्रभु ! (कृपा कर) मुझे गुरु से मिला, मैं गुरु का शब्द अपने मुँह में बसाऊँ और मेरे भीतर से विकारों का विष दूर होवे जिस प्रकार साँप का विष दूर करनेवाली बूटी घिसाकर मुँह में चूसने से साँप का विष उतरता है। हे दास नानक ! (कहो—हम) गुरु के गुलाम हैं, गुरु की संगति में बैठने से कटु (स्वभाव) मीठा हो जाता है ।। ४ ।। ९ ।। २३ ।। ६१ ।।

।। गउड़ी पूरबी महला ४ ।। हरि हरि अरथि सरीरु हम बेचिआ पूरे गुर कै आगे। सतिगुर दातै नामु दिड़ाइआ मुखि मसतकि भाग सभागे ।। १ ।। राम गुरमति हरि लिव लागे ।।१।। रहाउ ।। घटि घटि रमईआ रमत राम राइ गुर सबदि गुरू लिव लागे। हउ मनु तनु देवउ काटि गुरू कउ मेरा भ्रमु भउ गुरबचनी भागे ।। २ ।। अंधिआरै दीपक आनि जलाए गुर गिआनि गुरू लिव लागे। अगिआनु अंधेरा बिनसि बिनासिओ घरि वसतु लही मन जागे ।। ३ ।। साकत बधिक माइआधारी तिन जम जोहनि लागे। उन सतिगुर आगै सीसु न बेचिआ ओइ आवहि जाहि अभागे ।। ४ ।। हमरा बिनउ सुनहु प्रभ ठाकुर हम सरणि प्रभू हरि मागे। जन नानक की लज पाति गुरू है सिरु बेचिओ सतिगुर आगे ।। ५ ।। १० ।। २४ ।। ६२ ।।

(हे भाई !) हरि के मिलाप के लिए मैंने अपना शरीर गुरु के आगे बेच दिया है, दाता सतिगुरु ने (मेरे हृदय में) हरि का नाम परिपक्व कर दिया है, मेरे मुँह पर, मस्तक पर भाग्य जाग पड़े हैं, मैं सौभाग्यशाली हो गया हूँ ।। १ ।। (चाहे वह) सुन्दर राम हरेक शरीर में व्यापक है (फिर भी) गुरु के उपदेश द्वारा (ही उससे) लगन पैदा होती है ।। १ ।। रहाउ ।। मैं गुरु को अपना मन, तन देने को तैयार हूँ (अपना सिर) काटकर देने को तैयार हूँ। गुरु के उपदेश द्वारा ही मेरी दुबिधा दूर हो सकती है ।। २ ।। (माया-मोह के) अन्धेरे में (फंसे हुए जीव के भीतर गुरु ही ज्ञान का) दीपक लाकर जलाता है, गुरु के दिए ज्ञान के द्वारा ही (प्रभु-चरणों में) लगन लगती है, अज्ञानता का अन्धेरा पूर्ण तौर से नष्ट हो जाता है, हृदय-घर में प्रभु का नाम-पदार्थ मिल जाता है, मन (मोह-निद्रा से) जाग पड़ता है ।। ३ ।। माया को अपनी जिन्दगी का आसरा बनानेवाले मनुष्य परमात्मा से टूट जाते हैं, क्रूर हो जाते हैं, आत्मिक मौत उन्हें बन्धन में रखती है। वे मनुष्य सतिगुरु के समक्ष अपने सिर को नहीं बेचते, (वे अभागे जन्म-मरण के चक्र में पड़े रहते हैं ।। ४ ।। हे ठाकुर ! मेरी प्रार्थना

सुन, मैं तेरा शरणागत हूँ, मैं तुझसे तेरा नाम माँगता हूँ। दास नानक की प्रतिष्ठा (रखनेवाला) गुरु ही है, मैंने सतिगुरु के समक्ष अपना सिर बेच दिया है ॥ ५ ॥ १० ॥ २४ ॥ ६२ ॥

॥ गउड़ी पूरबी महला ४ ॥ हम अहंकारी अहंकार अगिआन मति गुरि मिलिऐ आपु गवाइआ। हउमै रोगु गइआ सुखु पाइआ धनु धंनु गुरू हरि राइआ ॥ १ ॥ राम गुर कै बचनि हरि पाइआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मेरै हीअरै प्रीति राम राइ की गुरि मारगु पंथु बताइआ। मेरा जीउ पिंडु सभु सतिगुर आगै जिनि विछुड़िआ हरि गलि लाइआ ॥ २ ॥ मेरै अंतरि प्रीति लगी देखन कउ गुरि हिरदे नालि दिखाइआ। सहज अनंदु भइआ मनि मोरै गुर आगै आपु वेचाइआ ॥ ३ ॥ हम अपराध पाप बहु कीने करि दुसटी चोर चुराइआ। अब नानक सरणागति आए हरि राखहु लाज हरि भाइआ ॥४॥११॥२५॥६३॥

(गुरु के बिना) हम जीव अहंकारी हुए रहते हैं, हमारी बुद्धि अहंकार और अज्ञानता वाली बनी रहती है। जब गुरु मिल जाए तब आपाभाव दूर हो जाता है। (गुरु की कृपा से जब) अहंकार का रोग दूर होता है। तब आत्मिक आनन्द मिलता है। यह तमाम कृपा (गुरु की है), गुरु की ही है ॥ १ ॥ गुरु के उपदेश के प्रभाव से ही प्रभु से मिलाप होता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (गुरु की कृपा से ही) मेरे हृदय में परमात्मा की प्रीति पैदा हुई है, गुरु ने ही (परमात्मा के मिलाप का) रास्ता बताया है। मैंने अपना शरीर आदि सर्वस्व गुरु के समक्ष रख दिया है क्योंकि गुरु ने मुझ बिछुड़े हुए को परमात्मा के गले के साथ लगा दिया है ॥ २ ॥ (गुरु की कृपा से ही) मेरे भीतर परमात्मा के दर्शन करने की इच्छा पैदा हुई, गुरु ने ही मेरे हृदय में बसता परमात्मा मुझे दिखा दिया। मेरे मन में अब आत्मिक स्थिरता का सुख पैदा हो गया है, (उसके बदले में) मैंने अपना आपा गुरु के आगे बेच दिया है ॥ ३ ॥ मैं बहुत से पाप, अपराध करता रहा, कई कुकर्म करता रहा और छिपाता रहा जैसे चोर अपनी चोरी छिपाते हैं। पर अब, हे नानक! (कहो—) हे हरि! मैं तेरी शरण आया हूँ, यदि तेरी कृपा होवे तो मेरी प्रतिष्ठा रख (मुझे विकारों से बचाए रख) ॥ ४ ॥ ११ ॥ २५ ॥ ६३ ॥

॥ गउड़ी पूरबी महला ४ ॥ गुरमति बाजै सबदु अनाहदु गुरमति मनूआ गावै। वडभागी गुर दरसनु पाइआ धनु धंनु गुरू

लिवलावै ॥ १ ॥ गुरमुखि हरि लिव लावै ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हमरा ठाकुरु सतिगुरु पूरा मनु गुर की कार कमावै । हम मलि मलि धोवह पाव गुरू के जो हरि हरि कथा सुनावै ॥ २ ॥ हिरदै गुरमति राम रसाइणु जिहवा हरिगुण गावै । मन रसकि रसकि हरि रसि आघाने फिरि बहुरि न भूख लगावै ॥ ३ ॥ कोई करै उपाव अनेक बहुतेरे बिनु किरपा नामु न पावै । जन नानक कउ हरि किरपा धारी मति गुरमति नामु द्रिड़ावै ॥ ४ ॥ १२ ॥ २६ ॥ ६४ ॥

गुरु की शिक्षा का अनुसरण करने पर ही गुरु का शब्द मनुष्य के हृदय में निरन्तर प्रभाव बनाता है, गुरु के उपदेश से ही मनुष्य का मन परमात्मा की गुणस्तुति के गीत गाता है। कोई सौभाग्यशाली ही मनुष्य गुरु का दर्शन प्राप्त करता है। गुरु पर बलिहारी हूँ जो (मनुष्य के भीतर) परमात्मा के मिलन की लगन पैदा करता है ॥ १ ॥ गुरु के सम्मुख रहकर ही मनुष्य (अपने भीतर) हरि के मिलाप की लगन पैदा कर सकता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे भाई !) पूर्णगुरु ही मेरा ठाकुर है, मेरा मन गुरु की बताई जीविका करता है। मैं अपने गुरु के पैर मल-मल कर धोता हूँ क्योंकि गुरु मुझे परमात्मा की गुणस्तुति की बातें सुनाता है ॥ २ ॥ (हे भाई ! जिन मनुष्यों के) हृदय में गुरु के उपदेश के प्रभाव से सब रसों का घर प्रभु-नाम बस जाता है, (जिनकी) जीभ परमात्मा के गुण गाती है, उनके मन सदा आनन्द से परमात्मा के नाम-रस में तृप्त रहते हैं, उन्हें कभी माया की भूख छू नहीं सकती ॥ ३ ॥ पर कोई भी मनुष्य परमात्मा का नाम (परमात्मा की) कृपा के बिना प्राप्त नहीं कर सकता, चाहे कोई अनेक उपाय करता रहे। हे नानक ! जिस दास पर परमात्मा कृपा करता है, गुरु के उपदेश के प्रभाव से उसकी बुद्धि में परमात्मा अपना नाम दृढ़ कर देता है ॥ ४ ॥ १२ ॥ २६ ॥ ६४ ॥

॥ रागु गउड़ी माझ महला ४ ॥ गुरमुखि जिंदू जपि नामु करंमा । मति माता मति जीउ नामु मुखि रामा । संतोखु पिता करि गुरु पुरखु अजनमा । वडभागी मिलु रामा ॥ १ ॥ गुरु जोगी पुरखु मिलिआ रंगु माणी जीउ । गुरु हरि रंगि रतड़ा सदा निरबाणी जीउ । वडभागी मिलु सुघड़ सुजाणी जीउ । मेरा मनु तनु हरि रंगि भिना ॥ २ ॥ आवहु संतहु मिलि नामु जपाहा । विचि संगति नामु सदा लै लाहा जीउ । करि सेवा संता अंम्रितु मुखि पाहा जीउ । मिलु पूरबि लिखिअड़े

धुरि करमा ॥ ३ ॥ सावणि वरसु अंम्रिति जगु छाइआ जीउ। मनु मोरु कुहुकिअड़ा सबदु मुखि पाइआ। हरि अंम्रितु वुठड़ा मिलिआ हरि राइआ जीउ। जन नानक प्रेमि रतंना ॥ ४ ॥ १ ॥ २७ ॥ ६५ ॥

हे (मेरी) देह ! गुरु की शरण लेकर परमात्मा का नाम जपो, (तेरे) भाग्य (जाग पड़े हैं)। (गुरु की दी हुई) शिक्षा को (अपनी) माँ बना और मति को ही जीवन (का आसरा बना), राम का नाम मुँह से जप। संतोष को पिता बना। अयोनि अकालपुरुष के स्वरूप गुरु की शरण ले। हे देह ! राम को मिल, तेरे भाग्य जाग गए हैं ॥ १ ॥ (हे भाई !) प्रभु-रूप योगी, गुरु मुझे मिल गया है। (उसकी कृपा से) मैं आत्मिक आनन्द अनुभव करता हूँ। गुरु सदा परमात्मा के नाम-रंग में रंगा रहता है और वह सदा वासना-रहित है। हे सौभाग्यशाली ! उस सुन्दर जीवन वाले चतुर गुरु को मिल। (गुरु की कृपा से ही) मेरा मन, तन परमात्मा के प्रेम-रंग में भीग गया है ॥ २ ॥ हे संतजनो ! आओ, हम मिलकर परमात्मा का नाम जपें। (हे भाई !) सत्संगति में मिलकर सदा हरिनाम की कमाई करें। (हे भाई ! आओ) गुरमुखों की सेवा कर मुँह में आत्मिक जीवन देनेवाला नाम भोजन डालें। (हे आत्मा !) प्रभु को मिल, प्रभु के दरबार से उसकी कृपा के पूर्वकृत लेख जाग गए हैं ॥ ३ ॥ (जैसे) सावन में बादल (बरसता है और) जगत् को जल से भरपूर कर देता है (उसे देखकर) मोर अपनी मीठी बोली बोलता है, (वैसे ही गुरु) नाम-अमृत से जगत् को प्रभावित करता है (जिस सौभाग्यशाली पर कृपा होती है उसका) मन उत्साहित होता है (वह मनुष्य गुरु के) शब्द को अपने मुँह में डालता है। हे दास नानक ! (जिस मनुष्य के हृदय में) नाम-अमृत आ बसता है (जिसे) परमात्मा मिल जाता है वह प्रभु-प्रेम में रंगा जाता है ॥ ४ ॥ १ ॥ २७ ॥ ६५ ॥

॥ गउड़ी माझ महला ४ ॥ आउ सखी गुण कामण करीहा जीउ। मिलि संत जना रंगु माणिह रलीआ जीउ। गुर दीपकु गिआनु सदा मनि बलीआ जीउ। हरि तुठै ढुलि ढुलि मिलीआ जीउ ॥ १ ॥ मेरै मनि तनि प्रेमु लगा हरि ढोले जीउ। मै मेले मित्रु सतिगुरु वेचोले जीउ। मनु देवां संता मेरा प्रभु मेले जीउ। हरि विटड़िअहु सदा घोले जीउ ॥ २ ॥ वसु मेरे पिआरिआ वसु मेरे गोविदा हरि करि किरपा मनि वसु जीउ। मनि चिंदिअड़ा फलु पाइआ मेरे गोविंदा गुरु पूरा वेखि विगसु

जीउ। हरि नामु मिलिआ सोहागणी मेरे गोविंदा मनि अनदिनु अनदु रहसु जीउ। हरि पाइअड़ा वडभागीई मेरे गोविंदा नित लै लाहा मनि हसु जीउ ॥ ३ ॥ हरि आपि उपाए हरि आपे वेखै हरि आपे कारै लाइआ जीउ। इकि खावहि बखस तोटि न आवै इकना फका पाइआ जीउ। इकि राजे तखति बहहि नित सुखीए इकना भिख मंगाइआ जीउ। सभु इको सबदु वरतदा मेरे गोविदा जन नानक नामु धिआइआ जीउ ॥४॥२॥२८॥६६॥

हे (सत्संगी जीव-स्त्री) सहेली ! आ, हम प्रभु के गुणों के जादू-टोने तैयार करें, संतजनों को मिलकर प्रभु के मिलाप का आनन्द प्राप्त करें। (हे सहेली ! आ, हम अपने) मन में गुरु का दिया हुआ ज्ञान-दीपक जलाएँ, यदि प्रभु संतुष्ट हो जाए, धन्यवादी होकर (तब उसके चरणों में) मिल जाएँ ॥ १ ॥ (हे सहेली !) मेरे मन में हरि-मित्र का प्रेम पैदा हो चुका है। (मैं चाहता हूँ) कि मध्यस्थ गुरु मुझे वह मित्र प्रभु मिला दे। (हे सहेली !) मैं अपना मन उन गुरमुखों के हवाले कर दूँ जो मुझे मेरा प्रभु मिला दें। मैं हरि-प्रभु पर सदा बलिहारी जाता हूँ ॥ २ ॥ हे मेरे प्यारे गोविन्द ! कृपा करके मन में आ बस। हे गोविन्द ! पूर्णगुरु का दर्शन करके जिस सुहागिन के हृदय में प्रसन्नता होती है, वह अपने मन में सोचे हुए (प्रभु-मिलाप) का फल पा लेती है। हे गोविन्द ! जिस सुहागिन जीव-स्त्री को हरि-नाम मिल जाता है, उसके मन में सदा आनन्द बना रहता है। जिन भाग्यशाली जीव-स्त्रियों ने हरि का मिलाप प्राप्त कर लिया है, वे हरि-नाम की कमाई करके मन में नित्य आत्मिक आनन्द प्राप्त करती हैं ॥ ३ ॥ हे सहेली ! प्रभु आप ही जीवों को पैदा करता है, आप ही देखभाल करता है, आप ही सबको जीविका में लगाता है। अनेकों जीव ऐसे हैं जो उसके दिए पदार्थ इस्तेमाल करते हैं ओर वे पदार्थ कभी समाप्त नहीं होते। बहुत से जीव ऐसे हैं जिन्हें वह देता ही थोड़ा-बहुत है। अनेकों ऐसे हैं जो राजा (बनकर) सिंहासन पर बैठते हैं और सदा सुखी रहते हैं, अनेकों ऐसे हैं जो (प्रत्येक द्वार से) भीख माँगते हैं। हे दास नानक ! (कहो—) हे मेरे गोविन्द ! सर्वत्र तेरा ही हुक्म विद्यमान है, (जिस पर तेरी कृपा होती है) वह तेरा नाम स्मरण करता है ॥ ४ ॥ २ ॥ २८ ॥ ६६ ॥

॥ गउड़ी माझ महला ४ ॥ मन माही मन माही मेरे गोविंदा हरि रंगि रता मन माही जीउ। हरि रंगु नालि न लखीऐ मेरे गोविदा गुरु पूरा अलखु लखाही जीउ। हरि हरि

नामु परगासिआ मेरे गोविंदा सभ दालद दुख लहि जाही जीउ। हरि पदु ऊतमु पाइआ मेरे गोविंदा वडभागी नामि समाही जीउ ॥ १ ॥ नैणी मेरे पिआरिआ नैणी मेरे गोविदा किनै हरि प्रभु डिठड़ा नैणी जीउ। मेरा मनु तनु बहुतु बैरागिआ मेरे गोविंदा हरि बाझहु धन कुमलैणी जीउ। संत जना मिलि पाइआ मेरे गोविदा मेरा हरिप्रभु सजणु सैणी जीउ। हरि आइ मिलिआ जगजीवनु मेरे गोविंदा मै सुखि विहाणी रैणी जीउ ॥२॥ मै मेलहु संत मेरा हरिप्रभु सजणु मै मनि तनि भुख लगाईआ जीउ। हउ रहि न सकउ बिनु देखे मेरे प्रीतम मै अंतरि बिरहु हरि लाईआ जीउ। हरि राइआ मेरा सजणु पिआरा गुरु मेले मेरा मनु जीवाईआ जीउ। मेरै मनि तनि आसा पूरीआ मेरे गोविंदा हरि मिलिआ मनि वाधाईआ जीउ ॥ ३ ॥ वारी मेरे गोविंदा वारी मेरे पिआरिआ हउ तुधु विटड़िअहु सद वारी जीउ। मेरै मनि तनि प्रेमु पिरंम का मेरे गोविदा हरि पूंजी राखु हमारी जीउ। सतिगुरु विसटु मेलि मेरे गोविंदा हरि मेले करि रैबारी जीउ। हरिनामु दइआ करि पाइआ मेरे गोविंदा जन नानकु सरणि तुमारी जीउ ॥ ४ ॥ ३ ॥ २९ ॥ ६७ ॥

हे मेरे गोविन्द ! (जिस पर तेरी कृपा होती है, वह मनुष्य अपने) मन में ही हरि-नाम के रंग में रँगा रहता है। हे मेरे गोविन्द ! हरि-नाम का आनन्द हरेक प्राणी के साथ है, लेकिन यह आनन्द (हरेक जीव से) प्राप्त नहीं किया जा सकता। जिन मनुष्यों को पूर्णगुरु मिल जाता है वह उस अलक्ष्य परमात्मा को प्राप्त कर लेते हैं। हे मेरे गोविन्द ! जिनके भीतर तू हरि-नाम का प्रकाश करता है, उनके सब दुख-दरिद्रय दूर हो जाते हैं। हे मेरे गोविन्द ! जिन मनुष्यों को हरि-मिलाप की ऊँची अवस्था प्राप्त हो जाती है, वे सौभाग्यशाली मनुष्य हरि-नाम में लीन रहते हैं ॥१॥ हे मेरे प्यारे गोविन्द ! तुझ हरि-प्रभु को किसी विरले (मनुष्य ने) आँखों से देखा है। हे मेरे गोविन्द ! मेरा मन बहुत वैरागी हो रहा है। हे हरि ! तेरे बिना मैं जीव-स्त्री उदास पड़ी हूँ। हे मेरे गोविन्द ! मेरा हरिप्रभु (जिन्होंने भी पाया है) संतजनों को मिलकर (ही) प्राप्त किया है। हे मेरे गोविन्द ! (संतजनों की कृपा से ही) मुझे हरि आ मिला है जो सारे जगत् का आसरा है, अब मेरी रात्रि (जिन्दगी-रूपी) आनन्द में बीत रही है ॥ २ ॥ हे संतजनो ! मुझे मेरा सज्जन हरि-प्रभु मिला दो। मेरे मन में उसके मिलने की इच्छा पैदा हो रही है। मैं अपने प्रियतम

को देखे बिना धैर्य धारण नहीं कर सकता, मेरे भीतर उसके बिछोह का दर्द उठ रहा है। परमात्मा ही मेरा राजा है, मेरा प्यारा मित्र है। जब (उसके साथ) गुरु मिला देता है तो मेरा मन जीवन्त हो उठता है। हे मेरे गोविन्द! जब तू हरि मुझे मिल जाता है, मेरे मन में (चिरकाल से टिकी) आशा पूर्ण हो जाती है तो मेरा मन प्रोत्साहित हो जाता है ॥ ३ ॥ हे मेरे प्यारे गोविन्द! मैं तुझ पर सदा बलिहारी हूँ। मेरे मन में तुझ प्यारे का प्रेम जाग उठा है, मेरी इस राशि की तू रक्षा कर। हे मेरे गोविन्द! मुझे मध्यस्थ गुरु मिला जो मेरा मार्ग-निदेशन करके मुझे हरि से मिला दे। हे मेरे गोविन्द! मैं दास नानक तेरी शरण आया हूँ, तेरी दया से ही मुझे तेरा हरि-नाम प्राप्त हुआ है ॥ ४ ॥ ३ ॥ २९ ॥ ६७ ॥

॥ गउड़ी माझ महला ४ ॥ चोजी मेरे गोविंदा चोजी मेरे पिआरिआ हरिप्रभु मेरा चोजी जीउ। हरि आपे कान्हु उपाइदा मेरे गोविदा हरि आपे गोपी खोजी जीउ। हरि आपे सभ घट भोगदा मेरे गोविंदा आपे रसीआ भोगी जीउ। हरि सुजाणु न भुलई मेरे गोविंदा आपे सतिगुरु जोगी जीउ ॥ १ ॥ आपे जगतु उपाइदा मेरे गोविदा हरि आपि खेलै बहु रंगी जीउ। इकना भोग भोगाइदा मेरे गोविंदा इकि नगन फिरहि नंग नंगी जीउ। आपे जगतु उपाइदा मेरे गोविदा हरि दानु देवै सभ मंगी जीउ। भगता नामु आधारु है मेरे गोविंदा हरि कथा मंगहि हरि चंगी जीउ ॥ २ ॥ हरि आपे भगति कराइदा मेरे गोविंदा हरि भगता लोच मनि पूरी जीउ। आपे जलि थलि वरतदा मेरे गोविदा रवि रहिआ नही दूरी जीउ। हरि अंतरि बाहरि आपि है मेरे गोविदा हरि आपि रहिआ भरपूरी जीउ। हरि आतमरामु पसारिआ मेरे गोविंदा हरि वेखै आपि हदूरी जीउ ॥ ३ ॥ हरि अंतरि वाजा पउणु है मेरे गोविंदा हरि आपि वजाए तिउ वाजै जीउ। हरि अंतरि नामु निधानु है मेरे गोविंदा गुरसबदी हरिप्रभु गाजै जीउ। आपे सरणि पवाइदा मेरे गोविंदा हरि भगत जना राखु लाजै जीउ। वडभागी मिलु संगती मेरे गोविंदा जन नानक नामि सिधि काजै जीउ ॥ ४ ॥ ४ ॥ ३० ॥ ६८ ॥

हे मेरे प्यारे गोविन्द! तू अपनी इच्छा के काम करनेवाला मेरा हरि-प्रभु है। हरि आप ही कृष्ण को पैदा करनेवाला है, हरि आप ही

कृष्ण को खोजनेवाली ग्वालिनी है। समस्त शरीरों में व्यापक होकर हरि आप ही सब पदार्थों को भोगता है, हरि आप ही सब माया-सम्बन्धी पदार्थों का रस लेनेवाला है, आप ही भोगनेवाला है। (पर) हरि बहुत चतुर है, (सब पदार्थों के भोगनेवाला होकर भी) भूलता नहीं, वह हरि आप ही भोगों से निर्लिप्त सतिगुरु है ॥ १ ॥ हरि-प्रभु आप ही जगत् पैदा करता है, हरि आप ही अनेक रंगों में खेल रहा है। हरि आप ही अनेक जीवों से सारे पदार्थों के रस लिवानेवाला है, अनेकों जीव ऐसे हैं जो नंगे फिरते हैं (जिनके तन पर कपड़ा नहीं)। हरि आप ही सारे जगत् को पैदा करता है, सारी दुनिया उससे माँगती रहती है, वह सबको देन देता है। उसकी भक्ति करनेवाले व्यक्ति को उसके नाम का ही आसरा है, वे हरि से उसकी श्रेष्ठ गुण-स्तुति ही माँगते हैं ॥ २ ॥ हरि आप ही (अपने भक्तों से) अपनी भक्ति कराता है, भक्तों के मन में (पैदा हुई भक्ति की) इच्छा हरि आप ही पूर्ण करता है। जल-थल सर्वत्र हरि आप ही बस रहा है, (सब जीवों में) व्यापक है (किसी जीव से वह हरि) दूर नहीं है। सब जीवों के भीतर तथा बाहर सर्वत्र हरि आप ही बसता है, हर स्थान पर हरि आप ही भरपूर है। सर्वव्यापक राम आप ही इस जगत्-प्रसार को प्रसारित कर रहा है, हरेक के साथ रहकर हरि आप ही सबकी सँभाल करता है ॥ ३ ॥ सब जीवों के भीतर प्राणरूप होकर हरि आप ही बाजा (बज रहा है) जैसे वह हरेक जीव-बाजे को बजाता है वैसे ही हरेक जीव-बाजा बजता है। हरेक जीव के भीतर हरि का नाम-भण्डार है, पर गुरु के उपदेश द्वारा ही हरि-प्रभु (जीव के भीतर) प्रकट होता है। हरि आप ही जीव को प्रेरित कर अपनी शरण में लाता है, हरि आप ही भक्तों की इज़्ज़त का रक्षक बनता है। हे दास नानक ! तू भी संगति में मिल (हरि-प्रभु का नाम जप और सौभाग्यशाली बन) नाम के प्रभाव से ही जीवन-मनोरथ की सफलता होती है ॥ ४ ॥ ४ ॥ ३० ॥ ६८ ॥

॥ गउड़ी माझ महला ४ ॥ मै हरिनामै हरि बिरहु लगाई जीउ। मेरा हरिप्रभु मितु मिलै सुखु पाई जीउ। हरिप्रभु देखि जीवा मेरी माई जीउ। मेरा नामु सखा हरि भाई जीउ ॥ १ ॥ गुण गावहु संत जीउ मेरे हरि प्रभ केरे जीउ। जपि गुरमुखि नामु जीउ भाग वडेरे जीउ। हरि हरि नामु जीउ प्रान हरि मेरे जीउ। फिरि बहुड़ि न भवजल फेरे जीउ ॥ २ ॥ किउ हरिप्रभ वेखा मेरै मनि तनि चाउ जीउ। हरि मेलहु संत जीउ मनि लगा भाउ जीउ। गुरसबदी पाईऐ हरि प्रीतम राउ जीउ। वडभागी जपि नाउ जीउ ॥ ३ ॥ मेरै मनि तनि वडड़ी गोविंद

प्रभ आसा जीउ। हरि मेलहु संत जीउ गोविद प्रभ पासा जीउ। सतिगुर मति नामु सदा परगासा जीउ। जन नानक पूरिअड़ी मनि आसा जीउ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ३१ ॥ ६९ ॥

(हे संतजनो!) हरि ने मुझे (मेरे भीतर) हरि-नाम की चाह लगा दी है, अब मैं तब आनन्द अनुभव कर सकता हूँ, जब मुझे मेरा मित्र हरि-प्रभु मिल जाए। हे माँ! हरि-प्रभु को देखकर मेरे भीतर आत्मिक जीवन पैदा होता है। मुझे निश्चय हो गया है कि हरि-नाम ही मेरा मित्र तथा भाई है ॥ १ ॥ हे संतजनो! तुम मेरे हरि-प्रभु के गुण गाओ, गुरु की शरण लेकर हरि-नाम जपने से सौभाग्य जाग पड़ते हैं। (हे संतजनो!) हरि का नाम मेरी ज़िन्दगी का आसरा है। (जो मनुष्य हरि-नाम जपता है, उसे) दोबारा संसार-समुद्र के (जन्म-मरण के) चक्र नहीं पड़ते ॥ २ ॥ हे संतजनो! मेरे मन में यह चाव बना रहता है कि मैं हरि-प्रभु के दर्शन कैसे कर सकूँ। हे संतजनो! मेरे मन में (हरि-प्रभु के दर्शन की) इच्छा लग रही है, मुझे हरि-प्रभु मिला दो। (हे संतजनो!) गुरु के उपदेश द्वारा सौभाग्यवश हरि-नाम जपकर प्रियतम को मिला जा सकता है ॥ ३ ॥ हे संतजनो! मेरे मन में गोविन्द-प्रभु के (मिलाप की) बड़ी आशा है। हे संतजनो! मुझे वह गोविन्द-प्रभु मिला दो जो मेरे भीतर विद्यमान है। हे दास नानक! गुरु की शिक्षा पर चलने से ही सदा (जीवन के भीतर) हरि-नाम का प्रकाश होता है (जिसके भीतर गुरु की शिक्षा का अनुसरण होता है उसके) मन में (पैदा हुई प्रभु-मिलाप की) आशा पूर्ण हो जाती है ॥ ४ ॥ ५ ॥ ३१ ॥ ६९ ॥

॥ गउड़ी माझ महला ४ ॥ मेरा बिरही नामु मिलै ता जीवा जीउ। मन अंदरि अंम्रितु गुरमति हरि लीवा जीउ। मनु हरि रंगि रतड़ा हरि रसु सदा पीवा जीउ। हरि पाइअड़ा मनि जीवा जीउ ॥ १ ॥ मेरै मनि तनि प्रेमु लगा हरि बाणु जीउ। मेरा प्रीतमु मित्रु हरि पुरखु सुजाणु जीउ। गुरु मेले संत हरि सुघड़ु सुजाणु जीउ। हउ नाम विटहु कुरबाणु जीउ ॥ २ ॥ हउ हरि हरि सजणु हरि मीतु दसाई जीउ। हरि दसहु संतहु जी हरि खोजु पवाई जीउ। सतिगुरु तुठड़ा दसे हरि पाई जीउ। हरिनामे नामि समाई जीउ ॥ ३ ॥ मै वेदन प्रेमु हरि बिरहु लगाई जीउ। गुर सरधा पूरि अंम्रितु मुखि पाई जीउ। हरि होहु दइआलु हरिनामु धिआई जीउ। जन नानक हरि रसु पाई जीउ ॥ ४ ॥ ६ ॥ २० ॥ १८ ॥ ३२ ॥ ७० ॥

मैं तब ही आत्मिक जीवन प्राप्त कर सकता हूँ, जब मुझे बिछुड़ा हुआ हरि-नाम मिल जाए। आत्मिक जीवन देनेवाला नाम-जल (मेरे) मन में ही (बसता है, पर) वह हरिनाम-रूपी अमृत गुरु के द्वारा ही मैं ले सकता हूँ। (यदि मेरा) मन (गुरु-कृपा से) परमात्मा के (प्रेम-) रंग में रँग जाए तो मैं सदा हरि-नाम का रस पीता रहूँ। जब (गुरु की कृपा से मुझे) हरि मिल जाए तो मैं अपने मन में जी जाता हूँ ॥ १ ॥ हे भाई! मेरे हृदय में परमात्मा का प्रेम-तीर लगा हुआ है (मुझे विश्वास हो चुका है कि) सुजान हरि पुरुष ही मेरा प्रियतम है, मेरा मित्र है। गुरु ही उस संत सुजान हरि से मिलाता है इसलिए मैं हरि-नाम पर बलिहारी जाता हूँ ॥ २ ॥ हे संतजनो, (मुझे उसका पता बताओ), मैं उस हरि सज्जन की खोज करता फिरता हूँ। हे संतजनो! मैं तब ही हरि मित्र को मिल सकता हूँ जब प्रसन्न हुआ सतिगुरु (उसका पता) बताए, तब ही मैं सदा उस हरि के नाम में लीन हो सकता हूँ ॥ ३ ॥ हे सतिगुरु! मेरे भीतर प्रभु के बिछोह की पीड़ा उठ रही है, मेरे भीतर प्रभु का प्रेम जाग पड़ा है, मेरे भीतर हरि के मिलने की इच्छा पैदा हो रही है। हे गुरु! मेरी श्रद्धा पूर्ण कर (ताकि) मैं उसका नाम-अमृत मुख में डालूँ। हे दास नानक! (कहो—) हे हरि! मुझ पर दयालु हो, मैं तेरा हरि-नाम स्मरण करूँ और मैं तेरा हरि-नाम-रस प्राप्त करूँ ॥ ४ ॥ ६ ॥ २० ॥ १८ ॥ ३२ ॥ ७० ॥

महला ५ रागु गउड़ी गुआरेरी चउपदे

१ ओं सतिगुर प्रसादि। किन बिधि कुसलु होत मेरे भाई। किउ पाईऐ हरि राम सहाई ॥ १ ॥ रहाउ ॥ कुसलु न ग्रिहि मेरी सभ माइआ। ऊचे मंदर सुंदर छाइआ। झूठे लालचि जनमु गवाइआ ॥ १ ॥ हसती घोड़े देखि विगासा। लसकर जोड़े नेब खवासा। गलि जेवड़ी हउमै के फासा ॥ २ ॥ राजु कमावै दहदिस सारी। माणै रंग भोग बहु नारी। जिउ नरपति सुपनै भेखारी ॥ ३ ॥ एकु कुसलु मो कउ सतिगुरू बताइआ। हरि जो किछु करे सु हरि किआ भगता भाइआ। जन नानक हउमै मारि समाइआ ॥ ४ ॥ इनि बिधि कुसल होत मेरे भाई। इउ पाईऐ हरि राम सहाई ॥ १ ॥ रहाउ दूजा ॥

हे मेरे भाई! आत्मिक आनन्द किन तरीकों से (पैदा) हो सकता है? मित्र हरि परमात्मा कैसे मिल सकता है? ॥ १ ॥ रहाउ ॥ घर (के मोह)

में आत्मिक सुख नहीं है, यह समझने में भी आत्मिक सुख नहीं है कि यह सारी माया मेरी है। ऊँचे महल, बागों की छाया के सुख में भी आत्मिक आनन्द नहीं। (जिस मनुष्य ने इनमें आत्मिक सुख समझा है उसने) झूठे लालच में जन्म गवाँ दिया है ॥ १ ॥ मनुष्य हाथी, घोड़े देखकर ख़ुशी (महसूस करता है), फ़ौजें एकत्रित करता है, मन्त्री तथा शाही नौकर रखता है लेकिन उसके गले में अहंकार की रस्सी तथा फन्दे ही पड़ते हैं ॥ २ ॥ (राजा बनकर मनुष्य) दसों दिशाओं में पृथ्वी का राज्य करता है, आनन्द करता है, स्त्रियों के साथ विलास करता है (लेकिन सब यों है जैसे) कोई राजा भिखारी बन जाता है ॥ ३ ॥ सतिगुरु ने मुझे असल आत्मिक सुख (का मूल्य) बताया है (वह है परमेश्वर की इच्छा को सर्वोपरि मानना।) जो कुछ परमात्मा करता है, उसके भक्तों को वह मीठा लगता है। हे दास नानक ! अहंकार समाप्त कर (सौभाग्यशाली मनुष्य परमात्मा में ही) लीन रहता है ॥ ४ ॥ हे मेरे भाई ! इस तरीके से (परमेश्वर की इच्छा को स्वीकारने से) आत्मिक आनन्द पैदा होता है, इस प्रकार (ही) असल मित्र हरि-परमात्मा मिलता है ॥ १ ॥ रहाउ दूजा ॥

॥ गउड़ी गुआरेरी महला ५ ॥ किउ भ्रमीऐ भ्रमु किस का होई। जा जलि थलि महीअलि रविआ सोई। गुरमुखि उबरे मनमुख पति खोई ॥ १ ॥ जिसु राखै आपि रामु दइआरा। तिसु नही दूजा को पहुचनहारा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सभ महि वरतै एकु अनंता। ता तूं सुखि सोउ होइ अचिंता। ओहु सभु किछु जाणै जो वरतंता ॥ २ ॥ मनमुख मुए जिन दूजी पिआसा। बहु जोनी भवहि धुरि किरति लिखिआसा। जैसा बीजहि तैसा खासा ॥ ३ ॥ देखि दरसु मनि भइआ विगासा। सभु नदरी आइआ ब्रहमु परगासा। जन नानक की हरि पूरन आसा ॥ ४ ॥ २ ॥ ७१ ॥

जब (यह विश्वास हो जाए कि) वह प्रभु ही जल, थल, आकाश में व्याप्त है, तब मन भटकाव से हट जाता है क्योंकि किसी सांसारिक पदार्थ की ख़ातिर दुबिधा नहीं रहती। पर (तृष्णा के अभाव से) गुरु के सम्मुख रहनेवाले मनुष्य (ही) बचते हैं, स्वेच्छाचारी मनुष्य (तृष्णा में फँसकर अपनी) प्रतिष्ठा गवाँ लेते हैं (क्योंकि वे आत्मिक जीवन के स्तर से नीचे हो जाते हैं) ॥ १ ॥ (हे भाई !) जिस मनुष्य को दयालु प्रभु आप (तृष्णा से) बचाता है (उसका जीवन इतना ऊँचा हो जाता है कि) कोई दूसरा मनुष्य उसकी बराबरी नहीं कर सकता ॥ १ ॥ रहाउ ॥

(हे भाई !) तू तब ही चिन्ता-रहित होकर आत्मिक आनन्द में लीन रह सकता है (जब तुझे यह निश्चय हो जाए कि) एक अपरम्पार प्रभु ही सब में व्यापक है, और जो कुछ जगत् में हो रहा है वह परमात्मा सब कुछ जानता है ॥ २ ॥ जिन मनुष्यों को माया की तृष्णा लगी रहती है वे स्वेच्छाचारी मनुष्य आत्मिक मौत मरते हैं क्योंकि वे जैसा बोते हैं वैसा ही खाते हैं। उनके पूर्वकृत कर्मों के अनुसार परमात्मा के दरबार से ही उनके माथे पर ऐसा लेख लिखा होता है कि वे अनेक योनियों में भटकते फिरते हैं ॥ ३ ॥ (सर्वत्र) परमात्मा का दर्शन करके जिस मनुष्य के मन में प्रसन्नता पैदा होती है उसे सर्वत्र परमात्मा ही प्रकाश करता हुआ दिखता है, हे नानक ! उस दास की परमात्मा आस पूर्ण करता है ॥४॥२॥७१॥

॥ गउड़ी गुआरेरी महला ५ ॥ कई जनम भए कीट पतंगा । कई जनम गज मीन कुरंगा । कई जनम पंखी सरप होइओ । कई जनम हैवर ब्रिख जोइओ ॥ १ ॥ मिलु जगदीस मिलन की बरीआ । चिरंकाल इह देह संजरीआ ॥ १ ॥ रहाउ॥ कई जनम सैल गिरि करिआ । कई जनम गरभ हिरि खरिआ । कई जनम साख करि उपाइआ । लख चउरासीह जोनि भ्रमाइआ ॥ २ ॥ साध संगि भइओ जनमु परापति । करि सेवा भजु हरि हरि गुरमति । तिआगि मानु झूठु अभिमानु । जीवत मरहि दरगह परवानु ॥ ३ ॥ जो किछु होआ सु तुझ ते होगु । अवरु न दूजा करणै जोगु । ता मिलीऐ जा लैहि मिलाइ । कहु नानक हरि हरि गुण गाइ ॥ ४ ॥ ३ ॥ ७२ ॥

(हे भाई !) तू कितने ही जन्मों में कीड़े, पतंगे बनता रहा, कितने ही जन्मों में हाथी, मछली, हिरन बनता रहा, कितने ही जन्मों में पक्षी और साँप बना, कितने ही में तुझे घोड़े, बैल के रूप में जोता गया ॥ १ ॥ (हे भाई !) चिरकाल बाद तुझे यह शरीर मिला है, जगत् के मालिक प्रभु को मिल, (मनुष्य जन्म में ही प्रभु को) मिलने का समय है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे भाई !) कितने ही जन्मों में तुझे पत्थर-चट्टान बनाया गया, कितने ही जन्मों में (तेरी माँ का) गर्भ ही गिरता रहा। कितने ही जन्मों में तुझे वृक्ष बनाकर पैदा किया गया और (इस प्रकार) चौरासी लाख योनियों में घुमाया गया ॥ २ ॥ (हे भाई ! अब तुझे) मनुष्य जन्म मिला है, सत्संगति में (आकर) गुरु की शिक्षा लेकर (समाज की) सेवा कर और परमात्मा का भजन कर। अभिमान, झूठ और अहंकार छोड़ दे। तू (परमात्मा के) दरबार में (तब ही) स्वीकृत होगा यदि जीवन जीता हुआ

ही आपाभाव से अलग रहेगा ॥ ३ ॥ हे नानक ! (प्रभु के समक्ष प्रार्थना कर और (कह— हे प्रभु ! तेरा स्मरण करने की जीव के भीतर क्या सामर्थ्य हो सकती है ?) जो कुछ (जगत् में) होता है वह तेरे (हुक्म) से ही होता है। हे प्रभु ! तुझे तब ही मिला जा सकता है यदि तू आप जीव को (अपने चरणों में) मिला ले, तब ही जीव हरि-गुण गा सकता है ॥ ४ ॥ ३ ॥ ७२ ॥

॥ गउड़ी गुआरेरी महला ५ ॥ करमभूमि महि बोअहु नामु। पूरन होइ तुमारा कामु। फल पावहि मिटै जम त्रास। नित गावहि हरि हरि गुण जास ॥ १ ॥ हरि हरि नामु अंतरि उरि धारि। सीघर कारजु लेहु सवारि ॥ १ ॥ रहाउ ॥ अपने प्रभ सिउ होहु सावधानु। ता तूं दरगह पावहि मानु। उकति सिआणप सगली तिआगु। संत जना की चरणी लागु ॥२॥ सरब जीअ हहि जाकै हाथि। कदे न विछुड़ै सभ कै साथि। उपाव छोडि गहु तिस की ओट। निमख माहि होवै तेरी छोटि ॥ ३ ॥ सदा निकटि करि तिस नो जाणु। प्रभ की आगिआ सति करि मानु। गुर कै बचनि मिटावहु आपु। हरि हरि नामु नानक जपि जापु ॥ ४ ॥ ४ ॥ ७३ ॥

(हे भाई !) कर्म बोने वाली धरती में परमात्मा का नाम बो, इस प्रकार तेरे जीवन का मनोरथ सफल हो जायगा। (हे भाई !) यदि तू परमात्मा के गुण गाए, यदि नित्य परमात्मा का यश गाए, तो इसका यह परिणाम होगा कि तेरी आत्मिक मृत्यु का ख़तरा मिट जायगा ॥ १ ॥ (हे भाई !) अपने हृदय के भीतर परमात्मा का नाम सँभाल कर रख और (इस प्रकार) अपने मनुष्य-जीवन का मनोरथ सँवार ले ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे भाई !) अपनी तमाम दलीलें, तमाम चतुराइयाँ छोड़ दे, गुरमुखों की शरण ले, अपने परमात्मा के प्रति सचेत रह (कि वह विस्मृत न हो)। जब तू यह प्रयास करेगा तब तू परमात्मा के दरबार में आदर प्राप्त करेगा ॥ २ ॥ (हे भाई !) सारे जीव-जन्तु जिस परमात्मा के वश में हैं, जो प्रभु कभी भी (जीवों से) अलग नहीं होता, (सदा) सब जीवों के साथ रहता है, अपने सब यत्न छोड़कर उस परमात्मा का आसरा-पल्ला पकड़, आँख के एक बार झपकने मात्र में ही तेरी मुक्ति हो जायगी ॥ ३ ॥ हे नानक ! उस परमात्मा को सदा अपने निकट बसता समझ, यह निश्चित स्वीकार ले कि ईश्वरेच्छा प्रबल है। गुरु के उपदेश को मानने से आपा-भाव दूर करके, सदा परमात्मा का नाम जप, सदा प्रभु (के गुणों) का जाप कर ॥ ४ ॥ ४ ॥ ७३ ॥

॥ गउड़ी गुआरेरी महला ५ ॥ गुर का बचनु सदा अबिनासी । गुर कै बचनि कटी जम फासी । गुर का बचनु जीअ कै संगि । गुर कै बचनि रचै राम कै रंगि ॥ १ ॥ जो गुरि दीआ सु मन कै कामि । संत का कीआ सति करि मानि ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गुर का बचनु अटल अछेद । गुर कै बचनि कटे भ्रम भेद । गुर का बचनु कतहु न जाइ । गुर कै बचनि हरि के गुण गाइ ॥ २ ॥ गुर का बचनु जीअ कै साथ । गुर का बचनु अनाथ को नाथ । गुर कै बचनि नरकि न पवै । गुर कै बचनि रसना अंम्रितु रवै ॥ ३ ॥ गुर का बचनु परगटु संसारि । गुर कै बचनि न आवै हारि । जिसु जन होए आपि क्रिपाल । नानक सतिगुर सदा दइआल ॥ ४ ॥ ५ ॥ ७४ ॥

गुरु का उपदेश सदा आत्मिक जीवन के काम आनेवाला है, यह उपदेश कभी भी पुराना होनेवाला नहीं । गुरु के उपदेश के द्वारा ही मनुष्य परमात्मा के प्रेम-रंग में जुड़ा रहता है ॥ १ ॥ (हे भाई !) जो (उपदेश) गुरु ने दिया है, वह (हरएक मनुष्य के) मन के काम आता है, (इसलिए, हे भाई !) गुरु के किए हुए (उपकार) को सदा निभनेवाला समझ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गुरु का उपदेश सदा मनुष्य के आत्मिक जीवन के काम आनेवाला है, यह उपदेश कभी समाप्त होनेवाला नहीं, इसके द्वारा मन की दुबिधा, भेदभाव काटे जाते हैं । गुरु का उपदेश कभी व्यर्थ नहीं जाता । गुरु के उपदेश से मनुष्य परमात्मा के गुण गाता है ॥ २ ॥ गुरु का उपदेश आत्मा के साथ निभता है । वह निराश्रित आत्माओं का सहारा बनता है । गुरु के उपदेश के प्रभाव से मनुष्य नरक में नहीं पड़ता, और अपनी जिह्वा से आत्मिक जीवन देनेवाला नाम-रस प्राप्त करता है ॥ ३ ॥ गुरु का उपदेश मनुष्य को प्रसिद्ध कर देता है । उसके प्रभाव से मनुष्य जीवन-बाजी हारकर नहीं आता । हे नानक ! जिस मनुष्य पर परमात्मा आप कृपालु होता है, उस पर सतिगुरु सदा दया-दृष्टि करता रहता है ॥ ४ ॥ ५ ॥ ७४ ॥

॥ गउड़ी गुआरेरी महला ५ ॥ जिनि कीता माटी ते रतनु । गरभ महि राखिआ जिनि करि जतनु । जिनि दीनी सोभा वडिआई । तिसु प्रभ कउ आठ पहर धिआई ॥ १ ॥ रमईआ रेनु साध जन पावउ । गुर मिलि अपुना खसमु

धिआवउ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिनि कीता मूड़ ते बकता। जिनि कीता बेसुरत ते सुरता। जिसु परसादि नवै निधि पाई। सो प्रभु मन ते बिसरत नाही ॥ २ ॥ जिनि दीआ निथावे कउ थानु। जिनि दीआ निमाने कउ मानु। जिनि कीनी सभ पूरन आसा। सिमरउ दिनु रैनि सास गिरासा ॥ ३ ॥ जिसु प्रसादि माइआ सिलक काटी। गुर प्रसादि अंम्रितु बिखु खाटी। कहु नानक इस ते किछु नाही। राखनहारे कउ सालाही ॥ ४ ॥ ६ ॥ ७५ ॥

(हे भाई !) जिस (प्रभु) ने मिट्टी से अमूल्य शरीर बना दिया है, जिसने यत्न करके माँ के पेट में मेरी रक्षा की है, जिसने मुझे शोभा, महानता दी है, उस प्रभु को मैं आठ पहर स्मरण करता हूँ ॥ १ ॥ हे सुन्दर राम ! (कृपा कर ताकि) मैं गुरमुखों के चरणों की धूलि प्राप्त कर लूँ और गुरु को मिलकर (तुझ) पति को स्मरण करता रहूँ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे भाई !) जिस प्रभु ने (मुझ) मूर्ख को सुन्दर मीठे बोल वाला बना दिया है, जिसने (मुझे) अज्ञानी से समझदार बना दिया है, जिसकी कृपा से मैंने नौ निधियाँ प्राप्त कर ली हैं, वह प्रभु मुझे विस्मृत नहीं होता है ॥ २ ॥ (हे भाई !) जिस (कर्त्तार) ने मुझ निराश्रित को आश्रय दिया है, जिसने (मुझ) तुच्छ व्यक्ति को आदर दिया है, जिस (कर्त्तार) ने मेरी हरएक आशा पूर्ण की है, उसे मैं दिन-रात हरएक श्वास से, हरएक ग्रास द्वारा स्मरण करता रहता हूँ ॥ ३ ॥ हे नानक ! कहो— (हे भाई !) जिसकी कृपा से (मेरे गले से) माया की फाँसी काटी गई है, (जिसके भेजे) गुरु की कृपा से (मुझे) अमृत (जैसी मीठी लगनेवाली माया अब) कड़वी ज़हर लग रही है, मैं उस रक्षक प्रभु की गुणस्तुति करता हूँ; (नहीं तो) इस जीव के कुछ वश नहीं (कि अपने प्रयास से प्रभु की गुणस्तुति कर सके) ॥ ४ ॥ ६ ॥ ७५ ॥

॥ गउड़ी गुआरेरी महला ५ ॥ तिस की सरणि नाही भउ सोगु। उस ते बाहरि कछू न होगु। तजी सिआणप बल बुधि बिकार। दास अपने की राखनहार ॥ १ ॥ जपि मन मेरे राम राम रंगि। घरि बाहरि तेरै सद संगि ॥ १ ॥ रहाउ ॥ तिस की टेक मनै महि राखु। गुर का सबदु अंम्रित रसु चाखु। अवरि जतन कहहु कउन काज। करि किरपा राखै आपि लाज ॥ २ ॥ किआ मानुख कहहु किआ जोरु। झूठा माइआ का सभु सोरु। करण करावनहार सुआमी। सगल घटा के

अंतरजामी ॥ ३ ॥ सरब सुखा सुखु साचा एहु । गुर उपदेसु मनै महि लेहु । जा कउ रामनाम लिव लागी । कहु नानक सो धंनु वडभागी ॥ ४ ॥ ७ ॥ ७६ ॥

(हे भाई !) उस राम की शरण लेने से कोई डर नहीं स्पर्श कर सकता, कोई चिन्ता नहीं व्याप्त कर सकती, (क्योंकि कोई चिन्ता) कुछ भी उस राम से विरुद्ध नहीं हो सकता (और वह अपने आप किसी जीव को दुःख नहीं दे सकता) । (इसलिए, हे भाई !) मैंने अपनी बुद्धि का सहारा रखने की बुराई छोड़ दी है (और उस राम का दास बन गया हूँ, वह राम) अपने दास की प्रतिष्ठा रखने में समर्थ है ॥ १ ॥ हे मन ! राम-नाम में रँग कर जाप करता रह; घर-बाहर, वही सदैव तेरे संग है ॥१॥रहाउ॥ (हे भाई !) अपने मन में उस परमात्मा का आसरा रख, गुरु के शब्द का आनन्द प्राप्त कर (जो) आत्मिक जीवन देनेवाला रस है । (हे भाई !) कहो (परमात्मा को भुलाकर) दूसरे उद्यम किस काम आ सकते हैं ? (प्रभु की शरण लो, जो) कृपा करके (जीव की) प्रतिष्ठा आप रखता है ॥ २ ॥ माया का सारा दिखावा झूठा है । कहो, —ये मनुष्य क्या कर सकते हैं ? इनके अभिमान की क्या (शक्ति) है ? मालिक प्रभु सब कुछ करने के लिए समर्थ है, आप ही जीवों से सब कुछ कराता है । वह प्रभु सब जीवों के हृदय की जानता है ॥ ३ ॥ (हे भाई !) सतिगुरु का उपदेश अपने मन में टिकाकर रख, यही सर्वोत्तम सुख है और यही शाश्वत सुख है । हे नानक ! कहो— जिस मनुष्य को परमात्मा के नाम की लगन लग जाती है, वह धन्य है, वह सौभाग्यशाली है ॥ ४ ॥ ७ ॥ ७६ ॥

॥ गउड़ी गुआरेरी महला ५ ॥ सुणि हरि कथा उतारी मैलु । महा पुनीत भए सुख सैलु । वडै भागि पाइआ साध संगु । पारब्रहम सिउ लागो रंगु ॥ १ ॥ हरि हरि नामु जपत जनु तारिओ । अगनि सागरु गुरि पारि उतारिओ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ करि कीरतनु मन सीतल भए । जनम जनम के किलविख गए । सरब निधान पेखे मन माहि । अब ढूढन काहे कउ जाहि ॥ २ ॥ प्रभ अपुने जब भए दइआल । पूरन होई सेवक घाल । बंधन काटि कीए अपने दास । सिमरि सिमरि सिमरि गुण तास ॥ ३ ॥ एको मनि एको सभ ठाइ । पूरन पूरि रहिओ सभ जाइ । गुरि पूरै सभु भरमु चुकाइआ । हरि सिमरत नानक सुखु पाइआ ॥ ४ ॥ ८ ॥ ७७ ॥

जिन मनुष्यों ने (गुरु की शरण लेकर) परमात्मा की गुणस्तुति

सुनकर (विकारों की) मैल उतार दी वे बड़े ही पवित्र जीवन वाले हो गए, उन्होंने अनेकों ही सुख प्राप्त कर लिए। उन्होंने सौभाग्यवश गुरु का मिलाप प्राप्त कर लिया, उनका परमात्मा के साथ प्रेम हो गया ॥ १ ॥ हरिनाम-स्मरण करनेवाले सेवक को (गुरु ने संसार-समुद्र से) पार करा लिया है। गुरु ने (सेवक को) तृष्णा-अग्नि के समुद्र से पार करा लिया है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ परमात्मा की गुणस्तुति करके जिनके मन शान्त हो गए, (उनके भीतर से) जन्म-जन्मान्तरों के पाप दूर हो गए। उन्होंने सारे भण्डार अपने मन में ही देख लिए, (इसलिए सुख ढूँढने के लिए अब वे (कहीं) क्यों जाएँ ? ॥ २ ॥ जब प्रभु अपने दासों पर दयालु होते हैं, तब दासों की (की हुई सेवा-स्मरण की) मेहनत सफल हो जाती है। (सेवकों के माया-मोह के) बन्धन काटकर प्रभु उन्हें अपना दास बना लेता है। गुणों के भण्डार परमात्मा का नाम-स्मरण करके (सेवक परमात्मा में लीन हो जाते हैं) ॥ ३ ॥ पूर्णगुरु ने जिस मनुष्य के मन की सारी दुबिधा दूर कर दी, उसे सर्वत्र परमात्मा ही परमात्मा व्यापक दिखता है, उसे एक परमात्मा ही अपने हृदय में बसता दिखता है, एक परमात्मा ही सर्वत्र दिखाई देता है। हे नानक ! परमात्मा का स्मरण करके उस मनुष्य ने आत्मिक आनन्द प्राप्त कर लिया है ॥ ४ ॥ ८ ॥ ७७ ॥

॥ गउड़ी गुआरेरी महला ५ ॥ अगले मुए सि पाछै परे। जो उबरे से बंधि लकु खरे। जिह धंधे महि ओइ लपटाए। उन ते दुगुण दिड़ी उन माए ॥ १ ॥ ओह बेला कछु चीति न आवै। बिनसि जाइ ताहू लपटावै ॥ १ ॥ रहाउ ॥ आसा बंधी मूरख देह। काम क्रोध लपटिओ असनेह। सिर ऊपरि ठाढो धरमराइ। मीठी करि करि बिखिआ खाइ ॥ २ ॥ हउ बंधउ हउ साधउ बैरु। हमरी भूमि कउणु घालै पैरु। हउ पंडितु हउ चतुरु सिआणा। करणैहारु न बुझै बिगाना ॥ ३ ॥ अपुनी गति मिति आपे जानै। किआ को कहै कि आखि वखानै। जितु जितु लावहि तितु तितु लगना। अपना भला सभ काहू मंगना ॥ ४ ॥ सभ किछु तेरा तूं करणैहारु। अंतु नाही किछु पारावारु। दास अपने कउ दीजै दानु। कबहू न विसरै नानक नामु ॥ ५ ॥ ९ ॥ ७८ ॥

जो अपने पूर्वज मृत्यु प्राप्त कर जाते हैं वे भूल जाते हैं (कि जोड़ी माया यहीं छोड़ गए), जो जीवित हैं वे माया एकत्रित करने के लिए कमर कस कर खड़े हो जाते हैं। जिस धंधे में पूर्वज फँसे थे, उनसे भी दुगुनी

माया की पकड़ वे मनुष्य अपने मन में बना लेते हैं ॥ १ ॥ (मूर्ख मनुष्य को) वह समय तनिकमात्र स्मरण नहीं रहता (जब पूर्वजों की तरह सब कुछ यहीं छोड़ जाना है)। मनुष्य बार-बार उसी माया से चिपटता है जिसे नष्ट हो जाना है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मूर्ख मनुष्य का शरीर (ज्ञानेन्द्रियों की) आशाओं से जकड़ा रहता है, मूर्ख मनुष्य काम, क्रोध तथा मोह के बन्धनों में फँसा रहता है। सिर पर धर्मराज खड़ा है (अर्थात् मौत का वक्त निकट है, पर) मूर्ख मनुष्य माया-रूपी विष मीठा मानकर खाता रहता है ॥ २ ॥ (माया में मस्त अहंकार भरी बातें करता है—) मैं (उसे) बाँध लूँगा, मैं उससे अपना बदला लूँगा, मेरी भूमि पर कौन पैर धरता है ? मैं विद्वान् हूँ, मैं चतुर हूँ, मैं चालाक हूँ। (अपने अहंकार में) मूर्ख मनुष्य अपने पैदा करनेवाले परमात्मा को भी नहीं समझता ॥ ३ ॥ (पर जीव के भी क्या वश ?) परमात्मा आप ही जानता है कि वह आप कैसा है और कितना बड़ा है ? जीव (उस परमात्मा की गतिविधि के बारे में) कुछ भी नहीं कह सकता, कुछ भी कहकर व्यक्त नहीं कर सकता। हे प्रभु ! तू जीव को जिस ओर लगाता है, उधर ही लग सकता है। हर एक जीव को तुझ से ही अपने भले की माँग माँगनी है ॥ ४ ॥ हे प्रभु ! यह सब कुछ तेरा ही पैदा किया हुआ है, तू ही सारे जगत् को बनानेवाला है, तेरे गुणों का अन्त नहीं हो सकता, तेरे स्वरूप का ओर-छोर नहीं मिल सकता। हे प्रभु ! अपने दास नानक को यह देन दे कि मुझे कभी तेरा नाम न भूले ॥ ५ ॥ ९ ॥ ७८ ॥

॥ गउड़ी गुआरेरी महला ५ ॥ अनिक जतन नही होत छुटारा। बहुतु सिआणप आगल भारा। हरि की सेवा निरमल हेत। प्रभ की दरगह सोभा सेत ॥ १ ॥ मन मेरे गहु हरिनाम का ओला। तुझै न लागै ताता झोला ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिउ बोहिथु भै सागर माहि। अंधकार दीपक दीपाहि। अगनि सीत का लाहसि दूख। नामु जपत मनि होवत सूख ॥२॥ उतरि जाइ तेरे मन की पिआस। पूरन होवै सगली आस। डोलै नाही तुमरा चीतु। अंम्रित नामु जपि गुरमुखि मीत ॥ ३ ॥ नामु अउखधु सोई जनु पावै। करि किरपा जिसु आपि दिखावै। हरि हरि नामु जा कै हिरदै वसै। दूखु दरदु तिह नानक नसै ॥ ४ ॥ १० ॥ ७९ ॥

(हे मन !) अनेक यत्नों के द्वारा भी (माया के क्लेशों से) मुक्ति नहीं हो सकती, बल्कि माया की ख़ातिर की हुई चतुराई (दूसरे-दूसरे)

दुखों का बहुत अधिक भार (सिर पर डाल देती है)। यदि पवित्र प्रेम के साथ हरि की सेवा-भक्ति की जाय तो हरि के दरबार में आदर-सत्कार द्वारा पहुँचा जाता है ।। १ ।। हे मेरे मन ! परमात्मा के नाम का आसरा छोड़, तुझे (दुनिया के क्लेशों की) गर्म हवा का झोंका स्पर्श नहीं करता ।। १ ।। रहाउ ।। हे भाई ! जैसे भयानक समुद्र में जहाज़ (आदमी को डूबने से बचाता है) जैसे अँधेरे में दीपक प्रकाश करते हैं (और ठुकराने से बचाते हैं), जैसे आग पाले का दुःख दूर कर देती है, उसी प्रकार परमात्मा का नाम-स्मरण करने से आनन्द पैदा होता है ।। २ ।। हे मित्र ! गुरु की शरण लेकर आत्मिक जीवन देनेवाला हरि-नाम जप, तेरे मन की तृष्णा समाप्त हो जायगी, तेरी सारी ही आशा पूर्ण हो जायगी और तेरा मन (माया की लालसा में) नहीं चलायमान होगा ।। ३ ।। (पर यह) हरि-नाम औषधि वही मनुष्य प्राप्त करता है जिसे प्रभु-कृपा करके आप (गुरु से) दिलाता है। हे नानक ! जिस मनुष्य के हृदय में परमात्मा का नाम बस जाता है, उसका सारा दुख-दर्द दूर हो जाता है ।।४।।१०।।७९।।

।। गउड़ी गुआरेरी महला ५ ।। बहुतु दरबु करि मनु न अघाना। अनिक रूप देखि नह पतीआना। पुत्र कलत्र उरझिओ जानि मेरी। ओह बिनसै ओइ भसमै ढेरी ।। १ ।। बिनु हरिभजन देखउ बिललाते। ध्रिगु तनु ध्रिगु धनु माइआ संगि राते ।। १ ।। रहाउ ।। जिउ बिगारी कै सिरि दीजहि दाम। ओइ खसमै कै ग्रिहि उन दूख सहाम। जिउ सुपनै होइ बैसत राजा। नेत्र पसारै ता निरारथ काजा ।। २ ।। जिउ राखा खेत ऊपरि पराए। खेतु खसम का राखा उठि जाए। उसु खेत कारणि राखा कड़ै। तिस कै पालै कछू न पड़ै ।। ३ ।। जिस का राजु तिसै का सुपना। जिनि माइआ दीनी तिनि लाई त्रिसना। आपि बिनाहे आपि करे रासि। नानक प्रभ आगै अरदासि ।। ४ ।। ११ ।। ८० ।।

बहुत धन जोड़कर (भी) मन तृप्त नहीं होता, अनेकों सुन्दर स्त्रियों के सौंदर्य को देखकर भी तसल्ली नहीं होती। मनुष्य, यह समझकर कि यह मेरी पत्नी है, यह मेरा पुत्र है, माया के मोह में फँसा रहता है। (स्त्रियों की) सुन्दरता नष्ट हो जाती है, (उसके माने हुए) पत्नी, पुत्र, राख की ढेरी हो जाते हैं (किसी के साथ भी साथ नहीं निभता) ।। १ ।। मैं देखता हूँ कि परमात्मा के भजन किए बिना जीव दुखी होते हैं। जो मनुष्य माया के मोह में मस्त रहते हैं, उनका शरीर धिक्कार योग्य है,

उनका धन धिक्कार योग्य है ।। १ ।। रहाउ ।। जैसे किसी बेगारी के सिर पर रुपए-पैसे रखे जाएँ, वे पैसे-रुपए मालिक के घर में जा पहुँचते हैं, उस बेगारी को दुःख ही सहना होता है । जैसे कोई मनुष्य सपने में राजा बनकर बैठ जाता है (पर जब) आँखें खोलता है तो (स्वप्न में मिले राज्य का सारा) काम ख़राब हो जाता है ।। २ ।। जैसे कोई रक्षक किसी दूसरे के खेत पर (रखवाली करता है), (फसल पकने पर वह) मालिक की सम्पत्ति हो जाती है और रखवाला उठकर चला जाता है । रखवाला उस (पराए) खेत की (देखभाल) ख़ातिर दुखी होता रहता है, परन्तु उसे (आख़िर) कुछ नहीं मिलता ।। ३ ।। (पर जीव के क्या वश ? स्वप्न में) जिस प्रभु का (दिया हुआ) राज्य मिलता है, उसी का दिया हुआ स्वप्न भी होता है । जिस प्रभु ने मनुष्य को माया दी है, उसी ने ही माया की तृष्णा चिपटाई है । हे नानक ! प्रभु आप ही (तृष्णा देकर) आत्मिक मौत देता है, आप ही (अपने नाम की देन देकर) मनुष्य जीवन का मनोरथ सफल करता है । प्रभु के द्वार पर ही (सदा नाम की देन के लिए) प्रार्थना करनी चाहिए ।। ४ ।। ११ ।। ८० ।।

।। गउड़ी गुआरेरी महला ५ ।। बहु रंग माइआ बहुबिधि पेखी । कलम कागद सिआनप लेखी । महर मलूक होइ देखिआ खान । ता ते नाही मनु त्रिपतान ।। १ ।। सो सुखु मो कउ संत बतावहु । त्रिसना बूझै मनु त्रिपतावहु ।। १ ।। रहाउ ।। असु पवन हसति असवारी । चोआ चंदनु सेज सुंदरि नारी । नट नाटिक आखारे गाइआ । ता महि मनि संतोखु न पाइआ ।। २ ।। तखतु सभा मंडन दोलीचे । सगल मेवे सुंदर बागीचे । आखेड़ बिरति राजन की लीला । मनु न सुहेला परपंचु हीला ।। ३ ।। करि किरपा संतन सचु कहिआ । सरब सूख इहु आनंदु लहिआ । साधसंगि हरि कीरतनु गाईऐ । कहु नानक वडभागी पाईऐ ।। ४ ।। जाकै हरि धनु सोई सुहेला । प्रभ किरपा ते साधसंगि मेला ।। १ ।। रहाउ दूजा ।। १२ ।। ८१ ।।

बहुरंगी माया मैंने बहुत तरीकों से लुभाती हुई देखी है । कागज़ कलम (लेकर कितनों ने) विद्वत्ता भरे लेख लिखे हैं । (कितनों ने) चौधरी, सुलतान, खान बनकर देख लिया है । इनके साथ (किसी का) मन तृप्त नहीं हो सका ।। १ ।। हे संतजनो ! मुझे वह आत्मिक आनन्द बताओ (जिससे मेरी माया की) तृष्णा मिट जाए । हे संतजनो ! मेरे मन को संतोषी बना दो ।। १ ।। रहाउ ।। हाथियों तथा वायुगतिगामी

घोड़ों की सवारी (कितनों ने की है), इत्र और चन्दन (प्रयोग करके देख लिया है), सुन्दर स्त्री की सेज (भी भोगी) है, मैंने रंगभूमि में नटों के नाटक देखे हैं और उनके गाए हुए गीत सुने हैं। इनमें लगकर भी मन ने शान्ति प्राप्त नहीं की ॥ २ ॥ राज दरबार की सजावटों, तख्त, गलीचे, सब प्रकार के फल, सुन्दर फुलवाड़ियाँ, शिकार खेलने की रुचि, राजाओं की क्रीड़ाएँ —(इन सबसे भी) मन सुखी नहीं होता। यह सारा यत्न छल सिद्ध होता है ॥ ३ ॥ (दुनिया में सुख के इच्छुक व्यक्ति को) संतों ने कृपा करके सच बतलाया कि सत्संगति में परमात्मा की गुणस्तुति के गीत गाने चाहिए (इससे) सब सुखों का मूल आत्मिक आनन्द मिलता है। पर, हे नानक ! कहो— गुणस्तुति की यह देन सौभाग्यवश मिलती है ॥४॥ जिस मनुष्य के हृदय में परमात्मा का नाम-धन मौजूद है वही सुखी है। सत्संगति में मिलकर बैठना परमात्मा की कृपा से ही प्राप्त होता है ॥ १ ॥ रहाउ दूजा ॥ १२ ॥ ८१ ॥

॥ गउड़ी गुआरेरी महला ५ ॥ प्राणी जाणै इहु तनु मेरा। बहुरि बहुरि उआहू लपटेरा। पुत्र कलत्र गिरसत का फासा। होनु न पाईऐ राम के दासा ॥ १ ॥ कवन सु बिधि जितु राम गुण गाइ। कवन सो मति जितु तरै इह माइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जो भलाई सो बुरा जानै। साचु कहै सो बिखै समानै। जाणै नाही जीत अरु हार। इहु वलेवा साकत संसार ॥ २ ॥ जो हलाहल सो पीवै बउरा। अंम्रितु नामु जानै करि कउरा। साध संग कै नाही नेरि। लख चउरासीह भ्रमता फेरि ॥ ३ ॥ एकै जालि फहाए पंखी। रसि रसि भोग करहि बहुरंगी। कहु नानक जिसु भए क्रिपाल। गुरि पूरै ताके काटे जाल ॥ ४ ॥ १३ ॥ ८२ ॥

(माया में फँसा हुआ) मनुष्य समझता है कि यह शरीर मेरा (अपना ही रहना) है, बार-बार इस शरीर से ही चिपटता है। जब तक स्त्री, पुत्र, गृहस्थी (के मोह) का फन्दा (गले में पड़ा रहता है) परमात्मा का सेवक नहीं बना जा सकता ॥ १ ॥ (हे भाई!) वह कौन-सा तरीका है जिससे मनुष्य परमात्मा के गुण गा सकता है? वह कौन-सी सिक्ख-मति है जिसके द्वारा मनुष्य इस माया से पार गुज़र सकता है? ॥ १ ॥ रहाउ ॥ माया में डूबे संसार का व्यवहार यह है कि जो काम इसकी भलाई का है, उसे विपरीत समझता है, यदि कोई इसे सत्य कहे, तो वह इसे ज़हर जैसा लगता है। यह नहीं समझता कि कौन-सा काम जीवन-बाज़ी की जीत के

लिए है और कौन-सा हार के लिए ।। २ ।। जो ज़हर है उसे माया में ग्रसित मनुष्य पीता है। परमात्मा का नाम आत्मिक जीवन देनेवाला है, इसे मनुष्य कड़वा जानता है। (माया में ग्रसित मनुष्य) सत्संगति के निकट नहीं जाता, (इस प्रकार) चौरासी लाख योनियों के चक्र में भटकता रहता है ।। ३ ।। जीव पक्षी एक माया के जाल में ही (परमात्मा ने) फसाए हैं, आस्वाद ले-लेकर अनेक रंगों के भोग भोगते हैं। हे नानक ! कहो— जिस मनुष्य पर परमात्मा कृपालु होता है, पूर्णगुरु ने उस मनुष्य के बन्धन काट दिए हैं ।। ४ ।। १३ ।। ८२ ।।

।। गउड़ी गुआरेरी महला ५ ।। तउ किरपा ते मारगु पाईऐ । प्रभ किरपा ते नामु धिआईऐ । प्रभ किरपा ते बंधन छुटै । तउ किरपा ते हउमै तुटै ।। १ ।। तुम लावहु तउ लागह सेव । हम ते कछू न होवै देव ।। १ ।। रहाउ ।। तुधु भावै ता गावा बाणी । तुधु भावै ता सचु वखाणी । तुधु भावै ता सतिगुर मइआ । सरब सुखा प्रभ तेरी दइआ ।। २ ।। जो तुधु भावै सो निरमल करमा । जो तुधु भावै सो सचु धरमा । सरब निधान गुण तुम ही पासि । तूं साहिबु सेवक अरदासि ।।३।। मनु तनु निरमलु होइ हरिरंगि । सरब सुखा पावउ सतसंगि । नामि तेरै रहै मनु राता । इहु कलिआणु नानक करि जाता ।। ४ ।। १४ ।। ८३ ।।

(हे प्रभु !) तेरी कृपा से (जीवन का सही) रास्ता प्राप्त होता है। प्रभु की कृपा से (प्रभु का) नाम स्मरण किया जाता है, (इस प्रकार) प्रभु-कृपा से माया के बन्धनों का जाल टूट जाता है। हे प्रभु ! तेरी कृपा से (हम जीवों की) अहंभावना दूर होती है ।। १ ।। तुम्हारी शरण पाकर ही सेवा बन पड़ती है। हे देव ! हम स्वयं तो किसी योग्य नहीं ।।१।।रहाउ।। (हे प्रभु!) जो तुझे भला लगे तो मैं तेरी गुणस्तुति की वाणी गा सकता हूँ। (हे प्रभु!) तुझे भला लगे तो (जीवों पर) गुरु की कृपा होती है। हे प्रभु! सारे सुख तेरी कृपा में ही हैं ।। २ ।। हे प्रभु ! जो काम तुझे अच्छा लगे वही पवित्र है, जो जीवन मर्यादा तुझे भली लगे वही अटल जीवन-मर्यादा है। हे प्रभु ! सारे ख़ज़ाने, सारे गुण तेरे वश में हैं। तू ही मेरा मालिक है, मुझ सेवक की (तेरे समक्ष) प्रार्थना है ।। ३ ।। (हे भाई!) परमात्मा के प्रेम में (टिकने से) मन पवित्र हो जाता है, शरीर पवित्र हो जाता है, सत्संगति में टिके रहने से (मुझे लगा है कि) मैं सारे सुख प्राप्त कर लेता हूँ। हे नानक ! (कहो— हे प्रभु ! जिस मनुष्य का) मन तेरे नाम में रँगा जाता है वह इसी को ही श्रेष्ठ आनन्द समझता है ।। ४ ।। १४ ।। ८३ ।।

।। गउड़ी गुआरेरी महला ५ ।। आन रसा जेते तै चाखे। निमख न त्रिसना तेरी लाथे। हरिरस का तूं चाखहि सादु। चाखत होइ रहहि बिसमादु।। १।। अंम्रितु रसना पीउ पिआरी। इह रस राती होइ त्रिपतारी ।। १ ।। रहाउ ।। हे जिहवे तूं रामगुण गाउ। निमख निमख हरि हरि हरि धिआउ। आन न सुनीऐ कतहूं जाईऐ। साध संगति वडभागी पाईऐ ।। २ ।। आठ पहर जिहवे आराधि। पारब्रहम ठाकुर आगाधि। ईहा ऊहा सदा सुहेली। हरिगुण गावत रसन अमोली ।। ३ ।। बनसपति मउली फल फुल पेडे। इह रस राती बहुरि न छोडे। आन न रस कस लवै न लाई। कहु नानक गुर भए है सहाई ।। ४ ।। १५ ।। ८४ ।।

(हे मेरी जिह्वा !) दूसरे जितने भी रस तू चखती रहती है, (उनसे) तेरी तृष्णा पलमात्र के लिए भी तृप्त नहीं होती। यदि तू परमात्मा के नाम-रस का स्वाद चखे, तो चखते ही तू (उसमें) मस्त हो जाए ।। १ ।। हे (मेरी) प्यारी जिह्वा! तू आत्मिक जीवन देनेवाला नाम-रस पी। जो जीभ इस नाम-रस में मस्त हो जाती है, वह संतुष्ट हो जाती है ।। १ ।। रहाउ ।। हे (मेरी) जीभ ! तू परमात्मा के गुण गा, पल-पल हर समय परमात्मा का नाम-स्मरण कर। (परमात्मा की गुणस्तुति से अलग) दूसरे (फीके बोल) नहीं सुनने चाहिए, (सत्संगति के बिना) कहीं और नहीं जाना चाहिए। (पर) सत्संगति सौभाग्यवश मिलती है ।। २ ।। हे (मेरी) जीभ ! आठों पहर अथाह (गुणों वाले) ठाकुर पारब्रह्म का स्मरण कर। परमात्मा के गुण गाते हुए जिह्वा बड़ी कीमत वाली बन जाती है, (स्मरण करनेवाले की जिन्दगी) इस लोक-परलोक में सदा सुखी हो जाती है ।। ३ ।। (यह ठीक है कि परमात्मा की देखभाल में) सारी वनस्पति खिली रहती है, पेड़-पौधों को फूल लगे होते हैं, पर जिस मनुष्य की जीभ नाम-रस में मस्त है वह (उसे) कभी नहीं छोड़ता। हे नानक ! कह— जिस मनुष्य का सहायक परमात्मा होता है (उसके लिए लौकिक रस) दूसरे सब रस (परमात्मा के नाम-रस की) बराबरी नहीं कर सकते ।। ४ ।। १५ ।। ८४ ।।

।। गउड़ी गुआरेरी महला ५ ।। मनु मंदरु तनु साजी बारि। इस ही मधे बसतु अपार। इसही भीतरि सुनीअत साहु। कवनु बापारी जा का ऊहा विसाहु ।। १ ।। नाम रतन को को बिउहारी। अंम्रित भोजनु करे आहारी ।। १ ।। रहाउ ।।

मनु तनु अरपी सेव करीजै । कवन सु जुगति जितु करि भीजै । पाइ लगउ तजि मेरा तेरै । कवनु सु जनु जो सउदा जोरै ॥ २॥ महलु साह का किन बिधि पावै । कवन सु बिधि जितु भीतरि बुलावै । तूं वड साहु जा के कोटि वणजारे । कवनु सु दाता ले संचारे ॥ ३ ॥ खोजत खोजत निजघरु पाइआ । अमोल रतनु साचु दिखलाइआ । करि किरपा जब मेले साहि । कहु नानक गुर कै वेसाहि ॥ ४ ॥ १६ ॥ ८५ ॥

(परमात्मा ने अपने रहने को मनुष्य के) मन को सुन्दर घर बनाया हुआ है और मनुष्य शरीर को मेड़ बनाया है। इस मन-मन्दिर के भीतर ही अनन्त प्रभु की नाम-पूंजी है। इस मन-मन्दिर के भीतर ही वह शाह-प्रभु बसता हुआ सुना है। कोई विरला ही वनजारा है, जिसका उस शाह के दरबार में विश्वास बना हुआ है ॥ १ ॥ जो कोई परमात्मा के नाम-रत्न का व्यापारी है, वह आत्मिक जीवन देनेवाले नाम-भोजन को अपनी ज़िन्दगी का आहार बनाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ वह कौन-सा (प्रभु का) सेवक है जो नाम का सौदा करा दे ? मैं अपना मन, तन उस पर न्योछावर करता हूँ, उसकी सेवा को तैयार हूँ, मेरी-तेरी की भावना छोड़कर मैं उसके चरण छूता हूं। (मैं उस हरि-जन से पूछता हूँ कि) वह कौन-सा तरीका है जिससे प्रभु प्रसन्न हो जाए ॥ २ ॥ (मैं उस नाम-रत्न के व्यापारी से पूछता हूं कि) आदमी, नामराशि के शाह का महल किन तरीकों से प्राप्त कर सकता है ? वह कौन-सा ढंग है जिससे वह शाह, व्यापारी जीव को अपने दरबार में बुलाता है ? हे प्रभु ! तू सर्वोच्च शाह है, करोड़ों जीव तेरे वनजारे हैं। नाम की देन देनेवाला वह कौन है जो मुझे पकड़कर तेरे चरणों में पहुँचा दे ? ॥ ३ ॥ हे नानक ! कह— जब भी शाह प्रभु ने कृपा करके (जीव वनजारे को अपने चरणों में) मिलाया है, गुरु की स्वीकृति से ही मिलाया है। (गुरु ने ही इसे) सत्यस्वरूप अमूल्य नाम-रत्न दिखा दिया है। (गुरु की कृपा से) खोज करते हुए उसे अपना वह असली घर मिल गया (जहाँ प्रभु-शाह रहता है) ॥ ४ ॥ १६ ॥ ८५ ॥

॥ गउड़ी महला ५ गुआरेरी ॥ रैणि दिनसु रहै इक रंगा । प्रभ कउ जाणै सद ही संगा । ठाकुर नामु कीओ उनि वरतनि । त्रिपति अघावनु हरि कै दरसनि ॥ १ ॥ हरि संगि राते मन तन हरे । गुर पूरे की सरनी परे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ चरण कमल आतम आधार । एकु निहारहि आगिआकार । एको बनजु एको बिउहारी । अवरु न जानहि बिनु निरंकारी ॥२॥

हरख सोग दुहहूं ते मुकते । सदा अलिपतु जोग अरु जुगते । दीसहि सभ महि सभ ते रहते । पारब्रहम का ओइ धिआनु धरते ॥ ३ ॥ संतन की महिमा कवन वखानउ । अगाधि बोधि किछु मिति नही जानउ । पारब्रहम मोहि किरपा कीजै । धूरि संतन की नानक दीजै ॥ ४ ॥ १७ ॥ ८६ ॥

(पूर्णगुरु की शरण लेनेवाला मनुष्य) रात-दिन एक परमात्मा के प्रेम में मस्त रहता है, वह मनुष्य सदा परमात्मा को अपने साथ समझता है। परमात्मा के दर्शन से वह सदा तृप्त रहता है ॥ १ ॥ (हे भाई !) जो मनुष्य पूर्णगुरु की शरण लेते हैं वे परमात्मा में अनुरक्त रहते हैं। उनके मन खिले रहते हैं, उनके तन खिले रहते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (पूर्णगुरु की शरण लेनेवाले मनुष्य) परमात्मा के सुन्दर चरणों को अपनी आत्मा का सहारा बनाए रखते हैं, वे (सर्वत्र) एक परमात्मा को ही (बसता) देखते हैं, परमात्मा के हुक्म का ही अनुसरण करते हैं। परमात्मा का नाम ही उनका वाणिज्य है, परमात्मा के नाम से ही वे सदा व्यापारी बन रहते हैं। वे परमात्मा के अतिरिक्त किसी दूसरे से अपने गहरे सम्बन्ध नहीं बनाते ॥ २ ॥ वे दुख-सुख दोनों से ही स्वतन्त्र रहते हैं, वे सदा (माया से) निर्लिप्त रहते हैं, परमात्मा में जुड़े रहते हैं और भली जीवन-युक्ति वाले होते हैं। वे मनुष्य सबसे प्रेम करते दिखते हैं और सबसे अलग भी दिखते हैं। वे मनुष्य सदा परमात्मा की याद में सुरति जोड़े रखते हैं ॥ ३ ॥ (पूर्णगुरु के शरणागत) उन संतजनों की कौन-सी प्रशंसा करूँ ? उनकी आत्मिक उच्चता मनुष्य की पकड़ से परे है, मैं कोई अनुमान नहीं लगा सकता। हे अकालपुरुष ! मुझ पर कृपा कर और मुझ नानक को उन संतजनों की चरण-धूलि दे ॥ ४ ॥ १७ ॥ ८६ ॥

॥ गउड़ी गुआरेरी महला ५ ॥ तूं मेरा सखा तूं ही मेरा मीतु । तूं मेरा प्रीतमु तुम संगि हीतु । तूं मेरी पति तू है मेरा गहणा । तुझ बिनु निमखु न जाई रहणा ॥ १ ॥ तूं मेरे लालन तूं मेरे प्रान । तूं मेरे साहिब तूं मेरे खान ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिउ तुम राखहु तिव ही रहना । जो तुम कहहु सोई मोहि करना । जह पेखउ तहा तुम बसना । निरभउ नामु जपउ तेरा रसना ॥ २ ॥ तूं मेरी नव निधि तूं भंडारु । रंग रसा तूं मनहि अधारु । तूं मेरी सोभा तुम संगि रचीआ । तूं मेरी ओट तूं है मेरा तकीआ ॥ ३ ॥ मन तन अंतरि तुही धिआइआ ।

मरमु तुमारा गुर ते पाइआ। सतिगुर ते द्रिड़िआ इकु एकै। नानक दास हरि हरि हरि टेकै ॥ ४ ॥ १८ ॥ ८७ ॥

(हे प्रभु !) तू ही मेरा साथी है, तू ही मेरा मित्र है, तू ही मेरा प्रियतम है, मेरा तुझसे ही प्रेम है। (हे प्रभु !) तू ही मेरी प्रतिष्ठा है, तू ही मेरा आभूषण है। मैं तेरे बिना पल भर भी नहीं रह सकता ॥ १ ॥ तू मेरा सुन्दर लाल है, तू मेरी आत्मा (का सहारा) है, तू मेरा साहिब है, तू मेरा खान है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे प्रभु !) जैसे तू मुझे रखता है, मैं वैसे ही रहता हूँ। मैं वही करता हूँ जो तू हुक्म करता है। मैं जिधर देखता हूँ, उधर ही मुझे तू बसता दिखाई देता है। मैं अपनी जिह्वा से तेरा नाम जपता रहता हूँ जो दुनिया के भय से बचानेवाला है ॥ २ ॥ (हे प्रभु !) तू ही मेरे लिए दुनिया के नौ भण्डार है, तू ही मेरा भण्डार है। तू ही मेरे लिए दुनिया के रंग और रस है, तू ही मेरे मन का सहारा है। हे प्रभु ! तू ही मेरे वास्ते शोभा है, मेरी सुरति तेरे चरणों में जुड़ी हुई है। तू ही मेरी ओट है, मेरा सहारा है ॥ ३ ॥ (हे प्रभु !) मैं अपने हृदय में तुझे स्मरण करता रहता हूँ। तेरा रहस्य मैंने गुरु से प्राप्त किया है। हे नानक ! जिस मनुष्य ने गुरु से एक परमात्मा का नाम ही हृदय में पक्का करने के लिए प्राप्त किया है, उस सेवक को सदा हरि-नाम का ही सहारा हो जाता है ॥ ४ ॥ १८ ॥ ८७ ॥

॥ गउड़ी गुआरेरी महला ५ ॥ बिआपत हरख सोग बिसथार। बिआपत सुरग नरक अवतार। बिआपत धन निरधन पेखि सोभा। मूलु बिआधी बिआपसि लोभा ॥ १ ॥ माइआ बिआपत बहु परकारी। संत जीवहि प्रभ ओट तुमारी ॥ १ ॥ रहाउ ॥ बिआपत अहंबुधि का माता। बिआपत पुत्र कलत्र संगि राता। बिआपत हसति घोड़े अरु बसता। बिआपत रूप जोबन मद मसता ॥ २ ॥ बिआपत भूमि रंक अरु रंगा। बिआपत गीत नाद सुणि संगा। बिआपत सेज महल सीगार। पंज दूत बिआपत अंधिआर ॥ ३ ॥ बिआपत करम करै हउ फासा। बिआपति गिरसत बिआपत उदासा। आचार बिउहार बिआपत इह जाति। सभ किछु बिआपत बिनु हरिरंग रात ॥ ४ ॥ संतन के बंधन काटे हरि राइ। ता कउ कहा बिआपै माइ। कहु नानक जिनि धूरि संत पाई। ता कै निकटि न आवै माई ॥ ५ ॥ १९ ॥ ८८ ॥

कहीं दुख-सुख का प्रसार है, कहीं जीव नरकों में पड़ते हैं, कहीं स्वर्गों में जाते हैं, कहीं कोई धनिक हैं, कोई कंगाल हैं, कहीं कोई अपने आदर-सत्कार से (प्रसन्न) हैं, इन अनेक तरीकों से माया जीवों पर प्रभाव डाल रही है। कहीं समस्त रोगों का मूल लोभ बनकर (यह) माया अपना दबाव डाल रही है ॥ १ ॥ (हे प्रभु!) (तेरी रची) माया अनेक तरीकों से (जीवों पर) प्रभाव डाले रखती है (और आत्मिक मौत जीवों को मार देती है) तेरे संत तेरे सहारे आत्मिक जीवन प्राप्त करते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ कहीं कोई 'मैं, मैं' की रट में मस्त हैं, कहीं कोई पुत्र, पत्नी के मोह में अनुरक्त है, कहीं हाथियों, घोड़ों और कपड़ों (की लगन) है, कहीं कोई रूप और यौवन के नशे में मस्त है— इन अनेक तरीकों से माया अपना दबाव डाल रही है ॥ २ ॥ कहीं पृथ्वी की मल्कियत है, कहीं कंगाल हैं, कहीं अमीर हैं, कहीं मण्डलियों में गीत, नाद सुनकर (प्रसन्न हैं), कहीं (सुन्दर) सेज, हार-सिंगार और महलों की लालसा है, इन अनेक तरीकों से माया दबाव डाल रही है। कहीं मोह के अन्धेरे में कामादिक पाँचों दूत बनकर (यह) माया दबाव डाल रही है ॥ ३ ॥ कहीं कोई अहंकार में फँसा हुआ कार्यरत है, कोई गृहस्थ में लगा है, कोई उदासी रूप में है, कहीं कोई धार्मिक प्रथाओं के निर्वाह में व्यस्त है, कोई जाति के अभिमान में (चूर) है— परमात्मा के प्रेम में लीन हुए बिना यह सब कुछ माया का प्रभाव ही है ॥ ४ ॥ परमात्मा आप ही संतजनों के माया के बन्धन काट देता है। उन पर माया अपना दबाव नहीं डाल सकती। हे नानक! कह— जिस मनुष्य ने संत-चरणों की धूलि प्राप्त कर ली है, माया उस मनुष्य के निकट नहीं आ सकती ॥ ५ ॥ १९ ॥ ८८ ॥

॥ गउड़ी गुआरेरी महला ५ ॥ नैनहु नीद परद्रिसटि विकार। स्रवण सोए सुणि निंद वीचार। रसना सोई लोभि मीठै सादि। मनु सोइआ माइआ बिसमादि ॥ १ ॥ इसु ग्रिह महि कोई जागतु रहै। साबतु वसतु ओहु अपनी लहै ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सगल सहेली अपनै रस माती। ग्रिह अपुने की खबरि न जाती। मुसनहार पंच बटवारे। सूने नगरि परे ठगहारे ॥ २ ॥ उन ते राखै बापु न माई। उन ते राखै मीतु न भाई। दरबि सिआणप ना ओइ रहते। साध संगि ओइ दुसट वसि होते ॥ ३ ॥ करि किरपा मोहि सारिंगपाणि। संतन धूरि सरब निधान। साबतु पूंजी सतिगुर संगि। नानकु जागै पारब्रहम कै रंगि ॥ ४ ॥ सो जागै जिसु प्रभु किरपालु। इह पूंजी साबतु धनु मालु ॥ १ ॥ रहाउ दूजा ॥ २० ॥ ८९ ॥

पराए रूप को विकृत दृष्टि से देखना— यह आँखों में नींद आ रही है। परनिन्दा के विचार सुन-सुनकर कान सोते रहते हैं। जीभ खाने के लोभ में, पदार्थों के मीठे आस्वाद में सोई रहती है, मन माया के आश्चर्यजनक तमाशे में सोता रहता है ॥ १ ॥ (हे भाई !) इस शरीर-घर में कोई विरला मनुष्य ही सचेत रहता है, (जो सचेत रहता है) वह अपनी आत्मिक जीवन की सारी पूँजी सँभाल लेता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ समस्त ज्ञानेन्द्रियाँ अपने-अपने स्वाद में मस्त रहती हैं, अपने शरीर-घर की यह सूझ नहीं रखते। ठगने वाले पाँचों डाकू सूने (शरीर-) घर में आकर आक्रमण कर देते हैं ॥ २ ॥ उन (पाँचों डाकुओं से) न पिता बचा सकता है, न माँ बचा सकती है, उनसे न कोई मित्र बचा सकता है, न कोई भाई बचा सकता है। वे पाँचों डाकू न धन से रोके जा सकते हैं न चतुराई से। वे पाँचों दुष्ट केवल सत्संगति में रहने से ही काबू में आते हैं ॥ ३ ॥ हे धनुर्धारी प्रभु ! मुझ पर कृपा कर। मुझे संतों के चरणों की धूलि दे, यही मेरे वास्ते सारे ख़ज़ाने हैं। गुरु की संगति से आत्मिक जीवन का धन तमाम बचा रह सकता है। (परमात्मा का सेवक) नानक परमात्मा के प्रेम-रंग में रहकर ही सचेत रह सकता है (और पाँचों के आक्रमणों से बच सकता है) ॥ ४ ॥ (हे भाई ! कामादिक पाँचों डाकुओं के आक्रमणों से) वही मनुष्य सचेत रहता है जिस पर परमात्मा आप दयालु होता है। उसकी आत्मिक जीवन की यह सारी पूँजी बची रहती है, उसके पास प्रभु का नाम-धन बचा रहता है ॥ १ ॥ रहाउ दूजा ॥ २० ॥ ८९ ॥

॥ गउड़ी गुआरेरी महला ५ ॥ जा कै वसि खान सुलतान। जा कै वसि है सगल जहान। जा का कीआ सभु किछु होइ। तिस ते बाहरि नाही कोइ ॥ १ ॥ कहु बेनंती अपुने सतिगुर पाहि। काज तुमारे देइ निबाहि ॥ १॥ रहाउ ॥ सभ ते ऊच जा का दरबारु। सगल भगत जा का नामु अधारु। सरब बिआपित पूरन धनी। जाकी सोभा घटि घटि बनी ॥२॥ जिसु सिमरत दुख डेरा ढहै। जिसु सिमरत जमु किछू न कहै। जिसु सिमरत होत सूके हरे। जिसु सिमरत डूबत पाहन तरे ॥ ३ ॥ संत सभा कउ सदा जैकारु। हरि हरि नामु जन प्रान अधारु। कहु नानक मेरी सुणी अरदासि। संत प्रसादि मोकउ नाम निवासि ॥ ४ ॥ २१ ॥ ९० ॥

(हे भाई ! दुनिया के) बादशाह और सुलतान भी जिस परमात्मा के आधीन हैं, सारा जगत् ही जिसके हुक्म में है, जिसका किया हुआ ही सब

कुछ होता है, वह परमात्मा किसी भी जीव का दुश्मन नहीं हो सकता ॥ १ ॥ (हे भाई !) अपने गुरु के पास प्रार्थना कर। गुरु तेरे कार्य पूर्ण करेगा (अर्थात् तुझे नाम की देन देगा) ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे भाई !) जिस परमात्मा का दरबार सारे बादशाहों के दरबारों से ऊँचा है, सारे भक्तों के लिए जिसका नाम आसरा है, जो मालिक प्रभु सब जीवों पर अपना प्रभाव रखता है और सब में व्यापक है, जिस परमात्मा की सुन्दरता हर एक शरीर में सुशोभित दृष्टिगोचर हो रही है ॥ २ ॥ (हे भाई !) जिस परमात्मा का स्मरण करने से सारे ही दुःख दूर हो जाते हैं, जिसका नाम-स्मरण करने से मौत का भय छू नहीं सकता, जिस परमात्मा का स्मरण करने से निर्दयी मनुष्य सहृदय बन जाते हैं, जिसका नाम स्मरण करने से पत्थर-हृदय मनुष्य (कठोरता के समुद्र में) डूबने से बच जाते हैं, (गुरु की शरण लेकर उसका नाम-स्मरण कर) ॥ ३ ॥ (हे भाई !) सत्संगति के समक्ष सदा सिर झुकाओ क्योंकि परमात्मा का नाम साधुजनों की ज़िन्दगी का आसरा होता है (उनकी संगति में तुझे भी हरि-नाम की प्राप्ति होगी)। हे नानक ! कह— (कर्त्तार ने) मेरी प्रार्थना सुन ली, उसने गुरु की कृपा से मुझे अपने मन के घर में (टिका दिया है) ॥ ४ ॥ २१ ॥ ९० ॥

॥ गउड़ी गुआरेरी महला ५ ॥ सतिगुर दरसनि अगनि निवारी। सतिगुर भेटत हउमै मारी। सतिगुर संगि नाही मनु डोलै। अंम्रित बाणी गुरमुखि बोलै ॥ १ ॥ सभु जगु साचा जा सच महि राते। सीतल साति गुर ते प्रभ जाते ॥१॥ रहाउ ॥ संत प्रसादि जपै हरिनाउ। संत प्रसादि हरि कीरतनु गाउ। संत प्रसादि सगल दुख मिटे। संत प्रसादि बंधन ते छुटे ॥ २ ॥ संत क्रिपा ते मिटे मोह भरम। साधरेण मजन सभि धरम। साध क्रिपाल दइआल गोविंदु। साधा महि इह हमरी जिंदु ॥ ३ ॥ किरपा निधि किरपाल धिआवउ। साधसंगि ता बैठणु पावउ। मोहि निरगुण कउ प्रभि कीनी दइआ। साधसंगि नानक नामु लइआ ॥ ४ ॥ २२ ॥ ९१ ॥

(हे भाई !) गुरु के दर्शन के प्रभाव से (मनुष्य अपने भीतर से) तृष्णा की आग बुझा लेता है, गुरु को मिलकर (अपने मन से) अहं भावना समाप्त कर देता है। गुरु की संगति में रहकर मन चंचल नहीं होता (क्योंकि) गुरु की शरण लेकर मनुष्य आत्मिक जीवन देनेवाली गुरुवाणी उच्चरित करता रहता है ॥ १ ॥ (हे भाई !) जब गुरु के द्वारा प्रभु से गहरा सम्बन्ध हो जाता है, जब सत्यस्वरूप प्रभु के प्रेम-रंग में रँग जाता है

तब हृदय शान्त हो जाता है, तब (मन में) शान्ति पैदा हो जाती है, तब सारा जगत् सत्यस्वरूप परमात्मा का रूप दिखता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे भाई !) गुरु की कृपा से मनुष्य परमात्मा का नाम जपता है, गुरु-कृपा से हरि-कीर्त्तन का गायन करता है। सतिगुरु की कृपा से मनुष्य के सारे दुःख-क्लेश मिट जाते हैं (क्योंकि) गुरु की कृपा से मनुष्य (माया-मोह के बन्धनों से मुक्ति पा लेता है) ॥ २ ॥ (हे भाई !) गुरु की कृपा से माया-प्राप्ति की दुबिधा दूर हो जाती है। गुरु की चरणधूलि का स्नान ही सारे धर्मों का सार है। (जिस मनुष्य पर) गुरु के सम्मुख रहनेवाले गुरमुख दयालु होते हैं, उस पर परमात्मा भी दयालु हो जाता है। (हे भाई !) मेरी आत्मा भी गुरुमुखों के चरणों पर बलिहारी जाती है ॥ ३ ॥ हे नानक ! (कह— हे भाई !) मुझ गुणहीन पर प्रभु ने दया की, सत्संगति में रहकर प्रभु का नाम जपने लग गया। गुरु की कृपा से जब मैं कृपा के भण्डार, कृपा के घर परमात्मा का नाम-स्मरण करता हूँ तब सत्संगति में मेरा मन लगता है ॥ ४ ॥ २२ ॥ ९१ ॥

॥ गउड़ी गुआरेरी महला ५ ॥ साधसंगि जपिओ भगवंतु। केवल नामु दीओ गुरि मंतु। तजि अभिमान भए निरवैर। आठ पहर पूजहु गुर पैर॥ १॥ अब मति बिनसी दुसट बिगानी। जब ते सुणिआ हरि जसु कानी ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सहज सूख आनंद निधान। राखनहार रखि लेइ निदान। दूख दरद बिनसे भै भरम। आवण जाण रखे करि करम ॥ २ ॥ पेखै बोलै सुणै सभु आपि। सदा संगि ता कउ मन जापि। संत प्रसादि भइओ परगासु। पूरि रहे एकै गुणतासु ॥ ३ ॥ कहत पवित्र सुणत पुनीत। गुण गोविंद गावहि नित नीत। कहु नानक जा कउ होहु क्रिपाल। तिसु जन की सभ पूरन घाल ॥ ४ ॥ २३ ॥ ९२ ॥

(हे भाई !) आठों प्रहर गुरु के चरण पूजो। (गुरुकृपा से जिन मनुष्यों ने) सत्संगति में भगवान का स्मरण किया है, जिन्हें गुरु ने परमात्मा का नाम ही मन्त्र रूप दिया है (उस मन्त्र के प्रभाव से) वे अहंकार छोड़कर वैररहित हो गए हैं ॥ १ ॥ हे भाई ! जब से परमात्मा की गुणस्तुति मैंने कानों से सुनी है तब से मेरी दुर्बुद्धि दूर हो गई है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे भाई ! जिन मनुष्यों ने हरि-यश कानों से सुना है) आत्मिक स्थिरता, सुख व आनन्द के भण्डार, रक्षक परमात्मा ने आखिर उनकी रक्षा की है, उनके दुख, दर्द, भय, भ्रम सब नष्ट हो जाते हैं। परमात्मा कृपा करके उनके

जन्म-मरण के चक्र (भी) समाप्त कर देता है ॥ २ ॥ हे मेरे मन ! जो परमात्मा सर्वत्र (सब जीवों में व्यापक होकर) आप देखता है, आप ही बोलता है, आप ही सुनता है, जो हर वक्त साथ-साथ रहता है, उसका भजन कर । गुरु की कृपा से जिस मनुष्य के भीतर आत्मिक जीवन वाला प्रकाश पैदा होता है उसे गुणों का भण्डार एक परमात्मा ही सर्वत्र व्यापक दिखता है ॥ ३ ॥ (हे भाई !) जो मनुष्य सदा ही गोबिन्द के गुण गाते हैं, वे गुणस्तुति करनेवाले तथा गुणस्तुति सुननेवाले सब पवित्र जीवन वाले बन जाते हैं । हे नानक ! कह— (हे प्रभु !) जिस मनुष्य पर तू दयालु होता है (वही तेरी गुणस्तुति करता है) उसकी सारी मेहनत सफल हो जाती है ॥ ४ ॥ २३ ॥ ९२ ॥

॥ गउड़ी गुआरेरी महला ५ ॥ बंधन तोड़ि बोलावै रामु । मन महि लागै साचु धिआनु । मिटहि कलेस सुखी होइ रहीऐ । ऐसा दाता सतिगुरु कहीऐ ॥ १ ॥ सो सुखदाता जि नामु जपावै । करि किरपा तिसु संगि मिलावै ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिसु होइ दइआलु तिसु आपि मिलावै । सरब निधान गुरू ते पावै । आपु तिआगि मिटै आवण जाणा । साध कै संगि पारब्रहमु पछाणा ॥ २ ॥ जन ऊपरि प्रभ भए दइआल । जन की टेक एक गोपाल । एका लिव एको मनि भाउ । सरब निधान जन कै हरि नाउ ॥ ३ ॥ पारब्रहम सिउ लागी प्रीति । निरमल करणी साची रीति । गुरि पूरै मेटिआ अंधिआरा । नानक का प्रभु अपर अपारा ॥ ४ ॥ २४ ॥ ९३ ॥

(हे भाई !) गुरु (माया के) बन्धन तोड़कर परमात्मा का स्मरण कराता है । (जिस पर गुरु कृपा करता है उसके) मन में (प्रभु चरणों की) अटल सुरति बँध जाती है । (गुरु की शरण लेने से) सारे क्लेश मिट जाते हैं, सुखी जीवन वाला बन जाता है । सो, गुरु ऐसी ऊँची देन देनेवाला कहा जाता है ॥ १ ॥ (हे भाई !) वह सतिगुरु आत्मिक आनन्द की देन देनेवाला है क्योंकि वह परमात्मा का नाम जपाता है और कृपा करके उस परमात्मा के साथ जोड़ता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (लेकिन) परमात्मा जिस मनुष्य पर दयालु होवे उसे आप गुरु मिलाता है, वह मनुष्य (फिर) गुरु से (आत्मिक जीवन के) सारे खज़ाने प्राप्त कर लेता है । वह (गुरु की शरण लेकर) आपा-भाव त्याग देता है और उसके जन्म-मरण का चक्र समाप्त हो जाता है । गुरु की संगति में (रहकर) वह मनुष्य परमात्मा से गहरे सम्बन्ध बना लेता है ॥ २ ॥ (हे भाई ! गुरु-शरण के प्रभाव से)

प्रभु जी सेवक पर दयालु होते हैं, एक गोपाल प्रभु ही सेवक की ज़िन्दगी का आसरा बन जाता है। (गुरु की शरण आए मनुष्य को) एक परमात्मा की ही लगन लग जाती है, उसके मन में एक परमात्मा का ही प्रेम (टिक जाता है)। सेवक के हृदय में परमात्मा का नाम ही (दुनिया के) सारे खज़ाने बन जाते हैं ॥ ३ ॥ (परमात्मा की कृपा से) पूर्णगुरु ने जिस मनुष्य के भीतर से माया का अन्धेरा मिटा दिया, उसकी प्रीति परमात्मा से पक्की बन जाती है, उसका जीवन पवित्र हो जाता है, उसकी जीवन-मर्यादा (विकारों के हमलों से) स्थिर हो जाती है। (हे भाई! यह सारी कृपा परमात्मा की ही है) नानक का प्रभु अपरम्पार है और अनन्त है ॥ ४ ॥ २४ ॥ ९३ ॥

॥ गउड़ी गुआरेरी महला ५ ॥ जिसु मनि वसै तरै जनु सोइ। जाकै करमि परापति होइ। दूखु रोगु कछु भउ न बिआपै। अंम्रित नामु रिदै हरि जापै ॥ १ ॥ पारब्रहमु परमेसुरु धिआईऐ। गुर पूरे ते इह मति पाईऐ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ करण करावनहार दइआल। जीअ जंत सगले प्रतिपाल। अगम अगोचर सदा बेअंता। सिमरि मना पूरे गुर मंता ॥ २ ॥ जा की सेवा सरब निधानु। प्रभ की पूजा पाईऐ मानु। जा की टहल न बिरथी जाइ। सदा सदा हरि के गुण गाइ ॥ ३ ॥ करि किरपा प्रभ अंतरजामी। सुख निधान हरि अलख सुआमी। जीअ जंत तेरी सरणाई। नानक नामु मिलै वडिआई ॥ ४ ॥ २५ ॥ ९४ ॥

जिस (परमात्मा) की कृपा से (उसके नाम की) प्राप्ति होती है, वह परमात्मा जिस मनुष्य के मन में बस जाता है वह (विकारों के समुद्र से) पार उतर जाता है। (संसार का) कोई दुःख, कोई भय उस पर अपना प्रभाव नहीं कर सकता (क्योंकि) वह मनुष्य आत्मिक जीवन देनेवाला हरि-नाम अपने हृदय में जपता रहता है ॥ १ ॥ (हे भाई!) अकालपुरुष परमेश्वर का स्मरण करना चाहिए। (स्मरण की) यह सूझ पूर्णगुरु से मिलती है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे मन! पूर्णगुरु के उपदेश पर चलकर उस (परमात्मा) को स्मरण कर, जो सब कुछ करने की सामर्थ्य रखता है, जो जीवों से सब कुछ कराने की सामर्थ्य रखता है, जो दया का घर है, जो सारे जीव-जन्तुओं को पालता है, जो अगम्य है, जिस तक मनुष्य की ज्ञानेन्द्रियों की पहुँच नहीं हो सकती, जिसके गुणों का कभी अन्त नहीं हो सकता ॥ २ ॥ (हे भाई!) सदा ही उस हरि के गुण गाता रह,

जिसकी सेवा-भक्ति में ही (जगत् के) सारे खज़ाने हैं, जिस हरि की पूजा करने से (सर्वत्र) आदर मिलता है और उसकी की हुई सेवा निष्फल नहीं जाती ॥ ३ ॥ हे नानक ! (प्रभु-द्वार पर प्रार्थना कर और कह—) हे अन्तर्यामी प्रभु ! हे सुखों के भण्डार प्रभु ! हे अदृश्य स्वामी ! सभी जीव-जन्तु तेरी शरण में हैं, (मैं भी तेरी शरण में हूं) कृपा कर, मुझे तेरा नाम ही मिल जाए ॥ ४ ॥ २५ ॥ ९४ ॥

॥ गउड़ी गुआरेरी महला ५ ॥ जीअ जुगति जा कै है हाथ । सो सिमरहु अनाथ को नाथु । प्रभ चिति आए सभु दुखु जाइ । भै सभ बिनसहि हरि कै नाइ ॥ १ ॥ बिनु हरि भउ काहे का मानहि । हरि बिसरत काहे सुखु जानहि ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिनि धारे बहु धरणि अगास । जा की जोति जीअ परगास । जा की बखस न मेटै कोइ । सिमरि सिमरि प्रभु निरभउ होइ ॥ २ ॥ आठ पहर सिमरहु प्रभ नामु । अनिक तीरथ मजनु इसनानु । पारब्रहम की सरणी पाहि । कोटि कलंक खिन महि मिटि जाहि ॥ ३ ॥ बे मुहताजु पूरा पातिसाहु । प्रभ सेवक साचा वेसाहु । गुरि पूरै राखे दे हाथ । नानक पारब्रहम समराथ ॥ ४ ॥ २६ ॥ ९५ ॥

(हे भाई ! उस अनाथों के नाथ परमात्मा का स्मरण कर, जिसके हाथों में सब जीवों की जीवन-मर्यादा है । (हे भाई !) यदि परमात्मा मन में बस जाए तो हरेक दुःख दूर हो जाता है । परमात्मा के नाम के प्रभाव से सारे भय नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥ (हे भाई !) तू परमात्मा के अतिरिक्त दूसरे किसी का भय क्यों मानता है ? परमात्मा को भुलाकर दूसरा कौन-सा सुख समझता है ? ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे भाई !) उस प्रभु को सदा स्मरण कर जिसने अनेकों धरती-आकाशों को सहारा दिया हुआ है, जिसकी ज्योति सारे जीवों में प्रकाश कर रही है और जिसकी की हुई कृपा को कोई मिटा नहीं सकता । (जो प्रभु को स्मरण करता है वह लौकिक दुखों से) निडर हो जाता है ॥ २ ॥ (हे भाई !) आठ पहर प्रभु का नाम-स्मरण करता रह । (यह स्मरण ही) तीर्थों का स्नान है । यदि तू परमात्मा की शरण ले तो करोड़ों पाप एक पल में ही नष्ट हो जाएँ ॥ ३ ॥ हे नानक ! परमात्मा किसी के भी आश्रित नहीं, वह सब गुणों का मालिक है, वह सब गुणों का बादशाह है । प्रभु के सेवकों को प्रभु का दृढ़ विश्वास रहता है । (हे भाई !) परमात्मा पूर्णगुरु के द्वारा

(अपने सेवकों को) हाथ देकर बचाता है। परमात्मा सब शक्तियों का स्वामी है ॥ ४ ॥ २६ ॥ ९५ ॥

॥ गउड़ी गुआरेरी महला ५ ॥ गुर परसादि नामि मनु लागा । जनम जनम का सोइआ जागा । अंम्रित गुण उचरै प्रभ बाणी । पूरे गुर की सुमति पराणी ॥ १ ॥ प्रभ सिमरत कुसल सभि पाए । घरि बाहरि सुख सहज सबाए ॥ १ ॥रहाउ॥ सोई पछाता जिनहि उपाइआ । करि किरपा प्रभि आपि मिलाइआ । बाह पकरि लीनो करि अपना । हरि हरि कथा सदा जपु जपना ॥ २ ॥ मंत्रु तंत्रु अउखधु पुनहचारु । हरि हरि नामु जीअ प्रान अधारु । साचा धनु पाइओ हरि रंगि । दुतरु तरे साध कै संगि ॥ ३ ॥ सुखि बैसहु संत सजन परवारु । हरि धनु खटिओ जा का नाहि सुमारु । जिसहि परापति तिसु गुरु देइ । नानक बिरथा कोइ न हेइ ॥ ४ ॥ २७ ॥ ९६ ॥

जिस मनुष्य का मन गुरु की कृपा से परमात्मा के नाम में जुड़ता है, वह जन्म-जन्मान्तरों का सोया हुआ (भी) जाग पड़ता है। जिस प्राणी को पूर्णगुरु की शिक्षा प्राप्त होती है, वह प्रभु के आत्मिक जीवन देनेवाले गुण उच्चरित करता है, प्रभु की बाणी (गुणस्तुति की) उच्चरित करता है ॥ १ ॥ प्रभु का स्मरण करते हुए (मनुष्य ने) सारे सुख प्राप्त कर लिये, उसके हृदय में (भी) आत्मिक टिकाव के सारे आनन्द, लोक-व्यवहार निभाते हुए भी आत्मिक टिकाव के सारे सुख (प्राप्त हो जाते हैं) ॥ १ ॥ रहाउ ॥ प्रभु ने कृपा करके जिस मनुष्य को अपने चरणों में लगा लिया, उस मनुष्य ने उस प्रभु के साथ गहरा रिश्ता जोड़ लिया, जिसने उसे पैदा किया है। जिस मनुष्य को प्रभु ने बाँह पकड़कर अपना बना लिया, वह मनुष्य सदा प्रभु की गुणस्तुति की बातें करता है। प्रभु के नाम का जाप जपता है ॥ २ ॥ जो मनुष्य गुरु की संगति में रहता है, वह इस दुस्तर संसार-समुद्र से पार उतर जाता है, वह मनुष्य हरि के प्रेम-रंग में (मस्त होकर) सदा निभनेवाला नाम-धन प्राप्त कर लेता है, हरि का नाम ही उस मनुष्य की ज़िन्दगी के प्राणों का आसरा बन जाता है, (परमात्मा का नाम ही उसके लिए) मन्त्र है, नाम ही जादू है, नाम ही दवाई है और नाम ही प्रायश्चित कर्म है ॥ ३ ॥ संतों और सज्जनों को परिवार मानकर (प्रेम से) आत्मिक आनन्द में मिलकर बैठो। (जो मनुष्य गुरुमुखों की संगति में बैठता है उसने) वह हरि-नाम-धन कमा लिया जिसका अन्दाजा नहीं लग सकता। हे नानक!

(प्रभु-कृपा से) जिसके भाग्यों में (नाम-धन) लिखा हुआ है, उसे गुरु (नाम-धन) देता है, (गुरु के द्वार पर आकर) कोई मनुष्य खाली नहीं जाता ॥ ४ ॥ २७ ॥ ९६ ॥

॥ गउड़ी गुआरेरी महला ५ ॥ हसत पुनीत होहि ततकाल। बिनसि जाहि माइआ जंजाल। रसना रमहु रामगुण नीत। सुखु पावहु मेरे भाई मीत ॥ १ ॥ लिखु लेखणि कागदि मसवाणी। राम नाम हरि अंम्रित बाणी ॥ १ ॥ रहाउ ॥ इह कारजि तेरे जाहि बिकार। सिमरत राम नाही जम मार। धरम राइ के दूत न जोहै। माइआ मगन न कछूऐ मोहै ॥ २ ॥ उधरहि आपि तरै संसारु। रामनाम जपि एकंकारु। आपि कमाउ अवरा उपदेस। रामनाम हिरदै परवेस ॥ ३ ॥ जा कै माथै एहु निधानु। सोई पुरखु जपै भगवानु। आठ पहर हरि हरि गुण गाउ। कहु नानक हउ तिसु बलि जाउ ॥४॥२८॥९७॥

हे मेरे भाई ! अपनी जीभ से सदा परमात्मा की गुणस्तुति के गीत गाता रह, तू आत्मिक आनन्द प्राप्त करेगा, उसी वक्त तेरे हाथ पवित्र हो जाएँगे, तेरे माया के बन्धन दूर हो जाएँगे ॥ १ ॥ (हे मेरे भाई ! अपनी सुरति की) कलम (लेकर अपनी करनी के) कागज़ पर (मन की) दवात से परमात्मा का नाम लिख, आत्मिक जीवन देनेवाली गुणस्तुति की वाणी लिख ॥ १ ॥ रहाउ ॥ इस काम के करने से तेरे विकार मिट जाएँगे। परमात्मा का नाम-स्मरण करने से आत्मिक मौत नहीं रहेगी, कामादिक दूत तेरी ओर देख नहीं सकेंगे, तू माया (के मोह) में नहीं डूबेगा, कोई भी वस्तु तुझे मोहित नहीं कर सकेगी ॥ २ ॥ (हे मेरे भाई !) परमात्मा का नाम जप, एक ओंकार को स्मरण करता रह, तू आप (विकारों से) बच जायगा, (तेरी संगति में) जगत् भी (विकारों के समुद्र से) पार उतर जायेगा। हे मेरे भाई ! तू आप नाम-स्मरण की कमाई कर, दूसरों को भी उपदेश दे, परमात्मा का नाम अपने हृदय में बसा ॥ ३ ॥ (पर हे भाई !) वही मनुष्य भगवान् को याद करता है जिसके माथे पर यह खज़ाना (प्राप्त करने का लेख लिखा) है, हे नानक ! कह— मैं उस मनुष्य पर बलिहारी जाता हूं जो आठों पहर परमात्मा के गुण गाता रहता है ॥ ८ ॥ २८ ॥ ९७ ॥

राग़ु गउड़ी गुआरेरी महला ५ चउपदे दुपदे

१ ओं सतिगुर प्रसादि । जो पराइओ सोई अपना । जो तजि छोडन तिसु सिउ मनु रचना ॥ १ ॥ कहहु गुसाई मिलीऐ केह । जो बिबरजत तिस सिउ नेह ॥ १ ॥ रहाउ ॥ झूठु बात सा सचु करि जाती । सति होवनु मनि लगै न राती ॥ २ ॥ बावै मारगु टेढा चलना । सीधा छोडि अपूठा बुनना ॥ ३ ॥ दुहा सिरिआ का खसमु प्रभु सोई । जिसु मेले नानक सो मुकता होई ॥ ४ ॥ २९ ॥ ९८ ॥

(माल, धन आदिक) जो ख़ज़ाना, पराया हो जाता है, उसे हम अपना मान बैठे हैं, हमारा मन उसके साथ मस्त रहता है जिसे आखिर छोड़ जाना है ॥ १ ॥ (हे भाई !) कहो, हम पति-प्रभु को कैसे मिल सकते हैं, यदि हमारा उस माया के साथ लगाव है जिससे हमें रोका हुआ है ? ॥ १ ॥ रहाउ ॥ यह ख्याल मिथ्या है कि हमें सदा यहाँ रहना है, लेकिन इस मिथ्या विचार को हमने सही समझा हुआ है; मौत, जो निश्चित होती है, वह हमारे मन में तनिक भी नहीं जँचती ॥ २ ॥ हमने जीवन का ग़लत रास्ता अपनाया है, हम जीवन की टेढ़ी चाल चल रहे हैं। जीवन का सीधा मार्ग छोड़कर हम जीवन के ताने-बाने को उल्टा बुन रहे हैं ॥ ३ ॥ (पर) हे नानक ! (जीवों के भी क्या वश ?) (जीवन के भले तथा बुरे) दोनों दिशाओं का स्वामी परमात्मा आप ही है। जिस मनुष्य को परमात्मा अपने चरणों में लगाता है वह ग़लत कर्मों से बच जाता है ॥४॥२९॥९८॥

॥ गउड़ी गुआरेरी महला ५ ॥ कलिजुग महि मिलि आए संजोग । जिचरु आगिआ तिचरु भोगहि भोग ॥ १ ॥ जलै न पाईऐ राम सनेही । किरति संजोगि सती उठि होई ॥ १ ॥ रहाउ ॥ देखा देखी मन हठि जलि जाईऐ । प्रिअ संगु न पावै बहु जोनि भवाईऐ ॥ २ ॥ सील संजमि प्रिअ आगिआ मानै । तिसु नारी कउ दुखु न जमानै ॥ ३ ॥ कहु नानक जिनि प्रिउ परमेसरु करि जानिआ । धंनु सती दरगह परवानिआ ॥ ४ ॥ ३० ॥ ९९ ॥

क्लेशों के संयोग इस दुनिया में (पति-पत्नी के) पिछले सम्बन्धों के कारण मिलकर आ एकत्रित होते हैं। जब तक (परमात्मा से) हुक्म मिलता है तब तक (दोनों मिलकर जगत् के) पदार्थ भोगते हैं ॥ १ ॥

(अपने मृत पति के साथ दोबारा) किए जा सकनेवाले मिलाप की ख़ातिर (स्त्री) उठकर सती हो जाती है, (लेकिन आग में) जलने से प्यार करने वाला पति नहीं मिल सकता ॥ १ ॥ रहाउ ॥ एक दूसरे को देखकर मन के हठ से ही जल जाती है, (लेकिन मृत पति की चिता में जलकर स्त्री अपने) प्यारे का साथ प्राप्त नहीं कर सकती (बल्कि इस तरह) कई योनियों में भटका जाता है ॥ २ ॥ जो स्त्री मीठे स्वभाव की युक्ति में रहकर प्यारे पति का हुक्म मानती है, उस स्त्री को यमों का दुःख नहीं छू सकता ॥ ३ ॥ हे नानक ! कह— जिस स्त्री ने अपने पति को ही एक 'खसम' के रूप में समझा है जैसे जगत् का पति एक परमात्मा है, वह स्त्री असली सती है, वह सौभाग्यशाली है, वह परमात्मा के दरबार में स्वीकृत है ॥ ४ ॥ ३० ॥ ९९ ॥

॥ गउड़ी गुआरेरी महला ५ ॥ हम धनवंत भागठ सच नाइ । हरिगुण गावह सहजि सुभाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ पीऊ दादे का खोलि डिठा खजाना । ता मेरै मनि भइआ निधाना ॥ १ ॥ रतन लाल जा का कछू न मोलु । भरे भंडार अखूट अतोल ॥ २ ॥ खावहि खरचहि रलि मिलि भाई । तोटि न आवै वधदो जाई ॥ ३ ॥ कहु नानक जिसु मसतकि लेखु लिखाइ । सु एतु खजानै लइआ रलाइ ॥ ४ ॥ ३१ ॥ १०० ॥

जब मैंने गुरुओं की वाणी का भण्डार खोलकर देखा तब मेरे मन में आत्मिक आनन्द का भण्डार भर गया ॥१॥रहाउ॥ (ज्यों-ज्यों) हम परमात्मा के गुण (मिलकर) गाते हैं, सत्यस्वरूप प्रभु के नाम के प्रभाव से हम धनी बनते जा रहे हैं, शौभाग्यशाली बनते जा रहे हैं, आत्मिक स्थिरता में टिके रहते हैं, प्रेम में मगन रहते हैं ॥ १ ॥ इस ख़ज़ाने में परमात्मा की गुणस्तुति के अमूल्य रत्न, लाल भरे हुए हैं, जो अक्षय हैं, जो अतुल हैं ॥ २ ॥ हे भाई ! जो मनुष्य (सत्संग में) एकत्रित होकर इन ख़ज़ानों को इस्तेमाल करते हैं तथा दूसरों को भी बाँटते हैं, उनके पास इस ख़ज़ाने की कमी नहीं होती बल्कि इस प्रकार वह अधिकाधिक बढ़ता है ॥ ३ ॥ (पर) हे नानक ! कह— जिस मनुष्य के माथे पर परमात्मा का कृपा-लेख लिखा होता है वही इस (गुणस्तुति के) ख़ज़ाने में साझी बनाया जाता है (अर्थात्, वही सत्संगति में आकर गुणस्तुति की वाणी का आनन्द प्राप्त करता है) ॥ ४ ॥ ३१ ॥ १०० ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ डरि डरि मरते जब जानीऐ दूरि । डरु चूका देखिआ भरपूरि ॥ १ ॥ सतिगुर अपने कउ

बलिहारै । छोडि न जाई सरपर तारै ॥ १ ॥ रहाउ ॥ दूखु रोगु सोगु बिसरै जब नामु । सदा अनंदु जा हरिगुण गामु ॥ २ ॥ बुरा भला कोई न कहीजै । छोडि मानु हरि चरन गहीजै ॥ ३ ॥ कहु नानक गुरमंत्रु चितारि । सुखु पावहि साचै दरबारि ॥ ४ ॥ ३२ ॥ १०१ ॥

जब तक हम यह समझते हैं कि परमात्मा दूर बसता है तब तक (दुनिया के विकारों से) सहम-सहम कर आत्मिक मौत मरते रहते हैं। जब उसे (संसार में व्यापक) देख लिया तब (सांसारिक दुखों का) भय समाप्त हो गया ॥ १ ॥ मैं अपने गुरु पर बलिहारी जाता हूँ, वह (दुखों के समुद्र में डूबते को) छोड़कर नहीं जाता, वह अवश्य पार कराता है ॥१॥ रहाउ ॥ (हे भाई ! दुनिया का) दुःख (तब ही लगता है) जब परमात्मा का नाम विस्मृत हो जाता है । जब परमात्मा की गुण-स्तुति के गीत गाएँ तब (मन में) सदा आनन्द बना रहता है ॥ २ ॥ (हे भाई !) न किसी की निन्दा करनी चाहिए, न किसी की खुशामद । (दुनिया का) अभिमान त्यागकर परमात्मा के चरण (हृदय में) टिका लेने चाहिए ॥ ३ ॥ हे नानक ! कह— (हे भाई !) गुरु का उपदेश अपने हृदय में अंकित रख, सत्यस्वरूप परमात्मा के दरबार में आनन्द प्राप्त करेगा ॥४॥३२॥१०१॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ जाका मीतु साजनु है समीआ । तिसु जन कउ कहु का की कमीआ ॥ १ ॥ जाकी प्रीति गोबिंद सिउ लागी । दूखु दरदु भ्रमु ता का भागी ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जा कउ रसु हरि रसु है आइओ । सो अन रस नाही लपटाइओ ॥ २ ॥ जा का कहिआ दरगह चलै । सो किस कउ नदरि लै आवै तलै ॥ ३ ॥ जा का सभु किछु ता का होइ । नानक ताकउ सदा सुखु होइ ॥ ४ ॥ ३३ ॥ १०२ ॥

जिस मनुष्य का मित्र (यह विश्वास बन जाय कि उसका) भर्ता प्रभु सर्वत्र व्यापक है, (हे भाई !) कह, उस मनुष्य को किस बात की कमी रह जाती है ? ॥ १ ॥ (हे भाई !) जिस मनुष्य का प्रेम परमात्मा के साथ बन जाता है उसका हरेक दु:ख, दर्द, भ्रम दूर हो जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे भाई !) जिस मनुष्य को परमात्मा के नाम का आनन्द आ जाता है वह दुनिया के दूसरे पदार्थों के आनन्द के साथ नहीं चिपटता ॥ २ ॥ जिस मनुष्य का बोला हुआ बोल परमात्मा के दरबार में माना जाता है, उसे किसी की आवश्यकता नहीं रह जाती ॥ ३ ॥ हे नानक ! जिस

परमात्मा का रचा हुआ यह सारा संसार है, उस परमात्मा का सेवक जो मनुष्य बन जाता है, उसे सदा आनन्द प्राप्त रहता है ॥ ४ ॥ ३३ ॥ १०२ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ जा कै दुखु सुखु सम करि जापै । ता कउ काड़ा कहा बिआपै ॥ १ ॥ सहज अनंद हरि साधू माहि । आगिआकारी हरि हरि राइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जा कै अचिंतु वसै मनि आइ । ता कउ चिंता कतहूं नाहि ॥ २ ॥ जा कै बिनसिओ मन ते भरमा । ता कै कछू नाही डरु जमा ॥ ३ ॥ जा कै हिरदै दीओ गुरि नामा । कहु नानक ता कै सगल निधाना ॥ ४ ॥ ३४ ॥ १०३ ॥

(ईश्वरेच्छा के स्वीकारने पर) जिस मनुष्य के हृदय में सुख-दुख एक समान प्रतीत होता है, उसे कोई चिन्ता या फ़िक्र दबा नहीं सकती ॥ १ ॥ (हे भाई !) परमात्मा के भक्त के हृदय में आत्मिक-टिकाव बना रहता है, (सदा) आनन्द बना रहता है, (हरि का भक्त) हरि-प्रभु की आज्ञा में ही चलता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ चिन्ता-रहित परमात्मा जिस मनुष्य के मन में आ बसता है, उसे कभी कोई चिन्ता नहीं छूती ॥ २ ॥ जिस मनुष्य के हृदय में दुबिधा समाप्त हो जाती है, उसके मन में मौत का भय नहीं रह जाता ॥ ३ ॥ हे नानक ! कह— गुरु ने जिस मनुष्य के हृदय में परमात्मा का नाम टिका दिया है उसके भीतर, मानों, सारे खज़ाने आ जाते हैं ॥ ४ ॥ ३४ ॥ १०३ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ अगम रूप का मन महि थाना । गुर प्रसादि किनै विरलै जाना ॥ १ ॥ सहज कथा के अंम्रित कुंटा । जिसहि परापति तिसु लै भुंचा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ अनहत बाणी थानु निराला । ता की धुनि मोहे गोपाला ॥ २ ॥ तह सहज अखारे अनेक अनंता । पारब्रहम के संगी संता ॥ ३ ॥ हरख अनंत सोग नही बीआ । सो घरु गुरि नानक कउ दीआ ॥ ४ ॥ ३५ ॥ १०४ ॥

(जिस मन में गुणस्तुति के झरने बहते हैं) उस मन में अगम्य स्वरूप वाले परमात्मा का निवास हो जाता है । (पर) किसी विरले मनुष्य ने गुरु की कृपा से यह भेद समझा है ॥ १ ॥ जिस मनुष्य के भाग्य में प्राप्ति का लेख लिखा होता है वह (गुरु-कृपा से) आत्मिक स्थिरता तथा गुणस्तुति के चश्मों का आनन्द प्राप्त करता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (जिस हृदय में गुणस्तुति के झरने चल पड़ते हैं) वह हृदय-स्थान निरन्तर गुणस्तुति की

बाणी के प्रभाव से सुन्दर हो जाता है। उसकी जुड़ी हुई सुरति पर परमात्मा मोहित हो जाता है ॥ २ ॥ (जहाँ गुणस्तुति में लगे हृदय हैं) वहाँ (आत्मिक अवस्था में टिके) संतजन परमात्मा के चरणों में जुड़कर आत्मिक स्थिरता के अनेकों अखाड़े रचते हैं ॥ ३ ॥ (उस अवस्था में) असीम ख़ुशी बनी रहती है, किसी प्रकार की कोई फ़िक्र, भय नहीं छूता। (हे भाई !) गुरु ने वह आत्मिक ठिकाना (मुझ) नानक को (भी) दिया है ॥ ४ ॥ ३५ ॥ १०४ ॥

॥ गउड़ी म० ५ ॥ कवन रूपु तेरा आराधउ। कवन जोग काइआ ले साधउ ॥ १ ॥ कवन गुनु जो तुझु लै गावउ। कवन बोल पारब्रहम रीझावउ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ कवन सु पूजा तेरी करउ। कवन सु बिधि जितु भवजल तरउ ॥ २ ॥ कवन तपु जितु तपीआ होइ। कवनु सु नामु हउमै मलु खोइ ॥ ३ ॥ गुण पूजा गिआन धिआन नानक सगल घाल। जिसु करि किरपा सतिगुरु मिलै दइआल ॥ ४ ॥ तिस ही गुनु तिन ही प्रभु जाता। जिस की मानि लेइ सुखदाता ॥ १ ॥ रहाउ दूजा ॥ ३६ ॥ १०५ ॥

(हे प्रभु ! तेरे इन अनगिनत रूपों के कारण मैं नहीं जानता कि) तेरा वह कौन-सा रूप है जिसका मैं ध्यान करूँ। (हे प्रभु ! मुझे समझ नहीं कि) योग का वह कौन-सा साधन है जिससे मैं अपने शरीर को वश में लाऊँ ॥ १ ॥ हे पारब्रह्म प्रभु ! (तेरे गुण अनन्त हैं, मुझे समझ नहीं आती कि) मैं तेरे किस गुण की स्तुति करूँ, और कौन से शब्दों से तुझे प्रसन्न करूँ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे पारब्रह्म ! मैं तेरी कौन-सी पूजा करूँ (जिससे तू प्रसन्न हो सके) ? हे प्रभु ! वह कौन-सा तरीका है जिसके द्वारा मैं संसार-समुद्र से पार उतर जाऊँ ? ॥ २ ॥ वह कौन सा तप-साधन है जिससे मनुष्य तपस्वी कहला सकता है (और तुझे प्रसन्न कर सकता है) ? वह कौन सा नाम है (जिसके जाप से) मनुष्य अहंकार की मैल दूर कर सकता है ? ॥ ३ ॥ हे नानक ! (उसी मनुष्य के गाए हुए) गुण, (की हुई) पूजा, ज्ञान तथा जोड़ी हुई सुरति आदि की तमाम मेहनत (सफल होती है) जिस पर दयालु होकर, कृपा करके गुरु मिलता है ॥ ४ ॥ उसकी की हुई गुणस्तुति (स्वीकृत) है, उसने ही प्रभु से जान-पहचान की हुई है, (जिसे गुरु मिला है और) जिसकी प्रार्थना सारे सुख देनेवाला परमात्मा मान लेता है ॥ १ ॥ रहाउ दूजा ॥ ३६ ॥ १०५ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ आपन तनु नही जाको गरबा । राज मिलख नही आपन दरबा ॥ १ ॥ आपन नही का कउ लपटाइओ । आपन नामु सतिगुर ते पाइओ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सुत बनिता आपन नही भाई । इसट मीत आप बापु न माई ॥ २ ॥ सुइना रूपा फुनि नही दाम । हैवर गैवर आपन नही काम ॥ ३ ॥ कहु नानक जो गुरि बखसि मिलाइआ । तिस का सभु किछु जिस का हरि राइआ ॥ ४ ॥ ३७ ॥ १०६ ॥

(हे भाई !) यह शरीर जिसका तुझे अभिमान है (सदा के लिए) अपना नहीं है। राज्य, भूमि धन (सदा के लिए) अपने नहीं हैं ॥ १ ॥ (हे भाई ! तू) किस-किस से मोह कर रहा है ? (इनमें से कोई भी सदा के लिए) तेरा अपना नहीं है। सदा अपना 'नाम' ही है (जो) गुरु से मिलता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ पुत्र, स्त्री, भाई, मित्र, माँ, बाप (इनमें से सदा के लिए) कोई भी अपना नहीं है ॥ २ ॥ सोना, चाँदी दौलत भी (सदा के लिए) अपने नहीं हैं। बढ़िया हाथी, घोड़े (भी) अपने काम नहीं आ सकते ॥ ३ ॥ हे नानक ! कह— जिस मनुष्य को कृपा करके गुरु ने (प्रभु के साथ) मिला दिया है, जिस मनुष्य का (साथी) परमात्मा बन गया है, सब कुछ उसका अपना है ॥ ४ ॥ ३७ ॥ १०६ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ गुर के चरण ऊपरि मेरे माथे । ता ते दुख मेरे सगले लाथे ॥ १ ॥ सतिगुर अपुने कउ कुरबानी । आतम चीनि परम रंग मानी ॥ १ ॥ रहाउ ॥ चरण रेणु गुर की मुखि लागी । अहंबुधि तिनि सगल तिआगी ॥ २ ॥ गुर का सबदु लगो मनि मीठा । पारब्रहमु ता ते मोहि डीठा ॥ ३ ॥ गुरु सुखदाता गुरु करतारु । जीअ प्राण नानक गुरु आधारु ॥ ४ ॥ ३८ ॥ १०७ ॥

(हे भाई !) गुरु के चरण मेरे माथे पर टिके हुए हैं, उनके प्रभाव से मेरे सारे दुःख दूर हो गए हैं ॥ १ ॥ मैं अपने गुरु पर बलिहारी जाता हूँ। मैं अपने आत्मिक जीवन की जाँच-पड़ताल कर सर्वोपरि आनन्द महसूस कर रहा हूँ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिस मनुष्य के माथे पर गुरु के चरणों की धूलि लग गई उसने अपनी समस्त अहंभावना त्याग दी ॥ २ ॥ (हे भाई !) गुरु का उपदेश मेरे मन में प्यारा लग रहा है, उसके प्रभाव से मैं परमात्मा का दर्शन कर रहा हूँ ॥ ३ ॥ हे नानक ! कहो— गुरु ही

सब दुखों का देनेवाला है, गुरु कर्त्तार-रूप है, गुरु मेरी आत्मा का आसरा है, गुरु मेरे प्राणों का सहारा है ॥ ४ ॥ ३८ ॥ १०७ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ रे मन मेरे तूं ता कउ आहि। जाकै ऊणा कछहू नाहि ॥ १ ॥ हरि सा प्रीतमु करि मन मीत। प्रान अधारु राखहु सद चीत ॥ १ ॥ रहाउ ॥ रे मन मेरे तूं ता कउ सेवि। आदि पुरख अपरंपर देव ॥ २ ॥ तिसु ऊपरि मन करि तूं आसा। आदि जुगादि जा का भरवासा ॥ ३ ॥ जा की प्रीति सदा सुखु होइ। नानकु गावै गुर मिलि सोइ ॥ ४ ॥ ३९ ॥ १०८ ॥

हे मेरे मन ! तू उस परमात्मा को मिलने की इच्छा कर, जिसके घर में किसी भी चीज़ की कमी नहीं है ॥ १ ॥ हे मेरे मित्र मन ! परमात्मा जैसा प्रियतम बना। उस प्राणों के आसरे को सदा चित्त में पिरोकर रख ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे मेरे मन ! तू उस परमात्मा की सेवा-भक्ति कर, जो (सारे जगत् का) मूल है, जो सब में व्यापक है, जो अपरम्पार है और जो प्रकाश-रूप है ॥ २ ॥ हे मेरे मन ! तू परमात्मा पर आशा रख जिसकी सहायता का विश्वास (सब जीवों को) है ॥ ३ ॥ हे भाई ! जिस परमात्मा की प्रीति के प्रभाव से सदा आत्मिक आनन्द मिलता है, नानक गुरु को मिलकर उसके गुण गाता है ॥ ४ ॥ ३९ ॥ १०८ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ मीतु करै सोई हम माना। मीत के करतब कुसल समाना ॥ १ ॥ एका टेक मेरै मनि चीत। जिसु किछु करणा सु हमरा मीत ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मीतु हमारा वेपरवाहा। गुर किरपा ते मोहि असनाहा ॥ २ ॥ मीतु हमारा अंतरजामी। समरथ पुरखु पारब्रहमु सुआमी ॥ ३ ॥ हम दासे तुम ठाकुर मेरे। मानु महतु नानक प्रभु तेरे ॥ ४ ॥ ४० ॥ १०९ ॥

(हे भाई !) मेरा मित्र प्रभु जो कुछ करता है उसी को मैं स्वीकारता हूँ, मित्र प्रभु के किए काम सुखों जैसे प्रतीत होते हैं ॥ १ ॥ मेरे हृदय में केवल यह सहारा है कि जिस परमात्मा की यह सारी रचना है, वह मेरा मित्र है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मेरा मित्र प्रभु सामर्थ्यवान है, गुरु की कृपा से मेरा उसके साथ प्रेम हो गया है ॥ २ ॥ मेरा मित्र प्रभु सबके मन की जाननेवाला है। वह सब शक्तियों का स्वामी है, सर्वव्यापक है, सबका

मालिक है ॥ ३ ॥ हे नानक ! (कह—) हे प्रभु ! तू मेरा मालिक है, मैं तेरा सेवक हूं। तेरा सेवक बनने से परलोक में आदर मिलता है, प्रशंसा मिलती है ॥ ४ ॥ ४० ॥ १०९ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ जा कउ तुम भए समरथ अंगा। ता कउ कछु नाही कालंगा ॥ १ ॥ माधउ जा कउ है आस तुमारी। ता कउ कछु नाही संसारी ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जा कै हिरदै ठाकुरु होइ। ता कउ सहसा नाही कोइ ॥ २ ॥ जा कउ तुम दीनी प्रभ धीर। ता कै निकटि न आवै पीर ॥ ३ ॥ कहु नानक मै सो गुरु पाइआ। पारब्रहम पूरन देखाइआ ॥ ४ ॥ ४१ ॥ ११० ॥

हे सर्वशक्तिमान प्रभु ! तू जिस मनुष्य का सहायक बनता है, उसे कोई दाग़ नहीं छू सकता ॥ १ ॥ हे माया के स्वामी प्रभु ! जिस मनुष्य को (केवल) तेरी आशा है उसे दुनिया (के लोगों की सहायता) की आशा नहीं रहती ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे भाई ! जिस मनुष्य के हृदय में मालिक प्रभु स्मरण रहता है उसे (दुनिया का) कोई दुख-दर्द नहीं छू सकता ॥ २ ॥ हे प्रभु ! जिस मनुष्य को तूने धैर्य दिया है, कोई दुःख-क्लेश उसके निकट नहीं आ सकता ॥ ३ ॥ हे नानक ! कह— मैंने वह गुरु प्राप्त कर लिया है जिसने मुझे सर्वव्यापक अनन्त प्रभु दिखा दिया है ॥ ४ ॥ ४१ ॥ ११० ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ दुलभ देह पाई वडभागी। नामु न जपहि ते आतमघाती ॥ १ ॥ मरि न जाही जिना बिसरत राम। नाम बिहून जीवन कउन काम ॥ १ ॥ रहाउ ॥ खात पीत खेलत हसत बिसथार। कवन अरथ मिरतक सीगार ॥ २ ॥ जो न सुनहि जसु परमानंदा। पसु पंखी त्रिगद जोनि ते मंदा ॥ ३ ॥ कहु नानक गुरि मंत्रु द्रिड़ाइआ। केवल नामु रिद माहि समाइआ ॥ ४ ॥ ४२ ॥ १११ ॥

यह दुर्लभ मनुष्य-शरीर सौभाग्यवश मिलता है (लेकिन) जो मनुष्य (यह शरीर प्राप्त करके) परमात्मा का नाम नहीं जपते, वे आत्मिक मौत प्राप्त कर लेते हैं ॥ १ ॥ (हे भाई !) जिन मनुष्यों को परमात्मा (का नाम) भूल जाता है, वह अवश्य आत्मिक मृत्यु प्राप्त कर लेते हैं (क्योंकि) परमात्मा के नाम से खाली रहने से मनुष्य-जीवन व्यर्थ जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (नास्तिक मनुष्य) खाने, पीने, खेलने, हँसने के साधन जुटाते हैं पर (यह मृत व्यक्ति को आभूषणों से सज्जित करने के तुल्य है, क्योंकि)

मृत व्यक्ति को अलंकृत करने का कोई लाभ नहीं होता ।। २ ।। जो मनुष्य सर्वोपरि आनन्द के स्वामी प्रभु की गुणस्तुति नहीं सुनते वे पशु, पक्षी तथा टेढ़े होकर चलनेवाले जीवों की योनियों से भी बुरे हैं ।। ३ ।। हे नानक ! कह— जिस मनुष्य के हृदय में गुरु ने अपना उपदेश परिपक्व कर दिया है, उसके हृदय में केवल परमात्मा का नाम ही सदा टिका रहता है ।। ४ ।। ४२ ।। १११ ।।

।। गउड़ी महला ५ ।। का की माई का को बाप । नाम धारीक झूठे सभि साक ।। १ ।। काहे कउ मूरख भखलाइआ । मिलि संजोगि हुकमि तूं आइआ ।। १ ।। रहाउ ।। एका माटी एका जोति । एको पवनु कहा कउनु रोति ।। २ ।। मेरा मेरा करि बिललाही । मरणहारु इहु जीअरा नाही ।।३।। कहु नानक गुरि खोले कपाट । मुकतु भए बिनसे भ्रम थाट ।।४।।४३।।११२।।

(वास्तव में सदा के लिए) न कोई किसी की माँ है, न कोई किसी का पिता है । ये सारे सम्बन्ध सदा स्थिर रहनेवाले नहीं हैं, केवल कथन मात्र ही हैं ।। १ ।। हे मूर्ख ! तू क्यों स्वप्न के प्रभाव में बोल रहा है ? (तुझे यह पता नहीं कि) तू परमात्मा के हुक्म-अनुसार (पिछले) संयोग-अनुसार (इन सम्बन्धियों के साथ) मिलकर (जगत् में) आया है ।। १ ।। रहाउ ।। सब जीवों की एक ही मिट्टी है, सब में एक ही ज्योति है, सब में एक जैसे ही प्राण हैं इसलिए (सब तत्वों के अलग-अलग होने पर) रोने की आवश्यकता नहीं ।। २ ।। (किसी सम्बन्धी के विछोह पर) लोग 'मेरा' 'मेरा' कहकर बिलखते हैं (लेकिन वे यह नहीं जानते कि) यह जीवात्मा मरनेवाला नहीं है ।। ३ ।। हे नानक ! कह— जिन मनुष्यों के (माया-मोह से जकड़े हुए) किवाड़ गुरु ने खोल दिए, वे मोह के बन्धनों से स्वतन्त्र हो गए, उनके मोह की दुबिधा से उपजे सारे झगड़े समाप्त हो गए ।। ४ ।। ४३ ।। ११२ ।।

।। गउड़ी महला ५ ।। वडे वडे जो दीसहि लोग । तिन कउ बिआपै चिंता रोग ।। १ ।। कउ न वडा माइआ वडिआई । सो वडा जिनि राम लिव लाई ।। १ ।। रहाउ ।। भूमीआ भूमि ऊपरि नित लुझै । छोडि चलै त्रिसना नही बुझै ।। २ ।। कहु नानक इहु ततु बीचारा । बिनु हरि भजन नाही छुटकारा ।। ३ ।। ४४ ।। ११३ ।।

(हे भाई ! दुनियावी प्रभुता से) जो व्यक्ति बड़े-बड़े दिखाई देते हैं,

उन्हें चिन्ता का रोग दबाए रखता है ॥ १ ॥ माया के कारण मिली प्रशंसा से कोई भी मनुष्य (असल में) बड़ा नहीं है। वह मनुष्य ही बड़ा है जिसने परमात्मा से लगन लगाई हुई है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ ज़मीन का मालिक मनुष्य ज़मीन के लिए दूसरों से लड़ता-झगड़ता रहता है पर आख़िरकार (ज़मीन यहीं) छोड़कर (यहाँ से) चल पड़ता है, (लेकिन) उसकी तृष्णा (मल्कियत की) नहीं मिटती ॥ २ ॥ हे नानक ! कह— हमने विचार कर काम की यह बात प्राप्त की है कि परमात्मा के भजन के बिना माया के मोह से मुक्ति नहीं होती ॥ ३ ॥ ४४ ॥ ११३ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ पूरा मारगु पूरा इसनानु । सभु किछु पूरा हिरदै नामु ॥ १ ॥ पूरी रही जा पूरै राखी । पारब्रहम की सरणि जन ताकी ॥ १ ॥ रहाउ ॥ पूरा सुखु पूरा संतोखु । पूरा तपु पूरन राजु जोगु ॥ २ ॥ हरि कै मारगि पतित पुनीत । पूरी सोभा पूरा लोकीक ॥ ३ ॥ करणहारु सद वसै हदूरा । कहु नानक मेरा सतिगुरु पूरा ॥ ४ ॥ ४५ ॥ ११४ ॥

(गुरु की कृपा से) जिस मनुष्य के हृदय में परमात्मा का नाम बसता है उसका प्रत्येक कार्य दोषरहित होता है (क्योंकि) परमात्मा का नाम ही सही रास्ता है, नाम ही असल (तीर्थ-) स्नान है ॥ १ ॥ (पूर्णगुरु की कृपा से) जिन मनुष्यों ने परमात्मा का आसरा लिया, उनकी प्रतिष्ठा सदा के लिए बनी रही क्योंकि न भूलनेवाले प्रभु ने उनकी प्रतिष्ठा रख ली ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (परमात्मा का शरणागत मनुष्य) सदा आत्मिक आनन्द महसूसता है और संतोष वाला जीवन बिताता है। (परमात्मा की शरण ही उसके लिए) अविस्मरणीय तप है, वह पूर्ण राज्य भी भोगता है और परमात्मा के चरणों से जुड़ा भी रहता है ॥ २ ॥ (गुरु की कृपा से जो मनुष्य) परमात्मा के मार्ग पर चलते हैं वे (पहले) विकारग्रस्त होने पर भी (अब) पवित्र हो जाते हैं, (उन्हें लोक-परलोक में) सदा के लिए शोभा मिलती है, लोगों के साथ उनका व्यवहार भी उचित होता है ॥ ३ ॥ हे नानक ! कह— जिस मनुष्य को अविस्मरणीय गुरु मिल जाता है, कर्त्तार सृजनहार सदा उस मनुष्य के साथ-साथ रहता है ॥ ४ ॥ ४५ ॥ ११४ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ संत की धूरि मिटे अघ कोट । संत प्रसादि जनम मरण ते छोट ॥ १ ॥ संत का दरसु पूरन इसनानु । संत क्रिपा ते जपीऐ नामु ॥ १ ॥ रहाउ ॥ संत कै संगि मिटिआ अहंकारु । द्रिसटि आवै सभु एकंकारु ॥ २ ॥ संत सुप्रसंन आए वसि पंचा । अंम्रितु नामु रिदै लै

संचा ॥ ३ ॥ कहु नानक जा का पूरा करम । तिसु भेटे साधू के चरन ॥ ४ ॥ ४६ ॥ ११५ ॥

गुरुसंत के चरणों की धूलि (मस्तक पर लगाने) से करोड़ों पाप दूर हो जाते हैं। गुरुसंत की कृपा से जन्म-मरण से मुक्ति मिल जाती है ॥ १ ॥ (हे भाई !) गुरुसंत का दर्शन ही पूर्ण तीर्थस्नान है। गुरुसंत की कृपा से परमात्मा का नाम जपा जा सकता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे भाई !) गुरुसंत की संगति में (रहने से) अहंकार दूर हो जाता है (और फिर) सर्वत्र एक परमात्मा ही दृष्टिगोचर होता है ॥ २ ॥ जिस मनुष्य पर गुरुसंत कृपालु हो जाए, (कामादिक) पाँचों दूत उसके वश में आ जाते हैं, वह मनुष्य आत्मिक जीवन देनेवाला हरि-नाम अपने हृदय में एकत्रित कर लेता है ॥ ३ ॥ (लेकिन) हे नानक ! कह— उस मनुष्य को (ही) गुरु के चरण मिलते हैं जिसकी किस्मत अच्छी हो ॥४॥४६॥११५॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ हरिगुण जपत कमलु परगासै । हरि सिमरत त्रास सभ नासै ॥ १ ॥ सा मति पूरी जितु हरिगुण गावै । वडै भागि साधू संगु पावै ॥ १ ॥ रहाउ ॥ साध संगि पाईऐ निधि नामा । साध संगि पूरन सभि कामा ॥ २ ॥ हरि की भगति जनमु परवाणु । गुर किरपा ते नामु वखाणु ॥ ३ ॥ कहु नानक सो जनु परवानु । जा कै रिदै वसै भगवानु ॥ ४ ॥ ४७ ॥ ११६ ॥

(हे भाई !) परमात्मा के गुण गाते हुए (हृदय-) कमल खिल पड़ता है, परमात्मा का नाम-स्मरण करते हुए हरेक प्रकार का डर दूर हो जाता है ॥ १ ॥ (हे भाई !) वही बुद्धि दोषरहित समझो, जिसके प्रभाव से मनुष्य परमात्मा के गुण गाता है (पर यह अक्ल उस मनुष्य के भीतर पैदा होती है जो) सौभाग्यवश गुरु की संगति प्राप्त कर लेता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गुरु की संगति में रहने से परमात्मा का नाम-खज़ाना मिल जाता है और गुरु की संगति में रहने से सारे काम पूरे हो जाते जाते हैं ॥ २ ॥ परमात्मा की भक्ति करने से मनुष्यजन्म सफल हो जाता है। (लेकिन परमात्मा की भक्ति) परमात्मा का नाम-उच्चारण गुरु की कृपा से ही मिलता है ॥ ३ ॥ हे नानक ! कह— (केवल) वह मनुष्य (परमात्मा के दरबार में) स्वीकृत होता है जिसके हृदय में (सदा) परमात्मा (का नाम) बसता है ॥ ४ ॥ ४७ ॥ ११६ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ एकसु सिउ जा का मनु राता । विसरी तिसै पराई ताता ॥ १ ॥ बिनु गोबिंद न दीसै कोई ।

करन करावन करता सोई ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मनहि कमावै मुखि हरि हरि बोलै । सो जनु इत उत कतहि न डोलै ॥ २ ॥ जा कै हरि धनु सो सचु साहु । गुरि पूरै करि दीनो विसाहु ॥ ३ ॥ जीवन पुरखु मिलिआ हरि राइआ । कहु नानक परमपदु पाइआ ॥ ४ ॥ ४८ ॥ ११७ ॥

(गुरु की कृपा से) जिस मनुष्य का मन एक परमात्मा के साथ ही रँगा रहता है, वह दूसरों से ईर्ष्या करना भूल जाता है ॥ १ ॥ (जिस पर गुरु-कृपा होती है उसे) गोबिन्द के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं दिखता। (उसे सर्वत्र) वही कर्त्तार दिखता है जो सब कुछ करने की सामर्थ्य वाला है और सब जीवों से कराने की शक्तिवाला है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (गुरु-कृपा से जो मनुष्य) मन लगाकर स्मरण की कमाई करता है और मुंह से सदा परमात्मा का नाम उच्चरित करता है, वह मनुष्य कभी भी लोक या परलोक में (अपने आदर्शों से) नहीं गिरता ॥ २ ॥ (गुरु की कृपा से) जिस मनुष्य के पास नाम-धन है वह ऐसा साहूकार है जो सदा ही साहूकार बना रहता है। पूर्णगुरु ने (परमात्मा के दरबार में उसकी) जान-पहचान करा दी है ॥ ३ ॥ हे नानक ! कह— (गुरु-कृपा से) जिस मनुष्य को सर्वव्यापक, सब जीवों की ज़िन्दगी का सहारा प्रभु मिल गया है उसने सर्वोच्च आत्मिक स्थान प्राप्त कर लिया है ॥ ४ ॥ ४८ ॥ ११७ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ नामु भगत कै प्रान अधारु । नामो धनु नामो बिउहारु ॥ १ ॥ नाम वडाई जनु सोभा पाए । करि किरपा जिसु आपि दिवाए ॥ १ ॥ रहाउ ॥ नामु भगत कै सुख असथानु । नाम रतु सो भगतु परवानु ॥ २ ॥ हरि का नामु जन कउ धारै । सासि सासि जनु नामु समारै ॥ ३ ॥ कहु नानक जिसु पूरा भागु । नाम संगि ता का मनु लागु ॥ ४ ॥ ४९ ॥ ११८ ॥

भक्ति करनेवाले मनुष्य के हृदय में परमात्मा का नाम उसकी ज़िन्दगी का सहारा है, नाम ही उसके लिए धन है और नाम ही उसके लिए वाणिज्य-व्यापार है ॥ १ ॥ (हे भाई ! जिस मनुष्य के हृदय में परमात्मा का) नाम है, वह मनुष्य (सर्वत्र) प्रशंसा प्राप्त करता है, शोभा पाता है (पर यह हरि-नाम उसे मिलता है) जिसे कृपा करके परमात्मा आप दिलाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ भक्त के हृदय में परमात्मा का नाम आत्मिक आनन्द देने का सहारा है। जो मनुष्य परमात्मा के नाम-रंग में रँगा हुआ है,

वह भक्त है। वह परमात्मा के दरबार में आदर-प्राप्त है ॥ २ ॥ परमात्मा का नाम सेवक को सहारा देता है, सेवक अपने एक-एक श्वास के साथ परमात्मा का नाम (अपने हृदय में) सँभाल कर रखता है ॥ ३ ॥ हे नानक ! कह— जिस मनुष्य की क़िस्मत भली होती है उसका मन परमात्मा के साथ रम जाता है ॥ ४ ॥ ४९ ॥ ११८ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ संत प्रसादि हरिनामु धिआइआ। तब ते धावतु मनु त्रिपताइआ ॥ १ ॥ सुख बिस्रामु पाइआ गुण गाइ। स्रमु मिटिआ मेरी हती बलाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ चरन कमल अराधि भगवंता। हरि सिमरन ते मिटी मेरी चिंता ॥ २ ॥ सभ तजि अनाथु एक सरणि आइओ। ऊच असथानु तब सहजे पाइओ ॥ ३ ॥ दूखु दरदु भरमु भउ नसिआ। करणहारु नानक मनि बसिआ ॥ ४ ॥ ५० ॥ ११९ ॥

(हे भाई ! जब से) गुरुसंत की कृपा से मैं परमात्मा का नाम-स्मरण कर रहा हूँ तब से (माया के लिए) दौड़नेवाला मन तृप्त हो गया है ॥ १ ॥ (गुरु-कृपा से परमात्मा के) गुण गा-गागर मैंने (वह) आत्मिक आनन्द का दाता (परमात्मा) प्राप्त कर लिया है। (अब माया-सम्बन्धी) भाग-दौड़ मिट गई है, (माया-तृष्णा की) बला समाप्त हो गई है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे भाई ! गुरु-कृपा से) भगवान के चरणों का ध्यान करके, परमात्मा का नाम-स्मरण करने से मेरी (हरेक क़िस्म की) चिन्ता मिट गई है ॥ २ ॥ (हे भाई ! जब) मैं अनाथ सब सहारों को छोड़कर एक परमात्मा की शरण आ गया, तब आत्मिक स्थिरता में टिककर मैंने वह सर्वोच्च ठिकाना प्राप्त कर लिया ॥ ३ ॥ हे नानक ! (कह— गुरु की कृपा से) सृजनहार परमात्मा मेरे मन में बस गया है, (अब मेरा हर प्रकार का) दुःख-दर्द, दुबिधा, भय दूर हो गया है ॥ ४ ॥ ५० ॥ ११९ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ कर करि टहल रसना गुण गावउ। चरन ठाकुर कै मारगि धावउ ॥ १ ॥ भलो समो सिमरन की बरीआ। सिमरत नामु भै पारि उतरीआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ नेत्र संतन का दरसनु पेखु। प्रभ अविनासी मन महि लेखु ॥२॥ सुणि कीरतनु साध पहि जाइ। जनम मरण की त्रास मिटाइ ॥ ३ ॥ चरण कमल ठाकुर उरि धारि। दुलभ देह नानक निसतारि ॥ ४ ॥ ५१ ॥ १२० ॥

(गुरुकृपा से) मैं अपने हाथों से (गुरमुखों की सेवा) करता हूँ, जीभ से परमात्मा के गुण गाता हूँ, और पैरों से परमात्मा के रास्ते पर चल रहा हूँ ।। १ ।। (हे मन ! मनुष्य-जन्म का यह) सुन्दर समय परमात्मा के स्मरण का समय है । परमात्मा का नाम-स्मरण करते हुए (संसार के अनेकों) भयों से पार जाया जा सकता है ।। १ ।। रहाउ ।। (हे भाई ! तू भी) अपनी आँखों से गुरमुखों का दर्शन कर, (गुरमुखों की संगति में रहकर) अपने मन में अविनाशी परमात्मा के स्मरण का लेख लिखता रह ।। २ ।। (हे भाई !) गुरु की संगति में जाकर तू परमात्मा की गुणस्तुति के गीत सुनाकर और इस प्रकार जन्म-मरण में डालनेवाली आत्मिक मौत का भय दूर कर ले ।। ३ ।। हे नानक ! परमात्मा के सुन्दर चरण अपने हृदय में टिकाए रख । यह मनुष्य-शरीर बड़ी कठिनाई से मिला है, इसे (स्मरण द्वारा) पार कर ले ।। ४ ।। ५१ ।। १२० ।।

।। गउड़ी महला ५ ।। जा कउ अपनी किरपा धारै । सो जनु रसना नामु उचारै ।। १ ।। हरि बिसरत सहसा दुखु बिआपै । सिमरत नामु भरमु भउ भागै ।। १ ।। रहाउ ।। हरि कीरतनु सुणै हरि कीरतनु गावै । तिसु जन दूखु निकटि नही आवै ।। २ ।। हरि की टहल करत जनु सोहै । ता कउ माइआ अगनि न पोहै ।। ३ ।। मनि तनि मुखि हरिनामु दइआल । नानक तजीअले अवरि जंजाल ।। ४ ।। ५२ ।। १२१ ।।

जिस मनुष्य पर परमात्मा अपनी कृपा करता है, वह मनुष्य (अपनी) जीभ से परमात्मा का नाम उच्चरित करता है ।। १ ।। परमात्मा को भुलाने से (दुनिया का) संत्रास, भय दबाव डालता है, (पर प्रभु का) नाम-स्मरण करने से हरेक दुबिधा दूर हो जाती है, हरेक प्रकार का भय भाग जाता है ।। १ ।। रहाउ ।। (प्रभु-कृपा से जो मनुष्य) प्रभु की गुण-स्तुति सुनता है, प्रभु की गुणस्तुति गाता है, दुःख उस मनुष्य के निकट नहीं आता ।। २ ।। (हे भाई !) परमात्मा की सेवा करते हुए मनुष्य सुन्दर जीवन वाला बन जाता है, (क्योंकि) उस मनुष्य को माया (तृष्णा की) अग्नि स्पर्श नहीं कर सकती ।। ३ ।। हे नानक ! दया के घर प्रभु का नाम जिस मनुष्य के मन, मुँह में बस जाता है, उस मनुष्य ने (अपने मन से माया-मोह के) दूसरे सब जंजाल समाप्त कर दिए हैं ।। ४ ।। ५२ ।। १२१ ।।

।। गउड़ी महला ५ ।। छाडि सिआनप बहु चतुराई । गुर पूरे की टेक टिकाई ।। १ ।। दुख बिनसे सुख हरिगुण

गाइ। गुरु पूरा भेटिआ लिव लाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हरि का नामु दीओ गुरि मंत्रु। मिटे विसूरे उतरी चिंत ॥ २ ॥ अनद भए गुर मिलत क्रिपाल। करि किरपा काटे जम जाल ॥ ३ ॥ कहु नानक गुरु पूरा पाइआ। ता ते बहुरि न बिआपै माइआ ॥ ४ ॥ ५३ ॥ १२२ ॥

(हे भाई ! तू भी) पूर्णगुरु का आसरा ले। वह ख़्याल छोड़ दे कि तू बड़ा चतुर तथा बुद्धिमान् है ॥ १ ॥ (जिस मनुष्य को) पूर्णगुरु मिल जाता है (और गुरु की कृपा से जो प्रभु-चरणों में) सुरति जोड़ता है, परमात्मा के गुण गाकर उसे सुख ही सुख मिलते हैं और उसके सारे दुःख दूर हो जाते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे भाई !) गुरु ने (जिस मनुष्य को) परमात्मा का नाम-मन्त्र दिया है (उस मन्त्र के प्रभाव से) सारे दुःख मिट गए हैं और उसकी चिन्ता उतर गई है ॥ २ ॥ दया के स्रोत गुरु को मिलकर आत्मिक ख़ुशियाँ पैदा हो जाती हैं, गुरु, कृपा करके (मनुष्य के भीतर से) आत्मिक मृत्यु लानेवाली माया-मोह के सब बन्धन काट देता है ॥ ३ ॥ हे नानक ! कह— (जिस मनुष्य को) पूर्णगुरु मिल जाता है, उस गुरु के प्रभाव से माया दबाव नहीं डाल सकती ॥ ४ ॥ ५३ ॥ १२२ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ राखि लीआ गुरि पूरै आपि। मनमुख कउ लागो संतापु ॥ १ ॥ गुरू गुरू जपि मीत हमारे। मुख ऊजल होवहि दरबारे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गुर के चरण हिरदै वसाइ। दुख दुसमन तेरी हतै बलाइ ॥ २ ॥ गुर का सबदु तेरै संगि सहाई। दइआल भए सगले जीअ भाई ॥ ३ ॥ गुरि पूरै जब किरपा करी। भनति नानक मेरी पूरी परी ॥ ४ ॥ ५४ ॥ १२३ ॥

(हे भाई ! जो मनुष्य गुरु के अनुसार रहता है) पूर्णगुरु ने आप उसे (सदा कामादिक वैरियों से) बचा लिया है लेकिन स्वेच्छाचारी मनुष्य को (इनका) दुःख लगता ही रहता है ॥ १ ॥ हे मेरे मित्रो ! सदा गुरु को स्मरण करो (गुरु का उपदेश याद रखने से) तुम्हारे मुँह परमात्मा के दरबार में उज्ज्वल होंगे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे भाई ! तू अपने) हृदय में गुरु के चरण बसाए रख (गुरु तेरे सारे) दुख-क्लेश नष्ट करेगा। कामादिक वैरियों को समाप्त कर देगा (तुझ पर दबाव डालनेवाली) माया चुड़ैल को मार देगा ॥ २ ॥ हे भाई ! गुरु का शब्द ही तेरे साथ (सदा निभनेवाला साथी) है, (गुरु का शब्द हृदय में पिरोकर रखने से) सारे लोग

दयालु हो जाते हैं ॥ ३ ॥ नानक कहता है— जब पूर्णगुरु ने (मुझ पर) कृपा की तो मेरी जीवन-साधना सफल हो गई ॥ ४ ॥ ५४ ॥ १२३ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ अनिक रसा खाए जैसे ढोर । मोह की जेवरी बाधिओ चोर ॥ १ ॥ मिरतक देह साधसंग बिहूना । आवत जात जोनी दुख खीना ॥ १ ॥ रहाउ ॥ अनिक बसत्र सुंदर पहिराइआ । जिउ डरना खेत माहि डराइआ ॥ २ ॥ सगल सरीर आवत सभ काम । निहफल मानुखु जपै नही नाम ॥ ३ ॥ कहु नानक जा कउ भए दइआला । साधसंगि मिलि भजहि गुोपाला ॥ ४ ॥ ५५ ॥ १२४ ॥

जैसे पशु अनेकों स्वादिष्ट पदार्थ खाते हैं और चोरों की तरह (माया के) मोह की रस्सी से और अधिक जकड़े जाते हैं ॥ १ ॥ हे भाई ! जो मनुष्य सत्संगति से खाली रहता है, उसका शरीर मुर्दा है, वह मनुष्य जन्म-मरण के चक्र में पड़ा रहता है, योनिग्रों के दुखों के कारण उसका आत्मिक जीवन अधिकाधिक कमज़ोर होता जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (आत्मिक रूप से मृत्यु को प्राप्त मनुष्य) अनेक सुन्दर कपड़े पहनता है (लेकिन गरीबों के लिए वह ऐसे होता है) जैसे फसल में (जानवरों को) डराने के लिए बनावटी रक्षक खड़ा किया होता है ॥ २ ॥ (दूसरे पशुओं आदि के) शरीर काम आ जाते हैं। यदि मनुष्य परमात्मा का नाम नहीं जपता, तो इसका जगत् में आना व्यर्थ ही जाता है ॥ ३ ॥ हे नानक ! कह— जिन मनुष्यों पर परमात्मा दयालु होता है वे सत्संगति में मिलकर जगत् के पोषक प्रभु का भजन करते हैं ॥ ४ ॥ ५५ ॥ १२४ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ कलि कलेस गुर सबदि निवारे । आवण जाण रहे सुख सारे ॥ १ ॥ भै बिनसे निरभउ हरि धिआइआ । साध संगि हरि के गुण गाइआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ चरन कवल रिद अंतरि धारे । अगनि सागर गुरि पारि उतारे ॥ २ ॥ बूडत जात पूरै गुरि काढे । जनम जनम के टूटे गाढे ॥ ३ ॥ कहु नानक तिसु गुर बलिहारी । जिसु भेटत गति भई हमारी ॥ ४ ॥ ५६ ॥ १२५ ॥

(सत्संगति में पहुँचे हुए जिन मनुष्यों के) मानसिक झगड़े और क्लेश गुरु के शब्द ने दूर कर दिए, उनके जन्म-मरण के चक्र समाप्त हो गए, उन्हें सारे सुख प्राप्त हो गए ॥ १ ॥ (हे भाई ! जिन मनुष्यों ने) सत्संगति में जाकर परमात्मा की गुणस्तुति के गीत गाए हैं, जिन्होंने निर्भय

हरि का ध्यान (हृदय में) किया है, उनके (दुनिया वाले सारे डर दूर हो गए हैं) ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (जिन मनुष्यों ने) परमात्मा के सुन्दर चरण अपने हृदय में बसा लिए, गुरु ने उन्हें तृष्णा-अग्नि के समुद्र से पार कर दिया ॥ २ ॥ (विकारों के समुद्र में) डूबे मनुष्यों को पूर्णगुरु ने (बाहर) निकाल लिया, उन्हें, अनेक जन्मों से बिछुड़े हुए मनुष्यों को गुरु ने (परमात्मा के साथ) मिला दिया ॥ ३ ॥ हे नानक ! कह— मैं उस गुरु पर बलिहारी जाता हूँ जिसे मिलने से हम (जीवों की) ऊँची आत्मिक अवस्था बन जाती है ॥ ४ ॥ ५६ ॥ १२५ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ साध संगि ता की सरनी परहु । मनु तनु अपना आगै धरहु ॥ १ ॥ अंम्रित नामु पीवहु मेरे भाई । सिमरि सिमरि सभ तपति बुझाई ॥ १ ॥ रहाउ ॥ तजि अभिमानु जनम मरणु निवारहु । हरि के दास के चरण नमसकारहु ॥ २ ॥ सासि सासि प्रभु मनहि समाले । सो धनु संचहु जो चालै नाले ॥ ३ ॥ तिसहि परापति जिसु मसतकि भागु । कहु नानक ता की चरणी लागु ॥ ४ ॥ ५७ ॥ १२६ ॥

(हे मेरे भाई !) सत्संगति में रहकर उस परमात्मा का आसरा ले । अपना तन, मन उस परमात्मा के हवाले कर दे ॥ १ ॥ हे मेरे भाई ! परमात्मा का आत्मिक जीवन देनेवाला नाम-जल पी (जिसने नाम-स्मरण किया है) उसने स्मरण कर (अपने भीतर से विकारों की) सारी जलन बुझा ली है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे मेरे भाई !) परमात्मा के सेवक के चरणों पर अपना सिर रख दे (इस प्रकार अपने भीतर से) अहंकार दूर कर जन्म-मरण का चक्र समाप्त कर ले ॥ २ ॥ (हे मेरे भाई !) हरेक साँस के साथ परमात्मा को अपने भीतर सँभाल कर रख । वह (नाम-) धन एकत्रित कर जो तेरा साथ करे ॥ ३ ॥ (यह नाम-धन) उस मनुष्य को ही मिलता है जिसके मस्तक पर सौभाग्य जागे । हे नानक ! कह— (हे मेरे भाई !) तू उस मनुष्य के चरण स्पर्श कर (जिसे नाम-धन मिला है) ॥ ४ ॥ ५७ ॥ १२६ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ सूके हरे कीए खिन माहे । अंम्रित द्रिसटि संचि जीवाए ॥ १ ॥ काटे कसट पूरे गुरदेव । सेवक कउ दीनी अपुनी सेव ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मिटि गई चिंत पुनी मन आसा । करी दइआ सतिगुरि गुणतासा ॥ २ ॥ दुख नाठे सुख आइ समाए । ढील न परी जा गुरि

फुरमाए ॥ ३ ॥ इछ पुनी पूरे गुर मिले । नानक ते जन सुफल फले ॥ ४ ॥ ५८ ॥ १२७ ॥

आत्मिक जीवन देनेवाली दृष्टि से गुरु नाम-धन सींच कर जिन्हें आत्मिक जीवन देता है, उस आत्मिक जीवन के रस से शून्य हो चुके मनुष्यों को गुरु क्षण भर में हरे (अर्थात् आत्मिक जीवन वाले) बना देता है ॥ १ ॥ जिस सेवक को (परमात्मा ने) अपनी सेवा-भक्ति की देन दी, पूर्णगुरु ने उसके सारे कष्ट काट दिए ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गुणों के भण्डार सतिगुरु ने जिस मनुष्य पर कृपा की, उसकी (हरेक किस्म की) चिन्ता मिट गई, उसके मन की (हरेक) आशा पूर्ण हो गई ॥ २ ॥ जब गुरु ने जिस मनुष्य पर कृपालु होने का हुक्म दिया, तनिक भी ढील न हुई, उसके सारे दुःख दूर हो गए, उसके भीतर सुख आकर टिक गए ॥ ३ ॥ हे मन ! जो मनुष्य पूर्णगुरु को मिले, उनकी (हरेक किस्म की) इच्छा पूर्ण हो गई, उन्हें उच्च आत्मिक गुणों के सुन्दर फल मिल गए ॥ ४ ॥ ५८ ॥ १२७ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ ताप गए पाई प्रभि सांति । सीतल भए कीनी प्रभ दाति ॥ १ ॥ प्रभ किरपा ते भए सुहेले । जनम जनम के बिछुरे मेले ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सिमरत सिमरत प्रभ का नाउ । सगल रोग का बिनसिआ थाउ ॥ २ ॥ सहजि सुभाइ बोलै हरि बाणी । आठ पहर प्रभ सिमरहु प्राणी ॥ ३ ॥ दूखु दरदु जमु नेड़ि न आवै । कहु नानक जो हरिगुन गावै ॥ ४ ॥ ५९ ॥ १२८ ॥

जिन्हें परमात्मा अपने नाम की देन देता है, वह शान्त मन वाले बन जाते हैं । परमात्मा ने उनके भीतर ऐसी आत्मिक शान्ति दी है कि उनके सारे ताप-क्लेश दूर हो जाते हैं ॥ १ ॥ (जिन मनुष्यों को परमात्मा अपने नाम की देन देता है, वे मनुष्य) परमात्मा की कृपा से सुखी हो जाते हैं, उन अनेक जन्मों के बिछुड़े हुए मनुष्यों को परमात्मा (अपने साथ) मिला लेता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (जिन्हें परमात्मा नाम की देन देता है) परमात्मा का नाम-स्मरण कर (उनके भीतर से) सारे रोगों का निशान ही मिट जाता है ॥ २ ॥ वह आत्मिक स्थिरता में टिककर प्रेम में लीन होकर परमात्मा की गुणस्तुति की वाणी उच्चरित करता है । हे प्राणी ! आठों प्रहर प्रभु का नाम-स्मरण करता रह ॥ ३ ॥ हे नानक ! कह— (परमात्मा की कृपा से) जो मनुष्य परमात्मा के गुण गाता है, कोई दुख-दर्द उसके निकट नहीं आता, उसे मौत का भय नहीं छूता ॥ ४ ॥ ५९ ॥ १२८ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ भले दिनस भले संजोग । जितु भेटे पारब्रहम निरजोग ॥ १ ॥ ओह बेला कउ हउ बलि जाउ । जितु मेरा मनु जपै हरि नाउ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सफल मूरतु सफल ओह घरी । जितु रसना उचरै हरि हरी ॥ २ ॥ सफलु ओहु माथा संत नमसकारसि । चरण पुनीत चलहि हरि मारगि ॥ ३ ॥ कहु नानक भला मेरा करम । जितु भेटे साधू के चरन ॥ ४ ॥ ६० ॥ १२९ ॥

(हे भाई !) वे दिन सुहावने होते हैं, वे मिलन के अवसर सुखदायक होते हैं जब निर्लिप्त प्रभु मिल जाते हैं ॥ १ ॥ मैं उस क्षण पर कुर्बान जाता हूँ जिस वक्त मेरा मन परमात्मा का नाम जपता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे माई !) मनुष्य के लिए वही मुहूर्त भाग्यशाली होता है, वही घड़ी शुभलक्षणों वाली होती है जब उसकी जीभ परमात्मा का नाम लेती है ॥ २ ॥ (हे भाई !) वह माथा भाग्यों वाला है जो गुरु-संत के चरणों पर झुकता है। वे पैर पवित्र हो जाते हैं जो परमात्मा के मिलाप के रास्ते पर चलते हैं ॥ ३ ॥ हे नानक ! कह— मेरे भाग्य (जाग पड़ते हैं) जब मैं गुरु के चरण छूता हूँ ॥ ४ ॥ ६० ॥ १२९ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ गुर का सबदु राखु मन माहि । नामु सिमरि चिंता सभ जाहि ॥ १ ॥ बिनु भगवंत नाही अन कोइ । मारै राखै एको सोइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गुर के चरण रिदै उरि धारि । अगनि सागरु जपि उतरहि पारि ॥ २ ॥ गुर मूरति सिउ लाइ धिआनु । ईहा ऊहा पावहि मानु ॥ ३ ॥ सगल तिआगि गुर सरणी आइआ । मिटे अंदेसे नानक सुखु पाइआ ॥ ४ ॥ ६१ ॥ १३० ॥

(हे भाई ! यदि उस भगवान का आसरा मन में पक्का करना है, तो) गुरु का शब्द मन में टिकाए रख । (भगवान) का नाम-स्मरण कर, तेरी सारी फ़िक्रें दूर हो जाएँगी ॥ १ ॥ (हे भाई !) भगवान के अतिरिक्त जीव का कोई आसरा नहीं है । वह भगवान ही (जीवों को) मारता है, वही जीवों को पालता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे भाई ! यदि परमात्मा का आसरा लेना है तो) अपने हृदय में गुरु के चरण बसा । (गुरु के बतलाए मार्ग पर चलकर परमात्मा का नाम) जपकर तू (तृष्णा की) आग के समुद्र से पार उतर जाएगा ॥ २ ॥ (हे भाई ! गुरु का शब्द ही गुरु की मूर्ति है) गुरु के शब्द से सुरति जोड़, तू इस लोक तथा परलोक में

आदर प्राप्त करेगा ॥ ३ ॥ हे नानक ! जो मनुष्य दूसरे सारे आसरे छोड़कर गुरु की शरण आता है, उसकी सारी चिन्ताएँ मिट जाती हैं, वह आत्मिक आनन्द प्राप्त करता है ॥ ४ ॥ ६१ ॥ १३० ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ जिसु सिमरत दूखु सभु जाइ। नामु रतनु वसै मनि आइ ॥ १ ॥ जपि मन मेरे गोविंद की बाणी। साधू जन रामु रसन वखाणी ॥ १ ॥ रहाउ ॥ इकसु बिनु नाही दूजा कोइ। जा की द्रिसटि सदा सुखु होइ ॥ २ ॥ साजनु मीतु सखा करि एकु। हरि हरि अखर मन महि लेखु ॥ ३ ॥ रवि रहिआ सरबत सुआमी। गुण गावै नानकु अंतरजामी ॥ ४ ॥ ६२ ॥ १३१ ॥

(हे भाई ! उस गोविंद की वाणी जप) जिसका स्मरण करने से हरेक किस्म का दुख दूर हो जाता है (और, वाणी के प्रभाव से) परमात्मा का अमूल्य नाम मन में आ बसता है ॥ १ ॥ हे मेरे मन ! परमात्मा की गुणस्तुति की वाणी का उच्चारण कर। (जिसके द्वारा) संतजन अपनी जीभ से परमात्मा के गुण गाते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे भाई ! उस गोविंद की गुणस्तुति करता रह) जिसकी कृपादृष्टि से आत्मिक आनन्द मिलता है, और, जिसके बराबर का कोई नहीं है ॥ २ ॥ एक गोविंद को अपना साथी बना और उस हरि की गुणस्तुति के अक्षर अपने मन में लिख ले ॥ ३ ॥ (सारे जगत् का वह) स्वामी हर स्थान पर व्यापक है और हरेक के दिल की जानता है, नानक (भी) उस अन्तर्यामी स्वामी के गुण गाता है ॥ ४ ॥ ६२ ॥ १३१ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ भै महि रचिओ सभु संसारा। तिसु भउ नाही जिसु नामु अधारा ॥ १ ॥ भउ न विआपै तेरी सरणा। जो तुधु भावै सोई करणा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सोग हरख महि आवण जाणा। तिनि सुखु पाइआ जो प्रभ भाणा ॥ २ ॥ अगनि सागरु महा विआपै माइआ। से सीतल जिन सतिगुरु पाइआ ॥ ३ ॥ राखि लेइ प्रभु राखनहारा। कहु नानक किआ जंत विचारा ॥ ४ ॥ ६३ ॥ १३२ ॥

(हे भाई !) सारा संसार (किसी न किसी) भय के नीचे दबा रहता है, केवल उस मनुष्य पर भय का दबाव नहीं पड़ सकता जिसे (परमात्मा का) नाम (जीवन के लिए) सहारा मिला हुआ है ॥ १ ॥ हे प्रभु ! तेरी शरण लेने से कोई भय अपना दबाव नहीं डाल सकता।

(क्योंकि फिर यह निश्चय बन जाता है कि) वही काम किया जा सकता है जो तुझे अच्छा लगता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ दुख-सुख मनाने में (सांसारिक जीव के लिए) भय बना रहता है। केवल उस मनुष्य ने आत्मिक आनन्द प्राप्त किया है जो प्रभु को प्यारा लगता है ॥ २ ॥ (हे भाई ! यह संसार तृष्णा की) आग का समुद्र है (इसमें जीवों पर) माया अपना बहुत दबाव डाले रखती है। जिन सौभाग्यशालियों को सतिगुरु मिल जाता है, वे इस (अग्नि-सागर में विचरते हुए भी) शान्त रहते हैं ॥ ३ ॥ (लेकिन) हे नानक ! (भय से बचने के लिए) जीव बेचारों की क्या सामर्थ्य है ? बचाने की शक्ति रखनेवाला परमात्मा आप ही बचाता है ॥४॥६३॥१३२॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ तुमरी क्रिपा ते जपीऐ नाउ। तुमरी क्रिपा ते दरगह थाउ ॥ १ ॥ तुझ बिनु पारब्रहम नही कोइ। तुमरी क्रिपा ते सदा सुखु होइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ तुम मनि वसे तउ दूखु न लागै। तुमरी क्रिपा ते भ्रमु भउ भागै ॥ २ ॥ पारब्रहम अपरंपर सुआमी। सगल घटा के अंतरजामी ॥ ३ ॥ करउ अरदासि अपने सतिगुर पासि। नानक नामु मिलै सचु रासि ॥ ४ ॥ ६४ ॥ १३३ ॥

(हे पारब्रह्म प्रभु !) तेरी कृपा से ही (तेरा) नाम जपा जा सकता है। तेरी कृपा से ही तेरे दरबार में (जीव को) प्रतिष्ठा मिल सकती है ॥१॥ हे पारब्रह्म प्रभु ! तेरे बिना (जीवों को दूसरा) कोई (आसरा) नहीं है। तेरी कृपा से ही (जीवों को) सदा के लिए आत्मिक आनन्द मिल सकता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे प्रभु ! यदि तू जीव के मन में आ बसे तो जीव को कोई दुःख नहीं छू सकता, तेरी कृपा से जीव की दुबिधा दूर हो जाती है, जीव का भय दूर हो जाता है ॥ २ ॥ हे पारब्रह्म प्रभु ! हे जगत् के मालिक प्रभु ! हे सबके भीतर की जाननेवाले प्रभु ! ॥ ३ ॥ (यदि तेरी कृपा होवे तो ही) मैं अपने गुरु के समक्ष यह प्रार्थना कर सकता हूँ कि मुझ नानक को प्रभु का नाम मिले, (यही) सदा रहनेवाला धन है ॥ ४ ॥ ६४ ॥ १३३ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ कण बिना जैसे थोथर तुखा। नाम बिहून सूने से मुखा ॥ १ ॥ हरि हरि नामु जपहु नित प्राणी। नाम बिहून ध्रिगु देह बिगानी ॥ १ ॥ रहाउ ॥ नाम बिना नाही मुखि भागु। भरत बिहून कहा सोहागु ॥ २ ॥ नामु बिसारि लगै अन सुआइ। ताकी आस न पूजै काइ ॥ ३ ॥

करि किरपा प्रभ अपनी दाति। नानक नामु जपै दिन राति ॥ ४ ॥ ६५ ॥ १३४ ॥

(हे भाई!) जैसे दानों के बिना अनाज-भण्डार बेकार हैं, उसी तरह ईश्वर का नाम न लेनेवाले मुँह खाली हैं ॥ १ ॥ हे प्राणी! सदा परमात्मा का नाम-स्मरण करते रहो। परमात्मा के नाम के बिना यह शरीर, आखिर जो पराया हो जाता है, धिक्कार-योग्य (कहा जाता है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे भाई!) परमात्मा का नाम जपे बिना किसी माथे पर भाग्य नहीं खुलता। पति के बिना (स्त्री का) सुहाग नहीं हो सकता ॥ २ ॥ जो मनुष्य परमात्मा का नाम भुलाकर दूसरे स्वादों में लगता है, उसकी कोई आशा पूरी नहीं होती ॥ ३ ॥ हे नानक! (कह—) हे प्रभु! कृपा करके तू जिस मनुष्य को अपने नाम की देन देता है वही दिन-रात तेरा नाम जपता है ॥ ४ ॥ ६५ ॥ १३४ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ तूं समरथु तूं है मेरा सुआमी। सभु किछु तुम ते तूं अंतरजामी ॥ १ ॥ पारब्रहम पूरन जन ओट। तेरी सरणि उधरहि जन कोटि ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जेते जीअ तेते सभि तेरे। तुमरी क्रिपा ते सूख घनेरे ॥ २ ॥ जो किछु वरतै सभ तेरा भाणा। हुकमु बूझै सो सचि समाणा ॥ ३ ॥ करि किरपा दीजै प्रभ दानु। नानक सिमरै नामु निधानु ॥ ४ ॥ ६६ ॥ १३५ ॥

(हे पारब्रह्म!) तू सब शक्तियों का स्वामी है, तू ही मेरा मालिक है। तू सबके दिल की जाननेवाला है। जो कुछ जगत् में हो रहा है, तेरी प्रेरणा से ही हो रहा है ॥ १ ॥ हे सर्वव्यापक पारब्रह्म प्रभु! तेरे सेवकों को तेरा ही आसरा होता है। करोड़ों ही मनुष्य तेरी शरण लेकर बच जाते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जगत् में जितने भी जीव हैं, सब तेरे पैदा किए हुए हैं। तेरी कृपा से ही जीवों को अनेक सुख मिल रहे हैं ॥ २ ॥ (हे पारब्रह्म! संसार में) जो कुछ घटित हो रहा है, सब वही होता है जो तुझे अच्छा लगता है। जो मनुष्य तेरी इच्छा को समझ लेता है, वह तेरे सदा स्थिर रहनेवाले नाम में लीन रहता है ॥ ३ ॥ हे नानक! (कह—) हे प्रभु! कृपा करके नाम की देन दे ताकि तेरा दास नानक सदा तेरा नाम-स्मरण करता रहे (नाम ही तेरे लिए सब सुखों का) खज़ाना है ॥ ४ ॥ ६६ ॥ १३५ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ ता का दरसु पाईऐ वडभागी। जा की रामनामि लिव लागी ॥ १ ॥ जा कै हरि वसिआ

मन माही। ता कउ दुखु सुपनै भी नाही ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सरब निधान राखे जन माहि। ता कै संगि किलविख दुख जाहि ॥ २ ॥ जन की महिमा कथी न जाइ। पारब्रहमु जनु रहिआ समाइ ॥ ३ ॥ करि किरपा प्रभ बिनउ सुनीजै। दास की धूरि नानक कउ दीजै ॥ ४ ॥ ६७ ॥ १३६ ॥

(हे भाई!) जिस मनुष्य की लगन परमात्मा के नाम में लगी रहती है, उसका दर्शन बड़े भाग्य से मिलता है ॥ १ ॥ जिस मनुष्य के मन में सदा परमात्मा का नाम बसा रहता है उस मनुष्य को स्वप्न में भी दुःख नहीं छू सकता ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे भाई! नाम की लगन वाले) सेवक (के हृदय) में (परमात्मा) सारे गुणों का ख़ज़ाना दे देता है। ऐसे सेवक की संगति में रहने से पाप तथा दुःख दूर हो जाते हैं ॥ २ ॥ (हे भाई! ऐसे) सेवक की आत्मिक उच्चता व्यक्त नहीं की जा सकती। वह सेवक उस पारब्रह्म का रूप बन जाता है जो सब जीवों में व्यापक है ॥ ३ ॥ (हे नानक! कह—) हे प्रभु! मेरी प्रार्थना सुन, कृपा करके मुझ नानक को अपने ऐसे सेवक के चरणों की धूलि दे ॥ ४ ॥ ६७ ॥ १३६ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ हरि सिमरत तेरी जाइ बलाइ। सरब कलिआण वसै मनि आइ ॥ १ ॥ भजु मन मेरे एको नाम। जीअ तेरे कै आवै काम ॥ १ ॥ रहाउ ॥ रैणि दिनसु गुण गाउ अनंता। गुर पूरे का निरमल मंता ॥ २ ॥ छोड उपाव एक टेक राखु। महा पदारथु अंम्रित रसु चाखु ॥ ३ ॥ बिखम सागरु तेई जन तरे। नानक जा कउ नदरि करे ॥ ४ ॥ ६८ ॥ १३७ ॥

(हे भाई!) परमात्मा का नाम-स्मरण करते हुए तेरी शत्रु (माया डायन) तुझसे दूर हो जायगी। (यदि परमात्मा का नाम तेरे) मन में आ बसे तो (तेरे भीतर) सारे सुख (आ जाएंगे) ॥ १ ॥ हे मेरे मन! एक परमात्मा का नाम ही स्मरण करता रह। यह नाम ही तेरी आत्मा के काम आयगा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे भाई!) पूर्णगुरु का पवित्र उपदेश ले और दिन-रात्रि अनन्त परमात्मा के गुण गाया कर ॥ २ ॥ (संसार-समुद्र से पार होने के लिए) दूसरे सब सहारे छोड़ और एक परमात्मा (के नाम) का आसरा रख। आत्मिक जीवन देनेवाला नाम-रस चख, यही सब से श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥ हे नानक! वही मनुष्य विषम (संसार) समुद्र से (आत्मिक पूंजी सहित) पार उतरते हैं जिन पर (परमात्मा आप कृपा की) दृष्टि करता है ॥ ४ ॥ ६८ ॥ १३७ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ हिरदै चरन कमल प्रभ धारे । पूरे सतिगुर मिलि निसतारे ॥ १ ॥ गोविंद गुण गावहु मेरे भाई । मिलि साधू हरि नामु धिआई ॥ १ ॥ रहाउ ॥ दुलभ देह होई परवानु । सतिगुर ते पाइआ नाम नीसानु ॥ २ ॥ हरि सिमरत पूरन पदु पाइआ । साधसंगि भै भरम मिटाइआ ॥ ३ ॥ जत कत देखउ तत रहिआ समाइ । नानक दास हरि की सरणाइ ॥ ४ ॥ ६९ ॥ १३८ ॥

(हे मेरे भाई !) जो मनुष्य परमात्मा के सुन्दर चरण अपने हृदय में टिकाते हैं, पूर्ण सतिगुरु को मिलकर वे संसार-समुद्र से पार उतर जाते हैं ॥ १ ॥ हे मेरे भाई ! गोबिन्द की गुणस्तुति के गीत गाते रहो । गुरु को मिलकर परमात्मा का नाम-स्मरण करो ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे मेरे भाई !) जिन्होंने (इस जीवन-यात्रा में) सतिगुरु से परमात्मा के नाम की चुंगी प्राप्त कर ली है, उनका मनुष्य शरीर—बड़ी कठिनता से मिला हुआ मनुष्य-शरीर स्वीकृत हो जाता है ॥ २ ॥ (हे मेरे भाई !) परमात्मा का नाम-स्मरण करते हुए वह आत्मिक अवस्था प्राप्त कर लेता है, जहाँ किसी दोष की सम्भावना नहीं रह जाती । सत्संगति में रहकर सारे भय, सारी फ़िक्रें मिट जाती हैं ॥ ३ ॥ हे नानक ! गुरु की शरण के प्रभाव से, जिधर भी देखता हूँ, उधर ही परमात्मा व्याप्त दिखता है । (हे भाई ! प्रभु के) सेवक प्रभु की शरण में ही टिके रहते हैं ॥ ४ ॥ ६९ ॥ १३८ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ गुर जी के दरसन कउ बलि जाउ । जपि जपि जीवा सतिगुर नाउ ॥ १ ॥ पारब्रहम पूरन गुरदेव । करि किरपा लागउ तेरी सेव ॥ १ ॥ रहाउ ॥ चरन कमल हिरदै उरधारी । मन तन धन गुर प्रान अधारी ॥ २ ॥ सफल जनमु होवै परवाणु । गुरु पारब्रहमु निकटि करि जाणु ॥ ३ ॥ संत धूरि पाईऐ वडभागी । नानक गुर भेटत हरि सिउ लिवलागी ॥ ४ ॥ ७० ॥ १३९ ॥

(हे भाई !) मैं सतिगुरु के दर्शन पर बलिहारी जाता हूँ । सतिगुरु का नाम-स्मरण कर मेरे भीतर ऊँचा आत्मिक जीवन पैदा होता है ॥ १ ॥ हे पूर्ण पारब्रह्म ! कृपा कर, मैं तेरी सेवा-भक्ति में लगा रहूँ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ इसलिए, हे भाई ! गुरु के सुन्दर चरण मैं अपने हृदय में टिकाता हूँ । गुरु के चरण मेरे मन, तन, धन और आत्मा का सहारा हैं ॥ २ ॥ (हे भाई !) गुरु को, पारब्रह्म प्रभु को निकट बसता समझ । (इस तरह तेरा मनुष्य-) जन्म सफल हो जायगा, तू (परमात्मा के दरबार में) स्वीकृत

हो जायगा ॥ ३ ॥ हे नानक ! गुरु संत के चरणों की धूल बड़े भाग्यों से मिलती है। गुरु को मिलकर परमात्मा (के चरणों) के साथ लगन लग जाती है ॥ ४ ॥ ७० ॥ १३९ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ करै दुहकरम दिखावै होरु । राम की दरगह बाधा चोरु ॥ १ ॥ रामु रमै सोई रामाणा । जलि थलि महीअलि एकु समाणा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ अंतरि बिखु मुखि अंम्रितु सुणावै । जमपुरि बाधा चोटा खावै ॥ २ ॥ अनिक पड़दे महि कमावै विकार । खिन महि प्रगट होहि संसार ॥ ३ ॥ अंतरि साचि नामि रसि राता । नानक तिसु किरपालु बिधाता ॥ ४ ॥ ७१ ॥ १४० ॥

(जो प्रभु-स्मरण में लीन नहीं होता, वह भीतर छिपकर) नीच कर्म करता है (बाहर लोगों को) दूसरा रूप दिखाता है (जैसे चोर चोरी करते हुए पकड़ा जाता है, वैसे) वह परमात्मा के दरबार में चोर की तरह बाँधा जाता है ॥ १ ॥ (हे भाई !) वही मनुष्य राम का (सेवक माना जाता) है, जो राम को स्मरण करता है। (उस मनुष्य को निश्चय हो जाता है कि) राम जल, थल, पृथ्वी, आकाश में सर्वत्र व्यापक है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ स्मरणहीन मनुष्य मुँह से (लोगों को) आत्मिक जीवन देनेवाला उपदेश सुनाता है (पर उसके) भीतर (विकारों का) जहर है (जिसने उसे भीतरी रूप से मार दिया है, ऐसा मनुष्य) यमलोक में बँधा हुआ चोटें खाता है ॥ २ ॥ (स्मरणहीन मनुष्य) अनेक परदों के पीछे विकार कर्म करता है, पर (उसके कुकर्म) जगत् के भीतर एक क्षण में ही प्रकट हो जाते हैं ॥ ३ ॥ हे नानक ! जो मनुष्य अपने भीतर सदा स्थिर नाम में जुड़ा रहता है, परमात्मा के प्रेम-रस में भीगा रहता है, सृजनहार प्रभु उस पर दयालु होता है ॥ ४ ॥ ७१ ॥ १४० ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ राम रंगु कदे उतरि न जाइ । गुरु पूरा जिसु देइ बुझाइ ॥ १ ॥ हरि रंगि राता सो मनु साचा । लाल रंग पूरन पुरखु बिधाता ॥ १ ॥ रहाउ ॥ संतह संगि बैसि गुन गाइ । ताका रंगु न उतरै जाइ ॥ २ ॥ बिनु हरि सिमरन सुखु नही पाइआ । आन रंग फीके सभ माइआ ॥ ३ ॥ गुरि रंगे से भए निहाल । कहु नानक गुर भए है दइआल ॥ ४ ॥ ७२ ॥ १४१ ॥

परमात्मा के प्रेम का रंग (यदि किसी भाग्यशाली के मन पर चढ़

जाए तो फिर) कभी (उस मन से उतरता नहीं,) दूर नहीं होता ॥ १ ॥ जो मन परमात्मा के प्रेम-रंग में रँगा जाता है, उसपर (माया का) कोई दूसरा रंग अपना असर नहीं डाल सकता, वह (मानो) गहरे लाल रंग वाला हो जाता है, वह सर्वव्यापक सृजनहार का रूप हो जाता है ॥ १ ॥ रहाउ॥ (हे भाई ! जो मनुष्य) संतजनों की संगति में बैठकर परमात्मा के गुण गाता है (उसपर परमात्मा के प्रेम का रंग चढ़ जाता है, और) उसका रंग कभी नहीं उतरता, कभी नहीं उतरता ॥ २ ॥ (हे भाई !) परमात्मा का नाम-स्मरण के बिना (कभी किसी ने) आत्मिक आनन्द प्राप्त नहीं किया। (हे भाई !) माया के दूसरे सब रंग उतर जाते हैं ॥ ३ ॥ हे नानक ! कह— जिन पर सतिगुरु दयालु होते हैं, जिन्हें गुरु ने परमात्मा के प्रेम-रंग में रंग दिया है, वे सदा प्रसन्न रहते हैं ॥ ४ ॥ ७२ ॥ १४१ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ सिमरत सुआमी किलविख नासे। सूख सहज आनंद निवासे ॥ १ ॥ राम जना कउ राम भरोसा। नामु जपत सभु मिटिओ अंदेसा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ साध संगि कछु भउ न भराती। गुण गोपाल गाईअहि दिनु राती ॥ २ ॥ करि किरपा प्रभ बंधन छोट। चरण कमल की दीनी ओट ॥ ३ ॥ कहु नानक मनि भई परतीति। निरमल जसु पीवहि जन नीति ॥ ४ ॥ ७३ ॥ १४२ ॥

(हे भाई !) मालिक प्रभु का नाम-स्मरण करते हुए (परमात्मा के सेवकों के) सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, (उनके भीतर) आत्मिक स्थिरता के सुखों का निवास बना रहता है ॥ १ ॥ परमात्मा के सेवकों को (हर समय) परमात्मा का भरोसा बना रहता है, (इसलिए) परमात्मा का नाम जपते हुए (उनके भीतर से) हरेक फ़िक्र मिटी रहती है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे भाई !) सत्संगति में रहने से (परमात्मा के सेवकों को) कोई भय नहीं छू सकता, कोई दुबिधा नहीं छू सकती (क्योंकि परमात्मा के सेवकों के हृदय में) दिन-रात गोपाल प्रभु के गुण गाए जाते हैं ॥ २ ॥ (हे भाई !) माया के बन्धनों से छुटकारा करके प्रभुजी ने कृपा करके (अपने सेवकों को) सुन्दर चरणों का सहारा दिया है (देते हैं) ॥ ३ ॥ (इसलिए) हे नानक ! कह— (परमात्मा के सेवकों के) मन में (परमात्मा की ओर का) निश्चय बना रहता है और परमात्मा के सेवक सदा (जीवन को) पवित्र करनेवाला गुणस्तुति का अमृत पीते हैं ॥ ४ ॥ ७३ ॥ १४२ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ हरि चरणी जा का मनु लागा। दूखु दरदु भ्रमु ताका भागा ॥ १ ॥ हरि धन को वापारी पूरा।

जिसहि निवाजे सो जनु सूरा ।। १ ।। रहाउ ।। जा कउ भए क्रिपाल गुसाई । से जन लागे गुर की पाई ।। २ ।। सूख सहज सांति आनंदा । जपि जपि जीवे परमानंदा ।। ३ ।। नाम रासि साध संगि खाटी । कहु नानक प्रभि अपदा काटी ।। ४ ।। ७४ ।। १४३ ।।

(परमात्मा की कृपा से) जिस मनुष्य का मन परमात्मा के चरणों में लग जाता है, उसका हरेक दुःख-दर्द दूर हो जाता है, उसकी दुबिधा समाप्त हो जाती है ।। १ ।। (हे भाई ! परमात्मा के नाम का व्यापार करनेवाला मनुष्य स्थिर हृदय का मालिक बन जाता है (उस पर विकार कोई प्रभाव नहीं कर सकता, क्योंकि) जिस मनुष्य पर परमात्मा अपने नाम-धन की देन की कृपा करता है, वह मनुष्य शूरवीर बन जाता है ।। १ ।। रहाउ ।। जिन मनुष्यों पर धरती के मालिक-प्रभुजी दयालु होते हैं, वे मनुष्य गुरु के चरणों में आकर लग जाते हैं ।। २ ।। (हे भाई !) सर्वोपरि आनन्द के मालिक-प्रभु को स्मरण कर मनुष्य आत्मिक जीवन प्राप्त कर लेते हैं, फिर उनके भीतर सदा सुख-शान्ति और आत्मिक स्थिरता के आनन्द बने रहते हैं ।। ३ ।। हे नानक ! कह— जिस मनुष्य ने सत्संगति में टिककर परमात्मा के नाम-धन की राशि कमाई है, परमात्मा ने उसकी हरेक किस्म की विपत्ति दूर कर दी है ।। ४ ।। ७४ ।। १४३ ।।

।। गउड़ी महला ५ ।। हरि सिमरत सभि मिटहि कलेस । चरण कमल मन महि परवेस ।। १ ।। उचरहु राम नामु लख बारी । अंम्रित रसु पीवहु प्रभ पिआरी ।। १ ।। रहाउ ।। सूख सहज रस महा अनंदा । जपि जपि जीवे परमानंदा ।। २ ।। काम क्रोध लोभ मद खोए । साध कै संगि किलबिख सभ धोए ।। ३ ।। करि किरपा प्रभ दीन दइआला । नानक दीजै साध रवाला ।। ४ ।। ७५ ।। १४४ ।।

(हे भाई !) अपने मन में परमात्मा के सुन्दर चरण बसाए रख । परमात्मा का नाम-स्मरण करते हुए मन के सारे क्लेश मिट जाते हैं ।। १ ।। हे प्यारी जीभ ! लाखों बार परमात्मा का नाम उच्चारण करती रह और परमात्मा का आत्मिक जीवन वाला नाम-रस पीती रह ।। १ ।। रहाउ ।। (हे भाई !) जो मनुष्य सर्वश्रेष्ठ आत्मिक आनन्द के स्वामी-प्रभु का नाम जपते हैं वे आत्मिक जीवन प्राप्त कर लेते हैं, उनके भीतर आत्मिक स्थिरता के बड़े सुख बने रहते हैं ।। २ ।। (नाम-रस पीनेवाले मनुष्य अपने भीतर से) काम, क्रोध लोभ, अहंकार (आदि विकार) नष्ट कर लेते हैं, गुरु की

संगति में रहकर वह (अपने मन से) सारे पाप धो लेते हैं ।। ३ ।। हे दीनदयालु प्रभु ! कृपा कर और नानक को गुरु के चरणों की धूलि दे ।। ४ ।। ७५ ।। १४४ ।।

।। गउड़ी महला ५ ।। जिस का दीआ पैनै खाइ । तिसु सिउ आलसु किउ बनै माइ ।। १ ।। खसमु बिसारि आन कंमि लागहि । कउडी बदले रतनु तिआगहि ।। १ ।। रहाउ ।। प्रभू तिआगि लागत अन लोभा । दासि सलामु करत कत सोभा ।।२।। अंम्रित रसु खावहि खान पान । जिनि दीए तिसहि न जानहि सुआन ।। ३ ।। कहु नानक हम लूण हरामी । बखसि लेहु प्रभ अंतरजामी ।। ४ ।। ७६ ।। १४५ ।।

हे माँ ! जिस परमात्मा का दिया हुआ (अन्न) मनुष्य खाता है, (दिया हुआ) कपड़ा पहनता है, उसके स्मरण में आलस्य करना शोभनीय नहीं ।। १ ।। (हे भाई ! जो मनुष्य) मालिक-प्रभु (की याद) भुलाकर दूसरे कामों में उलझे रहते हैं, वे व्यर्थ (निरर्थक) माया के बदले में अपना कीमती मनुष्य-जन्म गँवा लेते हैं ।। १ ।। रहाउ ।। (हे भाई !) परमात्मा को छोड़कर दूसरे (पदार्थों) के लोभ लगने से तथा (परमात्मा की) दासी माया को सलाम करने से कहीं भी शोभा नहीं मिल सकती ।। २ ।। (हे भाई !) कुत्ते (के स्वभाव वाले मनुष्य) स्वादिष्ट भोजन खाते हैं, पीनेवाली चीजें पीते हैं, पर जिस परमात्मा ने (ये सब पदार्थ) दिए हैं, उसे जानते-पहचानते भी नहीं ।। ३ ।। हे नानक ! कह— हे प्रभु ! हम जीव कृतघ्न हैं । हे जीवों के मन की जाननेवाले प्रभु ! हमें क्षमा करो ।।४।।७६।।१४५।।

।। गउड़ी महला ५ ।। प्रभ के चरन मन माहि धिआनु । सगल तीरथ मजन इसनानु ।। १ ।। हरि दिनु हरि सिमरनु मेरे भाई । कोटि जनम की मलु लहि जाई ।। १ ।। रहाउ ।। हरि की कथा रिद माहि बसाई । मन बाछत सगले फल पाई ।। २ ।। जीवन मरणु जनमु परवानु । जा कै रिदै वसै भगवानु ।। ३ ।। कहु नानक सेई जन पूरे । जिना परापति साधू धूरे ।। ४ ।। ७७ ।। १४६ ।।

(हे मेरे भाई !) अपने मन में परमात्मा के चरणों का ध्यान कर । (प्रभु चरणों का ध्यान ही) सारे तीर्थों का स्नान है ।। १ ।। हे मेरे भाई ! सारा दिन सदा परमात्मा का स्मरण किया कर । (जो मनुष्य परमात्मा को स्मरण करता है उसके) करोड़ों जन्मों की मैल उतर जाती है ।। १ ।।

रहाउ ॥ (जो मनुष्य) परमात्मा की गुण-स्तुति अपने हृदय में बसाता है, वह सारे मनोवांछित फल प्राप्त कर लेता है ॥ २ ॥ (हे भाई!) जिस मनुष्य के हृदय में भगवान आ बसता है, जन्म से लेकर मृत्यु तक उसका सारा जीवन (प्रभु के दरबार में) स्वीकृत हो जाता है ॥ ३ ॥ हे नानक! वही मनुष्य शुद्ध जीवन वाले बनते हैं, जिन्हें गुरु के चरणों की धूलि मिल जाती है ॥ ४ ॥ ७७ ॥ १४६ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ खादा पैनदा मूकरि पाइ । तिस नो जोहहि दूत धरमराइ ॥ १ ॥ तिसु सिउ बेमुखु जिनि जीउ पिंडु दीना । कोटि जनम भरमहि बहु जूना ॥ १ ॥ रहाउ ॥ साकत की ऐसी है रीति । जो किछु करै सगल बिपरीति ॥ २ ॥ जीउ प्राण जिनि मनु तनु धारिआ । सोई ठाकुरु मनहु बिसारिआ ॥ ३ ॥ बधे बिकार लिखे बहु कागर । नानक उधरु क्रिपा सुख सागर ॥ ४ ॥ पारब्रहम तेरी सरणाइ । बंधन काटि तरै हरिनाइ ॥ १ ॥ रहाउ दूजा ॥ ७८ ॥ १४७ ॥

(जो मनुष्य परमात्मा की देन) खाता रहता है, पहनता रहता है और इस बात को अस्वीकार करता रहता है कि ये परमात्मा ने दी हैं, उस मनुष्य को धर्मराज (यम) के दूत अपनी ताक में रखते हैं ॥ १ ॥ (हे भाई! तू) उस परमात्मा (की याद) से मुँह मोड़े बैठा है; जिसने तुझे आत्मा, देह दी (उसे भुलाकर) करोड़ों जन्मों तक अनेक योनियों में भटकता रहेगा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे भाई!) माया में डूबे हुए मनुष्य की जीवन-मर्यादा ही ऐसी है कि वह जो कुछ भी करता है, सारा कुछ विपरीत ही करता है ॥ २ ॥ (हे भाई!) जिस परमात्मा ने जीव की देह को अपनी ज्योति का सहारा दिया है, उस पालनकर्त्ता प्रभु को नास्तिक मनुष्य अपने मन से भुलाए रखता है ॥ ३ ॥ (उस नास्तिक के) इतने विकार बढ़ जाते हैं कि उनके अनेकों दफ़्तर ही लिखे जाते हैं। हे नानक! (प्रभु-द्वार पर प्रार्थना करके कह—) हे दया तथा सुख के समुद्र! (हम जीवों को) बचाकर रख ॥ ४ ॥ हे पारब्रह्म प्रभु! जो मनुष्य तेरी शरण आते हैं, वे तेरे हरि-नाम के प्रभाव से (माया के) बन्धन काटकर (संसार-समुद्र से) पार उतर जाते हैं ॥ १ ॥ रहाउ दूजा ॥ ७८ ॥ १४७ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ अपने लोभ कउ कीनो मीतु । सगल मनोरथ मुकति पदु दीतु ॥ १ ॥ ऐसा मीतु करहु सभु कोइ । जा ते बिरथा कोइ न होइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ अपुनै सुआइ रिदै लै धारिआ । दूख दरद रोग सगल बिदारिआ ॥२॥

रसना गीधी बोलत राम । पूरन होए सगले काम ॥ ३ ॥ अनिक बार नानक बलिहारा । सफल दरसनु गोबिंदु हमारा ॥ ४ ॥ ७९ ॥ १४८ ॥

(हे भाई ! देखो गोबिन्द की उदारता!) चाहे कोई मनुष्य अपने किसी लालच के ही लिए उसे अपना मित्र बनाता है (फिर भी वह उसके) सारे मनोरथ पूर्ण कर देता है (और उसे) वह आत्मिक अवस्था भी देता है जहाँ कोई वासना स्पर्श नहीं कर सकती ॥ १ ॥ हरेक मनुष्य (ऐसे प्रभु को) मित्र बनाए, जिस (के द्वार) से कोई खाली नहीं रहता ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिस मनुष्य ने (उस गोबिन्द को) अपने स्वार्थ के लिए भी अपने हृदय में टिकाया है, (गोबिन्द ने उसके) सारे दुःख-दर्द, सारे रोग दूर कर दिए हैं ॥ २ ॥ जिस मनुष्य की जिह्वा गोबिन्द का नाम-उच्चरित करना चाहती है, उसके सारे मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं ॥ ३ ॥ हे नानक ! (कह—) हम अपने गोबिन्द पर अनेक बार बलिहारी जाते हैं, हमारा गोबिन्द ऐसा है कि उसका दर्शन सारे फल देता है ॥ ४ ॥ ७९ ॥ १४८ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ कोटि बिघन हिरे खिन माहि । हरि हरि कथा साधसंगि सुनाहि ॥ १ ॥ पीवत राम रसु अंम्रित गुण जासु । जपि हरि चरण मिटी खुधितासु ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सरब कलिआण सुख सहज निधान । जा कै रिदै वसहि भगवान ॥ २ ॥ अउखध मंत्र तंत सभि छारु । करणैहारु रिदे महि धारु ॥ ३ ॥ तजि सभि भरम भजिओ पारब्रहमु । कहु नानक अटल इहु धरमु ॥ ४ ॥ ८० ॥ १४९ ॥

(हे भाई !) जो मनुष्य सत्संगति में परमात्मा की गुणस्तुति सुनते हैं, उनकी ज़िन्दगी के मार्ग में आनेवाली करोड़ों रुकावटें एक क्षण में नष्ट हो जाती हैं ॥ १ ॥ (हे भाई !) परमात्मा का नाम-रस पीते हुए, परमात्मा के आत्मिक जीवन देनेवाले गुणों का यश गाते हुए, परमात्मा के चरण जपकर (माया की) भूख मिट जाती है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे भगवान !) जिस मनुष्य के हृदय में तू बस जाता है, उसे सारे सुखों के ख़ज़ाने और आत्मिक स्थिरता के आनन्द मिल जाते हैं ॥ २ ॥ (हे भाई !) सृजनहार प्रभु को अपने हृदय में टिकाए रख, सारे टोने-टोटके और मन्त्र बेकार हैं ॥ ३ ॥ हे नानक ! कह— जिस मनुष्य ने सारे भ्रम त्याग कर पारब्रह्म प्रभु का भजन किया है, (उसने देख लिया है कि भजन, स्मरण आदि) धर्म ऐसा है जो कभी भी फल देने में आनाकानी नहीं करता ॥ ४ ॥ ८० ॥ १४९ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ करि किरपा भेटे गुर सोई। तितु बलि रोगु न बिआपै कोई ॥ १ ॥ राम रमण तरण भै सागर। सरणि सूर फारे जम कागर ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सतिगुरि मंत्रु दीओ हरिनाम। इह आसर पूरन भए काम ॥ २ ॥ जप तप संजम पूरी वडिआई। गुर किरपाल हरि भए सहाई ॥ ३ ॥ मान मोह खोए गुरि भरम। पेखु नानक पसरे पारब्रहम ॥ ४ ॥ ८१ ॥ १५० ॥

(हे भाई !) वही मनुष्य गुरु को मिलता है जिसपर परमात्मा कृपा करता है। (गुरु के मिलाप से उपजे) बल के कारण कोई रोग अपना दबाव नहीं डाल सकता ॥ १ ॥ (हे भाई !) परमात्मा का स्मरण करने से संसार-समुद्र से पार हुआ जाता है। शूरवीर गुरु की शरण लेने से यमों के लेखे समाप्त किए जाते हैं, (अर्थात् मृत्यु लानेवाले सारे संस्कार मिट जाते हैं) ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे भाई ! जिस मनुष्य को) सतिगुरु ने परमात्मा का नाम-मन्त्र दे दिया, इस नाम-मन्त्र के सहारे उसके सारे मनोरथ पूर्ण हो गए ॥ २ ॥ (हे भाई ! जिस मनुष्य पर) सतिगुरु जी कृपालु हुए, जिसके सहायक प्रभुजी बन गए उसे सारे जपों, तपों और संयमों की महानता प्राप्त हो गई ॥ ३ ॥ हे नानक ! देख, गुरु ने जिस मनुष्य के अहंकार, मोह, भ्रम आदि नष्ट कर दिए, उसे पारब्रह्म प्रभु सर्वत्र व्यापक दिखाई देने लगे ॥ ४ ॥ ८१ ॥ १५० ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ बिखै राज ते अंधुला भारी। दुखि लागै रामनामु चितारी ॥ १ ॥ तेरे दास कउ तुही वडिआई। माइआ मगनु नरकि लै जाई ॥ १ ॥ रहाउ ॥ रोग गिरसत चितारे नाउ। बिखु माते का ठउर न ठाउ ॥ २ ॥ चरन कमल सिउ लागी प्रीति। आन सुखा नही आवहि चीति ॥ ३ ॥ सदा सदा सिमरउ प्रभ सुआमी। मिलु नानक हरि अंतरजामी ॥ ४ ॥ ८२ ॥ १५१ ॥

(हे भाई !) विषयों के प्रभाव से (मनुष्य विकारों में) बहुत अन्धा हो जाता है (लेकिन जब वह विकारों के कारण) दुःख में फँसता है, तब परमात्मा का नाम-स्मरण करता है ॥ १ ॥ (हे प्रभु !) तेरे दास के लिए तेरा नाम ही प्रतिष्ठा है। (तेरा दास जानता है कि) माया में मस्त मनुष्य को (माया) नरक में ले जाती है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे भाई !) रोगों से घिरा हुआ मनुष्य परमात्मा का नाम याद करता है लेकिन विकारों

की ज़हर में मस्त हुए मनुष्य को आत्मिक जीवन का कहीं नाम-निशान नहीं मिलता ॥ २ ॥ (हे भाई ! परमात्मा के) सुन्दर चरणों से (जिस मनुष्य की) प्रीति बन जाती है उसे दूसरे लौकिक सुख याद नहीं आते ॥ ३ ॥ हे नानक ! (प्रार्थना कर और कह)— हे प्रभु ! हे अन्तर्यामी हरि ! मुझे मिल, मैं सदा ही तुझे स्मरण करता रहूँ ॥ ४ ॥ ८२ ॥ १५१ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ आठ पहर संगी बटवारे । करि किरपा प्रभि लए निवारे ॥ १ ॥ ऐसा हरि रसु रमहु सभु कोइ । सरब कला पूरन प्रभु सोइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ महा तपति सागर संसार । प्रभ खिन महि पारि उतारणहार ॥ २ ॥ अनिक बंधन तोरे नही जाहि । सिमरत नाम मुकति फल पाहि ॥ ३ ॥ उकति सिआनप इसते कछु नाहि । करि किरपा नानक गुण गाहि ॥ ४ ॥ ८३ ॥ १५२ ॥

(हे भाई ! कामादिक पाँचों) डाकू आठों प्रहर साथी बने रहते हैं प्रभु ने (जिन्हें बचाया है,) आप कृपा करके बचाया है ॥ १ ॥ (हे भाई !) वह परमात्मा समस्त शक्तियों का स्वामी है (जो जीव उसका आसरा लेता है वह किसी विकार को पास नहीं आने देता) । हरेक जीव ऐसी सामर्थ्य वाले प्रभु के नाम-रस का आस्वादन करे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे भाई ! कामादिक विकारों की) संसार-समुद्र में बड़ी गर्मी पड़ रही है (लेकिन) प्रभु एक क्षण में ही इस जलन से पार उतारने की शक्ति रखनेवाला है ॥ २ ॥ (हे भाई ! माया-मोह के विकार की) अनेकों फाँसियाँ हैं । (मनुष्य द्वारा प्रयत्न करने पर भी) ये फाँसियाँ तोड़ी नहीं जा सकतीं । लेकिन परमात्मा का नाम-स्मरण करते हुए इन फाँसियों से मुक्ति-रूपी फल प्राप्त कर लेते हैं ॥ ३ ॥ हे नानक ! (प्रभु-द्वार पर प्रार्थना कर और कह— हे प्रभु !) जिस जीव द्वारा कोई ऐसी चतुराई नहीं चल सकती (जिससे यह पाँचों शत्रुओं से बच सके । हे प्रभु ! तू आप) कृपा कर, जीव तेरे गुण गाएं (और इनसे बच सकें) ॥ ४ ॥ ८३ ॥ १५२ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ थाती पाई हरि को नाम । बिचरु संसार पूरन सभि काम ॥ १ ॥ वडभागी हरि कीरतनु गाईऐ । पारब्रहम तूं देहि त पाईऐ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हरि के चरण हिरदै उरि धारि । भवसागरु चड़ि उतरहि पारि ॥२॥ साधू संगु करहु सभु कोइ । सदा कलिआण फिरि दूखु न

होइ ॥ ३ ॥ प्रेम भगति भजु गुणी निधानु । नानक दरगह पाईऐ मानु ॥ ४ ॥ ८४ ॥ १५३ ॥

(हे भाई ! यदि तूने परमात्मा की कृपा से) परमात्मा के नाम-धन की थैली प्राप्त कर ली है तो तू संसार के काज-व्यवहार (में भी निस्संग होकर) चल । तेरे सारे कार्य पूर्ण हो जाएँगे ॥ १ ॥ परमात्मा की गुणस्तुति का गीत बड़े भाग्य से गाया जा सकता है । हे पारब्रह्म प्रभु ! यदि तू आप हम जीवों को अपनी गुणस्तुति की देन दे, तभी हमे मिल सकती है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे भाई !) परमात्मा के चरण अपने हृदय में टिकाए रख । (प्रभु-चरण-रूपी जहाज़ पर) चढ़कर तू संसार-समुद्र से पार उतर जायगा ॥ २ ॥ (हे भाई ! हरेक प्राणी गुरु की संगति करे (जिससे) सदा सुख ही सुख होंगे, दोबारा कोई दुःख स्पर्श नहीं कर सकेगा ॥ ३ ॥ हे नानक ! प्रेमा-भक्ति से सारे गुणों के ख़ज़ाने परमात्मा का भजन कर, (इस प्रकार) परमात्मा के दरबार में आदर-मान मिलता है ॥ ४ ॥ ८४ ॥ १५३ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ जलि थलि महीअलि पूरन हरि मीत । भ्रम बिनसे गाए गुण नीत ॥ १ ॥ ऊठत सोवत हरि संगि पहरूआ । जाकै सिमरणि जम नही डरूआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ चरण कमल प्रभ रिदै निवासु । सगल दूख का होइआ नासु ॥ २ ॥ आसा माणु ताणु धनु एक । साचे साह की मन महि टेक ॥ ३ ॥ महा गरीब जन साध अनाथ । नानक प्रभि राखे दे हाथ ॥ ४ ॥ ८५ ॥ १५४ ॥

(हे भाई !) जो प्रभु-मित्र जल, धरती और आकाश में सर्वत्र व्यापक है (हमेशा) उसके गुण गाने से सब प्रकार की दुविधाएँ समाप्त हो जाती हैं ॥ १ ॥ जिस परमात्मा के स्मरण के प्रभाव से मौत का भय नहीं रह जाता, वह परमात्मा जागते-सोते हर वक्त जीव के साथ रक्षक-रूप में है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ प्रभु के सुन्दर चरणों का जिस मनुष्य के हृदय में निवास हो जाता है, उसके सारे दुखों का नाश हो जाता है ॥२॥ (एक) परमात्मा का नाम ही उस मनुष्य की एकमात्र आशा बन जाता है, प्रभु का नाम ही उसका धन, स्वाभिमान और बल हो जाता है, उस मनुष्य के मन में सत्यस्वरूप (शाह-) परमात्मा का ही सहारा होता है ॥ ३ ॥ हे नानक ! (कह— हे भाई !) जो बड़े ग़रीब और अनाथ हैं, (वे) गुरु के सेवक (बन गए हैं) । परमात्मा ने (उन्हें दुःख-क्लेशों से) हाथ देकर बचा लिया ॥ ४ ॥ ८५ ॥ १५४ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ हरि हरि नामि मजनु करि सूचे । कोटि ग्रहण पुंन फल मूचे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हरि के चरण रिदे महि बसे । जनम जनम के किलविख नसे ॥ १ ॥ साधसंगि कीरतन फलु पाइआ । जम का मारगु द्रिसटि न आइआ ॥ २ ॥ मन बच क्रम गोविंद अधारु । ता ते छुटिओ बिखु संसारु ॥ ३ ॥ करि किरपा प्रभि कीनो अपना । नानक जापु जपे हरि जपना ॥ ४ ॥ ८६ ॥ १५५ ॥

(हे भाई !) परमात्मा के नाम (-तीर्थ) में स्नान करके व्यक्ति पवित्र (जीवन वाला हो जाता है) । (नाम-तीर्थ में स्नान से) करोड़ों ग्रहणों के वक्त किए पुण्य-फलों से भी अधिक फल मिलते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे भाई ! जिस मनुष्य के) हृदय में परमात्मा के चरण पड़े, उसके अनेक जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥ (जिस मनुष्य ने) सत्संगति में टिककर परमात्मा की गुणस्तुति का फल प्राप्त कर लिया, यमों का रास्ता उसकी नजर भी न आया ॥ २ ॥ (हे भाई ! जिस मनुष्य ने) अपने मन, वचन और कर्म का सहारा परमात्मा (के नाम) को बना लिया, उससे संसार (का मोह) परे हट गया, उससे (विकारों का वह) ज़हर परे रह गया ॥ ३ ॥ हे नानक ! कृपा करके प्रभु ने जिस मनुष्य को अपना बना लिया, वह मनुष्य सदा प्रभु का जाप जपता है और प्रभु का भजन करता है ॥ ४ ॥ ८६ ॥ १५५ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ पउ सरणाई जिनि हरि जाते । मनु तनु सीतलु चरण हरि राते ॥ १ ॥ भै भंजन प्रभ मनि न बसाही । डरपत डरपत जनम बहुतु जाही ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जा कै रिदै बसिओ हरिनाम । सगल मनोरथ ता के पूरन काम ॥ २ ॥ जनमु जरा मिरतु जिसु वासि । सो समरथु सिमरि सासि गिरासि ॥ ३ ॥ मीतु साजनु सखा प्रभु एक । नामु सुआमी का नानक टेक ॥ ४ ॥ ८७ ॥ १५६ ॥

(हे भाई !) जिस मनुष्य ने परमात्मा से जान-पहचान कर ली है उसकी शरण लिए रह, (क्योंकि) प्रभु-चरणों में स्नेह करने से मन शांत हो जाता है, शरीर शांत हो जाता है ॥ १ ॥ (हे भाई ! जो मनुष्य) तमाम भय आदि के नाशक प्रभु को मन में नहीं बसाते, उनके अनेक जन्म इसी भय में काँपते हुए बीत जाते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिस मनुष्य के हृदय में परमात्मा का नाम बस जाता है, उसके सारे काम, सारे मनोरथ सफल हो

जाते हैं ॥ २ ॥ (हे भाई !) हमारा जीना, बुढ़ापा और मौत जिस परमात्मा के वश में है, उस सर्वशक्तिमान प्रभु को हरेक श्वास, हरेक ग्रास के साथ स्मरण करता रह ॥ ३ ॥ हे नानक ! (कह— हे भाई !) एक परमात्मा ही (हम जीवों का) मित्र है। उस मालिक प्रभु का नाम ही (हमारी ज़िन्दगी का) सहारा है ॥ ४ ॥ ८७ ॥ १५६ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ बाहरि राखिओ रिदै समालि। घरि आए गोबिंदु लै नालि ॥ १ ॥ हरि हरि नामु संतन कै संगि। मनु तनु राता राम कै रंगि ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गुर परसादी सागरु तरिआ। जनम जनम के किलविख सभि हिरिआ ॥ २ ॥ सोभा सुरति नामि भगवंतु। पूरे गुर का निरमल मंतु ॥ ३ ॥ चरण कमल हिरदे महि जापु। नानकु पेखि जीवै परतापु ॥ ४ ॥ ८८ ॥ १५७ ॥

(हे भाई !) जगत् के साथ लोक-व्यवहार करते हुए संत-जन गोबिंद को अपने हृदय में संभालकर रखते हैं, गोबिंद को संत-जन सदा अपने हृदय-घर में अपने साथ रखते हैं ॥ १ ॥ परमात्मा का नाम सदा संतजनों के हृदय में बसता है। परमात्मा के (प्रेम-) रंग में (संतजनों का) मन रँगा रहता है और साथ-साथ तन भी रँगा रहता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे भाई !) गुरु की कृपा से (संतजन) संसार-समुद्र से पार उतर जाते हैं और अनेक जन्मों के सारे पाप दूर कर लेते हैं ॥ २ ॥ (हे भाई ! तू भी) पूर्णगुरु का उपदेश (हृदय में बसा ! क्योंकि ऐसा करने से) जीव सौभाग्यशाली हो जाता है, (वह लोक-परलोक) में मान प्राप्त करता है, उसकी सुरति प्रभु के नाम में जुड़ती है ॥ ३ ॥ (हे भाई ! तू भी परमात्मा के) सुन्दर चरण हृदय में धारण कर। नानक (उस परमात्मा का) प्रताप देखकर आत्मिक जीवन प्राप्त करता है ॥ ४ ॥ ८८ ॥ १५७ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ धंनु इहु थानु गोविंद गुण गाए। कुसल खेम प्रभि आपि बसाए ॥ १ ॥ रहाउ ॥ बिपति तहा जहा हरि सिमरनु नाही। कोटि अनंद जह हरिगुन गाही ॥ १ ॥ हरि बिसरिऐ दुख रोग घनेरे। प्रभ सेवा जमु लगै न नेरे ॥ २ ॥ सो वडभागी निहचल थानु। जह जपीऐ प्रभ केवल नामु ॥ ३ ॥ जह जाईऐ तह नालि मेरा सुआमी। नानक कउ मिलिआ अंतरजामी ॥ ४ ॥ ८९ ॥ १५८ ॥

(हे भाई !) गोबिंद के गुण गाते हुए (मनुष्य का) हृदय-स्थान सौभाग्यशाली हो जाता है (क्योंकि, उसमें) प्रभु ने समस्त सुख और आनन्द लाकर बसा दिए हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे भाई !) विपत्ति उस हृदय में है जिसमें परमात्मा (के नाम) का स्मरण नहीं है। जिस हृदय में परमात्मा के गुण गाए जाते हैं, वहाँ करोड़ों ही आनन्द हैं ॥ १ ॥ (हे भाई !) यदि मनुष्य को परमात्मा का नाम विस्मृत हो जाए, तो उसे अनेकों दुःख, अनेकों रोग (आ घेरते हैं)। पर परमात्मा की सेवाभक्ति करने से यम भी निकट नहीं आता ॥ २ ॥ (हे भाई !) वह हृदय-स्थान भाग्यशाली है, वह हृदय सदा स्थिर रहता है, जिसमें परमात्मा का ही नाम जपा जाता है ॥ ३ ॥ (हे भाई !) सब के अन्तर्मन की जाननेवाला प्रभु नानक को मिल गया है, अब मैं जिधर जाता हूँ, उधर मेरा मालिक प्रभु मुझे अपने साथ दिखाई देता है ॥ ४ ॥ ८९ ॥ १५८ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ जो प्राणी गोविंदु धिआवै। पड़िआ अणपड़िआ परम गति पावै ॥ १ ॥ साधू संगि सिमरि गोपाल। बिनु नावै झूठा धनु मालु ॥ १ ॥ रहाउ ॥ रूपवंतु सो चतुरु सिआणा। जिनि जनि मानिआ प्रभ का भाणा ॥ २ ॥ जग महि आइआ सो परवाणु। घटि घटि अपणा सुआमी जाणु ॥ ३ ॥ कहु नानक जाके पूरन भाग। हरि चरणी ता का मनु लाग ॥ ४ ॥ ९० ॥ १५९ ॥

जो मनुष्य गोविन्द-प्रभु को अपने हृदय में स्मरण करता रहता है वह चाहे विद्वान् हो, चाहे अनपढ़— वह सर्वोच्च अवस्था प्राप्त कर लेता है ॥ १ ॥ (हे भाई !) गुरु की संगति में रहकर सृष्टि के पालनकर्त्ता प्रभु का स्मरण किया कर। प्रभु के नाम के अतिरिक्त कोई दूसरा धन, कोई पक्का माल साथ निभानेवाला नहीं है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ वही मनुष्य सुन्दर है, वही तीक्ष्ण बुद्धिवाला है, वही चतुर है जिसने परमात्मा की इच्छा को स्वीकारा है ॥ २ ॥ (हे भाई !) अपने मालिक प्रभु को प्रत्येक शरीर में बसता हुआ पहचान। (जिसने प्रभु को हरेक शरीर में विद्यमान जान लिया है) वही मनुष्य जगत् में आया सफल है ॥ ३ ॥ हे नानक ! कह— जिस मनुष्य के भाग्य उदय हो जाते हैं, उसका मन परमात्मा के चरणों में लगा रहता है ॥ ४ ॥ ९० ॥ १५९ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ हरि के दास सिउ साकत नही संगु। ओहु बिखई ओसु राम को रंगु ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मन असवार जैसे तुरी सीगारी। जिउ कापुरखु पुचारै नारी ॥ १ ॥ बैल

कउ नेत्रा पाइ दुहावै । गऊ चरि सिंघ पाछै पावै ।। २ ।। गाडर ले कामधेनु करि पूजी । सउदे कउ धावै बिनु पूंजी ।। ३ ।। नानक राम नामु जपि चीत । सिमरि सुआमी हरि सा मीत ।। ४ ।। ९१ ।। १६० ।।

(हे भाई !) परमात्मा के भक्त के साथ माया में ग्रस्त व्यक्ति का साथ नहीं हो सकता (क्योंकि) वह नास्तिक विषयों का प्यारा होता है और उस भक्त को परमात्मा का रंग चढ़ा होता है ।। १ ।। रहाउ ।। (हरि के सेवक और नास्तिक व्यक्ति का साथ इस प्रकार है) जैसे किसी अनाड़ी घुड़सवार के लिए एक सुसज्जित घोड़ी होवे, जैसे कोई नपुंसक, स्त्री को प्रेम करता हो ।। १ ।। (हरि के सेवक और नास्तिक का साथ इस प्रकार है जैसे कोई मनुष्य बछड़े के द्वारा बैल दुहता हो, जैसे कोई मनुष्य गाय पर चढ़कर उसे शेर के पीछे दौड़ाने लगे ।। २ ।। जैसे कोई मनुष्य भेड़ लेकर उसे कामधेनु समझकर पूजने लगे, जैसे कोई मनुष्य धन के बिना ही सौदा खरीदने दौड़ जाय ।। ३ ।। हे नानक ! (हरि के दासों की संगति में टिककर) परमात्मा का नाम हृदय में स्मरण कर तथा परमात्मा स्वामी ऐसे मित्र का स्मरण किया कर ।। ४ ।। ९१ ।। १६० ।।

।। गउड़ी महला ५ ।। सा मति निरमल कहीअत धीर । राम रसाइणु पीवत बीर ।। १ ।। हरि के चरण हिरदै करि ओट । जनम मरण ते होवत छोट ।। १ ।। रहाउ ।। सो तनु निरमलु जितु उपजै न पापु । राम रंगि निरमल परतापु ।। २ ।। साधसंगि मिटि जात बिकार । सभ ते ऊच एहो उपकार ।। ३ ।। प्रेम भगति राते गोपाल । नानक जाचै साध रवाल ।। ४ ।। ९२ ।। १६१ ।।

हे भाई ! वही बुद्धि पवित्र कही जाती है, धैर्यवान कही जाती है (जिससे) मनुष्य सब रसों से श्रेष्ठ प्रभु-नाम का रस पीता है ।। १ ।। (हे भाई !) अपने हृदय में परमात्मा के चरणों का आसरा बना (ऐसा करने से) जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति हो जाती है ।। १ ।। रहाउ ।। वह शरीर पवित्र है जिसमें कोई पाप नहीं होता । परमात्मा के प्रेम-रंग के प्रभाव से पवित्र हुए मनुष्य का तेज-प्रताप (चमकता है) ।। २ ।। (हे भाई ! सत्संगति में रहा कर) क्योंकि इससे सारे विकार दूर हो जाते हैं । (सत्संगति का) सर्वोपरि यही उपकार है ।। ३ ।। जो मनुष्य परमात्मा की प्रेम-भक्ति के रंग में रँगे रहते हैं, नानक उनके चरणों की धूलि माँगता है ।। ४ ।। ९२ ।। १६१ ।।

॥ गउड़ी महला ५ ॥ ऐसी प्रीति गोबिंद सिउ लागी । मेलि लए पूरन वडभागी ॥ १ ॥ रहाउ ॥ भरता पेखि बिगसै जिउ नारी । तिउ हरिजनु जीवै नामु चितारी ॥ १ ॥ पूत पेखि जिउ जीवत माता । ओति पोति जनु हरि सिउ राता ॥२॥ लोभी अनदु करै पेखि धना । जन चरन कमल सिउ लागो मना ॥ ३ ॥ बिसरु नही इकु तिलु दातार । नानक के प्रभ प्रान अधार ॥ ४ ॥ ९३ ॥ १६२ ॥

जैसे स्त्री अपने पति को देखकर प्रसन्न होती है, उसी प्रकार हरि का सेवक हरि का नाम-स्मरण करके भीतर आत्मिक प्रसन्नता अनुभव करता है ॥ १ ॥ (हे भाई !) परमात्मा से जिन मनुष्यों की ऐसी प्रीति बनती है, वे मनुष्य बड़े भाग्यशाली हो जाते हैं, वे सारे गुणों से भरपूर हो जाते हैं, परमात्मा उन्हें अपने साथ मिला लेता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जैसे माँ अपने पुत्रों को देखकर जीवन ग्रहण करती है, वैसे ही परमात्मा का भक्त परमात्मा के साथ ताने-बाने के धागे के समान अनुरक्त रहता है ॥ २ ॥ (जैसे) लालची मनुष्य धन देकर खुशी मनाता है उसी प्रकार परमात्मा के भक्त का मन परमात्मा के सुन्दर चरणों में लिपटा रहता है ॥ ३ ॥ हे दानी ! हे नानक के प्राणों के सहारे प्रभु ! (मुझ नानक को तू) क्षणमात्र भी विस्मृत न हो ॥ ४ ॥ ९३ ॥ १६२ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ राम रसाइणि जो जन गीधे । चरन कमल प्रेम भगती बीधे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ आन रसा दीसहि सभि छारु । नाम बिना निहफल संसार ॥ १ ॥ अंध कूप ते काढे आपि । गुण गोविंद अचरज परताप ॥ २ ॥ वणि त्रिणि त्रिभवणि पूरन गोपाल । ब्रहम पसारु जीअ संगि दइआल ॥ ३ ॥ कहु नानक सा कथनी सारु । मानि लेतु जिसु सिरजनहारु ॥ ४ ॥ ९४ ॥ १६३ ॥

(हे भाई !) जो मनुष्य सर्वश्रेष्ठ हरिनाम में मस्त रहते हैं, वे मनुष्य परमात्मा के सुन्दर चरणों की प्रेम-भक्ति में बंधे रहते हैं (जैसे भौंरा कमल-पुष्प में बँध जाता है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे भाई ! उन मनुष्यों को लौकिक) आनन्द (प्रभु-नाम-रस के समक्ष) राख तुल्य दिखाई देते हैं, परमात्मा के नाम के अतिरिक्त लौकिक पदार्थ उन्हें व्यर्थ लगते हैं ॥ १ ॥ (हे भाई !) गोविंद के गुण आश्चर्यजनक प्रताप वाले हैं (जो मनुष्य परमात्मा के गुण गाते है उन्हें वह) आप माया-मोह के अन्धे कुएँ से

निकाल लेता है ॥ २ ॥ (हे भाई ! हरि-नाम के रस में मस्त व्यक्तियों को) सृष्टि का पालक प्रभु सर्वत्र संसार में व्यापक दिखाई देता है, उन्हें यह सारा जगत् परमात्मा का आत्मविस्तार दिखाई देता है, परमात्मा सब जीवों के साथ-साथ प्रतीत होता है और दया का घर दिखाई देता है ॥ ३ ॥ हे नानक ! कह— (हे भाई ! तू भी अपने हृदय में) वह गुणस्तुति सँभाल जिसे सृजनहार प्रभु आदर-सत्कार देता है ॥ ४ ॥ ९४ ॥ १६३ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ नितप्रति नावणु रामसरि कीजै । झोलि महा रसु हरि अंम्रितु पीजै ॥ १ ॥ रहाउ ॥ निरमल उदकु गोबिद का नाम । मजनु करत पूरन सभि काम ॥ १ ॥ संत संगि तह गोसटि होइ । कोटि जनम के किलविख खोइ ॥ २ ॥ सिमरहि साध करहि आनंदु । मनि तनि रविआ परमानंदु ॥ ३ ॥ जिसहि परापति हरि चरण निधान । नानक दास तिसहि कुरबान ॥ ४ ॥ ९५ ॥ १६४ ॥

(हे भाई !) परमात्मा के नाम-रस में सदा ही स्नान करना चाहिए । (परमात्मा के) नाम का रस सर्वश्रेष्ठ रस है, आत्मिक जीवन देनेवाले इस हरि-नाम के रस को बड़े प्रेम से पीना चाहिए ॥ १ ॥ रहाउ ॥ परमात्मा का नाम पवित्र जल है जिसमें स्नान करने से सारे मनोरथ पूरे हो जाते हैं (समस्त वासनाएँ समाप्त हो जाती हैं) ॥ १ ॥ (हे भाई !) वहाँ (उस हरि-नाम के जल की डुबकी लगाने से) प्रभु-संत से मिलाप हो जाता है (और, मनुष्य अपने) करोड़ों जन्मों के (किए हुए) पाप दूर कर लेता है ॥ २ ॥ (हे भाई ! जो) गुरुमुख व्यक्ति (हरि-नाम) स्मरण करते हैं, वे आत्मिक आनन्द अनुभव करते हैं, उन्हें अपने मन में सर्वश्रेष्ठ आनन्द का स्वामी परमात्मा हरवक्त मौजूद दिखाई देता है ॥ ३ ॥ हे नानक ! (कह—) परमात्मा के चरणों के ख़ज़ाने जिस मनुष्य को प्राप्त हो जाते हैं, उस मनुष्य पर प्रभु के सेवक-भक्त बलिहारी जाते हैं ॥ ४ ॥ ९५ ॥ १६४ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ सो किछु करि जितु मैलु न लागै । हरि कीरतन महि एहु मनु जागै ॥ १ ॥ रहाउ ॥ एको सिमरि न दूजा भाउ । संत संगि जपि केवल नाउ ॥ १ ॥ करम धरम नेम ब्रत पूजा । पारब्रहम बिनु जानु न दूजा ॥ २ ॥ ता की पूरन होई घाल । जा की प्रीति अपुने प्रभ नालि ॥ ३ ॥ सो बैसनो है अपर अपारु । कहु नानक जिनि तजे बिकार ॥ ४ ॥ ९६ ॥ १६५ ॥

(हे भाई !) वह (धार्मिक) उद्यम कर जिससे तेरे मन को विकारों का मैल न लग सके और तेरा यह मन परमात्मा की गुणस्तुति में टिककर (विकारों के आक्रमणों से) सचेत रहे।। १ ।। रहाउ ।। (हे भाई !) केवल एक परमात्मा का नाम जप, किसी दूसरे का प्रेम अपने मन में न ला। सत्संगति में टिककर केवल परमात्मा का नाम जपा कर।। १।। (हे भाई !) धार्मिक कर्म, व्रतपूजा आदि नियम— परमात्मा के नाम-स्मरण के बिना ऐसे किसी कार्य को (उच्च आत्मिक जीवन के लिए सहायक) न समझ ।।२।। (हे भाई ! केवल) उस मनुष्य की मेहनत सफल होती है, जिसकी प्रीति अपने परमात्मा के साथ बनी हुई है ।। ३ ।। हे नानक ! कह— (कर्म, धर्म, व्रत-पूजा करनेवाला मनुष्य वास्तविक वैष्णव नहीं है) वही वैष्णव सर्वश्रेष्ठ है, जिसने (सत्संगति में टिककर स्मरण के प्रभाव से अपने भीतर से) सारे विकार दूर कर लिए हैं ।। ४ ।। ९६ ।। १६५ ।।

।। गउड़ी महला ५ ।। जीवत छाडि जाहि देवाने। मुइआ उन ते को वरसांने ।। १ ।। सिमरि गोविंदु मनि तनि धुरि लिखिआ। काहू काज न आवत बिखिआ ।। १ ।। रहाउ ।। बिखै ठगउरी जिनि जिनि खाई। ता की त्रिसना कबहूं न जाई ।। २ ।। दारन दुख दुतर संसारु। रामनाम बिनु कैसे उतरसि पारि ।। ३ ।। साधसंगि मिलि दुइ कुल साधि। रामनाम नानक आराधि ।। ४ ।। ९७ ।। १६६ ।।

हे पागल मनुष्य ! जो भौतिक पदार्थ मनुष्य को जीते हुए ही छोड़ जाते हैं, मृत्यु आने पर उनसे कौन लाभ उठा सकता है ? ।। १ ।। (हे भाई !) परमात्मा का नाम स्मरण कर, (यह स्मरण— लेख ही) आदिकाल से ईश्वरीय नियम अनुसार तेरे हृदय में खिंचा रह सकता है, पर यह माया (जिसकी प्राप्ति के लिए भाग-दौड़ करता है, अन्त में) किसी काम नहीं आती ।। १ ।। रहाउ ।। (हे भाई ! याद रख) जिस मनुष्य ने विषयों की ठग-बूटी खाली, उसकी तृष्णा कभी भी मिटती नहीं ।। २ ।। (हे भाई !) इस संसार (-समुद्र) से पार उतरना बहुत कठिन है। यह बड़े भयानक दुखों से भरपूर है। तू परमात्मा के नाम के बिना किस प्रकार इससे पार उतर सकेगा ? ।। ३ ।। हे नानक ! (कह— हे भाई !) सत्संगति में मिलकर परमात्मा का नाम-स्मरण कर और यह लोक-परलोक दोनों ही सँवार ले ।। ४ ।। ९७ ।। १६६ ।।

।। गउड़ी महला ५ ।। गरीबा उपरि जि खिंजै दाड़ी। पारब्रहमि सा अगनि महि साड़ी ।। १ ।। पूरा निआउ करे

करतारु । अपुने दास कउ राखनहारु ॥ १ ॥ रहाउ ॥ आदि जुगादि प्रगटि परतापु । निंदकु मुआ उपजि वड तापु ॥ २ ॥ तिनि मारिआ जि रखै न कोइ । आगै पाछै मंदी सोइ ॥ ३ ॥ अपुने दास राखै कंठि लाइ । सरणि नानक हरिनामु धिआइ ॥ ४ ॥ ९८ ॥ १६७ ॥

(हे भाई ! उसका न्याय देख !) जो दाढ़ी ग़रीबों पर खिझती रहती है, पारब्रह्म ने वह दाढ़ी आग में जला दी है (अर्थात् जो व्यक्ति क्रोधित होकर अहंकारवश दूसरों को दुखी करता है, वह आप भी क्रोध की अग्नि में जलता रहता है) ॥ १॥ (हे भाई !) जीवों को पैदा करनेवाला परमात्मा (सदा) न्याय करता है (ऐसा न्याय) जिसमें कोई कमी नहीं होती। वह परमात्मा अपने सेवकों की सहायता करने की सामर्थ्य वाला है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे भाई ! जगत् के) प्रारम्भ से, युगों के आदिमकाल से ही परमात्मा का प्रताप प्रकट होता आया है (कि दूसरों की) निंदा करनेवाला मनुष्य (आप) आत्मिक मृत्यु प्राप्त करता है, (उसके भीतर निंदा के कारण) बड़ा दुख-क्लेश बना रहता है ॥ २ ॥ (हे भाई ! ग़रीबों पर अन्याय करनेवाले मनुष्य को) उस परमात्मा ने आत्मिक रूप से मार दिया है जिससे (परमात्मा के बिना) कोई दूसरा नहीं बचा सकता, (ऐसे व्यक्ति की) लोक और परलोक में बदनामी ही होती है ॥ ३ ॥ हे नानक ! (कह—) परमात्मा अपने सेवकों को अपने गले से लगाकर रखता है (अर्थात् उनके उच्च आत्मिक जीवन का पूरा ध्यान रखता है) । (हे भाई !) उस परमात्मा की शरण ले और उसी का नाम-स्मरण कर ॥४॥९८॥१६७॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ महजरु झूठा कीतोनु आपि । पापी कउ लागा संतापु ॥ १ ॥ जिसहि सहाई गोबिदु मेरा । तिसु कउ जमु नही आवै नेरा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ साची दरगह बोलै कूड़ । सिरु हाथ पछोड़ै अंधा मूड़ ॥ २ ॥ रोग बिआपे करदे पाप । अदली होइ बैठा प्रभु आपि ॥ ३ ॥ अपन कमाइऐ आपे बाधे । दरबु गइआ सभु जीअ कै साथै ॥ ४ ॥ नानक सरनि परे दरबारि । राखी पैज मेरै करतारि ॥५॥९९॥१६८॥

(हे भाई ! देखो, हमारे विरुद्ध किया हुआ) दावा परमात्मा ने आप झूठा (सिद्ध) कर दिया, (झूठ आदि प्रयोग करनेवाले) पापियों को (आत्मिक तौर पर) बड़ा दुखद-क्लेश हुआ ॥ १ ॥ (हे भाई !) मेरा गोबिन्द जिस मनुष्य का सहायक बनता है, उसे मृत्यु का भय स्पर्श नहीं

कर सकता ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे भाई !) जो मनुष्य (किसी को हानि पहुँचाने के लिए झूठ बोलता है, वह अन्धा मूर्ख सदा स्थिर रहनेवाले परमात्मा के दरबार में अपना सिर अपने हाथों से पीटता है (अर्थात्, वह पश्चाताप करता है) ॥ २ ॥ परमात्मा आप न्यायकर्त्ता बनकर (कचहरी लगाए) बैठा हुआ है (उसके साथ कोई धोखा नहीं हो सकता)। जो मनुष्य नीच कर्म करते हैं वे (उसके अनुसार) अनेक रोगों में ग्रसित रहते हैं ॥ ३ ॥ (हे भाई ! धन आदि के लिए लोग पाप कर्म करते हैं, पर) सारा धन प्राणों के साथ ही (जीव के हाथ से) चला जाता है, और अपने किए कर्मों के अनुसार जीव आप ही (मौत के बन्धनों में) बँधे रहते हैं ॥ ४ ॥ हे नानक ! (कह—) जो मनुष्य परमात्मा की शरण लेते हैं, परमात्मा के द्वार पर गिरते हैं, उनकी प्रतिष्ठा मेरे कर्त्तार ने सदा सुरक्षित रखी है ॥ ५ ॥ ९९ ॥ १६८ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ जन की धूरि मन मीठ खटानी। पूरबि करमि लिखिआ धुरि प्रानी ॥ १ ॥ रहाउ ॥ अहंबुधि मन पूरि थिधाई। साध धूरि करि सुध मंजाई ॥ १ ॥ अनिक जला जे धोवै देही। मैलु न उतरै सुधु न तेही ॥ २ ॥ सतिगुरु भेटिओ सदा क्रिपाल। हरि सिमरि सिमरि काटिआ भउ काल ॥ ३ ॥ मुकति भुगति जुगति हरिनाउ। प्रेम भगति नानक गुण गाउ ॥ ४ ॥ १०० ॥ १६९ ॥

(हे भाई !) पूर्व जन्म में किए कर्म-अनुसार जिस प्राणी के माथे पर ईश्वर के दरबार से लेख लिखा होता है, उसके मन को परमात्मा के सेवक की चरणधूलि लगी रहती है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ अहंकार-ग्रस्त बुद्धि के कारण (मनुष्य के) मन को (अहंकार की) मैल लगी रहती है, साधू पुरुष की चरणधूलि से उसकी बुद्धि स्वच्छ की जाती है और तब ही वह स्वच्छ हो जाती है ॥ १ ॥ यदि मनुष्य अनेकों (तीर्थों के) पानी से अपने शरीर को धोता रहे तो भी उसके मन की मैल नहीं उतरती, इस प्रकार वह मनुष्य पवित्र नहीं हो सकता ॥ २ ॥ (हे भाई !) जिस मनुष्य को सतिगुरु मिल जाता है, जिसपर गुरु सदा दयालु रहता है, वह मनुष्य परमात्मा का नाम-स्मरण करके (अपने भीतर से) मृत्यु का भय दूर कर लेता है ॥ ३ ॥ हे नानक ! प्रेम-पूरित भक्ति से परमात्मा के गुण गाता रह। परमात्मा का नाम ही विकारों से मुक्ति दिलाता है, नाम ही आत्मिक जीवन की खुराक है, नाम जपना ही जीवन की सही युक्ति है ॥ ४ ॥ १०० ॥ १६९ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ जीवन पदवी हरि के दास। जिन मिलिआ आतम परगासु ॥१॥ हरि का सिमरनु सुनि मन कानी। सुखु पावहि हरि दुआर परानी ॥ १ ॥ रहाउ ॥ आठ पहर धिआईऐ गोपालु। नानक दरसनु देखि निहालु ॥२॥१०१॥१७०॥

(हे भाई ! जो परमात्मा का नाम-स्मरण करते हैं, वे परमात्मा के दास हैं) हरि के दासों को उच्च स्थान प्राप्त है, उन्हें मिलने से आत्मा को (ज्ञान का) प्रकाश मिलता है ॥ १ ॥ हे मेरे मन ! ध्यानपूर्वक परमात्मा का नाम सुना कर। हे प्राणी! (स्मरण के प्रभाव से) तू हरि के द्वार पर सुख प्राप्त करेगा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे नानक ! (हरि के दासों की संगति में रहकर) आठों प्रहर सृष्टि के पालनकर्त्ता प्रभु को स्मरण करना चाहिए। (स्मरण के प्रभाव से सर्वत्र परमात्मा का) दर्शन करके (मन) प्रसन्न रहता है ॥ २ ॥ १०१ ॥ १७० ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ सांति भई गुर गोबिदि पाई। ताप पाप बिनसे मेरे भाई ॥ १ ॥ रहाउ ॥ रामनामु नित रसन बखान। बिनसे रोग भए कलिआन ॥ १ ॥ पारब्रहम गुण अगम बीचार। साधू संगमि है निसतार ॥ २ ॥ निरमल गुण गावहु नित नीत। गई बिआधि उबरे जन मीत ॥ ३ ॥ मन बच क्रम प्रभु अपना धिआई। नानक दास तेरी सरणाई ॥ ४ ॥ १०२ ॥ १७१ ॥

हे भाई ! गोबिन्द-रूपी गुरु ने (जिस मनुष्य को नाम की देन) प्रदान कर दी, उसके भीतर शान्ति हो गई, उसके सारे दुख-क्लेश और पाप नष्ट हो गए ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे भाई ! जो मनुष्य अपनी जिह्वा से सदैव परमात्मा का नाम उच्चरित करता है, उसके सारे रोग दूर हो जाते हैं, उसके भीतर आनन्द ही आनन्द बना रहता है ॥ १ ॥ हे भाई ! जो मनुष्य अगम्य पारब्रह्म प्रभु के गुणों का विचार करता रहता है, गुरु की संगति में रहकर उसका (संसार-समुद्र से) उद्धार हो जाता है ॥ २ ॥ हे मित्र ! सदा परमात्मा के गुण गाते रहो। (जो परमात्मा के गुण गाते हैं उनका प्रत्येक) दुःख दूर हो जाता है, वे मनुष्य रोगों, विकारों से बचे रहते हैं ॥ ३ ॥ हे नानक ! (प्रभु-चरणों में प्रार्थना कर और कह— हे प्रभु !) मैं तेरा दास तेरी शरण आया हूँ (कृपा कर कि) मैं अपने मन, वचन, कर्म के द्वारा सदा अपने मालिक प्रभु को स्मरण करता रहूँ ॥ ४ ॥ १०२ ॥ १७१ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ नेत्र प्रगासु कीआ गुरदेव। भरम गए पूरन भई सेव ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सीतला ते रखिआ बिहारी। पारब्रहम प्रभ किरपाधारी ॥ १ ॥ नानक नामु जपै सो जीवै। साधसंगि हरि अंम्रितु पीवै ॥ २ ॥ १०३ ॥ १७२ ॥

गुरुदेव ने ज्ञानचक्षु दिये। भ्रम का निवारण हुआ; (अन्धविश्वास से दूर रहकर) गुरु-सेवा सफल रही ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे पारब्रह्म, कृपालु प्रभु ! तूने ही कृपा करके सीतला से बचाया है। (लोक-धारणा है कि एक बार चेचक का भयंकर प्रकोप हुआ जिसकी लपेट में श्रीगुरु हरि गोविन्द जी बचपन में आ गए थे। बड़ी भयंकर स्थिति में भी गुरु अर्जुनदेवजी ने परमात्मा पर ही विश्वास रखा और किसी धार्मिक कर्मकाण्ड के पचड़े में नहीं पड़े) ॥ १ ॥ हे नानक ! (कह— हे भाई !) जो मनुष्य (दूसरे तमाम आसरे छोड़कर) परमात्मा का नाम जपता है, वह आत्मिक जीवन प्राप्त कर लेता है (क्योंकि) वह सत्संगति में रहकर आत्मिक जीवन देनेवाला हरि-नाम का रस पीता रहता है ॥ २ ॥ १०३ ॥ १७२ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ धनु ओहु मसतकु धनु तेरे नेत। धनु ओइ भगत जिन तुम संगि हेत ॥ १ ॥ नाम बिना कैसे सुखु लहीऐ। रसना रामनाम जसु कहीऐ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ तिन ऊपरि जाईऐ कुरबाणु। नानक जिनि जपिआ निरबाणु ॥ २ ॥ १०४ ॥ १७३ ॥

(हे प्रभु !) वह मस्तक भाग्यशाली है (जो तेरे समक्ष झुकता है), वे आँखें भाग्यशाली हैं, जो तेरे दर्शन (करती हैं), वे भक्त भाग्यशाली हैं जिनका तेरे साथ प्रेम बना रहता है ॥ १ ॥ (हे भाई !) परमात्मा के नाम-स्मरण के बिना कभी सुख नहीं मिल सकता। (इसलिए सदा) जीभ से परमात्मा का नाम जपना चाहिए और परमात्मा की गुणस्तुति करनी चाहिए ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे नानक ! (कह— हे भाई !) जिस-जिसने वासना-रहित प्रभु का नाम जपा है, उनपर (सदा) बलिहारी जाना चाहिए ॥ २ ॥ १०४ ॥ १७३ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ तूं है मसलति तूं है नालि। तूं है राखहि सारि समालि ॥ १ ॥ ऐसा रामु दीन दुनी सहाई। दास की पैज रखै मेरे भाई ॥ १ ॥ रहाउ ॥ आगै आपि इहु थानु वसि जा कै। आठ पहर मनु हरि कउ जापै ॥ २ ॥

पति परवाणु सचु नीसाणु। जा कउ आपि करहि फुरमानु ॥३॥ आपे दाता आपि प्रतिपालि। नित नित नानक रामनामु समालि ॥ ४ ॥ १०५ ॥ १७४ ॥

हे प्रभु ! तू (सर्वत्र मेरा) परामर्शदाता है, तू ही (सर्वत्र) मेरे साथ रहता है। तू ही (जीवों की) ध्यानपूर्वक रक्षा करता है ॥ १ ॥ हे मेरे भाई ! परमात्मा इस लोक तथा परलोक में ऐसा साथी है कि वह अपने सेवक की प्रतिष्ठा (सर्वत्र) सँभालता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिस परमात्मा के वश में यह लोक है, वही आप परलोक में भी रक्षक है। मेरा मन तो आठों प्रहर उस परमात्मा का नाम जपता है ॥ २ ॥ हे प्रभु ! जिस (सेवक) के वास्ते तू आप हुक्म करता है, उसे (तेरे दरबार में) प्रतिष्ठा मिलती है, वह (तेरे द्वार पर) स्वीकृत होता है, उसे (जीवन-यात्रा में) तेरा सत्यनाम यात्रा-कर के रूप में मिलता है ॥ ३ ॥ हे नानक ! परमात्मा आप ही देन देनेवाला है, आप ही (सब की) रक्षा करनेवाला है। तू सदा ही उस परमात्मा का नाम (अपने हृदय में) सँभाल कर रख ॥ ४ ॥ १०५ ॥ १७४ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ सतिगुरु पूरा भइआ क्रिपालु। हिरदै वसिआ सदा गुपालु ॥ १ ॥ रामु रवत सद ही सुखु पाइआ। मइआ करी पूरन हरि राइआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ कहु नानक जा के पूरे भाग। हरि हरि नामु असथिरु सोहागु ॥ २ ॥ १०६ ॥

(हे भाई !) अविस्मरणीय गुरु जिस पर दयालु होता है, सृष्टि के रक्षक परमात्मा (का नाम) सदा उसके हृदय में बसा रहता है ॥ १ ॥ हे भाई ! जिस मनुष्य पर सर्वव्यापक प्रभु-बादशाह ने कृपा की है, परमात्मा का नाम-स्मरण करते हुए उसने सदा ही आत्मिक आनन्द प्राप्त किया है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे नानक ! कह— जिस मनुष्य के मस्तक पर पूर्ण भाग्य जाग पड़ते हैं, वह सदा परमात्मा का नाम जपता है, (उसके सिर पर) सदा स्थिर रहनेवाला परमात्मा स्वामी (अपना हाथ रखता है) ॥ २ ॥ १०६ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ धोती खोलि विछाए हेठि। गरधप वांगू लाहे पेटि ॥ १ ॥ बिनु करतूती मुकति न पाईऐ। मुकति पदारथु नामु धिआईऐ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ पूजा तिलक करत इसनानां। छुरी काढि लेवै हथि दाना ॥ २ ॥ बेदु

पड़ै मुखि मीठी बाणी । जीआं कुहत न संगै पराणी ॥ ३ ॥ कहु नानक जिसु किरपा धारै । हिरदा सुधु ब्रहमु बीचारै ॥ ४ ॥ १०७ ॥

हे भाई ! ब्राह्मण अपनी धोती का ऊपरी आधा भाग उतारकर नीचे रख लेता है और गधे की तरह (दबादब खीर आदिक) अपने पेट में डाले जाता है ॥ १ ॥ परमात्मा का नाम-स्मरण करना चाहिए। यह ऐसा पदार्थ है जो विकारों से मुक्ति देता है। (हे भाई !) नाम-स्मरण की साधना किए बिना मोक्षपदवी नहीं मिलती ॥ १ ॥ रहाउ ॥ ब्राह्मण पूजा, तिलक और स्नान करता है और स्वर्ग आदि का धोखा देकर निर्दयता से दान प्राप्त कर लेता है ॥ २ ॥ (ब्राह्मण) मुख से तो मधुरस्वर में वेद पढ़ता है लेकिन अपने यजमानों से धोखा करते हुए तनिकमात्र नहीं झिझकता ॥ ३ ॥ (लेकिन) हे नानक ! कह— (ब्राह्मण के भी क्या वश ?) जिस मनुष्य पर परमात्मा कृपा करता है वह परमात्मा के गुण अपने हृदय में बसाता है (जिससे) उसका हृदय पवित्र हो जाता है ॥ ४ ॥ १०७ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ थिरु घरि बैसहु हरिजन पिआरे । सतिगुरि तुमरे काज सवारे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ दुसट दूत परमेसरि मारे । जन की पैज रखी करतारे ॥ १ ॥ बादिसाह साह सभ वसि करि दीने । अंम्रितनाम महा रस पीने ॥ २ ॥ निरभउ होइ भजहु भगवान । साधसंगति मिलि कीनो दानु ॥ ३ ॥ सरणि परे प्रभ अंतरजामी । नानक ओट पकरी प्रभ सुआमी ॥ ४ ॥ १०८ ॥

हे प्रिय भक्तजनो ! अपने हृदय में यह पूर्ण विश्वास बनाओ कि सतिगुरु ने हमारे सब काम सँवार दिए हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (जो मनुष्य ईश्वर पर आस्था रखता है) परमेश्वर ने उसके सब दुश्मन समाप्त कर दिए हैं, कर्त्तार ने अपने सेवक की प्रतिष्ठा अवश्य रखी है ॥ १ ॥ (परमात्मा ने अपने सेवकों को) दुनिया के शाहों-बादशाहों की ओर से निश्चिन्त कर दिया है, परमेश्वर के सेवक आत्मिक जीवन देनेवाला नाम-रस (सर्वश्रेष्ठ रस) पीते रहते हैं ॥ २ ॥ (हे भक्तजनो ! परमात्मा ने तुम पर) नाम की कृपा की है, तुम सत्संगति में मिलकर, निर्भय होकर भगवान का नाम-स्मरण करते रहो ॥ ३ ॥ हे नानक ! (प्रभु-द्वार पर प्रार्थना कर और कह—) हे अन्तर्यामी प्रभु ! मैं तेरी शरणागत हूँ, मैंने तेरा आसरा लिया है, (मुझे अपने नाम की देन दे) ॥ ४ ॥ १०८ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ हरि संगि राते भाहि न जलै। हरि संगि राते माइआ नही छलै। हरि संगि राते नही डूबै जला। हरि संगि राते सुफल फला ॥ १ ॥ सभ भै मिटहि तुमारै नाइ। भेटत संगि हरि हरि गुन गाइ ॥ रहाउ ॥ हरि संगि राते मिटै सभ चिंता। हरि सिउ सो रचै जिसु साध का मंता। हरि संगि राते जम की नही त्रास। हरि संगि राते पूरन आस ॥ २ ॥ हरि संगि राते दूखु न लागै। हरि संगि राता अनदिनु जागै। हरि संगि राता सहज घरि वसै। हरि संगि राते भ्रमु भउ नसै ॥ ३ ॥ हरि संगि राते मति ऊतम होइ। हरि संगि राते निरमल सोइ। कहु नानक तिन कउ बलि जाई। जिन कउ प्रभु मेरा बिसरत नाही ॥ ४ ॥ १०६ ॥

परमात्मा में अनुरक्त रहने से (मनुष्य तृष्णा की) आग में नहीं जलता, परमात्मा के चरणों में जुड़े रहने से (मनुष्य को) माया ठग नहीं सकती, परमात्मा की याद में लीन रहने से मनुष्य संसार-समुद्र के जल में नहीं डूबता; बल्कि मनुष्य-जन्म का सुन्दर मनोरथ प्राप्त कर लेता है ॥ १ ॥ (हे प्रभु !) तेरे नाम में जुड़ने से (मनुष्य के सारे) भय दूर हो जाते हैं। (हे भाई !) प्रभु की संगति में रहने से मनुष्य परमात्मा के गुण गाता रहता है ॥ रहाउ ॥ (हे भाई !) परमात्मा की स्मृति में जुड़े रहने से (मनुष्य की) हरेक किस्म की चिन्ता मिट जाती है (परन्तु) परमात्मा के साथ वही मनुष्य जुड़ता है जिसे गुरु का उपदेश प्राप्त होता है; परमात्मा में अनुरक्ति से मृत्यु का भय नहीं रहता और मनुष्य की सारी आशाएँ पूर्ण हो जाती हैं ॥ २ ॥ परमात्मा के चरणों में जुड़े रहने से कोई दुःख स्पर्श नहीं कर सकता। जो मनुष्य परमात्मा की याद में मस्त रहता है, वह हरवक्त सचेत रहता है, वह मनुष्य आत्मिक स्थिरता की अवस्था में टिका रहता है, परमात्मा की याद में जुड़े रहने से मनुष्य की सब प्रकार की दुबिधा समाप्त हो जाती है, हरेक भय दूर हो जाता है ॥ ३ ॥ परमात्मा की याद में रहने से बुद्धि निर्मल हो जाती है और मनुष्य की निष्कलंक कीर्त्ति बिखरती है। हे नानक ! कह— मैं उन आदमियों पर न्योछावर जाता हूँ, जिन्हें मेरा परमात्मा कभी विस्मृत नहीं होता ॥ ४ ॥ १०९ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ उदमु करत सीतल मन भए। मारगि चलत सगल दुख गए। नामु जपत मनि भए अनंद। रसि गाए गुन परमानंद ॥ १ ॥ खेम भइआ कुसल घरि आए।

भेटत साधसंगि गई बलाए ।। रहाउ ।। नेत्र पुनीत पेखत ही दरस । धनि मसतक चरन कमल ही परस । गोबिंद की टहल सफल इह कांइआ । संत प्रसादि परम पदु पाइआ ।। २ ।। जन की कीनी आपि सहाइ । सुखु पाइआ लगि दासह पाइ । आपु गइआ ता आपहि भए । क्रिपानिधान की सरनी पए ।। ३ ।। जो चाहत सोई जब पाइआ । तब ढूंढन कहा को जाइआ । असथिर भए बसे सुख आसन । गुर प्रसादि नानक सुख बासन ।। ४ ।। ११० ।।

(हे भाई ! सत्संगति में जाने का) प्रयास करते हुए (मनुष्य) शांत-चित्त हो जाते हैं, (उस) मार्ग पर चलते हुए समस्त दुःख दूर हो जाते हैं। (हे भाई !) सर्वोपरि आनन्द के मालिक प्रभु को प्रेम सहित गाते हुए, प्रभु का नाम जपने से आनन्द ही आनन्द पैदा हो जाते हैं ।। १ ।। साधु-संगति से सारी व्याधाएँ दूर होती हैं; क्षेम-कुशल के धाम की प्राप्ति होती है ।। रहाउ ।। (हे भाई !) गोबिन्द का दर्शन करते हुए आँखें पवित्र हो जाती हैं। (हे भाई !) वे मस्तक भाग्यशाली हैं, जिन्हें गोबिन्द के सुन्दर चरणों का स्पर्श मिलता है। परमात्मा की सेवा-भक्ति करने से यह शरीर सफल हो जाता है, गुरु-संत की कृपा से सर्वोच्च आत्मिक अवस्था मिल जाती है ।। २ ।। परमात्मा ने आप जिस मनुष्य की सहायता की, उसने परमात्मा के भक्तों के चरणों को छूकर आत्मिक आनन्द प्राप्त किया। जो मनुष्य दया के भण्डार प्रभु की शरण में आ गए, उनके भीतर से आपा-भाव दूर हो गया, तब वे परमात्मा का रूप ही हो गए ।। ३ ।। जब किसी मनुष्य को (गुरु-कृपा से) वह परमात्मा मिल जाता है जिसे वह मिलना चाहता है, तब वह (बाहर जंगलों, पर्वतों आदि में उसे) खोजने के लिए नहीं जाता। हे नानक ! (परमात्मा को अपने भीतर ही खोज लेनेवाले मनुष्य) स्थिरचित्त हो जाते हैं, वे सदा आनन्दावस्था में टिके रहते हैं, गुरु-कृपा से वे सदा सुखों में बसने वाले हो जाते हैं ।। ४ ।। ११० ।।

।। गउड़ी महला ५ ।। कोटि मजन कीनो इसनान । लाख अरब खरब दीनो दानु । जा मनि वसिओ हरि को नामु ।। १ ।। सगल पवित गुन गाइ गुपाल । पाप मिटहि साधू सरनि दइआल ।। रहाउ ।। बहुतु उरध तप साधन साधे । अनिक लाभ मनोरथ लाधे । हरि हरि नाम रसन आराधे ।।२।। सिम्रिति सासत बेद बखाने । जोग गिआन सिध सुख जाने । नामु जपत प्रभ सिउ मन माने ।। ३ ।। अगाधि बोधि हरि अगम

अपारे। नामु जपत नामु रिदे बीचारे। नानक कउ प्रभ किरपा धारे ॥ ४ ॥ १११ ॥

(हे भाई!) जिस मनुष्य के मन में परमात्मा का नाम आ बसता है, उसने (मानों) करोड़ों तीर्थों में डुबकियाँ लगा लीं, करोड़ों तीर्थों के स्नान कर लिए, उसने मानों लाखों, अरबों, करोड़ों रुपए दान कर लिए ॥ १ ॥ (हे भाई!) सृष्टि के पालक प्रभु के गुण गाकर सब मनुष्य पवित्र हो सकते हैं। दया के स्रोत गुरु की शरण लेने से (सारे) पाप मिट जाते हैं ॥ रहाउ ॥ (हे भाई!) जो मनुष्य अपने जीभ से परमात्मा का नाम जपता है उसने (मानों) उल्टे लटककर अनेकों तपों के साधन साध लिए, उसने अनेकों लाभ प्राप्त कर लिए और मनोरथ भी उपलब्ध कर लिए ॥ २ ॥ (हे भाई!) परमात्मा का नाम-स्मरण करते हुए जिस मनुष्य का मन परमात्मा में रम जाता है, उसने (मानों) स्मृतियों, शास्त्रों और वेदों को उच्चरित कर लिया, उसने (मानों) योग की सूझ प्राप्त कर ली और सिद्धों को मिले सुखों से मेल कर लिया ॥ ३ ॥ हे प्रभु! जिस मनुष्य पर (प्रभु कृपा करता है, वह मनुष्य) उस अपरम्पार, अगम्य तथा अनन्त परमात्मा का नाम जपता है, उसका नाम अपने हृदय में टिकाता है। (हे नानक! तू भी प्रार्थना कर और कह—) हे प्रभु! मुझ नानक पर कृपा कर ॥ ४ ॥ १११ ॥

॥ गउड़ी म० ५ ॥ सिमरि सिमरि सिमरि सुखु पाइआ। चरन कमल गुर रिदै बसाइआ ॥ १ ॥ गुर गोबिंदु पारब्रहमु पूरा। तिसहि अराधि मेरा मनु धीरा ॥ रहाउ ॥ अनदिनु जपउ गुरू गुरनाम। ता ते सिधि भए सगल कांम ॥ २ ॥ दरसन देखि सीतल मन भए। जनम जनम के किलबिख गए ॥ ३ ॥ कहु नानक कहा भै भाई। अपने सेवक की आपि पैज रखाई ॥ ४ ॥ ११२ ॥

जिस मनुष्य ने गुरु के सुन्दर चरण अपने हृदय में बसाए हैं, उसने गोबिंद का नाम-स्मरण कर आत्मिक आनन्द प्राप्त किया है ॥ १ ॥ (हे भाई!) गोबिंद पारब्रह्म सर्वोपरि है, समस्त गुणों का मालिक है। उस गोविंद की आराधना करके मेरा मन धैर्यवान बन जाता है ॥ रहाउ ॥ (हे भाई!) मैं तो हरवक्त गुरु का नाम-स्मरण रखता हूँ, (गुरु की कृपा से ही गोबिंद का स्मरण प्राप्त होता है और) उस स्मरण के प्रभाव से समस्त कार्यों में सफलता मिलती है ॥ २ ॥ हे भाई! गुरु के द्वारा सर्वत्र परमात्मा का दर्शन करके शान्त मन वाले हो जाते हैं और उनके अनेक

(पूर्व) जन्मों के किए हुए पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ३ ॥ हे नानक ! कह— हे भाई ! (गुरु की शरणागत हो गोविंद का नाम-स्मरण करने से) सारे भय मन से उतर जाते हैं (क्योंकि) स्मरण के प्रभाव से यह विश्वास बन जाता है कि (गोबिंद) अपने सेवक की आप लाज रखता है ॥ ४ ॥ ११२ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ अपने सेवक कउ आपि सहाई । नित प्रतिपारै बाप जैसे माई ॥ १ ॥ प्रभ की सरनि उबरै सभ कोइ । करन करावन पूरन सचु सोइ ॥ रहाउ ॥ अब मनि बसिआ करनैहारा । भै बिनसे आतम सुख सारा ॥ २ ॥ करि किरपा अपने जन राखे । जनम जनम के किलबिख लाथे ॥ ३ ॥ कहनु न जाइ प्रभ की वडिआई । नानक दास सदा सरनाई ॥ ४ ॥ ११३ ॥

परमात्मा अपने सेवक का सदा सहायक बना रहता है, सदा (अपने सेवक की) सँभाल करता है जैसे माँ और पिता ॥ १ ॥ हे भाई ! हरेक मनुष्य परमात्मा की शरण में बच जाता है (उसका निश्चय बन जाता है कि) वह सर्वव्यापक, सस्यस्वरूप परमात्मा सब कुछ करने की सामर्थ्य रखता है और वही जीवों से सब कुछ करानेवाला है ॥ रहाउ ॥ सब कुछ करने की सामर्थ्य रखनेवाला परमात्मा मन में आ बसा है, अब मेरे सारे भय नष्ट हो गए हैं और मैं आत्मिक आनन्द प्राप्त कर रहा हूँ ॥ २ ॥ (हे भाई !) परमात्मा कृपा करके अपने सेवकों की आप रक्षा करता है, उनके (पहले) अनेक जन्मों के (किए) पापों के संस्कार (उनके मन से) उतर जाते हैं ॥ ३ ॥ परमात्मा कितनी बड़ी सामर्थ्य वाला है— यह बात कही नहीं जा सकती । हे नानक ! परमात्मा के सेवक सदा परमात्मा की शरणागत रहते हैं ॥ ४ ॥ ११३ ॥

रागु गउड़ी चेती महला ५ दुपदे

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ राम को बलु पूरन भाई । ता ते ब्रिथा न बिआपै काई ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जो जो चितवै दासु हरि माई । सो सो करता आपि कराई ॥ १ ॥ निंदक की प्रभि पति गवाई । नानक हरिगुण निरभउ गाई ॥ २ ॥ ११४ ॥

हे भाई ! परमात्मा की शक्ति सर्वत्र है उस शक्ति के प्रभाव से (सेवक पर) कोई दुःख-क्लेश अपना दबाव नहीं डाल सकता ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे (मेरी) माँ । परमात्मा का सेवक जो माँग अपने मन में कल्पित करता

है, वह (परमात्मा) उसकी वह माँग पूर्ण कर देता है ॥ १ ॥ हे नानक ! (सेवक) परमात्मा के गुण गाता रहता है (और लौकिक भयों से) निर्भय हो जाता है, (लेकिन सेवक के) दोषी-निंदक की प्रतिष्ठा प्रभुजी लोक-परलोक में आप गवाँ देते हैं ॥ २ ॥ ११४ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ भुजबल बीर ब्रहम सुख सागर गरत परत गहि लेहु अंगुरीआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ स्रवनि न सुरति नैन सुंदर नही आरत दुआरि रटत पिंगुरीआ ॥ १ ॥ दीनानाथ अनाथ करुणामै साजन मीत पिता महतरीआ । चरन कवल हिरदै गहि नानक भै सागर संत पारि उतरीआ ॥२॥२॥११५॥

हे बलशाली बाँहों वाले शूरवीर प्रभु ! हे सुखों के समुद्र पारब्रह्म ! (विकारों के) गढ़े में गिरते ही (मेरी) अंगुलि पकड़ ले ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे प्रभु ! मेरे कानों में तेरी गुणस्तुति सुनने की सूझ नहीं, मेरी आँखें (ऐसी) सुन्दर नहीं (कि सर्वत्र तेरा दर्शन कर सकें), (मैं सत्संगति में कैसे जाऊँ ?) मैं लंगड़ा हो चुका हूँ और दुखी होकर तेरे द्वार पर पुकार करता हूँ (कि मुझे विकारों के गड्ढे से बचा ले) ॥ १ ॥ हे नानक ! (कह) हे ग़रीबों के स्वामी ! हे अनाथों पर दया करनेवाले ! हे सज्जन ! हे मित्र प्रभु ! हे मेरे पिता ! हे मेरी माँ प्रभु ! तेरे संत तेरे सुन्दर चरण हृदय में रखकर संसार-समुद्र से पार उतरते हैं (मुझे भी अपने चरणों का प्रेम दे और पार उतार) ॥ २ ॥ २ ॥ ११५ ॥

रागु गउड़ी बैरागणि महला ५

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ दय गुसाई मीतुला तूं संगि हमारै बासु जीउ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ तुझ बिनु घरी न जीवना ध्रिगु रहणा संसारि । जीअ प्राण सुखदातिआ निमख निमख बलिहारि जी ॥ १ ॥ हसत अलंबनु देहु प्रभ गरतहु उधरु गोपाल । मोहि निरगुन मति थोरीआ तूं सद ही दीन दइआल ॥ २ ॥ किआ सुख तेरे संमला कवन बिधी बीचार । सरणि समाई दास हित ऊचे अगम अपार ॥ ३ ॥ सगल पदारथ असट सिधि नाम महारस माहि । सुप्रसंन भए केसवा से जन हरिगुण गाहि ॥ ४ ॥ मात पिता सुत बंधपो तूं मेरे

प्राण अधार। साध संगि नानकु भजै बिखु तरिआ संसारु ।। ५ ।। १ ।। ११६ ।।

हे दया करनेवाले ! हे सृष्टि के स्वामी ! तू मेरा प्यारा मित्र है, सदा मेरे साथ बसता रह ।। १ ।। रहाउ ।। हे देह, प्राण, सुख के देनेवाले प्रभु ! मैं प्रतिपल तुझपर बलिहारी जाता हूँ। तेरे बिना एक घड़ी भर भी आत्मिक जीवन नहीं हो सकता और (आत्मिक जीवन के बिना) संसार में रहना धिक्कार है ।। १ ।। हे प्रभु ! मुझे अपने हाथ का सहारा दे। गोपाल ! मुझे गड्ढे में से निकाल ले। मैं गुणहीन, बुद्धिहीन हूँ। तू सदा ही ग़रीबों पर दया करनेवाला है ।। २ ।। हे अगम्य, अनन्त, शरणागत-रक्षक, सेवकों के हितेषी प्रभु ! मैं तेरे (दिए हुए) कौन-कौन से सुख स्मरण करूँ ? मैं किस-किस तरीके से विचार करूँ ? ।। ३ ।। हे भाई ! दुनिया के सारे पदार्थ, आठों सिद्धियाँ, सर्वोत्तम रस नाम-रस में मौजूद हैं। (हे भाई !) जिनपर सुन्दर लम्बे केशों वाला प्रभु प्रसन्न होता है, वे व्यक्ति प्रभु के गुण गाते रहते हैं ।। ४ ।। हे प्राणों के सहारे प्रभु ! माँ, बाप, पुत्र, रिश्तेदार (सब कुछ मेरा) तू ही तू है। नानक सत्संगति में (तेरी कृपा से) तेरा भजन करता है। जो तेरा भजन करता है वह विकारों के) विष भरे संसार से पार उतर जाता है ।। ५ ।। १ ।। ११६ ।।

गउड़ी बैरागणि रहोए के छंत के घरि म० ५

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।। है कोई राम पिआरो गावै। सरब कलिआण सूख सचु पावै ।। रहाउ ।। बनु बनु खोजत फिरत बैरागी। बिरले काहू एक लिव लागी। जिनि हरि पाइआ से वडभागी ।। १ ।। ब्रहमादिक सनकादिक चाहै। जोगी जती सिध हरि आहै। जिसहि परापति सो हरिगुण गाहै ।। २ ।। ता की सरणि जिन बिसरत नाही। वडभागी हरि संत मिलाही। जनम मरण तिह मूले नाही ।। ३ ।। करि किरपा मिलु प्रीतम पिआरे। बिनउ सुनहु प्रभ ऊच अपारे। नानकु मांगतु नामु अधारे ।। ४ ।। १ ।। ११७ ।।

(हे भाई !) कोई विरला भाग्यशाली मनुष्य प्यारे के गुण गाता है, वह सारे सुख प्राप्त कर लेता है, सारे आनन्द प्राप्त कर लेता है, सदा स्थिर परमात्मा को मिल पड़ता है ।। रहाउ ।। (हे भाई ! परमात्मा को मिलने के

लिए यदि) कोई मनुष्य गृहस्थ से उदास होकर हरेक जंगल में ढूँढता फिरता है (तो इस प्रकार परमात्मा नहीं मिलता)। किसी विरले मनुष्य की एक परमात्मा से लगन लगती है। जिन मनुष्यों ने प्रभु को प्राप्त कर लिया है, वे सब भाग्यवान हैं ॥ १ ॥ (हे भाई!) ब्रह्मादिक देवगण, सनक, सनन्दन, सनतकुमार —इनमें से प्रत्येक प्रभु-मिलाप चाहता है। योगी, यती, सिद्ध —हरेक परमात्मा को मिलने की इच्छा करता है, पर जिसे (परमात्मा द्वारा) यह देन मिली है, वही प्रभु के गुण गाता है ॥ २ ॥ (हे भाई!) उनकी शरण लें जिन्हें परमात्मा कभी विस्मृत नहीं होता। परमात्मा के संतों को कोई भाग्यवान ही मिल सकते हैं। उन संतजनों को जन्म-मरण के चक्कर नहीं काटने पड़ते ॥ ३ ॥ हे प्यारे प्रियतम प्रभु! (मुझपर) कृपा कर और (मुझे) मिला। हे सर्वोच्च तथा अनन्त प्रभु! प्रार्थना सुन। (दास) नानक (तुझ से तेरा) नाम ही का आसरा माँगता है ॥ ४ ॥ १ ॥ ११७ ॥

रागु गउड़ी पूरबी महला ५

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ कवन गुन प्रानपति मिलउ मेरी माई ॥ १ ॥ रहाउ ॥ रूप हीन बुधि बल हीनी मोहि परदेसनि दूर ते आई ॥ १ ॥ नाहिन दरबु न जोबन माती मोहि अनाथ की करहु समाई ॥ २ ॥ खोजत खोजत भई बैरागनि प्रभ दरसन कउ हउ फिरत तिसाई ॥ ३ ॥ दीन दइआल क्रिपाल प्रभ नानक साधसंगि मेरी जलनि बुझाई ॥ ४ ॥ १ ॥ ११८ ॥

हे मेरी माँ! मैं कौन से गुणों के प्रभाव से अपने प्राणों के मालिक प्रभु को मिल सकूँ? ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे मेरी माँ!) मैं आत्मिक दृष्टि से रिक्त हूँ, बुद्धिहीन हूँ, (मेरे भीतर आत्मिक) शक्ति भी नहीं है, मैं परदेसिन हूँ (प्रभु-चरणों को अपना घर नहीं बनाया) अनेकों योनियों की यात्रा से गुजरकर आई हूँ ॥ १ ॥ (हे मेरे प्राणपति!) मेरे पास तेरा नाम-धन नहीं है, मेरे भीतर आत्मिक गुणों का यौवन भी नहीं, जिसका मुझे उल्लास अनुभव हो। मुझ अनाथ को अपने चरणों में जोड़ ले ॥ २ ॥ (हे मेरी माँ) अपने प्राण-पति प्रभु के दर्शनार्थ मैं व्याकुल फिर रही हूँ, उसे ढूँढती हुई मैं पागल हो गई हूँ ॥ ३ ॥ हे नानक! (कह—) हे दीनदयालु, कृपासिन्धु, हे प्रभु! सत्संगति ने मेरी यह बिछोह की जलन बुझा दी है ॥ ४ ॥ १ ॥ ११८ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ प्रभ मिलबे कउ प्रीति मनि लागी । पाइ लगउ मोहि करउ बेनती कोऊ संतु मिलै बडभागी ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मनु अरपउ धनु राखउ आगै मन की मति मोहि सगल तिआगी । जो प्रभ की हरि कथा सुनावै अनदिनु फिरउ तिसु पिछै विरागी ॥ १ ॥ पूरब करम अंकुर जब प्रगटे भेटिओ पुरखु रसिक बैरागी । मिटिओ अंधेरु मिलत हरि नानक जनम जनम की सोई जागी ॥ २ ॥ २ ॥ ११९ ॥

(हे बहन !) परमात्मा को मिलने के लिए मेरे मन में प्रीति पैदा हो गई है । यदि मुझे बड़े भाग्यों वाला (गुरु-) संत मुझे मिल जाए, तो मैं उसके चरण पकड़ लूं, मैं उसके समक्ष प्रार्थना करूँ (कि मुझे परमात्मा के साथ मिला दे) ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे बहन !) जो (भाग्यवान संत मुझे) परमात्मा की गुणस्तुति की बातें सुनाता रहे, मैं हर वक्त उसके पीछे-पीछे प्रेम में पागल हुई फिरती रहूँ, मैं अपना मन उसके हवाले कर दूँ, मैं अपना धन उसके समक्ष रख दूँ । (हे बहन !) मैंने अपने मन की सारी चतुराई छोड़ दी है ॥ १ ॥ हे नानक ! (कह—) पूर्व जन्मों में किए भले कर्मों के संस्कारों के अंगूर जिस जीव-स्त्री को प्रकट हो गए, उसे वह सर्वव्यापक प्रभु मिल गया है, जो सारे जीवों में बैठा सब रस भोगनेवाला है और जो रसों से निर्लिप्त भी है । परमात्मा को मिलते ही उस जीव स्त्री के भीतर से माया के मोह का अन्धकार दूर हो जाता है, वह अनेक जन्मों से माया के मोह में सोती हुई जाग पड़ती है ॥ २ ॥ २ ॥ ११९ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ निकसु रे पंखी सिमरि हरि पांख । मिलि साधू सरणि गहु पूरन राम रतनु हीअरे संगि राखु ॥ १ ॥ रहाउ ॥ भ्रम की कूई त्रिसना रस पंकज अति तीख्यण मोह की फास । काटनहार जगत गुर गोबिद चरन कमल ता के करहु निवास ॥ १ ॥ करि किरपा गोबिंद प्रभ प्रीतम दीनानाथ सुनहु अरदासि । करु गहि लेहु नानक के सुआमी जीउ पिंडु सभु तुमरी रासि ॥ २ ॥ ३ ॥ १२० ॥

हे जीव-पक्षी ! (माया के घोंसले में से) निकल । परमात्मा का स्मरण कर । (प्रभु-स्मरण) पंख हैं । (हे भाई !) गुरु को मिलकर पूर्णप्रभु का आसरा ले, परमात्मा का नाम-रत्न अपने हृदय से लगाकर रख ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (माया की प्राप्ति के लिए) दुबिधा ही छोटा कूँआ है, माया की तृष्णा और विकारों का स्वाद ही कीचड़ है, (जीवों के गले में

पड़ी हुई) मोह की रस्सी बड़ी पक्की है। इस रस्सी को काटनेवाला जगत् का गुरु गोविंद ही है। (हे भाई!) उस गोविंद के कमलरूपी चरणों में निवास किए रख ॥ १ ॥ हे गोविंद, प्रियतम प्रभु, ग़रीबों के मालिक, नानक के स्वामी प्रभु! कृपा कर मेरी प्रार्थना सुन, मेरा हाथ पकड़ ले। मेरी यह देह तेरा दिया हुआ धन है, शरीर तेरी दी हुई पूंजी है ॥ २ ॥ ३ ॥ १२० ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ हरि पेखन कउ सिमरत मनु मेरा। आस पिआसी चितवउ दिनु रैनी है कोई संतु मिलावै नेरा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सेवा करउ दास दासन की अनिक भांति तिसु करउ निहोरा। तुलाधार तोले सुख सगले बिनु हरि दरस सभो ही थोरा ॥ १ ॥ संत प्रसादि गाए गुन सागर जनम जनम को जात बहोरा। आनद सूख भेटत हरि नानक जनमु क्रितारथु सफलु सवेरा ॥ २ ॥ ४ ॥ १२१ ॥

(हे बहन!) प्रभु-पति का दर्शन करने के लिए मेरा मन उसका स्मरण कर रहा है। उसके दर्शन की आशा से व्याकुल हुई मैं दिन-रात उसका नाम सोचती रहती हूँ। (हे बहन! मुझे) कोई ऐसा संत (मिल जाए, जो मुझे उस प्रभु-पति के साथ) निकट ही मिला देवे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (यदि गुरु-संत मिल जाए) तो मैं उसके दासों की सेवा करूँ, मैं अनेक तरीकों से उसके समक्ष प्रार्थना करूँ, (हे बहन!) तराजू पर रखकर मैंने (दुनिया के) सारे सुख तोले हैं, प्रभु-पति के दर्शनों के बिना ये सारे ही सुख हल्के हैं ॥ १ ॥ हे नानक! जो मनुष्य गुरु की कृपा से गुणों के समुद्र परमात्मा के गुण गाता है (गुरु परमेश्वर उसे) अनेक जन्मों के भटकते हुए को (जन्म-मरण के चक्र में) मोड़कर ले आता है। हे नानक! परमात्मा को मिलने से समस्त सुख-आनन्द प्राप्त हो जाते हैं, मनुष्य-जन्म का मनोरथ पूर्ण हो जाता है, जन्म यथासमय (इस जन्म में) सफल हो जाता है ॥ २ ॥ ४ ॥ १२१ ॥

रागु गउड़ी पूरबी १ महला ५ ॥ १ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ किन बिधि मिलै गुसाई मेरे राम राइ। कोई ऐसा संतु सहज सुख दाता मोहि मारगु देइ बताई ॥ १ ॥ रहाउ ॥ अंतरि अलखु न जाई लखिआ विचि पड़दा हउमै पाई। माइआ मोहि सभो जगु सोइआ इहु भरमु कहहु किउ जाई ॥ १ ॥ एका संगति

इकतु ग्रिहि बसते मिलि बात न करते भाई । एक बसतु बिनु पंच दुहेले ओह बसतु अगोचर ठाई ॥ २ ॥ जिस का ग्रिहु तिनि दीआ ताला कुंजी गुर सउपाई । अनिक उपाव करे नही पावै बिनु सतिगुर सरणाई ॥ ३ ॥ जिन के बंधन काटे सतिगुर तिन साध संगति लिव लाई । पंच जना मिलि मंगलु गाइआ हरि नानक भेदु न भाई ॥ ४ ॥ मेरे राम राइ इन बिधि मिलै गुसाई । सहजु भइआ भ्रमु खिन महि नाठा मिलि जोती जोति समाई ॥ १ ॥ रहाउ दूजा ॥ १ ॥ १२२ ॥

हे मेरे प्रभु बादशाह ! मुझे पृथ्वी का पति-प्रभु किन तरीकों से मिल सके ? आत्मिक स्थिरता का आनन्द देनेवाला कोई ऐसा संत मुझे मिल जाए, जो मुझे रास्ता बतला देवे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हरेक जीव के) भीतर अदृश्य प्रभु बसता है, पर (जीव को) यह समझ नहीं आ सकती, क्योंकि (जीव के भीतर) अहंकार का पर्दा पड़ा हुआ है । सारा जगत् ही माया के मोह में सोया हुआ है । (हे भाई !) बता, (जीव की) यह दुबिधा कैसे दूर होवे ? ॥ १ ॥ (हे भाई ! आत्मा और परमात्मा की) एक ही संगति है, दोनों एक ही (हृदय-) घर में बसते हैं पर (कभी) मिलकर बात नहीं करते । एक (नाम) पदार्थ के बिना (जीव की) पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ दुखी रहती हैं । वह (नाम) पदार्थ ऐसे स्थान में है, जहाँ ज्ञानेन्द्रियों की पहुँच नहीं ॥ २ ॥ (हे भाई !) जिस हरि का यह बनाया हुआ (शरीर-) घर है, उसने ही मोह का ताला लगाया हुआ है और ताली गुरु को सौंप दी है । गुरु की शरण लिए बिना जीव और दूसरे तरीके अपनाता है, पर (वह उन तरीकों से परमात्मा को) प्राप्त नहीं कर सकता ॥ ३ ॥ हे सतिगुरु ! जिनके (माया के) बन्धनों को तूने काट दिया, उन्होंने सत्संगति में टिककर (प्रभु से) प्रीति की । हे नानक ! (कह—) उनकी पाँचों ज्ञानेन्द्रियों ने मिलकर गुणस्तुति का गीत गाया । हे भाई ! उनमें और हरि में कोई भेद अथवा दूरी नहीं रह गई ॥ ४ ॥ हे मेरे प्रभु बादशाह ! इन तरीकों से धरती का पति-परमेश्वर मिलता है । जिस मनुष्य को आत्मिक स्थिरता की प्राप्ति हो गई, उसकी (माया के सम्बन्ध में) दुबिधा एक क्षण में दूर हो गई । उसकी ज्योति प्रभु में मिलकर, प्रभु में ही लीन हो गई ॥ १ ॥ रहाउ दूजा ॥ १ ॥ १२२ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ ऐसो परचउ पाइओ । करि क्रिपा दइआल बीठुलै सतिगुर मुझहि बताइओ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जत कत देखउ तत तत तुम ही मोहि इहु बिसुआसु होइ आइओ ।

कै पहि करउ अरदासि बेनती जउ सुनतो है रघुराइओ ॥ १ ॥ लहिओ सहसा बंधन गुरि तोरे तां सदा सहज सुखु पाइओ । होणा सा सोई फुनि होसी सुखु दुखु कहा दिखाइओ ॥ २ ॥ खंड ब्रहमंड का एको ठाणा गुरि परदा खोलि दिखाइओ । नउ निधि नामु निधानु इक ठाई तउ बाहरि कैठै जाइओ ॥ ३ ॥ एकै कनिक अनिक भाति साजी बहु परकार रचाइओ । कहु नानक भरमु गुरि खोईहै इव ततै ततु मिलाइओ ॥४॥२॥१२३॥

(परमात्मा के साथ मेरी) ऐसी साँझ (मित्रता) बन गई कि उस माया के प्रभाव से परे हुए दयालु प्रभु ने मुझ पर कृपा की और मुझे गुरु का पता बतला दिया ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (गुरु की सहायता से अब) मुझे यह निश्चय हो गया कि मैं जिधर देखता हूँ, हे प्रभु ! मुझे तुम ही दिखाई देते हो। जब परमात्मा आप (जीवों की प्रार्थना) सुनता है तो मैं (उसके अतिरिक्त) किसके पास प्रार्थना करूँ ? ॥ १ ॥ (हे भाई !) गुरु ने जिस (मनुष्य के माया) के बन्धन तोड़ दिए उसका सारा भय दूर हो गया, तभी उसने सदा के लिए आत्मिक स्थिरता का आनन्द प्राप्त कर लिया। (उसे विश्वास हो गया कि प्रभु की इच्छानुसार) जो होना था, वही होगा। उसके हुक्म बिना कोई सुख या दु:ख कहीं भी दिखाई नहीं दे सकता ॥ २ ॥ गुरु ने (जिस मनुष्य के भीतर से अहंकार का) पर्दा खोलकर परमात्मा का दर्शन करा दिया, उसे परमात्मा ही खण्डों, ब्रह्माण्डों का एक ठिकाना दिखाई देता है। जिस मनुष्य के हृदय में ही (गुरु-कृपा से) जगत् के नौ भण्डारों का रूप प्रभु-नाम-रूपी भण्डार आ बसे, उसे कहीं बाहर भटकने की आवश्यकता नहीं रहती ॥ ३ ॥ (हे भाई ! जैसे) एक सोने से सुनार ने गहनों की अनेक किस्मों की बनावट बना दी, उसी भाँति परमात्मा ने कई किस्मों की यह जगत्-रचना की है। हे नानक ! कह— गुरु ने जिस मनुष्य का भ्रम दूर कर दिया, उसे उसी प्रकार हरेक तत्व, मूलतत्व (प्रभु) में मिलता हुआ दिखता है ॥ ४ ॥ २ ॥ १२३ ॥

॥ गउड़ी २ महला ५ ॥ अउध घटै दिनसु रैना रे । मन गुर मिलि काज सवारे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ करउ बेनंती सुनहु मेरे मीता संत टहल की बेला । ईहा खाटि चलहु हरि लाहा आगै बसनु सुहेला ॥ १ ॥ इहु संसारु बिकारु सहसे महि तरिओ ब्रहमगिआनी । जिसहि जगाइ पीआए हरि रसु अकथ कथा तिनि जानी ॥ २ ॥ जा कउ आए सोई विहाझहु हरि गुर

ते मनहि बसेरा। निजघरि महलु पावहु सुख सहजे बहुरि न होइगो फेरा ॥ ३ ॥ अंतरजामी पुरख बिधाते सरधा मन की पूरे। नानकु दासु इही सुखु मागै मो कउ करि संतन की धूरे ॥ ४ ॥ ३ ॥ १२४ ॥

हे भाई! (तेरी) उम्र दिन-रात करके बीत रही है। हे मन! (जिस कार्य के लिए तू जगत् में आया है, अपने उस) कार्य को गुरु से मिलकर पूर्ण कर ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे मेरे मित्र! सुन, मैं प्रार्थना करता हूँ (यह मनुष्य-जन्म) संतों की सेवा करने का समय है। यहाँ से हरि-नाम का लाभ प्राप्त करके चलो, परलोक में सहज वास प्राप्त होगा ॥ १ ॥ (हे भाई!) यह जगत् विकार-रूप बना है। (जीव) चिन्ता में डूबे रहते हैं। जिस मनुष्य ने परमात्मा के साथ ऐक्य कर लिया है, वह (इस संसार-समुद्र से) पार उतर जाता है। जिस मनुष्य को (परमात्मा विकारों की निद्रा से) जगाता है, उसे अपना हरि-नाम रस पिलाता है। उस मनुष्य ने (मानो) फिर उस परमात्मा की गुणस्तुति से ऐक्य कर लिया जिसका पूर्ण-स्वरूप व्यक्त नहीं किया जा सकता ॥ २ ॥ हे भाई! जिस (नाम-पदार्थ के खरीदने के लिए) (जगत् में) आए हो, वह सौदा खरीदो। गुरु की कृपा से ही परमात्मा का वास मन में हो सकता है। हे भाई! (गुरु की शरण लेकर) आत्मिक स्थिरता के आनन्द में टिककर अपने हृदय-घर में परमात्मा का ठिकाना खोजो। इस प्रकार दोबारा जन्म-मरण का चक्कर नहीं लगाना पड़ेगा ॥ ३ ॥ हे अन्तर्यामी सर्वव्यापक कर्त्तार! मेरे मन की श्रद्धा पूर्ण कर। तेरा दास नानक तुझसे यही सुख माँगता है— मुझे संतजनों के चरणों की धूलि बना दे ॥ ४ ॥ ३ ॥ १२४ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ राखु पिता प्रभ मेरे। मोहि निरगुनु सभ गुन तेरे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ पंच बिखादी एकु गरीबा राखहु राखनहारे। खेदु करहि अरु बहुतु संतावहि आइओ सरनि तुहारे ॥ १ ॥ करि करि हारिओ अनिक बहु भाती छोडहि कतहूं नाही। एक बात सुनि ताकी ओटा साधसंगि मिटि जाही ॥ २ ॥ करि किरपा संत मिले मोहि तिन ते धीरजु पाइआ। संती संतु दीओ मोहि निरभउ गुर का सबदु कमाइआ ॥ ३ ॥ जीति लए ओइ महाबिखादी सहज सुहेली बाणी। कहु नानक मन भइआ परगासा पाइआ पदु निरबाणी ॥ ४ ॥ ४ ॥ १२५ ॥

हे मेरे मित्र-प्रभु ! मुझ गुणहीन को बचा लो। समस्त गुण तेरे (वश में हैं, जिसे प्रभु देना चाहता है उसे ही वे मिलते हैं) ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे सहायता करने में समर्थ प्रभु ! मैं ग़रीब अकेला हूँ तथा मेरे कामादिक पाँच शत्रु हैं, मेरी सहायता कर, मैं तेरी शरणागत हूँ। ये पाँचों मुझे दुःख देते हैं और बहुत सताते हैं ॥ १ ॥ मैं अनेकों प्रकार के यत्न करके हार गया हूँ, ये किसी प्रकार भी मुझे मुक्त नहीं करते। यह सुनकर कि ये सत्संगति में रहकर समाप्त हो जाते हैं, मैंने तेरी सत्संगति का आसरा लिया है ॥ २ ॥ (सत्संगति में) कृपा करके मुझे तेरे संतजन मिल गए, उनसे मुझे ढाढस मिला है। संतों ने मुझे निर्भय कर देनेवाला उपदेश दिया है और मैंने गुरु का शब्द अपने मन में ग्रहण किया है ॥ ३ ॥ गुरु की आत्मिक स्थिरता तथा सुखदात्री बाणी के प्रभाव से मैंने वे पाँचों झगड़ालू जीत लिए। हे नानक ! कह— मेरे मन में आत्मिक प्रकाश हो गया है, मैंने वह आत्मिक स्थान प्राप्त कर लिया है, जहाँ कोई वासना स्पर्श नहीं कर सकती ॥ ४ ॥ ४ ॥ १२५ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ ओहु अबिनासी राइआ। निरभउ संगि तुमारै बसते इहु डरनु कहा ते आइआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ एक महलि तूं होहि अफारो एक महलि निमानो। एक महलि तूं आपे आपे एक महलि गरीबानो ॥ १ ॥ एक महलि तूं पंडितु बकता एक महलि खलु होता। एक महलि तूं सभु किछु ग्राहजु एक महलि कछू न लेता ॥ २ ॥ काठ की पुतरी कहा करै बपुरी खिलावनहारो जानै। जैसा भेखु करावै बाजीगरु ओहु तैसो ही साजु आनै ॥ ३ ॥ अनिक कोठरी बहुतु भाति करीआ आपि होआ रखवारा। जैसे महलि राखै तैसै रहना किआ इहु करै बिचारा ॥ ४ ॥ जिनि किछु कीआ सोई जानै जिनि इह सभ बिधि साजी। कहु नानक अपरंपर सुआमी कीमति अपुने काजी ॥ ५ ॥ ५ ॥ १२६ ॥

(हे प्रभु ! तुम एक) वह राजा हो जो कभी नष्ट होनेवाला नहीं। जो जीव तेरे चरणों में टिके रहते हैं, वे निडर हो जाते हैं, उन्हें कहीं से भी कोई भय नहीं रहता ॥ १ ॥ रहाउ ॥ एक मनुष्य के शरीर में तुम (आप ही) अहंकारी बने हो और एक दूसरे शरीर में तुम ही अभिमान-रहित हो, एक शरीर में तुम आप सब अधिकार वाले हो और एक शरीर में तुम निरे कंगाल हो ॥ १ ॥ (हे प्रभु !) एक शरीर में तुम अच्छा बोलनेवाले विद्वान् हो और एक शरीर में मूर्ख बने हो। एक शरीर में तुम सब कुछ

(छीन कर) संग्रह करनेवाले हो और एक शरीर में तुम (विरक्त बनकर) कोई वस्तु भी स्वीकार नहीं करते हो ॥ २ ॥ (पर, हे भाई !) यह जीव बेचारा काठ की पुतली है, इसे खिलानेवाला प्रभु ही जानता है कि इसे कैसे नचा रहा है ? (प्रभु) बाजीगर, जैसा स्वाँग रचाता है, वह जीव वैसा ही स्वाँग रचता है ॥ ३ ॥ प्रभु ने (जगत् में अनेक योनियों के जीवों की) अनेक (शरीर-) कोठड़ियाँ (भाँति-भाँति की) बना दी हैं और प्रभु आप ही सब का रक्षक बना हुआ है। यह बेचारा जीव कुछ भी करने योग्य नहीं है। जैसे शरीर में परमात्मा इसे रखता है, वैसे शरीर में इसे रहना पड़ता है ॥ ४ ॥ हे नानक ! कह— जिस परमात्मा ने यह जगत् रचा है, जिस परमात्मा ने यह सारी क्रीड़ा बनाई है, वही (उसके भेद को) जानता है। वह परमात्मा अपरम्पार है, (सारी रचना का) मालिक है और वह कार्यों की प्रतिष्ठा आप ही जानता है ॥ ५ ॥ ५ ॥ १२६ ॥

॥ गउड़ी ३ महला ५ ॥ छोडि छोडि रे बिखिआ के रसूआ। उरझि रहिओ रे बावर गावर जिओ किरखै हरिआइओ पसूआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जो जानहि तूं अपुने काजै सो संगि न चालै तेरै तसूआ। नागो आइओ नाग सिधासी फेरि फिरिओ अरु कालि गरसूआ ॥ १ ॥ पेखि पेखि रे कसुंभ की लीला राचि माचि तिन हूं लउ हसूआ। छीजत डोरि दिनसु अरु रैनी जीअ को काजु न कीनो कछूआ ॥ २ ॥ करत करत इवही बिरधानो हारिओ उकते तनु खीनसूआ। जिउ मोहिओ उनि मोहनी बाला उस ते घटै नाही रुच चसूआ ॥ ३ ॥ जगु ऐसा मोहि गुरहि दिखाइओ तउ सरणि परिओ तजि गरबसूआ। मारगु प्रभ को संति बताइओ द्रिड़ी नानक दास भगति हरि जसूआ ॥ ४ ॥ ६ ॥ १२७ ॥

हे भाई ! माया का स्वाद छोड़ दे। हे मूर्ख ! तू (इन स्वादों में) मस्त पड़ा है, जैसे कोई पशु हरे खेत में मस्त (होता है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे मूर्ख !) जिस वस्तु को तू अपने काम आनेवाली समझता है, वह तनिकमात्र भी तेरे साथ नहीं जाती। तू (व्यर्थ ही योनियों के) चक्र में फिर रहा है और तुझे आत्मिक मृत्यु ने ग्रसित किया हुआ है ॥ १ ॥ (हे मूर्ख !) (यह माया का खेल) कसुंमड़ा की खेल (है, इसे) देख-देखकर तू इसमें मस्त हो रहा है और इन पदार्थों से प्रसन्न हो रहा है। दिन-रात तेरी अवस्था की डोरी कमज़ोर होती जा रही है। तूने अपनी आत्मा के काम आनेवाला कोई भी काम नहीं किया ॥ २ ॥ (माया के धंधे) कर-करके मनुष्य वैसे ही बूढ़ा हो जाता है, बुद्धि निकम्मी हो जाती है और

शरीर कमज़ोर हो जाता है। जैसे (यौवन के वक्त) उस मोहित करनेवाली माया ने इसे अपने मोह में फँसाया था, उस ओर से इसकी प्रीति तनिकमात्र भी नहीं घटती ॥३॥ हे दास नानक ! कह— मुझे गुरु ने दिखा दिया है कि जगत् (का मोह) ऐसा है। तब मैं (जगत् का) अभिमान छोड़कर (गुरु की) शरणागत हूँ। गुरु-संत ने मुझे परमात्मा के मिलन का मार्ग बता दिया है और मैंने परमात्मा की गुणस्तुति अपने हृदय में दृढ़ कर ली है॥ ४ ॥ ६ ॥ १२७ ॥

॥ गउड़ी ४ महला ५ ॥ तुझ बिनु कवनु हमारा। मेरे प्रीतम प्रान अधारा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ अंतर की बिधि तुम ही जानी तुम ही सजन सुहेले। सरब सुखा मै तुझ ते पाए मेरे ठाकुर अगह अतोले ॥ १ ॥ बरनि न साकउ तुमरे रंगा गुण निधान सुखदाते। अगम अगोचर प्रभ अबिनासी पूरे गुर ते जाते ॥ २ ॥ भ्रमु भउ काटि कीए निहकेवल जब ते हउमै मारी। जनम मरण को चूको सहसा साधसंगति दरसारी ॥ ३ ॥ चरण पखारि करउ गुर सेवा बारि जाउ लख बरीआ। जिह प्रसादि इहु भउजलु तरिआ जन नानक प्रिअ संगि मिरीआ ॥ ४ ॥ ७ ॥ १२८ ॥

हे मेरे प्रियतम प्रभु ! हे प्राणों के आसरे प्रभु ! तुझसे अलग हमारा और कोन है ? ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे मेरे अथाह तथा स्थिर ठाकुर ! तुम ही मेरे दिल की हालत जानते हो, तुम ही मेरे साजन हो, तुम ही मुझे सुख देनेवाले हो। मैंने सारे सुख तुझ से ही प्राप्त किए हैं ॥ १ ॥ हे गुणों के भण्डार प्रभु ! हे अगम्य और अपरम्पार प्रभु ! पूर्णगुरु के द्वारा ही तेरे साथ गहरा मेल हो सकता है ॥ २ ॥ (गुरु की शरण लेकर) जब (अपने भीतर से) अहंकार दूर करते हैं, गुरु उनकी दुबिधा तथा भय दूर करके उन्हें पवित्र जीवनवाला बना देता है। सत्संगति में (गुरु के) दर्शन के प्रभाव से उनके जन्म-मरण के चक्र का भय समाप्त हो जाता है ॥ ३ ॥ हे दास नानक ! (कह—) मैं (गुरु के) चरण धोकर गुरु की सेवा करता हूँ, मैं (गुरु पर) लाखों बार बलिहारी जाता हूं (क्योंकि) उसकी कृपा से ही इस संसार-समुद्र से पार उतरा जा सकता है और प्रियतम-प्रभु में जुड़ा जा सकता है ॥ ४ ॥ ७ ॥ १२८ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ तुझ बिनु कवनु रीझावै तोही। तेरो रूपु सगल देखि मोही ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सुरग पइआल

मिरत भूअमंडल सरब समानो एकै ओही। सिव सिव करत सगल कर जोरहि सरब मइआ ठाकुर तेरी दोही ॥ १ ॥ पतितपावन ठाकुर नामु तुमरा सुखदाई निरमल सीतलोही। गिआन धिआन नानक वडिआई संत तेरे सिउ गाल गलोही ॥ २ ॥ ८ ॥ १२९ ॥

हे प्रभु ! तेरा रूप देखकर समस्त दुनिया मस्त हो जाती है। तेरी कृपा के बिना कोई जीव तुझे प्रसन्न नहीं कर सकता ॥ १ ॥ रहाउ ॥ स्वर्ग, पाताल, मृत्युलोक —सर्वत्र वह परमात्मा ही समाया हुआ है। हे दयालु ठाकुर ! समस्त जीव तुझे 'सुखों का दाता' कहकर दोनों हाथ जोड़ते हैं और तेरे द्वार पर ही सहायतार्थ पुकारते हैं ॥ १ ॥ हे ठाकुर ! तेरा नाम है 'विकारों में गिरे हुए व्यक्तियों को पवित्र करनेवाला', तुम सबको सुख देनेवाले हो, तुम पवित्र हस्ती वाले हो, तुम शांति-स्वरूप हो। हे नानक ! (कह— हे प्रभु !) तेरे संतजनों के साथ तेरी गुणस्तुति की बातें ही ज्ञान चर्चा है, समाधियाँ (लोक-परलोक में) प्रतिष्ठा है ॥२॥८॥१२९॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ मिलहु पिआरे जीआ। प्रभ कीआ तुमारा थीआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ अनिक जनम बहु जोनी भ्रमिआ बहुरि बहुरि दुखु पाइआ। तुमरी क्रिपा ते मानुख देह पाई है देहु दरसु हरि राइआ ॥ १ ॥ सोई होआ जो तिसु भाणा अवरु न किनही कीता। तुमरै भाणै भरमि मोहि मोहिआ जागतु नाही सूता ॥ २ ॥ बिनउ सुनहु तुम प्रानपति पिआरे किरपानिधि दइआला। राखि लेहु पिता प्रभ मेरे अनाथह करि प्रतिपाला ॥ ३ ॥ जिसनो तुमहि दिखाइओ दरसनु साधसंगति कै पाछै। करि किरपा धूरि देहु संतन की सुखु नानकु इहु बाछै ॥ ४ ॥ ९ ॥ १३० ॥

हे सब जीवों से प्रेम करनेवाले प्रभु ! मुझे मिल। हे प्रभु ! (जगत् में) तेरा किया ही क्रियान्वित है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे प्रभु बादशाह ! (माया-ग्रसित जीव) अनेकों जन्मों में बहुत योनियों में भटकता चला आता है, (जन्म-मरण का) दुःख बार-बार सहता है। तेरी कृपा से (इसने अब) मनुष्य-शरीर प्राप्त किया है, (इसे अपना) दर्शन दे ॥ १ ॥ हे भाई ! जगत् में वही कुछ होता है जो उस परमात्मा को पसन्द होता है। कोई दूसरा जीव (ईश्वरेच्छा के विपरीत कुछ) नहीं कर सकता। हे प्रभु ! जीव तेरी इच्छानुसार ही माया की दुबिधा में, माया के मोह में फँसा रहता

है, सदा मोह में सोता रहता है और इस नींद से सचेत नहीं होता ॥ २ ॥ हे मेरी आत्मा के स्वामी, कृपा के भण्डार और दयालु प्रभु ! तुम मेरी प्रार्थना सुनो। हे मेरे पिता प्रभु ! अनाथ जीवों का पालन कर (इन्हें विकारों के आक्रमणों से) बचा ले ॥ ३ ॥ हे प्रभु ! जिस मनुष्य को भी तूने अपना दर्शन दिया है, सत्संगति के आसरे रखकर दिया है। हे प्रभु ! तेरा दास) नानक यह सुख माँगता है कि मुझ नानक को भी अपने संतजनों के चरणों की धूलि दे ॥ ४ ॥ ९ ॥ १३० ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ हउ ता कै बलिहारी। जा कै केवल नामु अधारी ॥ १ ॥ रहाउ ॥ महिमा ताकी केतक गनीऐ जन पारब्रहम रंगि राते। सूख सहज आनंद तिना संगि उन समसरि अवर न दाते ॥ १ ॥ जगत उधारण सेई आए जो जन दरस पिआसा। उनकी सरणि परै सो तरिआ संतसंगि पूरन आसा ॥ २ ॥ ता कै चरणि परउ ता जीवा जन कै संगि निहाला। भगतन की रेणु होइ मनु मेरा होहु प्रभू किरपाला ॥ ३ ॥ राजु जोबनु अवध जो दीसै सभु किछु जुग महि घाटिआ। नामु निधानु सद नवतनु निरमलु इहु नानक हरि धनु खाटिआ ॥ ४ ॥ १० ॥ १३१ ॥

(हे भाई !) मैं उनपर बलिहारी जाता हूँ जिनके हृदय में केवल परमात्मा का नाम ही आसरा है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे भाई !) संतजन परमात्मा के प्रेम-रंग में रँगे रहते हैं, उनकी आत्मिक शक्ति का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। उनकी संगति में रहने से आत्मिक स्थिरता के सुख तथा आनन्द प्राप्त होते हैं, उनके बराबर कोई दूसरे दानी नहीं हो सकते ॥ १ ॥ जिन संतों को आप परमात्मा की इच्छा लगी रहे, वही जगत् के जीवों को विकारों से बचाने आए, ऐसा समझो। उनकी शरण में जो मनुष्य आ जाता है, वह संसार-समुद्र से पार उतर जाता है। (हे भाई !) संतों की संगति में रहने से सब जाशाएँ पूर्ण हो जाती हैं ॥ २ ॥ (हे भाई !) संतों की संगति में रहने से मन प्रसन्न हो जाता है। मैं तो जब संतजनों के चरणों में आ गिरता हूँ, मुझे आत्मिक जीवन मिल जाता है। हे प्रभु ! मुझ पर कृपालु हुआ रह (ताकि) मेरा मन तेरे संतों के चरणों की धूलि बना रहे ॥ ३ ॥ हे नानक ! (कह— हे भाई !) हुकूमत, यौवन जो भी जगत् में दिखता है, यह घटता ही जाता है। परमात्मा का नाम ही एक ऐसा है जो नित्य नवीन रहता है और वह है भी पवित्र। (संतजन) यह नाम-धन ही सदा प्राप्त करते-कमाते रहते हैं ॥ ४ ॥ १० ॥ १३१ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ जोग जुगति सुनि आइओ गुर ते । मो कउ सतिगुर सबदि बुझाइओ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ नउ खंड प्रिथमी इसु तन महि रविआ निमख निमख नमसकारा । दीखिआ गुरकी मुंद्रा कानी द्रिड़िओ एकु निरंकारा ॥ १ ॥ पंच चेले मिलि भए इकत्रा एकसु कै वसि कीए । दस बैरागनि आगिआकारी तब निरमल जोगी थीए ॥ २ ॥ भरमु जराइ चराई बिभूता पंथु एकु करि पेखिआ । सहज सूख सो कीनी भुगता जो ठाकुरि मसतकि लेखिआ ॥ ३ ॥ जह भउ नाही तहा आसनु बाधिओ सिंगी अनहत बानी । ततु बीचारु डंडा करि राखिओ जुगति नामु मनि भानी ॥ ४ ॥ ऐसा जोगी वडभागी भेटै माइआ के बंधन काटै । सेवा पूज करउ तिसु मूरति की नानकु तिसु पग चाटै ॥ ५ ॥ ११ ॥ १३२ ॥

(हे भाई !) मुझे सतिगुरु के शब्द ने (परमात्मा के मिलाप की जाँच) समझा दी है । मैं गुरुजी से वास्तविक योग का तरीका सुनकर आया हूँ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मैं पल-पल परमात्मा को नमस्कार करता रहता हूँ, जो इस मनुष्य शरीर के मध्य ही मौजूद है; (यही मेरे लिए) सारी धरती का पर्यटन है । मैंने अपने गुरु का उपदेश अपने हृदय में दृढ़ कर लिया है; (यही मेरे लिए) मुंद्रा हैं । मैं एक निरंकार (परमेश्वर) को सदा अपने हृदय में बसाता हूँ ॥ १ ॥ (गुरु के उपदेश से) मेरी पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ मिलकर एकत्रित हो गई हैं, ये सब एक उच्च सुरति के अधीन हो गए हैं । (गुरु के उपदेश के द्वारा जब से) विकारों से विमुख होकर मेरी दसों इन्द्रियाँ (उच्च बुद्धि) के अनुसार चलनेवाली हो गई हैं तब से मैं पवित्र जीवनवाला योगी बन गया हूँ ॥ २ ॥ (मन की) दुबिधा को समाप्त कर (जलाकर) राख मैंने मल ली है, मैं एक परमात्मा को ही सारे संसार में व्यापक देखता हूँ— यह है मेरा योग-पंथ । मैंने उस आत्मिक स्थिरता के आनन्द को चूरमा बनाया है जिसकी प्राप्ति ठाकुर प्रभु ने मेरे माथे पर लिख दी ॥ ३ ॥ (हे भाई !) मैं परमात्मा की गुणस्तुति की निरन्तर शृंगी से अनहद नाद बजा रहा हूँ जिससे उस आत्मिक अवस्था पर अपना आसन जमाया हुआ है जहाँ कोई भय मुझे स्पर्श नहीं कर सकता । हे प्रभु ! जगत् के मूल प्रभु (के गुणों) को विचारते रहना— इसे योगियों वाला डण्ड बनाकर मैंने अपने पास रखा हुआ है । (परमात्मा के) नाम (को स्मरण करते रहना, यह योगी की) युक्ति मेरे मन को भली लगी है ॥ ४ ॥ (हे भाई !) ऐसा योगी (जिसे) सौभाग्यवश मिल जाता है, वह उसके तमाम माया के बन्धन काट देता है । मैं भी परमात्मरूप

ऐसे योगी की सेवा करता हूँ। नानक ऐसे योगी के चरण छूता है ॥ ५ ॥ ११ ॥ १३२ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ अनूप पदारथु नामु सुनहु सगल धिआइले मीता। हरि अउखधु जा कउ गुरि दीआ ता के निरमल चीता ॥ १ ॥ रहाउ ॥ अंधकारु मिटिओ तिह तन ते गुरि सबदि दीपकु परगासा। भ्रम की जाली ता की काटी जा कउ साधसंगति बिस्वासा ॥ १ ॥ तारीले भवजलु तारू बिखड़ा बोहिथ साधू संगा। पूरन होई मन की आसा गुरु भेटिओ हरि रंगा ॥ २ ॥ नाम खजाना भगती पाइआ मन तन त्रिपति अघाए। नानक हरि जीउ ता कउ देवै जा कउ हुकमु मनाए ॥ ३ ॥ १२ ॥ १३३ ॥

हे मित्रो ! सुनो, परमात्मा का नाम एक ऐसा पदार्थ है जिस जैसा कोई दूसरा नहीं। (इसलिए) सब इसे स्मरण करो। जिन्हें गुरु ने नाम-औषधि दी उनके चित्त (हरेक किस्म के विकार की) मैल से स्वच्छ हो गए ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे भाई !) गुरु ने जिस मनुष्य के भीतर अपने) शब्द के द्वारा (ज्ञान का) दीपक जगा दिया, उसके हृदय से (माया-मोह का) अंधेरा दूर हो गया। सत्संगति में जिस मनुष्य की श्रद्धा बन गई, (गुरु ने) उस (के मन) की दुबिधा का जाल काट दिया ॥ १ ॥ (जिस मनुष्य ने) गुरु की संगति-रूपी जहाज का आसरा लिया, वह इस अथाह तथा विषम संसार-समुद्र से पार उतर गया। जिस मनुष्य को परमात्मा के साथ प्रेम करनेवाला गुरु मिल गया, उसकी (हरेक) कामना पूर्ण हो गई ॥ २ ॥ (हे भाई ! जिन) भक्तजनों ने परमात्मा के नाम का भण्डार प्राप्त कर लिया, उनके तन-मन (माया से) तृप्त हो गए। हे नानक ! (कह— यह नाम-भण्डार) परमात्मा उन्हें देता है, जिनको प्रभु अपना हुक्म मानने के लिए प्रेरित करता है ॥ ३ ॥ १२ ॥ १३३ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ दइआ मइआ करि प्रानपति मोरे मोहि अनाथ सरणि प्रभ तोरी। अंध कूप महि हाथ दे राखहु कछू सिआनप उकति न मोरी ॥ १ ॥ रहाउ ॥ करन करावन सभ किछु तुमही तुम समरथ नाही अन होरी। तुमरी गति मिति तुमही जानी से सेवक जिन भाग मथोरी ॥ १ ॥ अपुने सेवक संगि तुम प्रभ राते ओति पोति भगतन संगि जोरी। प्रिउ प्रिउ नामु तेरा दरसनु चाहै जैसे द्रिसटि ओह चंद चकोरी ॥ २ ॥

राम संत महि भेदु किछु नाही एकु जनु कई महि लाख करोरी। जा कै हीऐ प्रगटु प्रभु होआ अनदिनु कीरतनु रसन रमोरी॥ ३॥ तुम समरथ अपार अति ऊचे सुखदाते प्रभ प्रान अधोरी। नानक कउ प्रभ कीजै किरपा उन संतन कै संगि संगोरी॥ ४॥ १३॥ १३४॥

हे मेरी आत्मा के स्वामी! दया कर। हे प्रभु! मैं अनाथ तेरी शरणागत हूँ। (मैं माया के) अन्धेरे में (हूं) अपना हाथ देकर मुझे बचा ले। मेरी कोई चतुराई, मेरी कोई दलील नहीं चल सकती॥ १॥ रहाउ॥ हे मेरे प्रभु! तुम आप ही सब कुछ कर रहे हो, तुम हरेक शक्ति के मालिक हो, तेरे समान दूसरा कोई नहीं। (हे प्रभु!) तुम कैसे हो, तुम कितने बड़े हो— इस भेद को तुम आप ही जानते हो। जिन मनुष्यों के मस्तक पर भाग्य जागते हैं, वे तेरे सेवक बन जाते हैं॥ १॥ हे मेरे प्रभु! तुम अपने सेवकों के साथ सदा प्यार करते हो, अपने भक्तों से तुमने ऐसी प्रीति जोड़ी हुई है जैसे ताने-बाने में धागे मिले होते हैं। जैसे चकोर की दृष्टि चाँद की ओर रहती है, वही दृष्टि तेरे भक्त की होती है। तेरा भक्त तुझे 'प्यारा-प्यारा' कहकर तेरा नाम जपता है और तेरा दर्शन चाहता है॥ २॥ (हे भाई!) परमात्मा तथा उसके संत मे कोई अन्तर नहीं होता, लेकिन ऐसा मनुष्य लाखों-करोड़ों में कोई एक-आध ही होता है। जिस मनुष्य के हृदय में प्रभु अपना प्रकाश करता है, वह मनुष्य हरवक्त अपनी जीभ से प्रभु की गुणस्तुति उच्चरित करता रहता है॥ ३॥ हे मेरे प्रभु! आत्मा के आसरे, अनन्त ऊँचे, सर्वसुखदाता! तुम सब शक्तियों के स्वामी हो। हे प्रभु! मुझ नानक पर कृपा करो, मुझे उन संतजनों की संगति में स्थान दिए रखो॥ ४॥ १३॥ १३४॥

॥ गउड़ी महला ५॥ तुम हरि सेती राते संतहु। निबाहि लेहु मो कउ पुरख बिधाते ओड़ि पहुचावहु दाते॥ १॥ रहाउ॥ तुमरा मरमु तुमाही जानिआ तुम पूरन पुरख बिधाते। राखहु सरणि अनाथ दीन कउ करहु हमारी गाते॥ १॥ तरण सागर बोहिथ चरण तुमारे तुम जानहु अपुनी भाते। करि किरपा जिसु राखहु संगे तेते पारि पराते॥ २॥ ईत ऊत प्रभ तुम समरथा सभु किछु तुमरै हाथे। ऐसा निधानु देहु मो कउ हरिजन चलै हमारै साथे॥ ३॥ निरगुनीआरे कउ गुनु कीजै हरिनामु मेरा मनु जापे। संत प्रसादि नानक हरि भेटे मन तन सीतल ध्रापे॥ ४॥ १४॥ १३५॥

हे संतजनो ! तुम परमात्मा में अनुरक्त हो । हे सर्वव्यापक, दानी प्रभु ! मुझे भी (अपने प्रेम में) निभा ले, मुझे भी अन्तिम सीमा तक पहुँचा ले ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे सर्वव्यापक कर्त्तार ! मेरे दिल की बात तुम आप ही जानते हो, मुझ अनाथ ग़रीब को अपनी शरण में रख, मेरी आत्मिक अवस्था उच्च बना दो ॥ १ ॥ संसार-समुद्र से पार उतरने के लिए तेरे चरण (मेरे लिए) जहाज़ हैं । किस तरीके से तुम पार उतारते हो ? यह तुम आप ही जानते हो । हे प्रभु ! कृपा करके तुम जिसे-जिसे अपने पास रखते हो, वे सारे (संसार-समुद्र से) पार उतर जाते हैं ॥ २ ॥ हे प्रभु ! इस लोक तथा परलोक में तुम ही सब शक्तियों के स्वामी हो । (सुख-दुःख) तेरे ही हाथ में है । हे प्रभु के संतजनो ! मुझे ऐसा नाम-भण्डार दो, जो मेरे साथ-साथ रहे ॥ ३ ॥ मुझ गुणहीन को (परमात्मा की गुणस्तुति का) गुण दो, (कृपा कर,) मेरा मन परमात्मा का नाम सदा जपता रहे । हे नानक ! गुरु-संत की कृपा से जिन मनुष्यों को मिल पड़ता है, उनके मन (माया की तृष्णा से) तृप्त हो जाते हैं, उनके शरीर शान्त हो जाते हैं, (विकारों की जलन से बच जाते हैं) ॥ ४ ॥ १४ ॥ १३५ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ सहजि समाइओ देव । मो कउ सतिगुर भए दइआल देव ॥ १ ॥ रहाउ ॥ काटि जेवरी कीओ दासरो संतन टहलाइओ । एक नाम को थीओ पूजारी मो कउ अचरजु गुरहि दिखाइओ ॥ १ ॥ भइओ प्रगासु सरब उजीआरा गुर गिआनु मनहि प्रगटाइओ । अंम्रितु नामु पीओ मनु त्रिपतिआ अनभै ठहराइओ ॥ २ ॥ मानि आगिआ सरब सुख पाए दूखह ठाउ गवाइओ । जउ सुप्रसंन भए प्रभ ठाकुर सभु आनद रूपु दिखाइओ ॥ ३ ॥ ना किछु आवत ना किछु जावत सभु खेलु कीओ हरि राइओ । कहु नानक अगम अगम है ठाकुर भगत टेक हरिनाइओ ॥ ४ ॥ १५ ॥ १३६ ॥

हे प्रकाश-रूप प्रभु ! (तेरी कृपा से) मुझपर सतिगुरुजी दयालु हो गए और मैं अब आत्मिक स्थिरता में लीन रहता हूँ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे प्रभु !) गुरु ने मुझे तेरा आश्चर्यजनक रूप दिखा दिया है, उसने मेरे बन्धन काटकर मुझे तेरा दास बना दिया है, मुझे संतजनों की सेवा में लगा दिया है, अब मैं केवल तेरे ही नाम का पुजारी बन गया हूँ ॥ १ ॥ जब गुरु का दिया हुआ ज्ञान मेरे मन में प्रकट हो गया तो मेरे भीतर परमात्मा के अस्तित्व का प्रकाश हो गया, मुझे सर्वत्र उसका प्रकाश दिखाई दे गया । गुरु की कृपा से मैंने आत्मिक जीवन देनेवाले परमात्मा का नाम-रस पान

किया है और मेरा मन तृप्त हो गया है। मैं उस परमात्मा में टिक गया हूँ जिससे कोई भय स्पर्श नहीं कर सकता ॥ २ ॥ गुरु का हुक्म मानकर मैंने सुख-आनन्द प्राप्त कर लिया है, मैंने अपने भीतर से दुखों का डेरा ही उठा दिया है। जब से ठाकुर-प्रभुजी मुझ पर कृपालु हुए हैं, मुझे सर्वत्र वह आनन्द-स्वरूप परमात्मा ही दिख रहा है ॥ ३ ॥ (मेरा विश्वास है कि) न कुछ जन्मता है न कुछ मरता है, यह सारा तो प्रभु-बादशाह ने एक खेल रचाया है। हे नानक ! कह— सर्वपालक परमात्मा अगम्य है, सब जीवों की पहुँच से परे है। उसके भक्तों को उस हरि के नाम का ही सहारा है ॥ ४ ॥ १५ ॥ १३६ ॥

॥ गउड़ी ६ महला ५ ॥ पारब्रहम पूरन परमेसुर मन ता की ओट गहीजै रे। जिनि धारे ब्रहमंड खंड हरि ता को नामु जपीजै रे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मन की मति तिआगहु हरिजन हुकमु बूझि सुखु पाईऐ रे। जो प्रभु करै सोई भल मानहु सुखि दुखि ओही धिआईऐ रे ॥ १ ॥ कोटि पतित उधारे खिन महि करते बार न लागै रे। दीन दरद दुख भंजन सुआमी जिसु भावै तिसहि निवाजै रे ॥ २ ॥ सभ को मात पिता प्रतिपालक जीअ प्रान सुख सागरु रे। देंदे तोटि नाही तिसु करते पूरि रहिओ रतनागरु रे ॥ ३ ॥ जाचिकु जाचै नामु तेरा सुआमी घट घट अंतरि सोई रे। नानकु दासु ता की सरणाई जा ते ब्रिथा न कोई रे ॥ ४ ॥ १६ ॥ १३७ ॥

हे मेरे मन ! उस परमात्मा का आसरा लेना चाहिए जो अनन्त, सर्वव्यापक तथा सर्वोच्च है। हे मन ! उस परमात्मा का नाम जपना चाहिए जिसने समस्त भू-मण्डलों को, सारे जगत् को (उत्पादित कर) सहारा दिया हुआ है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे हरि के सेवको ! मन की चतुराई त्याग दो। परमात्मा की रज़ा को समझकर ही सुख पाया जा सकता है। हे संतजनो ! सुख-दुःख में उस परमात्मा को ही याद करना चाहिए। हे संतजनो ! जो कुछ परमात्मा करता है, उसे भला करके मानो ॥ १ ॥ विकारों में गिरे हुए करोड़ों व्यक्तियों को (यदि चाहे तो) कर्त्तार एक क्षण में (विकारों से) बचा लेता है, (और यह काम करते हुए) कर्त्तार को पल भी नहीं लगता। वह मालिक-प्रभु ग़रीबों के दुःख-दर्द नाश करनेवाला है। जिसपर वह प्रसन्न होता है, उसपर कृपा करता है ॥ २ ॥ परमात्मा सबकी आत्मा और प्राणों के लिए सुखों का समुद्र है, सबका माँ-बाप है, सबका पालन-पोषण-कर्त्ता है। (जीवों को देन) देते हुए कर्त्तार के खज़ाने

में कमी नहीं होती, वह रत्नों की खान है और (उसका भण्डार) रत्नों से भरा हुआ है ॥ ३ ॥ हे मेरे मालिक ! (तेरे द्वार का) भिखारी (नानक) तेरा नाम (दान के रूप में) माँगता है। वह परमात्मा ही हरेक शरीर में बस रहा है। दास नानक उस परमात्मा की ही शरणागत है जिसके द्वार पर से कोई निराश होकर नहीं जाता ॥ ४ ॥ १६ ॥ १३७ ॥

रागु गउड़ी १ पूरबी महला ५

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ हरि हरि कबहू न मनहु बिसारे। ईहा ऊहा सरब सुखदाता सगल घटा प्रतिपारे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ महा कसट काटै खिन भीतरि रसना नामु चितारे। सीतल सांति सूख हरि सरणी जलती अगनि निवारे ॥ १ ॥ गरभ कुंड नरक ते राखै भवजलु पारि उतारे। चरन कमल आराधत मन महि जम की त्रास बिदारे ॥ २ ॥ पूरन पारब्रहम परमेसुर ऊचा अगम अपारे। गुण गावत धिआवत सुख सागर जूए जनमु न हारे ॥ ३ ॥ कामि क्रोधि लोभि मोहि मनु लीनो निरगुण के दातारे। करि किरपा अपुनो नामु दीजै नानक सद बलिहारे ॥ ४ ॥ १ ॥ १३८ ॥

(हे भाई !) कभी भी परमात्मा को अपने मन से न भुला। वह परमात्मा लोक-परलोक में जीवों को सुख देनेवाला है और सब शरीरों को पालनेवाला है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (जो मनुष्य) जीभ द्वारा परमात्मा का नाम-स्मरण करता है, उस मनुष्य के बड़े-बड़े कष्ट वह एक क्षण में दूर कर देता है। जो मनुष्य उस हरि की शरण लेते हैं (उनके भीतर से वह हरि) जलती आग बुझा देता है, वे शान्त हो जाते हैं, उनके भीतर शान्ति और आनन्द बन जाते हैं ॥ १ ॥ हे भाई ! परमात्मा के सुन्दर चरणों की मन में आराधना करने से परमात्मा माँ के पेट के नरक-कुण्ड से बचा लेता है। संसार-समुद्र से पार उतार देता है और मृत्यु का भय दूर कर देता है ॥२॥ (हे भाई !) परमात्मा सर्वव्यापक है, सर्वोच्च मालिक है, अगम्य अनन्त है, उस सुखों के समुद्र प्रभु के गुण गाने तथा नाम की आराधना करने से मनुष्य अपना जन्म व्यर्थ नहीं गवाँ जाता ॥ ३ ॥ हे नानक ! (प्रार्थना कर और कह)— हे गुणहीन के लिए भी देन देनेवाले ! मेरा मन काम, क्रोध, लोभ, मोह में फँसा पड़ा है। कृपा कर, मुझे अपना नाम दे, मैं तुझ पर सदा बलिहारी जाता हूँ ॥ ४ ॥ १ ॥ १३८ ॥

राग़ु गउड़ी चेती १ महला ५

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ सुखु नाही रे हरि भगति बिना । जीति जनमु इहु रतनु अमोलकु साधसंगति जपि इक खिना ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सुत संपति बनिता बिनोद । छोडि गए बहु लोग भोग ॥ १ ॥ हैवर गैवर राज रंग । तिआगि चलिओ है मूड़ नंग ॥ २ ॥ चोआ चंदन देह फूलिआ । सो तनु धर संगि रूलिआ ॥ ३ ॥ मोहि मोहिआ जानै दूरि है । कहु नानक सदा हदूरि है ॥ ४ ॥ १ ॥ १३९ ॥

परमात्मा की भक्ति के बिना सुख नहीं मिल सकता । (इसलिए) सत्संगति में मिलकर पल-पल परमात्मा का नाम जप और इस मनुष्य-जन्म (की बाज़ी) जीत ले । यह (मनुष्य-जन्म) एक ऐसा रत्न है जिसका मूल्यांकन नहीं किया जा सकता ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे भाई !) पुत्र, धन, पदार्थ, स्त्री के प्रेम —अनेकों लोग ऐसे आनन्द छोड़कर (यहाँ से) चले गए ॥ १ ॥ बढ़िया घोड़े, हाथी और हुकूमत का आनन्द— मूर्ख मनुष्य इन्हें छोड़कर (अन्त में) नंगा (यहाँ से) चला जाता है ॥ २ ॥ (मनुष्य अपने) शरीर पर इत्र तथा चन्दन (लगाकर) अभिमान करता है (लेकिन) वह शरीर (अन्त में) मिट्टी में मिल जाता है ॥ ३ ॥ (माया के) मोह में फँसा मनुष्य समझता है (कि परमात्मा कहीं) दूर बसता है । (पर) हे नानक ! कह— परमात्मा सदा (हरेक जीव के) साथ-साथ रहता है ॥४॥१॥१३९॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ मन धर तरबे हरिनामनो । सागर लहरि संसा संसारु गुरु बोहिथु पारगरामनो ॥ १ ॥ रहाउ ॥ कलि कालख अंधिआरीआ । गुर गिआन दीपक उजिआरीआ ॥ १ ॥ बिखु बिखिआ पसरी अति घनी । उबरे जपि जपि हरिगुनी ॥ २ ॥ मतवारो माइआ सोइआ । गुर भेटत भ्रमु भउ खोइआ ॥ ३ ॥ कहु नानक एकु धिआइआ । घटि घटि नदरी आइआ ॥ ४ ॥ २ ॥ १४० ॥

हे मन ! परमात्मा की ओर मन (संसार-समुद्र से) पार उतरने के लिए आसरा है । यह संसार चिन्ताओं की लहरों से भरा हुआ समुद्र है । गुरु जहाज़ है, जो इसमें से पार करने में समर्थ है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे भाई ! दुनिया की ख़ातिर) झगड़े (एक ऐसी) कालिख है जो (मन में मोह का) अन्धेरा पैदा करती है । गुरु का ज्ञान दीपक है जो (मन में ऊँचे

आत्मिक जीवन का) प्रकाश पैदा करता है ।। १ ।। माया (के मोह) का ज़हर (जगत् में) बहुत अधिक बिखरा हुआ है। परमात्मा के गुणों को याद करते ही (मनुष्य इस ज़हर की मार से) बच सकते हैं ।। २ ।। माया में मस्त हुआ मनुष्य (मोह की निद्रा में) सोया रहता है लेकिन गुरु को भेटने से दुबिधा तथा भय दूर कर लेता है ।। ३ ।। हे नानक ! कह— जिस मनुष्य ने एक परमात्मा का ध्यान किया है, उसे परमात्मा हरेक शरीर में बसता दिखाई देता है ।। ४ ।। २ ।। १४० ।।

।। गउड़ी महला ५ ।। दीबानु हमारो तुही एक । सेवा थारी गुरहि टेक ।। १ ।। रहाउ ।। अनिक जुगति नही पाइआ । गुरि चाकर लै लाइआ ।। १ ।। मारे पंच बिखादीआ । गुर किरपा ते दलु साधिआ ।। २ ।। बखसीस वजहु मिलि एकु नाम । सूख सहज आनंद बिस्राम ।। ३ ।। प्रभ के चाकर से भले । नानक तिन मुख ऊजले ।। ४ ।। ३ ।। १४१ ।।

हे प्रभु ! केवल तुम ही मेरा आसरा हो। गुरु की ओट लेकर मैं तेरी ही सेवा-भक्ति करता हूँ ।। १ ।। रहाउ ।। हे प्रभु ! अनेक ढंगों से मैं तुम्हें प्राप्त नहीं कर सका। (अब) गुरु ने (कृपा करके) तेरा सेवक बनाकर (तेरे चरणों में) लगा दिया है ।। १ ।। (अब मैंने) पाँचों कामादिक शत्रु मार दिए हैं, गुरु की कृपा से मैंने (इन पाँचों की) फ़ौज वश में कर ली है ।। २ ।। (जिस मनुष्य को) केवल तेरा नाम कृपा के तौर पर मिल जाता है उसके भीतर आत्मिक स्थिरता के सुख तथा आनन्द बस जाते हैं ।। ३ ।। हे नानक ! (कह— जो मनुष्य) परमात्मा के सेवक बनते हैं, वे भाग्यशाली हो जाते हैं, (परमात्मा के दरबार में) उनके मुख उज्ज्वल होते हैं ।। ४ ।। ३ ।। १४१ ।।

।। गउड़ी महला ५ ।। जीअरे ओल्हा नाम का । अवरु जि करन करावनो तिन महि भउ है जाम का ।। १ ।। रहाउ ।। अवर जतनि नही पाईऐ । वडै भागि हरि धिआईऐ ।। १ ।। लाख हिकमती जानीऐ । आगै तिलु नही मानीऐ ।। २ ।। अहंबुधि करम कमावने । ग्रिह बालू नीरि बहावने ।। ३ ।। प्रभु क्रिपालु किरपा करै । नामु नानक साधू संगि मिलै ।।४।।४।।१४२।।

हे मेरी आत्मा ! परमात्मा के नाम का (ही) आसरा (लोक-परलोक में सहायता करता है)। (नाम के अतिरिक्त माया की खातिर) दूसरा जितना भी यत्न है, उन समस्त कार्यों में आत्मिक मृत्यु का ख़तरा

(बनता जाता है) ।। १ ।। रहाउ ।। (पर) सौभाग्यवश ही परमात्मा का स्मरण किया जा सकता है, (और स्मरण के बिना किसी भी) दूसरे यत्न से परमात्मा नहीं मिलता ।। १ ।। (भलेही जगत् में) लाखों चतुराइयों के कारण इज्ज़त प्राप्त कर लें, परलोक में तनिकमात्र भी आदर नहीं मिलता ।। २ ।। (यदि धार्मिक) कर्म भी किए जाएँ (लेकिन वह) अहंकार-युक्त बुद्धि बढ़ानेवाले हों, तो वे ऐसे कर्म रेत के घरों के समान ही हैं, जिन्हें (बाढ़ के) पानी ने बहा दिया ।। ३ ।। हे नानक ! (कह—) दया का स्रोत परमात्मा जिस मनुष्य पर कृपा करता है, उसे गुरु की संगति में परमात्मा का नाम मिलता है ।। ४ ।। ४ ।। १४२ ।।

।। गउड़ी महला ५ ।। बारनै बलिहारनै लख बरीआ । नामो हो नामु साहिब को प्रान अधरीआ ।। १ ।। रहाउ ।। करन करावन तुही एक । जीअ जंत की तुही टेक ।। १ ।। राज जोबन प्रभ तूं धनी । तूं निरगुन तूं सरगुनी ।। २ ।। ईहा ऊहा तुम रखे । गुर किरपा ते को लखे ।। ३ ।। अंतरजामी प्रभ सुजानु । नानक तकीआ तुही ताणु ।। ४ ।। ५ ।। १४३ ।।

हे भाई ! मैं (परमात्मा के नाम पर) लाखों बार बलिहारी जाता हूं । मालिक-प्रभु का नाम ही जीवों के प्राणों का आसरा है ।। १ ।। रहाउ ।। हे प्रभु ! केवल तुम ही सब कुछ करने की सामर्थ्य रखते हो, तुम ही सारे जीव-जन्तुओं का सहारा हो ।। १ ।। हे प्रभु ! तुम ही हुकूमत के मालिक हो, तुम ही यौवन के स्वामी हो, (जब जगत् नहीं बना था) माया के तीनों गुणों से रहित भी तुम ही हो, यह दृश्यमान आकार माया के तीनों गुणों वाला— यह भी तू आप ही है ।। २ ।। (हे प्रभु !) लोक-परलोक में तुम ही सब की रक्षा करते हो, (पर) कोई विरला ही मनुष्य गुरु की कृपा से यह भेद समझता है ।। ३ ।। हे प्रभु ! तुम सब के मन की जानते हो, तुम ही बुद्धिमान हो । नानक का सहारा भी तुम ही हो, आसरा भी तुम ही हो ।। ४ ।। ५ ।। १४३ ।।

।। गउड़ी महला ५ ।। हरि हरि हरि आराधीऐ । संत संगि हरि मनि वसै भरमु मोहु भउ साधीऐ ।। १ ।। रहाउ ।। बेद पुराण सिम्रिति भने । सभ ऊच बिराजित जन सुने ।। १ ।। सगल असथान भै भीत चीन । राम सेवक भै रहत कीन ।। २ ।। लख चउरासीह जोनि फिरहि । गोबिंद लोक नही जनमि मरहि ।। ३ ।। बल बुधि सिआनप हउमै रही । हरि साध सरणि नानक गही ।। ४ ।। ६ ।। १४४ ।।

(हे भाई !) सदा परमात्मा का नाम-स्मरण करना चाहिए। संतों की संगति में (ही) परमात्मा (मनुष्य के) मन में बस सकता है; दुबिधाओं, मोह तथा भय को वश में किया जा सकता है ।। १ ।। रहाउ ।। (हे भाई ! पण्डित लोग चाहे) वेद, पुराण, स्मृतियाँ पढ़ते हैं लेकिन संतजन दूसरे सब लोगों से ऊँचे आत्मिक ठिकाने पर टिके हुए सुने जाते हैं ।। १ ।। (हे भाई !) दूसरे समस्त हृदय-स्थान भयभीत देखे जाते हैं, (परमात्मा के स्मरण ने) परमात्मा के भक्तों को भयरहित कर दिया है ।। २ ।। (जीव) चौरासी लाख योनियों में भटकते फिरते हैं, लेकिन परमात्मा के भक्त आवागमन के चक्र में नहीं पड़ते ।। ३ ।। (हे नानक ! जिन मनुष्यों ने) परमात्मा का, गुरु का आसरा ले लिया, उनके भीतर से अहं-भावना दूर हो जाती है। वे अपनी शक्ति, बुद्धि तथा चतुराई का आसरा नहीं लेते ।। ४ ।। ६ ।। १४४ ।।

।। गउड़ी महला ५ ।। मन रामनाम गुन गाईऐ । नीत नीत हरि सेवीऐ सासि सासि हरि धिआईऐ ।। १ ।। रहाउ ।। संत संगि हरि मनि वसै । दुखु दरदु अनेरा भ्रमु नसै ।। १ ।। संत प्रसादि हरि जापीऐ । सो जनु दूखि न विआपीऐ ।। २ ।। जा कउ गुरु हरिमंत्रु दे । सो उबरिआ माइआ अगनि ते ।। ३ ।। नानक कउ प्रभ मइआ करि । मेरै मनि तनि वासै नामु हरि ।। ४ ।। ७ ।। १४५ ।।

हे मन ! परमात्मा का नाम-स्मरण कर, परमात्मा के गुण गा। (हे मन !) सदा ही परमात्मा की भक्ति करनी चाहिए ।। १ ।। रहाउ ।। गुरु-संत की संगति में (रहने से) परमात्मा मनुष्य के मन में आ बसता है। (इससे) हरेक प्रकार का दु:ख-दर्द दूर हो जाता है, मोह का अन्धेरा दूर हो जाता है, (माया से उत्पन्न) दुबिधा समाप्त हो जाती है ।। १ ।। गुरु की कृपा से (ही) परमात्मा का नाम जपा जा सकता है। (जो मनुष्य जपता है) वह मनुष्य किसी प्रकार के दु:ख में नहीं घिरता ।। २ ।। (हे भाई !) गुरु जिस मनुष्य को परमात्मा का नाम-मन्त्र देता है, वह मनुष्य माया की (तृष्णा) आग (में जलने) से बच जाता है ।। ३ ।। (हे प्रभु ! मुझ) नानक पर कृपा कर, (ताकि) मेरे मन, हृदय में, हे हरि ! तेरा नाम बस जाए ।। ४ ।। ७ ।। १४५ ।।

।। गउड़ी महला ५ ।। रसना जपीऐ एकु नाम । ईहा सुखु आनंदु घना आगै जीअ कै संगि काम ।। १ ।। रहाउ ।। कटीऐ तेरा अहं रोगु । तूं गुर प्रसादि करि राज जोगु ।। १ ।।

हरिरसु जिनि जनि चाखिआ। ता की त्रिसना लाथीआ ॥ २ ॥ हरि बिस्राम निधि पाइआ। सो बहुरि न कतही धाइआ ॥ ३ ॥ हरि हरि नामु जा कउ गुरि दीआ। नानक ता का भउ गइआ ॥ ४ ॥ ८ ॥ १४६ ॥

(हे भाई!) जीभ से हरि-नाम जपते रहना चाहिए। (नाम जपने से) इस लोक में बहुत सुख मिलता है और परलोक में (यह हरि-नाम) आतमा के काम आता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे भाई! हरि-नाम के प्रभाव से) तेरा अहंकार का रोग काटा जा सकता है। (नाम जप-जपकर) गुरु की कृपा से तू गृहस्थ का सुख भी ले सकता है, और प्रभु के साथ मिलाप भी प्राप्त कर सकता है ॥ १ ॥ (हे भाई!) जिस मनुष्य ने परमात्मा का नाम-रस चख लिया, उसकी तृष्णा समाप्त हो जाती है ॥ २ ॥ (जिसने नाम-रस चख लिया) उसे शान्ति का भण्डार परमात्मा मिल गया, वह मनुष्य किसी दूसरी दिशा में भटकता नहीं फिरता ॥ ३ ॥ हे नानक! जिस मनुष्य को गुरु ने परमात्मा का नाम दे दिया, उसका भय दूर हो गया ॥ ४ ॥ ८ ॥ १४६ ॥

॥ गउड़ी २ महला ५ ॥ जा कउ बिसरै रामनाम ताहू कउ पीर। साध संगति मिलि हरि रवहि से गुणी गहीर ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जा कउ गुरमुखि रिदै बुधि। ताके करतल नव निधि सिधि ॥ १ ॥ जो जानहि हरिप्रभ धनी। किछु नाही ता कै कमी ॥ २ ॥ करणैहारु पछानिआ। सरब सूख रंग माणिआ ॥ ३ ॥ हरि धनु जा कै ग्रिहि वसै। कहु नानक तिन संगि दुखु नसै ॥ ४ ॥ ९ ॥ १४७ ॥

(हे भाई!) जिस मनुष्य को परमात्मा का नाम विस्मृत हो जाता है, उसे ही दुःख आ घेरता है। जो मनुष्य सत्संगति में बैठकर परमात्मा का स्मरण करते हैं, वे गुणों के मालिक बन जाते हैं, वे विशाल मन वाले बन जाते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे भाई!) गुरु की शरण लेकर जिस मनुष्य के हृदय में (स्मरण) सूझ पैदा हो जाती है, उस मनुष्य के हाथों की हथेलियों पर नौ भण्डार और तमाम सिद्धियाँ (आ टिकती हैं) ॥ १ ॥ जो मनुष्य मालिक हरि-प्रभु के साथ ऐक्य कर लेते हैं, उनके घर किसी वस्तु की कोई कमी नहीं रहती ॥ २ ॥ (हे भाई!) जिस मनुष्य ने सृजनहार कर्त्तार के साथ ऐक्य कर लिया, वह आत्मिक सुख तथा आनन्द प्राप्त करता है ॥ ३ ॥ हे नानक! कह— जिन मनुष्यों के हृदय-घर में

परमात्मा का नाम-धन आ बसता है, उनकी संगति में रहते हुए हरेक प्रकार का दु:ख दूर हो जाता है ।। ४ ।। ९ ।। १४७ ।।

।। गउड़ी महला ५ ।। गरबु बडो मूलु इतनो । रहनु नही गहु कितनो ।। १ ।। रहाउ ।। बेबरजत बेद संतना उआहू सिउ रे हितनो । हार जूआर जूआ बिधे इंद्री वसि लै जितनो ।। १ ।। हरन भरन संपूरना चरन कमल रंगि रितनो । नानक उधरे साधसंगि किरपा निधि मै दितनो ।।२।।१०।।१४८।।

हे जीव ! तुझे अहंकार तो बहुत है पर (इस अहंकार का) मूल थोड़ा सा ही है । इस संसार में तेरा ठिकाना अस्थायी है पर माया के प्रति खिंचाव बहुत अधिक है ।। १ ।। रहाउ ।। हे जीव ! (जिस माया-मोह के प्रति) वेद आदि धर्मग्रन्थ, संतजन वर्जना करते हैं, उसी से तेरा प्रेम बना रहता है, तू जीवन बाजी हार रहा है जैसे जुआरी जूए में हारता है । इन्द्रियों ने तुझे अपने वश में लेकर जीत रखा है ।। १ ।। हे जीव ! सबके संहारक तथा पालक परमात्मा के सुन्दर चरणों के प्रेम (में टिकने) से तू रिक्त है । हे नानक ! (कह— जो मनुष्य) सत्संगति में (जुड़ते हैं, वे माया-मोह से) बच जाते हैं । कृपा के भण्डार परमातमा ने (कृपा करके) मुझ नानक को अपने चरणों के प्रेम की देन दी है ।। २ ।। १० ।। १४८ ।।

।। गउड़ी ३ महला ५ ।। मोहि दासरो ठाकुर को । धानु प्रभ का खाना ।। १ ।। रहाउ ।। ऐसो है रे खसमु हमारा । खिन महि साजि सवारणहारा ।। १ ।। कामु करीजै ठाकुर भावा । गीत चरित प्रभ के गुन गावा ।। २ ।। सरण परिओ ठाकुर वजीरा । तिना देखि मेरा मनु धीरा ।। ३ ।। एक टेक एको आधारा । जन नानक हरि की लागा कारा ।। ४ ।। ११ ।। १४९ ।।

पालनहार प्रभु का मैं एक तुच्छ सेवक हूँ, मैं उसी का दिया हुआ अन्न खाता हूँ ।। १ ।। रहाउ ।। हे भाई ! मेरा पति-प्रभु ऐसा है कि एक क्षण में रचना रचकर उसे सुन्दर बनाने की सामर्थ्य रखता है ।। १ ।। (हे भाई ! मैं ठाकुर प्रभु का दिया खाता हूँ) यदि उस ठाकुर प्रभु की कृपा मुझपर होवे तो मैं (उसका ही) काम करूँ, उसके गुण गाता रहूँ, उसकी गुणस्तुति के गीत गाता रहूँ ।। २ ।। मैं उस ठाकुर प्रभु के वज़ीरों की शरणागत हूँ, उनके दर्शन करके मुझे धैर्य हो गया है (कि मैं उस मालिक की गुणस्तुति कर सकूँगा) ।। ३ ।। हे दास नानक ! (कह— ठाकुर के

वज़ीरों की शरण लेकर) मैंने एक परमात्मा को ही (अपने जीवन की) ओट तथा आसरा बनाया है और परमात्मा (की गुणस्तुति) के काम में लग गया हूँ ॥ ४ ॥ ११ ॥ १४९ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ है कोई ऐसा हउमै तोरै । इसु मीठी ते इहु मनु होरै ॥ १ ॥ रहाउ ॥ अगिआनी मानुखु भइआ जो नाही सो लोरै । रैणि अंधारी कारीआ कवन जुगति जितु भोरै ॥ १ ॥ भ्रमतो भ्रमतो हारिआ अनिक बिधी करि टोरै । कहु नानक किरपा भई साध संगति निधि मोरै ॥ २ ॥ १२ ॥ १५० ॥

(हे भाई !) कहीं कोई ऐसा मनुष्य भी मिल जाएगा जो इस मन को इस मीठी (माया-मोह) से रोक सके ? ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे भाई ! इसके प्रभाव से) मनुष्य अपनी अक्ल गवाँ बैठा है (क्योंकि) जो (सदा निभाने योग्य) नहीं है, उसी को खोजता फिरता है। (मनुष्य के मन में माया-मोह की) काली अन्धेरी रात्रि है। वह कौन सा तरीका हो सकता है जिससे (इसके भीतर ज्ञान का) दिन चढ़ सके ? ॥ १ ॥ हे नानक ! कह— (माया-मोह से रोक सकने वाले की) अनेक तरीकों से खोज करता-करता और भटकता-भटकता थक गया हूँ। प्रभु-कृपा से अब सत्संगति ही मेरे लिए (उन सारे गुणों का) भण्डार है जिसके प्रभाव से माया के मोह से मन रुक सकता है ॥ २ ॥ १२ ॥ १५० ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ चिंतामणि करुणामए ॥ १ ॥ रहाउ ॥ दीन दइआला पारब्रहम । जा कै सिमरणि सुख भए ॥ १ ॥ अकालपुरख आगाधि बोध । सुनत जसो कोटि अघ खए ॥ २ ॥ किरपा निधि प्रभ मइआ धारि । नानक हरि हरि नाम लए ॥ ३ ॥ १३ ॥ १५१ ॥

हे करुणामय प्रभु ! तुम ही रत्न हो जो समस्त जीवों की सोची हुई कामना पूर्ण करता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे पारब्रह्म ! तू ग़रीबों पर दया करनेवाला है। तेरे दर्शन के प्रभाव से सारे सुख प्राप्त हो जाते हैं ॥ १ ॥ हे अकालपुरुष ! तेरे स्वरूप की समझ जीवों की पकड़ से परे है, तेरी गुणस्तुति सुनते हुए करोड़ों पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥ हे नानक ! (प्रार्थना कर और कह—) कृपा-भण्डार प्रभु ! जिस मनुष्य पर तू दया करता है, वह तेरा हरि-नाम-स्मरण करता है ॥ ३ ॥ १३ ॥ १५१ ॥

॥ गउड़ी पूरबी ४ महला ५ ॥ मेरे मन सरणि प्रभू सुख पाए। जा दिनि बिसरै प्रान सुखदाता सो दिनु जात अजाए ॥१॥ रहाउ ॥ एक रैण के पाहुन तुम आए बहु जुग आस बधाए। ग्रिह मंदर संपै जो दीसै जिउ तरवर की छाए ॥ १ ॥ तनु मेरा संपै सभ मेरी बाग मिलख सभ जाए। देवनहारा बिसरिओ ठाकुरु खिन महि होत पराए ॥ २ ॥ पहिरै बागा करि इसनाना चोआ चंदन लाए। निरभउ निरंकार नही चीनिआ जिउ हसती नावाए ॥ ३ ॥ जउ होइ क्रिपाल त सतिगुरु मेलै सभि सुख हरि के नाए। मुकतु भइआ बंधन गुरि खोले जन नानक हरिगुण गाए ॥ ४ ॥ १४ ॥ १५२ ॥

हे मेरे मन ! जो मनुष्य प्रभु की शरण लेता है, वह आत्मिक आनन्द प्राप्त करता है। जिस दिन प्राणों के दाता, सुखदाता (प्रभु) जीव को विस्मृत हो जाता है, (जीव का) वह दिन व्यर्थ चला जाता है ॥१॥रहाउ॥ (हे भाई !) तुम एक रात (कहीं यात्रा) में बितानेवाले अतिथि की तरह (जगत् में) आए हो —पर यहाँ कितने ही युग रहने की आशा कर रहे हो। (हे भाई !) यह घर, महल, धन-पदार्थ जो कुछ दृष्टिगोचर हो रहा है, यह सब कुछ वृक्ष की छाया के तुल्य है ॥ १ ॥ यह शरीर मेरा है, यह धन-पदार्थ सारा मेरा है— (हे भाई ! इस ममत्व में फँसकर मनुष्य को सब कुछ) देनेवाला ठाकुर विस्मृत हो जाता है, (सारे पदार्थ) एक क्षण में पराए हो जाते हैं ॥ २ ॥ मनुष्य नहा-धोकर श्वेत वस्त्र पहनता है, इत्र तथा चन्दन आदि लगाता है, लेकिन जो मनुष्य निर्भय, निरंकार के साथ जान-पहचान नहीं करता तो यह सब प्रयास ऐसे हैं जैसे कोई व्यक्ति हाथी को नहलाता है ॥ ३ ॥ (लेकिन) हे नानक ! (जीवों के भी क्या वश !) जब परमात्मा (किसी पर) दयालु होता है, तब उसे गुरु मिलाता है; (गुरु उसे नाम की देन देता है जिस) हरि-नाम में सारे ही सुख हैं। जिस मनुष्य के बन्धन गुरु ने खोल दिए, वह मनुष्य (ही) परमात्मा के गुण गाता है ॥ ४ ॥ १४ ॥ १५२ ॥

॥ गउड़ी पूरबी महला ५ ॥ मेरे मन गुरु गुरु गुरु सद करीऐ। रतन जनमु सफलु गुरि कीआ दरसन कउ बलिहरीऐ ॥१॥ रहाउ ॥ जेते सास ग्रास मनु लेता तेते ही गुन गाईऐ। जउ होइ दैआलु सतिगुरु अपुना ता इह मति बुधि पाईऐ ॥ १ ॥ मेरे मन नामि लए जम बंध ते छूटहि सरब सुखा सुख पाईऐ।

सेवि सुआमी सतिगुरु दाता मन बंछत फल आईऐ ॥ २ ॥ नामु इसटु मीत सुत करता मन संगि तुहारै चालै । करि सेवा सतिगुर अपुने की गुर ते पाईऐ पालै ॥ ३ ॥ गुरि किरपालि क्रिपा प्रभि धारी बिनसे सरब अंदेसा । नानक सुखु पाइआ हरि कीरतनि मिटिओ सगल कलेसा ॥ ४ ॥ १५ ॥ १५३ ॥

हे मेरे मन ! सदा ही गुरु का स्मरण रखना चाहिए । गुरु-दर्शन पर बलिहारी जाना चाहिए । गुरु ने ही बहुमूल्य मनुष्य-जन्म को फल लगाया है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जीव जितने भी साँस लेता है, जितने भी ग्रास खाता है, उतने ही परमात्मा के गुण गाता रहे । यह बुद्धि जीव को तभी मिलती है जब प्यारा सतिगुरु दयालु हो ॥ १ ॥ हे मेरे मन ! यदि तू परमात्मा का नाम-स्मरण करता रहे तो यम के बन्धनों से मुक्ति पा लेगा, (क्योंकि) नाम-स्मरण करने से सारे सुखों से श्रेष्ठ आत्मिक आनन्द प्राप्त हो जाता है । (हे भाई !) मालिक-प्रभु के नाम की देन देनेवाले सतिगुरु की सेवा करके मनोवांछित फल प्राप्त हो जाते हैं ॥ २ ॥ हे मेरे मन ! कर्त्तार का नाम ही तेरा असल प्यारा है, मित्र है और पुत्र है । हे मन ! यह नाम ही हरवक्त तेरा साथ देता है । हे मन ! सतिगुरु की शरण लो, कर्त्तार का नाम सतिगुरु से ही मिलता है ॥ ३ ॥ हे नानक ! जिस मनुष्य पर कृपालु सतिगुरु ने, परमात्मा ने कृपा की उसकी सब चिन्ताएँ समाप्त हो गईं । जिस मनुष्य ने परमात्मा के कीर्त्तन में आनन्द प्राप्त किया, उसके समस्त दुःख-क्लेश दूर हो गए ॥ ४ ॥ १५ ॥ १५३ ॥

रागु गउड़ी महला ५

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ त्रिसना बिरले ही की बुझी हे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ कोटि जोरे लाख क्रोरे मनु न होरे । परै परै ही कउ लुझी हे ॥ १ ॥ सुंदर नारी अनिक परकारी परग्रिह बिकारी । बुरा भला नही सुझी हे ॥ २ ॥ अनिक बंधन माइआ भरमतु भरमाइआ गुण निधि नही गाइआ । मन बिखै ही महि लुझी हे ॥ ३ ॥ जा कउ रे किरपा करै जीवत सोई मरै साध संगि माइआ तरै । नानक सो जनु दरि हरि सिझी हे ॥ ४ ॥ १ ॥ १५४ ॥

(सामान्यत: हालत यह है कि मनुष्यों में) किसी विरले की ही सांसारिक तृष्णा मिट पाई है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ करोड़ों रुपये कमाता है, लाखों-

करोड़ों रुपये एकत्रित करता है, मन को रोकता नहीं (बल्कि) अधिकाधिक धन-संग्रह करने के लिए (तृष्णा की आग में) जलता रहता है ॥ १ ॥ मनुष्य अपनी सुन्दर स्त्री के साथ अनेक प्रकार से प्रेम करता है फिर भी परस्त्री के साथ नीच कर्म करता है; (उसे) यह नही सूझता कि कुकर्म और सुकर्म क्या हैं ? ॥ २ ॥ (माया-मोह के) अनेक बन्धनों में बँधा हुआ मनुष्य भटकता फिरता है, काया इसे परेशान करती है। (माया के प्रभाव के कारण) मनुष्य गुणों के भण्डार परमात्मा की गुणस्तुति नहीं करता। मनुष्यों के मन विषयों की आग में जलते रहते हैं ॥ ३ ॥ हे नानक ! (कह—) हे भाई ! जिस मनुष्य पर परमात्मा कृपा करता है, वही मनुष्य लौकिक कार्य-व्यवहार करता हुआ भी माया के मोह से अछूता रहता है और सत्संगति में रहकर माया से पार उतर जाता है। वह मनुष्य परमात्मा के द्वार पर सफल गिना जाता है ॥ ४ ॥ १ ॥ १५४ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ सबहू को रसु हरि हो ॥ १ ॥ रहाउ ॥ काहू जोग काहू भोग काहू गिआन काहू धिआन। काहू हो डंड धरि हो ॥ १ ॥ काहू जाप काहू ताप काहू पूजा होम नेम। काहू हो गउनु करि हो ॥ २ ॥ काहू तीर काहू नीर काहू बेद बीचार। नानका भगति प्रिअ हो ॥३॥२॥१५५॥

हे माई ! परमात्मा का नाम ही सब जीवों का श्रेष्ठ आनन्द है ॥१॥ रहाउ ॥ हे भाई ! (प्रभु के नाम से खाली होकर) किसी मनुष्य को योग कमाने का चाव हो गया है, किसी को दुनिया के पदार्थ भोगने का चस्का है। किसी को ज्ञान-चर्चा अच्छी लगती है, किसी को समाधियाँ पसन्द हैं और किसी को डण्डाधारी योगी बनना अच्छा लगता है ॥ १ ॥ हे भाई ! (परमात्मा का नाम छोड़कर) किसी को जाप पसन्द आ रहे हैं, किसी को धूनियाँ तपानी अच्छी लगती हैं, किसी को देवपूजा, किसी को होम आदि का काम पसन्द है और किसी को (साधू बनकर) धरती पर फिरना अच्छा लगता है ॥ २ ॥ हे भाई ! किसी को किसी नदी के किनारे बैठना, किसी को तीर्थ-स्नान और किसी को वेदों का अध्ययन पसन्द है। पर, हे नानक ! परमात्मा भक्ति को प्रेम करनेवाला है ॥३॥२॥१५५॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ गुन कीरति निधि मोरी ॥ १ ॥ रहाउ ॥ तूं ही रस तूं ही जस तूं ही रूप तू ही रंग। आस ओट प्रभ तोरी ॥ १ ॥ तू ही मान तूं ही धान तू ही पति तू ही प्रान। गुरि तूटी लै जोरी ॥ २ ॥ तू ही ग्रिहि तू ही बनि तू ही गाउ तू ही सुनि। है नानक नेर नेरी ॥ ३ ॥ ३ ॥ १५६ ॥

(हे प्रभु !) तेरे गुणों की प्रशंसा करनी ही मेरे लिए (लौकिक पदार्थों का) भण्डार है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे प्रभु ! तुम ही आस्वादन हो, तुम ही (दुनियावी) उपलब्धियाँ हों, तुम ही (मेरे लिए) जगत् के सुन्दर रूप और रंग-तमाशे हो। हे प्रभु ! मुझे तेरी ही ओट है, तेरी ही आस है ॥ १ ॥ तुम ही मेरे मान-आदर हो, तुम ही मेरा धन हो, तुम ही मेरी प्रतिष्ठा हो, तुम ही मेरे प्राणों का सहारा हो। मेरी टूटी हुई (सुरति) को गुरु ने (तेरे साथ) जोड़ दिया है ॥ २ ॥ हे प्रभु ! तुम ही मुझे घर में दिख रहे हो, तुम ही मुझे जंगल में दिख रहे हो, तुम ही मुझे आबादी में दिख रहे हो और तुम ही मुझे ऊजाड़ में दिख रहे हो। हे नानक ! प्रभु (हरेक जीव के) अत्यन्त निकट बसता है ॥ ३ ॥ ३ ॥ १५६ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ मातो हरि रंगि मातो ॥ १ ॥ रहाउ ॥ ओुही पीओ ओुही खीओ गुरहि दीओ दानु कीओ। उआ हू सिउ मनु रातो ॥ १ ॥ ओुही भाठी ओुही पोचा उही पिआरो उही रूचा। मनि ओहो सुखु जातो ॥ २ ॥ सहज केल अनद खेल रहे फेर भए मेल। नानक गुर सबदि परातो ॥ ३ ॥ ४ ॥ १५७ ॥

(हे योगी ! मैं भी) मतवाला हूँ, (लेकिन मैं तो) परमात्मा की प्रेम-मदिरा से मतवाला हो रहा हूँ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मैंने वह नाम-मद ही पिया है, वह नाम-मद पीकर ही मैं प्रसन्न हो रहा हूँ, गुरु ने मुझे वह नाम-मद दिया है, मुझे यह देन दी है। अब उस नाम-मद के साथ ही मेरा मन अनुरक्त है ॥ १ ॥ (हे जोगी !) परमात्मा का नाम ही भट्टी है, वह नाम ही (शीतलतादायक) कपड़ा है, प्रभु का नाम ही प्याला है और नाम-मद ही मेरी लगन है। (हे जोगी !) मैं अपने मन में वही (नाम-मद का) आनन्द अनुभव कर रहा हूँ ॥ २ ॥ हे नानक ! (कह— हे योगी ! जिस मनुष्य का मन) गुरु के शब्द में मिला दिया जाता है, वह आत्मिक स्थिरता के आनन्द अनुभव करता है, उसका (प्रभु-चरणों से) मिलाप हो जाता है और उसके जन्म-मरण के चक्र समाप्त हो जाते हैं ॥३॥४॥१५७॥

रागु गौड़ी मालवा महला ५

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ हरिनामु लेहु मीता लेहु। आगै बिखम पंथु भैआन ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सेवत सेवत सदा सेवि तेरै संगि बसतु है कालु। करि सेवा तूं साध की हो काटीऐ जम

जालु ॥ १ ॥ होम जग तीरथ कीए बिचि हउमै बधे बिकार । नरकु सुरगु दुइ भुंचना होइ बहुरि बहुरि अवतार ॥ २ ॥ सिव पुरी ब्रहम इंद्र पुरी निहचलु को थाउ नाहि । बिनु हरि सेवा सुखु नही हो साकत आवहि जाहि ॥ ३ ॥ जैसो गुरि उपदेसिआ मै तैसो कहिआ पुकारि । नानकु कहै सुनि रे मना करि कीरतनु होइ उधारु ॥ ४ ॥ १ ॥ १५८ ॥

(हे मित्र!) परमात्मा का नाम-स्मरण कर । जिस जीवन-मार्ग पर तुम चल रहे हो वह रास्ता टेढ़ा है और कठिन है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे मित्र !) परमात्मा का नाम-स्मरण करते हुए सदा ध्यान करता रह, मृत्यु हरवक्त तेरे साथ बसती है । हे भाई ! गुरु की सेवा कर । (गुरु की शरण लेने से) वह (मोह-) जाल काटा जाता है जो आत्मिक मृत्यु में फँसा देता है ॥ १ ॥ (जिन मनुष्यों ने केवल) होम किए, यज्ञ किए, तीर्थ-स्नान किए वे अहंकार में फँसते गए, उनके भीतर विकार बढ़ते गए । इस प्रकार नरक और स्वर्ग दोनों भोगने पड़ते हैं, और बार-बार जन्मों का चक्र चलता रहता है ॥ २ ॥ शिवपुरी, ब्रह्मपुरी, इन्द्रपुरी— इनमें से कोई भी स्थान स्थायी नहीं है । परमात्मा के स्मरण के बिना कहीं कोई आत्मिक आनन्द नहीं मिलता । हे भाई ! परमात्मा से बिछुड़े मनुष्य जन्म-मरण के चक्र में पड़े रहते हैं ॥ ३ ॥ (हे भाई !) जिस प्रकार गुरु ने (मुझे) उपदेश दिया है, मैंने उसी तरह उच्च स्वर में कह दिया है । नानक कहता है— हे (मेरे) मन ! सुन, परमात्मा का कीर्त्तन करता रह इससे (जन्म-मरण के चक्र से) बचाव हो जाता है ॥ ४ ॥ १ ॥ १५८ ॥

रागु गउड़ी माला १ महला ५

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ पाइओ बाल बुधि सुखु रे । हरख सोग हानि मिरतु दूख सुख चिति समसरि गुर मिले ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जउ लउ हउ किछु सोचउ चितवउ तउ लउ दुखनु भरे । जउ क्रिपालु गुरु पूरा भेटिआ तउ आनद सहजे ॥ १ ॥ जेती सिआनप करम हउ कीए तेते बंध परे । जउ साधू करु मसतकि धरिओ तब हम मुकत भए ॥ २ ॥ जउ लउ मेरो मेरो करतो तउ लउ बिखु घेरे । मनु तनु बुधि अरपी ठाकुर कउ तब हम सहजि सोए ॥ ३ ॥ जउ लउ पोट उठाई चलिअउ तउ लउ

डान भरे। पोट डारि गुरु पूरा मिलिआ तउ नानक निरभए ॥ ४ ॥ १ ॥ १५९ ॥

हे भाई ! (जिसने भी आनन्द प्राप्त किया) बालकों वाली बुद्धि से ही आनन्द प्राप्त किया। गुरु को मिलने से (बाल-बुद्धि प्राप्त हो जाती है, और) सुख, दुःख, हानि, मृत्यु, खुशी, ग़म (ये सब) हृदय में समान लगने लगते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जब तक मैं (अपनी चतुराई की) कुछ बातें कल्पित करता रहा हूँ, तब तक मैं दुखों से परिपूरित रहा। जब (अब मुझे) पूर्णगुरु मिल गया है तब मैं आत्मिक स्थिरता में आनन्द की अनुभूति कर रहा हूँ ॥ १ ॥ मैं जितने भी चतुराई के काम करता रहा, उतने ही मुझे बन्धन पड़ते गए। जब (अब) गुरु ने (मेरे) माथे पर हाथ रखा है, तब मैं (माया के बन्धनों से) स्वतन्त्र हो गया हूँ ॥ २ ॥ जब तक में यह कहता रहा कि (यह घर) मेरा है, (यह धन) मेरा है, (यह पुत्र) मेरा है, तब तक मुझे (माया-मोह के) विष ने घेरे रखा। (अब गुरु की कृपा से) मैंने अपनी चतुराई, मन, शरीर परमात्मा के हवाले कर दिया है, तब मैं आत्मिक स्थिरता में मस्त रहता हूँ ॥ ३ ॥ हे नानक ! जब तक मैं (माया-मोह) की पोटली सिर पर उठाए फिरता रहा, तब तक मैं (दुनिया के भयों का) दण्ड भरता रहा। अब मुझे पूर्णगुरु मिल गया है, (उसी की कृपा से माया-मोह की) पोटली फेंककर मैं निडर हो गया हूँ ॥ ४ ॥ १ ॥ १५९ ॥

॥ गउड़ी माला महला ५ ॥ भावनु तिआगिओ री तिआगिओ। तिआगिओ मै गुर मिलि तिआगिओ। सरब सूख आनंद मंगल रसमानि गोबिंदै आगिओ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मानु अभिमानु दोऊ समाने मसतकु डारि गुरि पागिओ। संपत हरखु न आपत दूखा रंगु ठाकुरै लागिओ ॥ १ ॥ बास बासरी एकै सुआमी उदिआन द्रिसटागिओ। निरभउ भए संत भ्रमु डारिओ पूरन सरबागिओ ॥ २ ॥ जो किछु करतै कारणु कीनो मनि बुरो न लागिओ। साध संगति परसादि संतन कै सोइओ मनु जागिओ ॥ ३ ॥ जन नानक ओड़ि तुहारी परिओ आइओ सरणागिओ। नाम रंग सहज रस माणे फिरि दूखु न लागिओ ॥ ४ ॥ २ ॥ १६० ॥

हे बहन ! मैंने गुरु को मिलकर (सुखों के ग्रहण करने तथा दुखों से डरने का) संकल्प छोड़ दिया है, सदा के लिए छोड़ दिया है। अब

ईश्वरेच्छा मानकर मुझे समस्त सुख-आनन्द ही हैं, खुशियाँ ही हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे बहन ! कोई मेरा आदर करे या अनादर, मुझे दोनों एक जैसे लगते हैं, मैंने अपना मस्तक गुरु के चरणों पर रख दिया है (गुरु-कृपा से मेरे मन में) परमात्मा का प्रेम बन चुका है, अब मुझे आए धन की खुशी नहीं होती और आई विपत्ति से दुःख प्रतीत नहीं होता ॥ १ ॥ हे बहन ! अब मुझे सब जगह एक मालिक प्रभु ही दिखता है, जंगलों में भी मुझे वही दृष्टिगोचर हो रहा है । गुरु-संत की कृपा से मैंने दुबिधा समाप्त कर ली है, अब सबके मन की जाननेवाला प्रभु ही मुझे सर्वव्यापक दिखता है और मैं निडर हो गया हूँ ॥ २ ॥ जो भी संयोग परमात्मा ने बनाया (अब मुझे) मन में बुरा नहीं लगता । सत्संगति में आकर संतजनों की कृपा से (माया के मोह में) सोता हुआ (मेरा) मन जाग पड़ा है ॥ ३ ॥ हे दास नानक ! (कह— हे प्रभु ! गुरु की कृपा से) मैं तेरी ओट में आ गया हूँ, मैं तेरी शरण में आ गया हूँ । अब मुझे कोई दुःख स्पर्श नहीं करता । मैं तेरे नाम का आनन्द अनुभव कर रहा हूँ और आत्मिक स्थिरता के सुख को महसूस कर रहा हूँ ॥ ४ ॥ २ ॥ १६० ॥

॥ गउड़ी २ माला महला ५ ॥ पाइआ लालु रतनु मनि पाइआ । तनु सीतलु मनु सीतलु थीआ सतगुर सबदि समाइआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ लाथी भूख त्रिसन सभ लाथी चिंता सगल बिसारी । करु मसतकि गुरि पूरै धरिओ मनु जीतो जगु सारी ॥ १ ॥ त्रिपति अघाइ रहे रिद अंतरि डोलन ते अब चूके । अखुटु खजाना सतिगुरि दीआ तोटि नही रे मूके ॥ २ ॥ अचरजु एकु सुनहु रे भाई गुरि ऐसी बूझ बुझाई । लाहि परदा ठाकुरु जउ भेटिओ तउ बिसरी ताति पराई ॥ ३ ॥ कहिओ न जाई एहु अचंभउ सो जानै जिनि चाखिआ । कहु नानक सच भए बिगासा गुरि निधानु रिदै लै राखिआ ॥ ४ ॥ ३ ॥ १६१ ॥

(मैंने) मन में एक लाल-रत्न प्राप्त कर लिया है, मैं गुरु के शब्द में लीन हो गया हूँ, मेरा शरीर शान्त हो गया है, मेरा मन ठण्डा हो गया हो गया है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ पूर्णगुरु ने (मेरे) मस्तक पर हाथ रखा है, (उसके प्रभाव से मैंने) मन संयमित कर लिया है, (मानों) मैंने सारा जगत् जीत लिया है । मेरी माया की तमाम भूख, प्यास समाप्त हो गई है, मैंने समस्त चिन्ताएँ भुला दी हैं ॥ १ ॥ (माया की ओर से मेरे भीतर) तृप्ति हो गई हैं, मैं हृदय में शान्त हो गया हूँ, अब (माया के लिए) लोभायमान होने से हट गया हूँ । हे भाई ! सतिगुरु ने मुझे एक ऐसा खजाना दिया

है जो अक्षय है, उसमें कमी नहीं आ सकती, वह समाप्त नहीं हो सकता ॥ २ ॥ हे भाई ! एक और विचित्र बात सुन। गुरु ने मुझे ऐसी बुद्धि दी है कि जब से (अहंकार का) पर्दा उठाकर मुझे ठाकुर प्रभु मिला है तब से (मन से) ईर्ष्या विस्मृत हो गई है ॥ ३ ॥ हे भाई ! यह एक ऐसा आश्चर्यजनक आनन्द है जो व्यक्त नहीं किया जा सकता। इस रस को वही जानता है जिसने इसे चखा है। हे नानक ! कह— गुरु ने मेरे भीतर नाम-भण्डार लाकर रख दिया है और मेरे भीतर सत्यस्वरूप परमात्मा का प्रकाश हो गया है ॥ ४ ॥ ३ ॥ १६१ ॥

॥ गउड़ी माला महला ५ ॥ उबरत राजा राम की सरणी। सरब लोक माइआ के मंडल गिरि गिरि परते धरणी ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सासत सिम्रिति बेद बीचारे महा पुरखन इउ कहिआ। बिनु हरि भजन नाही निसतारा सूखु न किनहूं लहिआ ॥ १ ॥ तीनि भवन की लखमी जोरी बूझत नाही लहरे। बिनु हरि भगति कहा थिति पावै फिरतो पहरे पहरे ॥ २ ॥ अनिक बिलास करत मन मोहन पूरन होत न कामा। जलतो जलतो कबहू न बूझत सगल ब्रिथे बिनु नामा ॥ ३ ॥ हरि का नामु जपहु मेरे मीता इहै सार सुखु पूरा। साध संगति जनम मरणु निवारै नानकु जन की धूरा ॥ ४ ॥ ४ ॥ १६२ ॥

प्रभु-बादशाह की शरण लेकर मनुष्य (माया के प्रभाव से) बच सकता है। मृत्युलोक, पाताललोक, आकाशलोक —इन समस्त लोकों के जीव माया के चक्कर में ही फँसे पड़े हैं, (माया के प्रभाव के कारण जीव ऊँचे ठिकाने से) गिर-गिरकर निम्नस्तर पर आ जाते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (पण्डित लोग तो) शास्त्र, स्मृति, वेद आदि का विचार करते आ रहे हैं लेकिन महापुरुषों ने इस प्रकार कहा है कि परमात्मा के भजन के बिना (माया के समुद्र से) पार नहीं हुआ जा सकता, (स्मरण के बिना) किसी मनुष्य ने भी सुख नहीं पाया ॥ १ ॥ यदि मनुष्य सारी सृष्टि की ही माया एकत्रित कर ले तो भी लोभ की लहरें नहीं मिटतीं। परमात्मा की भक्ति के बिना मनुष्य कहीं भी मन का टिकाव नहीं प्राप्त कर सकता, हर-वक्त ही माया की ख़ातिर भटकता रहता है ॥ २ ॥ (मन के विकारों की) वासना पूर्ण नहीं होती। मनुष्य तृष्णा की आग में जलता फिरता है, तृष्णा की आग कभी नहीं बुझती। परमात्मा के नाम के अतिरिक्त दूसरे सब यत्न (आत्मिक शान्ति के लिए) व्यर्थ चले जाते हैं ॥३॥ हे मेरे मित्र!

परमात्मा का नाम जपा कर, यही श्रेष्ठ सुख है और इस सुख में कोई कमी नहीं रह जाती। जो मनुष्य सत्संगति में आकर अपना जन्म-मरण समाप्त कर लेता है, नानक उस मनुष्य के चरणों की धूलि (माँगता है) ॥ ४ ॥ ४ ॥ १६२ ॥

॥ गउड़ी माला महला ५ ॥ मो कउ इह बिधि को समझावै। करता होइ जनावै ॥ १ ॥ रहाउ ॥ अनजानत किछु इनहि कमानो जप तप कछू न साधा। दहदिसि लै इहु मनु दउराइओ कवन करम करि बाधा ॥ १ ॥ मन तन धन भूमि का ठाकुरु हउ इसका इहु मेरा। भरम मोह कछु सूझसि नाही इह पैखर पए पैरा ॥ २ ॥ तब इहु कहा कमावन परिआ जब इहु कछू न होता। जब एक निरंजन निरंकार प्रभ सभु किछु आपहि करता ॥ ३ ॥ अपने करतब आपे जानै जिनि इहु रचनु रचाइआ। कहु नानक करणहारु है आपे सतिगुरि भरमु चुकाइआ ॥ ४ ॥ ५ ॥ १६३ ॥

हे भाई! दूसरा कौन मुझे इस तरह समझा सकता है? वही गुरमुख समझा सकता है (जो) कर्त्तार का रूप हो जावे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (गुरु के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं समझा सकता कि) अज्ञानता में फँसकर इस जीव ने स्मरण नहीं किया और विकारों से बचाव का प्रयास नहीं किया, कुछ दूसरे ही (निकम्मे काम) किए हैं। यह जीव अपने इस मन को दसों दिशाओं में दौड़ रहा है। यह कौन से कर्मों के कारण बँधा पड़ा है? ॥ १ ॥ (माया के लिए) भटकाव के कारण, (माया के) मोह के कारण (जीव को) कोई भली बात नहीं सूझती, इसके पैरों में माया-मोह की बेड़ियाँ पड़ी हुई हैं। मोह में फँसकर जीव यही कहता है— मैं अपने प्राण, शरीर, धन, धरती का मालिक हूँ, मैं इस (धन आदि) का मालिक हूँ, यह धन आदि मेरा है ॥ २ ॥ जब (सृष्टि की रचना से पूर्व) इस जीव का कोई अस्तित्व ही नहीं था, जब केवल एक निरंजन प्रभु आप ही आप था, जब प्रभु आप ही सब कुछ करनेवाला था, तब यह जीव क्या कमाने योग्य था? ॥ ३ ॥ हे नानक! कह— गुरु ने ही सारा भ्रम दूर कर दिया है, और समझाया है कि जिस परमात्मा ने यह जगत्-रचना रची है वही आप अपने किए कर्मों को जानता है और वही सब कुछ करने की सामर्थ्य रखता है ॥ ४ ॥ ५ ॥ १६३ ॥

॥ गउड़ी माला महला ५ ॥ हरि बिनु अवर क्रिआ बिरथे। जप तप संजम करम कमाणे इहि ओरै मूसे ॥ १ ॥ रहाउ ॥

बरत नेम संजम महि रहता तिन का आढु न पाइआ। आगै चलणु अउरु है भाई ऊंहा कामि न आइआ ॥ १ ॥ तीरथि नाइ अरु धरनी भ्रमता आगै ठउर न पावै। ऊहा कामि न आवै इह बिधि ओहु ओहु लोगन ही पतीआवै ॥ २ ॥ चतुर बेद मुखबचनी उचरै आगै महलु न पाईऐ। बूझै नाही एकु सुधाखरु ओहु सगली झाख झखाईऐ ॥ ३ ॥ नानकु कहतो इहु बीचारा जि कमावै सु पारगरामी। गुरु सेवहु अरु नामु धिआवहु तिआगहु मनहु गुमानी ॥ ४ ॥ ६ ॥ १६४ ॥

परमात्मा के स्मरण के अतिरिक्त दूसरे समस्त काम व्यर्थ हैं। जप, तप, हठयोग —ये सब प्रभु के दरबार से इधर छीन लिए जाते हैं ॥ १ ॥ रहाउ॥ मनुष्य व्रतों और संयमों के नियम में लगा रहता है पर उन प्रयासों का मूल्य उसे एक कौड़ी भी नहीं मिलता। हे भाई ! जीव के साथ परलोक निभानेवाला पदार्थ दूसरा है; (व्रत, नियम, संयम में से कोई भी) परलोक में काम नहीं आता ॥ १ ॥ जो मनुष्य तीर्थ पर स्नान करता है और धरती पर भ्रमण करता फिरता है (वह भी) प्रभु के दरबार में स्थान प्राप्त नहीं कर सकता। ऐसा कोई तरीका प्रभु के दरबार में काम नहीं आता; वह केवल लोगों को (अपने धार्मिक होने की) भ्रान्ति ही कराता है ॥ २ ॥ (यदि पण्डित) चारों वेद ज़बानी उच्चरित कर सकता है (तो इस प्रकार भी) प्रभु के दरबार में ठिकाना नहीं मिलता। जो मनुष्य परमात्मा का पवित्र नाम नहीं समझता वह निरी परेशानी ही पाता है ॥ ३ ॥ नानक यह एक विचार की बात कहता है; जो मनुष्य इसे प्रयोग में लाता है वह संसार-समुद्र से पार उतरने योग्य हो जाता है। (वह विचार यह है— हे भाई !) गुरु की शरण लो, अपने मन से अहंकार दूर करो और परमात्मा का नाम स्मरण करो ॥ ४ ॥ ६ ॥ १६४ ॥

॥ गउड़ी माला ५ ॥ माधउ हरि हरि हरि मुखि कहीऐ। हम ते कछू न होवै सुआमी जिउ राखहु तिउ रहीऐ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ किआ किछु करै कि करणैहारा किआ इसु हाथि बिचारे। जितु तुम लावहु तित ही लागा पूरन खसम हमारे ॥ १ ॥ करहु क्रिपा सरब के दाते एक रूप लिव लावहु। नानक की बेनंती हरि पहि अपुना नामु जपावहु ॥ २ ॥ ७ ॥ १६५ ॥

हे स्वामी प्रभु ! हम जीवों से कुछ नहीं हो सकता। जिस तरह तू हमें रखता है, उसी तरह ही हम रहते हैं। हे मायापति प्रभु ! हे हरि !

(कृपा कर कि) तेरा नाम मुँह से उच्चरित कर सकें ।। १ ।। रहाउ ।। हे मेरे सर्वव्यापक पति प्रभु ! यह जीव क्या करे ? यह क्या करने योग्य है ? इस बेचारे के हाथ में क्या है ? जिस ओर तू इसे लगाता है, उसी ओर यह लगा फिरता है ।। १ ।। हे समस्त जीवों को देन देनेवाले प्रभु ! कृपा कर, मुझे केवल अपने स्वरूप की ही लगन दे । मुझ नानक की परमात्मा के पास प्रार्थना है (—हे प्रभु !) मुझसे अपना नाम जपा ।। २ ।। ७ ।। १६५ ।।

रागु गउड़ी माझ १ महला ५

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।। दीन दइआल दमोदर राइआ जीउ । कोटि जना करि सेव लगाइआ जीउ । भगत वछलु तेरा बिरदु रखाइआ जीउ । पूरन सभनी जाई जीउ ।। १ ।। किउ पेखा प्रीतमु कवण सुकरणी जीउ । संता दासी सेवा चरणी जीउ । इहु जीउ वताई बलि बलि जाई जीउ । तिसु निवि निवि लागउ पाई जीउ ।। २ ।। पोथी पंडित बेद खोजंता जीउ । होइ बैरागी तीरथि नावंता जीउ । गीत नाद कीरतनु गावंता जीउ । हरि निरभउ नामु धिआई जीउ ।। ३ ।। भए क्रिपाल सुआमी मेरे जीउ । पतित पवित लगि गुर के पैरे जीउ । भ्रमु भउ काटि कीए निरवैरे जीउ । गुर मन की आस पूराई जीउ ।। ४ ।। जिनि नाउ पाइआ सो धनवंता जीउ । जिनि प्रभु धिआइआ सु सोभावंता जीउ । जिसु साधू संगति तिसु सभ सुकरणी जीउ । जन नानक सहजि समाई जीउ ।।५।।१।।१६६।।

हे ग़रीबों पर दया करनेवाले प्रभु बादशाह ! तूने करोड़ों व्यक्तियों को अपना सेवक बनाकर अपनी सेवा-भक्ति में लगाया हुआ है । भक्तों का प्रिय होना —यह तेरा आदिम युगों से स्वभाव बना आ रहा है । हे प्रभु ! तू सब स्थानों में मौजूद है ।। १ ।। मैं कैसे उस प्रभु-प्रियतम का दर्शन करूँ ? वह कौन सा श्रेष्ठ कर्म है (जिससे मैं उसे देखूँ) ? मैं संतजनों की दासी बनूँ और उनके चरणों की सेवा करूँ । मैं अपनी यह आतमा उस प्रभु-बादशाह पर न्यौछावर करूँ, और उसपर न्यौछावर हो जाऊँ । झुक-झुककर मैं सदा चरण-स्पर्श करती रहूँ ।। २ ।। कोई पण्डित बनकर वेद आदि धार्मिक पुस्तकें खोजता रहता है, कोई वैरागी होकर तीर्थ पर स्नान करता फिरता है, कोई गीत गाता है, नाद बजाता है, कीर्त्तन करता है, पर मैं परमात्मा का वह नाम जपता रहता हूँ जो (मेरे भीतर) निडरता पैदा

करता है ।। ३ ।। जिन मनुष्यों पर मेरे स्वामी प्रभुजी दयालु होते हैं, वे मनुष्य गुरु के चरण-स्पर्श करके (विकारों में) ग्रसे हुए भी पवित्र आचरण वाले बन जाते हैं। गुरु (उनकी) दुबिधा दूर कर, भय दूर कर, उन मनुष्यों को वैर-रहित बना देता है। हे गुरु! तूने ही मेरे मन की भी आस पूर्ण की है ।।४।। हे दास नानक! (कह—) जिस मनुष्य ने परमात्मा का नाम-धन प्राप्त कर लिया, वह अमीर बन गया, जिस मनुष्य ने परमात्मा का स्मरण किया, वह शोभा वाला हो गया। जिस मनुष्य को गुरु की संगति मिल गई, उसकी सारी करनी श्रेष्ठ बन गई और उसे आत्मिक स्थिरता में लीनता प्राप्त हो गई ।। ५ ।। १ ।। १६६ ।।

।। गउड़ी महला ५ माझ ।। आउ हमारै राम पिआरे जीउ। रैणि दिनसु सासि सासि चितारे जीउ। संत देउ संदेसा पै चरणारे जीउ। तुधु बिनु कितु बिधि तरीऐ जीउ ।। १ ।। संगि तुमारै मै करे अनंदा जीउ। वणि तिणि त्रिभवणि सुख परमानंदा जीउ। सेज सुहावी इहु मनु बिगसंदा जीउ। पेखि दरसनु इहु सुखु लहीऐ जीउ ।। २ ।। चरण पखारि करी नित सेवा जीउ। पूजा अरचा बंदन देवा जीउ। दासनि दासु नामु जपि लेवा जीउ। बिनउ ठाकुर पहि कहीऐ जीउ ।। ३ ।। इछ पुंनी मेरी मनु तनु हरिआ जीउ। दरसन पेखत सभ दुख परहरिआ जीउ। हरि हरि नामु जपे जपि तरिआ जीउ। इहु अजरु नानक सुखु सहीऐ जीउ ।। ४ ।। २ ।। १६७ ।।

हे मेरे प्यारे रामजी! मेरे हृदय-घर में आ बस। मैं रात-दिन हरेक श्वास के साथ तुझे स्मरण करता हूँ। संतजनों के चरण-स्पर्श कर (तेरी ओर) सन्देश भेजता हूँ। मैं तेरे बिना किसी प्रकार भी (संसार-समुद्र से) पार नहीं उतर सकता ।। १ ।। (हे मेरे प्यारे रामजी!) तेरी संगति में रहकर मैं आनन्द प्राप्त करता हूँ। समस्त वनस्पति तथा तीनों भुवनों में (तेरे दर्शन से) परम आनन्द अनुभव करता हूँ। मेरी हृदय की सेज सुन्दर बन गई है, मेरा मन प्रफुल्लित हो गया है। तेरा दर्शन करके यह (आत्मिक) सुख मिलता है ।। २ ।। मालिक प्रभु के पास मुझे यह प्रार्थना कहनी है— (हे मेरे रामजी! तेरे संतजनों के) चरण धोकर उनकी सेवा करता रहूँ, मैं तेरे दासों का दास होकर सदा तेरा नाम जपता रहूँ— यही मेरे लिए देवपूजा है, यही मेरे लिए देवताओं के समक्ष फूलों की भेंट है, और यही देवताओं को नमस्कार है ।। ३ ।। (राम की कृपा से) मेरी (प्रभु के मिलाप की) इच्छा पूर्ण हो गई है, मेरा मन आत्मिक जीवनवाला

हो गया है, मेरा शरीर हरा हो गया है, (प्यारे राम का) दर्शन करते हुए मेरा सारा दुःख दूर हो गया है, प्यारे राम का नाम जपकर मैंने (संसार-समुद्र को) पार कर लिया है। हे नानक ! (उस प्यारे-राम का दर्शन करने से) एक ऐसा सुख प्राप्त किया जाता है जो अक्षुण्ण होता है ॥ ४ ॥ २ ॥ १६७ ॥

॥ गउड़ी माझ महला ५ ॥ सुणि सुणि साजन मन मित पिआरे जीउ। मनु तनु तेरा इहु जीउ भि वारे जीउ। विसरु नाही प्रभ प्राण अधारे जीउ। सदा तेरी सरणाई जीउ ॥ १ ॥ जिसु मिलिऐ मनु जीवै भाई जीउ। गुर परसादी सो हरि हरि पाई जीउ। सभ किछु प्रभ का प्रभ कीआ जाई जीउ। प्रभ कउ सद बलि जाई जीउ ॥ २ ॥ एहु निधानु जपै वडभागी जीउ। नाम निरंजन एक लिव लागी जीउ। गुरु पूरा पाइआ सभु दुखु मिटाइआ जीउ। आठ पहर गुण गाइआ जीउ ॥ ३ ॥ रतन पदारथ हरि नामु तुमारा जीउ। तूं सचा साहु भगतु वणजारा जीउ। हरि धनु रासि सचु वापारा जीउ। जन नानक सद बलिहारा जीउ ॥ ४ ॥ ३ ॥ १६८ ॥

हे मेरे प्यारे सुजन प्रभु ! हे मन के मित्र एवं आत्मा के सहारे प्रभु ! (मेरी प्रार्थना) ध्यानपूर्वक सुन। मेरा मन, तन और आत्मा सब कुछ तेरा प्रदान किया हुआ है। मैं तुझ पर बलिहारी जाता हूँ, मुझे विस्मरण न कर, मैं सदा तेरी शरणागत हूँ ॥ १ ॥ हे भाई ! जिस हरि-प्रभु को मिलने से आत्मिक जीवन प्राप्त हो जाता है, वह हरि-प्रभु गुरु की कृपा से ही मिल सकता है। सब कुछ ईश्वर प्रदत्त है, समस्त स्थान प्रभु के हैं, मैं सदा उस प्रभु पर बलिहारी जाता हूँ ॥ २ ॥ (हे भाई !) यह नाम-खजाना (सारे पदार्थों का भण्डार है)। कोई भाग्यशाली मनुष्य ही यह नाम जपता है, पवित्र प्रभु के नाम के साथ लगन लग जाती है। जिस भाग्य-शाली मनुष्य को पूर्णगुरु मिल जाता है, वह हरेक किस्म का दुःख दूर कर लेता है, वह आठों प्रहर परमात्मा की गुणस्तुति के गीत गाता रहता है ॥ ३ ॥ हे मेरे प्यारे साजन प्रभु ! तेरा नाम कीमती पदार्थों (का स्रोत) है। हे हरि ! तू सत्यस्वरूप साहूकार है, तेरा भक्त व्यापार करनेवाला है। हे हरि ! तेरा नाम-धन (ही तेरे भक्त का) धन है, तेरा भक्त इस सत्यस्वरूप (ही) का व्यापार करता है। हे दास नानक ! (कह— हे हरि !) मैं (तेरे तथा तेरे भक्त पर) सदा बलिहारी जाता हूँ ॥ ४ ॥ ३ ॥ १६८ ॥

रागु गउड़ी माझ २ महला ५

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।। तूं मेरा बहु माणु करते तूं मेरा बहु माणु । जोरि तुमारै सुखि वसा सचु सबदु नीसाणु ।। १ ।। रहाउ ।। सभे गला जातीआ सुणि कै चुप कीआ । कद ही सुरति न लधीआ माइआ मोहड़िआ ।। १ ।। देइ बुझारत सारता से अखी डिठड़िआ । कोई जि मूरखु लोभीआ मूलि न सुणी कहिआ ।। २ ।। इकसु दुहु चहु किआ गणी सभ इकतु सादि मुठी । इकु अधु नाइ रसीअड़ा का विरली जाइ वुठी ।। ३ ।। भगत सचे दरि सोहदे अनद करहि दिन राति । रंगि रते परमेसरै जन नानक तिन बलि जात ।। ४ ।। १ ।। १६६ ।।

हे कर्त्तार! तुम मेरे लिए स्वाभिमान के स्थान (दाता) हो। तुम्हारे बल के आसरे मैं सुखपूर्वक रहता हूँ, तेरी सत्यस्वरूप गुणस्तुति की वाणी (मेरे लिए) मार्गदर्शन है।। १ ।। रहाउ ।। हे कर्त्तार ! माया में मोहित जीव परमार्थ की सारी बातें सुनकर समझता भी है, फिर भी परवाह नहीं करता और कभी भी ध्यान नहीं देता ।। १ ।। यदि कोई गुरसुख कोई संकेत या सुझाव देता भी है, (फिर) वे बातें आँखों से देख ली हैं (कि सब इसी मार्ग पर चल रहे हैं), पर जीव ऐसा मूर्ख लोभी है कि कही हुई बात बिल्कुल नहीं सुनता ।। २ ।। (हे भाई !) मैं किसी एक, दो अथवा चार व्यक्तियों की बात क्या बताऊँ ? सारी सृष्टि एक ही स्वाद में ठगी जा रही है। कोई विरला मनुष्य परमात्मा के नाम में रस लेनेवाला है, कोई विरला हृदय-स्थान परमात्मा में रस लेनेवाला मिलता है ।। ३ ।। परमात्मा की भक्ति करनेवाले व्यक्ति सत्यस्वरूप परमात्मा के द्वार पर शोभा पाते हैं और दिन-रात आत्मिक आनन्द प्राप्त करते हैं। हे दास नानक ! (कह— जो मनुष्य) परमेश्वर के प्रेम-रंग में रँगे रहते हैं, मैं उनपर बलिहारी जाता हूँ ।। ४ ।। १ ।। १६९ ।।

।। गउड़ी महला ५ मांझ ।। दुख भंजनु तेरा नामु जी दुख भंजनु तेरा नामु । आठ पहर आराधीऐ पूरन सतिगुर गिआनु ।। १ ।। रहाउ ।। जितु घटि वसै पारब्रहमु सोई सुहावा थाउ । जम कंकरु नेड़ि न आवई रसना हरिगुण गाउ ।। १ ।। सेवा सुरति न जाणीआ ना जापै आराधि । ओटि तेरी जगजीवना मेरे ठाकुर अगम अगाधि ।। २ ।। भए क्रिपाल

गुसाईआ नठे सोग संताप । तती वाउ न लगई सतिगुरि रखे आपि ॥ ३ ॥ गुरु नाराइणु दयु गुरु गुरु सचा सिरजणहारु । गुरि तुठै सभ किछु पाइआ जन नानक सद बलिहार ॥४॥२॥१७०॥

हे प्रभु ! तेरा नाम दुखों का नाशक है । यह आठों प्रहर स्मरण करना चाहिए— पूर्ण सतिगुरु का यही उपदेश है जो परमात्मा से ऐक्य करा सकता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिस हृदय में परमात्मा आ बसता है, वही हृदय-स्थान सुन्दर बन जाता है । जो मनुष्य अपनी जीभ से परमात्मा के गुण गाता है, यमदूत उसके निकट नहीं जाता ॥ १ ॥ हे जगत् की ज़िन्दगी के आसरे पालनहार, अगम्य, अथाह प्रभु ! मैंने तेरी सेवा-भक्ति की सूझ का मूल्य न जाना, मुझे तेरे नाम की आराधना करना न आया, (लेकिन अब) मैंने तेरा आसरा लिया है ॥ २ ॥ सृष्टि के मालिक-प्रभु जिस मनुष्य पर दयालु होते हैं, उसकी सारी चिन्ताएँ और क्लेश मिट जाते हैं । जिस मनुष्य की गुरु ने आप रक्षा की, उसे दुःख का स्पर्श नहीं होता ॥ ३ ॥ (हे भाई !) गुरु नारायण का रूप है, गुरु सब पर दया करनेवाले प्रभु का रूप है, गुरु उस कर्त्तार का रूप है जो सदा स्थिर रहने वाला है । यदि गुरु प्रसन्न हो जाए तो सब कुछ प्राप्त हो जाता है । हे दास नानक ! (कह—) मैं गुरु पर बलिहारी जाता हूँ ॥४॥२॥१७०॥

॥ गउड़ी माझ महला ५ ॥ हरि राम राम राम रामा । जपि पूरन होए कामा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ राम गोबिंद जपेदिआ होआ मुखु पवित्रु । हरि जसु सुणीऐ जिस ते सोई भाई मित्रु ॥ १ ॥ सभि पदारथ सभि फला सरब गुणा जिसु माहि । किउ गोबिंदु मनहु विसारीऐ जिसु सिमरत दुख जाहि ॥ २ ॥ जिसु लड़ि लगिऐ जीवीऐ भवजलु पईऐ पारि । मिलि साधू संगि उधारु होइ मुख ऊजल दरबारि ॥ ३ ॥ जीवन रूप गोपाल जसु संत जना की रासि । नानक उबरे नामु जपि दरि सचै साबासि ॥ ४ ॥ ३ ॥ १७१ ॥

(हे भाई !) राम-राम का निरन्तर जाप कर; उसी से सारे कार्य पूर्ण होंगे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गोबिंद-गोबिंद कहने से मुँह पवित्र हो जाता है वही मनुष्य भाई है, मित्र है जिससे परमात्मा की गुण-स्तुति सुनी जाए ॥ १ ॥ उस गोबिंद को अपने मन से कभी नहीं भुलाना चाहिए जिसका स्मरण करने से सारे दुःख दूर हो जाते हैं और जिसके वश में (दुनिया के) सारे पदार्थ, सारे फल और सारे आत्मिक गुण हैं ॥ २ ॥ (उस गोबिंद को अपने मन से कभी नहीं भुलाना चाहिए) जिसके आसरे

आत्मिक जीवन मिल जाता है, संसार-समुद्र से पार हुआ जा सकता है, गुरु की संगति में मिलकर बचाव हो जाता है और प्रभु के दरबार में निश्चिंत हो जाते हैं ।। ३ ।। हे नानक ! गोपाल-प्रभु की गुणस्तुति आत्मिक जीवन देनेवाली है, प्रभु की गुणस्तुति संतजनों के लिए धन है । प्रभु का नाम जपकर (संतजन विकारों से) बच निकलते हैं और सत्यस्वरूप प्रभु के द्वार पर प्रशंसा प्राप्त करते हैं ।। ४ ।। ३ ।। १७१ ।।

।। गउड़ी माझ महला ५ ।। मीठे हरि गुण गाउ जिंदू तूं मीठे हरि गुण गाउ । सचे सेती रतिआ मिलिआ निथावे थाउ ।। १ ।। रहाउ ।। होरि साद सभि फिकिआ तनु मनु फिका होइ । विणु परमेसर जो करे फिटु सु जीवणु सोइ ।। १ ।। अंचलु गहि कै साध का तरणा इहु संसारु । पारब्रहमु आराधीऐ उधरै सभ परवारु ।। २ ।। साजनु बंधु सुमित्रु सो हरिनामु हिरदै देइ । अउगण सभि मिटाइ कै परउपकारु करेइ ।। ३ ।। मालु खजाना थेहु घरु हरि के चरण निधान । नानकु जाचकु दरि तेरै प्रभ तुध नो मंगै दानु ।। ४ ।। ४ ।। १७२ ।।

हे मेरी आत्मा ! तू हरि के मनभावन गीत गाती रह । सत्यस्वरूप परमात्मा के साथ अनुरक्त रहने से उस मनुष्य को भी आदर मिल जाता है जिसे पहले कहीं भी आसरा नहीं मिलता ।। १ ।। रहाउ ।। (लौकिक) समस्त स्वाद फीके हैं, (इन स्वादों में पड़ा) शरीर फीका हो जाता है, मन फीका हो जाता है । परमेश्वर का नाम जपना त्याग कर मनुष्य जो कुछ भी करता है, उससे ज़िन्दगी धिक्कार योग्य हो जाती है ।। १ ।। (हे मेरी आत्मा !) गुरु का पल्ला पकड़कर इस संसार-समुद्र से पार उतरा जा सकता है। परमात्मा की आराधना करनी चाहिए । (आराधना करनेवाले का) समस्त परिवार (संसार-समुद्र की लहरों से) बच निकलता है ।। २ ।। जो गुरुमुख परमात्मा का नाम-हृदय में (बसाने के लिए) देता है, वही असली साजन है, सम्बन्धी है, मित्र है, (क्योंकि वह हमारे भीतर से) समस्त अवगुण दूर कर (हम पर) भलाई करता है ।। ३ ।। परमात्मा के चरण ही (सारे पदार्थों के) भण्डार हैं, वही धन, भण्डार और जीव के लिए वास्तविक निवास है । हे प्रभु ! (तेरे द्वार का) भिखारी नानक तेरे द्वार पर तेरा नाम दान के रूप में माँगता है ।। ४ ।। ४ ।। १७२ ।।

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।। रागु गउड़ी महला ९ ।। साधो मन का मानु तिआगउ । काम क्रोधु संगति दुरजन की ता ते

अहिनिसि भागउ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सुखु दुखु दोनो सम करि जानै अउरु मानु अपमाना । हरख सोग ते रहै अतीता तिनि जगि ततु पछाना ॥ १ ॥ उसतति निंदा दोऊ तिआगै खोजै पदु निरबाना । जन नानक इहु खेलु कठनु है किनहूं गुरमुखि जाना ॥ २ ॥ १ ॥

हे संतजनो ! (अपने) मन का अहंकार छोड़ दो । काम और क्रोध कुसंगति के (तुल्य ही) है, इससे (भी) दिन-रात (हर समय) दूर रहो ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (जो मनुष्य) सुख-दु:ख दोनों को एक जैसा जानता है और आदर तथा अनादर दोनों को एक जैसा जानता है, जो ख़ुशी और ग़मी (दुखमय स्थिति) दोनों से निर्लिप्त रहता है, उसने जगत् में जीवन का रहस्य समझ लिया ॥ १ ॥ (हे संतजनो ! इस मनुष्य ने वास्तविकता प्राप्त कर ली है, जो) न किसी की खुशामद करता है न निंदा। (जहाँ कोई वासना स्पर्श नहीं कर सकती) वही मुक्ति का पद खोज पाता है । (पर) हे नानक ! यह (जीवन) खेल कठिन है । कोई विरला मनुष्य गुरु की शरण लेकर इसे समझता है ॥ २ ॥ १ ॥

॥ गउड़ी महला ९ ॥ साधो रचना राम बनाई । इकि बिनसै इक असथिरु मानै अचरजु लखिओ न जाई ॥ १ ॥ रहाउ ॥ काम क्रोध मोह बसि प्रानी हरि मूरति बिसराई । झूठा तनु साचा करि मानिओ जिउ सुपना रैनाई ॥ १ ॥ जो दीसै सो सगल बिनासै जिउ बादर की छाई । जन नानक जगु जानिओ मिथिआ रहिओ राम सरनाई ॥ २ ॥ २ ॥

हे संतजनो ! परमात्मा ने (जगत् की यह आश्चर्यजनक) रचना रच दी है (कि) एक मनुष्य (तो) मरता है (पर) दूसरा मनुष्य (उसे मरता देखकर अपने आपको) सदा टिके रहनेवाला समझता है । यह एक आश्चर्यजनक तमाशा है जो व्यक्त नहीं किया जा सकता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मनुष्य काम, क्रोध ओर मोह के वशीभूत होता है और परमात्मा के अस्तित्व को भुलाए रखता है । यह शरीर सदा साथ रहनेवाला नहीं है लेकिन मनुष्य इसे सत्यस्वरूप समझता है; जैसे रात के वक्त स्वप्न (आता है और मनुष्य इसे सत्यस्वरूप समझता है) ॥ १ ॥ (हे संतजनो !) जैसे बादल की छाया (सदा एक स्थान पर टिकी नहीं रहती, वैसे ही) जो कुछ दृष्टि-गोचर होता है, वह सब नष्ट हो जाता है । हे दास नानक ! (जिस मनुष्य ने) जगत् को नाशमान् समझ लिया है, वह (सत्यस्वरूप) परमात्मा की शरण लिए रहता है ॥ २ ॥ २ ॥

॥ गउड़ी महला ९ ॥ प्रानी कउ हरि जसु मनि नही आवै । अहिनिसि मगनु रहै माइआ मै कहु कैसे गुन गावै ॥ १ ॥ रहाउ ॥ पूत मीत माइआ ममता सिउ इह बिधि आपु बंधावै । म्रिग त्रिसना जिउ झूठो इह जग देखि तासि उठि धावै ॥ १ ॥ भुगति मुकति का कारनु सुआमी मूड़ ताहि बिसरावै । जन नानक कोटन मै कोऊ भजनु राम को पावै ॥ २ ॥ ३ ॥

(हे भाई !) मनुष्य को परमात्मा की गुणस्तुति मन में (बसानी) नहीं आती । (हे भाई !) बता, क्या वह मनुष्य परमात्मा के गुण गा सकता है जो दिन-रात माया (के मोह) में मस्त रहता है ? ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (माया-ग्रस्त मनुष्य) पुत्र, मित्र, माया के अपनत्व के साथ बँधा रहता है और इस प्रकार अपने आपको (मोह के बन्धनों में) बाँधे रखता है । यह जग (तो) मृगतृष्णा के समान है । जिसे देखकर (मनुष्य) सदा इसकी ओर दौड़ता है ॥ १ ॥ मूर्ख मनुष्य उस मालिक-प्रभु को भुलाए रखता है जो दुनिया के भोगों और सुखों का भी स्वामी है और जो मोक्ष भी देनेवाला है । हे दास नानक ! (कह—) करोड़ों में कोई विरला मनुष्य होता है जो परमात्मा की भक्ति प्राप्त करता है ॥ २ ॥ ३ ॥

॥ गउड़ी महला ९ ॥ साधो इहु मनु गहिओ न जाई । चंचल त्रिसना संगि बसतु है या ते थिरु न रहाई ॥ १ ॥ रहाउ ॥ कठन करोध घट ही के भीतरि जिह सुधि सभ बिसराई । रतनु गिआनु सभ को हिरि लीना ता सिउ कछु न बसाई ॥ १ ॥ जोगी जतन करत सभ हारे गुनी रहे गुन गाई । जन नानक हरि भए दइआला तउ सभ बिधि बनि आई ॥ २ ॥ ४ ॥

हे संतजनो ! इस मन को नियन्त्रण में नहीं किया जा सकता, (क्योंकि यह मन सदा) अनेक हाव-भावों वाली तृष्णा के साथ रहता है, इसलिए यह कभी टिककर नहीं रहता ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे संतजनो !) वश में न आ सकने वाला क्रोध भी इस हृदय में बसता है, जिसने मनुष्य की तमाम होश गवाँ दी है । (क्रोध ने) हरेक मनुष्य का श्रेष्ठ ज्ञान चुरा लिया है, उसके साथ किसी का वश नहीं चलता ॥ १ ॥ समस्त योगी (इस मन को नियंत्रित करने का यत्न करते-करते थक गए, विद्वान् मनुष्य अपनी विद्या की प्रशंसा करते-करते थक गए । हे दास नानक ! जब प्रभुजी दयालु होते हैं तो (इस मन को नियंत्रित करने के) समस्त प्रयास सफल होते हैं ॥ २ ॥ ४ ॥

॥ गउड़ी महला ६ ॥ साधो गोबिंद के गुन गावउ । मानस जनमु अमोलकु पाइओ बिरथा काहि गवावउ ॥ १ ॥रहाउ॥ पतित पुनीत दीन बंध हरि सरनि ताहि तुम आवउ । गज को त्रास मिटिओ जिह सिमरत तुम काहे बिसरावउ ॥ १ ॥ तजि अभिमान मोह माइआ फुनि भजन राम चितु लावउ । नानक कहत मुकति पंथ इहु गुरमुखि होइ तुम पावउ ॥ २ ॥ ५ ॥

(हे संतजनो !) गोबिंद के गुण गाते रहा करो । यह बड़ा कीमती मनुष्य-जन्म मिला है, इसे व्यर्थ क्यों गवाँते हो ॥ १ ॥ रहाउ ॥ परमात्मा उन व्यक्तियों को भी पवित्र करनेवाला है जो विकार-ग्रस्त हैं, वह हरि ग़रीबों का सहायक है । तुम भी उसी की शरण लो जिसका स्मरण करके हाथी का डर मिट गया था, तुम उसे क्यों भुला रहे हो ? ॥ १ ॥ (हे संतजनो !) अहंकार दूर करके और माया का मोह दूर करके अपना चित्त परमात्मा के भजन में जोड़े रखो । नानक कहता है— विकारों से मुक्त होने का यही रास्ता है लेकिन गुरु की शरण लेकर (ही) तुम एक रास्ता प्राप्त कर सकोगे ॥ २ ॥ ५ ॥

॥ गउड़ी महला ६ ॥ कोऊ माई भूलिओ मनु समझावै । बेद पुरान साध मग सुनि करि निमख न हरिगुन गावै ॥ १ ॥ रहाउ ॥ दुरलभ देह पाइ मानस की बिरथा जनमु सिरावै । माइआ मोह महा संकट बन ता सिउ रुच उपजावै ॥ १ ॥ अंतरि बाहरि सदा संगि प्रभु ता सिउ नेहु न लावै । नानक मुकति ताहि तुम मानहु जिह घटि रामु समावै ॥ २ ॥ ६ ॥

हे माँ ! मुझे कोई (ऐसा गुरमुख मिल जाए जो) मेरे इस कुमार्गगामी मन को सुबुद्धि देवे । यह मन वेद-पुराण तथा संतजनों के उपदेश सुनकर तनिक सी देरी के लिए भी परमात्मा के गुण नहीं गाता ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे मेरी माँ ! मन ऐसा कुमार्गगामी है कि) बड़ी कठिनता से मिल सकने वाला मनुष्य-शरीर प्राप्त करके (भी) इस जन्म को व्यर्थ बिता रहा है । (हे माँ ! यह संसार) जंगल माया-मोह से पूर्णरूपेण भरा हुआ है (और मेरा मन) इस (जंगल) से ही प्रेम कर रहा है ॥ १ ॥ (हे माँ ! जो) परमात्मा अन्दर तथा बाहर हर समय बसता है, उससे (मेरा मन) नेह नहीं जोड़ता । हे नानक ! उसी मनुष्य को मुक्ति मिली समझो, जिसके हृदय में परमात्मा बस रहा है ॥ २ ॥ ६ ॥

॥ गउड़ी महला ९ ॥ साधो राम सरनि बिसरामा। बेद पुरान पड़े को इह गुन सिमरे हरि का नामा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ लोभ मोह माइआ ममता फुनि अउ बिखअन की सेवा। हरख सोग परसै जिह नाहनि सो मूरति है देवा ॥ १ । सुरग नरक अंम्रित बिखु ए सभ तिउ कंचन अरु पैसा। उसतति निंदा ए सम जा कै लोभु मोहु फुनि तैसा ॥ २ ॥ दुखु सुखु ए बाधे जिह नाहनि तिह तुम जानहु गिआनी। नानक मुकति ताहि तुम मानउ इह बिधि को जो प्रानी ॥ ३ ॥ ७ ॥

हे संतजनो ! परमात्मा की शरण लेने से ही शांति प्राप्त होती है। वेद-पुराण पढ़ने का लाभ यही है कि मनुष्य परमात्मा का नाम-स्मरण करता रहे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ लोभ, माया का मोह, लगाव तथा विषयों का सेवन, दुख-सुख— (इनमें से कोई भी) जिस मनुष्य को स्पर्श नहीं कर सकता (जिस मनुष्य पर अपना दबाव नहीं डाल सकता) वह मनुष्य परमात्मा का रूप है ॥ १ ॥ जिसे स्वर्ग तथा नरक, अमृत तथा विष एक समान लगते हैं, जिसे सोना तथा ताँबा एक समान प्रतीत होता है, जिसके हृदय में स्तुति और निन्दा एक जैसे हैं, जिसके हृदय में लोभ तथा मोह कोई प्रभाव नहीं डाल सकते ॥ २ ॥ (हे संतजनो !) आप उस मनुष्य को परमात्मा से ऐक्य बनाए रखनेवाला समझो जिसे कोई सुख अथवा दुख बन्धन में बाँध नहीं सकता। हे नानक ! मुक्ति उस मनुष्य को (मिली) समझो जो मनुष्य इस प्रकार की जीवन-युक्ति वाला है ॥ ३ ॥ ७ ॥

॥ गउड़ी महला ९ ॥ मन रे कहा भइओ तै बउरा। अहिनिसि अउध घटै नही जानै भइओ लोभ संगि हउरा ॥१॥रहाउ॥ जो तनु तै अपनो करि मानिओ अरु सुंदर ग्रिह नारी। इन मैं कछु तेरो रे नाहनि देखो सोच बिचारी ॥ १ ॥ रतन जनमु अपनो तै हारिओ गोबिंद गति नही जानी। निमख न लीन भइओ चरनन सिउ बिरथा अउध सिरानी ॥ २ ॥ कहु नानक सोई नरु सुखीआ राम नाम गुन गावै। अउर सगल जगु माइआ मोहिआ निरभै पदु नही पावै ॥ ३ ॥ ८ ॥

हे (मेरे) मन ! तू कहाँ (लोभ आदि में फँसकर) पागल हो रहा है? दिन-रात अवस्था घटती रहती है परन्तु आदमी यह बात समझता नहीं और लोभ मे फंसकर निर्बल आत्मिक जीवनवाला बनता जाता है ॥ १ ॥ रहाउ॥ हे मन ! जो शरीर तू अपना समझ रहा है और घर की सुन्दर स्त्री को

अपनी मान रहा है, इनमें से कोई भी तेरा साथी नहीं है, सोचकर देख ले, विचार कर देख ले ॥ १ ॥ हे (मेरे) मन ! जैसे जुआरी जुए में बाजी हारता है, वैसे ही तू अपना कीमती मनुष्य-जन्म हार रहा है; क्योंकि तूने परमात्मा के साथ मिलाप का महत्व नहीं समझा। तू थोड़ी सी देर के लिए भी गोबिंद प्रभु के चरणों में नहीं जुड़ता, तू व्यर्थ अवस्था समाप्त कर रहा है॥ २ ॥ हे नानक ! वही मनुष्य सुखी जीवनवाला है जो परमात्मा का नाम (जपता है,) जो परमात्मा के गुण गाता है। शेष समस्त संसार उस माया के मोह में फँसा रहता है, (वह) उस आत्मिक अवस्था पर नहीं पहुँचता, जहाँ कोई भय स्पर्श नहीं कर सकता ॥ ३ ॥ ८ ॥

॥ गउड़ी महला ६ ॥ नर अचेत पाप ते डरु रे। दीन दइआल सगल भै भंजन सरनि ताहि तुम परु रे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ बेद पुरान जास गुन गावत ता को नामु हीऐ मो धरु रे। पावन नामु जगति मै हरि को सिमरि सिमरि कसमल सभ हरु रे ॥ १ ॥ मानस देह बहुरि नह पावै कछू उपाउ मुकति का करु रे। नानक कहत गाइ करुनामै भवसागर कै पार उतरु रे ॥ २ ॥ ९ ॥ २५१ ॥

हे निश्चिन्त मनुष्य ! पापों से बचा रह। परमात्मा की शरण लिए रह, जो ग़रीबों पर दया करनेवाला है और सारे भय दूर करनेवाला है ॥१॥ रहाउ ॥ उस परमात्मा का नाम अपने हृदय में पिरोए रख, जिसके गुण वेद-पुराण गा रहे हैं। (पापों से बचाकर) पवित्र करनेवाला जगत् में परमात्मा का नाम ही है, तू उस परमात्मा का स्मरण करके सारे पाप दूर कर ले ॥ १ ॥ (हे ग़ाफ़िल मनुष्य !) तू यह मनुष्य-शरीर फिर कभी भी प्राप्त नहीं कर सकेगा। (इसलिए पापों से) मुक्ति प्राप्त करने का कोई इलाज कर ले। तुझे नानक कहता है— करुणामय परमात्मा के गुण गाकर संसार-समुद्र से पार उतर ॥ २ ॥ ९ ॥ २५१ ॥

रागु गउड़ी असटपदीआ महला १ गउड़ी गुआरेरी

१ ओं सतिनामु करता पुरखु गुर प्रसादि ॥ निधि सिधि निरमल नामु बीचारु। पूरन पूरि रहिआ बिखु मारि। त्रिकुटी छूटी बिमल मझारि। गुर की मति जीइ आई कारि ॥ १ ॥ इनि बिधि राम रमत मनु मानिआ। गिआन अंजनु गुर सबदि पछानिआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ इकु सुखु मानिआ

सहजि मिलाइआ । निरमल बाणी भरमु चुकाइआ । लाल भए सूहा रंगु माइआ । नदरि भई बिखु ठाकि रहाइआ ॥ २ ॥ उलट भई जीवत मरि जागिआ । सबदि रवे मनु हरि सिउ लागिआ । रसु संग्रहि बिखु परहरि तिआगिआ । भाइ बसे जम का भउ भागिआ ॥ ३ ॥ साद रहे बादं अहंकारा । चितु हरि सिउ राता हुकमि अपारा । जाति रहे पति के आचारा । द्रिसटि भई सुखु आतम धारा ॥ ४ ॥ तुझ बिनु कोइ न देखउ मीतु । किसु सेवउ किसु देवउ चीतु । किसु पूछउ किसु लागउ पाइ । किसु उपदेसि रहा लिव लाइ ॥ ५ ॥ गुर सेवी गुर लागउ पाइ । भगति करी राचउ हरिनाइ । सिखिआ दीखिआ भोजन भाउ । हुकमि संजोगी निज घरि जाउ ॥ ६ ॥ गरब गतं सुख आतम धिआना । जोति भई जोती माहि समाना । लिखतु मिटै नही सबदु नीसाना । करता करणा करता जाना ॥ ७ ॥ नह पंडितु नह चतुरु सिआना । नह भूलो नह भरमि भुलाना । कथउ न कथनी हुकमु पछाना । नानक गुरमति सहजि समाना ॥ ८ ॥ १ ॥

गुरु की दी हुई सुबुद्धि मेरे हृदय में समा गई है, (जिससे) पवित्र हरि-नाम में लीन रहने के कारण मेरी भीतरी खीझ समाप्त हो गई है; मैंने माया के विषय को मार लिया है। अब मुझे परमात्मा ही सर्वत्र व्यापक दिख रहा है। परमात्मा का निर्मल नाम मेरे लिए (आत्मिक) भण्डार है, परमात्मा के गुणों का विचार ही मेरे लिए सिद्धियाँ हैं ॥ १ ॥ गुरु के ज्ञान में जुड़कर मैंने वह सुरमा प्राप्त कर लिया है जो परमात्मा से ऐक्य करा देता है। परमात्मा का नाम-स्मरण करके मेरा मन (स्मरण में) इस प्रकार लग गया है (कि अब स्मरण के बिना रह ही नहीं सकता) ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (परमात्मा की गुणस्तुति वाली) पवित्र वाणी ने मेरी दुबिधा समाप्त कर दी है, मुझे सहज अवस्था में मिला दिया है, (अब मेरा मन) मान गया है कि यही (आत्मिक) सुख (सर्वश्रेष्ठ) है। मेरा मन नाम-रंग में रँगकर लाल हो गया है। माया का रंग मुझे कसुंभडे के रंग जैसा कच्चा लगने लगा है। मुझ पर परमात्मा की कृपा-दृष्टि है, मैंने माया के विष को (अपने ऊपर प्रभावी होने से) रोक लिया है ॥ २ ॥ (मेरी सुरति माया-मोह से) अलग हो गई है, लौकिक काम-काज करते हुए ही (माया से) मेरा मन मर गया है, मेरे भीतर आत्मिक जागृति हो गई है। गुरु के शब्द द्वारा मैं स्मरण कर रहा हूं, मेरा मन परमात्मा से प्रेम सम्पन्न

कर चुका है। (आत्मिक) आनन्द एकत्रित करके मैंने माया के विष को (अपने भीतर से) दूर कर त्याग दिया है। परमात्मा के प्रेम में टिकने से मेरा मृत्यु का भय दूर हो गया है ॥ ३ ॥ (स्मरण के प्रभाव से) भौतिक पदार्थों के आस्वादन का मोह दूर हो गया है, (नित्य माया का) झगड़ा मिट गया है, अहंकार समाप्त हो गया है। मेरा चित्त अब परमात्मा के साथ रँग गया है, मैं अब उस अनन्त प्रभु की रज़ा में टिक गया हूं। जाति-वर्ण और लोकलाज-वश किए जानेवाले धर्म-कर्म वश में हो गए हैं। (मुझ पर प्रभु की) कृपा-दृष्टि हुई है, मुझे आत्मिक सुख मिल गया है ॥ ४ ॥ (हे प्रभु!) मुझे तुम्हारे बिना कोई दूसरा मित्र दिखाई नहीं देता। मैं अब किसी और को स्मरण नहीं करता, मैं किसी दूसरे को अपना मन भेंट नहीं करता। मैं किसी दूसरे से परामर्श नहीं करता, मैं किसी दूसरे के चरण-स्पर्श नहीं करता फिरता, मैं किसी दूसरे के उपदेश में सुरति नहीं लगाता फिरता ॥ ५ ॥ (गुरु ने तुम्हारे ज्ञान का सुरमा दिया है, इसलिए) मैं गुरु की ही सेवा करता हूँ, गुरु के चरण छूता हूँ। (गुरु-कृपा से ही,) मैं परमात्मा की भक्ति करता हूँ, हरि के नाम में टिकता हूँ। गुरु की शिक्षा, दीक्षा एवं गुरु के प्रेम को ही मैंने आत्मा का भोजन बनाया है। ईश्वर की रज़ा में ही यह पूर्वकर्मों का अंकुर फूटा है और मैं अपने वास्तविक घर (प्रभु-चरणों) में टिका बैठा हूँ ॥ ६ ॥ (स्मरण के प्रभाव से) अहंकार दूर हो गया है, आत्मिक आनन्द में मेरी सुरति टिक गई है, मेरे भीतर आत्मिक प्रकाश हो गया है, मेरी आत्मा प्रभु की ज्योति में लीन हो गई है। (मेरे हृदय में) चित्रित गुरु-शब्द (-रूपी) लेख अब ऐसा प्रकट हो गया है कि मिट नहीं सकता। मैंने कर्त्तार की रचना को कर्त्तार-रूप ही जान लिया है, (मैंने कर्त्तार को ही सृष्टि का रचयिता मान लिया है) ॥ ७ ॥ मैं कोई पण्डित नहीं हूँ, मैं चतुर नहीं हूँ, मैं बुद्धिमान नहीं हूँ, इसलिए मैं रास्ते से विचलित नहीं हुआ, दुबिधा में पड़कर कुमार्गगामी नहीं हुआ। मैं चतुराई की बातें नहीं करता। हे नानक! (कह—) मैंने तो सतिगुरु की शिक्षा लेकर परमात्मा के हुक्म को पहचाना है और मैं स्थिर अवस्था में टिक गया हूँ ॥ ८ ॥ १ ॥

॥ गउड़ी गुआरेरी महला १ ॥ मनु कुंचरु काइआ उदिआनै। गुरु अंकसु सचु सबदु नीसानै। राज दुआरै सोभ सु मानै ॥ १ ॥ चतुराई नह चीनिआ जाइ। बिनु मारे किउ कीमति पाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ घर महि अंम्रितु तसकरु लेई। नंनाकारु न कोइ करेई। राखै आपि वडिआई देई ॥ २ ॥ नील अनील अगनि इक ठाई। जलि निवरी गुरि बूझ बुझाई।

मनु दे लीआ रहसि गुण गाई ॥ ३ ॥ जैसा घरि बाहरि सो तैसा । बैसि गुफा महि आखउ कैसा । सागरि डूगरि निरभउ ऐसा ॥ ४ ॥ मूए कउ कहु मारे कउनु । निडरे कउ कैसा डरु कवनु । सबदि पछानै तीने भउन ॥ ५ ॥ जिनि कहिआ तिनि कहनु वखानिआ । जिनि बूझिआ तिनि सहजि पछानिआ । देखि बीचारि मेरा मनु मानिआ ॥ ६ ॥ कीरति सूरति मुकति इक नाई । तही निरंजनु रहिआ समाई । निजघरि बिआपि रहिआ निज ठाई ॥ ७ ॥ उसतति करहि केते मुनि प्रीति । तनि मनि सूचै साचु सुचीति । नानक हरि भजु नीता नीति ॥ ८ ॥ २ ॥

इस शरीर-रूपी उद्यान में मन-रूपी हाथी है । (जिस मन-हाथी के सिर पर) गुरु-रूपी अंकुश हो और सत्यस्वरूप (प्रभु की गुणस्तुति का) शब्द-रूपी झण्डा हो, (वह मन-हाथी) प्रभु-बादशाह के द्वार पर शोभा पाता है ॥ १ ॥ मन को विकारों से हटाए बिना मन का आदर नहीं हो सकता । चतुराई दिखाने से यह पहचान नहीं होती कि (चतुराई दिखानेवाला) मन-मूल्यांकन कराने का अधिकारी हो गया है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (मनुष्य के हृदय-)घर में नाम-अमृत मौजूद है (पर मन-रूपी) चोर (उस अमृत को) चुराए जाता है । कोई जीव इस मन-रूपी चोर के समक्ष मना नहीं कर सकता । परमात्मा आप जिस (के भीतर बसते अमृत) की रक्षा करता है, उसे सम्मान देता है ॥ २ ॥ (इस मन में) तृष्णा की अनन्त अग्नि एक ही स्थान पर पड़ी है । जिसे गुरु ने (तृष्णा-अग्नि से बचने की) समझ दी है, उसकी अग्नि अकेले प्रभु के नाम-जल से बुझ जाती है; (जिसने भी नाम-जल पान किया है) अपना मन (बदले में) देकर ले लिया है, वह चाव से परमात्मा की गुणस्तुति के गीत गाता है ॥ ३ ॥ (यदि मन-हाथी के सिर पर गुरु-रूपी अंकुश नहीं है तो) जैसा यह गृहस्थ में है वैसा ही यह बाहर (जंगलों में फँसा) है। पहाड़ की गुफा में बैठकर भी क्या कहूँ कि कैसा बन गया है ? समुद्र में बड़े (तीर्थों में डुबकी लगाए, चाहे) पहाड़ (की गुफा) में बैठे, यह एक-जैसा (अचेत) रहता है ॥ ४ ॥ लेकिन यदि यह (गुरु-रूपी अंकुश के वश में रहकर विकारों से) मर जाए तो फिर कोई विकार इस पर चोट नहीं कर सकता । यदि यह (गुरु-अंकुश के भय में रहकर) निडर हो जाए, तो दुनियावाला कोई भय इसे स्पर्श नहीं कर सकता (क्योंकि) गुरु के शब्द में जुड़कर यह पहचान लेता है कि (इसका रक्षक परमात्मा) तीनों ही भवनों में सर्वत्र बसता है ॥ ५ ॥ जिस मनुष्य ने (केवल चतुराई से) कह दिया (कि परमात्मा तीनों लोकों में व्यापक है)

उसने मौखिक रूप से ही कह दिया (लेकिन उसका मन अभी तक पूर्ववत है)। जिसने (गुरु-अंकुश के अधीन रहकर यह भेद) समझ लिया उसने स्थिर आत्मिक अवस्था में टिककर (उसे) पहचान भी लिया। (सर्वत्र प्रभु का) दर्शन करके उसके गुणों का विचार कर उसका 'मेरा' 'मेरा' कहनेवाला मन (प्रभु की गुणस्तुति में) रम जाता है ॥ ६ ॥ जिस हृदय में एक परमात्मा की गुणस्तुति है, वहाँ शोभा है, वहाँ सौन्दर्य है, वहाँ विकारों से मुक्ति है, वहीं माया के प्रभाव से रहित परमात्मा हर समय मौजूद है। उस अपने घर में, उस अपने निवास-स्थान में परमात्मा हर समय मौजूद है ॥ ७ ॥ अनेक मुनि-जन (मन-हाथी को गुरु-अंकुश के अधीन करके) पवित्र मन-तन से प्रेम में जुड़कर परमात्मा की गुणस्तुति करते हैं; वह सत्यस्वरूप प्रभु उनके हाथ में बसता है। हे नानक! तू भी (इसी प्रकार) सदा-सदा उस परमात्मा का भजन कर ॥ ८ ॥ २ ॥

॥ गउड़ी गुआरेरी महला १ ॥ ना मनु मरै न कारजु होइ। मनु वसि दूता दुरमति दोइ। मनु मानै गुर ते इकु होइ ॥ १ ॥ निरगुण रामु गुणह वसि होइ। आपु निवारि बीचारे सोइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मनु भूलो बहु चितै विकारु। मनु भूलो सिरि आवै भारु। मनु मानै हरि एकंकारु ॥ २ ॥ मनु भूलो माइआ घरि जाइ। कामि बिरूधउ रहै न ठाइ। हरि भजु प्राणी रसन रसाइ ॥ ३ ॥ गैवर हैवर कंचन सुत नारी। बहु चिंता पिड़ चालै हारी। जूऐ खेलणु काची सारी ॥ ४ ॥ संपउ संची भए विकार। हरख सोक उभे दरवारि। सुखु सहजे जपि रिदै मुरारि ॥ ५ ॥ नदरि करे ता मेलि मिलाए। गुण संग्रहि अउगण सबदि जलाए। गुरमुखि नामु पदारथु पाए ॥ ६ ॥ बिनु नावै सभ दूख निवासु। मनमुख मूड़ माइआ चित वासु। गुरमुखि गिआनु धुरि करमि लिखिआसु ॥ ७ ॥ मनु चंचलु धावतु फुनि धावै। साचे सूचे मैलु न भावै। नानक गुरमुखि हरिगुण गावै ॥ ८ ॥ ३ ॥

जब तक मनुष्य का मन कामादिक विकारों के वश में है, दुर्मति, मेर-तेर के अधीन है, तब तक मन (तृष्णा की ओर से) मरता नहीं और तब तक जन्म-मनोरथ भी फलीभूत नहीं होता। जब गुरु से (शिक्षा लेकर मनुष्य का) मन (गुणस्तुति में) रम जाता है तब यह परमात्मा से एकरूप हो जाता है ॥ १ ॥ परमात्मा माया के तीन गुणों से परे है, और, उच्च आत्मिक गुणों के वश में है। जो मनुष्य आपा-भाव दूर कर लेता है वह

सब गुणों को अपने मन में बसाता है ।। १ ।। रहाउ ।। (माया के वशीभूत होकर जब तक) मन कुमार्गगामी रहता है तब तक यह विकार ही विकार सोचता रहता है, (मनुष्य के) सिर पर विकारों का बोझ एकत्रित होता जाता है । परन्तु जब मन (प्रभु की गुणस्तुति) से परिचित होता है तब यह एक परमात्मा से ऐक्य स्थापित कर लेता है ।। २ ।। (माया के असर से) कुमार्गगामी मन माया के घर में (मुड़-मुड़कर) जाता है, काम-ग्रस्त मन सही ठिकाने पर नहीं रहता । (इस माया के प्रभाव से बचने के लिए) हे प्राणी ! अपनी जिह्वा को (अमृत रस में) रसमग्न करके परमात्मा का भजन कर ।। ३ ।। बढ़िया हाथी, बढ़िया घोड़े, सोना, पुत्र, स्त्री (इनका मोह) जुए का खेल है, (चौसर की) कच्ची सारें (बार-बार मार खाती हैं, वैसे ही इस जुए का खेल खेलनेवाले का मन कमज़ोर रहकर विकारों की चोटें खाता रहता है) । (मोहवश) मन को बहुत चिन्ता लगी रहती है, और, आखिर इस जगत् के अखाड़े से मनुष्य बाजी हारकर जाता है ।। ४ ।। ज्यों-ज्यों मनुष्य धन जोड़ता है, मन में विकार पैदा होते जाते हैं । (कभी ख़ुशी, कभी चिन्ता) यह ख़ुशी तथा भय मनुष्य के द्वार पर खड़े ही रहते हैं, लेकिन हृदय में परमात्मा का स्मरण करने से मन स्थिर अवस्था में टिक जाता है और आत्मिक आनन्द प्राप्त करता है ।। ५ ।। जब परमात्मा कृपा-दृष्टि करता है तब गुरु इसे अपने शब्द में जोड़कर प्रभु-चरणों में मिला देता है (गुरु के सम्मुख होकर) जीव आत्मिक गुण (अपने भीतर) एकत्रित करके गुरु-शब्द के द्वारा अवगुण जला देता है । गुरु के सम्मुख होकर मनुष्य नाम-धन प्राप्त कर लेता है ।। ६ ।। प्रभु के नाम में जुड़े बिना मनुष्य के मन में सारे दुःख-क्लेशों का डेरा आ लगता है, मूर्ख मनुष्य के चित्त का वास माया में ही रहता है । आदिमकाल से परमात्मा की कृपा से (जिसके मस्तक पर) पूर्वकृत कर्मों के संस्कारों का लेख प्रकट होता है, वह मनुष्य गुरु के सम्मुख होकर परमात्मा से गहरे सम्बन्ध बना लेता है ।। ७ ।। (आत्मिक गुणों से रहित) मन चंचल रहता है, (माया के पीछे) बार-बार दौड़ता है । सत्यस्वरूप तथा पवित्र परमात्मा को (मनुष्य के मन की यह) मैल अच्छी नहीं लगती । हे नानक ! जो मनुष्य गुरु की शरण लेता है, वह परमात्मा के गुण गाता है (और उसका जन्म-मनोरथ सफल हो जाता है) ।। ८ ।। ३ ।।

।। गउड़ी गुआरेरी महला १ ।। हउमै करतिआ नह सुखु होइ । मनमति झूठी सचा सोइ । सगल बिगूते भावै दोइ । सो कमावै धुरि लिखिआ होइ ।। १ ।। ऐसा जगु देखिआ जूआरी । सभि सुख मागै नामु बिसारी ।। १ ।। रहाउ ।। अदिसटु दिसै ता

कहिआ जाइ। बिनु देखे कहणा बिरथा जाइ। गुरमुखि दीसै सहजि सुभाइ। सेवा सुरति एक लिव लाइ॥ २॥ सुखु मांगत दुखु आगल होइ। सगल विकारी हारु परोइ। एक बिना झूठे मुकति न होइ। करि करि करता देखै सोइ॥ ३॥ त्रिसना अगनि सबदि बुझाए। दूजा भरमु सहजि सुभाए। गुरमती नामु रिदै वसाए। साची बाणी हरिगुण गाए॥ ४॥ तन महि साचो गुरमुखि भाउ। नाम बिना नाही निज ठाउ। प्रेम पराइण प्रीतम राउ। नदरि करे ता बूझै नाउ॥ ५॥ माइआ मोहु सरब जंजाला। मनमुख कुचील कुछित बिकराला। सतिगुरु सेवे चूकै जंजाला। अंम्रित नामु सदा सुखु नाला॥ ६॥ गुरमुखि बूझै एक लिव लाए। निजघरि वासै साचि समाए। जंमणु मरणा ठाकि रहाए। पूरे गुर ते इह मति पाए॥ ७॥ कथनी कथउ न आवै ओरु। गुरु पुछि देखिआ नाही दरु होरु। दुखु सुखु भाणै तिसै रजाइ। नानकु नीचु कहै लिव लाइ॥ ८॥ ४॥

हर वक्त अपने ही बड़प्पन तथा सुख की बातें करते हुए सुख नहीं मिल सकता। मन की चतुराई नश्वर पदार्थों में (जोड़ती है), वह परमात्मा सदा सत्यस्वरूप है। जिन्हें (नाम भुलाकर) मेर-तेर अच्छी लगती है, वे सारे दुखी ही होते हैं (पर जीव के भी क्या वश ?) परमात्मा द्वारा जीव के मस्तक पर जो लेख लिखा होता है, उसी के अनुसार वह यहाँ कमाई करता है॥ १॥ मैंने देखा है कि जगत् जूए का खेल खेलता है, ऐसा (खेल खेलता है) कि सुख तो सारे ही माँगता है परन्तु वह नाम को भुला रहा है॥ १॥ रहाउ॥ परमात्मा दिखाई नहीं देता, यदि आँखों से दिखाई दे तभी उसका नाम लेने को मन करे। आँखों से देखे बिना उसका नाम नहीं लिया जा सकता (क्योंकि गोचर पदार्थों से ही हमारा आकर्षण अधिक होता है)। गुरु के सम्मुख रहने से मनुष्य का मन (गोचर पदार्थों से हटकर) स्थिरता में टिकता है, प्रभु-प्रेम में लीन होता है और इस प्रकार अन्तरात्मा में वह प्रभु दिख पड़ता है। गुरु के सम्मुख मनुष्य की सुरति गुरु की बतलाई सेवा में जुड़ती है, उसकी लौ एक परमात्मा में लगती है॥ २॥ (प्रभु का नाम भुलाकर) सुख माँगने से बहुत दुख बढ़ता है (क्योंकि) मनुष्य सारे विकारों का हार पिरोकर (अपने गले में डाल लेता है)। नश्वर पदार्थों के मोह में फँसे हुए व्यक्ति को परमात्मा के नाम के बिना मुक्ति प्राप्त नहीं होती। (प्रभु की इस प्रकार रजा है) वह कर्त्तार

आप ही सब कुछ करके आप ही इस खेल को देख रहा है ॥ ३ ॥ जो मनुष्य गुरु के शब्द में जुड़कर तृष्णा की आग बुझाता है, स्थिर अवस्था में टिककर, प्रभु-प्रेम में जुड़कर उसकी भौतिक पदार्थों के प्रति उपजी दुबिधा समाप्त हो जाती है। गुरु की शिक्षा का अनुसरण करके वह परमात्मा का नाम अपने हृदय में बसाता है। प्रभु की गुणस्तुति की वाणी के द्वारा वह परमात्मा के गुण गाता है ॥ ४ ॥ (वैसे तो) हरेक शरीर में सत्यस्वरूप प्रभु विद्यमान है लेकिन गुरु की शरण लेने से उसके प्रति प्रेम जागता है। नाम के बिना मन एक ठिकाने पर आ ही नहीं सकता। प्रियतम प्रभु भी प्रेम के अधीन है (जो उससे प्रेम करता है) प्रभु उस पर कृपा-दृष्टि करता है और वह उसके नाम की महत्ता समझता है ॥ ५ ॥ माया का मोह सारे बन्धन पैदा करता है, (इसलिए) स्वेच्छाचारी मनुष्य का जीवन गन्दा, विकृत और भयानक बन जाता है। जो मनुष्य गुरु का बतलाया रास्ता स्वीकार करता है, उसके माया के बन्धन टूट जाते हैं, वह आत्मिक जीवन देनेवाला नाम जपता है और सदा ही आत्मिक आनन्द अपने भीतर अनुभव करता है ॥ ६ ॥ गुरु के सम्मुख रहनेवाला मनुष्य (नाम का महत्व) समझता है, एक परमात्मा में सुरति जोड़ता है, अपने स्वरूप में टिका रहता है, सत्यस्वरूप प्रभु (के चरणों) में लीन रहता है। वह अपने जन्म-मरण के चक्र को रोक लेता है लेकिन यह सूझ वह पूर्णगुरु से ही प्राप्त करता है ॥ ७ ॥ जिस परमात्मा के गुणों का बखान नहीं हो सकता, मैं उसके गुण गाता हूँ। मैंने अपने गुरु से पूछकर देख लिया है कि (उस प्रभु के बिना सुख का दूसरा कोई ठिकाना नहीं है। जीवों को सुख-दुख उस प्रभु की रज़ा में उसकी इच्छानुसार मिलते हैं। (निम्न बुद्धिवाला) नानक (प्रभु-चरणों में) सुरति जोड़कर प्रभु की गुणस्तुति ही करता है ॥ ८ ॥ ४ ॥

॥ गउड़ी महला १ ॥ दूजी माइआ जगत चित वासु। काम क्रोध अहंकार बिनासु ॥ १ ॥ दूजा कउणु कहा नही कोई। सभ महि एकु निरंजनु सोई ॥ १ ॥ रहाउ ॥ दूजी दुरमति आखै दोइ। आवै जाइ मरि दूजा होइ ॥ २ ॥ धरणि गगन नह देखउ दोइ। नारी पुरख सबाई लोइ ॥ ३ ॥ रवि ससि देखउ दीपक उजिआला। सरब निरंतरि प्रीतमु बाला ॥ ४ ॥ करि किरपा मेरा चितु लाइआ। सतिगुरि मो कउ एकु बुझाइआ ॥ ५ ॥ एकु निरंजनु गुरमुखि जाता। दूजा मारि सबदि पछाता ॥ ६ ॥ एको हुकमु वरतै सभ लोई। एकसु ते सभ ओपति होई ॥ ७ ॥ राह दोवै खसमु एको जाणु। गुर कै

सबदि हुकमु पछाणु ।। ८ ।। सगल रूप वरन मन माही । कहु नानक एको सालाही ।। ६ ।। ५ ।।

परमात्मा से भेदभाव पैदा करनेवाली माया ने जगत् के जीवों के मनों में अपना ठिकाना बनाया हुआ है। (इस माया से उपजे) काम-क्रोध-अहंकार आदि (विकार जीवों के आत्मिक जीवन का) नाश कर देते हैं।।१।। समस्त जीवों में एक वही परमात्मा बस रहा है, जिसपर माया का प्रभाव नहीं पड़ सकता। कहीं भी उससे अलग दूसरा कोई नहीं है। उस प्रभु से अलग (अस्तित्व वाला) मैं कोई भी बतला नहीं सकता।। १ ।। रहाउ ।। परमात्मा से भेदभाव पैदा करनेवाली (माया के कारण ही मनुष्य की) कुमति (मनुष्य को) बताती रहती है कि माया का अस्तित्व प्रभु से अलग है। (इस कुमति के प्रभाव से) जीव पैदा होता है, मरता है और इस प्रकार, आत्मिक रूप से मरकर परमात्मा से दूरी पर हो जाता है ।। २ ।। लेकिन मैं तो धरती-आकाश में, स्त्री-पुरुष में, समस्त सृष्टि में कहीं भी परमात्मा के अतिरिक्त कोई अस्तित्व नहीं देखता ।। ३ ।। मैं सूर्य-चन्द्रमा दीपकों का प्रकाश देखता हूँ, सभी के भीतर एक रस, शाश्वत यौवन-सम्पन्न प्रियतम प्रभु ही दिख रहा है ।। ४ ।। सतिगुरु ने कृपा करके मेरा चित्त प्रभु के चरणों में जोड़ दिया और मुझे यह समझ दी कि सर्वत्र एक परमात्मा ही बस रहा है ।। ५ ।। जो मनुष्य गुरु के सम्मुख होता है वह गुरु-शब्द के प्रभाव से परमात्मा के साथ उपजा भेदभाव दूरकर परमात्मा के (अस्तित्व को) पहचान लेता है, और यह जान लेता है कि एक निरंजन ही सर्वत्र मौजूद है ।। ६ ।। सारी सृष्टि में केवल परमात्मा का ही हुक्म चल रहा है, एक परमात्मा से ही सारी उत्पत्ति हुई है ।। ७ ।। (एक प्रभु से ही सारी उत्पत्ति होने पर भी माया के प्रभाव से जगत् में) दोनों रास्ते चल पड़ते हैं (—गुरमुखता तथा मनमुखता) (लेकिन हे भाई! सब में) एक परमात्मा को ही व्याप्त जान। गुरु के शब्द में जुड़कर (सारे जगत् में परमात्मा का ही) हुक्म चलता हुआ पहचान ।। ८ ।। हे नानक! कह— मैं उस एक परमात्मा की ही गुणस्तुति करता हूँ जो समस्त रूपों, वर्णों और सारे (जीवों के) मनों में व्यापक है ।। ९ ।। ५ ।।

।। गउड़ी महला १ ।। अधिआतम करम करे ता साचा । मुकति भेदु किआ जाणै काचा ।। १ ।। ऐसा जोगी जुगति बीचारै । पंच मारि साचु उरिधारै ।। १ ।। रहाउ ।। जिस कै अंतरि साचु वसावै । जोग जुगति की कीमति पावै ।। २ ।। रवि ससि एको ग्रिह उदिआनै । करणी कीरति करम समानै ।। ३ ।। एक

सबद इक भिखिआ मागै। गिआनु धिआनु जुगति सचु जागै ॥ ४ ॥ भै रचि रहै न बाहरि जाइ। कीमति कउण रहै लिव लाइ ॥ ५ ॥ आपे मेले भरमु चुकाए। गुर परसादि परम पदु पाए ॥ ६ ॥ गुर की सेवा सबदु वीचारु। हउमै मारे करणी सारु ॥ ७ ॥ जप तप संजम पाठ पुराणु। कहु नानक अपरंपर मानु ॥ ८ ॥ ६ ॥

जब मनुष्य आत्मिक जीवन को ऊँचा करनेवाले कर्म करता है, तब ही सच्चा (योगी) है। पर जिसका मन विकारों के मुकाबले पर दुर्बल है वह विकारों से मुक्ति प्राप्त करने के भेद को क्या जान सकता है ? ॥ १ ॥ ऐसा योगी (व्यक्ति) जीव युक्ति को समझता है (और कामादिक) पाँचों विकारों को मारकर सत्यस्वरूप परमात्मा (की याद) को अपने हृदय में टिकाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिस मनुष्य के भीतर परमात्मा अपना सत्यस्वरूप नाम बसाता है, वह मनुष्य प्रभु-मिलाप की युक्ति की प्रतिष्ठा समझता है ॥ २ ॥ गर्मी, सर्दी, घर, जंगल उसे एक समान लगते हैं, परमात्मा की गुणस्तुति-रूपी कर्म उसकी सामान्य करनी है ॥ ३ ॥ (द्वार-द्वार पर रोटी माँगने के स्थान पर वह योगी गुरु के द्वार से) परमात्मा की गुणस्तुति की भीख माँगता है, उसके भीतर प्रभु के साथ ऐक्य हो जाता है, उसकी उच्च सुरति जाग पड़ती है ॥ ४ ॥ वह योगी सदा प्रभु के भय-आदर में लीन रहता है, (इस डर से) बाहर नहीं जाता। ऐसे योगी का कौन मूल्यांकन कर सकता है ? वह सदा प्रभु-चरणों में सुरति जोड़े रखता है ॥ ५ ॥ (योग-साधन कुछ नहीं सँवार सकते) प्रभु आप ही अपने साथ मिलाता है और जीव की दुबिधा समाप्त करता है। गुरु की कृपा से मनुष्य सर्वोपरि आत्मिक स्थान प्राप्त करता है ॥ ६ ॥ (वास्तविक योगी) गुरु द्वारा बतलाई सेवा करता है, गुरु के शब्द को अपनी विचार-वस्तु बनाता है, अहंकार को (अपने भीतर से) मारता है— यही उस योगी का श्रेष्ठ कर्म है ॥ ७ ॥ हे नानक ! कह— अनन्त प्रभु की गुणस्तुति में अपने आपको लगा— यही योगी के जप, तप, संयम और पाठ हैं— यही है योगी का पुराण आदि कोई भी धार्मिक ग्रन्थ ॥ ८ ॥ ६ ॥

॥ गउड़ी महला १ ॥ खिमा गही ब्रतु सील संतोखं। रोगु न बिआपै ना जम दोखं। मुकत भए प्रभ रूप न रेखं ॥ १ ॥ जोगी कउ कैसा डरु होइ। रूखि बिरखि ग्रिहि बाहरि सोइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ निरभउ जोगी निरंजनु धिआवै। अनदिनु जागै सचि लिव लावै। सो जोगी मेरै मनि भावै ॥ २ ॥

कालु जालु ब्रहम अगनी जारे। जरा मरण गतु गरबु निवारे। आपि तरै पितरी निसतारे ॥ ३ ॥ सतिगुरु सेवे सो जोगी होइ। भै रचि रहै सु निरभउ होइ। जैसा सेवै तैसो होइ ॥ ४ ॥ नर निहकेवल निरभउ नाउ। अनाथह नाथ करे बलि जाउ। पुनरपि जनमु नाही गुण गाउ ॥ ५ ॥ अंतरि बाहरि एको जाणै। गुर कै सबदे आपु पछाणै। साचै सबदि दरि नीसाणै ॥ ६ ॥ सबदि मरै तिसु निज घरि वासा। आवै न जावै चूकै आसा। गुर कै सबदि कमलु परगासा ॥ ७ ॥ जो दीसै सो आस निरासा। काम क्रोध बिखु भूख पिआसा। नानक बिरले मिलहि उदासा ॥ ८ ॥ ७ ॥

वह योगी (गृहस्थ में रहकर भी) दूसरों के अत्याचार सहने का स्वभाव बनाता है। मीठा स्वभाव और संतोष उसके नित्य के कर्म हैं। (ऐसे योगी पर कामादिक) रोग दबाव नहीं डाल सकते, उसे मृत्यु का भय नहीं होता। ऐसे योगी विकारों से आज़ाद हो जाते हैं क्योंकि वे रूपरेखा-रहित परमात्मा का रूप हो जाते हैं ॥ १ ॥ जिस आदमी को वृक्ष, घर, बाहर, जंगल आदि सर्वत्न वह परमात्मा ही दृष्टिगोचर होता है, उस योगी को किसी तरह का भय नहीं होता (जिससे घबराकर वह घर छोड़कर भाग जाए) ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जो परमात्मा माया के प्रभाव में नहीं आता, उसे जो मनुष्य स्मरण करता है वह वास्तविक योगी है। वह (भी माया के आक्रमणों से) भयभीत नहीं होता। वह तो हर वक्त (माया के आक्रमणों से) सचेत रहता है क्योंकि वह सत्यस्वरूप प्रभु में सुरति जोड़े रखता है। मुझे वह योगी मन में प्रिय लगता है ॥ २ ॥ (वह योगी अपने भीतर प्रकट हुए) ब्रह्म (के तेज) की अग्नि से मृत्यु के जाल को जला देता है। उस योगी का बुढ़ापे तथा मृत्यु का भय दूर हो जाता है। वह योगी (अपने भीतर से) अहंकार दूर कर लेता है। वह आप ही (संसार-समुद्र से) पार उतर जाता है तथा अपने पितरों को भी पार उतार लेता है ॥ ३ ॥ जो मनुष्य गुरु के बताए मार्ग पर चलता है, वह (वास्तविक) योगी बनता है, वह परमात्मा के भय-सम्मान में रहता है, वह (कामादिक विकारों से) निर्भय रहता है। (क्योंकि यह एक नियम की बात है कि) मनुष्य जैसे आराध्य की सेवा करता है, वैसा ही आप बन जाता है ॥ ४ ॥ मनुष्य निर्भय परमात्मा का नाम जपकर वासनारहित हो जाता है, वह निराश्रितों को आश्रयवान बना देता है; (ऐसे योगी पर) मैं बलिहारी हूँ। उसे बार-बार जन्म नहीं लेना पड़ता, वह सदा प्रभु की गुणस्तुति करता है ॥ ५ ॥ वह योगी अपने भीतर और बाहर सारे जगत् में एक परमात्मा को ही

व्यापक जानता है, गुरु के शब्द में जुड़कर वह अपने स्वरूप को पहचानता है। गुरु के शब्द के प्रभाव से वह योगी परमात्मा के द्वार पर (गुणस्तुति की) चुंगी (यात्राकर) लेकर जाता है ॥ ६ ॥ जो मनुष्य गुरु के शब्द के द्वारा (विकारों से) मरता है, उसका निवास सदा अपनी अन्तरात्मा में रहता है। उसकी आशा (तृष्णा) समाप्त हो जाती है, वह दुबिधा में नहीं पड़ता। गुरु के शब्द में जुड़ने से उसका हृदय-कमल सदा खिला रहता है ॥ ७ ॥ जगत् में जो भी दिखाई देता है, वह अपूर्ण आशाओं (तृष्णाओं) वाला ही दिखता है (किसी की तमाम तृष्णाएँ कभी पूर्ण नहीं हुईं)। प्रत्येक को काम, क्रोध का विष (मारता जा रहा है) और (माया की) भूख, प्यास लगी हुई है। हे नानक ! जगत् में बिरले व्यक्ति मिलते हैं जो आशा एवं तृष्णा के अधीन नहीं हैं (और वही वास्तविक योगी हैं) ॥ ८ ॥ ७ ॥

॥ गउड़ी महला १ ॥ ऐसो दासु मिलै सुखु होई। दुखु विसरै पावै सचु सोई ॥ १ ॥ दरसनु देखि भई मति पूरी। अठसठि मजनु चरनह धूरी ॥ १ ॥ रहाउ ॥ नेत्र संतोखे एक लिव तारा। जिहवा सूची हरिरस सारा ॥ २ ॥ सचु करणी अभ अंतरि सेवा। मनु त्रिपतासिआ अलख अभेवा ॥ ३ ॥ जह जह देखउ तह तह साचा। बिनु बूझे झगरत जगु काचा ॥ ४ ॥ गुरु समझावै सोझी होई। गुरमुखि विरला बूझै कोई ॥ ५ ॥ करि किरपा राखहु रखवाले। बिनु बूझे पसू भए बेताले ॥ ६ ॥ गुरि कहिआ अवरु नही दूजा। किसु कहु देखि करउ अन पूजा ॥ ७ ॥ संत हेति प्रभि त्रिभवण धारे। आतमु चीनै सु ततु बीचारे ॥ ८ ॥ साचु रिदै सचु प्रेम निवास। प्रणवति नानक हम ता के दास ॥ ९ ॥ ८ ॥

(परमात्मा का) ऐसा दास (जिस मनुष्य को) मिल पड़ता है (उसके भीतर) आत्मिक आनन्द पैदा होता है। वह मनुष्य सत्यस्वरूप प्रभु की प्राप्ति कर लेता है, दुख उसके निकट नहीं जाता ॥ १ ॥ (गुरु का) दर्शन करके मनुष्य की अक्ल पूर्ण हो जाती है। (गुरु के) चरणों की धूलि (ही) अठारह तीर्थों का स्नान है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ उसकी आँखें (पराया रूप देखने से) तृप्त हो जाती हैं, उसकी सुरति की तार एक परमात्मा में रहती है। परमात्मा के नाम का श्रेष्ठ रस चखकर उसकी जीभ पवित्र हो जाती है ॥ २ ॥ (जिसे गुरु मिलता है) प्रभु का स्मरण उसकी करनी बन जाता है। अलक्ष्य तथा अकल्पनीय परमात्मा को अपने भीतर

सेवा-भक्ति करके उसका मन (माया से) तृप्त हो जाता है ॥ ३ ॥ (उस गुरु के दर्शन के प्रभाव से ही) मैं जिधर देखता हूँ उस ओर मुझे सत्यस्वरूप प्रभु दिखाई देता है। पर माया के मुकाबले पर कमज़ोर मन वाला जगत् इससे ख़ाली होकर झगड़ा कर रहा है ॥ ४ ॥ यह बुद्धि, कि परमात्मा सर्वत्र मौजूद है, उसी को होती है जिसे गुरु यह समझ दे। कोई विरला मनुष्य गुरु के सम्मुख होकर यह समझ प्राप्त करता है ॥ ५ ॥ हे रक्षक प्रभु! कृपा कर, और जीवों को झगड़े से तू ही बचा। गुरु से ज्ञान प्राप्त किए बिना जीव पशु (-स्वभाव) बने रहे हैं, भूत-प्रेत हो रहे हैं ॥ ६ ॥ मुझे सतिगुरु ने समझा दिया है कि प्रभु के अतिरिक्त उस जैसा दूसरा नहीं है। कहो, (हे भाई!) मैं किस को देखकर, किसी दूसरे की पूजा कर सकता हूँ? ॥ ७ ॥ परमात्मा ने (मनुष्यों को) संत बनाने के लिए यह सृष्टि रची है। जो मनुष्य अपने आपको पहचानता है वह इस वास्तविकता को समझ लेता है ॥ ८ ॥ (गुरु के दर्शन करके ही) सत्यस्वरूप परमात्मा मनुष्य के हृदय में निवास करता है, परमात्मा का प्रेम हृदय में टिकता है। नानक प्रार्थना करता है, —मैं भी उस गुरु का दास हूँ ॥ ९ ॥ ८ ॥

॥ गउड़ी महला १ ॥ ब्रहमै गरबु कीआ नही जानिआ। बेद की बिपति पड़ी पछुतानिआ। जह प्रभ सिमरे तही मनु मानिआ ॥ १ ॥ ऐसा गरबु बुरा संसारै। जिसु गुरु मिलै तिसु गरबु निवारै ॥ १ ॥ रहाउ ॥ बलि राजा माइआ अहंकारी। जगन करै बहु भार अफारी। बिनु गुर पूछे जाइ पइआरी ॥ २ ॥ हरीचंदु दानु करै जसु लेवै। बिनु गुर अंतु न पाइ अभेवै। आपि भुलाइ आपे मति देवै ॥ ३ ॥ दुरमति हरणाखसु दुराचारी। प्रभु नाराइणु गरब प्रहारी। प्रहलाद उधारे किरपा धारी ॥ ४ ॥ भूलो रावणु मुगधु अचेति। लूटी लंका सीस समेति। गरबि गइआ बिनु सतिगुर हेति ॥ ५ ॥ सहसबाहु मधुकीट महिखासा। हरणाखसु ले नखहु बिधासा। दैत संघारे बिनु भगति अभिआसा ॥ ६ ॥ जरासंधि कालजमुन संघारे। रकतबीजु कालुनेमु बिदारे। दैत संघारि संत निसतारे ॥ ७ ॥ आपे सतिगुरु सबदु बीचारे। दूजै भाइ दैत संघारे। गुरमुखि साचि भगति निसतारे ॥ ८ ॥ बूडा दुरजोधनु पति खोई। रामु न जानिआ करता सोई। जन कउ दूखि पचै दुखु होई ॥ ९ ॥ जनमेजै गुर सबदु न जानिआ। किउ सुखु पावै भरमि

भुलानिआ । इकु तिलु भूले बहुरि पछुतानिआ ॥ १० ॥ कंसु केसु चांडूरु न कोई । रामु न चीनिआ अपनी पति खोई । बिनु जगदीस न राखै कोई ॥ ११ ॥ बिनु गुर गरबु न मेटिआ जाइ । गुरमति धरमु धीरजु हरिनाइ । नानक नामु मिलै गुण गाइ ॥ १२ ॥ ६ ॥

ब्रह्मा ने अहंकार किया (कि मैं इतना बड़ा हूँ, कमलनाभि से कैसे उत्पन्न हो सकता हूँ ?) उसने परमात्मा की अनन्तता को नहीं समझा। जब उसका अभिमान तोड़ने के लिए उसके वेदों के चुराए जाने की विपत्ति उसपर आ पड़ी तो वह बहुत पछताया। जब उसने परमात्मा को स्मरण किया तब उसे विश्वास आया (कि परमात्मा ही सबसे महान् है) ॥ १ ॥ जगत् में अहंकार एक ऐसा विकार है, जो बहुत नीच है। जिस (भाग्यशाली मनुष्य) को गुरु मिल जाता है (वह) उसका अहंकार दूर कर देता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ राजा बलि को माया का मान हो गया। उसने बड़े यज्ञ किए। अहंकार में बहुत अधिक अभिमानी हो गया। अपने गुरु की सम्मति लिए बिना (उसने ब्राह्मण-रूपधारी विष्णु को दान देना मान लिया और) पाताल में चला गया ॥ २ ॥ हरिश्चन्द्र (भी) दान करता था, दान की शोभा में मस्त (रहा); गुरु के बिना वह भी यह न समझ सका कि परमात्मा के गुणों का अन्त नहीं है, उसका भेद नहीं पाया जा सकता (उसकी सृष्टि में अगनित दानी हैं), (पर जीव के क्या वश ?) परमात्मा आप ही बुद्धि देता है ॥ ३ ॥ दुर्मति के कारण हिरण्यकशिपु दुराचारी हो गया। पर नारायण प्रभु आप ही (अहंकारियों का) अहंकार दूर करनेवाला है। उसने कृपा की और प्रहलाद की रक्षा की (हिरण्यकशिपु का अभिमान भंग किया) ॥ ४ ॥ मूर्ख रावण अज्ञानवश कुमार्गगामी हो गया। (परिणामस्वरूप) उसकी लंका लूटी गई और उसका सिर भी काटा गया। अहंकार के कारण, गुरु की शरण लिए बिना, अहंकार के मद में रावण बरबाद हुआ ॥ ५ ॥ सहस्रबाहु (को परशुराम ने मारा), मधु तथा कैटभ (को विष्णु ने मार दिया), महिषासुर (दुर्गा के हाथों मृत्यु को प्राप्त हुआ) हिरण्यकशिपु (को नृसिंह ने) नाखूनों से मार दिया। ये समस्त राक्षस प्रभु की भक्ति से खाली होने के कारण मारे गए ॥ ६ ॥ परमात्मा ने राक्षस मारकर संतों की रक्षा की। जरासंध तथा कालयवन (श्रीकृष्ण के द्वारा) नष्ट किये गए। रक्तबीज (दुर्गा के हाथों) मारा गया तथा कालनेमि (विष्णु के त्रिशूल से) चीरा गया ॥ ७ ॥ (इस समस्त क्रीड़ा का स्वामी परमात्मा) आप ही गुरु-रूप होकर अपनी गुणस्तुति की वाणी को विचारता है, आप ही दैत्यों को माया के मोह में फँसाकर मारता है, आप ही गुरु की शरण पड़े व्यक्तियों को अपने स्मरण में, अपनी भक्ति

में जोड़कर (संसार-समुद्र से) पार उतारता है ॥ ८ ॥ दुर्योधन (अहंकार में) डूबा और अपनी प्रतिष्ठा गवाँ बैठा। (अहंकारवश) उसने परमात्मा को स्मरण न रखा। परन्तु जो परमात्मा के दास को दुख देता है (वह उस) दुख के कारण आप ही दुखी होता है, उसे आप ही वह दुख (मृत्यु-कारक हो जाता है) ॥ ९ ॥ राजा जन्मेजय ने अपने गुरु की शिक्षा को न समझा (लेकिन अहंकार के कारण) भ्रम में पड़कर कुमार्गगामी हो गया। फिर सुख कहाँ से मिलता ? थोड़ी सी भूल होने पर दोबारा पश्चाताप किया ॥ १० ॥ कंस, केशी और चांडूर (के बराबर कोई नहीं) था। (पर अहंकारवश) इन्होंने परमात्मा की लीला को न समझा और अपनी प्रतिष्ठा गँवा ली। (अपनी शक्ति का अहंकार मिथ्या है) कर्त्तार के अतिरिक्त दूसरा कोई (किसी की) रक्षा नहीं कर सकता ॥ ११ ॥ (अहंकार बहुत शक्तिशाली है) गुरु की शरण लिए बिना इस अहंकार को कोई मिटा नहीं सकता। जो मनुष्य गुरु की शिक्षा धारण करता है, वह (अहंकार मिटाकर) धैर्य धारण करता है, (धैर्य बड़ा महान्) धर्म है। हे नानक ! गुरु की शिक्षा पर चलने से ही परमात्मा का नाम प्राप्त होता है, और जीव परमात्मा की गुणस्तुति करता है ॥ १२ ॥ ९ ॥

॥ गउड़ी महला १ ॥ चोआ चंदनु अंकि चड़ावउ। पाट पटंबर पहिरि हढावउ। बिनु हरिनाम कहा सुखु पावउ ॥ १ ॥ किआ पहिरउ किआ ओढि दिखावउ। बिनु जगदीस कहा सुखु पावउ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ कानी कुंडल गलि मोतीअन की माला। लाल निहाली फूल गुलाला। बिनु जगदीस कहा सुखु भाला ॥२॥ नैन सलोनी सुंदर नारी। खोड़ सीगार करै अति पिआरी। बिनु जगदीस भजे नित खुआरी ॥ ३ ॥ दर घर महला सेज सुखाली। अहिनिसि फूल बिछावै माली। बिनु हरिनाम सु देह दुखाली ॥ ४ ॥ हैवर गैवर नेजे वाजे। लसकर नेब खवासी पाजे। बिनु जगदीस झूठे दिवाजे ॥ ५ ॥ सिधु कहावउ रिधि सिधि बुलावउ। ताज कुलह सिरि छत्रु बनावउ। बिनु जगदीस कहा सचु पावउ ॥ ६ ॥ खानु मलूकु कहावउ राजा। अबे तबे कूड़े है पाजा। बिनु गुर सबद न सवरसि काजा ॥ ७ ॥ हउमै ममता गुर सबदि विसारी। गुरमति जानिआ रिदै मुरारी। प्रणवति नानक सरणि तुमारी ॥ ८ ॥ १० ॥

यदि मैं इत्र और चन्दन अपने शरीर पर लगा लूं, यदि मैं रेशम तथा रेशमी कपड़े पहनूं (फिर भी) यदि मैं परमात्मा के नाम से ख़ाली हूँ तो

कहीं भी मुझे सुख नहीं मिल सकता ॥ १ ॥ सुन्दर-सुन्दर कपड़े पहनने और पहनकर दूसरों को दिखाने का क्या लाभ ? परमात्मा के अतिरिक्त सुख कहीं भी नहीं मिल सकता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ यदि मैं अपने कानों में कुण्डल पहन लूँ, गले में मोतियों की माला पहन लूँ, मेरे लाल रंग के गद्दे पर लाल पुष्प (बिखरे हुए) हों, (फिर भी) परमात्मा के स्मरण के बिना मैं कहीं भी सुख प्राप्त नहीं कर सकता ॥ २ ॥ यदि सुन्दर आँखों वाली मेरी सुन्दर स्त्री हो, वह सोलहों प्रकार के श्रृंगार करती हो और मुझे बहुत प्यारी लगती हो, (फिर भी) जगत् के मालिक प्रभु का स्मरण किए बिना सदा परेशानी ही होती है ॥ ३ ॥ यदि मेरे पास बसने के लिए महल हों, सुखदाता पलंग हो, उसपर माली दिनरात फूल बिछाता रहे, (फिर भी) परमात्मा के नाम-स्मरण के बिना यह शरीर दुखों का घर ही बना रहता है ॥ ४ ॥ यदि मेरे पास बढ़िया हाथी तथा घोड़े हों, सशस्त्र फ़ौजें हों, फ़ौजी बाजे बजते हों, लश्कर हों, सहायक हों, शाही नौकर-चाकर हों, यह सारा दिखावा हो, (फिर भी) जगत् के मालिक परमात्मा के स्मरण करने बिना यह (शक्ति के) दिखावे नश्वर ही हैं ॥ ५ ॥ यदि मैं (अपने आपको) करामाती साधू कहलवाऊँ, करामाती शक्तियों को (अपने पास) बुला सकूँ, मेरे सिर पर ताज की टोपी होवे, मैं अपने सिर पर छत्र झुला सकूँ, (फिर भी) जगत् के मालिक प्रभु के स्मरण के बिना सदा टिकी रहनेवाली (आत्मिक) शक्ति कहीं से प्राप्त नहीं कर सकता ॥ ६ ॥ यदि मैं अपने आपको ख़ान् कहलवाऊँ, बादशाह कहलवाऊँ, राजा कहाऊँ, नौकर-चाकरों को झिड़कियाँ भी दे सकूँ, (शक्ति का यह सारा) दिखावा नष्ट हो जानेवाला है। गुरु के शब्द का सहारा लिए बिना मनुष्य-जीवन का मनोरथ पूर्ण नहीं होता ॥ ७ ॥ मैं बड़ा बन जाऊँ और मेरी बहुत जायदाद हो— यह इच्छा गुरु के शब्द में जुड़ने से ही मन से विस्मृत होती है। गुरु की शिक्षा के अनुसार चलने से ही परमात्मा हृदय में टिका पहचाना जा सकता है। नानक प्रभु के द्वार पर प्रार्थना करता है— (हे प्रभु !) मैं तेरी शरणागत हूँ ॥ ८ ॥ १० ॥

॥ गउड़ी महला १ ॥ सेवा एक न जानसि अवरे। परपंच बिआधि तिआगै कवरे। भाइ मिलै सचु साचै सचु रे ॥ १ ॥ ऐसा राम भगतु जनु होई। हरिगुण गाइ मिलै मलु धोई ॥ १ ॥ रहाउ ॥ ऊंधो कवलु सगल संसारै। दुरमति अगनि जगत परजारै। सो उबरै गुर सबदु बीचारै ॥ २ ॥ भ्रिग पतंगु कुंचरु अरु मीना। मिरगु मरै सहि अपुना कीना। त्रिसना राचि ततु नही बीना ॥ ३ ॥ कामु चितै कामणि

हितकारी । क्रोधु बिनासै सगल विकारी । पति मति खोवहि नामु विसारी ॥ ४ ॥ परघरि चीतु मनमुखि डोलाइ । गलि जेवरी धंधै लपटाइ । गुरमुखि छूटसि हरि गुण गाइ ॥ ५ ॥ जिउ तनु बिधवा पर कउ देई । कामि दामि चितु पर वसि सेई । बिनु पिर त्रिपति न कबहूं होई ॥ ६ ॥ पड़ि पड़ि पोथी सिंम्रिति पाठा । बेद पुराण पड़ै सुणि थाटा । बिनु रस राते मनु बहु नाटा ॥ ७ ॥ जिउ चात्रिक जल प्रेम पिआसा । जिउ मीना जल माहि उलासा । नानक हरि रसु पी त्रिपतासा ॥ ८ ॥ ११ ॥

हे भाई ! परमात्मा का भक्त एक परमात्मा की ही सेवा करता है, किसी दूसरे को वह (परमात्मा के तुल्य) नहीं समझता । संसार के रोगों को वह कड़वे जानकर त्याग देता है । (परमात्मा के) प्रेम में जुड़कर वह सत्यस्वरूप परमात्मा में मिल जाता है, वह सत्यस्वरूप प्रभु का रूप हो जाता है ॥१॥ परमात्मा का भक्त, सेवक इस प्रकार का होता है, वह परमात्मा के गुण गाकर (उसके चरणों में) मिलता है और (अपने मन के विकारों की) मैल धो लेता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सारे जगत् (के जीवों) का हृदय-कमल (परमात्मा के स्मरण से) विपरीत है, इस दुष्ट, विकृत बुद्धि की आग संसार को बहुत अधिक जला रही है । (इस आग में से) वही मनुष्य बचता है जो गुरु के शब्द का चिन्तन करता है ॥ २ ॥ भंवरा, पतंग, हाथी, मछली और हरिण— प्रत्येक अपने किए का फल भोगकर मर जाता है, तृष्णा में फँसा जीव अपने वास्तविक रूप को नहीं देखता (और आत्मिक मृत्यु मर जाता है) ॥ ३ ॥ (कुमति के अधीन होकर) स्त्री का प्रेमी मनुष्य सदा काम-वासना ही सोचता है । (फिर) क्रोध समस्त विकृत जीवों को बरबाद करता है । ऐसे मनुष्य प्रभु का नाम भुलाकर अपनी प्रतिष्ठा और बुद्धि गवाँ लेते हैं ॥ ४ ॥ स्वेच्छाचारी मनुष्य पराए घर में अपने चित्त को फिराता है । (इसलिए वह) विकारों के जंगल में फँसता है और उसके गले में विकारों की फाँसी (दृढ़ होती जाती) है । जो मनुष्य गुरु के बताए मार्ग पर चलता है वह परमात्मा की गुणस्तुति करके इस जंजाल से बच निकलता है ॥ ५ ॥ जैसे विधवा अपना शरीर पराए मनुष्य के हवाले करती है; कामवासना या पैसे के लोभ में फँसकर वह अपना मन पराए मनुष्य के वश में करती है लेकिन पति के बिना उसे कभी भी शांति प्राप्त नहीं हो सकती ॥ ६ ॥ (विद्वान् पण्डित) वेद, पुराण आदि धार्मिक पुस्तकें बार-बार पढ़ता है, उनकी (काव्य) रचना पुनः पुनः सुनता है परन्तु जब तक उसका मन परमात्मा के नाम-रस का रसिक नहीं बनता, तब तक वह (माया के हाथों में ही) नाचा करता है ॥ ७ ॥ जैसे पपीहे

का (वर्षा-) जल से प्रेम है, (वर्षा) जल की उसे प्यास है, जैसे मछली पानी में बड़ी प्रसन्न रहती है, वैसे, हे नानक ! परमात्मा का भक्त परमात्मा का नाम-रस पान कर तृप्त हो जाता है ॥ ८ ॥ ११ ॥

॥ गउड़ी महला १ ॥ हठु करि मरै न लेखै पावै । वेस करै बहु भसम लगावै । नामु बिसारि बहुरि पछुतावै ॥ १ ॥ तूं मनि हरि जीउ तूं मनि सूख । नामु बिसारि सहहि जम दूख ॥ १ ॥ रहाउ ॥ चोआ चंदन अगर कपूरि । माइआ मगनु परम पदु दूरि । नामि बिसारिऐ सभु कूड़ो कूरि ॥ २ ॥ नेजे वाजे तखति सलामु । अधकी त्रिसना विआपै कामु । बिनु हरि जाचे भगति न नामु ॥ ३ ॥ वादि अहंकारि नाही प्रभ मेला । मनु दे पावहि नामु सुहेला । दूजै भाइ अगिआनु दुहेला ॥ ४ ॥ बिनु दम के सउदा नही हाट । बिनु बोहिथ सागर नही वाट । बिनु गुर सेवे घाटे घाटि ॥ ५ ॥ तिस कउ वाहु वाहु जि वाट दिखावै । तिस कउ वाहु वाहु जि सबदु सुणावै । तिस कउ वाहु वाहु जि मेलि मिलावै ॥ ६ ॥ वाहु वाहु तिस कउ जिस का इहु जीउ । गुर सबदी मथि अंम्रितु पीउ । नाम वडाई तुधु भाणै दीउ ॥ ७ ॥ नाम बिना किउ जीवा माइ । अनदिनु जपतु रहउ तेरी सरणाइ । नानक नामि रते पति पाइ ॥ ८ ॥ १२ ॥

(यदि कोई मनुष्य हठवश) शारीरिक कष्ट सहन करता है तो उसका यह कष्ट सहना किसी गिनती में नहीं लगता । यदि कोई मनुष्य राख मलता है और योग आदि के लिए वेश बदलता है (ये भी व्यर्थ जाते हैं), परमात्मा का नाम भुलाकर अन्त में वह पछताता है ॥ १ ॥ (हे भाई !) तू मन में प्रभु को (वसा ले और इस प्रकार) तू (अपने) मन में आनन्द भोग । (स्मरण रख) परमात्मा के नाम को भुलाकर तू यमों के दुख सहेगा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (दूसरी ओर यदि कोई मनुष्य) इत्र, चन्दन, अगर, कपूर आदि सुगन्धियों के प्रयोग में मस्त है, माया के मोह में लीन है तो उच्च आत्मिक अवस्था (उससे भी) दूर है । यदि प्रभु का नाम भुला दिया जाए तो यह सारा (दुनियावी-ऐश्वर्य भी) व्यर्थ है । (मनुष्य सुख के) व्यर्थ यत्नों में ही रहता है ॥ २ ॥ (यदि कोई राजा भी बन जाए) सिंहासन पर (बैठे को) सशस्त्र फ़ौजी तथा फ़ौजी बाजे वाले सलाम करें तो भी माया की तृष्णा ही बढ़ती है, कामवासना दबाव डालती है, लेकिन

प्रभु के द्वार से माँगे बिना न भक्ति मिलती है न नाम मिलता है ॥ ३ ॥ झगड़ेबाज़ी तथा अहंकार में (भी) परमात्मा का मिलाप नहीं होता। (हे भाई!) अपना मन देकर ही, अहंकार गवाँकर ही, सुखों का स्रोत प्रभु-नाम प्राप्त करेगा। (प्रभु को भुलाकर) दूसरे प्रेम में रहने से तो दुखदायक अज्ञान ही (बढ़ेगा)॥ ४॥ जैसे पूँजी के बिना दुकान का सौदा नहीं आ सकता, जैसे जहाज़ के बिना समुद्र की यात्रा नहीं हो सकती, उसी प्रकार गुरु के शरणागत हुए बिना (आत्मिक पूँजी की दृष्टि से) जीव घाटे ही घाटे में रहता है ॥ ५ ॥ (हे भाई!) उस पूर्णगुरु को धन्य-धन्य कह जो सही जीवन-मार्ग दिखाता है, जो परमात्मा की गुणस्तुति का शब्द सुनाता है, और (इस प्रकार) जो परमात्मा के मिलाप में मिला देता है ॥ ६ ॥ हे भाई! उस परमात्मा की गुणस्तुति कर जिसकी (दी हुई) यह आत्मा है। गुरु के शब्द के द्वारा बार-बार विचारकर आत्मिक जीवन देनेवाला नाम-रस पी। वह प्रभु तुझे अपनी रज़ा में नाम जपने की महानता देगा ॥ ७ ॥ हे मेरी माँ! परमात्मा के नाम के बिना मैं (आत्मिक जीवन) जी नहीं सकता। हे प्रभु! मैं तेरी शरणागत हूँ, (कृपा कर) मैं दिन-रात तेरा नाम जपता रहूँ। हे नानक! यदि प्रभु के नाम-रंग में रँगे रहें, तो ही (लोक-परलोक में) प्रतिष्ठा मिलती है ॥ ८ ॥ १२ ॥

॥ गउड़ी महला १ ॥ हउमै करत भेखी नही जानिआ। गुरमुखि भगति विरले मनु मानिआ ॥ १ ॥ हउ हउ करत नही सचु पाईऐ। हउमै जाइ परम पदु पाईऐ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हउमै करि राजे बहु धावहि। हउमै खपहि जनमि मरि आवहि ॥ २ ॥ हउमै निवरै गुर सबदु वीचारै। चंचल मति तिआगै पंच संघारै ॥ ३ ॥ अंतरि साचु सहज घरि आवहि। राजनु जाणि परम गति पावहि ॥ ४ ॥ सचु करणी गुरु भरमु चुकावै। निरभउ कै घरि ताड़ी लावै ॥ ५ ॥ हउ हउ करि मरणा किआ पावै। पूरा गुरु भेटे सो झगरु चुकावै ॥ ६ ॥ जेती है तेती किहु नाही। गुरमुखि गिआन भेटि गुण गाही ॥ ७ ॥ हउमै बंधन बंधि भवावै। नानक राम भगति सुखु पावै ॥ ८ ॥ १३ ॥

(मैं धार्मिक हूँ, मैं धार्मिक हूँ, यह) मैं, मैं करते हुए (केवलमात्र) धार्मिक दिखावों से कभी किसी ने परमात्मा के साथ पूर्ण ऐक्य नहीं बनाया। गुरु के शरणागत होकर ही परमात्मा की भक्ति में मन लगता

है, परन्तु ऐसा आपा-भाव त्यानेवाला कोई विरला ही होता है ॥ १ ॥ मैं, मैं, मैं करते हुए सत्यस्वरूप परमात्मा नहीं मिल सकता। जब यह अहंभावना दूर होवे, तब ही सर्वोच्च आत्मिक स्थान प्राप्त किया जा सकता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ अहंकारवश ही राजा एक दूसरे के प्रदेशों पर कई बार आक्रमण करते रहते हैं, अपने बड़प्पन के अभिमान में दुखी होते हैं, (परिणामस्वरूप प्रभु को भुलाकर) जन्म-मरण के चक्र में पड़े रहते हैं ॥ २ ॥ जो मनुष्य गुरु का शब्द विचारता है उसकी अहंभावना दूर हो जाती है, वह (दुबिधा में डालनेवाली अपनी) ओछी मति त्याग देता है और कामादिक पाँचों बैरियों का नाश करता है ॥ ३ ॥ जिन व्यक्तियों के हृदय में सत्यस्वरूप परमात्मा है, वे स्थिर आत्मिक अवस्था में टिके रहते हैं। समस्त सृष्टि के स्वामी प्रभु के साथ ऐक्य स्थापित करके वे सर्वोच्च आत्मिक अवस्था प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥ जिस मनुष्य के मन की दुबिधा गुरु दूर करता है, सत्यस्वरूप प्रभु का स्मरण उसका नित्य कर्म बन जाता है, वह निर्भय, प्रभु के चरणों में सदा अपनी सुरति जोड़े रखता है ॥ ५ ॥ मैं, मैं, के कारण आत्मिक मृत्यु ही मिलती है, इससे अलग दूसरा कोई आत्मिक गुण नहीं मिलता। जिस मनुष्य को पूर्णगुरु मिल जाता है, वह अहंकार के इस झगड़े को अपने भीतर से समाप्त कर लेता है ॥ ६ ॥ अहंकार के सहारे जितनी भी भाग-दौड़ है, यह समस्त भाग-दौड़ कोई आत्मिक लाभ नहीं पहुँचाती। गुरु के सम्मुख रहनेवाले मनुष्य (गुरु से) ज्ञान प्राप्त करके परमात्मा के गुण गाते हैं ॥ ७ ॥ अहंकार (जीवों को मोह के) बन्धनों में बाँधकर जन्म-मरण के चक्र में डालती है। जो मनुष्य परमात्मा की भक्ति करता है, (वह अहंकार से बचा रहता है, और) सुख पाता है ॥ ८ ॥ १३ ॥

॥ गउड़ी महला १ ॥ प्रथमे ब्रहमा कालै घरि आइआ। ब्रहम कमलु पइआलि न पाइआ। आगिआ नही लीनी भरमि भुलाइआ ॥ १ ॥ जो उपजै सो कालि संघारिआ। हम हरि राखे गुर सबदु बीचारिआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ माइआ मोहे देवी सभि देवा। कालु न छोडै बिनु गुर की सेवा। ओहु अबिनासी अलख अभेवा ॥ २ ॥ सुलतान खान बादिसाह नही रहना। नामहु भूलै जम का दुखु सहना। मै धर नामु जिउ राखहु रहना ॥ ३ ॥ चउधरी राजे नही किसै मुकामु। साह मरहि संचहि माइआ दाम। मै धनु दीजै हरि अंम्रित नामु ॥ ४ ॥ रयति महर मुकदम सिकदारै। निहचलु कोइ न दिसै संसारै।

अफरिउ कालु कूड़ु सिरि मारै ॥ ५ ॥ निहचलु एकु सचा सचु सोई। जिनि करि साजी तिनहि सभ गोई। ओहु गुरमुखि जापै तां पति होई ॥ ६ ॥ काजी सेख भेख फकीरा। वडे कहावहि हउमै तनि पीरा। कालु न छोडै बिनु सतिगुर की धीरा ॥ ७ ॥ कालु जालु जिहवा अरु नैणी। कानी कालु सुणै बिखु बैणी। बिनु सबदै मूठे दिनु रैणी ॥ ८ ॥ हिरदै साचु वसै हरिनाइ। कालु न जोहि सकै गुण गाइ। नानक गुरमुखि सबदि समाइ ॥ ९ ॥ १४ ॥

(दूसरे जीवों की बात अलग है) सबसे पूर्व ब्रह्मा ही आत्मिक मौत की फाँसी में फँस गया, उसने अपने गुरु की आज्ञा की ओर ध्यान न दिया। (वह) दुबिधा में पड़कर कुमार्गगामी हो गया, (विष्णु की नाभि से उपजे हुए जिस कमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए थे, उसका रहस्य जानने के लिए) पाताल में (जा पहुंचा) परन्तु ब्रह्मा कमल (का अंत) न प्राप्त कर सका (और उसे लज्जित होना पड़ा) ॥ १ ॥ (जगत् में) जो-जो जीव जन्म लेता है (और गुरु के उपदेश को नहीं स्वीकारता) मृत्यु ने उस जीव का आत्मिक जीवन प्रफुल्लित नहीं होने दिया। मेरे आत्मिक जीवन को परमात्मा ने आप बचा लिया, (क्योंकि उसकी कृपा से) मैंने गुरु के शब्द को अपने भीतर बसा लिया ॥ १ ॥ रहाउ ॥ समस्त देवता तथा देवियाँ माया के मोह में फँसे हुए हैं। मौत से, गुरु द्वारा बताई सेवा किए बिना मुक्ति नहीं मिलती। (इस आत्मिक) मृत्यु से बचा हुआ केवल एक परमात्मा है जिसके गुण व्यक्त नहीं किए जा सकते, इसका भेद नहीं पाया जा सकता ॥ २ ॥ वैसे तो, सुलतान, खान, बादशाह किसी को भी यहाँ सदा नहीं रहना है, लेकिन परमात्मा के नाम से जो खाली रहता है, वह यमराज का दुःख सहन करता है। (हे प्रभु !) मुझे तेरा नाम ही सहारा है, (मैं यही प्रार्थना करता हूँ) जैसे हो सके मुझे अपने नाम में जोड़े रख, मैं तेरे नाम में ही टिका रहूँ ॥ ३ ॥ चौधरी हों, राजा हों—किसी का भी यहाँ स्थायी डेरा नहीं है, पर (जो) शाह केवल माया ही जोड़ते हैं, केवल मात्र पैसे ही एकत्रित करते हैं, वह आत्मिक मृत्यु मर जाते हैं। हे हरि ! मुझे आत्मिक जीवन देनेवाला अपना नाम-धन दे ॥ ४ ॥ प्रजा, प्रजा के मुखिया, चौधरी, सरदार— कोई भी ऐसा नहीं दिखता, जो संसार में सदा टिका रह सके, लेकिन बली काल उसके सिर पर चोट मारता है, जिसके हृदय में माया का मोह है ॥ ५ ॥ सदा अटल रहनेवाला केवल एकमात्र सत्यस्वरूप परमात्मा है, जिसने यह सारी सृष्टि बनाई है, वह आप ही इसे (अपने भीतर) लेता है। जब गुरु की शरण लेकर वह परमात्मा

सर्वत्र दिखाई दे जाए (तो जीव का आत्मिक जीवन प्रफुल्लित होता है) तब (इसे प्रभु के दरबार में) आदर मिलता है ॥ ६ ॥ काज़ी, शेख़, बड़े-बड़े वेश वाले फ़कीर कहलाओ, अपने आपको बड़े कहलवाओ लेकिन यदि शरीर में अहंकार की पीड़ा है तो मृत्यु छुटकारा नहीं करती। सतिगुरु से मिले (नाम-) आधार के बिना (यह आत्मिक मृत्यु टिकी रहती है) ॥ ७ ॥ (निंदा आदि के कारण) जीभ, कान और आँखों के द्वारा आत्मिक मृत्यु लानेवाले वचन सुनता है। आत्मिक मृत्यु (का) जाल (जीवों के सिर पर तना रहता है) गुरु के शब्द (का आसरा लिए) बिना जीव दिन-रात (आत्मिक जीवन के गुणों से) लूटे जा रहे हैं ॥ ८ ॥ जिस मनुष्य के हृदय में सत्यस्वरूप प्रभु (सदा) बसा रहता है, जो मनुष्य परमात्मा के नाम में टिका रहता है, आत्मिक मृत्यु उसकी ओर कभी देख भी नहीं सकती, (क्योंकि वह सदा प्रभु के) गुण गाता है। हे नानक ! वह मनुष्य गुरु के सम्मुख होकर गुरु-शब्द के द्वारा (प्रभु-चरणों में सदा) लीन रहता है ॥ ९ ॥ १४ ॥

॥ गउड़ी महला १ ॥ बोलहि साचु मिथिआ नही राई। चालहि गुरमुखि हुकमि रजाई। रहहि अतीत सचे सरणाई ॥१॥ सच घरि बैसै कालु न जोहै। मनमुख कउ आवत जावत दुखु मोहै ॥ १ ॥ रहाउ ॥ अपिउ पीअउ अकथु कथि रहीऐ। निजघरि बैसि सहज घरु लहीऐ। हरि रसि माते इहु सुखु कहीऐ ॥ २ ॥ गुरमति चाल निहचल नही डोलै। गुरमति साचि सहजि हरि बोलै। पीवै अंम्रितु ततु विरोलै ॥ ३ ॥ सतिगुरु देखिआ दीखिआ लीनी। मनु तनु अरपिओ अंतरगति कीनी। गति मिति पाई आतमु चीनी ॥ ४ ॥ भोजनु नामु निरंजन सारु। परम हंसु सचु जोति अपार। जह देखउ तह एकंकारु ॥ ५ ॥ रहै निरालमु एका सचु करणी। परम पदु पाइआ सेवा गुर चरणी। मन ते मनु मानिआ चूकी अहं भ्रमणी ॥ ६ ॥ इन बिधि कउणु कउणु नही तारिआ। हरि जसि संत भगत निसतारिआ। प्रभ पाए हम अवरु न भारिआ ॥ ७ ॥ साच महलि गुरि अलखु लखाइआ। निहचल महलु नही छाइआ माइआ। साचि संतोखे भरमु चुकाइआ ॥८॥ जिन कै मनि वसिआ सचु सोई। तिन की संगति गुरमुखि होई। नानक साचि नामि मलु खोई ॥ ९ ॥ १५ ॥

जो मनुष्य गुरु के सम्मुख रहकर मालिक प्रभु के हुक्म में चलते हैं, वे सत्यस्वरूप प्रभु की शरण में रहकर माया के प्रभाव से ऊपर रहते हैं, इसलिए वे तनिकमात्र भी झूठ नहीं बोलते, वे सदा अटल रहनेवाला बोल ही बोलते हैं ॥ १ ॥ जो मनुष्य सत्यस्वरूप प्रभु के चरणों में टिका रहता है, उसे मृत्यु का दुःख स्पर्श नहीं कर सकता। परन्तु स्वेच्छाचारी मनुष्य को मोह के कारण जन्म-मरण का दुःख (दबाए रहता है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥ कोई भी जीव नाम-रस पान करे, तो अनन्त गुणों के मालिक प्रभु की गुणस्तुति करके ('निज घर में') टिका रहा जा सकता है और उस 'निज-स्वरूप' में बैठकर आत्मिक स्थिरता का ठिकाना प्राप्त किया जा सकता है, और नाम-रस में मस्त होने पर यह कहा जा सकता है कि यही है वास्तविक आत्मिक सुख ॥ २ ॥ गुरु की शिक्षा पर चलनेवाली जीवन-युक्ति को माया का मोह हिला नहीं सकता, माया-मोह में हिल नहीं सकती। जो मनुष्य गुरु की शिक्षा धारण करके सत्यस्वरूप प्रभु में, स्थिर आत्मिक अवस्था में टिककर परमात्मा की गुणस्तुति करता है, वह आत्मिक जीवन देनेवाला नाम-रस पीता है, वह असलियत को खोजकर प्राप्त कर लेता है ॥ ३ ॥ जिस मनुष्य ने (पूर्ण) गुरु का दर्शन कर लिया और गुरु की शिक्षा ग्रहण कर ली, अपनी अन्तरात्मा में बसा ली और अपना तन, मन भेंट कर दिया, उसने अपनी वास्तविकता को पहचान लिया। उसे समझ आ गई कि परमात्मा सर्वोच्च आत्मिक अवस्था वाला है और अनन्त महानता वाला है ॥ ४ ॥ जो मनुष्य निरंजन के नाम को अपना आत्मिक भोजन बनाता है, वह सत्यस्वरूप परमहंस बन जाता है, अनन्त (प्रभु) की ज्योति (उसके भीतर) चमक पड़ती है। चाहे किसी भी ओर वह देख ले, उसे सर्वत्र एक परमात्मा ही दिखाई देता है ॥ ५ ॥ ('सत्य घर' में बैठनेवाला) वह मनुष्य माया से निर्लिप्त रहता है, सत्यस्वरूप प्रभु का स्मरण ही उसकी प्रतिदिन की करनी बन जाती है। गुरु की बताई सेवा करके, गुरु के चरणों में टिका रहकर वह सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर लेता है। भीतर ही भीतर उसका मन स्मरण में लग जाता है, अहंभावना वाली उसकी दुबिधा समाप्त हो जाती है ॥ ६ ॥ ('सत्य घर' में बैठे रहने की) इस विधि ने किस-किस को पार नहीं उतारा ? परमात्मा की गुणस्तुति ने सारे संतों को, भक्तों को पार उतार दिया है। जिस-जिसने यश गायन किया, उसे प्रभुजी मिल गए। (मैं) उस प्रभु के अतिरिक्त किसी दूसरे को नहीं खोजता ॥ ७ ॥ सत्यस्वरूप प्रभु के महल में गुरु ने जिस मनुष्य को अप्रत्यक्ष प्रभु का स्वरूप प्रत्यक्ष कर दिया है, उसे वह अचल ठिकाना (सदा के लिए प्राप्त हो जाता है) जिसपर माया का प्रभाव नहीं पड़ता। जो-जो व्यक्ति सत्यस्वरूप प्रभु में जुड़कर माया की ओर से तृप्त हो जाते हैं, उनकी दुबिधा समाप्त हो जाती है ॥ ८ ॥ जिन मनुष्यों के हृदय में वह

सत्यस्वरूप परमात्मा बस जाता है, उनकी संगति जिस मनुष्य को गुरु की शरण लेकर प्राप्त होती है, हे नानक ! वह मनुष्य सत्यस्वरूप नाम में जुड़कर (अपने मन में विकारों की) मैल स्वच्छ कर लेता है ।। ९ ।। १५ ।।

।। गउड़ी महला १ ।। रामि नामि चितु रापै जाका । उपजंपि दरसनु कीजै ताका ।। १ ।। राम न जपहु अभागु तुमारा । जुगि जुगि दाता प्रभु रामु हमारा ।। १ ।। रहाउ ।। गुरमति रामु जपै जनु पूरा । तितु घट अनहत बाजे तूरा ।।२।। जो जन राम भगति हरि पिआरि । से प्रभि राखे किरपा धारि ।। ३ ।। जिन कै हिरदै हरि हरि सोई । तिन का दरसु परसि सुखु होई ।।४।। सरब जीआ महि एको रवै । मनमुखि अहंकारी फिरि जूनी भवै ।। ५ ।। सो बूझै जो सतिगुरु पाए । हउमै मारे गुरसबदे पाए ।। ६ ।। अरध उरध की संधि किउ जानै । गुरमुखि संधि मिलै मनु मानै ।। ७ ।। हम पापी निरगुण कउ गुणु करीऐ । प्रभ होइ दइआलु नानक जन तरीऐ ।। ८ ।। १६ ।। सोलह असटपदीआ गुआरेरी गउड़ी कीआ ।

जिस मनुष्य का मन परमात्मा में, परमात्मा के नाम (-रंग) में रँगा हुआ है, उसका दर्शन नित्य सबेरे उठते ही करना चाहिए ।। १ ।। हे भाई ! (यदि) तुम परमात्मा का नाम-स्मरण नहीं करते तो यह तुम्हारा दुर्भाग्य है । परमात्मा प्रभु सदा से ही हमें देन देता चला आ रहा है ।। १ ।। रहाउ ।। जो मनुष्य गुरु की शिक्षा लेकर परमात्मा का नाम जपता है, वह पूर्ण हो जाता है, उसके हृदय में उल्लास ही उल्लास बना रहता है, (मानो) निरन्तर तूर्य आदि बाजे बजते रहते हैं ।। २ ।। जो व्यक्ति हरि परमात्मा की भक्ति के प्रेम में (जुड़ते) हैं, उन्हें प्रभु ने कृपा करके बचा लिया है ।। ३ ।। जिन मनुष्यों के हृदय में वह परमात्मा बसता है, उनका दर्शन करने से आनन्द मिलता है ।। ४ ।। सब जीवों के भीतर एक परमात्मा ही व्यापक है । स्वेच्छाचारी मनुष्य (इस बात को नहीं समझता, वह) जीवों से अहंकारपूर्ण व्यवहार करता है और बार-बार योनियों में भटकता है ।। ५ ।। जिस मनुष्य को सतिगुरु मिलता है, वह समझ लेता है (कि सब जीवों में परमात्मा बसता है, इसलिए) वह (अपने भीतर से) अहंकार मारता है । गुरु के शब्द में जुड़कर (वह परमात्मा का मेल) प्राप्त कर लेता है ।। ६ ।। (स्मरणहीन मनुष्य को) जीवात्मा तथा परमात्मा के मिलन की पहचान नहीं हो सकती (वही पहचानता है) जो गुरमुखों की संगति में मिलता है और उसका मन (स्मरण में) रम

जाता है ।। ७ ।। हे प्रभु ! हम जीव विकारी हैं, गुणहीन हैं, (अपने नाम-स्मरण का) गुण तुम आप दो । हे नानक ! (कह—) हे प्रभु ! तुम दयालु होकर (जब नाम की देन देते हो, तब) तेरे दास (संसार-समुद्र से) पार उतर सकते हैं ।। ८ ।। १६ ।।

गउड़ी बैरागणि महला १

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।। जिउ गाई कउ गोइली राखहि करि सारा । अहिनिसि पालहि राखि लेहि आतम सुखु धारा ।। १ ।। इत उत राखहु दीन दइआला । तउ सरणागति नदरि निहाला ।। १ ।। रहाउ ।। जह देखउ तह रवि रहे रखु राखनहारा । तूं दाता भुगता तूं है तूं प्राण अधारा ।। २ ।। किरतु पइआ अध ऊरधी बिनु गिआन बीचारा । बिनु उपमा जगदीस की बिनसै न अंधिआरा ।। ३ ।। जगु बिनसत हम देखिआ लोभे अहंकारा । गुरसेवा प्रभु पाइआ सचु मुकति दुआरा ।। ४ ।। निजघरि महलु अपार को अपरंपरु सोई । बिनु सबदै थिरु को नही बूझै सुखु होई ।। ५ ।। किआ लै आइआ ले जाइ किआ फासहि जम जाला । डोलु बधा कसि जेवरी आकासि पताला ।। ६ ।। गुरमति नामु न वीसरै सहजे पति पाईऐ । अंतरि सबदु निधानु है मिलि आपु गवाईऐ ।। ७ ।। नदरि करे प्रभु आपणी गुण अंकि समावै । नानक मेलु न चूकई लाहा सचु पावै ।। ८ ।। १ ।। १७ ।।

जैसे ग्वाला गायों की देखभाल करता है, वैसे ही तू सँभालकर (जीवों की) देखभाल करता है। तुम दिन-रात जीवों को पालते हो, देखभाल करते हो और आत्मिक सुख देते हो ।। १ ।। हे दीनदयालु प्रभु ! लोक-परलोक में मेरी रक्षा कर । (मैं) तेरी शरणागत हूँ, कृपा-दृष्टि से देख ।। १ ।। रहाउ ।। हे रक्षक प्रभु ! मैं जिधर देखता हूँ, उस ओर ही तुम मौजूद हो, तुम सबके रक्षक तथा आप ही जीवों को देन देनेवाले हो और (सब जीवों में व्यापक होकर) आप ही भोगनेवाले हो, तुम ही सबकी जिन्दगी के सहारे हो ।। २ ।। (इस) ज्ञान के बिना, विचार के बिना, जीव अपने किए कर्मों के संचित संस्कारों के अधीन कभी पाताल में गिरता है, कभी आकाश में चढ़ता है । प्रभु की गुणस्तुति किए बिना जीव की अज्ञानता मिटती

नहीं ॥ ३ ॥ नित्य देखा जाता है कि जगत् लोभ तथा अहंकार के वश में होकर आत्मिक मौत मरता रहता है। गुरु की बताई सेवा करने से सत्य-स्वरूप प्रभु मिल पड़ता है और (लोभ तथा अहंकार से) मुक्ति का रास्ता प्राप्त कर लेता है ॥ ४ ॥ अनन्त परमात्मा का ठिकाना अपने भीतर है, वह प्रभु अपरम्पार है। कोई भी जीव गुरु के शब्द में जुड़े बिना सदा परमात्म-रूप में नहीं टिक सकता। जो मनुष्य गुरु के शब्द को समझता है, उसे आत्मिक आनन्द मिलता है ॥ ५ ॥ हे जीव! न तू कोई धन-पदार्थ अपने साथ लेकर आया था और न ही (यहाँ से कोई माल-धन) लेकर जायगा। व्यर्थ ही (माया-मोह के कारण) यम के जाल में फंस रहा है, जैसे रस्सी के साथ बँधा हुआ डोल कभी आकाश में चढ़ता है, कभी पाताल में गिरता है ॥ ६ ॥ (हे जीव!) यदि गुरु की शिक्षा लेकर परमात्मा का नाम न भूलें तो स्थिर अवस्था में टिककर (प्रभु के द्वार पर) प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली जाती है। जिस मनुष्य के हृदय में गुरु का शब्द-रूपी ख़जाना है, (वह प्रभु को मिल सकता है)। (प्रभु को) मिलकर आपा-भाव गवाँया जा सकता है ॥ ७ ॥ जिस जीव पर प्रभु अपनी कृपा-दृष्टि करके (उसे अपने) गुण (देता है, और गुणों के प्रभाव से वह प्रभु के) अंक में लीन हो जाता है। हे नानक! उस जीव का परमात्मा के साथ बना मिलाप कभी टूटता नहीं, वह जीव प्रभु की गुणस्तुति का लाभ प्राप्त कर लेता है ॥ ८ ॥ १ ॥ १७ ॥

॥ गउड़ी महला १ ॥ गुर परसादी बूझि ले तउ होइ निबेरा। घरि घरि नामु निरंजना सो ठाकुरु मेरा ॥ १ ॥ बिनु गुर सबद न छूटीऐ देखहु वीचारा। जे लख करम कमावही बिनु गुर अंधिआरा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ अंधे अकली बाहरे किआ तिन सिउ कहीऐ। बिनु गुर पंथु न सूझई कितु बिधि निरबहीऐ ॥ २ ॥ खोटे कउ खरा कहै खरे सार न जाणै। अंधे का नाउ पारखू कली काल विडाणै ॥ ३ ॥ सूते कउ जागतु कहै जागत कउ सूता। जीवत कउ मूआ कहै मूए नही रोता ॥ ४ ॥ आवत कउ जाता कहै जाते कउ आइआ। पर की कउ अपुनी कहै अपुनो नही भाइआ ॥ ५ ॥ मीठे कउ कउड़ा कहै कड़ूए कउ मीठा। राते की निंदा करहि ऐसा कलि महि डीठा ॥ ६ ॥ चेरी की सेवा करहि ठाकुरु नही दीसै। पोखरु नीरु विरोलीऐ माखनु नही रीसै ॥ ७ ॥ इसु पद जो अरथाइ लेइ सो गुरू हमारा। नानक चीनै आप कउ सो अपर

अपारा ॥ ८ ॥ सभु आपे आपि वरतदा आपे भरमाइआ । गुर किरपा ते बूझीऐ सभु ब्रहमु समाइआ ॥ ६ ॥ २ ॥ १८ ॥

(हे भाई !) यदि तू गुरु की कृपा से यह बात समझ ले कि माया-रहित प्रभु का नाम हरेक हृदय-घर में बसता है और वही निरंजन मेरा भी पालनहार मालिक है, तो माया के प्रभाव से पैदा हुए आत्मिक अँधेरे में से तेरी मुक्ति हो जायगी ॥ १ ॥ विचार करके देख लो, गुरु के शब्द के बिना (आत्मिक अँधेरे से) मुक्ति नहीं हो सकती । (हे भाई !) यदि तू लाखों ही धर्म-कर्म करता रहे तो भी गुरु की शरण आए बिना यह आत्मिक अँधेरा (टिका ही रहेगा) ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिन व्यक्तियों को माया के मोह ने अन्धा कर दिया है और बुद्धिहीन बना दिया है, उन्हें यह समझाने का कोई लाभ नहीं । गुरु की शरण के बिना उन्हें जीवन का सही रास्ता प्राप्त नहीं हो सकता, सही जीवनमार्ग के यात्री का उनके साथ किसी तरह भी साथ नहीं निभ सकता ॥ २ ॥ माया के मोह में अन्धा हुआ मनुष्य उस धन को, जो प्रभु के दरबार में अस्वीकृत है, वास्तविक धन समझता है, पर (जो नाम-धन) वास्तविक धन (है उस) की प्रतिष्ठा नहीं समझता । माया में अन्धे हुए मनुष्य को बुद्धिमान कहा जा रहा है— यह आश्चर्यजनक गति है दुनिया की, समय की ॥ ३ ॥ माया-मोह की निद्रा में सोए हुए को जगत् कहता है कि यह जागता है, सचेत है, लेकिन जो मनुष्य (परमात्मा की याद में) जागता है, सचेत है, उसे कहता है कि यह सोया हुआ है । प्रभु की भक्ति के प्रभाव से जीवित आत्मिक जीवन वाले को जगत् कहता है कि यह हमारे लिए तो मृत है, लेकिन आत्मिक रूप से मृत व्यक्ति को देखकर कोई दुःख महसूस नहीं करता ॥ ४ ॥ परमात्म-मार्ग पर आनेवाले को जगत् कहता है कि यह बेकार है, परन्तु प्रभु की ओर से गये-गुज़रे अर्थात् उदासीन को जगत् समझता है कि इसका जगत् में आना सफल है । जिस माया को पराई बन जाना है, उसे जगत् अपनी कहता है, परन्तु जो नाम-धन वास्तव में अपना है, वह अच्छा नहीं लगता ॥ ५ ॥ नाम-रस दूसरे रसों से मीठा है, इसे जगत् कड़वा समझता है । विषयों का रस कड़वा है, इसे जगत् स्वादिष्ट कह रहा है । प्रभु-नाम में रँगे हुए व्यक्ति की लोग निंदा करते हैं । जगत् में यह आश्चर्यजनक तमाशा देखने में आ रहा है ॥ ६ ॥ लोग परमात्मा की दासी (माया) की तो सेवा-खुशामद कर रहे हैं, लेकिन (माया का) मालिक किसी को दिखता ही नहीं । यदि तालाब को मथें, यदि पानी को मथें, उसमें से मक्खन नहीं निकल सकता ॥ ७ ॥ हे नानक ! जो मनुष्य अपने वास्तविक रूप को पहचान लेता है, वह उस परमात्मा का रूप बन जाता है, जो माया के प्रभाव से परे है और जिसके गुणों का ओर-छोर नहीं मिल सकता । अपने आपको

पहचानने के आत्मिक स्थान को जो मनुष्य प्राप्त कर लेता है, मैं उसके समक्ष अपना सिर झुकाता हूँ ॥ ८ ॥ (लेकिन माया में और जीवों में) सर्वत्र परमात्मा आप ही व्यापक है, आप ही जीवों को कुमार्ग पर डालता है। गुरु की कृपा से ही यह समझ होती है कि परमात्मा सर्वत्र मौजूद है ॥ ९ ॥ २ ॥ १८ ॥

रागु गउड़ी गुआरेरी महला ३ असटपदीआ

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ मनका सूतकु दूजा भाउ। भरमे भूले आवउ जाउ ॥ १ ॥ मनमुखि सूतकु कबहि न जाइ। जिचरु सबदि न भीजै हरि कै नाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सभो सूतकु जेता मोहु आकारु। मरि मरि जंमै वारो वार ॥ २ ॥ सूतकु अगनि पउणै पाणी माहि। सूतकु भोजनु जेता किछु खाहि ॥ ३ ॥ सूतकि करम न पूजा होइ। नामि रते मनु निरमलु होइ ॥ ४ ॥ सतिगुरु सेविऐ सूतकु जाइ। मरै न जनमै कालु न खाइ ॥ ५ ॥ सासत सिम्रिति सोधि देखहु कोइ। विणु नावै को मुकति न होइ ॥ ६ ॥ जुग चारे नामु उतमु सबदु बीचारि। कलि महि गुरमुखि उतरसि पारि ॥ ७ ॥ साचा मरै न आवै जाइ। नानक गुरमुखि रहै समाइ ॥ ८ ॥ १ ॥

(हे भाई! परमात्मा को भुलाकर माया आदि दूसरों से किया हुआ प्रेम मन की अपवित्रता (का कारण बनता) है, इस अपवित्रता के कारण माया की दुबिधा में कुपथगामी मनुष्य को जन्म-मरण का चक्र बना रहता है ॥ १ ॥ जब तक (मनुष्य गुरु के) शब्द में विश्वस्थ नहीं होता, परमात्मा के नाम में नहीं जुड़ता (तब तक मन स्वेच्छाचारी रहता है, और) स्वेच्छाचारी मनुष्य (के मन) की अपवित्रता कभी दूर नहीं होती ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (स्वेच्छाचारी मनुष्य के लिए) यह जगत्, जगत् का मोह जो कुछ भी है, यह सारा अपवित्रता का मूल है, वह मनुष्य मर-मर कर पुनः जन्म लेता रहता है ॥ २ ॥ (मनमुखों के लिए) अग्नि, हवा, पानी में भी अपवित्रता ही है, जितना कुछ भोजन आदि वे खाते हैं, वह भी अपवित्रता (का कारण ही बनता है) ॥ ३ ॥ (हे भाई!) सूतक में कोई कर्म-काण्ड पवित्र नहीं कर सकते, कोई देवपूजा पवित्र नहीं कर सकती। परमात्मा के नाम में रँग कर ही मन पवित्र होता है ॥ ४ ॥ यदि सतिगुरु का आसरा लिया जाए तो मन की अपवित्रता दूर हो जाती

है, (गुरु का शरणागत मनुष्य) न मरता है, न जन्मता है और न उसे आत्मिक मृत्यु खाती है ॥ ५ ॥ (निस्सन्देह) कोई स्मृतियों, शास्त्रों को भी विचारकर देख लो। परमात्मा के नाम के बिना कोई मनुष्य आत्मिक अपवित्रता से मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकता ॥ ६ ॥ चारों युगों में गुरु के शब्द को विचारकर (परमात्मा का) नाम (जप कर ही मनुष्य) उत्तम बन सकता है, इस युग में भी, जिसे कलियुग कहा जा रहा है, वही मनुष्य पार उतरता है जो गुरु की शरण लेता है ॥ ७ ॥ हे नानक ! गुरु के सम्मुख रहनेवाला मनुष्य उस परमात्मा में सदा लीन रहता है जो सदा स्थिर रहनेवाला है और कभी जन्मता-मरता नहीं ॥ ८ ॥ १ ॥

॥ गउड़ी महला ३ ॥ गुरमुखि सेवा प्रान अधारा। हरि जीउ राखहु हिरदै उरधारा। गुरमुखि सोभा साच दुआरा ॥१॥ पंडित हरि पड़ु तजहु विकारा। गुरमुखि भउजलु उतरहु पारा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गुरमुखि विचहु हउमै जाइ। गुरमुखि मैलु न लागै आइ। गुरमुखि नामु वसै मनि आइ ॥ २ ॥ गुरमुखि करम धरम सचि होई। गुरमुखि अहंकारु जलाए दोई। गुरमुखि नामि रते सुखु होई ॥ ३ ॥ आपणा मनु परबोधहु बूझहु सोई। लोक समझावहु सुणे न कोई। गुरमुखि समझहु सदा सुखु होई ॥ ४ ॥ मनमुखि डंफु बहुतु चतुराई। जो किछु कमावै सु थाइ न पाई। आवै जावै ठउर न काई ॥ ५ ॥ मनमुख करम करे बहुतु अभिमाना। बग जिउ लाइ बहै नित धिआना। जमि पकड़िआ तब ही पछुताना ॥ ६ ॥ बिनु सतिगुर सेवे मुकति न होई। गुर परसादी मिलै हरि सोई। गुरु दाता जुग चारे होई ॥ ७ ॥ गुरमुखि जाति पति नामे वडिआई। साइर की पुत्री बिदारि गवाई। नानक बिनु नावै झूठी चतुराई ॥ ८ ॥ २ ॥

(हे पण्डित !) गुरु के सम्मुख होकर परमात्मा की सेवा-भक्ति को अपने जीवन का आसरा बना, परमात्मा को अपने हृदय, अपने मन में टिकाकर रख। गुरु की शरण लेकर तू सत्यस्वरूप परमात्मा के द्वार पर प्रशंसा प्राप्त करेगा ॥ १ ॥ हे पण्डित ! परमात्मा की गुणस्तुति पढ़ (और इसके प्रभाव से) विकार छोड़। गुरु की शरण लेकर तू संसार-समुद्र से पार उतर जायगा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गुरु की शरण लेने से अहंभावना दूर होती है, गुरु की शरण लेने से (मन को अहं की) मैल

आकर नहीं लगती (क्योंकि) गुरु की शरण लेने से परमात्मा का नाम मन में आ बसता है ॥ २ ॥ (हे पण्डित !) गुरु के सम्मुख रहने से सत्य-स्वरूप परमात्मा में लीनता हो जाती है (और यही है असली) धर्म-कर्म। जो गुरु की शरण लेता है, वह अहंकार तथा तेरे-मेरे की भावना को जला देता है। प्रभु के नाम में रँगकर गुरु के सम्मुख रहनेवाले मनुष्य को आत्मिक आनन्द प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ (हे पण्डित ! पहले) अपना मन जगाओ और उस परमात्मा की हस्ती (अस्तित्व) को समझो। तुम लोगों को शिक्षा देते हो, (इस प्रकार कभी) कोई मनुष्य (उपदेश) नहीं सुनता। गुरु की शरण लेकर तुम आप (सही जीवन-मार्ग) समझो, तुम्हें सदा आत्मिक आनन्द मिलेगा ॥ ४ ॥ स्वेच्छाचारी मनुष्य दिखावा करता है, बड़ी चतुराई दिखाता है, आप (अपना जीवन) कमाता है। वह (परमात्मा की दृष्टि में) स्वीकृत नहीं होता, वह मनुष्य जन्म-मरण के चक्र में पड़ा रहता है, उसे आत्मिक शान्ति की कोई जगह नहीं मिलती ॥ ५ ॥ स्वेच्छाचारी मनुष्य (अपनी ओर से धार्मिक) कर्म करता है, (लेकिन इससे) उसके भीतर अभिमान पैदा होता है, वह सदा ही बगुले की तरह समाधि लगाए बैठता है। वह तभी पछताएगा जब मौत (उसे आकर) पकड़ेगी ॥ ६ ॥ सतिगुरु की शरण लिए बिना (अभिमान आदि से) मुक्ति नहीं होती। गुरु की कृपा से ही वह परमात्मा मिलता है। चारों युगों में गुरु ही परमात्मा के नाम की देन देनेवाला है ॥ ७ ॥ (हे पण्डित !) गुरु की शरण लेनेवाले मनुष्य के लिए हरि-नाम ही उच्च जाति है, उच्च वंश है, परमात्मा के नाम में वह अपना स्वर्ग मानता है। नाम के प्रभाव से ही उसने माया का प्रभाव (अपने भीतर से) काटकर परे रख दिया है। हे नानक ! (कहो— हे पण्डित !) परमात्मा के नाम से खाली रहकर दूसरी चतुराइयाँ दिखाना व्यर्थ है ॥ ८ ॥ २ ॥

॥ गउड़ी म० ३ ॥ इसु जुग का धरमु पड़हु तुम भाई। पूरै गुरि सभ सोझी पाई। ऐथै अगै हरिनामु सखाई ॥ १ ॥ राम पड़हु मनि करहु बीचारु। गुर परसादी मैलु उतारु ॥ १ ॥ रहाउ ॥ वादि विरोधि न पाइआ जाइ। मनु तनु फीका दूजै भाइ। गुर कै सबदि सचि लिव लाइ ॥ २ ॥ हउमै मैला इहु संसारा। नित तीरथि नावै न जाइ अहंकारा। बिनु गुर भेटे जमु करे खुआरा ॥ ३ ॥ सो जनु साचा जि हउमै मारै। गुर कै सबदि पंच संघारै। आपि तरै सगले कुल तारै ॥ ४ ॥ माइआ मोहि नटि बाजी पाई। मनमुख अंध रहे लपटाई। गुरमुखि अलिपत रहे लिव लाई ॥ ५ ॥ बहुते भेख करै

भेखधारी । अंतरि तिसना फिरै अहंकारी । आपु न चीनै बाजी हारी ॥ ६ ॥ कापड़ पहिरि करे चतुराई । माइआ मोहि अति भरमि भुलाई । बिनु गुर सेवे बहुतु दुखु पाई ॥ ७ ॥ नामि रते सदा बैरागी । ग्रिही अंतरि साचि लिवलागी । नानक सतिगुरु सेवहि से वडभागी ॥ ८ ॥ ३ ॥

(हे भाई !) इस मनुष्य का कर्त्तव्य पढ़ो, (मनुष्य-जन्म की सफलता के लिए क्या करणीय है ?) हे भाई ! जो मनुष्य गुरु का शरणागत है। पूर्णगुरु ने उसे यह सूझ दे दी है कि इस लोक तथा परलोक में परमात्मा का नाम (ही वास्तविक) साथी है ॥ १ ॥ परमात्मा (की गुणस्तुति) पढ़ो, (अपने) मन में (परमात्मा के गुणों का) विचार करो, (इस प्रकार) गुरु-कृपा से (विकारों की) मैल दूर करो ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे भाई ! वादविवाद करने से या खण्डन करने से परमात्मा का नाम प्राप्त नहीं होता। दूसरे आस्वादन में पड़ा हुआ मन आत्मिक जीवन से खाली हो जाता है, शरीर (हृदय) आत्मिक जीवन से सूना हो जाता है। गुरु के शब्द के द्वारा ही (मनुष्य) सत्यस्वरूप परमात्मा में लगन लगा सकता है ॥ २ ॥ (गुरु को मिले बिना) यह जगत् अहंकार (के विकार) से मलीन हो जाता है, सदा तीर्थ पर स्नान (भी) करता है, (पर इस प्रकार इसके मन का) अहंकार दूर नहीं होता, गुरु को मिले बिना आत्मिक मौत इसे दुखी करती रहती है ॥ ३ ॥ (हे भाई !) जो मनुष्य गुरु के शब्द के द्वारा अहं दूर कर लेता है और कामादिक पाँचों को समाप्त कर डालता है, वह मनुष्य सत्यस्वरूप परमात्मा का रूप हो जाता है, वह आप (संसार-समुद्र से) पार उतर जाता है और अपने तमाम कुलों को भी पार उतार लेता है ॥ ४ ॥ (प्रभु) नट ने माया-मोह का यह (सृष्टि-रचना का) तमाशा बना दिया है, (इसे देख-देखकर) स्वेच्छाचारी अन्धे हुए मनुष्य (इस तमाशे से) चिपटे रहते हैं, लेकिन गुरु के सम्मुख रहनेवाले मनुष्य (प्रभु-चरणों में) सुरति जोड़कर (इस तमाशे से) निर्लिप्त रहते हैं ॥ ५ ॥ (हे भाई !) केवलमात्र धार्मिक पहनावे पहनता है, (पर उसके भीतर) माया की तृष्णा (बनी रहती है) वह अहंकार में ही विचरता है, वह अपने जीवन को नहीं परखता, (इसलिए) वह मनुष्य-जन्म की बाजी हार जाता है ॥ ६ ॥ (हे भाई !) जो मनुष्य केवलमात्र धार्मिक पहनावे पहन कर ही चतुराई (की बातें) करता है (कि मैं धर्मात्मा हूँ, लेकिन भीतर से) माया-मोह के कारण दुविधा में फँसकर कुमार्गगामी बना रहता है, वह मनुष्य गुरु की शरण में न आने से बहुत दु:ख पाता है ॥ ७ ॥ (हे भाई !) जो मनुष्य परमात्मा के नाम में रँगे रहते हैं, वे सदा वैरागी रहते हैं, गृहस्थ में रहते हुए ही उनकी लगन सत्यस्वरूप परमात्मा में लगी रहती है।

हे नानक ! वे मनुष्य सौभाग्यशाली हैं, क्योंकि वे गुरु की शरणागत हैं ॥ ८ ॥ ३ ॥

॥ गउड़ी महला ३ ॥ ब्रहमा मूलु वेद अभिआसा। तिस ते उपजे देव मोह पिआसा। त्रै गुण भरमे नाही निज घरि वासा ॥ १ ॥ हम हरि राखे सतिगुरू मिलाइआ। अनदिनु भगति हरि नामु द्रिड़ाइआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ त्रै गुण बाणी ब्रहम जंजाला। पड़ि वादु वखाणहि सिरि मारे जमकाला। ततु न चीनहि बंनहि पंड पराला ॥ २ ॥ मनमुख अगिआनि कुमारगि पाए। हरिनामु बिसारिआ बहु करम द्रिड़ाए। भवजलि डूबे दूजै भाए ॥ ३ ॥ माइआ का मुहताजु पंडितु कहावै। बिखिआ राता बहुतु दुखु पावै। जम का गलि जेवड़ा नित कालु संतावै ॥ ४ ॥ गुरमुखि जमकालु नेड़ि न आवै। हउमै दूजा सबदि जलावै। नामे राते हरिगुण गावै ॥ ५ ॥ माइआ दासी भगता की कार कमावै। चरणी लागै ता महलु पावै। सद ही निरमलु सहजि समावै ॥ ६ ॥ हरि कथा सुणहि से धनवंत दिसहि जुग माही। तिन कउ सभि निवहि अनदिनु पूज कराही। सहजे गुण रवहि साचे मन माही ॥ ७ ॥ पूरै सतिगुरि सबदु सुणाइआ। त्रै गुण मेटे चउथै चितु लाइआ। नानक हउमै मारि ब्रहम मिलाइआ ॥ ८ ॥ ४ ॥

ब्रह्मा को वेद-अभ्यास का रास्ता चलानेवाला माना जाता है, उससे सारे देवगण पैदा हुए (लेकिन वे देवगण) मोह-तृष्णा में फँसे हुए ही कहे जा रहे हैं, वे देवता माया के तीन गुणों में ही भटकते रहे, उन्हें प्रभु-चरणों में ठिकाना न मिला ॥ १ ॥ हमें परमात्मा ने (माया के प्रभाव से) बचा लिया है, (परमात्मा ने हमें) गुरु मिला दिया है, (उसने) हरवक्त (परमात्मा की) भक्ति दृढ़ कर दी है, परमात्मा का नाम दृढ़ कराकर टिका दिया है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ ब्रह्मा की रची हुई बाणी माया के तीन गुणों में ही रखती है, (माया के) जंजाल में ही रखती है, (क्योंकि इसे) पढ़कर (पण्डित) वाद-विवाद करते हैं, उनके सिर पर आत्मिक मौत अपनी चोट करती रहती है, वे वास्तविकता को नहीं पहचानते, वे पुआल की गठरियों को ही (सिर पर) बाँधे रखते हैं ॥ २ ॥ स्वेच्छाचारी मनुष्य परमात्मा से ज्ञान-पहचान से खाली रहने के कारण कुमार्गगामी हुए रहते हैं। वे परमात्मा का नाम तो भुला देते हैं, परन्तु दूसरे कर्म करने का

अभ्यास करते हैं, ऐसे मनुष्य परमात्मा के अतिरिक्त दूसरे प्रेम में फंसे रहने के कारण संसार-समुद्र में डूबे रहते हैं ॥ ३ ॥ (हे भाई ! ब्रह्मा की रची बाणी का विद्वान् मनुष्य) माया का इच्छुक होकर भी (स्वयं को) पण्डित कहलाता है। माया के मोह में फँसा हुआ वह बहुत दुःख सहता रहता है, उसके गले में आत्मिक मौत का बन्धन पड़ा रहता है, आत्मिक मौत उसे सदा दुखी रखती है ॥ ४ ॥ आत्मिक मौत गुरु के सम्मुख रहनेवाले मनुष्य के निकट नहीं आती, वह गुरु के ज्ञान के प्रभाव से (अपने भीतर से) अहंभावना जला लेता है, वह परमात्मा के नाम में ही रँगा रहकर परमात्मा के गुण गाता रहता है ॥ ५ ॥ जो मनुष्य परमात्मा की भक्ति करते हैं, माया उनकी दासी बनी रहती है और उनकी आवश्यकताएँ पूर्ण करती है। जो मनुष्य उन भक्तजनों के चरण-स्पर्श करता है, वह भी प्रभु-चरणों में ठिकाना प्राप्त कर लेता है, वह भी सदा ही पवित्र-मन हो जाता है और आत्मिक स्थिरता में टिका रहता है ॥ ६ ॥ (परमात्मा की गुणस्तुति करनेवाले मनुष्यलोक में धनवान दिखाई देते हैं) सब लोग उनके समक्ष झुकते हैं और हरवक्त उनका आदर-सत्कार करते हैं, (क्योंकि वे मनुष्य) आत्मिक स्थिरता में टिककर सत्यस्वरूप परमात्मा के गुण अपने मन में स्मरण किए रखते हैं ॥ ७ ॥ हे नानक ! (कहो— हे भाई ! जिस मनुष्य को) पूर्णगुरु ने परमात्मा की गुणस्तुति की वाणी सुनाई है, उसने अपने भीतर से (माया के) तीनों गुणों का प्रभाव मिटा लिया है, उसने अपना मन उस आत्मिक अवस्था में टिका लिया है, जहाँ माया के तीनों गुण अपना असर नहीं कर सकते, (गुरु ने उसके भीतर से) अहंकार समाप्त कर परमात्मा के साथ जोड़ दिया है ॥ ८ ॥ ४ ॥

॥ गउड़ी महला ३ ॥ ब्रहमा वेदु पड़ै वादु वखाणै। अंतरि तामसु आपु न पछाणै। ता प्रभु पाए गुर सबदु वखाणै ॥ १ ॥ गुर सेवा करउ फिरि कालु न खाइ। मनमुख खाधे दूजै भाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गुरमुखि प्राणी अपराधी सीधे। गुर कै सबदि अंतरि सहजि रीधे। मेरा प्रभु पाइआ गुर कै सबदि सीधे ॥ २ ॥ सतिगुरि मेले प्रभि आपि मिलाए। मेरे प्रभ साचे कै मनि भाए। हरिगुण गावहि सहजि सुभाए ॥ ३ ॥ बिनु गुर साचे भरमि भुलाए। मनमुख अंधे सदा बिखु खाए। जम डंडु सहहि सदा दुखु पाए ॥ ४ ॥ जमूआ न जोहै हरि की सरणाई। हउमै मारि सचि लिव लाई। सदा रहै हरिनामि लिव लाई ॥ ५ ॥ सतिगुरु सेवहि से जन निरमल पविता।

मन सिउ मनु मिलाइ सभु जगु जीता। इन बिधि कुसलु तेरै मेरे मीता ॥ ६ ॥ सतिगुरू सेवे सो फलु पाए। हिरदै नामु विचहु आपु गवाए। अनहद बाणी सबदु वजाए ॥ ७ ॥ सतिगुर ते कवनु कवनु न सीधो मेरे भाई। भगती सीधे दरि सोभा पाई। नानक रामनामि वडिआई ॥ ८ ॥ ५ ॥

(हे भाई ! पण्डित उस) वेद को पढ़ता है, जिसे वह ब्रह्मा द्वारा रचित (समझता है, उसके आसरे) बहस (की बातें) सुनता है पर उसके भीतर आत्मिक जीवन के रूप में अन्धेरा ही रहता है, क्योंकि वह अपने आत्मिक जीवन को खोजता ही नहीं। जब मनुष्य गुरु का शब्द उच्चरित करता है, तब ही प्रभु का मिलाप प्राप्त करता है ॥ १ ॥ मैं (तो) गुरु की सेवा करता हूँ। (गुरु के सेवक को) दोबारा आत्मिक मौत नहीं खाती; (परन्तु) जो मनुष्य स्वेच्छाचारी हैं, माया के प्रेम में (फँसने से) उनके आत्मिक जीवन बरबाद हो जाते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ पापी मनुष्य भी गुरु की शरण लेकर अपना जीवन सफल कर लेते हैं, गुरु के शब्द के प्रभाव से वे आत्मिक स्थिरता में टिक जाते हैं, उनके भीतर प्रभु-मिलाप की ललक पैदा हो जाती है, वे प्रभु को मिल जाते हैं, गुरु के शब्द के द्वारा वे सफल जीवन वाले हो जाते हैं ॥ २ ॥ जिन्हें गुरु ने (अपने शब्द में) जोड़ा है, उन्हें प्रभु ने अपने चरणों से मिला लिया है, वे मनुष्य सत्यस्वरूप परमात्मा के मन में प्यारे लगने लगते हैं, वे आत्मिक स्थिरता में, प्रेम में जुड़कर प्रभु के गुण गाते हैं ॥ ३ ॥ स्वेच्छाचारी मनुष्य सत्यस्वरूप प्रभु के रूप गुरु से अलग रहकर दुबिधा के कारण कुमार्गगामी बने रहते हैं। माया के मोह में अन्धे हुए वे सदा (इस मोह का) विष ही खाते रहते हैं, जिससे वे आत्मिक मौत की सज़ा सहते हैं और सदा दुख पाते हैं ॥ ४ ॥ जो मनुष्य परमात्मा की शरण में रहता है, बेचारा यमराज उसकी ओर देख भी नहीं सकता। वह मनुष्य (अपने भीतर से) अहंकार दूर करके सत्यस्वरूप प्रभु (के चरणों) में सुरति जोड़े रखता है, वह सदा परमात्मा के नाम में लौ लगाए रखता है ॥ ५ ॥ जो मनुष्य गुरु की शरण लेते हैं, वे पवित्र और सच्चे जीवनवाले बन जाते हैं, वे गुरु के मन से अपना मन जोड़कर समस्त जगत् को जीत लेते हैं। हे मेरे मित्र ! इस तरीके से तेरे भीतर भी आनन्द बना रहेगा ॥ ६ ॥ (हे भाई !) जो मनुष्य गुरु की शरण लेता है, वह (यह) फल प्राप्त करता है (कि) उसके हृदय में परमात्मा का नाम बस जाता है, वह अपने भीतर से आपा-भाव दूरकर लेता है। वह मनुष्य (अपने भीतर) निरन्तर गुणस्तुति की बाणी, गुण-स्तुति का शब्द प्रकट करता है, (जिसके प्रभाव से) कोई दूसरी विकृत प्रेरणा असर नहीं कर सकती ॥ ७ ॥ हे नानक ! (कह—) हे मेरे भाई !

गुरु की शरण से कौन-कौन सा व्यक्ति सफल नहीं होता ? (गुरु की शरण लेकर) परमात्मा की भक्ति के प्रभाव से मनुष्य सफल जीवन वाले हो जाते हैं, प्रभु के द्वार पर उन्हें शोभा मिलती है, परमात्मा के नाम के प्रभाव से उन्हें (सर्वत्र) प्रशंसा मिलती है ॥ ८ ॥ ५ ॥

॥ गउड़ी महला ३ ॥ त्रै गुण वखाणै भरमु न जाइ । बंधन न तूटहि मुकति न पाइ । मुकति दाता सतिगुरु जुग माहि ॥ १ ॥ गुरमुखि प्राणी भरमु गवाइ । सहज धुनि उपजै हरि लिव लाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ त्रै गुण कालै की सिरि कारा । नामु न चेतहि उपावणहारा । मरि जंमहि फिरि वारो वारा ॥ २ ॥ अंधे गुरू ते भरमु न जाई । मूलु छोडि लागे दूजै भाई । बिखु का माता बिखु माहि समाई ॥ ३ ॥ माइआ करि मूलु जंत्र भरमाए । हरि जीउ विसरिआ दूजै भाए । जिसु नदरि करे सो परम गति पाए ॥ ४ ॥ अंतरि साचु बाहरि साचु वरताए । साचु न छपै जे को रखै छपाए । गिआनी बूझहि सहजि सुभाए ॥ ५ ॥ गुरमुखि साचि रहिआ लिवलाए । हउमै माइआ सबदि जलाए । मेरा प्रभु साचा मेलि मिलाए ॥६॥ सतिगुरु दाता सबदु सुणाए । धावतु राखै ठाकि रहाए । पूरे गुर ते सोझी पाए ॥ ७ ॥ आपे करता स्रिसटि सिरजि जिनि गोई । तिसु बिनु दूजा अवरु न कोई । नानक गुरमुखि बूझै कोई ॥ ८ ॥ ६ ॥

जो मनुष्य (त्रिगुणात्मक) माया के प्रसार की बातों में ही लगा है, उसके मन की दुबिधा दूर नहीं हो सकती, उसके (माया-मोह के) बन्धन नहीं टूटते, उसे (माया के मोह से) मुक्ति प्राप्त नहीं होती । (हे भाई !) जगत् में माया के मोह से मुक्ति देनेवाला (केवल) गुरु (ही) है ॥ १ ॥ जो मनुष्य गुरु की शरण लेता है, वह अपने मन की दुबिधा दूर कर लेता है, उसके भीतर आत्मिक स्थिरता की ध्वनि पैदा हो जाती है, (क्योंकि गुरु-कृपा से) वह परमात्मा में सुरति जोड़े रखता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ माया के प्रसार में दिलचस्पी रखनेवालों के सिर पर (सदा) आत्मिक मृत्यु का हुक्म चलता है, वे सृजनहार परमात्मा का नाम कभी स्मरण नहीं रखते, वे बार-बार (जगत् में) उत्पन्न होते हैं, मरते हैं, जन्मते हैं, मरते हैं ॥ २ ॥ (माया-मोह में) अन्धे हुए गुरु से (सेवक की) दुबिधा दूर नहीं होती । (ऐसे गुरु की शरण लेकर तो मनुष्य) जगत् के मूल कर्त्तार को छोड़कर

माया के मोह में फँसते हैं, (आत्मिक मौत पैदा करनेवाली माया के) ज़हर में मस्त हुआ जीव ज़हर में ही मगन रहता है ।। ३ ।। मनुष्य माया को (ज़िन्दगी का) आसरा बनाकर (माया की खातिर ही) भटकते रहते हैं, माया के प्रेम के कारण उन्हें परमात्मा भूला रहता है। (पर, हे भाई !) जिस मनुष्य पर परमात्मा कृपा-दृष्टि करता है, वह मनुष्य सर्वोच्च आत्मिक अवस्था प्राप्त कर लेता है ।। ४ ।। (गुरु मनुष्य के) हृदय में सत्यस्वरूप परमात्मा का प्रकाश कर देता है, जगत् से लेन-देन करते हुए भी सारे जगत् में उसे सत्यस्वरूप प्रभु दिखा देता है। (जिसके भीतर-बाहर प्रभु का प्रकाश हो जाए,) वह यदि इस (देन को) छिपाकर रखने का यत्न भी करे तो सत्यस्वरूप प्रभु छिपता नहीं। परमात्मा के साथ गहरा सम्बन्ध (मेल-जोल) रखनेवाले मनुष्य आत्मिक स्थिरता में (टिककर) प्रभु-प्रेम में जुड़कर (इस वास्तविकता को) समझ लेते हैं ।। ५ ।। गुरु की शरण लेनेवाला मनुष्य सत्यस्वरूप परमात्मा में अपनी सुरति जोड़े रखता है, गुरु के शब्द के प्रभाव से वह (अपने भीतर से) अहंकार तथा माया जला लेता है। (इस प्रकार) सत्यस्वरूप प्यारा प्रभु उसे अपने चरणों में मिलाए रखता है ।। ६ ।। (परमात्मा के नाम की) देन देनेवाला सतिगुरु जिस मनुष्य को अपना शब्द सुनाता है, वह माया के पीछे भटकते अपने मन को बचा लेता है, रोककर नियंत्रित कर लेता है। पूर्णगुरु की ओर से वह मनुष्य (जीवनयुक्ति की सही) समझ प्राप्त कर लेता है ।।७।। हे नानक ! (कह— हे भाई !) गुरु का शरणागत कोई मनुष्य यह समझ लेता है कि उस परमात्मा के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है, जो आप ही स्रष्टा है और जिसने आप ही सृष्टि पैदा करके विनष्ट की है ।। ८ ।। ६ ।।

।। गउड़ी महला ३ ।। नामु अमोलकु गुरमुखि पावै । नामो सेवे नामि सहजि समावै । अंम्रितु नामु रसना नित गावै । जिस नो क्रिपा करे सो हरिरसु पावै ।। १ ।। अनदिनु हिरदै जपउ जगदीसा । गुरमुखि पावउ परम पदु सूखा ।। १ ।। रहाउ ।। हिरदै सूखु भइआ परगासु । गुरमुखि गावहि सचु गुणतासु । दासनिदास नित होवहि दासु । ग्रिह कुटंब महि सदा उदासु ।।२।। जीवन मुकतु गुरमुखि को होई । परम पदारथु पावै सोई । त्रै गुण मेटे निरमलु होई । सहजे साचि मिलै प्रभु सोई ।। ३ ।। मोह कुटंब सिउ प्रीति न होइ । जा हिरदै वसिआ सचु सोइ । गुरमुखि मनु बेधिआ असथिरु होइ । हुकमु पछाणै बूझै सचु सोइ ।। ४ ।। तूं करता मै अवरु न कोइ । तुझु सेवी तुझ ते

पति होइ । किरपा करहि गावा प्रभु सोइ । नाम रतनु सभ जग महि लोइ ॥ ५ ॥ गुरमुखि बाणी मीठी लागी । अंतरु बिगसै अनदिनु लिव लागी । सहजे सचु मिलिआ परसादी । सतिगुरु पाइआ पूरै वडभागी ॥ ६ ॥ हउमै ममता दुरमति दुख नासु । जब हिरदै राम नाम गुणतासु । गुरमुखि बुधि प्रगटी प्रभ जासु । जब हिरदै रविआ चरण निवासु ॥ ७ ॥ जिसु नामु देइ सोई जनु पाए । गुरमुखि मेले आपु गवाए । हिरदै साचा नामु वसाए । नानक सहजे साचि समाए ॥ ८ ॥ ७ ॥

परमात्मा का नाम किसी भी मूल्य पर नहीं मिल सकता, वही मनुष्य प्राप्त कर सकता है, जो गुरु की शरण लेता है। वह नाम ही स्मरण करता है और नाम के द्वारा आत्मिक स्थिरता में टिका रहता है, लेकिन वही मनुष्य हरि-नाम का रस भोगता है, जिस पर परमात्मा आप कृपा करता है ॥ १ ॥ मैं हर समय अपने हृदय में जगत् के मालिक प्रभु का नाम जपता हूँ। गुरु की शरण लेकर मैंने सर्वोच्च आत्मिक स्थान प्राप्त कर लिया है, मैं आत्मिक आनन्द अनुभव कर रहा हूँ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जो मनुष्य गुरु की शरण लेकर गुणों के भण्डार सत्यस्वरूप प्रभु के गुण गाते हैं, उनके हृदय में आत्मिक आनन्द बना रहता है, उनके भीतर प्रकाश पैदा हो जाता है, वे सदा परमात्मा के सेवकों के सेवक बने रहते हैं, वे मनुष्य गृहस्थ में रहते हुए, परिवार में रहते हुए भी निर्लिप्त रहते हैं ॥ २ ॥ कोई विरला मनुष्य जो गुरु की शरण लेता है, लौकिक व्यवहार निभाता हुआ भी माया के बन्धनों से स्वतन्त्र रहता है, वही मनुष्य समस्त पदार्थों से श्रेष्ठ नाम-पदार्थ प्राप्त करता है, वह मनुष्य तीनों गुणों का प्रभाव मिटा लेता है, और पवित्र आत्मा बन जाता है। आत्मिक स्थिरता में, सत्य-स्वरूप प्रभु के नाम में जुड़े रहने से उसे वह प्रभु मिल जाता है ॥ ३ ॥ जब किसी मनुष्य के हृदय में वह सदा स्थिर रहनेवाला परमात्मा आ बसता है, तो उसका अपने परिवार से मोह नहीं रहता। गुरु की शरण लेकर जिस मनुष्य का मन (परमात्म-स्मृति में) लग जाता है और अटूट हो जाता है, वह मनुष्य परमात्मा की रज़ा को पहचानता है। वह मनुष्य उस सत्यस्वरूप प्रभु को समझ लेता है ॥ ४ ॥ हे भाई ! गुरु की शरण लेकर जिस मनुष्य का मन परमात्मा की याद में लग जाता है, वह इस प्रकार प्रार्थना करता है— हे प्रभु ! तू ही जगत् का उत्पादक है, मुझे तेरे अतिरिक्त आसरा नहीं दिखता, मैं सदा तेरा ही स्मरण करता हूँ, मुझे तेरे द्वार से ही प्रतिष्ठा मिलती है। यदि तू आप कृपा करे तब ही मैं तेरी गुणस्तुति कर सकता हूँ। तेरा नाम ही मेरे लिए सर्वोपरि पदार्थ है, तेरा

नाम ही जगत् में प्रकाश (पैदा करनेवाला) है ॥ ५ ॥ गुरु की शरण लेकर जिस मनुष्य को परमात्मा की गुणस्तुति की बाणी मीठी लगने लगती है, उसका हृदय प्रसन्न हो जाता है, उसकी सुरति (प्रभु-चरणों में) जुड़ी रहती है। गुरु की कृपा से आत्मिक स्थिरता के द्वारा उसे सत्यस्वरूप प्रभु मिल जाता है। (पर, हे भाई!) गुरु पूर्ण भाग्यों से ही मिलता है ॥ ६ ॥ जब हृदय में परमात्मा का नाम आ बसता है, तो गुणों का भण्डार प्रभु आ बसता है, तब भीतर से अहंकार, आपा-भाव, दुर्मति तथा दुखों का नाश हो जाता है। जब मनुष्य गुरु की शरण लेकर अपने हृदय में परमात्मा का नाम-स्मरण करता है, जब प्रभु-चरणों में टिकता है, प्रभु की गुणस्तुति सुनता है, तो इसकी बुद्धि उज्ज्वल हो जाती है ॥ ७ ॥ हे नानक! वही मनुष्य परमात्मा का नाम प्राप्त करता है, जिसे परमात्मा आप अपना नाम देता है। जिस मनुष्य को गुरु की शरण देकर प्रभु अपने साथ मिलाता है, वह मनुष्य अपने भीतर से आपा-भाव दूर कर देता है, वह मनुष्य अपने हृदय में सत्यस्वरूप हरि-नाम बसाता है, वह मनुष्य आत्मिक स्थिरता में टिका रहता है, सत्यस्वरूप परमात्मा में जुड़ा रहता है ॥ ८ ॥ ७ ॥

॥ गउड़ी महला ३ ॥ मन ही मनु सवारिआ भै सहजि सुभाइ। सबदि मनु रंगिआ लिव लाइ। निज घरि वसिआ प्रभ की रजाइ ॥ १ ॥ सतिगुरु सेविऐ जाइ अभिमानु। गोविदु पाईऐ गुणी निधानु ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मनु बैरागी जा सबदि भउ खाइ। मेरा प्रभु निरमला सभतै रहिआ समाइ। गुर किरपा ते मिलै मिलाइ ॥ २ ॥ हरि दासन को दासु सुखु पाए। मेरा हरिप्रभु इन बिधि पाइआ जाए। हरि किरपा ते रामगुण गाए ॥ ३ ॥ ध्रिगु बहु जीवणु जितु हरिनामि न लगै पिआरु। ध्रिगु सेज सुखाली कामणि मोह गुबारु। तिन सफलु जनमु जिन नामु अधारु ॥ ४ ॥ ध्रिगु ध्रिगु ग्रिहु कुटंबु जितु हरि प्रीति न होइ। सोई हमारा मीतु जो हरिगुण गावै सोइ। हरिनाम बिना मै अवरु न कोइ ॥ ५ ॥ सतिगुर ते हम गति पति पाई। हरिनामु धिआइआ दूखु सगल मिटाई। सदा अनंदु हरिनामि लिव लाई ॥ ६ ॥ गुरि मिलिऐ हम कउ सरीर सुधि भई। हउमै त्रिसना सभ अगनि बुझई। बिनसे क्रोध खिमा गहि लई ॥ ७ ॥ हरि आपे क्रिपा करे नामु देवै। गुरमुखि रतनु को विरला लेवै। नानकु गुण गावै हरि अलख अभेवै ॥८॥८॥

जिस मनुष्य ने गुरु के शब्द के द्वारा सुरति जोड़कर मन को (प्रभु के प्रेम-रंग में) रँग लिया है, उसने प्रभु के भय-सम्मान में टिककर, आत्मिक स्थिरता में टिककर, प्रभु-प्रेम में जुड़कर अपने मन को भीतर ही भीतर सुन्दर बना लिया है। वह मनुष्य प्रभु-चरणों में टिका रहता है, वह मनुष्य प्रभु की रज़ा में प्रसन्न रहता है ॥ १ ॥ (हे भाई !) गुरु की शरण लेने से (मन में से) अहंकार दूर हो जाता है और गुणों का भण्डार परमात्मा मिल जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जब कोई मनुष्य (परमात्मा के) भय को (अन्तरात्मा की) खुराक बनाता है, (उसका) मन माया के मोह से तटस्थ हो जाता है, उसे पवित्र-स्वरूप प्यारा प्रभु सर्वत्र व्यापक दिखता है। वह मनुष्य, गुरु-कृपा से (गुरु को) मिलाया हुआ (परमात्मा को) मिल पड़ता है ॥ २ ॥ जो मनुष्य परमात्मा के सेवकों का सेवक बन जाता है, वह आत्मिक आनन्द प्राप्त करता है। (हे भाई !) इस तरीके से (ही) प्यारे प्रभु का मेल प्राप्त होता है। वह मनुष्य परमात्मा की कृपा से परमात्मा के गुण गाता रहता है ॥ ३ ॥ (प्राणायाम आदि साधनों से बढ़ाई) लम्बी उम्र धिक्कार-योग्य है, यदि उसके द्वारा परमात्मा के नाम में प्रेम नहीं होता। (दूसरी ओर सुन्दर) स्त्री की सुखदायक सेज (भी) धिक्कार-योग्य है, (यदि वह) मोह का गहरा अन्धेरा पैदा करती है। (हे भाई ! केवल) उन मनुष्यों का जन्म सफल है— जिन्होंने परमात्मा के नाम को (अपनी ज़िन्दगी का) आसरा बनाया है ॥ ४ ॥ वह गृहस्थ-जीवन धिक्कार-योग्य है, वह परिवार धिक्कार-योग्य है, जिसके द्वारा परमात्मा से प्रेम नहीं होता। हमारा मित्र तो वही मनुष्य है जो उस परमात्मा के गुण गाता है। परमात्मा के नाम के अतिरिक्त मुझे दूसरा कोई (सदा साथ निभनेवाला साथी) नहीं दिखाई देता ॥ ५ ॥ (हे भाई !) गुरु से ही हम उच्च आत्मिक अवस्था प्राप्त कर सकते हैं, (जिसके प्रभाव से सर्वत्र) प्रतिष्ठा मिलती है। (गुरु की शरण लेकर जिसने) परमात्मा का नाम-स्मरण किया है, उसने अपना हरेक प्रकार का दुःख दूर कर लिया है, वह मनुष्य परमात्मा के नाम में सुरति जोड़कर सदा आनन्द प्राप्त करता है ॥ ६ ॥ यदि गुरु मिल जाए तो हम शरीर को विकारों से बचा रखने की सूझ भी हासिल कर लेते हैं। (जो मनुष्य गुरु की शरण लेता है, उसके भीतर से) अहंकार और तृष्णा की सारी आग बुझ जाती है, (उसके भीतर से) क्रोध समाप्त हो जाता है, वह सदा क्षमा धारण किए रखता है ॥ ७ ॥ (लेकिन, हे भाई !) परमात्मा आप ही कृपा करता है और अपना नाम देता है, कोई विरला मनुष्य गुरु की शरण लेकर यह नाम-रत्न पल्ले बाँधता है। नानक (तो गुरु-कृपा से ही) उस अलक्ष्य तथा अभेद परमात्मा के गुण गाता है ॥ ८ ॥ ८ ॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।। रागु गउड़ी बैरागणि महला ३ ।।
सतिगुर ते जो मुह फेरे ते वेमुख बुरे दिसंनि । अनदिनु बधे मारीअनि फिरि वेला ना लहंनि ।। १ ।। हरि हरि राखहु क्रिपा धारि । सतसंगति मेलाइ प्रभ हरि हिरदै हरि गुण सारि ।। १ ।। रहाउ ।। से भगत हरि भावदे जो गुरमुखि भाइ चलंनि । आपु छोडि सेवा करनि जीवत मुए रहंनि ।। २ ।। जिस दा पिंडु पराण है तिस की सिरि कार । ओहु किउ मनहु विसारीऐ हरि रखीऐ हिरदै धारि ।। ३ ।। नामि मिलिऐ पति पाईऐ नामि मंनिऐ सुखु होइ । सतिगुर ते नामु पाईऐ करमि मिलै प्रभु सोइ ।। ४ ।। सतिगुर ते जो मुहु फेरे ओइ भ्रमदे ना टिकंनि । धरति असमानु न झलई विचि विसटा पए पचंनि ।। ५ ।। इहु जगु भरमि भुलाइआ मोह ठगउली पाइ । जिना सतिगुरु भेटिआ तिन नेड़ि न भिटै माइ ।। ६ ।। सतिगुरु सेवनि सो सोहणे हउमै मैलु गवाइ । सबदि रते से निरमले चलहि सतिगुर भाइ ।। ७ ।। हरिप्रभ दाता एकु तूं तूं आपे बखसि मिलाइ । जनु नानकु सरणा गती जिउ भावै तिवै छडाइ ।। ८ ।। १ ।। ६ ।।

जो मनुष्य गुरु से तटस्थ रहते हैं, गुरु की ओर से उदास वे मनुष्य दुष्ट दिखते हैं। बन्धन-ग्रस्त वे मनुष्य हर समय मोह की चोटें खाते रहते हैं, (इन चोटों से बचने के लिए) उनको दोबारा समय हाथ नहीं लगता ।। १ ।। हे हरि ! कृपा कर, (मुझे माया के पंजे से) बचाकर रख। हे प्रभु ! मुझे सत्संगति में मिलाकर रख, ताकि मैं तेरे गुण अपने हृदय में सँभालकर रखूँ ।। १ ।। रहाउ ।। परमात्मा को वह भक्त प्यारे लगते हैं, जो गुरु की शरण लेकर गुरु के निर्देश-अनुसार जीवन बिताते हैं, जो आपा-भाव त्यागकर सेवा-भक्ति करते हैं और दुनिया का कार्य-व्यवहार करते हुए भी माया के मोह से अनछुए रहते हैं ।। २ ।। जिस परमात्मा का दिया हुआ यह शरीर है, यह आत्मा है, उसका हुक्म हरेक के शरीर पर सक्रिय है। उसे किसी भी हालत में अपने मन से भुलाना नहीं चाहिए। उस परमात्मा को अपने हृदय में बसा रखना चाहिए ।। ३ ।। यदि परमात्मा का नाम मिल जाए तो (सर्वत्र) प्रतिष्ठा मिलती है, यदि परमात्मा के नाम के साथ मन लीन हो जाए तो आत्मिक आनन्द प्राप्त होता है, (पर, हे भाई !) गुरु से ही परमात्मा का नाम मिलता है, उसकी अपनी कृपा से ही वह परमात्मा मिलता है ।। ४ ।। जो मनुष्य गुरु की ओर से मुँह मोड़े

रखते हैं, वे मनुष्य भटकते फिरते हैं, उन्हें कभी आत्मिक शान्ति नहीं मिलती। उन्हें धरती और आसमान, कोई भी सहन नहीं कर सकता। वे माया-मोह की गन्दगी में पड़े हुए ही अपना आत्मिक जीवन जलाते रहते हैं ॥ ५ ॥ (हे भाई! माया ने) इस जगत् को दुबिधा में (डालकर) मोह की ठग-बूटी खिलाकर कुमार्गगामी बना दिया है, (लेकिन) जिन्हें सतिगुरु मिल जाता है, यह माया उनके निकट भी नहीं जाती ॥ ६ ॥ (हे भाई!) जो मनुष्य सतिगुरु की शरण लेते हैं, वे अहंकार की मैल दूर करके सुन्दर जीवन वाले बन जाते हैं। जो मनुष्य गुरु के शब्द में रँगे जाते हैं, वे पवित्र जीवन वाले हो जाते हैं, वे गुरु के बताए अनुसार चलते हैं, (जीवन बिताते हैं) ॥ ७ ॥ हे हरि! केवल तुम ही हो जो देन देते हो, तुम आप ही कृपा करके मुझे अपने चरणों में जोड़ो, (मैं तेरा) दास नानक तेरी शरणागत हूँ, जैसे तुम्हें भला लगे, मुझे उसी तरह बचा लो ॥ ८ ॥ १ ॥ ९ ॥

रागु गउड़ी पूरबी महला ४ करहले

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ करहले मन परदेसीआ किउ मिलीऐ हरि माइ। गुरु भागि पूरै पाइआ गलि मिलिआ पिआरा आइ ॥ १ ॥ मन करहला सतिगुरु पुरखु धिआइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मन करहला वीचारीआ हरि राम नाम धिआइ। जिथै लेखा मंगीऐ हरि आपे लए छडाइ ॥ २ ॥ मन करहला अति निरमला मलु लागी हउमै आइ। परतखि पिरु घरि नालि पिआरा विछुड़ि चोटा खाइ ॥ ३ ॥ मन करहला मेरे प्रीतमा हरि रिदै भालि भालाइ। उपाइ कितै न लभई गुरु हिरदै हरि देखाइ ॥ ४ ॥ मन करहला मेरे प्रीतमा दिनु रैणि हरि लिव लाइ। घरु जाइ पावहि रंग महली गुरु मेले हरि मेलाइ ॥ ५ ॥ मन करहला तूं मीतु मेरा पाखंडु लोभु तजाइ। पाखंडि लोभी मारीऐ जम डंडु देइ सजाइ ॥ ६ ॥ मन करहला मेरे प्रान तूं मैलु पाखंडु भरमु गवाइ। हरि अंम्रित सरु गुरि पूरिआ मिलि संगती मलु लहि जाइ ॥ ७ ॥ मन करहला मेरे पिआरिआ इक गुर की सिख सुणाइ। इहु मोहु माइआ पसरिआ अंति साथि न कोई जाइ ॥ ८ ॥ मन करहला मेरे साजना हरि खरचु लीआ पति पाइ। हरि

दरगह पैनाइआ हरि आपि लइआ गलि लाइ ॥ ९ ॥ मन करहला गुरि मंनिआ गुरमुखि कार कमाइ । गुर आगै करि जोदड़ी जन नानक हरि मेलाइ ॥ १० ॥ १ ॥

हे स्वेच्छाचारी मन ! हे (यहाँ) परदेश में रहनेवाले मन ! परमात्मा को कैसे मिला जाए, जो माँ (के समान हमें पालता) है । (जिस मनुष्य को) सौभाग्यवश गुरु मिल जाता है, प्यारा परमात्मा उसके गले आ लगता है ॥ १ ॥ हे ऊँट के बच्चे के समान स्वेच्छाचारी मन ! परमात्मा के रूप गुरु को स्मरण रख ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे स्वेच्छाचारी मन ! विचारवान् बन, और, परमात्मा का नाम-स्मरण करता रह । परमात्मा आप ही (वहाँ) बेबाक करा लेगा, जहाँ (पूर्वकृत कर्मों का) हिसाब माँगा जाता है ॥ २ ॥ हे स्वेच्छाचारी मन ! तू बहुत पवित्र था लेकिन तुझे अहंकार का मैल आ-चिपट गया है । (कितनी विडम्बना है कि) पति-प्रभु प्रत्यक्ष रूप से हृदय में बस रहा है, (शरीर के) साथ बस रहा है, (लेकिन आत्मा माया-मोह के कारण उससे) बिछुड़कर दुखी हो रही है ॥ ३ ॥ हे मेरे प्यारे मन ! अपने हृदय में परमात्मा की खोज कर, खोज करा । वह परमात्मा किसी दूसरे तरीके से नहीं मिलता । गुरु (ही) हृदय में (बसता हुआ) दिखा देता है ॥ ४ ॥ हे स्वेच्छाचारी मन ! दिन-रात परमात्मा के चरणों में सुरति जोड़ । (इस प्रकार उस) आनन्दरूप के महल में जाकर ठिकाना प्राप्त कर लेगा । लेकिन गुरु ही परमात्मा के साथ मिला सकता है ॥ ५ ॥ हे मेरे स्वेच्छाचारी मन ! तू मेरा मित्र है । माया का लालच और पाखण्ड छोड़ दे । पाखण्डी तथा लालची होने से आत्मिक जीवन समाप्त हो जाता है । मृत्यु का भय सदा उसके सिर पर रहता है— परमात्मा उसे यह सज़ा देता है ॥ ६ ॥ हे स्वेच्छाचारी मन ! तू (अपने भीतर से विकारों की) मैल दूरकर, पाखण्ड तथा माया के पीछे भाग-दौड़ को छोड़ दे । पूर्णगुरु ने हरि-नाम अमृत का सरोवर लबालब भरा है, सत्संगति में मिलकर (उस सरोवर में स्नान कर, तेरी विकारों की) मैल उतर जायगी ॥ ७ ॥ हे स्वेच्छाचारी मन ! गुरु की शिक्षा सुन । यह सारा माया का मोह (-जाल) बिखरा हुआ है, अन्तिम समय में कोई भी साथ नहीं जायगा ॥ ८ ॥ हे मेरे सज्जन मन ! हे स्वेच्छाचारी मन । जिस मनुष्य ने परमात्मा (का नाम-धन—) खर्च पल्ले में बाँध लिया है, वह लोक-परलोक में प्रतिष्ठा पाता है, परमात्मा के दरबार में उसे आदर-सत्कार मिलता है, परमात्मा आप उसे अपने गले लगा लेता है ॥ ९ ॥ हे मेरे स्वेच्छाचारी मन ! गुरु में श्रद्धा करके गुरु की बतलाई हुई क्रिया कर । हे दास नानक ! (कह— हे स्वेच्छाचारी मन !) गुरु के समक्ष प्रार्थना कर (कि मुझे) परमात्मा (के चरणों) में जोड़े रख ॥ १० ॥ १ ॥

॥ गउड़ी महला ४ ॥ मन करहला वीचारीआ वीचारि देखु समालि । बन फिरि थके बनवासीआ पिरु गुरमति रिदै निहालि ॥ १ ॥ मन करहला गुर गोविंदु समालि ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मन करहला वीचारीआ मनमुख फाथिआ महा जालि । गुरमुखि प्राणी मुकतु है हरि हरि नामु समालि ॥ २ ॥ मन करहला मेरे पिआरिआ सतसंगति सतिगुरु भालि । सतसंगति लगि हरि धिआईऐ हरि हरि चलै तेरै नालि ॥ ३ ॥ मन करहला वडभागीआ हरि एक नदरि निहालि । आपि छडाए छुटीऐ सतिगुर चरण समालि ॥ ४ ॥ मन करहला मेरे पिआरिआ विचि देही जोति समालि । गुरि नउ निधि नामु विखालिआ हरि दाति करी दइआलि ॥ ५ ॥ मन करहला तूं चंचला चतुराई छडि विकरालि । हरि हरि नामु समालि तूं हरि मुकति करे अंतकालि ॥ ६ ॥ मन करहला वडभागीआ तूं गिआनु रतनु समालि । गुर गिआनु खड़गु हथि धारिआ जमु मारिअड़ा जमकालि ॥ ७ ॥ अंतरि निधानु मन करहले भ्रमि भवहि बाहरि भालि । गुरु पुरखु पूरा भेटिआ हरि सजणु लधड़ा नालि ॥ ८ ॥ रंगि रतड़े मन करहले हरि रंगु सदा समालि । हरि रंगु कदे न उतरै गुर सेवा सबदु समालि ॥ ९ ॥ हम पंखी मन करहले हरि तरवरु पुरखु अकालि । वडभागी गुरमुखि पाइआ जन नानक नामु समालि ॥ १० ॥ २ ॥

हे मेरे स्वेच्छाचारी मन ! तू विचारवान् बन । तू विचार करके देख । जंगलों में भटक-भटककर थके हुए, हे वनवासी (मन) ! (तेरा) मालिक प्रभु (तेरे) हृदय में (बस रहा है, उसे) गुरु की शिक्षा लेकर देख ॥ १ ॥ ऊँट के बच्चे के समान स्वेच्छाचारी मन ! तू परमात्मा (की याद) को (अपने भीतर) सँभालकर रख ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे स्वेच्छाचारी मन ! तू विचारवान् बन ! स्वेच्छाचारी मनुष्य (माया-मोह के) बड़े जाल में फँसे हुए हैं । जो मनुष्य गुरु की शरण लेता है, वह परमात्मा का नाम (हृदय में) सँभालकर बच जाता है ॥ २ ॥ हे मेरे प्यारे स्वेच्छाचारी मन ! सत्संगति में जा, (वहाँ) गुरु को प्राप्त कर । सत्संगति का आसरा लेकर परमात्मा का नाम-स्मरण करना चाहिए, यह हरि-नाम ही तेरे साथ (सदा) साथ करेगा ॥ ३ ॥ हे स्वेच्छाचारी मन ! वह मनुष्य सौभाग्यशाली बन जाता है, जिस पर परमात्मा एक कृपा-दृष्टि करता है । यदि परमात्मा आप ही मुक्ति दिलाए तो गुरु के चरणों को

सँभालकर (इस जाल से) निकला जा सकता है ॥ ४ ॥ हे स्वेच्छाचारी मन ! शरीर में स्थित ज्योति को सँभालकर रख। परमात्मा का नाम संसार के समस्त खज़ाने हैं, जिसे गुरु ने यह नाम दिखा दिया है, दयालु परमात्मा ने उस मनुष्य पर कृपा कर दी है ॥ ५ ॥ हे स्वेच्छाचारी मन ! तू कभी कहीं टिककर नहीं बैठता। यह चंचलता, यह चालाकी छोड़ दे, (यह चतुराई) भयानक (कुएँ) में (फेंक देगी)। परमात्मा का नाम सदा स्मरण रख, परमात्मा ही अन्तिम समय में मुक्ति दिलाता है ॥ ६ ॥ हे स्वेच्छाचारी मन ! परमात्मा के साथ गहरी एकता (गूढ़ सम्बन्ध) रत्न (है, इसे) तू सँभालकर रख और सौभाग्यशाली बन। गुरु का दिया हुआ ज्ञान खांडा है, (जिस मनुष्य ने यह खांडा अपने) हाथ में पकड़ लिया उसने आत्मिक मौत को मारनेवाले (इस ज्ञान-खांडे) के द्वारा यम को समाप्त कर दिया ॥ ७ ॥ हे स्वेच्छाचारी मन ! (परमात्मा का नाम-) खज़ाना (तेरे) भीतर है, पर तू दुबिधा में पड़कर बाहर खोजता फिरता है। परमात्मा का रूप गुरु जिस मनुष्य को मिल जाता है, वह मनुष्य सज्जन— परमात्मा को अपने साथ बसता हुआ प्राप्त कर लेता है ॥ ८ ॥ माया के रंग में रँगे स्वेच्छाचारी मन ! परमात्मा का प्रेम-रंग सदा सँभालकर रख, परमात्मा का रंग फिर कभी फीका नहीं पड़ता (इसलिए) तू गुरु की शरण ले, तू गुरु का शब्द अपने हृदय में सँभाल ॥ ९ ॥ हे स्वेच्छाचारी मन ! हम जीव पक्षी हैं, अकालपुरुष (ने हमें जगत् में भेजा है। जैसे कोई वृक्ष पक्षियों के रात्रि-विश्राम के लिए होता है, वैसे ही) सर्वव्यापक हरि (जीव-पक्षियों का) वृक्ष है। हे दास नानक ! (कह— हे मन !) गुरु के द्वारा परमात्मा का नाम हृदय में सँभालकर सौभाग्यशाली (जीव-पक्षियों) ने वह आसरा प्राप्त किया है ॥ १० ॥ २ ॥

रागु गउड़ी गुआरेरी महला ५ असटपदीआ

१ ओं सतिनामु करता पुरखु गुर प्रसादि ॥ जब इहु मन महि करत गुमाना। तब इहु बावरु फिरत बिगाना। जब इहु हूआ सगल की रीना। ता ते रमईआ घटि घटि चीना ॥ १ ॥ सहज सुहेला फलु मसकीनी। सतिगुर अपुनै मोहि दानु दीनी ॥१॥रहाउ॥ जब किस कउ इहु जानसि मंदा। तब सगले इसु मेलहि फंदा। मेर तेर जब इनहि चुकाई। ता ते इसु संगि नही बैराई ॥ २ ॥ जब इनि अपुनी अपनी धारी। तब इस कउ है मुसकलु भारी। जब इनि करणैहारु पछाता। तब इस

नो नाही किछु ताता ॥ ३ ॥ जब इनि अपुनो बाधिओ मोहा । आवै जाइ सदा जमि जोहा । जब इस ते सभ बिनसे भरमा । भेदु नाही है पारब्रहमा ॥४॥ जब इनि किछु करि माने भेदा । तब ते दूख डंड अरु खेदा । जब इनि एको एकी बूझिआ । तब ते इस नो सभु किछु सूझिआ ॥ ५ ॥ जब इहु धावै माइआ अरथी । नह त्रिपतावै नह तिस लाथी । जब इस ते इहु होइओ जउला । पीछै लागि चली उठि कउला ॥ ६ ॥ करि किरपा जउ सतिगुरु मिलिओ । मन मंदर महि दीपकु जलिओ । जीत हार की सोझी करी । तउ इसु घर की कीमति परी ॥७॥ करन करावन सभु किछु एकै । आपे बुधि बीचारि बिबेकै । दूरि न नेरै सभ कै संगा । सचु सालाहणु नानक हरि रंगा ॥ ८ ॥ १ ॥

जब मनुष्य (अपने) मन में मान करता है, तब (उस अहंकार में) पागल (हुआ) मनुष्य (सब लोगों से) अलग-अलग घूमता-फिरता है; लेकिन जब यह सब लोगों की चरण-धूलि हो गया, तब इसने सुन्दर राम को हरेक शरीर में देख लिया ॥ १ ॥ मेरे गुरु ने मुझे (विनम्र स्वभाव की) देन दी, उस विनम्र स्वभाव का फल यह हुआ कि मुझे आत्मिक स्थिरता मिल गई है, मैं सुखी हूं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जब तक मनुष्य प्रत्येक को बुरा समझता है, तब तक समस्त लोग (मानों) उसके लिए (ठगी के) जाल बिछा रहे हैं, पर जब इसने भेदभाव दूर कर दिया तब (इसे विश्वास हो जाता है कि) कोई इससे वैर नहीं कर रहा ॥ २ ॥ जब तक इस मनुष्य ने अपना ही स्वार्थ रखा, तब तक इसे बड़ी दुबिधा बनी रहती रही, पर जब इसने (सर्वत्र) सृजनहार को ही (सर्वत्र बसता) पहचान लिया, तब इसे कोई जलन नहीं रह जाती ॥ ३ ॥ जब तक इस मनुष्य ने (दुबिधा के साथ) अपना मोह दृढ़ किया हुआ है, तब तक यह भटकता रहता है, आत्मिक मृत्यु ने इसे सदा अपनी दृष्टि में रखा हुआ है, लेकिन जब इसके भीतर से तमाम दुबिधाएँ समाप्त हो जाती हैं, तब इसमें और परमात्मा में कोई दूरी नहीं रह जाती ॥ ४ ॥ जब तक इस मनुष्य ने कोई भेदभाव निश्चित किया है, तब तक इसकी आत्मा को दुख-क्लेशों की सजाएँ मिलती रहती हैं, लेकिन जब इसने एक परमात्मा को ही बसता समझ लिया, तब इसे (सही जीवन-युक्ति का) हरेक अंग सूझ पड़ता है ॥ ५ ॥ जब तक यह मनुष्य माया का मुहताज होकर भटकता फिरता है, तब तक यह तृप्त नहीं होता । इसकी माया-तृष्णा समाप्त नहीं होती । जब यह मनुष्य इस माया-मोह से अलग नहीं हो पाता है, तब माया इसके पीछे-पीछे चलने लगती है ॥ ६ ॥ जब

(किसी मनुष्य को) गुरु कृपा करके मिल जाता है, उसके मन में ज्ञान हो जाता है, जैसे घर में दीपक जग जाता है। तब मनुष्य को समझ हो जाती है कि मनुष्य-जीवन में असली विजय क्या है; पराजय क्या है; तब इसे अपने शरीर की प्रतिष्ठा मालूम हो जाती है ॥ ७ ॥ हे नानक! केवल परमात्मा ही सब कुछ कर रहा है और वह प्रभु आप ही (हरेक जीव को) अक्ल (समझाता है), आप ही विचारकर (जीवन-युक्ति को) परखता है। वह परमात्मा किसी से दूर नहीं बसता, सबके निकट बसता है। वह प्रभु सदा स्थिर रहनेवाला है, वही सब कौतुक करने-कराने-वाला है, वही प्रशंसनीय है ॥ ८ ॥ १ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ गुर सेवा ते नामे लागा। तिस कउ मिलिआ जिसु मसतकि भागा। तिस कै हिरदै रविआ सोइ। मनु तनु सीतलु निहचलु होइ ॥ १ ॥ ऐसा कीरतनु करि मन मेरे। ईहा ऊहा जो कामि तेरै ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जासु जपत भउ अपदा जाइ। धावत मनूआ आवै ठाइ। जासु जपत फिरि दूखु न लागै। जासु जपत इह हउमै भागै ॥ २ ॥ जासु जपत वसि आवहि पंचा। जासु जपत रिदै अंम्रितु संचा। जासु जपत इह त्रिसना बुझै। जासु जपत हरि दरगह सिझै ॥ ३ ॥ जासु जपत कोटि मिटहि अपराध। जासु जपत हरि होवहि साध। जासु जपत मनु सीतलु होवै। जासु जपत मलु सगली खोवै ॥ ४ ॥ जासु जपत रतनु हरि मिलै। बहुरि न छोडै हरि संगि हिलै। जासु जपत कई बैकुंठ वासु। जासु जपत सुख सहजि निवासु ॥ ५ ॥ जासु जपत इह अगनि न पोहत। जासु जपत इहु कालु न जोहत। जासु जपत तेरा निरमल माथा। जासु जपत सगला दुखु लाथा ॥ ६ ॥ जासु जपत मुसकलु कछू न बनै। जासु जपत सुणि अनहत धुनै। जासु जपत इह निरमल सोइ। जासु जपत कमलु सीधा होइ ॥ ७ ॥ गुरि सुभ द्रिसटि सभ ऊपरि करी। जिस कै हिरदै मंत्रु दे हरी। अखंड कीरतनु तिनि भोजनु चूरा। कहु नानक जिसु सतिगुरु पूरा ॥ ८ ॥ २ ॥

वह मनुष्य ही परमात्मा के नाम में जुड़ता है, जो गुरु की शरण लेता है। (गुरु) उस मनुष्य को मिलता है, जिसके माथे पर भाग्य जाग जाएँ। (फिर) उस मनुष्य के हृदय में वह परमात्मा आ बसता है, और, उसका

मन और शरीर शीतल हो जाता है, विकारों की ओर से स्थिर हो जाता है ।। १ ।। हे मेरे मन ! तू परमात्मा की ऐसी गुणस्तुति करता रह, जो तेरी इस ज़िन्दगी में फिर भी काम आए और परलोक में भी तेरे काम आवे ।। १ ।। रहाउ ।। जिसका नाम जपने से हरेक किस्म का भय दूर हो जाता है, हरेक विपत्ति टल जाती है, जिसका नाम जपने से कोई दुख स्पर्श नहीं कर सकता और भीतर से अहंभावना दूर हो जाती है ।। २ ।। जिसका नाम जपने से (कामादिक) पाँचों विकार काबू आ जाते हैं, आत्मिक जीवन देनेवाला नाम-जल इकट्ठा किया जा सकता है । माया की प्यास बुझ जाती है और परमात्मा के दरबार में कामयाब हो जाते हैं ।। ३ ।। जिसका नाम जपने से (पूर्वकृत) करोड़ों पाप मिट जाते हैं और भले मनुष्य बन जाते हैं, जिसका नाम जपने से (विकारों से) शान्त हो जाता है और अपने भीतर का सारा मैल दूर कर लेता है ।। ४ ।। जिसका जाप करने से मनुष्य को हरि-नाम-रत्न प्राप्त हो जाता है, मनुष्य परमात्मा के साथ इतना घुल-मिल जाता है कि दोबारा नहीं छोड़ता, जिसका नाम जपने से आत्मिक आनन्द मिलता है, आत्मिक स्थिरता में ठिकाना मिल जाता है, और मानो, अनेकों बैकुंठों का निवास प्राप्त हो जाता है।। ५।। (हे भाई ! उस परमात्मा की गुणस्तुति करता रह) जिसका नाम जपने से तृष्णा की आग स्पर्श नहीं कर सकेगी, मौत का भय निकट नहीं आएगा, सर्वत्र तू उज्ज्वल मुख रहेगा और तेरा हरेक किस्म का दुख दूर हो जायगा ।। ६ ।। जिसका नाम-स्मरण करने से आत्मिक आनन्द के गीत की ध्वनि सुनता रहता है, जिसका नाम जपने से मनुष्य का हृदय-कमल (परमात्मा की स्मृति की ओर) लौट पड़ता है, और मनुष्य (लोक-परलोक में) पवित्र शोभा प्राप्त करता है ।। ७ ।। हे नानक ! कह— (हे भाई ! गुरु) जिस मनुष्य के हृदय में परमात्मा के नाम जपने का उपदेश बसाता है, उस मनुष्य पर गुरु ने सबसे अधिक बढ़िया किस्म की कृपा-दृष्टि कर दी । जिस मनुष्य को पूर्णगुरु मिल गया, उसने परमात्मा की निरन्तर गुणस्तुति को अपनी आतमा के लिए स्वादिष्ट भोजन बना लिया ।। ८ ।। २ ।।

।। गउड़ी महला ५ ।। गुर का सबदु रिद अंतरि धारै । पंच जना सिउ संगु निवारै । दस इंद्री करि राखै वासि । ता कै आतमै होइ परगासु ।। १ ।। ऐसी द्रिड़ता ता कै होइ । जा कउ दइआ मइआ प्रभ सोइ ।। १ ।। रहाउ ।। साजनु दुसटु जा कै एक समानै । जेता बोलणु तेता गिआनै । जेता सुनणा तेता नामु । जेता पेखनु तेता धिआनु ।। २ ।। सहजे जागणु सहजे सोइ । सहजे होता जाइ सु होइ । सहजि बैरागु सहजे

ही हसना । सहजे चूप सहजे ही जपना ॥ ३ ॥ सहजे भोजनु सहजे भाउ । सहजे मिटिओ सगल दुराउ । सहजे होआ साधू संगु । सहजि मिलिओ पारब्रहमु निसंगु ॥ ४ ॥ सहजे ग्रिह महि सहजि उदासी । सहजे दुबिधा तन की नासी । जा कै सहजि मनि भइआ अनंदु । ता कउ भेटिआ परमानंदु ॥ ५ ॥ सहजे अंम्रितु पीओ नामु । सहजे कीनो जीअ को दानु । सहज कथा महि आतमु रसिआ । ता कै संगि अबिनासी वसिआ ॥६॥ सहजे आसणु असथिरु भाइआ । सहजे अनहत सबदु वजाइआ । सहजे रुणझुणकारु सुहाइआ । ता कै घरि पारब्रहमु समाइआ ॥७॥ सहजे जा कउ परिओ करमा । सहजे गुरु भेटिओ सचु धरमा । जा कै सहजु भइआ सो जाणै । नानक दास ता कै कुरबाणै ॥ ८ ॥ ३ ॥

वह मनुष्य अपने हृदय में गुरु का शब्द बसाता है, कामादिक पाँचों से अपना साथ हटा लेता है, दसों इन्द्रियों को अपने नियंत्रण में कर लेता है और उसकी आत्मा में प्रकाश हो जाता है ॥ १ ॥ (हे भाई !) जिस मनुष्य पर परमात्मा की दया होती है, उस मनुष्य के हृदय में ऐसा आत्मिक बल पैदा होता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिस मनुष्य को अपने हृदय में मित्र तथा वैरी एक समान लगता है, जितना कुछ वह बोलता है, आत्मिक जीवन की सूझ के बारे में बोलता है, जितना कुछ वह सुनता है, परमात्मा की गुणस्तुति ही सुनता है, जितना कुछ देखता है, परमात्मा में सुरति जोड़ने का कारण बनता है ॥ २ ॥ वह मनुष्य सोते, जागते सदा आत्मिक स्थिरता में टिका रहता है, परमात्मा की रज़ा में जो कुछ होता है वही सही मानता है और आत्मिक स्थिरता में लीन रहता है; कोई दुःख की घटना हो, चाहे ख़ुशी का कारण बने, वह आत्मिक स्थिरता में ही रहता है, यदि वह चुप बैठा है तो भी स्थिरता में है और यदि बोल रहा है तो भी स्थिरता में है ॥ ३ ॥ आत्मिक स्थिरता में टिका हुआ ही वह खाने-पीने का व्यवहार करता है, आत्मिक स्थिरता में ही वह दूसरों से प्रेम का व्यवहार करता है, आत्मिक स्थिरता में टिके रहने से उसके भीतर से सारा कपट-भाव मिट जाता है, आत्मिक स्थिरता में ही उसे गुरु का मिलाप हो जाता है और प्रत्यक्ष रूप से उसे परमात्मा मिल जाता है ॥ ४ ॥ यदि वह घर में है तो भी आत्मिक स्थिरता में है, यदि वह दुनिया से उदास फिरता है तो भी आत्मिक स्थिरता में टिके रहने से, उसके हृदय से मेर-तेर दूर हो जाती है । (हे भाई !) आत्मिक स्थिरता के कारण जिस मनुष्य के मन में आनन्द पैदा होता है, उसे परमात्मा मिल जाता है जो सर्वोपरि आनन्द

का मालिक है ॥५॥ वह मनुष्य आत्मिक स्थिरता में टिककर नाम-अमृत पीता रहता है, इस आत्मिक स्थिरता के प्रभाव से वह (दूसरों को भी) आत्मिक जीवन की देन देता है, आत्मिक स्थिरता पैदा करनेवाली प्रभु की गुणस्तुति की बातों में उसकी आत्मा घुली-मिली रहती है ॥६॥ आत्मिक स्थिरता में उसका सदा स्थिर ठिकाना बना रहता है और उसे वह ठिकाना भला लगता है, आत्मिक स्थिरता में टिककर ही वह अपने भीतर निरन्तर गुणस्तुति की बाणी जाग्रत रखता है, आत्मिक स्थिरता के कारण ही उसके भीतर आत्मिक आनन्द की निरन्तर सुहावनी ध्वनि बनी रहती है, (हे भाई !) उसके हृदय में परमात्मा सदा प्रकट रहता है ॥ ७ ॥ जिस मनुष्य पर परमात्मा की कृपा होती है, वह आत्मिक स्थिरता में टिकता है, उसे गुरु मिलता है, सत्यस्वरूप नाम के स्मरण को वह अपना धर्म बना लेता है। जिस मनुष्य के भीतर यह आत्मिक स्थिरता पैदा होती है, वही मनुष्य उसे समझ सकता है, दास नानक उस (सौभाग्यशाली मनुष्य) पर बलिहारी जाता है ॥ ८ ॥ ३ ॥

॥ गउड़ी महला ५॥ प्रथमे गरभ वास ते टरिआ। पुत्र कलत्र कुटंब संगि जुरिआ। भोजनु अनिक प्रकार बहु कपरे। सरपर गवनु करहिगे बपुरे ॥ १ ॥ कवनु असथानु जो कबहु न टरै। कवनु सबदु जितु दुरमति हरै ॥ १ ॥ रहाउ ॥ इंद्रपुरी महि सरपर मरणा। ब्रहमपुरी निहचलु नही रहणा। सिवपुरी का होइगा काला। त्रै गुण माइआ बिनसि बिताला ॥ २ ॥ गिरि तर धरणि गगन अरु तारे। रवि ससि पवणु पावकु नीरारे। दिनसु रैणि बरत अरु भेदा। सासत सिम्रिति बिनसहिगे बेदा ॥ ३ ॥ तीरथ देव देहुरा पोथी। माला तिलकु सोच पाक होती। धोती डंडउति परसादन भोगा। गवनु करैगो सगलो लोगा ॥ ४ ॥ जाति वरन तुरक अरु हिंदू। पसु पंखी अनिक जोनि जिंदू। सगल पासारु दीसै पासारा। बिनसि जाइगो सगल आकारा ॥ ५ ॥ सहज सिफति भगति ततु गिआना। सदा अनंदु निहचलु सचु थाना। तहा संगति साध गुण रसै। अनभउ नगरु तहा सद वसै ॥ ६ ॥ तह भउ भरमा सोगु न चिंता। आवणु जावणु मिरतु न होता। तह सदा अनंद अनहत आखारे। भगत वसहि कीरतन आधारे ॥ ७ ॥

पारब्रहम का अंतु न पारु। कउणु करै ता का बीचारु। कहु नानक जिसु किरपा करै। निहचल थानु साध संगि तरै ।। ८ ।। ४ ।।

गर्भ (की पीड़ा और जेल) से छुटकारा पाते ही (अज्ञान में फँसकर) जीव पुत्र, स्त्री आदि परिवार के मोह में फँस जाता है, कई प्रकार का खाना खाता है, कई प्रकार के वस्त्र पहनता है, (लेकिन ऐसे व्यक्ति भी) अनाथों के समान ही (जगत् से) चले जाएँगे ।। १ ।। वह कौन सा स्थान है जो सदा अटल रहता है ? वह कौन सा शब्द है, जिसके प्रभाव से दुर्मति दूर हो जाती है ? ।। १ ।। रहाउ ।। इन्द्रपुरी में मौत अवश्य आ जाती है, ब्रह्मा की पुरी भी सदा अटल नहीं रह सकती, शिवपुरी का भी नाश हो जायगा। (यह जगत्) तीन गुणों वाली माया के प्रभाव में सही मार्ग से अलग होकर आत्मिक मौत प्राप्त करता रहता है ।। २ ।। (हे भाई !) पर्वत, वृक्ष, धरती, आकाश और तारे, सूर्य, चन्द्र, हवा, अग्नि, पानी, दिन-रात; व्रत आदि भिन्न-भिन्न प्रकार की मर्यादा; वेद, स्मृतियाँ —यह सब कुछ नष्ट हो जाएँगे ।। ३ ।। तीर्थ, देवगण, मन्दिर (धार्मिक) पुस्तकें; माला, तिलक, पवित्र रसोई, हवन करनेवाले; धोती और दण्डवत-नमस्कार; महलों के भोग-विलास —सारा जगत् ही (आखिर) कूच कर जायगा ।। ४ ।। जात-पात, वर्ण, मुसलमान तथा हिन्दू, पशु, पक्षी, अनेक योनियों के जीव; यह दिखता हुआ जगत्-प्रसार (आखिर) नष्ट हो जायगा ।। ५ ।। (पर, हे भाई !) वह (सर्वोच्च आत्मिक अवस्था-) स्थान सदा स्थिर रहनेवाला है और अटल है और वहाँ सदा ही आनन्द भी है, जहाँ भक्ति हो रही है। जहाँ जगत् के मूल परमात्मा के साथ ऐक्य हो रहा है, वहाँ सत्संगति परमात्मा के गुणों का आनन्द प्राप्त करती है। वहाँ सदा एक ऐसा नगर बसा रहता है, जहाँ किसी किस्म का कोई भय स्पर्श नहीं कर सकता ।। ६ ।। उस (सर्वोच्च आत्मिक अवस्था-) स्थान में कोई डर, कोई भ्रम, कोई दुःख, कोई चिन्ता स्पर्श नहीं कर सकती, वहाँ जन्म-मरण का चक्र नहीं रहता, वहाँ आत्मिक मौत नहीं होती, वहाँ सदा निरन्तर आत्मिक आनन्द के अखाड़े लगे रहते हैं, वहाँ भक्तजन परमात्मा की गुणस्तुति के सहारे बसते हैं ।। ७ ।। उस परमात्मा के गुणों का अन्त नहीं मिल सकता, ओर-छोर नहीं पाया जा सकता। (जगत् में) कोई मनुष्य ऐसा नहीं है जो उसके गुणों का अन्त पाने का विचार कर सके। हे नानक ! कह— जिस मनुष्य पर परमात्मा कृपा करता है, उसे सदा रहनेवाली जगह सत्संगति प्राप्त हो जाती है; सत्संगति में रहकर वह मनुष्य (संसार-समुद्र से) पार उतर जाता है ।। ८ ।। ४ ।।

॥ गउड़ी महला ५ ॥ जो इसु मारे सोई सूरा । जो इसु मारे सोई पूरा । जो इसु मारे तिसहि वडिआई । जो इसु मारे तिस का दुखु जाई ॥ १ ॥ ऐसा कोइ जि दुबिधा मारि गवावै । इसहि मारि राजजोगु कमावै ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जो इसु मारे तिस कउ भउ नाहि । जो इसु मारे सु नामि समाहि । जो इसु मारे तिस की त्रिसना बुझै । जो इसु मारे सु दरगह सिझै ॥ २ ॥ जो इसु मारे सो धनवंता । जो इसु मारे सो पतिवंता । जो इसु मारे सोई जती । जो इसु मारे तिसु होवै गती ॥ ३ ॥ जो इसु मारे तिस का आइआ गनी । जो इसु मारे सु निहचलु धनी । जो इसु मारे सो वडभागा । जो इसु मारे सु अनदिनु जागा ॥ ४ ॥ जो इसु मारे सु जीवन मुकता । जो इसु मारे तिस की निरमल जुगता । जो इसु मारे सोई सुगिआनी । जो इसु मारे सु सहज धिआनी ॥ ५ ॥ इसु मारी बिनु थाइ न परै । कोटि करम जाप तप करै । इसु मारी बिनु जनमु न मिटै । इसु मारी बिनु जम ते नही छुटै ॥ ६ ॥ इसु मारी बिनु गिआनु न होई । इसु मारी बिनु जूठि न धोई । इसु मारी बिनु सभु किछु मैला । इसु मारी बिनु सभु किछु जउला ॥ ७ ॥ जा कउ भए क्रिपाल क्रिपानिधि । तिसु भई खलासी होई सगल सिधि । गुरि दुबिधा जा की है मारी । कहु नानक सो ब्रहम बीचारी ॥ ८ ॥ ५ ॥

(हे भाई !) जो मनुष्य इस मेर-तेर को समाप्त कर लेता है, वही शूरवीर है, वही समस्त गुणों का मालिक है। जो मनुष्य इस दुबिधा को मार लेता है, उसे (सर्वत्र) आदर मिलता है, उसका (हरेक किस्म का) दु:ख दूर हो जाता है ॥ १ ॥ (हे भाई ! जगत् में) ऐसा कोई विरला मनुष्य है, जो अपने भीतर से मेर-तेर समाप्त करता है। जो इस मेर-तेर को मार लेता है, वह गृहस्थ में रहता हुआ ही परमात्मा से ऐक्य पैदा करने का अभ्यासी है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जो मनुष्य इस दुबिधा को समाप्त कर देता है, उसे कोई भय स्पर्श नहीं कर सकता। जो-जो आदमी इसे समाप्त कर लेते हैं, वे परमात्मा के नाम में लीन हो जाते हैं। जो आदमी इस तेर-मेर को अपने भीतर से दूर कर लेता है, उसकी माया की तृष्णा समाप्त हो जाती है, वह परमात्मा के दरबार में सफल हो जाता है ॥ २ ॥ जो मनुष्य दुबिधा को मिटा लेता है, वह नाम-धन का स्वामी बन जाता है, वह प्रतिष्ठा वाला हो जाता है, वही वास्तविक जितेन्द्रिय है, उसे सर्वोच्च

आत्मिक अवस्था प्राप्त हो जाती है ।। ३ ।। जो आदमी दुबिधा को मिटा लेता है, उसका जगत् में आना सफल समझा जाता है, वह माया के आक्रमणों से अविचलित रहता है, वही असली धनवान है। जो आदमी अपने भीतर से मेर-तेर दूर कर लेता है, वह सौभाग्यशाली है, वह प्रतिपल माया के आक्रमणों से सचेत रहता है ।। ४ ।। जो मनुष्य इस दुबिधा को समाप्त कर लेता है, वह लौकिक कार्य-व्यवहार करता हुआ ही विकारों से मुक्त रहता है, उसका आचरण पवित्र होता है, वही मनुष्य परमात्मा के साथ गूढ़ सम्बन्धों वाला है, वह सदा आत्मिक स्थिरता में टिका रहता है ।। ५ ।। इस मेर-तेर को दूर किए बिना कोई मनुष्य परमात्मा की दृष्टि में स्वीकृत नहीं होता, चाहे वह करोड़ों जप-तप आदि कर्म करता रहे। दुबिधा को मिटाए बिना मनुष्यों का जन्मों का चक्र समाप्त नहीं होता, यमों से मुक्ति नहीं होती ।। ६ ।। दुबिधा दूर किए बिना मनुष्य का परमात्मा के साथ गहरा मेल-मिलाप नहीं हो सकता और मन से विकारों की मैल नहीं उतरती। जब तक मनुष्य दुबिधा को समाप्त नहीं करता (वह) जो कुछ भी करता है, मन को और अधिक विकार-ग्रस्त बनाए जाता है और परमात्मा से दूरी बनाए रखता है ।। ७ ।। जिस मनुष्य पर दया का भण्डार परमात्मा दयावान होता है, उसे दुबिधा से मुक्ति मिल जाती है, उसे जीवन में पूर्ण सफलता प्राप्त हो जाती है। हे नानक ! कह— गुरु ने जिस मनुष्य के भीतर से मेर-तेर दूर कर दी, वह परमात्मा के गुणों का विचार करने योग्य हो गया ।। ८ ।। ५ ।।

।। गउड़ी महला ५ ।। हरि सिउ जुरै त सभु को मीतु । हरि सिउ जुरै त निहचलु चीतु । हरि सिउ जुरै न विआपै काढ़ा । हरि सिउ जुरै त होइ निसतारा ।। १ ।। रे मन मेरे तूं हरि सिउ जोरु । काजि तुहारै नाही होरु ।। १ ।। रहाउ ।। वडे वडे जो दुनीआदार । काहू काजि नाही गावार । हरि का दासु नीच कुलु सुणहि । तिस कै संगि खिन महि उधरहि ।। २ ।। कोटि मजन जा कै सुणि नाम । कोटि पूजा जा कै है धिआन । कोटि पुंन सुणि हरि की बाणी । कोटि फला गुर ते बिधि जाणी ।। ३ ।। मन अपुने महि फिरि फिरि चेत । बिनसि जाहि माइआ के हेत । हरि अबिनासी तुमरै संगि । मन मेरे रचु राम कै रंगि ।। ४ ।। जा कै कामि उतरै सभ भूख । जा कै कामि न जोहहि दूत । जा कै कामि तेरा वड गमरु । जा कै कामि होवहि तूं अमरु ।। ५ ।। जा के

चाकर कउ नही डान। जा के चाकर कउ नही बान। जा कै दफतरि पुछै न लेखा। ताकी चाकरी करहु बिसेखा ॥ ६ ॥ जा कै ऊन नाही काहू बात। एकहि आपि अनेकहि भाति। जा की द्रिसटि होइ सदा निहाल। मन मेरे करि ता की घाल॥ ७॥ ना को चतुरु नाही को मूड़ा। ना को हीणु नाही को सूरा। जितु को लाइआ तित ही लागा। सो सेवकु नानक जिसु भागा ॥ ८ ॥ ६ ॥

जब मनुष्य परमात्मा से प्रेम पैदा करता है तो उसे हरेक मनुष्य अपना मित्र दिखता है, तब उसका हृदय स्थिर रहता है, कोई चिन्ता अथवा फ़िक्र उस पर दबाव नहीं डाल सकती, (इस संसार-समुद्र से) उसका उद्धार हो जाता है ॥ १ ॥ हे मेरे मन ! तू अपनी प्रीति परमात्मा के साथ बना (क्योंकि इसके अतिरिक्त) कोई दूसरा प्रयास तेरे किसी काम में नहीं आएगा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जो-जो बड़ी-बड़ी जायदादों के मालिक हैं, उन मूर्खों की (जायदाद) उनके काम नहीं आती। (दूसरी ओर) परमात्मा का भक्त नीच वंश में भी उत्पन्न हुआ तो भी लोग उसकी शिक्षा सुनते हैं और उसकी संगति में रहकर एक पल में बच निकलते हैं ॥ २ ॥ जिस परमत्मा का नाम सुनने में करोड़ों तीर्थ-स्नान आ जाते हैं, जिसका ध्यान करने से करोड़ों देवपूजा आ जाती हैं, जिसकी गुणस्तुति की वाणी सुनने में करोड़ों पुण्य हो जाते हैं, गुरु से उस परमात्मा के साथ मिलाप की विधि सीखने से ये सारे करोड़ों फल प्राप्त हो जाते हैं ॥ ३ ॥ अपने मन में तू सदा परमात्मा को याद रख, माया वाले तेरे सारे ही मोह नष्ट हो जाएँगे। हे मेरे मन ! वह कभी भी नष्ट न होनेवाला परमात्मा तेरे साथ बसता है, तू उस परमात्मा के प्रेम-रंग में सदा जुड़ा रह ॥ ४ ॥ जिसकी सेवा-भक्ति में लगने से सारी भूख दूर हो जाती है और यमदूत देख भी नहीं सकते। जिसकी सेवा-भक्ति के प्रभाव से तेरा (सर्वत्र) बड़ा तेज-प्रताप बन सकता है और तू शाश्वत आत्मिक जीवनवाला बन सकता है ॥ ५ ॥ जिस परमात्मा के सेवक-भक्त को कोई दुख-क्लेश स्पर्श नहीं कर सकता, कोई दोष नहीं चिपट सकता, जिस परमात्मा के दफ़्तर में हिसाब नहीं माँगा जाता (क्योंकि सेवा-भक्ति के प्रभाव से उससे कुकर्म होते ही नहीं) उस परमात्मा की सेवा-भक्ति विशेष रूप से करते रहो ॥ ६ ॥ हे मेरे मन ! जिस परमात्मा के घर में किसी चीज़ की कमी नहीं, जो परमात्मा एक आप ही आप होता हुआ अनेक रूपों में प्रकट हो रहा है, जिस परमात्मा की कृपा-दृष्टि से प्रत्येक जीव प्रसन्न हो जाता है, तू उस परमात्मा की सेवा-भक्ति कर ॥ ७ ॥ हे नानक ! (अपने आप) न कोई मनुष्य बुद्धिमान बन सकता है, न कोई मनुष्य मूर्ख रहता है, न कोई प्रताड़ित

है और न कोई शूरवीर है। हरेक जीव उसी ओर लगा है, जिस ओर परमात्मा ने उसे लगाया हुआ है। जिसका भाग्य जाग पड़ता है, वही उसका सेवक बनता है ॥ ८ ॥ ६ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ बिनु सिमरन जैसे सरप आरजारी। तिउ जीवहि साकत नामु बिसारी ॥ १ ॥ एक निमख जो सिमरन महि जीआ। कोटि दिनस लाख सदा थिरु थीआ ॥१॥ रहाउ॥ बिनु सिमरन ध्रिगु करम करास। काग बतन बिसटा महि वास ॥ २ ॥ बिनु सिमरन भए कूकर काम। साकत बेसुआ पूत निनाम ॥ ३ ॥ बिनु सिमरन जैसे सीङ छतारा। बोलहि कूरु साकत मुखु कारा ॥ ४ ॥ बिनु सिमरन गरधभ की निआई। साकत थान भरिसट फिराही ॥ ५ ॥ बिनु सिमरन कूकर हरकाइआ। साकत लोभी बंधु न पाइआ ॥ ६ ॥ बिनु सिमरन है आतम घाती। साकत नीच तिसु कुलु नही जाती ॥ ७ ॥ जिसु भइआ क्रिपालु तिसु सतसंगि मिलाइआ। कहु नानक गुरि जगतु तराइआ ॥ ८ ॥ ७ ॥

जैसे सर्प की उम्र है, वैसे ही परमात्मा से टूटे हुए मनुष्य (की। वह) परमात्मा का नाम भुलाकर स्मरण के बिना (व्यर्थ ही) जीते हैं ॥ १ ॥ जो एक पलक झपकने के बराबर समय भी परमात्मा के स्मरण में बिताता है, वह, मानों लाखों, करोड़ों दिनों अर्थात् सदा के लिए स्थिर हो जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ प्रभु-स्मरण से खाली रहकर दूसरे काम करने धिक्कार योग्य हैं, जैसे कौए की चोंच गन्दगी में रहती है, वैसे स्मरणहीन मनुष्यों के मुँह (निंदा आदि की) गन्दगी में ही रहते हैं ॥ २ ॥ परमात्मा से टूटे हुए मनुष्य वेश्या स्त्रियों के पुत्रों के समान (निर्लज्ज) हो जाते हैं, जिनके पिता का नाम नहीं बतलाया जा सकता। प्रभु की याद से खाली रहकर मनुष्य कुत्ते जैसे कार्यों में प्रवृत्त रहते हैं ॥ ३ ॥ परमात्मा से टूटे हुए मनुष्य झूठ बोलते हैं, सब ओर मुँह की कालिख ही पाते हैं। परमात्मा की याद से खाली रहकर वे धरती पर भार रूप हैं, जैसे मेंढे के सिर के सींग ॥ ४ ॥ परमात्मा से टूटे हुए मनुष्य गन्दे स्थानों पर फिरते रहते हैं, स्मरण से खाली रहकर वे गधे के समान ही (जीवन बिताते) हैं ॥ ५ ॥ परमात्मा से टूटे हुए मनुष्य लोभ में ग्रसित रहते हैं (उनके मार्ग में, लाखों रुपए कमा कर भी) रोक नहीं लग सकती, स्मरण से खाली होकर वह, मानो, पागल कुत्ते बन जाते हैं ॥ ६ ॥ परमात्मा से टूटा हुआ मनुष्य स्मरण से खाली रहकर अपनी आत्मिक मौत प्राप्त कर लेता है, वह सदा

निम्नस्तरीय कामों की ओर रुचि रखता है, न उसकी उच्च जाति रह जाती है और न उच्च खानदान ।। ७ ।। हे नानक ! कह— जिस मनुष्य पर परमात्मा दयालु हो जाता है, उसे सत्संगति में ला मिला लेता है और इस प्रकार जगत् को गुरु के द्वारा (संसार-समुद्र के विकारों से) पार उतारता है ।। ८ ।। ७ ।।

।। गउड़ी महला ५ ।। गुर कै बचनि मोहि परमगति पाई । गुरि पूरै मेरी पैज रखाई ।। १ ।। गुर कै बचनि धिआइओ मोहि नाउ । गुरपरसादि मोहि मिलिआ थाउ ।। १ ।। रहाउ ।। गुर कै बचनि सुणि रसन वखाणी । गुर किरपा ते अंम्रित मेरी बाणी ।। २ ।। गुर कै बचनि मिटिआ मेरा आपु । गुर की दइआ ते मेरा वड परतापु ।। ३ ।। गुर कै बचनि मिटिआ मेरा भरमु । गुर कै बचनि पेखिओ सभु ब्रहमु ।। ४ ।। गुर कै बचनि कीनो राजु जोगु । गुर कै संगि तरिआ सभु लोगु ।। ५ ।। गुर कै बचनि मेरे कारज सिधि । गुर कै बचनि पाइआ नाउ निधि ।। ६ ।। जिनि जिनि कीनी मेरे गुर की आसा । तिस की कटीऐ जम की फासा ।। ७ ।। गुर कै बचनि जागिआ मेरा करमु । नानक गुरु भेटिआ पारब्रहमु ।। ८ ।। ८ ।।

गुरु के उपदेश पर चलकर मैंने सर्वोच्च आत्मिक अवस्था प्राप्त कर ली है । (लौकिक विकारों के मुकाबले पर) पूर्णगुरु ने मेरी प्रतिष्ठा बचा ली है ।। १ ।। गुरु के उपदेश के प्रभाव से मैंने परमात्मा का नाम-स्मरण किया है, और गुरु की कृपा से मुझे (परमात्मा के चरणों में) स्थान मिल गया है ।। १ ।। रहाउ ।। गुरु के उपदेश के द्वारा (परमात्मा की गुणस्तुति) सुनकर मैं अपनी जीभ से गुणस्तुति उच्चरित करता रहता हूँ, गुरु की कृपा से आत्मिक जीवन देनेवाली गुणस्तुति की अमृतबाणी मेरी (पूंजी) है ।। २ ।। गुरु के उपदेश के प्रभाव से (मेरे भीतर से) मेरा आपा-भाव मिट गया है, गुरु की दया से मेरा बड़ा तेज-प्रताप बन गया है ।। ३ ।। गुरु के उपदेश के अनुसार चलकर मेरी दुबिधा दूर हो गई है और अब मैंने सर्वत्र बसता परमात्मा देख लिया है ।। ४ ।। गुरु के उपदेश के प्रभाव से गृहस्थी में रहकर ही मैं प्रभु-चरणों का मिलाप भोग रहा हूँ । (हे भाई !) गुरु की संगति में (रहकर) सारा जगत् ही (संसार-समुद्र से) पार उतर जाता है ।। ५ ।। गुरु के उपदेश पर चलकर मेरे सारे कार्यों में सफलता हो रही है, गुरु के उपदेश के द्वारा मैंने (परमात्मा का) नाम प्राप्त कर लिया है जो (मेरे लिए) नौ-निधि-भण्डार है ।। ६ ।। जिस-जिस मनुष्य ने मेरे गुरु

की आशा (मन में) की है, उसकी यम की फाँसी काट दी गई है ॥ ७ ॥ हे नानक ! (कह—) गुरु के उपदेश के प्रभाव से मेरा भाग्य जाग पड़ा है, मुझे गुरु मिला है (और गुरु-कृपा से) मुझे परमात्मा मिल गया है ॥ ८ ॥ ८ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ तिसु गुर कउ सिमरउ सासि सासि । गुरु मेरे प्राण सतिगुरु मेरी रासि ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गुर का दरसनु देखि देखि जीवा । गुर के चरण धोइ धोइ पीवा ॥ १ ॥ गुर की रेणु नित मजनु करउ । जनम जनम की हउमै मलु हरउ ॥ २ ॥ तिसु गुर कउ झूलावउ पाखा । महा अगनि ते हाथु दे राखा ॥ ३ ॥ तिसु गुर कै ग्रिहि ढोवउ पाणी । जिसु गुर ते अकल गति जाणी ॥ ४ ॥ तिसु गुर कै ग्रिहि पीसउ नीत । जिसु प्रसादि वैरी सभ मीत ॥ ५ ॥ जिनि गुरि मो कउ दीना जीउ । आपुना दासरा आपे मुलि लीउ ॥ ६ ॥ आपे लाइओ अपना पिआरु । सदा सदा तिसु गुर कउ करी नमसकारु ॥ ७ ॥ कलि कलेस भै भ्रम दुख लाथा । कहु नानक मेरा गुरु समराथा ॥ ८ ॥ ९ ॥

जो गुरु मेरी आत्मा का सहारा है, मेरी (आत्मिक जीवन की) राशि है, उस गुरु को हरेक श्वास के साथ स्मरण करता रहता हूँ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ ज्यों-ज्यों मैं गुरु का दर्शन करता हूँ, मुझे आत्मिक जीवन मिलता है । ज्यों-ज्यों मैं गुरु के चरण धोता हूँ, मुझे (आत्मिक जीवन देनेवाला) नाम-जल मिलता है ॥ १ ॥ गुरु के चरणों की धूलि में मैं सदा स्नान करता हूँ और अनेक जन्मों का (एकत्रित) अहंकार का मैल दूर करता हूँ ॥ २ ॥ जिस गुरु ने मुझे (विकारों की) बड़ी आग से (अपना) हाथ देकर बचाया है, उस गुरु पर मैं पंखा करता हूँ ॥ ३ ॥ जिस गुरु से मैंने उस परमात्मा की सूझ-बूझ प्राप्त की है, जो कभी घटता-बढ़ता नहीं, मैं उस गुरु के घर में पानी ढोता हूँ ॥ ४ ॥ जिस गुरु की कृपा से (पहले) शत्रु (दिखनेवाले अब) सारे मित्र लग रहे हैं, उस गुरु के घर में मैं चक्की पीसता हूँ ॥ ५ ॥ जिस गुरु ने मुझे आत्मिक जीवन दिया है, जिसने मुझे अपना छोटा सा दास बनाकर आप ही मोल ले लिया है ॥ ६ ॥ जिस गुरु ने आप ही मेरे भीतर अपना प्रेम पैदा किया है, उस गुरु को सदा ही सिर झुकाता रहता हूँ ॥ ७ ॥ हे नानक ! कह— मेरा गुरु अनन्त शक्तियों का स्वामी है, उसकी शरण लेने से (मेरे भीतर से) झगड़े, क्लेश, भय, दुबिधा तथा सारे दुःख दूर हो गए हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ मिलु मेरे गोबिंद अपना नामु देहु । नाम बिना ध्रिगु ध्रिगु असनेहु ॥ १ ॥ रहाउ ॥ नाम बिना जो पहिरै खाइ । जिउ कूकरु जूठन महि पाइ ॥ १ ॥ नाम बिना जेता बिउहारु । जिउ मिरतक मिथिआ सीगारु ॥ २ ॥ नामु बिसारि करे रस भोग । सुखु सुपनै नही तन महि रोग ॥ ३ ॥ नामु तिआगि करे अन काज । बिनसि जाइ झूठे सभि पाज ॥४॥ नाम संगि मनि प्रीति न लावै । कोटि करम करतो नरकि जावै ॥ ५ ॥ हरि का नामु जिनि मनि न आराधा । चोर की निआई जमपुरि बाधा ॥ ६ ॥ लाख अडंबर बहुतु बिसथारा । नाम बिना झूठे पासारा ॥ ७ ॥ हरि का नामु सोई जनु लेइ । करि किरपा नानक जिसु देइ ॥ ८ ॥ १० ॥

हे मेरे गोबिन्द ! (मुझे) मिल, (मुझे) अपना नाम दे। नाम के बिना (लौकिक) प्रेम धिक्कार योग्य है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ परमात्मा के नाम की याद के बिना मनुष्य जो कुछ भी पहनता है, जो कुछ भी खाता है, (वह ऐसे है), जैसे कुत्ता जूठन में मुँह मारता फिरता है ॥ १ ॥ परमात्मा का नाम भुलाकर मनुष्य दूसरे जो भी कार्य करता है, (वह ऐसे हैं) जैसे किसी मांसपिंड का शृंगार व्यर्थ है ॥ २ ॥ (जो मनुष्य) परमात्मा का नाम भुलाकर दुनिया के पदार्थ ही भोगता फिरता है, उसे स्वप्न में भी सुख नहीं मिल सकता (पर, इन भोगों से) उसके शरीर में रोग पैदा हो जाते हैं ॥ ३ ॥ (जो मनुष्य) परमात्मा का नाम छोड़कर दूसरे कामकाज करता फिरता है, उसका आत्मिक जीवन नष्ट हो जाता है और उसके (दुनिया वाले) सारे दिखावे व्यर्थ हो जाते हैं ॥ ४ ॥ (जो मनुष्य) अपने मन में परमात्मा से प्रीति नहीं जोड़ता, वह दूसरे करोड़ों काम करता हुआ भी नरक में पहुँचता है ॥ ५ ॥ जिस मनुष्य ने परमात्मा का नाम स्मरण नहीं किया, वह यमपुरी में बँधा रहता है, जैसे कोई चोर (सेंध पर पकड़ा जाकर मार खाता है) ॥ ६ ॥ (दुनिया में इज़्ज़त बनाए रखने के) लाखों ही दिखावे के प्रयास तथा दूसरे तरीके —ये सब परमात्मा के नाम पर बिना व्यर्थ के विस्तार हैं ॥ ७ ॥ (पर,) हे नानक ! वही मनुष्य परमात्मा का नाम-स्मरण करता है, जिसे परमात्मा आप कृपा करके (यह देन) देता है ॥ ८ ॥ १० ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ आदि मधि जो अंति निबाहै । सो साजनु मेरा मनु चाहै ॥ १ ॥ हरि की प्रीति सदा संगि चालै । दइआल पुरख पूरन प्रतिपालै ॥ १ ॥ रहाउ ॥ बिनसत

नाही छोडि न जाइ। जह पेखा तह रहिआ समाइ ॥ २ ॥ सुंदरु सुघड़ु चतुरु जीअ दाता। भाई पूतु पिता प्रभु माता ॥३॥ जीवन प्रान अधार मेरी रासि। प्रीति लाई करि रिदै निवासि ॥ ४ ॥ माइआ सिलक काटी गोपालि। करि अपुना लीनो नदरि निहालि ॥ ५ ॥ सिमरि सिमरि काटे सभि रोग। चरण धिआन सरब सुख भोग ॥ ६ ॥ पूरन पुरखु नवतनु नित बाला। हरि अंतरि बाहरि संगि रखवाला ॥ ७ ॥ कहु नानक हरि हरि पदु चीन। सरबसु नामु भगत कउ दीन ॥ ८ ॥ ११ ॥

(हे भाई!) मेरा मन उस साजन प्रभु को मिलना चाहता है, जो सदा हर समय मनुष्य का साथ देता है ॥१॥ परमात्मा से जोड़ी हुई प्रीति सदा मनुष्य के साथ-साथ चलती है। वह दुनिया भर में सर्वव्यापक तथा सब गुणों का मालिक परमात्मा (अपने सेवक भक्त की सदा) देखभाल करता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मैं तो जिधर देखता हूँ, वह अपार परमात्मा सर्वत्र मौजूद है। न वह कभी मरता है, न ही वह जीवों को छोड़कर कहीं जाता है ॥ २ ॥ परमात्मा सुन्दर स्वरूपवाला है, चतुर है, बुद्धिमान है, प्राणों का देनेवाला है, वही हमारा पुत्र, पिता एवं माँ है ॥ ३ ॥ परमात्मा मेरे जीवन का, मेरी आत्मा का आसरा है, मेरे आत्मिक जीवन की पूंजी है। मैंने उसे हृदय में टिकाकर उससे प्रीति जोड़ी हुई है ॥ ४ ॥ सृष्टि के रक्षक उस प्रभु ने मेरी माया की फाँसी काट दी है। कृपा-दृष्टि से देखकर उसने मुझे अपना बना लिया है ॥ ५ ॥ परमात्मा का नाम सदा स्मरण करके सारे रोग काटे जा सकते हैं। परमात्मा के चरणों में सुरति जोड़नी ही सारे सुख हैं, सारे पदार्थों के भोग हैं ॥ ६ ॥ परमात्मा हरेक जीव के भीतर बसता है, सारे जगत् में सर्वत्र बसता है, हरेक जीव के साथ है और सब जीवों का रक्षक है। परमात्मा सारे गुणों का मालिक है, सब जीवों में व्यापक है, वह नित्य नवीन है, यौवन-सम्पन्न है ॥७॥ हे नानक! कह— परमात्मा अपना नाम अपने भक्त को देता है, (भक्त के लिए उसका नाम दुनिया का) सारा धन-पदार्थ है, (जिसे परमात्मा अपने नाम की देन देता है, वह) परमात्मा के साथ मिलाप की अवस्था को समझ लेता है ॥८॥११॥

रागु गउड़ी माझ महला ५

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ खोजत फिरे असंख अंतु न पारीआ। सेई होए भगत जिना किरपारीआ ॥ १ ॥ हउ वारीआ हरि वारीआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सुणि सुणि पंथु डराउ

बहुतु भै हारीआ । मै तकी ओट संताह लेहु उबारीआ ॥ २ ॥ मोहन लाल अनूप सरब साधारीआ । गुर निवि निवि लागउ पाइ देहु दिखारीआ ॥ ३ ॥ मै कीए मित्र अनेक इकसु बलिहारीआ । सभ गुण किस ही नाहि हरि पूर भंडारीआ ॥४॥ चहु दिसि जपीऐ नाउ सूखि सवारीआ । मै आही ओड़ि तुहारि नानक बलिहारीआ ॥ ५ ॥ गुरि काढिओ भुजा पसारि मोह कूपारीआ । मै जीतिओ जनमु अपारु बहुरि न हारीआ ॥ ६ ॥ मै पाइओ सरब निधानु अकथु कथारीआ । हरि दरगह सोभावंत बाह लुडारीआ ॥ ७ ॥ जन नानक लधा रतनु अमोलु अपारीआ । गुर सेवा भउजलु तरीऐ कहउ पुकारीआ ॥ ८ ॥ १२ ॥

अनगिनत जीव खोजते फिरे हैं, परन्तु किसी ने परमात्मा के गुणों का अन्त नहीं पाया । वही मनुष्य परमात्मा के भक्त बन सकते हैं, जिन पर उसकी कृपा होती है ॥ १ ॥ मैं हरि पर बलिहारी हूँ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ बार-बार यह सुनकर कि जगत्-जीवन का मार्ग भयानक है, मैं बहुत घबराया हुआ था । आख़िर मैंने संतों का आसरा लिया है, (मैं संतों के समक्ष प्रार्थना करता हूँ कि मुझे जीवन-मार्ग के खतरों से) बचा लो ॥ २ ॥ हे मन को मोहित करनेवाले सुन्दर मन ! हे सब जीवों के आसरे प्रभु ! मैं झुक-झुककर गुरु के चरण छूता हूं, (कि मुझे तेरा) दर्शन करा देवे ॥ ३ ॥ मैंने अनेक सगे-सम्बन्धियों को अपना मित्र बनाया । (पर किसी ने साथ नहीं निभाया, अब मैं) एक परमात्मा पर ही बलिहारी जाता हूँ । सारे गुण अन्य किसी में नहीं हैं, एक परमात्मा ही भरे ख़ज़ानों वाला है ॥ ४ ॥ हे नानक ! (कह— हे प्रभु !) चारों दिशाओं में तेरा नाम ही जपा जा रहा है । (जो मनुष्य जपता है, वह) सुख-आनन्द में (रहता है, उसका जीवन) सँवर जाता है । (हे प्रभु !) मैंने तेरा आसरा देखा है, मैं तुझ पर बलिहारी हूँ ॥ ५ ॥ गुरु ने मुझे बाँह फैलाकर मोह के कुएँ से निकाल लिया है, (उसके प्रभाव से) मैंने बहुमूल्य मनुष्य-जन्म (की बाज़ी) जीत ली है, दोबारा मैं (मौत के मुक़ाबले पर) बाज़ी नहीं हारूँगा ॥ ६ ॥ (गुरु की कृपा से) मैंने सारे गुणों का भण्डार वह परमात्मा प्राप्त कर लिया है, जिसकी गुणस्तुति की कहानियाँ व्यक्त नहीं की जा सकतीं । वे उसके दरबार में शोभा प्राप्त कर लेते हैं, वे वहाँ बाँह फैलाकर चलते हैं, (आनन्द में रहते हैं) ॥ ७ ॥ हे दास नानक ! (कह— जिन्होंने गुरु का पल्ला पकड़ा, उन्होंने) परमात्मा का अनन्त कीमती नाम-रत्न प्राप्त कर लिया । (हे भाई !) मैं पुकारकर कहता हूं कि गुरु की शरण लेने से संसार-समुद्र से पार उतरा जा सकता है ॥ ८ ॥ १२ ॥

गउड़ी महला ५

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ नाराइण हरि रंग रंगो । जपि जिहवा हरि एक मंगो ॥ १ ॥ रहाउ ॥ तजि हउमै गुर गिआन भजो । मिलि संगति धुरि करम लिखिओ ॥ १ ॥ जो दीसै सो संगि न गइओ । साकतु मूड़ु लगे पचि मुइओ ॥२॥ मोहन नामु सदा रवि रहिओ । कोटि मधे किनै गुरमुखि लहिओ ॥ ३ ॥ हरि संतन करि नमो नमो । नउनिधि पावहि अतुलु सुखो ॥ ४ ॥ नैन अलोवउ साध जनो । हिरदै गावहु नाम निधो ॥ ५ ॥ काम क्रोध लोभु मोहु तजो । जनम मरन दुहु ते रहिओ ॥ ६ ॥ दूखु अंधेरा घर ते मिटिओ । गुरि गिआनु द्रिड़ाइओ दीप बलिओ ॥ ७ ॥ जिनि सेविआ सो पारि परिओ । जन नानक गुरमुखि जगतु तरिओ ॥८॥ १॥ १३॥

(हे भाई !) अपनी जीभ से परमात्मा का नाम जप, हरि के द्वार से उसका नाम माँग, हरि-परमात्मा के प्रेम-रंग में अपने को रँग ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गुरु के दिए ज्ञान के प्रभाव से अहंकार दूर कर, परमात्मा का नाम-स्मरण कर। जिस मनुष्य के माथे पर परमात्मा के दरबार से कृपा का लेख लिखा जाता है, वह सत्संगति में मिलकर (हरि-नाम जपता है) ॥ १ ॥ जो कुछ गोचर है, वह किसी के साथ नहीं जाता, लेकिन माया में डूबा मूर्ख मनुष्य (इस प्रत्यक्ष माया के प्रेम में) लगकर दुखी होकर आत्मिक मौत प्राप्त करता है ॥ २ ॥ करोड़ों में किसी विरले ने गुरु की शरण लेकर उस मोहन प्रभु का नाम प्राप्त किया है, जो सदा सर्वत्र व्यापक है ॥ ३ ॥ परमात्मा के सेवक संतजनों को सदा नमस्कार करता रह, तू अनन्त सुख पाएगा, तुझे वह नाम मिल जाएगा जो, मानों, धरती के नौ भण्डार हैं ॥ ४ ॥ हे साधु जनो ! अपने हृदय में परमात्मा का नाम गाते रहो, जो सारे सुखों का खजाना है, (मेरी तो प्रार्थना है कि) मैं अपनी आँखों से (उनका) दर्शन करता रहूँ ॥ ५ ॥ (अपने मन से) काम, क्रोध, लोभ तथा मोह दूर करो, (जो मनुष्य इन विकारों को मिटाता है) वह जन्म तथा मरण दोनों के (चक्र) से बच जाता है ॥ ६ ॥ (हे भाई !) गुरु ने जिस मनुष्य के हृदय में परमात्मा के साथ गहरा ऐक्य पैदा कर दिया, उसके भीतर (आत्मिक सूझ का) दीपक जग पड़ता है, उसके हृदय-घर से दुःख तथा अंधेरा मिट जाता है ॥ ७ ॥ हे नानक दास ! (कह—) जिस मनुष्य ने परमात्मा का स्मरण किया, वह संसार-समुद्र से पार उतर गया । गुरु की शरण लेकर जगत् (संसार-समुद्र को) पार कर लेता है ॥८॥१॥१३॥

॥ महला ५ गउड़ी ॥ हरि हरि गुरु गुरु करत भरम गए । मेरै मनि सभि सुख पाइओ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ बलतो जलतो तउ किआ गुर चंदनु सीतलाइओ ॥ १ ॥ अगिआन अंधेरा मिटि गइआ गुर गिआनु दीपाइओ ॥ २ ॥ पावकु सागरु गहरो चरि संतन नाव तराइओ ॥ ३ ॥ ना हम करम न धरम सुच प्रभि गहि भुजा आपाइओ ॥ ४ ॥ भउ खंडनु दुख भंजनो भगति वछल हरि नाइओ ॥ ५ ॥ अनाथह नाथ क्रिपाल दीन संम्रिथ संत ओटाइओ ॥ ६ ॥ निरगुनीआरे की बेनती देहु दरसु हरि राइओ ॥ ७ ॥ नानक सरनि तुहारी ठाकुर सेवकु दुआरै आइओ ॥ ८ ॥ २ ॥ १४ ॥

परमात्मा का नाम स्मरण करते हुए, गुरु, गुरु करते हुए मन की तमाम दुबिधाएँ दूर हो गई हैं और मेरे मन ने सारे ही सुख प्राप्त कर लिए हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (मन विकारों में) जल रहा था, (जब) गुरु का शब्द-रूपी चन्दन (घिसकर इस पर) लगाया तो यह शीतल हो गया ॥ १ ॥ जब गुरु का दिया हुआ ज्ञान (मन में) प्रकाशित हुआ तो (मन से) अज्ञान का अँधेरा दूर हो गया ॥ २ ॥ यह गहरा संसार-समुद्र (विकारों की गर्मी से) आग (ही आग बना पड़ा था,) मैं सत्संगति की बेड़ी (नाव) में चढ़कर इससे पार उतर आया हूँ ॥ ३ ॥ मेरे पास न कोई कर्म, न धर्म और न कोई पवित्रता थी, प्रभु ने मेरी बाँह पकड़कर (आप ही मुझे) अपना (दास) बना लिया है ॥ ४ ॥ भक्ति के साथ प्रेम करनेवाले हरि का वह नाम जो हरेक प्रकार का भय तथा दुःख नष्ट करने में समर्थ है, (मुझे वह उसकी कृपा से मिल गया है) ॥ ५ ॥ हे अनाथों के नाथ ! हे दीनदयालु, हे संतों के सहारे, प्रभु बादशाह ! मुझ गुणहीन की प्रार्थना सुन, मुझे अपना दर्शन दे ॥ ६-७ ॥ हे नानक दास ! (प्रार्थना कर, और कह—) हे ठाकुर ! मैं तेरा सेवक तेरी शरणागत हूँ, मैं तेरे द्वार पर आया हूँ ॥ ८ ॥ २ ॥ १४ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ रंग संगि बिखिआ के भोगा इन संगि अंध न जानी ॥ १ ॥ हउ संचउ हउ खाटता सगली अवध बिहानी ॥ रहाउ ॥ हउ सूरा परधानु हउ को नाही मुझहि समानी ॥ २ ॥ जोबनवंत अचार कुलीना मन महि होइ गुमानी ॥ ३ ॥ जिउ उलझाइओ बाध बुधि का मरतिआ नही बिसरानी ॥ ४ ॥ भाई मीत बंधप सखे पाछे तिन हू कउ संपानी ॥ ५ ॥ जितु लागो मनु बासना अंति साई प्रगटानी ॥ ६ ॥

अहंबुधि सुचि करम करि इह बंधन बंधानी ॥७॥ दइआल पुरख किरपा करहु नानक दास दसानी ॥ ८ ॥ ३ ॥ १५ ॥ ४४ ॥ जुमला

आनन्दपूर्वक माया के विषय-भोग (मनुष्य भोगता रहता) है, (माया के मोह में) अन्धा हुआ मनुष्य इन भोगों में डूबा हुआ समझता नहीं (कि उम्र बीत रही है) ॥ १ ॥ मैं माया जोड़ रहा हूँ, मैं माया प्राप्त करता हूँ, इन ख्यालों में (अन्धे मनुष्य की) उम्र बीत जाती है ॥ रहाउ ॥ मैं शूरवीर हूँ, मैं चौधरी हूँ, कोई मेरे बराबर का नहीं है, मैं सुन्दर हूँ, मैं ऊँचे आचरण वाला हूँ, मैं ऊँची जाति से हूँ— (माया के मोह में अन्धा हुआ मनुष्य अपने) मन में इस प्रकार अहंकारी होता है ॥ २-३ ॥ (माया के मोह में) मारी हुई बुद्धिवाला मनुष्य (जवानी के समय माया-मोह में) फँसा रहता है, मरने के समय भी उसे यह माया नहीं भूलती; भाई, मित्र, रिश्तेदार, साथी, मरने के पश्चात् आखिर इन्हें ही (अपनी तमाम उम्र की इकट्ठी की हुई माया) सौंप जाता है ॥ ४-५ ॥ जिस वासना में मनुष्य का मन लगा रहता है, आखिर मौत के समय वही वासना अपना दबाव डालती है ॥ ६ ॥ अहंकार के सहारे (शारीरिक पवित्रता तथा तीर्थस्नान आदि सोचे हुए धार्मिक) कर्म कर-करके इनके बन्धनों में ही लगा रहता है ॥ ७ ॥ हे नानक ! (प्रार्थना कर और कह—) हे दया के घर, सर्व-व्यापक प्रभु ! मुझ पर कृपा कर, मुझे अपने दासों का दास (बनाए रख, और मुझे इन अहंकार के बन्धनों से बचाए रख) ॥ ८ ॥ ३ ॥ १५ ॥ ४४ ॥

१ ओं सतिनामु करता पुरखु गुर प्रसादि ॥ रागु गउड़ी पूरबी छंत महला १ ॥ मुंध रैणि दुहेलड़ीआ जीउ नीद न आवै । सा धन दुबलीआ जीउ पिर कै हावै । धन थीई दुबलि कंत हावै केव नैणी देखए । सीगार मिठ रस भोग भोजन सभु झूठु कितै न लेखए । मै मत जोबनि गरबि गाली दुधा थणी न आवए । नानक साधन मिलै मिलाई बिनु पिर नीद न आवए ॥ १ ॥ मुंध निमानड़ीआ जीउ बिनु धनी पिआरे । किउ सुखु पावैगी बिनु उरधारे । नाह बिनु घर वासु नाही पुछहु सखी सहेलीआ । बिनु नाम प्रीति पिआरु नाही वसहि साचि सुहेलीआ । सचु मनि सजन संतोखि मेला गुरमती सहु जाणिआ । नानक नामु न छोडै साधन नामि सहजि समाणीआ ॥ २ ॥ मिलु सखी सहेलड़ीहो हम पिरु रावेहा । गुर पुछि लिखउगी जीउ सबदि

सनेहा । सबदु साचा गुरि दिखाइआ मनमुखी पछुताणीआ । निकसि जातउ रहै असथिरु जामि सचु पछाणिआ । साच की मति सदा नउतन सबदि नेहु नवेलओ । नानक नदरी सहजि साचा मिलहु सखी सहेलीहो ।। ३ ।। मेरी इछ पुनी जीउ हम घरि साजनु आइआ । मिलि वरु नारी मंगलु गाइआ । गुण गाइ मंगलु प्रेमि रहसी मुंध मनि ओमाहओ । साजन रहंसे दुसट विआपे साचु जपि सचु लाहओ । कर जोड़ि साधन करै बिनती रैणि दिनु रसि भिनीआ । नानक पिरु धन करहि रलीआ इछ मेरी पुंनीआ ।। ४ ।। १ ।।

पति के वियोग की आहें भरती मुग्धा स्त्री की रात्रि दुःख में बीतती है, उसे नींद नहीं आती और आहें भरते हुए वह कमजोर होती जाती है। स्त्री पति (के वियोग) की वेदना में कमज़ोर होती जाती है, (वह प्रतिदिन सोचती है कि) वह किसी तरह (अपने पति को) आँखों से देखे। उसे शृंगार तथा मीठे रस, स्वादिष्ट भोजनों के भोग— सब कुछ फीका लगता है, उसे यह सब कुछ निकम्मा लगता है। जिस स्त्री को यौवनावस्था में अहंकार ने गला दिया हो, जो जवानी के नशे में इस प्रकार मस्त हो जैसे शराब की मस्ती; उसे सौभाग्योदय वाली अवस्था प्राप्त नहीं होती। हे नानक! (दुनियावी अभिमान में मस्त रहनेवाली स्त्री को) सारी जिन्दगी-रूपी रात्रि में आत्मिक शान्ति प्राप्त नहीं होती। वह तभी (प्रभु-पति को) मिल सकती है, जब (गुरु) मिला देवे।। १ ।। प्रिय पति (प्रभु) के मिलाप के बिना जवान स्त्री (जीवात्मा) उदास रहती है। यदि पति उसे अपनी छाती से न लगाए तो उसे सुख प्रतीत नहीं हो सकता। पति के बिना घर का वास (सतलोक-वास) नहीं हो सकता। (यदि) दूसरी सहेलियों से पूछोगे (तो वे भी यही उत्तर देंगी)। प्यारे पति-प्रभु के मिलाप के बिना आत्मा-वधू निराश ही रहती है। जब तक वह पति-प्रभु को अपने हृदय में नहीं बसाती, उसे आत्मिक आनन्द नहीं मिल सकता। पति-प्रभु के मिलाप के बिना हृदय में आत्मिक गुणों का वास नहीं हो सकता। सत्संगिनी सहेलियों को पूछकर देखो, (यही उत्तर देंगी कि) प्रभु का नाम जपे बिना उसकी प्रीति या उसका प्रेम प्राप्त नहीं हो सकता। वही आत्मा-बधुएँ सुखी रह सकती हैं, जो सत्यस्वरूप प्रभु के नाम में जुड़ती हैं। गुरु की शिक्षा लेकर जिस जीव-स्त्री के मन में सत्यस्वरूप प्रभु का नाम बसता है, जो संतोष में (जीवन बिताती है) उसे प्रभु साजन का मिलाप प्राप्त हो जाता है, वह पति-प्रभु को (अपने साथ-साथ) जान लेती है। हे नानक! वह जीव-स्त्री प्रभु का नाम (जपना) नहीं छोड़ती, प्रभु

के नाम में जुड़कर वह आत्मिक स्थिरता में स्थित रहती है ॥ २ ॥ हे सहेलियो ! आओ मिलकर बैठो, हम पति-प्रभु का भजन करें। गुरु की शिक्षा लेकर, हे सहेलियो ! मैं गुरु के शब्द के द्वारा पति-प्रभु को सन्देश भेजूंगी। (जिस जीव-स्त्री को) गुरु ने अपना शब्द (मार्ग-दर्शन) दिया, उसने उसे सत्यस्वरूप परमात्मा दिखा दिया, लेकिन स्वेच्छाचारिणी स्त्रियाँ पछताती रहती हैं। जब उसने सत्यस्वरूप प्रभु को (साथ-साथ) पहचान लिया, तब उसका बाहर दौड़ता मन टिक जाता है। जिस जीव-स्त्री के भीतर सत्यस्वरूप प्रभु टिक जाता है, उसकी मति नित्य नवीन रहती है। शब्द के प्रभाव से उसके भीतर प्रभु के लिए नित्य नवीन प्रेम बना रहता है। हे नानक ! सत्यस्वरूप प्रभु अपनी कृपा-दृष्टि से उस जीव-स्त्री को आत्मिक स्थिरता में टिकाए रखता है। हे सत्संगिनी सहेलियो, आओ मिलकर बैठें (और प्रभु की) गुणस्तुति करें ॥ ३ ॥ हे सहेलियो ! मेरी मनोकामना पूर्ण हो गई है, मेरे हृदय-घर में साजन परमात्मा आ बसा है। जिस जीव-स्त्री को पति-प्रभु मिल जाता है, उसकी ज्ञानेन्द्रियाँ खुशी का गीत गाती हैं। प्रभु की गुणस्तुति का गीत गाकर जीव-स्त्री प्रभु-प्रेम (के उल्लास) में खिल पड़ती है, उसके मन में चाव का उल्लास पैदा होता है। उसके भीतर शुभ गुण प्रफुल्लित होते हैं, दुष्ट विकार दबाव के नीचे आ जाते हैं। सत्यस्वरूप नाम जप-जपकर उसे अटल आत्मिक जीवन का लाभ मिल जाता है। वह जीव-स्त्री दिन-रात प्रभु के प्रेम-रस में भीगी हुई हाथ जोड़कर प्रभु-पति के द्वार पर प्रार्थनाएँ करती रहती है। हे नानक ! प्रभु-पति तथा वह जीव-स्त्री मिलकर आत्मिक आनन्द भोगते हैं। हे सहेलियो ! मेरी मनोकामना पूर्ण हो गई है ॥ ४ ॥ १ ॥

॥ गउड़ी छंत महला १ ॥ सुणि नाह प्रभू जीउ एकलड़ी बन माहे। किउ धीरैगी नाह बिना प्रभ वेपरवाहे। धन नाह बाझहु रहि न साकै बिखम रैणि घणेरीआ। नह नीद आवै प्रेमु भावै सुणि बेनंती मेरीआ। बाझहु पिआरे कोइ न सारे एकलड़ी कुरलाए। नानक सा धन मिलै मिलाई बिनु प्रीतम दुखु पाए ॥ १ ॥ पिरि छोडिअड़ी जीउ कवणु मिलावै। रसि प्रेमि मिली जीउ सबदि सुहावै। सबदे सुहावै ता पति पावै दीपक देह उजारै। सुणि सखी सहेली साचि सुहेली साचे के गुण सारै। सतिगुरि मेली ता पिरि रावी बिगसी अंम्रित बाणी। नानक सा धन ता पिरु रावै जा तिस कै मनि भाणी ॥ २ ॥ माइआ मोहणी नीघरीआ जीउ कूड़ि मुठी कूड़िआरे। किउ खूलै गल

जेवड़ीआ जीउ बिनु गुर अति पिआरे। हरि प्रीति पिआरे सबदि वीचारे तिस ही का सो होवै। पुंन दान अनेक नावण किउ अंतर मलु धोवै। नाम बिना गति कोइ न पावै हठि निग्रहि बेबाणै। नानक सच घरु सबदि सिञापै दुबिधा महलु कि जाणै ॥ ३ ॥ तेरा नामु सचा जीउ सबदु सचा वीचारो। तेरा महलु सचा जीउ नामु सचा वापारो। नाम का वापारु मीठा भगति लाहा अनदिनो। तिसु बाझु वखरु कोइ न सूझै नामु लेवहु खिनु खिनो। परखि लेखा नदरि साची करमि पूरै पाइआ। नानक नामु महा रसु मीठा गुरि पूरै सचु पाइआ ॥ ४ ॥ २ ॥

हे प्रभु-पति ! (मेरी प्रार्थना) सुनो। मैं जीव-स्त्री इस संसार-जंगल में अकेली हूँ। हे बेपरवाह प्रभु ! तुझ पति के बिना मेरी आत्मा धैर्य नहीं धारण कर सकती, (प्रभु के बिना) जिन्दगी की रात्रि बहुत ही दुबिधापूर्ण बीतती है। हे पति-प्रभु ! मेरी प्रार्थना सुन, मुझे तेरा प्रेम अच्छा लगता है, (तेरे वियोग में) मुझे शान्ति नहीं आ सकती। प्यारे प्रभु-पति के बिना कोई बात नहीं पूछता। एक अकेली ही (संसार-जंगल में) रोती है, (पर) हे नानक ! जीव-स्त्री तभी प्रभु-पति को मिल सकती है, यदि उसे गुरु मिला देवे, नहीं तो प्रियतम-प्रभु के बिना दुःख ही दुःख सहती है ॥ १ ॥ हे सहेली ! जिसे पति ने भुला दिया, उसे दूसरा कौन मना सकता है ? हे सहेली ! जो जीव-स्त्री गुरु के ज्ञान के द्वारा प्रभु के नाम-रस में, प्रेम-रस में जुड़ती है, वह (भीतर से) सुन्दर हो जाती है। जब गुरु के शब्द के द्वारा जीव-स्त्री सुन्दर हो जाती है, तब (लोक-परलोक में) प्रतिष्ठा पाती है; ज्ञान का दीपक इसके शरीर में प्रकाश कर देता है। हे सहेलियो, सुन ! जो जीव-स्त्री सदा स्थिर रहनेवाले प्रभु के गुण गाती है, वह सत्यस्वरूप प्रभु में जुड़कर सुखी हो जाती है। जब सतिगुरु ने उसे अपने शब्द में जोड़ा, तब प्रभु-पति ने उसे अपने चरणों में मिला लिया, आत्मिक जीवन देनेवाली बाणी के प्रभाव से उसका हृदय-कमल खिल जाता है। हे नानक ! जीव-स्त्री तब ही प्रभु-पति को मिलती है, जब (गुरु के शब्द के द्वारा) यह प्रभु-पति के मन में प्यारी लगती है ॥ २ ॥ हे सहेली ! जिस जीव-स्त्री को मोहिनी-माया ने मोह लिया, जिसे नाशवन्त पदार्थों के प्रेम ने ठग लिया, वह नश्वर पदार्थों के व्यापार में लग गई। उसके गले की यह फाँसी अति प्यारे गुरु (की सहायता) के बिना खुल नहीं सकती। जो व्यक्ति प्रभु से प्रीति करता है, गुरु के शब्द के द्वारा प्रभु के गुणों को विचारता है, वह प्रभु का सेवक हो जाता है। अनेकों पुण्यदान, तीर्थस्नान

करते हुए कोई जीव अपने भीतर की (विकारों की) मैल धो नहीं सकता। हठपूर्वक इन्द्रियों को रोकने का यत्न करके जंगल में जा बैठने से कोई मनुष्य उच्च आत्मिक अवस्था प्राप्त नहीं कर सकता, यदि वह परमात्मा का नाम नहीं स्मरण करता। हे नानक! सत्यस्वरूप प्रभु का दरबार गुरु के शब्द के द्वारा ही पहचाना जा सकता है। प्रभु के अतिरिक्त किसी दूसरे आसरे से उस दरबार को नहीं पाया जा सकता॥ ३॥ हे प्रभुजी! तेरा नाम सत्यस्वरूप है, तेरी गुणस्तुति की वाणी अटल है, तेरे गुणों का विचार स्थिर (कर्म) है। तेरा दरबार सदा स्थिर है, तेरा नाम तथा तेरे नाम का व्यापार सदा साथ निभानेवाला व्यापार है। परमात्मा के नाम का व्यापार स्वादिष्ट है, भक्ति के व्यापार से सदा लाभ बढ़ता रहता है। प्रभु के नाम के अतिरिक्त दूसरा कोई ऐसा सौदा नहीं जो सदा लाभ ही दे। हे भाई! सदा क्षण-क्षण, प्रतिपल नाम जपो। जिस मनुष्य ने नाम-व्यापार के लेखे की परख की, उसपर प्रभु की अटूट कृपा-दृष्टि हुई, प्रभु की पूर्ण कृपा से उसने नाम-सौदा प्राप्त कर लिया। हे नानक! प्रभु का नाम सत्यस्वरूप और बहुत ही मीठे स्वाद वाला पदार्थ है, पूर्णगुरु के द्वारा यह पदार्थ मिलता है॥ ४॥ २॥

रागु गउड़ी पूरबी छंत महला ३

१ ओं सतिनामु करता पुरखु गुर प्रसादि॥ साधन बिनउ करे जीउ हरि के गुण सारे। खिनु पलु रहि न सकै जीउ बिनु हरि पिआरे। बिनु हरि पिआरे रहि न साकै गुर बिनु महलु न पाईऐ। जो गुरु कहै सोई परु कीजै तिसना अगनि बुझाईऐ। हरि साचा सोई तिसु बिनु अवरु न कोई बिनु सेविऐ सुखु न पाए। नानक साधन मिलै मिलाई जिस नो आपि मिलाए॥ १॥ धन रैणि सुहेलड़ीए जीउ हरि सिउ चितु लाए। सतिगुरु सेवे भाउ करे जीउ विचहु आपु गवाए। विचहु आपु गवाए हरि गुण गाए अनदिनु लागा भाओ। सुणि सखी सहेली जीअ की मेली गुर कै सबदि समाओ। हरिगुण सारी ता कंत पिआरी नामे धरी पिआरो। नानक कामणि नाह पिआरी राम नामु गलि हारो॥ २॥ धन एकलड़ी जीउ बिनु नाह पिआरे। दूजै भाइ मुठी जीउ बिनु गुरसबद करारे। बिनु सबद पिआरे कउणु दुतरु तारे माइआ मोहि खुआई। कूड़ि विगुती ता पिरि मुती साधन

महलु न पाई। गुरसबदे राती सहजे माती अनदिनु रहै समाए। नानक कामणि सदा रंगि राती हरि जीउ आपि मिलाए॥ ३॥ ता मिलीऐ हरि मेले जीउ हरि बिनु कवणु मिलाए। बिनु गुर प्रीतम आपणे जीउ कउणु भरमु चुकाए। गुरु भरमु चुकाए इउ मिलीऐ माए ता साधन सुखु पाए। गुर सेवा बिनु घोर अंधारु बिनु गुर मगु न पाए। कामणि रंगि राती सहजे माती गुर कै सबदि वीचारे। नानक कामणि हरि वरु पाइआ गुर कै भाइ पिआरे॥ ४॥ १॥

(जिस जीव-स्त्री के हृदय में प्रभु-मिलाप की इच्छा पैदा हो जाती है, वह) जीव-स्त्री प्रार्थना करती है और परमात्मा के गुण सँभालती है, प्यारे परमात्मा के बिना वह क्षणभर, एक पलभर नहीं रह सकती। प्यारे परमात्मा के दर्शन के बिना वह नहीं रह सकती, लेकिन परमात्मा का ठिकाना गुरु के बिना नहीं मिल सकता। जो गुरु शिक्षा देता है यदि उसे अच्छी तरह अपनाया जाय तो (मन से) तृष्णा की अग्नि बुझ जाती है। एक परमात्मा ही सदा रहनेवाला है, उसके अतिरिक्त (जगत् में) दूसरा कोई (सदा साथ निभानेवाला) नहीं है, उसकी शरण लिए बिना जीव-स्त्री सुख नहीं प्राप्त कर सकती। हे नानक! वह जीव-स्त्री (गुरु की) मिलाई हुई (प्रभु-चरणों में) मिल सकती है, जिसे प्रभु आप कृपा करके मिला ले॥ १॥ जो जीव-स्त्री परमात्मा (के चरणों) से अपना चित्त जोड़े रखती है, उस जीव-स्त्री की रात्रि शान्त बीतती है, वह जीव-स्त्री गुरु की शरण लेती है, गुरु से प्रेम करती है और अपने भीतर से अहंकार दूर करती है। जो जीव-स्त्री अपने भीतर से आपा-भाव दूर करती है और परमात्मा के गुण गाती रहती है, प्रभु-चरणों से उसका हरवक्त प्रेम बना रहता है। परमात्मा को मिल चुकी (सत्संगिनी) सखियों-सहेलियों से (गुरु का शब्द) सुनकर उसमें अपनी लीनता हुई रहती है। जो जीव-स्त्री परमात्मा के नाम में प्रेम उपजाती है, परमात्मा के गुण (अपने भीतर) सँभालती है, वह परमात्मा-पति की प्रियतमा बन जाती है। हे नानक! जिस जीव-स्त्री के गले में परमात्मा का नाम-हार पड़ा रहता है, वह जीव-स्त्री परमात्मा की प्यारी हो जाती है॥ २॥ जो जीव-स्त्री प्यारे पति-प्रभु के बिना अकेली है, वह गुरु के सहारा देनेवाले शब्द के बिना दूसरे प्रेम में ठगी जा रही है। गुरु के शब्द के बिना दूसरा कोई नहीं जो उसे दुस्तर (संसार-सागर से) पार उतार सकता है, वह माया के मोह में (फंसी) दुखी होती रहती है। जब जीव-स्त्री झूठे मोह में दुखी होती है, तब (जानो कि) पति-प्रभु की ओर से परित्यक्ता पड़ी हुई है, वह जीव-स्त्री

परमात्मा-पति का ठिकाना नहीं प्राप्त कर सकती। जो जीव-स्त्री गुरु के शब्द में रँगी रहती है, आत्मिक स्थिरता में मस्त रहती है, वह हर समय (प्रभु-चरणों में) लीन रहती है। हे नानक! वह जीव-स्त्री सदा (प्रभु-पति के) प्रेम-रंग में रँगी रहती है, उसे परमात्मा आप (अपने चरणों में) मिलाए रखता है ।। ३ ।। हे आत्मा! (प्रभु-चरणों में) तभी मिला जा सकता है यदि प्रभु आप ही मिला ले। परमात्मा के बिना (उसके चरणों में) दूसरा और कौन मिला सकता है? (क्योंकि), हे आत्मा! अपने प्रियतम गुरु के बिना दूसरा कोई (हमारे मन की) दुबिधा को दूर नहीं कर सकता। हे माँ! यदि गुरु (जीव-स्त्री के मन की) दुबिधा को दूर कर देवे तो इस प्रकार (प्रभु-चरणों में) मिला जा सकता है, तब ही जीव-स्त्री आत्मिक आनन्द प्राप्त करती है। गुरु की शरण लिए बिना उसे मार्ग नहीं मिल सकता। हे नानक! जो जीव-स्त्री गुरु के शब्द के प्रभाव से अपने को चिन्तन-मण्डल में टिकाती है, वह प्रभु के प्रेम-रंग में रँगी रहती है और आत्मिक स्थिरता में मस्त रहती है। गुरु के प्रेम में टिकने से वह जीव-स्त्री प्रभु-पति को मिल सकती है ।। ४ ।। १ ।।

।। गउड़ी महला ३ ।। पिर बिनु खरी निमाणी जीउ बिनु पिर किउ जीवा मेरी माई। पिर बिनु नीद न आवै जीउ कापड़ु तनि न सुहाई। कापरु तनि सुहावै जा पिर भावै गुरमती चितु लाईऐ। सदा सुहागणि जा सतिगुरु सेवे गुर कै अंकि समाईऐ। गुर सबदै मेला ता पिरु रावी लाहा नामु संसारे। नानक कामणि नाह पिआरी जा हरि के गुण सारे ।। १ ।। साधन रंगु माणे जीउ आपणे नालि पिआरे। अहिनिसि रंगि राती जीउ गुर सबदु वीचारे। गुर सबदु वीचारे हउमै मारे इन बिधि मिलहु पिआरे। साधन सोहागणि सदा रंगि राती साचै नामि पिआरे। अपुने गुर मिलि रहीऐ अंम्रितु गहीऐ दुबिधा मारि निवारे। नानक कामणि हरि वरु पाइआ सगले दूख विसारे ।। २ ।। कामणि पिरहु भुली जीउ माइआ मोहि पिआरे। झूठी झूठि लगी जीउ कूड़ि मुठी कूड़िआरे। कूड़ु निवारे गुरमति सारे जूऐ जनमु न हारे। गुर सबदु सेवे सचि समावै विचहु हउमै मारे। हरि का नामु रिदै वसाए ऐसा करे सीगारो। नानक कामणि सहजि समाणी जिसु साचा नामु अधारो ।। ३ ।। मिलु मेरे प्रीतमा जीउ तुधु बिनु खरी निमाणी। मै नैणी नीद

न आवै जीउ भावै अंनु न पाणी। पाणी अंनु न भावै मरीऐ हावै बिनु पिर किउ सुखु पाईऐ। गुर आगै करउ बिनंती जे गुर भावै जिउ मिलै तिवै मिलाईऐ। आपे मेलि लए सुखदाता आपि मिलिआ घरि आए। नानक कामणि सदा सुहागणि ना पिरु मरै न जाए ॥ ४ ॥ २ ॥

हे मेरी माँ ! पति-प्रभु के मिलाप के बिना मेरी आत्मा बहुत दरिद्र सी रहती है, प्रभु-पति के मेल के बिना मेरे भीतर आत्मिक जीवन नहीं आ सकता। प्रभु-पति के बिना मेरे भीतर शान्ति नहीं आती, मुझे अपने शरीर पर कोई कपड़ा नहीं भला लगता। कपड़ा शरीर पर तब ही भला लगता है, जब मैं प्रभु-पति को भली लगूँ (पर, हे माँ !) गुरु की शिक्षा पर चलने से ही प्रभु में चित्त जुड़ सकता है। जब जीव-स्त्री गुरु की शरण लेती है, तब सदा के लिए भाग्यशालिनी बन जाती है। (इसलिए) गुरु की गोद में टिके रहना चाहिए। जब गुरु के शब्द में (मेरा चित्त) जुड़ता है, तब मैं प्रभु-पति को मिल पड़ती हूँ। प्रभु का नाम ही जगत् में (असल) कमाई है। हे नानक ! जीव-स्त्री जब परमात्मा के गुण अपने हृदय में बसाती है, तब वह प्रभु-पति को प्यारी लगती है ॥ १ ॥ हे मेरी माँ ! जो जीव-स्त्री गुरु के शब्द को अपने मस्तिष्क में टिकाती है, वह दिन-रात्रि प्रभु-पति के प्रेम-रंग में रँगी रहती है, वह जीव-स्त्री अपने प्रभु-पति के मिलाप में आत्मिक आनन्द प्राप्त करती है, (क्योंकि) जो गुरु के शब्द को मस्तिष्क में सँभालती है, वह अपने भीतर से अहंकार दूर कर लेती है। (हे सत्संगिनी सहेलियो ! तुम भी) इस प्रकार प्रभु-प्यारे को मिलो। वह जीव-स्त्री सदा भाग्यों वाली है, सदा प्रभु-पति के प्रेम-रंग में में रँगी रहती है, जो सत्यस्वरूप प्रभु के नाम में प्रेम करती है। (हे सहेलियो !) अपने गुरु को मिले रहना चाहिए, (गुरु से ही) आत्मिक जीवन देनेवाला नाम-जल लिया जा सकता है, (जिसे यह नाम-जल मिल जाता है, वह अपने भीतर से) मेरे-तेरे की भावना को समाप्त कर देती है। हे नानक ! उस जीव-स्त्री ने पति-प्रभु का मिलाप प्राप्त कर लिया, उसने सारे दुःख भुला लिए ॥ २ ॥ (हे माँ !) जो जीव-स्त्री प्रभु-पति (की स्मृति) से खाली रह जाती है, वह माया के मोह में प्यार करने लगती है। वह झूठे तथा मिथ्या पदार्थों की वनजारिन झूठे मोह में लगी रहती है, मिथ्या मोह में ठगी जाती है। परन्तु जो जीव-स्त्री गुरु की शिक्षा को (अपने हृदय में) सँभालती है, वह झूठे मोह को (अपने भीतर से) दूर कर लेती है, (और इस प्रकार) अपना जन्म व्यर्थ नहीं खोती। वह जीव-स्त्री गुरु के शब्द को सँभालती है, सत्यस्वरूप प्रभु में लीन हो जाती है और अपने भीतर से अहंकार को समाप्त कर डालती है, वह परमात्मा का नाम

अपने हृदय में बसा लेती है— वह ऐसा आत्मिक शृंगार करती है। हे नानक! सत्यस्वरूप परमात्मा का नाम जिस जीव-स्त्री का जीवन-सहारा है, वह जीव-स्त्री आत्मिक स्थिरता में टिकी रहती है ॥ ३ ॥ हे मेरे प्रियतम प्रभु! मुझे मिल! तेरे बिना मैं व्याकुल हूँ। तेरे बिना मेरी आँखों में नींद नहीं आती, मुझे न अन्न अच्छा लगता है और न पानी। हे माँ! (प्रियतम के बिछोह में) अन्न-पानी अच्छा नहीं लगता, आहों में आत्मा व्याकुल होती है, प्रभु-पति के बिना आत्मिक आनन्द प्राप्त नहीं होता। मैं गुरु के समक्ष प्रार्थना करती हूँ— हे गुरु! यदि तुझे मेरी प्रार्थना अच्छी लगे तो जैसे हो सके मुझे (प्रियतम-प्रभु) मिला। सारे सुखों का दाता प्रभु-प्रियतम (जिसे चाहता है) आप ही मिला लेता है, उसके हृदय-घर में आप ही आकर मिल पड़ता है। हे नानक! वह जीव-स्त्री सदा के लिए सौभाग्यशालिनी हो जाती है, क्योंकि उसका (यह प्रभु-)पति न कभी मरता है न उससे बिछुड़ता है ॥ ४ ॥ २ ॥

॥ गउड़ी महला ३ ॥ कामणि हरि रसि बेधी जीउ हरि कै सहजि सुभाए। मनु मोहनि मोहि लीआ जीउ दुबिधा सहजि समाए। दुबिधा सहजि समाए कामणि वरु पाए गुरमती रंगु लाए। इहु सरीरु कूड़ि कुसति भरिआ गल ताई पाप कमाए। गुरमुखि भगति जितु सहज धुनि उपजै बिनु भगती मैलु न जाए। नानक कामणि पिरहि पिआरी विचहु आपु गवाए ॥ १ ॥ कामणि पिरु पाइआ जीउ गुर कै भाइ पिआरे। रैणि सुखि सुती जीउ अंतरि उरिधारे। अंतरि उरि धारे मिलीऐ पिआरे अनदिनु दुखु निवारे। अंतरि महलु पिरु रावे कामणि गुरमती वीचारे। अंम्रितु नामु पीआ दिन राती दुबिधा मारि निवारे। नानक सचि मिली सोहागणि गुर कै हेति अपारे ॥ २ ॥ आवहु दइआ करे जीउ प्रीतम अति पिआरे। कामणि बिनउ करे जीउ सचि सबदि सीगारे। सचि सबदि सीगारे हउमै मारे गुरमुखि कारज सवारे। जुगि जुगि एको सचा सोई बूझै गुर बीचारे। मनमुखि कामि विआपी मोहि संतापी किसु आगै जाइ पुकारे। नानक मनमुखि थाउ न पाए बिनु गुर अति पिआरे ॥ ३ ॥ मुंध इआणी भोली निगुणीआ जीउ पिरु अगम अपारा। आपे मेलि मिलीऐ जीउ आपे बखसणहारा। अवगण बखसणहारा कामणि कंतु पिआरा घटि घटि रहिआ समाई। प्रेम प्रीति भाइ भगती

पाईऐ सतिगुरि बूझ बुझाई। सदा अनंदि रहै दिन राती अनदिनु रहै लिव लाई। नानक सहजे हरि वरु पाइआ साधन नउनिधि पाई॥ ४॥ ३॥

(भाग्यशालिनी है वह) जीव-स्त्री (जिसका मन) परमात्मा के नाम-रस में बिंधा रहता है, जो परमात्मा के प्रेम की स्थिरता में टिकी रहती है, जिसके मन को सुन्दर प्रभु ने मोह लिया है, (उस जीव-स्त्री की) मेर-तेर आत्मिक स्थिरता में समाप्त हो जाती है, वह जीव-स्त्री प्रभु-पति को मिल पड़ती है, गुरु की शिक्षा पर चलकर आत्मिक सुख पाती है। यह शरीर झूठ ठगी से पूर्णरूपेण भरा हुआ है और जीव पाप कमाता रहता है; लेकिन गुरु की शरण लेने पर जीव प्रभु की भक्ति करता है, जिसके प्रभाव से इसके भीतर आत्मिक स्थिरता की ललक पैदा हो जाती है। प्रभु की भक्ति के बिना (विकारों की) मैल दूर नहीं होती। हे नानक ! (वह) जीव-स्त्री प्रभु-पति की प्यारी बन जाती है, जो अपने भीतर से आपा-भाव दूर कर लेती है॥ १॥ जो जीव-स्त्री गुरु के प्रेम में टिकी रहती है, वह प्रभु-पति को मिल पड़ती है। वह अपने भीतर अपने हृदय में (प्रभु-पति को) बसाती है और सारी ज़िन्दगी-रूपी रात्रि सुख में बिताती है। जो जीव-स्त्री अपने भीतर प्रभु का निवास-स्थान प्राप्त कर लेती है, गुरु की शिक्षा लेकर (प्रभू के गुणों का) विचार करती है, वह प्रभु-पति के मिलाप का आत्मिक आनन्द पाती है। जिस जीव-स्त्री ने आत्मिक जीवन देनेवाला नाम-रस, दिन-रात्रि पान किया है, वह अपने भीतर से मेर-तेर को समाप्त कर देती है। हे नानक ! गुरु के अथाह प्रेम के प्रभाव से वह जीव-स्त्री सत्यस्वरूप प्रभु-पति में मिली रहती है और भाग्यशालिनी हो जाती है॥ २॥ जो जीव-स्त्री सत्यस्वरूप प्रभु के नाम तथा गुरु की शिक्षा के साथ अपने आत्मिक जीवन को सुन्दर बनाकर प्रार्थना करती है (और कहती है—) हे अत्यन्त प्यारे प्रियतम ! कृपा करके (हृदय में) आ बसो। जो जीव-स्त्री सत्यस्वरूप प्रभु के नाम तथा गुरु के ज्ञान से अपने जीवन को सुन्दर बना लेती है, वह अपने भीतर से अहंकार दूर कर लेती है, गुरु की शरण लेकर वह अपने सारे कार्य सँवार लेती है, वह जीव-स्त्री गुरु की दी हुई शिक्षा से उस परमात्मा से मेल कर लेती है, जो हरेक युग में सदा स्थिर रहनेवाला है। (लेकिन) स्वेच्छाचारिणी जीव-स्त्री काम-वासना में दबी रहती है, मोह में फंसकर दुखी होती है। वह किसके आगे जाकर पुकार करे ? हे नानक ! अत्यन्त प्यारे गुरु के बिना स्वेच्छाचारिणी जीव-स्त्री (प्रभु-चरणों में) स्थान प्राप्त नहीं कर सकती॥ ३॥ (एक ओर जीव-स्त्री) मूर्ख, अज्ञानी और गुणहीन है, (दूसरी ओर) प्रभु-पति अगम्य है और अनन्त है। यदि प्रभु आप ही (जीव-स्त्री को) मिलाए तो मिलाप

हो सकता है, वह आप ही क्षमा करनेवाला है। प्यारा प्रभु-स्वामी अवगुण क्षमा करने की सामर्थ्य रखता है और वह हरेक शरीर में बस रहा है। सतिगुरु ने यह शिक्षा दी है कि वह कंत-प्रभु प्रेम द्वारा मिलता है, भक्ति-भाव द्वारा मिलता है। हे नानक! (जो जीव-स्त्री गुरु की शिक्षा पर चलती है) वह हमेशा आत्मिक आनन्द में रहती है, हरवक्त सुरति (प्रभु-चरणों में) जोड़े रखती है, आत्मिक स्थिरता में टिककर वह प्रभु-पति को मिल पड़ती है, उस जीव-स्त्री ने, मानो, दुनिया के समस्त भण्डार (नवनिधि) प्राप्त कर लिए हैं ॥ ४ ॥ ३ ॥

॥ गउड़ी महला ३ ॥ माइआ सरु सबलु वरतै जीउ किउ करि दुतरु तरिआ जाइ। रामनामु करि बोहिथा जीउ सबदु खेवटु विचि पाइ। सबदु खेवटु विचि पाए हरि आपि लघाए इन बिधि दुतरु तरीऐ। गुरमुखि भगति परापति होवै जीवतिआ इउ मरीऐ। खिन महि राम नामि किलविख काटे भए पवितु सरीरा। नानक रामनामि निसतारा कंचन भए मनूरा ॥ १ ॥ इसतरी पुरख कामि विआपे जीउ राम नाम की बिधि नही जाणी। मात पिता सुत भाई खरे पिआरे जीउ डूबि मुए बिनु पाणी। डूबि मुए बिनु पाणी गति नही जाणी हउमै धातु संसारे। जो आइआ सो सभु को जासी उबरे गुर वीचारे। गुरमुखि होवै राम नामु वखाणै आपि तरै कुल तारे। नानक नामु वसै घट अंतरि गुरमति मिले पिआरे ॥ २ ॥ राम नाम बिनु को थिरु नाही जीउ बाजी है संसारा। द्रिड़ु भगति सची जीउ रामु नामु वापारा। राम नामु वापारा अगम अपारा गुरमती धनु पाईऐ। सेवा सुरति भगति इह साची विचहु आपु गवाईऐ। हम मतिहीण मूरख मुगध अंधे सतिगुरि मारगि पाए। नानक गुरमुखि सबदि सुहावे अनदिनु हरिगुण गाए ॥ ३ ॥ आपि कराए करे आपि जीउ आपे सबदि सवारे। आपे सतिगुरु आपि सबदु जीउ जुगु जुगु भगत पिआरे। जुगु जुगु भगत पिआरे हरि आपि सवारे आपे भगती लाए। आपे दाना आपे बीना आपे सेव कराए। आपे गुणदाता अवगुण काटे हिरदै नामु वसाए। नानक सद बलिहारी सचे विटहु आपे करे कराए ॥ ४ ॥ ४ ॥

माया का पूर्णरूप से लबालब भरा सरोवर अपना प्रभाव दिखा रहा है, इसमें से गुज़रना भी कठिन है। (हे भाई!) इसमें से कैसे पार

निकला जाए ? हे भाई ! परमात्मा के नाम को जहाज़ बना, गुरु के शब्द को मल्लाह बनाकर (उसमें) बिठा। यदि मनुष्य परमात्मा के नाम-जहाज़ में गुरु के शब्द मल्लाह को बिठा देवे तो परमात्मा आप ही (माया के सरोवर से) पार उतार देता है। इस दुस्तर माया-तालाब से इस प्रकार पार निकला जा सकता है। गुरु की शरण लेने से परमात्मा की भक्ति प्राप्त हो जाती है, इस प्रकार दुनिया के कार्य-व्यवहार निभाते हुए ही माया से पाप एक क्षण में काटे जाते हैं, शरीर पवित्र हो जाता है। परमात्मा के नाम के द्वारा ही (माया-सरोवर से) पार उतरा जाता है और लोहे की मैल (जैसा बेकार मन) सोना बन जाता है ॥ १ ॥ (माया के प्रभाव से) पुरुष और स्त्री कामवासना में फँसे रहते हैं, परमात्मा के नाम-स्मरण की जाँच नहीं सीखते। (माया-ग्रस्त जीवों को अपने) माँ, बाप, पुत्र, भाई बहुत ही प्यारे लगते हैं, (जिस सरोवर में) पानी नहीं, उसके मोह में डूबकर आत्मिक मृत्यु प्राप्त कर लेते हैं। मोह-रूपी पानी वाले माया-सरोवर में पूर्णतः फँसकर जीव आत्मिक मृत्यु पाते हैं और अपने आत्मिक जीवन को नहीं परखते। (इस प्रकार) संसार में (जीवों को) मोह की दुबिधा लगी हुई है। जो भी जीव जगत् में आता है, वह (दुबिधा में) फँसता जाता है, (इसमें से वही बचते हैं) जो गुरु के शब्द को अपने मस्तिष्क में बसाते हैं। जो मनुष्य गुरु के सम्मुख होकर परमात्मा का नाम उच्चरित करता है, वह आप (इस माया-सरोवर से) पार उतर जाता है, अपने कुलों को भी पार उतार देता है। हे नानक ! जिस मनुष्य के हृदय में परमात्मा का नाम आ बसता है, वह गुरु की शिक्षा का सहारा लेकर प्यारे प्रभु को मिल पड़ता है ॥ २ ॥ हे भाई ! यह जगत् (परमात्मा द्वारा बनाया) एक खेल है (इसमें) परमात्मा के नाम के अतिरिक्त कोई स्थिर नहीं है। हे भाई ! परमात्मा की भक्ति को (अपने हृदय में) निश्चित रूप से टिकाकर रख, (यही) सदा रहनेवाली (चीज़) है, परमात्मा का नाम-व्यापार ही सत्यस्वरूप है। अगम्य तथा अनन्त परमात्मा का नाम-व्यापार ही सत्यस्वरूप धन है, यह धन गुरु की शिक्षा पर चलने से मिलता है। प्रभु की सेवा-भक्ति, प्रभु-चरणों में सुरति जोड़नी— यह सत्यस्वरूप (राशि) है, (जिसके प्रभाव से अपने) भीतर से आपा-भाव दूर किया जा सकता है। हम अज्ञानियों, मूर्खों और माया-मोह में अन्धे व्यक्तियों को सतिगुरु ने ही सही रास्ते पर लगाया है। हे नानक ! गुरु के सम्मुख रहनेवाले मनुष्य गुरु के शब्द में (जुड़कर) सुन्दर आत्मिक जीवनवाले बन जाते हैं, और, वे हरवक्त परमात्मा के गुण गाते रहते हैं ॥ ३ ॥ (लेकिन) हे भाई ! प्रभु आप ही (प्रेरित करके जीवों से) काम कराता है, (आप ही जीवों में व्याप्त होकर) करता है, प्रभु आप ही गुरु के उपदेश में जोड़कर (जीवों के) जीवन सुन्दर बनाता है। प्रभु

आप ही सतिगुरु मिलाता है, आप ही शब्द देता है और आप ही हरेक युग में अपने भक्तों को प्रेम करता है। हरेक युग में हरि अपने भक्तों को प्रेम करता है, आप ही उनके जीवन सँवारता है, आप ही (उन्हें) भक्ति में जोड़ता है। वह आप ही सबके मन की जाननेवाला तथा पहचाननेवाला है, वह आप ही सेवा-भक्ति कराता है। (हे भाई !) परमात्मा आप ही (अपने) गुणों की देन देता है, अवगुण दूर करता है और हृदय में (अपना) नाम बसाता है। हे नानक! (कह— मैं) उस सत्यस्वरूप परमात्मा पर बलिहारी जाता हूँ, वह आप ही सब कुछ करता है और आप ही सब कुछ कराता है॥ ४ ॥ ४ ॥

॥ गउड़ी महला ३ ॥ गुर की सेवा करि पिरा जीउ हरि नामु धिआए। मंञहु दूरि न जाहि पिरा जीउ घरि बैठिआ हरि पाए। घरि बैठिआ हरि पाए सदा चितु लाए सहजे सति सुभाए। गुर की सेवा खरी सुखाली जिस नो आपि कराए। नामो बीजे नामो जंमै नामो मंनि वसाए। नानक सचि नामि वडिआई पूरबि लिखिआ पाए॥ १ ॥ हरि का नामु मीठा पिरा जीउ जा चाखहि चितु लाए। रसना हरि रसु चाखु मुये जीउ अन रस साद गवाए। सदा हरि रसु पाए जा हरि भाए रसना सबदि सुहाए। नामु धिआए सदा सुखु पाए नामि रहै लिव लाए। नामे उपजै नामे बिनसै नामे सचि समाए। नानक नामु गुरमती पाईऐ आपे लए लवाए॥ २ ॥ एह विडाणी चाकरी पिरा जीउ धन छोडि परदेसि सिधाए। दूजै किनै सुखु न पाइओ पिरा जीउ बिखिआ लोभि लुभाए। बिखिआ लोभि लुभाए भरमि भुलाए ओहु किउ करि सुखु पाए। चाकरी विडाणी खरी दुखाली आपु वेचि धरमु गवाए। माइआ बंधन टिकै नाही खिनु खिनु दुखु संताए। नानक माइआ का दुखु तदे चूकै जा गुर सबदी चितु लाए॥ ३ ॥ मनमुख मुगध गावारु पिरा जीउ सबदु मनि न वसाए। माइआ का भ्रमु अंधु पिरा जीउ हरि मारगु किउ पाए। किउ मारगु पाए बिनु सतिगुर भाए मनमुखि आपु गणाए। हरि के चाकर सदा सुहेले गुर चरणी चितु लाए। जिस नो हरि जीउ करे किरपा सदा हरि के गुण गाए। नानक नामु रतनु जगि लाहा गुरमुखि आपि बुझाए॥ ४ ॥ ५ ॥

हे प्यारी आत्मा ! गुरु की सेवा कर, परमात्मा का नाम-स्मरण कर, (इस प्रकार) तू अपने आप से दूर नहीं जायगी । (हे आत्मा !) हृदय-घर में टिके रहने से परमात्मा मिल जाता है। जो जीव आत्मिक स्थिरता में टिककर, सत्यस्वरूप प्रभु के प्रेम में जुड़कर सदा (प्रभु-चरणों में) चित्त जोड़ता है, वह हृदय-घर में टिका रहकर परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। (इसलिए) गुरु द्वारा बतलाई सेवा बहुत सुखदायक है, (पर यह वही करता है) जिससे परमात्मा आप कराए। (ईश्वर से प्रेरित होकर ही) वह (मनुष्य अपने हृदय-खेत में) परमात्मा का नाम ही बोता है, (वहाँ) नाम ही उगता है, वह मनुष्य अपने मन में सदा नाम ही बसाए रखता है। हे नानक ! सत्यस्वरूप प्रभु में जुड़कर, प्रभु-नाम में टिककर (मनुष्य) आदर पाता है, और पूर्व जन्म में किए कर्मों के संस्कारों का खेल मनुष्य के भीतर प्रकट हो जाता है ।। १ ।। हे प्यारी आत्मा ! परमात्मा का नाम मीठा है, (पर यह ज्ञान तुझे तभी होगा) जब तू चित्त जोड़कर (यह नाम-रस) चखेगी। हे मेरी निकम्मी जीभ ! परमात्मा के नाम का स्वाद चख और दूसरे रसों के आस्वादन छोड़ दे। (पर जीभ के क्या वश !) जब परमात्मा को अच्छा लगे, तब जीभ सदा परमात्मा के नाम का आस्वादन करती है और गुरु के शब्द में जुड़कर सुन्दर हो जाती है। जो मनुष्य नाम-स्मरण करता है, नाम में सुरति जोड़े रखता है, वह सदा आत्मिक आनन्द प्राप्त करता है, नाम के प्रभाव से उसके भीतर (नाम-रस की इच्छा) पैदा होती है, नाम के प्रभाव से (दूसरे रसों को ललक) दूर हो जाती है, नाम-स्मरण के प्रभाव से वह सत्यस्वरूप प्रभु में लीन रहता है। (पर) हे नानक ! परमात्मा का नाम गुरु की शिक्षा पर चलने से मिलता है, परमात्मा आप ही अपने नाम की लगन पैदा करता है ।। २ ।। हे प्यारी आत्मा ! दूसरी सब खुशामदें (अत्यन्त दुःखदायक हैं क्योंकि) जीव-स्त्री (अपना आत्मिक ठिकाना) छोड़कर स्थान-स्थान पर बाहर भटकती फिरती है। हे प्यारी आत्मा ! माया-मोह में फँसकर किसी ने कभी सुख नहीं पाया; मनुष्य माया के लोभ में फँस जाता है, (जब) माया के लोभ में फँसता है (तब माया के लिए) दुबिधा में पड़कर कुमार्गगामी हो जाता है, (उस दशा में वह) सुख कैसे पा सकता है ? यह हरेक मनुष्य (जिस-तिस) की खुशामद अत्यन्त दुःखदायक है, मनुष्य आत्मिक जीवन बेचकर अपना कर्त्तव्य छोड़ बैठता है। माया के बन्धनों के कारण मनुष्य का मन (एक स्थान पर) टिकता नहीं, दुःख इसे हर समय क्लेश देता है। हे नानक ! माया के मोह से उत्पन्न दुःख तभी समाप्त होता है, जब मनुष्य गुरु के शब्द में अपना हृदय जोड़ता है ।। ३ ।। हे प्यारी आत्मा ! स्वेच्छाचारी मनुष्य मूर्ख तथा गवाँर ही रहता है, वह गुरु के शब्द को अपने मन में नहीं बसाता। हे आत्मा ! माया का चक्कर उसे अन्धा कर देता

है (इसलिए वह) परमात्मा (के मिलाप) का रास्ता प्राप्त नहीं कर सकता। गुरु की इच्छानुसार बिना चले मनुष्य परमात्मा के मिलाप का मार्ग नहीं पा सकता, (क्योंकि) स्वेच्छाचारी मनुष्य सदा अपने आपको बड़ा प्रकट करता है (और उसके भीतर सेवक वाली नम्रता नहीं आ सकती)। (दूसरी ओर) परमात्मा के सेवक भक्त गुरु के चरणों में चित्त जोड़कर सदा सुखी रहते हैं। लेकिन जिस मनुष्य पर परमात्मा आप दया करता है, वही सदा परमात्मा के गुण गाता है। हे नानक ! परमात्मा का नाम ही जगत् में (असली) कमाई है, इस बात की सूझ परमात्मा आप ही (मनुष्य को) गुरु की शरण देकर देता है ॥ ४ ॥ ५ ॥

रागु गउड़ी १ छंत महला ५

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ मेरै मनि बैरागु भइआ जीउ किउ देखा प्रभ दाते। मेरे मीत सखा हरि जीउ गुर पुरख बिधाते। पुरखो बिधाता एकु स्रीधरु किउ मिलह तुझै उडीणीआ। कर करहि सेवा सीसु चरणी मनि आस दरस निमाणीआ। सासि सासि न घड़ी विसरै पलु मूरतु दिनु राते। नानक सारिंग जिउ पिआसे किउ मिलीऐ प्रभ दाते ॥ १ ॥ इक बिनउ करउ जीउ सुणि कंत पिआरे। मेरा मनु तनु मोहि लीआ जीउ देखि चलत तुमारे। चलता तुमारे देखि मोही उदास धन किउ धीरए। गुणवंत नाह दइआलु बाला सरब गुण भरपूरए। पिर दोसु नाही सुखह दाते हउ विछुड़ी बुरिआरे। बिनवंति नानक दइआ धारहु घरि आवहु नाह पिआरे ॥ २ ॥ हउ मनु अरपी सभु तनु अरपी अरपी सभि देसा। हउ सिरु अरपी तिसु मीत पिआरे जो प्रभ देइ सदेसा। अरपिआ त सीसु सुथानि गुर पहि संगि प्रभू दिखाइआ। खिन माहि सगला दूखु मिटिआ मनहु चिंदिआ पाइआ। दिनु रैणि रलीआ करै कामणि मिटे सगल अंदेसा। बिनवंति नानकु कंतु मिलिआ लोड़ते हम जैसा ॥ ३ ॥ मेरै मनि अनदु भइआ जीउ वजी वाधाई। घरि लालु आइआ पिआरा सभ तिखा बुझाई। मिलिआ त लालु गुपालु ठाकुरु सखी मंगलु गाइआ। सभ मीत बंधप हरखु उपजिआ दूत थाउ गवाइआ। अनहत वाजे वजहि घर

महि पिर संगि सेज विछाई। बिनवंति नानकु सहजि रहै हरि मिलिआ कंतु सुखदाई ॥ ४ ॥ १ ॥

हे मेरे दाता प्रभु ! मेरे मित्र, साथी, सर्वोपरि, सर्वव्यापक हरि ! मेरे मन में आतुरता हो रही है, (बतला) मैं तुम्हें कैसे देखूँ ? तुम सर्वव्यापक हो, तुम सबके उत्पादक हो, तुम ही लक्ष्मीपति हो (तुमसे बिछुड़कर) हम व्याकुल हो रही हैं, (बताओ), हम तुम्हें कैसे मिलें ? (जो जीव-स्त्रियाँ) अभिमान छोड़कर, अपने हाथों से सेवा करती हैं, अपना सिर गुरु के चरणों पर झुकाती हैं और मन में प्रभु-दर्शन की इच्छा रखती हैं, उन्हें हरेक श्वास के साथ (वह स्मरण रहता है) उन्हें दिन-रात्रि एक घड़ी भर, पल मुहूर्त भर भी प्रभु विस्मृत नहीं होता। हे नानक ! (कह—) हे दाता प्रभु ! (हम तेरे बिना) प्यासे पपीहे के समान हैं, (बता) तुझे कैसे मिलें ? ॥ १ ॥ हे प्यारे प्रियतम ! मैं एक प्रार्थना करती हूँ। तेरे कौतुक-तमाशे देख-देखकर मैं ठगी गई हूँ, (इन्होंने) मेरा मन मोह लिया है और तेरा तन भी मोह लिया है। (पर अब यह) जीव-स्त्री (इन तमाशों से) उदास हो गई है, (तेरे मिलाप के बिना) इसे धैर्य नहीं मिलता। हे समस्त गुणों के स्वामी प्रियतम ! तुम दयालु हो, नित्य यौवन-सम्पन्न हो और समस्त गुणों से भरपूर हो। हे सुखों के दाता पति ! तुम दोष-रहित हो, मैं कुकर्मी अभागिनी आप ही तुझसे बिछुड़ी हुई हूँ। हे नानक ! (कह—) हे प्यारे पति ! (यह जीव-स्त्री भी) प्रार्थना करती है, तुम कृपा करके इसके हृदय-घर में आ बसो ॥ २ ॥ जो तुझे प्रभु के साथ मेल करानेवाला सन्देश दे, मैं उस मित्र प्यारे को अपना मन भेंट कर दूँ, अपना शरीर भेंट कर दूँ, सारे देश (ज्ञानेन्द्रियाँ) बलिहारी कर दूँ, अपना सिर भी उसके हवाले कर दूँ। (जिस जीव-स्त्री ने) सत्संगति के प्रभाव से अपना सिर गुरु के हवाले कर दिया, गुरु ने उसे अपने हृदय में विद्यमान प्रभु दिखा दिया, क्षणमात्र में ही उस जीव-स्त्री का सारा ही दुःख दूर हो गया, (क्योंकि) उसे मन की मुराद (कामना) मिल गई। वह जीव-स्त्री दिन-रात आत्मिक आनन्द महसूस करती है और उसकी तमाम चिन्ताएँ मिट जाती हैं। नानक प्रार्थना करता है— (जो जीव-स्त्री गुरु की शरण लेती है उसे) पति-प्रभु मिल जाता है और वह पति-प्रभु ऐसा है, जैसा हम सब जीव (सदा) ढूँढते रहते हैं ॥ ३ ॥ हे सहेली ! (जब से) मेरे हृदय-घर में मनभावना प्रभु-पति आ बसा है, मेरी सारी तृष्णा मिट गई है, मेरे मन में चाव बना रहता है, मेरे भीतर वह आत्मिक दशा प्रबल बनी पड़ी है कि मेरा मन उल्लसित हो रहा है। (जब से) मनभावन ठाकुर गोपाल मुझे मिला है, मेरी सहेलियों ने खुशी का गीत गाना शुरू कर दिया है, मेरे इन मित्रों-सम्बन्धियों को चाव चढ़ा रहता है, और (मेरे भीतर से) कामादिक बैरियों

का नामनिशान मिट गया है, मैंने प्रभु-पति के साथ सेज बिछा ली है, अब मेरे हृदय में बिना बजाए बाजे बज रहे हैं। नानक प्रार्थना करता है—जिस जीव-स्त्री को सारे सुखों का दाता प्रभु-पति मिल जाता है, वह आत्मिक स्थिरता में टिकी रहती है ॥ ४ ॥ १ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ मोहन तेरे ऊचे मंदर महल अपारा। मोहन तेरे सोहनि दुआर जीउ संत धरमसाला। धरमसाल अपार दैआर ठाकुर सदा कीरतनु गावहे। जह साध संत इकत्र होवहि तहा तुझहि धिआवहे। करि दइआ मइआ दइआल सुआमी होहु दीन क्रिपारा। बिनवंति नानक दरस पिआसे मिलि दरसन सुखु सारा ॥ १ ॥ मोहन तेरे बचन अनूप चाल निराली। मोहन तूं मानहि एकु जी अवर सभ राली। मानहि त एकु अलेखु ठाकुरु जिनहि सभ कल धारीआ। तुधु बचनि गुर कै वसि कीआ आदि पुरखु बनवारीआ। तूं आपि चलिआ आपि रहिआ आपि सभ कल धारीआ। बिनवंति नानक पैज राखहु सभ सेवक सरनि तुमारीआ ॥ २ ॥ मोहन तुधु सतसंगति धिआवै दरस धिआना। मोहन जमु नेड़ि न आवै तुधु जपहि निदाना। जमकालु तिन कउ लगै नाही जो इक मनि धिआवहे। मनि बचनि करमि जि तुधु अराधहि से सभे फल पावहे। मल मूत मूड़ जि मुगध होते सि देखि दरसु सुगिआना। बिनवंति नानक राजु निहचलु पूरन पुरख भगवाना ॥ ३ ॥ मोहन तूं सुफलु फलिआ सणु परवारे। मोहन पुत्र मीत भाई कुटंब सभि तारे। तारिआ जहानु लहिआ अभिमानु जिनी दरसनु पाइआ। जिनी तुध नो धंनु कहिआ तिन जमु नेड़ि न आइआ। बेअंत गुण तेरे कथे न जाही सतिगुर पुरख मुरारे। बिनवंति नानक टेक राखी जितु लगि तरिआ संसारे ॥ ४ ॥ २ ॥

हे मन को मोहित करनेवाले प्रभु! तेरे मन्दिर ऊँचे हैं, तेरे महल ऐसे हैं कि दूसरा किनारा नहीं दिखता। हे मोहन! तेरे द्वार पर, तेरे धार्मिक स्थानों में, तेरे संतजन (बैठे) सुन्दर लग रहे हैं। हे अनन्त एवं दयालु प्रभु! तेरे धार्मिक स्थानों में, तेरे संतजन तेरा कीर्त्तन गाते हैं। जहाँ भी साधु-संत एकत्रित होते हैं, वहाँ तुझे ही स्मरण करते हैं। हे दया के स्रोत, सबके मालिक मोहन! तू दया के फलस्वरूप ग़रीबों पर कृपालु

होता है। नानक प्रार्थना करता है— तेरे दर्शन के प्यासे तुझे मिलकर तेरे दर्शन का सुख प्राप्त करते हैं ॥ १ ॥ हे मोहन ! तेरी गुणस्तुति के वचन प्रिय लगते हैं, तेरी गति (लौकिक जीवों की गति से) अलग है। हे मोहन ! (सारे जीव) केवल तुझे मानते हैं, शेष समस्त सृष्टि नश्वर है। हे मोहन ! केवल तुझ अकेले को मानते हैं— केवल तुझ अकेले को —जिसका स्वरूप व्यक्त नहीं किया जा सकता, जो सबका पालक है और जिसने सारी सृष्टि में अपनी सत्ता व्याप्त की हुई है। हे मोहन ! तुझे गुरु के शब्द के द्वारा (प्रेम-) वशीभूत किया हुआ है, तुम सबके आदि हो, सर्वव्यापक हो और सारे जगत् के मालिक हो। हे मोहन ! तुम आप ही (उम्र भोगकर) चले जाते हो, फिर भी तुम ही सत्यस्वरूप हो, तुमने ही जगत् में अपनी सत्ता व्याप्त की हुई है। नानक प्रार्थना करता है— (अपने सेवकों की तुम आप ही) लाज रखते हो, सारे सेवक-भक्त तेरी शरण लेते हैं ॥ २ ॥ हे मोहन प्रभु ! तुझे साधु पुरुषों की संगति (सत्संगति) स्मरण करती है, तेरे दर्शन का ध्यान करती है। हे मोहन प्रभु ! जो जीव तेरी उपासना करते हैं, अन्तिम समय में मृत्यु का भय उनके निकट नहीं आता। जो तुझे एकाग्रमन होकर स्मरण करते हैं, मृत्यु का भय उन्हें छू नहीं सकता। जो मनुष्य अपने मन, वचन, कर्म के द्वारा तुझे स्मरण करते हैं, वे सारे मनोवांछित फल प्राप्त करते हैं। हे सर्वव्यापक भगवान ! वे मनुष्य भी तेरा दर्शन करके उच्च सूझ-बूझ वाले हो जाते हैं, जो (पहले) विकृत तथा महामूर्ख होते हैं, नानक प्रार्थना करता है— हे मोहन ! तेरा राज्य सदा स्थिर रहनेवाला है ॥३॥ हे मोहन प्रभु! तुम भली प्रकार फलित हो, तुम (संसार-रूपी) बड़े परिवार वाले हो। हे प्रभु! पुत्र, भाई, मित्र वाले बड़े-बड़े परिवार, तुम सारे के सारे पार उतार देते हो। हे मोहन ! जिन्होंने तेरा दर्शन किया, उनके भीतर से तूने अहंकार दूर कर दिया। तुम सारे विश्व को पार उतारने की शक्ति रखते हो। हे मोहन ! जिन्होंने तेरी गुणस्तुति की, आत्मिक मौत उनके निकट नहीं जाती। हे सर्वोपरि, सर्वव्यापक प्रभु ! तेरे गुण असीम हैं; व्यक्त नहीं किए जा सकते। नानक प्रार्थना करता है— मैंने तेरा ही सहारा लिया है, जिसके सहारे मैं संसार-सागर से पार उतर रहा हूँ ॥ ४ ॥ २ ॥

॥ गउड़ी ३ महला ५ ॥ सलोकु ॥ पतित असंख पुनीत करि पुनह पुनह बलिहार। नानक राम नामु जपि पावको तिन किलबिख दाहनहार ॥ १ ॥ छंत ॥ जपि मना तूं राम नराइणु गोविंदा हरि माधो। धिआइ मना मुरारि मुकंदे कटीऐ काल दुख फाधो। दुख हरण दीन सरण स्रीधर चरन कमल अराधीऐ।

जमपंथु बिखड़ा अगनि सागरु निमख सिमरत साधीऐ। कलि मलह दहता सुधु करता दिनसु रैणि अराधो। बिनवंति नानक करहु किरपा गोपाल गोबिंद माधो ॥ १ ॥ सिमरि मना दामोदरु दुख हरु भै भंजन हरि राइआ। स्री रंगो दइआल मनोहरु भगति वछलु बिरदाइआ। भगति वछल पुरख पूरन मनहि चिंदिआ पाईऐ। तम अंध कूप ते उधारै नामु मंनि वसाईऐ। सुर सिध गण गंधरब मुनिजन गुण अनिक भगती गाइआ। बिनवंति नानक करहु किरपा पारब्रहम हरि राइआ ॥ २ ॥ चेति मना पारब्रहमु परमेसरु सरब कला जिनि धारी। करुणामै समरथु सुआमी घट घट प्राण अधारी। प्राण मन तन जीअ दाता बेअंत अगम अपारो। सरणि जोगु समरथु मोहनु सरब दोख बिदारो। रोग सोग सभि दोख बिनसहि जपत नामु मुरारी। बिनवंति नानक करहु किरपा समरथ सभ कल धारी ॥ ३ ॥ गुण गाउ मना अचुत अबिनासी सभ ते ऊच दइआला। बिसंभरु देवन कउ एकै सरब करै प्रतिपाला। प्रतिपाल महा दइआल दाना दइआ धारे सभ किसै। कालु कंटकु लोभु मोहु नासै जीअ जा कै प्रभु बसै। सुप्रसंन देवा सफल सेवा भई पूरन घाला। बिनवंत नानक इछ पुनी जपत दीन दैआला ॥ ४ ॥ ३ ॥

हे नानक ! परमात्मा का नाम जप, इस पर बार-बार बलिहारी हो। यह नाम अनगिनत विकारियों को पवित्र कर देता है, जैसे आग (घास के) तिनकों को (जलाने की शक्ति रखता है), वैसे ही नाम पापों को जलाने की सामर्थ्य रखता है ॥ १ ॥ छंत ॥ हे मेरे मन ! तू राम, नारायण, गौबिंद, हरि को जप। तू मुकुंद मुरारी की आराधना कर। (इससे) मौत के दुखों की फाँसी काटी जाती है। उस परमात्मा के सुन्दर चरणों की आराधना करनी चाहिए, जो दुखों का नाशक है, ग़रीबों का सहारा है, जो लक्ष्मी का आसरा है। यमों का कठिन मार्ग और (विकारों की) आग से भरा समुद्र तनिकमात्र के लिए नाम-स्मरण करने से सुन्दर बना लिया जाता है। (हे मेरे मन !) दिन-रात उस हरि-नाम को स्मरण करता रह जो पापों को जलानेवाला और पवित्र करनेवाला है। नानक प्रार्थना करता है— हे गोपाल, माधो हरि ! कृपा कर ॥ १ ॥ हे मेरे मन ! उस प्रभु बादशाह दामोदर को स्मरण कर, जो दुखों को दूर करनेवाला है, जो भयनाशक है, जो लक्ष्मीपति है, जो दया का स्रोत है, जो मन को मोह लेनेवाला है और भक्ति से प्रेम करना जिसका युगादिकाल से स्वभाव है।

(हे भाई !) यदि भक्ति से प्रेम करनेवाले पूर्णपुरुष का नाम मन में बसा लें तो मन में सोचा हुआ मनोरथ पा लिया जाता है। वह हरि-नाम माया-मोह के अन्धे कुएँ से निकाल लेता है। हे मेरे मन ! देवगण, करामाती योगी, शिव-भक्त देवगण और उनके गवैये, ऋषि तथा अनेकों भक्त उसी परमात्मा के गुण गाते आ रहे हैं। नानक प्रार्थना करता है— हे प्रभु बादशाह ! कृपा कर (कि मैं भी तेरा नाम-स्मरण कर सकूँ) ॥ २ ॥ हे मन ! पारब्रह्म परमेश्वर को स्मरण रख, जिसने सब में अपनी सत्ता टिकाई हुई है, जो दया-स्वरूप है, सर्वशक्तिमान है, सबका स्वामी है, जो हरेक शरीर तथा आत्मा का आसरा है, जो मन, तन, प्राण और आत्मा देनेवाला है, अगम्य, अपार, अपहुँच, शरणागत-रक्षक, सब शक्तियों का स्वामी, सुन्दर तथा समस्त विकारों का नाशक है। हे मन ! मुरारी प्रभु का नाम जपते हुए समस्त रोग, चिन्ताएँ एवं विकृतियाँ दूर हो जाती हैं। नानक प्रार्थना करता है— हे समस्त शक्तियों के मालिक ! हे सब में अपनी ज्योति टिकाकर रखनेवाले प्रभु ! कृपाकर ॥ ३ ॥ हे (मेरे) मन ! तू उस परमात्मा के गुण गा, जो सदा अटल रहनेवाला है, जो अनश्वर है, जो सर्वोच्च तथा दया-स्रोत है, जो सारे जगत् का पालक है, जो आप ही सब कुछ देनेवाला है, जो सबकी देखभाल करता है। वह परमात्मा हरेक जीव पर दया करता है, हरेक के दिल की जाननेवाला है। अत्यन्त दयालु तथा पालनकर्त्ता है। जिस मनुष्य के हृदय में वह प्रभु आ बसता है, उसके भीतर से मोह, लोभ तथा दुःखदायक मृत्यु का भय दूर हो जाता है। (हे मन !) जिस मनुष्य पर प्रभु देवजी भली प्रकार प्रसन्न हो जाएँ, उसकी की हुई सेवा को फल लग पड़ता है, उसकी मेहनत सफल हो जाती है। नानक प्रार्थना करता है— ग़रीबों पर दया करनेवाले परमात्मा का नाम जपने से हर इच्छा पूर्ण हो जाती है ॥ ४ ॥ ३ ॥

॥ गउड़ी महला ५ ॥ सुणि सखीए मिलि उदमु करेहा मनाइ लैहि हरि कंतै। मानु तिआगि करि भगति ठगउरी मोहह साधू मंतै। सखी वसि आइआ फिरि छोडि न जाई इह रीति भली भगवंतै। नानक जरा मरण भै नरक निवारै पुनीत करै तिसु जंतै ॥ १ ॥ सुणि सखीए इह भली बिनंती एहु मतांतु पकाईऐ। सहजि सुभाइ उपाधि रहत होइ गीत गोविंदहि गाईऐ। कलि कलेस मिटहि भ्रम नासहि मनि चिंदिआ फलु पाईऐ। पारब्रहम पूरन परमेसर नानक नामु धिआईऐ ॥ २ ॥ सखी इछ करी नित सुख मनाई प्रभ मेरी आस पुजाए। चरन

पिआसी दरस बैरागनि पेखउ थान सबाए। खोजि लहउ हरि संत जना संगु संम्रिथ पुरख मिलाए। नानक तिन मिलिआ सुरिजनु सुखदाता से वडभागी माए ॥ ३ ॥ सखी नालि वसा अपुने नाह पिआरे मेरा मनु तनु हरि संगि हिलिआ। सुणि सखीए मेरी नीद भली मै आपनड़ा पिरु मिलिआ। भ्रमु खोइओ सांति सहजि सुआमी परगासु भइआ कउलु खिलिआ। वरु पाइआ प्रभु अंतरजामी नानक सोहागु न टलिआ ॥४॥४॥२॥५॥११॥

हे सहेली! सुन (आ) मिलकर भजन करें (और) कंत-प्रभु को (अपने पर) ख़ुश कर लें। अहंकार दूरकर, भक्ति को ठगबूटी बनाकर गुरु के उपदेश के द्वारा मोहित कर लें। हे सहेली! उस भगवान की यह सुन्दर मर्यादा है कि यदि वह एक बार प्रेम के वशीभूत हो जाए तो फिर कभी छोड़कर नहीं जाता। हे नानक! (जो जीव प्रभु का शरणागत है), उस जीव को वह पवित्र बना देता है, (उसके पवित्र आत्मिक जीवन को) बुढ़ापा नहीं आने देता, मौत नहीं आने देता, उसके सारे भय तथा नरक (दु:ख) दूर कर देता है ॥ १ ॥ हे सहेली! यह भली प्रार्थना (सुन! आ) यह सलाह निश्चित कर करें कि आत्मिक स्थिरता में, प्रभु-प्रेम में टिककर (अपने भीतर से) छल-फरेब दूरकर गोबिंद के गुण गाएँ। (इससे विकारों का) क्लेश तथा दूसरे सारे द्वन्द्व मिट जाते हैं, (माया के पीछे चलने की) भाग-दौड़ समाप्त हो जाती हैं, मन में सोचा हुआ फल प्राप्त हो जाता है। हे नानक! (कह— हे सत्संगी सज्जन!) पारब्रह्म पूर्ण-परमेश्वर का नाम (सदा) स्मरण करना चाहिए ॥ २ ॥ (हे सहेली!) मैं सदा इच्छा करती रहती हूँ और मनौतियाँ करती रहती हूँ (कि) हे प्रभु! मेरी आशा पूर्ण कर, मैं तेरे दर्शनों के लिए बावली हुई सर्वत्र देखती फिरती हूँ। (हे सहेली! प्रभु की) खोज कर-कर मैं संतजनों का साथ प्राप्त करती हूँ, (सत्संगति ही उस प्रभु का) मेल कराती है, जो सब शक्तियों का मालिक है और जो सब में व्यापक है। हे नानक! (कह—) हे माँ! उन्हें ही देवलोक का मालिक और सारे सुख देनेवाला प्रभु मिलता है, वही मनुष्य भाग्यशाली हैं ॥ ३ ॥ हे सहेली! मैं (सदा) अपने पति-प्रभु के साथ रहती हूँ, मेरा मन उस हरि के साथ लग गया है, मेरा तन उस हरि के साथ एक हो गया है। हे सहेली! सुन, मुझे नींद भी प्यारी लगती है, (क्योंकि स्वप्न में भी) मुझे अपना प्यारा पति मिल जाता है। उस मालिक-प्रभु ने मेरी दुबिधा दूर कर दी है, मेरे भीतर अब शान्ति बनी रहती है, मैं आत्मिक स्थिरता में टिकी रहती हूँ, (मेरे भीतर उसकी ज्योति का) प्रकाश हो गया है, (जैसे सूर्य की किरणों से) कमल-पुष्प खिल

पड़ता है), उसी प्रकार उसकी ज्योति के प्रकाश से मेरा हृदय प्रसन्न रहता है)। हे नानक! (कह— हे सहेली! सत्संगति के प्रभाव से) मैंने अन्तर्यामी पति-प्रभु पा लिया है और (मेरे सिर का) यह सौभाग्य (सोहाग) कभी दूर होनेवाला नहीं! ॥ ४ ॥ ४ ॥ २ ॥ ५ ॥ ११ ॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ गउड़ी बावन अखरी महला ५ सलोकु ॥ गुरदेव माता गुरदेव पिता गुरदेव सुआमी परमेसुरा। गुरदेव सखा अगिआन भंजनु गुरदेव बंधिप सहोदरा। गुरदेव दाता हरिनामु उपदेसै गुरदेव मंतु निरोधरा। गुरदेव सांति सति बुधि मूरति गुरदेव पारस परसपरा। गुरदेव तीरथु अंम्रित सरोवरु गुर गिआन मजनु अपरंपरा। गुरदेव करता सभि पाप हरता गुरदेव पतित पवितकरा। गुरदेव आदि जुगादि जुगु जुगु गुरदेव मंतु हरि जपि उधरा। गुरदेव संगति प्रभ मेलि करि किरपा हम मूड़ पापी जितु लगि तरा। गुरदेव सतिगुरु पारब्रहमु परमेसरु गुरदेव नानक हरि नमसकरा ॥ १ ॥

गुरु ही माँ है, गुरु ही पिता है, गुरु मालिक प्रभु का रूप है। गुरु (माया के मोह का) अन्धेरा नष्ट करनेवाला मित्र है, गुरु ही सम्बन्धी और भाई है। गुरु (असली) दाता है जो प्रभु का नाम बतलाता है, गुरु का उपदेश ऐसा है जिसका असर (कोई विकार आदि) गवाँ नहीं सकता। गुरु शान्ति, सत्य और बुद्धि का स्वरूप है। गुरु एक ऐसा पारस है जिसका स्पर्श पारस के स्पर्श से श्रेष्ठ है। गुरु (सच्चा) तीर्थ है, अमृत-सरोवर है, गुरु के ज्ञान(-जल) का स्नान (तमाम तीर्थ-स्थानों के स्थान से) श्रेष्ठ है। गुरु कर्त्तार का रूप है, समस्त पापों को दूर करनेवाला है, गुरु विकृत व्यक्तियों को पवित्र करनेवाला है। जब से जगत् बना है, गुरु शुरू से ही हरेक युग में (परमात्मा के नाम का उपदेश-दाता) है। गुरु का दिया हुआ नाम-मन्त्र जपकर (विकारों की लहरों से) पार हुआ जाता है। हे प्रभु! कृपा कर, हमें गुरु की संगति दे ताकि हम मूर्ख पापी उसकी संगति में (रहकर) पार हो जाएँ। गुरु परमेश्वर पारब्रह्म का रूप है। हे नानक! हरि के रूप गुरु को (सदा) नमस्कार करना चाहिए ॥ १ ॥

॥ सलोकु ॥ आपहि कीआ कराइआ आपहि करनै जोगु। नानक एको रवि रहिआ दूसर होआ न होगु ॥१॥ ॥पउड़ी॥ ओअं

साध सतिगुर नमसकारं । आदि मधि अंति निरंकारं । आपहि सुंन आपहि सुख आसन । आपहि सुनत आप ही जासन । आपन आपु आपहि उपाइओ । आपहि बाप आप ही माइओ । आपहि सूखम आपहि असथूला । लखी न जाई नानक लीला ॥ १ ॥ करि किरपा प्रभ दीन दइआला । तेरे संतन की मनु होइ रवाला ॥ रहाउ ॥

॥ सलोकु ॥ समस्त जगत्-रचना प्रभु ने आप ही की है, आप ही करने की सामर्थ्य रखनेवाला है । हे नानक ! वह आप ही सारे जगत् में व्यापक है, उसके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ हमारा उस निरंकार को प्रणाम है, जो आप ही गुरु-रूप धारण करता है, जो जगत् के आदि में भी आप ही था, अब भी आप ही है, जगत् के अन्त में भी आप ही रहेगा । निरा एकाकी रूप भी वह ही होता है, आप ही अपने सुख-स्वरूप में टिका होता है, तब अपनी शोभा सुननेवाला भी वह आप ही होता है । अपने आपको प्रत्यक्ष रूप में लानेवाला भी वह आप है, आप ही (अपनी) माँ है, आप ही (अपना) पिता है । अप्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष स्वरूपवाला वह आप ही है । हे नानक ! (परमात्मा की यह युग-रचना वाली) क्रीडा व्यक्त नहीं की जा सकती ॥ १ ॥ हे दीनों पर दया करनेवाले प्रभु ! मुझ पर कृपा कर । मेरा मन तेरे संतजनों की धूलि बना रहे ॥ रहाउ ॥

॥ सलोकु ॥ निरंकार आकार आपि निरगुन सरगुन एक । एकहि एक बखाननो नानक एक अनेक ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ ओअं गुरमुखि कीओ अकारा । एकहि सूति परोवनहारा । भिन भिन त्रैगुण बिसथारं । निरगुन ते सरगुन द्रिसटारं । सगल भाति करि करहि उपाइओ । जनम मरन मन मोहु बढाइओ । दुहू भाति ते आपि निरारा । नानक अंतु न पारावारा ॥ २ ॥

॥ सलोकु ॥ आकार-रहित परमात्मा आप ही (जगत्-) आकार बनाता है । वह आप ही (निरंकार रूप में) माया के तीन रूपों से अलग रहता है और जगत्-रचना करके माया के तीन गुणोंवाला हो जाता है । हे नानक ! प्रभु अपने रूप से अनेक रूप बना लेता है, (परन्तु ये अनेक रूप उससे अलग नहीं हैं) । यही कहा जा सकता है कि वह एक आप ही आप है ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ गुरमुख बनने के लिए प्रभु ने जगत्-रचना की है । उसमें सारे जीव-जन्तुओं को अपने एक ही हुकम-धागे में पिरोकर रखने की

सामर्थ्य है । प्रभु ने अपने अप्रत्यक्ष रूप से प्रत्यक्ष जगत् बनाया है, माया के तीनों गुणों का अलग-अलग विस्तार कर दिया है । हे प्रभु ! तुमने सारी (अनेक) क़िस्में बनाकर जगत् की उत्पत्ति की है, जन्म-मरण का मूल जीवों के मन का मोह तुमने ही बढ़ाया है, लेकिन तुम जन्म-मरण से अलग हो । हे नानक ! (कह—) प्रभु के आर-पार का भेद नहीं पाया जा सकता ।। २ ।।

।। सलोकु ।। सेई साह भगवंत से सचु संपै हरि रासि । नानक सचु सुचि पाईऐ तिह संतन कै पासि ।।१।। ।। पवड़ी ।। ससा सति सति सति सोऊ । सति पुरख ते भिंन न कोऊ । सोऊ सरनि परै जिह पायं । सिमरि सिमरि गुन गाइ सुनायं । संसै भरमु नही कछु बिआपत । प्रगट प्रतापु ताहू को जापत । सो साधू इह पहुचनहारा । नानक ता कै सद बलिहारा ।। ३ ।।

।। सलोकु ।। (जीव जगत् में हरि-नाम का व्यापार करने आए हैं) जिनके पास परमात्मा का नाम-धन है, हरि का नाम (-व्यापार करने के लिए) पूँजी है, वही साहूकार हैं, वही धनिक हैं । हे नानक ! ऐसे संतजनों से ही नाम-धन और आत्मिक पवित्रता प्राप्त होती है ।। १ ।। ।। पउड़ी ।। वह परमात्मा सदा स्थिर रहनेवाला है, उस सत्यस्वरूप से अलग अस्तित्व वाला कोई नहीं है । जिस मनुष्य को प्रभु अपनी शरण लेता है, वही शरणागत होता है, वह मनुष्य प्रभु का स्मरण करके उसकी गुणस्तुति करके दूसरों को भी सुनाता है । कोई लज्जा, कोई दुबिधा उस पर दबाव नहीं डाल सकती । उसे सर्वत्र प्रभु का ही प्रताप दिखता है । जो मनुष्य इस आत्मिक अवस्था को प्राप्त करता है, उसे साधु जानो । हे नानक ! (कह—) मैं उस पर सदा बलिहारी हूँ ।। ३ ।।

।। सलोकु ।। धनु धनु कहा पुकारते माइआ मोह सभ कूर । नाम बिहूने नानका होत जात सभु धूर ।। १ ।। ।। पवड़ी ।। धधा धूरि पुनीत तेरे जनूआ । धनि तेऊ जिह रुच इआ मनूआ । धनु नही बाछहि सुरग न आछहि । अति प्रिअ प्रीति साध रज राचहि । धंधे कहा बिआपहि ताहू । जो एक छाडि अन कतहि न जाहू । जा कै हीऐ दीओ प्रभ नाम । नानक साध पूरन भगवान ।। ४ ।।

।। सलोक ।। (हे भाई !) क्यों हर समय धन एकत्रित करने के लिए ही शोर मचाते हो ! माया का मोह तो झूठा ही है । हे नानक ! नाम

से खाली रहकर सारा जगत् व्यर्थ जीवन गुज़ार जाता है ।। १ ।। ।। पउड़ी ।। हे प्रभु ! तेरे सेवकों के चरणों की धूलि पवित्र है। वे व्यक्ति भाग्यशाली हैं, जिनके मन में इस धूलि की इच्छा है। (ऐसे मनुष्य) लौकिक धन को नहीं चाहते, स्वर्ग की भी इच्छा नहीं रखते, बल्कि वे तो अपने अत्यन्त प्यारे प्रभु की प्रीति तथा गुरुमुखों की चरण-धूलि में ही मस्त रहते हैं। जो मनुष्य एक परमात्मा की ओट छोड़कर किसी दूसरी ओर नहीं जाते, माया के कोई भी जंजाल उन पर दबाव नहीं डाल सकते। हे नानक ! प्रभु ने जिनके हृदय में अपना नाम बसा दिया है, वे भगवान का रूप पूर्णसंत हैं ।। ४ ।।

।। सलोक ।। अनिक भेख अरु ङिआन धिआन मन हठि मिलिअउ न कोइ। कहु नानक किरपा भई भगतु ङिआनी सोइ ।। १ ।। ।। पउड़ी ।। ङंङा ङिआनु नही मुख बातउ। अनिक जुगति सासत्र करि भातउ। ङिआनी सोइ जा कै द्रिड़ सोऊ। कहत सुनत कछु जोगु न होऊ। ङिआनी रहत आगिआ द्रिड़ु जा कै। उसन सीत समसरि सभ ता कै। ङिआनी ततु गुरमुखि बीचारी। नानक जा कउ किरपा धारी ।। ५ ।।

।। सलोक ।। अनेकों धार्मिक वेश करने से, मन के हठ से समाधि लगाने से कोई मनुष्य परमात्मा को नहीं मिल सकता। हे नानक ! कह— जिस पर प्रभु-कृपा होवे, वही भक्त बन सकता है, वही परमात्मा के साथ ऐक्य कर सकता है ।। १ ।। ।। पउड़ी ।। केवल मौखिक बातों से, शास्त्रों की अनेक किस्म की युक्तियाँ इस्तेमाल करने से परमात्मा के साथ जान-पहचान नहीं हो सकती। केवल प्रभु-मिलाप की बातें कहने-सुनने से प्रभु-मिलाप नहीं हो सकता। परमात्मा के साथ वही जान-पहचान करनेवाला होता है, जिसके हृदय में प्रभु का पक्का निवास बने। जिसके हृदय में परमात्मा की रज़ा निश्चित टिकी रहे, वही असल ज्ञानी है, उसे सारा दुख-सुख एक समान प्रतीत होता है। हे नानक ! जिस मनुष्य पर प्रभु कृपा करे, जो गुरु के द्वारा जगत् के मूल प्रभु के गुणों का विचारक बन जाए, उसका मेल परमात्मा के साथ हो जाता है ।। ५ ।।

।। सलोकु ।। आवन आए स्रिसटि महि बिनु बूझे पसु ढोर। नानक गुरमुखि सो बुझै जा कै भाग मथोर ।।१।। ।।पउड़ी।। या जुग महि एकहि कउ आइआ। जनमत मोहिओ मोहनी माइआ।

गरभ कुंट महि उरध तप करते। सासि सासि सिमरत प्रभु रहते। उरझि परे जो छोडि छडाना। देवनहारु मनहि बिसराना। धारहु किरपा जिसहि गुसाई। इत उत नानक तिसु बिसरहु नाही ॥ ६ ॥

॥सलोकु॥ जगत् में उन व्यक्तियों ने केवल कहने के लिए ही मनुष्य-जन्म लिया, परन्तु जीवन का सही रास्ता समझे बिना वे पशु ही रहे। हे नानक! वह मनुष्य गुरु के द्वारा जीवन का सही रास्ता समझता है, जिसके मस्तक (पूर्व जन्मों के शुभ कर्मों) के भाग्य जाग जाएँ॥ १ ॥ ॥पउड़ी॥ मनुष्य इस जन्म में केवल परमात्मा का स्मरण करने के लिए जन्मा है, लेकिन जन्म लेते ही इसे ठगिनी माया ठग लेती है। (यह आम प्रचलित ख्याल है कि) माँ के पेट में विपरीत लटके हुए जीव, परमात्मा का भजन करते हैं, वह प्रत्येक श्वास में प्रभु को स्मरण करते रहते हैं (परन्तु प्रभु की विचित्र माया है कि) जिस माया को ज़रूर छोड़ जाना है, उसमें सारी ज़िन्दगी फँसे रहते हैं, जो प्रभु सारे पदार्थ देनेवाला है, उसे मन से भुला देते हैं। हे नानक! (कह—) हे मालिक प्रभु! जिस मनुष्य पर तू कृपा करता है, उसके मन से तुम लोक-परलोक में नहीं भुलाए जाते ॥ ६ ॥

॥ सलोकु ॥ आवत हुकमि बिनास हुकमि आगिआ भिंन न कोइ। आवन जाना तिह मिटै नानक जिह मनि सोइ ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ एऊ जीअ बहुतु ग्रभ वासे। मोह मगन मीठ जोनि फासे। इनि माइआ त्रै गुण बसि कीने। आपन मोह घटे घटि दीने। ए साजन कछु कहहु उपाइआ। जा ते तरउ बिखम इह माइआ। करि किरपा सतसंगि मिलाए। नानक ताकै निकटि न माए ॥ ७ ॥

॥ सलोकु ॥ जीव प्रभु के हुक्म में जन्मता है, हुक्म में ही मरता है। (कोई जीव प्रभु के हुक्म से विद्रोही नहीं हो सकता। हे नानक! (केवल) उस जीव का जन्म-मरण (का चक्र) समाप्त हो जाता है, जिसके मन में वह बसता है॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ ये जीव अनेकों योनियों में वास लेते हैं, मीठे मोह में मस्त होकर योनियों के चक्र में फँस जाते हैं। इस माया ने (जीवों को अपने) तीन गुणों के वश में कर रखा है, हरेक जीव के हृदय में इसने अपना मोह टिका दिया है। हे सज्जन! कोई ऐसा इलाज बता जिससे मैं इस कठिन माया से पार उतर सकूँ। हे नानक! (कह—) प्रभु अपनी कृपा करके जिस जीव को सत्संग में मिलाता है, माया उसके निकट नहीं आ सकती॥ ७ ॥

॥ सलोकु ॥ किरत कमावन सुभ असुभ कीने तिनि प्रभि आपि। पसु आपन हउ हउ करै नानक बिनु हरि कहा कमाति॥ १॥ ॥पउड़ी॥ एकहि आपि करावनहारा। आपहि पाप पुंन बिसथारा। इआ जुग जितु जितु आपहि लाइओ। सो सो पाइओ जु आपि दिवाइओ। उआ का अंतु न जानै कोऊ। जो जो करै सोऊ फुनि होऊ। एकहि ते सगला बिसथारा। नानक आपि सवारनहारा॥ ८॥

॥ सलोकु ॥ (हरेक जीव में बैठकर) सब भले-बुरे काम वह प्रभु आप कर रहा है। परन्तु हे नानक! मूर्ख मनुष्य अभिमान करता है कि मैं करता हूँ। प्रभु की प्रेरणा के बिना जीव कुछ नहीं कर सकता॥ १॥ ॥ पउड़ी॥ (जीवों से भले-बुरे काम) करानेवाला प्रभु केवल आप ही है, उसने आप ही भले-बुरे कामों का विस्तार किया है। इस मनुष्य-जन्म में जिस-जिस ओर प्रभु आप लगाता है, (उधर ही जीव लगते हैं), जो (बुद्धि) प्रभु आप जीवों को देता है, वही वह ग्रहण करते हैं। उस प्रभु के गुणों का कोई जीव अन्त नहीं जान सकता, (जगत् में) वही कुछ हो रहा है जो प्रभु आप करता है। हे नानक! यह सारा जगत्-प्रसार प्रभु द्वारा ही हुआ है, वह आप ही जीवों को सन्मार्ग दिखानेवाला है॥ ८॥

॥ सलोकु॥ राचि रहे बनिता बिनोद कुसम रंग बिख सोर। नानक तिह सरनी परउ बिनसि जाइ मै मोर॥ १॥ ॥ पउड़ी॥ रे मन बिनु हरि जह रचहु तह तह बंधन पाहि। जिह बिधि कतहू न छूटीऐ साकत तेऊ कमाहि। हउ हउ करते करम रत ता को भारु अफार। प्रीति नही जउ नाम सिउ तउ एऊ करम बिकार। बाधे जम की जेवरी मीठी माइआ रंग। भ्रम के मोहे नह बुझहि सो प्रभु सद हू संग। लेखै गणत न छूटीऐ काची भीति न सुधि। जिसहि बुझाए नानका तिह गुरमुखि निरमल बुधि॥ ९॥

॥ सलोकु॥ (हम जीव) स्त्री आदि के रंग-तमाशों में मस्त हो रहे हैं, पर यह माया का आडम्बर कसुंभे के पुष्प के समान (क्षणभंगुर है)। हे नानक! (कह—) मैं तो उस प्रभु की शरण लेता हूँ, (जिसकी कृपा से) अहंभावना तथा ममता दूर हो जाती है॥ १॥ ॥ पउड़ी॥ हे मेरे मन! प्रभु के अतिरिक्त जहाँ-जहाँ प्रेम करेगा, वहीं-वहीं प्रभु के बन्धन होंगे। हरि से बिछुड़े हुए व्यक्ति वही काम करते हैं कि उस तरीके से कहीं भी

इन बन्धनों से मुक्ति न हो सके। (तीर्थ आदि) कर्मों के प्रेमी (अपने कर्मों का) अभिमान करते-फिरते हैं, इस अहंकार का भार भी असह्य होता है, यदि प्रभु के नाम से प्रेम नहीं बना तो ये कर्म विकार-रूप हो जाते हैं। मीठी माया के कौतुकों में (फँसकर जीव) यम की फाँसी में बँध जाते हैं। दुबिधा में फँसे हुए जीवों को यह समझ नहीं आती कि प्रभु हमेशा हमारे साथ है। हम जीव माया में इतने ग्रस्त हैं कि (हमारे कुकर्मों का) लेखा लेने से हमारा छुटकारा नहीं हो सकता, (पानी के धोने से) गारे की दीवार की सफ़ाई नहीं हो सकती। हे नानक! (कह—) प्रभु आप जिस मनुष्य को सूझ देता है, गुरु की शरण लेकर उसकी बुद्धि पवित्र हो जाती है॥ ९॥

॥ सलोकु ॥ टूटे बंधन जासु के होआ साधू संगु। जो राते रंग एक कै नानक गूड़ा रंगु॥ १॥ ॥ पउड़ी ॥ रारा रंगहु इआ मनु अपना। हरि हरि नामु जपहु जपु रसना। रे रे दरगह कहै न कोऊ। आउ बैठु आदरु सुभ देऊ। उआ महली पावहि तू बासा। जनम मरन नह होइ बिनासा। मसतकि करमु लिखिओ धुरि जा कै। हरि संपै नानक घरि ता कै॥ १०॥

॥ सलोकु ॥ जिस मनुष्य के माया के बन्धन टूटने पर आते हैं, उसे गुरु की संगति प्राप्त होती है। हे नानक! जो एक प्रभु के प्रेम-रंग में रँगे जाते हैं, वह रंग ऐसा गहरा होता है (कि सामान्य पुष्प-रंग के समान) उतरता नहीं जाता॥ १॥ ॥पउड़ी॥ (हे भाई!) जीभ से सदा हरि-नाम का जाप जपो। अपने इस मन को (प्रभु-नाम के रंग में) रंगो। प्रभु के दरबार में तुम्हें कोई निरादर के शब्द नहीं बोलेगा, (बल्कि) अच्छा आदर मिलेगा, (कहेंगे) आओ बैठो! यदि तू नाम में मन रँग ले तो तुझे प्रभु के दरबार में ठिकाना मिल जायगा, न जन्म-मरण का चक्र रह जाएगा और न ही कभी आत्मिक मौत होगी। परन्तु हे नानक! परमात्मा द्वारा ही जिस मनुष्य के मस्तक पर कृपा का लेख लिखा होता है, उसी के हृदय-घर में यह नाम-धन एकत्रित होता है॥ १०॥

॥ सलोकु ॥ लालच झूठ बिकार मोह बिआपत मूड़े अंध। लागि परे दुरगंध सिउ नानक माइआ बंध॥१॥ ॥पउड़ी॥ लला लपटि बिखै रस राते। अहंबुधि माइआ मद माते। इआ माइआ महि जनमहि मरना। जिउ जिउ हुकमु तिवै तिउ

करना। कोऊ ऊन न कोऊ पूरा। कोऊ सुघरु न कोऊ मूरा। जितु जितु लावहु तितु तितु लगना। नानक ठाकुर सदा अलिपना ॥ ११ ॥

॥ सलोकु ॥ हे नानक ! जो मनुष्य माया के बन्धनों में फँस जाते हैं, उन ज्ञानहीन मूर्खों पर लालच, झूठ आदि विकार दबाव डाल देते हैं और वे कुकर्मों में लगे रहते हैं ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ जो-जो मनुष्य माया के नशे में मस्त रहते हैं, जिनकी बुद्धि पर अहं का परदा पड़ जाता है, वे मनुष्य विषयों के स्वाद में चिपटे रहते हैं और इस माया के भीतर फँसकर जन्म-मरण के चक्र में पड़ जाते हैं, (पर जीव के क्या वश ?) जैसे प्रभु की रज़ा होती है, वैसे ही जीव काम करते हैं। (अपनी चतुराई से) न कोई जीव पूर्ण बन सकता है, न कोई कमज़ोर रह जाता है, न कोई (अपने बल के आसरे) बुद्धिमान हो गया है, न मूर्ख रह गया है। हे प्रभु ! जिस-जिस दिशा में तुम जीवों को प्रेरित करते हो, उस-उस ओर ही ये लग जाते हैं। हे नानक ! (कैसा आश्चर्यजनक खेल है, सब जीवों में बैठकर पालनकर्त्ता प्रभु प्रेरणा कर रहा है, फिर भी) प्रभु आप माया के प्रभाव से परे है ॥ ११ ॥

॥ सलोकु ॥ लाल गुपाल गोबिंद प्रभ गहिर गंभीर अथाह। दूसर नाही अवर को नानक वेपरवाह ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ लला ता कै लवै न कोऊ। एकहि आपि अवर नह होऊ। होवनहारु होत सद आइआ। उआ का अंतु न काहू पाइआ। कीट हसति महि पूर समाने। प्रगट पुरख सभ ठाऊ जाने। जा कउ दीनो हरि रसु अपना। नानक गुरमुखि हरि हरि तिह जपना ॥ १२ ॥

॥ सलोकु ॥ परमात्मा सबका प्यारा है, सृष्टि का रक्षक है, सबकी जाननेवाला है, उसका रहस्य नहीं जाना जा सकता, विशाल हृदय वाला है, वह एक ऐसा समुद्र है जिसकी थाह का पता नहीं लगता, कोई चिन्ता-फ़िक्र आदि उसके निकट नहीं आते। हे नानक ! उस जैसा दूसरा कोई नहीं ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ उस परमात्मा के बराबर कोई नहीं है। (अपने जैसा) वह आप ही आप है, (उस जैसा) दूसरा कोई नहीं। सदा से ही वह प्रभु अस्तित्व वाला चला आ रहा है, किसी ने उसके अस्तित्व का ओर-छोर नहीं देखा। चींटी से लेकर हाथी तक सब में प्रभु व्यापक है, वह सर्वव्यापक परमात्मा सर्वत्र प्रत्यक्ष गोचर है। हे नानक ! जिस व्यक्ति को प्रभु ने अपने नाम का स्वाद दिया है, वह व्यक्ति गुरु की शरण लेकर उसे जपता है ॥ १२ ॥

॥ सलोकु ॥ आतम रसु जिह जानिआ हरि रंग सहजे माणु। नानक धनि धनि धंनि जन आए ते परवाणु ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ आइआ सफल ताहू को गनीऐ। जासु रसन हरि हरि जसु भनीऐ। आइ बसहि साधू कै संगे। अनदिनु नामु धिआवहि रंगे। आवत सो जनु नामहि राता। जा कउ दइआ मइआ बिधाता। एकहि आवन फिरि जोनि न आइआ। नानक हरि कै दरसि समाइआ ॥ १३ ॥

॥ सलोकु ॥ हे नानक ! जो व्यक्ति स्थिर अवस्था में टिककर प्रभु की स्मृति का आनन्द लेते हैं, जिन्होंने इस आत्मिक आनन्द से ऐक्य किया है, वे भाग्यशाली हैं, उनका ही जगत् में जन्मना सफल है ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ (जगत् में) उस मनुष्य का आना सफल मानो, जिसकी जीभ सदा परमात्मा की गुणस्तुति करती है। (जो व्यक्ति) गुरु की शरण में आ टिकते हैं, वे प्रति-पल प्रेम सहित परमात्मा का नाम-स्मरण करते हैं। जिस मनुष्य पर सृजनहार की कृपा हुई, वह सदा परमात्मा के नाम में मस्त रहता है, (जगत् में वही) आया समझो। हे नानक ! जो मनुष्य परमात्मा के दर्शन में लीन रहता है, (जगत् में) उसका जन्म एक बार होता है, वह बार-बार योनियों में नहीं भटकता ॥ १३ ॥

॥ सलोकु ॥ यासु जपत मनि होइ अनंदु बिनसै दूजा भाउ। दूख दरद त्रिसना बुझै नानक नामि समाउ ॥१॥ ॥पउड़ी॥ यया जारउ दुरमति दोऊ। तिसहि तिआगि सुख सहजे सोऊ। यया जाइ परहु संत सरना। जिह आसर इआ भवजलु तरना। यया जनमि न आवै सोऊ। एक नाम ले मनहि परोऊ। यया जनमु न हारीऐ गुर पूरे की टेक। नानक तिह सुखु पाइआ जा कै हीअरै एक ॥ १४ ॥

॥ सलोकु ॥ हे नानक ! जिस प्रभु का नाम जपते हुए मन में आनन्द पैदा होता है, (प्रभु से अलग) किसी दूसरे का मोह दूर हो सकता है, माया का लालच, दुःख-क्लेश मिट जाता है, उसके नाम में टिके रहो ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ दुर्बुद्धि तथा माया-मोह को जला दो, इसे त्यागने पर ही सुखमय स्थिर अवस्था में टिके रहोगे। जाकर संतों की शरण लो, इसी आसरे पर इस संसार-समुद्र से (सकुशल) पार उतरा जा सकता है। जो व्यक्ति एक प्रभु का नाम लेकर अपने मन में पिरो लेता है, वह पुनःपुनः जन्म नहीं लेता। हे नानक ! पूर्णगुरु का आसरा लेने पर मनुष्य-जन्म व्यर्थ नहीं

जाता। जिस मनुष्य के हृदय में एक प्रभु बस गया है, उसने आत्मिक आनन्द प्राप्त कर लिया है ॥ १४ ॥

॥ सलोकु ॥ अंतरि मन तन बसि रहे ईत ऊत के मीत। गुरि पूरै उपदेसिआ नानक जपीऐ नीत ॥१॥ ॥पउड़ी॥ अनदिनु सिमरहु तासु कउ जो अंति सहाई होइ। इह बिखिआ दिन चारि छिअ छाडि चलिओ सभु कोइ। का को मात पिता सुत धीआ। ग्रिह बनिता कछु संगि न लीआ। ऐसी संचि जु बिनसत नाही। पति सेती अपुनै घरि जाही। साध संगि कलि कीरतनु गाइआ। नानक ते ते बहुरि न आइआ ॥ १५ ॥

॥ सलोकु ॥ पूर्णगुरु जिस मनुष्य को लोक-परलोक का साथ देनेवाला परमात्मा निकट दिखा देता है, परमात्मा उस मनुष्य के मन-तन में हर समय बस जाता है। हे नानक ! ऐसे प्रभु को सदा स्मरण करना चाहिए ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ जो प्रभु अन्तिम समय में सहायता करता है, उसे हर समय याद रखो। यह माया तो दस दिनों की साथिन है, हरेक जीव इसे यहीं छोड़कर चला जाता है। माँ, बाप, बेटा, बेटी कोई भी किसी का सदा साथी नहीं है। घरेलू स्त्री, कोई भी शक्ति आदि जीव यहाँ से लेकर नहीं जा सकता। ऐसी राशि-पूंजी एकत्रित कर, जिसका कभी नाश न होवे और आदर सहित उस घर में जा सके, जहाँ से कोई न निकाल सके। हे नानक ! जिन व्यक्तियों ने मनुष्य-जन्म लेकर सत्संग में प्रभु की गुणस्तुति की, वे दोबारा जन्म-मरण के चक्र में नहीं आए ॥ १५ ॥

॥ सलोकु ॥ अति सुंदर कुलीन चतुर मुखि ङिआनी धनवंत। मिरतक कहीअहि नानका जिह प्रीति नही भगवंत ॥१॥ ॥ पउड़ी ॥ ङंङा खटु सासत्र होइ ङिआता। पूरकु कुंभक रेचक करमाता। ङिआन धिआन तीरथ इसनानी। सोमपाक अपरस उदिआनी। राम नाम संगि मनि नही हेता। जो कछु कीनो सोऊ अनेता। उआ ते ऊतमु गनउ चंडाला। नानक जिह मनि बसहि गुपाला ॥ १६ ॥

॥ सलोकु ॥ यदि कोई बड़े सुन्दर, कुलीन, चतुर, ज्ञानी तथा धनवान भी हों, परन्तु, हे नानक ! जिनके भीतर भगवान की प्रीति नहीं है, वे मुर्दे ही कहे जाते हैं ॥ १ ॥ ॥पउड़ी॥ कोई मनुष्य छः शास्त्रों के जाननेवाला हो, श्वास चढ़ाने, रोकने तथा नीचे उतारने के कर्म करता हो, धार्मिक चर्चा

करता हो, समाधियाँ लगाता हो, अपने हाथों से रोटी पकाता हो, जंगलों में रहता हो परन्तु यदि उसके मन में परमात्मा के नाम के साथ प्रेम नहीं तो उसने जो कुछ किया, व्यर्थ ही किया। हे नानक ! (कह— जिस मनुष्य के मन में प्रभुजी नहीं बसते) उससे मैं एक निम्न जाति के व्यक्ति को भला समझता हूँ, जिसके मन में प्रभुजी बसते हैं ॥ १६ ॥

॥ सलोकु ॥ कुंट चारि दह दिसि भ्रमे करम किरति की रेख। सूख दूख मुकति जोनि नानक लिखिओ लेख ॥ १ ॥ ॥ पवड़ी ॥ कका कारन करता सोऊ। लिखिओ लेखु न मेटत कोऊ। नही होत कछु दोऊ बारा। करनैहारु न भूलनहारा। काहू पंथु दिखारै आपै। काहू उदिआन भ्रमत पछुतापै। आपन खेलु आप ही कीनो। जो जो दीनो सु नानक लीनो ॥ १७ ॥

॥सलोकु॥ हे नानक ! जीव अपने किए कर्मों के संस्कारों के अनुसार चारों दिशाओं में भटकते हैं। लिखे लेख के अनुसार ही सुख-दुःख, मुक्ति अथवा जन्म-मरण के चक्र मिलते हैं ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ कर्त्तार आप ही संयोग बनानेवाला है। कोई जीव उसके लिखे लेख को मिटा नहीं सकता। सृजनहार भूलनेवाला नहीं है, कोई भी काम उसे दोबारा नहीं करना पड़ता। किसी जीव को आप ही (जिन्दगी का सही) रास्ता दिखाता है, किसी को आप ही जंगल में भटकाकर पश्चाताप वाली दिशा में भेजता है। यह सारा जगत्-खेल प्रभु ने आप ही बनाया है। हे नानक ! जो कुछ वह जीवोंको देता है, वही उन्हें मिलता है ॥ १७ ॥

॥ सलोकु ॥ खात खरचत बिलछत रहे टूटि न जाहि भंडार। हरि हरि जपत अनेक जन नानक नाहि सुमार ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ खखा खूना कछु नही तिसु संम्रथ कै पाहि। जो देना सो दे रहिओ भावै तह तह जाहि। खरचु खजाना नाम धनु इआ भगतन की रासि। खिमा गरीबी अनद सहज जपत रहहि गुण तास। खेलहि बिगसहि अनद सिउ जा कउ होत क्रिपाल। सदीव गनीव सुहावने राम नाम ग्रिहि माल। खेदु न दूखु न डानु तिह जा कउ नदरि करी। नानक जो प्रभ भाणिआ पूरी तिना परी ॥ १८ ॥

॥ सलोकु ॥ हे नानक ! अनेकों जीव, जो कि गिनती से परे हैं, परमात्मा के नाम जपते हैं, (उनके पास गुणस्तुति के इतने भण्डार एकत्रित

हो जाते हैं कि) वह उन खज़ानों को खाते और खर्च करते हैं, लेकिन वह कभी समाप्त नहीं होते हैं ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ प्रभु सब शक्तियों का मालिक है, उसके पास किसी चीज़ की कमी नहीं। उसके भक्तजन उसकी रज़ा में चलते हैं, उन्हें वह सब कुछ देता है। प्रभु का नाम-धन भक्तों की राशि-पूँजी है, इसी खज़ाने को वे सदा इस्तेमाल करते हैं। वे सदा गुणों के भण्डार-प्रभु को स्मरण करते हैं और उनके भीतर क्षमा, नम्रता, आत्मिक आनन्द और स्थिरता (आदि गुण प्रफुल्लित होते हैं)। परमात्मा जिन पर कृपा करता है, वह आत्मिक आनन्द के साथ जीवन का खेल खेलते हैं और सदा खिले रहते हैं। वे सदा ही धनाढ्य हैं, उनके मस्तक चमकते हैं, क्योंकि उनके हृदय-घर में असीम नाम-धन है। जिन पर प्रभु कृपा-दृष्टि करता है, उनकी आत्मा को कोई क्लेश नहीं, कोई दुःख नहीं, (जीवन-व्यापार में उन्हें कोई ज़िम्मेवारी) हानि नहीं लगती। हे नानक! जो मनुष्य प्रभु को अच्छे लगते हैं, (जीवन-व्यापार में) वे सफल हो जाते हैं ॥ १८ ॥

॥ सलोकु ॥ गनि मिनि देखहु मनै माहि सर पर चलनो लोग। आस अनित गुरमुखि मिटै नानक नाम अरोग ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ गगा गोबिद गुण रवहु सासि सासि जपि नीत। कहा बिसासा देह का बिलम न करिहो मीत। नह बारिक नह जोबनै नह बिरधी कछु बंधु। ओह बेरा नह बूझीऐ जउ आइ परै जम फंधु। गिआनी धिआनी चतुर पेखि रहनु नही इह ठाइ। छाडि छाडि सगली गई मूड़ तहा लपटाहि। गुर प्रसादि सिमरत रहै जाहू मसतकि भाग। नानक आए सफल ते जा कउ प्रिअहि सुहाग ॥ १९ ॥

॥ सलोकु ॥ (हे भाई!) मन में भली प्रकार विचारकर देख लो, सारा जगत् अवश्य (अपने-अपने क्रम से) चला जायगा। हे नानक! प्रभु का नाम मनुष्य के मन को (आशा आदि के रोग से) बचा लेता है, गुरु की शरण लेने से नाशवंत पदार्थों की आशा मिट जाती है ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ (हे मित्र!) प्रत्येक श्वास गोबिंद का नाम जपो, प्रभु के गुण स्मरण करते रहो, (देखना) ढील न करना, इस शरीर का कोई विश्वास नहीं। बालपन हो, यौवन हो, बुढ़ापा हो (मृत्यु को आने से) किसी वक्त भी रुकावट नहीं है। उस समय का पता नहीं लग सकता, जब यमराज का रस्सा (गले में) आ पड़ता है। देखो! ज्ञानी हों, सुरति जोड़नेवाले हों, चतुर हों, किसी को भी सदा यहाँ नहीं रहना। मूर्ख ही उन पदार्थों की प्राप्ति में लगते हैं, जिन्हें समस्त दुनिया छोड़ गई। जिस मनुष्य के माथे

पर भाग्यों का लेख प्रकट हो, वह गुरु की कृपा से सदा प्रभु का नाम-स्मरण करता रहता है। हे नानक! जिन्हें प्यारे प्रभु का सौभाग्य प्राप्त है, उनका ही जगत् में आना सफल है ॥ १९ ॥

॥ सलोकु ॥ घोखे सासत्र बेद सभ आन न कथतउ कोइ। आदि जुगादी हुणि होवत नानक एकै सोइ ॥१॥ ॥पउड़ी॥ घघा घालहु मनहि एह बिनु हरि दूसर नाहि। नह होआ नह होवना जत कत ओही समाहि। घूलहि तउ मन जउ आवहि सरना। नाम ततु कलि महि पुनहचरना। घालि घालि अनिक पछुतावहि। बिनु हरि भगति कहा थिति पावहि। घोलि महारसु अंम्रितु तिह पीआ। नानक हरि गुरि जा कउ दीआ ॥ २० ॥

॥ सलोकु ॥ सारे वेद-शास्त्र विचारकर देखे हैं, इनमें से कोई भी यह नहीं कहता कि परमात्मा के अतिरिक्त कोई दूसरा भी सदा स्थिर रहनेवाला है। हे नानक! एक परमात्मा है जो जगत् के आदिकाल से है, युगों के आदि से है, अब भी है और आगे भी रहेगा ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ (हे भाई!) अपने मन में यह विश्वास पक्का कर लो कि प्रभु के अतिरिक्त कोई सदा स्थिर नहीं है, न कोई अब तक हुआ, न होगा। सर्वत्र वह प्रभु ही मौजूद है। हे मन! यदि तू उस सत्यस्वरूप हरि की शरण ले, तो ही रस प्राप्त करेगा। इस मनुष्य-जन्म में एक प्रभु का नाम ही है जो किए हुए विकारों का प्रभाव मिटा सकता है। परमात्मा की भक्ति के बिना दूसरे कहीं भी शान्ति नहीं मिलती। अनेकों ही व्यक्ति (हरि-स्मरण के बिना) दूसरी साधनाओं में लगे रहकर आखिर पछताते ही हैं। हे नानक! गुरु ने जिसे हरि-नाम की देन दी, उसने महा-रसवाला (अति स्वादिष्ट) नाम-अमृत घोलकर पान कर लिया ॥ २० ॥

॥ सलोकु ॥ ङणि घाले सभ दिवस सास नह बढन घटन तिलु सार। जीवन लोरहि भरम मोह नानक तेऊ गवार ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ ङंङा ङ्रासै कालु तिह जो साकत प्रभि कीन। अनिक जोनि जनमहि मरहि आतम रामु न चीन। ङिआन धिआन ताहू कउ आए। करि किरपा जिह आपि दिवाए। ङणती ङणी नही कोऊ छूटै। काची गागरि सर पर फूटै। सो जीवत जिह जीवत जपिआ। प्रगट भए नानक नह छपिआ ॥ २१ ॥

॥ सलोकु ॥ (जीव की उम्रके) सारे दिन, श्वास गिनकर ही (जीव को जगत् में) भेजता है, (उस गिनती से) एक तिलमात्र भी कम-अधिक

नहीं होता। हे नानक! वे व्यक्ति मूर्ख हैं जो मोह की दुबिधा में पड़कर जीवन जीना चाहते हैं ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ मौत का भय उन व्यक्तियों को ग्रसता है जिन्हें प्रभु ने अपने से अलग कर दिया है, उन्होंने व्यापक प्रभु को न पहचाना और वे अनेक योनियों में जन्मते-मरते रहते हैं। (मृत्यु का भय दूर करके) प्रभु के साथ मेल उन्होंने ही किया, प्रभु में सुरति उन्होंने जोड़ी, जिन पर प्रभु ने कृपा करके यह देन दी। (यह शरीर) कच्चा घड़ा है जिसे अवश्य टूटना है, चिन्तन करने पर (भी इस होनहार से) कोई व्यक्ति बच नहीं सकता। (पर) हे नानक! (कोई लम्बी उम्र जिया और थोड़ी उम्र जिया) उसी को जीवित समझो, जिसने जीवन में परमात्मा का स्मरण किया है, स्मरण करनेवाला मनुष्य छिपा नहीं रहता, जगत् में प्रसिद्धि पाता है ॥ २१ ॥

॥ सलोकु ॥ चिति चितवउ चरणारबिंद ऊध कवल बिगसांत। प्रगट भए आपहि गुोबिंद नानक संत मतांत ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ चचा चरन कमल गुर लागा। धनि धनि उआ दिन संजोग सभागा। चारि कुंट दह दिसि भ्रमि आइओ। भई क्रिपा तब दरसनु पाइओ। चार बिचार बिनसिओ सभ दूआ। साध संगि मनु निरमल हूआ। चिंत बिसारी एक द्रिसटेता। नानक गिआन अंजनु जिह नेत्रा ॥ २२ ॥

॥ सलोकु ॥ (मैं तो अपने) चित्त में प्रभु के सुन्दर चरण टिकाता हूँ, (सूर्य के उदय के समान प्रभु का ध्यान आते ही सोया हुआ) विपरीत मन, कमल के पुष्प की तरह खिल पड़ता है। हे नानक! गुरु की शिक्षा से गोबिंद आप ही उस हृदय में प्रकट हो जाता है ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ वे दिन भाग्यशाली हैं, वह समय भाग्यशाली समझो, जब (किसी जीव का मस्तक) गुरु के सुन्दर चरणों पर लगे। (प्रभु के दर्शनों के लिए) जीव चारों तरफ दसों दिशाओं में भटक आए (लेकिन) दर्शन तब होता है, जब उसकी कृपा हो। गुरु की संगति में मन पवित्र हो जाता है, विचार स्वच्छ हो जाते हैं, माया का सारा प्रेम समाप्त हो जाता है। हे नानक! (गुरु की दी हुई) सूझ का सुरमा जिसकी आँखों में पड़ता है, उसे (सर्वत्र) एक परमात्मा का ही दर्शन होता है, वह दूसरी सब चिन्ताएं भुला देता है ॥ २२ ॥

॥ सलोकु ॥ छाती सीतल मनु सुखी छंत गोबिद गुन गाइ। ऐसी किरपा करहु प्रभ नानक दास दसाइ ॥१॥ ॥पउड़ी॥ छछा छोहरे दास तुमारे। दास दासन के पानीहारे। छछा छारु

होत तेरे संता । अपनी क्रिपा करहु भगवंता । छाडि सिआनप बहु चतुराई । संतन की मन टेक टिकाई । छारु की पुतरी परमगति पाई । नानक जा कउ संत सहाई ॥ २३ ॥

॥ सलोकु ॥ हे नानक ! (कह—) हे प्रभु ! मैं तेरे दासों का दास हूँ । मुझ पर ऐसी कृपा कर कि तेरी गुणस्तुति की वाणी गाकर मेरे दिल में ठण्ड पड़ जाए, मेरा मन सुखी हो जाए ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ हे भगवान ! अपनी कृपा कर, मैं तेरे संतजनों की चरण-धूलि हो जाऊँ । मैं तेरा दास हूँ, तेरा बच्चा हूँ, तेरे दासों के दासों का पानी भरनेवाला बनूँ, (कृपा करके मुझे यह स्थिति दो) । हे मन ! सारी चतुराई-चालाकी छोड़कर संतजनों का आसरा ले । हे नानक ! संतजन जिस मनुष्य की सहायता करते हैं, उसका यह शरीर तो चाहे मिट्टी का पुतला है, परन्तु इसमें वह ऊँची से ऊँची आत्मिक अवस्था प्राप्त कर लेता है ॥ २३ ॥

॥ सलोकु ॥ जोर जुलम फूलहि घनो काची देह बिकार । अहंबुधि बंधन परे नानक नाम छुटार ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ जजा जानै हउ कछु हूआ । बाधिओ जिउ नलिनी भ्रमि सूआ । जउ जानै हउ भगतु गिआनी । आगै ठाकुरि तिलु नही मानी । जउ जानै मै कथनी करता । बिआपारी बसुधा जिउ फिरता । साधसंगि जिह हउमै मारी । नानक ता कउ मिले मुरारी ॥२४॥

॥ सलोकु ॥ जो व्यक्ति दूसरों पर अत्याचार या अनाचार करके अभिमान करते हैं, (शरीर तो उनका भी नश्वर है), उनका नश्वर शरीर व्यर्थ चला जाता है । वे 'मैं बड़ा' 'मैं बड़ा' करनेवाली मति के बन्धनों में जकड़े जाते हैं । हे नानक ! इन बन्धनों से प्रभु का नाम ही छुड़ा सकता है ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ जो मनुष्य यह समझने लगता है कि मैं बड़ा बन गया हूँ, वह इस अहंकार में यों बँध जाता है जैसे तोता (दाने के) भ्रम में कमलिनी के साथ पकड़ा जाता है । जब मनुष्य यह समझता है कि मैं भक्त हो गया हूँ, मैं ज्ञानी बन गया हूँ, तो आगे प्रभु उसकी इस अहंकार-भावना का मूल्य रत्तीमात्र भी नहीं स्वीकारता (मानता) । जब मनुष्य यह समझ लेता है कि मैं सुन्दर धार्मिक व्याख्यान कर लेता हूँ तो वह फेरी वाले व्यापारी के समान ही धरती पर चलता-फिरता है । हे नानक ! जिस मनुष्य ने सत्संगति में जाकर अपनी अहंवृत्ति का नाश किया है, उसी को परमात्मा मिलता है ॥ २४ ॥

॥ सलोकु ॥ झालाघे उठि नामु जपि निसि बासुर आराधि । काहा तुझै न बिआपई नानक मिटै ऊपाधि ॥ १ ॥

।। पउड़ी ।। झझा झूरनु मिटै तुमारो । राम नाम सिउ करि बिउहारो । झूरत झूरत साकत मूआ । जा कै रिदै होत भाउ बीआ । झरहि कसंमल पाप तेरे मनूआ । अंम्रित कथा संत संगि सुनूआ । झरहि काम क्रोध द्रुसटाई नानक जा कउ क्रिपा गुसाई ।। २५ ।।

।। सलोकु ।। हे नानक ! (कह— हे भाई !) ब्रह्ममुहूर्त में उठकर प्रभु का नाम जप । (इतना ही नहीं) दिन रात्रि (हरवक्त) याद कर । कोई चिन्ता-फ़िक्र तुझ पर दबाव नहीं डाल सकेगा, तेरे भीतर से वैर-विरोध, झगड़ेवाला स्वभाव ही मिट जायगा ।। १ ।। ।। पउड़ी ।। (हे वनजारे जीव !) परमात्मा के नाम के द्वारा व्यापार कर, तेरी चिन्ता एवं फ़िक्र मिट जायगी । प्रभु से बिछुड़ा हुआ व्यक्ति चिन्ता तथा दुःख में ही आत्मिक मौत में मरता है क्योंकि उसके हृदय में (परमात्मा को भुला कर) माया का प्रेम बना होता है । हे भाई ! सत्संग में जाकर परमात्मा की आत्मिक जीवन देनेवाली गुणस्तुति सुनते हुए, तेरे मन से सारे पाप-विकार समाप्त हो जाएंगे । हे नानक ! जिस मनुष्य पर सृष्टि का मालिक प्रभु कृपा करता है, (उसके भीतर नाम बसता है, और) उसके काम-क्रोध आदि सारे वैरी नष्ट हो जाते हैं ।। २५ ।।

।। सलोकु ।। ञतन करहु तुम अनिक बिधि रहनु न पावहु मीत । जीवत रहहु हरि हरि भजहु नानक नाम परीति ।। १ ।। ।। पवड़ी ।। ञंञा ञाणहु द्रिड़ु सही बिनसि जात एह हेत । गणती गणउ न गणि सकउ ऊठि सिधारे केत । ञो पेखउ सो बिनसतउ का सिउ करीऐ संगु । ञाणहु इआ बिधि सही चित झूठउ माइआ रंगु । ञाणत सोई संतु सुइ भ्रमते कीचत भिंन । अंध कूप ते तिह कढहु जिह होवहु सुप्रसंन । ञा कै हाथि समरथ ते कारन करनै जोग । नानक तिह उसतति करउ ञाहू कीओ संजोग ।। २६ ।।

।। सलोकु ।। हे मित्र ! (निस्सन्देह) अनेक प्रकार के यत्न तुम कर देखो, (यहाँ सदा के लिए) टिके नहीं रह सकते । हे नानक ! (कह—) यदि प्रभु के नाम के साथ प्रेम करोगे, यदि सदा हरि-नाम स्मरण करोगे तो आत्मिक जीवन मिलेगा ।। १ ।। ।। पउड़ी ।। हे भाई ! यह बात निश्चित समझ लो कि दुनियावी मोह नष्ट हो जाएंगे ; कितने (जीव जगत् से) चले गए हैं, यह गिनती न मैं करता हूं, न कर सकता हूँ । जो कुछ मैं देख रहा

हूँ, वह नश्वर है, (फिर) गहरी प्रीति किससे की जाए ? हे मेरे हृदय ! इसे ठीक जान कि माया से प्रेम झूठा है। (हे प्रभु !) जिस व्यक्ति पर तुम सन्तुष्ट होते हो, उसे मोह के अँधेरे कुएँ से तुम निकाल लेते हो। ऐसे मनुष्य माया वाली दुबिधा से बच जाते हैं। ऐसा व्यक्ति ही संत है, वही सही जीवन को समझता है। हे नानक ! (कह—) मैं उस प्रभु की गुणस्तुति करता हूँ जो (कृपा करके गुणस्तुति करने का यह) संयोग मेरे वास्ते बनाता है, जिसके हाथ में ही यह करने की सामर्थ्य है और जो सारे संयोग बनाने योग्य भी है ॥ २६ ॥

॥ सलोकु ॥ टूटे बंधन जनम मरन साध सेव सुखु पाइ। नानक मनहु न बीसरै गुण निधि गोबिद राइ ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ टहल करहु तउ एक की जा ते ब्रिथा न कोइ। मनि तनि मुखि हीऐ बसै जो चाहहु सो होइ। टहल महल ता कउ मिलै जा कउ साध क्रिपाल। साधू संगति तउ बसै जउ आपन होहि दइआल। टोहे टाहे बहु भवन बिनु नावै सुखु नाहि। टलहि जाम के दूत तिह जु साधू संगि समाहि। बारि बारि जाउ संत सदके। नानक पाप बिनासे कदि के ॥ २७ ॥

॥ सलोकु ॥ हे नानक ! गुणों का भण्डार गोबिंद जिस मनुष्य के मन से भूलता नहीं है, उसके वे मोह-बन्धन टूट जाते हैं जो जन्म-मरण के चक्र में डालते हैं, वह मनुष्य गुरु की सेवा करके आत्मिक आनन्द प्राप्त करता है ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ (हे भाई !) केवल एक परमात्मा की सेवा-भक्ति करो, जिसके द्वार से कोई खाली नहीं जाता। यदि तुम्हारे मन, तन, मुख तथा हृदय में प्रभु बस जाए तो मुँह-माँगा पदार्थ मिलेगा। पर यह सेवा-भक्ति का अवसर उसी को मिलता है जिस पर गुरु दयालु होवे। और, गुरु की संगति में मनुष्य तब टिकता है जब प्रभुजी स्वयं कृपा करें। हमने समस्त स्थान खोजकर देख लिए हैं, प्रभु के भजन के बिना आत्मिक सुख कहीं भी नहीं। जो व्यक्ति गुरु के दरबार में आपा लीन कर लेते हैं, उनसे तो यमदूत भी अलग हो जाते हैं। हे नानक ! (कह—) मैं बार-बार गुरु पर बलिहारी जाता हूँ। जो मनुष्य गुरु-द्वार पर गिरता है, उसके कई जन्मों के किए अशुभ कर्मों के संस्कार नष्ट हो जाते हैं ॥ २७ ॥

॥ सलोकु ॥ ठाक न होती तिनहु दरि जिह होवहु सुप्रसंन। जो जन प्रभि अपुने करे नानक ते धनि धंनि ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ ठठा मनूआ ठाहहि नाही। जो सगल तिआगि एकहि लपटाही।

ठहकि ठहकि माइआ संगि मूए । उआ कै कुसल न कतहू हूए । ठांढि परी संतह संगि बसिआ । अंम्रित नामु तहा जीअ रसिआ । ठाकुर अपुने जो जनु भाइआ । नानक उआ का मनु सीतलाइआ ।। २८ ।।

।। सलोकु ।। (हे प्रभु !) जिन पर तुम कृपा करते हो; उनके मार्ग में तेरे द्वार पर पहुँचते हुए कोई रोक नहीं पड़ती । हे नानक ! (कह—) वे व्यक्ति सौभाग्यशाली हैं, जिन्हें प्रभु ने अपने बना लिए हैं ।। १ ।। ।। पउड़ी ।। जो मनुष्य (माया के) सारे (मोह) त्यागकर केवल प्रभु-चरणों में ही जुड़े रहते हैं, वे किसी का मन नहीं दुखाते । (परन्तु) जो मनुष्य माया के मोह में फँसकर बैर-विरोध बनाकर आत्मिक मौत प्राप्त करते हैं, उनके भीतर कभी आत्मिक आनन्द नहीं आ सकता । जो मनुष्य गुरमुखों की संगति में निवास रखता है, उसके मन में ठण्ड पड़ी रहती है, प्रभु का आत्मिक अमरत्व देनेवाला नाम उसकी आत्मा में मिल जाता है । हे नानक ! जो मनुष्य प्यारे परमात्मा को अच्छा लगने लगता है, उसका मन सदा शान्त रहता है ।। २८ ।।

।। सलोकु ।। डंडउति बंदन अनिक बार सरब कला समरथ । डोलन ते राखहु प्रभू नानक दे करि हथ ।। १ ।। ।। पउड़ी ।। डडा डेरा इहु नही जह डेरा तह जानु । उआ डेरा का संजमो गुर कै सबदि पछानु । इआ डेरा कउ स्रमु करि घालै । जा का तसू नही संगि चालै । उआ डेरा की सो मिति जानै । जा कउ द्रिसटि पूरन भगवानै । डेरा निहचलु सचु साधसंग पाइआ । नानक ते जन नह डोलाइआ ।। २९ ।।

।। सलोकु ।। हे नानक ! (ऐसे प्रार्थना कर—) हे सर्वशक्तिमान प्रभु ! मैं अनेक बार तुझे नमस्कार करता हूँ । मुझे माया के मोह में विचलित होने से अपना हाथ देकर बचा ले ।। १ ।। ।। पउड़ी ।। (हे भाई !) यह संसार तेरे सदा टिके रहनेवाला स्थान नहीं है, उस ठिकाने को पहचान, जो निश्चित (असली) रूप से रहने का घर है । गुरु के शब्द में जुड़कर यह सूझ प्राप्त कर कि उस घर में सदा टिके रहने की क्या युक्ति है । मनुष्य इस दुनियावी डेरे के लिए बड़ी मेहनत करके साधना करता है, पर (मौत आने पर) इसका थोड़ा बहुत भी इसके साथ नहीं जाता । उस शाश्वत ठिकाने की रीति-मर्यादा की केवल उस मनुष्य को समझ आती है, जिस पर पूर्णप्रभु की कृपा-दृष्टि होती है । हे नानक ! सत्संगति में आकर जो

मनुष्य शाश्वत अटल आत्मिक आनन्द वाला ठिकाना प्राप्त कर लेते हैं, उनका मन विचलित नहीं होता ॥ २९ ॥

॥ सलोकु ॥ ढाह न लागे धरम राइ किनहि न घालिओ बंध । नानक उबरे जपि हरी साधसंगि सनबंध ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ ढढा ढूढत कह फिरहु ढूढनु इआ मन माहि । संगि तुहारै प्रभु बसै बनु बनु कहा फिराहि । ढेरी ढाहहु साध संगि अहंबुधि बिकराल । सुखु पावहु सहजे बसहु दरसनु देखि निहाल । ढेरी जामै जमि मरै गरभ जोनि दुख पाइ । मोह मगन लपटत रहै हउ हउ आवै जाइ । ढहत ढहत अब ढहि परे साध जना सरनाइ । दुख के फाहे काटिआ नानक लीए समाइ ॥ ३० ॥

॥ सलोकु ॥ हे नानक ! जिन व्यक्तियों ने सत्संगति में नाता जोड़ा, वे हरि का नाम जपकर बच निकले । उन्हें विकारों की बाढ़ की थाह नहीं मिलती । कोई एक विकार भी उनके जीवन-मार्ग में रुकावट नहीं पा सका ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ (हे भाई !) प्रभु तुम्हारे साथ बस रहा है, तुम जंगल मे क्यों ढूँढते फिरते हो ? और कहाँ ढूँढते फिरते हो ? खोज इस मन में ही (करनी है) । सत्संगति में (पहुँचकर) भयानक अहंकार वाली बुद्धि की बनी हुई ढेरी को गिरा दो, (इस प्रकार भीतर ही प्रभु का दर्शन हो जायगा, प्रभु का) दर्शन करके आत्मा प्रसन्न हो जायगी, आत्मिक आनन्द मिलेगा, स्थिर जवस्था में टिक जाओने । जब तक भीतर अहं की ढेरी बनी रहती है, मनुष्य जन्मता-मरता रहता है, योनियों के चक्र में दुःख भोगता है, मोह में मस्त होकर चिपटा रहता है, अहंकार के कारण जन्म-मरण में पड़ा रहता है । हे नानक ! जो व्यक्ति इस जन्म में साधुजनों की शरण आ जाते हैं, उनकी दुखों की फाँसियाँ कट जाती हैं, उन्हें प्रभु अपने चरणों में मिला लेता है ॥ ३० ॥

॥ सलोकु ॥ जह साधू गोबिद भजनु कीरतनु नानक नीत । णा हउ णा तूं णह छुटहि निकटि न जाईअहु दूत ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ णाणा रण ते सीझीऐ आतम जीतै कोइ । हउमै अन सिउ लरि मरै सो सोभादू होइ । मणी मिटाइ जीवत मरै गुर पूरे उपदेस । मनूआ जीतै हरि मिलै तिह सूरतण वेस । णा को जाणै आपणो एकहि टेक अधार । रैणि दिणसु सिमरत

रहै सो प्रभु पुरखु अपार । रेण सगल इआ मनु करै एऊ करम कमाइ । हुकमै बूझै सदा सुखु नानक लिखिआ पाइ ।। ३१ ।।

।। सलोकु ।। (धर्मराज कहता है—) हे मेरे दूतो ! जहाँ साधू पुरुष परमात्मा का भजन कर रहे हों, जहाँ नित्य कीर्त्तन हो रहा हो, तुम उस स्थान के निकट न जाना । (अगर तुम चले गए तो इस बदनामी से) न मैं बचूँगा, न तुम बचोगे ।। १ ।। ।। पउड़ी ।। इस जगत्-रूपी रणभूमि में अहंकार से हो रहे युद्ध में तभी सफल हुआ जा सकता है, यदि मनुष्य स्वयं को जीत ले । जो मनुष्य अहंकार तथा द्वैतभाव से मुकाबला करके अहंकार की ओर से मर जाता है, वही बड़ा शूरवीर है । जो मनुष्य गुरु की शिक्षा लेकर अहंकार को समाप्त करता है, सांसारिक वासनाओं से अपराजेय हो जाता है, अपने मन को नियंत्रित कर लेता है, वह मनुष्य परमात्मा को मिल जाता है, उसी की वर्दी शूरवीरों वाली समझो । हे नानक ! जो मनुष्य एक प्रभु का ही आसरा लेता है, अपने इस मन को सबकी चरण-धूलि बनाता है— जो मनुष्य यह कर्म करता है वह परमात्मा की रज़ा को समझ लेता है, सदा आत्मिक आनन्द पाता है, पूर्वकृत शुभ कर्मों का लेख उसके माथे पर प्रकट हो जाता है ।। ३१ ।।

।। सलोकु ।। तनु मनु धनु अरपउ तिसै प्रभू मिलावै मोहि । नानक भ्रम भउ काटीऐ चूकै जम की जोह ।।१।। ।।पउड़ी।। तता ता सिउ प्रीति करि गुण निधि गोबिद राइ । फल पावहि मन बाछते तपति तुहारी जाइ । त्रास मिटै जम पंथ की जासु बसै मनि नाउ । गति पावहि मति होइ प्रगास महली पावहि ठाउ । ताहू संगि न धनु चलै ग्रिह जोबन नह राज । संत संगि सिमरत रहहु इहै तुहारै काज । ताता कछू न होईहै जउ ताप निवारै आप । प्रतिपालै नानक हमहि आपहि माई बाप ।। ३२ ।।

।।सलोकु।। हे नानक ! (कह—) जो मनुष्य मुझे परमात्मा से मिलाए, मैं उसके समक्ष अपना मन, तन, धन सर्वस्व भेंट कर दूं, (क्योंकि प्रभु के मिलने पर) मन की दुबिधा तथा भय दूर हो जाता है, यम की घुड़की भी समाप्त हो जाती है ।। १ ।। ।। पउड़ी ।। (हे भाई !) उस गोबिंद से प्रेम कर जो सारे गुणों का भण्डार है, मनोवांछित फल प्राप्त करेगा, तेरे मन की जलन दूर हो जायगी । जिस मनुष्य के मन में प्रभु का नाम आ जाए, उसका यमों के रास्ते का भय समाप्त हो जाता है । (हे भाई ! नाम के प्रभाव से) उच्च आत्मिक अवस्था प्राप्त करेगा, तेरी बुद्धि प्रदीप्त हो जायगी; प्रभु-चरणों में तेरी सुरति टिकी रहेगी । (माया वाली दुबिधा

छोड़) धन, घर, यौवन, राज्य किसी चीज को भी साथ नहीं जाना; सत्संग में रहकर प्रभु का नाम स्मरण कर, बस ! यही अन्त में तेरे काम आयगा। जब प्रभु आप दु:ख-क्लेश दूर करनेवाला हो तो कोई मानसिक क्लेश नहीं रह सकता। हे नानक ! (कह—) प्रभु आप माँ-बाप के तुल्य हमारा पालन-पोषण करता है ॥ ३२ ॥

॥ सलोकु ॥ थाके बहु बिधि घालते त्रिपति न त्रिसना लाथ। संचि संचि साकत मूए नानक माइआ न साथ ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ थथा थिरु कोऊ नही काइ पसारहु पाव। अनिक बंच बल छल करहु माइआ एक उपाव। थैली संचहु स्रमु करहु थाकि परहु गावार। मन कै कामि न आवई अंते अउसर बार। थिति पावहु गोबिद भजहु संतह की सिख लेहु। प्रीति करहु सद एक सिउ इआ साचा असनेहु। कारन करन करावनो सभ बिधि एकै हाथ। जितु जितु लावहु तितु तितु लगहि नानक जंत अनाथ ॥ ३३ ॥

॥ सलोकु ॥ हे नानक ! माया-ग्रसित जीव माया के लिए कई प्रकार से भाग-दौड़ करते हैं, लेकिन तृप्त नहीं होते, तृष्णा समाप्त नहीं होती; माया जोड़-जोड़कर आत्मिक मौत प्राप्त कर लेते हैं, माया की खोज नहीं निभती ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ हे मूर्ख ! किसी को भी यहाँ साथ नहीं बैठे रहना, क्यों पैर फैला रहा है ? तू केवल माया के लिए ही कई प्रकार के पापड़ बेल रहा है, अनेकों ठगी-फ़रेब कर रहा है। हे मूर्ख ! तू धन जोड़ रहा है, (धन के लिए) भाग-दौड़ करता है और हार जाता है, लेकिन अन्तिम समय में यह धन तेरी आत्मा के काम तो नहीं आएगा। (हे भाई!) गुरमुखों की शिक्षा ध्यानपूर्वक सुन, परमात्मा का भजन कर, आत्मिक शान्ति (तब ही) मिलेगी। सदा केवल परमात्मा से प्रीति बना, यही प्रेम सदा स्थिर रहनेवाला है। (पर) हे नानक ! (कह— हे प्रभु !) ये जीव बेचारे हैं, तुम इन्हें जिधर लगाते हो, ये उधर ही लगते हैं, हरेक संयोग केवल तेरे हाथ में है, तुम ही सब कुछ कर सकते हो और (जीवों से) करा सकते हो ॥ ३३ ॥

॥ सलोकु ॥ दासह एकु निहारिआ सभु कछु देवनहार। सासि सासि सिमरत रहहि नानक दरस अधार ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ ददा दाता एकु है सभ कउ देवनहार। देंदे तोटि न आवई अगनत भरे भंडार। दैनहारु सद जीवनहारा। मन

मूरख किउ ताहि बिसारा। दोसु नही काहू कउ मीता। माइआ मोह बंधु प्रभि कीता। दरद निवारहि जा के आपे। नानक तेते गुरमुखि ध्रापे॥ ३४॥

॥ सलोकु ॥ हे नानक! प्रभु के सेवकों ने यह देख लिया है कि हरेक देन प्रभु आप देनेवाला है। (इसलिए वे) प्रभु को (अपनी ज़िन्दगी का) आसरा बनाकर प्रत्येक श्वास उसे याद करते हैं॥ १॥ ॥ पउड़ी ॥ एक प्रभु ही (ऐसा) दाता है जो सब जीवों को अन्न देने के योग्य है, उसके अनन्त भण्डार भरे पड़े हैं, बाँटते हुए खज़ानों में कमी नहीं आती। हे मूर्ख मन! तू सदा दाता को क्यों भुलाता है जो सदा तेरे सिर पर मौजूद है? पर हे मित्र! किसी जीव को यह दोष भी नहीं दिया जा सकता, (क्योंकि) प्रभु ने आप ही (आत्मिक जीवन के मार्ग में) मोह का बाँध बना दिया है। हे नानक! (कह—) हे प्रभु! जिन व्यक्तियों के मन से तुम आप ही (माया के मोह की) कसक दूर करते हो, वे गुरु की शरण लेकर माया से मुक्त हो जाते हैं॥ ३४॥

॥ सलोकु ॥ धर जीअरे इक टेक तू लाहि बिडानी आस। नानक नामु धिआईऐ कारजु आवै रासि॥ १॥ ॥ पउड़ी ॥ धधा धावत तउ मिटै संत संगि होइ बासु। धुर ते किरपा करहु आपि तउ होइ मनहि परगासु। धनु साचा तेऊ सच साहा। हरि हरि पूंजी नाम बिसाहा। धीरजु जसु सोभा तिह बनिआ। हरि हरि नामु स्रवन जिह सुनिआ। गुरमुखि जिह घटि रहे समाई। नानक तिह जन मिली वडाई॥ ३५॥

॥ सलोकु ॥ हे मेरी आत्मा! केवल परमात्मा का आसरा ले, उसके अतिरिक्त किसी दूसरे की आस छोड़ दे। हे नानक! सदा प्रभु की याद मन में बसानी चाहिए, (इससे) हर काम सफल हो जाता है॥ १॥ ॥ पउड़ी ॥ यदि संतों की संगति में उठना-बैठना हो जाए तो (मन की) दुबिधा मिट जाती है। (पर यह कोई आसान खेल नहीं।) हे प्रभु! जिस जीव पर तुम अपने द्वार से कृपा करते हो, उसी के मन में जीवन की सही सूझ पड़ती है। (उसे यह ज्ञान होता है कि) वास्तविक सच्चे साहूकार वे हैं, जिनके पास सदा स्थिर रहनेवाला नाम-धन हैं, जो हरि-नाम की पूँजी का व्यापार करते हैं। जो व्यक्ति हरि-नाम कानों से सुनते रहते हैं, उनके भीतर गम्भीरता आती है; वे प्रशंसा, शोभा पाते हैं। हे नानक! गुरु के द्वारा जिनके हृदय में प्रभु का नाम बसता है, उन्हें (लोक-परलोक में) प्रशंसा मिलती है॥ ३५॥

॥ सलोकु ॥ नानक नामु नामु जपु जपिआ अंतरि बाहरि रंगि । गुरि पूरै उपदेसिआ नरकु नाहि साध संगि ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ नंना नरकि परहि ते नाही । जा कै मनि तनि नामु बसाही । नामु निधानु गुरमुखि जो जपते । बिखु माइआ महि ना ओइ खपते । नंनाकारु न होता ता कहु । नामु मंत्रु गुरि दीनो जा कहु । निधि निधान हरि अंम्रित पूरे । तह बाजे नानक अनहद तूरे ॥ ३६ ॥

॥ सलोकु ॥ हे नानक ! जिन व्यक्तियों ने काम-काज करते हुए प्रेम-सहित प्रभु का नाम ही नाम जपा है, उन्हें पूर्णगुरु ने परमात्मा अपने निकट दिखा दिया है, गुरु की संगति में रहकर उन्हें घोर दुःख स्पर्श नहीं करता ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ जिनके मन, तन में प्रभु का नाम बसा रहता है, वे घोर दुखों के गढ़े में नहीं पड़ते । जो व्यक्ति गुरु के द्वारा प्रभु-नाम को सब पदार्थों का खज़ाना जानकर जपते हैं, वे (फिर) आत्मिक मौत करनेवाली माया (के मोह) में (भाग-दौड़ करते) नहीं खपते । जिन्हें गुरु ने नाम-मन्त्र दे दिया, उनकी जीवन-यात्रा में (माया) कोई रोक नहीं डाल सकती । हे नानक ! जो हृदय सब गुणों के खज़ाने हरि-नाम के अमृत से भरे रहते हैं, उनके भीतर एक ऐसा आनन्द बना रहता है, जैसे निरन्तर (अनहद नाद) सब प्रकार के बाजे मिले-जुले स्वर में बज रहे हों ॥ ३६ ॥

॥ सलोकु ॥ पति राखी गुरि पारब्रहम तजि परपंच मोह बिकार । नानक सोऊ आराधीऐ अंतु न पारावारु ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ पपा परमिति पारु न पाइआ । पतित पावन अगम हरि राइआ । होत पुनीत कोट अपराधू । अंम्रित नामु जपहि मिलि साधू । परपच ध्रोह मोह मिटनाई । जा कउ राखहु आपि गुसाई । पातिसाहु छत्र सिर सोऊ । नानक दूसर अवरु न कोऊ ॥ ३७ ॥

॥ सलोकु ॥ जिस मनुष्य की प्रतिष्ठा गुरु पारब्रह्म ने रख ली, उसने ठगी, मोह, विकार (आदि) त्याग दिए । हे नानक ! (इस वास्ते) उस पारब्रह्म को सदा अपनाना चाहिए, जिससे गुणों का भेद नहीं पाया जा सकता, जिसके अस्तित्व का ओर-छोर नहीं प्राप्त हो सकता ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ हरि प्रभु अपरम्पार है, विकार-ग्रस्त व्यक्तियों को पवित्र करनेवाला है, उसके अस्तित्व का अनुमान नहीं लग सकता, मूल्यांकन नहीं हो सकता ।

वे करोड़ों ही अपराधी पवित्र हो जाते हैं, जो गुरु को मिलकर प्रभु का आत्मिक जीवन देनेवाला नाम जपते हैं। हे सृष्टि के मालिक ! जिस मनुष्य की तुम आप रक्षा करते हो, तेरी गुणस्तुति के प्रभाव से उसके भीतर से ठगी, फ़रेब, मोह आदि विकार मिट जाते हैं। हे नानक ! प्रभु सर्वोपरि शाह है, वही असली छत्रधारी है, कोई दूसरा उसकी बराबरी करने योग्य नहीं है ।। ३७ ।।

।। सलोकु ।। फाहे काटे मिटे गवन फतिह भई मनि जीत । नानक गुर ते थित पाई फिरन मिटे नित नीत ।। १ ।। ।। पउड़ी ।। फफा फिरत फिरत तू आइआ । द्रुलभ देह कलिजुग महि पाइआ । फिरि इआ अउसरु चरै न हाथा । नामु जपहु तउ कटीअहि फासा । फिरि फिरि आवन जानु न होई । एकहि एक जपहु जपु सोई । करहु क्रिपा प्रभ करनैहारे । मेलि लेहु नानक बेचारे ।। ३८ ।।

।। सलोकु ।। हे नानक ! यदि अपने मन को जीत लिया जाए तो (विकारों पर) जीत प्राप्त हो जाती है, माया-मोह के बन्धन काटे जाते हैं और (माया के पीछे की) दुबिधा समाप्त हो जाती है। जिस मनुष्य को गुरु द्वारा मन की स्थिरता मिल जाती है, उसके जन्म-मरण के चक्र सदा के लिए समाप्त हो जाते हैं ।। १ ।। ।। पउड़ी ।। (हे भाई !) तू अनेक योनियों में भटकता आया है, अब तुझे संसार में मनुष्य-जन्म मिला है। (यदि तू विकारों के बन्धनों में ही फँसा रहा, तो) ऐसा अवसर फिर नहीं मिलेगा। (हे भाई !) यदि तू प्रभु का नाम जपेगा, तो माया वाले सारे बन्धन काटे जाएँगे। केवल एक परमात्मा का नाम जपा कर, पुनःपुनः जन्म-मरण का चक्र नहीं रह जायगा। (पर) हे नानक ! (प्रभु के समक्ष प्रार्थना कर और कह—) हे सृजनहार प्रभु ! (माया-ग्रसित जीव के वश की बात नहीं), तू आप कृपा कर और इस बेचारे को अपने चरणों में जोड़ ले ।। ३८ ।।

।। सलोकु ।। बिनउ सुनहु तुम पारब्रहम दीन दइआल गुपाल । सुख संपै बहु भोग रस नानक साध रवाल ।। १ ।। ।। पउड़ी ।। बबा ब्रहमु जानत ते ब्रहमा । बैसनो ते गुरमुखि सुच धरमा । बीरा आपन बुरा मिटावै । ताहू बुरा निकटि नही आवै । बाधिओ आपन हउ हउ बंधा । दोसु देत आगह कउ अंधा । बात चीत सभ रही सिआनप । जिसहि जनावहु सो जानै नानक ।। ३९ ।।

॥ सलोकु ॥ हे नानक ! (प्रार्थना कर और कह—) हे पारब्रह्म ! हे दीनदयालु ! हे धरती के पालक ! मेरी प्रार्थना सुन। मुझे (सुबुद्धि दे कि) गुरमुखों की चरणधूलि ही अनेक सुखों, धन-पदार्थों और अनेक रसों के भोग के बराबर लगे ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ वास्तविक ब्राह्मण वे हैं, जो परमात्मा से ऐक्य करते हैं, वास्तविक वैष्णव वे हैं जो गुरु की शरण लेकर आत्मिक पवित्रता के कर्त्तव्य को पालते हैं। वह मनुष्य शूरवीर जानो जो अपने भीतर से दूसरों के बुरा सोचने के स्वभाव का निशान मिटा दे। (जिसने यह कर लिया) दूसरे की सोची हुई बुराई उसके निकट नहीं आती। (परन्तु मनुष्य) आप ही अपने अहंकार के बन्धनों में बँधा रहता है (और दूसरों से लड़ता है), अपने अत्याचार का ख्याल तक नहीं आता, (किसी बिगाड़ का) दोष यह अन्धा मनुष्य दूसरों पर लगाता है। (पर) हे नानक ! (ऐसा स्वभाव बनाने के लिए) केवलमात्र ज्ञान की बातों तथा चतुराई से कुछ नहीं बनता। (प्रभु से प्रार्थना कर और कह—) हे प्रभु ! जिसे तुम इस पवित्र जीवन की सूझ देते हो, वही समझता है ॥ ३९ ॥

॥ सलोकु ॥ भै भंजन अघ दूख नास मनहि अराधि हरे। संत संग जिह रिद बसिओ नानक ते न भ्रमे ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ भभा भरमु मिटावहु अपना। इआ संसारु सगल है सुपना। भरमे सुरि नर देवी देवा। भरमे सिध साधिक ब्रहमेवा। भरमि भरमि मानुख डहकाए। दुतर महा बिखम इह माए। गुरमुखि भ्रम भै मोह मिटाइआ। नानक तेह परम सुख पाइआ ॥ ४० ॥

॥ सलोकु ॥ (हे भाई ! सब पापों के) दूर करनेवाले को अपने मन में याद रख। वही सारे भय दूर करनेवाला है, वही सारे दुखों, पापों का नाश करनेवाला है। हे नानक ! सत्संग में रहकर जिन मनुष्यों के हृदय में वह हरि आ-टिकता है, वे पापों, विकारों की दुबिधा में नहीं पड़ते ॥ १॥ ॥ पउड़ी ॥ इस संसार का साथ स्वप्न के समान है, इसके पीछे भटकने की आदत छोड़ दो। (इस माया के कौतुकों के लिए) स्वर्ग में रहनेवाले जीव, मनुष्य, देवी-देवता दुखी होते (सुने जाते रहे), बड़े-बड़े साधनों में लगे योगी (साधना-रत योगी) ब्रह्मा जैसे भी भटकते रहे, (धरती के) व्यक्ति (माया के लिए) भटक-भटककर धोखे में चले आते रहे हैं; यह माया एक ऐसा महान कठिन (विषम समुद्र) है, (जिसमें से) पार होना बहुत ही कठिन है। हे नानक ! जिन मनुष्यों ने गुरु की शरण लेकर (माया के पीछे) का भटकाव, भय तथा मोह (अपने भीतर से) मिटा लिया, उन्होंने सब से श्रेष्ठ आत्मिक आनन्द प्राप्त कर लिया है ॥ ४० ॥

॥ सलोकु ॥ माइआ डोलै बहु बिधी मनु लपटिओ तिह संग । मागन ते जिह तुम रखहु सु नानक नामहि रंग ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ ममा मागनहार इआना । देनहार दे रहिओ सुजाना । जो दीनो सो एकहि बार । मन मूरख कह करहि पुकार । जउ मागहि तउ मागहि बीआ । जा ते कुसल न काहू थीआ । मागनि माग त एकहि माग । नानक जा ते परहि पराग ॥४१॥

॥ सलोकु ॥ मनुष्य का मन कई प्रकार से माया के लिए चलायमान रहता है, माया के साथ ही चिपटा रहता है । हे नानक ! (प्रभु के समक्ष प्रार्थना कर और कह—) हे प्रभु ! जिस मनुष्य को तुम केवलमात्र माया ही माँगने से रोकते हो, वह तेरे नाम में अनुरक्त हो जाता है ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ मूर्ख जीव हर समय (माया ही माया) माँगता रहता है । (यह नहीं समझता कि) सबके भीतर की जाननेवाला परमात्मा दाता (सब पदार्थ) दिए जा रहा है । हे मूर्ख मन ! तू क्यों सदा माया के लिए प्रार्थना कर रहा है ? उसकी दी हुई देनें तो अक्षुण्ण हैं । (हे मूर्ख !) तू जब भी माँगता है, (नाम के अतिरिक्त) दूसरी चीज़ें ही माँगता है, जिनसे कभी किसी को आत्मिक सुख नहीं मिला । हे नानक ! (कह— हे मूर्ख मन !) यदि तुझे माँग ही माँगनी है, तो प्रभु का नाम ही माँग, जिसके प्रभाव से तू आर्थिक (माया से सम्बद्ध) पदार्थों की माँग से दूसरी ओर उतर जाए ॥ ४१ ॥

॥ सलोक ॥ मति पूरी परधान ते गुर पूरे मन मंत । जिह जानिओ प्रभु आपुना नानक ते भगवंत ॥१॥ ॥पउड़ी॥ ममा जाहू मरमु पछाना । भेटत साध संग पतीआना । दुख सुख उआ कै समत बीचारा । नरक सुरग रहत अउतारा । ताहू संग ताहू निरलेपा । पूरन घट घट पुरख बिसेखा । उआ रस महि उआहू सुखु पाइआ । नानक लिपत नही तिह माइआ ॥ ४२ ॥

॥ सलोकु ॥ जिन मनुष्यों के मन में पूर्णगुरु का उपदेश बस जाता है, उनकी बुद्धि पूर्ण (समझवाली) हो जाती है, वे प्रसिद्ध हो जाते हैं । हे नानक ! जिन्होंने पूर्ण प्रभु के साथ ऐक्य कर लिया है, वे भाग्यशाली हैं ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ जिस मनुष्य ने परमात्मा का भेद पा लिया, वह सत्संगति में मिलकर (इस सम्बन्ध में) पूर्ण विश्वास बना लेता है । उसके हृदय में सुख तथा दुःख एक जैसे लगने लगते हैं । वह व्यक्ति दुखों से

आई घबराहट और सुखों से उपजी ख़ुशी में फँसने से बच जाता है। उसे व्यापक प्रभु हरेक हृदय में बसता दिखता है, साथ-साथ भी दिखता है और माया के प्रभाव से परे भी। हे नानक ! आत्मिक रस से (परमात्मा के प्रेमी को) ऐसा सुख मिलता है कि माया उस पर अपना प्रभाव नहीं कर सकती॥ ४२ ॥

॥सलोकु॥ यार मीत सुनि साजनहु बिनु हरि छूटनु नाहि। नानक तिह बंधन कटे गुर की चरनी पाहि॥१॥ ॥पवड़ी॥ यया जतन करत बहु बिधीआ। एक नाम बिनु कह लउ सिधीआ। याहू जतन करि होत छुटारा। उआहू जतन साध संगारा। या उबरन धारै सभु कोऊ। उआहि जपे बिनु उबर न होऊ। या हू तरन तारन समराथा। राखि लेहु निरगुन नर नाथा। मन बच क्रम जिह आपि जनाई। नानक तिह मति प्रगटी आई ॥ ४३ ॥

॥ सलोकु ॥ हे मित्रो, हे सज्जनो ! सुनो। परमात्मा के नाम का स्मरण किए बिना माया के बन्धनों से मुक्ति नहीं मिलती। हे नानक ! जो व्यक्ति गुरु के चरण-स्पर्श करते हैं, उनके (माया-मोह के) बन्धन काटे जाते हैं॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ मनुष्य माया के बन्धनों से मुक्ति पाने के लिए कई प्रकार के यत्न करता है लेकिन परमात्मा का नाम जपे बिना बिल्कुल सफलता नहीं हो सकती। जिन यत्नों से (इन बन्धनों से) मुक्ति हो सकती है, वे यत्न यही हैं कि सत्संगति करो। हर कोई (माया के बन्धनों से) बचने के प्रयास (अपने मन में) करता है, परन्तु उस प्रभु का नाम जपे बिना मुक्ति नहीं हो सकती। (हे भाई ! प्रभु-द्वार पर प्रार्थना ही करनी चाहिए कि) हे जीवों के स्वामी ! हम गुणहीनों को बचा ले, तुम आप ही जीवों को पार उतारने के लिए जहाज़ हो, तुम ही पार करने के लिए समर्थ हो। हे नानक ! जिन व्यक्तियों के मन, कर्म, वचन में प्रभु आप सूझ पैदा करता है, उनकी बुद्धि उज्ज्वल हो जाती है॥ ४३ ॥

॥ सलोकु ॥ रोसु न काहू संग करहु आपन आपु बीचारि। होइ निमाना जगि रहहु नानक नदरी पारि॥१॥ ॥पउड़ी॥ रारा रेन होत सभ जाकी। तजि अभिमानु छुटै तेरी बाकी। रणि दरगहि तउ सीझहि भाई। जउ गुरमुखि राम नाम लिव लाई। रहत रहत रहि जाहि बिकारा। गुर पूरे कै सबदि अपारा। राते रंग नाम रस माते। नानक हरि गुर कीनी दाते॥ ४४ ॥

।। सलोकु ।। (हे भाई !) किसी दूसरे से गुस्सा न करो, (इसके स्थान पर) स्वयं को विचारो। हे नानक ! यदि तू जगत् में सहज स्वभाव का बनकर रहे तो प्रभु की कृपा-दृष्टि द्वारा इस संसार-समुद्र से पार उतर जायगा (जिसमें क्रोध की अनन्त लहरें उठ रही हैं) ।। १ ।। ।। पउड़ी ।। सारी दुनिया जिस गुरु की चरण-धूलि होती है, तू भी उसके आगे अपने का अहंकार दूर कर, ताकि तेरे भीतर से क्रोध के संस्कारों का लेखा समाप्त हो जाए। हे भाई ! इस जगत्-रूपी युद्धभूमि में तथा प्रभु के दरबार में तभी सफल होगा, जब गुरु की शरण लेकर प्रभु के नाम में सुरति जोड़ेगा। पूर्णगुरु के शब्द में जुड़ने से अनगिनत विकार धीरे-धीरे दूर हो जाते हैं। हे नानक ! जिन व्यक्तियों को गुरु ने हरि-नाम की देन दी है, वे प्रभु के नाम के प्रेम में अनुरक्त रहते हैं, वे हरि-नाम के स्वाद में मस्त रहते हैं ।। ४४ ।।

।। सलोकु ।। लालच झूठ बिखै बिआधि इआ देही महि बास। हरि हरि अंम्रितु गुरमुखि पीआ नानक सूखि निवास।।१।। ।। पउड़ी ।। लला लावउ अउखध जाहू। दूख दरद तिह मिटहि खिनाहू। नाम अउखधु जिह रिदै हितावै। ताहि रोगु सुपनै नही आवै। हरि अउखधु सभ घट है भाई। गुर पूरे बिनु बिधि न बनाई। गुरि पूरै संजमु करि दीआ। नानक तउ फिरि दूख न थीआ ।। ४५ ।।

।। सलोकु ।। (साधारण रूप से) इस शरीर में लालच, झूठ आदि विकारों तथा रोगों का ही ज़ोर रहता है; (पर) हे नानक ! जिस मनुष्य ने गुरु की शरण लेकर आत्मिक जीवन देनेवाला हरि का नाम-रस पान कर लिया, वह आत्मिक आनन्द में टिका रहता है ।। १ ।। ।। पउड़ी ।। मुझे विश्वास है कि जिसे भी प्रभु-नाम की औषधि दी जाए, एक क्षण में ही उसके दुख-दर्द मिट जाते हैं। जिस मनुष्य को हृदय में रोगनाशक प्रभु-नाम प्यारा लगने लगे, स्वप्न में भी कोई (आत्मिक) रोग उसके निकट नहीं आता। हे भाई ! हरि-नाम औषधि हरेक हृदय में मौजूद है, लेकिन पूर्णगुरु के बिना (व्यावहारिक रूप) सफल नहीं होता। हे नानक ! पूर्णगुरु ने (इस दवाई के प्रयोग का) परहेज़ तय कर दिया है, (जो मनुष्य इस क्रम का निर्वाह करता है), उसे दोबारा कोई दुख स्पर्श नहीं कर सकता ।। ४५ ।।

।। सलोकु ।। वासुदेव सरबत्र मै ऊन न कतहू ठाइ। अंतरि बाहरि संगि है नानक काइ दुराइ ।।१।। ।।पउड़ी।। ववा

वैरु न करीऐ काहू। घट घट अंतरि ब्रहम समाहू। बासुदेव जल थल महि रविआ। गुर प्रसादि विरलै ही गविआ। वैर विरोध मिटे तिह मन ते। हरि कीरतनु गुरमुखि जो सुनते। वरन चिहन सगलह ते रहता। नानक हरि हरि गुरमुखि जो कहता॥ ४६॥

॥ सलोकु॥ हे नानक ! परमात्मा सर्वव्यापक है, कहीं भी उसका अनस्तित्व नहीं है। सब जीवों के भीतर तथा आस-पास प्रभु है, उससे कोई छिपाव नहीं हो सकता॥ १॥ ॥पउड़ी॥ हरेक शरीर में परमात्मा समाया हुआ है, (इसलिए) किसी के साथ भी वैर नहीं करना चाहिए। परमात्मा पानी, धरती सर्वत्र व्यापक है, लेकिन किसी विरले ने ही गुरु की कृपा से (उस प्रभु तक) पहुँच प्राप्त की है। परमात्मा जात-पात, रूपरेखा से अलग है, (परन्तु) हे नानक ! जो-जो मनुष्य गुरु की शरण लेकर उस हरि को स्मरण करते हैं, उसकी गुणस्तुति सुनते हैं, उनके मन से वैर-विरोध मिट जाते हैं॥ ४६॥

॥सलोकु॥ हउ हउ करत बिहानीआ साकत मुगध अजान। ड़ड़कि मुए जिउ त्रिखावंत नानक किरति कमान॥ १॥ ॥पउड़ी॥ ड़ाड़ा ड़ाड़ि मिटै संगि साधू। करम धरम ततु नाम अराधू। रूड़ो जेह बसिओ रिद माही। उआ की ड़ाड़ि मिटत बिनसाही। ड़ाड़ि करत साकत गावारा। जेह हीऐ अहंबुधि बिकारा। ड़ाड़ा गुरमुखि ड़ाड़ि मिटाई। निमख माहि नानक समझाई॥ ४७॥

॥ सलोकु॥ माया-ग्रसित मूर्ख मनुष्यों की उम्र इसी रूप में बीत जाती है कि मैं बड़ा होऊँ, मैं ही बड़ा होऊँ। अहंकार के सहारे किए कर्मों (के संस्कारों) के कारण, अहं का काँटा चुभ-चुभकर ही उनकी आत्मिक मौत हो जाती है, जैसे प्यासा (पानी के अभाव में मरता है, वैसे ही आत्मिक सुख के बिना वे मरते हैं)॥ १॥ ॥ पउड़ी॥ (मनुष्य के भीतर से अहं के काँटे की) चुभन गुरु की संगति में ही मिटती है, (क्योंकि हरि-नाम सत्संगति में ही मिलता है और) हरि-नाम का स्मरण सारे धार्मिक कर्मों का निचोड़ है। जिस मनुष्य के हृदय में सुन्दर प्रभु आ बसे, उसके भीतर से अहं के काँटे की चुभन अवश्य दूर हो जाती है। यह अहंभावना वाली विकृति वही मूर्ख व्यक्ति रखते हैं, जिनके हृदय में अहंभावना वाली बुद्धि से उपजे दोष टिके रहते हैं। (पर) हे नानक !

जिन्होंने गुरु की शरण लेकर अहंकार वाली चुभन दूर कर ली, उन्हें गुरु पलक झपकने मात्र में ही आत्मिक आनन्द की झलक दिखा देता है ॥४७॥

॥ सलोकु ॥ साधू की मन ओट गहु उकति सिआनप तिआगु। गुर दीखिआ जिह मनि बसै नानक मसतकि भागु ॥१॥ ॥ पउड़ी ॥ ससा सरनि परे अब हारे। सासत्र सिम्रिति बेद पूकारे। सोधत सोधत सोधि बीचारा। बिनु हरि भजन नही छुटकारा। सासि सासि हम भूलनहारे। तुम समरथ अगनत अपारे। सरनि परे की राखु दइआला। नानक तुमरे बाल गुपाला ॥ ४८ ॥

॥ सलोकु ॥ हे मन ! गुरु का आसरा ले, अपनी दलीलबाज़ी तथा चतुराइयाँ छोड़। हे नानक ! जिस मनुष्य के मन में गुरु की शिक्षा बस जाती है, उसके मस्तक पर सौभाग्य प्रकट हुआ समझो ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ हे पृथ्वी के स्वामी ! अब हारकर तेरी शरणागत हुए हैं। (पंडित लोग) स्मृतियाँ, शास्त्र, वेद उच्च स्वर से पढ़ते हैं, पर बहुत विचार कर इसी परिणाम पर पहुँचा जाता है कि हरि-नाम के स्मरण के बिना मुक्ति नहीं हो सकती। हे गोपाल ! हम जीव प्रत्येक श्वास भूलें करते हैं। तुम हमारी भूलों को क्षमा करने योग्य हो, तेरे गुण गणना से परे हैं, तेरे गुणों का भेद नहीं पाया जा सकता। हे नानक ! (प्रभु के समक्ष प्रार्थना कर, और कह—) हे गोपाल ! हम तेरे बच्चे हैं, हे दयालु ! शरणागतों की लाज रख ॥ ४८ ॥

॥ सलोकु ॥ खुदी मिटी तब सुख भए मन तन भए अरोग। नानक द्रिसटी आइआ उसतति करनै जोगु ॥१॥ ॥पउड़ी॥ खखा खरा सराहउ ताहू। जो खिन महि ऊने सुभर भराहू। खरा निमाना होत परानी। अनदिनु जापै प्रभ निरबानी। भावै खसम त उआ सुखु देता। पारब्रहमु ऐसो आगनता। असंख खते खिन बखसनहारा। नानक साहिब सदा दइआरा ॥ ४९ ॥

॥ सलोकु ॥ जब मनुष्य की अहंभावना दूर हो जाती है, तब इसे आत्मिक आनन्द मिलता है, (जिसके प्रभाव से) इसके तन, मन स्वस्थ हो जाते हैं। हे नानक ! (अहं के मिटने से ही) मनुष्य को वह परमात्मा दिख पड़ता है, जो सचमुच गुणस्तुति का अधिकारी है ॥१॥ ॥पउड़ी॥ मैं उस प्रभु की गुणस्तुति मन लगाकर करता हूँ, जो एक क्षण में उन (हृदयों को) भले गुणों से लबालब भर देता है, जो पहले गुणों से खाली थे।

(जब) मनुष्य भली प्रकार अहंकार-रहित हो जाता है, तो हर समय वासना-रहित परमात्मा को स्मरण करता है। (इस प्रकार) मनुष्य पति-प्रभु को प्यारा लगने लगता है, प्रभु उसे आत्मिक सुख देता है। हे नानक! पारब्रह्म भेद-रहित है, मालिक प्रभु सदा ही दया करनेवाला है, वह जीवों के अनगिनत ही पाप क्षण भर में क्षमा कर देता है ॥ ४९ ॥

॥ सलोकु ॥ सति कहउ सुनि मन मेरे सरनि परहु हरि राइ। उकति सिआनप सगल तिआगि नानक लए समाइ ॥१॥ ॥ पउड़ी ॥ ससा सिआनप छाडु इआना। हिकमति हुकमि न प्रभु पतीआना। सहस भाति करहि चतुराई। संगि तुहारै एक न जाई। सोऊ सोऊ जपि दिन राती। रे जीअ चलै तुहारै साथी। साध सेवा लावै जिह आपै। नानक ता कउ दूखु न बिआपै ॥ ५० ॥

॥ सलोकु ॥ हे मेरे मन! मैं तुझसे सत्य बात कहता हूँ, (इसे) सुन। परमात्मा की शरण ले। हे नानक! तमाम दलीलबाज़ी तथा चतुराई छोड़ दे, (सरल स्वभाव का आसरा लेगा, तो) प्रभु तुझे अपने चरणों में जोड़ लेगा ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ हे मेरे मूर्ख मन! चतुराई छोड़। परमात्मा चतुराइयों से तथा हुक्म (उपदेश) करने से प्रसन्न नहीं होता। यदि तू हज़ारों प्रकार की चतुराइयाँ भी करेगा, तो एक चतुराई भी तेरी मदद नहींकर सकेगी। हे मेरी आत्मा! बस! उस प्रभु को ही दिन-रात याद करती रह, प्रभु की स्मृति को ही तेरे साथ जाना है। हे नानक! जिस मनुष्य को प्रभु स्वयं गुरु की सेवा में जोड़ता है, उस पर कोई दुख-क्लेश दबाव नहीं डाल सकता ॥ ५० ॥

॥ सलोकु ॥ हरि हरि मुख ते बोलना मनि वूठै सुखु होइ। नानक सभ महि रवि रहिआ थान थनंतरि सोइ ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ हेरउ घटि घटि सगल कै पूरि रहे भगवान। होवत आए सद सदीव दुख भंजन गुर गिआन। हउ छुटकै होइ अनंदु तिह हउ नाही तह आपि। हते दूख जनमह मरन संतसंग परताप। हित करि नामु द्रिड़ै दइआला। संतह संगि होत किरपाला। ओरै कछू न किनहू कीआ। नानक सभु कछु प्रभ ते हूआ ॥ ५१ ॥

॥ सलोकु ॥ हे नानक! वह प्रभु सब जीवों में व्यापक है, हरेक स्थान के भीतर मौजूद है, उस हरि का जाप मुँह से करने पर, जब वह मन

में आ बसता है, तो आत्मिक आनन्द पैदा होता है ।। १ ।। ।। पउड़ी ।। मैं सब जीवों के शरीर में देखता हूँ कि परमात्मा ही आप मौजूद है। परमात्मा सदा से ही अस्तित्व वाला चला आ रहा है, वह जीवों के दुःख नाश करनेवाला है— यह सूझ गुरु का ज्ञान देता है। संतों की संगति के प्रभाव से मनुष्य के जन्म-मरण के दुःख नष्ट हो जाते हैं, मनुष्य की अहंभावना समाप्त हो जाती है, मन में आनन्द पैदा हो जाता है, मन में अहं का अभाव हो जाता है; वहाँ प्रभु आप आ बसता है। जो मनुष्य संतजनों की संगति में रहकर प्रेमपूर्वक रहकर दयालु प्रभु का नाम अपने हृदय में टिकाता है, प्रभु उस पर कृपा करता है। हे नानक ! (उस मनुष्य को यह निश्चय हो जाता है कि) परमात्मा से अतिरिक्त दूसरा कोई कुछ करने योग्य नहीं है, यह सारा जगत्-आकार परमात्मा से ही प्रकट हुआ है ।।५१।।

।। सलोकु ।। लेखै कतहि न छूटीऐ खिनु खिनु भूलनहार। बखसनहार बखसि लै नानक पारि उतार ।।१।। ।।पउड़ी।। लूण हरामी गुनहगार बेगाना अलप मति। जीउ पिंडु जिनि सुख दीए ताहि न जानत तत। लाहा माइआ कारने दह दिसि ढूढन जाइ। देवनहार दातार प्रभ निमख न मनहि बसाइ। लालच झूठ बिकार मोह इआ संपै मन माहि। लंपट चोर निंदक महा तिनहू संगि बिहाइ। तुधु भावै ता बखसि लैहि खोटे संगि खरे। नानक भावै पारब्रहम पाहन नीरि तरे।। ५२।।

।। सलोकु ।। हे नानक ! (कह—) हम जीव प्रत्येक क्षण भूल करने वाले हैं, यदि हमारी भूलों का लेखा हो तो हम किसी प्रकार भी इस भार से मुक्त नहीं हो सकते। हे क्षमाशील प्रभु ! तू आप ही हमारी भूल क्षमा कर और हमें (विकारों के समुद्र से) पार उतार ।। १ ।। ।। पउड़ी ।। मनुष्य कृतघ्न है, गुनहगार है, ओछी बुद्धिवाला है, परमात्मा से अपरिचित ही रहता है, जिस प्रभु ने यह आत्मा तथा शरीर दिए हैं, उस भूल को पहचानता ही नहीं। माया पाने की खातिर दसों दिशाओं में खोज करने के लिए फिरता है, लेकिन जो प्रभु दाता सब कुछ देने योग्य है, उसे निमिषमात्र के लिए भी अपने मन में नहीं बसाता। लालच, झूठ, विकार और माया का मोह—बस! यही धन मनुष्य अपने मन में सँभाले बैठा है। जो विषयी, चोर, निंदक हैं, उनके साथ ही इसकी उम्र बीतती है। (पर, हे प्रभु !) यदि तुम्हें भला लगे तो तुम आप ही खोटे व्यक्तियों को भले व्यक्तियों की संगति में रखकर क्षमा कर लेते हो। हे नानक ! यदि परमात्मा को अच्छा लगे तो वह (विकारों में) प्रस्तरमना हो चुके व्यक्तियों

को नाम-अमृत की देन देकर (विकारों की लहरों में डूबने से) बचा लेता है ।। ५२ ।।

।। सलोकु ।। खात पीत खेलत हसत भरमे जनम अनेक । भवजल ते काढहु प्रभू नानक तेरी टेक ।। १ ।। ।। पउड़ी ।। खेलत खेलत आइओ अनिक जोनि दुख पाइ । खेद मिटे साधू मिलत सतिगुर बचन समाइ । खिमा गही सचु संचिओ खाइओ अंम्रितु नाम । खरी क्रिपा ठाकुर भई अनद सूख बिस्राम । खेप निबाही बहुतु लाभ घरि आए पतिवंत । खरा दिलासा गुरि दीआ आइ मिले भगवंत । आपन कीआ करहि आपि आगै पाछै आपि । नानक सोऊ सराहीऐ जि घटि घटि रहिआ बिआपि ।। ५३ ।।

।। सलोकु ।। हे नानक ! (कह—) हे प्रभु ! हम जीव माया से सम्बद्ध पदार्थ ही खाते-पीते और माया के रंग-तमाशों में ही हँसते-खेलते अनेकों योनियों में भटकते आ रहे हैं, हमें तू आप ही संसार-समुद्र से निकाल, हमें तेरा ही आसरा है ।। १ ।। ।। पउड़ी ।। मनुष्य माया के रंगों में मन लगाता, अनेक योनियों से गुज़रता, दु:ख पाता आता है । यदि गुरु मिल जाए, यदि गुरु के वचनों में चित्त जुड़ जाए तो सारे दु:ख-क्लेश मिट जाते हैं । जिसने (गुरु-द्वार से) क्षमा का स्वभाव ग्रहण कर लिया, नाम-धन एकत्रित किया, नाम-अमृत को अपनी आत्मिक खुराक बनाया, उस पर परमात्मा की बड़ी कृपा होती है, वह आत्मिक आनन्द के सुख में टिका रहता है । जिस मनुष्य ने (गुरु से जाँच सीखकर गुणस्तुति का) व्यापार समस्त उम्र निभाया, उसने लाभ प्राप्त किया, वह (दुबिधा से बचकर स्थिर-मना हो जाता है और) आदर पाता है, गुरु ने उसे और ढाढस बँधाया और वह भगवान के चरणों में जुड़ा । (पर यह सब प्रभु की कृपा है) । हे प्रभु ! यह सारा खेल तूने ही किया है, अब भी तुम ही सब कुछ कर रहे हो । लोक-परलोक में जीवों के रक्षक तुम आप हो । हे नानक ! जो प्रभु हरेक शरीर में मौजूद है, सदा उसी की ही गुणस्तुति करनी चाहिए ।। ५३ ।।

।। सलोकु ।। आए प्रभ सरनागती किरपा निधि दइआल । एक अखरु हरि मनि बसत नानक होत निहाल ।। १ ।। ।। पउड़ी ।। अखर महि त्रिभवन प्रभि धारे । अखर करि करि बेद बीचारे । अखर सासत्र सिंम्रिति पुराना । अखर नाद

कथन वख्याना। अखर मुकति जुगति भै भरमा। अखर करम किरति सुच धरमा। द्रिसटिमान अखर है जेता। नानक पारब्रहम निरलेपा ॥ ५४ ॥

॥ सलोकु ॥ हे दया के भण्डार, कृपालु प्रभु! हम तेरी शरणागत हैं। हे नानक! (कह—) जिनके मन में एक अविनाशी प्रभु विद्यमान है, उनका मन सदा प्रसन्न रहता है ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ ये तीनों भुवन (तीनों लोक) प्रभु ने अपने हुक्म में ही रचे हैं, प्रभु के हुक्म-अनुसार वेद रचे गए और विचारे गए। समस्त शास्त्र, स्मृति और पुराण प्रभु के हुक्म का प्रकट रूप हैं। इन पुराणों, शास्त्रों तथा स्मृतियों के कीर्त्तन-स्तवन तथा व्याख्या भी प्रभु के हुक्म का ही प्रकाश हैं। दुनिया के भय, भ्रमों से छुटकारा पाना भी प्रभु के हुक्म का प्रकाश है। कठिन योग कर्मों की पहचान, आत्मिक पवित्रता के नियमों की खोज— यह भी प्रभु के हुक्म का द्रश्य है। हे नानक! जितना भी यह गोचर संसार है, यह समस्त ही प्रभु के हुक्म का सगुण रूप है, पर (हुक्म का मालिक) प्रभु आप (इस सारे प्रसार से) प्रभाव से परे है ॥ ५४ ॥

॥ सलोकु ॥ हथि कलंम अगंम मसतकि लिखावती। उरझि रहिओ सभ संगि अनूप रूपावती। उसतति कहनु न जाइ मुखहु तुहारीआ। मोही देखि दरसु नानक बलिहारीआ ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ हे अचुत हे पारब्रहम अबिनासी अघनास। हे पूरन हे सरब मै दुखभंजन गुणतास। हे संगी हे निरंकार हे निरगुण सभ टेक। हे गोबिद हे गुणनिधान जा कै सदा बिबेक। हे अपरंपर हरि हरे हहि भी होवन हार। हे संतह कै सदा संगि निधारा आधार। हे ठाकुर हउ दासरो मै निरगुन गुनु नही कोइ। नानक दीजै नाम दानु राखउ हीऐ परोइ ॥ ५५ ॥

॥ सलोकु ॥ अगम्य हरि के हाथ में (हुक्म-रूपी) कलम है। (सब जीवों के) माथे पर (कर्मों के अनुसार) लेख लिख रहा है। वह सुन्दर रूप वाला प्रभु सब जीवों के साथ मिला है। हे नानक! (कह—) हे प्रभु! मेरे द्वारा अपने मुँह से तेरी प्रशंसा व्यक्त नहीं की जा सकती। तेरे दर्शनों से मेरी आत्मा मस्त हो रही है, बलिहारी हो रही है ॥ १ ॥ ॥ पउड़ी ॥ हे नानक! (प्रार्थना कर और कह—) हे स्थिर, अविनाशी, पापनाशक, सर्वव्यापक, दुखनाशक, गुणों के भण्डार, आकार-रहित प्रभु! हे माया के प्रभाव से अलग रहनेवाले, हे सब जीवों के आसरे, हे सृष्टि की

सुधि लेनेवाले, गुणों के भण्डार, हे अपरम्पार प्रभु ! तुम अब भी मौजूद हो, तुम सदा सत्यस्वरूप हो। हे संतों के हितैषी, निराश्रितों के आश्रय, सृष्टि के पालक ! मैं तेरा छोटा सा दास हूँ, मैं गुणहीन हूँ, मुझ में कोई गुण नहीं है। मुझे अपने नाम का दान दे, (यह दान) मैं अपने हृदय में पिरोकर रखूँ ॥ ५५ ॥

॥ सलोकु ॥ गुरदेव माता गुरदेव पिता गुरदेव सुआमी परमेसुरा। गुरदेव सखा अगिआन भंजनु गुरदेव बंधिप सहोदरा। गुरदेव दाता हरि नामु उपदेसै गुरदेव मंतु निरोधरा। गुरदेव सांति सति बुधि मूरति गुरदेव पारस परसपरा। गुरदेव तीरथु अंम्रित सरोवरु गुर गिआन मजनु अपरंपरा। गुरदेव करता सभि पाप हरता गुरदेव पतित पवितकरा। गुरदेव आदि जुगादि जुगु जुगु गुरदेव मंतु हरि जपि उधरा। गुरदेव संगति प्रभ मेलि करि किरपा हम मूड़ पापी जितु लगि तरा। गुरदेव सतिगुरु पारब्रहमु परमेसरु गुरदेव नानक हरि नमसकरा ॥ १ ॥ एहु सलोकु आदि अंति पड़णा।

॥ सलोकु ॥ गुरु ही माँ है, पिता है और वही प्रभु मालिक का रूप है। गुरु अँधेरा नष्ट करनेवाला मित्र है, गुरु ही सम्बन्धी तथा भाई है। गुरु (असली) दाता है, जिसका प्रभाव (कोई विकार आदि) गवाँ नहीं सकता। गुरु शांति, सत्य और बुद्धि का स्वरूप है, गुरु एक ऐसा पारस है जिसका स्पर्श पारस से कहीं अधिक श्रेष्ठ है। गुरु (सच्चा) तीर्थ है, अमृत-सरोवर है, गुरु के ज्ञान का स्नान बहुत ही श्रेष्ठ है। गुरु कर्त्तार का रूप है, सारे पापों को दूर करनेवाला है, गुर विकारी व्यक्तियों को पवित्र करनेवाला है। जब से जगत् बना है, गुरु आदिकाल से ही हरेक युग में है। गुरु का दिया हुआ हरि-नाम-मन्त्र जपकर (संसार-समुद्र के विकारों की लहरों से) पार उतरा जाता है। हे प्रभु ! कृपा कर, हमें गुरु की संगति दे ताकि हम मूर्ख-पापी उसकी संगति में (रहकर) पार हो जाएँ। गुरु परमेश्वर पारब्रहम का रूप है। हे नानक ! हरि के रूप गुरु को नमस्कार करनी चाहिए ॥ १ ॥

गउड़ी सुखमनी म० ५ सलोकु

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ आदिगुरए नमह। जुगादि गुरए नमह। सतिगुरए नमह। स्रीगुरदेवए नमह ॥ १ ॥

।। असटपदी ।। सिमरउ सिमरि सिमरि सुखु पावउ । कलि कलेस तन माहि मिटावउ । सिमरउ जासु बिसुंभर एकै । नामु जपत अगनत अनेकै । बेद पुरान सिंम्रिति सुधाख्यर । कीने राम नाम इक आख्यर । किनका एक जिसु जीअ बसावै । ता की महिमा गनी न आवै । कांखी एकै दरस तुहारो । नानक उन संगि मोहि उधारो ।। १ ।। सुखमनी सुख अंम्रित प्रभ नामु । भगत जना कै मनि बिस्राम ।। रहाउ ।।

।। सलोकु ।। मेरी सबसे बड़े (अकालपुरुष) को नमस्कार है जो (सब का) आदि है और जो युगों के आदि से है । सतिगुरु को मेरी नमस्कार है, श्रीगुरुदेवजी को नमस्कार है ।। १ ।। असटपदी ।। मैं (अकालपुरुष का नाम) स्मरण करूँ और स्मरण कर सुख प्राप्त करूँ; शरीर में (जो) दुःख-विकार (हैं, उन्हें) मिटा लूँ । जिस एक जगत्-पालक (हरि) का नाम अनेकों तथा अनगिनत (जीव) जपते हैं, मैं (भी उसे) स्मरण करूँ । वेद, पुराण तथा स्मृतियों ने एक अकालपुरुष के नाम को ही सबसे पवित्र नाम माना है । जिसके हृदय में (अकालपुरुष अपना नाम) थोड़ा सा भी बसाता है, उसकी प्रशंसा व्यक्त नहीं हो सकती । (हे अकालपुरुष !) जो मनुष्य तेरे दर्शन के इच्छुक हैं, उनकी संगति में (रखकर) मुझ नानक को बचा लो ।। १ ।। प्रभु का अमर करनेवाला तथा सुखदायक नाम (सब) सुखों की मणि है, इसका ठिकाना भक्तों के हृदय में है ।। रहाउ ।।

प्रभ कै सिमरनि गरभि न बसै । प्रभ कै सिमरनि दूखु जमु नसै । प्रभ कै सिमरनि कालु परहरै । प्रभ कै सिमरनि दुसमनु टरै । प्रभ सिमरत कछु बिघनु न लागै । प्रभ कै सिमरनि अनदिनु जागै । प्रभ कै सिमरनि भउ न बिआपै । प्रभ कै सिमरनि दुखु न संतापै । प्रभ का सिमरनु साध कै संगि । सरब निधान नानक हरि रंगि ।। २ ।।

प्रभु के स्मरण करने से (जीव) जन्म में नहीं आता, (जीव का) दुःख तथा यम (का भय) दूर हो जाता है, मौत परे हट जाती है, (बिकार-रूपी) दुश्मन टल जाता है । प्रभु को स्मरण करने से कोई रुकावट नहीं पड़ती, (क्योंकि) प्रभु का स्मरण करने से (मनुष्य) हर समय (विकारों से) सचेत रहता है । प्रभु का स्मरण करने से (कोई) भय (जीव पर) दबाव नहीं डाल सकता और (कोई) दुःख व्याकुल नहीं करता । अकालपुरुष का स्मरण गुरमुख की संगति में (मिलता है), (और जो मनुष्य स्मरण

करता है, उसे) हे नानक ! अकालपुरुष के प्रेम में (ही) (दुनिया के) सारे खज़ाने (प्रतीत होते) हैं ॥ २ ॥

प्रभ कै सिमरनि रिधि सिधि नउ निधि । प्रभ कै सिमरनि गिआनु धिआनु ततु बुधि । प्रभ कै सिमरनि जप तप पूजा । प्रभ कै सिमरनि बिनसै दूजा । प्रभ कै सिमरनि तीरथ इसनानी । प्रभ कै सिमरनि दरगह मानी । प्रभ कै सिमरनि होइ सु भला । प्रभ कै सिमरनि सुफल फला । से सिमरहि जिन आपि सिमराए । नानक ता कै लागउ पाए ॥ ३ ॥

प्रभु के स्मरण में ही रिद्धि, सिद्धि तथा नौ निधियाँ हैं, प्रभु-स्मरण में ही ज्ञान, सुरति का टिकाव तथा जगत् के मूल (हरि) की समझवाली बुद्धि है। प्रभु के स्मरण में ही जप-तप तथा पूजा हैं, (क्योंकि) स्मरण करने से प्रभु के अतिरिक्त उस जैसी किसी दूसरी हस्ती के अस्तित्व का ख्याल ही दूर हो जाता है। स्मरण करने से आत्मा, तीर्थ का स्नान करनेवाला हो जाता है और दरबार में प्रतिष्ठा मिलती है; जगत् में जो हो रहा है, भला प्रतीत होता है और मनुष्य-जन्म का उच्च मनोरथ सिद्ध हो जाता है। (नाम) वही स्मरण करते हैं, जिन्हें प्रभु आप प्रेरित करता है, (इसलिए, कह) हे नानक ! मैं उन (स्मरण करनेवालों) के चरण-स्पर्श करूँ ॥ ३ ॥

प्रभ का सिमरनु सभ ते ऊचा । प्रभ कै सिमरनि उधरे मूचा । प्रभ कै सिमरनि त्रिसना बुझै । प्रभ कै सिमरनि सभु किछु सुझै । प्रभ कै सिमरनि नाही जम त्रासा । प्रभ कै सिमरनि पूरन आसा । प्रभ कै सिमरनि मन की मलु जाइ । अंम्रित नामु रिद माहि समाइ । प्रभ जी बसहि साध की रसना । नानक जन का दासनि दसना ॥ ४ ॥

प्रभु का स्मरण सारे (कामों) में भला है; प्रभु का स्मरण करने से बहुत सारे (जीव) (विकारों से) बच जाते हैं। प्रभु का स्मरण करने से (माया की) प्यास मिट जाती है, (क्योंकि माया के) हरेक (काल) को समझ पड़ जाती है। प्रभु का स्मरण करने से यमों का भय समाप्त हो जाता है, और, (जीव की) आशा पूर्ण हो जाती है, (आकांक्षाओं से मन तृप्त हो जाता है)। प्रभु का स्मरण करने से मन की मैल दूर हो जाती है और मनुष्य के हृदय में (प्रभु का) अमर करनेवाला नाम टिक जाता है। प्रभुजी गुरमुख मनुष्यों की जिह्वा पर बसते हैं। (कहो) हे नानक ! (मैं) गुरमुखों के सेवकों का सेवक (बनूँ) ॥ ४ ॥

प्रभ कउ सिमरहि से धनवंते। प्रभ कउ सिमरहि से पतिवंते। प्रभ कउ सिमरहि से जन परवान। प्रभ कउ सिमरहि से पुरख प्रधान। प्रभ कउ सिमरहि सि बेमुहताजे। प्रभ कउ सिमरहि सि सरब के राजे। प्रभ कउ सिमरहि से सुख वासी। प्रभ कउ सिमरहि सदा अबिनासी। सिमरन ते लागे जिन आपि दइआला। नानक जन की मंगै रवाला॥ ५॥

जो मनुष्य प्रभु को स्मरण करते हैं, वे धनवान हैं, और वे प्रतिष्ठित हैं। जो मनुष्य प्रभु को स्मरण करते हैं, वे प्रसिद्ध हुए हैं, और वे (सबसे) भले हैं। जो मनुष्य प्रभु को स्मरण करते हैं वे किसी के आश्रित नहीं, वे (तो बल्कि) सब के बादशाह हैं। जो मनुष्य प्रभु को स्मरण करते हैं वे सुखी बसते और सदा के लिए जन्म-मरण से रहित हो जाते हैं, जिन पर प्रभु आप मेहरबान (होता) है; हे नानक! (कोई भाग्यशाली) इन गुरमुखों की चरणधूलि माँगता है॥ ५॥

प्रभ कउ सिमरहि से परउपकारी। प्रभ कउ सिमरहि तिन सद बलिहारी। प्रभ कउ सिमरहि से मुख सुहावे। प्रभ कउ सिमरहि तिन सूखि बिहावै। प्रभ कउ सिमरहि तिन आतमु जीता। प्रभ कउ सिमरहि तिन निरमल रीता। प्रभ कउ सिमरहि तिन अनद घनेरे। प्रभ कउ सिमरहि बसहि हरि नेरे। संत क्रिपा ते अनदिनु जागि। नानक सिमरनु पूरै भागि॥ ६॥

जो मनुष्य प्रभु को स्मरण करते हैं वे परोपकारी बन जाते हैं, उन पर (मैं) सदा बलिहारी हूँ। जो मनुष्य प्रभु को स्मरण करते हैं उनके मुँह सुन्दर हैं, उनकी (उम्र) सुख में बीतती है। जो मनुष्य प्रभु को स्मरण करते हैं, वे अपने आपको जीत लेते हैं और उनकी ज़िन्दगी बिताने का तरीका पवित्र हो जाता है। जो मनुष्य प्रभु को स्मरण करते हैं, उन्हें खुशियाँ ही खुशियाँ हैं, (क्योंकि) वे प्रभु के दरबार में बसते हैं। संतों की कृपा से ही यह हरवक्त (स्मरण की) जाग आ सकती है; हे नानक! स्मरण (की देन) बड़े भाग्य से (मिलती है)॥ ६॥

प्रभ कै सिमरनि कारज पूरे। प्रभ कै सिमरनि कबहु न झूरे। प्रभ कै सिमरनि हरि गुन बानी। प्रभ कै सिमरनि सहजि समानी। प्रभ कै सिमरनि निहचल आसनु। प्रभ कै सिमरनि कमल बिगासनु। प्रभ कै सिमरनि अनहद झुनकार।

सुखु प्रभ सिमरन का अंतु न पार। सिमरहि से जन जिन कउ प्रभ मइआ। नानक तिन जन सरनी पइआ ॥ ७ ॥

प्रभु का स्मरण करने से (सारे) काम पूर्ण हो जाते हैं और मनुष्य कभी चिन्ता के वशीभूत नहीं होता। प्रभु के स्मरण करने से, मनुष्य अकालपुरुष के गुण ही उच्चरित करता है और सहज अवस्था में टिका रहता है। प्रभु का स्मरण करने से मनुष्य का (मन-रूपी) आसन डोलता नहीं और उसका (हृदय का) कमल-पुष्प खिला रहता है। प्रभु का स्मरण करने से (मनुष्य के भीतर) निरन्तर संगीत (जैसा) अनहदनाद (होता रहता) है, प्रभु के स्मरण से सुख (पैदा होता) है, वह (कभी) समाप्त नहीं होता। वही मनुष्य (प्रभु को) स्मरण करते हैं, जिन पर प्रभु की कृपा होती है; हे नानक ! (कोई भाग्यशाली) उन (स्मरण करनेवाले) जनों की शरण लेता है ॥ ७ ॥

हरि सिमरनु करि भगत प्रगटाए। हरि सिमरनि लगि बेद उपाए। हरि सिमरनि भए सिध जती दाते। हरि सिमरनि नीच चहु कुंट जाते। हरि सिमरनि धारी सभ धरना। सिमरि सिमरि हरि कारन करना। हरि सिमरनि कीओ सगल अकारा। हरि सिमरन महि आपि निरंकारा। करि किरपा जिसु आपि बुझाइआ। नानक गुरमुखि हरि सिमरनु तिनि पाइआ ॥ ८ ॥ १ ॥

प्रभु का स्मरण करके भक्त (जगत् में) मशहूर होते हैं, स्मरण में ही जुड़कर (ऋषियों ने) वेद (आदि धार्मिक ग्रन्थ) रचे। प्रभु के स्मरण द्वारा ही मनुष्य सिद्ध बन गए, यती बन गए, दाता बन गए, स्मरण के प्रभाव से नीच मनुष्य सारे संसार में प्रकट हो गए। प्रभु के स्मरण ने सारी धरती को आसरा दिया हुआ है; (इसलिए, हे भाई !) जगत् के कर्त्ता प्रभु को सदा स्मरण कर। प्रभु ने स्मरण के लिए सारा जगत् बनाया है; जहाँ स्मरण है वहाँ निरंकार आप बसता है। कृपा करके जिस मनुष्य को (स्मरण करने की) समझ देता है, हे नानक ! उस मनुष्य ने गुरु के द्वारा स्मरण (की देन) प्राप्त कर ली है ॥ ८ ॥ १ ॥

॥ सलोकु ॥ दीन दरद दुख भंजना घटि घटि नाथ अनाथ। सरणि तुमारी आइओ नानक के प्रभ साथ ॥ १ ॥ ॥ असटपदी ॥ जह मात पिता सुत मीत न भाई। मन ऊहा नामु तेरै संगि सहाई। जह महा भइआन दूत जम दलै। तह केवल

नामु संगि तेरै चलै । जह मुसकल होवै अति भारी । हरि को नामु खिन माहि उधारी । अनिक पुनह चरन करत नही तरै । हरि को नामु कोटि पाप परहरै । गुरमुखि नामु जपहु मन मेरे । नानक पावहु सूख घनेरे ।। १ ।।

।। सलोकु ।। हे दीनों के दर्द तथा दुःख नष्ट करनेवाले प्रभु ! हे हरेक शरीर में व्यापक प्रभु, अनाथों के नाथ हरि ! गुरु नानक का पल्ला पकड़कर मैं तेरी शरण आया हूँ ।। १ ।। असटपदी ।। जहाँ माँ, पिता, मित्र, भाई, कोई (साथी) नहीं, वहाँ हे मन ! (प्रभु) का नाम तेरे साथ सहायता करनेवाला (है), जहाँ बड़े भयंकर यमदूतों का दल है, वहाँ तेरे साथ केवल प्रभु का नाम ही जाता है । जहाँ बड़ी भारी विपत्ति होती है, (वहाँ) प्रभु का नाम निमिषमात्र में बचा लेता है । अनेकों धार्मिक रस्में करके भी (मनुष्य पापों से) नहीं बचता, (पर) प्रभु का नाम करोड़ों पापों का नाश कर देता है । (इसलिए, हे मन !) गुरु की शरण लेकर नाम जप; हे नानक ! (नाम के प्रभाव से) बड़े सुख पाएगा ।। १ ।।

सगल स्रिसटि को राजा दुखीआ । हरि का नामु जपत होइ सुखीआ । लाख करोरी बंधुन परै । हरि का नामु जपत निसतरै । अनिक माइआ रंग तिख न बुझावै । हरि का नामु जपत आघावै । जिह मारगि इहु जात इकेला । तह हरिनामु संगि होत सुहेला । ऐसा नामु मन सदा धिआईऐ । नानक गुरमुखि परम गति पाईऐ ।। २ ।।

(मनुष्य) सारी दुनिया का राजा (होकर भी) दुखी (रहता है) लेकिन प्रभु का नाम जपने से सुखी (हो जाता है); (क्योंकि) लाखों-कमा कर भी (माया की प्यास में) बंधन में पड़ता है, प्रभु का नाम जपकर मनुष्य पार उतर जाता है; माया की अनगिनत खुशियाँ होते हुए भी (और माया की) प्यास नहीं बुझती, (पर) प्रभु का नाम जपने से (मनुष्य माया से) तृप्त हो जाता है । जहाँ जीव अकेला जाता है, वहाँ प्रभु का नाम इसके साथ सुख देनेवाला होता है । (इसलिए) हे मन ! ऐसा नाम सदा स्मरण कर, हे नानक ! गुरु के द्वारा (नाम जपने से) ऊँचा स्थान मिलता है ।। २ ।।

छूटत नही कोटि लख बाही । नामु जपत तह पारि पराही । अनिक बिघन जह आइ संघारै । हरि का नामु ततकाल उधारै । अनिक जोनि जनमै मरि जाम । नामु जपत

पावै बिस्रामु । हउ मैला मलु कबहु न धोवै । हरि का नामु कोटि पाप खोवै । ऐसा नामु जपहु मन रंगि । नानक पाईऐ साध कै संगि ।। ३ ।।

लाखों करोड़ों भाइयों के होते हुए भी (मनुष्य जिस दीन अवस्था से मुक्त नहीं हो सकता, वहाँ (प्रभु का) नाम जपने से (जीव) पार उतर जाते हैं। जहाँ अनेकों मुसीबतें आ दबाती हैं, (वहाँ) प्रभु का नाम तुरन्त बचा लेता है। (जीव) अनेक योनियों में जन्मता है, मरता है (फिर) जन्मता-मरता है (लेकिन) नाम जपने से (प्रभु-चरणों में टिक जाता है)। अहंकार से गन्दा हुआ (जीव) कभी यह मैल धोता नहीं, (पर) प्रभु का नाम करोड़ों पाप नष्ट कर देता है। हे मन ! (प्रभु का) ऐसा नाम प्रेमपूर्वक जप। हे नानक ! (प्रभु का नाम) गुरमुखों की संगति में मिलता है ।। ३ ।।

जिह मारग के गने जाहि न कोसा । हरि का नामु ऊहा संगि तोसा । जिह पैडै महा अंध गुबारा । हरि का नामु संगि उजीआरा । जहा पंथि तेरा को न सिञानू । हरि का नामु तह नालि पछानू । जह महा भइआन तपति बहु घाम । तह हरि के नाम की तुम ऊपरि छाम । जहा त्रिखा मन तुझु आकरखै । तह नानक हरि हरि अंम्रितु बरखै ।। ४ ।।

जिस (जिन्दगी-रूपी) राह के कोस आदि गिने नहीं जा सकते, वहाँ प्रभु का नाम (जीव के) साथ (राह की) राशि-पूँजी है। जिस मार्ग में (विकारों का) घोर अँधेरा है, (वहाँ) प्रभु का नाम (जीव के) साथ प्रकाश है। जिस मार्ग में तेरा कोई मित्र नहीं है, वहाँ प्रभु का नाम तेरे साथ (सच्चा) साथी है। जहाँ (जिन्दगी के मार्ग में) (विकारों की) बड़ी भयानक जलन तथा गर्मी है, वहाँ प्रभु का नाम (हे जीव !) तुझ पर छाया है। (हे जीव!) जहाँ (माया की) प्यास तुझे खींचती है, वहाँ हे नानक ! प्रभु के नाम की वर्षा होती है (जो जलन को बुझा देती है) ।। ४ ।।

भगत जना की बरतनि नामु । संत जना कै मनि बिस्रामु । हरि का नामु दास की ओट । हरि कै नामि उधरे जन कोटि । हरि जसु करत संत दिनु राति । हरि हरि अउखधु साध कमाति । हरि जन कै हरि नामु निधानु । पारब्रहमि जन कीनो दान । मन तन रंगि रते रंग एकै । नानक जन कै बिरति बिबेकै ।। ५ ।।

प्रभु-नाम भक्तों के लिए व्यावहारिक सामग्री है अर्थात् उसकी हरवक्त आवश्यकता होती है, भक्तों के ही मन में यह टिका रहता है। प्रभु का नाम भक्तों का आसरा है, प्रभु-नाम के द्वारा करोड़ों व्यक्ति (विकारों से) बच जाते हैं। भक्तजन दिन-रात्रि प्रभु की प्रशंसा करते हैं, प्रभु-नाम-रूपी औषधि एकत्रित करते हैं। भक्तों के पास प्रभु का नाम ही भण्डार है, प्रभु के नाम की देन, अपने सेवकों पर आपही की है। भक्तजन मन-तन से एक प्रभु के प्रेम में रँगे रहते हैं; हे नानक ! भक्तों के भीतर भले-बुरे की परख करनेवाला स्वभाव बन जाता है ॥ ५ ॥

हरि का नामु जन कउ मुकति जुगति। हरि कै नामि जन कउ त्रिपति भुगति। हरि का नामु जन का रूप रंगु। हरि नामु जपत कब परै न भंगु। हरि का नामु जन की वडिआई। हरि कै नामि जन सोभा पाई। हरि का नामु जन कउ भोग जोग। हरि नामु जपत कछु नाहि बिओगु। जनु राता हरि नाम की सेवा। नानक पूजै हरि हरि देवा ॥ ६ ॥

भक्त के लिए प्रभु का नाम (ही) छुटकारे का साधन है, (क्योंकि) प्रभु के नाम के द्वारा (माया के) भोगों से जीव तृप्त हो जाता है। प्रभु का नाम भक्त का सौंदर्य है, प्रभु का नाम जपते हुए (भक्त के मार्ग में) कभी (कोई) अटकाव नहीं होता। प्रभु का नाम ही भक्त की प्रतिष्ठा है, (क्योंकि) प्रभु के नाम के द्वारा (ही) भक्तों ने (जगत् में) प्रसिद्धि पाई है। (त्यागी का) योग (-साधन) और गृहस्थी का माया-भोग भक्तजन के लिए प्रभु का नाम (ही) है, प्रभु का नाम जपते हुए (उसे) कोई दु:ख-क्लेश नहीं होता। (प्रभु का) भक्त (सदा) प्रभु के नाम की सेवा (स्मरण) में मस्त रहता है; हे नानक ! (भक्त सदा) प्रभुदेव को ही पूजता है ॥ ६ ॥

हरि हरि जन कै मालु खजीना। हरि धनु जन कउ आपि प्रभि दीना। हरि हरि जन कै ओट सताणी। हरि प्रतापि जन अवर न जाणी। ओति पोति जन हरि रसि राते। सुंन समाधि नाम रस माते। आठ पहर जनु हरि हरि जपै। हरि का भगतु प्रगट नही छपै। हरि की भगति मुकति बहु करे। नानक जन संगि केते तरे ॥ ७ ॥

प्रभु का नाम भक्त के लिए धन है, यह नाम-रूपी धन प्रभु ने आप अपने भक्त को दिया है। भक्त के लिए प्रभु का (ही) पक्का आसरा है,

भक्तों ने प्रभु के प्रताप से किसी दूसरे आसरे को नहीं देखा। भक्तजन प्रभु-नाम के रस में पूर्ण तौर पर भीगे रहते हैं, (और) नाम-रस में मस्त हुए (मन का वह) टिकाव (पाते हैं) जहाँ कोई कल्पना नहीं होती। (प्रभु का) भक्त आठों प्रहर प्रभु को जपता है, (जगत् में) भक्त प्रकट (हो जाता है), छिपा नहीं रहता। प्रभु की भक्ति अनन्त जीवों को (विकारों से) मुक्ति दिलाती है; हे नानक! भक्त की संगति में कई दूसरे भी पार हो जाते हैं ॥ ७ ॥

पारजातु इहु हरि को नाम। कामधेन हरि हरि गुण गाम। सभ ते ऊतम हरि की कथा। नामु सुनत दरद दुख लथा। नाम की महिमा संत रिद वसै। संत प्रतापि दुरतु सभु नसै। संत का संगु वडभागी पाईऐ। संत की सेवा नामु धिआईऐ। नाम तुलि कछु अवरु न होइ। नानक गुरमुखि नामु पावै जनु कोइ ॥ ८ ॥ २ ॥

प्रभु का नाम (ही) 'पारिजात' वृक्ष है, उसका गुणगान (ही इच्छा-पूरक) कामधेनु है। प्रभु की गुणस्तुति की बातें सब बातों से भली हैं (क्योंकि) प्रभु का नाम सुनने से सारे दुख-दर्द उतर जाते हैं। (प्रभु के) नाम की महत्ता संतों के हृदय में बसती है (और संतों के प्रताप से) सारा पाप दूर हो जाता है। सौभाग्यवश संतों की संगति मिलती है (और) संतों की सेवा (करने से) (प्रभु का) नाम-स्मरण किया जाता है। प्रभु-के बराबर दूसरा कोई (पदार्थ) नहीं, हे नानक! गुरु के सम्मुख होकर कोई विरला मनुष्य नाम (की देन) प्राप्त करता है ॥ ८ ॥ २ ॥

॥ सलोकु ॥ बहु सासत्र बहु सिम्रिती पेखे सरब ढढोलि। पूजसि नाही हरि हरे नानक नाम अमोल ॥ १ ॥
॥ असटपदी ॥ जाप ताप गिआन सभि धिआन। खट सासत्र सिम्रिति वखिआन। जोग अभिआस करम ध्रम किरिआ। सगल तिआगि बन मधे फिरिआ। अनिक प्रकार कीए बहु जतना। पुंन दान होमे बहु रतना। सरीरु कटाइ होमै करि राती। वरत नेम करै बहु भाती। नही तुलि राम नाम बीचार। नानक गुरमुखि नामु जपीऐ इक बार ॥ १ ॥

॥ सलोकु ॥ बहुत से शास्त्र और स्मृतियाँ, (हमने) सब खोजकर देखे हैं, (लेकिन) यह अकालपुरुष के नाम की बराबरी नहीं कर सकते।

हे नानक ! (प्रभु के) नाम का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता ।। १ ।।
।। असटपदी ।। (वेद-मन्त्रों के) जाप करे, (शूरवीर को धूनियों से) तपाए, कई प्रकार से ज्ञान (की बातें करे) और (देवताओं के) ध्यान में लीन रहे, छः शास्त्रों और स्मृतियों का उपदेश करे; योग के साधन करे, कर्मकांडी धर्म की क्रिया करे, (अथवा) सारे (काम) छोड़कर जंगलों में घूमता फिरे; अनेक किस्मों के बड़े यत्न करे, पुण्यदान करे, और बहुत मात्रा में हवन, घृत करे, अपनी देह को थोड़ी-थोड़ी करके कटाए और आग में जला देवे, कई प्रकार के व्रतों का पालन करे; (लेकिन ये तमाम) प्रभु के नाम की चिन्तना के बराबर नहीं हैं (चाहे) हे नानक ! यह नाम एक बार (ही) गुरु के समक्ष होकर जपा जाए ।। १ ।।

नउखंड प्रिथमी फिरै चिरु जीवै । महा उदासु तपीसरु थीवै । अगनि माहि होमत परान । कनिक अस्व हैवर भूमि दान । निउली करम करै बहु आसन । जैन मारग संजम अति साधन । निमख निमख करि सरीरु कटावै । तउ भी हउमै मैलु न जावै । हरि के नाम समसरि कछु नाहि । नानक गुरमुखि नामु जपत गति पाहि ।। २ ।।

(यदि कोई मनुष्य) सम्पूर्ण पृथ्वी पर फिरे, लम्बी उम्र तक जीता रहे, तटस्थ होकर बड़ा तपस्वी बन जाए; आग में (अपनी) देह होम कर दे; सोना, घोड़े और भूमिदान कर दे; निउली कर्म (योगासन का एक रूप) और बहुत सारे योगासन करे, जैनियों के रास्ते पर चलकर बड़े कठिन साधन तथा तपस्या करे; शरीर को थोड़ा-थोड़ा करके कटा देवे तो भी अहंभावना की मैल दूर नहीं होती । (ऐसा) कोई (प्रयास) प्रभु के नाम के बराबर नहीं है । हे नानक ! जो मनुष्य गुरु के सम्मुख होकर नाम जपते हैं, वे ऊँची आत्मिक अवस्था प्राप्त करते हैं ।। २ ।।

मन कामना तीरथ देह छुटै । गरबु गुमानु न मन ते हुटै । सोच करै दिनसु अरु राति । मन की मैलु न तन ते जाति । इसु देही कउ बहु साधना करै । मन ते कबहू न बिखिआ टरै । जलि धोवै बहु देह अनीति । सुध कहा होइ काची भीति । मन हरि के नाम की महिमा ऊच । नानक नामि उधरे पतित बहु मूच ।। ३ ।।

(कई प्राणियों के) मन की इच्छा (होती है कि) तीर्थों पर (जाकर) शारीरिक वस्त्र छोड़ा जाए, (पर इस प्रकार भी) अहंकार मन से दूर

नहीं होता। (मनुष्य) दिन तथा रात (तीर्थों पर) स्नान करे, (फिर भी) मन की मैल शरीर धोने से नहीं जाती। (यदि) इस शरीर को (साधने की खातिर) कई यत्न भी करें, (तो भी) कभी मन से माया (का प्रभाव) नहीं टलता। इस नश्वर शरीर को कई बार प्राणी पानी से भी धोए (तो भी यह शरीर-रूपी) कच्ची दीवार कहाँ पवित्र हो सकती है? हे मन! प्रभु के नाम की महत्ता बहुत बड़ी है। हे नानक! नाम के प्रभाव से असंख्य कुकर्मी जीव (विकारों से) बच जाते हैं॥ ३॥

बहुतु सिआणप जम का भउ बिआपै। अनिक जतन करि त्रिसन न ध्रापै। भेख अनेक अगनि नही बुझै। कोटि उपाव दरगह नही सिझै। छूटसि नाही ऊभ पइआलि। मोहि बिआपहि माइआ जालि। अवर करतूति सगली जमु डानै। गोविंद भजन बिनु तिलु नही मानै। हरि का नामु जपत दुखु जाइ। नानक बोलै सहजि सुभाइ॥ ४॥

(जीव की) बहुत चतुराई (के कारण) यम का भय (जीव को) आ दबाता है (क्योंकि चतुराई के) अनेक यत्न करने से (माया की) प्यास समाप्त नहीं होती। अनेकों वेष बदलने से (तृष्णा की) आग नहीं बुझती, (ऐसे) करोड़ों तरीके (प्रयोग करने से भी प्रभु के) दरबार में व्यक्ति बेबाक (मुक्त) नहीं होता। (इन यत्नों से) जीव चाहे आकाश पर चढ़ जाए, चाहे पाताल में छिप जाए, (पर वह) माया से बच नहीं सकता, (बल्कि) जीव माया के जाल में तथा मोह में फँसते हैं। (नाम के बिना) दूसरी सब करतूतों को यमराज दण्डित करता है, प्रभु के भजन के बिना तनिकमात्र भी विश्वास नहीं करता। हे नानक! (जो मनुष्य) आत्मिक स्थिरता में टिककर प्रेमपूर्वक (हरि-नाम) उच्चरित करता है, (उसका) दुःख प्रभु का नाम जपते हुए दूर हो जाता है॥ ४॥

चारि पदारथ जे को मागै। साध जना की सेवा लागै। जे को आपुना दूखु मिटावै। हरि हरि नामु रिदै सद गावै। जे को अपुनी सोभा लोरै। साध संगि इह हउमै छोरै। जे को जनम मरण ते डरै। साध जना की सरनी परै। जिसु जन कउ प्रभ दरस पिआसा। नानक ता कै बलि बलि जासा॥ ५॥

यदि कोई मनुष्य (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) चार पदार्थों का जरूरतमन्द हो, (तो उसे चाहिए कि) गुरमुखों की सेवा में लगे। यदि कोई

मनुष्य अपना दुःख मिटाना चाहे तो प्रभु का नाम सदा हृदय में स्मरण करे। यदि कोई मनुष्य अपनी शोभा चाहता हो तो सत्संग में (रहकर) इस अहंकार का त्याग करे। यदि कोई मनुष्य जन्म-मरण (के चक्र) से डरता हो, तो वह संतों के चरणों का स्पर्श करे। हे नानक! (कह कि) जिस मनुष्य को प्रभु के दर्शन की इच्छा है, मैं उसपर सदा बलिहारी जाऊँ ॥ ५ ॥

सगल पुरख महि पुरखु प्रधानु। साध संगि जा का मिटै अभिमानु। आपस कउ जो जाणै नीचा। सोऊ गनीऐ सभ ते ऊचा। जा का मनु होइ सगल की रीना। हरि हरि नामु तिनि घटि घटि चीना। मन अपुने ते बुरा मिटाना। पेखै सगल स्रिसटि साजना। सूख दूख जन सभ द्रिसटेता। नानक पाप पुंन नही लेपा ॥ ६ ॥

सत्संगत में (रहकर) जिस मनुष्य का अहंकार मिट जाता है, (वह) मनुष्य समस्त मनुष्यों में बड़ा है। जो मनुष्य अपने आपको (सबसे) कुकर्मी सोचता है, उसे सबसे भला समझना चाहिए। जिस मनुष्य का मन सबके चरणों की धूलि होता है, उस मनुष्य ने हरेक शरीर में प्रभु की सत्ता पहचान ली है। जिसने अपने मन से बुराई मिटा दी है, वह सारी सृष्टि (के जीवों को अपना) मित्र देखता है। हे नानक! (ऐसे) मनुष्य सुख-दुःख को एक जैसा समझते हैं, (इसीलिए) पाप और पुण्य का उन पर असर नहीं होता, (अर्थात् वे सभी स्थितियों में एक समान रहते हैं)॥ ६ ॥

निरधन कउ धनु तेरो नाउ। निथावे कउ नाउ तेरा थाउ। निमाने कउ प्रभ तेरो मानु। सगल घटा कउ देवहु दान। करन करावनहार सुआमी। सगल घटा के अंतरजामी। अपनी गति मिति जानहु आपे। आपन संगि आपि प्रभ राते। तुमरी उसतति तुम ते होइ। नानक अवरु न जानसि कोइ ॥ ७ ॥

(हे प्रभु!) कंगाल के लिए तेरा नाम ही धन है, निराश्रित को तेरा सहारा है। तुच्छ व्यक्ति के लिए तेरा (नाम), हे प्रभु! आदरमान है, तुम ही सारे जीवों को देन देते हो। हे स्वामी! हे अन्तर्यामी! तुम आप ही सब कुछ करते हो, और, आप ही कराते हो। हे प्रभु! तुम अपनी हालत और अपनी मर्यादा आप ही जानते हो; तुम अपने आप में आप ही महान् हो। हे नानक! (कह, कि, हे प्रभु!) तेरी प्रशंसा तुझ से ही (व्यक्त) हो सकती है, कोई दूसरा तेरी महानता नहीं जानता ॥ ७ ॥

सरब धरम महि स्रेसट धरमु। हरि को नामु जपि निरमल करमु। सगल क्रिआ महि ऊतम किरिआ। साध संगि दुरमति मलु हिरिआ। सगल उदम महि उदमु भला। हरि का नामु जपहु जीअ सदा। सगल बानी महि अंम्रित बानी। हरि को जसु सुनि रसन बखानी। सगल थान ते ओहु ऊतम थानु। नानक जिह घटि वसै हरिनामु॥ ८॥ ३॥

(हे मन!) प्रभु का नाम जप (और) पवित्र आचरण (बना), —यह धर्म सर्वोपरि है। सत्संग में (रहकर) दुर्बुद्धि (-रूपी) मैल दूर की जाए— यह काम अन्य दूसरी धार्मिक रस्मों से उत्तम है। हे मन! सदा प्रभु का नाम जप— यह यत्न तमाम यत्नों में श्रेष्ठ है। प्रभु का यश (कानों से) सुन (तथा) जीभ से बोल— (प्रभु के यश की यह) आत्मिक जीवन देनेवाली वाणी दूसरी वाणियों से सुन्दर है। हे नानक! जिस हृदय में प्रभु का नाम विद्यमान है, वह (हृदय-रूपी) स्थान दूसरे तमाम (तीर्थ-) स्थानों से पवित्र है॥ ८॥ ३॥

॥ सलोकु॥ निरगुनीआर इआनिआ सो प्रभु सदा समालि। जिनि कीआ तिसु चीति रखु नानक निबही नालि॥ १॥ ॥ असटपदी॥ रमईआ के गुन चेति परानी। कवन मूल ते कवन द्रिसटानी। जिनि तूं साजि सवारि सीगारिआ। गरभ अगनि महि जिनहि उबारिआ। बार बिवसथा तुझहि पिआरै दूध। भरि जोबन भोजन सुख सूध। बिरधि भइआ ऊपरि साक सैन। मुखि अपिआउ बैठ कउ दैन। इहु निरगुनु गुनु कछू न बूझै। बखसि लेहु तउ नानक सीझै॥ १॥

॥ सलोकु॥ हे मूर्ख! हे गुण-हीन (मनुष्य)! उस मालिक को सदा याद कर। हे नानक! जिसने तुझे पैदा किया है, उसे चित्त में (पिरो) रख, वही साथ निभाएगा॥ १॥ असटपदी॥ हे जीव! सुन्दर राम के गुण स्मरण कर, (देख) कब से (तुझे) कितना (सुन्दर बनाकर उसने) दिखाया है। जिस प्रभु ने तुझे बना-सँवार कर सुन्दर किया है, जिसने तुझे पेट की आग में भी बचाया, जो बाल अवस्था में तुझे दूध पिलाता है, भरी जवानी में भोजन और सुखों की सूझ (देता है); (जब) तू बूढ़ा हो जाता है तो सेवा करने को सगे-सम्बन्धी (तैयार कर देता है), जो तुझ बैठे हुए को सुन्दर भोजन देते हैं। (पर) हे नानक! (कह— हे प्रभु!) यह गुणहीन जीव कोई उपकार नहीं समझता, (यदि) तू आप कृपा करे तो (यह जन्म-मनोरथ में) सफल होवे॥ १॥

जिह प्रसादि धर ऊपरि सुखि बसहि। सुत भ्रात मीत बनिता संगि हसहि। जिह प्रसादि पीवहि सीतल जला। सुखदाई पवनु पावकु अमुला। जिह प्रसादि भोगहि सभि रसा। सगल समग्री संगि साथि बसा। दीने हसत पाव करन नेत्र रसना। तिसहि तिआगि अवर संगि रचना। ऐसे दोख मूड़ अंध बिआपे। नानक काढि लेहु प्रभ आपे ॥ २ ॥

(हे जीव !) जिसकी कृपा से तू धरती पर सुख से बसता है; पुत्र, भाई, स्त्री तथा मित्र से हँसता है; जिसकी कृपा से तू ठण्डा पानी पीता है, सुखदायक हवा तथा अमूल्य अग्नि (इस्तेमाल करता है); जिसकी कृपा से सारे रस भोगता है, तू सारे पदार्थों के साथ रहता है; (जिसने) तुझे हाथ, पैर, कान, आँख, जीभ दिए हैं, (प्रभु) को भुलाकर (हे जीव !) तू दूसरों के साथ लीन है। (यह) मूर्ख अन्धे जीव (भलाई भुलानेवाले) अवगुण में फँसे हैं। हे नानक ! (इन जीवों के लिए प्रार्थना कर, और कह)—हे प्रभु ! (इन्हें) आप (इन अवगुणों से) निकाल ले ॥ २ ॥

आदि अंति जो राखनहारु। तिस सिउ प्रीति न करै गवारु। जा की सेवा नव निधि पावै। ता सिउ मूड़ा मनु नही लावै। जो ठाकुरु सद सदा हजूरे। ता कउ अंधा जानत दूरे। जा की टहल पावै दरगह मानु। तिसहि बिसारै मुगधु अजानु। सदा सदा इहु भूलनहारु। नानक राखनहारु अपारु ॥ ३ ॥

मूर्ख मनुष्य उस प्रभु के साथ प्रेम नहीं करता, जो (इसके) जन्म से लेकर मृत्यु तक देखभाल करता है। मूर्ख जीव उस प्रभु के साथ चित्त नहीं जोड़ता, जिसकी सेवा करने से (इसे सृष्टि के) नौ खजाने मिल जाते हैं। अन्धा मनुष्य उस ठाकुर को (कहीं) दूर (बैठा) समझता है, जो हरवक्त इसके साथ-साथ है। मूर्ख तथा अज्ञानी मनुष्य उस प्रभु को भुला बैठता है, जिसकी सेवा करने से इसे दरबार में आदर मिलता है (पर कौन-कौन सा अवगुण याद कराएँ ?) यह जीव सदा ही ग़लतियाँ करता रहता है; हे नानक ! रक्षक प्रभु अनन्त है (वह उस जीव के अवगुणों को नहीं देखता) ॥ ३ ॥

रतनु तिआगि कउडी संगि रचै। साचु छोडि झूठ संगि मचै। जो छडना सु असथिरु करि मानै। जो होवनु सो दूरि

परानै। छोडि जाइ तिस का स्रमु करै। संगि सहाई तिसु परहरै। चंदन लेपु उतारै धोइ। गरधब प्रीति भसम संगि होइ। अंध कूप महि पतित बिकराल। नानक काढि लेहु प्रभ दइआल॥ ४ ॥

(माया-ग्रस्त) जीव (नाम-) रत्न छोड़कर (माया-रूपी) कौड़ी के साथ प्रसन्न फिरता है। सच्चे (प्रभु) को छोड़कर नश्वर पदार्थों के साथ अभिमान करता है। जो (माया) छोड़ जानी है, उसे सदा अटल समझता है; जो अवश्य घटित होती है, उस (मौत) को कहीं दूर ख़्याल करता है। उस (माया-धन) की खातिर (रोज़) कष्ट करता है, जो छोड़ जानी है; जो (प्रभु) साथ-साथ रक्षक है उसे भुला बैठा है। गधे (अज्ञानी) का प्रेम, राख के साथ ही होता है, (वह) चन्दन का लेप धोकर उतार देता है। (जीव माया के) अँधेरे भयानक कुएं में गिरे पड़े हैं; हे नानक! (प्रार्थना कर और कह) हे दयालु प्रभु! (इन्हें आप इस अन्धकूप से) निकाल ले ॥४॥

करतूति पसू की मानस जाति। लोक पचारा करै दिनु राति। बाहरि भेख अंतरि मलु माइआ। छपसि नाहि कछु करै छपाइआ। बाहरि गिआन धिआन इसनान। अंतरि बिआपै लोभु सुआनु। अंतरि अगनि बाहरि तनु सुआह। गलि पाथर कैसे तरै अथाह। जाकै अंतरि बसै प्रभु आपि। नानक ते जन सहजि समाति॥ ५ ॥

जाति मनुष्य की है, परन्तु काम पशुओं वाले हैं, (वैसे) दिन-रात लोगों के लिए दिखावा कर रहा है। बाहर (शरीर पर) धार्मिक वस्त्र हैं, पर मन में माया की मैल है, (बाहरी दिखावे) से छुपाने का यत्न करने से (मन की मैल) छुपती नहीं। बाहर तीर्थ-स्नान तथा ज्ञान की बातें करता है, समाधियाँ भी लगाता है लेकिन मन में लोभ (रूपी) कुत्ता दबाव डाल रहा है। मन में (तृष्णा की) अग्नि है, बाहर शरीर राख (से लिपटा हुआ है); (यदि) गले में (विकारों के) पत्थर (हों तो) अथाह (संसार-समुद्र को) जीव कैसे पार करे? जिस-जिस मनुष्य के हृदय में प्रभु आ बसता है, हे नानक! वही स्थिर अवस्था में टिके रहते हैं॥ ५ ॥

सुनि अंधा कैसे मारगु पावै। करु गहि लेहु ओड़ि निबहावै। कहा बुझारति बूझै डोरा। निसि कहीऐ तउ समझै भोरा। कहा बिसन पद गावै गुंग। जतन करै तउ भी सुर भंग।

कह पिंगुल परबत परभवन। नही होत ऊहा उसु गवन। करतार करुणामैं दीनु बेनती करै। नानक तुमरी किरपा तरै॥ ६॥

अन्धा मनुष्य (केवलमात्र) सुनकर कैसे रास्ता ढूंढ ले ? (हे प्रभु ! आप इसका) हाथ पकड़ लो (ताकि यह) आखिर तक (प्रेम का) निर्वाह कर सके। बहरा मनुष्य (निरे) कहने से क्या समझेगा ? (यदि) कहें कि (यह) रात है तो वह समझ लेता है कि (यह) दिन (है), गूँगा किस प्रकार बिसनपद गा सकता है ? (यदि) यत्न (भी) करे, उसकी आवाज टूटी रहती है। लँगड़ा कैसे पहाड़ से गुजर सकता है ? वहाँ उसकी पहुँच नहीं हो सकती। हे नानक ! (केवल प्रार्थना कर और कह) हे कर्त्तार ! हे दया के सागर ! (यह) तुच्छ दास प्रार्थना करता है, तेरी कृपा से (ही) पार हो सकता है॥ ६॥

संगि सहाई सु आवै न चीति। जो बैराई ता सिउ प्रीति। बलूआ के ग्रिह भीतरि बसै। अनद केल माइआ रंगि रसै। द्रिड़ु करि मानै मनहि प्रतीति। कालु न आवै मूड़े चीति। बैर बिरोध काम क्रोध मोह। झूठ बिकार महा लोभ ध्रोह। इआहू जुगति बिहाने कई जनम। नानक राखि लेहु आपन करि करम॥ ७॥

जो प्रभु (मूर्ख जीव का) साथी है, उसे यह स्मरण नहीं करता, (पर) जो वैरी है, उससे प्यार कर रहा है। रेत के घर में बसता है, (फिर भी) माया की मस्ती में आनन्द अनुभव कर रहा है। (अपने आपको) अमर समझे बैठा है, मन में (यह) यकीन बना हुआ है; परन्तु मूर्ख के चित्त में (कभी) मौत (का ख्याल भी) नहीं आता। वैर, विरोध, काम, क्रोध, झूठ, मोह, कुकर्म, लालच और विश्वासघात— इसी मार्ग का अनुसरण करके कई जन्म बीत गए हैं। हे नानक ! (इस जीव के लिए प्रभु से प्रार्थना कर और कह) अपनी कृपा करके (इसे) बचा ले॥ ७॥

तू ठाकुरु तुम पहि अरदासि। जीउ पिंडु सभु तेरी रासि। तुम मात पिता हम बारिक तेरे। तुमरी क्रिपा महि सूख घनेरे। कोइ न जानै तुमरा अंतु। ऊचे ते ऊचा भगवंत। सगल समग्री तुमरै सूत्रि धारी। तुम ते होइ सु आगिआकारी। तुमरी गति मिति तुम ही जानी। नानक दास सदा कुरबानी॥ ८॥ ४॥

(हे प्रभु !) तुम मालिक हो (हम जीवों की) प्रार्थना तेरे सामने ही है, यह आत्मा तथा शरीर सब तेरी ही देन है । तुम हमारे माँ-बाप हो, हम तेरे बालक हैं, तेरी कृपा-दृष्टि में अनगिनत सुख हैं । कोई तेरा अन्त नहीं पा सकता, (क्योंकि) तुम सर्वोच्च भगवान हो । (जगत् के) सारे पदार्थ तेरे ही हुक्म में टिके हुए हैं; तेरी रची हुई सृष्टि तेरी आज्ञा में सक्रिय है । तुम कैसे हो, कितने महान् हो— यह तुम आप ही जानते हो । हे नानक ! (कह, हे प्रभु !) तेरे सेवक (तुझ पर) सदा बलिहारी जाते हैं ॥ ८ ॥ ४ ॥

॥ सलोकु ॥ देनहारु प्रभ छोडि कै लागहि आन सुआइ । नानक कहू न सीझई बिनु नावै पति जाइ ॥ १ ॥ ॥ असटपदी ॥ दस बसतू ले पाछै पावै । एक बसतु कारनि बिखोटि गवावै । एक भी न देइ दस भी हिरि लेइ । तउ मूड़ा कहु कहा करेइ । जिसु ठाकुर सिउ नाही चारा । ता कउ कीजै सद नमसकारा । जा कै मनि लागा प्रभु मीठा । सरब सूख ताहू मनि वूठा । जिसु जन अपना हुकमु मनाइआ । सरब थोक नानक तिनि पाइआ ॥ १ ॥

॥ सलोकु ॥ (तमाम देन) देनेवाले प्रभु को छोड़कर (जीव) दूसरे स्वादों में लगते हैं; (पर) हे नानक ! (ऐसा) कभी (कोई मनुष्य जीवन-यात्रा में) सफल नहीं होता (क्योंकि) प्रभु के नाम के बिना प्रतिष्ठा नहीं रहती ॥ १ ॥ असटपदी ॥ (मनुष्य प्रभु से) दस चीज़ें लेकर सँभाल लेता है, (पर) एक चीज़ की खातिर अपना विश्वास गवाँ लेता है । (यदि प्रभु) एक चीज़ भी न देवे, और, दस (दी हुईं) भी छीन ले, तो बताओ, यह मूर्ख क्या कर सकता है ? जिस मालिक के आगे पेश नहीं चल सकती, उसके आगे सदा सिर झुकाना ही चाहिए, (क्योंकि) जिस मनुष्य के मन में प्रभु प्यारा लगता है, सारे सुख उसके हृदय में आ बसते हैं । हे नानक ! जिस मनुष्य द्वारा प्रभु अपना हुक्म मनाता है, (दुनिया के) सारे पदार्थ (मानो) उसने प्राप्त कर लिए हैं ॥ १ ॥

अगनत साहु अपनी दे रासि । खात पीत बरतै अनद उलासि । अपुनी अमान कछु बहुरि साहु लेइ । अगिआनी मनि रोसु करेइ । अपनी परतीति आप ही खोवै । बहुरि उस का बिस्वासु न होवै । जिस की बसतु तिसु आगै राखै । प्रभ की आगिआ मानै माथै । उस ते चउगुन करै निहालु । नानक साहिबु सदा दइआलु ॥ २ ॥

(प्रभु शाह) असंख्य (पदार्थों की) पूँजी (जीव बनजारे को) देता है, (जीव) खाता-पीता चाव तथा ख़ुशी से (इन पदार्थों को) इस्तेमाल करता है। (यदि) शाह अपनी कोई अमानत (धरोहर) वापिस कर ले, तो (यह) अज्ञानी मन में क्रोध करता है; (इस प्रकार) अपना विश्वास आप ही गवाँ लेता है और दोबारा इसका विश्वास नहीं किया जाता। (यदि) जिस प्रभु की (दी हुई) चीज़ है, उसके समक्ष (आप ही सहर्ष) रख दे और प्रभु का हुक्म स्वीकार कर ले तो (प्रभु उसे) पहले की अपेक्षा चौगुना ख़ुश करता है। हे नानक ! मालिक सदा कृपा करनेवाला है ॥ २ ॥

अनिक भाति माइआ के हेत। सरपर होवत जानु अनेत। बिरख की छाइआ सिउ रंगु लावै। ओह बिनसै उहु मनि पछुतावै। जो दीसै सो चालनहारु। लपटि रहिओ तह अंध अंधारु। बटाऊ सिउ जो लावै नेह। ता कउ हाथि न आवै केह। मन हरि के नाम की प्रीति सुखदाई। करि किरपा नानक आपि लए लाई ॥ ३ ॥

माया के प्रेम अनेक किस्मों के हैं, (लेकिन यह सारे) अन्त में नष्ट हो जानेवाले समझो। (यदि कोई मनुष्य) वृक्ष की छाया के साथ प्रेम करे, (परिणाम यह होगा कि) वह छाया नष्ट हो जाती है, और, वह मनुष्य मन में पश्चाताप करता है। गोचर जगत् नश्वर है, इस (जगत्) से यह अन्धा मनुष्य अपनत्व बनाए बैठा है। जो (भी) मनुष्य (किसी) यात्री से सम्बन्ध जोड़ लेता है, (अन्त में) उसके साथ कुछ नहीं लगता। हे मन ! प्रभु के नाम का प्रेम (ही) सुख देनेवाला है; (पर) हे नानक ! (यह प्रेम उस मनुष्य को प्राप्त होता है, जिसे) प्रभु कृपा करके आप (अपनी ओर) लगाता है ॥ ३ ॥

मिथिआ तनु धनु कुटंबु सबाइआ। मिथिआ हउमै ममता माइआ। मिथिआ राज जोबन धन माल। मिथिआ काम क्रोध बिकराल। मिथिआ रथ हसती अस्व बसत्रा। मिथिआ रंग संगि माइआ पेखि हसता। मिथिआ ध्रोह मोह अभिमानु। मिथिआ आपस ऊपरि करत गुमानु। असथिरु भगति साध की सरन। नानक जपि जपि जीवै हरि के चरन ॥ ४ ॥

(जब यह) शरीर, धन तथा सारा परिवार नश्वर है, (तो) माया की मिल्कियत तथा अहंकार— इन पर अभिमान करना भी मिथ्या (है)। राज्य, यौवन तथा धन-माल सब नश्वर है, काम तथा भयानक क्रोध, यह भी

व्यर्थ हैं। रथ, हाथी, घोड़े तथा कपड़े साथ-साथ रहनेवाले नहीं हैं, (इस सारी) माया को प्रेम-पूर्वक देखकर (जीव) हँसता है (पर यह सब) व्यर्थ है। विश्वासघात, मोह तथा अहंकार— (ये सब मन की) व्यर्थ (लहरें) हैं, अपने आप पर अभिमान करना भी झूठा (नशा) है। सदा स्थिर रहनेवाली (प्रभु की) भक्ति (ही है जो) गुरु की शरण लेकर (की जाए)। हे नानक ! प्रभु के चरण (ही) सदा जप कर (मनुष्य) असली (जीवन) जीता है ॥ ४ ॥

मिथिआ स्रवन पर निंदा सुनहि। मिथिआ हसत परदरब कउ हिरहि। मिथिआ नेत्र पेखत पर त्रिअ रूपाद। मिथिआ रसना भोजन अनस्वाद। मिथिआ चरन परबिकार कउ धावहि। मिथिआ मन परलोभ लुभावहि। मिथिआ तन नही परउपकारा। मिथिआ बासु लेत बिकारा। बिनु बूझे मिथिआ सभ भए। सफल देह नानक हरि हरि नाम लए ॥ ५ ॥

(मनुष्य के) कान व्यर्थ हैं, (यदि वे) परनिन्दा सुनते हैं; हाथ व्यर्थ हैं (यदि ये) पराए धन को चुराते हैं; आँखें व्यर्थ हैं (यदि ये) पराई जवानी का रूप देखती हैं; जीभ व्यर्थ है (यदि यह) खाने-पीने तथा दूसरे स्वादों में लगी है; चरण व्यर्थ हैं (यदि ये) पराए नुकसान के लिए भाग-दौड़ कर रहे हैं। हे मन ! तू भी व्यर्थ है (यदि तू) पराए धन का लोभ कर रहा है। (वे) शरीर व्यर्थ हैं जो परोपकार नहीं करते, (नाक) व्यर्थ है, जो विकारों की गन्ध सूँघ रही है। (अपने-अपने अस्तित्व का मनोरथ) समझे बिना ये सारे (अंग) व्यर्थ हैं। हे नानक ! वह शरीर सफल है, जो प्रभु का नाम जपता है ॥ ५ ॥

बिरथी साकत की आरजा। साच बिना कह होवत सूचा। बिरथा नाम बिना तनु अंध। मुखि आवत ता कै दुरगंध। बिनु सिमरन दिनु रैनि ब्रिथा बिहाइ। मेघ बिना जिउ खेती जाइ। गोबिद भजन बिनु ब्रिथे सभ काम। जिउ किरपन के निरारथ दाम। धंनि धंनि ते जन जिह घटि बसिओ हरि नाउ। नानक ता कै बलि बलि जाउ ॥ ६ ॥

(परमात्मा से) टूटे हुए आदमी की उम्र व्यर्थ जाती है (क्योंकि) सच्चे प्रभु (के नाम) के बिना वह कैसे सच्चा हो सकता है ? नाम के बिना अन्धे (शाक्त) का शरीर किसी काम का नहीं, (क्योंकि) उसके मुँह से बदबू आती है। जैसे वर्षा के बिना फसल बेकार जाती है, (वैसे)

स्मरण के बिना (नास्तिक) के दिन-रात व्यर्थ जाते हैं। प्रभु के भजन के बिना सारे ही काम निरर्थक हैं (क्योंकि ये काम मनुष्य का कुछ भी नहीं सवाँरते), जैसे कंजूस का धन उसके किसी काम नहीं आता। वे मनुष्य भाग्यशाली हैं, जिनके हृदय में प्रभु का नाम बसता है। हे नानक ! (कह कि) मैं उन (गुरमुखों पर) बलिहारी जाता हूं॥ ६॥

रहत अवर कछु अवर कमावत। मनि नही प्रीति मुखहु गंढ लावत। जाननहार प्रभू परबीन। बाहरि भेख न काहू भीन। अवर उपदेसै आपि न करै। आवत जावत जनमै मरै। जिस कै अंतरि बसै निरंकारु। तिस की सीख तरै संसारु। जो तुम भाने तिन प्रभु जाता। नानक उन जन चरन पराता॥ ७॥

धर्म के बाह्य चिह्न दूसरे हैं तथा वास्तविक ज़िन्दगी कुछ और है; मन में तो प्रभु के साथ प्रेम नहीं, मुख द्वारा बातें करके घर पूरा करता है। पर मन की जाननेवाला प्रभु बुद्धिमान है, (वह कभी) किसी के बाहरी वेश से प्रसन्न नहीं हुआ। (जो मनुष्य) दूसरों को शिक्षा देता है, पर आप नहीं कमाता, वह सदा जन्म-मरण के चक्र में पड़ा रहता है। जिस मनुष्य के हृदय में निरंकार बसता है, उसकी शिक्षा से जगत् (विकारों से) बचता है। (हे प्रभु !) जो तुझे प्यारे लगते हैं, उन्होंने तुझे पहचाना है। हे नानक ! (कह)— मैं उन (भक्तों) के चरण छूता हूँ॥ ७॥

करउ बेनती पारब्रहमु सभु जानै। अपना कीआ आपहि मानै। आपहि आप आपि करत निबेरा। किसै दूरि जनावत किसै बुझावत नेरा। उपाव सिआनप सगल ते रहत। सभु कछु जानै आतम की रहत। जिसु भावै तिसु लए लड़ि लाइ। थान थनंतरि रहिआ समाइ। सो सेवकु जिसु किरपा करी। निमख निमख जपि नानक हरी॥ ८॥ ५॥

(जो) प्रार्थना मैं करता हूँ, प्रभु सब जानता है, अपने पैदा किए जीव को वह आप ही मान देता है। (जीवों के कर्मों के अनुसार) प्रभु आप ही न्याय करता है, (अर्थात्) किसी को यह बुद्धि देता है कि प्रभु हमारे निकट है और किसी को बताता है कि प्रभु कहीं दूर है। सब प्रयासों, चतुराइयों से (प्रभु) परे है (क्योंकि वह जीव के) आत्मिक आचरण की हरेक बात समझता है। जो जीव को भला लगता है, उसे अपने साथ लगाता है, प्रभु सर्वत्र श्रेष्ठ है। वही मनुष्य (असली) सेवक बनता है,

जिस पर प्रभु कृपा करता है। हे नानक ! ऐसे प्रभु को प्रतिपल याद कर ॥ ८ ॥ ५ ॥

॥ सलोकु ॥ काम क्रोध अरु लोभ मोह बिनसि जाइ अहंमेव। नानक प्रभ सरणागती करि प्रसादु गुरदेव ॥ १ ॥ ॥ असटपदी ॥ जिह प्रसादि छतीह अंम्रित खाहि। तिसु ठाकुर कउ रखु मन माहि। जिह प्रसादि सुगंधत तनि लावहि। तिस कउ सिमरत परमगति पावहि। जिह प्रसादि बसहि सुख मंदरि। तिसहि धिआइ सदा मन अंदरि। जिह प्रसादि ग्रिह संगि सुख बसना। आठ पहर सिमरहु तिसु रसना। जिह प्रसादि रंग रस भोग। नानक सदा धिआईऐ धिआवन जोग ॥ १ ॥

॥ सलोकु ॥ हे नानक ! (प्रार्थना कर और कह)— हे गुरुदेव ! हे प्रभु ! मैं शरणागत हूँ, (मुझ पर) कृपा कर, (मेरा) काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार दूर हो जाए ॥ १ ॥ असटपदी ॥ (हे भाई !) जिसकी कृपा से तू कई क़िस्मों के स्वादिष्ट खाने खाता है, उसे मन में (स्मरण) रख, जिसकी कृपा से अपने शरीर पर तू सुगंधियाँ लगाता है, उसे याद करने से तू उच्च स्थान प्राप्त कर लेगा। जिसकी दया से तू महलों में बसता है, उसे सदा मन में स्मरण कर। जिसकी कृपा से तू घर में मौज से रह रहा है, उसे जीभ से आठों प्रहर स्मरण कर। हे नानक ! जिस (प्रभु) की कृपा से कौतुक-तमाशे, स्वादिष्ट भोजन और पदार्थ (प्राप्त होते हैं) उस स्मरण योग्य (भगवान) को सदा ही स्मरण करना चाहिए ॥ १ ॥

जिह प्रसादि पाट पटंबर हढावहि। तिसहि तिआगि कत अवर लुभावहि। जिह प्रसादि सुखि सेज सोईजै। मन आठ पहर ता का जसु गावीजै। जिह प्रसादि तुझु सभु कोऊ मानै। मुखि ता को जसु रसन बखानै। जिह प्रसादि तेरो रहता धरमु। मन सदा धिआइ केवल पारब्रहमु। प्रभ जी जपत दरगह मानु पावहि। नानक पति सेती घरि जावहि ॥ २ ॥

(हे मन !) जिसकी कृपा से तू रेशमी कपड़े पहनता है, उसे भुलाकर और कहाँ लुब्ध हो रहा है ? जिस कृपा से सुखपूर्वक सेज पर सोता है, हे मन ! उस प्रभु का यश आठों प्रहर गाना चाहिए। जिसकी कृपा से हरेक मनुष्य तेरा आदर करता है, उसकी प्रशंसा मुँह, जिह्वा से सदा कर। जिसकी कृपा से तेरा धर्म (स्थिर) रहता है, हे मन ! तू सदा उस परमेश्वर

को स्मरण कर। हे नानक ! परमात्मा का भजन करने से (उसके) दरबार में आदर पाएगा, और (यहाँ से) ससम्मान अपने घर (परलोक) जायगा ।। २ ।।

जिह प्रसादि आरोग कंचन देही । लिव लावहु तिसु राम सनेही । जिह प्रसादि तेरा ओला रहत । मन सुखु पावहि हरि हरि जसु कहत । जिह प्रसादि तेरे सगल छिद्र ढाके । मन सरना परु ठाकुर प्रभ ता कै । जिह प्रसादि तुझु को न पहूचै । मन सासि सासि सिमरहु प्रभ ऊचे । जिह प्रसादि पाई द्रुलभ देह । नानक ता की भगति करेह ।। ३ ।।

जिसकी कृपा से सोने जैसी तेरी सुन्दर देह है, उस प्यारे राम से लौ जोड़ । जिसकी कृपा से तेरा परदा बना रहता है, हे मन ! उस प्रभु के गुण गाते हुए सुख पाएगा । जिसकी कृपा से तेरे सारे दोष ढके रहते हैं, हे मन ! उस प्रभु ठाकुर की शरण लो । जिसकी कृपा से कोई तेरी बराबरी नहीं कर सकता, हे मन ! उस महान् प्रभु को प्रत्येक श्वास स्मरण कर । हे नानक ! जिसकी कृपा से तुझे यह मनुष्य शरीर मिला है, जो बड़ी मुश्किल से मिलता है, उस प्रभु की भक्ति कर ।। ३ ।।

जिह प्रसादि आभूषन पहिरीजै । मन तिसु सिमरत किउ आलसु कीजै । जिह प्रसादि अस्व हसति असवारी । मन तिसु प्रभ कउ कबहू न बिसारी । जिह प्रसादि बाग मिलख धना । राखु परोइ प्रभु अपुने मना । जिनि तेरी मन बनत बनाई । ऊठत बैठत सद तिसहि धिआई । तिसहि धिआइ जो एकु अलखै । ईहा ऊहा नानक तेरी रखै ।। ४ ।।

जिसकी कृपा से गहने पहने जाते हैं, हे मन ! उसे स्मरण करते हुए आलस्य क्यों किया जाए ? जिसकी कृपा से घोड़ों तथा हाथियों की सवारी करता है, हे मन ! उस प्रभु को कभी न भुलाना । जिसकी दया से बाग, जमीन और धन (तुझे प्राप्त हुए हैं) उस प्रभु को अपने मन में पिरोकर रख । हे मन ! जिस प्रभु ने तुझे बनाया है, उठते-बैठते उसे स्मरण कर । हे नानक ! उस प्रभु को सदा स्मरण कर, जो एक है, और अनन्त है । लोक तथा परलोक में (वही) तेरी लाज रखनेवाला है ।। ४ ।।

जिह प्रसादि करहि पुंन बहु दान । मन आठ पहर करि तिसका धिआन । जिह प्रसादि तू आचार बिउहारी । तिसु

प्रभ कउ सासि सासि चितारी । जिह प्रसादि तेरा सुंदर रूपु । सो प्रभु सिमरहु सदा अनूपु । जिह प्रसादि तेरी नीकी जाति । सो प्रभु सिमरि सदा दिन राति । जिह प्रसादि तेरी पति रहै । गुर प्रसादि नानक जसु कहै ॥ ५ ॥

जिसकी कृपा से तू बहुत दान-पुण्य करता है, हे मन ! आठों प्रहर उसका स्मरण कर। जिसकी कृपा से तू रीति-रस्म करने योग्य हुआ है, उस प्रभु को प्रत्येक श्वास में याद रख। जिसकी दया से तेरी सुन्दर शक्ल है, उस सुन्दर मालिक को सदा स्मरण कर। जिस प्रभु की कृपा से तुझे (मनुष्य-) जाति मिली है, उसे सदा दिन-रात स्मरण कर। जिसकी कृपा से तेरी प्रतिष्ठा बनी हुई है, (उसका नाम-स्मरण कर)। गुरु के प्रभाव से (भाग्यशाली मनुष्य) उसकी गुणस्तुति करता है ॥ ५ ॥

जिह प्रसादि सुनहि करन नाद । जिह प्रसादि पेखहि बिसमाद । जिह प्रसादि बोलहि अंम्रित रसना । जिह प्रसादि सुखि सहजे बसना । जिह प्रसादि हसत कर चलहि । जिह प्रसादि संपूरन फलहि । जिह प्रसादि परम गति पावहि । जिह प्रसादि सुखि सहजि समावहि । ऐसा प्रभु तिआगि अवर कत लागहु । गुर प्रसादि नानक मनि जागहु ॥ ६ ॥

जिसकी कृपा से तू कानों से आवाज़ सुनता है, जिसकी कृपा से कौतुकपूर्ण द्रश्य देखता है; जिसके प्रभाव से जीभ से मीठे बोल बोलता है, जिसकी कृपा से स्वाभाविक ही सुखी बस रहा है, जिसकी दया से तेरे हाथ काम दे रहे हैं, जिसकी कृपा से तू हरेक काम-काज में सफल होता है; जिसकी कृपा से तुझे उच्च स्थान मिलता है और तू सुख तथा बेफ़िक्री में मस्त है; ऐसा प्रभु भुलाकर तू किस ओर लग रहा है ? हे नानक ! गुरु के प्रभाव से मन में सचेत रहो ॥ ६ ॥

जिह प्रसादि तूं प्रगटु संसारि । तिसु प्रभ कउ मूलि न मनहु बिसारि । जिह प्रसादि तेरा परतापु । रे मन मूड़ तू ता कउ जापु । जिह प्रसादि तेरे कारज पूरे । तिसहि जानु मन सदा हजूरे । जिह प्रसादि तूं पावहि साचु । रे मन मेरे तूं ता सिउ राचु । जिह प्रसादि सभ की गति होइ । नानक जापु जपै जपु सोइ ॥ ७ ॥

जिसकी कृपा से तू जगत् में शोभा वाला है, उसे कभी भी मन से न भुला। जिसकी कृपा से तुझे प्रशंसा मिली हुई है, हे मूर्ख मन! तू उस प्रभु को जप! जिसकी कृपा से तेरे (सारे) काम सफल होते हैं, हे मन! तू उस (प्रभु) को सदा अपने साथ-साथ जान। जिसके प्रभाव से तुझे सत्य प्राप्त होता है, हे मेरे मन! तू उस (प्रभु) के साथ जुड़ा रह। जिस (परमात्मा) की दया से हरेक (जीव) की (उस तक) पहुँच हो जाती है, हे नानक! उस (हरि) का नाम ही जपना चाहिये ॥ ७ ॥

आपि जपाए जपै सो नाउ। आपि गावाए सु हरिगुन गाउ। प्रभ किरपा ते होइ प्रगासु। प्रभू दइआ ते कमल बिगासु। प्रभ सु प्रसंन बसै मनि सोइ। प्रभ दइआ ते मति ऊतम होइ। सरब निधान प्रभ तेरी मइआ। आपहु कछू न किनहू लइआ। जितु जितु लावहु तितु लगहि हरि नाथ। नानक इन कै कछू न हाथ ॥ ८ ॥ ६ ॥

वही मनुष्य प्रभु का नाम जपता है, जिससे वह प्रभु आप जपाता है; वही मनुष्य हरि के गुण गाता है, जिसे वह गाने के लिए प्रेरित करता है। प्रभु की कृपा से (मन में ज्ञान का) प्रकाश होता है; उसकी दया से हृदय-रूपी कमल-फूल खिलता है। वह प्रभु (उस मनुष्य के) मन में बसता है, जिसपर वह प्रसन्न होता है, प्रभु की कृपा से (मनुष्य की) बुद्धि भली होती है। हे प्रभु! तेरी कृपा-दृष्टि में सारे ख़ज़ाने हैं, अपने प्रयास से किसी ने कुछ भी प्राप्त नहीं किया। हे हरि स्वामी! तुम जिधर जीवों को लगाते हो, वे उधर ही लगते हैं। हे नानक! जीवों के वश में कुछ नहीं ॥ ८ ॥ ६ ॥

॥ सलोकु ॥ अगम अगाधि पारब्रहमु सोइ। जो जो कहै सु मुकता होइ। सुनि मीता नानकु बिनवंता। साध जना की अचरज कथा ॥ १ ॥ असटपदी ॥ साध कै संगि मुख ऊजल होत। साध संगि मलु सगली खोत। साध कै संगि मिटै अभिमानु। साध कै संगि प्रगटै सुगिआनु। साध कै संगि बुझै प्रभु नेरा। साध संगि सभु होत निबेरा। साध कै संगि पाए नाम रतनु। साध कै संगि एक ऊपरि जतनु। साध की महिमा बरनै कउनु प्रानी। नानक साध की सोभा प्रभ माहि समानी ॥ १ ॥

॥ सलोकु ॥ वह अन्तहीन प्रभु (जीव की) पहुँच से परे है और अथाह है। जो-जो मनुष्य उसे स्मरण करता है, वह (-वह विकारों के जाल से) मुक्ति पा लेता है। हे मित्र ! सुन, नानक प्रार्थना करता है— (स्मरण करनेवाले) गुरमुखों (के गुणों) का ज़िक्र हैरान करनेवाला है ॥ १ ॥ ॥ असटपदी ॥ गुरमुखों की संगति में रहने से मुँह उजले होते हैं, (अर्थात् प्रतिष्ठा बन आती है) (क्योंकि) साधुजनों के पास रहने से (विकारों की) सारी मैल मिट जाती है। साधु पुरुषों की संगति में अहंकार दूर होता है और श्रेष्ठ ज्ञान प्रकट होता है। संतों की संगति में प्रभु साथ-साथ रहता हुआ लगता है, (इसलिए) वासना की सारी समाप्ति हो जाती है, (अर्थात् जीव कुमार्ग पर नहीं लगता)। गुरमुखों की संगति में मनुष्य नाम-रूपी रत्न प्राप्त कर लेता है, और, एक प्रभु को मिलने का यत्न करता है। साधु पुरुषों की प्रशंसा कौन मनुष्य व्यक्त कर सकता है ? (क्योंकि) हे नानक ! संतजनों की शोभा प्रभु की सेवा के बराबर हो जाती है ॥ १ ॥

साध कै संगि अगोचरु मिलै। साध कै संगि सदा परफुलै। साध कै संगि आवहि बसि पंचा। साध संगि अंम्रित रसु भुंचा। साध संगि होइ सभ की रेन। साध कै संगि मनोहर बैन। साध कै संगि न कतहूं धावै। साध संगि असथिति मनु पावै। साध कै संगि माइआ ते भिंन। साध संगि नानक प्रभ सुप्रसंन ॥ २ ॥

गुरमुखों की संगति में (मनुष्य को) वह प्रभु मिल जाता है जो शारीरिक इन्द्रियों की पहुँच से परे है; और मनुष्य सदा प्रसन्न रहता है। संतों की संगति में रहने से कामादिक पाँचों विकार काबू में आ जाते हैं, (क्योंकि मनुष्य) नाम-रूपी अमृत का रस चख लेता है। सज्जनों की संगति करने से (मनुष्य) सब के चरणों की धूलि बन जाता है और (सब से) मीठे वचन बोलता है। सज्जनों में रहने से (मनुष्य का) मन किसी ओर नहीं दौड़ता, और (प्रभु के चरणों में) टिकाव प्राप्त कर लेता लेता है। हे नानक ! गुरमुखों की संगति में टिकने से (मनुष्य) माया के प्रभाव से अप्रभावित रहता है और अकालपुरुष इस पर दयालु होता है ॥ २ ॥

साध संगि दुसमन सभि मीत। साधू कै संगि महा पुनीत। साध संगि किस सिउ नही बैरु। साध कै संगि न बीगा पैरु। साध कै संगि नाही को मंदा। साध संगि जाने परमानंदा।

साध कै संगि नाही हउ तापु। साध कै संगि तजै सभु आपु। आपे जानै साध बडाई। नानक साध प्रभू बनि आई ॥ ३ ॥

गुरमुखों की संगति में रहने से सारे वैरी (भी) मित्र (दिखने लगते हैं), (क्योंकि) संतजनों की संगति में मनुष्य का अपना हृदय बहुत स्वच्छ हो जाता है। संतों की संगति में बैठने से किसी के साथ वैर नहीं रह जाता और किसी कुमार्ग की ओर चरण नहीं उठते। भलों की संगति में कोई मनुष्य बुरा दिखाई नहीं देता, (क्योंकि मनुष्य सर्वत्र) उच्च सुख के स्वामी प्रभु को ही जानता है। गुरमुख की संगति करने से अहंकार-रूपी ताप नहीं रह जाता, (क्योंकि) सत्संगति में मनुष्य तमाम आपाभाव छोड़ देता है। सज्जन की महानता प्रभु आप ही जानता है, (क्योंकि) हे नानक ! साधु और प्रभु का प्रेम परिपक्व हो जाता है ॥ ३ ॥

साध कै संगि न कबहू धावै। साध कै संगि सदा सुखु पावै। साध संगि बसतु अगोचर लहै। साधू कै संगि अजरु सहै। साध कै संगि बसै थानि ऊचै। साधू कै संगि महलि पहूचै। साध कै संगि द्रिड़ै सभि धरम। साध कै संगि केवल पारब्रहम। साध कै संगि पाए नाम निधान। नानक साधू कै कुरबान ॥ ४ ॥

गुरमुखों की संगति में रहने से मनुष्य का मन कभी नही भटकता, (क्योंकि) सज्जनों की संगति में (प्रभु का) नाम-रूपी अगोचर वस्तु मिल जाती है, (और मनुष्य) कभी शिथिल न होनेवाली शक्ति प्राप्त कर लेता है। गुरमुखों की संगति में रहकर मनुष्य उच्च ठिकाने पर रहता है और अकाल-पुरुष के चरणों में जुड़ा रहता है। संतों की संगति में रहकर (मनुष्य) सारे धर्मों को अच्छी तरह समझ लेता है और केवल अकालपुरुष को (सर्वत्र देखता है)। संतों की संगति में (मनुष्य) नाम-भण्डार प्राप्त कर लेता है, (इसलिए) हे नानक ! (कह—) मैं सज्जनों पर बलिहारी हूँ ॥ ४ ॥

साध कै संगि सभ कुल उधारै। साध संगि साजन मीत कुटंब निसतारै। साधू कै संगि सो धनु पावै। जिसु धन ते सभु को वरसावै। साध संगि धरम राइ करे सेवा। साध कै संगि सोभा सुरदेवा। साधू कै संगि पाप पलाइन। साध संगि अंम्रित गुन गाइन। साध कै संगि स्रब थान गंमि। नानक साध कै संगि सफल जनंम ॥ ५ ॥

गुरमुखों की संगति में रहकर (मनुष्य अपनी) सारी वंशावलि (विकारों से) बचा लेता है और सज्जनों, मित्रों तथा परिवार को पार कर लेता है। संतों की संगति में मनुष्य को वह धन प्राप्त हो जाता है, जिस धन के मिलने से हरेक मनुष्य प्रसिद्धि वाला हो जाता है। सज्जनों की संगति में रहने से धर्मराज (भी) सेवा करता है और देवता (भी) शोभित करते हैं। गुरमुखों की संगति में पाप दूर हो जाते हैं, (क्योंकि उनकी संगति में) प्रभु के अमर करनेवाले गुण (मनुष्य) गाते हैं। संतों की संगति में रहकर सब ओर पहुँच हो जाती है; हे नानक! साधुओं की संगति में मनुष्य-जन्म का फल मिल जाता है ॥ ५ ॥

साध कै संगि नही कछु घाल। दरसनु भेटत होत निहाल। साध कै संगि कलूखत हरै। साध कै संगि नरक परहरै। साध कै संगि ईहा ऊहा सुहेला। साध संगि बिछुरत हरि मेला। जो इछै सोई फलु पावै। साध कै संगि न बिरथा जावै। पारब्रहमु साध रिद बसै। नानक उधरै साध सुनि रसै ॥ ६ ॥

साधुओं की संगति में रहने से तप आदि करने की आवश्यकता नहीं रहती, (क्योंकि उन) का दर्शनमात्र करके हृदय प्रसन्न हो जाता है। गुरमुखों की संगति में (मनुष्य) अपने पाप नष्ट कर लेता है (और इस प्रकार) नरकों से बच जाता है। संतों की संगति में रहकर (मनुष्य) लोक तथा परलोक में सुखी हो जाता है और प्रभु से बिछुड़ा हुआ (दोबारा) उसे मिल पड़ता है। गुरमुखों की संगति में (मनुष्य) इच्छा से प्यासा नहीं जाता, (बल्कि) जो इच्छा करता है, वही फल पाता है। अकालपुरुष संतजनों के हृदय में बसता है; हे नानक! (मनुष्य) संतजनों की जीभ से (उपदेश) सुनकर (विकारों से) बच जाता है ॥ ६ ॥

साध कै संगि सुनउ हरि नाउ। साध संगि हरि के गुन गाउ। साध कै संगि न मन ते बिसरै। साध संगि सरपर निसतरै। साध कै संगि लगै प्रभु मीठा। साधू कै संगि घटि घटि डीठा। साध संगि भए आगिआकारी। साध संगि गति भई हमारी। साध कै संगि मिटे सभि रोग। नानक साध भेटे संजोग ॥ ७ ॥

मैं गुरमुखों की संगति में रहकर प्रभु का नाम सुनूँ और प्रभु के गुण गाऊँ। संतों की संगति में रहने से प्रभु मन से विस्मृत नहीं होता, संतों की संगति में मनुष्य अवश्य (विकारों से) बच निकलता है। सज्जनों की

संगति में रहने से प्रभु प्यारा लगने लगता है और वह हरेक शरीर में दिखाई देने लगता है। सत्संगति करने से (हम) प्रभु का हुक्म माननेवाले हो जाते हैं और हमारी आत्मिक अवस्था सुधर जाती है। संतों की संगति में सारे रोग मिट जाते हैं; हे नानक! (बड़े) भाग्यों से संतजन मिलते हैं॥ ७॥

साध की महिमा बेद न जानहि। जेता सुनहि तेता बखिआनहि। साध की उपमा तिहु गुण ते दूरि। साध की उपमा रही भरपूरि। साध की सोभा का नाही अंत। साध की सोभा सदा बेअंत। साध की सोभा ऊच ते ऊची। साध की सोभा मूच ते मूची। साध की सोभा साध बनि आई। नानक साध प्रभ भेदु न भाई॥ ८॥ ७॥

संत की महानता वेद (भी) नहीं जानते, वे तो जितना सुनते हैं, उतना ही व्यक्त करते हैं, (पर संत की महिमा कथन से परे है)। संत की समानता तीनों गुणों से परे है। साधु की समानता उस प्रभु से हो सकती है जो सर्वत्र व्यापक है। साधु की शोभा का अन्दाज़ा नहीं लग सकता, सदा (इसे) अभेद ही (कहा जा सकता है)। साधु की शोभा सब की शोभा से ऊँची है और महान् है। साधु की शोभा साधु को ही उपयुक्त लगती है, (क्योंकि) हे नानक! (कह—) साधु तथा प्रभु में कोई भेद नहीं है॥ ८॥ ७॥

॥सलोकु॥ मनि साचा मुखि साचा सोइ। अवरु न पेखै एकसु बिनु कोइ। नानक इह लछण ब्रहमगिआनी होइ॥ १॥ ॥ असटपदी॥ ब्रहमगिआनी सदा निरलेप। जैसे जल महि कमल अलेप। ब्रहमगिआनी सदा निरदोख। जैसे सूरु सरब कउ सोख। ब्रहमगिआनी कै द्रिसटि समानि। जैसे राज रंक कउ लागै तुलि पवान। ब्रहमगिआनी कै धीरजु एक। जिउ बसुधा कोऊ खोदै कोऊ चंदन लेप। ब्रहमगिआनी का इहै गुनाउ। नानक जिउ पावक का सहज सुभाउ॥ १॥

॥सलोकु॥ (जिस मनुष्य के) मन में सदा सत्यस्वरूप प्रभु है (जो) मुँह से उसी प्रभु को (जपता है), (जो मनुष्य) एक अकालपुरुष के अतिरिक्त (कहीं भी) किसी दूसरे को नहीं देखता, हे नानक! (वह मनुष्य) इन गुणों के कारण ब्रह्मज्ञानी हो जाता है॥ १॥ असटपदी॥ ब्रह्मज्ञानी (मनुष्य विकारों से) सदा निर्लिप्त (रहते हैं) जैसे पानी में (उगे हुए)

कमल-पुष्प (कीचड़ से) स्वच्छ होते हैं। जैसे सूरज सारे (रसों) को सुखा देता है, (वैसे) ब्रह्मज्ञानी (मनुष्य) सारे पापों से बचे रहते हैं। जैसे हवा राजा और कंगाल दोनों को एक सी लगती है, (वैसे) ब्रह्मज्ञानी के भीतर (सब की ओर) एक सी दृष्टि (से देखने का स्वभाव होता) है। (कोई कुछ भी कहे, पर) ब्रह्मज्ञानी मनुष्यों के भीतर निरन्तर हौसला रहता है, जैसे कोई तो धरती को खोदता है और कोई चन्दन का लेप करता है, (परन्तु धरती को कोई परवाह नहीं)। हे नानक! जैसे आग का सहज स्वभाव है, (हरेक वस्तु का मैल जला देना) (वैसे) ब्रह्मज्ञानी मनुष्य का (भी) यही गुण है ॥ १ ॥

ब्रहमगिआनी निरमल ते निरमला। जैसे मैलु न लागै जला। ब्रहमगिआनी कै मनि होइ प्रगासु। जैसे धर ऊपरि आकासु। ब्रहमगिआनी कै मित्र सत्रु समानि। ब्रहमगिआनी कै नाही अभिमान। ब्रहमगिआनी ऊच ते ऊचा। मनि अपनै है सभ ते नीचा। ब्रहमगिआनी से जन भए। नानक जिन प्रभु आपि करेइ ॥ २ ॥

जैसे पानी को कभी मैल नहीं लगती (दोबारा स्वच्छ हो जाता है, वैसे ही) ब्रह्मज्ञानी मनुष्य (विकारों की मैल से बचकर) सदा निर्मल है। जैसे धरती पर आकाश (सर्वत्र व्यापक है, वैसे) ब्रह्मज्ञानी के मन में (यह) प्रकाश हो जाता है कि (प्रभु सर्वत्र मौजूद है), ब्रह्मज्ञानी को सज्जन तथा वैरी एक जैसा लगता है, (क्योंकि) उसके भीतर अहंकार नहीं है। ब्रह्मज्ञानी (आत्मिक अवस्था में) सर्वोच्च है, (पर) अपने मन में (अपने आपको) सबसे छोटा (जानता है)। हे नानक! वही मनुष्य ब्रह्मज्ञानी बनते हैं, जिन्हें प्रभु आप बनाता है ॥ २ ॥

ब्रहमगिआनी सगल की रीना। आतम रसु ब्रहमगिआनी चीना। ब्रहमगिआनी की सभ ऊपर मइआ। ब्रहमगिआनी ते कछु बुरा न भइआ। ब्रहमगिआनी सदा समदरसी। ब्रहमगिआनी की द्रिसटि अंम्रितु बरसी। ब्रहमगिआनी बंधन ते मुकता। ब्रहमगिआनी की निरमल जुगता। ब्रहमगिआनी का भोजनु गिआन। नानक ब्रहमगिआनी का ब्रहम धिआनु ॥ ३ ॥

ब्रह्मज्ञानी सारे (व्यक्तियों) के पैरों की धूलि (होकर रहता है); उसने आत्मिक आनन्द को पहचान लिया है। ब्रह्मज्ञानी सब पर प्रसन्न होता है और कोई कुकर्म नहीं करता। ब्रह्मज्ञानी सदा सबकी ओर समान

दृष्टि से देखता है, उसकी दृष्टि से (सब पर) अमृत की वर्षा होती है। ब्रह्मज्ञानी (माया के) बन्धनों से स्वतन्त्र होता है और उसकी जीवन-युक्ति विकारों से रहित है। (ईश्वरीय-) ज्ञान ब्रह्मज्ञानी की ख़ुराक है, हे नानक ! ब्रह्मज्ञानी की सुरति अकालपुरुष से जुड़ी रहती है ॥ ३ ॥

ब्रहमगिआनी एक ऊपरि आस। ब्रहमगिआनी का नही बिनास। ब्रहमगिआनी कै गरीबी समाहा। ब्रहमगिआनी परउपकार उमाहा। ब्रहमगिआनी कै नाही धंधा। ब्रहमगिआनी ले धावतु बंधा। ब्रहमगिआनी कै होइ सु भला। ब्रहमगिआनी सुफल फला। ब्रहमगिआनी संगि सगल उधारु। नानक ब्रहमगिआनी जपै सगल संसारु ॥ ४ ॥

ब्रह्मज्ञानी एक अकालपुरुष पर आस रखता है; ब्रह्मज्ञानी (की उच्च आत्मिक अवस्था) का कभी नाश नहीं होता है। ब्रह्मज्ञानी के हृदय में ग़रीबी (का भाव) टिका रहता है और उसे दूसरों की भलाई करने का (सदा) चाव (चढ़ा रहता है)। ब्रह्मज्ञानी के मन में (माया का) जंजाल नहीं होता, (क्योंकि) वह भटकते मन को क़ाबू करके (माया से) रोक सकता है। जो कुछ (प्रभु की ओर से) होता है, ब्रह्मज्ञानी को अपने मन में भला प्रतीत होता है, (इस प्रकार) उसका मनुष्य-जन्म भली प्रकार सफल होता है। ब्रह्मज्ञानी की संगति में सबका बेड़ा पार होता है, (क्योंकि) हे नानक ! ब्रह्मज्ञानी के द्वारा सारा जगत् (ही) (प्रभु का नाम) जपने लगता है ॥४॥

ब्रहमगिआनी कै एकै रंग। ब्रहमगिआनी कै बसै प्रभु संग। ब्रहमगिआनी कै नामु आधारु। ब्रहमगिआनी कै नामु परवारु। ब्रहमगिआनी सदा सद जागत। ब्रहमगिआनी अहंबुधि तिआगत। ब्रहमगिआनी कै मनि परमानंद। ब्रहमगिआनी कै घरि सदा अनंद। ब्रहमगिआनी सुख सहज निवास। नानक ब्रहमगिआनी का नही बिनास ॥ ५ ॥

ब्रह्मज्ञानी के हृदय में सदा एक अकालपुरुष का प्यार (रहता) है, (इसलिए) प्रभु ब्रह्मज्ञानी के साथ-साथ रहता है। ब्रह्मज्ञानी के मन में प्रभु (के नाम) की टेक है और नाम ही उसका परिवार है। ब्रह्मज्ञानी सदा सचेत रहता है और 'मैं, मैं' करनेवाली बुद्धि छोड़ देता है। ब्रह्मज्ञानी के मन में उच्च सुख का स्वामी अकालपुरुष बसता है, (इसलिए) उसके हृदय-रूपी घर में सदा प्रसन्नता है। ब्रह्मज्ञानी (मनुष्य) सुख तथा शान्ति में टिका रहता है; (और) हे नानक ! ब्रह्मज्ञानी का कभी नाश नहीं होता ॥ ५ ॥

ब्रहमगिआनी ब्रहम का बेता। ब्रहमगिआनी एक संगि हेता। ब्रहमगिआनी कै होइ अचिंत। ब्रहमगिआनी का निरमल मंत। ब्रहमगिआनी जिसु करै प्रभु आपि। ब्रहमगिआनी का बड परताप। ब्रहमगिआनी का दरसु बडभागी पाईऐ। ब्रहमगिआनी कउ बलि बलि जाईऐ। ब्रहमगिआनी कउ खोजहि महेसुर। नानक ब्रहमगिआनी आपि परमेसुर॥६॥

ब्रह्मज्ञानी (मनुष्य) अकालपुरुष का ज्ञाता बन जाता है और वह एक प्रभु से ही प्रेम करता है। ब्रह्मज्ञानी के मन में (सदा) बेफ़िक्री रहती है, उसका उपदेश पवित्र करनेवाला होता है। ब्रह्मज्ञानी की बड़ी प्रसिद्धि हो जाती है, (पर वही मनुष्य ब्रह्मज्ञानी बनता है), जिसे प्रभु आप बनाता है। ब्रह्मज्ञानी का दर्शन बड़े भाग्यों से होता है; उस पर सदा बलिहारी जाएँ; शिव (आदि देवगण भी) ब्रह्मज्ञानी को खोजते फिरते हैं; हे नानक! अकालपुरुष आप ब्रह्मज्ञानी (का रूप) है॥ ६॥

ब्रहमगिआनी की कीमति नाहि। ब्रहमगिआनी कै सगल मन माहि। ब्रहमगिआनी का कउन जानै भेदु। ब्रहमगिआनी कउ सदा अदेसु। ब्रहमगिआनी का कथिआ न जाइ अधाख्यरु। ब्रहमगिआनी सरब का ठाकुरु। ब्रहमगिआनी की मिति कउनु बखानै। ब्रहमगिआनी की गति ब्रहमगिआनी जानै। ब्रहमगिआनी का अंतु न पारु। नानक ब्रहमगिआनी कउ सदा नमसकारु॥ ७॥

ब्रह्मज्ञानी के गुणों का मूल्यांकन नहीं हो सकता, सारे ही (गुण) ब्रह्मज्ञानी के भीतर हैं। कौन सा मनुष्य ब्रह्मज्ञानी (की ऊँची ज़िन्दगी) का भेद पा सकता है! ब्रह्मज्ञानी के समक्ष झुकना ही (शोभा देता) है। ब्रह्मज्ञानी (की महिमा) का आधा अक्षर भी बखान नहीं किया जा सकता; वह सारे जीवों का पूज्य है। ब्रह्मज्ञानी (की ऊँची ज़िन्दगी) का अनुमान कौन लगा सकता है; उसकी हालत (उस जैसा) ब्रह्मज्ञानी ही जानता है। ब्रह्मज्ञानी (के गुणों के समुद्र) का कोई ओर-छोर नहीं; हे नानक! सदा ब्रह्मज्ञानी के चरणों पर पड़ा रह॥ ७॥

ब्रहमगिआनी सभ स्रिसटि का करता। ब्रहमगिआनी सद जीवै नही मरता। ब्रहमगिआनी मुकति जुगति जीअ का दाता। ब्रहमगिआनी पूरन पुरखु बिधाता। ब्रहमगिआनी अनाथ का

नाथु । ब्रहमगिआनी का सभ ऊपरि हाथु । ब्रहमगिआनी का सगल अकारु । ब्रहमगिआनी आपि निरंकारु । ब्रहमगिआनी की सोभा ब्रहमगिआनी बनी । नानक ब्रहमगिआनी सरब का धनी ॥ ८ ॥ ८ ॥

ब्रह्मज्ञानी सारे जगत् का बनानेवाला है, सदा ही जीता है, कभी (जन्म) मरण के चक्र में नहीं आता । ब्रह्मज्ञानी मुक्ति का मार्ग (बताने वाला तथा उच्च आत्मिक) ज़िन्दगी का देनेवाला है, वही पूर्णपुरुष तथा मालिक है । ब्रह्मज्ञानी निराश्रितों का आश्रय (स्वामी) है, सब की सहायता करता है । गोचर जगत् ब्रह्मज्ञानी का (अपना) है, वह तो प्रत्यक्ष ही परमात्मा है । ब्रह्मज्ञानी की महिमा (कोई) ब्रह्मज्ञानी ही कह सकता है; हे नानक ! ब्रह्मज्ञानी सब जीवों का मालिक है ॥ ८ ॥ ८ ॥

॥ सलोकु ॥ उरिधारै जो अंतरि नामु । सरब मै पेखै भगवानु । निमख निमख ठाकुर नमसकारै । नानक ओहु अपरसु सगल निसतारै ॥ १ ॥ असटपदी ॥ मिथिआ नाही रसना परस । मन महि प्रीति निरंजन दरस । पर त्रिअ रूपु न पेखै नेत्र । साध की टहल संत संगि हेत । करन न सुनै काहू की निंदा । सभ ते जानै आपस कउ मंदा । गुरप्रसादि बिखिआ परहरै । मन की बासना मन ते टरै । इंद्री जित पंच दोख ते रहत । नानक कोटि मधे को ऐसा अपरस ॥ १ ॥

॥ सलोकु ॥ जो मनुष्य सदा अपने हृदय में अकालपुरुष का नाम टिकाए रखता है और भगवान को सब में व्यापक देखता है, जो पल-पल अपने प्रभु को पुकारता है; हे नानक ! वह (सच्चा) अस्पर्श (निर्लिप्त) है और वह सब जीवों को (संसार-समुद्र से) तार लेता है ॥ १ ॥ असटपदी ॥ जो मनुष्य जीभ से मिथ्या नहीं बोलता, मन में अकालपुरुष के दर्शनों की इच्छा रखता है; जो पराई स्त्री के सौंदर्य को अपनी आँखों से नहीं देखता, (कुदृष्टि से नहीं देखता), भले मनुष्यों की सेवा करता है और संतजनों की संगति में प्रीति (रखता) है; जो कानों से किसी की निंदा नहीं सुनता, (बल्कि) अपने को सबसे छोटा समझता है; जो गुरु की कृपा के प्रभाव से माया (का प्रभाव) परे हटा देता है और जिसके मन की वासना मन से टल जाती है । जो अपनी ज्ञानेन्द्रियों को वश में रखकर कामादिक पाँचों विकारों से बचा रहता है, हे नानक ! करोड़ों में कोई ऐसा विरला व्यक्ति 'अपरस' (पवित्र) कहा जा सकता है ॥ १ ॥

बैसनो सो जिसु ऊपरि सु प्रसंन। बिसन की माइआ ते होइ भिंन। करम करत होवै निहकरम। तिसु बैसनो का निरमल धरम। काहू फल की इछा नही बाछै। केवल भगति कीरतन संगि राचै। मन तन अंतरि सिमरन गोपाल। सभ ऊपरि होवत किरपाल। आपि द्रिड़ै अवरह नामु जपावै। नानक ओहु बैसनो परमगति पावै ॥ २ ॥

जो मनुष्य प्रभु की माया से अप्रभावित तथा निष्कलंक है, और, जिस पर प्रभु आप प्रसन्न होता है, उसे वास्तविक वैष्णव समझो। उस वैष्णव का धर्म भी पवित्र है, जो कर्म करता हुआ फल की इच्छा नहीं रखता। जो मनुष्य केवल भक्ति तथा कीर्त्तन में मस्त रहता है और किसी भी फल की अभिलाषा नहीं रखता; जिसके मन-तन में प्रभु का स्मरण बस रहा है, जो सब जीवों पर दया करता है। जो आप (प्रभु के नाम को) अपने मन में टिकाता है तथा दूसरों को (भी) नाम-स्मरण कराता है, हे नानक ! वह वैष्णव का उच्च स्थान प्राप्त करता है ॥ २ ॥

भगउती भगवंत भगति का रंगु। सगल तिआगै दुसट का संगु। मन ते बिनसै सगला भरमु। करि पूजै सगल पारब्रहमु। साध संगि पापा मलु खोवै। तिसु भगउती की मति ऊतम होवै। भगवंत की टहल करै नित नीति। मनु तनु अरपै बिसन परीति। हरि के चरन हिरदै बसावै। नानक ऐसा भगउती भगवंत कउ पावै ॥ ३ ॥

भगवान का वास्तविक उपासक (वह है, जिसके हृदय में) भगवान की भक्ति का प्रेम है और जो सब कुकर्मियों का संग छोड़ देता है; जिसके मन से हर प्रकार का भ्रम मिट जाता है, जो अकालपुरुष को सर्वत्र मौजूद जानकर पूजता है। उस भक्त की बुद्धि पवित्र होती है, जो गुरमुखों की संगति में रहकर पापों की मैल (मन से) दूर करता है। जो नित्य भगवान का स्मरण करता है, जो प्रभु-प्रेम पर अपना मन तथा तन बलिहारी कर देता है; जो प्रभु के चरण (सदा अपने) हृदय में बसाता है। हे नानक ! ऐसा भक्त भगवान को प्राप्त कर लेता है ॥ ३ ॥

सो पंडितु जो मनु परबोधै। राम नामु आतम महि सोधै। राम नाम सारु रसु पीवै। उसु पंडित कै उपदेसि जगु जीवै। हरि की कथा हिरदै बसावै। सो पंडितु फिरि जोनि न आवै।

बेद पुरान सिम्रिति बूझै मूल। सूखम महि जानै असथूलु। चहु वरना कउ दे उपदेसु। नानक उसु पंडित कउ सदा अदेसु ॥ ४ ॥

पण्डित वह है जो अपने मन को शिक्षा देता है और प्रभु के नाम को अपने मन में खोजता है। उस पण्डित के उपदेश से (सारा) संसार आत्मिक ज़िन्दगी प्राप्त करता है, जो प्रभु-नाम का मीठा स्वाद चखता है। वह पण्डित दोबारा जन्म (मरण) में नहीं आता, जो अकालपुरुष (की गुणस्तुति) की बातें अपने हृदय में बसाता है। जो वेद-पुराण स्मृतियों (आदि धार्मिक पुस्तकों) का आदि (प्रभु को) समझता है, जो यह जानता कि यह सारा दिखता हुआ जगत् अदृश्य प्रभु के ही आसरे है; जो (ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र) चारों जातियों को शिक्षा देता है, हे नानक! (कह) उस पण्डित के समक्ष हम सदा सिर झुकाते हैं ॥ ४ ॥

बीज मंत्रु सरब को गिआनु। चहु वरना महि जपै कोऊ नामु। जो जो जपै तिस की गति होइ। साध संगि पावै जनु कोइ। करि किरपा अंतरि उरधारै। पसु प्रेत मुघद पाथर कउ तारै। सरब रोग का अउखदु नामु। कलिआण रूप मंगल गुण गाम। काहू जुगति कितै न पाईऐ धरमि। नानक तिसु मिलै जिसु लिखिआ धुरि करमि ॥ ५ ॥

चारों ही जातियों में कोई भी मनुष्य (प्रभु का) नाम जप (के देख) ले, नाम (दूसरे सब मन्त्रों का) आदि मन्त्र है और सबका ज्ञान (दाता) है। (पर) कोई बिरला मनुष्य सत्संगति में (रहकर) (इसे) प्राप्त करता है। पशु, निकम्मी आत्मा, मूर्ख, पत्थर (-दिल) (कोई भी होवे सब) को (नाम) पार कर देता है (यदि प्रभु) कृपा करके (उसके) हृदय में (नाम) टिका देवे। प्रभु का नाम सारे रोगों की औषधि है, प्रभु के गुण गाना सौभाग्य और सुख का रूप है। (पर यह नाम दूसरे) किसी ढंग से या किसी धार्मिक रस्म के करने से नहीं मिलता; हे नानक! (यह नाम) उस मनुष्य को मिलता है, जिस (के माथे पर) प्रभु के दरबार से (प्रभु की) कृपा अनुसार लिखा जाता है ॥ ५ ॥

जिस कै मनि पारब्रहम का निवासु। तिस का नामु सति राम दासु। आतम रामु तिसु नदरी आइआ। दास दसंतण भाइ तिनि पाइआ। सदा निकटि निकटि हरि जानु। सो दासु दरगह परवानु। अपुने दास कउ आपि किरपा करै। तिसु

दास कउ सभ सोझी परै । सगल संगि आतम उदासु । ऐसी जुगति नानक राम दासु ॥ ६ ॥

जिसके मन में अकालपुरुष बसता है, उस मनुष्य का नाम असली (अर्थों में) रामदास (प्रभु का सेवक) है; उसे सर्वव्यापक प्रभु दिखाई पड़ता है, दासों का दास होने के स्वभाव से उसने प्रभु को पाया है। जो (मनुष्य) सदा प्रभु को निकट जानता है, वह सेवक दरबार में स्वीकृत होता है। प्रभु उस सेवक पर आप कृपा करता है और उस सेवक को सारी सूझ हो जाती है। सारे परिवार में (रहता हुआ भी) वह भीतर से निर्लिप्त होता है; हे नानक! ऐसी (जीवन-)युक्ति से वह (असली) 'रामदास' (राम का दास बन जाता है) ॥ ६ ॥

प्रभ की आगिआ आतम हितावै । जीवन मुकति सोऊ कहावै । तैसा हरखु तैसा उसु सोगु । सदा अनंदु तह नही बिओगु । तैसा सुवरनु तैसी उसु माटी । तैसा अंम्रितु तैसी बिखु खाटी । तैसा मानु तैसा अभिमानु । तैसा रंकु तैसा राजानु । जो वरताए साई जुगति । नानक ओहु पुरखु कहीऐ जीवन मुकति ॥ ७ ॥

जो मनुष्य प्रभु की रज़ा को मन में मीठी मानता है, वही जीता हुआ मुक्त कहलाता है। उसे सुख तथा दुख एक जैसा है, उसे सदा आनन्द है (क्योंकि) वहाँ (प्रभु के चरणों से) विछोह नहीं है। सोना तथा मिट्टी (भी उस मनुष्य के लिए) बराबर है, अमृत तथा कौड़ी उसके लिए एक समान है। उसके लिए आदर तथा अहंकार (का व्यवहार) एक समान है, कंगाल तथा बादशाह उसकी दृष्टि में बराबर हैं। जो (रज़ा प्रभु) दिखाता है, वही (उसके लिए) ज़िन्दगी का सही मार्ग है; हे नानक! वह मनुष्य जीवन्मुक्त कहा जा सकता है ॥ ७ ॥

पारब्रहम के सगले ठाउ । जितु जितु घरि राखै तैसा तिन नाउ । आपे करन करावन जोगु । प्रभ भावै सोई फुनि होगु । पसरिओ आपि होइ अनत तरंग । लखे न जाहि पारब्रहम के रंग । जैसी मति देइ तैसा परगास । पारब्रहमु करता अबिनास । सदा सदा सदा दइआल । सिमरि सिमरि नानक भए निहाल ॥ ८ ॥ ९ ॥

सारे स्थान (शरीर-रूपी घर) अकालपुरुष के ही हैं, जिस-जिस स्थान पर जीवों को रखता है, वैसा उनका नाम (पड़ जाता है)। प्रभु आप

ही (सब कुछ) करने की (और जीवों से) कराने की शक्ति रखता है, जो प्रभु को भला लगता है, वही होता है। (ज़िन्दगी की) अनगिनत लहरें बनकर (अकालपुरुष) आप सब तक मौजूद है, अकालपुरुष के खेल व्यक्त नहीं किए जा सकते। जैसी बुद्धि देता है, वैसा ही अवश्य (जीव के भीतर) होता है; अकालपुरुष (आप सब कुछ) करनेवाला है और कभी भी उसका मरण नहीं होता। प्रभु सदा कृपा करनेवाला है, हे नानक! (जीव उसे) सदा स्मरण कर (फूल के समान) खिले रहते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥

॥ सलोकु ॥ उसतति करहि अनेक जन अंतु न पारावार। नानक रचना प्रभि रची बहु बिधि अनिक प्रकार ॥ १ ॥ ॥ असटपदी ॥ कई कोटि होए पूजारी। कई कोटि आचार बिउहारी। कई कोटि भए तीरथवासी। कई कोटि बन भ्रमहि उदासी। कई कोटि बेद के स्रोते। कई कोटि तपीसुर होते। कई कोटि आतम धिआनु धारहि। कई कोटि कबि काबि बीचारहि। कई कोटि नवतन नाम धिआवहि। नानक करते का अंतु न पावहि ॥ १ ॥

॥ सलोकु ॥ अनेक व्यक्ति प्रभु के गुणों का वर्णन करते हैं, लेकिन उन गुणों का ओर-छोर नहीं मिलता। हे नानक! (यह सारी) सृष्टि (उस) प्रभु ने कई क़िस्मों की होने के कारण कई विधियों से बनाई है ॥ १ ॥ असटपदी ॥ (प्रभु द्वारा रची सृष्टि में) कई करोड़ प्राणी पुजारी हैं और कई करोड़ धार्मिक रीतिरस्म करनेवाले हैं; कई करोड़ (व्यक्ति) तीर्थों के निवासी हैं और कई करोड़ वैराग्य लेकर जंगलों में फिरते हैं; कई करोड़ जीव वेदों के सुननेवाले हैं और कई करोड़ महान् तपस्वी बने हुए हैं; कई करोड़ (मनुष्य) कवियों की रचनाएँ विचारते हैं; कई करोड़ व्यक्ति (प्रभू का) नित्य नया नाम-स्मरण करते हैं, (पर) हे नानक! उस कर्त्तार का कोई भेद नहीं पा सकते ॥ १ ॥

कई कोटि भए अभिमानी। कई कोटि अंध अगिआनी। कई कोटि किरपन कठोर। कई कोटि अभिग आतम निकोर। कई कोटि परदरब कउ हिरहि। कई कोटि परदूखना करहि। कई कोटि माइआ स्रम माहि। कई कोटि परदेस भ्रमाहि। जितु जितु लावहु तितु तितु लगना। नानक करते की जानै करता रचना ॥ २ ॥

(इस जगत् रचना में) करोड़ों अहंकारी जीव और करोड़ों ही व्यक्ति बिल्कुल मूर्ख हैं; करोड़ों (मनुष्य) कंजूस तथा पत्थरमना हैं, और कई करोड़ बिल्कुल शुष्कमना (ओर संवेदनहीन) हैं, (जो किसी के दु:ख पर) द्रवीभूत नहीं होते; करोड़ों व्यक्ति दूसरों का धन चुराते हैं और करोड़ों ही दूसरों की निंदा करते हैं; करोड़ों (मनुष्य) धन की (ख़ातिर) मेहनत में लगे हैं और कई करोड़ दूसरे देशों में भटक रहे हैं; (हे प्रभु !) जिस-जिस काम में तुम लगाते हो, उस-उस काम में जीव लगे हैं। हे नानक ! कर्त्तार की रचना (का भेद) कर्त्तार ही जानता है ।। २ ।।

कई कोटि सिध जती जोगी। कई कोटि राजे रस भोगी। कई कोटि पंखी सरप उपाए। कई कोटि पाथर बिरख निपजाए। कई कोटि पवण पाणी बैसंतर। कई कोटि देस भू मंडल। कई कोटि ससी अर सूर नख्यत्र। कई कोटि देव दानव इंद्र सिरि छत्र। सगल समग्री अपनै सूति धारै। नानक जिसु जिसु भावै तिसु तिसु निसतारै ।। ३ ।।

(इस सृष्टि में) करोड़ों सिद्ध, जितेन्द्रिय योगी और करोड़ों ही आनन्द प्राप्त करनेवाले राजा हैं; करोड़ों पक्षी तथा साँप (प्रभु ने) पैदा किए हैं, करोड़ों ही पत्थर तथा वृक्ष उगाए हैं; करोड़ों पानी तथा अग्नियाँ हैं, करोड़ों देश तथा धरतियों के चक्र हैं; कई करोड़ चन्द्रमा, सूर्य तथा तारे हैं, करोड़ों देवगण तथा इन्द्र हैं, जिनके सिर पर छत्र हैं; (इन) सारे (जीव-जन्तुओं के) पदार्थों को (प्रभु ने) अपने (हुक्म के) धागे में पिरोया हुआ है। हे नानक ! जो-जो उसे अच्छा लगता है, उसे-उसे (प्रभु) पार कर लेता है ।। ३ ।।

कई कोटि राजस तामस सातक। कई कोटि बेद पुरान सिम्रिति अरु सासत। कई कोटि कीए रतन समुद। कई कोटि नाना प्रकार जंत। कई कोटि कीए चिर जीवे। कई कोटि गिरी मेर सुवरन थीवे। कई कोटि जख्य किंनर पिसाच। कई कोटि भूत प्रेत सूकर म्रिगाच। सभ ते नेरै सभहू ते दूरि। नानक आपि अलिपतु रहिआ भरपूरि ।। ४ ।।

करोड़ों जीव (माया के तीन गुणों) सत्, रज तथा तम में हैं, करोड़ों (व्यक्ति) वेद, पुराण, स्मृतियों तथा शास्त्रों (के पढ़नेवाले) हैं; समुद्रों में करोड़ों रत्न पैदा कर दिए हैं और कई क़िस्मों के जीव-जन्तु बना दिए हैं; करोड़ों जीव लम्बी उम्र वाले पैदा किए हैं, करोड़ों ही सोने के सुमेर पर्वत

बन गए हैं; करोड़ों ही यक्ष, किन्नर तथा पिशाच हैं और करोड़ों ही प्रेत सूअर तथा शेर हैं; (प्रभु) इनके निकट भी है और दूर भी। हे नानक ! प्रभु सकल स्थान पर व्यापक भी है और निर्लिप्त भी ॥ ४ ॥

कई कोटि पाताल के वासी। कई कोटि नरक सुरग निवासी। कई कोटि जनमहि जीवहि मरहि। कई कोटि बहु जोनी फिरहि। कई कोटि बैठत ही खाहि। कई कोटि घालहि थकि पाहि। कई कोटि कीए धनवंत। कई कोटि माइआ महि चिंत। जह जह भाणा तह तह राखे। नानक सभु किछु प्रभ कै हाथे ॥ ५ ॥

करोड़ों जीव पाताल में बसनेवाले हैं और करोड़ों ही नरकों तथा स्वर्गों में रहते हैं; करोड़ों जीव जन्मते हैं और करोड़ों जीव कई योनियों में भटक रहे हैं; करोड़ों जीव बैठे ही खाते हैं और करोड़ों (ऐसे हैं जो रोटी के लिए) मेहनत करते हैं और थककर टूट जाते हैं; करोड़ों जीव (प्रभु ने) धनवान बनाए हैं और करोड़ों (ऐसे हैं जिन्हें माया की) चिन्ता लगी हुई है। जहाँ-जहाँ चाहता है, जीवों को वहीं-वहीं रखता है। हे नानक ! हरेक बात प्रभु के अपने हाथ में है ॥ ५ ॥

कई कोटि भए बैरागी। राम नाम संगि तिनि लिव लागी। कई कोटि प्रभ कउ खोजंते। आतम महि पारब्रहमु लहंते। कई कोटि दरसन प्रभ पिआस। तिन कउ मिलिओ प्रभु अबिनास। कई कोटि मागहि सतसंगु। पारब्रहम तिन लागा रंगु। जिन कउ होए आपि सुप्रसंन। नानक ते जन सदा धनि धंनि ॥ ६ ॥

(इस रचना में) करोड़ों जीव वैरागी हैं, जिनकी सुरति अकालपुरुष के नाम के साथ लगी रहती है; करोड़ों व्यक्ति प्रभु को खोजते हैं और अपने भीतर अकालपुरुष को ढूँढते हैं। करोड़ों जीवों को प्रभु के दर्शनों की इच्छा लगी रहती है, उन्हें अविनाशी प्रभु मिल पड़ता है। करोड़ों जीव सत्संग माँगते हैं, उन्हें अकालपुरुष का प्रेम रहता है। हे नानक ! वे मनुष्य सदा भाग्यशाली हैं, जिनपर प्रभु आप प्रसन्न होता है ॥ ६ ॥

कई कोटि खाणी अरु खंड। कई कोटि अकास ब्रहमंड। कई कोटि होए अवतार। कई जुगति कीनो बिसथार। कई बार पसरिओ पासार। सदा सदा इकु एकंकार। कई कोटि

कीने बहु भाति। प्रभ ते होए प्रभ माहि समाति। ता का अंतु न जानै कोइ। आपे आपि नानक प्रभु सोइ ॥ ७ ॥

(पृथ्वी के नौ) खण्डों और (चार) दिशाओं में करोड़ों ही जीव उत्पन्न हुए हैं, तमाम आकाशों, ब्रह्माण्डों में करोड़ों ही जीव हैं; करोड़ों ही प्राणी पैदा हो रहे हैं; कई तरीक़ों से प्रभु ने जगत् की रचना की है, (दोबारा इसे समेटकर) सदा एक आप ही हो जाता है; प्रभु ने कई प्रकार के करोड़ों ही जीव पैदा किए हैं, जो प्रभु से पैदा होकर फिर प्रभु में ही लीन हो जाते हैं। उस प्रभु का अन्त कोई व्यक्ति नहीं जानता; (क्योंकि) हे नानक! वह प्रभु (अपने जैसा) आप ही है ॥ ७ ॥

कई कोटि पारब्रहम के दास। तिन होवत आतम परगास। कई कोटि तत के बेते। सदा निहारहि एको नेत्रे। कई कोटि नाम रसु पीवहि। अमर भए सद सद ही जीवहि। कई कोटि नाम गुन गावहि। आतम रसि सुखि सहजि समावहि। अपुने जन कउ सासि सासि समारे। नानक ओइ परमेसुर के पिआरे ॥ ८ ॥ १० ॥

(इस जगत्-रचना में) करोड़ों जीव प्रभु के सेवक हैं, उनकी आत्मा में (प्रभु का) प्रकाश हो जाता है; करोड़ों जीव (जगत् के) तत्व अकालपुरुष के जानकार हैं, जो सदा एक प्रभु को आखों से (सर्वत्र) देखते हैं; करोड़ों व्यक्ति प्रभु-नाम का आनन्द प्राप्त करते हैं, वे जन्म-मरण से रहित होकर सदा ही जीते रहते हैं। करोड़ों मनुष्य प्रभु-नाम के गुण गाते हैं, वे आत्मिक आनन्द, सुख तथा स्थिर अवस्था मे टिके रहते हैं। प्रभु अपने भक्तों को प्रत्येक पल स्मरण रखता है, (क्योंकि) हे नानक! वे भक्त प्रभु के प्यारे होते हैं ॥ ८ ॥ १० ॥

॥ सलोकु ॥ करण कारण प्रभु एकु है दूसर नाही कोइ। नानक तिसु बलिहारणै जलि थलि महीअलि सोइ ॥ १ ॥ ॥ असटपदी ॥ करन करावन करनै जोगु। जो तिसु भावै सोई होगु। खिन महि थापि उथापन हारा। अंतु नही किछु पारावारा। हुकमे धारि अधर रहावै। हुकमे उपजै हुकमि समावै। हुकमे ऊच नीच बिउहार। हुकमे अनिक रंग परकार। करि करि देखै अपनी वडिआई। नानक सभ महि रहिआ समाई ॥ १ ॥

॥ सलोकु ॥ (इस सारे) जगत् का (मूल-) कारण (सर्जक) एक अकालपुरुष ही है, कोई दूसरा नहीं। हे नानक! (मैं) उस प्रभु पर बलिहारी हूँ, जो जल, थल, पृथ्वी के तल पर (मौजूद है) ॥ १ ॥ ॥ असटपदी ॥ प्रभु (सब कुछ) करने की सामर्थ्य रखता है, और (जीवों को) काम करने के लिए प्रेरित करने योग्य भी है, वही कुछ होता है, जो उसे अच्छा लगता है। पल भर में इस जगत् को पैदा करके नाश भी करनेवाला है, (उसकी शक्ति) का कोई ओर-छोर नहीं है। (सृष्टि को अपने) हुक्म में पैदा करके बिना किसी आसरे के टिकाए रखता है, (जगत् उसके) हुक्म में पैदा होता है और हुक्म में लीन हो जाता है। उच्च और निम्न व्यक्तियों का प्रयोग भी उसके हुक्म-अनुसार ही है, अनेकों प्रकार के खेल-तमाशे उसके हुक्म-अनुसार हो रहे हैं। अपनी बुज़ुर्गी (के काम) कर-करके आप ही देख रहा है। हे नानक! प्रभु सब जीवों में व्यापक है ॥ १ ॥

प्रभ भावै मानुख गति पावै। प्रभ भावै ता पाथर तरावै। प्रभ भावै बिनु सास ते राखै। प्रभ भावै ता हरिगुण भाखै। प्रभ भावै ता पतित उधारै। आपि करै आपन बीचारै। दुहा सिरिआ का आपि सुआमी। खेलै बिगसै अंतरजामी। जो भावै सो कार करावै। नानक द्रिसटी अवरु न आवै ॥ २ ॥

यदि प्रभु को भाए तो मनुष्य को ऊँची आत्मिक अवस्था देता है और पत्थर (-दिलों) को भी पार कर लेता है, यदि प्रभु चाहे तो श्वासों के बिना भी प्राणी को (मौत से) बचाकर रखता है, उसकी कृपा होवे तो ही जीव प्रभु के गुण गाता है। यदि अकालपुरुष की रजा होवे तो मार्ग में गिरे हुए व्यक्तियों को (विकारों से) बचा लेता है; जो कुछ करता है, अपनी सलाह-अनुसार करता है। प्रभु आप ही लोक-परलोक का मालिक है, वह सबके मन की जाननेवाला जाप जगत्-खेल खेलता है और (इसे देखकर) प्रसन्न होता है। जो इसे अच्छा लगता है, वही काम करता है। हे नानक! (उस जैसा दूसरा कोई दिखाई नहीं देता) ॥ २ ॥

कहु मानुख ते किआ होइ आवै। जो तिसु भावै सोई करावै। इस कै हाथि होइ ता सभु किछु लेइ। जो तिसु भावै सोई करेइ। अनजानत बिखिआ महि रचै। जे जानत आपन आप बचै। भरमे भूला दह दिसि धावै। निमख माहि चारि कुंट फिरि आवै। करि किरपा जिसु अपनी भगति देइ। नानक ते जन नामि मिलेइ ॥ ३ ॥

कहो, मनुष्य से (अपने आप) कौन सा काम हो सकता है ? जो प्रभु को अच्छा लगता है, वही (जीव से) कराता है। इस मनुष्य के वश में होवे तो हरेक चीज़ संभाल ले, (पर) प्रभु वही कुछ करता है, जो उसे भाता है। मूर्खता के कारण मनुष्य माया में लीन हो जाता है, यदि बुद्धिमान होवे तो अपने आप (इससे) बचा रहे; (पर इसका मन) भ्रम में भूला हुआ (माया की खातिर) दसों दिशाओं में दौड़ता है, पल भर में चारों कोनों में भाग-दौड़ आता है। (प्रभु) कृपा करके जिस-जिस मनुष्य को अपनी भक्ति देता है, हे नानक ! वे मनुष्य नाम में टिके रहते हैं ॥ ३ ॥

खिन महि नीच कीट कउ राज। पारब्रहम गरीब निवाज। जा का द्रिसटि कछू न आवै। तिसु ततकाल दहदिस प्रगटावै। जा कउ अपुनी करै बखसीस। ता का लेखा न गनै जगदीस। जीउ पिंडु सभ तिस की रासि। घटि घटि पूरन ब्रहम प्रगास। अपनी बणत आपि बनाई। नानक जीवै देखि बडाई ॥ ४ ॥

क्षण में प्रभु कीड़े (जैसे) निम्न (मनुष्य) को राज्य देता है, प्रभु ग़रीबों पर कृपा करनेवाला है। जिस मनुष्य का कोई गुण दिखाई नहीं देता, उसे पल भर में दसों दिशाओं में प्रकट कर देता है। जिस मनुष्य पर जगत् का स्वामी प्रभु अपनी कृपा करता है, उसके (कर्मों का) लेखा नहीं गिनता। यह आत्मा और शरीर उस प्रभु की दी हुई पूंजी है, हरेक शरीर में व्यापक प्रभु का ही प्रकाश है। यह (जगत्-) रचना उसने आप रची है। हे नानक ! अपनी (इस) बुज़ुर्गी को आप देखकर (वह) ख़ुश हो रहा है ॥ ४ ॥

इस का बलु नाही इसु हाथ। करन करावन सरब को नाथ। आगिआकारी बपुरा जीउ। जो तिसु भावै सोई फुनि थीउ। कबहू ऊच नीच महि बसै। कबहू सोग हरख रंगि हसै। कबहू निंद चिंद बिउहार। कबहू ऊभ अकास पइआल। कबहू बेता ब्रहम बीचार। नानक आपि मिलावणहार ॥ ५ ॥

इस (जीव) की शक्ति इसके अपने हाथ में नहीं है, सब जीवों का मालिक प्रभु आप सब कुछ करने-कराने के योग्य है। बेचारा जीव प्रभु के हुक्म में ही चलनेवाला है, (क्योंकि) वही होता है जो उस प्रभु को अच्छा लगता है। (प्रभु आप) कभी उच्च व्यक्तियों और कभी निम्न व्यक्तियों में प्रकट हो रहा है, कभी चिन्ता में है और कभी ख़ुशी की मौज में हँस

रहा है; कभी (दूसरों की) निन्दा करने का व्यवहार बनाए बैठा है। कभी (खुशी के कारण) आकाश में ऊँचा (चढ़ता है) कभी (चिन्ता के कारण) पाताल में (गिरा पड़ा है); कभी आप ही ईश्वरीय विचार का जानकार है। हे नानक ! जीवों को अपने में मिलानेवाला आप ही है ।। ५ ।।

कबहू निरति करै बहु भाति। कबहू सोइ रहै दिनु राति। कबहू महा क्रोध बिकराल। कबहूं सरब की होत रवाल। कबहू होइ बहै बड राजा। कबहु भेखारी नीच का साजा। कबहू अपकीरति महि आवै। कबहू भला भला कहावै। जिउ प्रभु राखै तिव ही रहै। गुर प्रसादि नानक सचु कहै ।। ६ ।।

(प्रभु जीवों में व्यापक होकर) कभी कई प्रकार के नाच कर रहा है, कभी दिन-रात सोया रहता है। कभी क्रोध (में आकर) बड़ा डरावना (लगता है), कभी जीवों के चरणों की धूलि (बना रहता है); कभी बड़ा राजा बन बैठता है, कभी एक निम्न जाति के भिखारी का स्वांग (बना रखा है); कभी अपनी बदनामी करा रहा है, कभी भला कहलवा रहा है, जीव उसी प्रकार जीवन व्यतीत करता है, जैसे प्रभु कराता है। हे नानक ! (कोई विरला मनुष्य) गुरु की कृपा से प्रभु को स्मरण करता है ।। ६ ।।

कबहू होइ पंडितु करे बख्यानु। कबहू मोनि धारी लावै धिआनु। कबहू तट तीरथ इसनान। कबहू सिध साधिक मुखि गिआन। कबहू कीट हसति पतंग होइ जीआ। अनिक जोनि भरमै भरमीआ। नाना रूप जिउ स्वागी दिखावै। जिउ प्रभ भावै तिवै नचावै। जो तिसु भावै सोई होइ। नानक दूजा अवरु न कोइ ।। ७ ।।

(सर्वव्यापक प्रभु) कभी पण्डित बनकर (दूसरों को) उपदेश कर रहा है, कभी मौनी साधू बनकर समाधि लगाए बैठा है; कभी तीर्थों के किनारे स्नान कर रहा है, कभी सिद्ध, साधक (के रूप में) मुँह से ज्ञान की बातें करता है; कभी कीड़े, हाथी, पतंगा (आदि) जीव बना रहता है और (अपना ही) भरमाया हुआ कई योनियों में भटक रहा है; बहुरूपिए के समान कई प्रकार के रूप दिखा रहा है; जैसे प्रभु को अच्छा लगता है, वैसे (ही जीवों को) नचाता है। वही होता है जो उस (मालिक) को अच्छा लगता है। हे नानक ! (उस जैसा) कोई दूसरा नहीं है ।। ७ ।।

कबहू साध संगति इहु पावै । उसु असथान ते बहुरि न आवै । अंतरि होइ गिआन परगासु । उसु असथान का नही बिनासु । मन तन नामि रते इक रंगि । सदा बसहि पारब्रहम कै संगि । जिउ जल महि जलु आइ खटाना । तिउ जोती संगि जोति समाना । मिटि गए गवन पाए बिस्राम । नानक प्रभ कै सद कुरबान ।। ८ ।। ११ ।।

(जब) कभी (प्रभु का अंश) यह जीव सत्संग में पहुँचता है, तो उस स्थान से मुड़कर वापिस नहीं आता; (क्योंकि) इसके भीतर प्रभु के ज्ञान का प्रकाश हो जाता है (और) उस (ज्ञान के प्रकाश वाली) हालत का नाश नहीं होता; (जिन मनुष्यों के) तन, मन प्रभु के नाम तथा प्रेम में अनुरक्त रहते हैं, वे सदा प्रभु के समीप (उसके दरबार में) बसते हैं। जैसे पानी में पानी आ मिलता है, वैसे (सत्संग में टिके हुए की) आत्मा प्रभु की ज्योति में लीन हो जाती है, उसके (जन्म-मरण के) चक्र समाप्त हो जाते हैं, (प्रभु-चरणों में) उसे ठिकाना मिल जाता है। हे नानक ! प्रभु पर सदा बलिहारी जाएँ ।। ८ ।। ११ ।।

।। सलोकु ।। सुखी बसै मसकीनीआ आपु निवारि तले । बडे बडे अहंकारीआ नानक गरबि गले ।। १ ।। असटपदी ।। जिस कै अंतरि राज अभिमानु । सो नरक पाती होवत सुआनु । जो जानै मै जोबनवंतु । सो होवत बिसटा का जंतु । आपस कउ करमवंतु कहावै । जनमि मरै बहु जोनि भ्रमावै । धन भूमि का जो करै गुमानु । सो मूरखु अंधा अगिआनु । करि किरपा जिस कै हिरदै गरीबी बसावै । नानक ईहा मुकतु आगै सुखु पावै ।। १ ।।

विनम्र स्वभाव वाला व्यक्ति आपा-भाव दूर कर, और विनीत रहकर सुखी रहता है, (पर) बड़े-बड़े अहंकारी मनुष्य, हे नानक ! अहंकार में ही गल जाते हैं ।। १ ।। असटपदी ।। जिस मनुष्य के मन में राज्य का अभिमान है, वह कुत्ता नरक में पड़कर दण्डित होता है। यदि मनुष्य अपने आपको अत्यन्त सुन्दर समझता है, वह विष्ठा का ही कीड़ा होता है। जो अपने आपको शुभ कर्मों का करनेवाला कहलाता है वह सदा जन्मता-मरता है, कई योनियों में भटकता फिरता है। जो मनुष्य धन और धरती का अहंकार करता है, वह मूर्ख है, बड़ा दुष्ट है। (ईश्वर) कृपा करके जिस मनुष्य के दिल में विनभ्र (स्वभाव) देता है, हे नानक ! (वह मनुष्य) जीवन में विकारों से बचा रहता है और परलोक में सुख पाता है ।। १ ।।

धनवंता होइ करि गरबावै। त्रिण समानि कछु संगि न जावै। बहु लसकर मानुख ऊपरि करे आस। पल भीतरि ता का होइ बिनास। सभ ते आप जानै बलवंतु। खिन महि होइ जाइ भसमंतु। किसै न बदै आपि अहंकारी। धरमराइ तिसु करे खुआरी। गुरप्रसादि जा का मिटै अभिमानु। सो जनु नानक दरगह परवानु॥ २॥

मनुष्य धनवान होकर अभिमान करता है, (पर उसके) साथ (अन्तिम समय में) एक तिनके के बराबर चीज़ नहीं जाती। अत्यधिक लश्कर तथा आदमियों पर आशा लगाए रखता है, (पर) पल मात्र में उसका नाश हो जाता है। मनुष्य अपने आपको सबसे बली समझता है, पर (अन्तिम समय) एक क्षण में जलकर राख हो जाता है। (जो व्यक्ति) आप (इतना) अहंकारी हो जाता है कि किसी की परवाह नहीं करता, धर्मराज (अन्तिम समय में) उसकी दुर्गति करता है। सतिगुरु की दया से जिसका अहंकार मिटता है, वह मनुष्य, हे नानक! प्रभु के दरबार में सम्मानित होता है॥ २॥

कोटि करम करै हउ धारे। स्रमु पावै सगले बिरथारे। अनिक तपसिआ करे अहंकार। नरक सुरग फिरि फिरि अवतार। अनिक जतन करि आतम नही द्रवै। हरि दरगह कहु कैसे गवै। आपस कउ जो भला कहावै। तिसहि भलाई निकटि न आवै। सरब की रेन जा का मनु होइ। कहु नानक ता की निरमल सोइ॥ ३॥

(जो मनुष्य) करोड़ों धार्मिक कामों का अहंकार करे तो वे सारे काम व्यर्थ हैं, (उसे उन कार्यों से) थकावट ही मिलती है। अनेकों तप के साधन करके यदि इनका अभिमान करे, (तो वह भी) नरक, स्वर्ग में ही बार-बार जन्मता है। अनेकों यत्न करने से यदि हृदय विनम्र नहीं होता, तो कहो, वह मनुष्य प्रभु के दरबार में कैसे पहुँच सकता है? यदि मनुष्य अपने आपको भला कहता है, भलाई उसके पास भी नहीं फटकती। जिस मनुष्य का मन सब के चरणों की धूलि हो जाता है, कहो, हे नानक! उस मनुष्य की शोभा में अत्यन्त वृद्धि होती है॥ ३॥

जब लगु जानै मुझ ते कछु होइ। तब इस कउ सुखु नाही कोइ। जब इह जानै मै किछु करता। तब लगु गरभ जोनि महि फिरता। जब धारै कोऊ बैरी मीतु। तब लगु निहचलु

नाही चीतु। जब लगु मोह मगन संगि माइ। तब लगु धरमराइ देइ सजाइ। प्रभ किरपा ते बंधन तूटै। गुरप्रसादि नानक हउ छूटै ॥ ४ ॥

मनुष्य जब तक यह समझता है कि मुझ से कुछ हो सकता है, तब तक इसे कोई सुख नहीं होता। जब तक यह समझता है कि मैं कुछ करता हूँ, तब तक योनियों में भटकता रहता है। जब तक मनुष्य किसी को वैरी तथा किसी को मित्र समझता है, तब तक इसका मन ठिकाने पर नहीं आता। जब तक मनुष्य माया के मोह में डूबा रहता है, तब तक इसे धर्मराज दण्ड देता है। (माया के) बन्धन प्रभु की कृपा से टूटते हैं, हे नानक ! मनुष्य की अहंभावना गुरु की कृपा से समाप्त होती है ॥ ४ ॥

सहस खटे लख कउ उठि धावै। त्रिपति न आवै माइआ पाछै पावै। अनिक भोग बिखिआ के करै। नह त्रिपतावै खपि खपि मरै। बिना संतोख नही कोऊ राजै। सुपन मनोरथ ब्रिथे सभ काजै। नाम रंगि सरब सुखु होइ। बडभागी किसै परापति होइ। करन करावन आपे आपि। सदा सदा नानक हरि जापि ॥ ५ ॥

(मनुष्य) हज़ारों (रुपए) कमाता है, लाखों (रुपयों) के लिए भाग-दौड़ करता है; माया जमा किए जाता है, (पर) तृप्त नहीं होता। माया के अनेक आनन्द प्राप्त करता है, तसल्ली नहीं होती, (भोगों में लगा रहता है तथा) बहुत दुखी होता है। यदि भीतर साँस न होवे, तो कोई (मनुष्य) तृप्त नहीं होता, जैसे स्वप्नों से कोई लाभ नहीं होता, वैसे ही समस्त काम तथा इच्छाएं व्यर्थ हैं। प्रभु के नाम की मौज में (ही) सारा सुख है, (और यह सुख) किसी भाग्यशाली को ही मिलता है, (जो) प्रभु आप सब कुछ करने तथा (जीवों से) कराने के योग्य है, हे नानक ! उस प्रभु को सदा स्मरण कर ॥ ५ ॥

करन करावन करनैहारु। इस कै हाथि कहा बीचारु। जैसी द्रिसटि करे तैसा होइ। आपे आपि आपि प्रभु सोइ। जो किछु कीनो सु अपनै रंगि। सभ ते दूरि सभहू कै संगि। बूझै देखै करै बिबेक। आपहि एक आपहि अनेक। मरै न बिनसै आवै न जाइ। नानक सद ही रहिआ समाइ ॥ ६ ॥

विचार कर देख ले, जीव के वश में कुछ भी नहीं है; प्रभु आप ही सब कुछ करने योग्य है तथा (जीवों से) कराने योग्य है। प्रभु ऐसी

दृष्टि (व्यक्ति की ओर) करता है कि व्यक्ति वैसा ही बन जाता है, वह प्रभु आप ही आप होता है। जो कुछ उसने बनाया है, अपनी मौज में बनाया है; सब जीवों के साथ भी है और सबसे अलग भी है। प्रभु आप ही एक है और आप ही अनेक रूप धारण कर रहा है, सब कुछ समझता है, देखता है और पहचानता है। वह न कभी मरता है, न विनष्ट होता है; न जन्मता है न मरता है; हे नानक! प्रभु सदा ही अपने आप में टिका रहता है ॥ ६ ॥

आपि उपदेसै समझै आपि। आपे रचिआ सभ कै साथि। आपि कीनो आपन बिसथारु। सभु कछु उस का ओहु करनैहारु। उस ते भिंन कहहु किछु होइ। थान थनंतरि एकै सोइ। अपुने चलित आपि करणैहार। कउतक करै रंग आपार। मन महि आपि मन अपुने माहि। नानक कीमति कहनु न जाइ ॥ ७ ॥

प्रभु आप ही सब जीवों के साथ मिला हुआ है, (इसलिए वह) आप ही शिक्षा देता है और आप ही (उस शिक्षा को) समझता है। अपना विस्तार उसने आप ही बनाया है, (जगत् की) हरेक वस्तु उसकी बनाई हुई है, वह बनाने योग्य है। बताओ, उससे अलग कुछ हो सकता है? सर्वत्र वह प्रभु आप ही (मौजूद) है। अपने खेल आप ही करने योग्य है, अनन्त रंगों के तमाशे करता है। (जीवों के) मन में आप बस रहा है, (जीवों को) अपने मन में टिकाए बैठा है; हे नानक! उसका मूल्यांकन नहीं किया जा सकता ॥ ७ ॥

सति सति सति प्रभु सुआमी। गुरपरसादि किनै वखिआनी। सचु सचु सचु सभु कीना। कोटि मधे किनै बिरलै चीना। भला भला भला तेरा रूप। अति सुंदर अपार अनूप। निरमल निरमल निरमल तेरी बाणी। घटि घटि सुनी स्रवन बख्याणी। पवित्र पवित्र पवित्र पुनीत। नामु जपै नानक मनि प्रीति ॥ ८ ॥ १२ ॥

(सबका) मालिक प्रभु सदा स्थिर रहनेवाला है— गुरु की कृपा से किसी विरले ने (यह बात) कही है। जो कुछ उसने बनाया है वह भी पूर्ण है— यह बात करोड़ों में किसी विरले ने पहचानी है। हे अत्यन्त सुन्दर, अनन्त तथा अप्रतिम प्रभु! तेरा रूप कितना प्यारा है! तेरी बोली भी मधुर है, हर एक शरीर में कानों के द्वारा सुनी जा रही है, जिह्वा से

कही जा रही है। हे नानक ! (जो ऐसे प्रभु का) नाम प्रीति के साथ मन में जपता है, वह पवित्र ही पवित्र हो जाता है ॥ ८ ॥ १२ ॥

॥ सलोकु ॥ संत सरनि जो जनु परै सो जनु उधरनहार। संत की निंदा नानका बहुरि बहुरि अवतार॥ १॥ असटपदी॥ संत कै दूखनि आरजा घटै। संत कै दूखनि जम ते नही छुटै। संत कै दूखनि सुखु सभु जाइ। संत कै दूखनि नरक महि पाइ। संत कै दूखनि मति होइ मलीन। संत कै दूखनि सोभा ते हीन। संत के हते कउ रखै न कोइ। संत कै दूखनि थान भ्रसटु होइ। संत क्रिपाल क्रिपा जे करै। नानक संत संगि निंदकु भी तरै॥ १॥

॥ सलोकु ॥ जो मनुष्य संतों की शरण लेता है, वह माया के बन्धनों से बच जाता है; (पर) हे नानक ! संतों की निंदा करने से बार-बार जन्म लेना पड़ता है, (भाव, जन्म-मरण के चक्र में पड़ा जाता है) ॥ १ ॥ ॥ असटपदी ॥ संतों की निंदा करने से (मनुष्य की) उम्र (व्यर्थ ही) बीत जाती है, (क्योंकि) संत की निंदा करने से मनुष्य यमों से बच नहीं सकता। संत की निंदा करने से सारा (ही) सुख (नष्ट हो) जाता है और मनुष्य नरक में पड़ जाता है। संत की निंदा करने से (मनुष्य की) मति मैली हो जाती है और (जगत् में) मनुष्य शोभा से खाली रह जाता है। संत से तिरस्कृत व्यक्ति की कोई मनुष्य सहायता नहीं कर सकता, (क्योंकि) संत की निंदा करने से (निंदक का) हृदय गंदा हो जाता है। (पर) यदि कृपालु संत आप कृपा करे, तो हे नानक ! संत की संगति में निंदक भी (पापों से) बच जाता है ॥ १ ॥

संत कै दूखन ते मुखु भवै। संतन कै दूखनि काग जिउ लवै। संतन कै दूखनि सरप जोनि पाइ। संत कै दूखनि त्रिगद जोनि किरमाइ। संतन कै दूखनि त्रिसना महि जलै। संत कै दूखनि सभु को छलै। संत कै दूखनि तेजु सभु जाइ। संत कै दूखनि नीचु नीचाइ। संत दोखी का थाउ को नाहि। नानक संत भावै ता ओइ भी गति पाहि॥ २॥

संत की निंदा करने से (निंदक का) चेहरा ही भ्रष्ट हो जाता है, (और निंदक) (स्थान-स्थान पर) कौए के समान निंदा करता है। संत की निंदा करने से मनुष्य सर्प की योनि में जा पड़ता है, और, कृमि आदि की निम्न योनियों में (भटकता है)। संत की निंदा के कारण (निंदक)

तृष्णा (की अग्नि) में जलता है, और, हरेक मनुष्य को धोखा देता फिरता है। संत की निंदा करने से मनुष्य का सारा तेज-प्रताप नष्ट हो जाता है और (निंदक) महा नीच बन जाता है। संतों की निंदा करनेवालों का कोई आसरा नहीं रहता; (हाँ) हे नानक ! यदि संतों को भाए तो निंदक भी उत्तम अवस्था तक पहुंच जाते हैं ।। २ ।।

संत का निंदकु महा अतताई। संत का निंदकु खिनु टिकनु न पाई। संत का निंदकु महा हतिआरा। संत का निंदकु परमेसुरि मारा। संत का निंदकु राज ते हीनु। संत का निंदकु दुखीआ अरु दीनु। संत के निंदक कउ सरब रोग। संत के निंदक कउ सदा बिजोग। संत की निंदा दोख महि दोखु। नानक संत भावै ता उस का भी होइ मोखु ।। ३ ।।

संत की निंदा करनेवाला मनुष्य सदा तूफ़ान उठाए रहता और एक पल भर भी आराम नहीं लेता। संत का निंदक बड़ा क्रूर बन जाता है और परमात्मा की ओर से तिरस्कृत होता है। संत का निंदक राज्य (के सुखों से) खाली रहता है (सदा) दुखी तथा आतुर रहता है। संतों की निंदा करनेवाले को सारे रोग लगते हैं, (क्योंकि) उसे (सुखों के स्रोत प्रभु से) सदा विछोह रहता है। संतों की निंदा करनी नीचता है। हे नानक ! यदि संतों को भाए तो उसका भी छुटकारा हो जाता है ।। ३ ।।

संत का दोखी सदा अपवितु। संत का दोखी किसै का नही मितु। संत के दोखी कउ डानु लागै। संत के दोखी कउ सभ तिआगै। संत का दोखी महा अहंकारी। संत का दोखी सदा बिकारी। संत का दोखी जनमै मरै। संत की दूखना सुख ते टरै। संत के दोखी कउ नाही ठाउ। नानक संत भावै ता लए मिलाइ ।। ४ ।।

संत का निंदक सदा मैले मन वाला है, (इसलिए) वह (कभी) किसी का मित्र नहीं बनता। (अन्तिम समय में) संत के निंदक को (धर्मराज से) सज़ा मिलती है और सारे उसका साथ छोड़ जाते हैं। संत की निंदा करनेवाला बड़ा अहंकारी बन जाता है और सदा कुकर्म करता है। संत का निंदक जन्मता-मरता रहता है, और संत की निंदा के कारण सुखों से खाली जाता है। संत के निंदक को कोई सहारा नहीं मिलता, (पर हाँ), हे नानक ! यदि संत चाहे तो अपने साथ उस (निंदक) को मिला लेता है ।। ४ ।।

संत का दोखी अधबीच ते टूटै। संत का दोखी कितै काजि न पहूचै। संत के दोखी कउ उदिआन भ्रमाईऐ। संत का दोखी उझड़ि पाईऐ। संत का दोखी अंतर ते थोथा। जिउ सास बिना मिरतक की लोथा। संत के दोखी की जड़ किछु नाहि। आपन बीजि आपे ही खाहि। संत के दोखी कउ अवरु न राखनहारु। नानक संत भावै ता लए उबारि ॥ ५ ॥

संत का निंदक किसी काम में पूर्ण नहीं उतरता, बीच में ही रह जाता है। संत के निंदक को जंगलों में दुखी किया जाता है और (मार्ग से भ्रष्ट करके) ग़लत मार्ग पर डाल दिया जाता है। जैसे प्राणों के बिना मुर्दा मांस है, वैसे ही संत का निंदक भीतर से खाली होता है। संत के निंदकों की (नेक कमाई तथा स्मरण द्वारा) कोई पक्की नींव नहीं होती, वे आप ही निंदा की कमाई करके आप ही (उसका निम्न फल) खाते हैं। संतों के निंदक को कोई दूसरा मनुष्य बचा नहीं सकता, (पर) हे नानक ! यदि संत चाहे तो (निंदक को निंदा के स्वभाव से) बचा सकता है ॥ ५ ॥

संत का दोखी इउ बिललाइ। जिउ जल बिहून मछुली तड़फड़ाइ। संत का दोखी भूखा नही राजै। जिउ पावकु ईधनि नही ध्रापै। संत का दोखी छुटै इकेला। जिउ बूआड़ु तिलु खेत माहि दुहेला। संत का दोखी धरम ते रहत। संत का दोखी सद मिथिआ कहत। किरतु निंदक का धुरि ही पइआ। नानक जो तिसु भावै सोई थिआ ॥ ६ ॥

संत का निंदक ऐसे रोता है, जैसे पानी के बिना मछली तड़फती है। संत का निंदक तृष्णा के कारण कभी तृप्त नहीं होता, जैसे आग ईंधन से तृप्त नहीं होती। जैसे भीतर से जला हुआ तिल का पौधा खेत में ही बेकार पड़ा रहता है, वैसे ही संत का निंदक अकेला परित्यक्त होकर पड़ा रहता है, (कोई उसके निकट नहीं आता), संत का निंदक धर्म से भ्रष्ट होता है और सदा झूठ बोलता है। (पर) पहली की हुई निंदा का यह फल (-रूपी स्वभाव) निंदक का शुरू से ही चला आ रहा है। हे नानक ! (यह मालिक की रज़ा है) जो उसे अच्छा लगता है, वही होता है ॥ ६ ॥

संत का दोखी बिगड़ रूपु होइ जाइ। संत के दोखी कउ दरगह मिलै सजाइ। संत का दोखी सदा सहकाईऐ। संत का दोखी न मरै न जीवाईऐ। संत के दोखी की पुजै न आसा। संत का दोखी उठि चलै निरासा। संत कै दोखि न त्रिसटै

कोइ। जैसा भावै तैसा कोई होइ। पइआ किरतु न मेटै कोइ। नानक जानै सचा सोइ ॥ ७ ॥

संतों का निंदक तिरस्कृत होता है, प्रभु की दरगाह (दरबार) में उसे सज़ा मिलती है। संतों का निंदक सदा उतावला रहता है, वह न मृतकों में और न जीवितों में होता है। उसकी आशा कभी पूर्ण नहीं होती, जगत् से वह निराश ही चला जाता है। जैसी आदमी की नीयत (इच्छा) होती है, वैसा उसका स्वभाव बन जाता है, (इसलिए) संत की निंदा करने से कोई मनुष्य (निंदा की) इस प्यास से बचता नहीं, (बचे भी कैसे ?) पूर्वकृत (निम्न) कमाई से एकत्रित (स्वभाव-रूपी) फल को कोई मिटा नहीं सकता। हे नानक ! (इस भेद को) वह सच्चा प्रभु जानता है ॥७॥

सभ घट तिस के ओहु करनैहारु। सदा सदा तिस कउ नमसकारु। प्रभ की उसतति करहु दिनु राति। तिसहि धिआवहु सासि गिरासि। सभु कछु वरतै तिसका कीआ। जैसा करे तैसा को थीआ। अपना खेलु आपि करनैहारु। दूसर कउनु कहै बीचारु। जिसनो क्रिपा करै तिसु आपन नामु देइ। बडभागी नानक जन सेइ ॥ ८ ॥ १३ ॥

सारे जीव-जन्तु उस प्रभु के हैं, वह सब कुछ करने के योग्य है, सदा उस प्रभु के समक्ष सिर झुकाओ। दिन-रात प्रभु के गुण गाओ, प्रत्येक साँस उसे स्मरण करो। (जगत् में) हर एक क्रीड़ा उसी की रची हुई क्रियान्वित है, प्रभु (जीव को) जैसा बनाता है, वैसा हर एक जीव बन जाता है, (जगत्-रूपी) अपना खेल आप ही करने योग्य है। दूसरा कौन उसे सलाह दे सकता है ? जिस-जिस जीव पर कृपा करता है, उसे-उसे अपना नाम देता है; (और) हे नानक ! वे मनुष्य भाग्यशाली हो जाते हैं ॥ ८ ॥ १३ ॥

॥ सलोकु ॥ तजहु सिआनप सुरि जनहु सिमरहु हरि हरि राइ। एक आस हरि मनि रखहु नानक दूखु भरमु भउ जाइ ॥ १ ॥ असटपदी ॥ मानुख की टेक ब्रिथी सभ जानु। देवन कउ एकै भगवानु। जिस कै दीऐ रहै अघाइ। बहुरि न त्रिसना लागै आइ। मारै राखै एको आपि। मानुख कै किछु नाही हाथि। तिस का हुकमु बूझि सुखु होइ। तिस का नामु रखु कंठि परोइ। सिमरि सिमरि सिमरि प्रभु सोइ। नानक बिघनु न लागै कोइ ॥ १ ॥

॥ सलोकु ॥ हे भले मनुष्यो ! चतुराई छोड़ो और अकालपुरुष को स्मरण करो; केवल प्रभु की आस मन में रखो। हे नानक ! (इस प्रकार) दु:ख, भ्रम और भय दूर हो जाता है ॥ १ ॥ असटपदी ॥ (हे मन !) किसी मनुष्य का आसरा बिल्कुल बेकार समझ, एक अकालपुरुष ही (सब जीवों को) देने योग्य है; जिसके देने से (मनुष्य) तृप्त रहता है और दोबारा उसे लालच आकर नहीं दबाता। प्रभु आप ही जीवों को मारता है, (अथवा) पालता है, मनुष्य के वश कुछ नहीं है, (इसलिए) उस मालिक का हुक्म समझकर सुख होता है। (हे मन !) उसका नाम हरवक्त याद कर। उस प्रभु को सदा स्मरण कर। हे नानक ! (स्मरण के प्रभाव से) (ज़िन्दगी की यात्रा में) कोई रुकावट नहीं पड़ती ॥ १ ॥

उसतति मन महि करि निरंकार। करि मन मेरे सति बिउहार। निरमल रसना अंम्रितु पीउ। सदा सुहेला करि लेहि जीउ। नैनहु पेखु ठाकुर का रंगु। साध संगि बिनसै सभ संगु। चरन चलउ मारगि गोबिंद। मिटहि पाप जपीऐ हरि बिंद। कर हरि करम स्रवनि हरि कथा। हरि दरगह नानक ऊजल मथा ॥ २ ॥

अपने भीतर अकालपुरुष की प्रशंसा कर। हे मेरे मन ! यह सच्चा जिह्वा से मीठा (नाम-) अमृत पी, (इस प्रकार) अपनी आत्मा को सदा के लिए सुखी कर ले। आँखों से अकालपुरुष का (जगत्-) तमाशा देख, सज्जनों की संगति में (टिकने से) दूसरा (कुटुम्ब आदि का) मोह मिट जाता है। पैरों से परमात्मा के मार्ग पर चल। प्रभु को थोड़ा सा भी जपें तो पाप दूर हो जाते हैं। हाथों से प्रभु के काम कर और कानों से उसकी प्रशंसा (सुन); (इस प्रकार) हे नानक ! प्रभु के दरबार में मुक्त होना चाहिए ॥ २ ॥

बडभागी ते जन जग माहि। सदा सदा हरि के गुन गाहि। राम नाम जो करहि बीचार। से धनवंत गनी संसार। मनि तनि मुखि बोलहि हरि मुखी। सदा सदा जानहु ते सुखी। एको एकु एकु पछानै। इत उत की ओहु सोझी जानै। नाम संगि जिस का मनु मानिआ। नानक तिनहि निरंजनु जानिआ ॥ ३ ॥

(जो मनुष्य) सदा ही प्रभु के गुण गाते हैं, वे मनुष्य जगत् में भाग्यशाली हैं। वे मनुष्य जगत् में धनी तथा तृप्त हैं, जो अकालपुरुष के

नाम का स्मरण करते हैं। जो भले लोग तन, मन तथा मुख से प्रभु का नाम उच्चरित करते हैं; उन्हें सुखी जानो। जो मनुष्य केवल एक प्रभु को (सर्वत्र) पहचानता है, उसे लोक-परलोक की समझ आ जाती है। जिस मनुष्य का मन प्रभु के नाम में मिल जाता है, हे नानक! उसने प्रभु को पहचान लिया है ॥ ३ ॥

गुर प्रसादि आपन आपु सुझै। तिस की जानहु त्रिसना बुझै। साध संगि हरि हरि जसु कहत। सरब रोग ते ओहु हरि जनु रहत। अनदिनु कीरतनु केवल बख्यानु। ग्रिहसत महि सोई निरबानु। एक ऊपरि जिसु जन की आसा। तिस की कटीऐ जम की फासा। पारब्रहम की जिसु मनि भूख। नानक तिसहि न लागहि दूख ॥ ४ ॥

जिस मनुष्य को गुरु-कृपा से अपने आप की सूझ हो जाती है, यह जान लो कि उसकी तृष्णा मिट जाती है। जो परमात्मा का प्यारा, सत्संग में अकालपुरुष की गुणस्तुति करता है, वह सारे रोगों से बच जाता है। जो मनुष्य हर रोज़ प्रभु का कीर्त्तन ही उच्चरित करता है, वह मनुष्य गृहस्थों में निर्लिप्त है। जिस मनुष्य की आस एक अकालपुरुष पर है, उसकी यमों वाली फाँसी कट जाती है। जिस मनुष्य के मन में प्रभु (के मिलने की) इच्छा है, हे नानक! उस मनुष्य को कोई दुःख स्पर्श नहीं करता ॥ ४ ॥

जिस कउ हरि प्रभु मनि चिति आवै। सो संतु सुहेला नही डुलावै। जिसु प्रभु अपुना किरपा करै। सो सेवकु कहु किस ते डरै। जैसा सा तैसा द्रिसटाइआ। अपुने कारज महि आपि समाइआ। सोधत सोधत सोधत सीझिआ। गुरप्रसादि ततु सभु बूझिआ। जब देखउ तब सभु किछु मूलु। नानक सो सूखमु सोई असथूलु ॥ ५ ॥

जिस मनुष्य को हरिप्रभु मन में सदा याद रहता है, वह संत है, सुखी है, (वह कभी) घबराता नहीं। जिस मनुष्य पर प्रभु अपनी कृपा करता है, कहो (प्रभु का) वह सेवक किससे डर सकता है? (क्योंकि) उसे प्रभु वैसा ही दिखाई देता है, जैसा वह है, प्रभु अपने बनाए जगत् में आप व्यापक है; नित्य विचार करते हुए (उस सेवक को विचार में) सफलता हो जाती है, (भाव) गुरु की कृपा से (उसे) सारी वास्तविकता की समझ आ जाती है। हे नानक! (मेरे ऊपर भी गुरु की कृपा होती है, अब) मैं जब देखता

हूँ, तो हर एक वस्तु उस सब के आदि (-प्रभु का रूप दिखती है), यह गोचर संसार भी वह आप है और सब में व्यापक ज्योति भी आप ही है ॥ ५ ॥

नह किछु जनमै नह किछु मरै । आपन चलितु आप ही करै । आवनु जावनु द्रिसटि अनद्रिसटि । आगिआकारी धारी सभ स्रिसटि । आपे आपि सगल महि आपि । अनिक जुगति रचि थापि उथापि । अबिनासी नाही किछु खंड । धारण धारि रहिओ ब्रहमंड । अलख अभेव पुरख परताप । आपि जपाए त नानक जाप ॥ ६ ॥

न कुछ जन्मता है, न कुछ मरता है; (यह जन्म-मरण का तो) प्रभु आप ही खेल कर रहा है; जन्म, मरण, गोचर, अगोचर— यह सारा संसार प्रभु ने अपने हुक्म में चलनेवाला बना दिया है। सारे जीवों में केवल वह आप ही है, अनेक तरीक़ों से (जगत् को) बना-बना कर नाश भी कर देता है। प्रभु आप अविनाशी है; उसका कुछ नाश नहीं होता, सारे ब्रह्माण्ड की रचना भी आप ही रच रहा है। उस व्यापक प्रभु के प्रताप का भेद नहीं पाया जा सकता, वर्णन नहीं हो सकता; हे नानक ! यदि वह आप अपना जाप कराए तो ही जीव जाप करते हैं ॥ ६ ॥

जिन प्रभु जाता सु सोभावंत । सगल संसारु उधरै तिन मंत । प्रभ के सेवक सगल उधारन । प्रभ के सेवक दूख बिसारन । आपे मेलि लए किरपाल । गुर का सबदु जपि भए निहाल । उन की सेवा सोई लागै । जिस नो क्रिपा करहि बड भागै । नामु जपत पावहि बिस्रामु । नानक तिन पुरख कउ ऊतम करि मानु ॥ ७ ॥

जिन व्यक्तियों ने प्रभु को पहचान लिया, वे शोभा वाले हो गए; सारा जगत् उनके उपदेशों के कारण (विकारों से) बचता है। हरि के भक्त सब (जीवों) को सहायता देने योग्य हैं, (सब के) दुःख दूर करने में समर्थ होते हैं। (सेवकों को) कृपालु प्रभु आप (अपने साथ) मिला लेता है, सतिगुरु का शब्द जप कर वह (पुष्प के समान) खिल जाते हैं। वही मनुष्य उन (सेवकों) की सेवा में लगता है, जिस भाग्यशाली पर, (हे प्रभु !) तू आप कृपा करता है। (वह सेवक) नाम जप कर स्थिर अवस्था प्राप्त करते हैं; हे नानक ! उन मनुष्यों को महान् व्यक्ति समझो ॥ ७ ॥

जो किछु करै सु प्रभ कै रंगि। सदा सदा बसै हरि संगि। सहज सुभाइ होवै सो होइ। करणैहारु पछाणै सोइ। प्रभ का कीआ जन मीठ लगाना। जैसा सा तैसा द्रिसटाना। जिस ते उपजे तिसु माहि समाए। ओइ सुख निधान उनहू बनि आए। आपस कउ आपि दीनो मानु। नानक प्रभ जनु एको जानु ॥ ८ ॥ १४ ॥

(प्रभु का सेवक) सदा ही प्रभु के दरबार में बसता है और जो कुछ करता है, प्रभु की रज़ा में (रहकर) करता है। सहज भाव से जो कुछ होता है, उसे प्रभु को इच्छा जानता है और सब कुछ करनेवाला प्रभु को ही समझता है। (प्रभु के) सेवकों को प्रभु का किया हुआ मीठा लगता है, (क्योंकि) प्रभु जैसा (सर्वव्यापक) है (वैसा ही) उन्हें दृष्टिगोचर होता है। जिस प्रभु से वे सेवक पैदा हुए हैं, उसी में लीन रहते हैं, वे सुखों का ख़ज़ाना हो जाते हैं और यह दर्जा अर्थात् प्रतिष्ठा-भाव उन्हें ही शोभायमान लगता है। हे नानक! प्रभु तथा प्रभु के सेवक को एक समान समझो, (सेवक को सम्मान देकर) प्रभु अपने आपको सम्मान देता है ॥८॥१४॥

॥ सलोकु ॥ सरब कला भरपूर प्रभ बिरथा जाननहार। जा कै सिमरनि उधरीऐ नानक तिसु बलिहार ॥ १ ॥ ॥ असटपदी ॥ टूटी गाढनहार गुोपाल। सरब जीआ आपे प्रतिपाल। सगल की चिंता जिसु मन माहि। तिस ते बिरथा कोई नाहि। रे मन मेरे सदा हरि जापि। अबिनासी प्रभु आपे आपि। आपन कीआ कछू न होइ। जे सउ प्रानी लोचै कोइ। तिसु बिनु नाही तेरै किछु काम। गति नानक जपि एक हरिनाम ॥ १ ॥

॥सलोकु॥ प्रभु तमाम शक्तियों से पूर्ण है, (सब जीवों के) दुःख-दर्द जानता है। हे नानक! जिसके स्मरण से (विकारों से) बचा जा सकता है, उस पर (सदा) बलिहारी जाएँ ॥ १ ॥ असटपदी ॥ सारे जीवों की देखभाल करनेवाला गोपाल प्रभु आप है, (जीवों के दिल की) टूटी हुई (तार) को (अपने साथ) जोड़नेवाला (भी आप) है। जिस प्रभु को अपने मन में सब (के रोज़गार) की फ़िक्र है, उस (के द्वार) से कोई जीव निराश नहीं (लौटता)। हे मेरे मन! सदा प्रभु को जप, वह नाश-रहित है और अपने जैसा आप ही है। यदि कोई प्राणी सौ बार इच्छा करे तो भी प्राणी का अपने यत्न से किया हुआ काम पूर्ण नहीं होता। हे नानक!

एक प्रभु का नाम जप तो गति होगी, उस प्रभु के बिना दूसरी कोई चीज़ तेरे (असली) काम की नहीं है ।। १ ।।

रूपवंतु होइ नाही मोहै । प्रभ की जोति सगल घट सोहै । धनवंता होइ किआ को गरबै । जा सभु किछु तिस का दीआ दरबै । अति सूरा जे कोऊ कहावै । प्रभ की कला बिना कह धावै । जे को होइ बहै दातारु । तिसु देनहारु जानै गावारु । जिसु गुर प्रसादि तूटै हउ रोगु । नानक सो जनु सदा अरोगु ।। २ ।।

रूपवाला होकर कोई प्राणी (रूप का) अभिमान न करे, (क्योंकि) समस्त शरीरों में प्रभु की ही ज्योति शोभित होती है । धनवान होकर कोई मनुष्य क्या अहंकार करे; जब सारा धन उस प्रभु का ही दिया हुआ है ? यदि कोई मनुष्य (अपने को) अत्यन्त शूरवीर कहलवाए (तो तनिक-मात्र यह तो सोचो कि) प्रभु की (दी हुई) ताक़त के बिना कहाँ दौड़ सकता है । यदि कोई व्यक्ति (धनाढ्य होकर) अपने को दाता समझ बैठे तो वह मूर्ख उस प्रभु को पहचाने जो (सब जीवों को) देने योग्य है । हे नानक ! वह मनुष्य सदा स्वस्थ है, जिसका अहंकार-रूपी रोग गुरु की कृपा से दूर होता है ।। २ ।।

जिउ मंदर कउ थामै थंमनु । तिउ गुर का सबदु मनहि असथंमनु । जिउ पाखाणु नाव चड़ि तरै । प्राणी गुर चरण लगतु निसतरै । जिउ अंधकार दीपक परगासु । गुरदरसनु देखि मनि होइ बिगासु । जिउ महा उदिआन महि मारगु पावै । तिउ साधू संगि मिलि जोति प्रगटावै । तिन संतन की बाछउ धूरि । नानक की हरि लोचा पूरि ।। ३ ।।

जैसे घर (की छत) को थमला सहारा देता है, वैसे गुरु का शब्द मन का सहारा है । जैसे पत्थर नाव में चढ़कर (नदी आदि से) पार उतर जाता है, वैसे ही गुरु के चरणों में पड़ा हुआ व्यक्ति (संसार-समुद्र से) पार उतर जाता है । जैसे दीपक अंधेरा (दूर करके) प्रकाश कर देता है, वैसे ही गुरु का दर्शन करके मन में आनन्द होता है । जैसे लम्बे-चौड़े जंगल में (खोए हुए को) मार्ग मिल जाए, वैसे ही सत्संगति में बैठने से (अकालपुरुष) की ज्योति (मनुष्य के भीतर) प्रगट होती है । मैं उन संतों के चरणों की धूलि माँगता हूँ । हे प्रभु ! नानक की (यह) अभिलाषा पूर्ण कर ।। ३ ।।

मन मूरख काहे बिललाईऐ। पुरब लिखे का लिखिआ पाईऐ। दूख सूख प्रभ देवनहारु। अवर तिआगि तू तिसहि चितारु। जो कछु करै सोई सुखु मानु। भूला काहे फिरहि अजान। कउन बसतु आई तेरै संग। लपटि रहिओ रसि लोभी पतंग। राम नाम जपि हिरदे माहि। नानक पति सेती घरि जाहि ॥ ४ ॥

हे मूर्ख मन ! (दुःख पाने पर) क्यों रोता है ? पिछले बोए हुए का फल खाना पड़ता है। दुःख-सुख देनेवाला प्रभु आप है, (इसलिए) दूसरे (आसरे) छोड़कर तू उसी को याद कर। हे मूर्ख ! क्यों भूला फिरता है ? जो कुछ प्रभु करता है, उसी को सुख समझ। हे लोभी पतंग ! तू माया में मस्त है, बता, कौन सी चीज़ तेरे साथ आई थी। हे नानक ! हृदय में प्रभु का नाम जप, (इस प्रकार) प्रतिष्ठा के साथ (परलोक वाले) घर में जायगा ॥ ४ ॥

जिसु वखर कउ लैनि तू आइआ। राम नामु संतन घरि पाइआ। तजि अभिमानु लेहु मन मोलि। राम नामु हिरदे महि तोलि। लादि खेप संतह संगि चालु। अवर तिआगि बिखिआ जंजाल। धंनि धंनि कहै सभु कोइ। मुख ऊजल हरि दरगह सोइ। इहु वापारु विरला वापारै। नानक ता कै सद बलिहारै ॥ ५ ॥

(हे भाई !) जो सौदा ख़रीदने के लिए तू (जगत् में) आया है, वह राम-नाम(-रूपी सौदा) संतों के घर मिलता है। (इसलिए) अहंकार छोड़ दे और मन के बदले में (यह सामान) ख़रीद ले, और प्रभु का नाम हृदय में परख। संतों के संग चल और राम-नाम का सौदा लाद ले, माया के दूसरे धंधे छोड़ दे, (यदि यह उद्यम करेगा तो) हरेक जीव तुझे सराहेगा, और प्रभु के दरबार में भी तेरा मुख उज्ज्वल होगा। (पर) यह व्यापार कोई विरला व्यक्ति करता है। हे नानक ! ऐसे (व्यापारी) पर सदा बलिहारी जाएँ ॥ ५ ॥

चरन साध के धोइ धोइ पीउ। अरपि साध कउ अपना जीउ। साध की धूरि करहु इसनानु। साध ऊपरि जाईऐ कुरबानु। साध सेवा वडभागी पाईऐ। साध संगि हरि कीरतनु गाईऐ। अनिक बिघन ते साधू राखै। हरिगुन गाइ अंम्रित

रसु चाखै । ओट गही संतह दरि आइआ । सरब सूख नानक तिह पाइआ ।। ६ ।।

(हे भाई !) साधु पुरुषों के पैर धो-धोकर (नाम-जल) पी, साधु पुरुषों पर अपनी अत्मा भी बलिहारी कर, गुरमुख मनुष्य के पैरों की धूल में स्नान कर, गुरमुख पर बलिहारी जाओ । संत की सेवा बड़े भाग्यों से मिलती है, संत की संगति में ही प्रभु की गुणस्तुति की जा सकती है । संत अनेकों कठिनाइयों से बचा लेता है, संत प्रभु के गुण गाकर नाम-अमृत का आस्वादन प्राप्त करता है, (जिस मनुष्य ने) संतों का आसरा पकड़ा है, जो संतों के दरवाजे पर आ गिरा है, उसने, हे नानक ! सारे सुख पा लिए हैं ।। ६ ।।

मिरतक कउ जीवालन हार । भूखे कउ देवत अधार । सरब निधान जा की द्रिसटी माहि । पुरब लिखे का लहणा पाहि । सभु किछु तिस का ओहु करनै जोगु । तिसु बिनु दूसर होआ न होगु । जपि जन सदा सदा दिनु रैणी । सभ ते ऊच निरमल इह करणी । करि किरपा जिस कउ नामु दीआ । नानक सो जनु निरमलु थीआ ।। ७ ।।

(प्रभु) मृतक व्यक्ति को जिलाने योग्य है, भूखे को भी आसरा देता है । सारे ख़ज़ाने उस मालिक की नज़र में हैं, (पर जीव) अपने पिछले किए कर्मों का फल भोगते हैं । सब कुछ उस प्रभु का ही है और वही सब कुछ करने के योग्य है; उससे बिना कोई दूसरा नहीं है और न होवेगा । हे जन ! सदा ही दिन-रात प्रभु को याद कर, दूसरे सब कामों से यह काम ऊँचा और पवित्र है । कृपा करके जिस मनुष्य को नाम देता है, हे नानक ! वह मनुष्य पवित्र हो जाता है ।। ७ ।।

जा कै मनि गुर की परतीति । तिसु जन आवै हरि प्रभु चीति । भगतु भगतु सुनीऐ तिहु लोइ । जाकै हिरदै एको होइ । सचु करणी सचु ता की रहत । सचु हिरदै सति मुखि कहत । साची द्रिसटि साचा आकारु । सचु वरतै साचा पासारु । पारब्रहमु जिनि सचु करि जाता । नानक सो जनु सचि समाता ।। ८ ।। १५ ।।

जिस मनुष्य के मन में सतिगुरु की श्रद्धा बन गई है, उसके चित्त में प्रभु टिक जाता है । वह मनुष्य सारे जगत् में भक्त कहलाता है, जिसके हृदय में एक प्रभु बसता है, उसकी व्यावहारिक ज़िन्दगी तथा ज़िन्दगी के नियम

समान हैं, सच्चा प्रभु उसके हृदय में है, और, प्रभु का नाम ही वह मुँह से बोलता है; उस मनुष्य की नज़र सच्चे प्रभु के रंग में रँगी हुई है, (इसलिए) सारा दृश्यमान जगत् (उसे) प्रभु का रूप दिखता है, प्रभु ही (सर्वत्र) मौजूद (दिखता है, और) प्रभु का ही (सारा) प्रसार दिखता है। जिस मनुष्य ने अकालपुरुष को सत्यस्वरूप समझा है, हे नानक ! वह मनुष्य सदा उस स्थिर रहनेवाले में लीन हो जाता है ॥ ८ ॥ १५ ॥

॥ सलोकु ॥ रूपु न रेख न रंगु किछु त्रिहु गुण ते प्रभ भिंन। तिसहि बुझाए नानका जिसु होवै सुप्रसंन ॥ १ ॥ ॥ असटपदी ॥ अबिनासी प्रभु मन महि राखु। मानुख की तू प्रीति तिआगु। तिस ते परै नाही किछु कोइ। सरब निरंतरि एको सोइ। आपे बीना आपे दाना। गहिर गंभीरु गहीरु सुजाना। पारब्रहम परमेसुर गोबिंद। क्रिपा निधान दइआल बखसंद। साध तेरे की चरनी पाउ। नानक कै मनि इहु अनराउ ॥ १ ॥

॥ सलोकु ॥ प्रभु का न कोई रूप है, न चिह्न-चक्र, और न कोई रंग। प्रभु माया के तीन गुणों से बेदाग़ है। हे नानक ! प्रभु अपने आप उस मनुष्य को समझाता है, जिस पर आप प्रसन्न होता है ॥ १ ॥ ॥ असटपदी ॥ (हे भाई !) अपने मन में अकालपुरुष को पिरोए रख और मनुष्य का प्यार (मोह) छोड़ दे। सब जीवों के भीतर एक अकालपुरुष ही व्यापक है, उससे बाहर कोई चीज़ नहीं। प्रभु बड़ा गम्भीर है और गहरा है, बुद्धिमान है, वही आप ही (जीवों के दिल की) पहचाननेवाला तथा जाननेवाला है। हे पारब्रह्म प्रभु ! सर्वोपरि मालिक ! हे जीवों के पालक ! दया के भण्डार, दया के घर, क्षमाशील ! नानक के मन में यह इच्छा है कि मैं साधु पुरुषों के चरण पड़ूँ ॥ १ ॥

मनसा पूरन सरना जोग। जो करि पाइआ सोई होगु। हरन भरन जा का नेत्र फोरु। तिस का मंत्रु न जानै होरु। अनद रूप मंगल सद जा कै। सरब थोक सुनीअहि घरि ता कै। राज महि राजु जोग महि जोगी। तप महि तपीसरु ग्रिहसत महि भोगी। धिआइ धिआइ भगतह सुखु पाइआ। नानक तिसु पुरख का किनै अंतु न पाइआ ॥ २ ॥

प्रभु (जीवों के) मन के स्वप्न पूर्ण करने तथा शरणागतों की सहायता करने के समर्थ है। जो उसने (जीवों के) हाथ पर लिख दिया है, वही

होता है। जिस प्रभु का पलक झपकने के बराबर का समय (जगत् के) पालने तथा नाश के लिए (काफ़ी) है, उसका रहस्य कोई जीव नहीं जानता। जिस प्रभु के घर में सदा आनन्द तथा ख़ुशियाँ हैं, (जगत् के) सारे पदार्थ उसके घर में (मौजूद) सुने जाते हैं। राजाओं में प्रभु आप ही राजा है, जोगियों में जोगी है, तपस्वियों में आप ही बड़ा तपस्वी है और गृहस्थियों में भी आप ही गृहस्थी है। भक्तजनों ने (उस प्रभु को) स्मरण कर सुख प्राप्त कर लिया है। हे नानक ! किसी जीव ने उस अकालपुरुष का अन्त नहीं पाया ॥ २ ॥

जाकी लीला की मिति नाहि। सगल देव हारे अवगाहि। पिता का जनमु कि जानै पूतु। सगल परोई अपुनै सूति। सुमति गिआनु धिआनु जिन देइ। जन दास नामु धिआवहि सेइ। तिहु गुण महि जा कउ भरमाए। जनमि मरै फिरि आवै जाए। ऊच नीच तिस के असथान। जैसा जनावै तैसा नानक जान ॥ ३ ॥

जिस प्रभु की (जगत्-रूपी) खेल का लेखा कोई नहीं लगा सकता, उसे खोज-खोजकर देवगण (भी) थक गए हैं; (क्योंकि) पिता का जन्म, पुत्र क्या जानता है ? (जैसे माया के मनके) धागे में पिरोए हुए होते हैं, (वैसे) सारी रचना प्रभु ने अपने (हुक्म-रूपी) धागे में पिरो रखी है। जिन व्यक्तियों को प्रभु भली बुद्धि समझकर सुरति जोड़ने की देन देता है, वही सेवक तथा दास उसका नाम-स्मरण करते हैं, (पर) जिन्हें (माया के) तीन गुणों में घुमाता है, वे जन्मते-मरते हैं और बार-बार आते-जाते रहते हैं। सद्बुद्धि वाले उच्च व्यक्तियों के हृदय, त्रिगुणात्मक नीच व्यक्तियों के हृदय— ये सब उस प्रभु के अपने ही ठिकाने हैं। हे नानक ! जैसी समझ वह देता है, वैसी ही समझ वाला जीव बन जाता है ॥ ३ ॥

नाना रूप नाना जा के रंग। नाना भेख करहि इक रंग। नाना बिधि कीनो बिसथारु। प्रभु अबिनासी एकंकारु। नाना चलित करे खिन माहि। पूरि रहिओ पूरनु सभ ठाइ। नाना बिधि करि बनत बनाई। अपनी कीमति आपे पाई। सभ घट तिस के सभ तिस के ठाउ। जपि जपि जीवै नानक हरि नाउ ॥ ४ ॥

प्रभु अविनाशी है, और सर्वत्र एक आप ही आप है, उसने जगत् का प्रसार कई तरीक़ों से किया है। कई तमाशे प्रभु पलमात्र में कर देता है,

वह पूर्णपुरुष सर्वत्र व्यापक है। जगत् की रचना प्रभु ने कई तरीक़ों से रची है, अपनी (महानता का) मूल्य वह आप ही जानता है। सारे शरीर उस प्रभु के ही हैं; सब स्थान उसके हैं। हे नानक! (उसका दास) उसका नाम जप-जप कर जीता है ॥ ४ ॥

नाम के धारे सगले जंत। नाम के धारे खंड ब्रहमंड। नाम के धारे सिम्रिति बेद पुरान। नाम के धारे सुनन गिआन धिआन। नाम के धारे आगास पाताल। नाम के धारे सगल आकार। नाम के धारे पुरीआ सभ भवन। नाम कै संगि उधरे सुनि स्रवन। करि किरपा जिसु आपनै नामि लाए। नानक चउथे पद महि सो जनु गति पाए ॥ ५ ॥

सारे जीव-जन्तु अकालपुरुष के आसरे हैं, जगत् के सारे भाग (हिस्से) भी प्रभु के टिकाए हुए हैं। वेद, पुराण, स्मृतियाँ प्रभु के आधार पर हैं; ज्ञान की बातें सुनना तथा सुरति जोड़ना भी अकालपुरुष के आसरे ही है। सारे आकाश, पाताल प्रभु के सहारे हैं, सारे शरीर ही प्रभु के सहारे हैं। तीनों भुवन और चौदह लोक अकालपुरुष के टिकाए हुए हैं, जीव प्रभु में जुड़कर और उसका नाम कानों से सुनकर विकारों से बचते हैं। जिसे कृपा करके वह अपने नाम में जोड़ता है, हे नानक! वह मनुष्य (माया के प्रभाव से परे) चौथे स्थान में पहुँचकर ऊँची अवस्था प्राप्त करता है ॥ ५ ॥

रूपु सति जा का सति असथानु। पुरखु सति केवल परधानु। करतूति सति सति जा की बाणी। सति पुरख सभ माहि समाणी। सति करमु जा की रचना सति। मूलु सति सति उतपति। सति करणी निरमल निरमली। जिसहि बुझाए तिसहि सभ भली। सति नामु प्रभ का सुखदाई। बिस्वासु सति नानक गुर ते पाई ॥ ६ ॥

जिस प्रभु का रूप और ठिकाना सत्यस्वरूप है, केवल वही सर्वव्यापक प्रभु के सिर पर है। जिस अटल प्रभु की वाणी सब जीवों में व्यापक है, उसके काम भी अटल हैं, जिस प्रभु की रचना पूर्ण है, जो (सब का) मूल (रूप) सदा स्थिर है, जिसकी पैदाइश भी पूर्ण है, उसकी कृपा सदा स्थिर है। प्रभु की महा पवित्र रजा है, जिस जीव को (रजा की) समझ देता है, उसे (वह रजा) पूर्ण तौर पर सुखदायक (लगती) है। प्रभु का सत्यस्वरूप नाम सुखदाता है। हे नानक! (जीव को) यह अटल विश्वास गुरु से मिलता है ॥ ६ ॥

सति बचन साधू उपदेस। सति ते जन जा कै रिदै प्रवेस। सति निरति बूझै जे कोइ। नामु जपत ता की गति होइ। आपि सति कीआ सभु सति। आपे जानै अपनी मिति गति। जिस की स्रिसटि सु करणैहारु। अवर न बूझि करत बीचारु। करते की मिति न जानै कीआ। नानक जो तिसु भावै सो वरतीआ॥ ७॥

गुरु का उपदेश अटल वचन हैं, जिनके हृदय में (इस उपदेश का) प्रवेश होता है, वे भी अटल हो जाते हैं। यदि किसी मनुष्य को सत्यस्वरूप प्रभु के प्रेम की सूझ आ जाए तो नाम जपकर वह उच्च अवस्था प्राप्त कर लेता है। प्रभु आप सत्यस्वरूप है, उसके द्वारा उत्पादित जगत् भी सचमुच अस्तित्व वाला है, प्रभु अपनी मर्यादा आप जानता है। जिस प्रभु का यह जगत् है, वह आप इसे बनानेवाला है, किसी दूसरे को इस जगत् का ख्याल रखनेवाला (भी) न समझो। कर्त्तार (की बुजुर्गी) का अनुमान उसके द्वारा उत्पादित व्यक्ति नहीं लगा सकता। हे नानक! वही कुछ होता है जो उस प्रभु को अच्छा लगता है॥ ७॥

बिसमन बिसम भए बिसमाद। जिनि बूझिआ तिसु आइआ स्वाद। प्रभ कै रंगि राचि जन रहे। गुर कै बचनि पदारथ लहे। ओइ दाते दुख काटनहार। जा कै संगि तरै संसार। जन का सेवकु सो वडभागी। जन कै संगि एक लिव लागी। गुन गोबिद कीरतनु जनु गावै। गुरप्रसादि नानक फलु पावै॥ ८॥ १६॥

जिस-जिस मनुष्य ने (प्रभु की बुजुर्गी) को समझा है, उसी-उसी को आनन्द मिला है, (प्रभु की महानता से) वे बड़े हैरान तथा आश्चर्य-चकित होते हैं। प्रभु के दास उसके प्रेम में मस्त रहते हैं, और सतिगुरु के उपदेश के प्रभाव से (नाम-) पदार्थ प्राप्त कर लेते हैं। वे (सेवक स्वयं) नाम की देन बाँटते हैं, और (जीवों के) दुःख काटते हैं, उनकी संगति से जगत् के जीव (संसार-समुद्र से) पार उतर जाते हैं। ऐसे सेवकों का जो सेवक बनता है, वह भाग्यशाली होता है, उनकी संगति में रहने से अकालपुरुष के साथ सुरति जुड़ती है, (प्रभु का) सेवक प्रभु के गुण गाता है और गुणस्तुति करता है। हे नानक! सतिगुरु की कृपा से वह (प्रभु का नाम-रूपी) फल पा लेता है॥ ८॥ १६॥

॥ सलोकु॥ आदि सचु जुगादि सचु। है भि सचु नानक होसी भि सचु॥ १॥ असटपदी॥ चरन सति सति परसनहार।

पूजा सति सति सेवदार। दरसनु सति सति पेखनहार। नामु सति सति धिआवनहार। आपि सति सति सभ धारी। आपे गुण आपे गुणकारी। सबदु सति सति प्रभु बकता। सुरति सति सति जसु सुनता। बुझनहार कउ सति सभ होइ। नानक सति सति प्रभु सोइ॥ १॥

प्रभु का आदिकाल से ही अस्तित्व है, युगों के शुरू से मौजूद है, इस वक्त भी मौजूद है, हे नानक! भविष्य में भी सदा स्थिर रहेगा॥ १॥ ॥ असटपदी॥ प्रभु के चरण सदा स्थिर हैं, चरणों को छूनेवाले सेवक भी अटल हो जाते हैं; प्रभु की पूजा एक सदा निभानेवाला काम है, (इसलिए) पूजा करनेवाले सदा के लिए अटल हो जाते हैं। प्रभु का दर्शन सत्य-(कर्म) है, दर्शन करनेवाले भी जन्म-मरण से रहित हो जाते हैं; प्रभु का नाम सदा अटल है, उसके स्मरण करनेवाले भी स्थिर हैं। प्रभु आप सदा अस्तित्ववान है; प्रभु आप गुण (-रूप) है, आप ही गुण पैदा करनेवाला है। (प्रभु की गुणस्तुति का) शब्द सदा स्थिर है, शब्द को उच्चरित करनेवाला भी स्थिर हो जाता है, प्रभु में सुरति जोड़नी सत्य-(-कर्म) है, प्रभु का यश सुननेवाला भी सत्य है, (प्रभु का अस्तित्व) समझनेवाले को उसके द्वारा बनाया जगत् भी अस्तित्व वाला दिखता है; हे नानक! प्रभु आप सदा स्थिर रहनेवाला है॥ १॥

सति सरूपु रिदै जिनि मानिआ। करन करावन तिनि मूलु पछानिआ। जा कै रिदै बिस्वासु प्रभ आइआ। ततु गिआनु तिसु मनि प्रगटाइआ। भै ते निरभउ होइ बसाना। जिस ते उपजिआ तिसु माहि समाना। बसतु माहि ले बसतु गडाई। ता कउ भिंन न कहना जाई। बूझै बूझनहारु बिबेक। नाराइन मिले नानक एक॥ २॥

जिस मनुष्य ने अटल प्रभु की सुरति को सदा मन में टिकाया है, उसने सब कुछ करनेवाले और करानेवाले (जगत् के) मूल को पहचान लिया है। जिस मनुष्य के हृदय में प्रभु (के अस्तित्व) का विश्वास हो गया है, उसके मन में सच्चा ज्ञान प्रगट हो गया है; (वह मनुष्य) (हरेक) भय से (रहित होकर) निडर होकर बसता है; (क्योंकि) वह सदा उस प्रभु में लीन रहता है, जिससे वह पैदा हुआ है; (जैसे) एक चीज़ लेकर (उस प्रकार की) चीज़ मिला दी जाए, (और दोनों में कोई अन्तर नहीं रह जाता, वैसे ही प्रभु-चरणों में लीन) मनुष्य को प्रभु से अलग नहीं कहा जा सकता। (पर) इस विचार को कोई विरला विचारक समझता है।

हे नानक ! जो जीव प्रभु को मिल चुके हैं, वे उसके साथ एक हो गए हैं ॥ २ ॥

ठाकुर का सेवकु आगिआकारी । ठाकुर का सेवकु सदा पूजारी । ठाकुर के सेवक कै मनि परतीति । ठाकुर के सेवक की निरमल रीति । ठाकुर कउ सेवकु जानै संगि । प्रभ का सेवकु नाम कै रंगि । सेवक कउ प्रभ पालनहारा । सेवक की राखै निरंकारा । सो सेवकु जिसु दइआ प्रभु धारै । नानक सो सेवकु सासि सासि समारै ॥ ३ ॥

प्रभु का सेवक उसके हुक्म-अनुसार चलता है और सदा उसकी पूजा करता है । अकालपुरुष के सेवक के मन में (उसके अस्तित्व का) विश्वास रहता है, (इसलिए) उसकी जिन्दगी की सच्ची मर्यादा होती है । सेवक अपने मालिक प्रभु को (अपने साथ) जानता है और उसके नाम की मौज में रहता है । प्रभु अपने सेवक को सदा पालने में समर्थ है और अपने सेवक की (सदा) लाज रखता है, (पर) सेवक वही मनुष्य है, जिस पर प्रभु आप कृपा करता है; हे नानक ! ऐसा सेवक प्रभु को प्रत्येक पल याद रखता है ॥ ३ ॥

अपुने जन का परदा ढाकै । अपने सेवक की सरपर राखै । अपने दास कउ देइ वडाई । अपने सेवक कउ नामु जपाई । अपने सेवक की आपि पति राखै । ता की गति मिति कोइ न लाखै । प्रभ के सेवक कउ को न पहूचै । प्रभ के सेवक ऊच ते ऊचे । जो प्रभि अपनी सेवा लाइआ । नानक सो सेवकु दहदिसि प्रगटाइआ ॥ ४ ॥

प्रभु अपने सेवक का पर्दा रखता है और उसकी प्रतिष्ठा बचाता है । प्रभु अपने सेवक को मान देता है और उसे अपना नाम जपाता है । प्रभु अपने सेवक की प्रतिष्ठा रखता है, उसकी उच्च अवस्था और उसके बड़प्पन का अन्दाज़ा कोई नहीं लगा सकता । कोई मनुष्य प्रभु के सेवक की बराबरी नहीं कर सकता, (क्योंकि) प्रभु के सेवक सर्वोच्च होते हैं, (पर) हे नानक ! वह सेवक सारे जगत् में प्रकट हुआ है, जिसे प्रभु ने आप अपनी सेवा में लगाया है ॥ ४ ॥

नीकी कीरी महि कल राखै । भसम करै लसकर कोटि लाखै । जिस का सासु न काढत आपि । ता कउ राखत दे करि

हाथ । मानस जतन करत बहु भाति । तिस के करतब बिरथे जाति । मारै न राखै अवरु न कोइ । सरब जीआ का राखा सोइ । काहे सोच करहि रे प्राणी । जपि नानक प्रभ अलख विडाणी ।। ५ ।।

(जिस) छोटी सी चींटी में (प्रभु) शक्ति भरता है, (वह चींटी) लाखों, करोड़ों लश्करों को राख कर देती है, जिस जीव का श्वास प्रभु आप नहीं निकालता, उसे हाथ देकर रखता है। मनुष्य कई क़िस्मों के यत्न करता है, (पर यदि प्रभु सहायता न करे तो) उसके काम व्यर्थ जाते हैं। (प्रभु के बिना जीवों को) न कोई मार सकता है, न रख सकता है, (प्रभु जैसा) दूसरा कोई नहीं है; सारे जीवों का रक्षक प्रभु आप है। हे प्राणी ! तू क्यों फ़िक्र करता है ? हे नानक ! अलक्ष्य तथा आश्चर्यजनक प्रभु को स्मरण कर ।। ५ ।।

बारंबार बार प्रभु जपीऐ । पी अंम्रितु इहु मनु तनु ध्रपीऐ । नाम रतनु जिनि गुरमुखि पाइआ । तिसु किछु अवरु नाही द्रिसटाइआ । नामु धनु नामो रूपु रंगु । नामो सुखु हरि नाम का संगु । नाम रसि जो जन त्रिपताने । मन तन नामहि नामि समाने । ऊठत बैठत सोवत नाम । कहु नानक जन कै सद काम ।। ६ ।।

(हे भाई !) बार-बार प्रभु को स्मरण करें, और (नाम-) अमृत पीकर इस मन को तथा शारीरिक इन्द्रियों को तृप्त करें। जिस गुरमुख ने नाम-रूपी रत्न प्राप्त कर लिया है, उसे प्रभु के अतिरिक्त कहीं कुछ नहीं दिखता; नाम (उस गुरमुख का) धन है और प्रभु के नाम का वह सदा संग करता है। जो मनुष्य नाम के आस्वादन में तृप्त हो गए हैं, उनके मन-तन प्रभु-नाम में ही जुड़े रहते हैं। हे नानक ! कह कि उठते-बैठते, सोते हुए (सदा) प्रभु का नाम-स्मरण ही सेवकों का काम होता है ।। ६ ।।

बोलहु जसु जिहबा दिनु राति । प्रभि अपनै जन कीनी दाति । करहि भगति आतम कै चाइ । प्रभ अपने सिउ रहहि समाइ । जो होआ होवत सो जानै । प्रभ अपने का हुकमु पछानै । तिस की महिमा कउन बखानउ । तिस का गुनु कहि एक न जानउ । आठ पहर प्रभ बसहि हजूरे । कहु नानक सेई जन पूरे ।। ७ ।।

(हे भाई !) दिन-रात अपनी जिह्वा से प्रभु के गुण गाओ, गुणस्तुति की यह देन प्रभु ने अपने सेवकों पर ही की है; (सेवक) आन्तरिक उत्साह से भक्ति करते हैं और अपने प्रभु के साथ जुड़े रहते हैं। (सेवक) अपने प्रभु का हुक्म पहचान लेता है, जो कुछ हो रहा है, उसे (ईश्वरेच्छा) जानता है; ऐसे सेवक की मैं कौन सी प्रशंसा करूँ ? मैं उस सेवक का एक गुण व्यक्त करना भी नहीं जानता। हे नानक ! कहो— वे मनुष्य पूर्णता को प्राप्त हैं, जो आठों पहर प्रभु के समीप रहते हैं ॥ ७ ॥

मन मेरे तिन की ओट लेहि। मनु तनु अपना तिन जन देहि। जिनि जनि अपना प्रभू पछाता। सो जनु सरब थोक का दाता। तिस की सरनि सरब सुख पावहि। तिस कै दरसि सभ पाप मिटावहि। अवर सिआनप सगली छाडु। तिसु जन की तू सेवा लागु। आवनु जानु न होवी तेरा। नानक तिसु जन के पूजहु सद पैरा ॥ ८ ॥ १७ ॥

हे मेरे मन ! (जो मनुष्य प्रभु के साहचर्य में रहते हैं) उनकी शरण लो और अपना तन, मन उन पर बलिहारी कर दो। जिस मनुष्य ने अपने प्रभु को पहचान लिया है, वह मनुष्य सारे पदार्थ देने के योग्य हो जाता है, (हे मन !) उसकी शरण लेने पर तू सारे सुख पाएगा, उसके दर्शन करने से तू सारे पाप दूर कर लेगा। दूसरी चतुराई छोड़ दे और उसकी सेवा में जुट जा, हे नानक ! उस संतजन के सदा चरण पूज, तेरा आवागमन समाप्त हो जायगा ॥ ८ ॥ १७ ॥

॥ सलोकु ॥ सति पुरखु जिनि जानिआ सतिगुरु तिस का नाउ। तिस कै संगि सिखु उधरै नानक हरिगुन गाउ ॥ १ ॥ ॥ असटपदी ॥ सतिगुरु सिख की करै प्रतिपाल। सेवक कउ गुरु सदा दइआल। सिख की गुरु दुरमति मलु हिरै। गुर बचनी हरि नामु उचरै। सतिगुरु सिख के बंधन काटै। गुर का सिखु बिकार ते हाटै। सतिगुरु सिख कउ नाम धनु देइ। गुर का सिखु वडभागी हे। सतिगुरु सिख का हलतु पलतु सवारै। नानक सतिगुरु सिख कउ जीअ नालि समारै ॥ १ ॥

॥ सलोकु ॥ जिसने सदा स्थिर तथा व्यापक प्रभु को जान लिया है, उसका नाम सतिगुरु है; (इसलिए) हे नानक ! (तू भी गुरु की संगति में रहकर) अकालपुरुष के गुण गा ॥ १ ॥ असटपदी ॥ सतिगुरु सिक्ख की रक्षा करता है, सतिगुरु अपने सेवक पर कृपा करता है। सतिगुरु अपने

सिक्ख की दुर्बुद्धि-रूपी मैल दूर कर देता है, क्योंकि सिक्ख अपने सतिगुरु से प्राप्त उपदेश के द्वारा प्रभु का नाम-स्मरण करता है, सतिगुरु अपने सिक्ख के (माया के) बन्धन काट देता है (और) गुरु का सिक्ख विकारों से हट जाता है; (क्योंकि) सतिगुरु अपने सिक्ख को प्रभु का नाम-रूपी धन देता है (और इस प्रकार) सतिगुरु का सिक्ख भाग्यशाली बन जाता है। सतिगुरु अपने सिक्ख का लोक-परलोक सँवार देता है। हे नानक ! सतिगुरु अपने सिक्ख को अपनी आत्मा के साथ रखता है ।। १ ।।

गुर कै ग्रिहि सेवकु जो रहै। गुर की आगिआ मन महि सहै। आपस कउ करि कछु न जनावै। हरि हरि नामु रिदै सद धिआवै। मनु बेचै सतिगुर कै पासि। तिसु सेवक के कारज रासि। सेवा करत होइ निहकामी। तिसु कउ होत परापति सुआमी। अपनी क्रिपा जिसु आपि करेइ। नानक सो सेवकु गुर की मति लेइ ॥ २ ॥

जो सेवक (शिक्षा के लिए) गुरु के घर में रहता है और गुरु का हुक्म मन में मानता है, जो अपने आपको बड़ा नहीं जताता, प्रभु का नाम सदा हृदय में स्मरण करता है, जो अपना मन सतिगुरु के समक्ष बेच देता है, उस सेवक के सारे काम पूर्ण हो जाते हैं। जो सेवक (गुरु की) सेवा करता हुआ किसी फल की इच्छा नहीं रखता, उसे मालिक प्रभु मिल जाता है। हे नानक ! वह सेवक सतिगुरु की शिक्षा लेता है, जिस पर (प्रभु) अपनी कृपा करता है ।। २ ।।

बीस बिसवे गुर का मनु मानै। सो सेवकु परमेसुर की गति जानै। सो सतिगुरु जिसु रिदै हरि नाउ। अनिक बार गुर कउ बलि जाउ। सरब निधान जीअ का दाता। आठ पहर पारब्रहम रंगि राता। ब्रहम महि जनु जन महि पारब्रहमु। एकहि आपि नही कछु भरमु। सहस सिआनप लइआ न जाईऐ। नानक ऐसा गुरु वडभागी पाईऐ ॥ ३ ॥

जो सेवक अपने सतिगुरु को अपनी श्रद्धा का पूर्ण तौर पर विश्वास दिलाता है, वह अकालपुरुष की अवस्था को समझ लेता है। सतिगुरु (भी) वह है, जिसके हृदय में प्रभु का नाम रहता है, (मैं ऐसे) गुरु पर कई बार बलिहारी जाता हूँ। (सतिगुरु) सब ख़ज़ानों तथा आत्मिक ज़िन्दगी का देनेवाला है, (क्योंकि) वह आठों प्रहर अकालपुरुष के प्रेम में रँगा रहता है। (प्रभु का) सेवक (सतिगुरु) प्रभु में (जुड़ा रहता है)

और (प्रभु के) सेवक-सतिगुरु में प्रभु (सदा टिका है), गुरु तथा प्रभु एकरूप हैं, इसमें भ्रम वाली कोई बात नहीं। हे नानक! हज़ारों चतुराइयों से ऐसा गुरु नहीं मिलता, बड़े भाग्यों से मिलता है ॥ ३ ॥

सफल दरसनु पेखत पुनीत। परसत चरन गति निरमल रीति। भेटत संगि राम गुन रवे। पारब्रहम की दरगह गवे। सुनि करि बचन करन आघाने। मनि संतोखु आतम पतीआने। पूरा गुरु अख्यओ जा का मंत्र। अंम्रित द्रिसटि पेखै होइ संत। गुण बिअंत कीमति नही पाइ। नानक जिसु भावै तिसु लए मिलाइ ॥ ४ ॥

गुरु का दर्शन (सारे) फल देनेवाला है, दर्शन करने से पवित्र हो जाता है, गुरु के चरण छूने से उच्च अवस्था तथा पवित्र आचरण हो जाता है। गुरु की संगति में रहने से प्रभु के गुण गाए जा सकते हैं और अकालपुरुष के दरबार में पहुँच हो जाती है। गुरु के वचन सुनकर कान तृप्त हो जाते हैं, मन में सन्तोष आ जाता है और आत्मा विश्वस्थ हो जाता है। सतिगुरु पूर्णपुरुष है, उसका उपदेश भी सदा के लिए अटल है, (वह जिस ओर) अमर करनेवाली दृष्टि से देखता है, वही संत हो जाता है। सतिगुरु के गुण अनन्त हैं, मूल्यांकन नहीं हो सकता। हे नानक! जो जीव (प्रभु को) अच्छा लगता है, उसे वह गुरु से मिलाता है ॥ ४ ॥

जिहबा एक उसतति अनेक। सति पुरख पूरन बिबेक। काहू बोल न पहुचत प्रानी। अगम अगोचर प्रभ निरबानी। निराहार निरवैर सुखदाई। ता की कीमति किनै न पाई। अनिक भगत बंदन नित करहि। चरन कमल हिरदै सिमरहि। सद बलिहारी सतिगुर अपने। नानक जिसु प्रसादि ऐसा प्रभु जपने ॥ ५ ॥

(मनुष्य की) जिह्वा एक है, पर पूर्णपुरुष वाले सत्यस्वरूप व्यापक प्रभु के अनेक गुण हैं, मनुष्य किसी बोल द्वारा (प्रभु के गुणों तक) पहुँच नहीं सकता, प्रभु पहुँच से परे है, वासना-रहित है और मनुष्य की शारीरिक इन्द्रियों की उस तक पहुँच नहीं। अकालपुरुष को किसी ख़ुराक की आवश्यकता नहीं, प्रभु वैर-रहित है, (बल्कि सब को) सुख देनेवाला है, कोई जीव उसका मूल्यांकन नहीं कर सका। अनेकों भक्त सदा (प्रभु को) नमस्कार करते हैं, और उसके कमलों जैसे (सुन्दर) चरणों को अपने हृदय में स्मरण करते हैं। हे नानक! (कह—) जिस गुरु की कृपा से ऐसे प्रभु को जपा जा सकता है, मैं अपने उस गुरु पर सदा बलिहारी हूँ ॥ ५ ॥

इहु हरि रसु पावै जनु कोइ। अंम्रितु पीवै अमरु सो होइ। उसु पुरख का नाही कदे बिनास। जा कै मनि प्रगटे गुन तास। आठ पहर हरि का नामु लेइ। सचु उपदेसु सेवक कउ देइ। मोह माइआ कै संगि न लेपु। मन महि राखै हरि हरि एकु। अंधकार दीपक परगासे। नानक भरम मोह दुख तह ते नासे ॥ ६ ॥

कोई विरला मनुष्य प्रभु के नाम का आनन्द प्राप्त करता है, (और जो जानता है) वह नाम-अमृत पीता है और अमर हो जाता है। जिसके मन में गुणों के भण्डार प्रभु का प्रकाश होता है, उसका कभी नाश नहीं होता। (सतिगुरु) आठों प्रहर प्रभु का नाम-स्मरण करता है, और अपने सेवक को भी यही सच्चा उपदेश देता है। माया के मोह के साथ उसका कभी मेल नहीं होता, वह सदा अपने मन में एक प्रभु को टिकाता है। हे नानक! (जिसके भीतर से) (नाम-रूपी) दीपक के साथ (अज्ञानता का) अँधेरा (हटकर) प्रकाश हो जाता है, उसके भ्रम तथा मोह के दुःख दूर हो जाते हैं ॥ ६ ॥

तपति माहि ठाढि वरताई। अनदु भइआ दुख नाठे भाई। जनम मरन के मिटे अंदेसे। साधू के पूरन उपदेसे। भउ चूका निरभउ होइ बसे। सगल बिआधि मन ते खै नसे। जिस का सा तिनि किरपा धारी। साध संगि जपि नामु मुरारी। थिति पाई चूके भ्रम गवन। सुनि नानक हरि हरि जसु स्रवन ॥ ७ ॥

हे भाई! गुरु के उपदेश द्वारा (विकारों की) अग्नि में (प्रभु ने हमारे भीतर) शीतलता प्रविष्ठ करा दी है, सुख ही सुख हो गया है, दुःख नष्ट हो गए हैं और जन्म-मरण के (चक्र में पड़ने के) भय, फ़िक्र आदि मिट गए हैं। (हमारा) भय समाप्त हो गया है, अब निडर बसते हैं, सारे रोग नष्ट होकर मन से विस्मृत हो गए हैं। जिस गुरु के बने थे, उसने (हम पर) कृपा की है; सत्संग में प्रभु का नाम जपा कर, और हे नानक! प्रभु का यश कानों से सुनकर (हमने) शान्ति प्राप्त कर ली है और (हमारे) भ्रम तथा दुविधाएँ समाप्त हो गई हैं ॥ ७ ॥

निरगुनु आपि सरगुनु भी ओही। कलाधारि जिनि सगली मोही। अपने चरित प्रभि आपि बनाए। अपुनी कीमति

आपे पाए। हरि बिनु दूजा नाही कोइ। सरब निरंतरि एको सोइ। ओति पोति रविआ रूप रंग। भए प्रगास साध कै संग। रचि रचना अपनी कल धारी। अनिक बार नानक बलिहारी ॥ ८ ॥ १८ ॥

जिस प्रभु ने अपनी शक्ति स्थिर करके जगत् को मोहित कर लिया है, वह आप माया के तीनों गुणों से अलग है, त्रिगुणात्मक संसार का रूप भी आप ही है। प्रभु ने अपने खेल-तमाशे आप ही बनाए हैं, अपनी बुज़ुर्गी का मूल्यांकन भी आप ही करता है। प्रभु के अतिरिक्त (उस जैसा) दूसरा कोई नहीं है, सब के भीतर प्रभु आप ही (मौजूद) है। ताने-बाने के समान सारे रूपों तथा रंगों में व्याप्त है; यह प्रकाश सतिगुरु की संगति में फैलता है। सृष्टि रच कर प्रभु ने अपनी सत्ता (इस सृष्टि में) टिकाई है। हे नानक! (कह—) मैं कई बार (ऐसे प्रभु पर) बलिहारी हूँ ॥ ८ ॥ १८ ॥

॥ सलोकु ॥ साथि न चालै बिनु भजन बिखिआ सगली छारु। हरि हरि नामु कमावना नानक इहु धनु सारु ॥ १ ॥ ॥ असटपदी ॥ संत जना मिलि करहु बीचारु। एकु सिमरि नाम आधारु। अवरि उपाव सभि मीत बिसारहु। चरन कमल रिद महि उरिधारहु। करन कारन सो प्रभु समरथु। द्रिड़ु करि गहहु नामु हरि वथु। इहु धनु संचहु होवहु भगवंत। संत जना का निरमल मंत। एक आस राखहु मन माहि। सरब रोग नानक मिटि जाहि ॥ १ ॥

(प्रभु के) भजन के बिना (दूसरी कोई वस्तु मनुष्य के) साथ नहीं जाती। सारी माया राख के समान है। हे नानक! अकालपुरुष का नाम (स्मरण) की कमाई करना ही (सबसे) अच्छा धन है ॥ १ ॥ ॥ असटपदी ॥ संतों के साथ मिलकर (प्रभु के गुणों का) विचार करो, एक प्रभु को स्मरण करो और नाम का आसरा (लो)। हे मित्र! दूसरे सारे आसरे छोड़ दो और प्रभु के कमल-चरण हृदय में टिकाओ। वह प्रभु सब कुछ करने तथा कराने की सामर्थ्य रखता है, उस प्रभु का नाम-रूपी (सुन्दर) पदार्थ पक्का करके सँभाल लो। (हे भाई!) (नाम-रूप) यह धन एकत्रित करो और भाग्यशाली बनो, संतों का यही पवित्र उपदेश है। अपने मन में एक (प्रभु की) आस रखो, हे नानक! (इस प्रकार) सारे रोग मिट जाएंगे ॥ १ ॥

जिसु धन कउ चारि कुंट उठि धावहि। सो धनु हरि सेवा ते पावहि। जिसु सुख कउ नित बाछहि मीत। सो सुखु साधू संगि परीति। जिसु सोभा कउ करहि भली करनी। सा सोभा भजु हरि की सरनी। अनिक उपावी रोगु न जाइ। रोगु मिटै हरि अवखधु लाइ। सरब निधान महि हरिनामु निधानु। जपि नानक दरगहि परवानु ॥ २ ॥

(हे मित्र !) जिस धन के लिए (तू) चारों ओर उठ दौड़ता है, वह धन तू प्रभु की सेवा से लगा लेगा। हे मित्र ! जिस सुख की तू सदा इच्छा करता है, वह सुख संतों की संगति में प्यार करने से (मिलता है)। जिस शोभा की खातिर तू नेक कमाई करता है, उस शोभा के लिए तू अकालपुरुष की शरण ले। जो (अहंकार का) रोग अनेक कोशिशों से दूर नहीं होता, वह रोग प्रभु की नाम-रूपी औषधि प्रयोग करने से मिट जाता है। सारे (लौकिक) ख़ज़ानों में प्रभु का नाम (श्रेष्ठ) ख़ज़ाना है। हे नानक ! (नाम) जप, प्रभु के दरबार में स्वीकृत (सत्कृत) होगा ॥ २॥

मनु परबोधहु हरि कै नाइ। दह दिसि धावत आवै ठाइ। ता कउ बिघनु न लागै कोइ। जा कै रिदै बसै हरि सोइ। कलि ताती ठांढा हरि नाउ। सिमरि सिमरि सदा सुख पाउ। भउ बिनसै पूरन होइ आस। भगति भाइ आतम परगास। तितु घरि जाइ बसै अबिनासी। कहु नानक काटी जम फासी ॥ ३ ॥

(हे भाई ! अपने) मन को प्रभु के नाम से जगाओ, (नाम के प्रभाव से) दसों दिशाओं में दौड़ता (यह मन) ठिकाने पर आ जाता है। उस मनुष्य को कोई कठिनाई स्पर्श नहीं करती, जिसके हृदय में वह प्रभु रहता है। कलियुग गर्म (अग्नि) है, प्रभु का नाम शीतल है, उसे सदा स्मरण करो और सुख पाओ; (नाम-स्मरण से) भय समाप्त हो जाता है, और, आशा पूर्ण हो जाती है, (क्योंकि) प्रभु की भक्ति के साथ प्रेम करने से आत्मा चमक उठती है। (जो स्मरण करता है), उसके (हृदय) घर में अविनाशी प्रभु आ बसता है। हे नानक ! कह (कि नाम जपने से) यम की फाँसी काटी जाती है ॥ ३ ॥

ततु बीचारु कहै जनु साचा। जनमि मरै सो काचो काचा। आवागवनु मिटै प्रभ सेव। आपु तिआगि सरनि गुरदेव। इउ रतन जनम का होइ उधारु। हरि हरि सिमरि

प्रान आधारु । अनिक उपाव न छूटनहारे । सिम्रिति सासत बेद बीचारे । हरि की भगति करहु मनु लाइ । मनि बंछत नानक फल पाइ ।। ४ ।।

जो मनुष्य पारब्रह्म की स्तुति-रूपी विचार विचारता है, वह सचमुच मनुष्य है, लेकिन जो पैदा होता (बिल्कुल) मर जाता है, वह बिल्कुल कच्चा है । आपा-भाव छोड़कर, सतिगुरु की शरण लेकर प्रभु का स्मरण करने से जन्म-मरण का चक्र समाप्त हो जाता है; इस प्रकार कीमती मनुष्य-जन्म सफल हो जाता है (इसलिए, हे भाई !) प्रभु को स्मरण कर, (यही) प्राणों का सहारा है । स्मृतियाँ, शास्त्र और वेद विचारकर, अनेक प्रयत्न करने से (आवागमन से) बचा नहीं जा सकता, मन लगाकर केवल प्रभु की ही भक्ति करो । (जो भक्ति करता है), हे नानक ! उसे मनोवांछित फल मिल जाते हैं ।। ४ ।।

संगि न चालसि तेरै धना । तूं किआ लपटावहि मूरख मना । सुत मीत कुटंब अरु बनिता । इन ते कहहु तुम कवन सनाथा । राज रंग माइआ बिसथार । इन ते कहहु कवन छुटकार । असु हसती रथ असवारी । झूठा डंफु झूठु पासारी । जिनि दीए तिसु बुझै न बिगाना । नामु बिसारि नानक पछुताना ।। ५ ।।

हे मूर्ख मन ! धन तेरे साथ नहीं जा सकता, तू क्यों इसे जकड़े बैठा है ? पुत्र, मित्र, परिवार तथा स्त्री— इनमें से बता कौन तेरा साथ देनेवाला है ? माया के आडम्बर, राज्य तथा रंगरेलियाँ— कहो, इनमें से किसके साथ (मोह करने से) सदा के लिए (माया से) मुक्ति मिल सकती है ? घोड़े, हाथी, रथों की सवारी करनी— यह सब झूठा दिखावा है, यह आडम्बर रचने वाला भी नाशमान है । मूर्ख मनुष्य उस प्रभु को नहीं पहचानता जिसने यह सारे पदार्थ दिए हैं, और, नाम को भुलाकर, हे नानक ! (आखिर) पश्चाताप करता है ।। ५ ।।

गुर की मति तूं लेहि इआने । भगति बिना बहु डूबे सिआने । हरि की भगति करहु मन मीत । निरमल होइ तुमारो चीत । चरन कमल राखहु मन माहि । जनम जनम के किलबिख जाहि । आपि जपहु अवरा नामु जपावहु । सुनत कहत रहत गति पावहु । सार भूत सति हरि को नाउ । सहजि सुभाइ नानक गुन गाउ ।। ६ ।।

हे मूर्ख ! सतिगुरु की शिक्षा ले, बड़े चतुर व्यक्ति भी भक्ति के बिना (विकारों में ही) डूब जाते हैं। हे मित्र मन ! प्रभु की भक्ति कर, इस प्रकार तेरी सुरति पवित्र होगी। (हे भाई !) प्रभु के कमल (जैसे सुन्दर) चरण अपने मन में पिरो रख, इस प्रकार कई जन्मों के पाप नष्ट हो जाएंगे; (प्रभु का नाम) तू आप जप, और, दूसरों को जपने के लिए प्रेरित कर, (नाम) सुनते, कहते और पवित्र आचरण से रहते हुए उच्च अवस्था बन जायगी। प्रभु का नाम ही सब पदार्थों से उत्तम पदार्थ है; (इसलिए) हे नानक ! आत्मिक स्थिरता में टिक कर प्रेम के साथ प्रभु के गुण गा ॥ ६ ॥

गुन गावत तेरी उतरसि मैलु। बिनसि जाइ हउमै बिखु फैलु। होहि अचिंतु बसै सुख नालि। सासि ग्रासि हरि नामु समालि। छाडि सिआनप सगली मना। साध संगि पावहि सचु धना। हरि पूंजी संचि करहु बिउहारु। ईहा सुखु दरगह जैकारु। सरब निरंतरि एको देखु। कहु नानक जा कै मसतकि लेखु ॥ ७ ॥

(हे भाई !) प्रभु के गुण गाते हुए तेरी (विकारों की) मैल उतर जायगी और अहंकार-रूपी विष का प्रसार भी मिट जायगा। प्रत्येक पल प्रभु के नाम को याद कर, बेफ़िक्र हो जायगा तथा सुखी जीवन व्यतीत होगा। हे मन ! सारी चतुराई छोड़ दे, सदा साथ निभनेवाला धन, सत्संग में मिलेगा। प्रभु के नाम की राशि एकत्रित कर, यही व्यापार कर। इस जीवन में सुख मिलेगा, और, प्रभु के दरबार में आदर होगा। सब जीवों के भीतर एक अकालपुरुष को ही देख, (पर) हे नानक ! कह— (यह काम वही मनुष्य करता है) जिसके माथे पर भाग्य हैं ॥ ७ ॥

एको जपि एको सालाहि। एकु सिमरि एको मन आहि। एकस के गुन गाउ अनंत। मनि तनि जापि एक भगवंत। एको एकु एकु हरि आपि। पूरन पूरि रहिओ प्रभु बिआपि। अनिक बिसथार एक ते भए। एकु अराधि पराछत गए। मन तन अंतरि एकु प्रभु राता। गुर प्रसादि नानक इकु जाता ॥ ८ ॥ १९ ॥

एक प्रभु को ही जप और एक प्रभु की ही स्तुति कर, एक प्रभु को ही स्मरण कर, और हे मन ! एक प्रभु के मिलने की इच्छा रख। एक प्रभु के ही गुण गा, मन में तथा शारीरिक इन्द्रियों के द्वारा एक भगवान को

ही जप। (सब ओर) प्रभु आप ही आप है, सब जीवों में प्रभु ही बस रहा है। (जगत् के) अनेकों प्रसार एक प्रभु से ही हुए हैं, एक प्रभु को स्मरण करते हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। जिस मनुष्य के मन तथा शरीर में एक प्रभु ही पिरोया हुआ है, हे नानक! उसने गुरु की कृपा से उस एक प्रभु को पहचान लिया ॥ ८ ॥ १९ ॥

॥ सलोकु ॥ फिरत फिरत प्रभ आइआ परिआ तउ सरनाइ। नानक की प्रभ बेनती अपनी भगती लाइ ॥ १ ॥ ॥ असटपदी ॥ जाचक जनु जाचै प्रभ दानु। करि किरपा देवहु हरि नामु। साध जना की मागउ धूरि। पारब्रहम मेरी सरधा पूरि। सदा सदा प्रभ के गुन गावउ। सासि सासि प्रभ तुमहि धिआवउ। चरन कमल सिउ लागै प्रीति। भगति करउ प्रभ की नित नीति। एक ओट एको आधारु। नानकु मागै नामु प्रभ सारु ॥ १ ॥

हे प्रभु! भटकता-भटकता मैं तेरी शरण में आ गया हूँ। हे प्रभु! नानक की यही प्रार्थना है कि मुझे अपनी भक्ति में जोड़ ॥ १ ॥ असटपदी ॥ हे प्रभु! (यह) भिखारी (तेरे नाम का) दान माँगता है; हे हरि! कृपा करके (अपना) नाम दो। हे पारब्रह्म! मेरी इच्छा पूर्ण कर, मैं साधुजनों के चरणों की धूलि माँगता हूँ। मैं सदा ही प्रभु के गुण गाऊँ। हे प्रभु! मैं प्रति-पल तुम्हारा ही स्मरण करूँ। प्रभु के कमल (जैसे सुन्दर) चरणों के साथ प्रीति रहे और सदा ही प्रभु की भक्ति करता रहूँ। (प्रभु का नाम ही) एक मेरी ओट है और एक आसरा है, नानक प्रभु का श्रेष्ठ नाम मांगता है ॥ १ ॥

प्रभ की द्रिसटि महा सुखु होइ। हरि रसु पावै बिरला कोइ। जिन चाखिआ से जन त्रिपताने। पूरन पुरख नही डोलाने। सुभर भरे प्रेम रस रंगि। उपजै चाउ साध कै संगि। परे सरनि आन सभ तिआगि। अंतरि प्रगास अनदिनु लिव लागि। बडभागी जपिआ प्रभु सोइ। नानक नामि रते सुखु होइ ॥ २ ॥

प्रभु की (कृपा की) दृष्टि से बड़ा सुख होता है, (पर) कोई विरला मनुष्य प्रभु के नाम का स्वाद चखता है। जिन्होंने (नाम-रस) चखा है, वे मनुष्य (माया की ओर से) तृप्त हो गए हैं, वे पूर्ण मनुष्य बन गए हैं, कभी (माया के लाभ और नुक़सान में) अस्थिर नहीं होते; प्रभु के प्रेम के

आस्वादन की मौज में वे पूर्णतः भरे रहते हैं, साधुजनों की संगति में रहकर (उनके भीतर) (प्रभु मिलाप का) चाव पैदा होता है; दूसरे सारे (आसरे) छोड़कर वे प्रभु की शरण लेते हैं, उनके भीतर प्रकाश हो जाता है, और, हर समय उनकी लौ (प्रभु-चरणों में) लगी रहती है। सौभाग्यशाली व्यक्तियों ने प्रभु को स्मरण किया है। हे नानक! प्रभु के नाम में अनुरक्त होने से सुख होता है ॥ २ ॥

सेवक की मनसा पूरी भई। सतिगुर ते निरमल मति लई। जन कउ प्रभु होइओ दइआलु। सेवकु कीनो सदा निहालु। बंधन काटि मुकति जनु भइआ। जनम मरन दूखु भ्रमु गइआ। इछ पुनी सरधा सभ पूरी। रवि रहिआ सद संगि हजूरी। जिस का सा तिनि लीआ मिलाइ। नानक भगती नामि समाइ ॥ ३ ॥

(जब सेवक) अपने गुरु से उत्तम शिक्षा लेता है, (तब) सेवक के मन के स्वप्न पूर्ण हो जाते हैं, (माया की भाग-दौड़ समाप्त हो जाती है); प्रभु अपने सेवक पर कृपा करता है, और, सेवक को प्रसन्नतापूर्वक रखता है; सेवक (माया वाली) जंजीर तोड़कर मुक्त हो जाता है, उसे प्रभु सर्वत्र व्यापक होते हुए भी अपने साथ दिखता है। हे नानक! जिस मालिक का वह सेवक बनता है, वह उसे अपने साथ मिला लेता है, सेवक भक्ति करके नाम में टिका रहता है ॥ ३ ॥

सो किउ बिसरै जि घाल न भानै। सो किउ बिसरै जि कीआ जानै। सो किउ बिसरै जिनि सभु किछु दीआ। सो किउ बिसरै जि जीवन जीआ। सो किउ बिसरै जि अगनि महि राखै। गुर प्रसादि को बिरला लाखै। सो किउ बिसरै जि बिखु ते काढै। जनम जनम का टूटा गाढै। गुरि पूरै ततु इहै बुझाइआ। प्रभु अपना नानक जन धिआइआ ॥ ४ ॥

(मनुष्य को) वह प्रभु क्यों भूल जाए जो (मनुष्य की) मेहनत व्यर्थ नहीं जाने देता, जो की हुई कमाई स्मरण रखता है? वह प्रभु क्यों विस्मृत हो, जिसने सब कुछ दिया है, जो ज़िन्दगी का आसरा है? वह अकालपुरुष क्यों विस्मृत हो जो (माँ के पेट की) अग्नि में बचाकर रखता है? (पर) कोई विरला मनुष्य गुरु की कृपा से (यह बात) समझता है? वह अकालपुरुष क्यों विस्मृत हो जाए जो (माया-रूपी) विष से बचाता है और कई जन्मों के बिछुड़े हुए जीव को (अपने साथ) जोड़ लेता है? (जिन

सेवकों को) पूर्णगुरु ने यह बात समझाई है, हे नानक ! उन्होंने अपने प्रभु को स्मरण किया है ।। ४ ।।

साजन संत करहु इहु कामु । आन तिआगि जपहु हरिनामु । सिमरि सिमरि सिमरि सुख पावहु । आपि जपहु अवरह नामु जपावहु । भगति भाइ तरीऐ संसारु । बिनु भगती तनु होसी छारु । सरब कलिआण सूख निधि नामु । बूडत जात पाए बिस्रामु । सगल दूख का होवत नासु । नानक नामु जपहु गुन तासु ।। ५ ।।

हे सज्जनो ! यह काम करो, दूसरे सारे (काम-धन्धे) छोड़कर प्रभु का नाम जपो; सदा स्मरण करो और सुख प्राप्त करो; प्रभु का नाम स्मरण करो ओर दूसरों से स्मरण कराओ । प्रभु की भक्ति में नेह लगाने से यह संसार (समुद्र) पार किया जाता है, भक्ति के बिना यह शरीर किसी काम का नहीं । प्रभु का नाम सौभाग्य तथा समस्त सुखों का भण्डार है, (नाम जपने से विकारों में) डूबते हुए को आसरा मिलता है; (और) सारे दुखों का नाश हो जाता है । (इसलिए) हे नानक ! नाम जपो, (नाम ही) गुणों का खजाना (है) ।। ५ ।।

उपजी प्रीति प्रेम रसु चाउ । मन तन अंतरि इही सुआउ । नेत्रहु पेखि दरसु सुखु होइ । मनु बिगसै साध चरन धोइ । भगत जना कै मनि तनि रंगु । बिरला कोऊ पावै संगु । एक बसतु दीजै करि मइआ । गुर प्रसादि नामु जपि लइआ । ता की उपमा कही न जाइ । नानक रहिआ सरब समाइ ।। ६ ।।

(जिसके भीतर प्रभु की) प्रीति पैदा हुई है, प्रभु के प्रेम का स्वाद तथा चाव पैदा हुआ है, उसके मन तथा तन में यही चाह है (कि नाम की देन मिले) । आँखों से (गुरु का) दर्शन करके उसे सुख होता है, गुरु के चरण धोकर उसका मन खिल जाता है । भक्ति के मन तथा शरीर में (प्रभु का) प्रेम टिका रहता है, (पर) किसी भाग्यशाली ही को उनकी संगति प्रगति प्राप्त होती है । (हे प्रभु !) एक नाम-वस्तु कृपा करके (हमें) दे, (ताकि) गुरु की कृपा से तेरा नाम जप सकें । हे नानक ! वह प्रभु सर्वत्र मौजूद है, उसकी प्रशंसा व्यक्त नहीं की जा सकती ।। ६ ।।

प्रभ बखसंद दीन दइआल । भगति वछल सदा किरपाल । अनाथ नाथ गोबिंद गुपाल । सरब घटा करत प्रतिपाल ।

आदि पुरख कारण करतार। भगत जना के प्रान अधार। जो जो जपै सु होइ पुनीत। भगति भाइ लावै मन हीत। हम निरगुनी आर नीच अजान। नानक तुमरी सरनि पुरख भगवान ॥ ७ ॥

हे क्षमाशील, दीनदयालु, हे भक्ति के साथ प्रेम करनेवाले, सदा दया के घर, अनाथों के नाथ, गोविंद, गोपाल, सारे शरीर की देखभाल करनेवाले, हे सबके आदि और सर्वव्यापक प्रभु ! हे (जगत् के) मूल ! हे कर्त्तार ! हे भक्तों की जिन्दगी के सहारे ! जो-जो मनुष्य भक्ति-भाव से अपने मन में तेरा ध्यान करता है और तुझे जपता है, वह पवित्र हो जाता है। हे नानक ! (प्रार्थना कर और कह—) हे अकालपुरुष ! हे भगवान ! हम तेरी शरण आए हैं, हम नीच, मूर्ख और गुणहीन हैं ॥ ७ ॥

सरब बैकुंठ मुकति मोख पाए। एक निमख हरि के गुन गाए। अनिक राज भोग बडिआई। हरि के नाम की कथा मनि भाई। बहु भोजन कापर संगीत। रसना जपती हरि हरि नीत। भली सु करनी सोभा धनवंत। हिरदै बसे पूरन गुर मंत। साध संगि प्रभ देहु निवास। सरब सूख नानक परगास ॥ ८ ॥ २० ॥

जिस मनुष्य ने आँख के एक बार झपकने के बराबर भी प्रभु के गुण गाए हैं, उसने सारे स्वर्ग तथा मोक्ष (मुक्ति) प्राप्त कर लिए हैं। जिस मनुष्य के मन में प्रभु के नाम की बातचीत मीठी लगी है, उसे (मानों) अनेक राज्य, भोग-पदार्थ और उपलब्धियाँ मिल गई हैं। जिस मनुष्य की जीभ सदा प्रभु का नाम जपती है, उसे मानों कई प्रकार के खाने-कपड़े और राग-रंग प्राप्त हो गए हैं। जिस मनुष्य के हृदय में पूर्णगुरु का उपदेश रहता है, उसी का ही आचरण भला है, उसी को शोभा मिलती है, वही धनवान है। हे प्रभु ! अपने संतों की संगति में स्थान दे। हे नानक ! (सत्संग में रहने से) सारे सुखों का प्रकाश हो जाता है ॥ ८ ॥ २० ॥

॥ सलोकु ॥ सरगुन निरगुन निरंकार सुंन समाधी आपि। आपन कीआ नानका आपे ही फिरि जापि ॥ १ ॥ ॥ असटपदी ॥ जब अकारु इहु कछु न द्रिसटेता। पाप पुंन तब कह ते होता। जब धारी आपन सुंन समाधि। तब बैर बिरोध किसु संगि कमाति। जब इस का बरनु चिहनु न जापत। तब हरख सोग कहु किसहि बिआपत। जब आपन

आप आपि पारब्रहम । तब मोह कहा किसु होवत भरम । आपन खेलु आपि वरतीजा । नानक करनैहारु न दूजा ॥ १ ॥

॥ सलोकु ॥ निरंकार (अकालपुरुष) त्रैगुणी माया का रूप भी आप ही है और माया के तीन गुणों से परे भी आप ही है, समाधि-अवस्था में टिका हुआ भी आप है। हे नानक ! (सारा जगत्) प्रभु ने आप ही बनाया है (और जीवों में बैठकर) आप ही (अपने आपको) स्मरण कर रहा है ॥१॥ ॥ असटपटी ॥ जब (जगत् के जीवों की) कोई आकृति ही नहीं दिखती थी, तब पाप या पुण्य किस (जीव) से हो सकता था ? जब (प्रभु ने) आप पूर्णरूपेण शून्य अवस्था वाली समाधि लगाई हुई थी, तब (किस ने) किस के साथ वैर-विरोध करना था ? जब इस जगत् का कोई रूप-रंग नहीं दिखाई देता था, तब कहो ख़ुशी अथवा चिंता किसे स्पर्श कर सकती थी ? जब अकालपुरुष केवल आप था, तब मोह कहाँ हो सकता था, तथा भ्रम-प्रपंच किसे हो सकते थे ? हे नानक ! (जगत्-रूपी) अपनी लीला प्रभु ने आप बनाई है, (उसके बिना इस खेल का) बनानेवाला दूसरा कोई नहीं है ॥ १ ॥

जब होवत प्रभ केवल धनी । तब बंध मुकति कहु किस कउ गनी । जब एकहि हरि अगम अपार । तब नरक सुरग कहु कउन अउतार । जब निरगुन प्रभ सहज सुभाइ । तब सिव सकति कहहु कितु ठाइ । जब आपहि आपि अपनी जोति धरै । तब कवन निडरु कवन कत डरै । आपन चलित आपि करनैहार । नानक ठाकुर अगम अपार ॥ २ ॥

जब मालिक-प्रभु केवल (आप ही) था, तब कहो, किसे बन्धनयुक्त और किसे बन्धनमुक्त समझें ? जब अगम्य तथा अनन्त प्रभु एक आप ही था, तब कहो, नरकों तथा स्वर्गों में आनेवाले कौन से जीव थे ? जब स्वतः ही प्रभु त्रिगुणात्मक माया से परे था, तब कहो, जीव तथा माया कहाँ थे ? जब प्रभु आप ही अपनी ज्योति जगाए बैठा था, तब कौन निडर था और कौन किससे डरते थे ? हे नानक ! अकालपुरुष अगम्य तथा अनन्त है; अपने तमाशे आप ही करनेवाला है ॥ २ ॥

अबिनासी सुख आपन आसन । तह जनम मरन कहु कहा बिनासन । जब पूरन करता प्रभु सोइ । तब जम की त्रास कहहु किसु होइ । जब अबिगत अगोचर प्रभ एका । तब चित्र गुपत किसु पूछत लेखा । जब नाथ निरंजन अगोचर अगाधे ।

तब कउन छुटे कउन बंधन बाधे। आपन आप आप ही अचरजा। नानक आपन रूप आप ही उपरजा ॥ ३ ॥

जब अकालपुरुष अपनी मौज में अपने ही स्वरूप में टिका बैठा था, तब कहो, जन्मना-मरना और मौत कहाँ थे ? जब कर्त्तार पूर्ण प्रभु आप ही था, तब कहो, मौत का डर किसे हो सकता था ? जब अगोचर तथा अलक्ष्य प्रभु एक आप ही था, तब चित्रगुप्त किससे लेखा पूछ सकते थे ? जब मालिक माया-रहित अथाह अगोचर आप ही था, तब कौन माया के बन्धन से मुक्त थे और कौन बन्धनों में बँधे हुए थे ? वह कौतुकपूर्ण प्रभु अपने जैसा आप ही है। हे नानक ! अपना आकार उसने आप ही पैदा किया है ॥ ३ ॥

जह निरमल पुरखु पुरख पति होता। तह बिनु मैलु कहहु किआ धोता। जह निरंजन निरंकार निरबान। तह कउन कउ मान कउन अभिमान। जह सरूप केवल जगदीस। तह छल छिद्र लगत कहु कीस। जह जोति सरूपी जोति संगि समावै। तह किसहि भूख कवनु त्रिपतावै। करन करावन करनैहारु। नानक करते का नाहि सुमारु ॥ ४ ॥

जिस अवस्था में जीवों का मालिक निर्मल प्रभु आप ही था, वहाँ वह मैल-रहित था, तब कहो, उसने कौन सी मैल धोई थी ? जहाँ माया-रहित, आकार-रहित और वासना-रहित प्रभु ही था, वहाँ मान, अहंकार किसे होना था ? जहाँ केवल जगत् के मालिक प्रभु का ही अस्तित्व था, वहाँ, कहो, छल और विकार किसे लग सकते थे ? जब ज्योतिरूप प्रभु अपनी ही ज्योति में लीन था, तब किसे माया की भूख हो सकती थी और कौन तृप्त था ? कर्त्तार आप ही सब कुछ करनेवाला और जीवों से करानेवाला है। हे नानक ! कर्त्तार का अनुमान नहीं किया जा सकता ॥ ४ ॥

जब अपनी सोभा आपन संगि बनाई। तब कवन माइ बाप मित्र सुत भाई। जह सरब कला आपहि परबीन। तह बेद कतेब कहा कोऊ चीन। जब आपन आपु आपि उरि धारै। तउ सगन अपसगन कहा बीचारै। जह आपन ऊच आपन आपि नेरा। तह कउन ठाकुरु कउनु कहीऐ चेरा। बिसमन बिसम रहे बिसमाद। नानक अपनी गति जानहु आपि ॥ ५ ॥

जब प्रभु ने अपनी शोभा अपने ही साथ बनाई थी तब कौन, माँ, बाप, मित्र, पुत्र अथवा भाई था ? जब अकालपुरुष आप ही तमाम शक्तियों

में प्रबल था, तब कहीं कोई वेद (हिन्दुओं के धर्म-ग्रंथ) और किताबें (मुसलमानों के धर्म-ग्रंथ) विचारता था ? जब प्रभु अपने आपको आप ही अपने आप में टिकाए बैठा था, तब भले-बुरे शकुन के बारे में कौन सोचता था ? कहो, मालिक कौन था और सेवक कौन था ? हे नानक ! (प्रभु के समक्ष प्रार्थना कर और कह— हे प्रभु) तू अपनी गति आप ही जानता है, जीव तेरी गति खोजते हुए हैरान तथा आश्चर्यचकित हो रहे हैं ॥ ५ ॥

जह अछल अछेद अभेद समाइआ। ऊहा किसहि बिआपत माइआ। आपस कउ आपहि आदेसु। तिहु गुण का नाही परवेसु। जह एकहि एक एक भगवंता। तह कउन अचिंतु किसु लागै चिंता। जह आपन आपु आपि पतीआरा। तह कउनु कथै कउनु सुननै हारा। बहु बेअंत ऊच ते ऊचा। नानक आपस कउ आपहि पहूचा ॥ ६ ॥

जिस अवस्था में छल-रहित, अविनाशी तथा अभेद प्रभु टिका हुआ है, वहाँ किसे माया स्पर्श कर सकती है ? (तब) प्रभु अपने आपको आप ही नमस्कार करता है, (माया के) तीन गुणों का (उस पर) असर नहीं पड़ता। जब भगवान केवल एक आप ही था, तब कौन बेफ़िक्र था और किसे कोई चिन्ता लगती थी। जब अपने आपको विश्वस्त करनेवाला प्रभु आप ही था, तब कौन बोलता था और कौन सुननेवाला था ? हे नानक ! प्रभु बड़ा अनन्त है, सर्वोच्च है, अपने आप तक आप ही पहुँचने वाला है ॥ ६ ॥

जह आपि रचिओ परपंचु अकारु। तिहु गुण महि कीनो बिसथारु। पापु पुंनु तह भई कहावत। कोऊ नरक कोऊ सुरग बंछावत। आल जाल माइआ जंजाल। हउमै मोह भरम भै भार। दूख सूख मान अपमान। अनिक प्रकार कीओ बख्यान। आपन खेलु आपि करि देखै। खेलु संकोचै तउ नानक एकै ॥ ७ ॥

जब प्रभु ने आप जगत् की क्रीड़ा रच दी और माया के तीन गुणों का प्रसार प्रसारित कर दिया, तब यह बात चल पड़ी कि यह पाप है, यह पुण्य है, तब कोई जीव नरकों का भागी और कोई स्वर्गों का अभिलाषी बना; घरों के धन्धे, माया के बन्धन, अहंकार, मोह, भ्रम, भय, दुःख, सुख, आदर-निरादर— ऐसी कई क़िस्मों की बातें चल पड़ीं। हे नानक ! प्रभु अपना तमाशा करके आप देख रहा है। जब इस खेल को समेटता है तो एक आप ही आप हो जाता है ॥ ७ ॥

जह अबिगतु भगतु तह आपि । जह पसरै पासारु संत परतापि । दुहू पाख का आपहि धनी । उन की सोभा उनहू बनी । आपहि कउतक करै अनद चोज । आपहि रस भोगन निरजोग । जिसु भावै तिसु आपन नाइ लावै । जिसु भावै तिसु खेल खिलावै । बेसुमार अथाह अगनत अतोलै । जिउ बुलावहु तिउ नानक दास बोलै ॥ ८ ॥ २१ ॥

जहाँ अलक्ष्य प्रभु है वहाँ उसका भक्त है, जहाँ भक्त है वहाँ वह प्रभु आप है । हर स्थान पर संतों की महिमा के लिए प्रभु जगत् का विस्तार कर रहा है । प्रभुजी अपनी शोभा आप ही जानते हैं, (संतों का प्रताप और माया का प्रभाव इन) दोनों पक्षों का मालिक प्रभु आप है । प्रभु आप ही खेल, खेल रहा है, आप ही आनन्द तमाशे कर रहा है, आप ही रसों को भोगनेवाला है, और आप ही निर्लिप्त है । जो उसे भाता है, उसे अपने नाम में जोड़ता है, और जिसे चाहता है, माया का खेल खिलाता है । हे नानक ! (ऐसे प्रार्थना कर और कह), हे अनन्त ! हे गणना-रहित, स्थिर प्रभु ! जैसे तू बुलाता है वैसे तेरे पास बोलते हैं ॥ ८ ॥ २१ ॥

॥ सलोकु ॥ जीअ जंत के ठाकुरा आपे वरतणहार । नानक एको पसरिआ दूजा कह द्रिसटार ॥ १ ॥ असटपदी ॥ आपि कथै आपि सुननैहारु । आपहि एकु आपि बिसथारु । जा तिसु भावै ता स्रिसटि उपाए । आपनै भाणै लए समाए । तुम ते भिन नही किछु होइ । आपन सूति सभु जगतु परोइ । जा कउ प्रभ जीउ आपि बुझाए । सचु नामु सोई जनु पाए । सो समदरसी तत का बेता । नानक सगल स्रिसटि का जेता ॥ १ ॥

॥सलोकु॥ हे जीव-जन्तुओं के पालनेवाले प्रभु ! तू आप ही सर्वत्र व्यापक है । हे नानक ! प्रभु आप ही सर्वत्र मौजूद है, (उसके अतिरिक्त कोई) दूसरा कोई देखने में कहाँ आया है ? ॥ १ ॥ असटपदी ॥ (सब जीवों में) प्रभु आप बोल रहा है, आप ही सुननेवाला है, आप ही एक है (सृष्टि रचने से पूर्व), और आप ही (जगत् को अपने में) समेट लेता है । (हे प्रभु !) तुझसे अलग कुछ नहीं है, तूने (अपने हुक्म-रूपी) धागे में सारे जगत् को पिरो रखा है । जिस मनुष्य को प्रभुजी आप सूझ देते हैं, वह मनुष्य प्रभु का सदा सत्यस्वरूप नाम प्राप्त कर लेता है । वह मनुष्य सब की ओर एक दृष्टि से देखता है, अकालपुरुष का जानकार हो जाता है । हे नानक ! वह सारे जगत् का जीतनेवाला है ॥ १ ॥

जीअ जंत्र सभ ता कै हाथ। दीन दइआल अनाथ को नाथु। जिसु राखै तिसु कोइ न मारै। सो मूआ जिसु मनहु बिसारै। तिसु तजि अवर कहा को जाइ। सभ सिरि एकु निरंजन राइ। जीअ की जुगति जा कै सभ हाथि। अंतरि बाहरि जानहु साथि। गुन निधान बेअंत अपार। नानक दास सदा बलिहार ॥ २ ॥

सारे जीव-जंतु उस प्रभु के वश में हैं, वह दीनदयालु है, और, अनाथों का मालिक है। जिस जीव को प्रभु आप रखता है, उसे कोई मार नहीं सकता। मरा हुआ तो (वह) जीव है जिसे प्रभु भुला देता है। उस प्रभु को छोड़कर कोई कहाँ जाए ? सब जीवों के सिर पर एक ही प्रभु है जो माया के प्रभाव से परे है। उस प्रभु को भीतर-बाहर सर्वत्र अपने साथ जानो, जिसके वश में सब जीवों की ज़िन्दगी का भेद है। हे नानक ! (कहो, प्रभु के) सेवक उस पर बलिहारी हैं जो गुणों का खज़ाना तथा अनन्त अपरम्पार है ॥ २ ॥

पूरनि पूरि रहे दइआल। सभ ऊपरि होवत किरपाल। अपने करतब जानै आपि। अंतरजामी रहिओ बिआपि। प्रतिपालै जीअन बहु भाति। जो जो रचिओ सु तिसहि धिआति। जिसु भावै तिसु लए मिलाइ। भगति करहि हरि के गुण गाइ। मन अंतरि बिस्वासु करि मानिआ। करनहारु नानक इकु जानिआ ॥ ३ ॥

दया के घर प्रभुजी सर्वत्र व्यापक हैं और सब जीवों पर कृपा करते हैं। प्रभु अपने खेल आप जानता है, सब के दिल की जाननेवाला प्रभु सर्वत्र मौजूद है। जीवों को कई तरीकों से पालता है, जो-जो जीव उसने पैदा किया है, वह उसी प्रभु को स्मरण करता है। जिसपर प्रसन्न होता है उसे साथ जोड़ लेता है, (जिन पर तुष्ट होता है) वे उसके गुण गाकर उसकी भक्ति करते हैं। हे नानक ! जिस मनुष्य ने मन-श्रद्धा धारण करके प्रभु को (सचमुच अस्तित्व वाला) मान लिया है, उसने एक कर्त्तार को पहचाना है ॥ ३ ॥

जनु लागा हरि एकै नाइ। तिस की आस न बिरथी जाइ। सेवक कउ सेवा बनि आई। हुकमु बूझि परम पदु पाई। इस ते ऊपरि नही बीचारु। जा कै मनि बसिआ निरंकारु। बंधन तोरि भए निरवैर। अनदिनु पूजहि गुर के पैर। इह

लोक सुखीए परलोक सुहेले। नानक हरि प्रभि आपहि मेले ॥ ४ ॥

(जो) सेवक एक प्रभु के नाम में टिका हुआ है, उसकी आशा कभी खाली नहीं जाती। सेवक को यह शोभायमान होता है कि सब की सेवा करे। प्रभु की रज़ा समझकर उसे ऊँचा स्थान मिल जाता है। जिनके मन में अकालपुरुष रहता है, उन्हें इससे बड़ा कोई विचार नहीं सूझता; (माया के) बन्धन तोड़कर वे वैर-रहित हो जाते हैं और प्रत्येक पल सतिगुरु के चरण पूजते हैं; वे मनुष्य इस जन्म में सुखी हैं और परलोक में भी सुखी होते हैं, (क्योंकि) हे नानक ! प्रभु ने आप उन्हें (अपने साथ) मिला लिया है ॥ ४ ॥

साध संगि मिलि करहु अनंद। गुन गावहु प्रभ परमानंद। राम नाम ततु करहु बीचारु। द्रुलभ देह का करहु उधारु। अंम्रितबचन हरि के गुन गाउ। प्रान तरन का इहै सुआउ। आठ पहर प्रभ पेखहु नेरा। मिटै अगिआनु बिनसै अंधेरा। सुनि उपदेसु हिरदै बसावहु। मन इछे नानक फल पावहु ॥ ५ ॥

परमानन्द प्रभु की गुणस्तुति करो, सत्संग में मिलकर यह (आत्मिक) आनन्द भोगो। प्रभु के नाम में भेद को विचारो और इस (शरीर) का बचाव करो जो बड़ी मुश्किल से मिलता है। अकालपुरुष के गुण गाओ जो अमर करनेवाले वचन हैं, ज़िन्दगी को (विकारों से) बचाने का यही साधन है। आठों प्रहर प्रभु को अपने साथ-साथ देखो (इस प्रकार) अज्ञानता मिट जाएगी और अन्धेरा नष्ट हो जायगा। हे नानक ! (सतिगुरु का) उपदेश सुनकर हृदय में टिकाओ, इस प्रकार मनोवांछित मुरादें मिलेंगी ॥ ५ ॥

हलतु पलतु दुइ लेहु सवारि। राम नामु अंतरि उरिधारि। पूरे गुर की पूरी दीखिआ। जिसु मनि बसै तिसु साचु परीखिआ। मनि तनि नामु जपहु लिव लाइ। दूखु दरदु मन ते भउ जाइ। सचु वापारु करहु वापारी। दरगह निबहै खेप तुमारी। एका टेक रखहु मन माहि। नानक बहुरि न आवहि जाहि ॥ ६ ॥

प्रभु का नाम भीतर हृदय में टिकाओ, (इस प्रकार) लोक तथा परलोक दोनों सुधार लो। पूर्ण सतिगुरु की शिक्षा भी पूर्ण होती है, जिस

मनुष्य के मन में (यह शिक्षा) बसती है, उसे सत्यस्वरूप प्रभु समझ में आ जाता है। मन तथा शरीर के द्वारा लौ जोड़कर नाम जपो, दुख-दर्द और मन से भय दूर हो जायगा। हे वनजारे जीव! सच्चा व्यापार करो, (नाम-रूपी सच्चे व्यापार से) तुम्हारा सौदा प्रभु के दरबार में स्वीकारा जायगा (सत्कृत होगा)। हे नानक! मन में एक अकालपुरुष का आसरा रखो, दोबारा जन्म-मरण का चक्र नहीं होगा ॥ ६ ॥

तिस ते दूरि कहा को जाइ। उबरै राखनहारु धिआइ। निरभउ जपै सगल भउ मिटै। प्रभ किरपा ते प्राणी छुटै। जिसु प्रभु राखै तिसु नाही दूख। नामु जपत मनि होवत सूख। चिंता जाइ मिटै अहंकारु। तिसु जन कउ कोइ न पहुचनहारु। सिर ऊपरि ठाढा गुरु सूरा। नानक ता के कारज पूरा ॥ ७ ॥

उस प्रभु से परे कहाँ कोई जीव जा सकता है? जीव उस रक्षक प्रभु को स्मरण करके ही बचता है। जो मनुष्य निर्भय, अकालपुरुष को जपता है, उसका सारा भय मिट जाता है, (क्योंकि) प्रभु की कृपा द्वारा ही व्यक्ति (भय से) मुक्ति पाता है। जिस व्यक्ति को प्रभु बचाता है उसे कोई दुःख नहीं छूता, नाम जपने से मन में सुख पैदा होता है। (नाम-स्मरण करने से) चिन्ता दूर हो जाती है, अहंकार मिट जाता है, उस मनुष्य की कोई बराबरी नहीं कर सकता। हे नानक! जिस व्यक्ति के सिर पर रक्षक के रूप में शूरवीर सतिगुरु खड़ा हुआ है, उसके सारे काम सफल हो जाते हैं ॥ ७ ॥

मति पूरी अंम्रितु जा की द्रिसटि। दरसनु पेखत उधरत स्रिसटि। चरन कमल जा के अनूप। सफल दरसनु सुंदर हरि रूप। धंनु सेवा सेवकु परवानु। अंतरजामी पुरखु प्रधानु। जिसु मनि बसै सु होत निहालु। ता कै निकटि न आवत कालु। अमर भए अमरा पदु पाइआ। साध संगि नानक हरि धिआइआ ॥ ८ ॥ २२ ॥

जिस प्रभु की समझ पूर्ण है, जिसकी नज़र से अमृत बरसता है, उसका दर्शन करने से जगत् का उद्धार होता है। जिस प्रभु के कमलों जैसे अत्यन्त सुन्दर चरण हैं, उसका रूप सुन्दर है, और उसका दर्शन इच्छाओं को पूर्ण करनेवाला है। वह अकालपुरुष घट-घट की जाननेवाला और सबसे बड़ा है, उसका सेवक (दरबार में) स्वीकृत हो जाता है, (इसलिए) उसकी सेवा मुबारिक है। जिस मनुष्य के हृदय में (ऐसा प्रभु) बसता है,

वह (पुष्प की तरह) खिल उठता है, उसके निकट काल (भी) नहीं आता। हे नानक! जिन मनुष्यों ने सत्संग में प्रभु को स्मरण किया है, वे जन्म-मरण से छूट जाते हैं और सत्यस्वरूप स्थान प्राप्त कर लेते हैं ॥ ८ ॥ २२ ॥

॥ सलोकु ॥ गिआन अंजनु गुरि दीआ अगिआन अंधेर बिनासु। हरि किरपा ते संत भेटिआ नानक मनि परगासु ॥१॥ ॥असटपदी॥ संत संगि अंतरि प्रभु डीठा। नामु प्रभू का लागा मीठा। सगल समिग्री एकसु घट माहि। अनिक रंग नाना द्रिसटाहि। नउ निधि अंम्रितु प्रभ का नामु। देही महि इस का बिस्रामु। सुंन समाधि अनहत तह नाद। कहनु न जाई अचरज बिसमाद। तिनि देखिआ जिसु आपि दिखाए। नानक तिसु जन सोझी पाए ॥ १ ॥

॥ सलोकु ॥ (जिस मनुष्य को) सतिगुरु ने ज्ञान का सुरमा दिया है; उसके अज्ञान (रूपी) अन्धेरे का नाश हो जाता है। हे नानक! (जो मनुष्य) अकालपुरुष की कृपा से गुरु को मिला है, उसके मन में (ज्ञान का) प्रकाश हो जाता है ॥ १ ॥ असटपदी ॥ (जिस मनुष्य ने) गुरु की संगति में (रहकर) अपने भीतर अकालपुरुष को देखा है, उसे प्रभु का नाम प्यारा लगने लगता है। (जगत् के) सारे पदार्थ (उसे) एक प्रभु में ही (लीन दिखते हैं), (उससे ही) अनेकों किस्मों के रंग-तमाशे (निकले हुए) दिखते हैं; (उस मनुष्य के) शरीर में प्रभु के नाम का ठिकाना (हो जाता है) जो (मानो, जगत् के) नौ ख़ज़ाने (के तुल्य) है और अमृत है; उस मनुष्य के भीतर शून्य समाधि जुड़ी रहती है, और ऐसा आश्चर्य निरन्तर-निरन्तर राग (-रूपी आनन्द बना रहता है), कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। (पर) हे नानक! यह (आनन्द) उस मनुष्य ने देखा है जिसे प्रभु आप दिखाता है (क्योंकि) उस मनुष्य को (उस आनन्द की) समझ देता है ॥१॥

सो अंतरि सो बाहरि अनंत। घटि घटि बिआपि रहिआ भगवंत। धरनि माहि आकास पइआल। सरब लोक पूरन प्रतिपाल। बनि तिनि परबति है पारब्रहमु। जैसी आगिआ तैसा करमु। पउण पाणी बैसंतर माहि। चारि कुंट दहदिसे समाहि। तिस ते भिंन नही को ठाउ। गुर प्रसादि नानक सुखु पाउ ॥ २ ॥

वह अनन्त भगवान भीतर-बाहर (सर्वत्र) हरेक शरीर में मौजूद है; धरती, आकाश और पाताल में है, सारे भुवनों में मौजूद है और सत्य की

रक्षा करता है; वह पारब्रह्म जंगल में है, घास और पर्वत में है, जैसा वह हुक्म करता है, वैसा ही (जीव) काम करता है; पवन, पानी, अग्नि, चारों कोनों, दसों दिशाओं में (सर्वत्र) समाया हुआ है; कोई (भी) स्थान उस प्रभु से अलग नहीं; (पर) हे नानक ! (इस निश्चय का) आनन्द गुरु की कृपा से मिलता है ॥ २ ॥

बेद पुरान सिम्रित महि देखु । ससी अर सूर नख्यत्र महि एकु । बाणी प्रभ की सभु को बोलै । आपि अडोलु न कबहू डोलै । सरब कला करि खेलै खेल । मोलि न पाईऐ गुणह अमोल । सरब जोति महि जा की जोति । धारि रहिओ सुआमी ओति पोति । गुर परसादि भरम का नासु । नानक तिन महि एहु बिसासु ॥ ३ ॥

वेद, पुराण, स्मृतियों में (उसी प्रभु को) देखो, चन्द्रमा, सूर्य, तारों में भी वही है; हर एक जीव अकालपुरुष की ही बोली बोलता है; वह आप स्थिर है कभी विचलित नहीं होता । समस्त शक्तियाँ रचकर (जगत् का) खेल, खेल रहा है, (पर वह) किसी मूल्य पर नहीं मिलता, (क्योंकि) अमूल्य गुणों वाला है। जिस प्रभु की ज्योति तमाम ज्योतियों में (जग रही है) वह मालिक ताने-पेटे की तरह (सबको) आसरा दे रहा है (पर) हे नानक ! (अकालपुरुष के इस सर्वव्यापक अस्तित्व का) यह विश्वास उन मनुष्यों के भीतर बनता है, जिनका भ्रम गुरु की कृपा से मिट जाता है ॥३॥

संत जना का पेखनु सभु ब्रहम । संत जना कै हिरदै सभि धरम । संत जना सुनहि सुभ बचन । सरब बिआपी राम संगि रचन । जिनि जाता तिस की इह रहत । सति बचन साधू सभि कहत । जो जो होइ सोई सुखु मानै । करन करावनहारु प्रभु जानै । अंतरि बसे बाहरि भी ओही । नानक दरसनु देखि सभ मोही ॥ ४ ॥

संतजन सर्वत्र अकालपुरुष को ही देखते हैं, उनके हृदय में सारे (ख्याल) धर्म के ही (उठते हैं) । संत भले वचन ही सुनते हैं और सर्वत्र व्यापक अकालपुरुष से जुड़े रहते हैं । जिस-जिस संत ने (प्रभु को) जान लिया है, उसका आचरण ही यह हो जाता है कि वह सदा सत्य बोलता है; (और) जो कुछ होता है, उसे ही सुख मानता है, सब काम करनेवाला तथा करानेवाला प्रभु को ही जानता है । (साधुजनों के लिए) भीतर-बाहर (सर्वत्र) वही प्रभु बसता है। हे नानक ! (प्रभु का सर्वव्यापक) साक्षात्कार करके सारी सृष्टि मस्त हो जाती है ॥ ४ ॥

आपि सति कीआ सभु सति। तिसु प्रभ ते सगली उतपति। तिसु भावै ता करे बिसथारु। तिसु भावै ता एकंकारु। अनिक कला लखी नह जाइ। जिसु भावै तिसु लए मिलाइ। कवन निकटि कवन कहीऐ दूरि। आपे आपि आप भरपूरि। अंतर गति जिसु आपि जनाए। नानक तिसु जन आपि बुझाए ॥ ५ ॥

प्रभु आप आस्तित्ववान है, जो कुछ उसने पैदा किया है, सब अस्तित्व वाला है। सारी सृष्टि उस प्रभु से हुई है। यदि उसकी रज़ा होवे तो जगत् का प्रसार कर देता है, यदि भाए तो फिर एक आप ही आप हो जाता है। उसकी अनेक शक्तियाँ हैं, किसी का वर्णन नहीं हो सकता; जिस पर तुष्ट होता है उसे अपने साथ मिला लेता है। वह प्रभु किन से दूर और किन से निकट कहा जा सकता है? वह प्रभु आप ही सर्वत्र मौजूद है। जिस मनुष्य को प्रभु आप भीतरी उच्च अवस्था सुझा देता है, हे नानक! उस मनुष्य को (अपनी इस सर्वव्यापकता की) समझ देता है ॥५॥

सरब भूत आपि वरतारा। सरब नैन आपि पेखनहारा। सगल समग्री जा का तना। आपन जसु आप ही सुना। आवन जानु इकु खेलु बनाइआ। आगिआकारी कीनी माइआ। सभ कै मधि अलिपतो रहै। जो किछु कहणा सु आपे कहै। आगिआ आवै आगिआ जाइ। नानक जा भावै ता लए समाइ ॥ ६ ॥

सारे जीवों में प्रभु आप ही सर्वव्यापक है, (उन जीवों की) तमाम आँखों से प्रभु आप ही देख रहा है। (जगत् के) सारे पदार्थ जिस प्रभु का शरीर हैं, (सर्वत्र व्यापक होकर) वह अपनी शोभा आप ही सुन रहा है। (जीवों का) जन्म-मरण प्रभु ने एक खेल बनाया है और अपने हुक्म-अनुसार चलनेवाली माया बना दी है। हे नानक! (जीव) अकालपुरुष के हुक्म-अनुसार जन्मता है और हुक्म-अनुसार मरता है, जब उसकी रज़ा होती है तो उन्हें अपने में लीन कर लेता है ॥ ६ ॥

इस ते होइ सु नाही बुरा। ओरै कहहु किनै कछु करा। आपि भला करतूति अति नीकी। आपे जानै अपने जी की। आपि साचु धारी सभ साचु। ओति पोति आपन संगि राचु। ता की गति मिति कही न जाइ। दूसर होइ त सोझी पाइ।

तिस का कीआ सभु परवानु। गुर प्रसादि नानक इहु जानु ।। ७ ।।

जो कुछ प्रभु की ओर से होता है, (जीवों के लिए) अशुभ नहीं होता; और प्रभु के अतिरिक्त किसने कुछ कर दिखाया है? प्रभु आप भला है, उसका काम भी भला है, अपने दिल की बात वह आप ही जानता है। आप अस्तित्ववाला है, सारी रचना जो उसके आसरे है, वह भी अस्तिववाली है (भ्रम नहीं), ताने-पेटे के समान उसने अपने साथ मिलाई हुई है। वह प्रभु कैसा है और कितना बड़ा है— यह बात व्यक्त नहीं हो सकती, कोई दूसरा होवे तो समझ सके। प्रभु का किया हुआ सब कुछ (जीवों को) स्वीकार करना पड़ता है, (पर) हे नानक! यह पहचान गुरु की कृपा से आती है ।। ७ ।।

जो जानै तिसु सदा सुखु होइ। आपि मिलाइ लए प्रभु सोइ। ओहु धनवंतु कुलवंतु पतिवंतु। जीवन मुकति जिसु रिदै भगवंतु। धंनु धंनु धंनु जनु आइआ। जिसु प्रसादि सभु जगतु तराइआ। जन आवन का इहै सुआउ। जन कै संगि चिति आवै नाउ। आपि मुकतु मुकतु करै संसारु। नानक तिसु जन कउ सदा नमसकारु ।। ८ ।। २३ ।।

जो मनुष्य प्रभु के साथ मेल कर लेता है उसे सदा सुख होता है, प्रभु उसे अपने साथ मिला लेता है। जिस मनुष्य के हृदय में भगवान बसता है, वह जीवित ही मुक्त हो जाता है, वह धन, कुल तथा प्रतिष्ठा वाला बन जाता है। जिस मनुष्य की कृपा से सारा जगत् ही पार होता है, उसका (जगत् में) आना मुबारिक है। ऐसे मनुष्य के आने का यही मनोरथ है कि उसकी संगति में (रहकर दूसरे मनुष्यों को प्रभु का) नाम स्मरण आता है। वह मनुष्य आप (माया से) आज़ाद है, जगत् को भी मुक्त करता है, हे नानक! ऐसे (उत्तम) मनुष्य को हमारा सदा प्रणाम है ।। ८ ।। २३ ।।

।। सलोकु ।। पूरा प्रभु आराधिआ पूरा जा का नाउ। नानक पूरा पाइआ पूरे के गुन गाउ ।। १ ।। असटपदी ।। पूरे गुर का सुनि उपदेसु। पारब्रहमु निकटि करि पेखु। सासि सासि सिमरहु गोबिंद। मन अंतर की उतरै चिंद। आस अनित तिआगहु तरंग। संत जना की धूरि मन मंग। आपु छोडि बेनती करहु। साध संगि अगनि सागरु तरहु। हरि धन के भरि लेहु भंडार। नानक गुर पूरे नमसकार ।। १ ।।

॥ सलोकु ॥ (जिस मनुष्य ने) अटल नामवाले पूर्ण प्रभु को स्मरण किया है, उसे पूर्णप्रभु मिल गया है; (इसलिए) हे नानक ! तू भी पूर्णप्रभु के गुण गा ॥ १ ॥ असटपदी ॥ (हे मन !) पूर्ण सतिगुरु की शिक्षा सुन और अकालपुरुष को निकट जानकर देख। (हे भाई !) प्रत्येक पल प्रभु को याद कर, तेरे मन के भीतर की चिन्ता मिट जाए। हे मन ! नश्वर (वस्तुओं की) आशाओं की लहरें छोड़ दे और संतजनों के पैरों की धूलि माँग। (हे भाई !) आपा-भाव छोड़कर (प्रभु के समक्ष) प्रार्थना कर (और) सत्संगति में रहकर (विकारों की) आग के समुद्र से पार उतर। हे नानक ! प्रभु के नाम-रूपी धन के भण्डार भर ले और पूर्ण सतिगुरु को नमस्कार कर ॥ १ ॥

खेम कुसल सहज आनंद। साध संगि भजु परमानंद।
नरक निवारि उधारहु जीउ। गुन गोबिंद अंम्रित रसु पीउ।
चिति चितवहु नाराइण एक। एक रूप जा के रंग अनेक।
गोपाल दामोदर दीन दइआल। दुख भंजन पूरन किरपाल।
सिमरि सिमरि नामु बारंबार। नानक जीअ का इहै अधार ॥ २ ॥

(हे भाई !) सत्संगति में परमसुख-रूपी प्रभु का स्मरण कर, (इस प्रकार) अटल सुख, सहज जीवन तथा आत्मिक स्थिरता का आनन्द प्राप्त होंगे; गोबिंद के गुण गा, (नाम-) अमृत का रस पान कर, (इस प्रकार) नरकों को दूर कर आत्मा को बचा ले। जिस एक अकालपुरुष के अनेक रंग हैं, उस एक प्रभु का ध्यान हृदय में कर। दीनों पर दया करनेवाला गोपाल दामोदर दुःखों का नाशक सब में व्यापक और कृपा का घर है। हे नानक ! उसका नाम बार-बार स्मरण कर, आत्मा का आसरा यह नाम ही है ॥ २ ॥

उतम सलोक साध के बचन। अमुलीक लाल एहि रतन।
सुनत कमावत होत उधार। आपि तरै लोकह निसतार।
सफल जीवनु सफलु ता का संगु। जा कै मनि लागा हरि रंगु।
जै जै सबदु अनाहदु वाजै। सुनि सुनि अनद करे प्रभु गाजै।
प्रगटे गुपाल महांत कै माथे। नानक उधरे तिन कै साथे ॥ ३ ॥

साधु (गुरु) के वचन सर्वश्रेष्ठ गुणस्तुति की वाणी हैं, यही अमूल्य लाल और रत्न हैं। इन वचनों को सुनने और कमाने से बेड़ा पार होता है, (जो कमाता है) वह आप पार होता है और लोगों का भी उद्धार

करता है। जिस मनुष्य के मन में प्रभु का प्रेम बन जाता है, उसकी ज़िन्दगी पूर्ण कामनाओं वाली हो जाती है, उसकी संगति दूसरों की कामनाएँ पूर्ण करती है, (उसके भीतर) निरन्तर प्रगति का प्रवाह प्रवाहित होता है, जिसे सुनकर वह ख़ुश होता है (क्योंकि) प्रभु (उसके भीतर) अपना सौन्दर्य प्रकट करता है। गोपाल प्रभुजी सदाचारी व्यक्ति के माथे पर प्रकट होते हैं। हे नानक ! ऐसे व्यक्ति के साथ दूसरे कई मनुष्यों का बेड़ा पार होता है ॥ ३ ॥

सरनि जोगु सुनि सरनी आए। करि किरपा प्रभ आप मिलाए। मिटि गए बैर भए सभ रेन। अंम्रित नामु साध संगि लैन। सुप्रसंन भए गुरदेव। पूरन होई सेवक की सेव। आल जंजाल बिकार ते रहते। राम नाम सुनि रसना कहते। करि प्रसादु दइआ प्रभि धारी। नानक निबरी खेप हमारी॥४॥

हे प्रभु ! यह सुनकर कि तू शरणागतों की बाँह पकड़ने योग्य (रक्षक) है, हम तेरे द्वार पर आए थे, तूने कृपा करके (हमें) अपने साथ मिला लिया है। (अब हमारे) वैर-भाव मिट गए हैं, हम सबके पैरों की धूलि हो गए हैं, (अब) सत्संगति में अमर करनेवाला नाम जप रहे हैं। गुरुदेवजी (हम पर) तुष्ट हुए हैं, इसलिए (हम-) सेवकों की सेवा सफल हो गई है, (अब हम) घरेलू धन्धों तथा विकारों से बच गए हैं, प्रभु का नाम सुनकर जिह्वा से (भी) उच्चरित करते हैं। हे नानक ! प्रभु ने कृपा करके (हम पर) दया की है और हमारा किया हुआ व्यापार दरबार में स्वीकृत हो गया है ॥ ४ ॥

प्रभ की उसतति करहु संत मीत। सावधान एकागर चीत। सुखमनी सहज गोबिंद गुन नाम। जिसु मनि बसै सु होत निधान। सरब इछा ता की पूरन होइ। प्रधान पुरखु प्रगटु सभ लोइ। सभ ते ऊच पाए असथानु। बहुरि न होवै आवन जानु। हरि धनु खाटि चलै जनु सोइ। नानक जिसहि परापति होइ ॥ ५ ॥

हे संत मित्र ! ध्यानपूर्वक चित्त को एक लक्ष्य पर टिकाकर अकाल-पुरुष की गुणस्तुति करो। प्रभु की गुणस्तुति और प्रभु के साथ ऐक्य सुखों की मणि है, जिसके मन में (नाम) रहता है, वह गुणों का ख़ज़ाना हो जाता है। उसकी तमाम इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं, वह व्यक्ति चलने योग्य हो जाता है और सारे जगत् में प्रकट हो जाता है। उसे सर्वोच्च ठिकाना

मिल जाता है, उसे दोबारा जन्म-मरण का चक्र नहीं लगता। हे नानक ! जिस मनुष्य को (परमात्मा से) यह देन मिलती है वह मनुष्य प्रभु का नाम-रूपी धन प्राप्त करके (जगत् से) जाता है ।। ५ ।।

खेम सांति रिधि नव निधि। बुधि गिआनु सरब तह सिधि। बिदिआ तपु जोगु प्रभ धिआनु। गिआनु स्रेसट ऊतम इसनानु। चारि पदारथ कमल प्रगास। सभ कै मधि सगल ते उदास। सुंदरु चतुरु तत का बेता। समदरसी एक द्रिसटेता। इह फल तिसु जन कै मुखि भने। गुर नानक नाम बचन मनि सुने ।। ६ ।।

स्थिर सुख मन का टिकाव, रिद्धियाँ, नौ भण्डार, बुद्धि, ज्ञान और तमाम करामातें उस मनुष्य में (आ जाती हैं); विद्या, तप, योग, अकाल-पुरुष का स्मरण, श्रेष्ठ ज्ञान, शुभ स्नान, चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष), हृदय-कमल का प्रस्फुटन, सब में रहते हुए सबसे तटस्थ रहना; सुन्दरता, बुद्धिमत्ता, मूल प्रभु का जानकार सब को समान समझना, सबको एक दृष्टि से देखना; ये सारे फल, हे नानक ! उस मनुष्य के भीतर आ बसते हैं, जो गुरु के वचन तथा प्रभु का नाम मुख से उच्चरित करता है और मन लगाकर सुनता है ।। ६ ।।

इहु निधानु जपै मनि कोइ। सभ जुग महि ता की गति होइ। गुण गोबिंद नाम धुनि बाणी। सिम्रिति सासत्र बेद बखाणी। सगल मतांत केवल हरिनाम। गोबिंद भगत कै मनि बिस्राम। कोटि अप्राध साध संगि मिटै। संत क्रिपा ते जम ते छुटै। जा कै मसतकि करम प्रभि पाए। साध सरणि नानक ते आए ।। ७ ।।

जो भी मनुष्य गुणों के ख़ज़ाने, नाम को जपता है, सारी उम्र उसकी ऊँची आत्मिक अवस्था बनी रहती है; उस मनुष्य के (साधारण) वचन भी गोविंद के गुण और नाम का प्रवाह ही होते हैं, स्मृतियों, शास्त्रों और वेदों ने भी यही बात कही है। सारे मतों का निचोड़ प्रभु का नाम ही है, इस नाम का निवास प्रभु के भक्त के मन में होता है। (जो मनुष्य नाम जपता है उसके) करोड़ों पाप सत्संग में रहकर मिट जाते हैं, गुरु की कृपा से वह मनुष्य यमों से बच जाता है। (पर) हे नानक ! जिनके माथे पर प्रभु ने (नाम की) कृपा के लेख लिख दिए हैं, वे ही मनुष्य गुरु की शरण आते हैं ।। ७ ।।

जिसु मनि बसै सुनै लाइ प्रीति। तिसु जन आवै हरि प्रभु चीति। जनम मरन ता का दूखु निवारै। दुलभ देह ततकाल उधारै। निरमल सोभा अंम्रित ता की बानी। एकु नामु मन माहि समानी। दूख रोग बिनसे भै भरम। साध नाम निरमल ता के करम। सभ ते ऊच ता की सोभा बनी। नानक इह गुणि नामु सुखमनी ॥ ८ ॥ २४ ॥

जिस मनुष्य के मन में (नाम) बसता है, जो प्रेमपूर्वक (नाम) सुनता है, उसे प्रभु स्मरण आता है। उस मनुष्य का जन्म-मरण का कष्ट काटा जाता है, वह इस दुर्लभ मनुष्य शरीर को उस वक्त (विकारों से) बचा लेता है; उसकी सुन्दर शोभा और उसकी वाणी (नाम-) अमृत से भरपूर होती है, (क्योंकि) उसके मन में प्रभु का नाम ही बसा रहता है; दुःख, रोग, डर और भ्रम उसके नष्ट हो जाते हैं, उसका नाम 'साधु' हो जाता है और उसके कर्म (विकारों की) मैल से स्वच्छ होते हैं। सबसे उत्कृष्ट शोभा उसे मिलती है। हे नानक! इस गुण के कारण (प्रभु का) नाम सुखों की मणि है (भाव, सर्वोत्तम सुख है) ॥ ८ ॥ २४ ॥

थिती गउड़ी महला ५ ॥ सलोकु ॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ जलि थलि महीअलि पूरिआ सुआमी सिरजनहारु। अनिक भांति होइ पसरिआ नानक एकंकारु ॥ १ ॥ पउड़ी ॥ एकम एकंकारु प्रभु करउ बंदना धिआइ। गुण गोबिंद गुपाल प्रभ सरनि परउ हरिराइ। ता की आस कलिआण सुख जा ते सभ कछु होइ। चारि कुंट दह दिसि भ्रमिओ तिसु बिनु अवरु न कोइ। बेद पुरान सिम्रिति सुने बहु बिधि करउ बीचारु। पतित उधारन भै हरन सुख सागर निरंकार। दाता भुगता देनहारु तिसु बिनु अवरु न जाइ। जो चाहहि सोई मिलै नानक हरि गुन गाइ ॥ १ ॥ गोबिंद जसु गाईऐ हरि नीत। मिलि भजीऐ साध संगि मेरे मीत ॥ १ ॥ रहाउ ॥

हे नानक! सम्पूर्ण जगत् को पैदा करनेवाला मालिक प्रभु जल, पृथ्वी और आकाश में परिव्याप्त है, वह एक अकालपुरुष अनेकों ही तरीकों से (जगत् में सर्वत्र) बिखरा हुआ है ॥ १ ॥ पउड़ी ॥ (हे भाई!) मैं एक

अकालपुरुष प्रभु को स्मरण कर नमस्कार करता हूँ, मैं गोबिंद गोपाल प्रभु के गुण (गाता हूँ और उस) प्रभु बादशाह की शरण लेता हूँ। जिस मालिक-प्रभु के हुक्म से ही (जगत् में) सब कुछ हो रहा है, उसकी आस रखने से सारे सुख-आनन्द मिलते हैं। मैंने चारों कोनों और दसों दिशाओं में फिर कर देख लिया है, उस (मालिक-प्रभु) के बिना दूसरा कोई (रक्षक) नहीं है। (हे भाई!) वेद, पुराण, स्मृतियाँ सुनकर मैं (दूसरे) अनेकों तरीकों से विचार करता हूँ (और इस परिणाम पर पहुँचता हूँ कि) आकार-रहित परमात्मा ही (विकारों में) गिरे हुए जीवों को (विकारों से) बचानेवाला है, जीवों के सारे भय दूर करनेवाला है और सुखों का समुद्र है। हे नानक! (सदा) परमात्मा के गुण गाता रह, (उससे) जो कुछ तू चाहेगा, वही मिल जाता है। वह परमात्मा ही सब देन देनेवाला है, (सब जीवों में व्यापक होकर सारे पदार्थ) भोगनेवाला है, सब कुछ देने की सामर्थ्य वाला है, उसके अतिरिक्त (जीवों के लिए) दूसरा कोई स्थान—आश्रय नहीं है ॥ १ ॥ हे मेरे मित्र! सदा ही गोबिंद प्रभु की गुणस्तुति गाते रहना चाहिए, सत्संगति में मिलकर (उसका) भजन-स्मरण करना चाहिए ॥ रहाउ ॥

॥ सलोकु ॥ करउ बंदना अनिक वार सरनि परउ हरि राइ । भ्रमु कटीऐ नानक साध संगि दुतीआ भाउ मिटाइ ॥ २ ॥ ॥ पउड़ी ॥ दुतीआ दुरमति दूरि करि गुर सेवा करि नीत । राम रतनु मनि तनि बसै तजि कामु क्रोधु लोभु मीत । मरणु मिटै जीवनु मिलै बिनसहि सगल कलेस । आपु तजहु गोबिंद भजहु भाउ भगति परवेस । लाभु मिलै तोटा हिरै हरि दरगह पतिवंत । राम नाम धनु संचवै साच साह भगवंत । ऊठत बैठत हरि भजहु साधू संगि परीति । नानक दुरमति छुटि गई पारब्रहम बसे चीति ॥ २ ॥

॥ सलोकु ॥ (हे भाई!) मैं प्रभु-बादशाह की शरण लेता हूँ और अनेक बार नमस्कार करता हूँ। हे नानक! सत्संगति में रहकर लौकिक मोह-प्रेम आदि दूर करने से मन की दुबिधा दूर हो जाती है ॥ २ ॥ ॥ पउड़ी ॥ (हे भाई!) सदा गुरु की बतलाई सेवा करता रह, (और इस प्रकार) दुर्बुद्धि निकाल। हे मित्र! (अपने भीतर से) काम, क्रोध, लोभ दूर कर; (जो मनुष्य यह प्रयास करता है, उसके) हृदय में रत्न-रूपी प्रभु-नाम आ बसता है। (हे मित्र! अपने मन से) अहंकार दूर करो और परमात्मा का भजन करो (ऐसा करनेवाले) जीव को आत्मिक जीवन मिल जाता है, उसे (पवित्र) जीवन मिल जाता है, उसके सारे दुःख और

क्लेश मिट जाते हैं, उसके भीतर प्रभु-प्रेम आ बसता है, प्रभु की भक्ति आ बसती है। (हे भाई !) जो-जो मनुष्य परमात्मा का नाम-धन एकत्रित करते हैं, वे सब सौभाग्यशाली हो जाते हैं, वे सदा के लिए साहूकार बन जाते हैं, (आत्मिक जीवन में) उन्हें लाभ ही लाभ हो जाता है, और (आत्मिक जीवन में होनेवाली) कमी (उनके भीतर से) निकल जाती है, वे परमात्मा के दरबार में प्रतिष्ठित हो जाते हैं। (हे भाई !) उठते-बैठते हरवक्त परमात्मा का भजन करो और गुरु की संगति में प्रेम पैदा करो। हे नानक ! (जिस मनुष्य ने यह प्रयास किया उसकी) दुर्बुद्धि समाप्त हो गई, परमात्मा सदा के लिए उसके चित्त में आ बसा ॥ २ ॥

॥ सलोक ॥ तीनि बिआपहि जगत कउ तुरीआ पावै कोइ। नानक संत निरमल भए जिन मनि बसिआ सोइ ॥ ३ ॥ ॥ पउड़ी ॥ त्रितीआ त्रै गुण बिखै फल कब उतम कब नीचु। नरक सुरग भ्रमतउ घणो सदा संघारै मीचु। हरख सोग सहसा संसारु हउ हउ करत बिहाइ। जिनि कीए तिसहि न जाणनी चितवहि अनिक उपाइ। आधि बिआधि उपाधि रस कबहु न तूटै ताप। पारब्रहम पूरन धनी नह बूझै परताप। मोह भरम बूडत घणो महा नरक महि वास। करि किरपा प्रभ राखि लेहु नानक तेरी आस ॥ ३ ॥

॥ सलोकु ॥ हे नानक ! जगत् (के जीवों) पर (माया के) तीन गुण दबाव डाले रखते हैं। कोई विरला मनुष्य वह चौथी अवस्था प्राप्त करता है, जहाँ वह परमात्मा के साथ जुड़ा रहता है, जिन मनुष्यों के मन में वह परमात्मा ही सदा बसता है, वे संतजन पवित्र जीवनवाले हो जाते हैं ॥ ३ ॥ ॥ पउड़ी ॥ माया के तीनों गुणों के प्रभाव से जीवों को विषम विकार-रूपी फल ही मिलते हैं, कभी कोई अच्छी अवस्था प्राप्त करते हैं और कभी निम्न-अवस्था में गिर पड़ते हैं। जीवों को नरक-स्वर्ग की बहुत दुबिधा लगी रहती है और मौत का भय सदा उनकी आत्मिक मृत्यु का कारण बना रहता है। (अहंकारग्रस्त जीवों की) उम्र अहंकार में बीतती है, कभी खुशी, कभी दुख, कभी भय —यह चक्र (उनके लिए बना रहता है)। जिस परमात्मा ने पैदा किया है, उसके साथ मेल-मिलाप नहीं करते और (तीर्थ-स्नान आदि) दूसरे धार्मिक यत्न वे सदा सोचते रहते हैं। लौकिक आस्वादनों के कारण जीव को मन के रोग, शरीर के रोग तथा दूसरे झंझट भी लगे रहते हैं, कभी इसके मन का दुःख-क्लेश मिटता नहीं है। (रसों में फँसा हुआ मनुष्य) पूर्ण पारब्रह्म मालिक-प्रभु के प्रताप को नहीं समझता।

अनन्त दुनिया माया-मोह और दुबिधा में गोते खा रही है, भारी नरकों में दु:ख काट रही है। (इससे बचने के लिए) हे नानक ! (प्रार्थना कर और कह—) हे प्रभु ! कृपा करके मेरी रक्षा कर, मुझे तेरी (सहायता की) ही आस है ।। ३ ।।

।। सलोकु ।। चतुर सिआणा सुघड़ु सोइ जिनि तजिआ अभिमानु। चारि पदारथ असट सिधि भजु नानक हरिनामु ।।४।। ।।पउड़ी।। चतुरथि चारे बेद सुणि सोधिओ ततु बीचारु। सरब खेम कलिआण निधि राम नामु जपि सारु। नरक निवारै दुख हरै तूटहि अनिक कलेस। मीचु हुटै जम ते छुटै हरि कीरतन परवेस। भउ बिनसै अंम्रितु रसै रंगि रते निरंकार। दुख दारिद अपवित्रता नासहि नाम अधार। सुरि नर मुनि जन खोजते सुख सागर गोपाल। मनु निरमलु मुखु ऊजला होइ नानक साध रवाल ।। ४ ।।

।। सलोकु ।। हे नानक ! परमात्मा का नाम जपता रह। दुनिया के चारों पदार्थ और जोगियों वाली आठों करामातें (इसी में हैं)। (नाम के प्रभाव से) जिस मनुष्य ने (अपने मन से) अहंकार दूर कर लिया है, वही बुद्धिमान, चतुर और गुणवान है ।। ४ ।। पउड़ी ।। चारों ही वेद सुनकर (हमने तो यह) निर्णय किया है, (यह) वास्तविक विचार (की बात प्राप्त की है) कि परमात्मा का श्रेष्ठ नाम जपकर सारे सुख मिल जाते हैं, सुखों का खज़ाना प्राप्त हो जाता है। (परमात्मा का नाम) नरकों से बचा लेता है, सारे दु:ख दूर कर देता है, अनेकों ही क्लेश मिट जाते हैं। (जिस मनुष्य के हृदय में) परमात्मा की गुणस्तुति का प्रवेश रहता है, उसकी आत्मिक मौत मिट जाती है, वह यमराज से मुक्ति प्राप्त कर लेता है। यदि निरंकार-प्रभु के प्रेम-रंग में रँगे जाएँ तो (मन से हरेक प्रकार का) भय नष्ट हो जाता है और आत्मिक जीवन देनेवाला नाम-जल (हृदय में) मिल जाता है। परमात्मा के नाम के आसरे दु:ख, ग़रीबी और विकारों से पैदा हुई मलिनता—ये सब नष्ट हो जाते हैं। हे नानक ! दैवी गुणों वाले मनुष्य और ऋषि लोग जिस सुखों के समुद्र, सृष्टि के पालक प्रभु की खोज करते हैं, वह गुरु की चरणधूलि प्राप्त करने से मिल जाता है (और जिसे वह मिल जाता है, उसका) मन पवित्र हो जाता है (लोक-परलोक में उसका) मुँह उज्ज्वल होता है ।। ४ ।।

।। सलोकु ।। पंच बिकार मन महि बसे राचे माइआ संगि। साध संगि होइ निरमला नानक प्रभ कै रंगि ।। ५ ।।

।। पउड़ी ।। पंचमि पंच प्रधान ते जिह जानिओ परपंचु । कुसम बास बहु रंगु घणो सभ मिथिआ बल बंचु । नह जापै नह बूझीऐ नह कछु करत बीचारु । सुआद मोह रस बेधिओ अगिआनि रचिओ संसारु । जनम मरण बहु जोनि भ्रमण कीने करम अनेक । रचनहारु नह सिमरिओ मनि न बीचारि बिबेक । भाउ भगति भगवान संगि माइआ लिपत न रंच । नानक बिरले पाईअहि जो न रचहि परपंच ।। ५ ।।

।। सलोकु ।। हे नानक ! जो मनुष्य माया में मस्त रहते हैं, उनके मन में (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार) पाँच विकार टिके रहते हैं। परन्तु जो मनुष्य गुरु की संगति में (रहकर) परमात्मा के प्रेम-रंग में रँगा रहता है, वह पवित्र जीवनवाला हो जाता है ।। ५ ।। पउड़ी ।। (जगत् में) वे संतजन श्रेष्ठ माने जाते हैं, जिन्होंने इस जगत् के प्रसार को (इस प्रकार) समझ लिया है (कि यह) पुष्पों की सुगन्धि (जैसा है, और चाहे) अनेक रँगों वाला है, (फिर भी) सारा नाशवंत और ठगी ही है। जगत् (आम तौर पर) अज्ञान में मस्त रहता है, आस्वादनों में मोह लेनेवाले रसों में बँधा रहता है, इसे (सही जीवन-युक्ति) सूझती नहीं, यह समझता नहीं, और (सही जीवन-युक्ति के बारे में) कोई विचार नहीं करता। जिस मनुष्य ने सृजनहार कर्त्तार का स्मरण नहीं किया, अपने मन में विचारकर (भले-बुरे काम की) परख नहीं पैदा की और दूसरे-दूसरे काम करता रहा, वह जन्म-मरण के चक्र में पड़ा रहा, वह अनेकों योनियों में भटकता रहा। हे नानक ! (जगत् में ऐसे व्यक्ति) विरले ही मिलते हैं जो इस जगत्-प्रसार में नहीं फँसते, जिन पर माया अपना तनिकमात्र भी प्रभाव नहीं कर सकती और जो भगवान से प्रेम करते हैं, भगवान की भक्ति करते हैं ।। ५ ।।

।। सलोकु ।। खट सासत्र ऊचौ कहहि अंतु न पारावार । भगत सोहहि गुण गावते नानक प्रभ कै दुआर ।। ६ ।। ।। पउड़ी ।। खसटमि खट सासत्र कहहि सिम्रिति कथहि अनेक । ऊतमु ऊचौ पारब्रहमु गुण अंतु न जाणहि सेख । नारद मुनि जन सुक बिआस जसु गावत गोबिंद । रस गीधे हरि सिउ बीधे भगत रचे भगवंत । मोह मान भ्रमु बिनसिओ पाई सरनि दइआल । चरन कमल मनि तनि बसे दरसनु देखि निहाल । लाभु मिलै तोटा हिरै साध संगि लिव लाइ । खाटि खजाना गुण निधि हरे नानक नामु धिआइ ।। ६ ।।

॥ सलोकु ॥ छः शास्त्र उच्च स्वर से पुकार कर कहते हैं कि परमात्मा के गुणों का अन्त नहीं पाया जा सकता, परमात्मा के अस्तित्व का ओर-छोर नहीं मिल सकता। हे नानक ! परमात्मा की भक्ति करनेवाले व्यक्ति परमात्मा के द्वार पर उसके गुन गाते सुन्दर लगते हैं॥ ६ ॥
॥ पउड़ी ॥ छः शास्त्र (परमात्मा का स्वरूप) व्यक्त करते हैं, अनेक स्मृतियाँ (भी) व्यक्त करती हैं, (पर कोई उसके गुणों का अन्त नहीं पा सकता)। परमात्मा सर्वश्रेष्ठ तथा ऊंचा है, अनेकों शेषनाग भी उसके गुणों का अन्त नहीं जान सकते। नारद ऋषि, अनेक मुनिजन, सुखदेव और व्यास गोबिंद की गुणस्तुति करते हैं। भगवान के भक्त उसके नाम-रस में भीगे रहते हैं, उसकी याद में ओत-प्रोत रहते हैं और भक्ति में मस्त रहते हैं। जिन मनुष्यों ने दया के घर प्रभु का आसरा ले लिया, (उनके भीतर के माया का) मोह, अंधकार तथा भटकाव सब कुछ नष्ट हो गया। जिनके मन तथा हृदय में परमात्मा के सुन्दर चरण बस गए, परमात्मा का दर्शन करके उनका मन, तन प्रफुल्लित हो गया। सत्संगति के द्वारा प्रभु-चरणों में सुरति जोड़कर (उच्च आत्मिक जीवन-रूपी) लाभ प्राप्त किया जाता है (इससे आत्मिक जीवन में पड़ी हुई कमी दूर हो जाती है।) हे नानक ! तुम भी परमात्मा का नाम-स्मरण करो और गुणों के भण्डार परमात्मा के नाम का खज़ाना एकत्रित करो॥ ६ ॥

॥ सलोकु ॥ संत मंडल हरि जसु कथहि बोलहि सति सुभाइ। नानक मनु संतोखीऐ एकसु सिउ लिव लाइ॥ ७ ॥
॥ पउड़ी ॥ सपतमि संचहु नाम धनु टूटि न जाहि भंडार। संत संगति महि पाईऐ अंतु न पारावार। आपु तजहु गोबिंद भजहु सरनि परहु हरि राइ। दूख हरै भवजलु तरै मन चिंदिआ फलु पाइ। आठ पहर मनि हरि जपै सफलु जनमु परवाणु। अंतरि बाहरि सदा संगि करनैहारु पछाणु। सो साजनु सो सखा मीतु जो हरि की मति देइ। नानक तिसु बलिहारणै हरि हरि नामु जपेइ॥ ७ ॥

॥ सलोकु ॥ हे नानक ! संतजन (सदा) परमात्मा की गुणस्तुति करते हैं, प्रेम में टिककर सत्यस्वरूप प्रभु के गुण व्यक्त करते हैं (क्योंकि) एक परमात्मा में सुरति जोड़े रखने से मन शान्त रहता है॥ ७ ॥
॥ पउड़ी ॥ (हे भाई !) परमात्मा का नाम-धन एकत्रित करो। नाम-धन के खज़ाने कभी समाप्त नहीं होते हैं, (पर यह नाम-धन) सत्संगति में रहने से ही मिलता है, जिसके गुणों का अन्त नहीं मिलता, जिसके स्वरूप का ओर-छोर नहीं मिलता। (हे भाई !) आपा-भाव दूर करो, परमात्मा

का भजन करते रहो, प्रभु बादशाह की शरण लिए रहो, (जो मनुष्य प्रभु की शरण लिए रहता है, वह अपने सारे) दुःख दूर कर लेता है, संसार-समुद्र से पार उतर जाता है और मनोवांछित फल प्राप्त कर लेता है। (हे भाई !) जो मनुष्य आठों प्रहर अपने मन में परमात्मा का नाम लेता है, उसका मनुष्य-जन्म सफल हो जाता है, वह (परमात्मा के दरबार में) स्वीकृत हो जाता है, जो परमात्मा (हरेक जीव के) भीतर-बाहर सदा साथ है, वह सृजनहार प्रभु उस मनुष्य का मित्र बन जाता है। (हे भाई!) जो मनुष्य (हमें) परमात्मा (का नाम जपने) की शिक्षा देता है, वही (हमारा वास्तविक) मित्र है, साथी है। हे नानक ! (कह—) जो मनुष्य सदा हरि-नाम जपता है, मैं उस पर बलिहारी जाता हूँ ॥ ७ ॥

॥ सलोकु ॥ आठ पहर गुन गाईअहि तजीअहि अवरि जंजाल। जम कंकरु जोहि न सकई नानक प्रभू दइआल ॥ ८ ॥ ॥ पउड़ी ॥ असटमी असट सिधि नव निधि। सगल पदारथ पूरन बुधि। कवल प्रगास सदा आनंद। निरमल रीति निरोधर मंत। सगल धरम पवित्र इसनानु। सभ महि ऊच बिसेख गिआनु। हरि हरि भजनु पूरे गुर संगि। जपि तरीऐ नानक नाम हरि रंगि ॥ ८ ॥

॥ सलोकु ॥ हे नानक ! यदि आठों प्रहर (परमात्मा के) गुण गाए जाएँ और दूसरे सारे बन्धन छोड़ दिए जाएँ तो परमात्मा दयालु हो जाता है और यमदूत देख नहीं सकता ॥ ८ ॥ पउड़ी ॥ (नाम के प्रभाव से ही) आठों करामाती शक्तियाँ और दुनिया के नौ ख़ज़ाने आ जाते हैं, सारे पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं, वह बुद्धि प्राप्त हो जाती है, जो कभी विकृत नहीं होती। (परमात्मा का नाम एक ऐसा मन्त्र है, जिसका प्रभाव व्यर्थ नहीं जा सकता, इससे जीवन-युक्ति पवित्र हो जाती है।) (मन में) सदा चाव ही चाव टिका रहता है, (हृदय का) कमल-पुष्प खिल जाता है। (हे भाई ! परमात्मा का नाम ही) सारे धर्मों (का धर्म है, सारे तीर्थ-स्नानों से) पवित्र स्नान है। (नाम-स्मरण ही) सबसे ऊँचा ज्ञान है। हे नानक ! पूर्णगुरु की संगति में रहकर यदि हरिनाम का भजन किया जाए, (तो) परमात्मा के प्रेम-रंग में टिककर, हरि-नाम जपकर (संसार-समुद्र से) पार हुआ जाता है ॥ ८ ॥

॥ सलोकु ॥ नाराइणु नह सिमरिओ मोहिओ सुआद बिकार। नानक नामि बिसारिऐ नरक सुरग अवतार ॥ ९ ॥ ॥ पउड़ी ॥ नउमी नवे छिद्र अपवीत। हरिनामु न जपहि करत

बिपरीति। पर त्रिअ रमहि बकहि साध निंद। करन न सुनही हरि जसु बिंद। हिरहि परदरबु उदर कै ताई। अगनि न निवरै त्रिसना न बुझाई। हरि सेवा बिनु एह फल लागे। नानक प्रभ बिसरत मरि जमहि अभागे॥ ९॥

॥सलोकु॥ जिस मनुष्य ने कभी परमात्मा का नाम-स्मरण नहीं किया, वह सदा विकारों में, आस्वादनों में फँसा रहता है। हे नानक! यदि परमात्मा का नाम भुला दिया जाए तो नरक-स्वर्ग (भोगने के लिए बार-बार) जन्म लेने पड़ते हैं॥ ९॥ पउड़ी॥ जो मनुष्य परमात्मा का नाम नहीं जपते, वे विपरीत कर्म करते रहते हैं, (इसलिए उनके कान-नाक आदिक) नौ इन्द्रियाँ गन्दी हुई रहती हैं। (प्रभु के स्मरण से खाली मनुष्य) पराई स्त्रियाँ भोगते हैं और भले मनुष्यों की निन्दा करते रहते हैं, वे कभी तनिक-मात्र समय के लिए भी कानों से परमात्मा की गुणस्तुति नहीं सुनते। (स्मरणहीन व्यक्ति) अपना पेट भरने के लिए पराया धन चुराते रहते हैं, (फिर भी उनकी) लालच की अग्नि दूर नहीं होती, (उनके भीतर से) तृष्णा नहीं मिटती। हे नानक! परमात्मा की सेवा-भक्ति के बिना (उनके सारे प्रयासों को उपर्युक्त) ऐसे फल ही लगते हैं, परमात्मा को भुलाकर वे भाग्यहीन मनुष्य नित्य जन्म-मरण के चक्र में पड़े रहते हैं॥ ९॥

॥ सलोकु॥ दस दिस खोजत मै फिरिओ जत देखउ तत सोइ। मनु बसि आवै नानका जे पूरन किरपा होइ॥ १०॥ ॥ पउड़ी॥ दसमी दस दुआर बसि कीने। मनि संतोखु नाम जपि लीने। करनी सुनीऐ जसु गोपाल। नैनी पेखत साध दइआल। रसना गुन गावै बेअंत। मन महि चितवै पूरन भगवंत। हसत चरन संत टहल कमाईऐ। नानक इहु संजमु प्रभ किरपा पाईऐ॥ १०॥

॥ सलोकु॥ हे नानक! (कहो—वैसे तो) मैं जिधर देखता हूँ, उधर वह (परमात्मा) ही बस रहा है, (पर घर छोड़कर) दसों दिशाओं में ही मैं खोज रहा हूँ, (जंगल आदि में कहीं मन वश में नहीं आता); मन तब ही वश में आता है, यदि सब गुणों के मालिक परमात्मा की (अपनी) कृपा होवे॥ १०॥ पउड़ी॥ (जब परमात्मा की कृपा से मनुष्य) परमात्मा का नाम जपता है तो उसके मन में सन्तोष पैदा होता है, दसों ही इन्द्रियों को मनुष्य अपने काबू में कर लेता है। (प्रभु की कृपा द्वारा) कानों से सृष्टि के पालक प्रभु की गुणस्तुति सुनी जाती है, आँखों से दया के घर गुरु का दर्शन किया जाता है, जीभ अनन्त प्रभु के गुण गाने लगती है, और मनुष्य

अपने मन में सर्वव्यापक भगवान (के गुण) स्मरण करता है। हाथों से संतजनों के चरणों की सेवा की जाती है। हे नानक ! यह जीवन-युक्ति परमात्मा की कृपा से ही प्राप्त होती है ॥ १० ॥

॥ सलोकु ॥ एको एकु बखानीऐ बिरला जाणै स्वादु । गुण गोबिंद न जाणीऐ नानक सभ बिसमादु ॥ ११ ॥ ॥ पउड़ी ॥ एकादसी निकटि पेखहु हरि रामु । इंद्री बसि करि सुणहु हरि नामु । मनि संतोखु सरब जीअ दइआ । इन बिधि बरतु संपूरन भइआ । धावत मनु राखै इक ठाइ । मनु तनु सुधु जपत हरिनाइ । सभ महि पूरि रहे पारब्रहम । नानक हरि कीरतनु करि अटल एहु धरम ॥ ११ ॥

॥ सलोकु ॥ (हे भाई !) केवल एक परमात्मा की ही गुणस्तुति करनी चाहिए, (गुणस्तुति में ही आत्मिक आनन्द है पर) इस आत्मिक आनन्द को कोई विरला मनुष्य अनुभव करता है। गुणों (के वर्णन करने) से भी परमात्मा का सही स्वरूप नहीं समझा जा सकता (क्योंकि) हे नानक ! वह तो सारा आश्चर्यजनक रूप है ॥ ११ ॥ पउड़ी ॥ (हे भाई !) परमात्मा को (सदा अपने) निकट देखो, अपनी इन्द्रियों को काबू में रखकर परमात्मा का नाम सुना करो— यही है एकादशी (का व्रत)। (जो मनुष्य अपने) मन में सन्तोष (धारण करता है) और सब जीवों के साथ दया (सद्व्यवहार) करता है, इस तरीके से (जीवन गुजारते हुए उसका) व्रत सफल हो जाता है। (इस प्रकार के व्रत से वह मनुष्य विकारों की ओर) दौड़ते अपने मन को एक ठिकाने पर टिकाकर रखता है, परमात्मा का (नाम) जपते हुए (परमात्मा के) नाम में (जुड़ने से) उसका मन पवित्र हो जाता है, उसका हृदय पवित्र हो जाता है। हे नानक ! जो प्रभु सारे जगत् में सर्वत्र व्यापक है, उस प्रभु की गुणस्तुति करता रह, यह ऐसा धर्म है जिसका फल ज़रूर मिलता है ॥ ११ ॥

॥ सलोकु ॥ दुरमति हरी सेवा करी भेटे साध क्रिपाल । नानक प्रभ सिउ मिलि रहे बिनसे सगल जंजाल ॥ १२ ॥ ॥ पउड़ी ॥ दुआदसी दानु नामु इसनानु । हरि की भगति करहु तजि मानु । हरि अंम्रित पान करहु साध संगि । मन त्रिपतासै कीरतन प्रभ रंगि । कोमल बाणी सभ कउ संतोखै । पंच भूआतमा हरि नाम रसि पोखै । गुर पूरे ते एह निहचउ पाईऐ । नानक राम रमत फिरि जोनि न आईऐ ॥ १२ ॥

।। सलोकु ।। जो सौभाग्यशाली मनुष्य (सुबुद्धि देनेवाले) गुरु को मिले और जिन्होंने गुरु द्वारा बतलाई सेवा की, उन्होंने अपने भीतर से दुर्बुद्धि दूर कर ली। हे नानक ! जो व्यक्ति परमात्मा के चरणों में जुड़े रहते हैं, उनके सारे बन्धन समाप्त हो जाते हैं ।। १२ ।। पउड़ी ।। (हे भाई ! जनता की) सेवा करो, परमात्मा का नाम जपो, और, जीवन पवित्र रखो। अहंकार छोड़कर परमात्मा की भक्ति करते रहो। सत्संगति में मिलकर आत्मिक जीवन देनेवाला प्रभु का नाम-रस पीते रहो। परमात्मा के प्रेम-रंग में रँगकर परमात्मा की गुणस्तुति करने से (लौकिक पदार्थों की ओर से) तृप्ति रहती है। (गुणस्तुति की) मीठी वाणी हरेक (इन्द्रिय) को आत्मिक आनन्द देती है, (गुणस्तुति के प्रभाव से) मन पाँच तत्वों के सात्विक अंश द्वारा बनाया जाकर परमात्मा के नाम-रस में प्रफुल्लित होता है। हे नानक ! पूर्णगुरु से यह देन निश्चित तौर पर मिल जाती है और, परमात्मा का नाम-स्मरण करने से फिर योनियों में नहीं आया जाता ।।१२।।

।। सलोकु ।। तीनि गुणा महि बिआपिआ पूरन होत न काम। पतित उधारणु मनि बसै नानक छूटै नाम ।। १३ ।। ।। पउड़ी ।। त्रउदसी तीनि ताप संसार। आवत जात नरक अवतार। हरि हरि भजनु न मन महि आइओ। सुख सागर प्रभु निमख न गाइओ। हरख सोग का देह करि बाधिओ। दीरघ रोगु माइआ आसाधिओ। दिनहि बिकार करत स्रमु पाइओ। नैनी नीद सुपन बरड़ाइओ। हरि बिसरत होवत एह हाल। सरनि नानक प्रभ पुरख दइआल ।। १३ ।।

।। सलोकु ।। जगत् माया के तीन गुणों के दबाव में आया रहता है इसलिए (कभी भी इसकी) इच्छाएँ पूर्ण नहीं होतीं। हे नानक ! वही मनुष्य (इस माया के पंजे से) मुक्ति प्राप्त करता है, जिसके मन में परमात्मा का नाम बस जाता है, जिसके मन में वह परमात्मा आ बसता है जो विकारग्रस्त मनुष्यों को विकारों से बचाने की सामर्थ्य रखनेवाला है ।। १३ ।। पउड़ी ।। (हे भाई !) जगत् को तीन प्रकार के दुःख चिपटे रहते हैं, (जिससे यह) जन्म-मरण के चक्र में पड़ा रहता है, दुखों मे ही फँसा रहता है। (तीन तापों के कारण मनुष्य के) मन में परमात्मा का भजन नहीं टिकता, पलक झपकने के बराबर समय में भी मनुष्य सुखों के समुद्र प्रभु की गुणस्तुति नहीं करता। मनुष्य अपने आपको दुख-सुख का देह बनाकर बसाए बैठा है, इसे माया (के मोह) का ऐसा लम्बा रोग चिपटा हुआ है जो काबू में नहीं आ सकता। (तीनों तापों के दबाव के नीचे मनुष्य) सारा दिन व्यर्थ काम करता-करता थक जाता है, (रात को

जब) आँखों में नींद (आती है, तब) स्वप्नों में भी (दिन की भाग-दौड़ की) बातें करता है। परमात्मा को भुला देने के कारण मनुष्य का यह हाल होता है। हे नानक! (कहो—यदि इस दुःखदायक हालत से बचना है, तो) दया के स्रोत अकालपुरुष की शरण लो ॥ १३ ॥

॥ सलोकु ॥ चारि कुंट चउदह भवन सगल बिआपत राम। नानक ऊन न देखीऐ पूरन ता के काम ॥ १४ ॥ ॥ पउड़ी ॥ चउदहि चारि कुंट प्रभ आप। सगल भवन पूरन परताप। दसे दिसा रविआ प्रभु एकु। धरनि अकास सभ महि प्रभ पेखु। जल थल बन परबत पाताल। परमेस्वर तह बसहि दइआल। सूखम असथूल सगल भगवान। नानक गुरमुखि ब्रहमु पछान ॥ १४ ॥

॥ सलोकु ॥ चारों दिशाओं तथा चौदह लोक सर्वत्र परमात्मा बस रहा है। हे नानक! (उस परमात्मा के भण्डारों में) कोई कमी नहीं देखी जाती, उसके द्वारा किए सारे ही काम सफल होते हैं ॥ १४ ॥ ॥पउड़ी॥ चारों ओर परमात्मा आप बस रहा है। सारे भुवनों में उसका तेज-प्रताप चमकता है। केवल एक प्रभु ही दसों दिशाओं में बसता है। (हे भाई!) धरती, आकाश सब में बसते हुए परमात्मा को देखो। पानी, धरती, जंगल, पहाड़, पाताल— इन सब में दया के घर प्रभुजी बस रहे हैं। गोचर और अगोचर तमाम जगत् में परमात्मा मौजूद है। हे नानक! जो मनुष्य गुरु द्वारा बतलाए मार्ग पर चलता है वह परमात्मा को पहचान लेता है ॥ १४ ॥

॥ सलोकु ॥ आतमु जीता गुरमती गुण गाए गोबिंद। संत प्रसादी भै मिटे नानक बिनसी चिंद ॥ १५ ॥पउड़ी॥ अमावसि आतम सुखी भए संतोखु दीआ गुरदेव। मनु तनु सीतलु सांति सहज लागा प्रभ की सेव। टूटे बंधन बहु बिकार सफल पूरन ता के काम। दुरमति मिटी हउमै छुटी सिमरत हरि को नाम। सरनि गही पारब्रहम की मिटिआ आवागवन। आपि तरिआ कुटंब सिउ गुण गुबिंद प्रभ रवन। हरि की टहल कमावणी जपीऐ प्रभ का नामु। गुर पूरे ते पाइआ नानक सुख बिस्रामु ॥ १५ ॥

॥ सलोकु ॥ हे नानक! जिस मनुष्य ने गुरु की शिक्षा पर चलकर अपने आपको वश में किया और परमात्मा की गुणस्तुति की, गुरु की कृपा

से उसके सारे भय दूर हो गए और हरेक प्रकार की फ़िक्र नष्ट हो गई ।। १५ ।। पउड़ी ।। (हे भाई !) जिस मनुष्य को सतिगुरु ने संतोष दिया, उसकी आत्मा सुखी हो गई, (गुरु की कृपा से) वह परमात्मा की सेवा-भक्ति में लगा (जिससे) उसका हृदय शान्त (ठण्डा) हो गया, उसके भीतर शान्ति और आत्मिक स्थिरता पैदा हो गई। (हे भाई !) परमात्मा का नाम-स्मरण करने से अनेकों विकारों के बन्धन टूट जाते हैं, (जो मनुष्य स्मरण करता है) उसके सारे कार्य पूर्ण हो जाते हैं, उसकी दुर्बुद्धि समाप्त हो जाती है और उसे अहंभावना से मुक्ति मिल जाती है। (हे भाई !) जिस मनुष्य ने पारब्रह्म परमेश्वर का आसरा लिया, उसका जन्म-मरण समाप्त हो जाता है। गोबिंद प्रभु के गुणगान के प्रभाव से वह मनुष्य अपने परिवार सहित पार उतर जाता है। (हे भाई !) परमात्मा की सेवा-भक्ति करनी चाहिए, परमात्मा का नाम जपना चाहिए। हे नानक ! सारे सुखों का मूल वह प्रभु पूर्णगुरु के द्वारा मिल जाता है ।। १५ ।।

।। सलोकु ।। पूरनु कबहु न डोलता पूरा कीआ प्रभ आपि । दिनु दिनु चड़ै सवाइआ नानक होत न घाटि ।। १६ ।। ।। पउड़ी ।। पूरनमा पूरन प्रभ एकु करण कारण समरथु । जीअ जंत दइआल पुरखु सभ ऊपरि जा का हथु । गुण निधान गोबिंद गुर कीआ जा का होइ । अंतरजामी प्रभु सुजानु अलख निरंजन सोइ । पारब्रहमु परमेसरो सभ बिधि जानणहार । संत सहाई सरनि जोगु आठ पहर नमसकार । अकथ कथा नह बूझीऐ सिमरहु हरि के चरन । पतित उधारन अनाथ नाथ नानक प्रभ की सरन ।। १६ ।।

।। सलोकु ।। हे नानक ! जिस मनुष्य को परमात्मा ने आप पूर्ण जीवनवाला बना दिया है, वह पूर्ण मनुष्य कभी विचलित नहीं होता, उसका आत्मिक जीवन दिनों दिन उन्नति को प्राप्त होता है, उसके आत्मिक जीवन में कभी कमी नहीं होती ।। १६ ।। पउड़ी ।। केवल परमात्मा ही सारे गुणों से भरपूर है, सारे जगत् का मूल है और तमाम शक्तियों का स्वामी है। वह सर्वव्यापक प्रभु सब जीवों पर दयालु रहता है; सब जीवों पर उस (की सहायता) का हाथ है। वह परमात्मा सारे गुणों का खज़ाना है, सारी सृष्टि का पालक है, सर्वोच्च है, सब कुछ उसी का किया हुआ घटित होता है। प्रभु सबके मन की जाननेवाला है, बुद्धिमान है, उसका पूर्ण स्वरूप व्यक्त नहीं किया जा सकता, वह माया के प्रभाव से परे है। हे नानक !

परमात्मा के सारे गुण व्यक्त नहीं किए जा सकते, उसका सही स्वरूप समझा नहीं जा सकता। उस परमात्मा के चरणों का ध्यान कर। वह परमात्मा (विकारों में) गिरे व्यक्तियों को (विकारों से) बचानेवाला है, वह अनाथों का नाथ है, उसी का आसरा है ॥ १६ ॥

॥ सलोकु ॥ दुख बिनसे सहसा गइओ सरनि गही हरि राइ। मनि चिंदे फल पाइआ नानक हरिगुन गाइ ॥ १७ ॥ ॥ पउड़ी ॥ कोई गावै को सुणै कोई करै बीचारु। को उपदेसै को द्रिड़ै तिस का होइ उधारु। किलबिख काटै होइ निरमला जनम जनम मलु जाइ। हलति पलति मुखु ऊजला नह पोहै तिसु माइ। सो सुरता सो बैसनो सो गिआनी धनवंतु। सो सूरा कुलवंतु सोइ जिनि भजिआ भगवंतु। खत्री ब्राहमणु सूदु बैसु उधरै सिमरि चंडाल। जिनि जानिओ प्रभु आपना नानक तिसहि रवाल ॥ १७ ॥

॥ सलोकु ॥ हे नानक ! (जिस मनुष्य ने) प्रभु बादशाह का आसरा लिया, (उसके) सारे दुःख नष्ट हो गए। (उसका) भय दूर हो गया। परमात्मा के गुण गाकर (उसने) मन में सोचे हुए समस्त फल प्राप्त कर लिए ॥ १७ ॥ जो मनुष्य (परमात्मा के गुण) गाता है, जो (परमात्मा की गुणस्तुति) सुनता है, जो मनुष्य (परमात्मा के गुणों को अपने) मन में बसाता है जो दूसरों को (प्रभु-भक्ति का) उपदेश करता है और आप (उसकी गुणस्तुति को मन में) परिपक्व करके टिकाता है, उस मनुष्य का विकारों से बचाव हो जाता है। वह मनुष्य (अपने भीतर से) विकार दूर कर लेता है; उसका जीवन पवित्र हो जाता है; अनेकों जन्मों (के किए हुए विकारों) की मैल दूर हो जाती है। इस लोक में (भी और) परलोक में (भी उसका) मुँह उज्ज्वल रहता है (क्योंकि) माया उस पर अपना प्रभाव नहीं कर सकती। (हे भाई !) जिस (मनुष्य) ने भगवान का भजन किया है, वही ऊँचे कुलवाला है; (वही) शूरवीर है; वही (असली) धनवान है; वह परमात्मा से गहरे सम्बन्ध रखनेवाला है; वह पवित्र आचरण वाला है; वह प्रभु-चरणों में सुरति जोड़े रखनेवाला है।

कोई क्षत्री, ब्राह्मण, शूद्र, वैश्य, चांडाल किसी भी जाति का क्यों न हो; परमात्मा का नाम-स्मरण करके (विकारों से) बच जाता है। अिस मनुष्य ने (अपने) परमात्मा से गहरा सम्बन्ध बनाया है, नानक उसके चरणों की धूलि (माँगता है) ॥ १७ ॥

गउड़ी की वार महला ४ ॥

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ सलोक मः ४ ॥ सतिगुरु पुरखु दइआलु है जिस नो समतु सभु कोइ । एक द्रिसटि करि देखदा मन भावनी ते सिधि होइ । सतिगुर विचि अंम्रितु है हरि उतमु हरि पदु सोइ । नानक किरपा ते हरि धिआईऐ गुरमुखि पावै कोइ ॥ १ ॥ म० ४ ॥ हउमै माइआ सभ बिखु है नित जगि तोटा संसारि । लाहा हरि धनु खटिआ गुरमुखि सबदु वीचारि । हउमै मैलु बिखु उतरै हरि अंम्रितु हरि उर धारि । सभि कारज तिन के सिधि हहि जिन गुरमुखि किरपा धारि । नानक जो धुरि मिले से मिलि रहे हरि मेले सिरजणहारि ॥ २ ॥ ॥ पउड़ी ॥ तू सचा सहिबु सचु है सचु सचा गोसाई । तुधु नो सभ धिआइदी सभ लगै तेरी पाई । तेरी सिफति सुआलिउ सरूप है जिनि कीती तिसु पारि लघाई । गुरमुखा नो फलु पाइदा सचि नामि समाई । वडे मेरे साहिबा वडी तेरी वडिआई ॥ १ ॥

॥सलोकु म० ४॥ सतिगुरु सब जीवों पर कृपा करनेवाला है, उसे हरेक जीव एक समान है । वह सबकी ओर एक दृष्टि से देखता है; लेकिन सफलता अपने मन की भावना से होती है । सतिगुरु के पास हरि के श्रेष्ठ नाम का अमृत है, (पर) हे नानक ! यह हरि-नाम जीव, (प्रभु की) कृपा द्वारा स्मरण करता है, सतिगुरु के सम्मुख होकर कोई (भाग्यशाली) प्राप्त कर सकता है ॥१॥ ॥ महला ४ ॥ माया से उपजी अहंभावना बिल्कुल विष है, इसके पीछे लगने पर सदा जगत् में घाटा है । प्रभु के नाम-धन का लाभ सतिगुरु के सम्मुख रहकर शब्द के चिन्तन द्वारा प्राप्त (किया जा सकता) है, और अहंकार-मैल (रूपी) विष, प्रभु का अमृत-नाम हृदय में धारण करने से उतर जाता है । (यह नाम की देन प्रभु के हाथ में है), जिन गुरमुखों पर वह कृपा करता है, उनके सारे कर्म सफल हो जाते हैं, (उन्हें मनुष्य-जन्म के असली वाणिज्य में घाटा नहीं होता), (पर) हे नानक ! प्रभु को वही मिले हैं, जो प्रभु के दरबार से मिले हैं और जिन्हें सृजनहार प्रभु ने आप मिलाया है ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ हे प्रभु ! तू सदा स्थिर रहनेवाला मालिक है और पृथ्वी का सच्चा-सच्चा स्वामी है, सारी सृष्टि तेरा ध्यान करती है और सब जीव-जन्तु तेरे समक्ष सिर झुकाते हैं । तेरी गुणस्तुति एक सुन्दर करनी है; जिसने की है, उसे (संसार-सागर से) पार उतारती है । हे प्रभु ! जो

जीव सतिगुरु के सम्मुख रहते हैं; तुम उनकी साधना सफल करते हो, वे तेरे सच्चे नाम में लीन हो जाते हैं। हे मेरे मालिक (प्रभु ! जैसे) तुम आप हो (वैसी) तेरी महानता (भी) महान है ॥ १ ॥

॥ सलोक म० ४ ॥ विणु नावै होरु सलाहणा सभु बोलणु फिका सादु । मनमुख अहंकारु सलाहदे हउमै ममता वादु । जिन सालाहनि से मरहि खपि जावै सभु अपवादु । जन नानक गुरमुखि उबरे जपि हरि हरि परमानादु ॥ १ ॥ म० ४ ॥ सतिगुर हरि प्रभु दसि नामु धिआई मनि हरी । नानक नामु पवितु हरि मुखि बोली सभि दुख परहरी ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ तू आपे आपि निरंकारु है निरंजन हरि राइआ । जिनी तू इक मनि सचु धिआइआ तिन का सभु दुखु गवाइआ । तेरा सरीकु को नाही जिस नो लवै लाइ सुणाइआ । तुधु जेवडु दाता तू है निरंजना तू है सचु मेरै मनि भाइआ । सचे मेरे साहिबा सचे सचु नाइआ ॥ २ ॥

॥ सलोकु महला ४ ॥ हरि के नाम के अतिरिक्त किसी दूसरे की प्रशंसा करनी— यह बोलने का सारा (प्रयास) स्वादहीन काम है। मनमुख जीव अहंकार, अहंभावना और अपनत्व की बातों को पसन्द करते हैं, अर्थात् इनके आधार पर किसी मनुष्य की निंदा करते हैं और इनका सारा झगड़ा व्यर्थ जाता है। हे नानक ! सतिगुरु के सम्मुख रहनेवाले मनुष्य पूर्ण आनन्दस्वरूप प्रभु का स्मरण करके (परनिंदा या स्तुति के चाव से) बच निकलते हैं ॥ १ ॥ महला ४ ॥ हे सतिगुरु ! मुझे प्रभु की बातें सुना (जिससे) मैं हृदय में प्रभु का नाम-स्मरण कर सकूँ। हे नानक ! प्रभु का नाम पवित्र है, (इसलिए मन चाहता है कि मैं भी) मुँह से उच्चरित करके (अपने) सारे दुःख दूर कर लूँ ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ हे प्रकाश देनेवाले, माया से रहित प्रभु ! तुम आप ही निरंकार हो। हे सच्चे (स्वामी) ! जिन्होंने एकाग्रचित्त होकर तेरा स्मरण किया है, तूने उनका तमाम दुःख दूर कर दिया है। (संसार में) तेरी बराबरी करनेवाला कोई नहीं जिसे बराबरी देकर (तेरे जैसा) कहें। हे माया से रहित सच्चे हरि ! तेरे समान तू आप ही दाता है, तू ही मेरे मन में प्यारा लगता है। हे मेरे सच्चे साहिब ! तेरी महानता सत्यस्वरूप है ॥ २ ॥

॥ सलोक म० ४ ॥ मन अंतरि हउमै रोगु है भ्रमि भूले मनमुख दुरजना । नानक रोगु गवाइ मिलि सतिगुर साधू

सजना ॥ १ ॥ म० ४ ॥ मनु तनु रता रंग सिउ गुरमुखि हरि गुणतासु । जन नानक हरि सरणागती हरि मेले गुर साबासि ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ तू करता पुरखु अगंमु है किसु नालि तू वड़ीऐ । तुधु जेवडु होइ सु आखीऐ तुधु जेहा तू है पड़ीऐ । तू घटि घटि इकु वरतदा गुरमुखि परगड़ीऐ । तू सचा सभस दा खसमु है सभदू तू चड़ीऐ । तू करहि सु सचे होइसी ता काइतु कड़ीऐ ॥ ३ ॥

॥ सलोकु महला ४॥ जिनके मन में अहंकार का रोग है, वे स्वेच्छाचारी विकारी जीव भ्रम में भूले हुए हैं। हे नानक ! यह अहंकार का रोग सतिगुरु को मिलकर और सत्संग में रहकर दूर कर ॥ १ ॥ महला ४ ॥ सतिगुरु के सम्मुख रहनेवाले मनुष्य का मन और शरीर गुणनिधान हरि के प्रेम द्वारा रँगा रहता है। हे नानक ! जिस व्यक्ति को सतिगुरु की ओर से प्रेरणा मिलती है, प्रभु की शरण में आए उस मनुष्य को प्रभु (अपने साथ) मिला लेता है ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ हे प्रभु ! तुम (सारी सृष्टि के) रचयिता हो, (सृष्टि में) व्यापक हो और अगम्य हो। किसी से तुझे उपमित नहीं किया जा सकता। किसका नाम लें ? तेरे बराबर दूसरा कोई नहीं, तुझे ही तेरे समान कह सकते हैं। (हे हरि !) तुम हर एक शरीर में व्यापक हो, (पर यह बात) उनपर प्रकट (होती है) जो सतिगुरु के सम्मुख होते हैं। (हे प्रभु !) तुम सत्यस्वरूप, सबके मालिक हो और सबसे श्रेष्ठ हो। हे सच्चे (हरि !) यदि हमें यह निश्चय हो जाए कि) जो तुम करते हो वही होता है, तब हम क्यों दुखी हों ? ॥ ३ ॥

॥ सलोक म० ४ ॥ मै मनि तनि प्रेमु पिरंम का अठे पहर लगंनि । जन नानक किरपा धारि प्रभ सतिगुर सुखि वसंनि ॥ १ ॥ म० ४ ॥ जिन अंदरि प्रीति पिरंम की जिउ बोलनि तिवै सोहंनि । नानक हरि आपे जाणदा जिनि लाई प्रीति पिरंनि ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ तू करता आपि अभुलु है भुलण विचि नाही । तू करहि सु सचे भला है गुरसबदि बुझाही । तू करण कारण समरथु है दूजा को नाही । तू साहिबु अगमु दइआलु है सभि तुधु धिआही । सभि जीअ तेरे तू सभस दा तू सभ छडाही ॥ ४ ॥

॥ सलोकु महला ४ ॥ (मन चाहता है कि) आठों प्रहर लग जाएं (परन्तु) मेरे हृदय तथा शरीर में प्यारे का प्यार (लगा रहे); (क्योंकि)

हे नानक ! (जिन) मनुष्यों पर हरि (ऐसी) कृपा करता है, वे सतिगुरु के (दिए हुए) सुख में (सदा) रहते हैं ।। १ ।। महला ४ ।। जिनके हृदय में प्रभु का प्रेम है, वे जैसे बोलते हैं, वैसे ही शोभित होते हैं। हे नानक ! (इस भेद की जीव को समझ नहीं आ सकती) जिस परमात्मा ने यह प्रेम दिया है वह आप ही जानता है ।। २ ।। पउड़ी ।। हे सृजनहार प्रभु ! तुम आप अविस्मरणीय हो, विस्मृत नहीं होते। हे सच्चे ! सतिगुरु के शब्द द्वारा तुम यह समझाते हो, जो तुम आप करते हो, वह शुभ करते हो। हे हरि ! तेरा कोई (साझी) नहीं है और सृष्टि के इस सारे प्रपंच के कारण और कर्ता तुम ही सामर्थ्यवान हो। तुम दयालु मालिक हो (पर) तुम तक पहुँच नहीं हो सकती; सब जीव-जन्तु तुझे स्मरण करते हैं। सब जीव तेरे (बनाए हुए) हैं; तुम सबके मालिक हो, तुम सब को (दुखों से) आप बचाते हो ।। ४ ।।

।। सलोक म० ४ ।। सुणि साजन प्रेम संदेसरा अखी तार लगंनि। गुरि तुठै सजणु मेलिआ जन नानक सुखि सवंनि ।। १ ।। ।। म० ४ ।। सतिगुरु दाता दइआलु है जिस नो दइआ सदा होइ। सतिगुरु अंदरहु निरवैरु है सभु देखै ब्रहमु इकु सोइ। निरवैरा नालि जि वैरु चलाइदे तिन विचहु तिसटिआ न कोइ। सतिगुरु सभना दा भला मनाइदा तिस दा बुरा किउ होइ। सतिगुर नो जेहा को इछदा तेहा फलु पाए कोइ। नानक करता सभु किछु जाणदा जिदू किछु गुझा न होइ ।। २ ।। पउड़ी ।। जिस नो साहिबु वडा करे सोई वड जाणी। जिसु साहिब भावै तिसु बखसि लए सो साहिब मनि भाणी। जे को ओस दी रीस करे सो मूड़ अजाणी। जिस नो सतिगुर मेले सु गुण रवै गुण आखि वखाणी। नानक सचा सचु है बुझि सचि समाणी ।। ५ ।।

।। सलोकु महला ४ ।। सज्जन प्रभु का प्रेम भरा सन्देश सुनकर (जिनकी) आँखें आस में (दर्शनों की आशा में) लग जाती हैं; हे नानक ! गुरु ने प्रसन्न होकर उन्हें सज्जन प्रभु मिलाया है और वे सुख में टिके रहते हैं ।। १ ।। महला ४ ।। देनों का देनेवाला सतिगुरु दया का घर है, उसके (हृदय) में सदा दया (ही दया) है। सतिगुरु के (हृदय) में किसी के साथ वैर नहीं, वह सर्वत्र एक प्रभु को देख रहा है। जो मनुष्य निर्वैर के साथ वैर करते हैं, उनमें से शान्ति कभी किसी के हृदय में नहीं आई (और) सतिगुरु का बुरा तो हो नहीं सकता (क्योंकि) वह सबका भला सोचता है। जिस भावना से कोई जीव सतिगुरु के पास जाता है, उसे

वैसा फल मिल जाता है; क्योंकि हे नानक ! सृजनहार प्रभु से कोई बात छिपाई नहीं जा सकती, वह सब जानता है ।। २ ।। पउड़ी ।। जिस (जीव-स्त्री) की मालिक प्रशंसा करे, वही (स्त्री) महान समझी जानी चाहिए। जिसे चाहे प्रभु मालिक क्षमा कर लेता है और वह साहब के मन में प्यारी लगती है। वह (जीव-स्त्री) मूर्ख तथा बुद्धिहीन है, जो उससे होड़ लगाती है। जिसे सतिगुरु मिलाता है, (वही मिलती है और) (हरि की) गुणस्तुति उच्चरित करके (दूसरों को) सुनाती है। हे नानक ! प्रभु सदा स्थिर रहनेवाला है, (इस बात को भली प्रकार) समझकर (वह जीव-स्त्री) सच्चे प्रभु में लीन हो जाती है ।। ५ ।।

।। सलोक म० ४ ।। हरि सति निरंजन अमरु है निरभउ निरवैरु निरंकारु। जिन जपिआ इक मनि इक चिति तिन लथा हउमै भारु। जिन गुरमुखि हरि आराधिआ तिन संत जना जैकारु। कोई निंदा करे पूरे सतिगुरू की तिस नो फिटु फिटु कहै सभु संसारु। सतिगुर विचि आपि वरतदा हरि आपे रखणहारु। धनु धंनु गुरू गुण गावदा तिस नो सदा सदा नमसकारु। जन नानक तिन कउ वारिआ जिन जपिआ सिरजणहारु ।। १ ।। ।। म० ४ ।। आपे धरती साजीअनु आपे आकासु। विचि आपे जंत उपाइअनु मुखि आपे देइ गिरासु। सभु आपे आपि वरतदा आपे ही गुणतासु। जन नानक नामु धिआइ तू सभि किलविख कटे तासु ।। २ ।। पउड़ी ।। तू सचा साहिबु सचु है सचु सचे भावै। जो तुधु सचु सलाहदे तिन जम कंकरु नेड़ि न आवै। तिन के मुख दरि उजले जिन हरि हिरदै सचा भावै। कूड़िआर पिछाहा सटीअनि कूड़ु हिरदै कपटु महा दुखु पावै। मुह काले कूड़िआरीआ कूड़िआर कूड़ो होइ जावै ।। ६ ।।

।। सलोकु महला ४ ।। प्रभु सत्य है, माया से निर्लिप्त है, कालरहित, निर्भय, निर्वैर तथा आकार-रहित है, जिन्होंने एकाग्रमना होकर उसका स्मरण किया है, उनके मन से अहंकार का बोझ उतर गया है। (परन्तु) उन संतजनों को ही प्रशंसा मिलती है, जिन्होंने गुरु के सम्मुख होकर स्मरण किया है। जो पूर्ण सतिगुरु की निंदा करता है, उसे सारा (संसार) प्रताडित करता है, (वह निंदक सतिगुरु का कुछ बिगाड़ नहीं सकता, क्योंकि) प्रभु आप सतिगुरु में बसता है और वह आप रक्षा करनेवाला है। धन्य है गुरु जो हरि के गुण गाता है, उसके आगे सदा सिर झुकाना चाहिए। (कहो) हे नानक ! मैं बलिहारी हूँ, उन हरि के दासों पर जिन्होंने सृजनहार हरि

की आराधना की है ॥ १ ॥ महला ४ ॥ प्रभु ने आप ही धरती बनाई और आप ही आकाश। इस धरती में उसने जीव-जन्तु पैदा किए और आप ही (जीवों के) मुख में ग्रास देता है। गुणों का ख़ज़ाना (हरि) आप ही सब जीवों के अन्दर व्यापक है। हे दास नानक! तू प्रभु का नाम जप, (जिसने नाम जपा है) उसके सारे पाप प्रभु दूर करता है ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ हे हरि! तुम सच्चे तथा स्थिर रहनेवाले मालिक हो, तुम्हें सत्य ही प्यारा लगता है। हे सच्चे प्रभु! जो जीव तेरी गुणस्तुति करते हैं, यमदूत उनके निकट नहीं जाता। जिनके हृदय में सच्चा प्रभु प्यारा लगता है, उनके मुँह दरबार में उज्ज्वल होते हैं, (पर) झूठ का व्यापार करनेवालों के हृदय में झूठ तथा कपट होने के कारण वे पीछे फेंक दिए जाते हैं और बड़ा क्लेश उठाते हैं। झूठों के मुँह काले होते हैं (क्योंकि) उनके झूठ का निर्णय हो जाता है ॥ ६ ॥

॥ सलोक म० ४ ॥ सतिगुरु धरती धरम है तिसु विचि जेहा को बीजे तेहा फलु पाए। गुरसिखी अंम्रितु बीजिआ तिन अंम्रित फलु हरि पाए। ओना हलति पलति मुख उजले ओइ हरि दरगह सची पैनाए। इकन्हा अंदरि खोटु नित खोटु कमावहि ओहु जेहा बीजे तेहा फलु खाए। जा सतिगुरु सराफु नदरि करि देखै सुआवगीर सभि उघड़ि आए। ओइ जेहा चितवहि नित तेहा पाइनि ओइ तेहो जेहे दयि वजाए। नानक दुही सिरी खसमु आपे वरतै नित करि करि देखै चलत सबाए ॥ १ ॥ म० ४ ॥ इकु मनु इकु वरतदा जितु लगै सो थाइ पाइ। कोई गला करे घनेरीआ जि घरि वथु होवै साई खाइ। बिनु सतिगुर सोझी ना पवै अहंकारु न विचहु जाइ। अहंकारीआ नो दुख भुख है हथु तडहि घरि घरि मंगाइ। कूड़ु ठगी गुझी ना रहै मुलंमा पाजु लहि जाइ। जिसु होवै पूरबि लिखिआ तिसु सतिगुरु मिलै प्रभु आइ। जिउ लोहा पारसि भेटीऐ मिलि संगति सुवरनु होइ जाइ। जन नानक के प्रभ तू धणी जिउ भावै तिवै चलाइ ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ जिन हरि हिरदै सेविआ तिन हरि आपि मिलाए। गुण की साझि तिन सिउ करी सभि अवगण सबदि जलाए। अउगण विकणि पलरी जिसु देहि सु सचे पाए। बलिहारी गुर आपणे जिनि अउगण मेटि गुण परगटीआए। वडी वडिआई वडे की गुरमुखि आलाए ॥ ७ ॥

॥ सलोकु महला ४ ॥ (धरती के स्वभाव की तरह) सतिगुरु (भी) धर्म की भूमि है, जिस तरह का बीज कोई बोता है वैसा ही फल देता है। जिन गुरमुखों ने नाम-अमृत बोया है उन्हें प्रभु-प्राप्ति-रूपी अमृतफल ही मिल गया है। इस संसार तथा अगले लोक में वे निश्चिन्त होते हैं और प्रभु के सच्चे दरबार में उनका आदर होता है। जीवों के हृदय में खोट होने पर (वे) सदा खोटे कर्म करते हैं। ऐसा मनुष्य वैसा ही फल खाता है, (क्योंकि) जब सर्राफ़-सतिगुरु ध्यान से परखता है तो तमाम ही स्वार्थी प्रकट हो जाते हैं। जैसी उनके हृदय की भावना होती है, वैसा ही उन्हें फल मिलता है और पति प्रभु के द्वारा वे उसी तरह (पुरस्कृत या तिरस्कृत) कर दिए जाते हैं, (पर) हे नानक! (जीव के क्या वश ?) ये सारे कौतुक प्रभु आप सदा करके देख रहा है और दोनों ओर (गुरमुखों तथा स्वार्थियों में) आप ही परमात्मा मौजूद है ॥ १ ॥ महला ४ ॥ मन एक है और एक तरफ ही लग सकता है, जहाँ जुड़ता है वहाँ सफलता प्राप्त कर लेता है। चाहे बाहर से कोई बातें करे (लेकिन) जीव खा तो वही चीज़ सकता है जो घर होवे। मन सतिगुरु के अधीन हुए बिना (यह) समझ नहीं होती और हृदय से अहंकार दूर नहीं होता। अहंकारी जीवों को (सदा) तृष्णा तथा दुःख (सताते हैं), (तृष्णा के कारण) हाथ फैलाकर घर-घर माँगते फिरते हैं (अर्थात्, उनकी तृप्ति नहीं होती और इसलिए दुखी रहते हैं)। उनका मुलम्मा दिखावा उतर जाता है और झूठ तथा ठगी छिपी नहीं रह सकती, (लेकिन उन बेचारों के भी क्या वश ?) पिछले (कर्मों के अनुसार जिनके हृदय पर भले संस्कार) लिखे हुए हैं, उन्हें पूर्ण सतिगुरु मिल पड़ता है। जैसे पारस के स्पर्श से लोहा सोना बन जाता है, वैसे ही संगति में मिलकर (वे भी भले बन जाते हैं)। हे दास नानक के प्रभु! (जीवों के हाथ में कुछ नहीं) तुम आप सबके मालिक हो। जैसे तुझे भला लगता है वैसे ही तू जीवों को चलाता है ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ जिन जीवों ने हृदय में प्रभु का स्मरण किया, उन्हें प्रभु (अपने में) मिला लेता है, उनके साथ (उनके) गुणों की जिन्होंने खोज की है; उनके सारे पाप (गुरु-)शब्द द्वारा जलाए जाते हैं। (पर) हे सच्चे प्रभु! अवगुणों को पुआली के भाव बेचने (त्यागने) के लिए गुणों की यह देन उसे ही मिलती है, जिसे तू आप देता हो। मैं अपने सतिगुरु पर बलिहारी हूँ, जिसने (जीव के) पाप दूर करके गुण प्रकट किए हैं। जो जीव सतिगुरु के सम्मुख होता है, वही बड़े प्रभु की अत्यधिक गुणस्तुति करने लग जाता है ॥ ७ ॥

॥ सलोक म० ४ ॥ सतिगुर विचि वडी वडिआई जो अनदिनु हरि हरि नामु धिआवै। हरि हरि नामु रमत सुच संजमु हरि नामे ही त्रिपतावै। हरिनामु ताणु हरिनामु दीबाणु

हरि नामो रख करावै। जो चितु लाइ पूजे गुर मूरति सो मन इछे फल पावै। जो निंदा करे सतिगुर पूरे की तिसु करता मार दिवावै। फेरि ओह वेला ओसु हथि न आवै ओहु आपणा बीजिआ आपे खावै। नरकि घोरि मुहि कालै खड़िआ जिउ तसकरु पाइ गलावै। फिरि सतिगुर की सरणी पवै ता उबरै जा हरि हरि नामु धिआवै। हरिबाता आखि सुणाए नानकु हरि करते एवै भावै ॥ १ ॥ म० ४ ॥ पूरे गुर का हुकमु न मंनै ओहु मनमुखु अगिआनु मुठा बिखु माइआ। ओसु अंदरि कूड़ु कूड़ो करि बुझै अणहोदे झगड़े दयि ओस दै गलि पाइआ। ओहु गल फरोसी करे बहुतेरी ओस दा बोलिआ किसै न भाइआ। ओहु घरि घरि हंढै जिउ रंन दोहागणि ओसु नालि मुहु जोड़े ओसु भी लछणु लाइआ। गुरमुखि होइ सु अलिपतो वरतै ओस दा पासु छडि गुर पासि बहि जाइआ। जो गुरु गोपे आपणा सु भला नाही पंचहु ओनि लाहा मूलु सभु गवाइआ। पहिला आगमु निगमु नानकु आखि सुणाए पूरे गुर का बचनु उपरि आइआ। गुरसिखा वडिआई भावै गुर पूरे की मनमुखा ओह वेला हथि न आइआ ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ सचु सचा सभदू वडा है सो लए जिसु सतिगुरु टिके। सो सतिगुरु जि सचु धिआइदा सचु सचा सतिगुरु इके। सोई सतिगुरु पुरखु है जिनि पंजे दूत कीते वसि छिके। जि बिनु सतिगुर सेवे आपु गणाइदे तिन अंदरि कूड़ु फिटु फिटु मुह फिके। ओइ बोले किसै न भावनी मुह काले सतिगुर ते चुके ॥ ८ ॥

॥ सलोकु महला ४ ॥ सतिगुरु में यह भारी गुण है कि वह प्रतिदिन प्रभु-नाम का स्मरण करता है, सतिगुरु की पवित्रता और संयम हरि-नाम जाप है और वह हरि-नाम में ही तृप्त रहता है; हरि का नाम ही आसरा और नाम ही सतिगुरु के लिए रक्षक है। जो मनुष्य गुरु-मूर्ति का पूजन चित्त लगाकर करता है, उसे वही फल मिलता जाता है जिसकी मन में इच्छा करता है। जो मनुष्य पूर्ण सतिगुरु की निंदा करता है, उसे प्रभु प्रताड़ित कराता है, अपने हाथों से निंदा का बीज बोने का फल उसे भोगना पड़ता है, (लेकिन निंदा करने में) जो समय बीत गया है वह उसे नहीं मिलता। जैसे चोर को गले में रस्सी डालकर ले जाया जाता है वैसे काला मुँह करके (मानों) भयावह नरक में (उसे भी) डाला जाता है।

फिर इस (निंदा-रूपी घोर नरक से) तभी बचता है, जब सतिगुरु की शरण लेकर प्रभु का नाम जपे। नानक परमात्मा (के द्वार) की बातें कहकर सुना रहा है; परमात्मा को यों ही भाता है (कि निंदक ईर्ष्या के नरक में आप ही जले)॥ १॥ महला ४॥ जो मनुष्य पूर्ण सतिगुरु का हुक्म नहीं मानता, वह स्वेच्छाचारी, बुद्धिहीन व्यक्ति माया (रूपी ज़हर) का ठगा (हुआ है), उसके मन में झूठ है, (सच को भी वह) झूठ ही समझता है। इसलिए स्वामी ने (झूठ बोलने से पैदा हुए) व्यर्थ के झगड़े उसके गले में डाल दिए हैं, व्यर्थ बकवास करके रोटी कमाने के वह बहुत से यत्न करता है, लेकिन उसके वचन अच्छे नहीं लगते। परित्यक्ता औरत की तरह वह घर-घर फिरता है, जो मनुष्य उससे मेल-मुलाकात रखता है, उसे भी कलंक लग जाता है। जो मनुष्य सतिगुरु के सम्मुख होता है वह मनमुख से अलग रहता है, मनमुख का साथ छोड़कर सतिगुरु की संगति करता है। हे संतजनो! जो मनुष्य अपने सतिगुरु की निंदा करता है, वह भला नहीं, (मनुष्य जन्म में) जो प्राप्त करना था वह भी गवाँ देता है और मूल भी गवाँ देता है। नानक कहकर सुनाता है कि (गुरमुख के लिए) पहिला आगम-निगम है पूर्ण सतिगुरु का वचन, (जो) सर्वाधिक प्रामाणिक है। (इसलिए) गुरमुखों को पूर्ण सतिगुर की प्रशंसा अच्छी लगती है; (परन्तु) मनमुखों को गुरु की प्रशंसा समझने का वह समय हाथ नहीं आता॥ २॥ पउड़ी॥ सदा स्थिर रहनेवाला जो सच्चा सर्वोपरि प्रभु है, उस मनुष्य को मिलता है, जिसे सतिगुरु तिलक दे। सतिगुरु भी वही है जो सदा सच्चे प्रभु को स्मरण रखता है (और इस प्रकार) सच्चा प्रभु और सतिगुरु एक जैसे (हो गए हैं), इसने (कामादिक) पाँचों वैरी खींचकर वश में कर लिए हैं। जो मनुष्य सतिगुरु की सेवा से खाली रहते हैं और अपने आपको बड़ा कहलवाते हैं। उनके हृदय में झूठ होता है (इसलिए उनका) मुँह फीका रहता है। उन्हें सदा प्रताड़ना होती है, किसी को उनके वचन भले नहीं लगते हैं। उनके मुँह भी तिरस्कृत हुए होते हैं, (क्योंकि) वह सतिगुरु से भूले हुए हैं॥ ८॥

॥ सलोक म० ४॥ हरिप्रभ का सभु खेतु है हरि आपि किरसाणी लाइआ। गुरमुखि बखसि जमाईअनु मनमुखी मूलु गवाइआ। सभु को बीजे आपणे भले नो हरि भावै सो खेतु जमाइआ। गुरसिखी हरि अंम्रितु बीजिआ हरि अंम्रित नामु फलु अंम्रितु पाइआ। जमु चूहा किरस नित कुरकदा हरि करतै मारि कढाइआ। किरसाणी जंमी भाउ करि हरि बोहल बखस जमाइआ। तिन का काड़ा अंदेसा सभु लाहिओनु जिनी सतिगुरु

पुरखु धिआइआ। जन नानक नामु अराधिआ आपि तरिआ सभु जगतु तराइआ ॥ १ ॥ म० ४ ॥ सारा दिनु लालचि अटिआ मनमुखि होरे गला। राती ऊघै दबिआ नवे सोत सभि ढिला। मनमुखा दै सिरि जोरा अमरु है नित देवहि भला। जोरा दा आखिआ पुरख कमावदे से अपवित अमेध खला। कामि विआपे कुसुध नर से जोरा पुछि चला। सतिगुर कै आखिऐ जो चलै सो सत पुरखु भल भला। जोरा पुरस सभि आपि उपाइअनु हरि खेल सभि खिला। सभ तेरी बणत बणावणी नानक भल भला ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ तू वेपरवाहु अथाहु है अतुलु किउ तुलीऐ। से वडभागी जि तुधु धिआइदे जिन सतिगुरु मिलीऐ। सतिगुर की बाणी सति सरूपु है गुरबाणी बणीऐ। सतिगुर की रीसै होरि कचु पिचु बोलदे से कूड़िआर कूड़े झड़ि पड़ीऐ। ओन्हा अंदरि होरु मुखि होरु है बिखु माइआ नो झखि मरदे कड़ीऐ ॥ ६ ॥

॥ सलोकु महला ४ ॥ सारा संसार प्रभु की खेती है, (जिसमें) प्रभु ने (जीवों को) जोतने के काम में जोड़ा है। जो मनुष्य सतिगुरु के सम्मुख रहते हैं, उनकी (खेती) प्रभु ने कृपा करके उगा दी है, (पर) जो मनुष्य मन के पीछे भूले रहे उन्होंने मूल भी गवाँ दिया। (अपनी ओर से) प्रत्येक अपने भले के लिए बोता है। (पर) वह खेत अच्छा उगता है, (अर्थात्, वही कमाई सफल होती है), जो प्रभु को भली लगती है। सतिगुरु के सिक्ख अमर करनेवाले प्रभु का आत्मिक जीवन देनेवाला नाम बोते हैं और उन्हें हरि-नाम-रूपी अमृतफल की प्राप्ति हो जाती है। (मनमुखों की) खेती को जो यम (रूपी) चूहा सदा काटे जाता है, वह गुरमुखों का कुछ नहीं बिगाड़ सकता, (क्योंकि) सृजनहार प्रभु ने मारपीट कर उसे निकाल दिया है। (इसलिए गुरमुखों की) फसल प्रेम-पूर्वक उगती है और प्रभु की कृपा रूपी अनाज के दानों का ढेर लग जाता है। जो मनुष्य सतिगुरु पुरुष का ध्यान करते हैं, प्रभु ने उनका तमाम दुःख तथा फ़िक्र समाप्त कर दिया है। हे दास नानक! जो मनुष्य प्रभु-नाम का स्मरण करता है, वह आप पार हो जाता है और सारे संसार को पार कर लेता है ॥ १ ॥ महला ४ ॥ स्वेच्छाचारी मनुष्य सारा दिन लालच में लगकर दूसरी बातें करता फिरता है। (दिन का काम-काज करके थका हुआ) रात को नींद में घुट जाता है, उसकी सारी इन्द्रियाँ ढीली हो जाती हैं। (ऐसे) मनमुखों के सिर पर स्त्रियों का हुक्म चलता है और वह उन्हें सदा अच्छे-अच्छे पदार्थ लाकर देते हैं। जो मनुष्य स्त्रियों के कहने

में रहते हैं, वे (आम तौर पर) मलीन बुद्धि, बुद्धिहीन तथा मूर्ख होते हैं, (क्योंकि) जो विषय के मारे हुए गन्दे आचरण वाले होते हैं, वही स्त्रियों के कहने में चलते हैं। सच्चा तथा सर्वोत्कृष्ट मनुष्य वह है जो सतिगुरु के हुक्म-अनुसार चलता है। (पर, स्त्री अर्थात् मनमुख मनुष्य के क्या वश ?) सब स्त्रियाँ और पुरुष प्रभु ने आप पैदा किए हैं। हे नानक ! (कहो कि) हे प्रभु ! (संसार की) यह सारी रचना तेरी रची हुई है, जो कुछ तूने किया है सब भला है ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ हे प्रभु ! तुझे कैसे तोलें ? तुम बेपरवाह, अथाह तथा स्थिर हो। जिन्हें सतिगुरु मिलता है और जो तेरा स्मरण करते हैं, वे सौभाग्यशाली हैं। सतिगुरु की वाणी सच्चे प्रभु का स्वरूप है और सतिगुरु की वाणी के द्वारा (सत्यस्वरूप) बना जाता है। कई दूसरे झूठ के व्यापारी सतिगुरु की नकल करके अधकचरी वाणी उच्चरित करते हैं, पर वे (हृदय में) झूठ होने के कारण झड़ जाते हैं, (अर्थात् उनका आडम्बर थोड़ी देर बाद प्रकट हो जाता है), उनके हृदय में कुछ और होता है तथा मुँह पर कुछ और, वे विष-रूपी माया को एकत्र करने के लिए दुखी होते हैं और खप-खप कर मरते हैं) ॥ ९ ॥

॥ सलोक म० ४ ॥ सतिगुर की सेवा निरमली निरमल जनु होइ सु सेवा घाले। जिन अंदरि कपटु बिकारु झूठु ओइ आपे सचै वखि कढे जजमाले। सचिआर सिख बहि सतिगुर पासि घालनि कूड़िआर न लभनी कितै थाइ भाले। जिना सतिगुर का आखिआ सुखावै नाही तिना मुह भलेरे फिरहि दयि गाले। जिन अंदरि प्रीति नही हरि केरी से किचरकु वेराईअनि मनमुख बेताले। सतिगुर नो मिलै सु आपणा मनु थाइ रखै ओहु आपि वरतै आपणी वथु नाले। जन नानक इकना गुरु मेलि सुखु देवै इकि आपे वखि कढै ठगवाले ॥ १ ॥ म० ४ ॥ जिना अंदरि नामु निधानु हरि तिन के काज दयि आदे रासि। तिन चूकी मुहताजी लोकन की हरि प्रभु अंगु करि बैठा पासि। जां करता वलि ता सभु को वलि सभि दरसनु देखि करहि साबासि। साहु पातिसाहु सभु हरि का कीआ सभि जन कउ आइ करहि रहरासि। गुर पूरे की वडी वडिआई हरि वडा सेवि अतुलु सुखु पाइआ। गुरि पूरै दानु दीआ हरि निहचलु नित बखसे चड़ै सवाइआ। कोई निंदकु वडिआई देखि न सकै सो करतै आपि पचाइआ। जनु नानकु गुण बोलै करते के भगता नो सदा रखदा आइआ ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ तू साहिबु अगम दइआलु है वड

दाता दाणा । तुधु जेवडु मै होरु को दिसि न आवई तू हैं सुघडु मेरै मनि भाणा । मोहु कुटंबु दिसि आवदा सभु चलणहारा आवण जाणा । जो बिनु सचे होरतु चितु लाइदे से कूड़िआर कूड़ा तिन माणा । नानक सचु धिआइ तू बिनु सचे पचि पचि मुए अजाणा ॥ १० ॥

॥ सलोकु महला ४ ॥ सतिगुरु की सेवा पवित्र (कार्य) है, जो मनुष्य शुद्ध होवे वही यह कठिन कर्म कर सकता है। जिनके हृदय में धोखा, विकार तथा झूठ है, सच्चे प्रभु ने आप ही उन कोढ़ियों को (गुरु से) अलग कर दिया है। सत्य के व्यापारी सिक्ख तो सतिगुरु के पास बैठकर साधना करते हैं, लेकिन वहाँ झूठ के व्यापारी कहीं ढूँढने से भी नहीं मिलते। जिन मनुष्यों को सतिगुरु के वचन अच्छे नहीं लगते, उनके मुँह अपमानित हैं, वे परमात्मा-पति द्वारा तिरस्कृत हुए फिरते हैं। जिनके हृदय में प्रभु का प्रेम नहीं, उन्हें कब तक धैर्य दिया जा सकता है ? वे स्वेच्छाचारी व्यक्ति कुत्तों के समान ही (भटकते) हैं। जो मनुष्य सतिगुरु को मिलता है, वह अपने मन को (विकारों से) रोककर ठिकाने रखता है। दूसरे, अपनी वस्तु को वह आप ही इस्तेमाल करता है। (पर) हे दास नानक ! (जीव के हाथ में कुछ नहीं) कुछ को आप हरि सतिगुरु मिलाता है और सुख देता है और कुछ ठगी करनेवालों को अलग कर देता है॥ १ ॥ ॥ महला ५ ॥ जिनके हृदय में प्रभु का नाम-रूपी भण्डार है, पति प्रभु ने उनके काम आप पूर्ण किए हैं; (उन्हें) अन्य लोगों के आश्रय की आवश्यकता नहीं रहती, (क्योंकि) प्रभु उनको अपना कर (सदा) उनके साथ-साथ रहता है। सब लोग उनका दर्शन करके उनकी प्रशंसा करते हैं, (क्योंकि) जब सृजनहार प्रभु आप उनका पक्ष करता है तो प्रत्येक ही उनका पक्ष करेगा, (यहाँ तक कि) बादशाह (भी) हरि के दास के समक्ष सिर झुकाते हैं, (क्योंकि वे भी तो) सारे प्रभु के ही बनाए हुए हैं, (प्रभु के दास से विरोधी कैसे बना जाए ?) (यह) अद्भुत् महानता पूर्ण सतिगुरु की ही है (कि हरि के दास सर्वत्र पूज्य हैं, और वह) महान् हरि की सेवा करके अतुल सुख पाते हैं। पूर्ण सतिगुरु के द्वारा प्रभु ने (जो अपने नाम का) दान (अपने सेवक को) दिया है, वह समाप्त नहीं होता, क्योंकि प्रभु सदा कृपा किए जाता है और वह दान (दिनों-दिन) बढ़ता रहता है। जो कोई निंदक (ऐसे हरि के दास की) महानता देखकर सहन नहीं कर सकता, उसे सृजनहार ने आप (ईर्ष्या की आग में) दुखी किया है। मैं दास नानक सृजनहार के गुण गाता हूँ, वह अपने भक्तों की सदा रक्षा करता आया है॥ २ ॥ पउड़ी ॥ हे प्रभु ! तुम अगम्य तथा दयालु मालिक हो, बड़े दाता तथा चतुर हो; मुझे तेरे समान बड़ा दूसरा कोई दिखाई नहीं देता,

तुम ही बुद्धिमान मेरे मन में प्यारे लगे हो। (जो) मोह (रूपी) कुटुंब दिखाई देता है, सब नश्वर है और जन्म-मरण का कारण है, (इसलिए) सच्चे हरि के अतिरिक्त जो मनुष्य किसी दूसरे से मन जोड़ते हैं, वे झूठ के व्यापारी हैं और उनका इस पर अभिमान भी झूठा है। हे नानक ! सच्चे प्रभु का स्मरण कर, (क्योंकि) सच्चे प्रभु से खाली हुए मूर्ख जीव दुखी होकर आत्मिक मृत्यु चिपटाए रहते हैं ॥ १० ॥

॥ सलोक म० ४ ॥ अगोदे सत भाउ न दिचै पिछो दे आखिआ कंमि न आवै । अध विचि फिरै मनमुखु वेचारा गली किउ सुखु पावै । जिसु अंदरि प्रीति नही सतिगुर की सु कूड़ी आवै कूड़ी जावै । जे क्रिपा करे मेरा हरि प्रभु करता तां सतिगुरु पारब्रहमु नदरी आवै । ता अपिउ पीवै सबदु गुर केरा सभु काड़ा अंदेसा भरमु चुकावै । सदा अनंदि रहै दिनु राती जन नानक अनदिनु हरिगुण गावै ॥ १ ॥ म० ४ ॥ गुर सतिगुर का जो सिखु अखाए सु भलके उठि हरिनामु धिआवै । उदमु करे भलके परभाती इसनानु करे अंम्रितसरि नावै । उपदेसि गुरू हरि हरि जपु जापै सभि किलविख पाप दोख लहि जावै । फिरि चड़ै दिवसु गुरबाणी गावै बहदिआ उठदिआ हरिनामु धिआवै । जो सासि गिरासि धिआए मेरा हरि हरि सो गुरसिखु गुरू मनि भावै । जिस नो दइआलु होवै मेरा सुआमी तिसु गुरसिख गुरू उपदेसु सुणावै । जनु नानकु घूड़ि मंगै तिसु गुरसिख की जो आपि जपै अवरह नामु जपावै ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ जो तुधु सचु धिआइदे से विरले थोड़े । जो मनि चिति इकु अराधदे तिन की बरकति खाहि असंख करोड़े । तुधु नो सभ धिआइदी से थाइ पए जो साहिब लोड़े । जो बिनु सतिगुर सेवे खादे पैनदे से मुए मरि जंमे कोढ़े । ओइ हाजरु मिठा बोलदे बाहरि विसु कढहि मुखि घोले । मनि खोटे दयि विछोड़े ॥ ११ ॥

॥ सलोकु महला ४ ॥ स्वेच्छाचारी मनुष्य पहले तो गुरु (गुरु की शिक्षा) को आदर नहीं देता, पीछे उसके उपदेश का कोई लाभ नहीं होता, वह अभागा दुबिधा में ही भटकता है, (यदि श्रद्धा न होवे तो) केवल बातों से कैसे सुख मिल जाए ? जिसके हृदय में सतिगुरु का प्रेम नहीं, वह दिखावे के लिए (गुरु-द्वार पर) आता-जाता है। यदि मेरा सृजनहार प्रभु कृपा करे तो दिखाई दे जाता है कि सतिगुरु पारब्रह्म (का रूप) है

वह सतिगुरु का शब्द-रूपी अमृत पान करता है और दुःख, चिन्ता तथा दुबिधा सब समाप्त कर लेता है। हे नानक ! जो मनुष्य प्रतिदिन प्रभु के गुण गाता है, वह दिन-रात सदा सुख में रहता है।। १ ।। महला ४।। जो मनुष्य सतिगुरु का (सच्चा) सिक्ख कहलाता है, वह रोज़ सबेरे उठकर हरि-नाम का स्मरण करता है, वह रोज सवेरे उद्यम करता है, स्नान करता है (और फिर नाम-रूपी) अमृत के सरोवर में डुबकी लगाता है, सतिगुरु के उपदेश द्वारा प्रभु के नाम का जाप जपता है और (इस प्रकार) उसके सारे पाप-विकार उतर जाते हैं; फिर दिन चढ़ने पर सतिगुरु की वाणी का कीर्त्तन करता है और उठते-बैठते प्रभु का नाम स्मरण करता है। सतिगुरु के मन में वह सिक्ख भा जाता है, जो प्यारे प्रभु को हरदम याद करता है। जिसपर प्यारा प्रभु दयालु होता है, उस गुरमुख को सतिगुरु शिक्षा देता है। दास नानक (भी) उस गुरमुख की चरण-धूलि माँगता है, जो आप नाम जपता है तथा दूसरों को जपाता है।। २ ।। पउड़ी ।। हे सच्चे प्रभु ! वे बहुत थोड़े जीव हैं; जो तेरा स्मरण करते हैं। पुर्ण एकाग्रचित्त होकर जो मनुष्य एक प्रभु की आराधना करते हैं, उनकी कमाई अनन्त जीव खाते हैं। हे हरि ! (वैसे तो) सारी सृष्टि तेरा ध्यान करती है, पर स्वीकृत वे होते हैं, जिन्हें तुम पसन्द करते हो। सतिगुरु की सेवा से खाली रहकर जो मनुष्य खाने-पीने तथा पहनने के रसों में लगे हैं, वे कोढ़ी बार-बार जन्मते हैं। ऐसे मनुष्य सामने (तो) मीठी बातें करते हैं, (पर) बाद में विष घोलकर निकालते हैं। ऐसे मन से खोटे व्यक्तियों को पति ने (अपने से) अलग कर दिया है।। ११ ।।

।। सलोक म० ४।। मलु जूई भरिआ नीला काला खिधोलड़ा तिनि वेमुखि वेमुखै नो पाइआ। पासि न देई कोई बहणि जगत महि गूहपड़ि सगवी मलु लाइ मनमुखु आइआ। पराई जो निंदा चुगली नो वेमुखु करि कै भेजिआ ओथै भी मुहु काला दुहा वेमुखा दा कराइआ। तड़ सुणिआ सभतु जगत विचि भाई वेमुखु सणै नफरै पउली पउदी फावा होइ कै उठि घरि आइआ। अगै संगती कुड़मी वेमुखु रलणा न मिलै ता वहुटी भतीजीं फिरि आणि घरि पाइआ। हलतु पलतु दोवै गए नित भुखा कूके तिहाइआ। धनु धनु सुआमी करता पुरखु है जिनि निआउ सचु बहि आपि कराइआ। जो निंदा करे सतिगुर पूरे की सो साचै मारि पचाइआ। एहु अखरु तिनि आखिआ जिनि जगतु सभु उपाइआ ।। १ ।। म० ४ ।। साहिबु जिस का नंगा भुखा होवै तिस

दा नफरु किथहु रजि खाए। जि साहिब कै घरि वथु होवै सु नफरै हथि आवै अणहोदी किथहु पाए। जिस दी सेवा कीती फिरि लेखा मंगीऐ सा सेवा अउखी होई। नानक सेवा करहु हरि गुर सफल दरसन की फिरि लेखा मंगै न कोई ॥ २ ॥ ॥ पउड़ी ॥ नानक वीचारहि संत जन चारि वेद कहंदे। भगत मुखै ते बोलदे से वचन होवंदे। प्रगट पहारा जापदा सभि लोक सुणंदे। सुखु न पाइनि मुगध नर संत नालि खहंदे। ओइ लोचनि ओना गुणै नो ओइ अहंकारि सड़ंदे। ओइ विचारे किआ करहि जा भाग धुरि मंदे। जो मारे तिनि पारब्रहमि से किसै न संदे। वैरु करहि निरवैर नालि धरम निआइ पचंदे। जो जो संति सरापिआ से फिरहि भवंदे। पेडु मुंढाहूं कटिआ तिसु डाल सुकंदे ॥ १२ ॥

॥ सलोकु महला ४ ॥ मल तथा जूओं से भरा हुआ नीला तथा काला चोला उस बेमुख ने बेमुख पर डाल दिया, संसार में उसे कोई पास नहीं बैठने देता, गन्दगी में पड़कर बल्कि बहुत सी मैल लगाकर मनमुख (वापिस) आया। जो मनुष्य परनिन्दा तथा चुगली करने के लिए (सलाह) करके भेजा गया था, वहाँ भी दोनों का मुँह काला किया गया। संसार में सब ओर एकदम सुना गया कि हे भाई! बेमुख को नौकर समेत जूतियाँ (खानी) पड़ी और खूब हल्का होकर घर को उठ आया है। आगे संगतों और सम्बन्धियों में बेमुख को बैठना मिले (भी), तो फिर पत्नी तथा भतीजों ने लाकर घर में ठिकाना दिया, उसके लोक-परलोक दोनों व्यर्थ गए और (अब) भूखा तथा प्यासा रोता है। सृजनहार मालिक धन्य है, जिसने आप ध्यानपुर्वक सच्चा न्याय कराया है, (कि) जो मनुष्य पूर्ण सतिगुरु की निंदा करता है, सच्चा प्रभु उसे आप (आत्मिक मौत) मारकर दुखी करता है—(यह) न्याय का वचन उस प्रभु ने आप कहा है जिसने सारा संसार पैदा किया है ॥ १ ॥ महला ४ ॥ जिस नौकर का मालिक कंगाल होवे, उसके नौकर को कहाँ से तृप्त होकर खाना (नसीब) होना? नौकर को वही वस्तु मिल सकती है जो मालिक के घर में होवे, यदि घर में ही न होवे तो उसे कहाँ मिले? जिसकी सेवा करने पर भी लेखा माँगा जाना हो, वह सेवा कठिन है, (अर्थात्, उसके करने का क्या लाभ है?) हे नानक! जिस हरि तथा सतिगुरु का दर्शन (मनुष्य-जन्म को) सफल (करता) है, उसकी सेवा करो (ताकि) फिर कोई लेखा न माँगे ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ हे नानक! संत (अपनी) धारणा बतलाते हैं और चारों वेद कहते हैं (कि) भक्तजन जो वचन मुँह से बोलते हैं, वे सही बोलते हैं। (भक्त) सारे जगत् में प्रकट हो जाते हैं,

उनकी शोभा सारे लोग सुनते हैं। जो मूर्ख मनुष्य संतों से वैर करते हैं, वे सुख पाते हैं, (वे दोषी) जलते तो अहंकार में हैं, पर संतजनों के गुणों को तरसते हैं। इन दोषी मनुष्यों के वश में भी क्या है? आदिम समय से कुसंस्कार ही उनका भाग्य है। जो मनुष्य परमात्मा की ओर से मृत है, वे किसी के (सगे) नहीं। जो-जो मनुष्य संतों की ओर से तिरस्कृत हैं, वे भटकते फिरते हैं। जो वृक्ष जड़ से उखाड़ा जाए उसके टहने भी समाप्त हो जाते हैं ॥ १२ ॥

॥ सलोक म० ४ ॥ अंतरि हरि गुरू धिआइदा वडी वडिआई। तुसि दिती पूरै सतिगुरू घटै नाही इकु तिलु किसै दी घटाई। सचु साहिबु सतिगुरू कै वलि है ता झखि झखि मरै सभ लुोकाई। निंदका के मुह काले करे हरि करतै आपि वधाई। जिउ जिउ निंदक निंद करहि तिउ तिउ नित नित चड़ै सवाई। जन नानक हरि आराधिआ तिनि पैरी आणि सभ पाई ॥ १ ॥ ॥ म० ४ ॥ सतिगुर सेती गणत जि रखै हलतु पलतु सभु तिस का गइआ। नित झहीआ पाए झगू सुटे झखदा झखदा झड़ि पइआ। नित उपाव करै माइआ धन कारणि अगला धनु भी उडि गइआ। किआ ओहु खटे किआ ओहु खावै जिसु अंदरि सहसा दुखु पइआ। निरवैरै नालि जि वैरु रचाए सभु पापु जगतै का तिनि सिरि लइआ। ओसु अगै पिछै ढोई नाही जिसु अंदरि निंदा मुहि अंबु पइआ। जे सुइने नो ओहु हथु पाए ता खेहू सेती रलि गइआ। जे गुर की सरणी फिरि ओहु आवै ता पिछले अउगण बखसि लइआ। जन नानक अनदिनु नामु धिआइआ हरि सिमरत किलविख पाप गइआ ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ तू है सचा सचु तू सभदू ऊपरि तू दीबाणु। जो तुधु सचु धिआइदे सचु सेवनि सचे तेरा माणु। ओना अंदरि सचु मुख उजले सचु बोलनि सचे तेरा ताणु। से भगत जिनी गुरमुखि सालाहिआ सचु सबदु नीसाणु। सचु जि सचे सेवदे तिन वारी सद कुरबाणु ॥ १३ ॥

॥ सलोकु महला ४ ॥ सतिगुरु की प्रशंसा बहुत अधिक है, (क्योंकि वह) हरि को हृदय में स्मरण करता है; पूर्ण प्रभु ने प्रसन्न होकर (यह महानता) दी है (इसलिए) किसी के घटाने पर ज़रा भी नहीं घटती। जब सच्चा पति प्रभु सतिगुरु की रक्षा करता है तो सारी दुनिया (चाहे) जितनी खपे (उसका कोई कुछ भी नहीं बिगड़ सकता); सतिगुरु की महानता

सृजनहार ने आप बढ़ाई है और दोषियों के मुँह काले किए हैं। ज्यों-ज्यों निंदक मनुष्य सतिगुरु की निंदा करते, त्यों-त्यों सतिगुरु की महानता बढ़ती है। हे नानक! (सतिगुरु ने जिस) प्रभु का स्मरण किया है, उसने सारी दुनिया लाकर सतिगुरु के पैरों पर डाल दी है ॥ १ ॥ महला ४ ॥ जो मनुष्य सतिगुरु के साथ वैर रखता है, उसका लोक तथा परलोक समूचे ही व्यर्थ जाते हैं। (उसका वश नहीं चलता इसलिए वह) सदा क्षुब्ध होता है और दाँत पीसता है (और अन्त में) खपता-खपता नष्ट हो जाता है। (सतिगुरु का वह दोषी) सदा माया के लिए योजनाएँ बनाता है परन्तु उसका अगला (कमाया हुआ) भी हाथ से जाता रहता है। जिस मनुष्य के हृदय में दुःख तथा जलन हो उसे क्या खाना और क्या प्राप्त करना? जो मनुष्य निर्वैर के साथ वैर करता है, वह सारे संसार के पापों (का भार) अपने सिर पर लेता है, उसे लोक-परलोक में कोई आसरा नहीं देता। जिसके हृदय में तो निंदा होवे पर मुँह में मिठास हो, ऐसा खोटा मनुष्य यदि सोने को हाथ डाले, वह भी राख के साथ मिल जाता है। फिर भी (ऐसा पापी मनुष्य) यदि वह सतिगुरु के चरणों में गिर पड़े तो सतिगुरु उसके पिछले अवगुणों को क्षमा कर देता है। हे नानक! जो मनुष्य (सतिगुरु की शरण लेकर) हर रोज़ नाम जपता है, प्रभु को स्मरण करते हुए उसके सारे पाप दूर हो जाते हैं ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ हे सच्चे प्रभु! तुम ही सर्वोपरि आसरा हो। जो तेरा स्मरण करते हैं, तेरी सेवा करते हैं, उन्हें तेरा ही मान है। उसके हृदय में सत्य है (इसलिए उनके) माथे खिले रहते हैं और हे सच्चे हरि! वे तेरा सदा स्थिर रहनेवाला नाम उच्चरित करते हैं और तेरा ही उन्हें सहारा है। जो मनुष्य सतिगुरु के सम्मुख रहकर हरि की गुणस्तुति करते हैं, वही सच्चे भक्त हैं और उनके पास सच्चा शब्दरूपी निशान है। मैं उरपर बलिहारी हूँ, कुर्बान हूँ, जो सच्चे प्रभु को तन-मन से स्मरण करते हैं ॥ १३ ॥

॥ सलोक म० ४ ॥ धुरि मारे पूरै सतिगुरू सेई हुणि सतिगुरि मारे। जे मेलण नो बहुतेरा लोचीऐ न देई मिलण करतारे। सतसंगति ढोई ना लहनि विचि संगति गुरि वीचारे। कोई जाइ मिलै हुणि ओना नो तिसु मारे जमु जंदारे। गुरि बाबै फिटके से फिटे गुरि अंगदि कीते कूड़िआरे। गुरि तीजी पीड़ी वीचारिआ किआ हथि एना वेचारे। गुरु चउथी पीड़ी टिकिआ तिनि निंदक दुसट सभि तारे। कोई पुतु सिखु सेवा करे सतिगुरू की तिसु कारज सभि सवारे। जो इछै सो फलु पाइसी पुतु धनु लखमी खड़ि मेले हरि निसतारे। सभि निधान

सतिगुरू विचि जिसु अंदरि हरि उरधारे। सो पाए पूरा सतिगुरू जिसु लिखिआ लिखतु लिलारे। जनु नानकु मागै धूड़ि तिन जो गुरसिख मित पिआरे ॥ १ ॥ म० ४ ॥ जिन कउ आपि देइ वडिआई जगतु भी आपे आणि तिन कउ पैरी पाए। डरीऐ तां जे किछु आपदू कीचै सभु करता आपणी कला वधाए। देखहु भाई एहु अखाड़ा हरि प्रीतम सचे का जिनि आपणै जोरि सभि आणि निवाए। आपणिआ भगता की रख करे हरि सुआमी निंदका दुसटा के मुह काले कराए। सतिगुर की वडिआई नित चड़ै सवाई हरि कीरति भगति नित आपि कराए। अनदिनु नामु जपहु गुरसिखहु हरि करता सतिगुरु घरी वसाए। सतिगुर की बाणी सति सति करि जाणहु गुरसिखहु हरि करता आपि मुहहु कढाए। गुरसिखा के मुह उजले करे हरि पिआरा गुर का जैकारु संसारि सभतु कराए। जनु नानकु हरि का दासु है हरि दासन की हरि पैज रखाए॥ २ ॥ पउड़ी ॥ तू सचा साहिबु आपि है सचु साह हमारे। सचु पूजी नामु द्रिड़ाइ प्रभ वणजारे थारे। सचु सेवहि सचु वणंजि लैहि गुण कथह निरारे। सेवक भाइ से जन मिले गुर सबदि सवारे। तू सचा साहिबु अलखु है गुरसबदि लखारे ॥ १४ ॥

॥सलोकु महला ४॥ जो पहले से पूर्ण सतिगुरु द्वारा तिरस्कृत हुए हैं, वे अब (फिर) सतिगुरु की ओर से मारे गए हैं, (अर्थात् सतिगुरु की ओर से मनमुख हो गये हैं)। यदि उन्हें (सतिगुरु के साथ) मिलाने के लिए इच्छा भी करें (तो भी) सृजनहार उन्हें मिलने नहीं देता। उन्हें सत्संग में भी सहारा नहीं मिलता— गुरु ने भी संगति में यही विचार किया है। इस वक्त यदि कोई उनका जाकर साथी बने, उसे भी यमदूत प्रताड़ना करता है। जिन मनुष्यों को (गुरु नानकदेव) ने मनमुख नाम दिया, उन अहंकारियों को गुरु अंगद ने भी झूठा माना। तीसरे स्थान पर बैठे गुरु ने, जिसने चौथे स्थान पर बैठे हुए को गुरु प्रतिष्ठापित किया, सोचा कि इन कंगालों के क्या वश? इसलिए उसने निंदक और दुष्ट (भी) पार कर दिए। पुत्र होवे अथवा सिक्ख, जो कोई (भी) सतिगुरु की सेवा करता है, सतिगुरु उसके सारे कार्य सँवारता है— पुत्र, धन, लक्ष्मी जिस भी वस्तु की वह इच्छा करे, वही फल उसे मिलता है, (सतिगुरु) उसे ले जाकर प्रभु से मिलाता है और प्रभु (उसे) पार उतारता है। जिस सतिगुरु के हृदय में प्रभु टिका हुआ है, उसमें सारे ख़ज़ाने हैं। जिस (मनुष्य) के माथे पर

(पिछले किए गए भले कार्यों के संस्कार-रूप) लेख लिखे हुए हैं, वह पूर्ण सतिगुरु को मिल पड़ता है। (ऐसे) जो मित्र प्यारे गुरु के सिक्ख हैं, उनके चरणों की धूलि दास नानक (भी) माँगता है ॥ १ ॥ महला ४॥ जिन्हें प्रभु आप महानता देता है, उनके चरणों में सारे संसार को भी डाल देता है; (इस महानता को आता हुआ देखकर) तब डरें, यदि हम कुछ अपनी ओर से करते रहें, तो यह कर्त्तार अपनी कला आप बढ़ा रहा है। हे भाई! स्मरण रखो, जिस प्रभु ने अपने बल से सब जीवों को लाकर (सतिगुरु के समक्ष) झुकाया है, उस सच्चे प्रियतम का यह संसार (एक) अखाड़ा है, (जिसमें) वह स्वामी प्रभु अपने भक्तों की रक्षा करता है और निंदक दुष्टों के मुँह काले कराता है। सतिगुरु की महिमा सदा बढ़ती है, क्योंकि हरि अपनी कीर्ति तथा भक्ति सदा आप सतिगुरु से कराता है। हे गुरमुखो! हरवक्त नाम जपो (ताकि) सृजनहार हरि (ऐसा) सतिगुरु (तुम्हारे) हृदय में बसा देवे। हे गुरुमुखो! सतिगुरु की वाणी बिल्कुल सच समझो (क्योंकि) सृजनहार प्रभु आप यह वाणी सतिगुरु के मुँह से कहलवाता है। प्यारा हरि गुरमुखों के मुँह उज्ज्वल करता है और संसार में सर्वत्र सतिगुरु की जीत कराता है। दास नानक भी प्रभु का सेवक है; प्रभु अपने दासों की लाज आप रखता है ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ तू सदा स्थिर रहनेवाले शाह! तू आप ही सच्चा मालिक है, हे प्रभु हम तेरे वनजारे हैं, हमें यह सदा निश्चय करा कि नाम की पूँजी सदा स्थिर रहनेवाली है। वह मनुष्य सतिगुरु के शब्द द्वारा सुधर कर सेवक स्वभाववाले होकर उसे मिलते हैं जो सत्य नाम स्मरण करते हैं, सच्चे नाम का सौदा करते हैं और निराले प्रभु के गुण उच्चरित करते हैं। हे हरि! तुम सच्चे मालिक हो, तुम्हें कोई समझ नहीं सकता (परन्तु) सतिगुरु के शब्द द्वारा तेरी सूझ (पल्ले) पड़ती है ॥ १४ ॥

॥ सलोक म० ४ ॥ जिसु अंदरि ताति पराई होवै तिस दा कदे न होवी भला। ओस दै आखिऐ कोई न लगै नित ओजाड़ी पूकारे खला। जिसु अंदरि चुगली चुगलो वजै कीता करतिआ ओस दा सभु गइआ। नित चुगली करे अणहोदी पराई मुहु कढि न सकै ओस दा काला भइआ। करम धरती सरीरु कलिजुग विचि जेहा को बीजे तेहा को खाए। गला उपरि तपावसु न होई विसु खाधी ततकाल मरि जाए। भाई वेखहु निआउ सचु करते का जेहा कोई करे तेहा कोई पाए। जन नानक कउ सभ सोझी पाई हरि दर कीआ बाता आखि सुणाए ॥ १ ॥ म० ४ ॥ होदै परतखि गुरू जो विछुड़े तिन कउ

दरि ढोई नाही । कोई जाइ मिलै तिन निंदका मुह फिके थुक थुक मुहि पाही । जो सतिगुरि फिटके से सभ जगति फिटके नित भंभल भूसे खाही । जिन गुरु गोपिआ आपणा से लैदे ढहा फिराही । तिन की भुख कदे न उतरै नित भुखा भुख कूकाही । ओना दा आखिआ को ना सुणै नित हउले हउलि मराही । सतिगुर की वडिआई वेखि न सकनी ओन्हा अगै पिछै थाउ नाही । जो सतिगुरि मारे तिन जाइ मिलहि रहदी खुहदी सभ पति गवाही । ओइ अगै कुसटी गुर के फिटके जि ओसु मिलै तिसु कुसटु उठाही । हरि तिन का दरसनु ना करहु जो दूजै भाइ चितु लाही । धुरि करतै आपि लिखि पाइआ तिसु नालि किहु चारा नाही । जन नानक नामु अराधि तू तिसु अपड़ि को न सकाही । नावै की वडिआई वडी है नित सवाई चड़ै चड़ाही ॥ २ ॥ ॥म० ४॥ जि होंदै गुरू बहि टिकिआ तिसु जन की वडिआई वडी होई । तिसु कउ जगतु निविआ सभु पैरी पइआ जसु वरतिआ लोई । तिस कउ खंड ब्रहमंड नमसकारु करहि जिस कै मसतकि हथु धरिआ गुरि पूरै सो पूरा होई । गुर की वडिआई नित चड़ै सवाई अपड़ि को न सकोई । जनु नानकु हरि करतै आपि बहि टिकिआ आपे पैज रखै प्रभु सोई ॥ ३ ॥ पउड़ी ॥ काइआ कोटु अपारु है अंदरि हट नाले । गुरमुखि सउदा जो करे हरि वसतु समाले । नामु निधानु हरि वणजीऐ हीरे परवाले । विणु काइआ जि होरथै धनु खोजदे से मूड़ बेताले । से उझड़ि भरमि भवाईअहि जिउ झाड़ मिरगु भाले ॥ १५ ॥

॥सलोकु महला ४॥ जिसके हृदय में दूसरे के प्रति ईर्ष्या होवे, उसका अपना भी कभी भला नहीं होता, उसके वचन पर कोई विश्वास नहीं करता, वह सदा उजाड़ में खड़ा रोता है। जिस मनुष्य के हृदय में चुगली होती है, वह चुगलखोर (के नाम से) ही मशहूर हो जाता है, उसकी सारी की हुई कमाई व्यर्थ जाती है, वह सदा पराई झूठी चुगली करता है, इस लांछन के कारण वह किसी के सामने भी नहीं जा सकता (उसका मुँह काला हो जाता है)। इस मनुष्य-जन्म में शरीर कर्म- (रूपी बीज बोने के लिए) भूमि है, इसमें जिस तरह का बीज मनुष्य बोता है उसी तरह का फल खाता है, (कृत कर्मों का) निर्णय बातों द्वारा नहीं होता; यदि विष खाया जाए तो (अमृत की बातें करते हुए भी मनुष्य बच नहीं सकता),

तुरन्त मर जाता है। हे भाई! सच्चे प्रभु का न्याय देखो, जिस प्रकार का कोई कर्म करता है वैसा ही उसका फल पा लेता है। हे नानक! जिस दास को प्रभु यह समझने की सारी बुद्धि देता है, वह प्रभु के द्वार की ये बातें करके सुनाता है ।। १ ।। महला ४ ।। सतिगुरु के सामने होते हुए भी जो निंदक (गुरु से) बिछड़े रहते हैं, उन्हें दरबार में कोई सहारा नहीं मिलता। यदि कोई उनका साथ भी करता है, उसका भी मुँह फीका तथा काला होता है, (अर्थात् लोक उसे तिरस्कृत करते हैं) (क्योंकि) जो मनुष्य गुरु की ओर से बिछुड़े हुए हैं, वे संसार में भी तिरस्कृत हुए हैं और वे सदा भटकते फिरते हैं। जो मनुष्य प्यारे सतिगुरु की निंदा करते हैं, वे सदा (मानो) रोते फिरते हैं। उनकी तृष्णा कभी नहीं बुझती और सदा भूख-भूख चिल्लाते हैं, कोई उनकी बात का विश्वास नहीं करता (इसलिए) वे सदा चिन्ता-फ़िक्र में ही खपते हैं। जो मनुष्य सतिगुरु की महिमा नहीं सहन करते, उन्हें लोक-परलोक में ठिकाना नहीं मिलता। गुरु से बिछुड़े हुए व्यक्तियों को जो मनुष्य जाकर मिलते हैं, वह भी अपनी थोड़ी-बहुत प्रतिष्ठा गवाँ लेते हैं (क्योंकि) गुरु से वियुक्त वे तो पहले ही कोढ़ी हैं। जो भी व्यक्ति ऐसे व्यक्ति का साथ करता है, उसे भी कोढ़ चिपटा लेते हैं। (हे सिक्खो!) परमात्मा को मानकर, उनका दर्शन भी न करो जो (सतिगुरु को छोड़कर) माया के प्रेम में जोड़ते हैं। उनके साथ (उन्हें सुधारने के लिए) कोई उपाय सफल नहीं होता, क्योंकि कर्त्तार ने आदिकाल से ही (उनके द्वारा किए कर्मों के अनुसार ऐसे द्वैतभाव के संस्कार ही उनके मन में) लिखकर डाल दिए हैं। हे दास नानक! तुम नाम जपो, नाम जपनेवाले की बराबरी कोई नहीं कर सकता, नाम की महिमा महान् है, दिन-प्रतिदिन बढ़ती जाती है ।। २ ।। महला ४ ।। जिस मनुष्य को सतिगुरु ने आप बैठकर (अपनी ज़िन्दगी में) तिलक किया हो, उसकी बहुत शोभा होती है। उसके आगे सारा संसार झुकता है और उसके चरण छूता है। उसकी शोभा सारे जगत् में बिखर जाती है। जिस मस्तक पर पूर्ण सतिगुरु ने हाथ रखा होवे वह (मानो सब गुणों में) पूर्ण हो गया और समस्त खण्डों-ब्रह्माण्डों के जीव-जन्तु उसे नमस्कार करते हैं। सतिगुरु की महानता दिनों-दिन बढ़ती है, कोई मनुष्य उसकी बराबरी नहीं कर सकता, (क्योंकि) अपने सेवक नानक को सृजनहार प्रभु ने आप मान दिया है, (इसलिए) प्रभु आप ही (उसकी) लाज रखता है ।। ३ ।। पउड़ी ।। (मनुष्य-) शरीर एक सुन्दर किला है, जिसमें (सुन्दर) बाजार भी हैं, (अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों की दूकानों की पंक्तियाँ हैं)। (जो मनुष्य सतिगुरु के सम्मुख होकर व्यापार करता है, वह हरि का नाम-सौदा सँभाल लेता है। (शरीर-रूपी किले में ही) प्रभु के नाम के खज़ाना का व्यापार किया जा सकता है, (यही सौदे साथ-साथ निभनेवाले) हीरे तथा मूँगे हैं। जो

मनुष्य इस सौदे को शरीर के बिना किसी दूसरे स्थान पर खोजते हैं, वे मूर्ख हैं और (मनुष्य शरीर में आए हुए) भूत हैं। जैसे हरिण (कस्तूरी की सुगन्धि के लिए) झाड़ियों को खोजता फिरता है, वैसे ही ऐसे मनुष्य भ्रम में (फँसे हुए) वनों में घूमते-फिरते हैं ॥ १५ ॥

॥ सलोक म० ४ ॥ जो निंदा करे सतिगुर पूरे की सु अउखा जग महि होइआ। नरक घोरु दुख खूहु है ओथै पकड़ि ओहु ढोइआ। कूक पुकार को न सुणे ओहु अउखा होइ होइ रोइआ। ओनि हलतु पलतु सभु गवाइआ लाहा मूलु सभु खोइआ। ओहु तेली संदा बलदु करि नित भलके उठि प्रभि जोइआ। हरि वेखै सुणै नित सभु किछु तिदू किछु गुफा न होइआ। जैसा बीजे सो लुणै जेहा पुरबि किनै बोइआ। जिसु क्रिपा करे प्रभु आपणी तिसु सतिगुर के चरण धोइआ। गुर सतिगुर पिछै तरि गइआ जिउ लोहा काठ संगोइआ। जन नानक नामु धिआइ तू जपि हरि हरि नामि सुखु होइआ ॥ १ ॥ ॥ म० ४ ॥ वडभागीआ सोहागणी जिना गुरमुखि मिलिआ हरि राइ। अंतर जोति प्रगासीआ नानक नामि समाइ ॥ २ ॥ ॥ पउड़ी ॥ इहु सरीरु सभु धरमु है जिसु अंदरि सचे की विचि जोति। गुहज रतन विचि लुकि रहे कोई गुरमुखि सेवकु कढै खोति। सभु आतम रामु पछाणिआ तां इकु रविआ इको ओति पोति। इकु देखिआ इकु मंनिआ इको सुणिआ स्रवण सरोति। जन नानक नामु सलाहि तू सचु सचे सेवा तेरी होति ॥ १६ ॥

॥ सलोकु महला ४ ॥ जो मनुष्य पूर्ण सतिगुरु की निंदा करता है, वह संसार में (सारी उम्र) दुखी रहता है। दुखों का कुँआ-रूपी जो घोर नरक है, उस निंदक को पकड़कर उसमें डाला जाता है, (जहाँ) उसकी प्रार्थना पर कोई ग़ौर नहीं करता, और वह ज्यों-ज्यों दुखी होता है त्यों-त्यों (अधिक) रोता है। लोक-परलोक, भजन-रूपी लाभ और मनुष्य-जन्म-रूपी मूल —यह सब कुछ निंदक गवाँ देता है —तेली का बैल बनाकर नित्य नए सूरज की तरह वह प्रभु के हुक्म में लगाया जाता है। हरि सदा (यह) सब कुछ देखता और सुनता है, उससे कोई बात छुपी नहीं रह सकती। (यह प्रभु के हुक्म में ही है कि) जैसा बीज किसी जीव ने आदिमकाल से बोया है और जैसा अब बो रहा है, वैसा ही फल खाता है। जिस मनुष्य पर

प्रभु अपनी कृपा करे, वह सतिगुरु के चरण धोता है। जैसे लोहा काठ के साथ तैरता है, उसी प्रकार सतिगुरु के पदचिह्नों पर चलकर (संसार-सागर से) पार उतर जाता है। हे दास नानक! तुम नाम जपो (क्योंकि) प्रभु का नाम जपने से सुख मिलता है ॥ १ ॥ महला ४ ॥ सतिगुरु के सम्मुख रहकर जिन्हें प्रकाश-रूपी प्रभु मिल गया है, वे जीव-स्त्रियाँ सौभाग्यशालिनी तथा सुहागिनी हैं। हे नानक! नाम में लीन होने से उनके हृदय की ज्योति जाग पड़ती है ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ यह सारा (मनुष्य-) शरीर धर्म (कमाने का स्थान) है, इसमें सच्चे प्रभु की ज्योति छिपी हुई है। इस (शरीर) में (दैवी गुण-रूपी) गुप्त लाल छिपे हैं। सतिगुरु के सम्मुख होकर कोई विरला सेवक इन्हें खोदकर निकालता है। (जब वह सेवक यह लाल प्राप्त कर लेता है) तब एक प्रभु को सारी सृष्टि में (इस प्रकार) व्यापक पहचानता है, जैसे ताने-पेटे में एक धागा होता है। (तब वह सारे संसार में) एक हरि को ही देखता है, एक हरि पर ही भरोसा रखता है और अपने कानों से एक हरि की बातें सुनता है। हे दास नानक! तुम नाम की स्तुति करो, सचमुच तेरी यह सेवा प्रभु के द्वार पर स्वीकृत होवेगी ॥ १६ ॥

॥ सलोक म० ४ ॥ सभि रस तिन कै रिदै हहि जिन हरि वसिआ मन माहि। हरि दरगहि ते मुख उजले तिन कउ सभि देखण जाहि। जिन निरभउ नामु धिआइआ तिन कउ भउ कोई नाहि। हरि उतमु तिनी सरेविआ जिन कउ धुरि लिखिआ आहि। ते हरि दरगहि पैनाईअहि जिन हरि वुठा मन माहि। ओइ आपि तरे सभ कुटंब सिउ तिन पिछै सभु जगतु छडाहि। जन नानक कउ हरि मेलि जन तिन वेखि वेखि हम जीवाहि ॥ १ ॥ ॥ म० ४ ॥ सा धरती भई हरीआवली जिथै मेरा सतिगुरु बैठा आइ। से जंत भए हरीआवले जिनी मेरा सतिगुरु देखिआ जाइ। धनु धंनु पिता धनु धंनु कुलु धनु धनु सु जननी जिनि गुरू जणिआ माइ। धनु धंनु गुरू जिनि नामु अराधिआ आपि तरिआ जिनी डिठा तिना लए छडाइ। हरि सतिगुरु मेलहु दइआ करि जनु नानकु धोवै पाइ ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ सचु सचा सतिगुरु अमरु है जिसु अंदरि हरि उरि धारिआ। सचु सचा सतिगुरु पुरखु है जिनि कामु क्रोधु बिखु मारिआ। जा डिठा पूरा सतिगुरू तां अंदरहु मनु साधारिआ। बलिहारी गुर आपणे सदा सदा घुमि वारिआ। गुरमुखि जिता मनमुखि हारिआ ॥ १७ ॥

॥ सलोकु महला ४ ॥ जिनके हृदय में प्रभु बस गया है, तमाम रस उनके भीतर हैं। हरि के दरबार में वे प्रसन्नतापूर्वक जाते हैं और सभी मनुष्य उनका दर्शन चाहते हैं। जिन्होंने निर्भय प्रभु का नाम-स्मरण किया है, उन्हें कोई भय नहीं रह जाता; (पर यह) उत्तम प्रभु उन मनुष्यों ने ही स्मरण किया है, जिनके हृदय में आदिमकाल से (शुभ कर्मों के संस्कार) लिखे हुए हैं। जिनके मन में प्रभु बसता है, (अर्थात् प्रकट होता है) उन्हें उसके दरबार में आदर मिलता है। वे आप समूचे परिवार समेत (संसार-सागर से) पार उतर जाते हैं और अपने पदचिह्नों पर चलाकर सारे संसार को (विकारों से) बचा लेते हैं। हे हरि! (ऐसे अपने) व्यक्ति (दास) नानक को भी मिला। हम उन्हें देख-देखकर जीएँ ॥ १ ॥ ॥ महला ४ ॥ जिस भूमि पर प्यारा सतिगुरु आकर बैठा है, वह भूमि हरी-भरी हो गई है। वे जीव हरे हो गए हैं (अर्थात्, उन मनुष्यों के हृदय प्रसन्न हो गए हैं), जिन्होंने जाकर प्यारे सतिगुरु का दर्शन किया है। हे माँ! वह पिता भाग्यवान है, वह वंशावलि भाग्यशाली है, जिसने सतिगुरु को जाना है। वह सतिगुरु धन्य है जिसने प्रभु का नाम-स्मरण किया है, (नाम-स्मरण कर) वह आप पार उतरा है और जिन्होंने उसका दर्शन किया है, उन्हें भी (विकारों से) छुड़ा लेता है। हे हरि! कृपा करके मुझे भी ऐसा सतिगुरु मिलाइए, दास नानक उसके चरण धोए ॥ २ ॥ ॥ पउड़ी ॥ सतिगुरु सत्यस्वरूप अमर प्रभु का रूप है, (क्योंकि) उसने (हृदय से काम, क्रोध आदि) विष को निकाल दिया। जब मैंने पूर्ण सतिगुरु के दर्शन किये, तब मेरे में धैर्य हो गया (इसलिए) मैं अपने सतिगुरु पर सदा बलिहारी जाता हूँ। गुरु के सम्मुख रहनेवाला मनुष्य जीत जाता है और स्वेच्छाचारी हार जाता है ॥ १७ ॥

॥ सलोक म० ४ ॥ करि किरपा सतिगुरु मेलिओनु मुखि गुरमुखि नामु धिआइसी। सो करे जि सतिगुर भावसी गुरु पूरा घरी वसाइसी। जिन अंदरि नामु निधानु है तिन का भउ सभु गवाइसी। जिन रखण कउ हरि आपि होइ होर केती झखि झखि जाइसी। जन नानक नामु धिआइ तू हरि हलति पलति छोडाइसी ॥ १ ॥ म० ४ ॥ गुरसिखा कै मनि भावदी गुर सतिगुर की वडिआई। हरि राखहु पैज सतिगुरू की नित चड़ै सवाई। गुर सतिगुर कै मनि पारब्रहमु है पारब्रहमु छडाई। गुर सतिगुर ताणु दीबाणु हरि तिनि सभ आणि निवाई। जिनी डिठा मेरा सतिगुरु भाउ करि तिन के सभि पाप गवाई। हरि दरगह ते मुख उजले बहु सोभा पाई। जनु नानकु मंगै धूड़ि तिन जो गुर

के सिख मेरे भाई ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ हउ आखि सलाही सिफति सचु सचु सचे की वडिआई । सालाही सचु सलाह सचु सचु कीमति किनै न पाई । सचु सचा रसु जिनी चखिआ से त्रिपति रहे आघाई । इहु हरिरसु सेई जाणदे जिउ गूंगै मिठिआई खाई । गुरि पूरै हरि प्रभु सेविआ मनि वजी वाधाई ॥ १८ ॥

॥ सलोकु महला ४ ॥ जिस मनुष्य को कृपा करके उस प्रभु ने सतिगुरु मिलाया है, वह गुरु के सम्मुख होकर मुख से नाम स्मरण करता है, और वही कुछ करता है जो सतिगुरु को अच्छा लगता है। पूर्ण सतिगुरु उसके हृदय में (नामनिधान) बसा देता है। जिनके हृदय में नाम का ख़ज़ाना (बस जाता) है, सतिगुरु उनका सारा भय दूर कर देता है। जिनकी रक्षा करने के लिए प्रभु आप (तैयार) होवे, बाकी कितनी ही दुनिया खप-खप कर मर जाय (पर उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकती)। (इसलिए) हे नानक ! तुम नाम जपो, प्रभु इस लोक तथा परलोक में (हर प्रकार के भय से) बचा लेगा ॥ १ ॥ महला ४ ॥ गुरमुखों के मन में अपने सतिगुर की महानता प्यारी लगती है। हे प्रभु ! तुम सतिगुरु की प्रतिष्ठा रखते हो और सतिगुरु की महानता दिनों दिन बढ़ती है। जो पारब्रह्म (सब जीवों को विकार आदि से) बचा लेता है, वह पारब्रह्म गुरु सतिगुरु के मन में (सदा बसता) है। प्रभु ही सतिगुरु का बल तथा आसरा है, उस प्रभु ने ही सारे जीव सतिगुरु के समक्ष लाकर झुकाए हैं। जिन्होंने (हृदय में) प्रेम उपजाकर प्यारे सतिगुरु का दर्शन किया है, सतिगुरु उनके सारे पाप दूर कर देता है, हरि के दरबार में प्रसन्नतापूर्वक जाते हैं और उनकी बड़ी शोभा होती है। जो मेरे भाई सतिगुरु (ऐसे) सिक्ख हैं, दास नानक उनके चरणों की धूलि माँगता है ॥ २ ॥ ॥ पउड़ी ॥ (जिस) सच्चे प्रभु का मूल्यांकन कोई न कर सका, वह सच्चा प्रभु प्रशंसनीय है और उसकी प्रशंसा करनी, सदा साथ निभनेवाली करनी (कर्म) है, (इसलिए मेरी भी यह प्रार्थना है कि) मैं सच्चे प्रभु की सच्ची प्रशंसा और सच्चे गुण कह-कहकर स्तुति करूँ। जिन्होंने सच्चे प्रभु के नाम का स्वाद चखा है, वे (माया से) तृप्त होकर शान्त रहते हैं। इस आस्वाद को जानते भी वही हैं (पर व्यक्त नहीं कर सकते), जैसे गूंगा मिठाई खाता है (और स्वाद नहीं बता सकता)। पूर्ण सतिगुरु के द्वारा जिन्होंने प्रभु का नाम जपा है, उनके मन में उत्साह बना रहता है (अर्थात्, उनके मन प्रसन्न रहते है) ॥ १८ ॥

॥ सलोक म० ४ ॥ जिना अंदरि उमरथल सेई जाणनि सूलीआ । हरि जाणहि सेई बिरहु हउ तिन विटहु सद घुमि

घोलीआ। हरि मेलहु सजणु पुरखु मेरा सिरु तिन विटहु तल रोलीआ। जो सिख गुर कार कमावहि हउ गुलमु तिना का गोलीआ। हरि रंगि चलूलै जो रते तिन भिनी हरि रंगि चोलीआ। करि किरपा नानक मेलि गुर पहि सिरु वेचिआ मोलीआ ॥ १ ॥ म० ४ ॥ अउगणी भरिआ सरीरु है किउ संतहु निरमलु होइ। गुरमुखि गुण वेहाझीअहि मलु हउमै कढै धोइ। सचु वणंजहि रंग सिउ सचु सउदा होइ। तोटा मूलि न आवई लाहा हरि भावै सोइ। नानक तिन सचु वणंजिआ जिना धुरि लिखिआ परापति होइ ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ सालाही सचु सालाहणा सचु सचा पुरखु निराले। सचु सेवी सचु मनि वसै सचु सचा हरि रखवाले। सचु सचा जिनी अराधिआ से जाइ रले सच नाले। सचु सचा जिनी न सेविआ से मनमुख मूड़ बेताले। ओह आलु पतालु मुहहु बोलदे जिउ पीतै मदि मतवाले ॥ १९ ॥

॥ सलोक महला ४ ॥ (जैसे) जिनके शरीर में भीतर फोड़ा है, वे ही उसकी पीड़ा को जानते हैं (वैसे ही जिनके भीतर वियोग का दुःख है, वे ही उस पीड़ा को पहचानते हैं और) बिछोह से उपजे प्रेम को भी वही समझते हैं— मैं उन पर सदा बलिहारी हूँ। हे हरि! मुझे कोई ऐसा सज्जन व्यक्ति मिला। ऐसे व्यक्तियों की खातिर मेरा सिर उनके पैरों के नीचे झुक जाय। जो सिक्ख सतिगुरु की बताई हुई करनी करते हैं, मैं उनके गुलामों का गुलाम हूँ; जिनके मन प्रभु-नाम के गहरे रंग में रँगे हैं, उनके चोला (अर्थात् शरीर) प्रभु-प्रेम में भीगे हुए होते हैं। हे नानक! उन्हें प्रभु ने कृपा करके गुरु से मिलाया है और उन्होंने अपना सिर गुरु के आगे बेच दिया है ॥ १ ॥ महला ४ ॥ (प्रश्न) हे संतजनो! (यह) शरीर अवगुणों से भरा हुआ है, स्वच्छ कैसे हो सकता है? (उत्तर) सतिगुरु के सम्मुख होकर गुण खरीदे जाएँ, तो (इस प्रकार मनुष्य शरीर से) अहंकार-रूपी मैल कोई (भी) धोकर निकाल सकता है। जो मनुष्य प्रेम-पूर्वक सत्य को खरीदते हैं, इनका यह सौदा सदा साथ निभता है, (इस सौदे में) घाटा कभी होता ही नहीं; (और सौदे में से) लाभ (यह मिलता है) कि परमात्मा उनको प्रिय लगने लगता है। हे नानक! सच्चे नाम की खरीद वे मनुष्य करते हैं, जिन्हें (यह सच्चा नाम) आदिमकाल से (किए हुए भले कर्मों के संस्कारों के अनुसार) (हृदय में) लिखा हुआ मिलता है ॥ २ ॥ ॥ पउड़ी ॥ (मेरा हृदय चाहता है कि) जो निराला पुरुष सच्चा हरि है, उस सच्चे हरि की गुणस्तुति करूँ, उसकी की गई प्रशंसा सदा साथ निभती

है, (मन करता है कि) जो सच्चा हरि सबका रक्षक है, उसकी सेवा करूं और सच्चा हरि मेरे मन में निवास करे। जिन्होंने सचमुच सच्चे हरि की सेवा की है, वे उस सच्चे के साथ जा मिले हैं। जिन्होंने उस सच्चे हरि की सेवा नहीं की, वे मनमुख तथा भूत मुख से ऐसी बकवास करते हैं जैसे शराब पीने पर शराबी (बकवास करते हैं)॥ १९॥

॥ सलोक महल ३ ॥ गउड़ी रागि सुलखणी जे खसमै चिति करेइ। भाणै चलै सतिगुरू कै ऐसा सीगारु करेइ। सचा सबदु भतारु है सदा सदा रावेइ। जिउ उबली मजीठै रंगु गहगहा तिउ सचे नो जीउ देइ। रंगि चलूलै अति रती सचे सिउ लगा नेहु। कूड़ु ठगी गुझी ना रहै कूड़ु मुलंमा पलेटि धरेहु। कूड़ी करनि वडाईआ कूड़े सिउ लगा नेहु। नानक सचा आपि है आपे नदरि करेइ॥ १॥ म० ४॥ सत संगति महि हरि उसतति है संगि साधू मिले पिआरिआ। ओइ पुरख प्राणी धंनि जन हहि उपदेसु करहि पर उपकारिआ। हरि नामु द्रिड़ावहि हरिनामु सुणावहि हरिनामे जगु निसतारिआ। गुर वेखण कउ सभु कोई लोचै नवखंड जगति नमसकारिआ। तुधु आपे आपु रखिआ सतिगुर विचि गुरु आपे तुधु सवारिआ। तू आपे पूजहि पूज करावहि सतिगुर कउ सिरजणहारिआ। कोई विछुड़ि जाइ सतिगुरू पासहु तिसु काला मुहु जमि मारिआ। तिसु अगै पिछै ढोई नाही गुरसिखी मनि वीचारिआ। सतिगुरू नो मिले सेई जन उबरे जिन हिरदै नामु समारिआ। जन नानक के गुरसिख पुतहहु हरि जपिअहु हरि निसतारिआ॥ २॥ ॥ महला ३॥ हउमै जगतु भुलाइआ दुरमति बिखिआ बिकार। सतिगुरु मिलै त नदरि होइ मनमुख अंध अंधिआर। नानक आपे मेलि लए जिस नो सबदि लाए पिआरु॥ ३॥ पउड़ी॥ सचु सचे की सिफति सलाह है सो करे जिसु अंदरु भिजै। जिनी इक मनि इकु अराधिआ तिन का कंधु न कबहू छिजै। धनु धनु पुरख साबासि है जिन सचु रसना अंम्रितु पिजै। सचु सचा जिन मनि भावदा से मनि सची दरगह लिजै। धनु धंनु जनमु सचिआरीआ मुख उजल सचु करिजै॥ २०॥

॥ सलोकु महला ३॥ (जीव-रूपी स्त्री) गउड़ी रागिनी द्वारा तभी

सुलक्षणा हो सकती है, जब प्रभु-पति को हृदय में बसाए; सतिगुरु की इच्छानुसार चले— ऐसा शृंगार करे; सच्चा शब्द (रूपी जो) पति (है), उसका सदा आनन्द ले (अर्थात्, सदा उसे जपे)। जैसे मजीठ उबाल सहन करती है और उसका रंग गहरा लाल हो जाता है, वैसे (जीव-रूप स्त्री) अपना आपा पति पर न्योछावर करे; (इसे भी नाम का गहरा रंग चढ़ जाए) तो उसका सच्चे प्रभु के साथ प्रेम हो जाता है, वह (नाम के) गहरे रंग में रँग जाती है। मिथ्या (रूपी) मुलम्मा (बेशक सत्य के साथ) लपेटकर रखो, (फिर भी) जो झूठ और ठगी है, वे छिपे नहीं रह सकते। (हृदय में ठगी रखनेवाले व्यर्थ ही) झूठी प्रशंसा करते हैं, उनका प्रेम झूठ के साथ ही होता है (और यह बात छिपी नहीं रहती)। (पर) हे नानक ! (यह किसी के बस में नहीं), जो हरि सच्चा आप है वही कृपा करता है, (उसी के द्वारा हृदय से ठगी दूर की जा सकती है) ॥ १ ॥ ॥ महला ४ ॥ सत्संग में परमात्मा की गुणस्तुति होती है (क्योंकि) वहाँ प्यारे (संतजन) सतिगुरु के साथ मिलते हैं। वे मनुष्य सौभाग्यशाली हैं (क्योंकि) वे परोपकार के लिए (दूसरों को भी) उपदेश करते हैं, प्रभु के नाम में विश्वास रखते हैं, प्रभु का नाम ही सुनाते हैं, और प्रभु के नाम के द्वारा ही संसार का उद्धार करते हैं। (यह ईश्वरीय प्रभाव सुनकर) हरेक जीव सतिगुरु के दर्शनों की इच्छा करता है और संसार में नवों खण्डों (के जीव) सतिगुरु के समक्ष शीश झुकाते हैं। सतिगुरु को पैदा करनेवाले हे प्रभु ! तूने अपना आप सतिगुरु में छिपा रखा है और तूने आप ही सतिगुरु को सुन्दर बनाया है। तुम आप ही सतिगुरु को महानता देते हो और आप ही (दूसरों से गुरु की) प्रशंसा कराते हो। जो मनुष्य सतिगुरु से बिछुड़ जाए, उसका मुँह काला होता है और यमराज की ओर से उसे मार पड़ती है (अर्थात्, एक तो दुनिया में वह बदनामी पाता है और दूसरे उसे मृत्यु का भय बना रहता है)। उसे न इस लोक में और न परलोक में, कहीं भी आसरा नहीं मिलता— सब गुरमुखों ने मन में यह विचार किया है। जो मनुष्य सतिगुरु को जा मिलते हैं, वे (संसार-सागर से) बच जाते हैं, क्योंकि वे हृदय में नाम को सँभालते हैं। (इसलिए प्रभु के) दास नानक के सिक्ख पुत्रो ! प्रभु का नाम जपो, (क्योंकि) प्रभु संसार से पार उतारता है ॥ २ ॥ महला ३ ॥ अहंभावना ने जगत् को कुमार्गगामी किया हुआ है, (वह) दुर्बुद्धि तथा माया में (फँसकर) विकारग्रस्त रहता है। जिस मनुष्य को गुरु मिलता है, उसपर (प्रभु की कृपा की) दृष्टि होती है, स्वेच्छाचारी मनुष्य अन्धे रहते हैं। हे नानक ! हरि जिस मनुष्य का प्रेम 'शब्द' में लगाता है, उसे हरि आप ही अपने साथ मिला लेता है ॥ ३ ॥ ॥ पउड़ी ॥ सच्चे प्रभु की गुणस्तुति सदा स्थिर रहनेवाली है; (यह गुणस्तुति) वह मनुष्य कर (सकता) है, जिसका हृदय (भी) (प्रशंसा में)

भीगा हुआ हो। जो मनुष्य एकाग्रचित्त होकर एक हरि का स्मरण करते हैं, उनका शरीर कभी क्षीण नहीं होता (अर्थात् विकारग्रस्त नहीं होता)। वे मनुष्य धन्य हैं, वे धन्य हैं, जो जिह्वा से सच्चा नाम-रूपी अमृत पीते हैं। जिनके मन में सच्चा हरि सचमुच प्यारा लगता है, वे सच्चे दरबार में सम्मानित होते हैं। सत्य के व्यापारियों का मनुष्य-जन्म सफल है, (क्योंकि दरबार में) वे सर्वथा निश्चिन्त किए जाते हैं ।। २० ।।

।। सलोक म० ४ ।। साकत जाइ निवहि गुर आगै मनि खोटे कूड़ि कूड़िआरे। जा गुरु कहै उठहु मेरे भाई बहि जाहि घुसरि बगुलारे। गुर सिखा अंदरि सतिगुरु वरतै चुणि कढे लधोवारे। ओइ अगै पिछै बहि मुहु छपाइनि न रलनी खोटेआरे। ओना दा भखु सु ओथै नाही जाइ कूडु लहनि भेडारे। जे साकतु नरु खावाईऐ लोचीऐ बिखु कढै मुखि उगलारे। हरि साकत सेती संगु न करीअहु ओइ मारे सिरजणहारे। जिस का इहु खेलु सोई करि वेखै जन नानक नामु समारे ।। १ ।। म० ४ ।। सतिगुरु पुरखु अगंमु है जिसु अंदरि हरि उरि धारिआ। सतिगुरू नो अपड़ि कोइ न सकई जिसु वलि सिरजणहारिआ। सतिगुरू का खड़गु संजोउ हरि भगति है जितु कालु कंटकु मारि विडारिआ। सतिगुरू का रखणहारा हरि आपि है सतिगुरू कै पिछै हरि सभि उबारिआ। जो मंदा चितवै पूरे सतिगुरू का सो आपि उपावणहारै मारिआ। एह गल होवै हरि दरगह सचे की जन नानक अगमु वीचारिआ ।। २ ।। पउड़ी ।। सचु सुतिआ जिनी अराधिआ जा उठे ता सचु चवे। से बिरले जुग महि जाणीअहि जो गुरमुखि सचु रवे। हउ बलिहारी तिन कउ जि अनदिनु सचु लवे। जिन मनि तनि सचा भावदा से सची दरगह गवे। जनु नानकु बोलै सचु नामु सचु सचा सदा नवे ।। २१ ।।

।। सलोक महला ४ ।। यदि नास्तिक मनुष्य सतिगुरु के समक्ष जा झुकें (तो भी) मन से खोटे (रहते हैं) और खोटे होने के कारण झूठ के व्यापारी बने रहते हैं। जब सतिगुरु (सब सिक्खों को) कहता है— 'हे मेरे भाइयो, सचेत हूजिए !' (तो यह नास्तिक भी) बगुलों के समान (सिक्खों में) मिलकर बैठ जाते हैं। (पर नास्तिकों के हृदय में झूठ बसता है) और गुरमुखों के हृदय में सतिगुरु बसता है, (इसलिए सिक्खों में मिलकर बैठे हुए भी नास्तिक) जाँच-पड़ताल के समय चुनकर निकाले

जाते हैं। वे आगे-पीछे होकर मुँह तो बहुत छिपाते हैं लेकिन झूठ के व्यापारी (सिक्खों में) मिल नहीं सकते। नास्तिकों का भोजन (गुरमुखों के साथ में) नहीं होता, (इसलिए) भेड़ों के समान (किसी और स्थान पर) जाकर झूठ को प्राप्त करते हैं। यदि नास्तिक मनुष्य को (नाम-रूपी) भला पदार्थ खिलाने की इच्छा भी करें तो भी वह मुँह से (निंदा-रूपी) विष ही उगलकर निकालता है। (हे संतजनो!) परमात्मा से टूटे हुए के साथ संगति न करो, (क्योंकि) सृजनहार ने आप उन्हें (नाम की ओर से) मृत कर दिया है, (उन्हें सीधे मार्ग पर लगाना किसी के वश की बात नहीं) जिस प्रभु का यह खेल है, वह आप इस खेल को रचकर देख रहा है। हे दास नानक! तुम प्रभु का नाम-स्मरण करो ॥ १ ॥ महला ४ ॥ सतिगुरु अगम्य पुरुष है जिसने हृदय में प्रभु को पिरोया हुआ है। सतिगुरु की बराबरी कोई नहीं कर सकता, क्योंकि सृजनहार उसकी ओर है। सतिगुरु का खड्ग और बख्तर प्रभु की भक्ति है, जिससे उसने काल (-रूपी) तराजू को (अर्थात्, मौत के भय को) मारकर परे फैंक दिया है। सतिगुरु का रक्षक प्रभु आप है और सतिगुरु के आदर्शों पर चलनेवाले सबको ही प्रभु आप बचा लेता है। जो मनुष्य पूर्ण सतिगुरु का बुरा सोचता है, उसे आप कर्त्तार मारता है। सच्चे हरि के दरबार में यह न्याय होता है; हे नानक! अगम्य हरि का स्मरण करने से (यह समझ पैदा होती है) ॥२॥ ॥ पउड़ी ॥ जो मनुष्य सोते हुए भी सच्चे हरि को स्मरण करते हैं और उठकर भी उसी का नाम उच्चरित करते हैं, मनुष्य-जन्म में ऐसे मनुष्य विरले ही मिलते हैं, जो गुरु के सम्मुख रहकर इस तरह सच्चे नाम का आनन्द लेते हैं। मैं उन पर बलिहारी जाता हूँ, जो रोज़ सच्चे प्रभु का नाम उच्चरित करते हैं। जिन मनुष्यों को मन तथा शरीर में सच्चा प्रभु प्यारा लगता है, वे सच्चे दरबार में पहुँचते हैं। दास नानक भी उस हरि का नाम उच्चरित करता है, जो सदा स्थिर रहनेवाला है ॥ २१ ॥

॥ सलोकु म० ४ ॥ किआ सवणा किआ जागणा गुरमुखि ते परवाणु। जिना सासि गिरासि न विसरै से पूरे पुरख परधान। करमी सतिगुरु पाईऐ अनदिनु लगै धिआनु। तिन की संगति मिलि रहा दरगह पाई मानु। सउदे वाहु वाहु उचरहि उठदे भी वाहु करेनि। नानक ते मुख उजले जि नित उठि संमालेनि ॥ १ ॥ म० ४ ॥ सतिगुरु सेवीऐ आपणा पाईऐ नामु अपारु। भउजलि डुबदिआ कढि लए हरि दाति करे दातारु। धंनु धंनु से साह है जि नामि करहि वापारु। वणजारे सिख आवदे सबदि लघावणहारु। जन नानक जिन कउ

क्रिपा भई तिन सेविआ सिरजणहारु ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ सचु सचे के जन भगत हहि सचु सचा जिनी अराधिआ । जिन गुरमुखि खोजि ढंढोलिआ तिन अंदरहु ही सचु लाधिआ । सचु साहिबु सचु जिनी सेविआ कालु कंटकु मारि तिनी साधिआ । सचु सचा सभदु वडा है सचु सेवनि से सचि रलाधिआ । सचु सचे नो साबासि है सचु सचा सेवि फलाधिआ ॥ २२ ॥

॥ सलोक महला ४ ॥ सोना क्या और जागना क्या, जो मनुष्य सतिगुरु के सम्मुख हैं, उनके लिए ये दोनों हालतें एक समान हैं— कि उन्हें प्रभु एक पल भी नहीं भूलता और वह मनुष्य (सर्वगुण-) सम्पन्न तथा उत्तम होते हैं । (प्रभु की) कृपा से सतिगुरु मिलता है और हरवक्त (सोते और जागते कृपा से ही) जीव का ध्यान (नाम में जुड़ा रहता है) । (चित्त चाहता है कि) मैं भी उनकी संगति करूँ और प्रभु के समीप आदर पाऊँ । (सतिगुरु के सम्मुख हुए वे भाग्यशाली जीव) सोते और जगते प्रभु की गुणस्तुति करते हैं । हे नानक ! वे उज्ज्वल मुख वाले होते हैं, जो सदा सचेत रहकर हरिनाम-स्मरण रखते हैं ॥ १ ॥ महला ४ ॥ अपने सतिगुरु द्वारा बतलाई हुई करनी करने से अक्षय नाम (का भण्डार) मिल जाता है, देन देनेवाला हरि नाम की यह देन देता है और (नाम) संसार-सागर में डूबते हुए को निकाल लेता है । जो शाह नाम (की राशि) के साथ व्यापार करते हैं वे सौभाग्यशाली हैं, (क्योंकि ऐसा) व्यापार करनेवाले जो सिक्ख (सतिगुरु के पास) आते हैं, (सतिगुरु उन्हें अपने) शब्द द्वारा (संसार-सागर से) पार उतार देता है । (पर) हे दास नानक ! सृजनहार प्रभु की बन्दगी वही मनुष्य करते हैं, जिन पर प्रभु आप कृपा करता है ॥२॥ ॥ पउड़ी ॥ जो मनुष्य सच्चे हरि का सचमुच भजन करते हैं, वही सच्चे के भक्त (कहे जाते) हैं । जो मनुष्य गुरु के सम्मुख होकर खोजकर ढूँढते हैं, वे अपने हृदय में ही प्रभु को प्राप्त कर लेते हैं । जिन मनुष्यों ने सच्चे स्वामी की सचमुच सेवा की है, उन्होंने दुःखदायक काल को मारकर नियंत्रित कर लिया है । जो सच्चा हरि सर्वोच्च है उसकी बन्दगी जो मनुष्य करते हैं, वे उसी में लीन हो जाते हैं । धन्य है सच्चा प्रभु, धन्य है सच्चा प्रभु— (इस प्रकार) जो मनुष्य सच्चे की आराधना करते हैं, उन्हें उत्तम फल प्राप्त होता है, (वे मनुष्य-जन्म को सफल कर लेते हैं) ॥ २२ ॥

॥ सलोक म० ४ ॥ मनमुखु प्राणी मुगधु है नाम हीण भरमाइ । बिनु गुर मनूआ ना टिकै फिरि जूनी पाइ । हरि प्रभु आपि दइआल होहि तां सतिगुरु मिलिआ आइ । जन नानक

नामु सलाहि तू जनम मरण दुखु जाइ ।।१।। म० ४।। गुरु सालाही आपणा बहु बिधि रंगि सुभाइ । सतिगुर सेती मनु रता रखिआ बणत बणाइ । जिहवा सालाहि न रजई हरि प्रीतम चितु लाइ । नानक नावैं की मनि भुख है मनु त्रिपतै हरि रसु खाइ ।। २ ।। ।।पउड़ी।। सचु सचा कुदरति जाणीऐ दिनु राती जिनि बणाईआ । सो सचु सलाही सदा सदा सचु सचे कीआ वडिआईआ । सालाही सचु सलाह सचु सचु कीमति किनै न पाईआ । जा मिलिआ पूरा सतिगुरू ता हाजरु नदरी आईआ । सचु गुरमुखि जिनी सलाहिआ तिना भुखा सभि गवाईआ ।। २३ ।।

।। सलोक महला ४ ।। मनमुख मनुष्य मूर्ख है, नाम से हीन रहकर भटकता फिरता है। सतिगुरु के बिना उसका ओछा मन टिक नहीं सकता, (इसलिए) बार-बार योनियों में पड़ता है। यदि हरि प्रभु आप कृपा करे तो सतिगुरु आकर मिल पड़ता है (और नाम के आसरे पर टिकाकर दुबिधा से बचा लेता है।) (इसलिए) हे दास नानक ! तू भी नाम की गुणस्तुति कर (ताकि) तेरा सारी उम्र का दुःख समाप्त हो जाए ।। १ ।। ।। महला ४ ।। (मन चाहता है कि) कई प्रकार से प्यारे सतिगुरु के प्रेम में तथा स्वभाव में (लीन होकर) उसकी गुणस्तुति करूँ। मेरा मन प्यारे सतिगुरु के साथ रँगा हुआ है, (गुरु ने मेरे मन को) सवाँर दिया है। मेरी जिह्वा गुणस्तुति करके तृप्त नहीं होती और मन प्रियतम-प्रभु के साथ (प्रेम) करके तृप्त नहीं होता। (तृप्त भी कैसे हो ?) मन में तो नाम की भूख है, मन तो तभी तृप्त होवे यदि प्रभु के नाम का आस्वादन कर ले ।। २ ।। पउड़ी ।। जिस प्रभु ने दिन और रात्रि बनाये हैं, वह सच्चा प्रभु (इस) कुदरत से ही सचमुच (बड़ी महानता वाला) मालूम होता है; (मेरा मन चाहता है कि) मैं सदा उस सच्चे प्रभु की गुणस्तुति करूँ और महानता कहूँ। प्रशंसा-योग्य हरि सच्चा है, उसकी महानता भी स्थिर रहनेवाली है, पर किसी ने उसकी कीमत नहीं आँकी; जब पूर्ण सतिगुरु मिलता है तो वे महानता प्रत्यक्ष दिखाई दे जाती हैं। जो मनुष्य सतिगुरु के सम्मुख होकर (आपा गवाँ कर) सच्चे प्रभु की प्रशंसा करते हैं, उनकी सब भूख दूर हो जाती है ।। २३ ।।

।। सलोक म० ४ ।। मै मनु तनु खोजि खोजेदिआ सो प्रभु लधा लोड़ि । विसटु गुरू मै पाइआ जिनि हरि प्रभु दिता जोड़ि ।। १ ।। म० ३ ।। माइआधारी अति अंना बोला । सबदु न सुणई बहु रोल घचोला । गुरमुखि जापै सबदि लिव लाइ ।

हरि नामु सुणि मंने हरि नामि समाइ । जो तिसु भावै सु करे कराइआ । नानक वजदा जंतु वजाइआ ।। २ ।। पउड़ी ।। तू करता सभु किछु जाणदा जो जीआ अंदरि वरतै । तू करता आपि अगणतु है सभु जगु विचि गणतै । सभु कीता तेरा वरतदा सभ तेरी बणतै । तू घटि घटि इकु वरतदा सचु साहिब चलतै । सतिगुर नो मिले सु हरि मिले नाही किसै परतै ।। २४ ।।

।।सलोक महला ४।। मन तथा शरीर को खोखते-खोजते मैंने (आखिरकार) खोजकर प्रभु को प्राप्त कर लिया (पर मैं अपने बल के सहारे प्राप्त नहीं कर सकता था) । मुझे सतिगुरु वकील मिल गया जिसने हरि प्रभु मिला दिया ।। १ ।। महला ३ ।। जिस मनुष्य ने (हृदय में) माया (का प्रेम) धारण किया हुआ है, वह (सतिगुरु की ओर से) अन्धा तथा बहरा है । वह मनुष्य सतिगुरु के शब्द की ओर ध्यान नहीं देता, (पर) (माया का) खपानेवाला (सिर-दर्दी करानेवाला) शोर बहुत (पसन्द करता है) । जो मनुष्य सतिगुरु के सम्मुख होता है, (वह ऐसे) दिखाई दे जाता है (कि) वह गुरु के शब्द में वृत्ति जोड़ता है, हरि के नाम को सुनकर उस पर विश्वास करता है और हरि के नाम में (ही) लीन हो जाता है । (पर मायाधारी अथवा गुरमुख के क्या वश ?) जो कुछ उस प्रभु को भला लगता है, (उसके अनुसार) यह जीव कराने से काम करता है । हे नानक ! जीव (बाजे की तरह) बजाने से बजता है ।। २ ।। पउड़ी ।। हे सृजनहार ! जो कुछ जीवों के मन में होता है, तुम वह सब जानते हो, सारा संसार ही इस चिन्तना में है । हे सृजनहार ! एक तुम इससे परे हो, (क्योंकि) जो कुछ हो रहा है, सब तेरा किया हुआ हो रहा है, सारी (सृष्टि की) बनावट ही तेरी बनाई हुई है । हे हरि ! तुम हर एक हृदय में व्यापक हो, तेरे कौतुक (आश्चर्यजनक) हैं । जो मनुष्य सतिगुरु को मिला है, उसी ने हरि को प्राप्त किया है, (माया) के किसी (आडम्बर) ने उन्हें हरि की ओर से नहीं हटाया ।। २४ ।।

।। सलोकु म० ४ ।। इहु मनूआ द्रिड़ु करि रखीऐ गुरमुखि लाईऐ चितु । किउ सासि गिरासि विसारीऐ बहदिआ उठदिआ नित । मरण जीवण की चिंता गई इहु जीअड़ा हरि प्रभ वसि । जिउ भावै तिउ रखु तू जन नानक नामु बखसि ।। १ ।। ।। म० ३ ।। मनमुखु अहंकारी महलु न जाणै खिनु आगै खिनु पीछै । सदा बुलाईऐ महलि न आवै किउ करि दरगह सीझै । सतिगुर का महलु विरला जाणै सदा रहै कर जोड़ि । आपणी

क्रिपा करे हरि मेरा नानक लए बहोड़ि ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ सा सेवा कीती सफल है जितु सतिगुर का मनु मंने। जा सतिगुर का मनु मंनिआ ता पाप कसंमल भंने। उपदेसु जि दिता सतिगुरू सो सुणिआ सिखी कंने। जिन सतिगुर का भाणा मंनिआ तिन चड़ी चवगणि वंने। इह चाल निराली गुरमुखी गुर दीखिआ सुणि मनु भिने ॥ २५ ॥

॥ सलोक महला ४ ॥ (यदि) सतिगुरु के सम्मुख होकर मन (प्रभु की याद में) जोड़ें (और) इस मन को दृढ़ करके रखें, (और यदि) उठते-बैठते (काम-काज करते हुए) कभी एक पल भी (नाम) न भुलाएँ, (तो) यह जीव हरि के वश में (आ जाता है। अपना आपा उसके हवाले कर देता है, और) इसकी सारी चिन्ता मिट जाती है। (हे हरि !) जैसे तुझे अच्छा लगे वैसे (मुझे) दास नानक को नाम की देन दे (क्योंकि नाम ही है, जो मन की चिन्ता को मिटा सकता है) ॥ १ ॥ महला ३ ॥ अहंकार में मस्त हुआ मनमुख (सतिगुरु के) निवास-स्थान (अर्थात् सत्संग) को नहीं पहचानता, हरवक्त दुबिधा में रहता है। सदा बुलाते रहें तो भी वह सत्संग में नहीं आता (इसलिए) वह हरि के दरबार में भी कैसे मुक्त होवे ? सतिगुरु के ठिकाने की किसी उस विरले व्यक्ति को समझ आती है जो सदा हाथ जोड़े रखे। हे नानक ! जिस पर प्यारा प्रभु अपनी कृपा करे, उसे (मनमुखता से) मोड़ लेता है ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ जिस सेवा से सतिगुरु का मन (सिक्ख पर) विश्वस्त हो जाए, वही की हुई सेवा लाभदायक है, (क्योंकि जब) सतिगुरु का मन विश्वस्त हो, तब ही विकार-पाप भी दूर हो जाते हैं। (विश्वस्त होकर) सतिगुरु जो उपदेश सिक्खों को देता है वे ध्यानपूर्वक उसे सुनते हैं, (फिर) जो सिक्ख सतिगुरु की इच्छा पर विश्वास करते हैं, उन्हें (पहले की अपेक्षा) चौगुनी रंगत चढ़ जाती है। 'सतिगुरु की ही शिक्षा सुनकर मन (हरि के प्रेम में) भीगता है'— सतिगुरु के सम्मुख रहनेवाला यह रास्ता (संसार के दूसरे रास्तों से) निराला है ॥ २५ ॥

॥ सलोकु म० ३ ॥ जिनि गुरु गोपिआ आपणा तिसु ठउर न ठाउ। हलतु पलतु दोवै गए दरगह नाही थाउ। ओह वेला हथि न आवई फिरि सतिगुर लगहि पाइ। सतिगुर की गणतै घुसीऐ दुखे दुखि विहाइ। सतिगुरु पुरखु निरवैरु है आपे लए जिसु लाइ। नानक दरसनु जिना वेखालिओनु तिना दरगह लए छडाइ ॥ १ ॥ म० ३ ॥ मनमुखु अगिआनु दुरमति अहंकारी। अंतरि क्रोधु जूऐ मति हारी। कूड़ु कुसतु ओहु पाप कमावै।

किआ ओहु सुणै किआ आखि सुणावै । अंना बोला खुइ उझड़ि पाइ । मनमुखु अंधा आवै जाइ । बिनु सतिगुर भेटे थाइ न पाइ । नानक पूरबि लिखिआ कमाइ ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ जिन के चित कठोर हहि से बहहि न सतिगुर पासि । ओथै सचु वरतदा कूड़िआरा चित उदासि । ओइ वलु छलु करि झति कढदे फिरि जाइ बहहि कूड़िआरा पासि । विचि सचे कूड़ु न गडई मनि वेखहु को निरजासि । कूड़िआर कूड़िआरी जाइ रले सचिआर सिख बैठे सतिगुर पासि ॥ २६ ॥

॥ सलोक महला ३ ॥ जिस मनुष्य ने अपने सतिगुरु की निंदा की है, उसे कोई स्थान नहीं है । उसका यह लोक तथा परलोक दोनों बेकार हो जाते हैं, हरि के दरबार में भी जगह नहीं मिलती । (ऐसे व्यक्तियों को) फिर वह मौका नहीं मिलता कि सतिगुरु के चरण-स्पर्श कर सकें, (क्योंकि) सतिगुरु की निंदा करने में (एक बार यदि) पथभ्रष्ट हो जाएं तो बिल्कुल दुखों में ही उम्र बीतती है । (पर) मर्द (शूरवीर) सतिगुरु (ऐसा) निर्वैर है कि उसे भी आप (कृपा करके अपने चरणों में) लगा लेता है, और हे नानक ! जिन्हें हरि, गुरु का दर्शन कराता है, उन्हें दरबार में (पापों से) छुड़ा लेता है ॥ १ ॥ महला ३ ॥ मनमुख विचारहीन, खोटी बुद्धि वाला तथा अहंकारी होता है, उसके मन में क्रोध है और वह (विषयों के) जूए में अक्ल गवाँ देता है । वह (सदा) झूठ, फ़रेब तथा पाप के काम करता है, (इसलिए) वह क्या सुने और (किसी को) कहकर क्या सुनाए ? (सतिगुरु के दर्शनों से वंचित रहकर) अन्धा और (उपदेश से वंचित रहकर) बहरा मनुष्य कुमार्गगामी हो गया है और नित्य जन्मता-मरता है । सतिगुरु को मिले बिना वह (दरबार में) स्वीकृत नहीं होता, (क्योंकि) हे नानक ! आदिकाल से (किए हुए अशुभ कर्मों के अनुसार जो संस्कार उसके मन में) लिखे गए हैं, (उनके अनुसार अब भी अशुभ कर्म ही) किए जाता है ॥ २ ॥ ॥ पउड़ी ॥ जिन मनुष्यों के मन कठोर होते हैं, वे सतिगुरु के पास नहीं बैठ सकते । वहाँ (सतिगुरु की संगति में तो) सत्य की बातें होती हैं, झूठ के व्यापारियों के मन को उदासी लगी रहती है । (सतिगुरु की संगति में) झूठ नहीं मिल सकता, (अपना गहरा प्रभाव नहीं डाल सकता) झूठे व्यक्ति झूठों में ही जा मिलते हैं और सच्चे सिक्ख सतिगुरु के पास ही जा बैठते हैं ॥ २६ ॥

॥ सलोक म० ५ ॥ रहदे खुहदे निंदक मारिअनु करि आपे आहरु । संत सहाई नानका वरतै सभ जाहरु ॥ १ ॥ म० ५ ॥ मुंढहु

भुले मुंढ ते किथै पाइनि हथु । तिनै मारे नानका जि करण कारण समरथु ।। २ ।। पउड़ी ५ ।। लै फाहे राती तुरहि प्रभु जाणै प्राणी । तकहि नारि पराईआ लुकि अंदरि ठाणी । संन्ही देन्हि विखंम थाइ मिठा मदु माणी । करमी आपो आपणी आपे पछुताणी । अजराईलु फरेसता तिल पीड़े घाणी ।। २७ ।।

।। सलोक महला ५ ।। जन्म-जन्मान्तरों से पाप करके निंदक मनुष्य बहुत कुछ तो आगे ही नाम की ओर से मर जाते हैं, बाकी जो थोड़े बहुत (भले संस्कार रह जाते हैं) उन्हें प्रभु ने आप प्रयास करके (समाप्त कर दिया) और, हे नानक ! संतजनों का रक्षक हरि सर्वत्र प्रत्यक्ष रूप में खेल कर रहा है ।। १ ।। महला ५ ।। जो मनुष्य पहले से प्रभु से खाली हैं, वे और किसका आसरा लें ? (क्योंकि) हे नानक ! इनको उस प्रभु ने आप मारा हुआ है, जो सारी सृष्टि सृजन करने में समर्थ है ।।२।। पउड़ी ५।। मनुष्य रात को कमन्द लेकर चलते हैं (पर) प्रभु उन्हें जानता है, भीतर छिपकर पराई औरतों की ओर देखते हैं, विषम स्थान पर सेंध लगाते हैं और शराब को मीठा मानते हैं । (अन्त में) आप अपने किए कर्मों के अनुसार आप ही पश्चाताप करते हैं (क्योंकि) मृत्यु का फ़िरिश्ता नीच कर्म करनेवालों को ऐसे पीसता है, जैसे कोल्हू में तिल ।। २७ ।।

।। सलोक म० ५ ।। सेवक सचे साह के सेई परवाणु । दूजा सेवनि नानका से पचि पचि मुए अजाण ।। १ ।। म० ५ ।। जो धुरि लिखिआ लेखु प्रभ मेटणा न जाइ । राम नामु धनु वखरो नानक सदा धिआइ ।। २ ।। पउड़ी ५ ।। नाराइणि लइआ नाठूंगड़ा पैर किथै रखै । करदा पाप अमितिआ नित विसो चखै । निंदा करदा पचि मुआ विचि देही भखै । सचै साहिब मारिआ कउणु तिस नो रखै । नानक तिसु सरणागती जो पुरखु अलखै ।। २८ ।।

।। सलोक महला ५ ।। जो मनुष्य सच्चे शाह (प्रभु) के सेवक हैं, वही (प्रभु के दरबार में) सत्कृत होते हैं । हे नानक ! जो (उस सच्चे शाह को छोड़कर) दूसरे की सेवा करते हैं, वे मूर्ख खप-खप कर मरते हैं ।। १ ।। महला ५ ।। हे प्रभु आदिम समय से (किए कर्मों के अनुसार) जो (संस्कार-रूपी) लेख (हृदय में) लिखा हुआ है, वह मिटाया नहीं जा सकता । (पर हाँ), हे नानक ! प्रभु का नाम-धन तथा सौदा (एकत्रित करो), नाम सदा स्मरण करो, (इस प्रकार पिछला लेख मिट सकता

है) ॥ २ ॥ पउड़ी ५ ॥ जिस मनुष्य को परमात्मा की ओर से ठोकर लगे, वह (जीवन के सही मार्ग पर) टिक नहीं सकता। वह अनगिनत पाप करता है, सदा (विकारों के) विष ही चखता है। दूसरों के दोष खोज-खोजकर दुखी होता है और अपने आप में जलता है। वह (समझो) सच्चे परमात्मा की ओर से मरा हुआ है, कोई उसकी सहायता नहीं कर सकता। हे नानक! (इस विष से बचने के लिए) उस अकालपुरुष की शरण लो, जो अलक्ष्य है ॥ २८ ॥

॥ सलोक म० ५ ॥ नरक घोर बहु दुख घणे अकिरतघणा का थानु। तिनि प्रभि मारे नानका होइ होइ मुए हरामु ॥ १ ॥ ॥ म० ५ ॥ अवखध सभे कीतिअनु निंदक का दारू नाहि। आपि भुलाए नानका पचि पचि जोनी पाहि ॥ २ ॥ पउड़ी ५ ॥ तुसि दिता पूरै सतिगुरू हरि धनु सचु अखुटु। सभि अंदेसे मिटि गए जम का भउ छुटु। काम क्रोध बुरिआईआं संगि साधू तुटु। विणु सचे दूजा सेवदे हुइ मरसनि बुटु। नानक कउ गुरि बखसिआ नामै संगि जुटु ॥ २९ ॥

॥ सलोक महला ५ ॥ कृतघ्न मनुष्य उस प्रभु की ओर से मारे हुए होते हैं, बहुत भारी दुःख-रूपी घोर नरक उनका ठिकाना है। हे नानक! (इन दुखों में) वह दुखी होकर मरते हैं ॥ १ ॥ महला ५ ॥ तमाम रोगों की औषधियाँ उस प्रभु ने बनाई हैं, परनिंदकों (के निंदा-रोग का) कोई इलाज नहीं। हे नानक! प्रभु आप उनको भ्रम में डाले हुए हैं, (अपने कर्म के अनुसार) निंदक खप-खपकर योनियों में पड़ते हैं ॥ २ ॥ पउड़ी ५॥ (जिन मनुष्यों को) पूर्ण सतिगुरु ने प्रभु का सच्चा और अक्षुण्ण धन प्रसन्न होकर दिया है, उनकी सारी फ़िक्रें मिट जाती हैं और मौत का भय दूर हो जाता है (और उनके) काम, क्रोध आदि पाप संतों की संगति में समाप्त हो जाते हैं; लेकिन जो मनुष्य सच्चे हरि के अतिरिक्त किसी दूसरे की सेवा करते हैं, वे निराश्रित होकर मरते हैं। हे नानक! जिस मनुष्य पर सतिगुरु के द्वारा प्रभु ने कृपा की है, वह बिल्कुल नाममें (के ध्यान) लगा हुआ है ॥२९॥

॥ सलोक म० ४ ॥ तपा न होवै अंद्रहु लोभी नित माइआ नो फिरै जजमालिआ। अगो दे सदिआ सतै दी भिखिआ लए नाही पिछो दे पछुताइ कै आणि तपै पुतु विचि बहालिआ। पंच लोग सभि हसण लगे तपा लोभि लहरि है गालिआ। जिथै थोड़ा धनु वेखै तिथै तपा भिटै नाही धनि बहुतै डिठै तपै धरमु हारिआ।

भाई एह तपा न होवी बगुला है बहि साध जना वीचारिआ। सत पुरख की तपा निंदा करै संसारै की उसतती विचि होवै एतु दोखै तपा दयि मारिआ। महा पुरखां की निंदा का वेखु जि तपे नो फलु लगा सभु गइआ तपे का घालिआ। बाहरि बहै पंचा विचि तपा सदाए। अंदरि बहै तपा पाप कमाए। हरि अंदरला पापु पंचा नो उघा करि वेखालिआ। धरम राइ जम कंकरा नो आखि छडिआ एसु तपे नो तिथै खड़ि पाइहु जिथै महा महां हतिआरिआ। फिरि एसु तपे दै मुहि कोई लगहु नाही एहु सतिगुरि है फिटकारिआ। हरि कै दरि वरतिआ सु नानकि आखि सुणाइआ। सो बूझै जु दयि सवारिआ ॥१॥म० ४॥ हरि भगतां हरि आराधिआ हरि की वडिआई। हरि कीरतनु भगत नित गांवदे हरिनामु सुखदाई। हरि भगतां नो नित नावै दी वडिआई बखसीअनु नित चड़ै सवाई। हरि भगतां नो थिरु घरी बहालिअनु अपणी पैज रखाई। निंदकां पासहु हरि लेखा मंगसी बहु देइ सजाई। जेहा निंदक अपणै जीइ कमावदे तेहो फलु पाई। अंदरि कमाणा सरपर उघड़ै भावै कोई बहि धरती विचि कमाई। जन नानकु देखि विगसिआ हरि की वडिआई ॥ २ ॥ ॥ पउड़ी म० ५ ॥ भगत जनां का राखा हरि आपि है किआ पापी करीऐ। गुमानु करहि मूड़ गुमानीआ विसु खाधी मरीऐ। आइ लगे नी दिह थोड़ड़े जिउ पका खेतु लुणीऐ। जेहे करम कमावदे तेवेहो भणीऐ। जन नानक का खसमु वडा है सभना दा धणीऐ ॥ ३० ॥

॥ सलोक महला ४ ॥ जो मनुष्य भीतर से लोभी होवे और जो कोढ़ी सदा माया के लिए भटकता फिरे, वह (सच्चा) तपस्वी नहीं हो सकता। यह तपस्वी पहले (अपने आप) बुलाये जाने पर आदर की भिक्षा लेता था और बाद में पछताकर इसने बेटे को लाकर (पंक्ति) में बिठा दिया। (नगर के) बड़े आदमी हँसने लगे (और कहने लगे) यह तपस्वी लोभ की लहर में गला पड़ा है। जहाँ थोड़ा धन देखता है, वहाँ तो पास भी नहीं जाता, और अधिक धन देखकर तपस्वी ने अपना धर्म हार दिया है। भले मनुष्यों ने एकत्रित होकर विचार किया है कि हे भाई! यह सच्चा तपस्वी नहीं है, बगुला है। भले मनुष्यों की यह तपस्वी निन्दा करता है और संसार (-प्रपंञ्च) की स्तुति करता है। इस बुराई के कारण इस

को पति-प्रभु ने (आत्मिक जीवन की ओर से) मृत कर दिया है। देखो! महापुरुषों की निन्दा करने का इस तपस्वी को यह फल मिला है कि इसका समूचा परिश्रम व्यर्थ चला गया है। नगर के बड़े आदमियों में बैठकर अपने आपको तपस्वी कहलाता है और भीतर बैठकर नीच कर्म करता है; प्रभु ने तपस्वी का भीतरी पाप पंचों को प्रकट करके दिखा दिया है। धर्मराज ने अपने यमदूतों को कह दिया है कि इस तपस्वी को ले जाकर उस स्थान पर डाल दो जहाँ बड़े से बड़े पापी (डाले जाते हैं), (वहाँ भी) इसके मुँह कोई न लगो, (क्योंकि) यह तपस्वी सतिगुरु की ओर से तिरस्कृत है। हे नानक! जो कुछ यह प्रभु के दरबार में हुआ है, वह कहकर सुना दिया है, इस बात को वह मनुष्य समझता है, जिसे पति-प्रभु ने सवाँरा हुआ ॥ १ ॥ महला ४ ॥ प्रभु ने भक्तों को सदा के लिए नाम (जपने) का गुण दिया है, जो दिनों-दिन बढ़ता है। प्रभु ने अपने विरद की लाज रखी है और अपने भक्तों को हृदय में स्थिर कर दिया है। निन्दकों से प्रभु लेखा माँगता है और बहुत सजा देता है। निन्दक जैसा अपने मन में कमाते हैं, वैसा ही उन्हें फल मिलता है (क्योंकि) भीतर बैठकर किया हुआ काम भी अवश्य प्रकट हो जाता है, चाहे कोई धरती के भीतर छिपकर करे। (प्रभु का) दास नानक प्रभु की महानता देखकर प्रसन्न हो रहा है ॥ २ ॥ ॥पउड़ी महला ५॥ प्रभु (अपने) भक्तों का आप रक्षक है, पाप सोचनेवाला (उसका) क्या बिगाड़ सकता है? मूर्ख अहंकारी मनुष्य अहंकार करते हैं और (अहंकार-रूपी) ज़हर खाने से मरते हैं (क्योंकि जिस ज़िन्दगी पर अभिमान करते हैं, उसके गिनती के) थोड़े दिन आखिर समाप्त हो जाते हैं, जैसे पकी हुई फ़सल कट जाती है। वे जैसे-जैसे (अहंकार के) काम करते हैं, (दरबार में भी) वैसे ही कहलाते हैं। (पर) जो प्रभु सबका मालिक है और महान् है, वह (अपने) दास नानक का रक्षक है ॥ ३० ॥

॥ सलोक म० ४ ॥ मनमुख मूलहु भुलिआ विचि लबु लोभु अहंकारु। झगड़ा करदिआ अनदिनु गुदरै सबदि न करहि वीचारु। सुधि मति करतै सभ हिरि लई बोलनि सभु विकारु। दितै कितै न संतोखीअहि अंतरि तिसना बहु अगिआनु अंध्यारु। नानक मनमुखा नालो तुटी भली जिन माइआ मोह पिआरु ॥ १ ॥ ॥ म० ४ ॥ जिना अंदरि दूजा भाउ है तिन्हा गुरमुखि प्रीति न होइ। ओहु आवै जाइ भवाईऐ सुपनै सुखु न कोइ। कूड़ु कमावै कूड़ु उचरै कूड़ि लगिआ कूड़ु होइ। माइआ मोहु सभु दुखु है दुखि बिनसै दुखु रोइ। नानक धातु लिवै जोड़ु न आवई जे लोचै सभु कोइ। जिन कउ पोतै पुंनु पइआ तिना गुरसबदी

सुखु होइ ।। २ ।। पउड़ी म० ५ ।। नानक वीचारहि संत मुनि जनां चारि वेद कहंदे । भगत मुखै ते बोलदे से वचन होवंदे । परगट पाहारै जापदे सभि लोक सुणंदे । सुखु न पाइनि मुगध नर संत नालि खहंदे । ओइ लोचनि ओना गुणा नो ओइ अहंकारि सड़ंदे । ओइ वेचारे किआ करहि जां भाग धुरि मंदे । जो मारे तिनि पारब्रहमि से किसै न संदे । वैरु करनि निरवैर नालि धरमि निआइ पचंदे । जो जो संति सरापिआ से फिरहि भवंदे । पेडु मुंढाहू कटिआ तिसु डाल सुकंदे ।। ३१ ।।

।। सलोक महला ४ ।। सतिगुरु से भूले हुए मनुष्य मूलाधार से भूले हुए हैं, (क्योंकि उनके भीतर झूठ, लोभ तथा अहंकार है,) उनका हर एक दिन झूठ, लोभ और अहंकार सम्बन्धी झगड़ा करते हुए बीतता है, वे सतिगुरु के शब्द में विचार नहीं करते । कर्त्तार ने उनका होश तथा बुद्धि छीन ली है; निरा विकार ही बोलते हैं; वे किसी की देन से तृप्त नहीं होते, क्योंकि उनके मन में अत्यन्त तृष्णा, अभिमान तथा अन्धेरा है । हे नानक ! (ऐसे) मनमुखों से तो सम्बन्ध टूटा हुआ ही भला है, क्योंकि उनका मोह, प्रेम तो माया के साथ है ।। १ ।। महला ४ ।। जिन मनुष्यों के हृदय में माया का प्रेम है, उनके (हृदय में) सतिगुरु के सम्मुख रहनेवाला प्रेम नहीं होता । जो मनुष्य झूठा काम करता है और (जिह्वा से भी) झूठ बोलता है तथा झूठ में लगकर झूठ (का रूप ही) हो जाता है, उसे स्वप्न में भी सुख नहीं मिलता और वह जन्म-मरण में चक्कर लगाता फिरता है, (क्योंकि) माया का मोह (-रूपी झूठ) निरे दु:ख (का कारण) है, (इसलिए वह) दु:ख में ही समाप्त हो जाता है और दु:ख (का रोना ही) रोता रहता है । चाहे हरएक मनुष्य इच्छा करे (पर) हे नानक ! माया और प्रभु का प्रेम शोभायमान नहीं हो सकता, (पूर्वकृत शुभ कर्मों के अनुसार) जिनके (मन-रूपी) पल्ले में (भले संस्कारों का सार रूप) पुण्य (लिखा हुआ) है, उन्हें सतिगुरु के शब्द के द्वारा सुख मिलता है ।।२।। ।। पउड़ी महला ५ ।। हे नानक ! संत और मुनिजन (अपना) चिन्तन कहते हैं और चारों वेद भी (यही बात) कहते हैं, (कि) भक्तजन जो वचन मुख से बोलते हैं वे (सही) होते हैं । (भक्त) सारे संसार में प्रत्यक्ष प्रसिद्ध होते हैं और (उनकी शोभा) सारे लोग सुनते हैं । जो मूर्ख मनुष्य संतों से वैर करते हैं, वे सुख नहीं पाते, (वे दोषी) जलते तो अहंकार में हैं, (पर) भक्तजनों के गुणों के लिए तरसते हैं । इन दोषी मनुष्यों के वश में भी क्या है ? क्योंकि आदि से (नीच कर्मों के कारण) नीच (संस्कार ही) उनका अपना भाग है । जो मनुष्य परमात्मा की ओर से मृत हैं, वे किसी

के (सगे) नहीं। निर्वैरों के साथ (भी) वैर करते हैं और (परमात्मा के) धर्म-न्याय अनुसार दुखी होते हैं। जो मनुष्य संतों से तिरस्कृत हैं, वे (जन्म-मरण में) भटकते फिरते हैं। (यह स्पष्ट बात है कि) जो वृक्ष जड़ से काट दिया जाए, उसके टहने भी समाप्त हो जाते हैं ॥ ३१ ॥

॥ सलोक म० ५ ॥ गुर नानक हरिनामु द्रिड़ाइआ भंनण घड़ण समरथु। प्रभु सदा समालहि मित्र तू दुखु सबाइआ लथु॥ १ ॥ म० ५ ॥ खुधिआवंतु न जाणई लाज कुलाज कुबोलु। नानकु मांगै नामु हरि करि किरपा संजोगु ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ जेवेहे करम कमावदा तेवेहे फलते। चबे तता लोहसारु विचि संघै पलते। घति गलावां चालिआ तिनि दूति अमल ते। काई आस न पुंनीआ नित परमलु हिरते। कीआ न जाणै अकिरतघण विचि जोनी फिरते। सभे धिरां निखुटीअसु हिरि लईअसु धरते। विझण कलह न देवदा तां लइआ करते। जो जो करते अहंमेउ झड़ि धरती पड़ते ॥ ३२ ॥

॥ सलोक महला ५ ॥ हे नानक ! जो हरि शरीरों को सहज ही गिरा और बना सकता है, सतिगुरु ने उस हरि का नाम (हमारे हृदय में) पिरो दिया है। हे मित्र ! यदि तू प्रभु को सदा याद करे तो (तेरा भी) सब दुःख दूर हो जाए ॥ १ ॥ महला ५ ॥ (जैसे) भूखा मनुष्य आदर अथवा निरादर के नीच वचन को नहीं जानता (अर्थात्, परवाह नहीं करता और रोटी के लिए सवाल कर देता है, वैसे ही) हे हरि ! नानक (भी) तेरा नाम माँगता है. कृपा करके मिलाप दे ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ (कृतघ्न) मनुष्य जैसे कर्म करता है, वह कर्म वैसा ही फल देता है; यदि कोई गर्म और कड़ा लोहा चाबे तो वह गले में चुभ जाता है। वह यमदूत (उन खोटे) कर्मों के कारण गले में रस्सा डालकर आगे कर देता है। सदा पराई मैल (दुनिया के ऐब) चुराते हुए भी कोई आशा पूर्ण नहीं होती, (लोक-परलोक दोनों बेकार करते हैं।) योनियों में भटकता-भटकता वह कृतघ्न व्यक्ति प्रभु का उपकार नहीं समझता, (निंदा आदि के सारे दाव-पेचों के) उसके तमाम तरीके जब समाप्त हो जाते हैं, तो (फल भोगने के लिए) प्रभु उसे धरती से उठा लेता है। जब (चारों ओर) झगड़े को (कृतघ्न) समाप्त नहीं होने देता तो कर्त्तार (उसे) उठा लेता है। जो-जो मनुष्य अहंकार करते हैं, वे ढहकर धरती पर गिरते हैं ॥ ३२ ॥

॥ सलोक म० ३ ॥ गुरमुखि गिआनु बिबेक बुधि होइ। हरिगुण गावै हिरदै हारु परोइ। पवितु पावनु परम बीचारी।

जि ओसु मिलै तिसु पारि उतारी । अंतरि हरिनामु बासना समाणी । हरि दरि सोभा महा उतम बाणी । जि पुरखु सुणै सु होइ निहालु । नानक सतिगुर मिलिऐ पाइआ नामु धनु मालु ॥ १ ॥ म० ४ ॥ सतिगुर के जीअ की सार न जापै कि पूरै सतिगुर भावै । गुरसिखां अंदरि सतिगुरू वरतै जो सिखां नो लोचै सो गुर खुसीआवै । सतिगुरु आखै सु कार कमावनि सु जपु कमावहि गुरसिखां की घाल सचा थाइ पावै । विणु सतिगुर के हुकमै जि गुरसिखां पासहु कंमु कराइआ लोड़े तिसु गुरसिखु फिरि नेड़ि न आवै । गुर सतिगुर अगै को जीउ लाइ घालै तिसु अगै गुरसिखु कार कमावै । जि ठगी आवै ठगी उठि जाइ तिसु नेड़ै गुरसिखु मूलि न आवै । ब्रहमु बीचारु नानकु आखि सुणावै । जि विणु सतिगुर के मनु मंने कंमु कराए सो जंतु महा दुखु पावै ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ तूं सचा साहिबु अति वडा तुहि जेवडु तूं वड वडे । जिसु तूं मेलहि सो तुधु मिलै तूं आपे बखसि लैहि लेखा छडे । जिस नो तूं आपि मिलाइदा सो सतिगुरु सेवे मनु गड गडे । तूं सचा साहिबु सचु तू सभु जीउ पिंडु चंमु तेरा हडे । जिउ भावै तिउ रखु तूं सचिआ नानक मनि आस तेरी वड वडे ॥ ३३ ॥ १ ॥ सुधु ॥

॥ सलोक महला ३ ॥ जो मनुष्य सतिगुरु के सम्मुख रहता है, उसमें ज्ञान तथा विचारवाली बुद्धि होती है; वह हरि के गुण गाता है और हृदय में (गुणों का) हार पिरो लेता है, (वह) सदाचारी तथा सुबुद्धि वाला होता है। जो दूसरा मनुष्य, उसकी संगति करता है, उसे भी वह पार उतार लेता है। उस मनुष्य के हृदय में हरि का नाम (रूपी) सुगन्ध समाई होती है, (जिससे) उसकी बड़ी उत्तम बोली तथा हरि के दरबार में शोभा होती है; जो मनुष्य उस बोली को सुनता है, वह प्रसन्न होता है। हे नानक ! सतिगुरु को मिलकर उसने यह नाम (रूपी) ख़ज़ाना प्राप्त किया होता है ॥ १ ॥ महला ४ ॥ सतिगुरु के हृदय का भेद मनुष्य की समझ में नहीं आ सकता कि सतिगुरु को क्या भला लगता है; (परन्तु, हाँ) सतिगुरु सच्चे सिक्खों के हृदय में व्यापक है, जो मनुष्य उनकी (सेवा की) कामना करता है, वह सतिगुरु की प्रसन्नता के (दायरे) में आ जाता है, (क्योंकि) जो आज्ञा सतिगुरु देता है, वही काम गुरसिख करते हैं, वही भजन करते हैं। सच्चा प्रभु सिक्खों की मेहनत स्वीकार करता है। जो मनुष्य सतिगुरु के परामर्श के विरुद्ध गुरसिक्खों के पास से काम कराना चाहे, गुरु का सिक्ख

फिर उसके निकट नहीं जाता; (पर) जो मनुष्य सतिगुरु के दरबार में चित्त जोड़कर सेवा करे, गुरसिक्ख उसकी सेवा करता है। जो मनुष्य फ़रेब करने के लिए आता है और फ़रेब के ख़्याल में चला जाता है, उसके निकट गुरु का सिक्ख बिल्कुल ही नहीं आता। नानक कहकर सुनाता है कि बिल्कुल सत्य विचार की बात यह है कि सतिगुरु का मन द्रवीभूत किए बिना जो मनुष्य (ठगी आदि करके गुरमुखों से) काम कराए (अर्थात्, अपनी सेवा कराए), वह बड़ा दुःख पाता है ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ हे सर्वोपरि प्रभु ! तुम सच्चे मालिक तथा महान् हो; अपने जितना तुम आप (ही) हो। वही मनुष्य तुम्हें मिलता है, जिसे तुम आप मिलाते हो और जिसका लेखा छोड़कर तुम आप क्षमा कर लेते हो। जिसे तुम आप मिलाते हो, वही मन लगाकर सतिगुरु की सेवा करता है। तुम सच्चे मालिक हो, सदा स्थिर रहनेवाले हो, जीवों का सब कुछ —प्राण, शरीर, त्वचा, अस्थि —तेरा ही दिया हुआ है। हे सर्वोपरि, सच्चे प्रभु ! जैसे तुझे भाए वैसे ही हमें रख ले, नानक के मन में तेरी ही आस है ॥ ३३ ॥ १ ॥

गउड़ी की वार महला ५

राइ कमालदी मोजदी की वार की धुनि उपरि गावणी

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ सलोक म० ५ ॥ हरि हरि नामु जो जनु जपै सो आइआ परवाणु। तिसु जन कै बलिहारणै जिनि भजिआ प्रभु निरबाणु। जनम मरन दुखु कटिआ हरि भेटिआ पुरखु सुजाणु। संत संगि सागरु तरे जन नानक सचा ताणु ॥ १ ॥ म० ५ ॥ भलके उठि पराहुणा मेरै घरि आवउ। पाउ पखाला तिस के मनि तनि नित भावउ। नामु सुणे नामु संग्रहै नामे लिव लावउ। ग्रिहु धनु सभु पवित्रु होइ हरि के गुण गावउ। हरिनाम वापारी नानका वडभागी पावउ ॥ २ ॥ ॥ पउड़ी ॥ जो तुधु भावै सो भला सचु तेरा भाणा। तू सभ महि एकु वरतदा सभ माहि समाणा। थान थनंतरि रवि रहिआ जीअ अंदरि जाणा। साध संगि मिलि पाईऐ मनि सचे भाणा। नानक प्रभ सरणागती सद सद कुरबाणा ॥ १ ॥

॥ सलोक महला ५ ॥ जो मनुष्य परमात्मा का नाम स्मरण करता है, उसका (जगत् में) आना सफल (समझो)। जिस मनुष्य ने वासना-

रहित मन से प्रभु को स्मरण किया है, मैं उस पर न्योछावर हूँ, उसे सुजान अकालपुरुष मिल गया है, उसका सारी उम्र का दुख-क्लेश दूर हो गया है। हे दास नानक ! उसे एक सच्चे प्रभु का ही आसरा है, उसने सत्संग में रहकर संसार-समुद्र पार कर लिया है ॥ १ ॥ महला ५ ॥ यदि सबेरे उठकर कोई (गुरमुख) मेहमान मेरे घर आए, मैं उस गुरमुख के चरण धोऊँ; मेरे मन, तन में वह सदा प्यारा लगे। वह गुरमुख (नित्य) नाम सुने, नाम-धन एकत्रित करे और नाम में ही सुरति जोड़े रखे। (उसके आने से, मेरा) सारा घर पवित्र हो जाए, मैं भी (उसके प्रभाव से) प्रभु के गुण गाने लग जाऊँ। (पर) हे नानक ! ऐसा प्रभु का व्यापारी सौभाग्यवश ही कहीं मुझे मिल सकता है ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ हे सदा स्थिर रहनेवाले प्रभु ! जो मनुष्य तुझे भला लगता है, जिसे तेरा ('भाणा') भला लगता है, वह भला है। तुम ही सब जीवों में व्यापक हो, सब में समाए हुए हो, सर्वत्र मौजूद हो, सब जीवों में तुम ही जाने जाते हो। वह सत्यस्वरूप प्रभु का भाणा मानकर, सत्संग में मिलकर, उसे प्राप्त किया जा सकता है। हे नानक ! उस प्रभु की शरण आ, उस पर सदा ही बलिहारी हो ॥ १ ॥

॥ सलोक म० ५ ॥ चेताई तां चेति साहिबु सचा सो धणी। नानक सतिगुरु सेवि चड़ि बोहिथि भउजलु पारि पउ ॥ १ ॥ ॥ म० ५ ॥ वाऊ संदे कपड़े पहिरहि गरबि गवार। नानक नालि न चलनी जलि बलि होए छारु ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ सेई उबरे जगै विचि जो सचै रखे। मुहि डिठै तिन कै जीवीऐ हरि अंम्रितु चखे। कामु क्रोधु लोभु मोहु संगि साधा भखे। करि किरपा प्रभि आपणी हरि आपि परखे। नानक चलत न जापनी को सकै न लखे ॥ २ ॥

॥ सलोक महला ५ ॥ हे नानक ! यदि तुझे याद है कि वह प्रभु-मालिक सदा स्थिर रहनेवाला है, तो उस मालिक को स्मरण कर। गुरु के हुक्म-अनुसार चल (गुरु के हुक्म-रूपी) जहाज़ में चढ़ और संसार-समुद्र को पार कर ॥ १ ॥ महला ५ ॥ मूर्ख मनुष्य सुन्दर बारीक कपड़े अत्यन्त गर्व से पहनते हैं, पर हे नानक ! (मरण-पश्चात् ये कपड़े जीव के) साथ नहीं जाते, (यहीं) जलकर राख हो जाते हैं ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ (कामादिक विकारों से) जगत् में वे ही मनुष्य बचे हैं, जिन्हें सच्चे प्रभु ने बचाया है। ऐसे मनुष्यों का दर्शन करके हरि-नाम-रूपी अमृत चखा जा सकता है और (असल) ज़िन्दगी मिलती है। ऐसे साधू-संतों की संगति में काम, क्रोध,

लोभ, मोह (आदि विकार) नष्ट हो जाते हैं। जिन पर प्रभु ने अपनी कृपा की है, उन्हें उसने आप ही स्वीकार कर लिया है। हे नानक! परमात्मा के कौतुक समझे नहीं जा सकते, कोई जीव समझ नहीं सकता॥ २॥

॥ सलोक म० ५॥ नानक सोई दिनसु सुहावड़ा जितु प्रभु आवै चिति। जितु दिनि विसरै पारब्रहमु फिटु भलेरी रुति॥१॥ ॥ म० ५॥ नानक मित्राई तिसु सिउ सभ किछु जिस कै हाथि। कुमित्रा सेई कांढीअहि इक विख न चलहि साथि॥ २॥ ॥ पउड़ी॥ अंम्रितु नामु निधानु है मिलि पीवहु भाई। जिसु सिमरत सुखु पाईऐ सभ तिखा बुझाई। करि सेवा पारब्रहम गुर भुख रहै न काई। सगल मनोरथ पुंनिआ अमरापदु पाई। तुधु जेवडु तू है पारब्रहम नानक सरणाई॥ ३॥

॥ सलोक महला ५॥ हे नानक! वही दिन सुन्दर है, जिस दिन परमात्मा मन में बसे। जिस दिन परमात्मा विस्मृत हो जाता है, वह समय अशुभ जानो, वह समय धिक्कार योग्य है॥ १॥ महला ५॥ हे नानक! उस (प्रभु) के साथ दोस्ती (करनी चाहिए) जिसके वश में हरएक बात है, परन्तु जो एक कदम भी (हमारे) साथ नहीं जा सकते, वे कुमित्र कहे जाते हैं॥ २॥ पउड़ी॥ हे भाई! परमात्मा का नाम अमृत-(रूप) खजाना है, (इस अमृत को सत्संग में) मिलकर पियो। उस नाम को स्मरण कर सुख मिलता है और (माया की) सारी तृष्णा मिट जाती है। (हे भाई!) गुरु अकालपुरुष की सेवा करने पर, (माया की) कोई भूख नहीं रह जायगी। (नाम-स्मरण करने से) सारे मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं; वह ऊँची आत्मिक अवस्था मिल जाती है, जो कभी नष्ट नहीं होती। हे पारब्रह्म! तुम्हारे समान तुम आप हो। हे नानक! उस पारब्रह्म की शरण लो॥ ३॥

॥ सलोक म० ५॥ डिठड़ो हभ ठाइ ऊण न काई जाइ। नानक लधा तिन सुआउ जिना सतिगुरु भेटिआ॥ १॥ ॥ म० ५॥ दामनी चमतकार तिउ वरतारा जग खे। वथु सुहावी साइ नानक नाउ जपंदो तिसु धणी॥ २॥ पउड़ी॥ सिम्रिति सासत्र सोधि सभि किनै कीम न जाणी। जो जनु भेटै साध संगि सो हरि रंगु माणी। सचु नामु करता पुरखु एह रतना खाणी। मसतकि होवै लिखिआ हरि सिमरि पराणी। तोसा दिचै सचु नामु नानक मिहमाणी॥ ४॥

॥ सलोक महला ५ ॥ मैंने (प्रभु को) सर्वत्र मौजूद देखा है, कोई भी स्थान (उससे) खाली नहीं है। परन्तु, हे नानक ! जीवन का मनोरथ उन मनुष्यों ने ही प्राप्त किया है, जिन्हें सतिगुरु मिला है ॥ १ ॥ ॥ महला ५ ॥ जगत् का व्यवहार उसी प्रकार का है (जैसे) बिजली की चमक। (इसलिए) हे नानक ! उस मालिक का नाम जपना— (असल में) यही चीज़ सुन्दर (तथा सदा टिकी रहनेवाली) है ॥ २ ॥ ॥ पउड़ी ॥ स्मृतियाँ, शास्त्र सब अच्छी प्रकार देखे हैं, किसी ने कर्त्तार की कीमत नहीं आँकी। (केवल) वह मनुष्य प्रभु (के मिलाप) का आनन्द प्राप्त करता है, जो सत्संग में जा मिलता है। प्रभु का सच्चा नाम, कर्त्तार अकालपुरुष —यही रत्नों की खान है, लेकिन वही मनुष्य नाम-स्मरण करता है, जिसके मस्तक पर भाग्य हों। (हे प्रभु !) नानक की ख़ातिरदारी यही है कि अपना सच्चा नाम (मार्ग के लिए) ख़र्च कर दे ॥ ४ ॥

॥ सलोक म० ५ ॥ अंतरि चिंता नैणी सुखी मूलि न उतरै भुख। नानक सचे नाम बिनु किसै न लथो दुखु ॥ १ ॥ ॥ म० ५ ॥ मुठड़े सेई साथ जिनी सचु न लदिआ। नानक से साबासि जिनी गुर मिलि इकु पछाणिआ ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ जिथै बैसनि साध जन सो थानु सुहंदा। ओइ सेवनि संम्रिथु आपणा बिनसै सभु मंदा। पतित उधारण पारब्रहम संत बेदु कहंदा। भगति वछलु तेरा बिरदु है जुगि जुगि वरतंदा। नानकु जाचै एकु नामु मनि तनि भावंदा ॥ ५ ॥

॥ सलोक महला ५ ॥ जिस मनुष्य के मन में चिन्ता है, उसकी माया की भूख बिल्कुल नहीं मिटती; देखने में चाहे वह सुखी लगता हो। हे नानक ! परमात्मा के नाम के बिना किसी का भी दुःख दूर नहीं होता ॥१॥ ॥ महला ५ ॥ उन (जीव-) व्यापारियों के समूह के समूह लूटे गए (जानो) जिन्होंने प्रभु का नाम-रूपी सौदा नहीं लादा। पर हे नानक ! उन्हें शाबास है, जिन्होंने सतिगुरु को मिलकर परमात्मा को पहचान लिया है ॥ २ ॥ ॥ पउड़ी ॥ जिस स्थान पर गुरमुख मनुष्य बैठते हैं, वह स्थान सुन्दर हो जाता है, (क्योंकि) वे गुरमुख व्यक्ति (वहाँ बैठकर) अपने समर्थ प्रभु को स्मरण करते हैं, (जिससे उनके मन से) तमाम बुराई नष्ट हो जाती है। हे पारब्रह्म ! तुम (विकारों में) ग्रस्त हुए जीवों को बचानेवाले हो— यह बात संतजन भी कहते हैं और वेद भी कहते हैं; भक्तों को प्यार करना— यह तेरा जन्म-जन्मान्तरों का स्वभाव है, तेरा यह स्वभाव सदा स्थिर रहता

है। नानक तेरा नाम ही माँगता है, (नानक को तेरा नाम ही) मन, तन में प्यारा लगता है ॥ ५ ॥

॥ सलोक म० ५ ॥ चिड़ी चुहकी पहु फुटी वगनि बहुतु तरंग। अचरज रूप संतन रचे नानक नामहि रंग ॥ १ ॥ ॥ म० ५ ॥ घर मंदर खुसीआ तही जह तू आवहि चिति। दुनीआ कीआ वडिआईआ नानक सभि कुमित ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ हरि धनु सची रासि है किनै विरलै जाता। तिसै परापति भाइरहु जिसु देइ बिधाता। मन तन भीतरि मउलिआ हरि रंगि जनु राता। साध संगि गुण गाइआ सभि दोखह खाता। नानक सोई जीविआ जिनि इकु पछाता ॥ ६ ॥

॥ सलोक महला ५ ॥ जब पौ फूटती है और चिड़ियाँ चहकती हैं उस वक्त (भक्त के हृदय में स्मरण की) तरंगें उठती हैं। हे नानक ! जिन गुरमुखों का प्रभु के नाम में प्रेम होता है, उन्होंने (पौ फूटने के समय) कौतुकमय रूप रचे होते हैं ॥ १ ॥ महला ५ ॥ उन घरों, मन्दिरों में ही खुशियाँ हैं, जहाँ (हे प्रभु !) तुम याद आते हो। हे नानक (यदि प्रभु विस्मृत हो जाए) तो दुनिया की सारी महानता खोटे मित्र जैसी है ॥ २ ॥ ॥ पउड़ी ॥ हे भाइयो ! परमात्मा का नाम-रूपी धन सदा स्थिर रहनेवाली पूँजी है, (पर) किसी विरले ने ही यह बात समझी है, (और यह पूँजी) उसी को ही मिलती है, जिसे कर्त्तार आप देता है। (जिस भाग्यशाली को नाम-राशि मिलती है), वह मनुष्य प्रभु के रंग में रँगा जाता है, वह अपने मन-तन में प्रफुल्लित हो जाता है, (ज्यों-ज्यों) वह सत्संग में प्रभु के गुण गाता है, (त्यों-त्यों वह) सारे बिकारों को समाप्त करता जाता है। हे नानक ! वही मनुष्य (वास्तव में) जीता है, जिसने एक प्रभु को पहचाना है ॥ ६ ॥

॥ सलोक म० ५ ॥ खखड़ीआ सुहावीआ लगड़ीआ अक कंठि। बिरह विछोड़ा धणी सिउ नानक सहसै गंठि ॥ १ ॥ ॥ म० ५ ॥ विसारेदे मरि गए मरि भि न सकहि मूलि। वेमुख होए राम ते जिउ तसकर उपरि सूलि ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ सुख निधानु प्रभु एकु है अबिनासी सुणिआ। जलि थलि महीअलि पूरिआ घटि घटि हरि भणिआ। ऊच नीच सभ इक समानि कीट हसती बणिआ। मीत सखा सुत बंधिपो सभि तिस दे

जणिआ । तुसि नानकु देवै जिसु नामु तिनि हरि रंगु मणिआ ॥ ७ ॥

॥ सलोक महला ५ ॥ (आक के) फूल (तब तक) सुन्दर हैं, (जब तक) आक के साथ लगे हुए हैं; पर, हे नानक ! मालिक से जब बिछोह होता है तो उनके हज़ारों टुकड़े हो जाते हैं ॥१॥महला ५॥ परमात्मा को भुलानेवाले जीव मृत (जानो), पर वे अच्छी प्रकार मर भी नहीं सकते। जिन्होंने प्रभु से मुँह मोड़ा है, वे इस प्रकार हैं जैसे सूली पर चढ़ाए गए चोर हों ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ एक परमात्मा ही सब सुखों का ख़ज़ाना है, जो (परमात्मा) अविनाशी सुना जाता है। पानी में, धरती के भीतर और बाहर वह प्रभु मौजूद है, हरएक शरीर में वह प्रभु बसता कहा जाता है, ऊँचे-नीचे सब जीवों में एक जैसा विद्यमान है। कीड़े (से लेकर) हाथी (तक, सारे उस प्रभु से ही) बने हैं। (सारे) मित्र, साथी, पुत्र, सम्बन्धी सारे उस प्रभु के ही पैदा किए हुए हैं। जिस जीव को (गुरु) सन्तुष्ट होकर 'नाम' देता है, उसने ही हरि-नाम का रंग प्राप्त किया है ॥ ७ ॥

॥ सलोक म० ५ ॥ जिना सासि गिरासि न विसरै हरि नामां मनि मंतु । धंनु सि सेई नानका पूरनु सोई संतु ॥ १ ॥ ॥ म० ५ ॥ अठे पहर भउदा फिरै खावण संदड़ै सूलि । दोजकि पउदा किउ रहै जा चिति न होइ रसूलि ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ तिसै सरेवहु प्राणीहो जिस दै नाउ पलै । ऐथै रहहु सुहेलिआ अगै नालि चलै । घरु बंधहु सच धरम का गडि थंमु अहलै । ओट लैहु नाराइणै दीन दुनीआ झलै । नानक पकड़े चरण हरि तिसु दरगह मलै ॥ ८ ॥

॥ सलोक महला ५ ॥ जिन मनुष्यों को साँस लेते तथा खाते हुए कभी परमात्मा विस्मृत नहीं होता, जिनके मन में परात्मा का नाम-रूपी मन्त्र है, हे नानक ! वे ही मनुष्य मुबारिक हैं, वे ही मनुष्य पूर्ण संत हैं ॥१॥ ॥ महला ५ ॥ यदि कोई मनुष्य दिन-रात्रि खाने के दुःख में (पेट की भूख के लिए) भटकता फिरे, और उसके चित्त में गुरु पैग़म्बर के माध्यम से परमात्मा न (याद) आये तो वह नरक में पड़ने से कैसे बच सकता है ? ॥२॥ ॥ पउड़ी ॥ हे जीवो ! उस गुरु की सेवा करो जिसके पास प्रभु का नाम है। (इस प्रकार) यहाँ सुखी होओगे और परलोक में भी (यह नाम) तुम्हारे साथ जाएगा। (नाम-रूपी) पक्का स्तम्भ गाड़कर सदा रहनेवाले धर्म का मन्दिर (सत्संग) बनाओ, अकालपुरुष की टेक रखो जो दीन तथा

दुनिया को आसरा देनेवाला है। हे नानक ! जिस मनुष्य ने प्रभु के पैर पकड़े हैं, वह (मानो) प्रभु का दरबार प्राप्त किए रहता है ॥ ८ ॥

॥ सलोक म० ५ ॥ जाचकु मंगै दानु देहि पिआरिआ। देवणहारु दातारु मै नित चितारिआ। निखुटि न जाई मूलि अतुल भंडारिआ। नानक सबदु अपारु तिनि सभु किछु सारिआ ॥ १ ॥ म० ५ ॥ सिखहु सबदु पिआरिहो जनम मरन की टेक। मुख ऊजल सदा सुखी नानक सिमरत एक ॥ २ ॥ ॥ पउड़ी ॥ ओथै अंम्रितु वंडीऐ सुखीआ हरि करणे। जम कै पंथि न पाईअहि फिरि नाही मरणे। जिसनो आइआ प्रेम रसु तिसै ही जरणे। बाणी उचरहि साध जन अमिउ चलहि झरणे। पेखि दरसनु नानकु जीविआ मन अंदरि धरणे ॥ ९ ॥

॥ सलोक महला ५ ॥ (हे प्रभु !) मैं भिखारी (शब्द का) दान माँगता हूँ, मुझे भीख दे। तुम देन देनेवाले हो, तुम देन देने योग्य हो, मैं तुझे सदा स्मरण करता हूँ। तेरा ख़ज़ाना अनन्त है (यदि बीच में से मुझे दान दे दो तो भी) समाप्त नहीं होता। हे नानक ! (प्रभु की गुणस्तुति की) वाणी अपार है, इस वाणी ने मेरा हरेक कार्य सँवार दिया है ॥ १ ॥ ॥ महला ५ ॥ हे प्यारे सज्जनो ! गुरुवाणी स्मरण रखने की आदत बनाओ, यह सारी उम्र का आसरा है। हे नानक! (इस वाणी के द्वारा) एक प्रभु को स्मरण करते हुए सदा सुखी रहा जाता है और हमेशा प्रसन्नवदन रहता है ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ सब जीवों को सुखी करनेवाला हरि-अमृत उस सत्संग में बाँटा जाता है। (जो मनुष्य वह अमृत प्राप्त करते हैं वे) यम के मार्ग पर नहीं पाए जाते, उन्हें दोबारा मौत (का डर स्पर्श) नहीं करता। जिस मनुष्य को हरि-नाम के प्रेम का आस्वाद आता है, वह इस स्वाद को अपने भीतर टिकाता है। (सत्संग में) गुरुमुख गुणस्तुति की वाणी उच्चरित करते हैं, वहाँ अमृत के, मानो, फ़व्वारे चल पड़ते हैं। नानक (भी उस सत्संग का) दर्शन करके जी रहा है और मन में हरि-नाम को धारण कर रहा है ॥ ९ ॥

॥ सलोक म० ५ ॥ सतिगुरि पूरै सेविऐ दूखा का होइ नासु। नानक नामि अराधिऐ कारजु आवै रासि ॥ १ ॥ ॥ म० ५ ॥ जिसु सिमरत संकट छुटहि अनद मंगल बिस्राम। नानक जपीऐ सदा हरि निमख न बिसरउ नामु ॥२॥पउड़ी॥ तिन की सोभा किआ गणी जिनी हरि हरि लधा। साधा सरणी जो

पवै सो छुटै बधा। गुण गावै अबिनासीऐ जोनि गरभि न दधा। गुरु भेटिआ पारब्रहमु हरि पड़ि बुझि समधा। नानक पाइआ सो धणी हरि अगम अगधा ॥ १० ॥

॥ सलोक महला ५ ॥ हे नानक ! यदि पूर्णगुरु के बतलाए मार्ग पर चलें तो दुखों का नाश हो जाता है, और यदि नाम-स्मरण करें तो जीवन का मनोरथ सफल हो जाता है ॥ १ ॥ महला ५ ॥ हे नानक ! जिस परमात्मा को स्मरण करने से सारे दुःख दूर हो जाते हैं, (हृदय में) आनन्द और खुशियों का निवास होता है, उसे सदा स्मरण करें और निमिषमात्र के लिए भी वह हरि-नाम हमें विस्मृत न हो ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ जिन (गुरमुखों) ने परमात्मा को प्राप्त कर लिया है, उनकी महानता नहीं बखानी जा सकती, जो मनुष्य उन गुरमुखों की शरण आता है, वह माया के बन्धनों में बँधा हुआ भी मुक्त हो जाता है। वह अविनाशी प्रभु के गुण गाता है और योनियों में पड़-पड़कर नहीं जलता। उसे गुरु मिल जाता है, वह प्रभु की गुणस्तुति उच्चरित करके और समझकर शांति प्राप्त करता है। हे नानक ! उस मनुष्य ने अथाह और अगम्य मालिक हरि को पा लिया है ॥ १० ॥

॥ सलोक म० ५ ॥ कामु न करही आपणा फिरहि अवता लोइ। नानक नाइ विसारिऐ सुखु किनेहा होइ ॥ १ ॥ ॥ म० ५ ॥ बिखै कउड़तणि सगल माहि जगति रही लपटाइ। नानक जनि वीचारिआ मीठा हरि का नाउ ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ इह नीसाणी साध की जिसु भेटत तरीऐ। जम कंकरु नेड़ि न आवई फिरि बहुड़ि न मरीऐ। भव सागरु संसारु बिखु सो पारि उतरीऐ। हरि गुण गुंफहु मनि माल हरि सभ मलु परहरीऐ। नानक प्रीतम मिलि रहे पारब्रहम नरहरीऐ ॥ ११ ॥

॥ सलोक महला ५ ॥ (हे जीव !) तू अपना (असली) काम नहीं करता और जगत् में स्वेच्छाचारी बनकर फिर रहा है। हे नानक ! यदि प्रभु का नाम भुला दिया जाए तो कोई भी सुख नहीं हो सकता ॥ १ ॥ ॥ महला ५ ॥ (माया) विष की कड़ुआहट सारे जीवों में है, जगत् में सबको चिपटी हुई है। हे नानक ! (केवल प्रभु के) सेवक ने यह विचार किया है कि परमात्मा का नाम ही मीठा है ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ संत की निशानी यह है कि उससे मिलने से (संसार) समुद्र से पार हो जाते हैं; यम का सेवक (यमदूत) निकट नहीं आता और बार-बार नहीं मरा जाता है। जो जहर-रूपी संसार-समुद्र है, इससे पार उतर जाते हैं। हे भाई ! मन

में परमात्मा के गुणों की माला गूँथों, मन की सारी मैल दूर हो जाती है। हे नानक ! (जिन्होंने यह माला गूँथी है), वे पारब्रह्म परमात्मा को मिले रहते हैं ॥ ११ ॥

॥ सलोक म० ५ ॥ नानक आए से परवाणु है जिन हरि वुठा चिति । गाल्ही अलपलालीआ कंमि न आवहि मित ॥ १ ॥ ॥ म० ५ ॥ पारब्रहमु प्रभु द्रिसटी आइआ पूरन अगम बिसमाद । नानक राम नामु धनु कीता पूरे गुरपरसादि ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ धोहु न चली खसम नालि लबि मोहि विगुते । करतब करनि भलेरिआ मदि माइआ सुते । फिरि फिरि जूनि भवाईअनि जम मारगि मुते । कीता पाइनि आपणा दुख सेती जुते । नानक नाइ विसारिऐ सभ मंदी रुते ॥ १२ ॥

॥ सलोक महला ५ ॥ हे नानक ! जिन मनुष्यों के चित्त में परमात्मा आ बसा है, उनका जगत् में आना सफल है। हे मित्र ! कोरी बातें किसी काम नहीं आतीं, (नाम से खाली रहकर कोरी बातों का कोई लाभ नहीं) ॥ १ ॥ महला ५ ॥ (जिस मनुष्य ने) पूर्णगुरु की कृपा से परमात्मा के नाम को अपना धन बनाया है, उसे अगम्य तथा आश्चर्यजनक प्रभु सर्वत्र मौजूद दिख पड़ा है ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ पति (प्रभु) के साथ धोखा सफल नहीं हो सकता। जो मनुष्य झूठ तथा मोह में फँसे हुए हैं, वे दुखी होते हैं, माया के नशे में सोते हुए व्यक्ति नीच कर्म करते हैं, बार-बार योनियों में धकेले जाते हैं और यमराज के मार्ग में (निराश्रित) छोड़ दिए जाते हैं, अपने (नीच) कृत (कर्मों) का फल पाते हैं, दुखों से बाँध दिए जाते हैं। हे नानक ! यदि प्रभु का नाम भुला दिया जाए तो (जीव के लिए) सारी ऋतु व्यर्थ ही जानो ॥ १२ ॥

॥ सलोक म० ५ ॥ उठंदिआ बहंदिआ सवंदिआ सुखु सोइ । नानक नामि सलाहिऐ मनु तनु सीतलु होइ ॥ १ ॥ ॥ म० ५ ॥ लालचि अटिआ नित फिरै सुआरथु करे न कोइ । जिसु गुरु भेटै नानका तिसु मनि वसिआ सोइ ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ सभे वसतू कउड़ीआ सचे नाउ मिठा । सादु आइआ तिन हरिजनां चखि साधी डिठा । पारब्रहमि जिसु लिखिआ मनि तिसै वुठा । इकु निरंजनु रवि रहिआ भाउ दुया कुठा । हरि नानकु मंगै जोड़ि कर प्रभु देवै तुठा ॥ १३ ॥

॥ सलोक महला ५ ॥ हे नानक! यदि प्रभु के नाम की प्रशंसा करते रहें तो मन तथा शरीर शीतल रहते हैं और यह सुख एक समान उठते-बैठते, सोते, हर समय बना रहता है ॥ १ ॥ महला ५ ॥ (जगत् माया के) लालच में फँसा हुआ सदा (भटकता) फिरता है, कोई भी व्यक्ति अपने असली भले का काम नहीं करता। (पर) हे नानक! जिस मनुष्य को सतिगुरु मिलता है, उसके मन में वह प्रभु बस जाता है ॥२॥पउड़ी॥ (दुनिया की शेष सभी वस्तुएँ) आख़िरकार कौड़ियाँ हो जाती हैं, (एक) सच्चे प्रभु का नाम (ही सदा) मीठा (रहता है), (पर) यह स्वाद उन हरि-जनों को आता है, जिन्होंने (यह नाम-रस) चखकर देखा है, और उसी मनुष्य के मन में (यह आस्वाद) आकर बसता है, जिसके भाग्यों में पारब्रह्म ने लिख दिया है। (ऐसे भाग्यशाली को) माया-रहित प्रभु ही सर्वत्र दिखता है, (उस मनुष्य का) द्वैतभाव नष्ट हो जाता है। नानक भी दोनों हाथ जोड़कर हरि से यह नाम-रस माँगता है, (पर) प्रभु (उसे ही) देता है, (जिस पर) प्रसन्न होता है ॥ १३ ॥

॥ सलोक म० ५ ॥ जाचड़ी सा सारु जो जाचंदी हेकड़ो। गाल्ही बिआ विकार नानक धणी विहूणीआ ॥ १ ॥ म० ५ ॥ नीहि जि विधा मंनु पछाणू विरलो थिओ। जोड़णहारा संतु नानक पाधरु पधरो ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ सोई सेविहु जीअड़े दाता बखसिंदु। किलविख सभि बिनासु होनि सिमरत गोविंदु। हरि मारगु साधू दसिआ जपीऐ गुरमंतु। माइआ सुआद सभि फिकिआ हरि मनि भावंदु। धिआइ नानक परमेसरै जिनि दिती जिंदु ॥ १४ ॥

॥ सलोक महला ५ ॥ वह याचना सर्वश्रेष्ठ है जो (जिसके द्वारा मनुष्य) एक प्रभु (के नाम को) माँगता है। हे नानक! मालिक प्रभु से बाहर की सब बातें व्यर्थ हैं ॥ १ ॥ महला ५ ॥ ऐसा पहचान करनेवाला कोई बिरला व्यक्ति होता है, जिसका मन प्रभु के प्रेम में बिंधा होवे। हे नानक! ऐसा संत (दूसरों को भी परमात्मा के साथ) जोड़ने के योग्य होता है और (परमात्मा को मिलने के लिए) सीधा मार्ग दिखा देता है ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ हे मेरी आत्मा! उस परमेश्वर को स्मरण कर, जो सब देन देनेवाला है और कृपा करनेवाला है। परमेश्वर को स्मरण करने से सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। गुरु ने प्रभु के मिलन का मार्ग बतलाया है। गुरु का उपदेश सदा स्मरण करना चाहिए, (इससे) माया के सारे आस्वाद फीके प्रतीत होते हैं और परमेश्वर मन में प्यारा लगता है। हे नानक! जिस परमेश्वर ने (यह) आत्मा दी है, उसे (सदा) स्मरण कर ॥ १४ ॥

।। सलोक म० ५ ।। वत लगी सचे नाम की जो बीजे सो खाइ । तिसहि परापति नानका जिस नो लिखिआ आइ ।। १ ।। ।। म० ५ ।। मंगणा त सचु इकु जिसु तुसि देवै आपि । जितु खाधै मनु त्रिपतीऐ नानक साहिब दाति ।। २ ।। पउड़ी ।। लाहा जग महि से खटहि जिन हरि धनु रासि । दुतीआ भाउ न जाणनी सचे दी आस । निहचलु एकु सरेविआ होरु सभ विणासु । पारब्रहमु जिसु विसरै तिसु बिरथा सासु । कंठि लाइ जन रखिआ नानक बलि जासु ।। १५ ।।

।। सलोक महला ५ ।। (यह मनुष्य-जन्म) सच्चे प्रभु का नाम (रूपी बीज बोने के लिए) उपयुक्त समय मिला है, जो मनुष्य ('नाम' बीज) बोता है, वह (इसका फल) खाता है। हे नानक! यह चीज उस मनुष्य को ही मिलती है, जिसके भाग्यों में लिखी होवे ।। १ ।। महला ५ ।। यदि माँगना है तो केवल प्रभु का नाम माँगो, (यह 'नाम' उसे ही मिलता है) जिसे प्रभु आप प्रसन्न होकर देता है, यदि यह (नाम-वस्तु) खाई जाए तो मन (माया से) तृप्त हो जाता है, पर हे नानक! यह मालिक की कृपा ही है ।। २ ।। पउड़ी ।। जगत् में वही (मनुष्य-वनजारे) लाभ प्राप्त करते हैं, जिनके पास परमात्मा का नाम-रूपी धन है, पूँजी है। वे किसी दूसरे के साथ मोह करना नहीं जानते, उन्हें एक परमात्मा की ही आशा होती है। उन्होंने सदा स्थिर रहनेवाले प्रभु को ही स्मरण किया है, (क्योंकि) शेष सारा जगत् (उन्हें) नश्वर (दिखता) है। जिस मनुष्य को परमात्मा विस्मृत हो जाता है, उसका हरेक श्वास व्यर्थ हो जाता है। परमात्मा ने अपने सेवकों को आप अपने कंठ के साथ लगाकर बचाया है। हे नानक! मैं उस प्रभु पर बलिहारी जाता हूँ ।। १५ ।।

।। सलोक म० ५ ।। पारब्रहमि फुरमाइआ मीहु वुठा सहजि सुभाइ । अंनु धंनु बहुतु उपजिआ प्रिथमी रजी तिपति अघाइ । सदा सदा गुण उचरै दुखु दालदु गइआ बिलाइ । पूरबि लिखिआ पाइआ मिलिआ तिसै रजाइ । परमेसरि जीवालिआ नानक तिसै धिआइ ।। १ ।। म० ५ ।। जीवन पदु निरबाणु इको सिमरीऐ । दूजी नाही जाइ किनि बिधि धीरीऐ । डिठा सभु संसारु सुखु न नाम बिनु । तनु धनु होसी छारु जाणै कोइ जनु । रंग रूप रस बादि कि करहि पराणीआ । जिसु भुलाए आपि तिसु कल नही जाणीआ । रंगि रते निरबाणु सचा गावही । नानक सरणि

दुआरि जे तुधु भावही ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ जंमणु मरणु न तिन्ह कउ जो हरि लड़ि लागे । जीवत से परवाणु होए हरि कीरतनि जागे । साधसंगु जिन पाइआ सेई वडभागे । नाइ विसरिऐ ध्रिगु जीवणा तूटे कच धागे । नानक धूड़ि पुनीत साध लख कोटि पिरागे ॥ १६ ॥

॥ सलोक महला ५ ॥ जब परमात्मा ने हुक्म दिया तो अपने आप नाम की वर्षा होने लगी, उस (हृदय-धरती) में (प्रभु की गुणस्तुति का) अन्न बहुत पैदा हो जाता है, (हृदय सन्तोष वाला हो जाता है), वह मनुष्य सदा ही परमात्मा के गुण गाता है, दुःख-दारिद्रय दूर हो जाता है, पर यह 'नाम' रूपी अन्न पूर्वकाल के लिखे भाग्यों के अनुसार पाया जाता है; और (वह) परमात्मा की रज़ा-अनुसार मिलता है। (जिसने) जीवन दिया हैं, हे नानक ! उस प्रभु को स्मरण कर ॥ १ ॥ महला ५ ॥ यदि वासनारहित एक प्रभु को स्मरण करें तो असली जीवन का स्थान प्राप्त होता है, (पर इस अवस्था की प्राप्ति के लिए) कोई दूसरा स्थान नहीं है, (क्योंकि) किसी दूसरे तरीके से मन टिक नहीं सकता। सारा संसार (खोजकर) देखा है, प्रभु के नाम के बिना सुख नहीं मिलता। यह शरीर और धन नष्ट हो जाएँगे, लेकिन कोई विरला इस बात को समझता है। हे प्राणी ! तू क्या कर रहा है ? (तू क्यों नहीं समझता कि) रंग-रूप और रस सब व्यर्थ हैं। (पर जीव के भी क्या वश ?) प्रभु जिस मनुष्य को आप कुमार्ग पर डालता है, उसे मन की शान्ति की सुधि नहीं आती। जो मनुष्य प्रभु के प्रेम में रँगे हुए हैं वे उस सदा स्थिर रहनेवाले और वासना-रहित प्रभु के गुण गाते हैं। हे नानक ! (प्रभु से प्रार्थना कर— हे प्रभु !) यदि तुझे अच्छे लगें तो जीव तेरे द्वार पर तेरी शरण के लिए आते हैं ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ जो मनुष्य परमात्मा का आसरा लेते हैं, उनके लिए लिए जन्म-मरण का चक्र नहीं रहता; वे इसी जीवन में (प्रभु के द्वार पर) स्वीकृत (सत्कृत) हो जाते हैं, (क्योंकि) प्रभु की गुणस्तुति करके वे विकारों से बचे रहते हैं। वही मनुष्य भाग्यशाली हैं, जिन्हें ऐसे गुरमुखों की संगति प्राप्त होती है, पर यदि प्रभु का नाम विस्मृत हो जाए तो जीना धिक्कार-योग्य है, टूटे हुए कच्चे धागे के समान (व्यर्थ) है। हे नानक ! गुरमुखों के चरणों की धूलि लाखों-करोड़ों प्रयाग आदि तीर्थों से अधिक पवित्र हैं ॥ १६ ॥

॥ सलोक म० ५ ॥ धरणि सुवंनी खड़ रतन जड़ावी हरि प्रेम पुरखु मनि वुठा । सभे काज सुहेलड़े थीए गुरु नानकु सतिगुरु तुठा ॥ १ ॥ म० ५ ॥ फिरदी फिरदी दह दिसा जल

परबत बन राइ । जिथै डिठा मिरतको इल बहिठी आइ ।। २ ।। ।। पउड़ी ।। जिसु सरब सुखा फल लोड़ीअहि सो सचु कमावउ । नेड़ै देखउ पारब्रहमु इकु नामु धिआवउ । होइ सगल की रेणुका हरि संगि समावउ । दूखु न देई किसै जीअ पति सिउ घरि जावउ । पतित पुनीत करता पुरखु नानक सुणावउ ।। १७ ।।

।। सलोक महला ५ ।। जिस मन में प्रेम-स्वरूप हरि अकालपुरुष बस जाता है, वह मन ऐसा है जैसा ओस-मोतियों से जड़ी हुई घास वाली धरती सुन्दर रंग वाली हो जाती है। हे नानक ! जिस मनुष्य पर गुरु सतिगुरु प्रसन्न हो उठता है, उसके सारे काम सहज हो जाते हैं ।। १ ।। ।। महला ५ ।। दसों दिशाओं में नदियों, पहाड़ों और वृक्षों पर उड़ती-उड़ती चील ने जहाँ शव देखा वहीं आ बैठी, (यही हाल उस मन का है तो परमात्मा से बिछुड़कर विकारों पर आ गिरता है) ।। २ ।। पउड़ी ।। मैं उस सच्चे प्रभु को स्मरण करूँ, जिससे सारे सुख और सारे फल माँगे जाते हैं; उस पारब्रह्म को अपने साथ-साथ देखूँ और केवल उसका ही नाम स्मरण करूँ। सबके चरणों की धूलि होकर मैं परमात्मा में लीन हो जाऊँ। मैं किसी भी जीव को दुःख न दूँ और प्रतिष्ठा के साथ (अपने असली) घर में जाऊँ। हे नानक ! मैं दूसरों को भी बतलाऊँ कि कर्त्तार अकाल-पुरुष (विकारों में) गिरे हुए जीवों को भी पवित्र करनेवाला है ।। १७ ।।

।। सलोक दोहा म० ५ ।। एकु जि साजनु मै कीआ सरब कला समरथु । जीउ हमारा खंनीऐ हरि मन तन संदड़ी वथु ।। १ ।। म० ५ ।। जे करु गहहि पिआरड़े तुधु न छोडा मूलि । हरि छोडनि से दुरजना पड़हि दोजक कै सूलि ।। २ ।। पउड़ी ।। सभि निधान घरि जिस दै हरि करे सु होवै । जपि जपि जीवहि संतजन पापा मलु धोवै । चरन कमल हिरदै वसहि संकट सभि खोवै । गुरु पूरा जिसु भेटीऐ मरि जनमि न रोवै । प्रभ दरस पिआस नानक घणी किरपा करि देवै ।। १८ ।।

।। सलोक दोहा महला ५ ।। मैंने एक उस हरि को ही अपना मित्र बनाया है जो तमाम शक्तियों वाला है, परमात्मा ही मन तथा तन के काम आनेवाली असली हस्ती है, मेरी आत्मा उस पर बलिहारी है ।। १ ।। ।। महला ५ ।। हे अति प्यारे (प्रभु !) यदि तुम मेरा हाथ पकड़ लो, तो मैं तुम्हें कभी न छोड़ूँ । जो मनुष्य प्रभु को भुला देते हैं, वे दुष्कर्मी (होकर) नरक की असह्य पीड़ा में पड़ते हैं ।। २ ।। पउड़ी ।। जिस परमात्मा के घर

में खज़ाने हैं, वह जो कुछ करता है, वही होता है। उसके संतजन उसे स्मरण करके जीते हैं, (प्रभु उनके) पापों की सारी मैल धो देता है, प्रभु के सुन्दर चरण उनके मन में बसते हैं, प्रभु उनके सारे क्लेश नष्ट कर देता है। (पर यह देन गुरु के द्वारा मिलती है), जिस मनुष्य को पूर्णगुरु मिलता है, वह न जन्म-मरण के चक्र में पड़ता है और न दुखी होता है। प्रभु के दर्शनों की इच्छा नानक को भी बड़ी तीव्र है लेकिन वह अपना दर्शन आप ही कृपा करके देता है ॥ १८ ॥

॥ सलोक डखणा म० ५॥ भोरी भरमु वञाइ पिरी मुहबति हिकु तू। जिथहु वंञै जाइ तिथाऊ मउजूदु सोइ ॥ १ ॥ ॥ म० ५ ॥ चड़ि कै घोड़ड़ै कुंदे पकड़हि खूंडी दी खेडारी। हंसा सेती चितु उलासहि कुकड़ दी ओडारी ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ रसना उचरै हरि स्रवणी सुणै सो उधरै मिता। हरि जसु लिखहि लाइ भावनी से हसत पविता। अठसठि तीरथ मजना सभि पुंन तिनि किता। संसार सागर ते उधरे बिखिआ गड़ु जिता। नानक लड़ि लाइ उधारिअनु दयु सेवि अमिता ॥ १६ ॥

॥ सलोक डखणा महला ५ ॥ (हे भाई !) यदि तू तिलमात्र भी (मन की) दुबिधा दूर कर दे और केवल प्यारे (प्रभु) के साथ प्रेम करे, तो जहाँ जाएगा वहीं वह प्रभु हाज़िर (दिखाई देगा) ॥ १ ॥ महला ५ ॥ (जो मनुष्य) साधारण खेल खेलना जानते हों, (लेकिन) सुन्दर घोड़े पर चढ़कर बन्दूकों के हत्थे (हाथ में) पकड़ते हों (उन्हें ऐसे जानो कि) उड़ान तो मुर्गे की उड़नी जानते हों और हंसों के साथ (उड़ने के लिए) मन को उत्साह देते हों ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ हे मित्र ! जो मनुष्य जिह्वा से हरिनाम उच्चरित करता है और कानों से हरि-नाम सुनता है, वह (मनुष्य संसार-सागर से) बच जाता है। उसके वे हाथ पवित्र हैं, जो श्रद्धा-पूर्वक परमात्मा की गुणस्तुति लिखते हैं। उस मनुष्य ने मानो अठारह तीर्थों का स्नान कर लिया है और सारे पुण्यकर्म कर लिए हैं। ऐसे मनुष्य संसार-समुद्र (के विकारों में डूबने से) बच जाते हैं, उन्होंने माया का किला जीत लिया (समझो), हे नानक ! ऐसे अनन्त प्रभु को स्मरण कर, जिसने अपने साथ लगाकर (अनेकों जीव) बचाए हैं ॥ १९ ॥

॥ सलोकु म० ५ ॥ धंधड़े कुलाह चिति न आवै हेकड़ो। नानक सेई तंन फुटंनि जिना सांई विसरै ॥ १ ॥ म० ५ ॥ परेतहु कीतोनु देवता तिनि करणैहारे। सभे सिख उबारिअनु प्रभि काज

सवारे। निंदक पकड़ि पछाड़िअनु झूठे दरबारे। नानक का प्रभु वडा है आपि साजि सवारे ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ प्रभु बेअंतु किछु अंतु नाहि सभु तिसै करणा। अगम अगोचरु साहिबो जीआं का परणा। हसत देइ प्रतिपालदा भरण पोखणु करणा। मिहरवानु बखसिंदु आपि जपि सचे तरणा। जो तुधु भावै सो भला नानक दास सरणा ॥ २० ॥

॥ सलोक महला ५ ॥ वे ग़लत धन्धे हानिकारक हैं, जिनके कारण एक परमात्मा हृदय में न आए, (क्योंकि) हे नानक! वे शरीर विकारों से गन्दे हो जाते हैं, जिन्हें मालिक प्रभु भूल जाता है ॥ १ ॥ महला ५ ॥ उस सृजनहार ने (नाम की देन देकर जीव को) प्रेत से देवता बना दिया है। प्रभु ने आप काम सँवारे हैं और सारे सिक्ख (विकारों से) बचा लिए हैं। झूठे निंदकों को पकड़कर अपनी हजूरी में उसने (मानो) पटकवा कर धरती पर मारा है। नानक का प्रभु सबसे बड़ा है, उसने जीव पैदा करके आप ही सँवार दिए हैं ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ परमात्मा अनन्त है, उसका कोई अन्त नहीं जाना जा सकता; सारा जगत् उसने बनाया है। वह मालिक अगम्य है, जीवों की इन्द्रियों की पहुँच से परे है, सब जीवों का आसरा है। हाथ देकर सबकी रक्षा करता है, सबको पालता है। वह प्रभु कृपा करनेवाला है, देन देनेवाला है, जीव उसे स्मरण करके पार हो जाते हैं। हे दास नानक! (कह—) जो कुछ तेरी इच्छानुसार हो रहा है वह उचित है, हम जीव तेरी शरण में हैं ॥ २० ॥

॥ सलोक म० ५ ॥ तिंना भुख न का रही जिस दा प्रभु है सोइ। नानक चरणी लगिआ उधरै सभो कोइ ॥ १ ॥ ॥ म० ५ ॥ जाचिकु मंगै नित नामु साहिबु करे कबूलु। नानक परमेसरु जजमानु तिसहि भुख न मूलि ॥ २ ॥ पउड़ी ॥ मनु रता गोविंद संगि सचु भोजनु जोड़े। प्रीति लगी हरि नाम सिउ ए हसती घोड़े। राज मिलख खुसीआ घणी धिआइ मुखु न मोड़े। ढाढी दरि प्रभ मंगणा दरु कदे न छोड़े। नानक मनि तनि चाउ एहु नित प्रभ कउ लोड़े ॥ २१ ॥ १ ॥ सुधु कीचे

॥ सलोक महला ५ ॥ जिस-जिस मनुष्य के सिर पर वह प्रभु रक्षक है, उन्हें (माया की) कोई भूख नहीं रह जाती। हे नानक! परमात्मा के चरणों को छूने से हरेक जीव माया की भूख से बच जाता है ॥ १ ॥ ॥ महला ५ ॥ (जो मनुष्य) भिखारी (बनकर मालिक-प्रभु से) सदा नाम

माँगता है, (उसकी प्रार्थना) मालिक स्वीकार करता है। हे नानक ! जिस मनुष्य का यजमान (आप) परमेश्वर है, उसे तिलमात्र भी (माया की) भूख नहीं रहती ।। २ ।। पउड़ी ।। (जो मनुष्य प्रभु की गुणस्तुति करता है, उसका) मन परमात्मा के साथ रँग जाता है, उसके लिए प्रभु का नाम ही बढ़िया भोजन और पोशाक है। परमात्मा के नाम के साथ उसका प्रेम बन जाता है, यही उसके लिए हाथी और घोड़े हैं। प्रभु के स्मरण से वह तृप्त नहीं होता, यही उसके लिए राज्य, ज़मीनें तथा अनन्त ख़ुशियाँ हैं, वह प्रभु का प्रशंसक सदा प्रभु के द्वार से माँगता है, प्रभु के द्वार से कभी मुँह नहीं मोड़ता। हे नानक ! गुणस्तुति करनेवाले के मन, तन में सदा चाव बना रहता है, वह सदा प्रभु को मिलने की ही इच्छा करता है ।। २१ ।। १ ।।

रागु गउड़ी भगतां की बाणी

१ ओं सतिनामु करता पुरखु गुर प्रसादि ।। गउड़ी गुआरेरी स्री कबीर जीउ के चउपदे १४ ।। अब मोहि जलत राम जलु पाइआ। राम उदकि तनु जलत बुझाइआ ।। १ ।। रहाउ ।। मनु मारण कारणि बन जाईऐ। सो जलु बिनु भगवंत न पाईऐ ।। १ ।। जिह पावक सुरि नर है जारे। राम उदकि जन जलत उबारे ।। २ ।। भवसागर सुख सागर माही। पीवि रहे जल निखुटत नाही ।। ३ ।। कहि कबीर भजु सारिंगपानी। राम उदकि मेरी तिखा बुझानी ।। ४ ।। १ ।।

(खोजते-खोजते) अब मैंने प्रभु के नाम का अमृत प्राप्त कर लिया है, उस नाम-अमृत ने मेरे जलते शरीर को शीतलता पहुँचाई है ।।१। रहाउ।। जंगलों आदि की ओर (तीर्थों आदि पर) मन को मारने के लिए जाया जाता है, पर वह (नाम-रूपी) अमृत, प्रभु के बिना प्राप्त नहीं हो सकता ।। १ ।। (तृष्णा की) जिस अग्नि ने देवता और मनुष्य जला दिए हैं, प्रभु के (नाम-)अमृत ने भक्तजनों को उस जलन से बचा लिया है ।। २ ।। इस संसार-समुद्र में (जो अब उनके लिए) सुखों का समुद्र (बन गया है), नाम-अमृत लगातार पी रहे हैं और वह अमृत समाप्त नहीं होता ।। ३ ।। कबीर कहता है— (हे मन !) परमात्मा का स्मरण कर, परमात्मा के नाम-अमृत ने मेरी (माया की) तृष्णा मिटा दी है ।। ४ ।। १ ।।

।। गउड़ी कबीर जी ।। माधउ जल की पिआस न जाइ। जल महि अगनि उठी अधिकाइ ।। १ ।। रहाउ ।। तूं जलनिधि

हउ जल का मीनु । जल महि रहउ जलहि बिनु खीनु ।। १ ।।
तूं पिंजरु हउ सूअटा तोर । जमु मंजारु कहा करै मोर ।। २ ।।
तूं तरवरु हउ पंखी आहि । मंद भागी तेरो दरसनु नाहि ।। ३ ।।
तूं सतिगुरु हउ नउतनु चेला । कहि कबीर मिलु अंत की बेला ।। ४ ।। २ ।।

हे माया के पति प्रभु ! तेरे नाम-अमृत की प्यास नहीं मिटती, तेरा नाम-अमृत पान करते हुए अधिक इच्छा पैदा हो रही है ।। १ ।। रहाउ ।। हे प्रभु ! तुम जल का खज़ाना हो और मैं उस जल की मछली हूँ । मैं जल में ही जीवित रह सकती हूँ, जल के बिना मैं मर जाती हूँ ।। १ ।। तुम मेरे पिंजरे हो, मैं तेरा कमजोर सा तोता हूँ, (तेरे आसरे रहने पर) यम-रूपी बिडाल मेरा क्या बिगाड़ सकता है ? ।। २ ।। हे प्रभु ! तुम सुन्दर वृक्ष हो और मैं (उस वृक्ष के सहारे रहनेवाला) पक्षी हूं । (मुझ) अभागे को (अभी तक) तेरा दर्शन प्राप्त नहीं हुआ ।। ३ ।। हे प्रभु ! तुम गुरु हो, मैं तेरा नया सिक्ख हूं । कबीर कहता है— अब तो (यह मनुष्य-जन्म) आखिरी समय है, हे प्रभु ! मुझे अवश्य मिल ।। ४ ।। २ ।।

।। गउड़ी कबीर जी ।। जब हम एको एकु करि जानिआ । तब लोगह काहे दुखु मानिआ ।। १ ।। हम अपतह अपुनी पति खोई । हमरै खोजि परहु मति कोई ।। १ ।। रहाउ ।। हम मंदे मंदे मन माही । साझ पाति काहू सिउ नाही ।। २ ।। पति अपति ता की नही लाज । तब जानहुगे जब उघरैगो पाज ।।३।। कहु कबीर पति हरि परवानु । सरब तिआगि भजु केवल रामु ।। ४ ।। ३ ।।

जब हमने यह समझ लिया है कि सर्वत्र एक परमात्मा ही व्यापक है तो (पता नहीं) लोगों ने इस बात को क्यों बुरा माना है ।। १ ।। मैं निस्संग हो गया हूँ और मुझे यह परवाह नहीं कि कोई मनुष्य मेरी प्रतिष्ठा करे अथवा न करे (इसलिए, जिस मार्ग पर मैं चल रहा हूँ, तो भले ही कोई) उस मार्ग पर मेरे पीछे न चलो।। १ ।। रहाउ ।। यदि मैं बुरा हूँ तो अपने ही भीतर बुरा हूँ, (किसी को इस बात से क्या ?) मैंने किसी के साथ (इसलिए) कोई मेल-मुलाकात भी नहीं रखी ।। २ ।। कोई मेरी प्रतिष्ठा करे अथवा निरादर करे, मैं इसमें कोई हानि नहीं समझता; क्योंकि तुम्हें भी तब ही समझ आएगी (कि असली प्रतिष्ठा अथवा निरादर क्या है) जब तुम्हारा यह जगत्-दिखावा प्रकट हो जायगा ।। ३ ।। हे कबीर ! कह— (असली) प्रतिष्ठा उसी की ही है, जिसे प्रभु स्वीकार कर ले ।

(इसलिए, हे कबीर !) शेष सब कुछ छोड़कर परमात्मा का स्मरण कर ॥ ४ ॥ ३ ॥

॥ गउड़ी कबीर जी ॥ नगन फिरत जौ पाईऐ जोगु । बन का मिरगु मुकति सभु होगु ॥ १ ॥ किआ नागे किआ बाधे चाम । जब नही चीनसि आतम राम ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मूड मुंडाए जो सिधि पाई । मुकती भेड न गईआ काई ॥ २ ॥ बिंदु राखि जौ तरीऐ भाई । खुसरै किउ न परमगति पाई ॥३॥ कहु कबीर सुनहु नर भाई । राम नाम बिनु किनि गति पाई ॥ ४ ॥ ४ ॥

यदि नंगे फिरते हुए परमात्मा के साथ मिलाप हो सकता है तो जंगल का हरएक पशु मुक्त हो जाना चाहिए ॥ १ ॥ (हे भाई !) जब तक तू परमात्मा को नहीं पहचानता, तब तक तेरे नंगे रहने से क्या बनेगा और शरीर पर चमड़ा लपेटने से क्या मिल जाना है ? ॥ १ ॥ रहाउ ॥ यदि सिर मुँडाने से सिद्धि मिल सकती है (तो यह क्या कारण है कि) कोई भी भेड़ (अब तक मुक्त नहीं हुई ?) ॥ २ ॥ हे भाई ! यदि बालब्रह्मचारी रहने से (संसार-समुद्र से) पार हुआ जा सकता है तो हिजड़े को क्यों मुक्ति नहीं मिल जाती ? ॥ ३ ॥ हे कबीर ! (निस्सन्देह) कहो— हे भाइयो ! परमात्मा के नाम-स्मरण के बिना किसी को मुक्ति नहीं मिली ॥ ४ ॥ ४ ॥

॥ गउड़ी कबीर जी ॥ संधिआ प्रात इस्ननु कराही । जिउ भए दादुर पानी माही ॥ १ ॥ जउ पै राम राम रति नाही । ते सभि धरम राइ कै जाही ॥ १ ॥ रहाउ ॥ काइआ रति बहु रूप रचाही । तिन कउ दइआ सुपनै भी नाही ॥ २ ॥ चारि चरन कहहि बहु आगर । साधू सुखु पावहि कलि सागर ॥ ३ ॥ कहु कबीर बहु काइ करीजै । सरब सु छोडि महारसु पीजै ॥ ४ ॥ ५ ॥

(जो मनुष्य) सबेरे तथा शाम के वक्त स्नान ही करते हैं (और समझते हैं कि हम पवित्र हो गए हैं, वे ऐसे हैं) जैसे पानी में मेंढक बस रहे हैं ॥ १ ॥ पर यदि उनके हृदय में परमात्मा के नाम का प्रेम नहीं है तो वे सारे धर्मराज के वश में पड़ते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (कई मनुष्य) शरीर के मोह में ही कई स्वांग बनाते हैं; उन्हें कभी स्वप्न में भी दया नहीं आई (उनका हृदय कभी द्रवीभूत नहीं हुआ) ॥ २ ॥ बहुत से चतुर मनुष्य चार वेद (आदि धार्मिक पुस्तकों को) ही पढ़ते हैं (पर केवल पढ़ने से क्या

बने ?) इस संसार-समुद्र में संतजन ही सुख प्राप्त करते हैं ।। ३ ।। हे कबीर ! कह, तमाम विचार-विमर्श का निचोड़ यह है कि सब पदार्थों का मोह छोड़कर परमात्मा के नाम का रस पीना चाहिए ।। ४ ।। ५ ।।

।। कबीर जी गउड़ी ।। किआ जपु किआ तपु किआ ब्रत पूजा । जा कै रिदै भाउ है दूजा ।। १ ।। रे जन मनु माधउ सिउ लाईऐ । चतुराई न चतुरभुजु पाईऐ ।। रहाउ ।। परहरु लोभु अरु लोकाचारु । परहरु कामु क्रोधु अहंकारु ।। २ ।। करम करत बधे अहंमेव । मिलि पाथर की करही सेव ।। ३ ।। कहु कबीर भगति करि पाइआ । भोले भाइ मिले रघुराइआ ।। ४ ।। ६ ।।

जिस मनुष्य के हृदय में परमात्मा के अतिरिक्त किसी दूसरे का प्रेम है, उसका जप करना किस लिए ? उसका तप किस लिए ? उसके व्रत एवं पूजा कौन सी विशेषता हैं ? ।। १ ।। हे भाई ! मन को परमात्मा के साथ जोड़ना चाहिए, (स्मरण छोड़कर दूसरी) चतुराइयों से परमात्मा नहीं मिल सकता ।। रहाउ ।। (हे भाई !) लालच, दिखावा, काम, क्रोध और अहंकार छोड़ दे ।। २ ।। मनुष्य धार्मिक रस्में करते-करते अहंकार में बँधे पड़े हैं और मिलकर पत्थरों की (ही) पूजा कर रहे हैं (पर यह सब कुछ व्यर्थ है) ।। ३ ।। हे कबीर ! कह— परमात्मा, प्रार्थना करने से (ही) मिलता है, भोले स्वभाव से मिलता है ।। ४ ।। ६ ।।

।। गउड़ी कबीर जी ।। गरभ वास महि कुलु नही जाती । ब्रहम बिंदु ते सभ उतपाती ।। १ ।। कहु रे पंडित बामन कब के हुए । बामन कहि कहि जनमु मत खोए ।। १ ।। रहाउ ।। जौ तूं ब्राहमणु ब्रहमणी जाइआ । तउ आन बाट काहे नही आइआ ।। २ ।। तुम कत ब्राहमण हम कत सूद । हम कत लोहू तुम कत दूध ।। ३ ।। कहु कबीर जो ब्रहमु बीचारै । सो ब्राहमणु कहीअतु है हमारै ।। ४ ।। ७ ।।

सारे जीवों में उत्पत्ति परमात्मा के अंश से है । माँ के पेट में तो किसी को यह समझ नहीं होती कि मैं किस कुल का हूँ ।। १ ।। कह, हे पण्डित ! तुम ब्राह्मण कब से बन गए हो ? यह कह-कहकर कि मैं ब्राह्मण हूं, मैं ब्राह्मण हूं, मनुष्य-जन्म (अहंकार में व्यर्थ ही) न गवांओ ।। १ ।। रहाउ ।। यदि (हे पण्डित !) तू (सचमुच) ब्राह्मण है और ब्राह्मणी के पेट से जन्मा है, तो किसी दूसरे मार्ग से क्यों नहीं उत्पन्न हुआ ? ।। २ ।।

(हे पण्डित !) तुम ब्राह्मण कैसे (बन गए) ? हम शूद्र कैसे (रह गए) ? हमारे शरीर में कैसे (केवल मात्र) लहू ही है ? तुम्हारे शरीर में किस प्रकार (लहू के स्थान पर) दूध है ? ॥ ३ ॥ हे कबीर ! कह— हम तो उस मनुष्य को ब्राह्मण कहते हैं जो परमात्मा (ब्रह्म) को स्मरण करता है ॥ ४ ॥ ७ ॥

॥ गउड़ी कबीर जी ॥ अंधकार सुखि कबहि न सोई है । राजा रंकु दोऊ मिलि रोई है ॥ १ ॥ जउ पै रसना रामु न कहिबो । उपजत बिनसत रोवत रहिबो ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जस देखीऐ तरवर की छाइआ । प्रान गए कहु का की माइआ ॥ २ ॥ जस जंती महि जीउ समाना । मूए मरमु को का कर जाना ॥ ३ ॥ हंसा सरवरु कालु सरीर । राम रसाइन पीउ रे कबीर ॥ ४ ॥ ८ ॥

(परमात्मा को भुलाकर अज्ञानता के) अँधेरे में कभी सुखी नहीं सोया जा सकता; राजा होवे चाहे कंगाल, दोनों ही दुखी होते हैं ॥ १ ॥ (हे भाई !) जब तक जिह्वा से परमात्मा को नहीं जपते; तब तक जन्मते, मरते और रोते रहेंगे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जैसे वृक्ष की छाया देखी जाती है, (जैसे वृक्ष की छाया सदा टिकी नहीं रहती, वैसे ही इस माया का हाल है); जब मनुष्य के प्राण निकल जाते हैं, तो कहो, यह माया किस की होती है ? ॥ २ ॥ जैसे (जब गवैया अपना हाथ वाद्ययन्त्र से हटा लेता है, तो) राग की आवाज़ वाद्ययन्त्र के बीच में लीन हो जाती है, (कोई कह नहीं सकता कि वह कहाँ गई, वैसे) मृतक मनुष्य का भेद कोई मनुष्य कैसे जान सकता है ? ॥ ३ ॥ जैसे हंसों को सरोवर है, वैसे मौत शरीरों (के लिए) है। इसलिए हे कबीर ! सब रसों से श्रेष्ठ नाम-रस का पान कर ॥ ४ ॥ ८ ॥

॥ गउड़ी कबीर जी ॥ जोति की जाति जाति की जोती । तितु लागे कंचूआ फल मोती ॥ १ ॥ कवनु सु घरु जो निरभउ कहीऐ । भउ भजि जाइ अभै होइ रहीऐ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ तटि तीरथि नही मनु पतीआइ । चार अचार रहे उरझाइ ॥ २ ॥ पाप पुंन दुइ एक समान । निज घरि पारसु तजहु गुन आन ॥ ३ ॥ कबीर निरगुण नाम न रोसु । इसु परचाइ परचि रहु एसु ॥ ४ ॥ ९ ॥

परमात्मा की बनाई हुई (सारी) सृष्टि है; इस सृष्टि (के जीवों) की बुद्धि (जो) (है उस) में काँच और मोतियों के फल लगे हुए हैं ॥१॥ वह कौन सा स्थान है जो भय से खाली है ? (जहाँ रहने से हृदय का) भय दूर हो सकता है, जहाँ निडर रहा जा सकता है ? ॥ १ ॥ रहाउ ॥ किसी (पवित्र नदी के) किनारे अथवा तीर्थ पर (जाकर भी) मन विश्वस्त नहीं होता, वहाँ भी लोग पाप-पुण्य में लगे हैं ॥ २ ॥ (पर) पाप और पुण्य दोनों ही एक समान हैं, (हे मन ! निम्न से उच्च करनेवाला) पारस (प्रभु) तेरे अपने अन्दर ही है; (इसलिए, पाप-पुण्य वाले) दूसरे गुण (ग्रहण करने) छोड़ दे ॥ ३ ॥ हे कबीर ! माया के मोह से ऊँचे प्रभु के नाम को न भुला; अपने (मन) को नाम जपने में लगाकर नाम में लीन रह ॥ ४ ॥ ९ ॥

॥ गउड़ी कबीर जी ॥ जो जन परमिति परमनु जाना । बातन ही बैकुंठ समाना ॥ १ ॥ ना जाना बैकुंठ कहाही । जानु जानु सभि कहहि तहा ही ॥ १ ॥ रहाउ ॥ कहन कहावन नह पतीअई है । तउ मनु मानै जा ते हउमै जईहै ॥ २ ॥ जब लगु मनि बैकुंठ की आस । तब लगु होइ नही चरन निवासु ॥ ३ ॥ कहु कबीर इह कहीऐ काहि । साध संगति बैकुंठै आहि ॥ ४ ॥ १० ॥

जो मनुष्य (केवलमात्र कहते हैं कि) हमने उस प्रभु को जान लिया है, जिसका ओर-छोर नहीं पाया जा सकता और जो मन की पहुँच से परे है, वे मनुष्य केवल बातों से ही बैकुंठ में पहुँचे हैं ॥ १ ॥ मुझे तो पता नहीं, वह बैकुंठ कहाँ है, जहाँ ये सारे लोग कहते हैं, चलना है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ केवल यह सुनने से और कहने से (कि हमें बैकुंठ में जाना है), मन को तसल्ली नहीं हो सकती; मन को तभी ढाढस बँध सकता है यदि अहंकार नष्ट हो जाए ॥ २ ॥ (यह बात स्मरणीय है कि) जब तक मन में बैकुंठ जाने की इच्छा लगी हुई है, तब तक प्रभु के चरणों में मन जुड़ नहीं सकता ॥ ३ ॥ हे कबीर ! कह— यह बात कैसे समझाकर कहें कि सत्संगति ही (असली) बैकुंठ है ॥ ४ ॥ १० ॥

॥ गउड़ी कबीर जी ॥ उपजै निपजै निपजि समाई । नैनह देखत इहु जगु जाई ॥ १ ॥ लाज न मरहु कहहु घरु मेरा । अंत की बार नही कछु तेरा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ अनिक जतन करि काइआ पाली । मरती बार अगनि संगि जाली ॥ २ ॥ चोआ चंदनु मरदन अंगा । सो तनु जलै काठ कै संगा ॥ ३ ॥

कहु कबीर सुनहु रे गुनीआ । बिनसैगो रूपु देखै सभ दुनीआ ।। ४ ।। ११ ।।

(पहले जीव का आरम्भ पिता के वीर्य की बूँद से) होता है, फिर माँ के उदर में) अस्तित्व में आता है; अस्तित्व में आकर (दोबारा) नष्ट हो जाता है। हमारे देखते-देखते ही यह संसार (इसी प्रकार) सक्रिय है ।। १ ।। (इसलिए, हे जीव !) लाज से क्यों नहीं डूब मरता, जब तू यह कहता है कि यह घर मेरा है ? (स्मरण रख) जिस वक्त मौत आएगी, तब कोई भी चीज़ तेरी नहीं रहेगी ।। १ ।। रहाउ ।। अनेकों यत्न करके यह शरीर पाला जाता है; लेकिन जब मौत आती है, इसे आग से जला दिया जाता है ।। २ ।। (जिस शरीर के) अंगों को इत्र और चन्दन मला जाता है, वह शरीर (अन्त में) लकड़ियों से जल जाता है ।। ३ ।। हे कबीर ! कह— हे विचारवान मनुष्य ! स्मरण रख; सारी दुनिया देखेगी (कि देखते-देखते) यह रूप नष्ट हो जायगा ।। ४ ।। ११ ।।

।। गउड़ी कबीर जी ।। अवर मूए किआ सोगु करीजै । तउ कीजै जउ आपन जीजै ।। १ ।। मै न मरउ मरिबो संसारा । अब मोहि मिलिओ है जीआवनहारा ।। १ ।। रहाउ ।। इआ देही परमल महकंदा । ता सुख बिसरे परमानंदा ।। २ ।। कूअटा एकु पंच पनिहारी । टूटी लाजु भरै मतिहारी ।। ३ ।। कहु कबीर इक बुधि बीचारी । न ओहु कूअटा ना पनिहारी ।। ४ ।। १२ ।।

दूसरों की मृत्यु पर शोक करने का क्या लाभ ? (उनके वियोग का) शोक तो तब करें यदि आप (यहाँ सदा) जीवित रहना होवे ।। १ ।। मेरी आत्मा की कभी मृत्यु नहीं होगी। वे जीव मुर्दा हैं जो जगत् के धन्धों में फँसे हुए हैं, मुझे (तो) अब (असली) ज़िन्दगी देनेवाला परमात्मा मिल गया है ।। १ ।। रहाउ ।। (जीव) इस शरीर पर कई सुगन्धियाँ लगाता है; इन सुखों में इसे परमानन्द स्वरूप परमात्मा विस्मृत हो जाता है ।। २ ।। (शरीर, मानों) एक छोटा सा कूँआ है, (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मानो) पाँच चरखियाँ हैं, मृत बुद्धि रस्सी के बिना (पानी) भर रही है ।। ३ ।। हे कबीर ! कह— (जब) विचारों वाली बुद्धि भीतर (जाग पड़ी), तब न वह शारीरिक मोह रहा और न ही (विकारों की ओर आकर्षित करनेवाली) इन्द्रियाँ रहीं ।। ४ ।। १२ ।।

।। गउड़ी कबीर जी ।। असथावर जंगम कीट पतंगा । अनिक जनम कीए बहु रंगा ।। १ ।। ऐसे घर हम बहुतु बसाए ।

जब हम राम गरभ होइ आए ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जोगी जती तपी ब्रहमचारी । कबहू राजा छत्रपति कबहू भेखारी ॥ २ ॥ साकत मरहि संत सभि जीवहि । राम रसाइनु रसना पीवहि ॥ ३ ॥ कहु कबीर प्रभ किरपा कीजै । हारि परे अब पूरा दीजै ॥ ४ ॥ १३ ॥

हम (अब तक) स्थावर, जंगम, कीट-पतंगे ऐसे कई क़िस्मों के जन्मों में आ चुके हैं ॥ १ ॥ हे राम ! जब हम योनियों में पड़ते गए तो ऐसे कई शरीरों से गुज़रकर आए हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ कभी हम योगी बने, कभी यती, कभी तपी, कभी ब्रह्मचारी; कभी क्षत्रपति राजा बने और कभी भिखारी ॥ २ ॥ जो मनुष्य परमात्मा से टूटे रहते हैं, वे सदा (इसी तरह) कई योनियों में पड़ते रहते हैं, लेकिन संतजन सदा जीवित रहते हैं, (अर्थात् वे जन्म-मरण के चक्र में नहीं पड़ते, क्योंकि) वे जिह्वा से प्रभु के नाम का श्रेष्ठ रस पीते रहते हैं ॥ ३ ॥ (इसलिए) हे कबीर ! (परमात्मा के समक्ष इस प्रकार) प्रार्थना कर— हे प्रभु ! हम थक-टूटकर (तेरे द्वार पर) आ गिरे हैं, कृपा करके अब अपना ज्ञान दे ॥ ४ ॥ १३ ॥

॥ गउड़ी कबीर जी की नालि रलाइ लिखिआ महला ५ ॥

ऐसो अचरजु देखिओ कबीर । दधि कै भोलै बिरोलै नीरु ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हरी अंगूरी गदहा चरै । नित उठि हासै हीगै मरै ॥ १ ॥ माता भैसा अंमुहा जाइ । कुदि कुदि चरै रसातलि पाइ ॥ २ ॥ कहु कबीर परगटु भई खेड । लेले कउ चूघै नित भेड ॥ ३ ॥ राम रमत मति परगटी आई । कहु कबीर गुरि सोझी पाई ॥ ४ ॥ १ ॥ १४ ॥

हे कबीर ! मैंने यह विचित्र तमाशा देखा है कि (जीव) दही के भ्रम में पानी का मन्थन कर रहा है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मूर्ख जीव मन-भाए विकार भोगता है; इसी प्रकार सदा हँसता तथा ही-ही करता रहता है, (आख़िरकार) जन्म-मरण के चक्र में पड़ जाता है ॥ १ ॥ मदमाते व्यक्ति-जैसा मन, मनमर्जी करता है, कूदता है (अर्थात् अहंकार करता है), विषयों की खेती चुगता रहता है और नरक में पड़ जाता है ॥ २ ॥ हे कबीर ! कह— (मुझे तो) यह विचित्र तमाशा समझ में आ गया है, (तमाशा यह है कि) सांसारिक जीवों की बुद्धि मन के पीछे लगी फिरती है ॥ ३ ॥ (यह समझ किसने दी है ?) हे कबीर ! कह— सतिगुरु ने यह समझ दी है, (जिसके प्रभाव से) प्रभु का स्मरण करते हुए (मेरी) बुद्धि जाग पड़ी है (और मन के पीछे चलने से हट गई है) ॥४॥१॥१४॥

॥ गउड़ी कबीर जी पंचपदे २ ॥ जिउ जल छोडि बाहरि भइओ मीना ॥ पूरब जनम हउ तप का हीना ॥ १ ॥ अब कहु राम कवन गति मोरी । तजीले बनारस मति भई थोरी ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सगल जनमु सिव पुरी गवाइआ । मरती बार मगहरि उठि आइआ ॥ २ ॥ बहुतु बरस तपु कीआ कासी । मरनु भइआ मगहर की बासी ॥ ३ ॥ कासी मगहर सम बीचारी । ओछी भगति कैसे उतरसि पारी ॥ ४ ॥ कहु गुर गज सिव सभु को जानै । मुआ कबीरु रमत स्री रामै ॥ ५ ॥ १५ ॥

(मुझे लोग कह रहे हैं कि) जैसे मच्छ पानी को छोड़कर बाहर निकल आता है (तो दुखी होकर मर जाता है; वैसे) मैंने भी पिछले जन्मों में तप नहीं किया (वैसे ही मुक्ति देनेवाली काशी को छोड़कर मगहर आ गया हूं) ॥ १ ॥ हे मेरे राम ! अब मुझे बता, मेरा क्या हाल होगा ? मैं काशी छोड़ आया हूं, (क्या ठीक है कि) मेरी बुद्धि मारी गई है ? ॥१॥ रहाउ ॥ (मुझे लोग कहते हैं—) तूने सारी उम्र काशी में व्यर्थ गुज़ार दी, (क्योंकि अब जब मुक्ति मिलनी थी तो) मृत्यु के समय (काशी) छोड़कर मगहर चला आया है ॥ २ ॥ तूने काशी में रहकर कई वर्ष तप किया (पर उस तप का क्या लाभ ?) जब मरण का वक्त आया तो मगहर आ बसा ॥ ३ ॥ तूने काशी और मगहर को एक समान समझ लिया है, इस ओछी भक्ति से किस प्रकार संसार-समुद्र से पार उतरेगा ? ॥ ४ ॥ (हे कबीर) कह— हरेक मनुष्य गणेश और शिव को ही पहचानता है; पर कबीर तो प्रभु का स्मरण कर-करके आपा-भाव ही मिटा बैठा है (कबीर को यह पता करने की आवश्यकता ही नहीं रही कि उसकी क्या गति होगी) ॥ ५ ॥ १५ ॥

॥ गउड़ी कबीर जी ॥ चोआ चंदन मरदन अंगा । सो तनु जलै काठ कै संगा ॥ १ ॥ इसु तन धन की कवन बडाई । धरनि परै उरवारि न जाई ॥ १ ॥ रहाउ ॥ राति जि सोवहि दिन करहि काम । इकु खिनु लेहि न हरि को नाम ॥ २ ॥ हाथि त डोर मुखि खाइओ तंबोर । मरती बार कसि बाधिओ चोर ॥ ३ ॥ गुरमति रसि रसि हरि गुन गावै । रामै राम रमत सुखु पावै ॥ ४ ॥ किरपा करि कै नामु द्रिड़ाई । हरि हरि बासु सुगंध बसाई ॥ ५ ॥ कहत कबीर चेति रे अंधा । सति रामु झूठा सभु धंधा ॥ ६ ॥ १६ ॥

(जिस शरीर के) अंगों पर इत्र तथा चन्दन मला जाता है, वह शरीर (अन्त में) लकड़ियों में डालकर जलाया जाता है ।। १ ।। इस शरीर और धन पर क्या अभिमान करना हुआ ? ये यहीं धरती पर पड़े रह जाते हैं, (जीव के साथ) नहीं जाते ।। १ ।। रहाउ ।। जो मनुष्य रात को सोते रहते हैं, और दिन में काम-धन्धे करते रहते हैं, लेकिन एक पलमात्र भी प्रभु का नाम नहीं जपते ।। २ ।। जो मनुष्य मुख में पान चबा रहे हैं और जिनके हाथ में डोर हैं, (अर्थात् जो शिकार आदि में लगे रहते हैं), वे मृत्यु के समय चोरों की तरह कसकर बाँधे जाते हैं ।। ३ ।। जो मनुष्य सतिगुरु की शिक्षा लेकर अत्यन्त प्रेम से प्रभु के गुण गाता है, वह केवल प्रभु को स्मरण करके सुख प्राप्त करता है ।। ४ ।। प्रभु अपनी कृपा करके जिसके हृदय में अपना नाम टिकाता है, उसमें वह 'नाम' की सुगन्धि का वास करा देता है ।। ५ ।। कबीर कहता है— हे अज्ञानी जीव ! प्रभु को स्मरण कर; प्रभु ही सदा स्थिर रहनेवाला है, शेष सारा जंजाल नष्ट हो जानेवाला है ।। ६ ।। १६ ।।

।। गउड़ी कबीर जी तिपदे चार तुके २ ।। जम ते उलटि भए है राम । दुख बिनसे सुख कीओ बिसराम । बैरी उलटि भए है मीता । साकत उलटि सुजन भए चीता ।। १ ।। अब मोहि सरब कुसल करि मानिआ । सांति भई जब गोबिदु जानिआ ।। १ ।। रहाउ ।। तन महि होती कोटि उपाधि । उलटि भई सुख सहजि समाधि । आपु पछानै आपै आप । रोगु न बिआपै तीनौ ताप ।। २ ।। अब मनु उलटि सनातनु हूआ । तब जानिआ जब जीवत मूआ । कहु कबीर सुखि सहजि समावउ । आपि न डरउ न अवर डरावउ ।। ३ ।। १७ ।।

यमों से बदलकर प्रभु (का रूप) हो गए हैं, (जो मुझे यम-रूप दिखते थे, अब प्रभु-रूप हो गए हैं) मेरे दुख दूर हो गए हैं और सुखों ने डेरा आ जमाया है । जो पहले वैरी थे, अब वे मित्र बन गए हैं । पहले ये परमात्मा से अलग थे, अब बदलकर अन्तरात्मा में गुरमुख बन गए हैं ।।१।। अब मुझे सारे सुख और आनन्द प्रतीत हो रहे हैं; जब से मैंने प्रभु को पहचान लिया है तब ही से (मेरे भीतर) ठण्डक पड़ गई है ।। १ ।। रहाउ ।। (मेरे शरीर में विकारों के) करोड़ों झगड़े थे; प्रभु के नाम-रस में जुड़े रहने से वे सारे बदलकर सुख बन गए हैं, (मेरे मन ने) अपने असली स्वरूप को पहचान लिया है, (अब इसे) प्रभु ही प्रभु दिख रहा है; रोग तथा तीनों ताप (अब) स्पर्श नहीं कर सकते ।। २ ।। अब मेरा मन हटकर प्रभु का रूप हो गया है; (इस बात की) तब समझ होती है, जब

(यह मन) माया में विचरण करता हुआ भी माया के मोह से ऊँचा हो गया है। हे कबीर! (अब निस्सन्देह) कह— मैं आत्मिक आनन्द में स्थिर अवस्था में जुड़ा हुआ हूँ; न मैं आप किसी दूसरे से डरता हूँ और न ही दूसरों को डराता हूँ ॥ ३ ॥ १७ ॥

॥ गउड़ी कबीर जी ॥ पिंडि मूऐ जीउ किह घरि जाता। सबदि अतीति अनाहदि राता। जिनि रामु जानिआ तिनहि पछानिआ। जिउ गूंगे साकर मनु मानिआ ॥ १ ॥ ऐसा गिआनु कथै बनवारी। मन रे पवन द्रिड़ सुखमन नारी ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सो गुरु करहु जि बहुरि न करना। सो पदु रवहु जि बहुरि न रवना। सो धिआनु धरहु जि बहुरि न धरना। ऐसे मरहु जि बहुरि न मरना ॥ २ ॥ उलटी गंगा जमुन मिलावउ। बिनु जल संगम मन महि न्हावउ। लोचा समसरि इहु बिउहारा। ततु बीचारि किआ अवरि बीचारा ॥ ३ ॥ अपु तेजु बाइ प्रिथमी आकासा। ऐसी रहत रहउ हरि पासा। कहै कबीर निरंजन धिआवउ। तितु घरि जाउ जि बहुरि न आवउ ॥ ४ ॥ १८ ॥

(प्रश्न) शरीर का मोह दूर होने पर आत्मा कहाँ टिकता है? (उत्तर—) (तब आत्मा) सतिगुरु के शब्द के प्रभाव से उस प्रभु में जुड़ा रहता है जो माया के बन्धनों से परे है और अनन्त है। (पर) जिस मनुष्य ने प्रभु को (अपने भीतर) जाना है, उसने ही उसे पहचाना है जैसे गूंगे का मन शक्कर में विश्वस्त होता है, (कोई दूसरा उस स्वाद को नहीं समझता, किसी दूसरे को वह समझा नहीं सकता) ॥ १ ॥ ऐसा ज्ञान प्रभु आप ही प्रकट करता है। हे मन! प्रत्येक श्वास नाम जप, यही सुषुम्ना नाड़ी का अभ्यास है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ ऐसा गुरु धारण करो कि दूसरी बार गुरु धारण करने की आवश्यकता न रहे; उस ठिकाने का आनन्द प्राप्त करो कि किसी दूसरे ठिकाने के आनन्द को प्राप्त करने की चाह ही न रहे; ऐसी वृत्ति जोड़ो कि फिर जोड़ने की आवश्यकता ही न रहे; इस तरह मरो कि फिर (जन्म-मरण के) चक्र में पड़ना ही न पड़े ॥ २ ॥ मैंने अपने मन की वृत्ति बदल दी है, (इस प्रकार) मैं गंगा और जमुना को मिला रहा हूँ। इस प्रकार (मैं उस मन-रूप त्रिवेणी—) संगम में स्नान कर रहा हूँ, जहाँ (गंगा, यमुना, सरस्वती वाला) जल नहीं है; (अब मैं) इन आँखों से (सब को) एक समान देख रहा हूँ— यह मेरा व्यवहार है। एक प्रभु को स्मरण कर मुझे अब दूसरे विचारों की

आवश्यकता नहीं रही ।। ३ ।। प्रभु के चरणों में जुड़कर मैं इस प्रकार का आचरण कर रहा हूँ जैसे पानी, अग्नि, हवा, धरती और आकाश (अर्थात् इन तत्वों के समान मैंने भी शुभ गुण धारण किए हैं) कबीर कहता है— मैं माया से रहित प्रभु को स्मरण कर रहा हूँ (जिससे) उस घर (सहज अवस्था) में पहुँच गया हूँ कि फिर (वहाँ से लौटकर) आना नहीं पड़ेगा ।। ४ ।। १८ ।।

।। गउड़ी कबीर जी तिपदे१५ ।। कंचन सिउ पाईऐ नही तोलि । मनु दे रामु लीआ है मोलि ।। १ ।। अब मोहि रामु अपुना करि जानिआ । सहज सुभाइ मेरा मनु मानिआ ।। १ ।। रहाउ ।। ब्रहमै कथि कथि अंतु न पाइआ । राम भगति बैठे घरि आइआ ।। २ ।। कहु कबीर चंचल मति तिआगी । केवल राम भगत निज भागी ।। ३ ।। १ ।। १९ ।।

सोना तोलकर बदले में देने से परमात्मा नहीं मिलता, मैंने तो मूल्य के रूप में अपना मन देकर परमात्मा प्राप्त किया है ।। १ ।। अब मुझे यकीन आ गया है कि परमात्मा मेरा अपना ही है; अपने आप ही मेरे मन में यह गाँठ बँध गई है ।। १ ।। रहाउ ।। जिस परमात्मा के गुण बतला-बतलाकर ब्रह्मा ने (भी) अन्त न पाया, वह परमात्मा मेरे भजन के कारण सहज स्वभाव ही मुझे मेरे हृदय में आकर मिल गया है।। २ ।। हे कबीर ! (अब) कह— मैंने स्वेच्छाचारी स्वभाव छोड़ दिया है, (अब तो) केवल परमात्मा की भक्ति ही मेरे हिस्से में आई हुई है ।। ३ ।। १९ ।।

।। गउड़ी कबीर जी ।। जिह मरनै सभु जगतु तरासिआ । सो मरना गुर सबदि प्रगासिआ ।। १ ।। अब कैसे मरउ मरनि मनु मानिआ । मरि मरि जाते जिन रामु न जानिआ ।। १ ।। रहाउ ।। मरनो मरनु कहै सभु कोई । सहजे मरै अमरु होइ सोई ।। २ ।। कहु कबीर मनि भइआ अनंदा । गइआ भरमु रहिआ परमानंदा ।। ३ ।। २० ।।

जिसके साथ मृत्यु ने सारा संसार डरा दिया है, गुरु के शब्द के प्रभाव से मुझे समझ आ गई है कि वह मौत असल में क्या चीज है ।। १ ।। अब मैं जन्म-मरण में क्यों पड़ूँगा ? (अर्थात् नहीं पड़ूँगा) (क्योंकि) मेरा मन आपा-भाव की मृत्यु में विश्वस्त हो गया है । (केवल) वे मनुष्य सदा जन्मते रहते हैं, जिन्होंने प्रभु को नहीं पहचाना।। १ ।। रहाउ ।। (दुनिया में) हरेक जीव 'मृत्यु', 'मृत्यु' कह रहा है, (पर जो मनुष्य) स्थिरता में

(रहकर) दुनिया की इच्छाओं से बेपरवाह हो जाता है, वह अमर हो जाता है, (उसे मृत्यु डरा नहीं सकती) ॥ २ ॥ हे कबीर ! कह— (गुरु की कृपा से मेरे) मन में आनन्द पैदा हो गया है, मेरा भ्रम दूर हो चुका है और परम सुख (मेरे हृदय में) टिक गया है ॥ ३ ॥ २० ॥

॥ गउड़ी कबीर जी ॥ कत नही ठउर मूलु कत लावउ । खोजत तन महि ठउर न पावउ ॥ १ ॥ लागी होइ सु जानै पीर । राम भगति अनीआले तीर ॥ १ ॥ रहाउ ॥ एक भाइ देखउ सभ नारी । किआ जानउ सह कउन पिआरी ॥ २ ॥ कहु कबीर जा कै मसतकि भागु । सभ परहरि ता कउ मिलै सुहागु ॥ ३ ॥ २१ ॥

खोज करते हुए भी शरीर में कहीं (ऐसी विशेष) जगह मुझे नहीं मिली, (जहाँ विरह की पीड़ा कही जा सके); (शरीर में) कहीं (ऐसा) स्थान नहीं है, (तो फिर) मैं दवाई कहाँ इस्तेमाल करूँ ? ॥ १ ॥ प्रभु की भक्ति नोकदार तीर हैं, जिसे (इन तीरों के लगे हुए ज़ख्म का) दर्द होवे, वह जानता है (कि यह पीड़ा कैसी होती है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मैं तमाम जीव-स्त्रियों को एक प्रभु के प्रेम में देख रहा हूँ, (पर) मैं क्या जानूँ कि कौन सी (जीव-स्त्री) प्रभु-पति की प्यारी है ॥ २ ॥ हे कबीर ! कह— जिस (जिज्ञासु) जीव-स्त्री के माथे पर भले भाग्य हैं, पति-प्रभु दूसरी स्त्रियों को छोड़कर उसे आ मिलता है, (अर्थात् दूसरों की अपेक्षा उसे प्रेम करता है और उसका विरह-दुःख दूर हो जाता है) ॥ ३ ॥ २१ ॥

॥ गउड़ी कबीर जी ॥ जा कै हरि सा ठाकुरु भाई । मुकति अनंत पुकारणि जाई ॥ १ ॥ अब कहु राम भरोसा तोरा । तब काहू का कवनु निहोरा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ तीनि लोक जा कै हहि भार । सो काहे न करै प्रतिपार ॥ २ ॥ कहु कबीर इक बुधि बीचारी । किआ बसु जउ बिखु दे महतारी ॥ ३ ॥ २२ ॥

हे सज्जन ! जिस मनुष्य के हृदय-रूपी घर में प्रभु मालिक आप (मौजूद) है, मुक्ति उसके आगे अपने आप अनेक बार न्योछावर करती है ॥ १ ॥ (हे कबीर ! प्रभु के दरबार में) अब कह— हे प्रभु ! जिस मनुष्य को एक तेरा आसरा है, उसे अब किसी की खुशामद करने की आवश्यकता नहीं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिस प्रभु के सहारे तीनों लोक हैं, वह (तेरी) देखभाल क्यों न करेगा ? ॥ २ ॥ हे कबीर ! कह— हमने एक

विचार किया है (वह यह है कि) यदि माँ ही ज़हर देने लगे तो (पुत्र का) कोई जोर नहीं चल सकता है ।। ३ ।। २२ ।।

।। गउड़ी कबीर जी ।। बिनु सत सती होइ कैसे नारि । पंडित देखहु रिदै बीचारि ।। १ ।। प्रीति बिना कैसे बधै सनेहु । जब लग रसु तब लग नही नेहु ।। १ ।। रहाउ ।। साहनि सतु करै जीअ अपनै । सो रमये कउ मिलै न सुपनै ।। २ ।। तनु मनु धनु ग्रिहु सउपि सरीरु । सोई सुहागनि कहै कबीरु ।। ३ ।। २३ ।।

हे पण्डित ! मन में विचारकर देख, भला सदाचरण के बिना कोई स्त्री सती कैसे बन सकती है ? ।। १ ।। (इसी तरह हृदय में) प्रीति के बिना (प्रभु-पति के साथ) प्रेम कैसे बन सकता है ? जब तक (मन में) माया का चस्का है तब तक (पति परमेश्वर के साथ) प्रेम नहीं हो सकता ।। १ ।। रहाउ ।। जो मनुष्य माया को ही अपने हृदय में सत्य समझता है, वह प्रभु को स्वप्न में भी नहीं मिल सकता ।। २ ।। कबीर कहता है— वही (जीव-) स्त्री भाग्यशालिनी है जो अपना तन, मन, धन, घर और शरीर (अपने पति के) हवाले कर देती है ।। ३ ।। २३ ।।

।। गउड़ी कबीर जी ।। बिखिआ बिआपिआ सगल संसारु । बिखिआ लै डूबी परवारु ।। १ ।। रे नर नाव चउड़ि कत बोड़ी । हरि सिउ तोड़ि बिखिआ संगि जोड़ी ।। १ ।। रहाउ ।। सुरि नर दाधे लागी आगि । निकटि नीरु पसु पीवसि न झागि ।। २ ।। चेतत चेतत निकसिओ नीरु । सो जलु निरमलु कथत कबीरु ।। ३ ।। २४ ।।

सारा जगत ही माया (के प्रभाव) से ग्रसा हुआ है, माया सारे ही कुटम्ब को (जीवों को) डुबाए हुए बैठी है ।। १ ।। हे मनुष्य ! तूने (अपनी ज़िन्दगी की) नाव क्यों खुले स्थान पर डुबा ली है ? तू प्रभु से प्रीति तोड़कर माया से सम्बन्ध बनाए बैठा है ।। १ ।। रहाउ ।। (सारे जगत में माया की तृष्णा की) आग लगी हुई है, देवता और मनुष्य जल रहे हैं । (इस आग को शान्त करने के लिए) नाम-रूपी जल भी निकट है, पर (यह) पशु (जीव) प्रयास करके पीता नहीं है ।। २ ।। कबीर कहता है— (वह नाम-रूपी) पानी स्मरण करते हुए ही (मनुष्य के हृदय में) प्रकट होता है, और वह (अमृत-) जल पवित्र होता है (तृष्णा की अग्नि उसी जल से बुझ सकती है) ।। ३ ।। २४ ।।

॥ गउड़ी कबीर जी ॥ जिह कुलि पूतु न गिआन बीचारी। बिधवा कस न भई महतारी ॥ १ ॥ जिह नर राम भगति नहि साधी। जनमत कस न मुओ अपराधी ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मुचु मुचु गरभ गए कीन बचिआ। बुडभुज रूप जीवे जग मझिआ ॥ २ ॥ कहु कबीर जैसे सुंदर सरूप। नाम बिना जैसे कुबज करूप ॥ ३ ॥ २५ ॥

जिस कुल में ज्ञान की चिन्तना करनेवाला (कोई) पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ, उसकी माँ विधवा क्यों न हो गई ? ॥ १ ॥ जिस पुरुष ने राम की भक्ति के लिए साधना नहीं की, वह पापी जन्मते ही क्यों न मर गया ? ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (संसार में) कई गर्भ गिर गए हैं, यह (प्रार्थना-हीन मूर्ख) क्यों बच रहा ? (प्रार्थना से रहित यह) जगत में एक कोढ़ी जी रहा है ॥ २ ॥ हे कबीर ! (निस्सन्देह) कह— जो मनुष्य नाम से खाली हैं, वे चाहे देखने में सुन्दर रूप वाले हैं, (पर असल में) कुबड़े तथा असुन्दर हैं ॥ ३ ॥ २५ ॥

॥ गउड़ी कबीर जी ॥ जो जन लेहि खसम का नाउ। तिन कै सद बलिहारै जाउ ॥ १ ॥ सो निरमलु निरमल हरि गुन गावै। सो भाई मेरै मनि भावै ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिह घट रामु रहिआ भरपूरि। तिन की पग पंकज हम धूरि ॥ २ ॥ जाति जुलाहा मति का धीरु। सहजि सहजि गुण रमै कबीरु ॥ ३ ॥ २६ ॥

जो मालिक प्रभु का नाम जपते हैं, मैं सदा उन पर बलिहारी जाता हूँ ॥ १ ॥ जो भाई प्रभु के सुन्दर गुण गाता है, वह पवित्र है और वह मेरे मन में प्यारा लगता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिन मनुष्यों के हृदय में प्रभु प्रकट हो गया है, उनके कमल-पुष्प जैसे (सुन्दर) चरणों की हम धूलि हैं ॥ २ ॥ कबीर चाहे जाति का जुलाहा है, लेकिन स्थिर बुद्धि वाला है, (क्योंकि) स्थिरता में रहकर (प्रभु के) गुण गाता है ॥ ३ ॥ २६ ॥

॥ गउड़ी कबीर जी ॥ गगनि रसाल चुऐ मेरी भाठी। संचि महा रसु तनु भइआ काठी ॥ १ ॥ उआ कउ कहीऐ सहज मतवारा। पीवत राम रसु गिआन बीचारा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सहज कलालनि जउ मिलि आई। आनंदि माते अनदिनु जाई ॥ २ ॥ चीनत चीतु निरंजन लाइआ। कहु कबीर तौ अनभउ पाइआ ॥ ३ ॥ २७ ॥

मेरी गगन-रूपी भट्टी में से स्वादिष्ट अमृत टपक रहा है, इस उच्च नाम-रस को इकट्ठे करने के कारण शरीर (की ममता) लकड़ियों का काम दे रही है (अर्थात्, शरीर की ममता जल गई है) ।। १ ।। जिस मनुष्य ने ज्ञान के विचार द्वारा राम-रस पान किया है, (उसे) कुदरती तौर पर मस्त हुआ कहा जाता है ।। १ ।। रहाउ ।। जब सहज अवस्था-रूपी शराब पिलानेवाली आ मिलती है, तब आनन्द में मस्त होकर (उम्र का) हरेक दिन बीतता है ।। २ ।। हे कबीर ! कह— (इस प्रकार) आनन्द प्राप्त कर जब मैंने अपना मन निरंकार से जोड़ा तो मुझे भीतरी प्रकाश प्राप्त हो गया ।। ३ ।। २७ ।।

।। गउड़ी कबीर जी ।। मन का सुभाउ मनहि बिआपी । मनहि मारि कवन सिधि थापी ।। १ ।। कवनु सु मुनि जो मनु मारै । मन कउ मारि कहहु किसु तारै ।। १ ।। रहाउ ।। मन अंतरि बोलै सभु कोई । मन मारे बिनु भगति न होई ।। २ ।। कहु कबीर जो जानै भेउ । मनु मधुसूदनु त्रिभवण देउ ।।३।।२८।।

(हर एक मनुष्य के) मन की भीतरी लगन (जो भी होवे वह उस मनुष्य के) सारे मन पर प्रभाव किए रखती है, (तो फिर) मन को मारकर कौन सी कमाई कर ली जाती है (अर्थात्, कोई कामयाबी वाली बात नहीं होती) ।। १ ।। वह कौन सा मुनि है जो मन को मारता है ? कहो, मन को मारकर वह किसे पार करता है ? ।। १ ।। रहाउ ।। हर एक मनुष्य मन द्वारा प्रेरित हुआ बोलता है, (इसलिए) मन को मारे बिना भक्ति (भी) नहीं हो सकती ।। २ ।। हे कबीर ! कह— जो मनुष्य इस रहस्य को समझता है, उसका मन तीनों लोकों को प्रकाश देनेवाला परमात्मा का रूप हो जाता है ।। ३ ।। २८ ।।

।। गउड़ी कबीर जी ।। ओइ जु दीसहि अंबरि तारे । किनि ओइ चीते चीतनहारे ।। १ ।। कहु रे पंडित अंबरु का सिउ लागा । बूझै बूझनहारु सभागा ।। १ ।। रहाउ ।। सूरज चंदु करहि उजीआरा । सभ महि पसरिआ ब्रहम पसारा ।। २ ।। कहु कबीर जानैगा सोइ । हिरदै रामु मुखि रामै होइ ।।३।।२९।।

वे तारे जो आकाश में दिखाई दे रहे हैं, किस चित्रकार ने चित्रित किए हैं ? ।। १ ।। कहो, हे पण्डित ! आकाश किसके सहारे है ? कोई भाग्यशाली बुद्धिमान व्यक्ति ही इसे समझता है ।। १ ।। रहाउ ।। (यह जो) सूर्य और चन्द्रमा (आदि जगत् में) प्रकाश कर रहे हैं, (इन) सब में

प्रभु की ज्योति का (ही) प्रकाश बिखरा हुआ है ॥ २ ॥ हे कबीर ! (बेशक) कहो— (इस भेद को) वही मनुष्य समझेगा जिसके हृदय में प्रभु बस रहा है, और मुँह में (भी) केवल प्रभु ही है (अर्थात्, जो मुख द्वारा भी प्रभु के गुण उच्चरित कर रहा है) ॥ ३ ॥ २९ ॥

॥ गउड़ी कबीर जी ॥ बेद की पुत्री सिंम्रिति भाई । सांकल जेवरी लैहै आई ॥ १ ॥ आपन नगरु आप ते बाधिआ । मोह कै फाधि काल सरु सांधिआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ कटी न कटै तूटि नह जाई । सा सापनि होइ जग कउ खाई ॥ २ ॥ हम देखत जिनि सभु जगु लूटिआ । कहु कबीर मै राम कहि छूटिआ ॥ ३ ॥ ३० ॥

हे भाई! यह स्मृति जो वेदों के आधार पर बनी है, (मानों कर्मकाण्ड की) जंजीरें और रस्सियाँ लेकर आई हैं ॥ १ ॥ (इस स्मृति ने) अपने सारे श्रद्धालु आप ही जकड़े हुए हैं। मोह की फाँसी में फँसाकर (इनके सिर पर) मौत (के भय) का तीर (इसने) खिचा हुआ है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (यह स्मृति-रूपी रस्सी श्रद्धालुओं से) काटने पर भी नहीं काटी जा सकती और न ही (अपने आप) यह टूटती है। (अब तो) यह सर्पिणी बनकर जगत को खा रही है ॥ २ ॥ हे कबीर ! कह— हमारे देखते-देखते जिस (स्मिृति) ने सारे संसार को ठग लिया है, मैं प्रभु का स्मरण करके उससे बच गया हूँ ॥ ३ ॥ ३० ॥

॥ गउड़ी कबीर जी ॥ देइ मुहार लगामु पहिरावउ । सगल तजीनु गगन दउरावउ ॥ १ ॥ अपनै बीचारि असवारी कीजै । सहज कै पावड़ै पगु धरि लीजै ॥ १ ॥ रहाउ ॥ चलु रे बैकुंठ तुझहि ले तारउ । हिचहि त प्रेम कै चाबुक मारउ ॥ २ ॥ कहत कबीर भले असवारा । बेद कतेब ते रहहि निरारा ॥ ३ ॥ ३१ ॥

मैं तो (अपने मन-रूपी घोड़े को स्तुति-निंदा से रोकने की) पूंजी देकर (प्रेम की लगन की) लगाम डालता हूँ और प्रभु को सर्वत्र व्यापक जानना— यह काठी डालकर (मन को) निरंकार के देश की उड़ान लगवाता हूँ ॥ १ ॥ (आओ, भाई !) अपने स्वरूप के ज्ञान-रूपी घोड़े पर सवार हो जाओ और अपने अक्ल-रूपी पैर को सहज अवस्था की रकाब में रखो ॥ १ ॥ रहाउ ॥ चल, हे (मन-रूपी घोड़े) तुझे बैकुंठ की सैर कराऊँ; यदि हठ करेगा तो मैं तुझे प्रेम की चाबुक मारूँगा ॥ २ ॥ कबीर

कहता है— (ऐसे) बुद्धिमान सवार (जो अपने मन पर सवार होते हैं), वेदों और किताबों (को सच्चे-झूठे कहने के झगड़े) से अलग रहते हैं ।। ३ ।। ३१ ।।

।। गउड़ी कबीर जी ।। जिह मुखि पाचउ अंम्रित खाए । तिह मुख देखत लूकट लाए ।। १ ।। इकु दुखु राम राइ काटहु मेरा । अगनि दहै अरु गरभ बसेरा ।। १ ।। रहाउ ।। काइआ बिगूती बहु बिधि भाती । को जारे को गडि ले माटी ।। २ ।। कहु कबीर हरि चरण दिखावहु । पाछै ते जमु किउ न पठावहु ।। ३ ।। ३२ ।।

जिस मुख से पाँचों ही उत्तम पदार्थ खाए जाते हैं, (मरण के बाद) उस मुख को अपने सामने ही जलती हुई लकड़ी (जलाकर) लगा दी जाती है ।। १ ।। हे मेरे सुन्दर राम ! यह जो तृष्णा की आग जलाती है और (बार-बार) गर्भ का वास है, मेरा यह दुःख दूरकर दीजिए ।। १ ।। रहाउ ।। (मरण के पश्चात्) यह शरीर कई प्रकार से ख़राब होता है । कोई इसे जला देता है, कोई इसे मिट्टी में दबा देता है ।। २ ।। हे कबीर ! (प्रभु के द्वार पर इस प्रकार) कह— हे प्रभु ! (मुझे) अपने चरणों के दर्शन करा दीजिए, तदुपरान्त, निस्सन्देह यमराज को ही (मेरे प्राण लेने के लिए) भेज देना ।। ३ ।। ३२ ।।

।। गउड़ी कबीर जी ।। आपे पावकु आपे पवना । जारै खसमु त राखै कवना ।। १ ।। राम जपत तनु जरि की न जाइ । राम नाम चितु रहिआ समाइ ।। १ ।। रहाउ ।। का को जरै काहि होइ हानि । नट वट खेलै सारिगपानि ।। २ ।। कहु कबीर अखर दुइ भाखि । होइगा खसमु त लेइगा राखि ।। ३ ।। ३३ ।।

पति (प्रभु) आप ही अग्नि है, आप ही हवा है । यदि वह आप ही (जीव को) जलाने लगे, तो कौन बचा सकता है ।। १ ।। (जिस मनुष्य का) मन प्रभु के नाम में जुड़ रहा है, तोप्रभु का स्मरण करते हुए शरीर भी जल जाए, (वह बिल्कुल परवाह नहीं करता) ।। १ ।। रहाउ ।। (क्योंकि प्रणाम करनेवाले को यह निश्चय होता है कि) न किसी का कुछ जलता है, न किसी का कोई नुकसान होता है; प्रभु आप ही (सर्वत्र) नटों के वेशों के समान खेल कर रहा है ।। २ ।। (इसलिए) हे कबीर ! (तू तो) यह छोटी सी बात स्मरण रख कि यदि पति को स्वीकृत होगा तो (जहाँ कहीं ज़रूरत होगी, आप ही) वह बचा लेगा ।। ३ ।। ३३ ।।

॥ गउड़ी कबीर जी दुपदे २ ॥ ना मै जोग धिआन चितु लाइआ । बिनु बैराग न छूटसि माइआ ॥ १ ॥ कैसे जीवनु होइ हमारा । जब न होइ राम नाम अधारा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ कहु कबीर खोजउ असमान। राम समान न देखउ आन ॥२॥३४॥

मैंने तो योग (के बतलाए हुए ध्यान) की परवाह नहीं की (क्योंकि इससे वैराग पैदा नहीं होता, और) वैराग्य के बिना माया (के मोह) से मुक्ति नहीं हो सकती ॥ १ ॥ (माया इतनी प्रबल है कि) यदि हमें प्रभु के नाम का आसरा न होवे तो हम (सही जीवन) नहीं जी सकते ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे कबीर ! कह— मैं आकाश तक (सारी दुनिया) खोज कर चुका है, (पर प्रभु के बिना) मुझे कोई दूसरा नहीं मिला ॥ २ ॥ ३४ ॥

॥ गउड़ी कबीर जी ॥ जिहि सिरि रचि रचि बाधत पाग। सो सिरु चुंच सवारहि काग ॥ १ ॥ इसु तन धन को किआ गरबईआ । राम नामु काहे न द्रिढ़ीआ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ कहत कबीर सुनहु मन मेरे। इही हवाल होहिगे तेरे ॥२॥३५॥ गउड़ी गुआरेरी के पदे पैतीस ॥

जिस सिर पर (मनुष्य) सँवार-सँवार कर पगड़ी बाँधता है, (मौत आने पर) उस सिर को कौऐ अपनी चोचों से सँवारते हैं ॥ १ ॥ (हे भाई !) इस शरीर और इस धन का क्या अभिमान करता है ? प्रभु का नाम क्यों स्मरण नहीं करता ? ॥ १ ॥ रहाउ ॥ कबीर कहता है— हे मेरे मन ! सुन, (मृत्यु आने पर) तेरे साथ भी ऐसा ही होगा ॥ २ ॥ ३५ ॥

रागु गउड़ी गुआरेरी असटपदी कबीर जी की

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ सुखु मांगत दुखु आगै आवै । सो सुखु हमहु न मांगिआ भावै ॥ १ ॥ बिखिआ अजहु सुरति सुख आसा । कैसे होई है राजा राम निवासा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ इसु सुख ते सिव ब्रहम डराना । सो सुखु हमहु साचु करि जाना ॥ २ ॥ सनकादिक नारद मुनि सेखा । तिन भी तन महि मनु नही पेखा ॥ ३ ॥ इसु मन कउ कोई खोजहु भाई । तन छूटे मनु कहा समाई ॥ ४ ॥ गुर परसादी जै देउ नामां । भगति कै प्रेमि इनही है जानां ॥ ५ ॥ इसु मन कउ नही

आवन जाना । जिस का भरमु गइआ तिनि साचु पछाना ॥ ६ ॥ इसु मन कउ रूपु न रेखिआ काई । हुकमे होइआ हुकमु बूझि समाई ॥ ७ ॥ इस मन का कोई जानै भेउ । इह मनि लीण भए सुखदेउ ॥ ८ ॥ जीउ एकु अरु सगल सरीरा । इसु मन कउ रवि रहे कबीरा ॥ ९ ॥ १ ॥ ३६ ॥

मुझे उस सुख के माँगने की आवश्यकता नहीं, जिस सुख के माँगने पर दुःख मिलता है ॥ १ ॥ आज भी हमारी सुरति माया में लगी हुई है और (इस माया से ही) सुखों की आशा लगाए बैठे हैं; तो फिर ज्योति-रूपी निरंकार का निवास (इस सुरति में) कैसे हो सके ? ॥ १ ॥ रहाउ ॥ इस (माया-) सुख से तो शिवजी और ब्रह्मा (जैसे देवताओं) ने भी कानों को हाथ लगाए; (पर) हम (सांसारिक जीवों ने) इस सुख को सच्चा समझा है ॥ २ ॥ ब्रह्मा के चारों पुत्र सनकादिक, नारदमुनि और शेषनाग— इन्होंने भी (इस माया-सुख की ओर लगी सुरति के कारण) अपने मन को अपने शरीर में नहीं देखा ॥ ३ ॥ हे भाई ! कोई इस मन की खोज करो कि शरीर से बिछोह होने पर यह मन कहाँ जा टिकता है ॥ ४ ॥ सतिगुरु की कृपा से, इन जयदेव तथा नामदेव (जैसे भक्तों) ने ही भक्ति के चाव से यह बात समझी है ॥ ५ ॥ जिस मनुष्य की दुबिधा दूर हो जाती है, उसने प्रभु को पहचान लिया है, उस मनुष्य को इस आत्मा को जन्म-मरण के चक्र में नहीं डालना पड़ता ॥ ६ ॥ (असल में) इस जीव का (प्रभु से अलग) कोई रूप अथवा निशान नहीं है। प्रभु के हुक्म-अनुसार ही (वह अलग स्वरूपवाला) बना है और प्रभु की रज़ा को समझकर उसमें लीन हो जाता है ॥ ७ ॥ जो मनुष्य इस मन के भेद को जान लेता है, वह इस मन के द्वारा ही लीन होकर सुखदेव प्रभु का रूप हो जाता है ॥ ८ ॥ कबीर उस (सर्वव्यापक) मन (अर्थात्, परमात्मा) का स्मरण कर रहा है जो आप एक है और तमाम शरीरों में मौजूद है ॥९॥१॥३६॥

॥ गउड़ी गुआरेरी ॥ अहिनिसि एक नाम जो जागे । केतक सिध भए लिव लागे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ साधक सिध सगल मुनि हारे । एक नाम कलिपतर तारे ॥ १ ॥ जो हरि हरे सु होहि न आना । कहि कबीर राम नाम पछाना ॥ २ ॥ ३७ ॥

बहुत से वे मनुष्य (जीवन-यात्रा की दौड़ में) पूर्ण उतरे हैं जो दिन-रात केवल प्रभु के नाम में सचेत रहते हैं, जिन्होंने (नाम में ही) सुरति जोड़े रखी है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (योग-) साधन करनेवाले, (योग-साधना में पूर्णता को प्राप्त योगी) और सारे मुनि लोग थक गए हैं, केवल प्रभु का

नाम ही कल्पवृक्ष है जो (जीवों का) बेड़ा पार करता है ॥ १ ॥ कबीर कहता है— जो मनुष्य प्रभु का स्मरण करते हैं, प्रभु से अलग नहीं रह जाते, इन्होंने प्रभु के नाम को पहचान लिया है ॥ २ ॥ ३७ ॥

॥ गउड़ी भी सोरठि भी ॥ रे जीअ निलज लाज तोहि नाही । हरि तजि कत काहू के जांही ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जा को ठाकुरु ऊचा होई । सो जनु पर घर जात न सोही ॥ १ ॥ सो साहिबु रहिआ भरपूरि । सदा संगि नाही हरि दूरि ॥ २ ॥ कवला चरन सरन है जा के । कहु जन का नाही घर ता के ॥ ३ ॥ सभु कोऊ कहै जासु की बाता । सो संम्रथु निज पति है दाता ॥ ४ ॥ कहै कबीरु पूरन जग सोई । जा के हिरदै अवरु न होई ॥ ५ ॥ ३८ ॥

हे निर्लज्ज मन ! तुझे लाज नहीं आती ? प्रभु को छोड़कर कहाँ और किसके पास तू जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिस मनुष्य का मालिक बड़ा होवे, वह पराए घर जाता हुआ भला नहीं लगता ॥ १ ॥ (हे मन !) वह मालिक प्रभु सर्वत्र मौजूद है, सदा (तेरे) साथ है, (तुझ से) दूर नहीं है ॥ २ ॥ लक्ष्मी (भी) जिसके चरणों का आसरा लिए बैठी है, हे भाई ! कह, उस प्रभु के घर किस वस्तु की कमी है ? ॥ ३ ॥ जिस प्रभु की (महानता की) बातें हरेक जीव कर रहा है, वह प्रभु सर्व शक्तियों का मालिक है, वह हमारा (सबका) पति है और सब पदार्थ देनेवाला है ॥४॥ कबीर कहता है— संसार में केवल वही मनुष्य गुणोंवाला है जिसके हृदय में (प्रभु के अतिरिक्त) कोई दूसरा (दाता जँचता) नहीं ॥ ५ ॥ ३८ ॥

कउनु को पूतु पिता को का को । कउनु मरै को देइ संतापो ॥ १ ॥ हरि ठग जग कउ ठगउरी लाई । हरि के बिओग कैसे जीअउ मेरी माई ॥ १ ॥ रहाउ ॥ कउन को पुरखु कउन की नारी । इआ तत लेहु सरीर बिचारी ॥ २ ॥ कहि कबीर ठग सिउ मनु मानिआ । गई ठगउरी ठगु पहिचानिआ ॥ ३ ॥ ३९ ॥

किसी का कोई पुत्र है ? किसी का कोई पिता है ? कौन मरता है और कौन (इस मौत के कारण बाद वालों को) दुःख देता है ? (यह सब कुछ संयोग की बात है, सब चार दिनों का मेला है) ॥ १ ॥ प्रभु-ठग ने जगत (के जीवों) को मोह-रूपी ठग-बूटी लगाई हुई है, (जिससे जीव सम्बन्धियों का मोह रखकर और प्रभु को भुलाकर दुःख पा रहे हैं), पर हे

मेरी माँ ! (मैं इस ठग-बूटी में नहीं फँसा, क्योंकि मैं प्रभु से बिछुड़कर जीवित नहीं रह सकता) ।। १ ।। रहाउ ।। किस (स्त्री) का कौन पति ? किसकी कौन पत्नी ? (अर्थात्, यह सम्बन्ध अस्थिर है)— इस वास्तविकता को (हे भाई !) इस मनुष्य शरीर में ही समझो ।। २ ।। कबीर कहता है— जिस जीव का मन (मोह-रूपी ठग-बूटी बनानेवाले प्रभु-) ठग के साथ एक हो गया है, (उसके लिए) ठग-बूटी समाप्त हो गई (समझो), क्योंकि उसने मोह पैदा करने के साथ मेल कर लिया है ।। ३ ।। ३९ ।।

अब मो कउ भए राजा राम सहाई । जनम मरन कटि परमगति पाई ।। १ ।। रहाउ ।। साधू संगति दीओ रलाइ । पंच दूत ते लीओ छडाइ । अंम्रित नामु जपउ जपु रसना । अमोल दासु करि लीनो अपना ।। १ ।। सतिगुर कीनो परउपकारु । काढि लीन सागर संसार । चरन कमल सिउ लागी प्रीति । गोबिंदु बसै निता नित चीत ।। २ ।। माइआ तपति बुझिआ अंगिआरु । मनि संतोखु नामु आधारु । जलि थलि पूरि रहे प्रभ सुआमी । जत पेखउ तत अंतरजामी ।। ३ ।। अपनी भगति आप ही द्रिड़ाई । पूरब लिखतु मिलिआ मेरे भाई । जिसु क्रिपा करे तिसु पूरन साज । कबीर को सुआमी गरीबनिवाज ।। ४ ।। ४० ।।

सर्वत्र प्रकाश करनेवाले प्रभु जी अब मेरे मददगार बन गए हैं, (इसलिए) मैंने जन्म-मरण की (बेड़ी) काटकर सर्वोच्च आत्मिक अवस्था प्राप्त कर ली है ।। १ ।। रहाउ ।। (प्रभु ने) मुझे सत्संग में मिला दिया है और (काम आदिक) पाँच वैरियों से उसने मुझे बचा लिया है, अब मैं जीभ के साथ उसका अमर करनेवाला नाम-रूपी जाप जपता हूँ । मुझे तो उसने बिना किसी कीमत के अपना सेवक बना लिया है ।। १ ।। सतिगुरु ने मुझ पर बड़ी कृपा की है, मुझे उसने संसार-समुद्र से निकाल लिया है; अब प्रभु के सुन्दर चरणों से मेरी प्रीति बन गई है, प्रभु हर समय मेरे चित्त में बस रहा है ।। २ ।। (मेरे भीतर से) माया वाली जलन मिट गई है, माया की जलती हुई अग्नि बुझ गई है, (अब) मेरे मन में सन्तोष है, (प्रभु का) नाम (माया के स्थान पर मेरे मन का) आसरा बन गया है; पानी, पृथ्वी और सर्वत्र प्रभु-पतिजी बसे लगते हैं; मैं जिधर देखता हूँ, उस ओर घट-घट की जाननेवाला प्रभु ही (दिखता) है ।। ३ ।। प्रभु ने आप ही अपनी भक्ति मेरे हृदय में दृढ़ की है । हे प्यारे भाई ! (मुझे तो) पूर्व जन्म के किए कर्मों का लेख मिल गया है । (प्रभु) जिस पर कृपा करता

है, उसके लिए (ऐसा) सुन्दर संयोग बना देता है। कबीर का पति-प्रभु ग़रीबों पर कृपा करनेवाला है ॥ ४ ॥ ४० ॥

जलि है सूतकु थल है सूतकु सूतक ओपति होई। जनमे सूतकु मूए फुनि सूतकु सूतक परज बिगोई ॥ १ ॥ कहु रे पंडीआ कउन पवीता। ऐसा गिआनु जपहु मेरे मीता ॥ १ ॥ रहाउ ॥ नैनहु सूतकु बैनहु सूतकु सूतकु स्रवनी होई। ऊठत बैठत सूतकु लागै सूतकु परै रसोई ॥ २ ॥ फासन की बिधि सभु कोऊ जानै छूटन की इकु कोई। कहि कबीर रामु रिदै बिचारै सूतकु तिनै न होई ॥ ३ ॥ ४१ ॥

(यदि जीवों के जन्म और मरण से अपवित्रता पैदा हो जाती है तो) पानी में सूतक है, धरती पर सूतक है, (सर्वत्र) सूतक की उत्पत्ति है (सर्वत्र अपवित्रता है क्योंकि) किसी जीव के जन्मने तथा मरने पर भी सूतक (आ जाता है); (इस) अपवित्रता (के भ्रम) में दुनिया परेशान हो रही है ॥१॥ (तो फिर) हे प्यारे मित्र ! इस बात को ध्यानपूर्वक विचार तथा कह, हे पण्डित ! (जब सर्वत्र सूतक है) पवित्र कौन (हो सकता) है ? ॥ १ ॥ रहाउ ॥ आँखों में सूतक है, बोलने (अर्थात् जीभ) में सूतक है, कानों में भी सूतक है, उठते-बैठते हरवक्त सूतक है, (हमारी) रसोई में भी सूतक है ॥ २ ॥ (जिधर देखो) हरेक जीव (सूतक के भ्रमों में) फँसने का ही ढंग जानता है, (इनमें से) मुक्ति कराने की समझ किसी विरले को है। कबीर कहता है— जो-जो मनुष्य अपने हृदय में प्रभु को स्मरण करता है, उसे (यह) अपवित्रता नहीं लगती ॥ ३ ॥ ४१ ॥

॥ गउड़ी ॥ झगरा एकु निबेरहु राम। जउ तुम अपने जन सौ कामु ॥ १ ॥ रहाउ ॥ इहु मनु बडा कि जा सउ मनु मानिआ। रामु बडा कै रामहि जानिआ ॥ १ ॥ ब्रहमा बडा कि जासु उपाइआ। बेदु बडा कि जहां ते आइआ ॥ २ ॥ कहि कबीर हउ भइआ उदासु। तीरथु बडा कि हरि का दासु ॥ ३ ॥ ४२ ॥

हे प्रभु ! यदि तुझे अपने सेवक के साथ काम है (तो) यह एक शंका दूर कर दे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ क्या यह मन शक्तिमान है अथवा (इससे अधिक बलवान वह प्रभु है) जिसके साथ मन विश्वस्त हो जाता है ? क्या परमात्मा सत्कार-योग्य है अथवा (वह महापुरुष), जिसने परमात्मा को पहचान लिया है ? ॥ १ ॥ क्या ब्रह्मा (आदिक देवगण) शक्तिमान हैं,

अथवा (वह प्रभु) जिसका पैदा किया हुआ (यह ब्रह्मा है)? क्या वेद (आदि पुस्तकों का ज्ञान) प्रणाम करने योग्य है, अथवा वह (महापुरुष) जिससे (यह ज्ञान) मिला? ॥ २ ॥ कबीर कहता है— मेरे मन में यह शंका है कि तीर्थ (धार्मिक स्थान) पूजने योग्य हैं, अथवा प्रभु का (वह) भक्त (अधिक पूज्य है, जिसके कारण वह तीर्थ बना) ॥ ३ ॥ ४२ ॥

॥ रागु गउड़ी चेती । देखौ भाई ज्ञान की आई आंधी । सभै उडानी भ्रम की टाटी रहै न माइआ बांधी ॥ १ ॥ रहाउ ॥ दुचिते की दुइ थूनि गिरानी मोह बलेडा टूटा । तिसना छानि परी धर ऊपरि दुरमति भांडा फूटा ॥ १ ॥ आंधी पाछे जो जलु बरखै तिहि तेरा जनु भीनां । कहि कबीर मनि भइआ प्रगासा उदै भानु जब चीना ॥ २ ॥ ४३ ॥

हे सज्जन ! देख, (जब) ज्ञान की अँधेरी आती है, तो भ्रम का छप्पर सारे का सारा उड़ जाता है; माया के सहारे खड़ा हुआ यह टिका नहीं रह सकता ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (भ्रमों में) गतिमान मन की द्वैत-रूपी टेक गिर पड़ती है। इस सांसारिक (आसरे की टेक पर टिका हुआ) मोह-रूपी लकड़ी का डण्डा (भी गिरकर) टूट जाता है। (इस मोह-रूपी डण्डे पर टिका हुआ) तृष्णा का छप्पर (लकड़ी टूटने पर) पृथ्वी पर आ गिरता है और कुमति का बर्तन फूट जाता है ॥ १ ॥ कबीर कहता है— (ज्ञान की) अँधेरी के पश्चात् जो (नाम का) मेंह बरसता है, उसमें तेरा भक्त भीग जाता है, (अर्थात् भ्रम समाप्त होने पर मन में शान्ति तथा टिकाव आ जाता है)। जब (हे प्रभु ! तेरा सेवक) अपने भीतर (तेरे नाम का) सूर्य चढ़ा हुआ देखता है तो उसके मन में प्रकाश (ही प्रकाश) हो जाता है ॥ २ ॥ ४३ ॥

गउड़ी चेती

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ हरि जसु सुनहि न हरि गुन गावहि । बातन ही असमानु गिरावहि ॥ १ ॥ ऐसे लोगन सिउ किआ कहीऐ । जो प्रभ कीए भगति ते बाहज तिन ते सदा डराने रहीऐ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ आपि न देहि चुरू भरि पानी । तिह निंदहि जिह गंगा आनी ॥ २ ॥ बैठत उठत कुटिलता चालहि । आपु गए अउरन हू घालहि ॥ ३ ॥ छाडि कुचरचा आन न जानहि । ब्रहमा हू को कहिओ न मानहि ॥ ४ ॥

आपु गए अउरन हू खोवहि । आगि लगाइ मंदर मै सोवहि ॥ ५ ॥ अवरन हसत आप हहि कांने । तिन कउ देखि कबीर लजाने ॥ ६ ॥ १ ॥ ४४ ॥

(कई मनुष्य आप) न कभी प्रभु की गुणस्तुति सुनते हैं, न हरि के गुण गाते हैं, लेकिन शेखी की बातों से तो (मानो) आसमान को गिरा लेते हैं ॥ १ ॥ ऐसे व्यक्तियों को सम्मति देने का कोई लाभ नहीं, जिन्हें प्रभु ने भक्ति से खाली रखा है; उनसे सदा अलग ही रहना चाहिए ॥१॥रहाउ॥ (वे लोग) आप तो (किसी को) अंजुलि भर पानी भी नहीं देते, लेकिन निंदा उनकी करते हैं, जिन्होंने गंगा बहा दी होवे ॥ २ ॥ उठते-बैठते वे विपरीत चालें चलते हैं, वे आप गए-गुज़रे (व्यर्थ) होते हुए दूसरों को भी कुमार्ग-गमन पर लगाते हैं ॥ ३ ॥ खाली बहस के बिना वे और कुछ करना जानते ही नहीं, किसी बुद्धिमान व्यक्ति की बात भी वे नहीं मानते ॥ ४ ॥ वे गए-गुज़रे व्यक्ति दूसरों को पथ-भ्रष्ट करते हैं, वे (मानो) आग लगाकर घर में सो रहे हैं ॥५॥ वे आप तो काने (दोषी) हैं, लेकिन दूसरों की हँसी उड़ाते हैं। ऐसे व्यक्तियों को देखकर, हे कबीर! लज्जा आती है ॥ ६ ॥ १ ॥ ४४ ॥

रागु गउड़ी बैरागणि १ कबीर जी

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ जीवत पितर न मानै कोऊ मूएं सिराध कराही । पितर भी बपुरे कहु किउ पावहि कऊआ कूकर खाही ॥ १ ॥ मो कउ कुसलु बतावहु कोई । कुसल कुसलु करते जगु बिनसै कुसलु भी कैसे होई ॥ १ ॥ रहाउ ॥ माटी के करि देवी देवा तिसु आगै जीउ देही । ऐसे पितर तुमारे कहीअहि आपन कहिआ न लेही ॥ २ ॥ सरजीउ काटहि निरजीउ पूजहि अंतकाल कउ भारी । राम नाम की गति नही जानी भै डूबे संसारी ॥ ३ ॥ देवी देवा पूजहि डोलहि पारब्रहमु नही जाना । कहत कबीर अकुलु नही चेतिआ बिखिआ सिउ लपटाना ॥ ४ ॥ १ ॥ ४५ ॥

लोग जीवित माता-पिता का तो सत्कार नहीं करते, लेकिन मृत पितरों के निमित्त भोजन खिलाते हैं। बेचारे पितर भला वह श्राद्धों का भोजन कैसे प्राप्त करें ? उसे तो कौए-कुत्ते खा जाते हैं ॥ १ ॥ मुझे कोई बताए कि सुख-आनन्द कैसे प्राप्त किया जाता है। सारा संसार (इसी भ्रम में)

खप रहा है कि (पितरों के निमित्त श्राद्ध करने से घर में) सुख-आनन्द बना रहता है ।। १ ।। रहाउ ।। मिट्टी के देवी-देवता बनाकर उस देवी या देवता के समक्ष क़ुर्बानी (बलि) देते हैं। (हे भाई !) इसी प्रकार के (मिट्टी के बनाए हुए) तुम्हारे पिता कहलाते हैं, (उनके आगे भी जो तुम्हारा मन करता है वही देते हो) वह मुँह-माँगा कुछ नहीं ले सकते ।। २ ।। लोग सांसारिक रीतियों के भय में बरबाद हो रहे हैं, जीवित जीवों को मारते हैं (और इस प्रकार मिट्टी आदि के बनाए हुए) निर्जीव देवताओं को पूजते हैं, अपना परलोक बिगाड़े जा रहे हैं, (ऐसे लोगों को) उस आत्मिक अवस्था की समझ नहीं होती जो प्रभु का नाम-स्मरण करते हुए बनती है ।। ३ ।। कबीर कहता है— (ऐसे लोग) देवी-देवताओं को पूजते हैं और सहमे भी रहते हैं। वे अकालपुरुष को जानते ही नहीं, वे जात-पात-रहित प्रभु को स्मरण नहीं करते, वे (सदा) माया के साथ लिपटे रहते हैं ।।४।।१।।४५।।

।। गउड़ी ।। जीवत मरै मरै फुनि जीवै ऐसे सुंनि समाइआ । अंजन माहि निरंजनि रहीऐ बहुड़ि न भवजलि पाइआ ।। १ ।। मेरे राम ऐसा खीरु बिलोईऐ । गुरमति मनूआ असथिरु राखहु इन बिधि अंम्रितु पीओईऐ ।। १ ।। रहाउ ।। गुर कै बाणि बजर कल छेदी प्रगटिआ पदु परगासा । सकति अधेर जेवड़ी भ्रमु चूका निहचलु सिव घरि बासा ।। २ ।। तिनि बिनु बाणै धनखु चढाईऐ इहु जगु बेधिआ भाई । दह दिस बूडी पवनु झुलावै डोरि रही लिव लाई ।। ३ ।। उनमनि मनूआ सुंनि समाना दुबिधा दुरमति भागी । कहु कबीर अनभउ इकु देखिआ राम नामि लिव लागी ।। ४ ।। २ ।। ४६ ।।

जो मनुष्य बार-बार यत्न करके मन को विकारों के प्रति आकृष्ट होने से हटा लेता है, वह फिर (वास्तविक जीवन) जीता है और उस अवस्था में, जहाँ विकारों की एषणाएँ नहीं उभरतीं; इस प्रकार लीन होता है कि माया में रहता हुआ भी वह माया-रहित प्रभु में टिका रहता है और पुनः माया के चक्र में नहीं पड़ता ।। १ ।। हे प्यारे प्रभु ! मुझे गुरु की शिक्षा देकर मेरा कमज़ोर मन स्थिर रख। हे प्रभु ! तब ही दूध बिलोया (मन्थन किया) जा सकता है और, इस तरीके से ही तेरा नाम-अमृत पान किया जा सकता है ।। १ ।। रहाउ ।। जिस मनुष्य ने सतिगुरु के तीर द्वारा कठिन मन की कल्पना को बींध लिया है, उसके भीतर प्रकाश-पद पैदा हो जाता है। (जिस प्रकार अँधेरे में) रस्सी (को साँप समझने) का भ्रम (पैदा हो जाता है और प्रकाश होने पर भ्रम मिट जाता है वैसे

ही) माया के अँधेरे में (विकारों को सही समझ लेने का भ्रम) नाम के प्रकाश से मिट जाता है और उस मनुष्य का निवास सदा आनन्द में रहने वाले प्रभु के चरणों में सदा के लिए हो जाता है ॥ २ ॥ हे सज्जन ! (गुरु-शब्दरूपी तीर का आसरा लेनेवाले) व्यक्ति ने तीर-कमान चढ़ाए बिना ही इस जगत को बींध लिया है, अर्थात् माया के प्रभाव से अपने आप को बचा लिया है, (लौकिक काम-काज रूपी) हवा उसकी ज़िन्दगी-रूपी पतंग को दसों दिशाओं में उड़ाती है, लेकिन उसकी सुरति की डोर (प्रभु के साथ) जुड़ी रहती है ॥ ३ ॥ हे कबीर ! कह— उस मनुष्य का मन विरह-अवस्था में पहुँचकर उस हालत में लीन हो जाता है, जहाँ विकारों की कल्पना नहीं उठती । उसकी दुबिधा तथा दुर्बुद्धि सब नष्ट हो जाती है । वह एक आश्चर्यजनक चमत्कार अपने भीतर देख लेता है । उसकी सुरति प्रभु के नाम में जुड़ जाती है ॥ ४ ॥ २ ॥ ४६ ॥

॥ गउड़ी बैरागणि तिपदे ३ ॥ उलटत पवन चक्र खटु भेदे सुरति सुंन अनरागी । आवै न जाइ मरै न जीवै तासु खोजु बैरागी ॥ १ ॥ मेरे मन मन ही उलटि समाना । गुर परसादि अकलि भई अवरै नातरु था बेगाना ॥ १ ॥ रहाउ ॥ निवरै दूरि दूरि फुनि निवरै जिनि जैसा करि मानिआ । अलउती का जैसे भइआ बरेडा जिनि पीआ तिनि जानिआ ॥ २ ॥ तेरी निरगुन कथा काइ सिउ कहीऐ ऐसा कोइ बिबेकी । कहु कबीर जिनि दीआ पलीता तिनि तैसी झल देखी ॥ ३ ॥ ३ ॥ ४७ ॥

(हे भाई !) माया से उदास होकर उस प्रभु को प्राप्त कर, जो न आता है, न जाता है, न मरता है, न जन्मता है । दुबिधा रूपी श्वास को लौटाते ही, (मानो) (योगिओं के बतलाए) छ: चक्र (इकट्ठे ही) मिल जाते हैं और सुरति उस अवस्था की प्रेमी हो जाती है, जहाँ विकारों की कल्पना पैदा नहीं होती ॥ १ ॥ हे मेरे मन ! जीव पहले तो प्रभु से उदासीन रहता है (लेकिन) सतिगुरु की कृपा से जिसकी बुद्धि दूसरी प्रकार की हो जाती है, वह विकारों के प्रति मन की दौड़ को मोड़कर प्रभु में लीन हो जाता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (इस प्रकार) जिस मनुष्य ने प्रभु को सही स्वरूप में समझ लिया है, उससे (जो कामादिक) जो पहले निकट थे, दूर हो जाते हैं और जो प्रभु पहले कहीं दूर था, अब साथ-साथ लगता है (लेकिन यह एक ऐसा अनुभव है जो व्यक्त नहीं किया जा सकता, केवल महसूस किया जा सकता है) जैसे मिश्री का शरबत होवे तो उसका आनन्द उसी मनुष्य ने जाना है जिसने (वह शरबत) पान किया है ॥ २ ॥ हे कबीर ! कह— (हे प्रभु !) तेरे उस स्वरूप की बातें किससे की जाएँ,

जिसके जैसा कहीं कुछ है ही नहीं ? (क्योंकि एक तो) कोई विरला ही ऐसा विचारक है (जो तेरी ऐसी बातें सुनने का इच्छुक हो, और दूसरे, यह आनन्द केवल महसूस किया जा सकता है), जिसने (जितनी) प्रेम की चिन्गारी लगाई है, उसने उतनी ही उसकी झलक देखी है ।। ३ ।। ३ ।। ४७ ।।

।। गउड़ी ।। तह पावस सिंधु धूप नही छहीआ तह उतपति परलउ नाही । जीवन मिरतु न दुखु सुखु बिआपै सुंन समाधि दोऊ तह नाही ।। १ ।। सहज की अकथ कथा है निरारी । तुलि नही चढै जाइ न मुकाती हलुकी लगै न भारी ।। १ ।। रहाउ ।। अरध उरध दोऊ तह नाही राति दिनसु तह नाही । जलु नही पवनु पावकु फुनि नाही सतिगुर तहा समाही ।। २ ।। अगम अगोचरु रहै निरंतरि गुर किरपा ते लहीऐ । कहु कबीर बलि जाउ गुर अपुने सतसंगति मिलि रहीऐ ।। ३ ।। ४ ।। ४८ ।।

उस स्थिर अवस्था में (पहुँचकर मनुष्य को) इन्द्रपुरी, विष्णुपुरी, सूर्यलोक, चन्द्रलोक, ब्रह्मपुरी, शिवपुरी— (किसी की भी) इच्छा नहीं रहती । न अधिक जीने की लालसा, न मौत (का भय), न कोई दुःख, न सुख (की इच्छा) ; सहज अवस्था में पहुँचने पर, कोई भी नहीं प्रभावित करती । वह मन की एक ऐसी स्थिर दशा होती है कि उसमें विकारों की कल्पना उठती ही नहीं, न ही कोई मेर-तेर रह जाती है ।। १ ।। मनुष्य के मन की स्थिरता एक ऐसी हालत है जो अपने जैसी आप ही है । यह अवस्था किसी अच्छे से अच्छे सुख के साथ तोली-मापी नहीं जा सकती । यह नहीं कहा जा सकता कि (दुनिया के किसी सर्वोत्तम सुख से) यह घटिया है अथवा बढ़िया (अर्थात् दुनिया का कोई भी सुख इसके बराबर नहीं है) ।। १ ।। रहाउ ।। सहज अवस्था में पहुँचने पर ऊँच-नीच वाला भेदभाव नहीं रहता; (यहाँ मनुष्य) न ग़फ़लत की निद्रा (सोता है), न माया की दुबिधा (में भटकता है) (क्योंकि) उस अवस्था में विषय विकार, चंचलता और तृष्णा —इनका नामोनिशान नहीं रहता । (बस !) सतिगुरु ही सतिगुरु उस अवस्था के समय (मनुष्य के हृदय में) टिके होते हैं ।। २ ।। तब अगम्य तथा अगोचर परमात्मा (भी मनुष्य के हृदय में) निरन्तर सदा (प्रकट हुआ) रहता है, (लेकिन) वह मिलता सतिगुरु की कृपा द्वारा ही है । हे कबीर ! (तू भी) कह— मैं अपने गुरु पर बलिहारी हूँ, मैं (अपने गुरु की) सुन्दर संगति में जुड़ा रहूँ ।। ३ ।। ४ ।। ४८ ।।

।। गउड़ी २ ।। पापु पुंनु दुइ बैल बिसाहे पवनु पूजी परगासिओ । त्रिसना गूणि भरी घट भीतरि इन बिधि टांड

बिसाहिओ ॥ १ ॥ ऐसा नाइकु रामु हमारा। सगल संसारु कीओ बनजारा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ कामु क्रोधु दुइ भए जगाती मन तरंग बटवारा। पंच ततु मिलि दानु निबेरहि टाडा उतरिओ पारा ॥ २ ॥ कहत कबीरु सुनहु रे संतहु अब ऐसी बनिआई। घाटी चढत बैलु इकु थाका चलो गोनि छिटकाई ॥ ३ ॥ ५ ॥ ४९ ॥

(सारे सांसारिक जीव-रूपी वनजारों ने) पाप और पुण्य दो बैल खरीदे हैं, श्वासों की पूँजी लेकर जन्मे हैं। (हरेक के) हृदय में तृष्णा का सौदा लादा हुआ है। इस प्रकार (इन जीवों ने) माल लादा है ॥ १ ॥ हमारा प्रभु कुछ ऐसा व्यापारी है कि उसने सारे जगत को व्यापारी बनाकर (जगत में) भेजा है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ काम और क्रोध दोनों (इन जीवों के मार्ग में चुंगी के वसूल करनेवाले हैं), अर्थात् श्वासों की पूँजी का कुछ भाग काम और क्रोध में फँसने से समाप्त हो जा रहा है, जीवों के मन की तरंगें लुटेरे हैं। यह काम, क्रोध और मन की तरंग मनुष्य के शरीर के साथ मिलकर तमाम उम्र-रूपी राशि समाप्त किए जा रहे हैं और तृष्णा-रूपी माल दूसरे किनारे पहुँच रहा है (अर्थात्, जीव जगत से केवल तृष्णा ही अपने साथ लिए जाते हैं) ॥ २ ॥ कबीर कहता है— हे संतजनो ! सुनो, अब ऐसी हालत बन रही है कि प्रभु-स्मरण-रूपी चढ़ाई का दुर्गम मार्ग पार करनेवाले जीव-बनजारों का पाप-रूपी एक बैल थक गया है। वह बैल तृष्णा का सौदा फेंककर दौड़ गया है, अर्थात् जो जीव नाम-स्मरण के दुर्गम मार्ग पर चलते हैं, वे पाप करना छोड़ देते हैं और उनकी तृष्णा समाप्त हो जाती है ॥ ३ ॥ ५ ॥ ४९ ॥

॥ गउड़ी ३ पंचपदा ॥ पेवकड़ै दिन चारि है साहुरड़ै जाणा। अंधा लोकु न जाणई मूरखु एआणा ॥ १ ॥ कहु डडीआ बाधै धन खड़ी। पाहू घरि आए मुकलाऊ आए ॥ १ ॥ रहाउ ॥ ओह जि दिसै खूहड़ी कउन लाजु वहारी। लाजु घड़ी सिउ तूटि पड़ी उठि चली पनिहारी ॥ २ ॥ साहिबु होइ दइआलु क्रिपा करे अपुना कारजु सवारे। ता सोहागणि जाणीऐ गुर सबदु बीचारे ॥ ३ ॥ किरत की बांधी सभ फिरै देखहु बीचारी। एस नो किआ आखीऐ किआ करे विचारी ॥ ४ ॥ भई निरासी उठि चली चित बंधि न धीरा। हरि की चरणी लागि रहु भजु सरणि कबीरा ॥ ५ ॥ ६ ॥ ५० ॥

मूर्ख और अन्धा जगत नहीं जानता कि (जीव-स्त्री ने इस संसार-रूपी) पितृ-गृह में चार दिन ही रहना है, (हरेक को परलोक-रूपी) ससुराल जाना है ॥ १ ॥ कहो ! (यह क्या आश्चर्यजनक खेल है ?) गौना लेकर जानेवाले अतिथि घर में आए बैठे हैं और स्त्री अभी घर के काम-काज के वक्त इस्तेमाल की जानेवाली आधी धोती ही पहनकर खड़ी है, वह अब भी लापरवाह ही फिरती है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ यह जो सुन्दर कुँआ है इसमें कौन सी स्त्री रस्सी डाल रही है । जिसकी रस्सी घड़े समेत टूट जाती है, वह पानी भरनेवाली (अर्थात् भोगों में प्रवृत्त) यहाँ से उठकर परलोक को चली जाती है ॥ २ ॥ यदि प्रभु-मालिक दयालु हो जाए, कृपा करे, तो वह (जीव-स्त्री को भोगों से बचाने का) काम अपना जानकर, आप ही पूर्ण करता है; (उसकी कृपा से जीव-स्त्री जब) गुरु के शब्द का चिन्तन करती है तो वह पति वाली समझी जाती है ॥ ३ ॥ (लेकिन, हे भाई !) यदि विचारकर देखो, तो इस जीव-स्त्री का क्या दोष ? यह बेचारी क्या कर सकती है ? (यहाँ तो) सारी दुनिया पूर्वकृत कर्मों के संस्कारों में बँधी हुई भटक रही है ॥ ४ ॥ आशाएँ पूर्ण नहीं होतीं, मन धैर्य धारण नहीं करता और (जीव-स्त्री यहाँ से) उठकर चली जाती है । हे कबीर ! (इस निराशा से बचने के लिए) तू प्रभु के चरणों में लगी रह, प्रभु का आसरा लिए रख ॥ ५ ॥ ६ ॥ ५० ॥

॥ गउड़ी २ ॥ जोगी कहहि जोगु भल मीठा अवरु न दूजा भाई । रुंडित मुंडित एकै सबदी एइ कहहि सिधि पाई ॥ १ ॥ हरि बिनु भरमि भुलाने अंधा । जा पहि जाउ आपु छुटकावनि ते बाधे बहु फंधा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जह ते उपजी तही समानी इह बिधि बिसरी तब ही । पंडित गुणी सूर हम दाते एहि कहहि बड हम ही ॥ २ ॥ जिसहि बुझाए सोई बूझै बिनु बूझे किउ रहीऐ । सतिगुरु मिलै अंधेरा चूकै इन बिधि माणकु लहीऐ ॥ ३ ॥ तजि बावे दाहने बिकारा हरि पदु द्रिड़ु करि रहीऐ । कहु कबीर गूंगै गुड़ु खाइआ पूछे ते किआ कहीऐ ॥ ४ ॥ ७ ॥ ५१ ॥

जोगी कहते हैं— हे भाई ! योग (का मार्ग ही) भला और मीठा है, (इस जैसा) दूसरा कोई (साधन) नहीं है; कनफटे, संन्यासी, अवधूत—ये सारे कहते हैं— हमने ही सिद्धि प्राप्त की है॥ १ ॥ अन्धे लोग परमात्मा को भुलाकर भ्रम में पड़े हैं; (यही कारण है कि) मैं जिस-जिस के पास अहं से छुटकारा कराने जाता हूँ, वे सारे आप ही अहंकार के कई बन्धनों में

पड़े हुए हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जिस (प्रभु-वियोग) से यह अहंभावना पैदा होती है, उस (प्रभु-वियोग) में ही सारी दुनिया भटकी हुई है, इसी कारण दुनिया भ्रम में है। पण्डित, गुणी, शूरवीर, दानी; ये सारे (नाम से बिछुड़कर) यही कहते हैं कि हम सबसे बड़े हैं ॥ २ ॥ जिस मनुष्य को आप प्रभु बुद्धि देता है वही (असली बात) समझता है और उसे समझे बिना जीवन ही व्यर्थ है। (वास्तव में) जब मनुष्य को सतिगुरु मिलता है (तो उसके मन से अहंकार का) अन्धेरा दूर हो जाता है और इस प्रकार (इसे भीतर से ही नाम-रूपी) लाल प्राप्त हो जाता है ॥ ३ ॥ सो, हे कबीर ! कह— लाभ के विकारों की कल्पनाएं छोड़कर प्रभु की याद का निशाना निश्चित करके रखना चाहिए। (और जैसे) गूंगे मनुष्य ने गुड़ खाया हो और पूछने पर (उसका स्वाद) कह नहीं सकता (वैसे ही प्रभु-भक्ति अकथनीय है) ॥ ४ ॥ ७ ॥ ५१ ॥

रागु गउड़ी पूरबी१ कबीर जी

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ जह कछु अहा तहा किछु नाही पंच ततु तह नाही। इड़ा पिंगला सुखमन बंदे ए अवगन कत जाही ॥ १ ॥ तागा तूटा गगनु बिनसि गइआ तेरा बोलतु कहा समाई। एह संसा मो कउ अनदिनु बिआपै मो कउ को न कहै समझाई ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जह बरभंडु पिंडु तह नाही रचनहारु तह नाही। जोड़णहारो सदा अतीता इह कहीऐ किसु माही ॥२॥ जोड़ी जुड़ै न तोड़ी तूटै जब लगु होइ बिनासी। का को ठाकुरु का को सेवकु को काहू कै जासी ॥ ३ ॥ कहु कबीर लिव लागि रही है जहा बसे दिन राती। उआ का मरमु ओही परुजानै ओहु तउ सदा अबिनासी ॥ ४ ॥ १ ॥ ५२ ॥

(हे कबीर ! प्रभु-चरणों में अब मन रम गया है) जिस मन में ममत्व था, अब (प्रभु-प्रेम के कारण) उसमें से लौकिक ममत्व समाप्त हो गया है, अपने शरीर का मोह भी नहीं रह गया। हे भाई ! इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना वाले (प्राण चढ़ाने तथा रोकने आदि के विपरीत काम तो पता नहीं, कहाँ जाते हैं) ॥ १ ॥ प्रभु-चरणों में प्रेम के प्रभाव से मेरा (मोह का) धागा टूट गया है, मेरे भीतर से मोह का प्रसार समाप्त हो गया है, भेदभाव करनेवाले स्वभाव का नाम-निशान ही मिट गया है। (इस तबदीली की) हैरानी मुझे हर दिन आती है (कि यह कैसे हो गया, पर) कोई मनुष्य यह

समझा नहीं सकता ।। १ ।। रहाउ ।। जिस मन में (पहले) सारी दुनिया (के धन का मोह) था, उसमें अब अपने शरीर का मोह भी नहीं रहा, मोह के ताने-बाने बुननेवाला वह मन भी नहीं रहा; अब तो माया के मोह से निर्लेप, जोड़नेवाला प्रभु ही (मन में) बस रहा है। पर यह अवस्था किसी के पास व्यक्त नहीं की जा सकती ।। २ ।। जब तक (मनुष्य का मन) नाशमान् रहता है, तब तक इसकी प्रीति न (प्रभु से) जोड़ने से जुड़ सकती है, न (माया से) तोड़ने पर टूट सकती है। (इस दशा में ग्रसित) मन का न ही प्रभु (किसी भाव में) पति है, न यह मन प्रभु का सेवक बन सकता है। फिर किसे किसके पास जाना है? (अर्थात् यह देह के प्रति लगाव करनेवाला मन शरीर के मोह से ऊँचा उठकर प्रभु के चरणों में जाता ही नहीं) ।। ३ ।। हे कबीर ! कह— मेरी सुरति (प्रभु-चरणों में) लगी रहती है और दिन-रात वहीं टिकी रहती है। उसका भेद वह आप ही जानता है और वही सदा स्थिर रहनेवाला है ।। ४ ।। १ ।। ५२ ।।

।। गउड़ी ।। सुरति सिम्रिति दुइ कंनी मुंदा परमिति बाहरि खिथा । सुंन गुफा महि आसणु बैसणु कलप बिबरजित पंथा ।। १ ।। मेरे राजन मै बैरागी जोगी । मरत न सोग बिओगी ।। १ ।। रहाउ ।। खंड ब्रहमंड महि सिङी मेरा बटूआ सभु जगु भसमाधारी । ताड़ी लागी त्रिपलु पलटीऐ छूटै होइ पसारी ।। २ ।। मनु पवनु दुइ तूंबा करीहै जुग जुग सारद साजी । थिरु भई तंती तूटसि नाही अनहद किंगुरी बाजी ।। ३ ।। सुनि मन मगन भए है पूरे माइआ डोल न लागी । कहु कबीर ता कउ पुनरपि जनमु नही खेलि गइओ बैरागी ।।४।। २।।५३।।

प्रभु के चरणों में सुरति जोड़नी और प्रभु का नाम-स्मरण— यह मानो, मैं दोनों कानों में मुद्राएँ पहने हूँ। प्रभु का यथार्थ ज्ञान— यह मैंने अपने शरीर पर गुदड़ी ली हुई है। शान्ति-अवस्था-रूपी गुफा में मैं आसन लगाए बैठा हूँ, अर्थात् मेरा मन ही मेरी गुफा है। दुनियावी कल्पनाएँ त्याग देना— यह है मेरा (योग-) पंथ ।। १ ।। हे मेरे बादशाह (प्रभु !) मैं (तेरी स्मृति की) लगनवाला योगी हूँ, (इसलिए) मृत्यु, चिन्ता और बिछोह मुझे स्पर्श नहीं कर सकते हैं ।। १ ।। रहाउ ।। सारे ब्रह्माण्ड में (प्रभु की व्यापकता का सबको सन्देश देना) यह, मानो, मैं बाजा बजा रहा हूँ। सारे जगत को नाशमान समझना —यह है मेरा राख डालनेवाला थैला। त्रिगुणात्मक माया के प्रभाव को मैंने परख दिया है —यह मानो, मैंने समाधि लगाई हुई है। इस प्रकार मैं गृहस्थी होता हुआ भी मुक्त हूँ ।। २ ।। (मेरे भीतर) निरन्तर किंगुरी (वीणा) बज रही है। मेरा

मन और श्वास (उस वीणा के) दोनों तूंबे हैं। सारा स्थिर रहनेवाला प्रभु (मन और श्वास दोनों तुंबों को जोड़नेवाली) डण्डी बनाई है। सुरति का तार मजबूत हो गया है, जो कभी टूटता नहीं ॥ ३ ॥ (इस भीतरी किंगरी के राग को) सुनकर मेरा मन इस प्रकार पूर्णतौर से मस्त हो गया है कि उसे माया का धक्का नहीं लग सकता। हे कबीर! कह— जो ईश्वर-प्रेम वाला योगी ऐसा खेल-खेलकर जाता है, वह बार-बार कभी नहीं जन्मता ॥ ४ ॥ २ ॥ ५३ ॥

॥ गउड़ी ॥ गज नव गज दस गज इकीस पुरीआ एक तनाई। साठ सूत नव खंड बहतरि पाटु लगो अधिकाई ॥ १ ॥ गई बुनावन माहो। घर छोडिऐ जाइ जुलाहो ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गजी न मिनीऐ तोलि न तुलीऐ पाचनु सेर अढाई। जौ करि पाचनु बेगि न पावै झगरु करै घरहाई ॥ २ ॥ दिनकी बैठ खसम की बरकस इह बेला कत आई। छूटे कूंडे भीगै पुरीआ चलिओ जुलाहो रीसाई ॥ ३ ॥ छोछी नली तंतु नही निकसै न तर रही उरझाई। छोडि पसारु ईहा रहु बपुरी कहु कबीर समझाई ॥ ४ ॥ ३ ॥ ५४ ॥

(जब जीव जन्मता है तो, मानो) पूरी एक तानी (४० गजों की तैयार हो जाती है) जिसमें नौ गोलक, दस इन्द्रियाँ तथा इक्कीस गज होते हैं। साठ नाड़ियों का (यह उस तानी की लम्बाई की दिशा का) धागा होता है, (शरीर के नौ जोड़ उस तानी के) नौ भाग हैं और बहत्तर छोटी नाड़ियों को (उस तानी में) फालतू पेटा लगा हुआ समझो ॥ १ ॥ जब जीव-रूपी जुलाहा प्रभु के चरण भुलाता है, तो वासना (यह शरीर की तानी) बनाने चल पड़ती है, अर्थात् वासना ही जीव को शरीर में लाने का कारण बनती है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (शरीर-रूपी यह तानी) गजों से मापी नहीं जाती और न बाट से तोली जाती है (वैसे इस तानी को भी) प्रतिदिन ढाई सेर (ख़ुराक-रूपी) पान[1] चाहिए। यदि इसे पान उपयुक्त समय पर न मिले तो यह घर में ही शोर मचा देती है, (अर्थात्, शरीर को यदि भोजन न मिले तो इसमें भागदौड़ सी मच जाती है) ॥ २ ॥ (वासना में बँधा जीव) थोड़े दिन जीने के लिए —पति प्रभु से विद्रोह कर बैठता है (फिर) यह समय हाथ नहीं आता। (आख़िरकार) ये पदार्थ छिन जाते हैं, मन की इच्छाएँ इन पदार्थों में फंसी रह जाती हैं, (इस बिछोह के कारण) जीव-जुलाहा खीजकर यहाँ से चल पड़ता है ॥ ३ ॥ (आख़िर) नली खाली हो जाती है, धागा नहीं निकलता और रील उलझी

१—माड़ जो जुलाहे कपड़ा बुनते समय लगाते हैं।

नहीं रहती (अर्थात्, जीवात्मा शरीर छोड़ देता है, श्वास रुक जाते हैं, श्वासों का नाभि से सम्बन्ध टूट जाता है)। हे कबीर! अब तो इस वासना को ज्ञान देकर कह— हे अभागी वासना! यह जंजाल छोड़ दे और अब तो इस जीव की मुक्ति कर ॥ ४ ॥ ३ ॥ ५४ ॥

॥ गउड़ी ॥ एक जोति एका मिली किंबा होइ महोइ। जितु घटि नामु न ऊपजै फूटि मरै जनु सोइ ॥ १ ॥ सावल सुंदर रामईआ मेरा मनु लागा तोहि ॥ १ ॥ रहाउ ॥ साधु मिलै सिधि पाईऐ कि एहु जोगु कि भोगु। दुहु मिलि कारजु ऊपजै राम नाम संजोगु ॥ २ ॥ लोगु जानै इहु गीतु है इहु तउ ब्रहम बीचार। जिउ कासी उपदेसु होइ मानस मरती बार ॥ ३ ॥ कोई गावै को सुणै हरि नामा चितु लाइ। कहु कबीर संसा नही अंति परमगति पाइ ॥ ४ ॥ १ ॥ ४ ॥ ५५ ॥

(गुरु की शिक्षा से मनुष्य की सुरति परमात्मा की) ज्योति से मिलकर एक हो जाती है, उसके भीतर अहंभावना बिल्कुल नहीं रहती। केवल वही मनुष्य अहंभावना से दुखी होता है, जिसके भीतर परमात्मा का नाम पैदा नहीं होता ॥ १ ॥ हे मेरे साँवले सुन्दर राम! (गुरु की कृपा से) मेरा मन तो तेरे चरणों में जुड़ा हुआ है, (मुझे अहंभावना दुखी क्यों करे?) ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (आन्तरिक शान्ति की) उपलब्धि सतिगुरु को मिलने पर होती है। जब सतिगुरु का शब्द और सिक्ख की सुरति मिलती हैं तो परमात्मा के नाम का मिलाप-रूपी नतीजा निकलता है। (इस सिद्धि के समक्ष) योगियों का योग तुच्छ है, दुनियावी पदार्थों का भोग भी कोई चीज़ नहीं है ॥ २ ॥ जगत समझता है कि सतिगुरु का शब्द (साधारण) गीत ही है, लेकिन यह तो परमात्मा के गुणों का चिन्तन है, जैसे काशी में मृत्यु के समय (शिव का मुक्तिदाता) उपदेश मिलता हुआ माना जाता है ॥ ३ ॥ जो भी मनुष्य प्रेमपूर्वक प्रभु का नाम गाता है अथवा सुनता है, हे कबीर! कह— इसमें कोई शंका नहीं है कि वह अवश्य ही सर्वोच्च आत्मिक अवस्था प्राप्त कर लेता है ॥ ४ ॥ १ ॥ ४ ॥ ५५ ॥

॥ गउड़ी ॥ जेते जतन करत ते डूबे भव सागरु नही तारिओ रे। करम धरम करते बहु संजम अहंबुधि मनु जारिओ रे ॥ १ ॥ सास ग्रास को दातो ठाकुरु सो किउ मनहु बिसारिओ रे। हीरा लालु अमोलु जनमु है कउडी बदलै हारिओ रे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ त्रिसना त्रिखा भूख भ्रमि लागी हिरदै नाहि बीचारिओ

रे । उनमत मान हिरिओ मन माही गुर का सबदु न धारिओ रे ।। २ ।। सुआद लुभत इंद्री रस प्रेरिओ मद रस लैत बिकारिओ रे । करम भाग संतन संगाने कासट लोह उधारिओ रे ।। ३ ।। धावत जोनि जनम भ्रमि थाके अब दुख करि हम हारिओ रे । कहि कबीर गुर मिलत महा रसु प्रेम भगति निसतारिओ रे ।। ४ ।। १ ।। ५ ।। ५६ ।।

हे भाई ! धार्मिक अनुष्ठान, वर्णाश्रमों की अपनी-अपनी परम्पराएँ करने, कर्त्तव्य तथा दूसरे कई प्रकार के धार्मिक संकल्प करने से अहंकार (मनुष्य के) मन को जला देता है । जो-जो मनुष्य ऐसे यत्न करते हैं, वे सारे (संसार-समुद्र में) डूब जाते हैं, ये परम्पराएँ संसार-समुद्र से पार नहीं उतारतीं अर्थात् सांसारिक विकारों से नहीं बचा सकतीं ।। १ ।। हे भाई ! प्राण और अन्न का देनेवाला एक परमात्मा ही है । तूने उसे अपने मन से क्यों भुला दिया है ? यह (मनुष्य-) जन्म (मानो) हीरा है, अमूल्य लाल है, लेकिन तूने इसे कौड़ी के लिए गवाँ दिया है ।। १ ।। रहाउ ।। हे भाई ! तूने कभी अपने मन में नहीं सोचा कि दुबिधा के कारण तुझे माया की भूख-प्यास लगी है, (कर्म-धर्म में ही) तू मस्त और अहंकार-ग्रस्त रहता है । गुरु का शब्द तूने कभी अपने मन में नहीं बसाया ।। २ ।। (प्रभु को विस्मृत कर) तू लौकिक आस्वादों का लोभी बन रहा है । इन्द्रियों के आस्वाद से प्रेरित होकर तू विकारों के नशे के स्वाद लेता रहता है । जिनके मस्तक पर उत्तम भाग्य हैं, उन्हें सत्संगति में (लाकर प्रभु विकारों से ऐसे बचाता है, जैसे लकड़ी लोहे को (समुद्र से) पार उतारती है ।। ३ ।। कबीर कहता है— योनियों में, जन्मों में दौड़-दौड़कर, भटक-भटककर मैं तो थक गया हूँ । दुःख सह-सहकर दूसरे सहारे छोड़ बैठा हूँ । सतिगुर को मिलते ही सबसे श्रेष्ठ रस पैदा होता है, और प्रेम सहित की हुई भक्ति (संसार-समुद्र के विकारों की लहरों से) बचा लेती है ।।४।।१।।५।।५६।।/

।। गउड़ी ।। कालबूत की हसतनी मन बउरा रे चलतु रचिओ जगदीस । काम सुआइ गज बसि परे मन बउरा रे अंकसु सहिओ सीस ।। १ ।। बिखै बाचु हरि राचु समझु मन बउरा रे । निरभै होइ न हरि भजे मन बउरा रे गहिओ न राम जहाजु ।।१।। रहाउ ।। मरकट मुसटी अनाज की मन बउरा रे लीनी हाथु पसारि । छूटन को सहसा परिआ मन बउरा रे नाचिओ घर घर बारि ।। २ ।। जिउ नलनी सूअटा गहिओ मन बउरा रे माया इहु बिउहारु । जैसा रंगु कसुंभ का मन बउरा रे तिउ पसरिओ

पासारु ॥ ३ ॥ नावन कउ तीरथ घने मन बउरा रे पूजन कउ बहु देव । कहु कबीर छूटनु नही मन बउरा रे छूटनु हरि की सेव ॥ ४ ॥ १ ॥ ६ ॥ ५७ ॥

हे मूर्ख मन ! (यह जगत) परमात्मा ने एक खेल रचाया है जैसे (लोग हाथी को पकड़ने के लिए) कलबूत की हथिनी (बनाते हैं); (जिसे देखकर) काम-वासना के कारण हाथी पकड़ा जाता है और अपने सिर पर (सदा महावत का) अंकुश सहता है, (वैसे ही हे पागल मन ! तू भी माया में फँसकर दुखी होता है) ॥ १ ॥ हे मूर्ख मन ! सोच-समझ कर, विषयों से बचा रह और प्रभु में जुड़ा रह । तू भय त्यागकर परमात्मा को क्यों नहीं स्मरण करता और प्रभु का आसरा क्यों नहीं लेता ? ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे मूर्ख मन ! बन्दर ने हाथ फैलाकर दानों की मुट्ठी भर ली और उसे भय हो गया कि क़ैद में से कैसे निकले । (उस लालच के कारण अब) हरेक घर के दरवाज़े पर नाचता फिरता है ॥ २ ॥ हे पागल मन ! जगत की माया का प्रसार ऐसे ही है । जैसे तोता नलिनी पर (बैठकर) फँस जाता है । हे मूर्ख मन ! जैसे कसुंभे का रंग (थोड़े ही दिन का) है ऐसे ही जगत का विस्तार (चार दिन के लिए ही) बिखरा हुआ है ॥ ३ ॥ हे कबीर ! कह— हे मूर्ख मन ! (चाहे) स्नान करने के लिए बहुत से तीर्थ हैं और पूजने के लिए बहुत से देवता हैं, पर (माया के भय से) मुक्ति नहीं हो सकती । मुक्ति केवल प्रभु का स्मरण करने से ही होती है ॥ ४ ॥ १ ॥ ६ ॥ ५७ ॥

॥ गउड़ी ॥ अगनि न दहै पवनु नही मगनै तसकरु नेरि न आवै । राम नाम धनु करि संचउनी सो धनु कतही न जावै ॥ १ ॥ हमरा धनु माधउ गोबिंदु धरणी धरु इहै सार धनु कहीऐ । जो सुखु प्रभ गोबिंद की सेवा सो सुखु राजि न लहीऐ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ इसु धन कारणि सिव सनकादिक खोजत भए उदासी । मनि मुकंदु जिहबा नाराइनु परै न जम की फासी ॥ २ ॥ निज धनु गिआनु भगति गुरि दीनी तासु सुमति मनु लागा । जलत अंभ थंभि मनु धावत भरम बंधन भउ भागा ॥ ३ ॥ कहै कबीरु मदन के माते हिरदै देखु बीचारी । तुम घरि लाख कोटि अस्व हसती हम घरि एकु मुरारी ॥ ४ ॥ १ ॥ ७ ॥ ५८ ॥

(हे भाई !) परमात्मा का नाम-रूपी धन एकत्रित कर, यह कभी नष्ट नहीं होता । इस धन को न आग जला सकती है, न हवा उड़ा कर

ले जा सकती है ।। १ ।। हमारा धन तो माधव गोविंद ही है, जो सारी पृथ्वी का आसरा है । इसी धन को सब धनों में उत्तम कहा जाता है । जो परमात्मा गोविंद के भजन में मिलता है, वह सुख राज्य में (भी) नहीं मिलता ।। १ ।। रहाउ ।। इस धन के लिए शिव और सनक आदि खोज करते-करते जगत से विरक्त हुए । जिस मनुष्य के मन में मुक्तिदाता प्रभु रहता है, जिसकी जिह्वा पर अकालपुरुष टिका है, उसे यम की फाँसी नहीं लग सकती ।। २ ।। प्रभु की भक्ति और ज्ञान ही (जीव का) वास्तविक धन है । जिस सुबुद्धि वाले को गुरु ने (यह देन) दी है, उसका मन उस प्रभु में टिकता है । (माया की तृष्णा में) जलनेवाले के लिए (यह नाम-धन) पानी है और भटकते मन को यह आसरा है, (नाम के प्रभाव से) भ्रमों के बन्धनों का भय दूर हो जाता है ।। ३ ।। कबीर कहता है— हे काम-वासना में मस्त हुए (राजन !) मन में सोचकर देख, यदि तेरे घर में लाखों-करोड़ों हाथी और घोड़े हैं तो हमारे (हृदय-) घर में (यह सारे पदार्थ देनेवाला) एक परमात्मा है ।। ४ ।। १ ।। ७ ।। ५८ ।।

।। गउड़ी ।। जिउ कपि के कर मुसटि चनन की लुबधि न तिआगु दइओ । जो जो करम कीए लालच सिउ ते फिरि गरहि परिओ ।। १ ।। भगति बिनु बिरथे जनमु गइओ । साध संगति भगवान भजन बिनु कही न सचु रहिओ ।। १ ।। रहाउ ।। जिउ उदिआन कुसम परफुलित किनहि न घ्राउ लइओ । तैसे भ्रमत अनेक जोनि महि फिरि फिरि काल हइओ ।। २ ।। इआ धन जोबन अरु सुत दारा पेखन कउ जु दइओ । तिन ही माहि अटकि जो उरझे इंद्री प्रेरि लइओ ।। ३ ।। अउध अनल तनु तिन को मंदरु चहु दिस ठाटु ठइओ । कहि कबीर भै सागर तरन कउ मै सतिगुर ओट लइओ ।। ४ ।। १ ।। ८ ।। ५९ ।।

जैसे (किसी) बन्दर के हाथ में (भुने हुए) चनों की मुट्ठी आई हो लेकिन लोभी बन्दर ने (अपने आपको फँसा जानकर भी) दानों की मुट्ठी न छोड़ी (और वह अन्त में फन्दे में फस गया, इस प्रकार) जीव लोभ के वशीभूत होकर जो-जो काम करता है, वे सारे दोबारा (मोह के बन्धन-रूपी जंजीर बनकर इसके) गले में पड़ते हैं ।। १ ।। परमात्मा की भक्ति के बिना मनुष्य-जन्म व्यर्थ ही जाता है । सत्संगति में (आकर) भगवान का स्मरण किए बिना वह सदा स्थिर रहनेवाला प्रभु किसी भी हृदय में टिक ही नहीं सकता ।। १ ।। रहाउ ।। जैसे जंगल में खिले हुए फूलों की सुगंधि कोई नहीं ले सकता, वैसे ही (प्रभु की प्रार्थना अथवा भक्ति के बिना) जीव

अनेकों योनियों में भटकते रहते हैं, और पुनःपुनः मृत्यु के शिकार होते हैं ॥ २ ॥ धन, यौवन, पुत्र और स्त्री —ये सब उस प्रभु ने (जीव को किसी तमाशे में निर्लिप्त सा रहने के लिए) देखने के लिए दिए हैं, लेकिन जीव इनमें रुककर फँस जाते हैं; इन्द्रियाँ जीव को खींच लेती हैं ॥ ३ ॥ कबीर कहता है— यह शरीर (मानो) तिनकों का कोठा है, उम्र (के दिन बीतते जाने पर इसे) आग लगी हुई है, सर्वत्र यही स्थिति है, (पर कोई भी ध्यान नहीं देता; कितना आश्चर्यजनक दृश्य है।) इस भयानक संसार-समुद्र से पार उतरने के लिए मैंने तो सतिगुरु का आसरा लिया है ॥ ४ ॥ १ ॥ ८ ॥ ५९ ॥

॥ गउड़ी ८ ॥ पानी मैला माटी गोरी । इस माटी की पुतरी जोरी ॥ १ ॥ मै नाही कछु आहि न मोरा । तनु धनु सभु रसु गोबिंद तोरा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ इस माटी महि पवनु समाइआ । झूठा परपंचु जोरि चलाइआ ॥ २ ॥ किनहू लाख पांच की जोरी । अंत की बार गगरीआ फोरी ॥ ३ ॥ कहि कबीर इक नीव उसारी । खिन महि बिनसि जाइ अहंकारी ॥ ४ ॥ १ ॥ ९ ॥ ६० ॥

(हे अहंकारी जीव ! किस बात का अभिमान करता है ?) पिता के वीर्य की गन्दी बूँद और माँ के रक्त— (इन दोनों से परमात्मा ने) जीव का यह मिट्टी का शरीर बनाया है ॥ १ ॥ हे मेरे गोविंद ! (तुझसे अलग) मेरा कोई अस्तित्व नहीं है और मेरी कोई जायदाद नहीं है। यह शरीर, धन और यह आत्मा सब तेरे दिए हुए हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ इस मिट्टी (के पुतले) में (इसे खड़ा रखने के लिए) प्राण टिके हुए हैं, (लेकिन जीव सब झुठलाकर) झूठा प्रसार करके बैठ जाता है ॥ २ ॥ जिन जीवों ने पाँच-पाँच लाख की जायदाद जोड़ ली है, मौत आने पर उनका भी शरीर-रूपी बर्तन टूट जाता है ॥ ३ ॥ कबीर कहता है— हे अहंकारी जीव ! तेरी तो जो नींव ही खड़ी की गई है वह एक पलक में नष्ट हो जानेवाली है ॥ ४ ॥ १ ॥ ९ ॥ ६० ॥

॥ गउड़ी ॥ राम जपउ जीअ ऐसे ऐसे । ध्रू प्रहिलाद जपिओ हरि जैसे ॥ १ ॥ दीन दइआल भरोसे तेरे । सभु परवारु चड़ाइआ बेड़े ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जा तिसु भावै ता हुकमु मनावै । इस बेड़े कउ पारि लघावै ॥ २ ॥ गुर परसादि ऐसी बुधि समानी । चूकि गई फिरि आवन जानी ॥ ३ ॥

कहु कबीर भजु सारिगपानी । उरवारि पारि सभ एको दानी ॥ ४ ॥ २ ॥ १० ॥ ६१ ॥

हे आत्मा ! (इस प्रकार प्रार्थना कर, कि) हे प्रभु ! मैं तुझे उस प्रेम और श्रद्धा से स्मरण करूँ जिस प्रेम और श्रद्धा से ध्रुव और प्रहलाद ने तुझे स्मरण किया था ॥ १ ॥ हे दीनदयालु प्रभु ! तेरी कृपा की आशा पर मैंने अपना सारा परिवार तेरे (नाम के) जहाज़ पर चढ़ा दिया है, अर्थात् सब इन्द्रियों को तेरी गुणस्तुति में लगा दिया है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जब प्रभु को उचित लगता है तो वह (इस सारे परिवार से अपना) हुक्म मनवाता है और इस प्रकार इस सारे परिवार को (इन सब इन्द्रियों को) विकारों की लहरों से बचा लेता है ॥ २ ॥ सतिगुरु की कृपा से (जिस मनुष्य के भीतर) ऐसी बुद्धि प्रकट हो जाती है, उसका बार-बार जन्मना-मरना समाप्त हो जाता है ॥ ३ ॥ हे कबीर ! कह (अर्थात्, स्वयं को समझा)— सारंगपाणि प्रभु को स्मरण कर और लोक-परलोक सर्वत्र उस प्रभु को ही जान ॥ ४ ॥ २ ॥ १० ॥ ६१ ॥

॥ गउड़ी ६ ॥ जोनि छाडि जउ जग महि आइओ । लागत पवन खसमु बिसराइओ ॥ १ ॥ जीअरा हरि के गुना गाउ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गरभ जोनि महि उरध तपु करता । तउ जठर अगनि महि रहता ॥ २ ॥ लख चउरासीह जोनि भ्रमि आइओ । अब के छुटके ठउर न ठाइओ ॥ ३ ॥ कहु कबीर भजु सारिगपानी । आवत दीसै जात न जानी ॥४॥१॥११॥६२॥

जब जीव माँ का पेट छोड़कर जन्म लेता है, तो (माया की) हवा लगते ही पति-प्रभु को भुला देता है ॥ १ ॥ हे आत्मा ! प्रभु की गुणस्तुति कर ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (जब जीव) माँ के पेट में सिर के भार टिका हुआ प्रभु की प्रार्थना करता है तब पेट की अग्नि में भी बचा रहता है ॥ २ ॥ (जीव) चौरासी योनियों में भटक-भटककर (सौभाग्यवश मनुष्य-जन्म में) आता है, लेकिन यहाँ भी खाली घूमते हुए फिर कोई ठौर-ठिकाना नहीं मिलता ॥ ३ ॥ हे कबीर ! आत्मा को समझा कि उस सारंगपाणि प्रभु को स्मरण कर, जो न जन्मता दिखता है और न मरता हुआ सुना जाता है ॥ ४ ॥ १ ॥ ११ ॥ ६२ ॥

॥ गउड़ी पूरबी ॥ सुरग बासु न बाछीऐ डरीऐ न नरकि निवासु । होना है सो होईहै मनहि न कीजै आस ॥ १ ॥ रमईआ गुन गाईऐ । जा ते पाईऐ परम निधानु ॥ १ ॥ रहाउ ॥

किआ जपु किआ तपु संजमो किआ बरतु किआ इसनानु । जब लगु जुगति न जानीऐ भाउ भगति भगवान ॥ २ ॥ संपै देखि न हरखीऐ बिपति देखि न रोइ । जिउ संपै तिउ बिपति है बिध ने रचिआ सो होइ ॥ ३ ॥ कहि कबीर अब जानिआ संतन रिदै मझारि । सेवक सो सेवा भले जिह घट बसै मुरारि ॥ ४ ॥ १ ॥ १२ ॥ ६३ ॥

न यह इच्छा रखनी चाहिए कि (मरने के पश्चात्) स्वर्ग का वास मिल जाए, और न इस बात से डरते रहें कि कहीं नरक में ही वास न मिल जाए। जो कुछ (प्रभु की रज़ा में) होना है वही होगा। इसलिए, मन में आशाएं नहीं बनानी चाहिए ॥ १ ॥ अकालपुरुष की गुणस्तुति करनी चाहिए, इस प्रयास से वह (नाम-रूपी) खज़ाना मिल जाता है जो सब (सुखों) से ऊँचा है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जब तक अकालपुरुष के साथ प्रेम तथा उसकी भक्ति की युक्ति नहीं समझी (तब तक) जप, तप, संयम— ये सब किसी भी काम के नहीं हैं ॥ २ ॥ सौभाग्य देखकर फूले नहीं फिरना चाहिए और मुसीबत देखकर दुखी नहीं होना चाहिए। जो कुछ परमात्मा करता है वही होता है, जैसे सौभाग्य (परमात्मा का दिया हुआ) है वैसे विपत्ति (भी उसी द्वारा दी हुई भोगनी पड़ती) है ॥ ३ ॥ कबीर कहता है— अब यह समझ आई है (कि परमात्मा) संतों के हृदय में बसता है, वही सेवक सेवा करते हुए सुन्दर लगते हैं, जिनके मन में प्रभु बसता है ॥ ४ ॥ १ ॥ १२ ॥ ६३ ॥

॥ गउड़ी ॥ रे मन तेरो कोइ नही खिंचि लेइ जिनि भारु । बिरख बसेरो पंखि को तैसो इहु संसारु ॥ १ ॥ राम रसु पीआ रे । जिह रस बिसरि गए रस अउर ॥ १ ॥ रहाउ ॥ अउर मुए किआ रोईऐ जउ आपा थिरु न रहाइ । जो उपजै सो बिनसि है दुखु करि रोवै बलाइ ॥ २ ॥ जह की उपजी तह रची पीवत मरदन लाग । कहि कबीर चिति चेतिआ राम सिमरि बैराग ॥ ३ ॥ २ ॥ १३ ॥ ६४ ॥

हे मन ! (अन्तिम समय) तेरा कोई (साथी) नहीं बनेगा चाहे (दूसरे सम्बन्धियों का) भार खींचकर (अपने सिर पर) ले ले। जैसे पक्षियों का बसेरा वृक्षों पर होता है, वैसे ही इस जगत् का वास है ॥ १ ॥ हे भाई ! (गुरमुख) परमात्मा के नाम का रस पीते हैं और उस रस के प्रभाव से दूसरे सारे चस्के (उन्हें) विस्मृत हो जाते हैं ॥ १ ॥ रहाउ ॥ किसी दूसरे के मरने पर रोने का क्या अर्थ, जब हमारा अपना आप ही

सदा ठिकाना नहीं रहेगा। (यह अटल नियम है कि) जो-जो जीव जन्मता है वह नष्ट हो जाता है, फिर (किसी के मरने पर) दुखी होकर रोना व्यर्थ है ॥ २ ॥ कबीर कहता है— जिन्होंने अपने मन में प्रभु को स्मरण किया है, प्रभु को याद किया है, उनके भीतर जगत से निर्लिप्तता पैदा हो जाती है। गुरमुखों की संगति में (नाम-रस) पान करते-करते उनकी आत्मा जिस प्रभु से पैदा हुई है उसी में जुड़ी रहती है ॥ ३ ॥ २ ॥ १३ ॥ ६४ ॥

॥ रागु गउड़ी ॥ पंथु निहारै कामनी लोचन भरी ले उसासा। उर न भीजै पगु ना खिसै हरि दरसन की आसा ॥ १ ॥ उडहु न कागा कारे। बेगि मिलीजै अपुने राम पिआरे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ कहि कबीर जीवन पद कारनि हरि की भगति करीजै। एकु आधारु नामु नाराइन रसना रामु रवीजै ॥ २ ॥ १ ॥ १४ ॥ ६५ ॥

(जैसे परदेस गए पति की प्रतीक्षा में) स्त्री मार्ग देखती है, (उसकी) आँखें आँसुओं से भरी हैं और वह गहरे उच्छ्वास ले रही है, (प्रतीक्षा करते हुए उसका) मन तृप्त नहीं होता, पैर हिलता नहीं, (ऐसी ही दशा होती है, उस प्रभु-विरही भक्त की, जिसे) प्रभु के दर्शनों की प्रतीक्षा होती है ॥ १ ॥ (वियोगिनी औरत के समान ही जीव स्त्री कहती है) हे काले कौए! उड़, मैं बलिहारी जाती हूँ (ताकि) मैं अपने प्यारे प्रभु से शीघ्र भेंट कर पाऊँ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ कबीर कहता है— (जैसे) प्रोषित पतिका (जिसका पति विदेश गया हो) विरह में विह्वल होती है, वैसे ही) ज़िन्दगी का असली स्थान प्राप्त करने के लिए प्रभु की भक्ति करनी चाहिए, प्रभु के नाम का ही एक आसरा होना चाहिए और जिह्वा से उसे याद करना चाहिए ॥ २ ॥ १ ॥ १४ ॥ ६५ ॥

॥ रागु गउड़ी ११ ॥ आस पास घन तुरसी का बिरवा माझ बनारसि गाऊं रे। उआ का सरूपु देखि मोही गुआरनि मो कउ छोडि न आउ न जाहू रे ॥ १ ॥ तोहि चरन मनु लागो सारिंगधर सो मिलै जो बडभागो ॥ १ ॥ रहाउ ॥ बिंद्राबन मन हरन मनोहर क्रिसन चरावत गाऊ रे। जा का ठाकुरु तुही सारिंगधर मोहि कबीरा नाऊ रे ॥ २ ॥ २ ॥ १५ ॥ ६६ ॥

(जिस कृष्णजी के) आस-पास तुलसी के सघन पौधे थे (और जो) तुलसी के जंगल में प्रेमपूर्वक गा रहा था उसका दर्शन करके (गोकुल की)

ग्वालिनी आकर्षित हो गई (और कहने लगी—) हे प्रियतम ! मुझे छोड़कर किसी दूसरे स्थान पर न आना-जाना ।। १ ।। हे धनुर्धारी प्रभु ! (जैसे वह ग्वालिनी कृष्णजी पर बलिहारी जाती थी वैसे ही मेरा भी) मन तेरे चरणों में रम गया है; परन्तु तुझे वही मिलता है जो सौभाग्यशाली हो ।। १ ।। रहाउ ।। हे प्रभु ! वृन्दावन में कृष्ण गौएँ चराता था (और वह गोकुल की ग्वालिनों का मन मोहनेवाला था, मन को ढाढस बंधानेवाला था; और हे धनुर्धारी सज्जन ! जिसके तुम स्वामी हो उसका नाम कबीर (जुलाहा) है ।। २ ।। २ ।। १५ ।। ६६ ।।

।। गउड़ी पूरबी १२ ।। बिपल बसत्र केते है पहिरे किआ बन मधे बासा। कहा भइआ नर देवा धोखे किआ जलि बोरिओ गिआता ।। १ ।। जीअ रे जाहिगा मै जानां। अबिगत समझु इआना। जत जत देखउ बहुरि न पेखउ संगि माइआ लपटाना ।। १ ।। रहाउ ।। गिआनी धिआनी बहु उपदेसी इहु जगु सगलो धंधा। कहि कबीर इक रामनाम बिनु इआ जगु माइआ अंधा ।। २ ।। १ ।। १६ ।। ६७ ।।

कई लोग लम्बे-चौड़े वस्त्र पहनते हैं, (इसका क्या लाभ ?) जंगलों में जाकर बसने का भी क्या लाभ ? हे भाई ! यदि धूप आदि जलाकर देवताओं की पूजा कर ली तो भी क्या बन गया ? और यदि जानबूझ कर (तीर्थों के) जल मे शरीर डुबा लिया तो भी क्या हुआ ? ।। १ ।। हे जीव ! तू (उस) माया में लिपट रहा है (जो) जिधर भी मैं देखता हूँ, दोबारा (पूर्व रूप में) मैं नहीं देखता (अर्थात्, माया नाशमान है)। हे मूर्ख जीव ! एक परमात्मा को खोज। नहीं तो मैं समझता हूँ, (इस माया के साथ) तू भी अपना आप व्यर्थ गवाँता है ।। १ ।। रहाउ ।। कोई ज्ञान-चर्चा कर रहा है, कोई समाधि लगाए बैठा है, कोई दूसरों को उपदेश दे रहा है, (पर असल में) यह सारा जगत माया का जंजाल ही है। कबीर कहता है— परमात्मा का नाम स्मरण किए बिना यह जगत माया में अन्धा हुआ पड़ा है ।। २ ।। १ ।। १६ ।। ६७ ।।

।। गउड़ी १२ ।। मन रे छाडहु भरमु प्रगटु होइ नाचहु इआ माइआ के डांडे। सूरु कि सनमुख रन ते डरपै सती कि सांचै भांडे ।। १ ।। डगमग छाडि रे मन बउरा। अब तउ जरे मरे सिधि पाईऐ लीनो हाथि संधउरा ।। १ ।। रहाउ ।। काम क्रोध माइआ के लीने इआ बिधि जगतु बिगूता। कहि कबीर राजा राम न छोडउ सगल ऊच ते ऊचा ।।२।।२।।१७।।६८।।

हे मन ! विकारों के पीछे भाग-दौड़ छोड़ दे, यह (काम, क्रोध आदि) सब माया की चालें हैं। (जब तू प्रभु की शरण आ गया तो अब इनसे डर क्यों ?) वह शूरवीर कैसा जो सामने दिखती युद्धभूमि से डर जाए ? वह स्त्री सती नहीं हो सकती जो (घर के) बर्तन एकत्रित करने लगे (शूरवीर और सती स्त्री के समान, हे मन ! तुझे कामादिक से टकराव करना है और आपा-भाव जलाना है) ॥ १ ॥ हे मूर्ख मन ! (ईश्वर की शरण में आकर अब) घबराहट छोड़ दे ? (जिस स्त्री ने) हाथ में सिंदूर लगाया हुआ नारिकेल ले लिया उसे तो अब जलकर ही सिद्धि (सती वाला माहत्म्य) मिलेगी, (इसी प्रकार अब आपा-भाव मारने पर, कामादिकों का मुकाबला करने पर ही मन को प्रभु-प्रीति सम्भव है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥ किसी को काम ने ठग लिया है, किसी को क्रोध ने ठगा है, किसी को माया ने— इसी प्रकार सारा जगत दुखी हो रहा है। (इनसे बचने के लिए) कबीर (तो यही) कहता है, (अर्थात् प्रार्थना करता है) कि मैं सबसे ऊँचे मालिक परमात्मा को न भुलाऊँ ॥ २ ॥ २ ॥ १७ ॥ ६८ ॥

॥ गउड़ी १३ ॥ फुरमानु तेरा सिरै ऊपरि फिरि न करत बीचार। तुही दरीआ तुही करीआ तुझै ते निसतार ॥ १ ॥ बंदे बंदगी इकतीआर। साहिबु रोसु धरउ कि पिआरु ॥ १ ॥ रहाउ॥ नामु तेरा आधारु मेरा जिउ फूलु जई है नारि। कहि कबीर गुलामु घर का जीआइ भावै मारि ॥ २ ॥ १८ ॥ ६९ ॥

(हे प्रभु !) तेरा हुक्म मेरे सिर-माथे पर है, अर्थात् मुझे स्वीकार है, मैं इसमें कोई ऐतराज़ नहीं करता। यह संसार-समुद्र तुम आप ही हो, (इसमें से पार करानेवाले) मल्लाह भी तुम आप हो। तेरी कृपा से ही मैं (इससे पार) उतर सकता हूँ ॥ १ ॥ हे मनुष्य ! तू (प्रभु की) भक्ति स्वीकार कर, (प्रभु-) मालिक चाहे (तेरे साथ) प्रेम करे, चाहे गुस्सा करे, (तू इस बात की परवाह न कर) ॥ १ ॥ रहाउ ॥ (हे प्रभु !) तेरा नाम मेरा आसरा है, (इस प्रकार) जैसे फूल पानी में खिला रहता है। कबीर कहता है— (हे प्रभु !) मैं तुम्हारे घर का नौकर हूँ, (यह तुम्हारी इच्छा है) चाहे जीवित रखिये चाहे मार दीजिए ॥ २ ॥ १८ ॥ ६९ ॥

॥ गउड़ी ५ ॥ लख चउरासीह जीअ जोनि महि भ्रमत नंदु बहु थाको रे। भगति हेति अवतारु लीओ है भागु बडो बपुरा को रे ॥ १ ॥ तुम्ह जु कहत हउ नंद को नंदनु नंद सु नंदनु का को रे। धरनि अकासु दसो दिस नाही तब इहु नंदु कहा थो रे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ संकटि नही परै जोनि नही आवै नामु

निरंजन जा को रे । कबीर को सुआमी ऐसो ठाकुरु जा कै माई न बापो रे ॥ २ ॥ १९ ॥ ७० ॥

हे भाई ! (तुम कहते हो कि जब) चौरासी लाख जीवों की योनियों में भटक-भटककर नन्द बहुत थक गया, (तब उसने मनुष्य-जन्म पाकर परमात्मा की भक्ति की), उसकी भक्ति पर प्रसन्न होकर (परमात्मा ने उसके घर) जन्म लिया, (तब) उस बेचारे नन्द का सौभाग्य जागा ॥ १ ॥ लेकिन, हे भाई ! तुम जो यह कहते हो कि (परमात्मा नन्द के घर अवतार लेकर) नन्द का पुत्र बना, (यह बताओ कि) वह नन्द किसका पुत्र था ? और जब धरती और आकाश नहीं थे, तब यह नन्द (जिसे तुम परमात्मा का पिता कह रहे हो), कहाँ था ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे भाई ! (असल बात यह है कि) जिस प्रभु का नाम है निरंजन, वह योनि धारण नहीं करता, (वह जन्म-मरण के) दुःख में नहीं पड़ता । कबीर का स्वामी (सारे जगत का) पालनहार ऐसा है, जिसका न कोई माँ है और न पिता ॥ २ ॥ १९ ॥ ७० ॥

॥ गउड़ी ॥ निंदउ निंदउ मो कउ लोगु निंदउ । निंदा जन कउ खरी पिआरी । निंदा बापु निंदा महतारी ॥ १ ॥ रहाउ ॥ निंदा होइ त बैकुंठि जाईऐ । नामु पदारथु मनहि बसाईऐ । रिदै सुध जउ निंदा होइ । हमरे कपरे निंदकु धोइ ॥ १ ॥ निंदा करै सु हमरा मीतु । निंदक माहि हमारा चीतु । निंदकु सो जो निंदा होरै । हमरा जीवनु निंदकु लोरै ॥ २ ॥ निंदा हमरी प्रेम पिआरु । निंदा हमरा करै उधारु । जन कबीर कउ निंदा सारु । निंदकु डूबा हम उतरे पारि ॥ ३ ॥ २० ॥ ७१ ॥

दुनिया चाहे मेरी निन्दा करे, चाहे मेरे अवगुण बतलाए; लेकिन प्रभु के सेवक को अपनी निन्दा भली लगती है, क्योंकि निन्दा सेवक का माँ-बाप है, (जैसे माँ-बाप अपने बच्चे में शुभ गुणों की वृद्धि चाहते हैं, वैसे ही निन्दा भी अवगुण नष्ट करके शुभ गुणों के लिए सहायता करती है) ॥ १ ॥ रहाउ ॥ यदि लोग अवगुण नष्ट करें तो ही बैकुंठ में जाया जा सकता है, (क्योंकि इस प्रकार अवगुण छोड़कर) प्रभु का नाम-रूपी धन मन में बसाया जा सकता है । यदि हृदय शुद्ध होते हुए हमारी निंदा होवे तो निंदक हमारे मन को पवित्र करने में सहायता करता है ॥ १ ॥ (इसलिए) जो मनुष्य हमारी निंदा करता है, वह हमारा मित्र है, क्योंकि

हमारी सुरति अपने निंदक में रहती है। (असल में) हमारा बुरा सोचनेवाला मनुष्य वह है जो हमारी बुराइयों को नष्ट होने से रोकता है। बल्कि निंदक से तो यह भलाई है कि हमारा जीवन भला बनता है ॥ २ ॥ जैसे-जैसे हमारी निंदा होती है, वैसे-वैसे हमारे भीतर प्रभु का प्रेम पैदा होता है, क्योंकि हमारी निंदा हमें अवगुणों से बचाती है। इसलिए, दास कबीर के लिए तो उसके अवगुणों का नष्ट होना सबसे बढ़िया बात है। परन्तु (बेचारा) निंदक (सदा दूसरों के अवगुणों की बातें कर-करके आप अवगुणों में) डूब जाता है और हम (अपने अवगुणों की चेतावनी द्वारा उनसे) बच निकलते हैं ॥ ३ ॥ २० ॥ ७१ ॥

राजा राम तूं ऐसा निरभउ तरन तारन राम राइआ ॥१॥ रहाउ ॥ जब हम होते तब तुम नाही अब तुम हहु हम नाही । अब हम तुम एक भए हहि एकै देखत मनु पतीआही ॥ १ ॥ जब बुधि होती तब बलु कैसा अब बुधि बलु न खटाई । कहि कबीर बुधि हरि लई मेरी बुधि बदली सिधि पाई ॥२॥२१॥७२॥

हे सबके मालिक प्रभु ! हे सब जीवों का उद्धार करने के लिए समर्थ राम ! सर्वव्यापक एवं निर्भय प्रभु ! तेरा स्वभाव कुछ विचित्र है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जब तक हम जीव कुछ बने फिरते हैं, (अर्थात् अहंकार करते हैं) तब तक तुम हमारे भीतर प्रगट नहीं होते, लेकिन जब तूने आप (हमारी भीतर) निवास कर लिया है तब हमारे भीतर वह पहलेवाली अहंभावना नहीं रही। अब (हे प्रभु !) तुम और हम एकरूप हो गए हैं, अब तुम्हें देखकर हमारा मन मान गया है (कि सर्वत्र तुम ही तुम हो) ॥१॥ (हे प्रभु !) जब तक हम जीवों में अपनी बुद्धि (का अहंकार) होता है, तब तक हमारे भीतर कोई आत्मिक बल नहीं होता, लेकिन अब (जब तुम आप हमारे भीतर प्रकट हुए हो) तब हमारी बुद्धि और बल का हमें अभिमान नहीं रहा। कबीर कहता है—(हे प्रभु !) तुमने मेरी (अहंग्रस्त) अक़्ल छीन ली है, अब वह बदल गई है, (इसलिए अब मुझे मनुष्य-जन्म के मनोरथ की) सिद्धि प्राप्त हो गई है ॥ २ ॥ २१ ॥ ७२ ॥

॥ गउड़ी ॥ खट नेम करि कोठड़ी बांधी बसतु अनूपु बीच पाई । कुंजी कुलफु प्रान करि राखे करते बार न लाई ॥ १ ॥ अब मन जागत रहु रे भाई । गाफलु होइ कै जनमु गवाइओ चोरु मुसै घरु जाई ॥ १ ॥ रहाउ ॥ पंच पहरूआ दर महि रहते तिन का नही पतीआरा । चेति सुचेत चित होइ रहु तउ लै परगासु उजारा ॥ २ ॥ नउ घर देखि जु कामनि भूली बसतु

अनूप न पाई । कहतु कबीर नवै घर मूसे दसवैं ततु समाई ।। ३ ।। २२ ।। ७३ ।।

छः चक्र बनाकर (प्रभु ने) यह (मनुष्य शरीर-रूपी) छोटा सा घर बना दिया है और (इस घर) में (अपनी आत्मिक ज्योति-रूपी) आश्चर्य-वस्तु रख दी है, (इस घर का) ताला-चाबी (प्रभु ने) प्राणों को ही बना दिया है और (यह खेल) बनाते हुए वह देर नहीं लगाता ।। १ ।। (इस घर में रहनेवाले) हे प्यारे मन ! अब जागता रह, लापरवाह होकर तूने (अब तक) जीवन व्यर्थ गवाँ लिया है; (यदि कोई भी लापरवाह होता है तो) चोर जाकर (उसका) घर लूट लेता है ।। १ ।। रहाउ ।। (ये जो) पाँच प्रहरी (इस घर के) दरवाज़ों पर रहते हैं, इनका कोई विश्वास नहीं, सचेत होकर रह और (मालिक को) स्मरण रख तो (तेरे भीतर प्रभ की आत्मिक ज्योति का) प्रकाश निखर आएगा ।। २ ।। जो जीव-स्त्री (शरीर के) नौ घरों को देखकर (अपने वास्तविक मनोरथ से) भटक जाती है, उसे (ज्योति-रूपी) आश्चर्यजनक वस्तु (भीतर से) प्राप्त नहीं होती । कबीर कहता है, जब ये नौ ही घर वश में आ जाते हैं तो प्रभु की ज्योति दसवें घर में टिक जाती है (अर्थात्, जब अन्तर्मन में बसे प्रभु के अस्तित्व का बोध जीव को हो जाता है, तब उसकी सुरति प्रभु की याद में टिकती है) ।। ३ ।। २२ ।। ७३ ।।

।। गउड़ी ।। माई मोहि अवरु न जानिओ आनानां । सिव सनकादि जासु गुन गावहि तासु बसहि मोरे प्रानानां ।। रहाउ ।। हिरदे प्रगासु गिआन गुर गंमित गगन मंडल महि धिआनानां । बिखै रोग भै बंधन भागे मन निजघरि सुखु जानाना ।। १ ।। एक सुमति रति जानि मानि प्रभ दूसर मनहि न आनाना । चंदन बासु भए मन बासन तिआगि घटिओ अभिमानाना ।। २ ।। जो जन गाइ धिआइ जसु ठाकुर तासु प्रभू है थानानां । तिह बडभाग बसिओ मनि जा कै करम प्रधान मथानाना ।। ३ ।। काटि सकति सिव सहजु प्रगासिओ एकै एक समानाना । कहि कबीर गुर भेटि महा सुख भ्रमत रहे मनु मानानां ।।४।।२३।।७४।।

हे (मेरी) माँ ! मैंने किसी दूसरे को अपने जीवन का आसरा नहीं समझा, (क्योंकि) मेरे प्राण तो उस (प्रभु) में बस रहे है, जिसके गुण शिव और सनक गाते हैं ।। १ ।। रहाउ ।। जब से सतिगुरु ने उत्तम सूझ-बूझ दी है, मेरे हृदय में, (मानो) प्रकाश हो गया है और मेरा ध्यान उच्च मण्डलों में अर्थात् प्रभु-चरणों में टिका रहता है । विषय-विकार आदि रोगों तथा

भयों की जंजीरें टूट गई हैं, मेरे मन ने भीतर ही सुख प्राप्त कर लिया है ॥ १ ॥ मेरी बुद्धि का प्रेम एक प्रभु में ही बन गया है। एक प्रभु को (आसरा) समझकर (और उसमें) विश्वस्त होकर, किसी दूसरे को अब मन में नहीं लाता। मन की इच्छाओं को त्याकर (मेरे भीतर, मानो) चन्दन की सुगन्धि पैदा हो गई, (मेरे भीतर से) अहंकार मिट गया है ॥ २ ॥ जो मनुष्य ठाकुर का यश गाता है, प्रभु को स्मरण करता है, प्रभु का निवास उसके हृदय में हो जाता है। और, जिसके मन में प्रभु बस गया, उसका सौभाग्य (समझो), उसके माथे पर उत्तम लेख प्रकट हो गए (जानो) ॥ ३ ॥ माया का प्रभाव दूर करके जब ईश्वरीय-ज्योति का प्रकाश हो गया तो सदा पवित्र, एक प्रभु में मन लीन रहता है। कबीर कहता है, सतिगुरु को मिलकर उत्तम सुख प्राप्त होता है, दुबिधा समाप्त हो जाती है और मन (प्रभु में) लग जाता है ॥ ४ ॥ २३ ॥ ७४ ॥

रागु गउड़ी पूरबी बावन अखरी कबीर जीउ की

१ ओं सतिनामु करता पुरखु गुर प्रसादि ॥ बावन अछर लोक त्रै सभु कछु इन ही माहि। ए अखर खिरि जाहिगे ओइ अखर इन महि नाहि ॥ १ ॥ जहा बोल तह अछर आवा। जह अबोल तह मनु न रहावा। बोल अबोल मधि है सोई। जस ओहु है तस लखै न कोई ॥ २ ॥ अलह लहउ तउ किआ कहउ कहउ त को उपकार। बटक बीज महि रवि रहिओ जा को तीनि लोक बिसथार ॥ ३ ॥ अलह लहंता भेद छै कछु कछु पाइओ भेद। उलटि भेद मनु बेधिओ पाइओ अभंग अछेद ॥४॥ तुरक तरीकति जानीऐ हिंदू बेद पुरान। मन समझावन कारने कछूअक पड़ीऐ गिआन ॥ ५ ॥ ओअंकार आदि मै जाना। लिखि अरु मेटै ताहि न माना। ओअंकार लखै जउ कोई। सोई लखि मेटणा न होई ॥ ६ ॥ कका किरणि कमल महि पावा। ससि बिगास संपट नही आवा। अरु जे तहा कुसम रसु पावा। अकह कहा कहि का समझावा ॥ ७ ॥ खखा इहै खोड़ि मन आवा। खोड़े छाडि न दहदिस धावा। खसमहि जाणि खिमा करि रहै। तउ होइ निखिअउ अखै पदु लहै ॥८॥ गगा गुर के बचन पछाना। दूजी बात न धरई काना। रहै बिहंगम कतहि न जाई। अगह गहै गहि गगन रहाई ॥ ९ ॥

बावन अक्षर सारे जगत में (प्रयुक्त किए जा रहे हैं।) जगत का सारा व्यवहार इन अक्षरों के द्वारा चल रहा है। परन्तु ये अक्षर नष्ट हो जाएँगे (अर्थात् बोलियाँ और उनमें प्रयुक्त होनेवाले अक्षर नाशमान् हैं)। अकालपुरुष से मिलाप जिस शक्ल में अनुभव होता है, उसकी अभिव्यक्ति के लिए कोई भी अक्षर ऐसे नहीं हैं जो इन अक्षरों में आ सकें ॥ १ ॥ जो व्यवहार व्यक्त किया जा सकता है, अक्षर (केवल) वहीं प्रयोग किए जाते हैं; जो अवस्था वर्णन से परे है, वहाँ (व्यक्त करनेवाला) मन (आप ही) नहीं रह जाता। जहाँ अक्षर प्रयोग किए जा सकते हैं (अर्थात्, जो अवस्था व्यक्त की जा सकती है) और जिस हालत का वर्णन नहीं हो सकता (अर्थात्, परमात्मा में ऐक्य होने की अवस्था) —इन (दोनों ओर) परमात्मा आप ही है, इसलिए जैसा वह (परमात्मा) है वैसा (बिल्कुल वैसा) कोई व्यक्त नहीं सकता ॥ २ ॥ यदि उस अलभ्य (परमात्मा) को मैं प्राप्त कर (भी) लूँ तो मैं उसका सही वर्णन नहीं कर सकता; यदि कुछ वर्णन भी करूँ तो उसका किसी को लाभ नहीं हो सकता। (वैसे) जिस परमात्मा का यह तीनों लोक ही प्रसार है, वह इसमें ऐसे व्यापक है जैसे बरगद (का वृक्ष) बीज में है ॥ ३ ॥ परमात्मा को मिलने का यत्न करते-करते (मेरी) दुबिधा का नाश हो गया है और (दुबिधा का नाश होने पर मैंने परमात्मा का) सब रहस्य समझ लिया है। दुबिधा को पलटने पर मन (परमात्मा में) रम गया है और मैंने उस अविनाशी तथा अभेद प्रभु को प्राप्त कर लिया है ॥ ४ ॥ (मन को प्रभु-चरणों में जुड़े रखने के लिए) मन को ऊँचे जीवन की सूझ देने के लिए (उच्च) विचारवाली वाणी थोड़ी-बहुत पढ़नी ज़रूरी है। इसलिए (भला) मुसलमान उसे समझा जाता है जो तरीकत (ब्रह्मज्ञान) में लगा हो और (उत्तम) हिन्दू उसे जो वेदों और पुराणों की खोज करता होवे ॥ ५ ॥ जो शाश्वत, सर्वव्यापक परमात्मा सबको बनानेवाला है, मैं उसे अविनाशी समझता हूँ; दूसरे जिस व्यक्ति को वह प्रभु पैदा करता है और फिर मिटा देता है, उसे मैं (परमात्मा के तुल्य) नहीं मानता। यदि कोई मनुष्य उस सर्वव्यापक परमात्मा को समझ ले तो उसे समझने पर (उस मनुष्य की उस ऊँची आत्मिक सुरति का) नाश नहीं होता ॥ ६ ॥ यदि मैं (ज्ञान-रूपी सूर्य की) किरण (हृदय-रूपी) कमल-पुष्प में टिका लूँ तो (माया-रूपी) चन्द्रमा की चाँदनी से, वह (खिला हुआ हृदय पुष्प) (दोबारा) बन्द नहीं हो जाता। और यदि कभी मैं उस खिलने की हालत में (पहुँचकर) (उस खिले हुए हृदय-रूपी कमल) पुष्प का आनन्द (भी) भोग सकूँ तो उसका वर्णन कथन से परे है। वह मैं कहकर क्या समझा सकता हूँ ? ॥ ७ ॥ जब यह मन (-पक्षी जिस को ज्ञान की किरण मिल चुकी है) स्व-स्वरूप के खेल में (प्रभु-चरणों में) आ टिकता है तो इस घोंसले (-प्रभु-चरणों) को छोड़कर इधर-उधर नहीं

दौड़ना पड़ता। पति-प्रभु के साथ मेल करके क्षमा के स्रोत प्रभु में टिका रहता है और तब अविनाशी (प्रभु के साथ एक) होकर वह पदवी प्राप्त कर लेता है, जो कभी नष्ट नहीं होती ॥ ८ ॥ जिस मनुष्य ने सतिगुरु की वाणी के द्वारा परमात्मा से मेल कर लिया है, उसे (प्रभु की गुणस्तुति के बिना) कोई दूसरी बात खींच ही नहीं पाती। वह पक्षी (की तरह सदा निर्लिप्त) रहता है; कभी भी नहीं भटकता; जिस प्रभु को जगत की माया ग्रस नहीं सकती, उसे यह अपने हृदय में बसा लेता है; हृदय में बसाकर अपनी सुरति को प्रभु-चरणों में टिकाए रखता है ॥ ९ ॥

घघा घटि घटि निमसै सोई। घट फूटे घटि कबहि न होई। ता घट माहि घाट जउ पावा। सो घटु छाडि अवघट कत धावा ॥ १० ॥ ङङा निग्रहि सनेहु करि निरवारो संदेह। नाही देखि न भाजीऐ परम सिआनप एह ॥ ११ ॥ चचा रचित चित्र है भारी। तजि चित्रै चेतहु चितकारी। चित्र बचित्र इहै अवझेरा। तजि चित्रै चितु राखि चितेरा ॥ १२ ॥ छछा इहै छत्रपति पासा। छकि कि न रहहु छाडि कि न आसा। रे मन मै तउ छिन छिन समझावा। ताहि छाडि कत आपु बधावा ॥ १३ ॥ जजा जउ तन जीवत जरावै। जोबन जारि जुगति सो पावै। असजरि परजरि जरि जब रहै। तब जाइ जोति उजारउ लहै ॥ १४ ॥ झझा उरझि सुरझि नही जाना। रहिओ झझकि नाही परवाना। कत झखि झखि अउरन समझावा। झगरु कीए झगरउ ही पावा ॥ १५ ॥ ञंञा निकटि जु घट रहिओ दूरि कहा तजि जाइ। जा कारणि जगु ढूढिअउ नेरउ पाइअउ ताहि ॥ १६ ॥ टटा बिकट घाट घट माही। खोलि कपाट महलि कि न जाही। देखि अटल टलि कतहि न जावा। रहै लपटि घट परचउ पावा ॥ १७ ॥ ठठा इहै दूरि ठग नीरा। नीठि नीठि मनु कीआ धीरा। जिनि ठगि ठगिआ सगल जगु खावा। सो ठगु ठगिआ ठउर मनु आवा ॥ १८ ॥

हरएक शरीर में वह प्रभु ही विद्यमान है। यदि कोई शरीर (-रूपी घड़ा) टूट जाए तो कभी प्रभु के अस्तित्व में कोई घाटा नहीं पड़ता। जब (कोई जीव) इस शरीर के भीतर ही (संसार-समुद्र से पार उतरने के लिए) नाव प्राप्त कर लेता है तो इस नाव को छोड़कर वह गड्ढों में कहीं नहीं भटकता फिरता ॥ १० ॥ (हे भाई! अपनी इन्द्रियों को) भली

प्रकार रोक, प्रभु से प्रेम कर और अविश्वास दूर कर। (यह काम कठिन अवश्य है, पर) इस ख्याल से कि यह काम हो नहीं सकता (इस काम से) भागना नहीं चाहिए— (बस) सबसे बड़ी अक्ल (की बात) यही है ॥११॥ (प्रभु का) बनाया हुआ यह जगत (मानो) एक बहुत बड़ी तस्वीर है। (हे भाई!) इस तस्वीर को छोड़कर तस्वीर बनानेवाले को स्मरण रख; (क्योंकि बड़ा) झंझट यह है कि यह (संसार-रूपी) तस्वीर मन मोह लेनेवाली है। (इसलिए) तस्वीर (का ख्याल) छोड़कर तस्वीर बनानेवाले में अपने चित्त को पिरोकर रख ॥ १२ ॥ (हे मेरे मन! दूसरी) आशाएं छोड़कर और स्वस्थ होकर क्यों तू इस (चित्रकार प्रभु) के पास नहीं रहता जो (सबका) बादशाह है? हे मन! तुझे हरवक्त समझाता हूँ कि उसे भुलाकर कहाँ (उसके बनाए चित्र में) तू अपने आपको जकड़ रहा है ॥ १३ ॥ जब (कोई जीव) माया में रहता हुआ ही शरीर (की इच्छाएँ) जला लेता है, वह मनुष्य यौवन जलाकर जीने की जाँच सीख लेता है; जब मनुष्य अपने (धन के अहंकार) को तथा पराई (दौलत की आशा) को जलाकर संयम में रहता है, तब ऊँची आत्मिक अवस्था में पहुँचकर प्रभु की ज्योति का प्रकाश प्राप्त करता है ॥ १४ ॥ जिस मनुष्य ने (चर्चाओं में पड़कर निकम्मी) उलझनों में ही फँसना सीखा, उलझनों में से निकलने की जाँच न सीखी, वह (सारी उम्र) भयभीत ही रहा, (उसका जीवन) स्वीकृत न हो सका। वादविवाद कर-करके दूसरों को सीख देने का क्या लाभ? चर्चा करते हुए अपने आपको तो केवलमात्र चर्चा करने की ही आदत पड़ गई ॥ १५ ॥ (हे भाई!) जो प्रभु निकट बस रहा है, जो हृदय में बस रहा है, उसे छोड़कर तू दूर कहाँ जाता है? (जिस प्रभु को मिलने के लिए) (हमने सारा) जगत खोजा था, उसे निकट ही (अपने भीतर ही) प्राप्त कर लिया है ॥ १६ ॥ (प्रभु के महल में पहुँचानेवाला) विकट घाट है (जो) हृदय में ही है। (हे भाई! माया के मोह वाले) दरवाज़े खोलकर तू प्रभु की सेवा में क्यों नहीं पहुँचता? (जिसने हृदय में ही) सदा स्थिर रहनेवाले प्रभु का दर्शन कर लिया है, वह चलायमान होकर किसी दूसरी ओर नहीं जाता, वह (प्रभु-चरणों के साथ) मेल कर लेता है॥१७॥ यह माया इस प्रकार है, जिस प्रकार दूर से दिखती हुई वह रेत, जो पानी लगती है। इसलिए मैंने बहुत गौर से देख-देखकर मन को धैर्यवान बना लिया है। जिस (मोह-रूपी) ठग ने सारे जगत को भ्रम में डाल दिया है, सारे जगत को अपने वश में कर लिया है, उस (मोह-) ठग को काबू करने पर मेरा मन एक ठिकाने पर आ गया है ॥ १८ ॥

डडा डर उपजे डरु जाई। ता डर महि डरु रहिआ समाई। जउ डर डरै त फिरि डरु लागै। निडरु हूआ डरु उर

होइ भागै ॥ १६ ॥ ढढा ढिग ढूढहि कत आना । ढूढत ही ढहि गए पराना । चड़ि सुमेरि ढूढि जब आवा । जिह गड़ु गड़िओ सु गड़ महि पावा ॥ २० ॥ णाणा रणि रूतउ नर नेही करै । ना निवै ना फुनि संचरै । धंनि जनमु ताही को गणै । मारै एकहि तजि जाइ घणै ॥ २१ ॥ तता अतर तरिओ नह जाई । तन त्रिभवण महि रहिओ समाई । जउ त्रिभवण तन माहि समावा । तउ ततहि तत मिलिआ सचु पावा ॥ २२ ॥ थथा अथाह थाह नही पावा । ओहु अथाह इहु थिरु न रहावा । थोड़ै थलि थानक आरंभै । बिनु ही थाभह मंदिरु थंभै ॥ २३ ॥ ददा देखि जु बिनसनहारा । जस अदेखि तस राखि बिचारा । दसवै दुआरि कुंची जब दीजै । तउ दइआल को दरसनु कीजै ॥ २४ ॥ धधा अरधहि उरध निबेरा । अरधहि उरधह मंझि बसेरा । अरधह छाडि उरध जउ आवा । तउ अरधहि उरध मिलिआ सुख पावा ॥ २५ ॥ नंना निसि दिनु निरखत जाई । निरखत नैन रहे रतवाई । निरखत निरखत जब जाइ पावा । तब ले निरखहि निरख मिलावा ॥ २६ ॥ पपा अपर पारु नही पावा । परम जोति सिउ परचउ लावा । पांचउ इंद्री निग्रह करई । पापु पुंनु दोऊ निरवरई ॥ २७ ॥

यदि परमात्मा का भय मनुष्य के हृदय में पैदा हो जाए तो (दुनिया वाला) भय दूर हो जाता है और उसका लौकिक डर समाप्त हो जाता है; लेकिन यदि मनुष्य, परमात्मा का भय मन में न बसाए, तो (दुनिया वाला) भय दोबारा आ दबाता है। (और प्रभु का भय मन में बसाकर जो मनुष्य) निर्भय हो गया तो उसके मन का जो भी भय है वह सब नष्ट हो जाता है ॥ १९ ॥ (परमात्मा तो तेरे) निकट ही है, तू उसे कहाँ खोजता है ? (बाहर) खोजते-खोजते तेरे प्राण भी थक गए हैं। सुमेरु पर्वत पर (भी) चढ़कर और (परमात्मा को वहाँ) खोज-खोजकर जब मनुष्य (अपने शरीर में) आता है, (अर्थात् अपने भीतर देखता है), तो वह प्रभु इस (शरीर-रूपी) किले में ही मिल जाता है जिसने यह शरीर-रूपी किला बनाया है ॥ २० ॥ (जगत-रूपी इस) रणभूमि में जूझता हुआ जो मनुष्य विकारों को वश में करने की सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है, जो (विकारों के समक्ष) न झुकता है, न ही (उनसे) मेल करता है, जगत उसी आदमी के जीवन को भाग्यशाली मानता है, क्योंकि वह मनुष्य (अपने) एक मन को मारता है और इन बहुत से (विकारों) को छोड़ देता है ॥ २१ ॥ यह

जगत एक ऐसा समुद्र है जिसे पार करना कठिन है, जिसमें से पार हुआ नहीं जा सकता (क्योंकि) आँख, कान, नाक आदि ज्ञानेन्द्रियाँ दुनिया (के रसों) में डूबे रहते हैं; पर जब संसार (के रस) शरीर के भीतर ही मिट जाते हैं, तब (जीव की) आत्मा (प्रभु की) ज्योति में मिल जाती है, तब सत्यस्वरूप परमात्मा मिल जाता है ।। २२ ।। (मनुष्य का मन) अथाह परमात्मा की थाह नहीं ले सकता; (क्योंकि एक ओर तो) वह प्रभु अनन्त गहरा है, (और, दूसरी ओर, मनुष्य का) यह मन कभी टिककर नहीं रहता । यह मन थोड़ी जितनी (मिली) भूमि में (कई नगर बनाने) शुरू कर देता है (अर्थात्, थोड़ी सी उम्र में कई प्रसार कर बैठता है) और यह सब पसारे पसारना व्यर्थ काम है, यह (मानो) थमलों (दीवारों) के बिना ही घर बना रहा है ।। २३ ।। जो यह संसार (इन आँखों से) दिख रहा है, यह सारा नाशमान है, (हे भाई !) तू सदा प्रभु में सुरति जोड़, जो (इन आँखों से) दिखाई नहीं देता है । लेकिन उस दयालु प्रभु का दर्शन तब ही किया जा सकता है, जब (गुरु-वाणी-रूपी) कुंजी दसवें द्वार में लगाएँ ।। २४ ।। जब जीवात्मा का निवास परमात्मा में होता है, (अर्थात्, जब जीव प्रभु-चरणों में जुड़ता है), तो प्रभु के साथ (एक होने पर ही) जीव के जन्म-मरण का विनाश होता है । जब जीव निम्न अवस्था को छोड़कर उच्चावस्था को प्राप्त होता है, तब जीव को परमात्मा मिल जाता है, और इसे (वास्तविक) सुख प्राप्त हो जाता है ।। २५ ।। (जिस जीव का) दिन-रात्रि (अर्थात् प्रत्येक पल) प्रतीक्षा में गुजरता है, देखते-देखते उसके नेत्र (प्रभु-दर्शनों के लिए) मतवाले हो जाते हैं । दर्शन की इच्छा करते-करते जब आखिर दर्शन होता है तो वह इष्ट-प्रभु दर्शन की इच्छा रखनेवाले (अपने प्रेमी) को अपने साथ मिला लेता है ।। २६ ।। परमात्मा सबसे बड़ा है, उसका किसी ने अन्त नहीं पाया । जिस जीव ने प्रकाश के स्रोत प्रभु के साथ प्रेम जोड़ा है, वह अपनी पाँचों-ज्ञानेन्द्रियों को (इस तरह) वश में कर लेता है कि वह जीव पाप और पुण्य दोनों को दूर कर देता है ।। २७ ।।

फफा बिनु फूलह फलु होई । ता फल फंक लखै जउ कोई । दूणि न परई फंक बिचारै । ता फल फंक सभै तन फारै ।।२८।। बबा बिंदहि बिंद मिलावा । बिंदहि बिंदि न बिछुरन पावा । बंदउ होइ बंदगी गहै । बंदक होइ बंध सुधि लहै ।। २९ ।। भभा भेदहि भेद मिलावा । अब भउ भानि भरोसउ आवा । जो बाहरि सो भीतरि जानिआ । भइआ भेदु भूपति पहिचानिआ ।। ३० ।। ममा मूल गहिआ मनु मानै । मरमी

होइ सु मन कउ जानै। मत कोई मन मिलता बिलमावै। मगन भइआ ते सो सचु पावै ॥ ३१ ॥ ममा मन सिउ काजु है मन साधे सिधि होइ। मन ही मन सिउ कहै कबीरा मन सा मिलिआ न कोइ ॥ ३२ ॥ इहु मनु सकती इहु मनु सीउ। इहु मनु पंच तत को जीउ। इहु मनु ले जउ उनमनि रहै। तउ तीनि लोक की बातै कहै ॥ ३३ ॥ यया जउ जानहि तउ दुरमति हनि करि बसि काइआ गाउ। रणि रूतउ भाजै नही सूरउ थारउ नाउ ॥ ३४ ॥ रारा रसु निरस करि जानिआ। होइ निरस सु रसु पहिचानिआ। इह रस छाडे उह रसु आवा। उह रसु पीआ इह रसु नही भावा ॥ ३५ ॥ लला ऐसे लिव मनु लावै। अनत न जाइ परम सचु पावै। अरु जउ तहा प्रेम लिव लावै। तउ अलह लहै लहि चरन समावै ॥ ३६ ॥

यदि जीव अपने आप पर अभिमान करना छोड़ दे, तो इसे (नाम-पदार्थ-रूपी) वह फल मिल जाता है, (जिसकी ख़ातिर मनुष्य-जन्म मिला है)। और, यदि कोई उस ईश्वरीय सूझ का तनिकमात्र भी रहस्य समझ ले, यदि उस रहस्य को सोचे तो वह मनुष्य-जन्म के गड्ढे में नहीं पड़ता, (क्योंकि) ईश्वरीय सूझ का यह थोड़ा सा ही संकेत उसके देह-अभ्यास (अभिमान) को पूर्णतः समाप्त कर देता है ॥ २८ ॥ (जैसे पानी की) बूंद में (पानी की) बूंद मिल जाती है, (और, फिर अलग नहीं हो सकती,) वैसे प्रभु के साथ निमिषमात्र भी मेल करके (जीव प्रभु से) बिछुड़ नहीं सकता, (क्योंकि जो मनुष्य प्रभु का) सेवक बनकर प्रेमपूर्वक (प्रभु की) भक्ति करता है, वह (प्रभु के द्वार का) स्तुति करनेवाला (माया-मोह की) ज़ंजीरों का भेद पा लेता है (और इनके धोखे में नहीं आता) ॥ २९ ॥ जो मनुष्य (प्रभु से हुई) दूरी को समाप्त करके (अपने मन को प्रभु की याद में) जोड़ता है, उस याद के प्रभाव से (सांसारिक) भय दूर करने पर उसे प्रभु के प्रति श्रद्धा बन जाती है। जो परमात्मा सारे जगत में व्यापक है, उसे वह अपने भीतर बसता जान लेता है, (और जैसे-जैसे) यह रहस्य उसे पता चलता है (कि सर्वत्र बाहर-भीतर प्रभु बस रहा है) वह सृष्टि के मालिक-प्रभु के साथ (याद का) सम्बन्ध बना लेता है ॥ ३० ॥ यदि जगत के मूल प्रभु को अपने मन में बसा लिया जाए तो मन भटकाव से बच जाता है। जो जीव यह भेद पा लेता है, वह जीव मन (की भाग-दौड़ को) समझ लेता है। (सो) यदि (मन प्रभु-चरणों में) जुड़ने लगे तो कोई इस काम में ढील न करे; (क्योंकि प्रभु-चरणों में अनुरक्ति से) मन (प्रभु में) लीन हो जाता है और उस सत्यस्वरूप रहनेवाले प्रभु को प्राप्त कर लेता

है ॥ ३१ ॥ (जीव का वास्तविक) काम मन के साथ है, (यह काम मानसिक संयम है)। मन को वश में करने से ही (जीव को वास्तविक मनोरथ की) कामयाबी होती है। कबीर कहता है (कि जीव का असली काम) केवलमात्र मन के साथ ही है, मन जैसा (जीव को) दूसरा कोई नहीं मिला (जिसके साथ इसका असली सम्पर्क होवे) ॥ ३२ ॥ (माया के साथ मिलकर) यह मन माया (का रूप) हो जाता है। (आनन्द-स्वरूप हरि के साथ मिलकर) यह मन आनन्द-स्वरूप हरि बन जाता है। (शरीर के साथ जुड़कर) यह मन शरीर-रूप ही हो जाता है। लेकिन जब मनुष्य इस मन को वश में करके उन्मनावस्था में टिकता है, तब वह सारे जगत में व्यापक प्रभु की बातें करता है ॥ ३३ ॥ (हे भाई!) यदि तू (जीवन का सही रास्ता) जानना चाहता है तो (अपनी) दुर्बुद्धि को समाप्त कर दे, इस शरीर (-रूपी) गाँव को (अपने) वश में कर। (इस शरीर को वश में लाना, एक युद्ध है) यदि तू इस युद्ध में लगकर पराजय न पाए तो ही तेरा नाम शूरवीर (हो सकता) है ॥ ३४ ॥ जिस मनुष्य ने माया के स्वाद को फीका सा समझ लिया है, उसने भौतिक आस्वादनों से बचे रहकर वह आत्मिक आनन्द प्राप्त कर लिया है। जिसने यह (लौकिक) आस्वादन छोड़ दिए हैं, उसे वह (प्रभु के नाम का आनन्द) प्राप्त हो गया है; (क्योंकि) जिसने वह (नाम-) रस पान किया है, उसे (यह मायावाला) आस्वादन अच्छा नहीं लगता ॥ ३५ ॥ यदि (किसी मनुष्य का) मन ऐसी एकाग्रता से (प्रभु की याद में) वृत्ति जोड़ ले कि किसी दूसरी ओर न भटके तो उसे सर्वोच्च तथा सत्यस्वरूप प्रभु मिल पड़ता है; इसलिए यदि उस लौ की दशा में प्रेम का तार जोड़ दे तो उस अप्राप्य प्रभु को वह प्राप्त हो जाता है और प्राप्त करके सदा के लिए उसके चरणों में टिका रहता है ॥ ३६ ॥

ववा बारबार बिसन सम्हारि। बिसन संम्हारि न आवै हारि। बलि बलि जे बिसन तना जसु गावै। विसन मिले सभ ही सचु पावै ॥ ३७ ॥ वावा वाही जानीऐ वा जाने इहु होइ। इहु अरु ओहु जब मिलै तब मिलत न जानै कोइ ॥ ३८ ॥ ससा सो नीका करि सोधहु। घट परचा की बात निरोधहु। घट परचै जउ उपजै भाउ। पूरि रहिआ तह त्रिभवण राउ ॥ ३९ ॥ खखा खोजि परै जउ कोई। जो खोजै सो बहुरि न होई। खोज बूझि जउ करै बीचारा। तउ भवजल तरत न लावै बारा ॥ ४० ॥ ससा सो सह सेज सवारै। सोई सही संदेह निवारै। अलप सुख छाडि परम सुख पावा।

तब इह त्रीअ ओहु कंतु कहावा ।। ४१ ।। हाहा होत होइ नही जाना । जब ही होइ तबहि मनु माना । है तउ सही लखै जउ कोई । तब ओही उहु एहु न होई ।। ४२ ।। लिउ लिउ करत फिरै सभु लोगु । ता कारणि बिआपै बहु सोगु । लखिमीबर सिउ जउ लिउ लावै । सोगु मिटै सभ ही सुख पावै ।। ४३ ।। खखा खिरत खपत गए केते । खिरत खपत अजहूं नह चेते । अब जगु जानि जउ मना रहै । जह का बिछुरा तह थिरु लहै ।। ४४ ।। बावन अखर जोरे आनि । सकिआ न अखरु एकु पछानि । सत का सबदु कबीरा कहै । पंडित होइ सु अनभै रहै । पंडित लोगह कउ बिउहार । गिआनवंत कउ ततु बीचार । जा कै जीअ जैसी बुधि होई । कहि कबीर जानैगा सोई ।। ४५ ।।

(हे भाई !) सदा प्रभु को (अपने हृदय में) याद रखकर (जीव मनुष्य-जन्म की बाज़ी) हारकर नहीं आता, मैं उस भक्तजन पर न्यौछावर हूँ, जो प्रभु के गुण गाता है । प्रभु को मिलकर वह सर्वत्र सत्यस्वरूप प्रभु को ही देखता है ।। ३७ ।। (हे भाई !) उस प्रभु के साथ जान-पहचान करनी चाहिए । उस प्रभु के साथ मेल करने पर यह जीव (उस प्रभु का रूप ही) हो जाता है । जब वह जीव और वह प्रभु एकरूप हो जाते हैं तो इन मिले हुए को कोई नहीं समझ सकता ।। ३८ ।। भली प्रकार उस परमात्मा की रक्षा करो । अपने मन को उन शब्दों में लाकर जोड़ो, जिससे यह मन परमात्मा में मिल जाए । प्रभु में मन रम जाने पर जब (भीतर) प्रेम पैदा होता है तो उस अवस्था में तीनों भवनों का मालिक परमात्मा ही (सर्वत्र) व्यापक दिखता है ।। ३९ ।। यदि कोई मनुष्य परमात्मा की खोज में लग जाए, (तो इस प्रकार) जो भी पुरुष प्रभु को प्राप्त कर लेता है, वह दोबारा जन्मता-मरता नहीं । जो पुरुष प्रभु के गुणों को समझ लेता है और उन्हें बार-बार स्मरण करता है, उसको संसार-सागर को पार करने में देर नहीं लगती ।। ४० ।। जो (जीव-स्त्री, दुनियावाले) ओछे सुख छोड़कर (प्रभु के प्रेम का) सर्वोच्च सुख प्राप्त करती है, वह (अपनी हृदय-रूपी) पति-प्रभु की सेज सँवारती है । वही (जीव-) सखी (अपनी मन की) शंकाएँ दूर करती है । (इस अवस्था में ही) तब यह (जीव, प्रभु की) स्त्री, और वह (प्रभु, जीव-स्त्री का) पति कहलाता है ।।४१।। जीव ने मनुष्य-जन्म पाकर उस प्रभु को नहीं पहचाना जो सचमुच अस्तित्व वाला है । जब जीव को प्रभु की हस्ती का निश्चय हो जाता है, तब ही इसका मन (प्रभु में) विश्वस्त हो जाता है । (परमात्मा है तो ज़रूर

(लेकिन इस विश्वास का लाभ तब ही होता है) जब कोई जीव (इस बात को) समझ ले। तब यह जीव उस प्रभु का रूप हो जाता है, यह (अलग अस्तित्ववाला) नहीं रह जाता ॥ ४२ ॥ सारा जगत यही कहता फिरता है कि मैं (माया) सँभाल लूँ, मैं (माया) एकत्रित कर लूँ। इस माया की खातिर ही (फिर जीव को) बड़ी फ़िक्र घटित हो जाती है। पर जब जीव माया के पति परमात्मा के साथ प्रीति जोड़ता है, तब (इसकी) फ़िक्र समाप्त हो जाती है और यह सारे सुख प्राप्त कर लेता है ॥ ४३ ॥ मरते-खपते जीव के कई जन्म बीत गए हैं; लेकिन आवागमन में पड़ा हुआ अभी तक यह (प्रभु को) याद नहीं करता। अब यदि जगत की असलियत को समझकर (इसका) मन (प्रभु में) टिक जाए तो जिस प्रभु से यह बिछुड़ा हुआ है, उसमें इसे ठिकाना मिल सकता है ॥ ४४ ॥ (जगत ने) बावन अक्षर प्रयोग करके पुस्तकें तो लिख दी हैं, परन्तु (पुस्तकों के द्वारा) यह जगत उस एक प्रभु को नहीं पहचान सका, जो नाशरहित है। हे कबीर! जो मनुष्य (इन अक्षरों के द्वारा) प्रभु की गुणस्तुति करता है, वही पण्डित है, और, वह ज्ञानावस्था में टिका रहता है। लेकिन पण्डित लोगों को तो यह विचार प्राप्त हो चुका है (कि अक्षर जोड़कर दूसरों को बुलावा देते हैं), ज्ञानी लोगों के लिए (यह अक्षर) तत्व के चिन्तन का सहारा है। कबीर कहता है— जिस जीव के भीतर ऐसी अक्ल होती है, वह (इन अक्षरों के द्वारा भी) वही कुछ समझेगा (अर्थात्, पुस्तकें पढ़कर आत्मिक जीवन के जाननेवाला होना ज़रूरी नहीं है) ॥ ४५ ॥

१ ओं सतिगुरु प्रसादि ॥ रागु गउड़ी थितीं कबीर जी कीं। ॥ सलोकु ॥ पंद्रह थितीं सात वार। कहि कबीर उरवार न पार। साधिक सिध लखै जउ भेउ। आपे करता आपे देउ ॥ १ ॥ थितीं ॥ अंमावस महि आस निवारहु। अंतरजामी रामु समारहु। जीवत पावहु मोख दुआर। अनभउ सबदु ततु निजु सार ॥ १ ॥ चरन कमल गोबिंद रंगु लागा। संत प्रसादि भए मन निरमल हरि कीरतन महि अनदिनु जागा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ परिवा प्रीतम करहु बीचार। घट महि खेलै अघट अपार। काल कलपना कदे न खाइ। आदि पुरख महि रहे समाइ ॥ २ ॥ दुतीआ दुहकरि जानै अंग। माइआ ब्रहम रमै सभ संग। ना ओहु बढै न घटता जाइ। अकुल निरंजन एकै भाइ ॥ ३ ॥ त्रितीआ तीने सम करि

लिआवै । आनद मूल परम पदु पावै । साध संगति उपजै बिस्वास । बाहरि भीतरि सदा प्रगास ॥ ४ ॥ चउथहि चंचल मन कउ गहहु । काम क्रोध संगि कबहु न बहहु । जल थल माहे आपहि आप । आपै जपहु आपना जाप ॥ ५ ॥ पांचै पंच तत बिसथार । कनिक कामिनी जुग बिउहार । प्रेम सुधा रसु पीवै कोइ । जरा मरण दुखु फेरि न होइ ॥ ६ ॥ छठि खटु चक्र छहूं दिस धाइ । बिनु परचै नही थिरा रहाइ । दुबिधा मेटि खिमा गहि रहहु । करम धरम की सूल न सहहु ॥ ७ ॥ सातैं सति करि बाचा जाणि । आतम रामु लेहु परवाणि । छूटै संसा मिटि जाहि दुख । सुंन सरोवरि पावहु सुख ॥ ८ ॥

॥सलोकु॥ (अन्धविश्वासी लोग व्रत आदिक रखकर) पन्द्रह तिथियाँ और सात दिन (मनाते हैं), पर कबीर उस परमात्मा की गुणस्तुति करता है जो अनन्त है । गुणस्तुति का साधन करनेवाला जो भी मनुष्य उस प्रभु का भेद पा लेता है (अर्थात्, उसके साथ गहरे सम्बन्ध बना लेता है) उसे प्रकाश-स्वरूप कर्त्तार आप ही आप सर्वत्र दिखता है ॥ १ ॥ अमावस्या वाले दिन (व्रत, तीर्थस्नान आदि तथा दूसरी) आशाएँ दूर करो, प्रत्येक के हृदय की जाननेवाले सर्वव्यापक परमात्मा को हृदय में बसाओ । (यदि परमात्मा का स्मरण करोगे, तो) इसी जन्म (विकारों, दुखों और भ्रमों से) मुक्ति प्राप्त कर लोगे । (इस स्मरण के प्रभाव से) तुम्हारा असली अपना श्रेष्ठ तत्व जाग जाएगा, सतिगुरु का शब्द अनुभवी रूप में संचरित होगा ॥ १ ॥ जिस मनुष्य का प्रेम गोविन्द के सुन्दर चरणों के साथ बन जाता है, गुरु की कृपा से उसका मन पवित्र हो जाता है । परमात्मा की गुणस्तुति में जुड़कर वह मनुष्य विकारों से हर समय सचेत रहता है ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जो परमात्मा शरीरों की क़ैद में नहीं आता, वह अनन्त है और (फिर भी) हरएक शरीर में खेल रहा है, (हे भाई !) उस प्रियतम (के गुणों) का विचार करो, (उस प्रियतम की गुणस्तुति करो । जो मनुष्य प्रियतम प्रभु की गुणस्तुति करता है), उसे कभी मृत्यु का भय स्पर्श नहीं करता, (क्योंकि) वह सदा सबके सृजन करनेवाले अकालपुरुष में जुड़ा रहता है ॥ २ ॥ (वह मनुष्य यह समझ लेता है कि जगत निरा प्रकृति नहीं है, वह इस संसार के) दो अंग समझता है— माया और ब्रह्म । ब्रह्म (इस माया के बीच) हरएक के साथ बस रहा है, वह कभी बढ़ता-घटता नहीं है, सदा एक जैसा रहता, उसका कोई विशेष वंश नहीं है, वह निरंजन है ॥ ३ ॥ (प्रभु की गुणस्तुति करनेवाला मनुष्य) माया के तीनों

गुणों को सहज अवस्था में समान रखता है, वह मनुष्य उस सर्वोच्च आत्मिक अवस्था को प्राप्त कर लेता है जो आनन्द का स्रोत है; सत्संग में रहकर उस मनुष्य के भीतर यह विश्वास पैदा हो जाता है कि भीतर-बाहर सर्वत्र सदा उस प्रभु का ही प्रकाश है ॥ ४ ॥ चौथी तिथि को (किसी कर्म-धर्म के स्थान पर) इस चंचल मन को पकड़कर रखो. कभी काम-क्रोध की संगति में न बैठो। जो परमात्मा जल, थल (सर्वत्र) आप ही आप व्यापक है, उसकी ज्योति में जुड़कर वह जाप जपो जो तुम्हारे काम आनेवाला है ॥ ५ ॥ यह जगत पाँच तत्वों से बना है (जो) धन और स्त्री इन दोनों के झमेले में मस्त हो रहा है। यहाँ कोई विरला मनुष्य है जो परमात्मा के प्रेम-अमृत का घूंट पीता है, (जो पीता है, उसे बुढ़ापे तथा मृत्यु का भय दोबारा कभी नहीं होता) ॥ ६ ॥ मनुष्य की पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ और छठा मन— यह सारा साथ संसार (के पदार्थों की लालसा) में भटकता फिरता है; जब तक मनुष्य परमात्मा की याद में नहीं जुड़ता, तब तक यह सारा साथ (इन भटकावों में से) हटता नहीं। हे भाई ! दुविधा मिटाकर धैर्य धारण करो और धर्म-कर्म का यह लम्बा झगड़ा छोड़ो, (जिसमें से कुछ भी हाथ नहीं आना) ॥ ७ ॥ हे भाई ! सतिगुरु की वाणी में श्रद्धा करो, (इसके द्वारा) परमात्मा (के नाम) को (अपने हृदय में) पिरो लो। (इस प्रकार) भय दूर हो जाएगा, दुःख-क्लेश मिट जाएंगे, उस सरोवर में डुबकी लगा सकोगे, जहाँ संत्रास, भय की कोई भावना नहीं उठती और सुख पाओगे ॥ ८ ॥

असटमी असट धातु की काइआ। ता महि अकुल महा निधि राइआ। गुर गम गिआन बतावै भेद। उलटा रहै अभंग अछेद ॥ ९ ॥ नउमी नवै दुआर कउ साधि। बहती मनसा राखहु बांधि। लोभ मोह सभ बीसरि जाहु। जुगु जुगु जीवहु अमर फल खाहु ॥ १० ॥ दसमी दहदिस होइ अनंद। छूटै भरमु मिलै गोबिंद। जोति सरूपी तत अनूप। अमल न मलन छाह नही धूप ॥ ११ ॥ एकादसी एक दिस धावै। तउ जोनी संकट बहुरि न आवै। सीतल निरमल भइआ सरीरा। दूरि बतावत पाइआ नीरा ॥ १२ ॥ बारसि बारह उगवै सूर। अहिनिसि बाजे अनहद तूर। देखिआ तिहूं लोक का पीउ। अचरजु भइआ जीउ ते सीउ ॥ १३ ॥ तेरसि तेरह अगम बखाणि। अरध उरध बिचि सम पहिचाणि। नीच ऊच नही मान अमान। बिआपिक राम सगल सामान ॥ १४ ॥ चउदसि

चउदह लोक मझारि । रोम रोम महि बसहि मुरारि । सत संतोख का धरहु धिआन । कथनी कथीऐ ब्रहम गिआन ।। १५ ।। पूनिउ पूरा चंद अकास । पसरहि कला सहज परगास । आदि अंति मधि होइ रहिआ थीर । सुख सागर महि रमहि कबीर ।। १६ ।।

यह शरीर (लहू आदि) आठ धातुओं का बना हुआ है, इसमें वह परमात्मा बस रहा है, जिसका कोई विशेष वंश नहीं है, जो सब गुणों का ख़ज़ाना है। जिस मनुष्य को पहुँचवाले गुरु का ज्ञान यह रहस्य बतलाता है, वह शारीरिक मोह से हटकर अविनाशी प्रभु में जुड़ा रहता है ।। ९ ।। (हे भाई !) शारीरिक इन्द्रियों को वश में रखो, इनसे उठती हुई कल्पना को रोको, लोभ, मोह आदि विकार भुला दो। (इस मेहनत का) ऐसा फल मिलेगा जो कभी समाप्त नहीं होगा, ऐसा सुन्दर जीवन जियोगे जो सदा स्थिर रहेगा ।। १० ।। (इस प्रयास से) मन की दुबिधा दूर हो जाती है; वह परमात्मा मिल जाता है, जो निरा नूर ही नूर है, जो सारे जगत का मूल है, जिसके जैसा कोई दूसरा नहीं है, जिसमें विकारों की कोई भी मैल नहीं है, न उसमें अज्ञानता का अँधेरा है और न ही तृष्णा आदि विकारों की आग है। (ऐसे परमात्मा के साथ मेल होने पर) सारे संसार में ही मनुष्य के लिए आनन्द ही आनन्द पैदा हो जाता है ।। ११ ।। (जब मनुष्य का मन विकारों से हटकर) एक परमात्मा (की याद) में जाता है, तब वह दोबारा जन्म-मरण के कष्टों में नहीं आता। जो परमात्मा कहीं दूर बताया जाता था, वह उसे निकट (अपने भीतर ही) प्राप्त हो जाता है, इसलिए उसके भीतर ठण्डक हो जाती है और उसका आपा पवित्र हो जाता है ।। १२ ।। (जिस मनुष्य का मन एक प्रभु की याद में जुड़ता है, उसके भीतर, मानो) बारह सूर्य चढ़ जाते हैं (अर्थात्, उसके भीतर ज्ञान का प्रकाश हो जाता है), उसके भीतर दिन-रात्रि निरन्तर बाजे बजते हैं, उसे तीनों भवनों के मालिक प्रभु का दर्शन हो जाता है, एक आश्चर्य-जनक खेल बन जाता है कि वह मनुष्य साधारण व्यक्ति से कल्याण-स्वरूप परमात्मा का रूप हो जाता है ।। १३ ।। (जिस मनुष्य का मन एक परमात्मा में रम जाता है) वह अगम्य परमात्मा की गुणस्तुति करता है, (इस गुणस्तुति के प्रभाव से) वह सारे संसार में उस प्रभु को एक समान पहचानता है। न उसे कोई नीच दिखता है, न ऊँचा; किसी की ओर से आदर होवे अथवा निरादर, उसके लिए एक समान हैं, क्योंकि उसे सारे जीवों में परमात्मा ही व्यापक दिखता है ।। १४ ।। (हे भाई !) प्रभुजी सारी सृष्टि में, सृष्टि के कण-कण में बस रहे हैं। उसकी गुणस्तुति की बातें करो ताकि उसके इस सही स्वरूप की सूझ बनी रहे। दूसरों की

सेवा करने की और जो कुछ प्रभु ने तुम्हें दिया है, उसमें प्रसन्न रहने की सुरति बनाओ ।। १५ ।। जो परमात्मा सृष्टि के आदि से अन्त तक और मध्य समय में (अर्थात्, सदा ही) मौजूद है, उस सुखों के समुद्र प्रभु में, हे कबीर ! यदि तू डुबकी लगाकर उसका स्मरण करे तो जैसे पूर्णमासी को आकाश में पूर्ण चाँद चढ़ता है तो चाँद की समस्त कलाएँ प्रगट होती हैं, वैसे ही तेरे भीतर भी सहजावस्था का प्रकाश होगा ।। १६ ।।

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।। रागु गउड़ी वार कबीर जीउ के ७ ।। बार बार हरि के गुन गावउ । गुर गमि भेदु सु हरि का पावउ ।। १ ।। रहाउ ।। आदित करै भगति आरंभ । काइआ मंदर मनसा थंभ । अहिनिसि अखंड सुरही जाइ । तउ अनहद बेणु सहज महि बाइ ।। १ ।। सोमवारि ससि अंम्रितु झरै । चाखत बेगि सगल बिख हरै । बाणी रोकिआ रहै दुआर । तउ मनु मतवारो पीवनहार ।। २ ।। मंगलवारे ले माहीति । पंच चोर की जाणै रीति । घर छोडें बाहरि जिनि जाइ । नातरु खरा रिसै है राइ ।। ३ ।। बुधवारि बुधि करै प्रगास। हिरदै कमल महि हरि का बास। गुर मिलि दोऊ एक सम धरै । उरध पंक लै सूधा करै ।। ४ ।। ब्रिहसपति बिखिआ देइ बहाइ । तीनि देव एक संगि लाइ । तीनि नदी तह त्रिकुटी माहि । अहिनिसि कसमल धोवहि नाहि ।। ५ ।। सुक्रितु सहारै सु इह ब्रति चड़ै । अनदिन आपि आप सिउ लड़ै । सुरखी पांचउ राखै सबै । तउ दूजी द्रिसटि न पैसै कबै ।। ६ ।। थावर थिरु करि राखै सोइ । जोति दी वटी घट महि जोइ । बाहरि भीतरि भइआ प्रगासु । तब हूआ सगल करम का नासु ।। ७ ।। जब लगु घट महि दूजी आन । तउ लउ महलि न लाभै जान । रमत राम सिउ लागो रंगु । कहि कबीर तब निरमल अंग ।। ८ ।। १ ।।

गुरु के चरणों में पहुँचकर मैंने वह भेद पा लिया है, जिसके द्वारा परमात्मा को मिला जा सकता है (और वह यह है कि) मैं हर समय परमात्मा के गुण गाता हूँ ।। १ ।। रहाउ ।। जो मनुष्य (हरि के गुण गाकर) उसकी भक्ति शुरू करता है, (यह भक्ति) उसके शरीर गृह को थमले का काम देती है, उसके मन को सहारा देती है। भक्ति के

साथ सुगन्धित हुई उसकी सुरति दिन-रात्रि लगातार (प्रभु-चरणों में) जुड़ी रहती है, तब स्थिरता में टिकने से मन के भीतर (मानो) निरन्तर बाँसुरी बजती है ।। १ ।। (बार-बार प्रभु के गुणगान करने से मन में) शान्ति का अमृत बरसता है, (यह अमृत) चखने से मन तुरन्त सारे विकार दूर कर देता है, सतिगुरु की वाणी के प्रभाव से संयमित मन प्रभु के द्वार पर टिका रहता है और मस्त हुआ मन उस अमृत को पीता रहता है ।। २ ।। (बार-बार हरि के गुण गाकर) मनुष्य अपने मन के चारों ओर गुणस्तुति का, मानो, किला बना लेता है, कामादिक पाँच चोरों को (चोरी करने का) ढंग समझ लेता है। (हे भाई !) तू भी (ऐसे) किले को छोड़कर बाहर न जाना (अर्थात्, अपने मन को बाहर न भटकने देना) नहीं तो यह मन (विकारों में पड़कर) बड़ा दुखी होगा ।। ३ ।। (हरि के गुण गाकर, मनुष्य अपनी) सूझ में प्रभु के नाम का प्रकाश पैदा कर लेता है, हृदय-कमल में परमात्मा का निवास बना लेता है, सतिगुरु को मिलकर आत्मा और परमात्मा का मेल बना देता है, (पूर्वकाल में माया की ओर) मुड़े मन को वश में करके प्रभु के सम्मुख कर देता है ।। ४ ।। (बार-बार हरि के गुण गाकर, मनुष्य) माया (के प्रभाव) को (गुणस्तुति के प्रवाह में) बहा देता है, माया के तीनों गुणों को एक प्रभु की याद में लीन कर देता है। जो (लोग गुणस्तुति छोड़कर माया की) चाह में रहते हैं, वह माया की त्रिगुणात्मक नदियों में (ही गोते खाते हैं, दिन-रात नीचकर्म करते हैं, गुणस्तुति से खाली रहकर उन्हें) धोते नहीं हैं ।। ५ ।। (बार-बार हरि के गुण गाकर, मनुष्य इस गुणस्तुति की) नेक कमाई को (अपने जीवन का) सहारा बना लेता है और इसलिए इस दुर्गम घाटी पर चढ़ता है कि हरवक्त अपने आप से लड़ाई करता है, पाँचों ही ज्ञानेन्द्रियों को वश में रखता है, तब (किसी पर भी) कभी उसकी मेर-तेर की दृष्टि नहीं पड़ती ।। ६ ।। ईश्वरीय सौन्दर्य की जो सुन्दर छोटी सी ज्योति हरेक हृदय में होती है, (ईश्वरीय गुणों का गायक मनुष्य) उस ज्योति को अपने भीतर सँभालकर रखता है, (उसके प्रभाव से उसके) भीतर-बाहर ज्योति का ही प्रकाश हो जाता है। इस अवस्था में पहुँचकर उसके पूर्वकृत कर्मों (के संस्कारों) का नाश हो जाता है ।। ७ ।। (लेकिन) जब तक मनुष्य के मन में दुनियावी प्रतिष्ठा आदि की वासना है, तब तक वह प्रभु के चरणों में जुड़ नहीं सकता। कबीर कहता है— परमात्मा का स्मरण करते-करते परमात्मा के साथ प्रेम हो जाता है और तब शरीर पवित्र हो जाता है ।। ८ ।। १ ।।

रागु गउड़ी चेती बाणी नामदेउ जीउ की

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।। देवा पाहन तारीअले । राम

कहत जन कस न तरे ।। १ ।। रहाउ ।। तारी ले गनिका बिनु रूप कुबिजा बिआधि अजामलु तारीअले। चरन बधिक जन तेऊ मुकति भए। हउ बलि बलि जिन राम कहे ।। १ ।। दासी सुत जनु बिदरु सुदामा उग्रसैन कउ राज दीए। जपहीन तपहीन कुलहीन क्रमहीन नामे के सुआमी तेऊ तरे ।। २ ।। १ ।।

हे प्रभु ! (वह) पत्थर (भी समुद्र पर) तिरा दिए (जिन पर तेरा नाम लिखा गया था; भला) वह मनुष्य (संसार-समुद्र से) क्यों पार नहीं होंगे, जो तेरा नाम-स्मरण करते हैं ? ।। १ ।। रहाउ ।। हे प्रभु ! तुमने वेश्या को बचा लिया, तुमने कुरूप कुब्जा का कोढ़ दूर किया, तुमने विकारों में ग्रस्त अजामिल को पार कर दिया, (कृष्णजी के) पैरों में निशाना लगानेवाले शिकारी तथा ऐसे कई (विकारी) व्यक्ति (तेरी कृपा से) मुक्त हो गए। मैं उन पर बलिहारी हूँ, जिन्होंने प्रभु का नाम-स्मरण किया ।। १ ।। हे प्रभु ! दासी-पुत्र विदुर तेरा भक्त (प्रसिद्ध हुआ); सुदामा (जिसका तुमने दारिद्र्य दूर किया), उग्रसेन को राज्य दिया। हे नामदेव के स्वामी ! तुम्हारी कृपा से वे पार हो गए हैं, जिन्होंने कोई भी जप नहीं किए, कोई तप नहीं किए, जिनकी कोई ऊँची जाति नहीं थी, जिनके कर्म भी शुभ नहीं थे ।। २ ।। १ ।।

रागु गउड़ी रविदास जी के पदे गउड़ी गुआरेरी

१ ओं सतिनामु करता पुरखु गुर प्रसादि। मेरी संगति पोच सोच दिनु राती। मेरा करमु कुटिलता जनमु कुभांती ।।१।। राम गुसईआ जीअ के जीवना। मोहि न बिसारहु मै जनु तेरा ।। १ ।। रहाउ ।। मेरी हरहु बिपति जन करहु सुभाई। चरण न छाडउ सरीर कल जाई ।। २ ।। कहु रविदास परउ तेरी साभा। बेगि मिलहु जन करि न बिलांबा ।। ३ ।। १ ।।

(हे प्रभु !) दिन-रात्रि मुझे यह चिन्ता रहती है (कि मेरा क्या बनेगा ?) नीच व्यक्तियों के साथ मेरा उठना-बैठना है, खोट मेरा (नित्य-कर्म) है; मेरा जन्म (भी) निम्न जाति में से है ।। १ ।। हे मेरे राम ! हे धरती के साईं ! हे मेरे प्राणों के आसरे ! मुझे न भुलाओ, मैं तेरा दास हूँ ।। १ ।। रहाउ ।। हे प्रभु ! मेरी विपत्ति दूर कर; मुझ सेवक को शुभ अथवा पवित्र भावनावाला बना ले; चाहे मेरी देह की शक्ति भी चली जाए, (हे राम !) मैं तेरे चरण नहीं छोड़ूँगा ।। २ ।। हे रविदास !

(प्रभु-द्वार पर) कह— (हे प्रभु !) मैं तुम्हारी शरण में हूँ, मुझ सेवक को शीघ्र मिलो, ढील-ढाल न करो ।। ३ ।। १ ।।

बेगमपुरा सहर को नाउ । दूखु अंदोहु नही तिहि ठाउ । नां तसवीस खिराजु न मालु । खउफु न खता न तरसु जवालु ।। १ ।। अब मोहि खूब वतन गह पाई । ऊहां खैरि सदा मेरे भाई ।। १ ।। रहाउ ।। काइमु दाइमु सदा पातिसाही । दोम न सेम एक सो आही । आबादानु सदा मसहूर । ऊहां गनी बसहि मामूर ।। २ ।। तिउ तिउ सैल करहि जिउ भावै । महरम महल न को अटकावै । कहि रविदास खलास चमारा । जो हम सहरी सु मीतु हमारा ।। ३ ।। २ ।।

(जिस आत्मिक अवस्था-रूपी शहर में मैं बसता हूँ) उस शहर का नाम है, बेग़मपुरा (अर्थात्, उस शहर में कोई दुःख स्पर्श नहीं करता), उस स्थान पर न कोई दुःख है, न चिन्ता और न कोई घबराहट, वहाँ दुनिया वाली दौलत नहीं और न ही उस दौलत को चुंगी है; उस अवस्था में किसी पाप-कर्म का भय नहीं; कोई ख़तरा नहीं; कोई गिरावट नहीं ।। १ ।। हे मेरे भाई ! अब मैंने बसने के लिए सुन्दर जगह प्राप्त कर ली है, वहाँ सदा सुख ही सुख है ।। १ ।। रहाउ ।। वह (आत्मिक अवस्था एक ऐसी) बादशाहत (मिल्कियत) है, जो सदा टिकी रहनेवाली है, वहाँ किसी का दूसरा-तीसरा स्थान नहीं, सब एक जैसे हैं; वह शहर सदा प्रसिद्ध है और आबाद है, वहाँ धनी तथा तृप्त व्यक्ति रहते हैं ।। २ ।। (उस आत्मिक शहर में पहुंचे हुए व्यक्ति उस अवस्था में) आनन्दपूर्वक विचरण करते हैं; वे उस (ईश्वरीय) महल के जानकार होते हैं; (इसलिए) कोई (उनके मार्ग में) रुकावट नहीं डाल सकता। चमार रविदास जिसने (दुख, परेशानी आदि से) मुक्ति पा ली है, कहता है— हमारा मित्र वह है, जो हमारा सत्संगी है ।। ३ ।। २ ।।

१ ओं सतिगुर प्रसादि ।। गउड़ी बैरागणि रविदास जीउ । घट अवघट डूगर घणा इकु निरगुणु बैलु हमार । रमईए सिउ इक बेनती मेरी पूंजी राखु मुरारि ।। १ ।। को बनजारो राम को मेरा टांडा लादिआ जाइ रे ।। १ ।। रहाउ । हउ बनजारो राम को सहज करउ ब्यापारु । मै राम नाम धनु लादिआ बिखु लादी संसारि ।। २ ।। उरवार पार के दानीआ लिखि लेहु आल

पतालु । मोहि जम डंडु न लागई तजीले सरब जंजाल ॥ ३ ॥ जैसा रंगु कसुंभ का तैसा इहु संसारु । मेरे रमईए रंगु मजीठ का कहु रविदास चमार ॥ ४ ॥ १ ॥

(जिन मार्गों से मुझे नाम का सौदा लेकर जाना है वे) रास्ते बड़े दुर्गम तथा पहाड़ी हैं, और मेरा (मन-) बैल छोटा सा है। प्यारे प्रभु के समक्ष मेरी प्रार्थना है— हे प्रभु ! मेरी पूँजी की तुम आप रक्षा करना ॥१॥ हे भाई! (यदि सुन्दर प्रभु की कृपा से) प्रभु के नाम का व्यापार करनेवाला कोई व्यक्ति मुझे मिल जाए तो मेरा माल भी लादा जा सके ॥ १ ॥ रहाउ॥ मैं प्रभु के नाम का व्यापारी हूँ, मैं यह ऐसा व्यापार कर रहा हूँ, जिसमें से मुझे सहज अवस्था की कमाई प्राप्त होवे। (प्रभु की कृपा से) मैंने प्रभु के नाम का सौदा लादा है, पर संसार ने (आत्मिक मृत्यु लानेवाली माया-रूपी) विष का व्यापार किया है ॥ २ ॥ जीवों की लोक-परलोक की सब करतूतें जाननेवाले हे चित्रगुप्त ? (मेरे बारे में) जो तुम्हारा मन करे लिख लेना (अर्थात्, यमराज के पास पेश करने के लिए मेरे कार्यों में तुम्हें कुछ भी नहीं मिलेगा, क्योंकि प्रभु की कृपा से) मैंने सारे जंजाल छोड़ दिए हुए हैं, इसलिए मुझे यम का दण्ड नहीं लगेगा ॥ ३ ॥ हे चमार रविदास ! कहो— (जैसे-जैसे मैं राम-नाम का व्यापार कर रहा हूँ, मुझे विश्वास आ रहा है कि) यह जगत ऐसा है जैसे कुसुंभडे का रंग और मेरे प्यारे राम का नाम-रंग ऐसे है जैसे मजीठ का रंग ॥ ४ ॥ १ ॥

गउड़ी पूरबी रविदास जीउ

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ कूपु भरिओ जैसे दादिरा कछु देसु बिदेसु न बूझ। ऐसे मेरा मनु बिखिआ बिमोहिआ कछु आरा पारु न सूझ ॥ १ ॥ सगल भवन के नाइका इकु छिनु दरसु दिखाइ जी ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मलिन भई मति माधवा तेरी गति लखी न जाइ । करहु क्रिपा भ्रमु चूकई मै सुमति देहु समझाइ ॥ २ ॥ जोगीसर पावहि नही तुअ गुण कथनु अपार । प्रेम भगति कै कारणै कहु रविदास चमार ॥ ३ ॥ १ ॥

जैसे (कोई) कूँआ मेंढकों से भरा हुआ हो, (उन मेंढकों को) कोई जानकारी नहीं होती (कि इस कूँए से बाहर कोई दूसरा) देश भी है; वैसे ही मेरा मन माया (के कूएँ) में इतनी बुरी तरह फंसा हुआ है कि इसे (माया के कूएँ से निकलने के लिए) कोई ओर-छोर नहीं सूझता ॥ १ ॥ हे समस्त भुवनों के स्वामी ! मुझे एक क्षण भर के लिए (ही) दर्शन

दे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ हे प्रभु ! मेरी बुद्धि (विकारों से) मैली है, (इसलिए) मुझे तेरी गति की पहचान नहीं आती (अर्थात्, तुम कैसे हो यह मैं नहीं समझ पाता ?) हे प्रभु ! कृपा कर, मुझे सुबुद्धि दे, (ताकि) मेरी दुबिधा समाप्त हो जाए ॥ २ ॥ (हे प्रभु !) बड़े-बड़े योगी (भी) तेरे अनन्त गुणों का रहस्य नहीं पा सकते, (पर) हे रविदास चमार ! तू प्रभु की गुणस्तुति कर, ताकि मुझे प्रेम-भक्ति की देन मिल सके ॥ ३ ॥ १ ॥

गउड़ी बैरागणि

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥ सतजुगि सतु तेता जगी दुआपरि पूजाचार । तीनौ जुग तीनौ दिड़े कलि केवल नाम अधार ॥१॥ पारु कैसे पाइबो रे । मो सउ कोऊ न कहै समझाइ । जा ते आवागवनु बिलाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ बहु बिधि धरम निरूपीऐ करता दीसै सभ लोइ । कवन करम ते छूटीऐ जिह साधे सभ सिधि होइ ॥ २ ॥ करम अकरम बीचारीऐ संका सुनि बेद पुरान । संसा सद हिरदै बसै कउनु हिरै अभिमानु ॥ ३ ॥ बाहरु उदकि पखारीऐ घट भीतरि बिबिधि बिकार । सुध कवन पर होइबो सुच कुंचर बिधि बिउहार ॥४॥ रवि प्रगास रजनी जथा गति जानत सभ संसार । पारस मानो ताबो छुए कनक होत नही बार ॥ ५ ॥ परम परस गुरु भेटीऐ पूरब लिखत लिलाट । उनमन मन मन ही मिले छुटकत बजर कपाट ॥ ६ ॥ भगति जुगति मति सति करी भ्रम बंधन काटि बिकार । सोई बसि रसि मन मिले गुन निरगुन एक बिचार ॥ ७ ॥ अनिक जतन निग्रह कीए टारी न टरै भ्रम फास । प्रेम भगति नही ऊपजै ता ते रविदास उदास ॥ ८ ॥ १ ॥

(हे पण्डित जी ! आप कहते हो कि हरएक युग में अपना-अपना कर्म ही प्रधान है, इस अनुसार) सतयुग में दान आदिक प्रधान था, त्रेतायुग यज्ञों में प्रवृत्त रहा, द्वापर में देवताओं की पूजा प्रधान कर्म था; (इस प्रकार आप कहते हो कि) तीनों युग इन तीनों कर्मों-धर्मों पर ज़ोर देते हैं; और कलियुग में केवल (राम) नाम का आसरा है ॥ १ ॥ लेकिन, हे पण्डित ! (इन युगों के बाँटे हुए कर्मों-धर्मों से, संसार-समुद्र का) दूसरा किनारा कैसे प्राप्त करोगे ? (आप में से) कोई भी मुझे ऐसा काम समझाकर नहीं बता सका, जिसकी सहायता से (मनुष्य का) जन्म-मरण का चक्र समाप्त हो